श्री महर्षि व्यास प्रणीत

महाभारत ।

७ द्रोण पर्व ।

(भाषा भाष्य समेत)

भाषान्तरकर्ता और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

संवत् १९८४

शक १८४९

सन १९२७

विजयका मार्ग ।

ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं, ध्रुवा साधुषु सन्नतिः ।
श्रीर्ध्रुवापि च यज्ञेषु, ध्रुवो नारायणे जयः ॥

म० भा० द्रोण० ७६।२५

" जैसे ब्राह्मणों में निश्चय से सत्य, साधुपुरुषों में सदा नम्रता और यज्ञोंमें निश्चित श्री विद्यमान रहती है, वैसे ही नारायण में निश्चय ही विजय रहता है। "

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्यायमंडल, भारतमुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

श्री महर्षिव्यासप्रणीतम् ।

महाभारतम्

७ द्रोणपर्व ।

१ द्रोणाभिषेकपर्व ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीवेदव्यासाय नमः ।
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥
जनमेजय उवाच-तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यपराक्रमम् ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥
धृतराष्ट्रस्ततो राजा शोकव्याकुललोचनः ।
किमचेष्टत विप्रर्षे हते पितरि वीर्यवान् ॥ २ ॥
तस्य पुत्रो हि भगवन्भीष्मद्रोणमुखै रथैः ।
पराजित्य महेष्वासान्पाण्डवान्राज्यमिच्छति ॥ ३ ॥
तस्मिन्हते तु भगवन्केतौ सर्वधनुष्मताम् ।

द्रोणपर्वमें पहला अध्याय और

द्रोणाभिषेकपर्व ।

नारायण, नरोत्तम नर और देवी सरस्वतीजी को नमस्कार कर के जय कीर्तन करना चाहिये । (१)

राजा जनमेजय बोले, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! महाबली, अत्यन्त तेजस्वी और बडे प्रतापी, देवताओंके व्रतमें स्थित, जेठे पुरुखा भीष्म पाञ्चाल शिखण्डीके हाथसे मारे गये; यह सुनकर बलवान् राजा धृतराष्ट्रने आंसू भरे नेत्रसे किस प्रकारकी चेष्टा की थी ? ॥ हे भगवन्! उनके पुत्रोंने भीष्म,द्रोण आदि महारथ वीरोंके द्वारा महाधनुर्द्धारी पाण्डवोंको पराजित करके उनके राज्य लेनेकी इच्छा की थी ॥ हे तपोधन! सब धनुष-

यद्चेष्टत कौरव्यस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच-निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।

लेभे न शान्तिं कौरव्यश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ ५ ॥

तस्य चिन्तयतो दुःखमनिशं पार्थिवस्य तत् ।

आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा ॥ ६ ॥

शिबिरात्सञ्जयं प्राप्तं निशि नागाह्वयं पुरम् ।

आम्बिकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत ॥ ७ ॥

श्रुत्वा भीष्मस्य निधनमप्रहृष्टमना भृशम् ।

पुत्राणां जयमाकांक्षन्विललापाऽऽतुरो यथा ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- संशोच्य तु महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।

किमकार्षुः परं तात कुरवः कालचोदिताः ॥ ९ ॥

तस्मिन्विनिहते शूरे दुराधर्षे महात्मनि ।

किं नु स्वित्कुरवोऽकार्षुर्निमग्नाः शोकसागरे ॥ १० ॥

तदुदीर्णं महत्सैन्यं त्रैलोक्यस्याऽपि सञ्जय ।

भयमुत्पादयेत्तीव्रं पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥

धारियोंके पताकारूपी पितामह भीष्मके गिरनेपर राजा दुर्योधननेभी कैसा उद्योग किया ? वह तुम मुझसे कहो ॥ (१-४)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! जेठे पिता भीष्मका मरना सुनके कौरवराज राजा धृतराष्ट्र बहुत ही चिन्ता और शोकसे व्याकुल होगये; उनकी शान्ति और धीरज जाता रहा ॥ वह हर घडी दुःख और चिन्ताहीमें मग्न थे; ऐसे अवसर पर गवल्गणपुत्र सञ्जय फिर उनके पास आये ॥ अम्बिका पुत्र राजा धृतराष्ट्रने रात्रिके समय सञ्जयको शिबिर (डेरे) से हस्तिनापुरमें आया हुआ देख कर उनसे पूछा ॥ (५-७)

पुत्रके विजयकी अभिलाषा करने वाले राजा धृतराष्ट्र भीष्मका पतन (गिरना) सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो आतुरकी भांति विलाप करके कहने लगे, कि- हे तात ! कालप्रेरित कौरव लोगोंने अत्यन्त पराक्रम-युक्त महात्मा भीष्मके मारे जाने पर शोक और चिन्ता से दुःखित हो क्या किया ? उन महा प्रतापी वीर महात्मा भीष्मके मरनेपर कौरवोंने शोकसमुद्रमें डूब कर किन कार्योंका उद्योग किया ? (८-१०)

हे सञ्जय ! महात्मा पाण्डवों की गगनकी भेद करनेवाली बडी सेना उस समय तीनों लोकको भय दिखानेमें

को हि दौर्योधने सैन्ये पुमानासीन्महारथः ।
यं प्राप्य समरे वीरा न त्रस्यन्ति महाभये ॥ १२ ॥
देवव्रते तु निहते कुरूणामृषभे तदा ।
किमकार्षुर्नृपतयस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १३ ॥

सञ्जय उवाच— शृणु राजन्नेकमना वचनं ब्रुवतो मम ।
यत्ते पुत्रास्तदाऽकार्षुर्हते देवव्रते मृधे ॥ १४ ॥
निहते तु तदा भीष्मे राजन्सत्यपराक्रमे ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च प्राध्यायन्त पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥
विस्मिताश्च प्रहृष्टाश्च क्षत्रधर्मं निशम्य ते ।
स्वधर्मं निन्दमानास्ते प्रणिपत्य महात्मने ॥ १६ ॥
शयनं कल्पयामासुर्भीष्मायाऽमितकर्मणे ।
सोपधानं नरव्याघ्र शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १७ ॥
विधाय रक्षां भीष्माय समाभाष्य परस्परम् ।
अनुमान्य च गाङ्गेयं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ १८ ॥
क्रोधसंरक्तनयनाः समवेक्ष्य परस्परम् ।
पुनर्युद्धाय निर्जग्मुः क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ १९ ॥

समर्थ हुई होगी! इस महाभयके समयमें दुर्योधनकी सेनामें ऐसा कौन महारथी था, कि जिसके आसरेसे कौरवोंका भय निवृत्त होगा ॥ हे सञ्जय ! कौरवश्रेष्ठ देवव्रती भीष्मके मरने पर कौरवोंने जो कुछ किया, उस वृत्तान्तका तुम मुझसे वर्णन करो ॥ (११–१३)

सञ्जय बोले, हे राजा धृतराष्ट्र! युद्ध में भीष्मके मारे जानेपर तुम्हारे पुत्रोंने जो कुछ किया वह मैं तुमसे कहता हूं; तुम एकाग्रचित्त होकर मेरी बातोंको सुनो ॥ सत्य–पराक्रमी भीष्मके मरनेसे तुम्हारे सब पुत्र अपने पराजय और पाण्डवोंके विजयका अनुमान करके शोक और चिन्तामें डूब गये ॥ हे प्रजानाथ ! दोनों दल भयभीत और आनन्दित हुए तथा क्षत्रिय धर्मकी निन्दा भी करने लगे; और महातेजस्वी महात्मा भीष्मको प्रणाम करके तिरछे बाणोंके उपधानके सहित शय्या कल्पना (बना) कर दी ॥(१४—१७)

उसपर उनके रक्षाकी तैयारी करके उन्हें प्रदक्षिण किया। उनसे अनुमति लेकर सबने आपसमें मिलकर बात चीत की, और उनकी आज्ञाके अनुसार क्रोधसे लाल नेत्र कर परस्पर एक दूसरेको देखते

ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां निनदेन च ।
तावकानामनीकानि परेषां च विनिर्ययुः ॥ २० ॥
व्यावृत्तेऽर्यम्णि राजेन्द्र पतिते जाह्नवीसुते ।
अमर्षवशमापन्नाः कालोपहतचेतसः ॥ २१ ॥
अनादृत्य वचः पथ्यं गाङ्गेयस्य महात्मनः ।
निर्ययुर्भरतश्रेष्ठाः शस्त्राण्यादाय सत्वराः ॥ २२ ॥
मोहात्तव सपुत्रस्य वधाच्छान्तनवस्य च ।
कौरव्या मृत्युसाद्भूताः सहिताः सर्वराजभिः ॥ २३ ॥
अजावय इवाऽगोपा वने श्वापदसंकुले ।
भृशमुद्विग्नमनसो हीना देवव्रतेन ते ॥ २४ ॥
पतिते भरतश्रेष्ठे बभूव कुरुवाहिनी ।
द्यौरिवाऽपेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना ॥ २५ ॥
विपन्नसस्येव मही वाक्चैवाऽसंस्कृता तथा ।
आसुरीव यथा सेना निगृहीते नृपे बलौ ॥ २६ ॥
विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा ।
वृकैरिव वने रुद्धा पृषती हतयूथपा ॥ २७ ॥

हुए काल-प्रेरित युद्ध करनेके निमित्त फिर सजके खडे हुए ॥ तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेना शंख, भेरी आदि बजाती हुई निकलने लगी ॥ (१८—२०)

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्रगण भरतश्रेष्ठ गङ्गा-पुत्र भीष्मके शरशय्यापर सोनेके समय अर्थात् अपराह्ण कालमें क्रोधके वशमें कालप्रेरित और हतबुद्धि होके महात्मा भीष्मके हितकारी वचनोंको न मानकर शस्त्रोंको धारण करके शीघ्रही शिबिरोंसे बाहर हुए ॥ तुम्हारे पुत्रोंकी दुर्बुद्धिसे महात्मा भीष्मका विनाश होने पर सब राजाओंके सहित कौरव लोग भीष्मके विना उद्विग्न चित्त होकर ऐसे दीखने लगे, जैसे महा विपदके वनमें विना रक्षा करनेवाले के भेड और बकरियों का झुण्ड मृत्यु के निमित्त दीखता है ॥ (२१—२४)

हे भरत-श्रेष्ठ ! भीष्मके शरशय्या पर शयन करने के अनन्तर कौरवी सेना ऐसी दीख पडने लगी जैसे ताराओंके विना अन्तरिक्ष, वायुके विना आकाश, शस्य विना पृथ्वी, संस्कार विना वाणी, बलि राजके विना असुरों की सेना, पति-हीन स्त्री, जल के सूख जाने पर नदी, वनमें भेडियेसे पकडी हुई हरिनी

शरभाहतसिंहेव महती गिरिकन्दरा ।
भारती भरतश्रेष्ठे पतिते जाह्नवीसुते ॥ २८ ॥
विष्वग्वाताहता रुग्णा नौरिवाऽऽसीन्महार्णवे ।
बलिभिः पाण्डवैर्वीरैर्लब्धलक्षैर्भृशार्दिता ॥ २९ ॥
सा तदाऽऽसीद्भृशं सेना व्याकुलाश्वरथद्विपा ।
विपन्नभूयिष्ठनरा कृपणा ध्वस्तमानसा ॥ ३० ॥
तस्यां त्रस्ता नृपतयः सैनिकाश्च पृथग्विधाः ।
पाताल इव मज्जन्तो हीना देवव्रतेन ते ॥ ३१ ॥
कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः स हि देवव्रतोपमः ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवाऽतिथिम् ॥ ३२ ॥
बन्धुमापद्गतस्येव तमेवोपागमन्मनः ।
चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तत्र भारत पार्थिवाः ॥ ३३ ॥
राधेयं हितमस्माकं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
स हि नाऽयुध्यत तदा दशाहानि महायशाः॥ ३४ ॥
सामात्यबन्धुः कर्णो वै तमानयत मा चिरम् ।

और शरभसे मारे गये सिंहके विना पर्वतकी कन्दरा सूनी दीखने लगती है। (२५—२८)

लाखों बलवान् वीरोंको पाण्डवोंसे अत्यन्त पीडित देख, उस समय वह कौरवी सेना इस प्रकारसे अत्यन्त व्याकुल होगई, जैसे तूफानके जोरसे समुद्र में चलती हुई नौका उलट जाती है ॥ उस कौरवोंकी सेनामें, घोडे, हाथी, रथ आदि सब व्याकुल हो गये और विपत्तिमें पडे हुए बहुतसे मनुष्य दीन और हतबुद्धि दीखने लगे ॥ विना भीष्मके उस सेनामें सम्पूर्ण राजा लोग भयभीत और पाताल में निमग्न होने की भांति कातर हो गये। (२९—३१)

अनन्तर जिस प्रकारसे गृहस्थ मनुष्य विद्या और तपस्यासे प्रज्वलित अतिथि की प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकारसे कौरवोंने सर्वशस्त्रधारी कर्णका स्मरण किया; क्योंकि कर्णका पराक्रम भीष्मके समान है ॥ हे भारत ! जिस प्रकारसे विपदमें पडे हुए मनुष्यका मन अपने बन्धुओं की ओर दौडता है, उसी प्रकार से उन सब पुरुषोंका मन कर्णकी ओर झुक गया। वे सब लोग " हे कर्ण ! हे कर्ण " कह के पुकारने लगे और कहने लगे, कि " मरनेके भयसे रहित सखा-पुत्र कर्ण ही हमलोगोंके हितकारी हैं ; उन महा-

भीष्मेण हि महाबाहुः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥
रथेषु गण्यमानेषु बलविक्रमशालिषु ।
संख्यातोऽर्धरथः कर्णो द्विगुणः सन्नरर्षभः ॥ ३६ ॥
रथातिरथसंख्यायां योऽग्रणीः शूरसम्मतः ।
सासुरानपि देवेशान्रणे यो योद्धुमुत्सहेत् ॥ ३७ ॥
स तु तेनैव कोपेन राजन्गाङ्गेयमुक्तवान् ।
त्वयि जीवति कौरव्य नाऽहं योत्स्ये कदाचन ॥ ३८ ॥
त्वया तु पाण्डवेयेषु निहतेषु महामृधे ।
दुर्योधनमनुज्ञाप्य वनं यास्यामि कौरव ॥ ३९ ॥
पाण्डवैर्वा हते भीष्मे त्वयि स्वर्गमुपेयुषि ।
हन्ताऽस्म्येकरथेनैव कृत्स्नान्यान्मन्यसे रथान् ॥ ४० ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्दशाहानि महायशाः ।
नाऽयुध्यत ततः कर्णः पुत्रस्य तव सम्मते ॥ ४१ ॥
भीष्मः समरविक्रान्तः पाण्डवेयस्य भारत ।
जघान समरे योधानसंख्येयपराक्रमः ॥ ४२ ॥

यशस्वी कर्णने बन्धु मित्रोंके सहित दश दिनों तक युद्ध नहीं किया है, उन्हें शीघ्र बुलाओ। " (३२—३५)

जो पुरुषोंमें मुख्य महाबाहु कर्ण महारथोंकी अपेक्षा द्विगुण है, जो रथी और अतिरथियोंकी गिनतीमें सबसे प्रथम गिने जानेके योग्य और शूरवीरतासे भरे हैं; जो यम, कुबेर, वरुण और इन्द्रके सङ्ग भी संग्राम करनेका उत्साह रखते हैं; जिनको भीष्मने सब क्षत्रियोंके सामने बलविक्रमशाली महारथोंकी गिनती करनेके समय अर्द्ध रथीमें गिना था जो उसी क्रोधसे गङ्गापुत्र भीष्मसे बोले थे, कि " हे कौरव्य ! जब तक तुम जीवित रहोगे, तब तक मैं कदापि युद्ध नहीं करूंगा। तुम यदि पाण्डवोंका इस महायुद्धमें वध कर सकोगे, तो मैं दुर्योधनकी अनुमतिसे वनको चला जाऊंगा; और यदि पाण्डवोंके हाथसे मर कर तुम स्वर्ग-गमन करोगे, मैं एक रथी ही होकर जिन्हें तुम महारथ जानते हो, उन सबको मार डालूंगा। " (३५-४०)

जिस महाबाहु महायशस्वी कर्णने यही वचन कह कर दश दिन तक आपके पुत्र दुर्योधनकी अनुमतिसे युद्ध नहीं किया था, हे भारत ! युद्धमें विक्रम करनेवाले महा पराक्रमी शूर, सत्यव्रतधारी, महाबली भीष्मके दश दिनों तक

तस्मिंस्तु निहते शूरे सत्यसन्धे महौजसि ।
त्वत्सुताः कर्णमस्मार्षुस्तर्तुकामा इव प्लवम् ॥ ४३ ॥
तावकास्तव पुत्राश्च सहिताः सर्वराजभिः ।
हा कर्ण इति चाऽऽक्रन्दन्कालोऽयमिति चाऽब्रुवन् ॥४४॥
एवं ते स्म हि राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
चुक्रुशुः सहिता योधास्तत्र तत्र महाबलाः ॥ ४५ ॥
जामदग्न्याभ्यनुज्ञातमस्त्रे दुर्वारपौरुषम् ।
अगमन्नो मनः कर्णं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ ४६ ॥
स हि शक्तो रणे राजंस्त्रातुमस्मान्महाभयात् ।
त्रिदशानिव गोविन्दः सततं सुमहाभयात् ॥ ४७ ॥
वैशम्पायन उवाच-तथा तु सञ्जयं कर्णं कीर्तयन्तं पुनः पुनः ।
आशीविषवदुच्छ्वस्य धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ ४८ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—यत्तद्वैकर्त्तनं कर्णमगमद्वो मनस्तदा ।
अप्यपश्यत राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ४९ ॥

युद्ध करके पाण्डवोंकी बहुतसी सेनाका नाश करके शर-शय्या पर शयन करनेके अनन्तर उस कर्णका आपके पुत्रोंने इस प्रकारसे स्मरण किया, जैसे बटोही मनुष्य नदीके पार जानेके निमित्त नौका की तलाश करते हैं। (४१-४३)

आपके सब पुत्र और सेनाके सम्पूर्ण मनुष्य सब राजाओंके सहित "हा कर्ण! हा कर्ण!" कहते हुए व्याकुल होगये और कहने लगे, – "हे कर्ण! यही अब तुम्हारे युद्धका समय आपहुंचा है॥" जिस प्रकारसे विपदके समयमें भाइयों पर चित्त जाता है, उसी भांतिसे परशुराम के शिष्य महाबली अत्यन्त तेजस्वी कर्णकी ओर हमलोगोंका मन दौडने लगा, कि जिस प्रकारसे गोविंद महाभयसे देवताओंका उद्धार करता है, उसी प्रकारसे धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ महा पराक्रमी कर्ण इस महाविपद – सागरसे हम लोगोंको पार करेंगे। (४४-४७)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय! सञ्जय इस प्रकारसे बार बार कर्णके विषयकी बात कह रहे थे, उसी समय राजा धृतराष्ट्रने सर्पके समान लम्बी सांस लेकर सञ्जयसे पूछा, हे तात! कौरवोंको आसरा देनेवाले भीष्म के मारे जाने पर तुम लोगोंका मन जो उस समय शरीरके त्यागनेमें उत्साही कर्ण पर लगा था, उससे क्या उस कर्णको तुमने देखा था? (४८-४९)

अपि तन्न मृषाऽकार्षीत्कच्चित्सत्यपराक्रमः ।
सम्भ्रान्तानां तदार्त्तानां त्रस्तानां त्राणमिच्छताम्॥५०॥
अपि तत्पूरयाञ्चक्रे धनुर्धरवरो युधि ।
यत्तद्विनिहते भीष्मे कौरवाणामपाकृतम् ॥ ५१ ॥
तत्खण्डं पूरयन्कर्णः परेषामादधद्भयम् ।
स हि वै पुरुषव्याघ्रो लोके सञ्जय कथ्यते ॥ ५२ ॥
आर्त्तानां बान्धवानां च क्रन्दतां च विशेषतः ।
परित्यज्य रणे प्राणांस्तत्त्राणार्थं च शर्म च ।
कृतवान्मम पुत्राणां जयाशां सफलामपि ॥ ५३ ॥ [५३]

इति श्रीमहाभारते० संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच-हतं भीष्ममथाधिरथिर्विदित्वा भिन्नां नावमिवात्यगाधे कुरूणाम्।
सोदर्यवद्व्यसनात्सूतपुत्रः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ १ ॥
श्रुत्वा तु कर्णः पुरुषेन्द्रमच्युतं निपातितं शान्तनवं महारथम् ।
अथोपयायात्सहसाऽरिकर्षणो धनुर्धराणां प्रवरस्तदा नृप ॥ २ ॥
हते तु भीष्मे रथसत्तमे परैर्निमज्जतीं नावमिवाऽर्णवे कुरून् ।

क्या उस पराक्रमी कर्णने आर्त और भयभीत तथा त्राणकी इच्छावाले लोगों की आशाको मिथ्या नहीं की? क्या उस धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ कर्णने भीष्मके मारे जाने पर उनकी आशा पूरी की थी? क्या उन्होंने भीष्मके स्थानको पूर्ण करके प्राणों की आशाको छोड़कर शत्रुओंको भय दिखाते हुए आर्त और आक्रोश करने वाले बांधव तथा हमारे पुत्रों के विजय की आशा को सफल किया था? ॥ (५०—५३) [५३]

द्रोणपर्वमें पहला अध्याय समाप्त

द्रोणपर्वमें दूसरा अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन्! अथाह समुद्रमें नौका उलट जानेके समान भीष्मका मरना सुनकर, अधिरथपुत्र कर्ण आपके पुत्रों और सब सेनाको व्यसनसे मुक्त करनेके निमित्त सहोदर भाईकी भांति आपहुंचे ॥ धनुर्द्धारियोंके अग्रणी शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले कर्ण, पुरुषेन्द्र अक्षय वीर महारथ शान्तनुनन्दन भीष्मको मरा हुआ सुनकर शीघ्र ही हंसते हुए आपकी सेनामें आकर उपस्थित हुए ॥ रथिसत्तम भीष्मके शत्रुओंके हाथसे मारे जानेपर, जिस प्रकार से पिता पुत्रोंकी रक्षा करता है, उसी प्रकारसे कर्ण शीघ्रतासे विपदरूपी समुद्र में डुबते हुए आपके पुत्र और सेनाको

पितेव पुत्रांस्त्वरितोऽभ्ययात्ततः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥३॥
कर्ण उवाच— यस्मिन्धृतिर्बुद्धिपराक्रमौजः सत्यं स्मृतिर्वीरगुणाश्च सर्वे ।
अस्त्राणि दिव्यान्यथ सन्नतिर्ह्रीः प्रिया च वागनसूया च भीष्मे॥ ४ ॥
सदा कृतज्ञे द्विजशत्रुघातके सनातनं चन्द्रमसीव लक्ष्म ।
स चेत्प्रशान्तः परवीरहन्ता मन्ये हतानेव च सर्ववीरान् ॥ ५ ॥
नेह ध्रुवं किञ्चन जातु विद्यते लोके ह्यस्मिन्कर्मणोऽनित्ययोगात् ।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो भावं कुर्वीताऽऽर्यमहाव्रते हते ॥ ६ ॥
वसुप्रभावे वसुवीर्यसम्भवे गते वसूनेव वसुन्धराधिपे ।
वसूनि पुत्रांश्च वसुन्धरां तथा कुरूंश्च शोचध्वमिमां च वाहिनीम्॥ ७ ॥
सञ्जय उवाच-महाप्रभावे वरदे निपातिते लोकेश्वरे शास्तरि चाऽमितौजसि।
पराजितेषु भरतेषु दुर्मनाः कर्णो भृशं न्यश्वसदश्रु वर्त्तयन् ॥ ८ ॥
इदं च राधेयवचो निशम्य सुताश्च राजंस्तव सैनिकाश्च ह ।
परस्परं चुक्रुशुरार्तिजं मुहुस्तदाऽश्रु नेत्रैर्मुमुचुश्च शब्दवत् ॥ ९ ॥

देखकर उनको पार करनेके निमित्त नौकारूपी होकर आगये । (१–३)

वह आकर कहने लगे, जिस प्रकारसे चन्द्रमाका चिन्ह सब दिन विद्यमान रहता है, उसी प्रकारसे जिनमें धृति, बुद्धि, पराक्रम, सत्त्व, सत्य, स्मृति, सब वीरोंका गुण, सब दिव्य शस्त्र, प्यारा वचन, और निन्दारहित स्वभाव सदा सर्वदा रहता था, उन ही कृतज्ञ, द्विज-शत्रुघातक, पराये बल और वीरताका नाश करने वाले भीष्म के मरनेसे मैं सब वीरोंके ही मरा हुआ समझता हूं।(४–५)

इस संसारमें अनित्य कर्मके संस्कारोंसे कोई वस्तु भी नित्य नहीं स्थित रहती । जब महाव्रत भीष्म मारे गये हैं, तब कौन मनुष्य आज सूर्य उदय होनेतक विना शङ्काके जीवित रह सकता है ? ॥ हे मनुष्यो ! वसुके समान प्रतापी शान्तनुके वीर्यसे उत्पन्न,वसुन्धराधिपति भीष्म अब वसु लोकको चले गए, तब तुम लोगोंको धन, पुत्र, पृथ्वी, कुरुगण और इस सम्पूर्ण सेनाके निमित्त शोक करना पडेगा । (६–७)

सञ्जय बोले, हे राजा धृतराष्ट्र ! महाप्रतापी महा तेजस्वी भीष्म पितामहके मरने, और कौरवी सेनाके पराजित होनेपर, कर्ण पूर्वोक्त वचनोंको कहते कहते बहुत ही दुःखित होकर आखोंमें आंसू भर लाये । (८)

हे राजन् ! कर्णका ऐसा वचन सुनकर आपके पुत्रलोग और सेनाके सब मनुष्य, दुःख तथा शोकसे युक्त होकर,

प्रवर्त्तमाने तु पुनर्महाहवे विगाह्यमानासु चमूषु पार्थिवैः ।
अथाऽब्रवीद्धर्षकरं तदा वचो रथर्षभान्सर्वमहारथर्षभः ॥ १० ॥
जगत्यनित्ये सततं प्रधावति प्रचिन्तयन्नास्थिरमद्य लक्षये ।
भवत्सु तिष्ठत्स्विह पातितो मृधे गिरिप्रकाशः कुरुपुङ्गवः कथम्॥ ११ ॥
निपातिते शान्तनवे महारथे दिवाकरे भूतलमास्थिते यथा ।
न पार्थिवाः सोढुमलं धनञ्जयं गिरिप्रवोढारमिवाऽनिलं द्रुमाः ॥ १२ ॥
हतप्रधानं त्विदमार्त्तरूपं परैर्हतोत्साहमनाथमद्य वै ।
मया कुरूणां परिपाल्यमाहवे बलं यथा तेन महात्मना तथा ॥ १३ ॥
समाहितं चाऽऽत्मनि भारमीदृशं जगत्तथाऽनित्यमिदं च लक्षये ।
निपातितं चाऽऽहवशौण्डमाहवे कथं नु कुर्यामहमीदृशे भयम्॥ १४॥
अहं तु तान्कुरुवृषभानजिह्मगैः प्रवेशयन्यमसदनं चरन्रणे ।
यशः परं जगति विभाव्य वर्तिता परैर्हतो भुवि शयिताऽथवा पुनः॥१५॥
युधिष्ठिरो धृतिमतिसत्यसत्ववान्वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः ।

ऊंचे स्वरसे रोने लगे और शोकसे आंसुओं को गिराने लगे। अनन्तर जब महा युद्ध का फिर समय आया,तब सबने अपनी अपनी सेना सावधान करके खडी की। अनन्तर महारथ-श्रेष्ठ कर्ण रथिश्रेष्ठ पुरुषोंके निमित्त फिर हर्ष उत्पन्न करने वाली बातोंको कहने लगे। (९—१०)

कर्ण बोले, मैं इस अनित्य और सदा आवागमनशील संसारको न ठहरनेवाला ही देख रहा हूं। तुम सब लोगोंके युद्धमें उपस्थित रहनेपर पर्वतके समान कुरु-श्रेष्ठ भीष्म किस प्रकारसे मारे गये ? पृथ्वीमें पडे हुए सूर्यके समान महारथ शान्तनुपुत्र भीष्मके मरनेपर जिस प्रकारसे पर्वतको उखाडनेवाले वायुके तेजको वृक्ष आदि नहीं सह सकते, उसी भांतिसे राजा लोग अर्जुनके पराक्रमको सहनेमें असमर्थ हैं ॥ (११—१२)

जैसे उन महात्मा भीष्मने युद्धमें कौरवी सेनाकी रक्षा की थी, उसी भांतिसे मुझको आज मारी हुई, आर्त, उत्साह रहित और अनाथ कुरुसेनाकी रक्षा करनी होगी ॥ मैंने अपने मनसे इस भारको अपने ऊपर ले लिया, संसारकी अनित्यता और युद्धमें महावीर भीष्मका वध देखकर मैं क्यों डरूंगा ? मैं रणभूमि में घूमता हुआ अपने बाणोंसे, उन कुरु-वृषभ पाण्डवोंको यमपुरीमें भेज कर जगत्में परम यश और कीर्तिको पाऊंगा, अथवा उन लोगोंके हाथसे युद्धमें मरकर भूमिपर शयन करूंगा ॥ १३-१५

युधिष्ठिर धैर्यशील, बुद्धिमान्, धार्मिक

तथाऽर्जुनस्त्रिदशवरात्मजो युवा न तद्बलं सुजयमिहाऽमरैरपि ॥ १६ ॥
यमौ रणे यत्र यमोपमौ बले स सात्यकिर्यत्र च देवकीसुतः ।
न तद्बलं कापुरुषोऽभ्युपेयिवान्निवर्त्तते मृत्युमुखान्न चाऽसुभृत् ॥ १७ ॥
तपोऽभ्युदीर्णं तपसैव बाध्यते बलं बलेनैव तथा मनस्विभिः ।
मनश्च मे शत्रुनिवारणे ध्रुवं स्वरक्षणे चाऽचलवद्व्यवस्थितम् ॥ १८ ॥
एवं चैषां बाधमानः प्रभावं गत्वैवाऽहं ताञ्जयाम्यद्य सूत ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं भग्ने सैन्ये यः समेयात्स मित्रम् ॥ १९ ॥
कर्त्तास्म्येतत्सत्पुरुषार्यकर्म त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि भीष्मम् ।
सर्वान्संख्ये शत्रुसङ्घान्हनिष्ये हतस्तैर्वा वीरलोकं प्रपत्स्ये ॥ २० ॥
सम्प्राक्रुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे पराहते पौरुषे धार्त्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि सूत तस्माद्राज्ञस्त्वद्य शत्रून्विजेष्ये ॥ २१ ॥
कुरून्रक्षन्पाण्डुपुत्रांश्च घ्नंस्त्यक्त्वा प्राणान्घोररूपे रणेऽस्मिन् ।

और सत्यवादी हैं; भीम सैकडों हाथियोंके समान बलवान् हैं; अर्जुन देवश्रेष्ठ इन्द्रका पुत्र है; इससे उन लोगोंका बल देवताओंसे भी शीघ्र न जीतनेके योग्य है॥ जिस युद्धमें यमराजके समान पराक्रमी नकुल, सहदेव, सात्यकि और देवकीनन्दन कृष्ण हैं, उस युद्धमें कापुरुष मनुष्य जाकर इस प्रकारसे नहीं बच सकता, जैसे प्राणधारी लोग मृत्युके मुखसे नहीं निकल सकते॥ प्रतापी और तेजस्वी पुरुष बढी हुई तपस्याको तपस्यासे और बलको बलसे बद्ध कर सकता है; इससे मेरा मन निश्चय ही बलसे शत्रुओंको निवारण करने और अपनी सेना की रक्षा करनेमें उत्सुक होरहा है। (१६—१८)

हे सारथी! आज युद्धमें जाकर ही शत्रुओंके बलका नाश करके उनको जीत लूंगा; इस प्रकारका मित्रद्रोह मुझे सहना उचित नहीं है। जो मनुष्य सेनाको गिरती अवस्थामें आकर उसका सहाय होता है, वही मित्र है॥ मैं सत्पुरुषोंके उचित यही श्रेष्ठ कर्म करूंगा; मैं प्राण त्याग कर भी भीष्मका अनुगमन करूंगा। या तो मैं युद्धमें सब शत्रुओंका नाश कर दूंगा, और नहीं तो उनके हाथसे मर कर वीर-लोकमें पहुंचूंगा॥ हे सूत! जब धार्त्तराष्ट्रोंका बल पौरुष सब हट गया है, और इससे स्त्रियां और कुमार आक्रोश कर रहे हैं, तब ऐसे अवसरमें मैं युद्ध करना ही कर्त्तव्य कार्य समझता हूं; इससे आज मैं राजा दुर्योधनके शत्रुओंको पराजित करूंगा॥ (१९–२१)

सर्वान्संख्ये शत्रुसङ्घान्निहत्य दास्याम्यहं धार्त्तराष्ट्राय राज्यम् ॥ २२॥
निबध्यतां मे कवचं विचित्रं हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि ।
शिरस्त्राणं चाऽर्कसमानभासं धनुः शरांश्चाऽग्निविषाहिकल्पान् ॥२३॥
उपासङ्गान्षोडश योजयन्तु धनूंषि दिव्यानि तथाऽऽहरन्तु ।
असींश्च शक्तीश्च गदाश्च गुर्वीः शङ्खं च जाम्बूनदचित्रनालम् ॥ २४ ॥
इमां रौक्मीं नागकक्ष्यां विचित्रां ध्वजं चित्रं दिव्यमिन्दीवराङ्कम् ।
श्लक्ष्णैर्वस्त्रैर्विप्रमृज्याऽऽनयन्तु चित्रां मालां चारुबद्धां सलाजाम् ॥२५॥
अश्वानग्र्यान्पाण्डुराभ्रप्रकाशान्पुष्टान्स्नातान्मन्त्रपूताभिरद्भिः ।
तप्तैर्भाण्डैः काञ्चनैरभ्युपेताञ्शीघ्राञ्शीघ्रं सूतपुत्राऽऽनयस्व ॥ २६ ॥
रथं चाऽग्र्यं हेममालावनद्धं रत्नैश्चित्रं सूर्यचन्द्रप्रकाशैः ।
द्रव्यैर्युक्तं सम्प्रहारोपपन्नैर्वाहैर्युक्तं तूर्णमावर्त्तयस्व ॥ २७ ॥
चित्राणि चापानि च वेगवन्ति ज्याश्चोत्तमाः सन्नहनोपपन्नाः ।
तूर्णांश्च पूर्णान्महतः शराणामासाद्य गात्रावरणानि चैव ॥ २८ ॥
प्रायात्रिकं चाऽऽनयताऽऽशु सर्वं दध्ना पूर्णं वीर कांस्यं च हैमम् ।

मैं महा युद्धमें प्राण त्याग करके ही कौरवोंकी रक्षा और पाण्डवों तथा दूसरे शत्रुओंको मारके दुर्योधनको राज्य दान करूंगा ॥ सोनेसे युक्त सफेद मणि और रत्नोंसे पूर्णविचित्र कवच; सूर्यप्रकाशसमान उष्णीष;अग्नि,विष और सर्पके समान धनुष और बाणोंको सज्जित करो ॥ सोलह प्रकारसे शरपूर्ण तूणीरों, दिव्यधनुषों और तलवार, शक्ति, गदा तथा सोनेसे चित्रित विचित्र नालिसे युक्त शङ्ख ले आओ; और सोनेसे बनी हुई इन्द्रके तुल्य दिव्य और विचित्र पताकाको रथपर लगाओ । सूक्ष्म वस्त्रों से साफ करके युद्धके योग्य गुथी हुई विचित्र माला आदि ले आओ। २२-२५

शुभ्र मेघ समान, पुष्ट, और मन्त्रसे शुद्ध हुए जलसे प्रक्षालित किये हुए तप्त सुवर्णके अलंकारसे युक्त शीघ्रगामी घोडोंको जलदीसे लाओ। सोनेकी मालाके सहित चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित सब युद्धके उपयोगी वस्तुओं के साथ वेगगामी घोडोंसे युक्त उत्तम रथको सजा कर शीघ्र ले आओ ॥ वेगवान् विचित्र धनुष संहननसंयुक्त उत्तम रोदे और महा तूणीर, शरीरमें पहिरने योग्य युद्धके उपयोगी सब वस्त्र सज्जित करो ॥ (२६–२८)

हे वीर ! यात्राके समयकी सब शुभ सामग्रियोंको दहीसे भरे हुए कांस्य और सुवर्णके पात्र लेआओ तथा गलेमें माला

आनीय मालामवबध्य चाङ्गे प्रवादयन्त्वाशु जयाय भेरीः॥ २९ ॥
प्रयाहि सूताऽऽशु यतः किरीटी वृकोदरो धर्मसुतो यमौ च ।
तान्वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये भीष्माय गच्छामि हतो द्विषद्भिः॥३०॥
यस्मिन्राजा सत्यधृतिर्युधिष्ठिरः समास्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च मन्ये बलं तदजय्यं महीपैः ॥ ३१ ॥
तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्सदाऽप्रमत्तः समरे किरीटिनम् ।
तथापि हन्तास्मि समेत्य संख्ये यास्यामि वा भीष्मपथा यमाय ॥३२॥
न त्वेवाऽहं न गमिष्यामि तेषां मध्ये शूराणां तत्र चाऽहं ब्रवीमि।
मित्रद्रुहो दुर्बलभक्तयो ये पापात्मानो न ममैते सहायाः ॥ ३३ ॥
सञ्जय उवाच— समृद्धिमन्तं रथमुत्तमं दृढं सकूवरं हेमपरिष्कृतं शुभम् ।
पताकिनं वातजवैर्हयोत्तमैर्युक्तं समास्थाय ययौ जयाय ॥ ३४ ॥
सम्पूज्यमानः कुरुभिर्महात्मा रथर्षभो देवगणैर्यथेन्द्रः ।
ययौ तदायोधनमुग्रधन्वा यत्राऽवसानं भरतर्षभस्य ॥ ३५ ॥
वरूथिना महता स ध्वजेन सुवर्णमुक्तामणिरत्नमालिना ।

पहिन कर जय सूचक भेरी और नगाडे आदि बाजोंको बजावो॥ हे सूत! जिस स्थान पर अर्जुन, भीम, धर्म पुत्र युधिष्ठिर और नकुल, सहदेव हैं, वहां ही मेरे रथको शीघ्र ले चलो। मैं उन लोगोंको मारूंगा, अथवा उन्हींके अस्त्रोंसे मरकर भीष्मकी गतिको पाऊंगा॥ जहां पर सत्यवादी राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि और सृञ्जयगण हैं, मैं जानता हूं, कि वहां की सेना राजाओंसे अजेय (न जीतने योग्य) है। (२९-३१)

यदि सबका नाश करनेवाला साक्षात मृत्यु भी अर्जुनकी रक्षा करेगा, तौ भी मैं युद्धमें अवश्य उसको मारूंगा, अथवा भीष्मके मार्गसे मैं भी यमलोकमें गमन करूंगा, उनवीरोंके बीचमें मैं अवश्य ही जाऊंगा, परन्तु उसके निमित्त मैं यही वचन कहता हूं, कि जो मित्रद्रोही, पापी और अल्प भक्तिवाले पुरुष हैं, मैं उनकी सहायता नहीं चाहता ॥(३२-३३)

सञ्जय बोले, अनन्तर कर्ण समृद्धि युक्त, अस्त्रशस्त्रोंसे पूरित, सोनेकी स्वच्छ पताकासे शोभित, वायुके समान शीघ्र चलनेवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके जय करनेके निमित्त चले॥ वह उग्र धनुर्द्धारी कर्ण कौरवोंसे ऐसे पूजित हुए, जैसे देवताओंसे इन्द्र पूजित होते हैं। जिस स्थानपर भरतश्रेष्ठ भीष्मका अवसान हुआ था, कर्ण उसी स्थानपर पहुंचे।

सदश्वयुक्तेन रथेन कर्णो मेघस्वनेनाऽर्क इवाऽमितौजाः ॥ ३६ ॥
हुताशनाभः स हुताशनप्रभे शुभः शुभे वै स्वरथे धनुर्धरः ।
स्थितो रराजाऽधिरथिर्महारथः स्वयं विमाने सुरराडिवाऽऽस्थितः ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि
द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णनिर्याणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ [९०]

संजय उवाच— शरतल्पे महात्मानं शयानममितौजसम् ।
महावातसमूहेन समुद्रमिव शोषितम् ॥ १ ॥
दृष्ट्वा पितामहं भीष्मं सर्वक्षत्रान्तकं गुरुम् ।
दिव्यैरस्त्रैर्महेष्वासं पातितं सव्यसाचिना ॥ २ ॥
जयाशा तव पुत्राणां सम्भग्ना शर्म वर्म च ।
अपाराणामिव द्वीपमगाधे गाधमिच्छताम् ॥ ३ ॥
स्रोतसा यामुनेनेव शरौघेण परिप्लुतम् ।
महेन्द्रेणैव मैनाकमसह्यं भुवि पातितम् ॥ ४ ॥
नभश्च्युतमिवाऽऽदित्यं पतितं धरणीतले ।
शतक्रतुमिवाऽचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निर्जितम् ॥ ५ ॥

वह अधिरथपुत्र महारथ धनुर्द्धर अग्निके समान तेजस्वी महाबली कर्ण सूर्यके समान प्रकाशित होकर मङ्गलाचारसे युक्त हुए; वरूथ सहित पताका समेत सुवर्ण,मोती और मणियोंसे शोभित होकर सुन्दर घोडों समेत अग्नि के समान प्रकाशित अपने रथमें बैठे हुए सुरराज इन्द्रकी भांति विराजमान हुए ॥ (३४—३७) [९०]

द्रोणपर्वमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें तीसरा अध्याय ।

सञ्जय बोले; महा तेजस्वी, महात्मा, महाधनुर्द्धर कर्णने भीष्म पितामहको अर्जुनके दिव्य अस्त्रोंसे पृथ्वीपर इस प्रकारसे गिरा देखा, जैसे महा प्रचण्ड वायुसे सूखा हुआ समुद्र दीखता है ॥ अर्जुनके बाणोंकी शय्यापर सोये हुए, पातालको स्पर्श करनेवाले; समुद्रके पार जानेकी इच्छा करनेवाले, मनुष्योंके द्वीपसमूह रहनेपर भी उनको यमुना जलके सोतेके समान शरोंसे परिपूरित मानो इन्द्रके वज्रसे पृथ्वीपर गिरे हुए मैनाक पर्वत की भान्ति, तथा आकाशसे गिरे हुए सूर्य अथवा वृत्रासुर से पराजित इन्द्रकी भांति निस्तेज और पृथ्वीतल पर गिरे हुए भीष्मको देखकर आपके पुत्रोंकी जयकी आशा और वीरता, शूरता सब नष्ट होगई थी। (१–५)

मोहनं सर्वसैन्यस्य युधि भीष्मस्य पातनम् ।
ककुदं सर्वसैन्यानां लक्ष्म सर्वधनुष्मताम् ॥ ६ ॥
धनञ्जयशरैर्व्याप्तं पितरं ते महाव्रतम् ।
तं वीरशयने वीरं शयानं पुरुषर्षभम् ॥ ७ ॥
भीष्ममाधिरथिर्दृष्ट्वा भरतानां महाद्युतिः ।
अवतीर्य रथादार्त्तो बाष्पव्याकुलिताक्षरम् ॥ ८ ॥
अभिवाद्याञ्जलिं बध्वा वन्दमानोऽभ्यभाषत ।
कर्णोऽहमस्मि भद्रं ते वद मामभि भारत ॥ ९ ॥
पुण्यया क्षेम्यया वाचा चक्षुषा चाऽवलोकय ।
न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित्समश्नुते ॥ १० ॥
यत्र धर्मपरो वृद्धः शेते भुवि भवानिह ।
कोशसञ्चयने मन्त्रे व्यूहे प्रहरणेषु च ॥ ११ ॥
नाऽहमन्यं प्रपश्यामि कुरूणां कुरुपुङ्गव ।
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो यः कुरूंस्तारयेद्भयात्॥ १२ ॥
योधांस्तु बहुधा हत्वा पितृलोकं गमिष्यसि ।

महाराज ! युद्धमें भीष्मके मारे जाने से सम्पूर्ण सेना मोहितसी होगई थी। कर्ण रथपर चढके वहां गये जहां सब धनुर्धारियोंमें अग्रगण्य और सब सेनामें श्रेष्ठ आपके पिता महाव्रत पुरुषेन्द्र भीष्म अर्जुनके वाणोंसे पूरित होकर वीर शय्या पर सोये थे। उन्हें देखकर कर्ण रथसे उतरे और आर्त्त तथा शोक और मोहसे परिपूरित होकर आंसू भरे हुए नेत्रसे उनके निकट गये ।(६—८)

वहां जाकर दोनों हाथ जोडके उन को प्रणाम किया, फिर कहने लगे। हे भारत ! आपका कल्याण हो, मैं कर्ण हूं; आप मेरे निमित्त कल्याण-युक्त कुछ वचन कहिये, और अपनी आंखोंको खोलिये। मुझे मालूम होता है, कि कोई सुकृतका फल पूरी तरहसे नहीं भोग कर सकता, क्योंकि आप धर्ममें तत्पर और वृद्ध होकर भी पृथ्वीमें सोये हुए हैं। हे कुरुसत्तम ! मैं इस समय कौरवोंके कोष सञ्चय, मन्त्रणा, व्यूह रचना और शस्त्रोंके प्रहारके विषयमें ऐसे किसी शुद्धबुद्धि पुरुषको नहीं देखता, जो उनकी सहायता और उनका परित्राण करै॥ (९-१२)

आप अनेक वीरोंको मारकर इस समय पर लोकमें जानेके निमित्त उद्यत हुए हैं। हे भारतश्रेष्ठ भूपाल ! जिस

अद्यप्रभृति संक्रुद्धा व्याघ्रा इव मृगक्षयम् ॥ १३ ॥
पाण्डवा भरतश्रेष्ठ करिष्यन्ति कुरुक्षयम् ।
अद्य गाण्डीवघोषस्य वीर्यज्ञाः सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥
कुरवः सन्त्रासिष्यन्ति वज्रपाणेरिवाऽसुराः ।
अद्य गाण्डीवमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ॥ १५ ॥
त्रासयिष्यति बाणानां कुरूनन्यांश्च पार्थिवान् ।
समिद्धोऽग्निर्यथा वीर महाज्वालो द्रुमान्दहेत् ॥ १६ ॥
धार्तराष्ट्रान्प्रधक्ष्यन्ति तथा बाणाः किरीटिनः ।
येन येन प्रसरतो वाय्वग्नी सहितौ वने ॥ १७ ॥
तेन तेन प्रदहतो भूरिगुल्मतृणद्रुमान् ।
यादृशोऽग्निः समुद्भूतस्तादृक्पार्थो न संशयः ॥ १८ ॥
यथा वायुर्नरव्याघ्र तथा कृष्णो न संशयः ।
नदतः पाञ्चजन्यस्य रसतो गाण्डिवस्य च ॥ १९ ॥
श्रुत्वा सर्वाणि सैन्यानि त्रासं यास्यन्ति भारत ।
कपिध्वजस्योत्पततो रथस्याऽमित्रकर्षिणः ॥ २० ॥

प्रकारसे क्रुद्ध व्याघ्र मृगों का नाश कर देते हैं, उसी भांतिसे पाण्डव लोग आज से कौरवोंका नाश करना आरंभ करेंगे। जिस प्रकारसे असुर लोग इन्द्रसे भयभीत होते हैं, उसीतरहसे आज कौरव लोग गाण्डीवधारी अर्जुनके तेजको देखकर [illegible] गये हैं । आज गाण्डीवसे छूटे हुए वज्रके समान बाण सब कौरव और दूसरे राजाओंको भयसे दुःखित करेंगे ॥ (१३–१६)

हे वीर! जिस प्रकारसे प्रचण्ड अग्नि जङ्गलके वृक्षोंको जला देती है, उसी भांतिसे आज अर्जुनके बाण धार्त्तराष्ट्र-गणको जला देंगे। जङ्गलमें अग्नि और वायु एकत्र होकर जिस ओरको चलते हैं, उसी ओर बहुत से तृण, गुल्म, वृक्ष आदि भस्म होजाते हैं। अर्जुन अग्निके समान और कृष्ण वायुके तुल्य हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ; ये दोनों एकत्र होकर आज कौरवी सेना-रूपी वनको जला देंगे। (१६–१९)

हे भारत! पाञ्चजन्य शङ्ख और गाण्डीव धनुष के शब्द को सुनकर समस्त कुरु-सेना भयभीत होगी। हे वीर! आपके विना अन्य क्षत्रिय लोग शत्रु ओंके आकर्षण करनेवाले, कपिध्वजासे युक्त, रणमें आये हुए अर्जुनके रथके शब्दों-को नहीं सह सकेंगे। बुद्धिमान् लोग

शब्दं सोढुं न शक्ष्यन्ति त्वामृते वीर पार्थिवाः ।
को ह्यर्जुनं योधयितुं त्वदन्यः पार्थिवोऽर्हति ॥ २१ ॥
यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
अमानुषैश्च संग्रामस्त्र्यम्बकेण महात्मना ॥ २२ ॥
तस्माच्चैव वरं प्राप्तो दुष्प्रापमकृतात्मभिः ।
कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुं पूर्वं यो न जितस्त्वया ॥ २३ ॥
जितो येन रणे रामो भवता वीर्यशालिना ।
क्षत्रियान्तकरो घोरो देवदानवदर्पहा ॥ २४ ॥
तमद्याऽहं पाण्डवं युद्धशौण्डमसृष्यमाणो भवता चाऽनुशिष्टः ।
आशीविषं दृष्टिहरं सुघोरं शूरं शक्ष्याम्यस्त्रबलान्निहन्तुम् ॥२५॥ [११५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि
द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच— तस्य लालप्यमानस्य कुरुवृद्धः पितामहः ।
देशकालोचितं वाक्यमब्रवीत्प्रीतमानसः ॥ १ ॥
समुद्र इव सिन्धूनां ज्योतिषामिव भास्करः ।

जिस अर्जुनके दिव्य कर्मोंकी प्रशंसा करते हैं, आपके अतिरिक्त कौन राजा उस अर्जुन से युद्ध करने में समर्थ है ? (१९-२२)

महात्मा शिवजीके सङ्ग,तथा निवात कवचादि राक्षसोंके संग संग्राम हुआ था, जिसने महादेवसे साधारण पुरुषों-को न मिलने योग्य दुर्लभ वर पाया है, उससे कौन वीर पुरुष युद्ध कर सकता है ? आपने देव दानवोंसे पूजित क्षत्रि-योंको शेष करनेवाले परशुरामजीको रणभूमिमें पराजित किया था, आप ऐसे बलवान् होकर भी जिसको पहिले नहीं जीत सके, उस अर्जुनके सङ्ग रणभूमिमें कौन युद्ध कर सकेगा ? इस समय यदि तेजस्वी आप मुझे अनुमति दें, तो मैं आज उस युद्ध दुर्मद दृष्टिहर सर्पके समान भयंकर अर्जुनको अपने अस्त्रोंके बलसे मारनेके समर्थ होऊं। (२२-२५)

द्रोणपर्वमें तीसरा अध्याय समाप्त। [११५]

द्रोणपर्वमें चार अध्याय।

सञ्जय बोले, कुरु-वृद्ध पितामह भीष्म इस प्रकारसे बार बार कहे हुए कर्णके वचनोंको सुन कर, प्रीति पूर्वक देश और कालके अनुसार यह वचन बोले॥ हे कर्ण ! जैसे समुद्र जलोंका, सूर्य ज्योतिका, सज्जन सत्यका और उर्वरा भूमि बीजका तथा वर्षा सब स्थावर

सत्यस्य च यथा सन्तो बीजानामिव चोर्वरा ॥ २ ॥
पर्जन्य इव भूतानां प्रतिष्ठा सुहृदां भव ।
बान्धवास्त्वाऽनुजीवन्तु सहस्राक्षमिवाऽमराः ॥ ३ ॥
मानहा भव शत्रूणां मित्राणां नन्दिवर्धनः ।
कौरवाणां भव गतिर्यथा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ४ ॥
स्वबाहुबलवीर्येण धार्त्तराष्ट्रजयैषिणा ।
कर्ण राजपुरं गत्वा काम्बोजा निर्जितास्त्वया ॥ ५ ॥
गिरिव्रजगताश्चापि नग्नजित्प्रमुखा नृपाः ।
अम्बष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च जितास्त्वया ॥ ६ ॥
हिमवद्दुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः ।
दुर्योधनस्य वशगास्त्वया कर्ण पुरा कृताः ॥ ७ ॥
उत्कला मेकलाः पौण्ड्राः कलिङ्गान्ध्राश्च संयुगे ।
निषादाश्च त्रिगर्त्ताश्च बाह्लीकाश्च जितास्त्वया ॥ ८ ॥
तत्र तत्र च संग्रामे दुर्योधनहितैषिणा ।
बहवश्च जिताः कर्ण त्वया वीरा महौजसा ॥ ९ ॥
यथा दुर्योधनस्तात सज्ञातिकुलबान्धवः ।

जङ्गम का आश्रय है, उसी प्रकारसे तुम मित्रोंके आसरा रूपी हो। जिस प्रकारसे देवता लोग इन्द्रके अनुजीवी होते हैं, उसी भांतिसे तुम्हारे बन्धुवर्ग तुम्हारे अनुजीवी बनें ॥ (१—३)

तुम शत्रुओंके मानको मर्दन कर मित्रोंके आनन्दको बढाओ। जैसे विष्णु देवताओंकी गति हैं, वैसेही तुम कौरवोंकी गति हो ॥ हे कर्ण ! तुमने दुर्योधनके प्रियकार्य करनेवाले होकर अपने बाहुबलसे राजपुरमें जाकर काम्बोज गणको, गिरिव्रज में जाकर नग्नजित् प्रभृति राजाओंको और विदेह, गान्धार तथा अम्बष्ठ गणको जीत लिया था ॥ (४—६)

हे कर्ण ! तुमने पहिले हिमालयके रहनेवाले दुर्गवासी रणकर्कश किरातोंको जीत कर दुर्योधनके वशवर्ती किया था॥ तुमने युद्धमें उत्कल, मेकल, पौण्ड्र, कलिङ्ग, आन्ध्र, निषाद, त्रिगर्त्त और बाह्लिक, राजगणको पराजित किया था॥ हे वीर कर्ण ! तुम दुर्योधनके हितैषी होकर अपने बाहुबल और पराक्रमसे बहुतेरे राजाओंको उस युद्धमें जीत लिया था॥ हे तात ! जैसे दुर्योधन कौरवोंकी गति है, उसी प्रकारसे तुम भी ज्ञाति, कुल,

तथा त्वमपि सर्वेषां कौरवाणां गतिर्भव ॥ १० ॥
शिवेनाऽभिवदामि त्वां गच्छ युद्धयस्व शत्रुभिः ।
अनुशाधि कुरून्संख्ये धत्स्व दुर्योधने जयम् ॥ ११ ॥
भवान्पौत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा ।
तवापि धर्मतः सर्वे यथा तस्य वयं तथा ॥ १२ ॥
यौनात्सम्बन्धकाल्लोके विशिष्टं संगतं सताम् ।
सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १३ ॥
स सत्यसङ्गतो भूत्वा ममेदमिति निश्चितः ।
कुरूणां पालय बलं यथा दुर्योधनस्तथा ॥ १४ ॥
निशम्य वचनं तस्य चरणावभिवाद्य च ।
ययौ वैकर्त्तनः कर्णः समीपं सर्वधन्विनाम् ॥ १५ ॥
सोऽभिवीक्ष्य नरौघाणां स्थानमप्रतिमं महत् ।
व्यूढप्रहरणोरस्कं सैन्यं तत्समबृंहयत् ॥ १६ ॥
हृषिताः कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ।
उपागतं महाबाहुं सर्वानीकपुरःसरम् ॥ १७ ॥
कर्णं दृष्ट्वा महात्मानं युद्धाय समुपस्थितम् ।

बान्धवोंके सहित कौरवोंकी गति हो ॥ (७—१०)

मैं कल्याणकारी और हितकर वचनोंसे तुम्हें कहता हूं, कि जाओ, शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करो; युद्ध करनेके निमित्त कौरवोंको उत्तेजित करो; दुर्योधनके जयका उपाय करो ॥ दुर्योधन जिस प्रकारसे मेरे पौत्र हैं, वैसे ही तुम भी हमारे पौत्र (नाती) के समान हो; इससे धर्मानुसार मैं दुर्योधनके पक्ष में जिस प्रकारसे मान्य हूं; तुम्हारे पक्ष में भी वैसा ही हूं, साधुओंको योनिसम्बन्धसे भी साधु-सम्बन्ध उत्तम है ! इससे तुम सत्यसे युक्त होकर "यह सब कुरुकुल मेरा ही है," ऐसा निश्चय करके दुर्योधनके समान उनकी रक्षा करो ॥ (११–१४)

सूर्य पुत्र कर्ण, भीष्मकी ऐसी बातोंको सुन कर, उनके चरणोंमें प्रणाम करके, शीघ्र ही धनुर्द्धारियोंके निकट सेनामें चले आये ॥ कर्णने आकर उन सब योद्धाओंको चित्र लिखे पुरुषोंके समान खडे देखकर, उनको व्यूहसे युक्त और अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित करके फिर उत्साहित किया ॥ दुर्योधन आदि कौरवोंने उस महाबाहु सब सेनाके अग्रगामी महात्मा

क्ष्वेडितास्फोटितरवैः सिंहनादरवैरपि ।
धनुःशब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन् ॥ १८ ॥ [१३३]

इति श्रीमहाभारते॰ द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णोत्साहे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥

सञ्जय उवाच— रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम् ।
हृष्टो दुर्योधनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
सनाथमिव मन्येऽहं भवता पालितं बलम् ।
अत्र किं नु समर्थं यद्धितं तत्सम्प्रधार्यताम् ॥ २ ॥

कर्ण उवाच— ब्रूहि नः पुरुषव्याघ्र त्वं हि प्राज्ञतमो नृप ।
यथा ह्यर्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः ॥ ३ ॥
ते स्म सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर ।
नाऽन्याय्यं हि भवान्वाक्यं ब्रूयादिति मतिर्मम ॥ ४ ॥

दुर्योधन उवाच— भीष्मः सेनाप्रणेताऽऽसीद्वयसा विक्रमेण च ।
श्रुतेन चोपसम्पन्नः सर्वैर्योधगणैस्तथा ॥ ५ ॥
तेनाऽमितयशसा कर्ण घ्नता शत्रुगणान्मम ।

कर्णको युद्धके निमित्त आया हुआ देखकर शङ्ख, नगाडे, सिंहनाद और धनुषोंके शब्द आदि नाना भांतिके शब्दोंसे उनकी अच्छे प्रकारसे पूजा और सम्मान किया (१५-१८) [१३३]

द्रोणपर्वमें चार अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें पांच अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! दुर्योधन रथमें बैठ कर आये हुए पुरुष श्रेष्ठ कर्ण को युद्धके निमित्त तैयार देखके हर्षके सहित पुलकित चित्तसे कहने लगे, कि मेरी यह सब सेना तुम्हारे भुज- बलसे रक्षित होकर सनाथ हुई है, मैं ऐसा ही अपने अन्तःकरणसे समझता हूं । इस समय जो उचित और हितकर बात हो उसका निश्चय करो । (१-२)

कर्ण बोले, हे पुरुष सिंह ! आप ही इस विषयको कहिये, क्योंकि आप बुद्धिसे युक्त और सबके राजा हैं, अर्थपति जिस प्रकारसे कार्योंका विचार कर सकते हैं, दूसरे वैसा कदापि नहीं निश्चय कर सकते। हम सब लोग आपके अभिप्रायको सुननेकी अभिलाषा करते हैं; मैं जानता हूं, कि आप अन्याय वचन नहीं कहेंगे ॥ (३-४)

दुर्योधन बोले, हे कर्ण ! अवस्था, वीरता और ज्ञानमें श्रेष्ठ तथा सब योद्धाओंके मतसे भीष्म सम्पूर्ण कौरवी सेनाके सेनापति हुए थे ॥ उन महा यशस्वी महात्मा भीष्मने दश दिनोंतक भली

सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्म महात्मना ॥ ६ ॥
तस्मिन्नसुकरं कर्म कृतवत्यास्थिते दिवम् ।
कं नु सेनाप्रणेतारं मन्यसे तदनन्तरम् ॥ ७ ॥
न विना नायकं सेना मुहूर्त्तमपि तिष्ठति ।
आहवेष्वाहवश्रेष्ठ नेतृहीनेव नौर्जले ॥ ८ ॥
यथा ह्यकर्णधारा नौ रथश्चाऽसारथिर्यथा ।
द्रवेद्यथेष्टं तद्वत्स्यादृते सेनापतिं बलम् ॥ ९ ॥
अदेशिको यथा सार्थः सर्वः कृच्छ्रं समृच्छति ।
अनायका तथा सेना सर्वान्दोषान्समर्छति ॥ १० ॥
स भवान्वीक्ष्य सर्वेषु मामकेषु महात्मसु ।
पश्य सेनापतिं युक्तमनु शान्तनवादिह ॥ ११ ॥
यं हि सेनाप्रणेतारं भवान्वक्ष्यति संयुगे ।
तं वयं सहिताः सर्वे करिष्यामो न संशयः ॥ १२ ॥

कर्ण उवाच— सर्व एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः ।
सेनापतित्वमर्हन्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥
कुलसंहननज्ञानैर्बलविक्रमबुद्धिभिः ।

भांतिसे युद्ध करके हमारी सेनाको शत्रुओंके हाथसे बचाया था; वह अत्यन्त कठिन कर्म करके शरशय्यापर शयन करते हैं, उनके स्थानपर किसको सेनापति बनानेका विचार करते हो ? हे वीरप्रधान कर्ण ! जिस प्रकारसे अगाध जलमें विना खेनेवालेके नौका डूब जाती है, उसी प्रकार विना नायकके सेना भी मुहूर्त्त मात्र नहीं ठहरती। (५-८)

जैसे विना खेनेवाले (मल्लाह) के नौका और विना सारथीके रथ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, उसी तरहसे विना नायकके सेना भी नष्ट होती है ॥ जैसे विदेशीय वणिक् विना जाने हुए मार्गमें पडकर महा विपद झेलता है, तैसे ही विना नायकके सेना भी विपद सागरमें डूबती हैं ॥ इस समय तुम मेरी सब सेनामें भीष्मके समान किसी योग्य पुरुषको खोजके निकालो ॥ तुम जिसको इस कार्यके योग्य समझोगे, हम उस हीको सेनापति बनावेंगे; इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ (९-१२)

कर्ण बोले, ये वर्त्तमान पुरुषश्रेष्ठ महात्मा समस्त राजालोग निःसन्देह सेनापति हो सकते हैं; क्योंकि ये सब ही कुल, प्रतिष्ठा, दृढता, बल, पराक्रम,

युक्ताः श्रुतज्ञा धीमन्त आहवेष्वनिवर्तिनः ॥ १४ ॥
युगपन्न तु ते शक्याः कर्तुं सर्वे पुरःसराः ।
एक एव तु कर्तव्यो यस्मिन्वैशेषिका गुणाः ॥ १५ ॥
अन्योन्यस्पर्धिनां ह्येषां यद्येकं यं करिष्यसि ।
शेषा विमनसो व्यक्तं न योत्स्यन्ति हितास्तव ॥१६॥
अयं च सर्वयोधानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
युक्तः सेनापतिः कर्तुं द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ १७ ॥
को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे शस्त्रभृतां वरे ।
सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात् ॥१८॥
न च सोऽप्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत ।
द्रोणं यः समरे यान्तमनुयास्यति संयुगे ॥ १९ ॥
एष सेनाप्रणेतॄणामेष शस्त्रभृतामपि ।
एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन्गुरुस्तव ॥ २० ॥
एवं दुर्योधनाऽऽचार्यमाशु सेनापतिं कुरु ।
जिगीषन्तोऽसुरान्संख्ये कार्तिकेयमिवाऽमराः ॥२१॥[१५४]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

बुद्धिसे भरे और कृतज्ञ हैं, तथा पीछे न हटनेवाले और अग्रगामी हैं ॥ परन्तु एक ही बार सबको सेनापति नहीं बनाया जा सकता, इस निमित्त इनमेंसे विशेष गुणोंसे युक्त किसी पुरुषको सेनापति करना उचित है ॥ परन्तु ये राजा लोग एक दूसरेकी ईर्षा करनेवाले हैं, इनमेंसे एक पुरुषका सम्मान करनेसे दूसरा अप्रसन्न होगा और आपका हितैषी होकर युद्ध न करेगा ॥ (१३—१६)

इससे इन सब योद्धाओं तथा शस्त्रधारी लोगोंमें श्रेष्ठ बूढे आचार्य द्रोणको सेनापति बनाना उचित है ॥ बृहस्पति और शुक्राचार्यकी कही हुई नीतिशास्त्रके अनुसार ब्रह्मज्ञ श्रेष्ठ बलवान् द्रोणाचार्यके रहते दूसरा कोई भी सेनापति नहीं हो सकता ॥ हे भारत ! द्रोणाचार्यके सेनापति होनेसे आपकी सेनामें ऐसे कोई योद्धा नहीं हैं, जो उनका अनुगमन न करें ॥ (१७-१९)

हे राजन् ! वे सेनापतियोंमें प्रधान, शस्त्रधारियोंमें मुख्य, बुद्धिमानोंमें भी श्रेष्ठ और तुम्हारे गुरु हैं । हे दुर्योधन! जिस प्रकारसे दैत्योंको जीतनेके निमित्त देवताओंने स्वामि कार्त्तिकको सेनापति बनाया था, वैसे ही तुम भी आचार्य

सञ्जय उवाच— कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
दुर्योधन उवाच— वर्णश्रैष्ठ्यात्कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया ।
वीर्याद्दाक्ष्यादधृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात् ॥ २ ॥
तपसा च कृतज्ञत्वाद्वृद्धः सर्वगुणैरपि ।
युक्तोऽभवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते ॥ ३ ॥
स भवान्पातु नः सर्वान्देवानिव शतक्रतुः ।
भवन्नेत्राः पराञ्जेतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ ४ ॥
रुद्राणामिव कापाली वसूनामिव पावकः ।
कुबेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥ ५ ॥
वसिष्ठ इव विप्राणां तेजसामिव भास्करः ।
पितृणामिव धर्मेन्द्रो यादसामिव चाऽम्बुराट् ॥ ६ ॥
नक्षत्राणामिव शशी दितिजानामिवोशनाः ।
श्रेष्ठः सेनाप्रणेतॄणां स नः सेनापतिर्भव ॥ ७ ॥
अक्षौहिण्यो दशैका च वशगाः सन्तु तेऽनघ ।

द्रोणको शीघ्र सेनापति बनाओ । २०-२१
द्रोणपर्वमें पांच अध्याय समाप्त । [१५४]

द्रोणपर्वमें छः अध्याय ।

सञ्जय बोले, राजा दुर्योधन इस प्रकारसे कर्णके वचनोंको सुनकर सेनाके बीचमें जाकर द्रोणाचार्यसे कहने लगे॥ हे आचार्य ! आप विद्या, बुद्धि, बल, वीर्य, श्रेष्ठ वर्ण, अवस्था, अधिकार, अधृष्यत्व, अर्थज्ञान निपुणता, नीति, जय, तपस्या, कृतज्ञता, कुल और दूसरे सब गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं; आपके समान और कोई भी दूसरा राजाओंका रक्षक नहीं है ॥ (१—३)

हे द्विजसत्तम! जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी भांतिसे आप भी हम लोगोंकी रक्षा कीजिए । मैं आपको सेनापति बनाकर शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करता हूं ॥ जैसे कापाली रुद्रोंके, अग्नि वसुओंके, कुबेर यक्षोंके; इन्द्र देवताओंके, वसिष्ठ ब्राह्मणोंके, सूर्य ज्योतिवाले पदार्थोंके, धर्मराज पितरोंके, वरुण जलजन्तुओंके, चन्द्रमा ताराओंके और दैत्योंके लिये शुक्राचार्य श्रेष्ठ हैं, वैसे ही आप हम लोगोंके सब सेनापतियोंमें श्रेष्ठ हो कर कौरवी सेना के सेनापति होइये (४—७)

हे पापरहित ! यह ग्यारह अक्षौहिणी-सेना आपके वशमें होगी, आप इस सब

तामिः शत्रून्प्रतिव्यूह्य जहीन्द्रो दानवानिव ॥ ८ ॥
प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः।
अनुयास्यामहे त्वाऽऽजौ सौरभेया इवर्षभम् ॥ ९ ॥
उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन्धनुः।
अग्रेभवं त्वां तु दृष्ट्वा नाऽर्जुनः प्रहरिष्यति ॥ १० ॥
ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये सानुबन्धं सबान्धवम्।
जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान्सेनापतिर्यदि ॥ ११ ॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्ते ततो द्रोणं जयेत्यूचुर्नराधिपाः।
सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवाऽऽत्मजम् ॥ १२ ॥
सैनिकाश्च मुदा युक्ता वर्धयन्ति द्विजोत्तमम्।
दुर्योधनं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्तो महद्यशः।
दुर्योधनं ततो राजन्द्रोणो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥ [१६७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रोत्साहने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

द्रोण उवाच— वेदं षडङ्गं वेदाऽहमर्थविद्यां च मानवीम्।

सेनाका व्यूह बना कर शत्रुओंका इस-प्रकारसे नाश कीजिए, जैसे इन्द्रने दानवोंका नाश किया था॥ जैसे स्वामिकार्तिक देवताओंके आगे चलते हैं, उसी भांतिसे आप भी हमलोगोंके अगाडी चलिये। जैसे गऊ बैलकी-अनुगामिनी होती हैं, उसी तरहसे हमलोग युद्धमें आपके अनुगामी होंगे। उग्रधन्वा महाधनुर्द्धारी अर्जुन आपको आगे देखकर दिव्य धनुषको चढा कर हमारी सेना पर प्रहार नहीं कर सकेगा॥ हे पुरुष सिंह! आपके सेनापति होनेसे मैं अनुचरोंके सहित, भाइयों समेत युधिष्ठिरको निश्चय जीत लूंगा। (८-११)

सञ्जय बोले, दुर्योधनने, जब द्रोणाचार्यको इस प्रकारसे कहा, तब समस्त राजा लोग बहुत जोरसे सिंहनाद करके आपके पुत्रको आनन्दित और द्रोणाचार्यकी जय जयकार करने लगे॥ सेनाके सब वीरोंने भी दुर्योधनको आगे करके महायशस्वी द्विजोत्तम द्रोणाचार्यका सम्मान बढाते हुए जय जयकार शब्दका उच्चारण किया। तब द्रोणाचार्य दुर्योधनको कहने लगे॥ (१२-१३) [१६७]

भीष्मपर्वमें छः अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें सात अध्याय।

द्रोणाचार्य बोले, मैं छहों अंगके सहित वेद, मनुष्योंकी अर्थविद्या, त्र्यंबक

त्रैयम्बकमथेष्वस्त्रं शस्त्राणि विविधानि च ॥ १ ॥
ये चाऽप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जयकांक्षिभिः ।
चिकीर्षुस्तानहं सर्वान्योधयिष्यामि पाण्डवान् ॥ २ ॥
पार्षतं तु रणे राजन्न हनिष्ये कथञ्चन ।
स हि सृष्टो वधार्थाय ममैव पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥
योधयिष्यामि सैन्यानि नाशयन्सर्वसोमकान् ।
न च मां पाण्डवा युद्धे योधयिष्यन्ति हर्षिताः॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच— स एवमभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः ।
द्रोणं तव सुतो राजन्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥
अथाऽभिषिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः ।
सैनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शक्रमुखाः सुराः ॥ ६ ॥
ततो वादित्रघोषेण शङ्खानां च महास्वनैः ।
प्रादुरासीत्कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥ ७ ॥
ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च ।
संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधवन्दिनाम् ॥ ८ ॥
जयशब्दैर्द्विजाग्र्याणां सुभगानर्तितैस्तथा ।

संबंधी और दूसरे भी सब अस्त्रशस्त्रोंको जानता हूं॥ तुमने जयकी इच्छासे जो मेरा गुण कहा है, मैं उन सब गुणोंको सार्थक करनेकी अभिलाषासे पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करूंगा ॥ हे राजन्! मैं युद्धमें धृष्टद्युम्नको किसी प्रकारसे न मार सकूंगा; वह पुरुष श्रेष्ठ मेरे ही वधके निमित्त उत्पन्न हुआ है ॥ मैं सब सोमकों का नाश करता हुआ युद्ध करूंगा, पाण्डव लोग हर्षित होकर मेरे साथ युद्ध न कर सकेंगे ॥ (१-४)

सञ्जय बोले, हे राजन्! दुर्योधनने इसी प्रकारसे द्रोणाचार्यकी सब बातोंको सुनकर, उन्हें अपनी सेनाका सेनापति बनाया। जैसे पहिले समयमें देवताओंने स्वामि कार्तिकको अपनी सेनाका सेनापति किया था, उसी भांति दुर्योधन आदि सब राजाओंने द्रोणाचार्यको अपनी सेनाका सेनापति बनाया ॥ तब द्रोणाचार्यके सेनापति होने पर नाना प्रकारसे जयसूचक बाजे और शंखोंका महाशब्द सुनाई देने लगा ॥ अनन्तर कौरवोंने ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन, सूत, मागध और वन्दियोंकी स्तुति, गीत, जय शब्द और सेनाके नृत्य (कवाइद)से द्रोणाचार्यका विधिपूर्वक सत्कार

सत्कृत्य विधिना द्रोणं मेनिरे पाण्डवाञ्जितान् ॥ ९ ॥
सञ्जय उवाच— सैनापत्यं तु सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
युयुत्सुर्व्यूह्य सैन्यानि प्रायात्तव सुतैः सह ॥ १० ॥
सैन्धवश्च कलिङ्गश्च विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।
दक्षिणं पार्श्वमास्थाय समतिष्ठन्त दंशिताः ॥ ११ ॥
प्रपक्षः शकुनिस्तेषां प्रवरैर्हयसादिभिः ।
ययौ गान्धारकैः सार्धं विमलप्रासयोधिभिः ॥ १२ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च चित्रसेनो विविंशतिः ।
दुःशासनमुखा यत्ताः सव्यं पक्षमपालयन् ॥ १३ ॥
तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः सुदक्षिणपुरःसराः ।
ययुरश्वैर्महावेगैः शकाश्च यवनैः सह ॥ १४ ॥
मद्रास्त्रिगर्ताः साम्बष्ठाः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ।
शिबयः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलदैः सह ॥ १५ ॥
सौवीराः कितवाः प्राच्या दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
तवाऽऽत्मजं पुरस्कृत्य सूतपुत्रस्य पृष्ठतः ॥ १६ ॥
हर्षयन्तः स्वसैन्यानि ययुस्तव सुतैः सह ।
प्रवरः सर्वयोधानां बलेषु बलमादधत् ॥ १७ ॥

करके पाण्डवोंके पराजित होनेका निश्चय कर लिया । (५-९)

सञ्जय बोले, भरद्वाज-नन्दन महारथ द्रोणने सेनापतिका पद पाकर आपके पुत्रोंके सहित सेनाका विधिपूर्वक व्यूह बनाकर युद्धके निमित्त यात्रा की ॥ उनके दाहिनी ओर सिन्धुराज, कलिङ्ग राज और तुम्हारे पुत्र विकर्ण अस्त्र शस्त्र और कवच धारण करके चले ॥ उनके पीछे शकुनिने शीघ्रगामी घुडसवारों और अच्छी भांतिसे प्रास चलानेवाले गान्धार वीरोंके सङ्ग यात्रा की ॥ (१०-१२)

कृपाचार्य, कृतवर्मा, चित्रसेन, विविंशति और दुःशासन आदि राजा लोग सावधान होकर द्रोणाचार्यकी बाईं ओरके रक्षक होकर चले ॥ उनके पीछे यवन और शकलोग काम्बोज-राज महाबाहु सुदक्षिणको आगे करके महावेगवान् घोडोंपर चढकर आगे बढे ॥ मद्र, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, प्रतीच्य, औदीच्य, मालव, शिबिगण, शूरसेन, शूद्र, मलद, सौवीर, कितव, प्राच्य और दक्षिणके राजा लोग तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको आगे करके कर्णके पृष्ठरक्षक होकर स्वसेनाओंको

ययौ वैकर्त्तनः कर्णः प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ।
तस्य दीप्तो महाकायः स्वान्यनीकानि हर्षयन् ॥ १८ ॥
हस्तिकक्ष्यो महाकेतुर्बभौ सूर्यसमद्युतिः ।
न भीष्मव्यसनं कश्चिद् दृष्ट्वा कर्णममन्यत ॥ १९ ॥
विशोकाश्चाऽभवन्सर्वे राजानः कुरुभिः सह ।
हृष्टाश्च बहवो योधास्तत्राऽजल्पन्त वेगतः ॥ २० ॥
नहि कर्णं रणे दृष्ट्वा युधि स्थास्यन्ति पाण्डवाः ।
कर्णो हि समरे शक्तो जेतुं देवान्सवासवान् ॥ २१ ॥
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।
भीष्मेण तु रणे पार्थाः पालिता बाहुशालिना ॥ २२ ॥
तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्नाशयिष्यति संयुगे ।
एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यं हृष्टरूपा विशाम्पते ॥ २३ ॥
राधेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः ।
अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ २४ ॥
परेषां क्रौञ्च एवाऽऽसीद्व्यूहो राजन्महात्मनाम्।

हर्षित करते हुए चलने लगे (१३-१७)

सूर्य-पुत्र कर्ण सब सेनाके वीरोंको बढाते हुए तथा उनको हर्षित करते हुए सब धनुर्द्धारियोंके आगे आगे चलने लगे । उनके विशाल शरीरमें जलता हुआ सूर्यका तेज और हस्तिकक्ष महाकेतु आपकी सेनाको आनन्दित और हर्ष युक्त करता हुआ प्रकाशित होने लगा । तब कर्णको देखकर किसीने भी भीष्मके मरनेका शोक और दुःख न किया, सब राजा और कौरव लोग भीष्म के शोकको भूल गये ॥ (१७–०२)

कितने ही वीर योद्धा इकट्ठे होकर कहने लगे, कि पाण्डव लोग कर्णको देखकर युद्धमें नहीं ठहर सकेंगे । कर्ण युद्धमें इन्द्रादि देवताओंकोभी विजय कर सकते हैं, इससे जो थोडे बल और अल्प पराक्रमी पाण्डवोंको जीतेंगे, यह बात ही क्या है? बाहुशाली भीष्मने रणभूमि में पाण्डवोंका पालन किया है, परन्तु कर्ण युद्धमें अपने चोखे बाणोंसे उनका नाश करेंगे । हे नरनाथ ! वे सब इसी प्रकारसे जल्पना करके राधापुत्र कर्ण की पूजा और प्रशंसा करते हुए चले ॥ (२०–२४)

हे राजन् ! द्रोणाचार्यने हमारी सेना में शकट व्यूह रचा ॥ शत्रु पक्षवालों में राजा युधिष्ठिरने प्रसन्न होकर क्रौञ्च

प्रीयमाणेन विहितो धर्मराजेन भारत　　॥ २५ ॥
व्यूहप्रमुखतस्तेषां तस्थतुः पुरुषर्षभौ ।
वानरध्वजमुच्छ्रित्य विष्वक्सेनधनञ्जयौ　　॥ २६ ॥
ककुदं सर्वसैन्यानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
आदित्यपथगः केतुः पार्थस्याऽमिततेजसः　　॥ २७ ॥
दीपयामास तत्सैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।
यथा प्रज्वलितः सूर्यो युगान्ते वै वसुन्धराम्　॥ २८ ॥
दीप्यन्दृश्येत हि तथा केतुः सर्वत्र धीमतः ।
योधानामर्जुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम्　॥ २९ ॥
वासुदेवश्च भूतानां चक्राणां च सुदर्शनम् ।
चत्वार्येतानि तेजांसि वहञ्श्वेतहयो रथः　　॥ ३० ॥
परेषामग्रतस्तस्थौ कालचक्रमिवोद्यतम् ।
एवं तौ सुमहात्मानौ बलसेनाग्रगावुभौ　　॥ ३१ ॥
तावकानां मुखे कर्णः परेषां च धनञ्जयः ।
ततो जयाभिसंरब्धौ परस्परवधैषिणौ　　॥ ३२ ॥
अवेक्षेतां तदाऽन्योन्यं समरे कर्णपाण्डवौ ।
ततः प्रयाते सहसा भारद्वाजे महारथे　　॥ ३३ ॥

व्यूह बनाया ॥ उनके व्यूहके संमुख (आगे) पुरुषश्रेष्ठ कृष्ण और अर्जुन कपिध्वजासे युक्त रथ पर चढके खडे हुए॥ तेजस्वी महात्मा पाण्डुनन्दन अर्जुन सब सेनाके अग्रणी और सब धनुर्द्धारियोंके आश्रय स्वरूप हुए। उनकी आकाश मार्गसे चलनेवाली कपिध्वजासे युक्त पताका प्रलय कालीन सूर्यके समान महात्मा पाण्डवकी सेनाको प्रकाशित करती हुई सब स्थानों में दीखने लगी। (२४—२९)

अर्जुनका सफेद घोडोंसे युक्त रथ, वीरोंमें मुख्य अर्जुन, धनुषोंमें मुख्य गाण्डीव धनुष, प्राणियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रजी, और चक्रोंमें श्रेष्ठ सुदर्शन; इन चार तेजोंके सहित अर्जुनका रथ शत्रुओंके संमुख काल चक्रकी भांति आकर खडा हुआ। अनन्तर वह कर्ण और अर्जुन युद्धके सब कर्मोंको जाननेवाले यत्नवान् होकर एक दूसरेके वधकी इच्छा करके परस्पर देखने लगे। आपकी सेनाके आगे कर्ण, शत्रुओंकी सेनाके आगे अर्जुन इसी प्रकार खडे हुए। (२९-३३)

इसके अनन्तर अकस्मात् द्रोणाचार्य

आर्त्तनादेन घोरेण वसुधा समकम्पत ।
ततस्तुमुलमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ॥ ३४ ॥
वातोद्धूतं रजस्तीव्रं कौशेयनिकरोपमम् ।
ववर्ष चौरनभ्रापि मांसास्थिरुधिराण्युत ॥ ३५ ॥
गृध्राः श्येना बकाः कङ्का वायसाश्च सहस्रशः ।
उपर्युपरि सेनां ते तदा पर्यपतन्नृप ॥ ३६ ॥
गोमायवश्च प्राक्रोशन्भयदान्दारुणान्रवान् ।
अकार्षुरपसव्यं च बहुशः पृतनां तव ॥ ३७ ॥
चिखादिषन्तो मांसानि पिपासन्तश्च शोणितम् ।
अपतद्दीप्यमाना च सनिर्घाता सकम्पना ॥ ३८ ॥
उल्का ज्वलन्ती संग्रामपुच्छेनाऽऽवृत्य सर्वशः ।
परिवेषो महांश्चापि सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ३९ ॥
भास्करस्याऽभवद्राजन्प्रयाते वाहिनीपतौ ।
एते चाऽन्ये च बहवः प्रादुरासन्सुदारुणाः ॥ ४० ॥
उत्पाता युधि वीराणां जीवितक्षयकारिणः ।
ततः प्रववृते युद्धं परस्परवधैषिणाम् ॥ ४१ ॥
कुरुपाण्डवसैन्यानां शब्देनाऽपूरयज्जगत् ।
ते त्वन्योन्यं सुसंरब्धाः पाण्डवाः कौरवैः सह ॥४२॥

के आनेसे पृथ्वी घोर आर्त्तनादसे परिपूर्ण होकर कांपने लगी। सेनाके वीरोंके पैरकी धूली उडनेसे आकाशमें अन्धकार होगया और उससे सूर्य छिपगया। बादलसे रहित आकाशमें मांस, हड्डी और रक्तकी वर्षा होने लगी॥ हे राजन्! हजारों गिद्ध, कौए और गोमायु आदि आपकी सेनाकी ओर दौडने लगे; सियारोंके झुण्ड मांस और लहूकी इच्छासे आपकी सेनाकी दाहनी ओरसे चलने लगे॥ (३३-३८)

उस संग्रामभूमिमें चलते हुए उल्कापात भूमिकम्प होकर तुम्हारी सेनाके सम्मुख पडने लगा। हे राजन्! सेनापतिके यात्रा करने पर सूर्यका बहुत तेज बढा, वह बिजलीसे युक्त गर्जते हुए बादलोंमें छिप गया॥ वीरोंके जीवनके नाश करनेवाले यह असगुन और उत्पात दिखाई देने लगे। अनन्तर परस्पर एक दूसरेके वधकी इच्छा करनेवाले कौरव और पाण्डवोंकी सेनाका भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ॥ (३८-४२)

अभ्यघ्नन्निशितैः शस्त्रैर्जयगृद्धाः प्रहारिणः ।
स पाण्डवानां महतीं महेष्वासो महाद्युतिः ॥ ४३ ॥
वेगेनाऽभ्यद्रवत्सेनां किरञ्शरशतैः शितः ।
द्रोणमभ्युद्यतं दृष्ट्वा पाण्डवाः सह सृञ्जयैः ॥ ४४ ॥
प्रत्यगृह्णंस्तदा राजञ्छरवर्षैः पृथक्पृथक् ।
विक्षोभ्यमाणा द्रोणेन भिद्यमाना महाचमूः ॥ ४५ ॥
व्यशीर्यत सपाञ्चाला वातेनेव बलाहकाः ।
बहूनीह विकुर्वाणो दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ॥ ४६ ॥
अपीडयत्क्षणेनैव द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
ते वध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव दानवाः ॥ ४७ ॥
पञ्चालाः समकम्पन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ४८ ॥
अभिनच्छरवर्षेण द्रोणानीकमनेकधा ।
द्रोणस्य शरवर्षाणि शरवर्षेण पार्षतः ॥ ४९ ॥
संनिवार्य ततः सर्वान्कुरूनप्यवधीद्बली ।

कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके शब्दसे सब जगत् पूर्ण होगया और जयकी इच्छा करनेवाले पाण्डव और कौरवोंकी सेनासे चोखे बाणोंकी वर्षा होने लगी। अनन्तर महाधनुर्द्धर प्रतापी द्रोणाचार्य सैकडों तीक्ष्ण बाणोंको छोडते हुए अत्यन्त शीघ्रतासे पाण्डवोंकी सेना-की ओर दौडे। हे राजन्! पाण्डव लोग द्रोणाचार्यको आया हुआ देख, सृञ्जयों के सङ्ग मिलकर उनके ऊपर अलग अलग बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ४२-४५

जैसे वायुसे बादल टुकडे टुकडे होजाते हैं, उसी प्रकारसे वह बडी पाञ्चाल सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे जर्जरित होकर कई हिस्सोंमें बंट गई। द्रोणाचार्यने क्षण भरके बीचमें अनेक अस्त्र शस्त्रकी वर्षा करके पाण्डव और सृञ्जयोंको पीडित तथा दुःखित कर दिया। जिस प्रकारसे दानव लोग इन्द्रसे पीडित होकर दुःखित होते हैं, वैसे ही धृष्टद्युम्न के सहित पांचाल योद्धा द्रोणाचार्यके बाणोंसे व्याकुल होकर कम्पित होने लगे। (४५-४८)

अनन्तर महारथ दिव्य शस्त्रोंके जानने वाले याज्ञसेनि धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंकी वर्षासे द्रोणाचार्यकी सेनाको छिन्न भिन्न कर दिया। बलवान धृष्टद्युम्न अपने बा-णोंसे द्रोणाचार्यके बाणोंको काट कर सब

संयम्य तु ततो द्रोणः समवस्थाप्य चाऽऽहवे ॥ ५० ॥
स्वमनीकं महेष्वासः पार्षतं समुपाद्रवत् ।
सबाणवर्षं सुमहदसृजत्पार्षतं प्रति ॥ ५१ ॥
मघवान्समभिक्रुद्धः सहसा दानवानिव ।
ते कम्प्यमाना द्रोणेन बाणैः पाण्डवसृञ्जयाः ॥५२॥
पुनः पुनरभज्यन्त सिंहेनेवेतरे मृगाः ।
तथा पर्यचरद् द्रोणः पाण्डवानां बले बली ।
अलातचक्रवद्राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ५३ ॥
खचरनगरकल्पं कल्पितं शास्त्रदृष्ट्या चलदनिलपताकं ह्लादनं वल्गिताश्वम् ।
स्फटिकविमलकेतुं त्रासनं शात्रवाणां रथवरमधिरूढः सञ्जहाराऽरिसेनाम् ५४

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणपराक्रमे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ [२२१]

सञ्जय उवाच— तथा द्रोणमभिघ्नन्तं साश्वसूतरथद्विपान् ।
व्यथिताः पाण्डवा दृष्ट्वा न चैनं पर्यवारयन् ॥ १ ॥

कुरु-सेनाका नाश करने लगे । अनन्तर महाधनुर्धारी द्रोणाचार्य युद्धमें पूरी तरहसे प्रवृत्त होकर सेनाको यत्नपूर्वक विशेष रूपसे ठहराकर धृष्टद्युम्नकी ओर चढ आये ॥ जैसे इन्द्र परम क्रोध करके दानवोंपर बाणोंकी वर्षा करते हैं, उसी भांतिसे द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नके ऊपर एक बार ही बहुतसे दिव्य बाणोंकी वर्षा करने लगे । (४८–५२)

जैसे सिंहको देखकर छोटे छोटे हरिण तितर बितर होकर भाग जाते हैं, वैसे ही पाण्डव, सृञ्जयगण द्रोणाचार्यके बाणोंसे कम्पित होकर इधर उधर भागने लगे । हे राजन् ! बलवान द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनामें अलातचक्रके समान चारों ओर घूमने लगे,वह घूमना अद्भुत प्रकारका दीखने लगा ॥ वह आकाशगामी नगर के समान शास्त्रकी विधिसे कहे हुए वायुके समान पताका सहित नाचते और गतिविशेषसे चलनेवाले घोडोंसे युक्त प्रज्वलित स्फटिककी भांति सुन्दर पताका समेत उत्तम रथपर चढ कर,शत्रुओंकी सेनाको डर दिखाते हुए, उसका संहार करनेलगे ॥ (५२–५४) [२२१]

द्रोणपर्वमें सात अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें आठ अध्याय ।

सञ्जय बोले,पाण्डव लोग इस प्रकारसे द्रोणाचार्यको अपनी सेनाके हाथी, घोडे, सारथी, रथ और योद्धाओंको मारते हुए देखकर अत्यन्त दुःखित हुए. किसी

ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नधनञ्जयौ ।
अब्रवीत्सर्वतोयत्तौ कुम्भयोनिर्निवार्यताम् ॥ २ ॥
तत्रैनमर्जुनश्चैव पार्षतश्च सहानुगः ।
प्रत्यगृह्णास्ततः सर्वे समापेतुर्महारथाः ॥ ३ ॥
केकया भीमसेनश्च सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ।
युधिष्ठिरो यमौ मत्स्या द्रुपदस्याऽऽत्मजास्तथा ॥ ४ ॥
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा धृष्टकेतुःससात्यकिः ।
चेकितानश्च संक्रुद्धो युयुत्सुश्च महारथः ॥ ५ ॥
ये चाऽन्ये पार्थिवा राजन्पाण्डवस्याऽनुयायिनः ।
कुलवीर्यानुरूपाणि चक्रुः कर्माण्यनेकशः ॥ ६ ॥
संरक्ष्यमाणां तां दृष्ट्वा पाण्डवैर्वाहिनीं रणे ।
व्यावृत्य चक्षुषी कोपाद्भारद्वाजोऽन्ववैक्षत ॥ ७ ॥
स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्जयः ।
व्यधमत्पाण्डवानीकमभ्राणीव सदागतिः ॥ ८ ॥
रथानश्वान्नरान्नागानभिधावंस्ततस्ततः ।
चचारोन्मत्तवद् द्रोणो वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥ ९ ॥

भांति से उन्हें न रोक सके॥ अनन्तर राजा युधिष्ठिर धृष्टद्युम्न और अर्जुनसे बोले, कि तुम लोग जिस प्रकारसे बने द्रोणाचार्य को रोको । (१-- २)

अर्जुन और धृष्टद्युम्नने अपने अनुचरों के समेत द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया॥ तब सब महारथी लोग उन की ओर दौडे ॥ केकययोद्धा, भीमसेन, अभिमन्यु, घटोत्कच, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, विराट, द्रुपदके पुत्र, द्रौपदीके पांचों पुत्र, धृष्टकेतु, सात्यकि, चेकितान, महारथ युयुत्सु और दूसरे पाण्डवोंके अनुयायी सब राजालोग क्रुद्ध और प्रसन्न होकर अपने अपने कुल और पराक्रमके अनुसार अनेक भांतिसे युद्धके कर्म करने लगे ॥ (३--६)

भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य उस सेनाको पाण्डवोंसे इस प्रकारसे रक्षित देख क्रोधसे अपनी दोनों आंखोंको फेर कर इधर उधर देखने लगे ॥ अनन्तर जिस प्रकार से वायु बादलोंको छिन्न भिन्न कर देता है, उसी प्रकारसे युद्ध-दुर्मद द्रोणाचार्य क्रोधपूर्वक रथमें बैठकर पाण्डवों की सेनाको अपने बाणोंसे जलाने लगे ॥ वह बूढे होकर भी तरुण पुरुषोंसे बढके कर्म करने लगे । उन्मत्तकी भांति होकर

तस्य शोणितदिग्धाङ्गाः शोणास्ते वातरंहसः ।
आजानेया हया राजन्नविश्रान्ता ध्रुवं ययुः ॥ १० ॥
तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं यतव्रतम् ।
दृष्ट्वा सम्प्राद्रवन्योधाः पाण्डवस्य ततस्ततः ॥ ११ ॥
तेषां प्राद्रवतां भीमः पुनरावर्त्ततामपि ।
पश्यतां तिष्ठतां चाऽऽसीच्छब्दः परमदारुणः ॥ १२ ॥
शूराणां हर्षजननो भीरूणां भयवर्धनः ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं पूरयामास सर्वतः ॥ १३ ॥
ततः पुनरपि द्रोणो नाम विश्रावयन्युधि ।
अकरोद्रौद्रमात्मानं किरञ्छरशतैः परान् ॥ १४ ॥
स तथा तेष्वनीकेषु पाण्डुपुत्रस्य मारिष ।
कालवद्व्यचरद् द्रोणो युवेव स्थविरो बली ॥ १५ ॥
उत्कृत्य च शिरांस्युग्रान्बाहूनपि सुभूषणान् ।
कृत्वा शून्यान्रथोपस्थानुदक्रोशन्महारथान् ॥ १६ ॥

रथ, हाथी, घोडे, अश्व, और पैदलोंकी ओर दौडते हुए चारों ओर घूमने लगे ॥ (७–९)

हे राजन् ! उनके वायुके समान चलनेवाले उत्तम लाल रङ्गके घोडे रक्त लिपटे हुए शरीरसे अत्यन्त शीघ्रता सहित घूमते हुए शोभित होने लगे ॥ पाण्डवोंकी ओरके वीर योद्धा लोग साक्षात् कालके समान क्रुद्ध द्रोणाचार्यको आगे बढे आते देखकर इधर उधर छिन्न भिन्न होकर भागने लगे ॥ उस समय उस सेनाके भागने और फिर लौटने तथा ठहरने और देखनेसे वहां भयङ्कर कठोर शब्द होने लगा। (१०–१२)

वह शब्द शूरवीरोंको आनन्द देनेवाला और कायरोंको भय देनेवाला होकर संपूर्ण पृथ्वी, गढे और आकाशमें परिपूरित होगया ॥ अनन्तर फिर द्रोणाचार्य रणभूमिमें अपना नाम सुनाकर सैकडों बाणोंको एक ही बार फेंकते हुए अपने स्वरूपको भयङ्कर बनाकर युद्ध करते हुए आगे बढे ॥ हे महाराज! वह बली अचल द्रोणाचार्य वृद्ध होकर भी तरुणके समान होकर पाण्डुपुत्रोंकी सेनामें कालरूप होकर चारों ओर घूमने लगे ॥ (१३–१५)

उन्होंने वीरोंके शिर और भूषणोंके सहित योद्धाओंकी भुजाको काटते और शत्रुओंके रथोंको मनुष्य-रहित करते हुए उस सेनामें महा घोर कोलाहल मचा

तस्य हर्षप्रणादेन बाणवेगेन वा विभो ।
प्राकम्पन्त रणे योधा गावः शीतार्दिता इव ॥ १७ ॥
द्रोणस्य रथघोषेण मौर्वीनिष्पेषणेन च ।
धनुःशब्देन चाऽऽकाशे शब्दः समभवन्महान् ॥१८॥
अथाऽस्य धनुषो बाणा निश्चरन्तः सहस्रशः ।
व्याप्य सर्वा दिशः पेतुर्नागाश्वरथपत्तिषु ॥ १९ ॥
तं कार्मुकमहावेगमस्त्रज्वलितपावकम् ।
द्रोणमासादयाञ्चक्रुः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ २० ॥
तान्स कुञ्जरपत्त्यश्वान्प्राहिणोद्यमसादनम् ।
चक्रेऽचिरेण च द्रोणो महीं शोणितकर्दमाम् ॥ २१ ॥
तन्वता परमास्त्राणि शरान्सततमस्यता ।
द्रोणेन विहितं दिक्षु शरजालमदृश्यत ॥ २२ ॥
पदातिषु रथाश्वेषु वारणेषु च सर्वशः ।
तस्य विद्युदिवाऽभ्रेषु चरन्केतुरदृश्यत ॥ २३ ॥

दिया ॥ हे प्रजानाथ ! उनके उत्साह-भरे हर्षको बढानेवाले सिंहनाद और बाणोंके चलानेकी शीघ्रताको देख कर शत्रुओंकी सेना इस प्रकारसे कांपने लगी, जैसे सर्दीसे दुःखित होकर गऊ कांपती हैं ॥ द्रोणाचार्यके रथके शब्द और धनुषके टङ्कारसे दशोंदिशामें महा शब्द होने लगा ॥ (१६–१८)

उनके धनुषसे छूटे हुए एक एकवार सहस्र सहस्र बाण चारों ओर दीख पडने लगे, उससे आकाशमें बाणोंका जाल बन गया । द्रोणाचार्यके धनुष से छूटे हुए बाण रथ, हाथी, घोडे और पैदल वीरोंपर चारों ओरसे बरसने लगे ॥ पांचाल और पाण्डवलोग सेनाके सहित अत्यन्त शीघ्रतासे बाण और अस्त्र शस्त्रोंसे जलते हुए अग्निके समान द्रोणाचार्यपर आक्रमण करने लगे ॥ परन्तु द्रोणाचार्य शत्रुओंकी सब सेना हाथी घोडे, पैदलोंको अपने चोखे बाणोंसे यमपुरीमें भेजने लगे। उन्होंने थोडे ही समयमें पृथ्वीको लहूसे परिपूरित कर दिया ॥ (१९—२१)

और अपने परम अस्त्रोंको चलाकर, चारों ओर बाणोंसे शर-जाल बनाने लगे, उस समय उनका बनाया शरजाल ही सब ओर दीखने लगा। जिस प्रकार से सब बादलोंमें बिजली घूमा करती है उसी भांतिसे मैं उनके रथकी ध्वजाको पैदल, रथ, हाथी, और घोडों-

स केकयानां प्रवरांश्च पञ्च पञ्चालराजं च शरैः प्रमथ्य ।
युधिष्ठिरानीकमदीनसत्त्वो द्रोणोऽभ्ययात्कार्मुकबाणपाणिः ॥ २४ ॥
तं भीमसेनश्च धनञ्जयश्च शिनेश्च नप्ता द्रुपदात्मजश्च ।
शैब्यात्मजः काशिपतिः शिबिश्च हृष्टा नदन्तो व्यकिरञ्छरौघैः॥२५॥
तेषामथ द्रोणधनुर्विमुक्ताः पतत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खाः ।
भित्वा शरीराणि गजाश्वयूनां जग्मुर्महीं शोणितदिग्धवाजाः ॥२६॥
सा योधसङ्घैश्च रथैश्च भूमिः शरैर्विभिन्नैर्गजवाजिभिश्च ।
प्रच्छाद्यमाना पतितैर्बभूव समावृता द्यौरिव कालमेघैः ॥ २७ ॥
शैनेयभीमार्जुनवाहिनीशं सौभद्रपाञ्चालसकाशिराजम् ।
अन्यांश्च वीरान्समरे ममर्द द्रोणः सुतानां तव भूतिकामः ॥ २८ ॥
एतानि चाऽन्यानि च कौरवेन्द्र कर्माणि कृत्वा समरे महात्मा ।
प्रताप्य लोकानिव कालसूर्यो द्रोणो गतः स्वर्गमितो हि राजन् ॥२९॥

की ओर घूमता हुआ देखने लगा ॥ द्रोणाचार्य पराक्रम और वीरता-युक्त कडे चित्तसे धनुष और बाणोंको हाथमें लेकर केकयराजके पांचों भाई और पाञ्चालराजको बाणोंसे जर्जरित करके युद्धिष्ठिरकी ओर चढ धाये ॥ २२-२४

भीमसेन, अर्जुन, शिनिपौत्र सात्यकि, राजा द्रुपदके पुत्र, शैव्य-नन्दन, काशिराज और शिबिराजने हर्षित होकर सिंहनाद करके बाणोंसे द्रोणाचार्यको छा लिया ॥ द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए सुवर्ण दण्डसे युक्त तीक्ष्ण बाण उन लोगोंके हाथी, घोडे और पैदल चलनेवाले सेनाके वीरोंका शरीर भेदकर रुधिर लिपटे हुए पृथ्वीमें प्रवेश करने लगे ॥ वह रणभूमि बाणोंके चलनेसे तथा दूसरे अस्त्र शस्त्रोंसे मरे हुए शूर-वीर योद्धा, हाथी और घोडोंके शरीरसे इस प्रकार छिप गई जैसे काले बादलों से आकाश छिप जाता है ॥ २५-२७

द्रोणाचार्य राजा दुर्योधनके हितैषी होकर सात्यकि, भीमसेन, अर्जुन, अभिमन्यु, सेनापति धृष्टद्युम्न, काशिराज और दूसरे अनेक शूरवीरोंको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ' हे राजन्! वह महा पराक्रमी द्रोणाचार्य यह सम्पूर्ण कार्य तथा युद्धमें और भी बहुतसा पराक्रम कर्म करके जैसे प्रलय कालके सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंको तपाके भस्म करता है; वैसे ही उन्होंने पाण्डवोंकी बहुतसी सेनाको अपने बाणोंसे भस्म करके इस लोकसे परलोकमें गमन किया ॥ (२८-२९)

एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा शतसहस्रशः।
पाण्डवानां रणे योधान्पार्षतेन निपातितः ॥ ३० ॥
अक्षौहिणीमभ्यधिकां शूराणामनिवर्तिनाम्।
निहत्य पश्चाद्धृतिमानगच्छत्परमां गतिम् ॥ ३१ ॥
पाण्डवैः सह पञ्चालैरशिवैः क्रूरकर्मभिः।
हतो रुक्मरथो राजन्कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ३२ ॥
ततो निनादो भूतानामाकाशे समजायत।
सैन्यानां च ततो राजन्नाचार्ये निहते युधि ॥ ३३ ॥
द्यां धरां खं दिशो वाऽपि प्रदिशश्चाऽनुनादयन्।
अहो धिगिति भूतानां शब्दः समभवद्भृशम् ॥ ३४ ॥
देवताः पितरश्चैव पूर्वे ये चाऽस्य बान्धवाः।
ददृशुर्निहतं तत्र भारद्वाजं महारथम् ॥ ३५ ॥
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सिंहनादान्प्रचक्रिरे।
सिंहनादेन महता समकम्पत मेदिनी ॥ ३६ ॥ [२५७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणवधश्रवणेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सुवर्ण युक्त रथपर चढे हुए महापराक्रमी द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाके सैकडों सहस्रों योद्धाओंका वध करके अन्तमें धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये ॥ उस बुद्धिमान् द्रोणाचार्यने युद्धमें पीछे न हटनेवाली अक्षौहिणीसे भी अधिक शत्रु सेनाका वध करके परम गति प्राप्त की ॥ हे राजन्! सुवर्ण-भूषित रथमें स्थित अत्यन्त कठिन कार्योंको करके अन्तमें पाण्डवोंके सहित पाञ्चाल योद्धाओंके अशुभ तथा क्रूर कर्मोंके अनुष्ठानसे मारे गये। ३०--३२

हे राजन्! युद्धमें द्रोणाचार्यके मरने पर सम्पूर्ण प्राणी और सेनाके हाहाकार और चिल्लाहटसे आकाश गूंज उठा। सम्पूर्ण प्राणियोंने "ओहो! धिक्कार है" ऐसा ही कहके पृथ्वी, आकाश और दिशाओंको अनुनादित करके महा घोर शब्द किया ॥ देवता, पितर और उनके पूर्व पुरुषों तथा बन्धुबान्धवोंने भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यको उस रणभूमि में मरे हुए देखा पाण्डवलोग युद्ध में विजय करके सिंहनाद करने लगे। उन शूरवीरोंके सिंहनादसे पृथ्वी कांपने लगी ॥ (३३—३६) [२५७]

द्रोणपर्वमें आठ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र उवाच—किंकुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डवसृञ्जयाः ।
तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रभृतामपि ॥ १ ॥
रथभङ्गो बभूवास्य धनुर्वाऽशीर्यताऽस्यतः ।
प्रमत्तो वाऽभवद् द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान् ॥ २ ॥
कथं नु पार्षतस्तात शत्रुभिर्दुष्प्रधर्षणम् ।
किरन्तमिषुसङ्घातान्रुक्मपुङ्खाननेकशः ॥ ३ ॥
क्षिप्रहस्तं द्विजश्रेष्ठं कृतिनं चित्रयोधिनम् ।
दूरेषुपातिनं दान्तमस्त्रयुद्धेषु पारगम् ॥ ४ ॥
पाञ्चालपुत्रो न्यवधीद्दिव्यास्त्रधरमच्युतम् ।
कुर्वाणं दारुणं कर्म रणे यत्तं महारथम् ॥ ५ ॥
व्यक्तं हि दैवं बलवत्पौरुषादिति मे मतिः ।
यद् द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महात्मना ॥ ६ ॥
अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत्प्रतिष्ठितम् ।
तमिष्वस्त्रधराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम् ॥ ७ ॥

द्रोणपर्वमें ९वां अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले; सब शस्त्र धारियों के बीच अस्त्रशस्त्रोंके युद्धमें निपुण द्रोणाचार्यने ऐसा कौनसा कर्म किया था, कि जिससे पाण्डव और सृञ्जय उनका वध करनेमें समर्थ हुए ? क्या युद्धके समय उनका रथ टूट गया था ! अथवा बाण चलानेके समय उनका धनुष कट गया था ? क्या वह युद्धमें असावधानताके कारणसे मारे गये ? हे तात ! वह महारथ द्रोणाचार्य धर्मात्मा, शत्रुओंको जीतनेवाले, कृतास्त्र, ब्राह्मणश्रेष्ठ दूर तक लक्ष्य को वेधनेवाले, महापराक्रमी, सम्पूर्ण अस्त्रयुद्धके जाननेवाले और दिव्य अस्त्रोंको धारण करनेवाले थे; जब वह अक्षय वीर द्रोणाचार्य शीघ्रताके सहित अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाते हुए दारुण कर्म कर रहे थे, तब उस समयमें पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नने किस प्रकारसे उनका वध किया ? (१-५)

जब महात्मा धृष्टद्युम्नके हाथसे द्रोणाचार्य मारे गये, तब मुझे यह निश्चय बोध होरहा है, कि पुरुषार्थसे प्रारब्धही बलवान् है ॥ जिस पुरुषमें शस्त्र योजना, सन्धान, मोक्ष और संहार यह चारों प्रकारकी अस्त्र विद्या विद्यमान थी, और जो धनुष बाणधारी तथा दूसरेभी बहुत से अस्त्रधारी योद्धाओंके आचार्य थे, उनको तुम मेरे निकट युद्धमें मरा हुआ कहके वर्णन करते हो ॥ आज उस

श्रुत्वा हतं रुक्मरथं वैयाघ्रपरिवारितम्।
जातरूपपरिष्कारं नाद्य शोकमुपाददे ॥ ८ ॥
न नूनं परदुःखेन म्रियते कोऽपि सञ्जय।
यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः ॥ ९ ॥
दैवमेव परं मन्ये नन्वनर्थं हि पौरुषम्।
अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ १० ॥
यच्छ्रुत्वा निहतं द्रोणं शतधा न विदीर्यते।
ब्राह्मे दैवे तथेष्वस्त्रे यमुपासन्गुणार्थिनः ॥ ११ ॥
ब्राह्मणा राजपुत्राश्च स कथं मृत्युना हृतः।
शोषणं सागरस्येव मेरोरिव विसर्पणम् ॥ १२ ॥
पतनं भास्करस्येव न मृष्ये द्रोणपातनम्।
दुष्टानां प्रतिषेद्धाऽऽसीद्धार्मिकाणां च रक्षिता ॥ १३ ॥
योऽहासीत्कृपणस्यार्थे प्राणानपि परन्तपः।
मन्दानां मम पुत्राणां जयाशा यस्य विक्रमे ॥ १४ ॥

व्याघ्रचर्मसे युक्त सुवर्णभूषित रथमें स्थित सुवर्णमय कवच और वस्त्रोंसे शोभित द्रोणाचार्यको मरा हुआ सुनकर मैं अपने शोकका वेग नहीं रोक सकता हूं ॥ (६—८)

हे सञ्जय! दूसरेके दुःखसे कोई नहीं मरता यह निश्चित है, क्योंकि मैं अपनी अबुद्धिके कारण द्रोणाचार्यको मरा हुआ सुनकर भी जीवित हूं ॥ जब मेरी ओर के नीतिज्ञ द्रोणाचार्य शत्रुओंके हाथसे मारे गये, तब मैं दैवहीको श्रेष्ठ समझता हूं, उत्तम नीति और पराक्रमसे कुछ भी नहीं हो सकता! मेरा हृदय निश्चय ही पत्थरसे निर्मित हुआ है, नहीं तो द्रोणाचार्यका मरना सुनकर मेरा हृदय सौ टुकडे होकर क्यों नहीं फट जाता है? (९—११)

विद्यार्थी, ब्राह्मण और राजपुत्रलोग ब्राह्म और दैव अस्त्रोंके निमित्त जिसकी सदा उपासना किया करते थे, वह किस प्रकारसे मृत्युके मुखमें पतित हुए? समुद्रका सूखना, सुमेरु पर्वतका चलना, और सूर्यके गिरनेके समान द्रोणाचार्य का वध मुझसे नहीं सहा जाता है। जो शत्रु नाशन द्रोणाचार्य दुष्टोंके नाश करनेवाले और धर्मात्माओंके रक्षक थे; जो दीन दुःखियोंके निमित्त प्राणदान भी करनेकी अभिलाष करतेथे; जिनके पराक्रमके आसरेसे मेरे नीचबुद्धि पुत्रोंने युद्धमें विजयकी आशा की थी, जो

बृहस्पत्युशनस्तुल्यो बुद्ध्या स निहतः कथम् ।
ते च शोणा बृहन्तोऽश्वाश्छन्ना जालैर्हिरण्मयैः ॥ १५ ॥
रथे वातजवा युक्ताः सर्वशस्त्रातिगा रणे ।
बलिनो हेषिणो दान्ता सैन्धवाः साधुवाहिनः ॥१६॥
दृढाः संग्राममध्येषु कच्चिदासन्नविह्वलाः ।
करिणां बृंहतां युद्धे शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ १७ ॥
ज्याक्षेपशरवर्षाणां शस्त्राणां च सहिष्णवः ।
आशंसन्तः पराजेतुं जितश्वासा जितव्यथाः ॥ १८ ॥
हयाः पराजिताः शीघ्रा भारद्वाजरथोद्वहाः ।
ते स्म रुक्मरथे युक्ता नरवीरसमाहताः ॥ १९ ॥
कथं नाऽभ्यतरंस्तात पाण्डवानामनीकिनीम् ।
जातरूपपरिष्कारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥ २० ॥
भारद्वाजः किमकरोद्युधि सत्यपराक्रमः ।
विद्यां यस्योपजीवन्ति सर्वलोकधनुर्धराः ॥ २१ ॥
स सत्यसन्धो बलवान्द्रोणः किमकरोद्युधि ।

बुद्धिमें बृहस्पति और नीतिमें शुक्राचार्य के समान थे, वह पराक्रमी द्रोणाचार्य युद्धमें किस प्रकारसे मारे गये ? ११-१५

उनके रथमें जुते हुए सुवर्णभूषित वायुके समान गमन करनेवाले सिन्धु-देशीय लाल रङ्गके उत्तम और बडे घोडे क्या अस्त्र-शस्त्रोंकी चोटसे विकल होगये थे ? हे तात ! द्रोणाचार्यके सुवर्णयुक्त रथमें जुते हुए सब घोडे हाथियोंकी चिङ्घाड शंख नगाडोंके शब्द और धनुषटङ्कारके शब्द, बाणोंकी वर्षा और दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंको भी सह सकते थे; वे सब घोडे अस्त्रोंके लगने तथा रथके अधिक खींचनेमें भी पीडित नहीं होते थे और शीघ्र गमन करनेवाले तथा शत्रुओंसे न पराजित होने योग्य शूर-वीरोंसे रक्षित थे; इससे उनके द्वारा शत्रुओंके पराजित होने ही की सम्भावना थी; ऐसे घोडे पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनासे किस कारणसे पार न होसके ? (१५-२०)

जो युद्धमें शत्रु सेनाके शूरवीरोंको रुलाते थे, ऐसे द्रोणाचार्यने सुवर्णयुक्त शोभायमान उत्तम रथ पर चढके कौन सा कार्य किया था, ? जिनकी शस्त्र-विद्याको ग्रहण करके शूरवीर अनेक योद्धा धनुर्द्धारी हुए हैं, उस सत्य परा-क्रमी द्रोणाचार्यने युद्धमें कौनसा कार्य

दिवि शक्रमिव श्रेष्ठं महामात्रं धनुर्भृताम् ॥ २२ ॥
के नु तं रौद्रकर्माणं युद्धे प्रत्युद्ययू रथाः ।
ननु रुक्मरथं दृष्ट्वा प्राद्रवन्ति स्म पाण्डवाः ॥ २३ ॥
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं रणे तस्मिन्महाबलम् ।
उताहो सर्वसैन्येन धर्मराजः सहानुजः ॥ २४ ॥
पाञ्चाल्यप्रग्रहो द्रोणं सर्वतः समवारयत् ।
नूनमावारयत्पार्थो रथिनोऽन्यानजिह्मगैः ॥ २५ ॥
ततो द्रोणं समारोहत्पार्षतः पापकर्मकृत ।
नह्यहं परिपश्यामि वधे कञ्चन शुष्मिणः ॥ २६ ॥
धृष्टद्युम्नादृते रौद्रात्पाल्यमानात्किरीटिना ।
तैर्वृतः सर्वतः शूरः पाञ्चाल्यापसदस्ततः ॥ २७ ॥
केकयैश्चेदिकारूषैर्मत्स्यैरन्यैश्च भूमिपैः ।
व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुरगं यथा ॥ २८ ॥
कर्मण्यसुकरे सक्तं जघानेति मतिर्मम ।
योऽधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गानाख्यानपञ्चमान ॥ २९ ॥

किया था ? स्वर्गमें जैसे इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ महा भयङ्कर कर्मोंको करनेवाले द्रोणाचार्यकी पृष्ठरक्षा उससमय किन महारथोंने की थी ? (२०–२३)

उस महाभयङ्कर युद्धमें सुवर्णभूषित रथमें बैठे तथा दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करनेवाले द्रोणाचार्यको देखकर पाण्डव लोग अत्यन्त ही पीडित हुए थे, फिर दूसरी बार पाञ्चाल योद्धा और भाईयोंके सहित धर्मराज युधिष्ठिरने किस प्रकारसे द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ? मुझे बोध होता है कि पहिले अर्जुनने मेरी ओरके मुख्य मुख्य महारथ योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करके मार्गमें ही रोक रक्खा, तब पीछेसे पापी धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया होगा ! अर्जुनसे रक्षित धृष्टद्युम्न के अतिरिक्त ऐसा कोई भी योद्धा मैं नहीं देखता हूं, कि जो तेजस्वी द्रोणाचार्यका वध कर सके । (२५-२७)

मैं बोध करता हूं, कि जिस प्रकारसे चींटियोंसे अत्यन्त उद्विग्न हुए सर्पको कोई पुरुष मारनेमें समर्थ हो सकता है, वैसे ही पाञ्चाल योद्धाओंमें अधम धृष्टद्युम्नने केकय, चेदि, मत्स्य, करूप और अन्य देशीय बहुतसे राजाओंसे युक्त हो कर कठिन कर्मोंके करने वाले

ब्राह्मणानां प्रतिष्ठाऽऽसीत्स्रोतसामिव सागरः ।
क्षत्रं च ब्रह्म चैवेह योऽभ्यतिष्ठत्परन्तपः ॥ ३० ॥
स कथं ब्राह्मणो वृद्धः शस्त्रेण वधमाप्तवान् ।
अमर्षिणा मर्षितवान्क्लिश्यमानान्सदा मया ॥ ३१ ॥
अनर्हमाणान्कौन्तेयान्कर्मणस्तस्य तत्फलम् ।
यस्य कर्माऽनुजीवन्ति लोके सर्वधनुर्भृतः ॥ ३२ ॥
स सत्यसन्धः सुकृती श्रीकामैर्निहतः कथम् ।
दिवि शक्र इव श्रेष्ठो महासत्त्वो महाबलः ॥ ३३ ॥
स कथं निहतः पार्थैः क्षुद्रमत्स्यैर्यथा तिमिः ।
क्षिप्रहस्तश्च बलवान्दृढधन्वाऽरिमर्दनः ॥ ३४ ॥
न यस्य विजयाकांक्षी विषयं प्राप्य जीवति ।
यं द्वौ न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन ॥ ३५ ॥
ब्राह्मश्च वेदकामानां ज्याघोषश्च धनुष्मताम् ।
अदीनं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ३६ ॥

द्रोणाचार्यका वध किया होगा । जिन्होंने अङ्गोंके सहित चारों वेदोंको पढा था, जो नदियोंके आश्रय स्थान समुद्रकी भांति ब्राह्मणोंके आश्रय स्थान थे, जो शत्रुनाशन द्रोणाचार्य क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों ही धर्मोंके जाननेवाले तथा आचार्य रूप थे, वह बूढे ब्राह्मणों-में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य किस प्रकार अस्त्र शस्त्रोंसे मारे गये ? (२७–३१)

हम लोगोंकी बातोंको न सहने योग्य होकर भी पाण्डवोंके निमित्त उन्होंने बहुत क्लेश सहा था। यही कारण है, कि जिसके निमित्त उन्होंने क्षमा की थी, उसी कर्मका यह फल दीख पडता है ! पृथ्वीपर सम्पूर्ण धनुर्द्धारी योद्धा जिस द्रोणाचार्यसे शस्त्रविद्या सीखकर धनुर्धर गिने जाते हैं, उस सत्यवादी और सुकृती द्रोणाचार्य का पाण्डवोंने राज्यकी अभिलाषासे किस प्रकारसे वध किया ? (३१–३४)

शीघ्रतासे शस्त्रोंका चलानेवाला, बलवान् दृढ धनुर्द्धारी और शत्रुओंका नाश करनेवाला जो कोई पुरुष विजय की इच्छासे द्रोणाचार्यके निकटमें उप-स्थित होता था, वह जीता हुआ फिर अपने स्थान पर नहीं जा सकता था। इसके अतिरिक्त वेद पढने वाले ब्राह्मणों के वेद–स्वर और धनुर्वेद जाननेवाले राजाओंके धनुष्टङ्कारका शब्द जिस द्रोणाचार्यका कभीभी सङ्ग नहीं छोडता

नाऽहं मृष्ये हतं द्रोणं सिंहद्विरदविक्रमम् ।
कथं सञ्जय दुर्धर्षमनाधृष्ययशोबलम् ॥ ३७ ॥
पश्यतां पुरुषेन्द्राणां समरे पार्षतोऽवधीत् ।
के पुरस्तादयुध्यन्त रक्षन्तो द्रोणमन्तिकात् ॥ ३८ ॥
के नु पश्चादवर्त्तन्त गच्छतो दुर्गमां गतिम् ।
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं सव्यं के च महात्मनः ॥ ३९ ॥
पुरस्तात्के च वीरस्य युध्यमानस्य संयुगे ।
के च तस्मिंस्तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ॥४०॥
द्रोणस्य समरे वीराः केऽकुर्वन्त परां धृतिम् ।
कच्चिन्नैनं भयान्मन्दाः क्षत्रिया व्यजहन्रणे ॥ ४१ ॥
रक्षितारस्ततः शून्ये कच्चित्तैर्न हतः परैः ।
न स पृष्ठमरेस्त्रासाद्रणे शौर्यात्प्रदर्शयेत् ॥ ४२ ॥
परामप्यापदं प्राप्य स कथं निहतः परैः ।

था; उस महावीर अत्यन्त पराक्रमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ लज्जाशील अपराजित सिंह और हाथीके समान पराक्रमी द्रोणाचार्यका वध मुझसे नहीं सहा जाता है। (३४-३७)

हे सञ्जय ! जिस द्रोणाचार्यकी और जिसके बल और यशकी कोई कभी निन्दा नहीं कर सकता था, धृष्टद्युम्नने उस द्रोणाचार्यको दूसरे राजाओंके संमुखमें ही किस प्रकार रणभूमिमें मारा ? उनकी रक्षा करनेके निमित्त किन किन पुरुषोंने उनके निकट और किन किन महारथियोंने उनके आगे होकर युद्ध किया था ? किन महारथ वीरोंने कठिन कर्मोंके करनेवाले द्रोणाचार्यके रथके पीछे स्थित होके शत्रुओंके सङ्ग युद्ध किया और किन महात्माओंने उनके रथके दहिने और बायें चक्रकी रक्षा की थी ? (३७-३९)

कौन कौन महारथी वीर युद्ध करने वाले महा तेजस्वी द्रोणाचार्यके आगे चले थे ? उस समयमें कौन कौन वीर योद्धा शत्रुओंके अस्त्रोंसे शरीर-त्याग कर मृत्युके मुखमें पतित हुए ? उनके युद्धमें कौन कौन वीर योद्धा स्वर्ग लोकको गये ? उनकी रक्षा करनेके निमित्त जो क्षत्रिय योद्धा नियुक्त हुए थे, उन मूढ क्षत्रियोंने किसके भयसे उन्हें त्याग कर रणभूमिसे पलायन किया ? अथवा क्या किसीने भी उस समयमें उनकी रक्षा नहीं की थी ? वह तो अत्यन्त विपद्ग्रस्त होकर भी शूरता और वीरतासे

एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥ ४३ ॥
पराक्रमेद्यथा शक्त्या तच्च तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
मुह्यते मे मनस्तात कथा तावन्निवार्यताम् ॥ ४४ ॥
भूयस्तु लब्धसंज्ञस्त्वां परिपृच्छामि सञ्जय ॥ ४५ ॥ [३०२]

इति श्रीमहाभारते॰ द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रशोके नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच—एतत्पृष्ट्वा सूतपुत्रं हृच्छोकेनाऽर्दितो भृशम् ।
जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत्क्षितौ ॥ १ ॥
तं विसंज्ञं निपतितं सिषिचुः परिचारिकाः ।
जलेनाऽत्यर्थशीतेन वीजन्त्यः पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥
पतितं चैनमालोक्य समन्ताद्भरतस्त्रियः ।
परिवव्रुर्महाराजमस्पृशंश्चैव पाणिभिः ॥ ३ ॥
उत्थाप्य चैनं शनकै राजानं पृथिवीतलात् ।
आसनं प्रापयामासुर्बाष्पकण्ठ्यो वराननाः ॥ ४ ॥

युक्त शत्रुओंके भयसे कभी पीठ नहीं दिखाते थे, तब फिर वह महातेजस्वी द्रोणाचार्य शत्रुओंके अस्त्रोंसे किस प्रकार मारे गये ? (४०-४३)

हे सञ्जय ! श्रेष्ठ पुरुष महावीर विपद में पड कर भी शक्तिके अनुसार पराक्रम करते हैं, यह शास्त्रोंकी विधि है; वह भी जिस द्रोणाचार्यमें प्रतिष्ठित थी; हे तात ! अब मेरा मन मुग्ध होरहा है, इस समय सब कथा यहां ही तक रहने दो; मैं फिर सावधान होकर तुमसे पूर्ण रीतिसे प्रश्न करूंगा । ४३-४५ [३०२]

द्रोणपर्वमें नौ अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें दस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! धृतराष्ट्र सूतपुत्र सञ्जयसे ऐसा कहके अपने मनके दुःखसे अत्यन्त ही कातर और पुत्रोंमें विजयकी आशासे निराश होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ उनको मूर्च्छित होके पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर परिचारिका लोग उनके शरीर पर उत्तम और शीतल जल छिडक के सुगन्ध युक्त व्यजनों(पंखों)से वायु करने लगीं ॥ भरतकुलकी स्त्रियां राजा धृतराष्ट्रको गिरा देखकर उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गई और अपने कोमल करों से उन के शरीर को स्पर्श करने लगीं ॥ (१-३)

उन उत्तम अङ्गनाओंका कण्ठ शोक से रुद्ध होगया, उन्होंने धीरे धीरे राजा धृतराष्ट्रको उठाकर आसनपर बैठा दिया॥ उस समयमें राजा धृतराष्ट्र मूर्च्छित

आसनं प्राप्य राजा तु मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
निश्चेष्टोऽतिष्ठत तदा वीज्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥
स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ॥ ६ ॥
धृतराष्ट्र उवाच– यः स उद्यन्निवाऽऽदित्यो ज्योतिषा प्रणुदंस्तमः ।
अजातशत्रुमायान्तं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७ ॥
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यथा क्रुद्धं तरस्विनम् ।
प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा प्रतिद्विरदगामिनम् ॥ ८ ॥
वासितासङ्गमे यद्वदजय्यं प्रतियूथपैः ।
निजघान रणे वीरान्वीरः पुरुषसत्तमः ॥ ९ ॥
यो ह्येको हि महावीर्यो निर्दहेद्घोरचक्षुषा ।
कृत्स्नं दुर्योधनबलं धृतिमान्सत्यसङ्गरः ॥ १० ॥
चक्षुर्हणं जये सक्तमिष्वासधरमच्युतम् ।
दान्तं बहुमतं लोके के शूराः पर्यवारयन् ॥ ११ ॥
के दुष्प्रधर्षं राजानमिष्वासधरमच्युतम् ।

और चेष्टारहित आसनपर स्थित हुए, तब सम्पूर्ण स्त्रियां उनके समीपमें व्यजनोंसे वायु करने लगीं; अनन्तर राजा धृतराष्ट्र धीरे धीरे सावधान होकर कांपते हुए शरीरसे फिर सञ्जयसे पूछने लगे ॥ (४–६)

महाराज धृतराष्ट्र बोले, जैसे अपने तेजसे अन्धकार दूर करके सूर्य उदित होता है, वैसे ही जब अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके सम्मुख उपस्थित हुए; उस समयमें मदचूते हुए क्रुद्ध बलवान् और आसक्त चित्त दो मतवारे हाथी जैसे ऋतुमती हथिनीके सङ्गमके समय आपसमें युद्ध करते हैं,उसी भांति अजेय मतवारे हाथीके समान प्रसन्न चित्त राजा युधिष्ठिरको देखकर किन योद्धाओंने द्रोणाचार्यके पाससे निवारण किया था ? (७–९)

जो पुरुषोंमें श्रेष्ठ धीरज धरनेवाले सत्यवादी युधिष्ठिर अकेले शत्रुपक्षके वीर योद्धाओंको अतिक्रम कर ही सकते हैं, जो महाबाहु युधिष्ठिर अपनी महा भयानक दृष्टिसे देखकर ही दुर्योधनकी सम्पूर्ण सेना भस्म कर सकते हैं; अधिक क्या कहूं, जो युधिष्ठिर अपने दृष्टि पातसे ही सृष्टिका नाश करनेमें समर्थ हैं; उस विजयकी इच्छा करनेवाले, अक्षय धनुर्धारी धर्मात्मा पूजाके योग्य युधिष्ठिरको

समासेदुर्नरव्याघ्रं कौन्तेयं तत्र मामकाः ॥ १२ ॥
तरसैवाऽभिपद्याऽथ यो वै द्रौणमुपाद्रवत् ।
यः करोति महत्कर्म शत्रूणां वै महाबलः ॥ १३ ॥
महाकायो महोत्साहो नागायुतसमो बले ।
तं भीमसेनमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ १४ ॥
यदाऽयाज्जलदप्रख्यो रथः परमवीर्यवान् ।
पर्जन्य इव बीभत्सुस्तुमुलामशनीं सृजन् ॥ १५ ॥
विसृजञ्छरजालानि वर्षाणि मघवानिव ।
अवस्फूर्जन्दिशः सर्वास्तलनेमिस्वनेन च ॥ १६ ॥
चापविद्युत्प्रभो घोरो रथगुल्मबलाहकः ।
सनेमिघोषस्तनितः शरशब्दातिबन्धुरः ॥ १७ ॥
रोषनिर्जितजीमूतो मनोभिप्रायशीघ्रगः ।
मर्मातिगो बाणधरस्तुमुलः शोणितोदकैः ॥ १८ ॥
सम्प्लावयन्दिशः सर्वा मानवैरास्तरन्महीम् ।

किन किन योद्धाओंने युद्धसे निवारण किया था ? मेरी सेनाके किन किन योद्धाओंने उस सत्य पराक्रमी पुरुषसिंह धनुर्द्धारी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके सम्मुख रणभूमिमें गमन किया था ? (१०-११)

जो महाबली, बडे शरीरवाला, अत्यन्त ही उत्साही, दश हजार हाथियोंके समान पराक्रमी भीमसेन शत्रुसेनाके बीच कठिन कार्य करता रहता है; जिसने अत्यन्त वेगके सहित रणभूमिमें आकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया था, उस भीमको आते देखकर कौन कौन शूरवीर योद्धा उसके सम्मुख हुए थे ? (१३-१४)

जिस समय धनुषरूपी बिजलीके प्रकाशसे युक्त, बादलके समान भयङ्कर, अत्यन्त पराक्रमी रथी, मेघवर्ण रथमें बैठे हुए, बादलके समान रथके चलनेके शब्द और बाणोंके शब्दसे युक्त, रोषरूपी वायुसे वेगवान् तथा मनके अभिप्रायके तुल्य शीघ्रगामी, मर्मभेदी बाणोंके ग्रहण करनेवाले तथा महा भयानक मूर्त्तिवाले अर्जुनने इन्द्रके बादलोंके समान अपने धनुषका महा घोर शब्द और वज्रके समान बाणोंकी वर्षा करते हुए धनुषटङ्कार तथा रथके शब्दसे सब दिशाओंको पूर्ण और रुधिररूपी जलसे रणभूमिको पूरित करते तथा मरेहुए वीर पुरुषोंके शरीरसे संग्रामभूमिको परिपूर्ण करते हुए महा भयङ्कर रौद्रमूर्त्तिसे

भीमनिःस्वनितो रौद्रो दुर्योधनपुरोगमान् ॥ १९ ॥
युद्धेऽभ्यधिकविजयो गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः।
गाण्डीवं धारयन्धीमान्कीदृशं वो मनस्तदा ॥ २० ॥
इषुसम्बाधमाकाशं कुर्वन्कपिवरध्वजः।
यदाऽयात्कथमासीत्तु तदा पार्थं समीक्षताम् ॥ २१ ॥
कच्चिद्गाण्डीवशब्देन न प्रणश्यति वै बलम्।
यद्वः स भैरवं कुर्वन्नर्जुनो भृशमन्वयात् ॥ २२ ॥
कच्चिन्नाऽपानुदत्प्राणानिषुभिर्वो धनञ्जयः।
वातो वेगादिवाऽऽविध्यन्मेघाञ्शरगणैर्नृपान् ॥ २३ ॥
को हि गाण्डीवधन्वानं रणे सोढुं नरोऽर्हति।
यमुपश्रुत्य सेनाग्रे जनः सर्वो विदीर्यते ॥ २४ ॥
यत्सेनाः समकम्पन्त यद्वीरानस्पृशद्भयम्।
के तत्र नाऽजहुर्द्रोणं के क्षुद्राः प्राद्रवन्भयात् ॥ २५ ॥
के वा तत्र तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन्।

रणभूमिमें आगमन किया था; और बुद्धिमान् अर्जुनने जिस समय निज धनुष को ग्रहण करके गिद्ध पङ्खसे युक्त, शिला पर घिसे हुए चोखे बाणोंसे दुर्योधनके अनुयायी राजाओंको पीडित किया था ; उस समयमें तुम लोगोंका चित्त कैसा हुआ था ? (१९–२०)

जिस समय कपिध्वजासे युक्त अर्जुन ने अपने बाणोंकी वर्षासे आकाशको पूरित करते हुए युद्धभूमिमें आगमन किया था, उस समयमें उस अर्जुनको देखकर तुम लोगोंकी क्या दशा हुई थी ? अर्जुन जब महा भयङ्कर शब्द करता हुआ तुम लोगोंके निकट आया था, तब गाण्डीव धनुषके अत्यन्त घोर शब्दसे ही तो तुम्हारी सेनाका विनाश नहीं हुआ ? जैसे वायु अपने प्रबल वेगसे बादलोंको तितर-बितर कर देता है, वैसे ही अर्जुनने भी तो अपने बाणोंसे तुम लोगोंका प्राण नष्ट नहीं किया ? (२१–२२)

जिसके नामको सुनते ही सेनाके आगे चलनेवाले शूरवीर पुरुष कांप उठते हैं,उस गाण्डीव धनुष ग्रहण कर-नेवाले अर्जुनके बाणोंकी चोटको कौन पुरुष युद्धमें सह सकता है ? उसी अर्जुन के युद्धसे अवश्य ही मेरी सेनाके पुरुष कम्पित और भयभीत हुए होंगे। ऐसे अवसरमें किन किन वीरोंने द्रोणाचार्यका सङ्ग नहीं छोडा था ? और कौन कौनसे

अमानुषाणां जेतारं युद्धेष्वपि धनञ्जयम् ॥ २६ ॥
न च वेगं सिताश्वस्य विसहिष्यन्ति मामकाः ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषं प्रावृड्जलदनिःस्वनम् ॥ २७ ॥
विष्वक्सेनो यस्य यन्ता यस्य योद्धा धनञ्जयः ।
अशक्यः स रथो जेतुं मन्ये देवासुरैरपि ॥ २८ ॥
सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
मेधावी निपुणो धीमान्युधि सत्यपराक्रमः ॥ २९ ॥
आरावं विपुलं कुर्वन्व्यथयन्सर्वसैनिकान् ।
यदाऽयान्नकुलो द्रोणं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३० ॥
आशीविष इव क्रुद्धः सहदेवो यदाऽभ्ययात् ।
कदनं करिष्यञ्शत्रूणां तेजसा दुर्जयो युधि ॥ ३१ ॥
आर्यव्रतममोघेषुं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
सहदेवं तमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥
यस्तु सौवीरराजस्य प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
आदत्त महिषीं भोजां काम्यां सर्वाङ्गशोभनाम्॥३३॥

क्षुद्र पुरुष उस समय उन्हें छोडके रणभूमिसे भागे थे ? ॥ कौन कौन शूरवीर योद्धा उस समयमें देवताओंके समान पराक्रमी अर्जुनके सङ्ग युद्ध करके मृत्युमुखमें पतित हुए थे ? मेरी सेनाके पुरुष उस श्वेतवाहन अर्जुनके वेग और वर्षाकालके मेघगर्जनके समान गाण्डीवधनुषके शब्दको नहीं सह सकते हैं । कृष्ण जिसके सारथी और अर्जुन जहां पर योद्धा हैं; मैं बोध करता हूं, कि वह रथ देवता और असुरोंसे भी अजेय है ॥ (२४–२८)

जिस समयमें सुकुमार, युवा, शूर, देखने योग्य, तेजस्वी, अस्त्रविद्यामें निपुण, बुद्धिमान्, सत्यपराक्रमी पाण्डुपुत्र नकुलने रणभूमिमें महा घोर शब्द करके अपने बाणोंसे द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया था, उस समय किन किन शूरवीरों ने उसे युद्धसे निवारण किया था? २९-३०

जब क्रुद्ध विषधर सर्पके समान बलवान् सहदेव मेरी सेनाको मर्दन करता हुआ रणभूमिमें उपस्थित हुआ था, तब उस श्रेष्ठ पुरुषोंके व्रतमें स्थित, अमोघ बाणधारी, लज्जाशील, अपराजित सहदेवका किन किन वीरोंने निवारण किया था ? (३१–३२)

जिसने सौवीर राज्यकी महासेनाको भेद करके सर्वाङ्ग-सुन्दरी भोजकन्याको

सत्यं धृतिश्च शौर्यं च ब्रह्मचर्यं च केवलम् ।
सर्वाणि युयुधानेऽस्मिन्नित्यानि पुरुषर्षभे ॥ ३४ ॥
बलिनं सत्यकर्माणमदीनमपराजितम् ।
वासुदेवसमं युद्धे वासुदेवादनन्तरम् ॥ ३५ ॥
धनञ्जयोपदेशेन श्रेष्ठमिष्वस्त्रकर्मणि ।
पार्थेन सममस्त्रेषु कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ३६ ॥
वृष्णीनां प्रवरं वीरं शूरं सर्वधनुष्मताम् ।
रामेण सममस्त्रेषु यशसा विक्रमेण च ॥ ३७ ॥
सत्यं धृतिर्मतिः शौर्यं ब्राह्मं चाऽस्त्रमनुत्तमम् ।
सात्वते तानि सर्वाणि त्रैलोक्यमिव केशवे ॥ ३८ ॥
तमेवं गुणसम्पन्नं दुर्वारमपि दैवतैः ।
समासाद्य महेष्वासं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३९ ॥
पञ्चालेपूत्तमं वीरमुत्तमाभिजनप्रियम् ।
नित्यमुत्तमकर्माणमुत्तमौजसमाहवे ॥ ४० ॥
युक्तं धनञ्जयहिते ममाऽनर्थाय्थमुत्थितम् ।
यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ४१ ॥

ग्रहण किया था, जो पुरुषश्रेष्ठ केवल सत्य, धैर्य, और ब्रह्मचर्य व्रतमें नित्य स्थित रहता है; जो बलवान् सत्य कर्मोंका करनेवाला, निर्भय, अपराजित और युद्धमें श्रीकृष्णके समान है, जिसने कृष्णको पाकर भी अर्जुनके उपदेशसे सब अस्त्र शस्त्रोंमें निपुणता प्राप्त की है; उस शस्त्रशिक्षामें अर्जुनके समान सात्यकिको द्रोणाचार्यकी ओर युद्धके निमित्त आते देखकर किसने निवारण किया था ? (३३-३६)

जो वृष्णिवंशीय श्रेष्ठ, शूर वीर, अस्त्र और पराक्रममें रामके समान है, जैसे-कृष्ण तीनों लोकोंमें पूजित होके निवास करते हैं, उनके समान जिसमें सत्य, धृति, बुद्धि, वीरता और उत्तम ब्रह्मास्त्र स्थित है, उस देवताओंसे भी न जीते जानेके योग्य सब गुणोंसे पूर्ण महाधनुर्धारी सात्यकिको किन किन शूर वीरों ने युद्धमें निवारण किया था ? ३७-३९

पाञ्चाल वीरोंमें श्रेष्ठ, जिसको महाकुलोत्पन्न पुरुष प्रिय हैं, नित्य उत्तम कर्म करनेवाले, युद्धमें उत्तम तेजवाले, अर्जुनके हितमें तत्पर, और मेरे अनर्थमें उद्यत, यम, कुबेर, आदित्य, महेन्द्र और वरुणकी उपमाके योग्य, रणमें प्राण

महारथं समाख्यातं द्रोणायोद्यतमाहवे ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान्के शूराः समवारयन् ॥ ४२ ॥
एकोऽपसृत्य चेदिभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः ।
धृष्टकेतुं समायान्तं द्रोणं कस्तं न्यवारयत् ॥ ४३ ॥
योऽवधीत्केतुमान्वीरो राजपुत्रं दुरासदम् ।
अपरान्तगिरिद्वारे द्रोणात्कस्तं न्यवारयत् ॥ ४४ ॥
स्त्रीपुंसयोर्नरव्याघ्रो यः स वेद गुणागुणान् ।
शिखण्डिनं याज्ञसेनिमम्लानमनसं युधि ॥ ४५ ॥
देवव्रतस्य समरे हेतुं मृत्योर्महात्मनः ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ४६ ॥
यस्मिन्नभ्यधिका वीरे गुणाः सर्वे धनञ्जयात् ।
यस्मिन्नस्त्राणि सत्यं च ब्रह्मचर्यं च सर्वदा ॥ ४७ ॥
वासुदेवसमं वीर्ये धनञ्जयसमं बले ।
तेजसाऽऽदित्यसदृशं बृहस्पतिसमं मतौ ॥ ४८ ॥
अभिमन्युं महात्मानं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।

त्यागने में भी तैयार हुए, प्रख्यात महारथ सात्यकि जब द्रोणाचार्य की ओर दौडे तब कौन शूरलोग उन्हें निवारण कर सके। (४०-४२)

जिसने अपने सब बन्धु बान्धवोंको त्यागके अकेले ही पाण्डवोंका आसरा ग्रहण किया है, उस धृष्टकेतुको द्रोणाचार्यकी ओर दौडते देख किसने उसको युद्धभूमिमें रोका था ? हे सञ्जय ! अपरान्त पर्वतके समीप दुर्जय राजपुत्रका भी जिसने वध किया था, उस केतुमान्को द्रोणाचार्य की ओर आते देख किसने उसको द्रोणाचार्यसे निवृत्त किया? जो नरश्रेष्ठ शिखण्डी स्त्रीपुरुषोंके गुणावगुणोंको जानते हैं, जिसके चित्त में युद्धके समय कभी म्लानता नहीं आती, जो महात्मा देवव्रती भीष्मके मृत्युका कारण हुआ है, ऐसे याज्ञसेनि शिखण्डी को द्रोणकी ओर दौडते देख कर किस वीरने उसको निवृत्त किया ? (४३-४६)

जिसमें सम्पूर्ण अस्त्रविद्या अर्जुनसेभी अधिक है, और जो सदासर्वदा सत्यव्रत और ब्रह्मचर्यमें स्थित रहता है; जो पराक्रममें वासुदेव, बलमें अर्जुन, तेजमें सूर्य और बुद्धिमें बृहस्पतिके समान हैं, उस मुंह पसरे मृत्युके समान अभिमन्युको द्रोणाचार्यकी ओर दौडते देख किन किन शूरवीरों

द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं के शूराः समवारयन्॥ ४९ ॥
तरुणस्तरुणप्रज्ञः सौभद्रः परवीरहा।
यदाऽभ्यधावद्द्रोणं तदाऽऽसीद्वो मनः कथम्॥ ५० ॥
द्रौपदेया नरव्याघ्राः समुद्रमिव सिन्धवः।
यद् द्रोणमाद्रवन्संख्ये के शूरास्तान्न्यवारयन्॥ ५१ ॥
एते द्वादश वर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः।
अस्त्रार्थमवसन्भीष्मे बिभ्रतो व्रतमुत्तमम्॥ ५२ ॥
क्षत्रञ्जयः क्षत्रदेवः क्षत्रवर्मा च मानदः।
धृष्टद्युम्नात्मजा वीराः के तान्द्रोणादवारयन्॥ ५३ ॥
शताद्विशिष्टं यं युद्धे समजानन्त वृष्णयः।
चेकितानं महेष्वासं कस्तं द्रोणादवारयत्॥ ५४ ॥
वार्धक्षेमिः कलिङ्गानां यः कन्यामाहरद्युधि।
अनाधृष्टिरदीनात्मा कस्तं द्रोणादवारयत्॥ ५५ ॥
भ्रातरः पञ्च कैकेया धार्मिकाः सत्यविक्रमाः।
इन्द्रगोपकसङ्काशा रक्तवर्मायुधध्वजाः॥ ५६ ॥

ने युद्धभूमिमें रोका था? युवा अवस्था तथा तरुण बुद्धिवान् अभिमन्युने जिस समय द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया था, उस समयमें तुम लोगोंकी कैसी दशा हुई थी? (४५-५०)

जैसे बड़ी बड़ी नदियां समुद्रकी ओर प्रबल वेगसे चलती हैं, वैसे ही जब द्रौपदीके पांचों पुत्र द्रोणाचार्यकी ओर बढे थे उस समयमें किन किन शूरवीरोंने उन्हें रणभूमिमें रोका था? जिन बालकोंने बालक्रीडा छोडके बारह वर्ष तक भीष्मके निकट रहकर अस्त्रशिक्षा ग्रहण की थी, उन क्षत्रञ्जय, क्षत्रदेव, क्षत्रवर्म, और मानद, इन धृष्टद्युम्नके चारों शूर-वीर पुत्रोंको द्रोणाचार्यके सम्मुख आते देख किन किन शूरवीरोंने निवारण किया था॥ (५१—५३)

यदुवंशी लोग जिसको सौ योद्धाओंसे भी अधिक बलवान् समझते हैं, उस महाधनुर्द्धारी चेकितानको द्रोणाचार्यके सम्मुखसे किसने निवारण किया था? जिसने युद्धमें कलिङ्ग राजके निकट से कन्या हरण की थी, उस वृद्धक्षेमपुत्र बलवान् अनाधृष्टिने जब द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया था, तब उसको किसने युद्धसे रोका था? धर्मात्मा, सत्य पराक्रमी रक्तवर्णके अस्त्र-शस्त्र और लाल रङ्गकी ध्वजाओंसे

मातृष्वसुः सुता वीराः पाण्डवानां जयार्थिनः ।
तान्द्रोणं हन्तुमायातान्के वीराः पर्यवारयन् ॥ ५७ ॥
यं योधयन्तो राजानो नाऽजयन्वारणावते ।
षण्मासानपि संरब्धा जिघांसन्तो युधां पतिम् ॥५८॥
धनुष्मतां वरं शूरं सत्यसन्धं महाबलम् ।
द्रोणात्कस्तं नरव्याघ्रं युयुत्सुं पर्यवारयत् ॥ ५९ ॥
यः पुत्रं काशिराजस्य वाराणस्यां महारथम् ।
समरे स्त्रीषु गृध्यन्तं भल्लेनाऽपाहरद्रथात् ॥ ६० ॥
धृष्टद्युम्नं महेष्वासं पार्थानां मन्त्रधारिणम् ।
युक्तं दुर्योधनानर्थे सृष्टं द्रोणवधाय च ॥ ६१ ॥
निर्दहन्तं रणे योधान्दारयन्तं च सर्वतः ।
द्रोणाभिमुखमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ६२ ॥
उत्सङ्ग इव संवृद्धं द्रुपदस्याऽस्त्रवित्तमम् ।
शैखण्डिनं क्षत्रधर्माणं के च द्रोणादवारयन् ॥ ६३ ॥
य इमां पृथिवीं कृत्स्नां चर्मवत्समवेष्टयत् ।
महता रथघोषेण मुख्यारिघ्नो महारथः ॥ ६४ ॥

युक्त पाण्डवोंकी मातृ-स्वसाके पुत्र केकयराज पांचों भाई जब द्रोणाचार्यके निमित्त उनकी ओर दौडे थे, तब उन्हें उस समयमें किसने निवारण किया था? (५४-५७)

सब राजालोग वारणावत नगरमें क्रुद्ध और विजयकी इच्छासे छः महीने युद्ध करके भी जिस यूथपतिको पराजित नहीं कर सके, उन धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ, सत्यवादी महाबलवान् युयुत्सुको द्रोणाचार्यके संमुख आते देखकर किन किन योद्धाओंने निवारण किया था, ? जिन्होंने कन्या हरण करनेके समयमें वाराणसीमें काशिराजपुत्रको भल्लसे निपातित किया था, और जो द्रोणाचार्यके वध करनेके निमित्त उत्पन्न हुए हैं, पाण्डवोंके मन्त्री और दुर्योधनके अनर्थके मूल तथा कुरुसेनाको युद्धमें तितर बितर करदेनेवाले महारथ धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यके संमुख आते देख किन किन शूरवीरोंने रोका था? ५८-६२

और किन योद्धाओंने द्रुपदके उत्संगमें बढे हुए अस्त्र विद्यामें प्रवीण, शिखण्डीके पुत्र क्षत्रधर्माको द्रोणाचार्यके संमुख आते देखके निवारण किया? जिन्होंने अपने रथके बडे घोषसे इस

दशाश्वमेधानाजह्रे सत्रपानान्नदक्षिणान् ।
निरर्गलान्सर्वमेधान्पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥ ६५ ॥
गङ्गास्रोतसि यावत्यः सिकता अप्यशेषतः ।
तावतीर्गा ददौ वीर उशीनरसुतोऽध्वरे ॥ ६६ ॥
न पूर्वे नाऽपरे चक्रुरिदं केचन मानवाः ।
इतीदं चुक्रुशुर्देवाः कृते कर्मणि दुष्करे ॥ ६७ ॥
पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं संस्थास्नुचारिषु ।
जातं चापि जनिष्यन्तं द्वितीयं चापि साम्प्रतम् ॥६८॥
अन्यमौशीनराच्छैब्याद्धुरो वोढारमित्युत ।
गतिं यस्य न यास्यन्ति मानुषा लोकवासिनः ॥ ६९ ॥
तस्य नप्तारमायान्तं शैब्यं कः समवारयत् ।
द्रोणायाऽभिमुखं यत्तं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥७०॥
विराटस्य रथानीकं मत्स्यस्याऽमित्रघातिनः ।
प्रेप्सन्तं समरे द्रोणं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ७१ ॥
सद्यो वृकोदरात्जातो महाबलपराक्रमः ।

सम्पूर्ण पृथ्वीको चमडेके समान लपेट दिया था, जिन्होंने प्रजाओंको अपने पुत्रके समान पालन करते हुए अच्छे अन्न पान और पूर्ण दक्षिणासे युक्त दश अश्वमेधोंको निर्विघ्न समाप्त किया था, जिन्होंने गङ्गा के बालूके कणोंकी गिनती के बराबर गौओंका दान किया था; जिनके कठिन कर्मको देखकर देवताओंने कहा था, कि " पहिले किसी मनुष्यने ऐसा कर्म नहीं किया था और न भविष्यहीमें कोई कर सकेगा ! स्थावर जंगम तथा तीनों लोकके बीच इस उशीनरके पुत्र शिवि राजाके समान यज्ञ कर्मको पूर्ण करनेवाला दूसरा कोई भी कभी उत्पन्न नहीं हुआ था, और न आगे उत्पन्न होगा " मर्त्यलोक वासी मनुष्य जिसके समान श्रेष्ठ गति नहीं प्राप्तकर सकते, उस उशीनरके वंशमें उत्पन्न हुए शत्रु-नाशन महारथ शैब्यको यमराजके समान द्रोणाचार्यकी ओर आते देखकर किन किन शूरवीरोंने निवारण किया था ? (६३—७०)

जब मत्स्यराज विराटकी रथसेना द्रोणाचार्यकी ओर दौडी थी, तब किन वीरोंने उस सेनाको युद्धसे निवारण किया था ? हे वीर ! जिससे मुझे बहुत भय उत्पन्न होता है, उस भीमसेनके पुत्र महाबली, पराक्रमी,

मायावी राक्षसो वीरो यस्मान्मम महद्भयम् ॥ ७२ ॥
पार्थानां जयकामं तं पुत्राणां मम कण्टकम्।
घटोत्कचं महात्मानं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७३ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो येषामर्थाय सञ्जय।
त्यक्तारः संयुगे प्राणान्कि तेषामजितं युधि ॥ ७४ ॥
येषां च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः।
हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः ॥ ७५ ॥
लोकानां गुरुरत्यर्थं लोकनाथः सनातनः।
नारायणो रणे नाथो दिव्यो दिव्यात्मकः प्रभुः ॥७६॥
यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः।
तान्यहं कीर्त्तयिष्यामि भक्त्या स्थैर्यार्थमात्मनः ॥७७॥ [३७९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि
द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य सञ्जय।
कृतवान्यानि गोविन्दो यथा नाऽन्यः पुमान्कचित् ॥१॥

मायावी, पाण्डवोंकी विजय चाहनेवाले और मेरे पुत्रोंको कण्टकरूपी खटकनेवाले राक्षसराज बडे शरीरवाले घटोत्कचको द्रोणाचार्यके संमुख आते देख किन किन योद्धाओंने निवारण किया था? (७१-७३)

हे सञ्जय! ये सब और इनसे अतिरिक्त और भी अनेक वीर योद्धा जिसके निमित्त प्राण पर्यन्त त्यागनेमें उद्यत होरहे हैं, उनसे न जीतने योग्य कौन पुरुष है? पूर्णरीतिसे सब लोकोंके स्वामी सनातन पुरुष दिव्य भावसे युक्त पुरुषसिंह शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले कृष्ण रणभूमिमें जिन पाण्डवोंकी रक्षा कर रहे हैं; जिनके हितकी कृष्ण अभिलाषा करते हैं तथा युद्धमें सहायता कर रहे हैं; उन लोगोंके पराजयकी सम्भावना कैसे हो सकती है? जिनके सम्पूर्ण दिव्य-कर्मोंको मनीषी पुरुष गाया करते हैं; इस समयमें मैं अपनी आत्म स्थिरताके निमित्त उनके उन्ही सब कर्मोंका भक्तिपूर्वक गान करूंगा। (७४—७८) [३७९]

द्रोणपर्वमें दस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें ग्यारह अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! कृष्णने जिन कर्मोंको किया है, वे सब कर्म दूसरे पुरुषसे नहीं किये जा सकते; मैं

संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना ।
विख्यापितं बलं बाह्वोस्त्रिषु लोकेषु सञ्जय ॥ २ ॥
उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे ।
जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम् ॥ ३ ॥
दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम् ।
वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह ॥ ४ ॥
प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम् ।
मुरं चाऽन्तकसङ्काशमवधीत्पुष्करेक्षणः ॥ ५ ॥
तथा कंसो महातेजा जरासन्धेन पालितः ।
विक्रमेणैव कृष्णेन सगणः पातितो रणे ॥ ६ ॥
सुनामा रणविक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः ।
भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता कंसस्य वीर्यवान् ॥ ७ ॥
बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनाऽमित्रघातिना ।
तरस्वी समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट् ॥ ८ ॥
दुर्वासा नाम विप्रर्षिस्तथा परमकोपनः ।
आराधितः सदारेण स चाऽस्मै प्रददौ वरान् ॥ ९ ॥

उनके किये हुए कर्मोंका वर्णन करता हूं, तुम चित्त लगाके सुनो ॥ हे सञ्जय ! गोकुलमें जिस समय महात्मा कृष्ण बढे थे, उसी समयमें उनका बाहुबल तीनों लोकमें विख्यात हो गया था ॥ उस समयमें कृष्णने यमुनाके तटपर वनमें रहनेवाले उच्चैःश्रवा घोडेके समान बलवान् अश्वराज और गौओंके उपस्थित मृत्युस्वरूप वृषभासुर नाम महा घोर दानवको अपने बाहुबलसे मारा ॥ (१-४)

कमलनयन कृष्णने ही महा घोर प्रलम्ब असुरका वध किया था, उन्होंने ही नरकासुर, जम्भासुर और अन्तकके समान पराक्रमी मुर नामक राक्षस का संहार किया था; और जरासन्धसे रक्षित महा तेजस्वी कंसको अनुयायियोंके सहित मारके यमलोकमें भेज दिया ॥ शत्रुओंके नाश करनेवाले कृष्णने बलदेवकी सहायतासे भोजराज कंसके मझले भाई तपस्वी, बलवान्, युद्धमें पराक्रमी अक्षौहिणी-पति शूरसेन राज सुनामका सम्पूर्ण सेनाके सहित वध किया था ॥ (५-८)

महा क्रोधी दुर्वासा ऋषिने स्त्रियोंसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रसे अत्यन्त ही पूजित होकर उन्हें नाना भांति वर प्रदान

तथा गान्धारराजस्य सुतां वीरः स्वयंवरे ।
निर्जित्य पृथिवीपालानावहत्पुष्करेक्षणः ॥ १० ॥
अमृष्यमाणा राजानो यस्य जात्या हया इव ।
रथे वैवाहिके युक्ताः प्रतोदेन कृतव्रणाः ॥ ११ ॥
जरासन्धं महाबाहुमुपायेन जनार्दनः ।
परेण घातयामास समग्राक्षौहिणीपतिम् ॥ १२ ॥
चेदिराजं च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली ।
अर्घे विवदमानं च जघान पशुवत्तदा ॥ १३ ॥
सौभं दैत्यपुरं खस्थं शाल्वगुप्तं दुरासदम् ।
समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास माधवः ॥ १४ ॥
अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गांश्च मागधान्काशिकोसलान् ।
वात्स्यगार्ग्यकरूषांश्च पौण्ड्रांश्चाऽप्यजयद्रणे ॥ १५ ॥
आवन्त्यान्दाक्षिणात्यांश्च पार्वतीयान्दशेरकान् ।
काश्मीरकानौरसिकान्पिशाचांश्च समुद्गलान् ॥ १६ ॥
काम्बोजान्वाटधानांश्च चोलान्पाण्ड्यांश्च सञ्जय ।
त्रिगर्त्तान्मालवांश्चैव दरदांश्च सुदुर्जयान् ॥ १७ ॥

किया ॥ कमलनेत्रवाले महावीर कृष्ण स्वयंवरके बीच सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके गान्धारराजकी कन्याके सङ्ग विवाह किया था ॥ उस समयमें जातिवान् घोडेके समान श्रीकृष्णके कर्म को न सहनेवाले कितने ही पराक्रमी राजा कृष्णके प्रतोदकी ताडनासे क्षत विक्षत शरीर अत्यन्त ही पीडित हुए थे ॥ जनार्दन कृष्ण सम्पूर्ण अक्षौहिणी-पति राजा जरासन्धको उपाय रचके दूसरेके हाथसे मरवा डाला ॥ ९–१२

राजाओंमें प्रसिद्ध शिशुपालने जब पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें अग्र पूजाके समय कृष्णकी बहुत ही निन्दा की, तब उन्होंने उसी समय उसे पशु की भाँति मार डाला ॥ यदुकुल शिरोमणि कृष्णने समुद्रके किनारेसे आक्रमण न होने योग्य शाल्व दैत्यसे रक्षित सौभ नामक पुरीको अपने अस्त्रोंके बलसे नष्ट करके पृथ्वीपर गिरा दिया था ॥ १३-१४

श्रीकृष्णचन्द्रने युद्धमें अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मागध, काशी, कोसल, वात्स्य, गार्ग्य, करूष, पौण्ड्र, आवन्त्य, दाक्षि-णात्य, पार्वतीय, दशेरक, काश्मीरक, औरसिक, पिशाच, मुद्गल, काम्बोज, वाटधान, चोल, पाण्ड्य, त्रिगर्त्त, मालव

नानादिग्भ्यश्च सम्प्राप्तान्खशांश्चैव शकांस्तथा ।
जितवान्पुण्डरीकाक्षो यवनं च सहानुगम् ॥ १८ ॥
प्रविश्य मकरावासं यादोगणनिषेवितम् ।
जिगाय वरुणं संख्ये सलिलान्तर्गतं पुरा ॥ १९ ॥
युधि पञ्चजनं हत्वा दैत्यं पातालवासिनम् ।
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो दिव्यं शङ्खमवाप्तवान् ॥ २० ॥
खाण्डवे पार्थसहितस्तोषयित्वा हुताशनम् ।
आग्नेयमस्त्रं दुर्धर्षं चक्रं लेभे महाबलः ॥ २१ ॥
वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वाऽमरावतीम् ।
महेन्द्रभवनाद्वीरः पारिजातमुपानयत् ॥ २२ ॥
तच्च मर्षितवाञ्छक्रो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
राज्ञां चाप्यजितं कञ्चित्कृष्णेनेह न शुश्रुम ॥ २३ ॥
यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम सञ्जय ।
कृतवान्पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहाऽर्हति ॥ २४ ॥
यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम् ।

और महा पराक्रमी दरददेशीय वीर और बहुतसे दिशाओंसे आये हुए वीर योद्धा तथा खस और शकदेशीय राजाओं और सेनाके सहित यवनराजको पराजित किया था। (१५—१८)

कृष्णने मकर, आदि जलजन्तुओंसे युक्त अपार समुद्रमें प्रवेश करके वरुणको जीता था॥ कृष्णने युद्धमें पाताल तलपर वास करनेवाले पाञ्चजन्य नाम असुरका वध करके दिव्य पाञ्चजन्य शंखको प्राप्त किया था॥ महाबली कृष्णने अर्जुनके संग खाण्डव वनको जलाके जब अग्निको तृप्त किया था उस ही समयमें अत्यन्त तेजस्वी अग्निके दिये हुए चक्रास्त्रको पाया था॥ १९—२१

जब पराक्रमी कृष्ण गरुडपर चढके इन्द्र पुरीमें गये थे, उस समयमें वह इन्द्रको भी भयभीत करके वहांसे कल्पवृक्ष पारिजात हर लाए थे; कृष्णका पराक्रम देख इन्द्रको भी कल्पवृक्षका हरण सहना पडा। श्रीकृष्णसे कोई राजा जो अजेय है, ऐसा मैंने नहीं सुना है॥ हे सञ्जय! मेरे संमुख ही सभामें पुण्डरीकाक्ष कृष्णने जो आश्चर्यमय कर्म किया था, दूसरा कौन पुरुष वैसा कर्म कर सकता है? (२२-२४)

मैंने भक्तिपूर्वक उनका शरणापन्न होकर ईश्वर कृष्ण का दर्शन किया था,

तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चाऽऽगमम् ॥ २५ ॥
नाऽन्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः ।
कर्मणां शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य सञ्जय ॥ २६ ॥
तथा गदश्च साम्बश्च प्रद्युम्नोऽथ विदूरथः ।
अगावहोऽनिरुद्धश्च चारुदेष्णः ससारणः ॥ २७ ॥
उल्मुको निशठश्चैव झिल्ली बभ्रुश्च वीर्यवान् ।
पृथुश्च विपृथुश्चैव शमीकोऽथाऽरिमेजयः ॥ २८ ॥
एतेऽन्ये बलवन्तश्च वृष्णिवीराः प्रहारिणः ।
कथञ्चित्पाण्डवानीकं श्रयेयुः समरे स्थिताः ॥ २९ ॥
आहूता वृष्णिवीरेण केशवेन महात्मना ।
ततः संशयितं सर्वं भवेदिति मतिर्मम ॥ ३० ॥
नागायुतबलो वीरः कैलासशिखरोपमः ।
वनमाली हली रामस्तत्र यत्र जनार्दनः ॥ ३१ ॥
यमाहुः सर्वपितरं वासुदेवं द्विजातयः ।
अपि वा ह्येष पाण्डूनां योत्स्यतेऽर्थाय सञ्जय ॥ ३२ ॥
स यदा तात सन्नह्येत्पाण्डवार्थाय सञ्जय ।
न तदा प्रतिसंयोद्धा भविता तत्र कश्चन ॥ ३३ ॥

शास्त्रमें कहे हुए सम्पूर्ण कर्म मुझे प्रत्यक्ष रूपसे भली भांति विदित होगये हैं ॥ हे सञ्जय! महा बुद्धिमान् पराक्रमी हृषीकेश कृष्णके कर्मोंका अन्त नहीं मालूम हो सकता ॥ (२५-२६)

गद, साम्ब, प्रद्युम्न, विदूरथ, अगावह, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सारण, उल्मुक, निशठ, पराक्रमी झिल्ली, बभ्रु, पृथु, विपृथु, समीक, अरिमेजय इत्यादि बलवान् प्रहार करनेमें निपुण यदुवंशीय शूरवीर योद्धा लोग यदि महात्मा कृष्ण की आज्ञासे पाण्डवोंकी सेनामें मिल कर कौरवोंके सङ्ग युद्ध करें तो मेरे विचारमें सम्पूर्ण कौरवोंको ही संशय होसकता है। (२७—३०)

जिस ओर जनार्दन कृष्ण है, उसी ओर अयुत हाथियोंके समान बलवान् हलधारी बलदेवको भी समझना चाहिये॥ हे सञ्जय! द्विज लोग उसही कृष्णको सम्पूर्ण जगत्का पिता कहके वर्णन करते हैं। हे तात! यदि कृष्ण पाण्डवोंके निमित्त स्वयं वर्म धारण करके कौरवोंसे युद्ध करें तो रणभूमिमें कोई भी उनके समान दूसरा वीर योद्धा मेरी सेनामें

यदि स्म कुरवः सर्वे जयेयुर्नाम पाण्डवान् ।
वार्ष्णेयोऽर्थाय तेषां वै गृह्णीयाच्छस्त्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥
ततः सर्वान्नरव्याघ्रो हत्वा नरपतीन्रणे ।
कौरवांश्च महाबाहुः कुन्त्यै दद्यात्स मेदिनीम् ॥ ३५ ॥
यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ।
रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद्रथः ॥ ३६ ॥
न केनचिदुपायेन कुरूणां दृश्यते जयः ।
तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यथा युद्धमवर्त्तत ॥ ३७ ॥
अर्जुनः केशवस्याऽऽत्मा कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः ।
अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्त्तिश्च शाश्वती ॥ ३८ ॥
सर्वेष्वपि च लोकेषु बीभत्सुरपराजितः ।
प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः केशवे गुणाः ॥ ३९ ॥
मोहाद् दुर्योधनः कृष्णं यो न वेत्तीह केशवम् ।
मोहितो दैवयोगेन मृत्युपाशपुरस्कृतः ॥ ४० ॥
न वेद कृष्णं दाशार्हमर्जुनं चैव पाण्डवम् ।
पूर्वदेवौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ॥ ४१ ॥

नहीं दीखता है ॥ (३१-३३)

यदि मान ले, कि सम्पूर्ण कौरव मिल के किसी भांतिसे पाण्डवोंको जीत लेंगे; तो ऐसा होने पर भी यदुकुल शिरोमणि कृष्ण पाण्डवोंके निमित्त शस्त्र ग्रहण कर सम्पूर्ण अनुयायी राजाओंके सहित कौरवोंका वध करके कुन्तीको पृथ्वी प्रदान कर सकते हैं॥ जिसके कृष्ण सारथी और अर्जुन योद्धा हैं, उस रथके समान दूसरा कौन रथ हो सकता है ? कौन वीर अर्जुनके समान रथ पर चढके उनसे द्वैरथ युद्ध कर सकता है ? (३४-३६)

अस्तु, मैं किसी उपायसे भी कौरवों-की जयकी संभावना नहीं समझता हूं। जो हो अब जिस प्रकारसे युद्ध हुआ था, वह सब वृत्तान्त तुम मुझसे कहो॥ अर्जुन कृष्ण ही की आत्मा और कृष्ण भी उस अर्जुनकी आत्मा हैं; अर्जुनमें सदा ही विजय और कृष्णमें सनातन कीर्ति विद्यमान है ॥ अर्जुन सम्पूर्ण लोकोंसे अपराजित है और कृष्णके सम्पूर्ण गुण ही प्रधान हैं; तथा सम्पूर्ण गुण सदासे अपरिमित रूपसे कृष्णमें हैं। (३५-३९)

मूर्ख दुर्योधन अभाग्यसे ही दैवके वशमें होकर मृत्युके पाशमें बंधा हुआ है, इसीसे वह कृष्ण और अर्जुनको नहीं

एकात्मानौ द्विधा भूतौ दृश्येते मानवैर्भुवि ।
मनसाऽपि हि दुर्धर्षौ सेनामेतां यशस्विनौ ॥ ४२ ॥
नाशयेतामिहेच्छन्तौ मानुषत्वाच्च नेच्छतः ।
युगस्येव विपर्यासो लोकानामिव मोहनम् ॥ ४३ ॥
भीष्मस्य च वधस्तात द्रोणस्य च महात्मनः ।
नह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च ॥ ४४ ॥
न क्रियाभिर्न चाऽस्त्रेण मृत्योः कश्चिन्निवार्यते ।
लोकसम्भावितौ वीरौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ॥ ४५ ॥
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा किं नु जीवामि सञ्जय ।
यां तां श्रियमसूयामः पुरा दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ ४६ ॥
अद्य तामनुजानीमो भीष्मद्रोणवधेन हृ ।
मत्कृते चाप्यनुप्राप्तः कुरूणामेष संक्षयः ॥ ४७ ॥
पक्वानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्युत ।

पहिचान सकता है ॥ दुर्योधन दैवहीकी प्रेरणासे दाशार्ह कृष्ण और पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको नहीं जान सकता है; ये दोनों ही प्राचीन ऋषि महात्मा नर और नारायण हैं ॥ यदि ये दोनों एक ही आत्मा हैं, तथापि मर्त्य लोकवासी मनुष्य लोग इनको दो रूपसे देखते हैं । यही दोनों महा पराक्रमी यशस्वी पुरुष मन ही मन इच्छा मात्रसे ही इस सम्पूर्ण सेनाका नाश कर सकते हैं, तब मनुष्य शरीर धारण करके ही ऐसी इच्छा नहीं करते हैं ॥ (४०—४३)

महात्मा भीष्म और द्रोणाचार्यका वध युग बदलनेकी भांति सब लोगोंको मोहित कर रहा है, इससे कोई पुरुष भी ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन, नित्य-क्रिया वा अस्त्रविद्यासे मृत्युसे नहीं निस्तार पा सकता है । हे सञ्जय ! लोकपूजित वीर सब शस्त्रोंसे शिक्षित युद्धमें महापराक्रमी महावीर भीष्म और द्रोणाचार्यका वध सुनकर भी मैं जीवित हूं । (४३-४६)

पहिले युधिष्ठिरकी राजश्रीको देखकर जो हम लोगोंने उसकी निन्दा की थी, तथा उनकी राज्यश्रीका हरण किया था, इस समय भीष्म और द्रोणाचार्यका वध सुनके वह श्री उनकी अनुगता हो रही है, अर्थात् हम लोगोंसे अप्राप्त होरही है । यह कौरवोंका विनाश मेरेही निमित्त होरहा है ॥ हे सूत ! कालके प्रभावसे पके हुए फलके समान जीवोंके वधके निमित्त तृण भी वज्रके समान होजाता है । आज जिसके कोपमें पडके

अनन्तमिदमैश्वर्यं लोके प्राप्तो युधिष्ठिरः ॥ ४८ ॥
यस्य कोपान्महात्मानौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।
प्राप्तः प्रकृतितो धर्मो न धर्मो मामकान्प्रति ॥ ४९ ॥
क्रूरः सर्वविनाशाय कालोऽसौ नाऽतिवर्त्तते ।
अन्यथा चिन्तिता ह्यर्था नरैस्तात मनस्विभिः ।
अन्यथैव प्रपद्यन्ते दैवादिति मतिर्मम ॥ ५० ॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थे सम्प्राप्ते कृच्छ्र उत्तमे ।
अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथाभूतं प्रचक्ष्व मे ॥ ५१ ॥ [४३०]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

सञ्जय उवाच— हन्त ते कथयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
यथा स न्यपतद् द्रोणः सूदितः पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥
सेनापतित्वं सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
यत्कौरवाणामृषभादापगेयादनन्तरम् ।

भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये, उस महा धनुर्द्धर राजा युधिष्ठिरने लोकके बीच इस अनन्त ऐश्वर्यको प्राप्त किया। प्रकृतिसे ही धर्म उस युधिष्ठिरको आश्रय कर रहा है, और हमारी ओर अधर्मकी बढती होरही है; इससे यह महा क्रूर समय मेरे सर्वनाशके निमित्त उपस्थित हुआ है। (४६–५०)

हे सूत! मनस्वी बुद्धिमान् पुरुष किसी विषयको और भांतिसे विचारते हैं, परन्तु वह दैवकी इच्छासे दूसरी भांतिका होजाता है॥ इससे यह न रुकनेवाला, पुरुषार्थसे निवारण न होने योग्य, महाघोर विपदका मूल जो युद्ध व्यापार उपस्थित हुआ है, उस विषयमें जितनी घटना हुई हैं, वह तुम मेरे समीपमें वर्णन करो॥ (५०-५१) [४३०]

द्रोणपर्वमें ग्यारह अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें बारह अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! द्रोणाचार्य जिस प्रकारसे पाण्डव और सृञ्जयोंके बीचमें पराक्रम प्रकाशित करके मारे गये, वह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है; उस सम्पूर्ण समाचारको मैं तुम्हारे समीपमें वर्णन करता हूं, तुम सुनो। (१)

महाराज! भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यने सेनापतिका पद ग्रहण करके तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे कहा॥ हे कुरुराज दुर्योधन! भीष्मके मारे जाने पर तुमने

सैनापत्येन यद्राजन्मामद्य कृतवानसि ॥ ३ ॥
सदृशं कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि भारत ।
करोमि कामं कं तेऽद्य प्रवृणीष्व यमिच्छसि ॥ ४ ॥
ततो दुर्योधनो राजा कर्णदुःशासनादिभिः ।
सम्मन्त्र्योवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम् ॥ ५ ॥
ददासि चेद्वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम् ।
गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीपमिहाऽऽनय ॥ ६ ॥
ततः कुरूणामाचार्यः श्रुत्वा पुत्रस्य ते वचः ।
सेनां प्रहर्षयन्सर्वामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
धन्यः कुन्तीसुतो राजन्यस्य ग्रहणमिच्छसि ।
न वधार्थं सुदुर्धर्ष वरमद्य प्रयाचसे ॥ ८ ॥
किमर्थं च नरव्याघ्र न वधं तस्य कांक्षसे ।
नाशंससि क्रियामेतां मत्तो दुर्योधन ध्रुवम् ॥ ९ ॥
आहोस्विद्धर्मराजस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते ।
यदीच्छसि त्वं जीवन्तं कुलं रक्षसि चाऽऽत्मनः ॥१०॥

जो मुझे सेनापति बना कर मेरा सम्मान किया है ॥ उसका फल तुम ग्रहण करो, मैं तुम्हारी कौनसी अभिलाष पूर्ण करूं ? जो तुम्हारी अभिलाषा हो, वह तुम इच्छापूर्वक मुझसे कहो ॥ (२-४)

अनन्तर कर्ण दुःशासन आदि वीरोंकी संमति लेकर राजा दुर्योधन उन विजयी श्रेष्ठ अत्यन्त पराक्रमी द्रोणाचार्यसे बोले ॥ हे आचार्य ! यदि तुम मुझे वर दिया चाहते हो, तो तुम रथियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरको जीते जी पकडके मेरे निकटमें लाकर उपस्थित करो ॥ ५-६

अनन्तर कौरवोंके गुरु द्रोणाचार्य तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी बात सुनकर सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंको हर्षित करते हुए यह वचन बोले,—कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर धन्य हैं, क्योंकि तुम उनके वधकी इच्छा न करके जीते ही ग्रहण करनेकी अभिलाष करते हो ॥ हे पुरुषसिंह दुर्योधन ! तुम किस हेतुसे उसके वध करनेकी इच्छा नहीं करते हो ? तुमने जो मेरे समीपमें उसके वधके निमित्त अभिलाष नहीं किया, उससे मुझे निश्चय यही होता है, कि धर्मराज युधिष्ठिरका शत्रु कोई भी नहीं है । तुमने जो उनके जीवनकी इच्छा की है, इससे मुझे बोध होता है, कि तुम अपने कुलकी रक्षा किया चाहते ? (७-१०)

अथवा भरतश्रेष्ठ निर्जित्य युधि पाण्डवान् ।
राज्यं सम्प्रति दत्वा च सौभ्रात्रं कर्त्तुमिच्छसि॥ ११ ॥
धन्यः कुन्तीसुतो राजा सुजातं चाऽस्य धीमतः ।
अजातशत्रुता सत्या तस्य यत्स्निह्यते भवान् ॥ १२ ॥
द्रोणेन चैवमुक्तस्य तव पुत्रस्य भारत ।
सहसा निःसृतो भावो योऽस्य नित्यं हृदि स्थितः॥१३॥
नाऽऽकारो गूहितुं शक्यो बृहस्पतिसमैरपि ।
तस्मात्तव सुतो राजन्प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥
वधे कुन्तिसुतस्याऽऽजौ नाऽऽचार्य विजयो मम ।
हते युधिष्ठिरे पार्थो हन्युः सर्वान्हि नो ध्रुवम् ॥ १५ ॥
न च शक्या रणे सर्वे निहन्तुममरैरपि ।
य एव तेषां शेषः स्यात्स एवाऽस्मान्न शेषयेत् ॥ १६ ॥
सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते ।
पुनर्यास्यन्त्यरण्याय पाण्डवास्तमनुव्रताः ॥ १७ ॥

हे भारत ! अथवा तुम इस समय युद्धमें पाण्डवोंको जय करके अन्तमें युधिष्ठिरको राज्य देकर उनके सङ्ग सौभ्रातृ भावके विधानकी इच्छा करते हो ? ॥ इससे बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर धन्य है, और शुभ मुहूर्त्तोंमें उनका जन्म हुआ है। जब तुम भी उनके ऊपर प्रीति करते हो, तो वह यथार्थमें अजातशत्रु ही हैं। (११—१२)

हे भारत ! जब द्रोणाचार्यने ऐसा वचन कहा, तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके हृदयके भाव अकस्मात् प्रकाशित होगये। बृहस्पतिके समान पुरुष भी अपना अभिप्राय गोपन नहीं कर सकते। इससे राजा दुर्योधन प्रसन्नता पूर्वक कहने लगे,

हे आचार्य ! युधिष्ठिरका वध होनेसे मेरा विजय न होगा ! क्योंकि युधिष्ठिरके मारे जाने पर अर्जुन अवश्य ही हम सब लोगोंका नाश कर देगा; देवता लोग भी पाण्डवोंको युद्धमें नहीं मार सकते, इससे उन लोगोंमेंसे जो कोई जीवित रहेगा, वही हम सब लोगोंका नाश कर देगा। (१३–१६)

परन्तु जब सत्य-प्रतिज्ञा करनेवाले राजा युधिष्ठिरको इस प्रकारसे ग्रहण करके तुम मेरे समीप लेआओगे, तब मैं फिर वन गमनकी बाजी (पण) रखके जूएके खेलमें उन्हें पराजित करूंगा; ऐसा होनेसे ही पाण्डवलोग उसके अनुगामी होकर फिर वनमें गमन करेंगे ॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति ।
अतो न वधमिच्छामि धर्मराजस्य कर्हिचित् ॥ १८ ॥
तस्य जिह्ममभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽर्थतत्त्ववित् ।
तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ सञ्चिन्त्य बुद्धिमान् ॥ १९ ॥

द्रोण उवाच— न चेद्युधिष्ठिरं वीरः पालयत्यर्जुनो युधि ।
मन्यस्व पाण्डवश्रेष्ठमानीतं वशमात्मनः ॥ २० ॥
न हि शक्यो रणे पार्थः सेन्द्रैर्देवासुरैरपि ।
प्रत्युद्यातुमतस्तात नैतदामर्षयाम्यहम् ॥ २१ ॥
असंशयं स मे शिष्यो मत्पूर्वश्चास्त्रकर्मणि ।
तरुणः सुकृतैर्युक्त एकायनगतश्च ह ॥ २२ ॥
अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयः स समवाप्तवान् ।
अमर्षितश्च ते राजंस्ततो नाऽमर्षयाम्यहम् ॥ २३ ॥
स चाऽपक्रम्यतां युद्धाद्येनोपायेन शक्यते ।
अपनीते ततः पार्थे धर्मराजो जितस्त्वया ॥ २४ ॥
ग्रहणे हि जयस्तस्य न वधे पुरुषर्षभ ।

ऐसा करनेहीसे बहुत दिनोंके निमित्त मेरा विजय रहेगा, इससे मैं कभी भी धर्मराज युधिष्ठिरके वधकी इच्छा नहीं करता हूं। (१७–१८)

विषयोंके मर्मको जाननेवाले द्रोणाचार्यने दुर्योधनके इस कुटिल अभिप्रायको जान कर, चिन्ता छल पूर्वक उनको यह वर प्रदान किया, कि यदि पराक्रमी अर्जुन युद्धमें पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिरकी रक्षा न करे, तो तुम निश्चय जान रक्खो, कि मैं युधिष्ठिरको तुम्हारे वशमें कर चुका ! इन्द्र आदि देवता और असुर लोग भी युद्धमें अर्जुनके संमुख होकर आगे नहीं बढ सकते, इससे मैं रणभूमिमें अर्जुनको पराजित नहीं कर सकता ॥ (१९–२१)

वह निःसंशय मेरा शिष्य है, परन्तु वह सुकृती, युवा अवस्थावाला, युद्धके सब कर्मोंको जानने वाला, और अस्त्र शस्त्रोंके प्रयोग करनेमें मुझसे भी श्रेष्ठ है ॥ हे राजन् ! उसने इन्द्र और रुद्रके समीप में आकर नाना भांतिके अस्त्रोंको प्राप्त किया है, उस पर भी तुमने उसे कुपित कर दिया है, इससे मैं अर्जुनको युद्धमें पराजित नहीं कर सकता हूं ॥ तुम उस अर्जुनको जिस प्रकारसे, युद्धभूमिसे पृथक् करो; तब तुम धर्मराज युधिष्ठिर को जीत सकोगे ॥ (२२–२४)

एतेन चाऽप्युपायेन ग्रहणं समुपैष्यसि ॥ २५ ॥
अहं गृहीत्वा राजानं सत्यधर्मपरायणम् ।
आनयिष्यामि ते राजन्वशमद्य न संशयः ॥ २६ ॥
यदि स्थास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेऽग्रतः ।
अपनीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ॥ २७ ॥
फाल्गुनस्य समीपे तु नहि शक्यो युधिष्ठिरः ।
ग्रहीतुं समरे राजन्सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ २८ ॥
सञ्जय उवाच—सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः ॥ २९ ॥
पाण्डवेयेषु साक्षेपं द्रोणं जानाति ते सुतः ।
ततः प्रतिज्ञास्थैर्यार्थं स मन्त्रो बहुलीकृतः ॥ ३० ॥
ततो दुर्योधनेनापि ग्रहणं पाण्डवस्य तत् ।
सैन्यस्थानेषु सर्वेषु सुघोषितमरिन्दम ॥ ३१ ॥ [४६१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

हे पुरुषर्षभ! उनको ग्रहण करनेहीसे तुम्हारा विजय होगा, और उनका वध होनेसे किसी प्रकारसेभी तुम्हारी जय नहीं हो सकेगी, ऊपर कहे हुए उपायको अवलम्बन करने ही से वह जीते जी पकडे जावेंगे। हे राजन्! पुरुषसिंह कुन्तीपुत्र अर्जुनके रणभूमिसे पृथक् होनेपर यदि राजा युधिष्ठिर मेरे संमुखमें मुहूर्त्त मात्रभी ठहरेंगे तो मैं उस सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले युधिष्ठिरको ग्रहण करके तुम्हारे समीपमें लाकर उपस्थित करूंगा इसमें कुछभी सन्देह नहीं है॥ हे राजन्! अर्जुनके संमुख इन्द्र आदि देवता और असुर लोग भी रणभूमिमें युधिष्ठिर को आक्रमण नहीं कर सकते॥ २५–२८

सञ्जय बोले, जब द्रोणाचार्यने इस भांति छलपूर्वक राजा युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा की, तब उस समयमें तुम्हारे मूर्ख पुत्रलोग राजा युधिष्ठिरको पकडे हुए ही समझने लगे॥ तुम्हारे पुत्र लोग द्रोणाचार्यको पाण्डवोंका प्रीति-पात्र समझते थे, इसी कारणसे उनकी प्रतिज्ञाकी दृढताके वास्ते इस विचारको सम्पूर्ण सैनिक पुरुषोंमें प्रकाशित कर दिया, दुर्योधनने युधिष्ठिरको ग्रहण करने की मन्त्रणा संपूर्ण सेनाके बीच शीघ्रताके सहित प्रकट किया॥ (२९-३१) [४६१]

द्रोणपर्वमें बारह अध्याय समाप्त।

सञ्जय उवाच— सान्तरे तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
ततस्ते सैनिकाः श्रुत्वा तं युधिष्ठिरनिग्रहम् ॥ १ ॥
सिंहनादरवांश्चक्रुर्बाहुशब्दांश्च कृत्स्नशः ।
तच्च सर्वं यथान्यायं धर्मराजेन भारत ॥ २ ॥
आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाजचिकीर्षितम् ।
ततः सर्वान्समानाय्य भ्रातॄनन्यांश्च सर्वशः ॥ ३ ॥
अब्रवीद्धर्मराजस्तु धनञ्जयमिदं वचः ।
श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याऽद्य चिकीर्षितम् ॥ ४ ॥
यथा तन्न भवेत्सत्यं तथा नीतिर्विधीयताम् ।
सान्तरं हि प्रतिज्ञातं द्रोणेनाऽमित्रकर्षिणा ॥ ५ ॥
तत्राऽन्तरं महेष्वास त्वयि तेन समाहितम् ।
स त्वमद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरम् ॥ ६ ॥
यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात् ।
अर्जुन उवाच— यथा मे न वधः कार्य आचार्यस्य कदाचन ॥ ७ ॥
तथा तव परित्यागो न मे राजंश्चिकीर्षितः ।
अप्येवं पाण्डव प्राणानुत्सृजेयमहं युधि ॥ ८ ॥

द्रोणपर्वमें तेरह अध्याय ।

सञ्जय बोले, द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरको पराजित करेंगे, यह समाचार सुनके सम्पूर्ण कुरुसेनाके शूरवीर शङ्ख बजाकर धनुष्टङ्कार करते हुए सिंहनाद करने लगे । हे भारत ! इसके अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने भी विश्वासी दूतोंके मुखसे द्रोणाचार्यकी ऊपर कही हुई प्रतिज्ञाको यथार्थ रूपसे जान लिया॥ १-२

अनन्तर राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयों और सम्पूर्ण राजाओंको निकट बुलाकर अर्जुनसे यह वचन कहा, हे पुरुषसिंह ! तुमने आज द्रोणाचार्यकी प्रतिज्ञा सुनी होगी,इस समय जिसमें उन की प्रतिज्ञा सत्य न हो सके, तुम वैसेही उपायका विधान करो । हे शत्रुनाशन! द्रोणाचार्यने जो प्रतिज्ञा की है, उसमें छल है; हे महा धनुर्द्धारी अर्जुन ! उन्होंने वह छल तुम्हारे ही ऊपर किया है, इससे तुम आज मेरे अगाडी स्थित होके शत्रुसेनासे युद्ध करो;जिससे द्रोणाचार्यके द्वारा दुर्योधनका मनोरथ पूर्ण न हो सके । (३-७)

अर्जुन बोले, हे राजन् ! जिस प्रकार किसी भांतिसे मैं आचार्यका वध नहीं कर सकता, वैसे ही तुमको परित्याग

प्रतीपो नाऽहमाचार्यै भवेयं वै कथञ्चन ।
त्वां निगृह्याऽऽहवे राज्यं धार्त्तराष्ट्रोऽयमिच्छति ॥ ९ ॥
न स तं जीवलोकेऽस्मिन्कामं प्राप्येत्कथञ्चन ।
प्रपतेद् द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकलीभवेत् ॥ १० ॥
न त्वां द्रोणो निगृह्णीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम् ।
यदि तस्य रणे साह्यं कुरुते वज्रभृत्स्वयम् ॥ ११ ॥
विष्णुर्वा सहितो देवैर्न त्वां प्राप्स्यत्यसौ मृधे ।
मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥
द्रोणादस्त्रभृतां श्रेष्ठात्सर्वशस्त्रभृतामपि ।
अन्यच्च ब्रूयां राजेन्द्र प्रतिज्ञां मम निश्चलाम् ॥ १३ ॥
न स्मराम्यनृतं तावन्न स्मरामि पराजयम् ।
न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किञ्चिदप्यनृतं कृतम् ॥ १४ ॥
सञ्जय उवाच— ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चाऽऽनकैः सह ।
प्रावाद्यन्त महाराज पाण्डवानां निवेशने ॥ १५ ॥

करनेकी भी मुझे इच्छा नहीं है; हे पाण्डवों में युद्धमें प्राण त्याग भी करता हूं, परन्तु मैं कभी द्रोणाचार्यकी विरुद्धता न करूंगा । दुर्योधन जब तुम्हें युद्धमें पराजित करके राज्य ग्रहण करनेकी इच्छा कर रहा है, तब उस पापीका यह मनोरथ इस मनुष्य लोकमें किसी प्रकारसे भी पूर्ण न हो सकेगा। (७-१०)

यदि नक्षत्रमण्डलके सहित आकाशके सब लोग पृथ्वीपर गिर पडे और पृथ्वी टुकडे टुकडे होजावें; तौ भी मेरे जीवित रहते द्रोणाचार्य तुम्हें कभी पराजित नहीं कर सकेंगे। यदि वज्रधारी इन्द्र वा विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके सहित स्वयं युद्धभूमिमें उपस्थित होके कौरवों-की सहायता करे; तौभी युद्ध भूमिमें द्रोणाचार्य तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकेंगे। हे राजेन्द्र ! मेरे जीवित रहते ही सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे भय करना तुमको उचित नहीं है। हे राजन्! मैं और भी एक वचन तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम उसे सुनो,-मेरी प्रतिज्ञा कभी मिथ्या नहीं होती, मैंने जो कभी मिथ्या वचन कहा है, युद्धमें पराजित हुआ हूं ; अथवा कहे हुए वचनोंका पालन नहीं किया है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं होता है। (१०-१४)

सञ्जय बोले, हे महाराज ! अनन्तर महात्मा पाण्डवोंके शिविरोंमें शंख भेरी मृदङ्ग नगाडे आदि बाजोंके सङ्ग वीरों

सिंहनादश्च सञ्जज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्दश्च गगनस्पृक्सुभैरवः ॥ १६ ॥
श्रुत्वा शङ्खस्य निर्घोषं पाण्डवस्य महौजसः ।
त्वदीयेष्वप्यनीकेषु वादित्राण्यभिजघ्निरे ॥ १७ ॥
ततो व्यूढान्यनीकानि तव तेषां च भारत ।
शनैरुपेयुरन्योन्यं योध्यमानानि संयुगे ॥ १८ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च द्रोणपाञ्चाल्ययोरपि ॥ १९ ॥
यतमानाः प्रयत्नेन द्रोणानीकविशातने ।
न शेकुः सृञ्जया युद्धे तद्धि द्रोणेन पालितम् ॥ २० ॥
तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ।
न शेकुः पाण्डवीं सेनां पाल्यमानां किरीटिना ॥ २१ ॥
आस्तां ते स्तिमिते सेने रक्ष्यमाणे परस्परम् ।
सम्प्रसुप्ते यथा नक्तं वनराज्यौ सुपुष्पिते ॥ २२ ॥
ततो रुक्मरथो राजन्नर्केणेव विराजता ।
वरूथिना विनिष्पत्य व्यचरत्पृतनामुखे ॥ २३ ॥

के धनुपटङ्कार और सिंहनादका गगनको स्पर्श करनेवाला, महा भयङ्कर शब्द सुनाई देने लगा ॥ महातेजस्वी पाण्डवोंके शंख आदि बाजोंके शब्दको सुनकर तुम्हारी सेनामें भी युद्धके बाजे बजने लगे ॥ हे भारत ! अनन्तर दोनों ओरकी सेनाके पुरुष लोग व्यूहबद्ध होकर युद्ध करनेकी इच्छासे रणभूमिमें आकर उपस्थित हुए ॥ तब पाण्डव कौरव और द्रोणाचार्य तथा पाञ्चाल योद्धाओंका रोएंको खडा करनेवाला भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ (१५–१९)

सृञ्जय लोग बहुत यत्न करके भी द्रोणाचार्यसे रक्षित कुरुसेनाको पराजित न कर सके; और तुम्हारे पुत्र लोग तथा सब पराक्रमी योद्धा भी अर्जुनसे रक्षित पाण्डवोंकी सेनाको युद्धसे विचलित न कर सके ॥ इसी प्रकारसे द्रोणाचार्य और अर्जुनसे रक्षित दोनों ओरकी सेना मानो रात्रिके समय फूले हुए वनके वृक्षोंके समान क्षण भर स्थित रही ॥ (२०–२२)

हे राजन् ! अनन्तर रुक्म रथ पर सूर्यके समान विराजमान द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको अपने अस्त्रशस्त्रोंसे पीडित करते हुए रणभूमिमें भ्रमण करने

तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे।
अनेकमिव सन्त्रासान्मेनिरे पाण्डुसृञ्जयाः ॥ २४ ॥
तेन मुक्ताः शरा घोरा विचेरुः सर्वतोदिशम्।
त्रासयन्तो महाराज पाण्डवेयस्य वाहिनीम् ॥ २५ ॥
मध्यन्दिनमनुप्राप्तो गभस्तिशतसंवृतः।
यथा दृश्येत धर्मांशुस्तथा द्रोणोऽप्यदृश्यत ॥ २६ ॥
न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति भारत।
वीक्षितुं समरे क्रुद्धं महेन्द्रमिव दानवाः ॥ २७ ॥
मोहयित्वा ततः सैन्यं भारद्वाजः प्रतापवान्।
धृष्टद्युम्नबलं तूर्णं व्यधमन्निशितैः शरैः ॥ २८ ॥
स दिशः सर्वतो रुध्वा संवृत्य खमजिह्मगैः।
पार्षतो यत्र तत्रैव ममृदे पाण्डुवाहिनीम् ॥ २९ ॥ [४९०]

इति श्रीमहाभारते॰ द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अर्जुनकृतयुधिष्ठिराश्वासने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सञ्जय उवाच— ततः स पाण्डवानीके जनयन्सुमहद्भयम्।

लगे ॥ अकेले ही द्रोणाचार्य युद्धभूमि में अपने रथपर चढे हुए हस्तलाघव के सहित बाणोंको चलाते समय इस प्रकारसे चारों ओर दिखाई देने लगे, कि पाण्डव और सृञ्जय लोग उनको अनेक रूपधारी समझके भयभीत होने लगे ॥ हे राजन्! द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए सम्पूर्ण बाण चारों ओर पाण्डवोंकी सेनाको त्रस्त करते हुए चलते दिखाई देने लगे ॥ दो पहरके समयमें महा प्रचण्ड सहस्र किरणधारी सूर्यका रूप जिस प्रकारसे सबको विकल करता है, द्रोणाचार्य वैसे ही शत्रुसेनाके बीच दिखाई देने लगे ॥ (२३-२६)

हे भारत! जैसे दानव लोग युद्धमें क्रुद्ध हुए इन्द्रकी ओर नहीं देख सकते, वैसे ही पाण्डवोंकी सेनामें कोई भी पुरुष युद्ध करते हुए प्रतापी द्रोणाचार्यकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुआ ॥ महा प्रतापी द्रोणाचार्य शीघ्रताके सहित सम्पूर्ण सेनाको मोहित करते हुए धृष्टद्युम्नकी सेनाके शूरवीरोंको कँपाने लगे। और अपने दिव्य बाणोंसे सब दिशाओंको रुद्ध और आकाश मण्डलको पूरित कर जहांपर धृष्टद्युम्न थे उस स्थानमें पहुंच कर पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे ॥ (२७-२९) [४९०]

द्रोणपर्वमें तेरह अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें चौदह अध्याय।

सञ्जय बोले, जैसे अग्नि तृण आदि-

व्यचरत्पृतनां द्रोणो दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ १ ॥
निर्दहन्तमनीकानि साक्षादग्निमिवोत्थितम् ।
दृष्ट्वा रुक्मरथं क्रुद्धं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ २ ॥
सततं कृष्यतः संख्ये धनुषोऽस्याऽऽशुकारिणः ।
ज्याघोषः शुश्रुवेऽत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ॥ ३ ॥
रथिनः सादिनश्चैव नागानश्वान्पदातिनः ।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः संमृद्नन्ति स्म सायकाः ॥ ४ ॥
नानद्यमानः पर्जन्यः प्रवृद्धः शुचिसंक्षये ।
अश्मवर्षमिवाऽवर्षत्परेषामावहद्भयम् ॥ ५ ॥
विचरन्स तदा राजन्सेनां संक्षोभयन्प्रभुः ।
वर्धयामास सन्त्रासं शात्रवाणाममानुषम् ॥ ६ ॥
तस्य विद्युदिवाऽभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
भ्रमद्रथाम्बुदे चाऽस्मिन्दृश्यते स्म पुनः पुनः ॥ ७ ॥
स वीरः सत्यवान्प्राज्ञो धर्मनित्यः सदा पुनः ।

को भस्म कर देती है, वैसे ही द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनामें महा घोर युद्ध करके सम्पूर्ण शूरवीरोंको अपने अस्त्र शस्त्रोंसे जलाते हुए संग्रामभूमिमें चारों ओर घूमने लगे ॥ सम्पूर्ण सृञ्जय वीर-योद्धा द्रोणाचार्यको इस भांतिसे पाण्डवोंकी सेनाका संहार करते हुए देखकर कांपने लगे॥ युद्धभूमिमें वह ऐसी शीघ्रतासे अपने बडे धनुषको आकर्षण करने लगे, कि उनके धनुष टङ्कारका शब्द-वज्रके शब्दकी भांति सुनाई देने लगा ॥ (१–३)

उनके हस्तलाघवसे छूटे हुए अनेक बाण रथी, हाथी, घुडसवार और पैदल चलने वाले, वीरों का नाश करने लगे ॥ वह वर्षाकालके बार बार गर्जना करने वाले मेघोंकी भांति सिंहनाद करके पत्थर बरसानेकी भांति शत्रु सेनाके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा कर सम्पूर्ण वीरोंको भयभीत करने लगे ॥ हे राजन्! सेनापति द्रोणाचार्य इसी भांतिसे रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करके शत्रुओंको छिन्न भिन्न करके उन्हें भयभीत करने लगे। (४–६)

जैसे बिजली बादलोंके बीच विराजमान् होती है, वैसे ही उनका सुवर्ण-भूषित धनुष चारों ओर घूमनेवाले रथ रूपी बादलके बीच बार बार दिखाई देने लगा ॥ उस सत्यवादी बुद्धिमान् धर्मात्मा द्रोणाचार्यने प्रलयकालके समान

युगान्तकालवद्घोरां रौद्रीं प्रावर्त्तयन्नदीम् ॥ ८ ॥
अमर्षवेगप्रभवां क्रव्यादगणसंकुलाम् ।
बलौघैः सर्वतः पूर्णां ध्वजवृक्षापहारिणीम् ॥ ९ ॥
शोणितोदां रथावर्त्तां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ।
कवचोडुपसंयुक्तां मांसपङ्कसमाकुलाम् ॥ १० ॥
मेदोमज्जास्थिसिकतामुष्णीषचयफेनिलाम् ।
संग्रामजलदापूर्णां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ॥ ११ ॥
नरनागाश्वकलिलां शरवेगौघवाहिनीम् ।
शरीरदारुसङ्घट्टां रथकच्छपसंकुलाम् ॥ १२ ॥
उत्तमाङ्गैः पङ्कजिनीं निस्त्रिंशझषसंकुलाम् ।
रथनागह्रदोपेतां नानाभरणभूषिताम् ॥ १३ ॥
महारथशतावर्त्तां भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
महावीर्यवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥ १४ ॥

यमरूपी होकर रणभूमिमें भयङ्कर रुधिरकी नदी बहा दी ॥ (७-८)

हे राजन् ! वह नदी क्रोधरूपी वेगसे उत्पन्न हुई, उसके चारों ओर मांस भक्षण करनेवाले पक्षी घूमने लगे। वह नदी सेनारूपी वृक्षोंको अपने प्रवाहके झोंकमें बहाने लगी, उस नदीमें रुधिर ही जल हुआ, रथ भंवर, हाथी घोडे तट, काष्ठ आदि पत्थर, मांस उसमें पङ्क तथा मेद मज्जा और हड्डी ही उसके बालू हुए। उस नदीमें वीरोंके वस्त्र फेन रूपी दीख पडते थे। संग्राम रूपी बादलोंसे युक्त परशु प्रास आदि अस्त्र शस्त्र उसमें मछली रूपी दीख पडे। (९-११)

हाथी, घोडे और मनुष्य इस नदीमें जलजन्तु रूपसे दिखाई देने लगे; बाणोंका वेग ही इस नदीका प्रवाह हुआ; बहते हुए वीरोंके शरीर सूखे काष्ठोंकी भांति दिखाई देने लगे। रथ आदिक जो उसमें बहे जाते थे, वे कछुएके समान बोध होते थे; वीरोंका सिर ही इस नदीका पत्थरसे निर्माण किया हुआ तटरूप हुआ, तलवार आदि मीन मच्छ, और रथ तथा हाथियोंका यूथ-रूप दीख पडता था। वह नदी नाना आभूषणोंसे भूषित थी। बडे बडे रथ इस नदीमें भंवरके समान दीख पडते थे। और जो दोनों सेनाके चलने पर पृथ्वीसे धूलि उडी, वह तरङ्गकी भांति दिखाई देने लगी। इस रुधिरकी नदीको पराक्रमी महा बलवान् वीर लोग अपने पराक्रम और रथ आदि वाहनों पर चढके पार होते

शरीरशतसम्बाधां गृध्रकङ्कनिषेविताम् ।
महारथसहस्राणि नयन्तीं यमसादनम् ॥ १५ ॥
शूलव्यालसमाकीर्णां प्राणिवाजिनिषेविताम् ।
छिन्नक्षत्रमहाहंसां मुकुटाण्डजसेविताम् ॥ १६ ॥
चक्रकूर्मां गदानक्रां शरक्षुद्रझषाकुलाम् ।
बकगृध्रसृगालानां घोरसङ्घैर्निषेविताम् ॥ १७ ॥
निहतान्प्राणिनः संख्ये द्रोणेन बलिना रणे ।
वहन्ती पितृलोकाय शतशो राजसत्तम ॥ १८ ॥
शरीरशतसम्बाधां केशशैवलशाद्वलाम् ।
नदीं प्रावर्त्तयद्राजन्भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥ १९ ॥
तर्जयन्तमनीकानि तानि तानि महारथम् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥
तानभिद्रवतः शूरांस्तावका दृढविक्रमाः ।

थे,और कायर लोग भयभीत होके इसके पार नहीं जासकते थे ॥ (१२-१४)

उस नदीके रुधिर रूपी जलमें सैकडों तथा सहस्रों पुरुष मर मरके गिरने लगे; कौवे, बगुले और गिद्ध आदि मांसभक्षी पक्षी उसकी चारों ओर घूमने लगे। इस महाभयङ्कर नदीके वेगमें पडके सैकडों सहस्रों महारथी योद्धा यमलोकमें गमन करने लगे॥ और सर्पके समान उस नदीमें दिखाई देने लगे। सम्पूर्ण प्राणियोंका समूह उस नदीमें पक्षियोंके समान दीखने लगा। उस नदीमें कटे हुए क्षत्रिय हंसोंके समान शोभित होने लगे और मुकुट नाना भांतिके पक्षियोंके समान दिखाई देने लगे॥ (१५-१६)

रथके चक्र कछुए, गदा मगरमच्छ, और बाण छोटी मछलियोंके समान विराजमान हुए। हे राजेन्द्र! बलवान् द्रोणाचार्यने ऐसी भयङ्कर कौए, बगुले गिद्ध और सियारोंके समूहसे सेवित सहस्रों मरे हुए पुरुषोंके शरीर और केशरूपी सेवारोंसे युक्त,कायरोंके भयको बढानेवाली नदी उत्पन्न करके सैकडों तथा सहस्रों पुरुषोंका अपने बाणोंसे नाश कर उस ही नदीके प्रवाहके जरियेसे यमपुरीमें भेजने लगे। (१७-१९)

युधिष्ठिरके अनुयायी सम्पूर्ण शूरवीर योद्धा इस भांतिसे द्रोणाचार्यको पाण्डवोंकी सेनाका नाश करते देखकर चारों ओरसे उनकी ओर दौडे॥ तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण पराक्रमी वीर लोग भी

सर्वतः प्रत्यगृह्णन्त तद्भूल्लोमहर्षणम् ॥ २१ ॥
शतमायस्तु शकुनिः सहदेवं समाद्रवत् ।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
तस्य माद्रीसुतः केतुं धनुः सूतं हयानपि ।
नाऽतिक्रुद्धः शरैश्छित्वा षष्ठ्या विव्याध सौबलम्॥२३॥
सौबलस्तु गदां गृह्य प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ।
स तस्य गदया राजन्रथात्सूतमपातयत् ॥ २४ ॥
ततस्तौ विरथौ राजन्गदाहस्तौ महाबलौ ।
चिक्रीडतू रणे शूरौ सश्रृङ्गाविव पर्वतौ ॥ २५ ॥
द्रोणः पाञ्चालराजानं विध्वा दशभिराशुगैः ।
बहुभिस्तेन चाऽभ्यस्तस्तं विव्याध ततोऽधिकैः ॥ २६ ॥
विविंशतिं भीमसेनो विंशत्या निशितैः शरैः ।
विध्वा नाऽकम्पयद्वीरस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २७ ॥
विविंशतिस्तु सहसा व्यश्वकेतुशरासनम् ।
भीमं चक्रे महाराज ततः सैन्यान्यपूजयन् ॥ २८ ॥

उन लोगोंको द्रोणाचार्यकी ओर हुए देखकर वेगपूर्वक उन सब वीरोंके संमुख उपस्थित हुए। अनन्तर फिर दोनों सेनाओंका महा घोर तुमुल संग्राम होने लगा। (२०-२१)

सैकडों प्रकारकी माया-विद्यामें निपुण शकुनिने सहदेव पर आक्रमण करके उनको सारथी, ध्वजा और रथके सहित अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया॥ माद्रीपुत्र सहदेवने शीघ्रताके सहित शकुनिके धनुष, ध्वजा, घोडे, सारथी और रथको काटके फिर साठ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया॥ सुबलपुत्र शकुनिने रथसे कूदके सहदेवके सारथीको गदासे मार डाला॥ हे राजन्! वे दोनों महाबली पराक्रमी योद्धा रथ रहित होके गदा ग्रहण कर शृङ्गके सहित पर्वतके समान रणभूमिमें क्रीडा करने लगे। २२-२५

द्रोणाचार्यने पञ्चालराज द्रुपदको दश बाणोंसे विद्ध किया, तब द्रुपदने भी उन्हें अनेक बाणोंसे विद्ध किया। द्रोणाचार्य फिर दूसरी बार उनसे भी अधिक बाणोंको चलाकर राजा द्रुपदको विद्ध करने लगे। भीमसेन विविंशतिको बीस बाणोंसे विद्ध करके भी उसे कंपित नहीं कर सके, यह कर्म अद्भुत हुआ॥ हे भारत! विविंशतिने सहसा भीमसेनके ध्वजा, धनुष और घोडोंको अपने

स तत्र ममृषे वीरः शत्रोर्विक्रममाहवे ।
ततोऽस्य गदया दान्तान्हयान्सर्वानपातयत् ॥ २९ ॥
हताश्वात्स रथाद्राजन्गृह्य चर्म महाबलः ।
अभ्यायाद्भीमसेनं तु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ३० ॥
शल्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्रीयं प्रियमात्मनः ।
विव्याध प्रहसन्बाणैर्लालयन्कोपयन्निव ॥ ३१ ॥
तस्याऽश्वानातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः ।
निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥ ३२ ॥
धृष्टकेतुः कृपेणाऽस्तांश्छित्त्वा बहुविधाञ्शरान् ।
कृपं विव्याध सप्तत्या लक्ष्म चाऽस्याऽऽहरत्त्रिभिः॥३३॥
तं कृपः शरवर्षेण महता समवारयत् ।
विव्याध च रणे विप्रो धृष्टकेतुममर्षणम् ॥ ३४ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः स्मयन्निव ॥ ३५ ॥

अस्त्रोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया; तब सम्पूर्ण सेनाके पुरुष विविंशतिकी प्रशंसा करने लगे ॥ (२६—२८)

भीमसेनने उस युद्धभूमि में शत्रु-का ऐसा पराक्रम न सहकर गदासे उनके अत्यन्त शिक्षित घोडोंको मार डाला ॥ हे राजन् ! महा बलवान्, विविंशति तलवार ढाल ग्रहण करके घोडेसे रहित रथसे कूद पडे, और जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथी पर आक्रमण करता है, वैसे ही भीम-सेनकी ओर दौडे । पराक्रमी शल्य हंसते हंसते अपने प्यारे मानजे नकुलको मानो प्रीति और क्रोधसे युक्त होकर बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ अनन्तर प्रतापी नकुलने युद्धभूमिमें उनके घोडे, छत्र, ध्वजा, सारथी और धनुषको अपने बाणोंसे काटके शंख बजाकर सिंहनाद किया ॥ (२९–३२)

धृष्टकेतुने कृपाचार्यके चलाये हुए अनेक बाणोंको निवारण करके सत्तर बाणोंसे उन्हें विद्ध किया और तीन बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपा-चार्य अपने बहुतसे बाणोंको वर्षा करके उनके अस्त्रोंको निवारण करके घोर संग्राम करने लगे ॥ सात्यकिने अपने बाणोंसे कृतवर्मांके वक्षस्थलमें प्रहार करके फिर हंसते हंसते सत्तर बाणोंसे उन्हे विद्ध किया ॥ जैसे वायु महा वेगसे चलकर

तं भोजः सप्तसप्तत्या विध्वाऽऽशु निशितैः शरैः।
नाकम्पयत शैनेयं शीघ्रो वायुरिवाऽचलम् ॥ ३६ ॥
सेनापतिः सुशर्माणं भृशं मर्मस्वताडयत।
स चापि तं तोमरेण जत्रुदेशेऽभ्यताडयत् ॥ ३७ ॥
वैकर्तनं तु समरे विराटः प्रत्यवारयत।
सह मत्स्यैर्महावीर्यैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३८ ॥
तत्पौरुषमभूत्तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम्।
यत्सैन्यं वारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३९ ॥
द्रुपदस्तु स्वयं राजा भगदत्तेन सङ्गतः।
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाऽभवत् ॥ ४० ॥
भगदत्तस्तु राजानं द्रुपदं नतपर्वभिः।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ४१ ॥
द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो भगदत्तं महारथम्।
आजघानोरसि क्षिप्रं शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ४२ ॥
युद्धं योधवरौ लोके सौमदत्तिशिखण्डिनौ।
भूतानां त्रासजननं चक्रातेऽस्त्रविशारदौ ॥ ४३ ॥
भूरिश्रवा रणे राजन्याज्ञसेनिं महारथम्।

भी पर्वतको नहीं हिला सकता, वैसे ही कृतवर्मा सतहत्तर बाणोंसे प्रहार करके यदुवंशीय सात्यकिको युद्धसे विचलित नहीं कर सके॥ (३३—३६)

सेनापती धृष्टद्युम्नने सुशर्माके मर्म स्थानोंमें अपने बाणोंसे प्रहार किया, सुशर्माने भी तोमर चलाकर सेनापतिके हृदयके नीचे प्रहार किया॥ राजा विराट ने मत्स्य देशीय योद्धाओंसे युक्त हो रण भूमिमें सूर्यपुत्र कर्णको निवारण किया, यह कर्म अद्भुत हुआ ॥ कर्णने दारुण यत्न करके तीक्ष्ण बाणोंसे संपूर्ण मत्स्य सेनाका निवारण किया॥ (३७-३९)

हे भारत! राजा द्रुपद भगदत्तके संमुख आके उपस्थित हुए, अनन्तर उन दोनोंका अद्भुत युद्ध होने लगा॥ पुरुषर्षभ भगदत्तने सारथी और ध्वजाके साथ राजाद्रुपदको तीक्ष्ण बाणोंसे विद्धकिया॥ तीसके अनन्तर राजा द्रुपदने क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे भगदत्तके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ (४०-४२)

अस्त्रविद्याके जाननेवाले भूरिश्रवा और शिखण्डी प्राणियोंको त्रास देनेवाले महाघोर संग्राम करने लगे ॥ हे राजन्!

महता सायकौघेन च्छादयामास वीर्यवान् ॥ ४४ ॥
शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौमदत्तिं विशाम्पते ।
नवत्या सायकानां तु कम्पयामास भारत ॥ ४५ ॥
राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैडिम्बालम्बुषावुभौ ।
चक्रातेऽत्यद्भुतं युद्धं परस्परजयैषिणौ ॥ ४६ ॥
मायाशतसृजौ दृप्तौ मायाभिरितरेतरम् ।
अन्तर्हितौ चेरतुस्तौ भृशं विस्मयकारिणौ ॥ ४७ ॥
चेकितानोऽनुविन्देन युयुधे चाऽतिभैरवम् ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबली ॥ ४८ ॥
लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद्भृशम् ।
यथा विष्णुः पुरा राजन्हिरण्याक्षेण संयुगे ॥ ४९ ॥
ततः प्रचलिताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ।
रथेनाऽभ्यपतद्राजन्सौभद्रं पौरवो नदन् ॥ ५० ॥
ततोऽभ्ययात्स त्वरितो युद्धाकांक्षी महाबलः ।
तेन चक्रे महद्युद्धमभिमन्युररिन्दमः ॥ ५१ ॥

पराक्रमी भूरिश्रवाने रणभूमिमें अपने प्रबल बाणोंके समूहसे याज्ञसेनि शिखण्डी को छिपादिया ॥ हे प्रजानाथ ! अनन्तर शिखण्डीने क्रुद्ध होकर नौवें बाणोंसे भूरिश्रवाके ऊपर प्रहार कर के उन्हें कंपाने लगे । (४३—४५)

भयङ्कर कर्मों के करनेवाले घटोत्कच और अलम्बुष राक्षस आपसमें एक दूसरेको जीतनेकी अभिलाष करके महा भयङ्कर अद्भुत युद्ध करने लगे, वे दोनों अभिमान पूर्वक सैकडों माया उत्पन्न करके तथा अन्तर्द्धान होके रणभूमि में भ्रमण करते हुए सब पुरुषों को विस्मित करके युद्ध करने लगे॥ देवासुरयुद्ध में जैसे महाबलवान बलासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था, वैसे ही चेकितान अनुविन्दके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ हे राजन् ! पहिले समय में जैसे विष्णुने हिरण्याक्ष दैत्यके सङ्गमें युद्ध किया था, वैसे ही लक्ष्मण क्षत्रदेवके सङ्ग महाघोर संग्राम करने लगा ॥ (४६—४९)

हे भारत ! अनन्तर पौरव सिंहनाद करते हुए विधिपूर्वक उत्तम भांतिसे सज्जित रथ पर चढ के अभिमन्यु की ओर दौडे ॥ अनन्तर महाबलवान् शत्रुनाशन अभिमन्यु भी युद्ध की इच्छा करके, वेगपूर्वक उनके संमुख आकर उपस्थित होकर युद्ध करने लगे ॥

पौरवस्त्वथ सौभद्रं शरव्रातैरवाकिरत् ।
तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपातयत् ॥ ५२ ॥
सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान्सूतं च सायकैः ॥ ५३ ॥
ततः प्रहर्षयन्सेनां सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
समादत्ताऽऽर्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम् ॥ ५४ ॥
तं तु सन्धितमाज्ञाय सायकं घोरदर्शनम् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यश्चिच्छेद सशरं धनुः ॥५५॥
तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्ववर्ह सितं खड्गमाददानः शरावरम् ॥ ५६ ॥
स तेनाऽनेकतारेण चर्मणा कृतहस्तवत् ।
भ्रान्तासिना चरन्मार्गान्दर्शयन्वीर्यमात्मनः ॥ ५७ ॥
भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधूतं पुनरुत्थितम् ।
चर्म निस्त्रिंशयो राजन्निर्विशेषमदृश्यत ॥ ५८ ॥
स पौरवरथस्येषामाप्लुत्य सहसा नदन् ।

पौरवने अपने बाणोंसे सुभद्रानन्दन अभिमन्युको छिपा दिया। अर्जुन पुत्र अभिमन्युने उनके धनुष, ध्वजा और छत्रको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया; फिर सात तीक्ष्ण-बाणोंसे पौरवको विद्ध करके दूसरे पांच बाणोंसे उनके सारथी और रथके घोडोंको विद्ध किया॥५०-५३

अनन्तर उन्होंने अपनी सेनाके पुरुषोंको आनन्दित करनेके वास्ते सिंह-नाद करके पौरवका नाश करनेके निमित्त एक भयङ्कर बाण ग्रहण किया॥ हार्दिकनन्दन कृतवर्माने उस भयानक बाणको देखकर अपने दो बाणोंसे उस बाणके सहित अभिमन्युके धनुषको काटके गिरा दिया॥ शत्रुनाशन अभिमन्युने धनुष बाणको कटते देखके ढाल तलवार ग्रहण की; और अनेक नक्षत्रोंसे भूषित उत्तम ढाल और तलवार लेकर अनेक पुरुषोंके बीच अपने हस्तलाघवके सहित घुमाते हुए पराक्रम और गति विशेष से युद्धभूमि में भ्रमण करने लगे। (५४-५७)

हे राजन्! वह ढाल तलवार घुमाते, फिराते, गिराते, चलाते और फिर उठाकर इस प्रकारसे शीघ्रता पूर्वक रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगे, कि उस ढाल और तलवारकी आकृति भी किसी को नहीं दीख पडती थी॥ अभिमन्यु

पौरवं रथमास्थाय केशपक्षे परामृशत् ॥ ५९ ॥
जघानाऽस्य पदा सूतमसिना पातयद् ध्वजम् ।
विक्षोभ्याऽम्भोनिधिं तार्क्ष्यस्तं नागमिव चाऽक्षिपत् ॥६०॥
तमागलितकेशान्तं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।
उक्षाणमिव सिंहेन पात्यमानमचेतसम् ॥ ६१ ॥
तमार्जुनिवशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत् ।
पौरवं पातितं दृष्ट्वा नाऽमृष्यत जयद्रथः ॥ ६२ ॥
स बर्हिबर्हावततं किङ्किणीशतजालवत् ।
चर्म चाऽऽदाय खड्गं च नदन्पर्यपतद्रथात् ॥ ६३ ॥
ततः सैन्धवमालोक्य कार्ष्णिरुत्सृज्य पौरवम् ।
उत्पपात रथात्तूर्णं श्येनवन्निपपात च ॥ ६४ ॥
प्रासपट्टिशनिस्त्रिंशाञ्छत्रुभिः सम्प्रचोदितान् ।
चिच्छेद चाऽसिना कार्ष्णिश्चर्मणा संरुरोध च ॥ ६५ ॥
स दर्शयित्वा सैन्यानां स्वबाहुबलमात्मनः ।
तमुद्यम्य महाखड्गं चर्म चाऽथ पुनर्बली ॥ ६६ ॥
वृद्धक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।

क्रोधपूर्वक मानों गरुडकी भांति समुद्रको क्षुभित करते हुए सहसा कूदके पौरवके रथ पर जाचढे, और उनका केश पकडके अपने चरणके प्रहारसे सारथीको नीचे गिरा कर तलवारसे रथकी ध्वजा काट डाली ॥ सम्पूर्ण राजाओंने पौरवको अभिमन्युसे इस प्रकार पीडित देखा, मानो सिंहने वृषभ पर आक्रमण किया है। (५८–६१)

परन्तु राजा जयद्रथ पौरवको इस प्रकारसे अभिमन्युके वशमें अनाथके समान पडा हुआ देखकर क्रोध पूर्वक अपने रथसे कूदके मयूर पिच्छ और सैकडों किंकिणीसे युक्त ढाल तलवार ग्रहण कर अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ अनन्तर अभिमन्यु राजा जयद्रथको अपनी ओर आते देखकर पौरवको छोडके वाजपक्षीकी भांति उस रथसे कूद पडे; और सब दिशाओंसे शत्रुओंके चलाये हुए प्रास, पट्टिश और बाण तथा दूसरे सब अस्त्र शस्त्रोंको अपने ढालसे रोकते और तलवारसे काट कर पृथ्वीमें गिरा देते थे ॥ (६२–६५)

बलवान् अभिमन्यु सम्पूर्ण सैनिक पुरुषोंको अपना बाहुबल दिखाते हुए हाथीकी ओर व्याघ्रके समान पिताके

ससाराऽभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ६७ ॥
तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ ।
हृष्टवत्सम्प्रजह्राते व्याघ्रकेसरिणाविव ॥ ६८ ॥
सम्पातेष्वभिघातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः ।
न तयोरन्तरं कश्चिद्ददर्श नरसिंहयोः ॥ ६९ ॥
अवक्षेपोऽसिनिर्ह्रादः शस्त्रान्तरनिदर्शनम् ।
बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत ॥ ७० ॥
बाह्यमाभ्यन्तरं चैव चरन्तौ मार्गमुत्तमम् ।
ददृशाते महात्मानौ सपक्षाविव पर्वतौ ॥ ७१ ॥
ततो विक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः ।
शरावरणपक्षान्ते प्रजहार जयद्रथः ॥ ७२ ॥
रुक्मपत्रान्तरे सक्तस्तस्मिंश्चर्मणि भास्वरे ।
सिन्धुराजबलोद्धूतः सोऽभज्यत महानसिः ॥ ७३ ॥
भग्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
अदृश्यत निमेषेण स्वरथं पुनरास्थितः ॥ ७४ ॥
तं कार्ष्णि समरान्मुक्तमास्थितं रथमुत्तमम् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ७५ ॥

अत्यन्त वैरी वृद्धक्षत्रके पुत्र जयद्रथकी ओर दौडे ॥ वे दोनों [illegible] रणभूमिमें सिंह और व्याघ्रकी भांति आपसमें हर्ष पूर्वक तलवार, दांत, नख आदि आयुधोंसे [illegible] करने लगे ॥ उन पुरुषसिंहों में तलवार ढालके चलाने रोकने और प्रहार करनेमें कोई भी किसीसे कम न हुआ ॥ उन लोगोंका तलवार चलाना, रोकना, तथा बाहर और भीतर तलवार का प्रहार समान रूपसे दिखाई देने लगा ॥ (६६–७०)

वे दोनों महात्मा वीर पक्षधारी पर्वत के समान रणभूमि में गति विशेष से बाहर और भीतरके मार्गोंमें युद्ध करते हुए दिखाई देने लगे ॥ अनन्तर यश- स्वी अभिमन्यु तलवार चला रहे थे, उसी समयमें जयद्रथने अपने तलवारसे अभिमन्यु की ढालपर प्रहार किया, सिन्धुराज जयद्रथका खड्ग बलपूर्वक अभिमन्युकी ढालपर गिरकर दो खण्ड होगया ॥ (७१–७३)

तलवारको टूटी हुई देखकर राजा जयद्रथ शीघ्रतासे दौडकर छः पग चल के अपने रथपर आचढे, और अभिमन्यु

ततश्चर्म च खड्गं च समुत्क्षिप्य महाबलः ।
ननादाऽर्जुनदायादः प्रेक्षमाणो जयद्रथम् ॥ ७६ ॥
सिन्धुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा ।
तापयामास तत्सैन्यं भुवनं भास्करो यथा ॥ ७७ ॥
तस्य सर्वायसीं शक्तिं शल्यः कनकभूषणाम् ।
चिक्षेप समरे घोरां दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ७८ ॥
तामवप्लुत्य जग्राह विकोशं चाऽकरोदसिम् ।
वैनतेयो यथा कार्ष्णिः पतन्तमुरगोत्तमम् ॥ ७९ ॥
तस्य लाघवमाज्ञाय सत्त्वं चाऽमिततेजसः ।
सहिताः सर्वराजानः सिंहनादमथाऽनदन् ॥ ८० ॥
ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा ।
मुमोच भुजवीर्येण वैदूर्यविकृतां शिताम् ॥ ८१ ॥
सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा ।
जघान सूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ॥ ८२ ॥
ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः ।
सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ८३ ॥

भी अपने रथपर चढे । सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धाओंने रथपर चढे हुए अभिमन्यु को चारों ओरसे घेर लिया ॥ अनन्तर महा बलवान् अर्जुनपुत्र अभिमन्यु जयद्रथकी ओर देखकर उनकी तलवार ढालको काटकर सिंह नाद करने लगे ॥ जैसे प्रचण्ड सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंको तपाकर भस्म करता है, वैसे ही शत्रु-नाशन वीर अभिमन्यु जयद्रथको परा-जित करके उनकी सम्पूर्ण सेनाको अपने बाणोंसे जलाने लगे ॥ (७४-७७)

तब शल्यने अभिमन्युकी ओर जलती हुई अग्नि शिखाके समान सुवर्ण भूषित एक लोहमयी शक्ति चलाई, जैसे गरुड सर्पोंको ग्रहण करते हैं, वैसेही अर्जुनपुत्र अभिमन्युने कूदके उस भयङ्कर शक्तिको हाथसे ग्रहण किया । अत्यन्त तेजस्वी क्षत्रिय योद्धा अभिमन्युका पराक्रम देखके सिंहनाद करने लगे ॥ शत्रुनाशन अभिमन्युने अपनी भुजाओंके बलसे उसी शक्तिको शल्यकी ओर चलाया। ७८-८१

सुभद्रा नंदन अभिमन्यु के हाथ से छूटी हुई भयङ्कर सर्प के समान महा घोर शक्ति शल्यके रथपर आके उनके सारथीको मारकर पृथ्वीमें गिर पडी॥ अनन्तर विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, युधिष्ठिर,

यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुक्रुशुः ।
बाणशब्दाश्च विविधाः सिंहनादाश्च पुष्कलाः॥ ८४ ॥
प्रादुरासन्हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् ।
तन्नाऽमृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ ८५ ॥
अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः ।
अभ्याकिरन्महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ ८६ ॥
तेषां च प्रियमन्विच्छन्सूतस्य च पराभवम् ।
आर्तायनिरमित्रघ्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥ ८७ ॥ [५७७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—बहूनि सुविचित्राणि द्वन्द्वयुद्धानि सञ्जय ।
त्वयोक्तानि निशम्याऽहं स्पृहयामि सचक्षुषाम् ॥ १ ॥
आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः ।
कुरूणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम् ॥ २ ॥
न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतो युद्धमुत्तमम् ।

सात्यकि, कैकेय, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल, सहदेव और द्रौपदी के पांचों पुत्र अभिमन्युको धन्य कहके प्रशंसा करने लगे; और युद्धमें पीछे न हटनेवाले अभिमन्यु को हर्षित करनेके निमित्त युधिष्ठिर की सेनामें धनुष बाणके शब्दके सहित वीरोंका सिंहनाद होने लगा ॥ (८२-८५)

तुम्हारे पुत्र लोग शत्रुओंके विजयके लक्षणरूपी उस हर्ष भरे कोलाहलको न सह सके ॥ हे राजन् ! अनन्तर जैसे बादल पर्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वे लोग मिलकर चारों ओरसे अपने तीक्ष्ण बाणोंको उन सब लोगों-के ऊपर बर्षाने लगे ॥ शत्रुनाशन शल्य अपने सारथीको रथसे गिरते देख उसके प्रियकार्य करनेकी इच्छासे क्रुद्ध होकर अभिमन्युकी ओर दौडे ८५-८७

द्रोणपर्वमें चौदह अध्याय समाप्त। [५७७]

द्रोणपर्वमें पन्द्रह अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले; हे सञ्जय ! तुमने नाना प्रकारका द्वन्द्व युद्ध जिस प्रकारसे वर्णन किया है, वह सब वृत्तान्त सुनकर मुझे नेत्रवान् होनेकी इच्छा होरही है। सब मनुष्य देवासुर युद्धके समान इस कुरु-पाण्डवोंके युद्धको सदा गाया करेंगे। इस तुमुल युद्धके वृत्ता-न्तको सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है,

तस्मादार्त्तायनेर्युद्धं सौभद्रस्य च शंस मे ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच— सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् ।
समुत्क्षिप्य नदन्क्रुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ४ ॥
तं दीप्तमिव कालाग्निं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।
जवेनाऽभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ५ ॥
सौभद्रोऽप्यशनिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
एह्येहीत्यब्रवीच्छल्यं यत्नाद्भीमेन वारितः ॥ ६ ॥
वारयित्वा तु सौभद्रं भीमसेनः प्रतापवान् ।
शल्यमासाद्य समरे तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥ ७ ॥
तथैव मद्रराजोऽपि भीमं दृष्ट्वा महाबलम् ।
ससाराऽभिमुखस्तूर्णं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ८ ॥
ततस्तूर्यनिनादाश्च शङ्खानां च सहस्रशः ।
सिंहनादाश्च सञ्जज्ञुर्भेरीणां च महास्वनाः ॥ ९ ॥
पश्यतां शतशो ह्यासीदन्योऽन्यमभिधावताम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च साधुसाध्विति निःस्वनाः ॥१०॥

इससे तुम मेरे निकट शल्य और अभिमन्युके युद्धका वृत्तान्त फिर वर्णन करो ॥ (१-३)

सञ्जय बोले, अपने सारथीका मरना देख शल्य क्रुद्ध होकर महा घोर लोहमयी गदा लेकर रथसे कूदके अभिमन्यु की ओर दौडे ॥ भीमसेनने शल्यको प्रज्वलित कालाग्नि और दण्डधारी यमराजके समान अभिमन्युकी ओर आते देखकर अपनी बडी गदा ग्रहण करके अत्यन्त वेगसे शल्यकी ओर दौडे ॥ अभिमन्युने भी वज्र तुल्य भयङ्कर गदा ग्रहण की, भीमसेनसे उन्हें निवारण किया; तौ भी वह शल्यको क्रोधपूर्वक युद्धभूमिमें 'आइये आइये,' ऐसा कहके पाचारण करने लगे ॥ (४-६)

प्रतापी भीमसेन युद्धमें अभिमन्युको रोककर उस संग्रामभूमिमें शल्यके संमुख अचलरूपसे पर्वतके समान खडे हुए; जैसे शार्दूल हाथीके संमुख दौडता है, वैसे ही पराक्रमी शल्य भीमसेनके संमुख उपस्थित हुए; अनन्तर सहस्रों शङ्ख भेरी आदि बाजोंके सहित वीरोंके सिंहनादका शब्द होने लगा ॥ तब कुरु-पाण्डवकी सेनाके सैकडों वीर उन दोनोंको इस प्रकार युद्धके निमित्त उपस्थित देखकर, दौडते हुए धन्य धन्य कहके उन दोनों वीरोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ (७-१०)

न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥ ११ ॥
तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः।
सोढुमुत्सहते लोके युधि कोऽन्यो वृकोदरात् ॥ १२ ॥
पट्टैर्जाम्बूनदैर्बद्धा बभूव जनहर्षणी।
प्रजज्वाल तदा विद्धा भीमेन महती गदा ॥ १३ ॥
तथैव चरतो मार्गान्मण्डलानि च सर्वशः।
महाविद्युत्प्रतीकाशा शल्यस्य शुशुभे गदा ॥ १४ ॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः।
आवर्तितगदाशृङ्गावुभौ शल्यवृकोदरौ ॥ १५ ॥
मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च।
निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ १६ ॥
ताडिता भीमसेनेन शल्यस्य महती गदा।
साग्निज्वाला महारौद्रा गदा तूर्णमशीर्यत ॥ १७ ॥
तथैव भीमसेनस्य द्विषताऽभिहता गदा।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृतो वृक्ष इवाऽऽबभौ ॥ १८ ॥

मद्रराज शल्यको छोड़के और कोई दूसरा पुरुष संग्रामभूमिमें भीमसेनके वेगको नहीं सह सकता, और भीमसेन के विना इस जगत्में दूसरा कोई भी पुरुष शल्यकी गदाके वेगको सहनेका उत्साह नहीं कर सकता॥ अनन्तर भीमसेन सुवर्णभूषित महाघोर गदाको जब घुमाने लगे, तब वह प्रज्वलित होकर वहां पर सब लोगोंके चित्तको प्रफुल्लित करने लगी॥ इधर महात्मा शल्यभी बिजली के समान अपनी महाघोर गदा लेकर जिस समय चारों ओर घूमते हुए मण्डलाकार फिराने लगे, उस समयमें उनकी वह भयङ्कर गदा अत्यन्त ही शोभित होने लगी॥ (११–१४)

शल्य और भीमसेन दोनों वीर पुरुष गदारूपी शृङ्गको खडे करके गर्जनेवाले वृषभके समान मण्डलाकार गतिसे चारों ओर घूमने लगे॥ मण्डलाकार गति और गदाके घुमानेके विषयमें उन दोनों महाबली पुरुषोंमें कोई भी किसीसे अधिक नहीं हुआ॥ (१५—१६)

शल्यकी महा भयङ्कर गदा भीमसेन की गदाके चोटसे अग्निकी ज्वालाओंसे युक्त होकर विशीर्ण होने लगी; और भीमसेनकी गदा भी शल्यकी गदाकी

गदा क्षिप्ता तु समरे मद्रराजेन भारत ।
व्योम दीपयमाना सा ससृजे पावकं मुहुः ॥ १९ ॥
तथैव भीमसेनेन द्विषते प्रेषिता गदा ।
तापयामास तत्सैन्यं महोल्का पतती यथा ॥ २० ॥
ते गदे गदिनां श्रेष्ठे समासाद्य परस्परम् ।
श्वसन्त्यो नागकन्येव ससृजाते विभावसुम् ॥ २१ ॥
नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ ।
तौ विचेरतुरासाद्य गदाग्र्याभ्यां परस्परम् ॥ २२ ॥
ततो गदाग्र्याभिहतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
ददृशाते महात्मानौ किंशुकाविव पुष्पितौ ॥ २३ ॥
शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदाभिघातसंह्रादः शक्राशनिरवोपमः ॥ २४ ॥
गदया मद्रराजेन सव्यदक्षिणमाहतः ।
नाऽकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाऽचलः ॥ २५ ॥

चोटसे मानो वर्षाकालके समय खद्योतसे युक्त वृक्षके समान प्रकाशित हुई ॥ (१७–१८)

हे राजन् ! मद्रराज शल्यकी चलाई हुई गदा मानो रणभूमिमें अग्निकी वर्षा करती हुई आकाशमें प्रकाशित होने लगी ॥ परन्तु भीमसेनके हाथसे छूटी महाभयङ्कर गदा बडी उल्काके समान शल्यके संमुख गिरकर उनकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंको भयभीत करने लगी। गदा युद्ध करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ उन दोनों पुरुषसिंहोंकी भयङ्करी गदा आपसमें मिलकर मानों लम्बी श्वास छोडनेवाली दो नागिनियोंकी भांति रगड खाके अग्नि उत्पन्न करने लगीं। १९–२१

जैसे दो बलवान् व्याघ्र नखसे और दो मतवारे हाथी अपने दांतोंसे आपसमें युद्ध करते हैं, वैसे ही वे दोनों महाबलवान् गदाधारी योद्धा युद्ध करते हुए रणभूमिमें भ्रमण करने लगे। अनन्तर क्षण भरमें वे दोनों गदाकी चोटसे रुधिरसे पूरित हो, फूले हुए पलाश वृक्षके समान रणभूमिमें दिखाई देने लगे। उन दोनों वीरोंकी गदाकी खटखटाहटका शब्द इन्द्रके वज्रके समान सब दिशाओंमें सुनाई देने लगा। २२–२४

जैसे पर्वत भेदित होकर भी कम्पित नहीं होता, वैसे ही शल्यकी गदासे बांयें और दाहिने पार्श्वसे घायल होके भी भीम रणभूमिसे विचलित नहीं हुए॥

तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो महाबलः।
नैर्यान्मद्राधिपस्तस्थौ वज्रैर्गिरिरिवाऽऽहतः ॥ २६ ॥
आपेततुर्महावेगौ समुच्छ्रितगदावुभौ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २७ ॥
अथाऽऽप्लुत्य पदान्यष्टौ संनिपत्य गजाविव।
सहसा लोहदण्डाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २८ ॥
तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्यां च भृशाहतौ।
युगपत्पेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव ॥ २९ ॥
ततो विह्वलमानं तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः।
शल्यमभ्यपतत्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३० ॥
दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाऽभिनिपीडितम्।
विचेष्टन्तं यथा नागं मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतम् ॥ ३१ ॥
ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामधिपं रणे।
अपोवाह रणात्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३२ ॥
क्षीबवद्विह्वलो वीरो निमेषात्पुनरुत्थितः।

मद्रराज शल्य भीमसेनकी गदाकी चोटसे अत्यन्त पीडित होकर भी धीरज धारण करके मानो वज्रसे भेदित हुए पर्वतके समान अचल रूपसे युद्धभूमिसे नहीं हटे॥ तिसके अनन्तर वे दोनों बलवान् योद्धा गदा ग्रहण करके फिर मण्डलाकार घुमाते, अपना घात देखकर दूसरेकी ओर चलाते हुए युद्धभूमिके बाहर और भीतर मार्ग करके चारों ओर अति विशेषसे भ्रमण करते हुए युद्ध करने लगे॥ (२५-२७)

अनन्तर सहसा आठ पग तक शीघ्र कूद करके लोहमयी गदासे आपसमें दोनोंने एक दूसरेके ऊपर हाथीके समान प्रहार किया॥ और गदाकी चोटसे अत्यन्त पीडित होकर एक ही समयमें वे दोनों वीर इन्द्रध्वजाके समान पृथ्वीमें गिर पडे॥ तब महाबलवान् कृतवर्मा विह्वल तथा लम्बी श्वासें छोडने वाले शल्यके समीपमें उस ही समय उपस्थित हुए॥ हे महाराज! महारथ कृतवर्मा मद्रराज शल्यको गदाकी चोटसे पीडित, गजराजके समान चेष्टा-रहित तथा मूर्च्छित देखकर उन्हें अपने रथ पर उठाके शीघ्र ही रणभूमिसे पृथक् होगये परन्तु महाबाहु भीमसेन रणभूमिमें क्षणभर विह्वल वा मूर्छित रह कर फिर गदा ग्रहण करके खडे हुए। हे भारत!

भीमोऽपि सुमहाबाहुर्गदापाणिरदृश्यत ॥ ३३ ॥
ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः पराङ्मुखम् ।
सनागपत्त्यश्वरथाः समकम्पन्त मारिष ॥ ३४ ॥
ते पाण्डवैरर्द्यमानास्तावका जितकाशिभिः ।
भीता दिशोऽन्वपद्यन्त वाततुन्ना घना इव ॥ ३५ ॥
निर्जित्य धार्तराष्ट्रांस्तु पाण्डवेया महारथाः ।
व्यरोचन्त रणे राजन्दीप्यमाना इवाऽग्नयः ॥ ३६ ॥
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च हर्षिताः ।
भेरीश्च वादयामासुर्मृदङ्गांश्चाऽऽनकैः सह ॥ ३७ ॥ [६१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि शल्यापयाने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच— तद्बलं सुमहद्दीर्णं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान् ।
दधारैको रणे राजन्वृषसेनोऽस्त्रमायया ॥ १ ॥
शरा दश दिशो मुक्ता वृषसेनेन संयुगे ।
विचेरुस्ते विनिर्भिद्य नरवाजिरथद्विपान् ॥ २ ॥

तुम्हारे पुत्र, गजपति, घुडसवार, रथी और सम्पूर्ण सेनाके शूरवीर योद्धा मद्रराज शल्यको रणभूमिसे पृथक् होते देखकर भयसे कांपने लगे। पाण्डवलोग जयसूचक सिंहनाद करके अपने शंखोंको बजाने लगे । उसे देखकर तुम्हारी सम्पूर्ण सेना पीडित और भयभीत होकर मानो वायुके झोंकेसे बादलोंके तितर बितर होनेके समान इधर उधर दौडने लगी ॥ (३३–३५)

हे राजन् ! महारथ पाण्डव लोग तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको इस प्रकारसे पराजित करके प्रज्वालित अग्निके समान रणभूमिमें विराजमान हुए; और हर्षित होके वार वार सिंहनाद करके शंख, भेरि, मृदङ्ग, आदि युद्धके जुझाऊ बाजोंको बजाने लगे । (३६–३७) [६१४]

द्रोणपर्वमें पन्द्रह अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें सोलह अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! पराक्रमी वृषसेन तुम्हारी सेनाको इधर उधर छिन्न भिन्न होती देखकर, अकेले ही अपने अस्त्र विद्याके प्रभावसे उन सबलोगोंको फिर युद्धभूमिमें स्थित करके चारों ओर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ वे सम्पूर्ण बाण शत्रु सेनाके मनुष्य, हाथी, घोडे और रथियोंके शरीरको भेदकर रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करते हुए

तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चेरुः सहस्रशः ।
भानोरिव महाराज घर्मकाले मरीचयः ॥ ३ ॥
तेनार्दिता महाराज रथिनः सादिनस्तथा ।
निपेतुरुर्व्यां सहसा वातभग्ना इव द्रुमाः ॥ ४ ॥
हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च महारथः ।
अपातयद्रणे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तमेकं समरे विचरन्तमभीतवत् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ६ ॥
नाकुलिस्तु शतानीको वृषसेनं समभ्ययात् ।
विव्याध चैनं दशभिर्नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ७ ॥
तस्य कर्णात्मजश्चापं छित्वा केतुमपातयत् ।
तं भ्रातरं परीप्सन्तो द्रौपदेयाः समभ्ययुः ॥ ८ ॥
कर्णात्मजं शरव्रातैरदृश्यं चक्रुरञ्जसा ।
तानदन्तोऽभ्यधावन्त द्रोणपुत्रमुखा रथाः ॥ ९ ॥

दिखाई देने लगे॥ महाराज ! वृषसेनके सहस्रों बाण आकाशमें सूर्य किरणके समान प्रकाशित होते हुए चारों ओर दिखाई देने लगे ॥ (१–३)

हे राजन् ! रथी, घुडसवार उसके बाणोंसे पीडित होके मानो प्रचण्डवायु के वेगसे टूटे हुए वृक्षके समान पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ महारथ वृषसेनने संग्राम-भूमिमें सैकडों सहस्रों रथी, घुड सवार, गजपति और पैदल सेनाके वीरोंको अपने अस्त्रोंके बलसे मारके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ हे राजन् ! युद्धभूमिमें अकेले ही वृषसेनको चारों ओर भ्रमण करते हुए देखके सम्पूर्ण राजाओंने एकत्रित होके उन्हे घेर लिया ॥ (४–६)

नकुल पुत्र शतानीकने वृषसेनके समीपमें उपस्थित होके मर्मभेदी दश बाणोंसे उसके ऊपर प्रहार किया ॥ कर्ण पुत्र वृषसेनने भी शतानीकके धनुषको काटके फिर एक बाणसे रथकी ध्वजाको भी काट डाला ॥ द्रौपदीके दूसरे और चारों पुत्र अपने भाई शतानीककी सहायता करनेके निमित्त वृषसेनके समीप उपस्थित हुए और शीघ्रही अपने बाणोंको चलाकर कर्ण पुत्र वृषसेनको छिपा दिया । हे राजन्! तब अश्वत्थामा प्रभृति महारथ योद्धा लोग सिंहनाद करते हुए जैसे बादल पर्वतों पर जलकी वर्षा करते हैं वैसे ही

छादयन्तो महाराज द्रौपदेयान्महारथान् ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पर्वताञ्जलदा इव ॥ १० ॥
तान्पाण्डवाः प्रत्यगृह्णंस्त्वरिताः पुत्रगृद्धिनः ।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्चोद्यतायुधाः॥ ११ ॥
तद्युद्धमभवद्धोरं सुमहल्लोमहर्षणम् ।
त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव दानवैः ॥ १२ ॥
एवं युयुधिरे वीराः संरब्धाः कुरुपाण्डवाः ।
परस्परमुदीक्षन्तः परस्परकृतागसः ॥ १३ ॥
तेषां ददृशिरे कोपाद्वपूंष्यमिततेजसाम् ।
युयुत्सूनामिवाऽऽकाशे पतत्रिवरभोगिनाम् ॥ १४ ॥
भीमकर्णकृपद्रोणद्रौणिपार्षतसात्यकैः ।
बभासे स रणोद्देशः कालसूर्य इवोदितः ॥ १५ ॥
तदासीत्तुमुलं युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ।
महाबलानां बलिभिर्दानवानां यथा सुरैः ॥ १६ ॥

द्रौपदीके पुत्रोंको बाणोंसे आच्छादित करते हुए वेगपूर्वक उनकी ओर दौडे ॥ (७-१०)

उन महारथियोंको द्रौपदीपुत्रोंकी ओर आते देख पांचाल, कैकेय, मत्स्य और सृञ्जय योद्धा तथा पाण्डव लोग शस्त्र ग्रहण करके शीघ्रताके सहित उन की ओर दौडे ॥ जैसे दानवोंके सङ्गमें देवताओंका संग्राम हुआ था, वैसेही तुम्हारी सेनाके महारथ योद्धाओंके सङ्ग पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंका महाघोर रोएंको खडा करनेवाला संग्राम होने लगा ॥ इसी रीति कौरव और पाण्डवों की सेनाके और सब वीर विजयकी इच्छा करके क्रोधपूर्वक एक दूसरेकी ओर देख के आपसमें युद्ध करने लगे ॥ (११-१३)

महातेजस्वी युद्धकी इच्छावाले शूरवीरोंके शरीर क्रोधके वशमें होकर आकाशमें स्थित गरुड और सर्पके समान दिखाई देने लगे ॥ वह रणभूमि भीमसेन, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न और सात्यकि आदि महावीरोंके तेजसे ऐसे शोभित हुई, जैसे सूर्यके उदय होने पर सर्वत्र प्रकाश होजाता है ॥ आपसमें एक दूसरेके ऊपर अस्त्रोंको चलानेवाले उन महावीर योद्धाओंका ऐसा संग्राम होने लगा, जैसे महाबलवान् दानवोंके संग देवताओंका युद्ध हुआ था ॥ (१४—१६)

ततो युधिष्ठिरानीकमुद्धूतार्णवनिःस्वनम् ।
त्वदीयमवधीत्सैन्यं सम्प्रद्रुतमहारथम् ॥ १७ ॥
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा शत्रुभिर्भृशमर्दितम् ।
अलं द्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोऽभ्यभाषत ॥ १८ ॥
ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त इव द्विपः ।
प्रविश्य पाण्डवानीकं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ १९ ॥
तमाविध्यच्छितैर्बाणैः कङ्कपत्रैर्युधिष्ठिरः ।
तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा तं द्रुतं समुपाद्रवत् ॥ २० ॥
चक्ररक्षः कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः ।
दधार द्रोणमायान्तं वेलेव सरितां पतिम् ॥ २१ ॥
द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा कुमारेण द्विजर्षभम् ।
सिंहनादरवो ह्यासीत्साधुसाध्विति भाषितम्॥ २२ ॥
कुमारस्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः सिंहवच्च नदन्मुहुः ॥ २३ ॥
संवार्य च रणे द्रोणं कुमारस्तु महाबलः ।

अनन्तर समुद्रके मथनके समान शब्दके सहित युधिष्ठिरकी सेनाने तुम्हारी सेनाके वीरोंके ऊपर प्रहार करना आरम्भ किया; उससे तुम्हारी सेनाके कितने एक महारथ योद्धा भी भाग गये ॥ द्रोणाचार्य अपनी सेनाको शत्रुओंके सम्मुखसे भागती हुई देखकर बोले, "हे शूरवीर महारथ पुरुषो ! आप लोगोंको युद्धसे भागना उचित नहीं है।" ऐसा वचन कह कर महापराक्रमी द्रोणाचार्य क्रुद्ध होके चार दांतवाले गजराजके समान वेगपूर्वक पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश करके राजा युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ॥ (१७–१९)

युधिष्ठिर कङ्कपत्रयुक्त शाणित बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करने लगे । द्रोणाचार्य शीघ्र ही उनके धनुषको अपने बाणोंसे काटके शीघ्रताके सहित उनकी ओर दौडे । जैसे तटकी भूमि समुद्रको सीमासे आगे नहीं बढने देती, वैसे ही युधिष्ठिरके चक्ररक्षक पाञ्चाल सेनाके किसी कुमार नामक बलवान योद्धाने द्रोणाचार्य को निवारण किया ॥ द्रोणाचार्यको कुमारसे निवारित देखकर पाण्डवोंकी सेनाके सब शूरवीर योद्धा सिंह नाद कर " धन्य धन्य " कहके उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ महारथ कुमारने सहस्रों बाणोंसे द्रोणाचार्यको निवारण

शरैरनेकसाहस्रैः कृतहस्तो जितश्रमः ॥ २४ ॥
तं शूरमार्यव्रतिनं मन्त्रास्त्रेषु कृतश्रमम् ।
चक्ररक्षं परामृद्नात्कुमारं द्विजपुङ्गवः ॥ २५ ॥
स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्दिशः ।
तव सैन्यस्य गोप्ताऽऽसीद्भारद्वाजो द्विजर्षभः ॥ २६ ॥
शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् ।
नकुलं पञ्चभिर्विध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २७ ॥
युधिष्ठिरं द्वादशभिर्द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
सात्यकिं पञ्चभिर्विध्वा मत्स्यं च दशभिः शरैः ॥ २८ ॥
व्यक्षोभयद्रणे योधान्यथामुख्यमविद्रवन् ।
अभ्यवर्त्तत सम्प्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ २९ ॥
युगन्धरस्ततो राजन्भारद्वाजं महारथम् ।
वारयामास संक्रुद्धं वातोद्धतमिवाऽर्णवम् ॥ ३० ॥
युधिष्ठिरं स विध्वा तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
युगन्धरं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३१ ॥
ततो विराटद्रुपदौ केकयाः सात्यकिः शिबिः ।

करके उनका वक्षस्थल विद्ध किया ॥ और वारवार सिंहनाद करने लगे ॥ (२०–२४)

ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने उस शूरवीर श्रेष्ठ पुरुषोंके व्रतमें स्थित महा अस्त्रोंके जाननेवाले महारथ कुमारको अपने शस्त्रों के बलसे मारके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ अनन्तर द्रोणाचार्य सम्पूर्ण सेनाके बीच में होकर अपनी सेनाकी रक्षा करने लगे । उन्होंने बारह वाणोंसे शिखण्डी, बीस वाणोंसे नकुल,सातवाणोंसे सहदेव, बारह वाणोंसे राजा युधिष्ठिर, तीन तीन वाणोंसे द्रौपदीके पुत्रों, पांच वाणोंसे सात्यकि और दश वाणोंसे राजा विराटको विद्ध करके फिर मुख्य मुख्य वीरोंको अपने वाणोंसे पीडित करते हुए भयभीत कर के अन्तमें कुन्तीपुत्र, युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे वेगपूर्वक उनकी ओर दौडे ॥ (२५–२९)

हे राजन् ! अनन्तर युगन्धरने वायु के झोंकेसे समुद्रकी तरङ्गके समान वेग पूर्वक द्रोणाचार्यको युधिष्ठिरके संमुख आते देखकर अपने वाणोंकी वर्षासे उन्हें निवारण करने लगे ॥ द्रोणाचार्य ने अपने तीक्ष्ण वाणोंसे राजा युधिष्ठिर को विद्ध करके एक भल्लसे युगन्धरको

व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः सिंहसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥
एते चाऽन्ये च बहवः परीप्सन्तो युधिष्ठिरम् ।
आववुस्तस्य पन्थानं किरन्तः सायकान्बहून् ॥ ३३ ॥
व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः ।
पञ्चाशता शितै राजंस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३४ ॥
त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विद्ध्वा महारथम् ।
प्राहसत्सहसा हृष्टस्त्रासयन्वै महारथान् ॥ ३५ ॥
ततो विस्फार्य नयने धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
तलशब्दं महत्कृत्वा द्रोणस्तं समुपाद्रवत् ॥ ३६ ॥
ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
व्याघ्रदत्तस्य चाऽऽक्रम्य भल्लाभ्यामहरद्बली ॥ ३७ ॥
तान्प्रमृज्य शरव्रातैः पाण्डवानां महारथान् ।
युधिष्ठिररथाभ्याशे तस्थौ मृत्युरिवाऽन्तकः ॥ ३८ ॥
ततोऽभवन्महाशब्दो राजन्यौधिष्ठिरे बले ।
'हतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥ ३९ ॥

वध करके रथसे पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ अनन्तर विराट, द्रुपद, कैकेयराज, सात्यकि, शिबि, पाञ्चाल योद्धा व्याघ्रदत्त, पराक्रमी सिंहसेन और दूसरे बहुतेरे योद्धाओंने राजा युधिष्ठिरकी रक्षाके निमित्त आगे बढकर अनेक बाणों को चलाकर द्रोणाचार्यके मार्गको रुद्ध कर के उन्हें चारों ओरसे घेर लिया॥ ३०-३३

हे राजन् ! पाञ्चाल योद्धा व्याघ्रदत्तने पचास तीक्ष्ण बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया; उसे देखके पाण्डवोंकी ओरके योद्धा सिंहनाद करने लगे ॥ सिंहसेन भी शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्य को विद्ध कर शत्रुसेनाके वीरोंको भयसे व्याकुल करके सिंहनाद करने लगे ॥ अनन्तर द्रोणाचार्य सिंहसेनकी ओर क्रोधपूर्वक देखकर धनुषटङ्कार के शब्दसे युद्धभूमिको पूरित करते हुए सिंहसेनकी ओर दौडे और दो भल्लास्त्रसे सिंहसेन और व्याघ्रदत्तके सिरोंको कुण्डलोंके सहित काटके पृथ्वी-पर गिरा दिया ॥ (३४–३७)

अनन्तर अपने अस्त्रोंके प्रभावसे युधिष्ठिरकी सेनाके सम्पूर्ण वीरोंको विकल करके यमराजके समान धर्मराज युधिष्ठिरके समीप उपस्थित हुए। युधिष्ठिर की सेना में " धर्मराज युधिष्ठिर मारे गये " ऐसा ही महा घोर कोलाहल

अब्रुवन्सैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम् ।
अद्य राजा धार्त्तराष्ट्रः कृतार्थो वै भविष्यति ॥ ४० ॥
अस्मिन्मुहूर्ते द्रोणस्तु पाण्डवं गृह्य हर्षितः ।
आगमिष्यति नो नूनं धार्त्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ४१ ॥
एवं सञ्जल्पतां तेषां तावकानां महारथः ।
आयाज्जवेन कौन्तेयो रथघोषेण नादयन् ॥ ४२ ॥
शोणितोदां रथावर्त्तां कृत्वा विशसने नदीम् ।
शूरास्थिचयसङ्कीर्णां प्रेतकूलापहारिणीम् ॥ ४३ ॥
तां शरौघमहाफेनां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ।
नदीमुत्तीर्य वेगेन कुरून्विद्राव्य पाण्डवः ॥ ४४ ॥
ततः किरीटी सहसा द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४५ ॥
शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान्सन्दधानस्य चाऽनिशम् ।
नाऽन्तरं ददृशे कश्चित्कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥ ४६ ॥
न दिशो नाऽन्तरिक्षं च न द्यौनैव च मेदिनी ।

होने लगा । तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा द्रोणाचार्यका पराक्रम देखकर कहने लगे, आज धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनका मनोरथ पूर्ण होगा; अब थोडे ही समयमें द्रोणाचार्य धर्मराज युधिष्ठिरको युद्धमें ग्रहण करके हर्षपूर्वक दुर्योधनके समीप उपस्थित होंगे ।३८-४१

तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग इसी भांति कह रहे थे, उसही समय महारथ कुन्तीपुत्र अर्जुन रथपर चढे हुए वेग पूर्वक अपने रथके शब्दसे पृथ्वीको अनु-नादित करते, रुधिररूपी जल, रथरूपी नौका, शूरवीरोंके अस्थियोंसे परिपूर्ण, भूत प्रेतोंसे सेवित, सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करनेवाली भयङ्करी नदी उत्पन्न करके वहांपर आके उपस्थित हुए ॥ वह सहसा अपने बाणोंकी वर्षासे कुरुसेनाके योद्धाओंको तितर बितर करते, सम्पूर्ण दिशाओंको बाणोंसे पूरित कर समस्त सेनाको मोहित करते हुए अपने बाणोंके समूहरूपी महाफेनसे युक्त रुधिरकी नदी वेगपूर्वक पार होकर द्रोणाचार्यकी सेनाके संमुख आकर उपस्थित हुए ॥ (४२-४५)

यशस्वी कुन्तीपुत्र अर्जुन इतनी शीघ्रतासे बाणोंको सन्धान करने तथा चलाने लगे, कि उनकी ओर तनिक भी किसीने देखनेका अवकाश नहीं पाया ॥ महाराज ! उस समय अर्जुनके बाणोंसे

अदृश्यन्त महाराज बाणभूता इवाऽभवन् ॥ ४७ ॥
नाऽदृश्यत तदा राजंस्तत्र किञ्चन संयुगे ।
बाणान्धकारे महति कृते गाण्डीवधन्वना ॥ ४८ ॥
सूर्ये चाऽस्तमनुप्राप्ते तमसा चाऽभिसंवृते ।
नाऽज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन ॥ ४९ ॥
ततोऽवहारं चक्रुस्ते द्रोणदुर्योधनादयः ।
तान्विदित्वा पुनस्त्रस्तानयुद्धमनसः परान् ॥ ५० ॥
स्वान्यनीकानि बीभत्सुः शनकैरवहारयत् ।
ततोऽभितुष्टुवुः पार्थं प्रहृष्टाः पाण्डुसृञ्जयाः ॥ ५१ ॥
पञ्चालाश्च मनोज्ञाभिर्वाग्भिः सूर्यमिवर्षयः ।
एवं स्वशिबिरं प्रायाज्जित्वा शत्रून्धनञ्जयः ॥ ५२ ॥
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै स केशवः ॥ ५३ ॥
मसारगल्वर्कसुवर्णरूप्यैर्वज्रप्रवालस्फटिकैश्च मुख्यैः ।
चित्रे रथे पाण्डुसुतो बभासे नक्षत्रचित्रे वियतीव चन्द्रः ॥ ५४ ॥[६६८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि प्रथमदिवसावहारे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ समाप्तं च द्रोणाभिषेकपर्व ॥

दिशा, आकाश, और पृथ्वी आदि कुछ भी नहीं दीख पड़ती थी, सम्पूर्ण स्थान बाणमय होगया ॥ गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनने लगातार अपने बाणोंको चलाकर आकाश मण्डलको इस प्रकारसे छा लिया, कि सम्पूर्ण युद्धभूमिमें अन्धकार होगया॥ उस समय सूर्य भी धूलिके उड़नेसे अस्त प्राय होगये ; तब उस दशामें शत्रु मित्र कोई भी नहीं बोध होता था ॥ ४६-४९

अनन्तर द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदि कौरव लोगोंने अपनी सेनाको युद्ध से निवृत्त किया। अर्जुनने भी शत्रुओंको भयभीत और युद्धसे पराजित देखकर धीरे धीरे अपनी सेनाको भी युद्धसे निवृत्त किया। जैसे ऋषिलोग सूर्यदेवकी स्तुति करते हैं वैसे ही पाण्डव, सृञ्जय और पाञ्चाल योद्धा लोग प्रसन्न चित्तसे अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे। इसी प्रकारसे शत्रुओंको जीतकर कृष्ण और अर्जुनने अपनी सम्पूर्ण सेनाको आगे करके अपने शिबिरोंकी ओर प्रस्थान किया। जैसे चन्द्रमण्डल नक्षत्रोंसे चित्रित आकाशमें विराजमान होता है, वैसे ही पाण्डुपुत्र अर्जुन अत्यन्त सुन्दर चन्द्रकान्त, मरकत, सूर्यकान्त, सुवर्ण,

२ संशप्तकवधपर्व।

सञ्जय उवाच— ते सेने शिबिरं गत्वा न्यविशेतां विशाम्पते।
यथाभागं यथान्यायं यथागुल्मं च सर्वशः ॥ १ ॥
कृत्वाऽवहारं सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मनाः।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनञ्जये।
शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे देवैरपि युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
इति तद्वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे।
मा विशङ्कीर्वचो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ४ ॥
अपनीते तु योगेन केनचिच्छ्वेतवाहने।
तत एष्यति ते राजन्वशमेष युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥
कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु।
तमजित्वा न कौन्तेयो निवर्तेत कथञ्चन ॥ ६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराजमहं नृप।

रौप्य, हीरा, प्रवाल और स्फटिक मणियोंसे चित्रित रथपर प्रकाशित होने लगे ॥ (५०–५४) [६६८]

द्रोणपर्वमें सोलह अध्याय और द्रोणाभिषेकपर्व समाप्त।

द्रोणपर्वमें सतरह अध्याय और संशप्तकवधपर्व।

सञ्जय बोले, हे प्रजानाथ! युद्धसे निवृत्त होनेपर सेना विधिपूर्वक अपने शिविरोंपर उपस्थित हुई॥ तब द्रोणाचार्य दुर्योधनको देखके अत्यन्त लज्जित होकर यह वचन बोले ॥ मैंने पहिले ही कहा था, कि युद्धभूमिमें अर्जुनके रहते देवता लोग भी युधिष्ठिरको नहीं ग्रहण कर सकेंगे ॥ आप लोगोंके अत्यन्त यत्नवान् होने पर भी संमुख हीमें अर्जुनने जैसा कार्य किया, वह सब आप लोगोंने नेत्रों से देखा है, इस से " कृष्ण और पाण्डवलोग युद्धमें अजेय हैं " मेरे इस वचनमें कुछ भी शंका न करनी चाहिये ॥ (१–४)

हे राजन्! यदि किसी उपायसे तुम श्वेतवाहन अर्जुनको युधिष्ठिरके समीप से हटा सको, तो राजा युधिष्ठिर तुम्हारे वशमें हो सकेंगे ॥ हे भारत! कोई बलवान् पुरुष युद्धके निमित्त अर्जुनको आवाहन करके दूसरे स्थानमें लेआवे, तो अर्जुन विना उसे युद्धमें पराजित किये कदापि संग्रामसे निवृत्त न हो सकेंगे ॥ जिस समय अर्जुन उस

ग्रहीष्यामि चमूं भित्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ ७ ॥
अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम् ।
मामुपायान्तमालोक्य गृहीतं विद्धि पाण्डवम् ॥ ८ ॥
एवं तेऽहं महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
समानेष्यामि सगणं वशमद्य न संशयः ॥ ९ ॥
यदि तिष्ठति संग्रामे मुहूर्त्तमपि पाण्डवः ।
अथाऽपयाति संग्रामाद्विजयात्तद्विशिष्यते ॥ १० ॥
सञ्जय उवाच— द्रोणस्य तद्वचः श्रुत्वा त्रिगर्त्ताधिपतिस्तदा ।
भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥
वयं विनिकृता राजन्सदा गाण्डीवधन्वना ।
अनागःस्वपि चाऽऽगस्तत्कृतमस्मासु तेन वै ॥ १२ ॥
ते वयं स्मरमाणास्तान्विनिकारान्पृथग्विधान् ।
क्रोधाग्निना दह्यमाना न शेमहि सदा निशि ॥ १३ ॥
स नो दिष्ट्याऽस्त्रसम्पन्नश्चक्षुर्विषयमागतः ।
कर्त्तारः स्म वयं कर्म यच्चिकीर्षाम हृद्गतम् ॥ १४ ॥

युद्धमें प्रवृत्त रहेंगे, उस ही समयमें मैं पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाको भेद करके धृष्टद्युम्नके सम्मुख ही में धर्मराज युधिष्ठिरको ग्रहण करके ले आऊंगा ॥ (५-७)

युधिष्ठिर यदि मुझे युद्धमें प्रवृत्त हुआ देख कर अर्जुनके निकट न रहने के कारण रणभूमि छोडके मेरे सम्मुख से भाग न जावेंगे, तो तुम उनको पकडा हुआ ही समझ रक्खो ॥ हे महाराज ! इसी रीतिसे मैं धर्मराज युधिष्ठिरको उनके अनुयायिओंके सहित तुम्हारे वशमें कर दूंगा । यदि धर्मराज युधिष्ठिर रणभूमिसे भाग जावेंगे तौभी यह विजयसे भी अधिक है ॥ (८-१०)

सञ्जय बोले, हे राजन् ! द्रोणाचार्यके वचनको सुनकर त्रिगर्त्तराज अपने भाइयोंके सहित यह वचन बोले ॥ हे राजन् ! गाण्डीव धारी अर्जुनने बार बार हमलोगोंके सङ्ग शत्रुता की है, हमलोग निरपराधि थे, तो भी उसने हमारे ऊपर अत्याचार किया है ॥ उसके उन सब अत्याचारोंको स्मरण करके हमलोग क्रोधरूपी अग्निमें जले जाते हैं; रात्रिके समय हमलोगोंको अच्छी प्रकार से निद्रा भी नहीं लगती है ॥ ११-१३

हम लोगोंकी प्रारब्धहीसे अर्जुन रण भूमिमें शस्त्रधारी होकर हमारे संमुख दीख पडा है; इससे हम लोगोंको जिस

भवतश्च प्रियं यत्स्यादस्माकं च यशस्करम् ।
वयमेनं हनिष्यामो निकृष्याऽऽयोधनाद्बहिः ॥ १५ ॥
अद्याऽस्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्त्ताऽथवा पुनः ।
सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥ १६ ॥
एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यवर्मा च भारत ।
सत्यव्रतश्च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च ॥ १७ ॥
सहिता भ्रातरः पञ्च रथानामयुतेन च ।
न्यवर्तन्त महाराज कृत्वा शपथमाहवे ॥ १८ ॥
मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।
सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्त्तः प्रस्थलाधिपः ॥ १९ ॥
मावेल्लकैर्ललित्थैश्च सहितो मद्रकैरपि ।
रथानामयुतेनैव सोऽगमद्भ्रातृभिः सह ॥ २० ॥
नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः ।
समुत्थितं विशिष्टानां शपथार्थमुपागमत् ॥ २१ ॥
ततो ज्वलनमानर्च्य हुत्वा सर्वे पृथक् पृथक् ।
जगृहुः कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च ॥ २२ ॥

कार्यके करनेकी बहुत दिनसे अभिलाष थी, उसे आज पूर्ण करेंगे ॥ हम लोग उस अर्जुनको संग्रामभूमिसे बाहर बुला कर युद्ध करके उसका वध करेंगे; ॥ ऐसा होनेहीसे तुम्हारा प्रियकार्य और हम लोगोंका यश विख्यात होगा ॥ आज पृथ्वी अर्जुनसे रहित होगी, वा त्रिगर्त्त-राजसे शून्य हो जावेगी । हमलोगोंने तुम्हारे समीपमें यह सत्य प्रतिज्ञा की है-यह कदापि मिथ्या न होवेगी॥ (१४-१६)

सञ्जय बोले, हे महाराज ! सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा ये पांचों भाई शपथ करके दश हजार रथोंके सहित प्रतिज्ञा करके युद्ध करने के निमित्त तैयार हुए ; और मालव, तुण्डिक देशीय योद्धा लोग तीस हजार रथोंके सहित युद्ध करने को उद्यत हुए ! त्रिगर्त्त देशीय प्रस्थलाधिपति, पुरुषसिंह सुशर्मा दस हजार रथ और मावेल्लक, ललित्थ,मद्र देशीय सब तथा अपने भाइयोंके सहित युद्धके निमित्त गमन करने लगे ॥ (१७—२०)

अनन्तर मुख्य मुख्य शूर वीरोंमेंसे दस हजार रथी उस सम्पूर्ण रथसेनासे निकलके शपथ करनेके लिये इकट्ठे हुए । अनन्तर उनलोगोंने अग्नि की पूजा कर

ते च बद्धतनुत्राणा घृताक्ताः कुशचीरिणः ।
मौर्वीमेखलिनो वीराः सहस्रशतदक्षिणाः ॥ २३ ॥
यज्वानः पुत्रिणो लोक्याः कृतकृत्यास्तनुत्यजः ।
योक्ष्यमाणास्तदाऽऽत्मानं यशसा विजयेन च ॥ २४ ॥
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः क्रतुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणैः ।
प्राप्याँल्लोकान्सुयुद्धेन क्षिप्रमेव यियासवः ॥ २५ ॥
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च निष्कान्दत्वा पृथक्पृथक् ।
गाश्च वासांसि च पुनः समाभाष्य परस्परम् ॥ २६ ॥
प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपागम्य रणव्रतम् ।
तस्मिन्नग्नौ तदा चक्रुः प्रतिज्ञां दृढनिश्चयाः ॥ २७ ॥
शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचो बभाषिरे ।
सर्वे धनञ्जयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे ॥ २८ ॥
ये वै लोकाश्चाऽव्रतिनां ये चैव ब्रह्मघातिनाम् ।
मद्यपस्य च ये लोका गुरुदाररतस्य च ॥ २९ ॥
ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राजपिण्डापहारिणः ।

पृथक् रूपसे हवनकर कुश, वस्त्र और विचित्र कवचोंको ग्रहण किया॥२१-२२

सब वीर लोग सैकडों सहस्रों प्रकारकी दक्षिणा देनेवाले, वीरपदसे पुकारे जाने के योग्य यज्ञ करनेवाले पुत्रवान लोक में विख्यात और कृतकृत्य थे। सब ही कवचधारी, घृतसे डूबे हुए कुश और चीर धारण करने वाले, मौर्वी मेखलाधारी थे, शरीरकी आशा छोडके यश और विजयके संग आत्माका योग करने अथवा ब्रह्मचर्य, वेदाध्यन और उत्तम दक्षिणा से जो सब लोक प्राप्त होते हैं, उन लोकोंको धर्म युद्धसे प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्राह्मणोंको पृथक् पृथक् वस्त्र, गऊ, स्वर्णमुद्रा आदि दान देके तृप्त किया। फिर आपसमें दृढ निश्चयके सहित अग्नि जलाके युद्धव्रत स्थित करके अग्निके समीप खडे हो सम्पूर्ण प्राणियोंके बीच ऊंचे स्वरसे अर्जुनके वधके विषयमें यह प्रतिज्ञा करने लगे॥ (२३-२८)

"हम लोग यदि युद्धमें बिना अर्जुन को पराजित किये ही निवृत्त होवे, अथवा उसके अस्त्रोंसे पीडित होके यदि भयसे युद्धभूमिसे पृथक् होवें; तो ऐसा होने पर जो लोग मिथ्या वादी, ब्रह्म-हत्यारे, मद पीनेवाले, गुरुपत्नीगामी, और जो लोग राजाके दिये हुए अन्नको

शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा घ्नतः ॥ ३० ॥
अगारदाहिनां चैव ये च गां निघ्नतामपि ।
अपकारिणां च ये लोका ये च ब्रह्मद्विषामपि ॥ ३१ ॥
स्वभार्यामृतुकालेषु मोहाद्वै नाऽभिगच्छताम् ।
श्राद्धमैथुनिकानां च ये चाऽप्यात्मापहारिणाम् ॥ ३२ ॥
न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयतां च ये ।
क्लीबेन युध्यमानानां ये च नीचानुसारिणाम् ॥ ३३ ॥
नास्तिकानां च ये लोका येऽग्निमातृपितृत्यजाम् ।
तानाप्नुयामहे लोकान्ये च पापकृतामपि ॥ ३४ ॥
यद्यहत्वा वयं युद्धे निवर्त्तेम धनञ्जयम् ।
तेन चाऽभ्यर्दितास्त्रासाद्भवेम हि पराङ्मुखाः ॥ ३५ ॥
यदि त्वसुकरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे ।
इष्टाँल्लोकान्प्राप्नुयामो वयमद्य न संशयः ॥ ३६ ॥
एवमुक्त्वा तदा राजंस्तेऽभ्यवर्तन्त संयुगे ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं प्रति ॥ ३७ ॥

भोग करके यथा समयपर राजकार्य नहीं करते, जो शरणागत पुरुषोंको त्यागते, जो याञ्चा करनेवालोंको मारते, जो घरको जला देते, जो गऊ हत्या करते, जो सब प्राणियोंका अपकार करते, जो ब्राह्मणसे द्वेष करते, जो मोहके वशमें होकर ऋतुमती भार्या गमन नहीं करते, जो लोग श्राद्ध करके उस ही दिन मैथुन करते हैं, जो अपने आत्माके यथार्थ भावको गोपन करके मिथ्या प्रकाशित करते हैं, जो दूसरेके धनको हरण करते, जो लोग प्रतिज्ञा पालन नहीं करते, जो नपुंसकोंके सङ्ग युद्ध करते हैं, जो दीन दुःखियोंके धनको हरण कर लेते, जो नास्तिक, अग्नित्यागी मातृत्यागी और पितृत्यागी तथा जो लोग और भी दूसरे अनेक प्रकारके पापाचरण करते हैं; वे सब शरीर त्यागनेके अनन्तर जिन सब पाप लोकोंमें गमन करते हैं; हमलोग भी उन्हीं लोगोंको पावें। यदि हमलोग युद्धमें अलौकिक पराक्रम प्रकाशित करके कठिन कर्म कर सकें, तब तो हम लोगों के अभिलाप लोक अवश्यही प्राप्त होवेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥" (२९-३६)

हे राजन्! वे लोग इसी प्रकारसे प्रतिज्ञा कर पितृ सेवित दाक्षिण दिशाकी ओर अर्जुनको आवाहन करके युद्धमें

आहूतस्तैर्नरव्याघ्रैः पार्थः परपुरञ्जयः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ३८ ॥
आहूतो न निवर्त्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
संशप्तकाश्च मां राजन्नाह्वयन्ति महामृधे ॥ ३९ ॥
एष च भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयते रणे ।
वधाय सगणस्याऽस्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४० ॥
नैतच्छक्नोमि संसोढुमाह्वानं पुरुषर्षभ ।
सत्यं ते प्रतिजानामि हतान्विद्धि परान्युधि ॥ ४१ ॥
युधिष्ठिर उवाच- श्रुतं ते तत्त्वतस्तात यद् द्रोणस्य चिकीर्षितम् ।
यथा तदनृतं तस्य भवेत्तत्त्वं समाचर ॥ ४२ ॥
द्रोणो हि बलवाञ्शूरः कृतास्त्रश्च जितश्रमः ।
प्रतिज्ञातं च तेनैतद्ग्रहणं मे महारथ ॥ ४३ ॥
अर्जुन उवाच— अयं वै सत्यजिद्राजन्नद्य त्वां रक्षिता युधि ।

प्रवृत्त हुए ॥ पराये देशके जीतनेवाले अर्जुन उन सम्पूर्ण राजाओंके बुलाने पर उसी समय धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले, हे राजन् ! मेरा यही व्रत है, कि यदि कोई युद्धके निमित्त मुझे आवाहन करेगा, तो मैं बिना उसका वध किये, कदापि युद्धसे निवृत्त न होउंगा ॥ इस समय राजाओंने मेरे सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते शपथ किया है; वेही संशप्तक अर्थात् शपथ करनेवाले राजालोग महाघोर युद्ध करनेके निमित्त मुझे आवाहन करते हैं यह सुशर्मा अपने भाइयों के संग मिलकर मुझे आवाहन कर रहा है; इससे अनुयायियोंके सहित इस सुशर्मा के वधके निमित्त तुम मुझे युद्ध करनेके वास्ते आज्ञा दो। हे पुरुषर्षभ! मैं युद्धमें किसीके आवाहन को नहीं सह सकता। मैं तुम्हारे निकटमें यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि युद्धमें शत्रु लोग अवश्य मारे जावेंगे; इसको आप निश्चय ही सत्य समझिये। (३७-४१)

राजा युधिष्ठिर बोले, हे तात! तुमने द्रोणाचार्यके कर्त्तव्य कर्मका अभिप्राय सुना है, इससे जिसमें उनका मनोरथ सिद्ध न होसके उसही उपायका विधान करो ॥ हे महारथ अर्जुन ! द्रोणाचार्य बलवान् और सब अस्त्र शस्त्रोंके जानने वाले तथा युद्धमें अत्यन्त ही निपुण हैं, उन्होंने मेरे ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा की है। (४२—४३)

अर्जुन बोले,हे राजन्! यह योद्धाओंमें श्रेष्ठ सत्यजित् आज तुम्हारी रक्षा करेंगे;

म्रियमाणे च पाञ्चाल्ये नाऽऽचार्यः काममाप्स्यति ॥४४॥
हते तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो ।
सर्वैरपि समेतैर्वा न स्थातव्यं कथञ्चन ॥ ४५ ॥
सञ्जय उवाच— अनुज्ञातस्ततो राज्ञा परिष्वक्तश्च फाल्गुनः ।
प्रेम्णा दृष्टश्च बहुधा ह्याशिषश्चाऽस्य योजिताः॥ ४६॥
विहायैनं ततः पार्थस्त्रिगर्त्तान्प्रत्ययाद्बली ।
क्षुधितः क्षुद्विघातार्थं सिंहो मृगगणानिव ॥ ४७ ॥
ततो दौर्योधनं सैन्यं मुदा परमया युतम् ।
ऋतेऽर्जुनं भृशं क्रुद्धं धर्मराजस्य निग्रहे ॥ ४८ ॥
ततोऽन्योन्येन ते सैन्ये समाजग्मतुरोजसा ।
गङ्गासरय्वौ वेगेन प्रावृषीवोल्वणोदके ॥ ४९ ॥ [७१७]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि धनञ्जयप्रयाणे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच—ततः संशप्तका राजन्समे देशे व्यवस्थिताः ।
व्यूह्याऽनीकं रथैरेव चन्द्राकारं मुदा युताः ॥ १ ॥

इनके जीवित रहते आचार्यका मनोरथ सिद्ध न होसकेगा ॥ हे राजेन्द्र ! यदि यह पुरुषसिंह सत्यजित युद्धमें मारे जावे, तो उस समय यदि सम्पूर्ण सेनाके योद्धा मिलकर भी रणभूमिमें तुम्हारी रक्षा करें, तो भी तुम कदापि युद्धभूमि में न ठहरना ॥ (४४–४५)

सञ्जय बोले, राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको प्रीति पूर्वक देखके आलिङ्गन किया फिर उनको युद्धके निमित्त आज्ञा देकर अनेक प्रकारका आशीर्वाद प्रदान किया ॥ बलवान् अर्जुन युधिष्ठिर से ऐसाही कह कर उनकी आज्ञा लेकर त्रिगर्त्त राजकी ओर इस प्रकारसे दौडे जैसे भूखा सिंह अपनी क्षुधाकी शान्तिके निमित्त मृगोंके समूहकी ओर दौडता है ॥ अनन्तर जब धर्मराज युधिष्ठिर अर्जुनसे रहित हुए, तब दुर्योधनकी सम्पूर्ण सेना उनको ग्रहण करनेके निमित्त अत्यन्त हर्षित होकर क्रुद्ध हुई ॥ इसके अनन्तर जैसे वर्षाकालमें गङ्गा और सरयूनदीके प्रबल प्रवाहका वेग आपसमें मिलता है, वैसे ही कौरव और पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेना दोनों ओरसे बल-पूर्वक युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुई ॥ (४५-४९)

द्रोणपर्वमें सत्तरह अध्याय समाप्त । [७१७]

द्रोणपर्वमें अठारह अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! अनन्तर संशप्तक वीर लोग समान भूमिमें अर्द्धचंद्र व्यूह बना कर परम हर्षके सहित युद्ध

ते किरीटिनमायान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष ।
उदक्रोशन्नरव्याघ्राः शब्देन महता तदा ॥ २ ॥
स शब्दः प्रदिशः सर्वा दिशः खं च समावृणोत ।
आवृतत्वाच्च लोकस्य नाऽऽसीत्तत्र प्रतिस्वनः ॥ ३ ॥
सोऽतीव संप्रहृष्टांस्तानुपलभ्य धनञ्जयः ।
किञ्चिदभ्युत्स्मयन्कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥
पश्यैतान्देवकीमातर्मुमूर्षूनद्य संयुगे ।
भ्रातृंस्त्रैगर्त्तकानेवं रोदितव्ये प्रहर्षितान् ॥ ५ ॥
अथवा हर्षकालोऽयं त्रैगर्त्तानामसंशयम् ।
कुनरैर्दुरवापान्हि लोकान्प्राप्स्यन्त्यनुत्तमान् ॥ ६ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः ।
आससाद रणे व्यूढां त्रिगर्तानामनीकिनीम् ॥ ७ ॥
स देवदत्तमादाय शङ्खं हेमपरिष्कृतम् ।
दध्मौ वेगेन महता घोषेणाऽऽपूरयन्दिशः ॥ ८ ॥
तेन शब्देन वित्रस्ता संशप्तकवरूथिनी ।
विचेष्टाऽवस्थिता संख्ये ह्यश्मसारमयी यथा ॥ ९ ॥

करनेके निमित्त स्थित हुये ॥ वे सब पुरुषसिंह अर्जुनको आते हुए देख कर सिंहनाद करने लगे ॥ उन पराक्रमी शूरवीरोंके सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशा और आकाश व्याप्त होगया; सम्पूर्ण स्थान ही उन लोगोंके सिंहनादसे पूरित होगये; इसीसे उसकी प्रतिध्वनि सुनाई नहीं पड़ी ॥ (१–३)

अर्जुन उन लोगोंको अत्यन्त हर्षित देखकर हंसते हुए कृष्णसे बोले, हे देवकी पुत्र कृष्ण! यह देखो त्रिगर्त राज आज भाइयोंके सहित युद्धभूमिमें मरनेकी इच्छा करके रोनेके विषयमें हर्षित हो रहे हैं ॥ अथवा इन लोगोंका यथार्थ ही यह हर्षका समय है ; क्योंकि अधम पुरुषों के प्राप्त न होने योग्य उत्तम लोकोंमें ये सब शूरवीर योद्धा लोग गमन करेंगे ॥ (४–६)

अर्जुन महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्रसे ऐसा वचन कहके युद्धभूमिमें व्यूहबद्ध त्रिगर्त सेनाके समीप आके उपस्थित हुए ॥ अनन्तर अर्जुनने अपने देवदत्त नामक शंखको ग्रहण करके बलपूर्वक बजाया, उसके महा घोर शब्दसे सम्पूर्ण दिशा परिपूर्ण होगई ॥ उस महा भयङ्कर शब्द को सुनकर संशप्तक वीरोंकी सम्पूर्ण

वाहास्तेषां विवृत्ताक्षाः स्तब्धकर्णशिरोधराः ।
विष्टब्धचरणा मूत्रं रुधिरं च प्रसुस्रुवुः ॥ १० ॥
उपलभ्य ततः संज्ञामवस्थाप्य च वाहिनीम् ।
युगपत्पाण्डुपुत्राय चिक्षिपुः कङ्कपत्रिणः ॥ ११ ॥
तान्यर्जुनः सहस्राणि दशपञ्चभिराशुगैः ।
अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाऽऽशु पराक्रमी ॥ १२ ॥
ततोऽर्जुनं शितैर्बाणैर्दशभिर्दशभिः पुनः ।
प्राविध्यन्त ततः पार्थस्तानविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ॥१३॥
एकैकस्तु ततः पार्थं राजन्विव्याध पञ्चभिः ।
स च तान्प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमी॥१४॥
भूय एव तु संक्रुद्धास्त्वर्जुनं सहकेशवम् ।
आपूरयञ्शरैस्तीक्ष्णैस्तडागमिव वृष्टिभिः ॥ १५ ॥
ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नर्जुनं प्रति ।
भ्रमराणामिव व्राताः फुल्लं द्रुमगणं वने ॥ १६ ॥
ततः सुबाहुस्त्रिंशद्भिरद्रिसारमयैः शरैः ।

सेना चेतरहित होके पत्थरके समान युद्धभूमिमें खडी रही ॥ (७–९)

उस सेनाके सम्पूर्ण वाहन भयसे विकल होके कान, पूंछ और गर्दन सिकोडके मलमूत्र त्यागने लगे ॥ अनन्तर वे सम्पूर्ण योद्धा सावधान होकर अपने वाहनोंको नियमपूर्वक स्थिर करके एक ही बार अर्जुनके ऊपर कङ्कपत्र युक्त बाणोंको चलाने लगे ॥ अर्जुनने अपने पराक्रमको प्रकाशित करके उन सहस्रों बाणोंको पन्दरह बाणोंसे काटके मार्गहीमें गिरा दिया ॥ (१०–१२)

अनन्तर उन हर एक वीरोंने अर्जुनको दश बाणोंसे विद्ध किया; अर्जुनने भी तीन तीन बाणोंसे उन लोगोंको विद्ध किया ॥ हे राजन् ! इसके अनन्तर उन लोगोंने पांच पांच बाणोंसे अर्जुनको फिर विद्ध किया ; तब अर्जुनने दो दो बाणोंसे उन लोगोंको विद्ध किया । जैसे देव जलकी वर्षा करके तालाबोंको परिपूर्ण कर देता है, वैसे ही उन वीरोंने अपने बाणोंकी वर्षा करके कृष्ण और अर्जुनको परिपूरित कर दिया ॥ जैसे वनमें भंवरोंका झुण्ड फूले हुए वृक्षोंके ऊपर एकबारही गिरता है, वैसे ही सहस्रों बाण अर्जुनके ऊपर गिरने लगे॥ (१३-१६)

अनन्तर सुबाहुने अर्जुनके रत्नोंसे विभूषित सुन्दर किरीटको तीन बाणोंसे

अविध्यदिषुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम् ॥ १७ ॥
तैः किरीटी किरीटस्थैर्हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ सूर्य इवोत्थितः ॥ १८ ॥
हस्तावापं सुबाहोस्तु भल्लेन युधि पाण्डवः ।
चिच्छेद तं चैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥
ततः सुशर्मा दशभिः सुरथस्तु किरीटिनम् ।
सुधर्मा सुधनुश्चैव सुबाहुश्च समार्पयत् ॥ २० ॥
तांस्तु सर्वान्पृथग्बाणैर्वानरप्रवरध्वजः ।
प्रत्यविध्यद् ध्वजांश्चैषां भल्लैश्चिच्छेद सायकान् ॥२१॥
सुधन्वनो धनुश्छित्वा हयांश्चाऽस्याऽवधीच्छरैः ।
अथाऽस्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपातयत् ॥ २२ ॥
तस्मिन्निपतिते वीरे त्रस्तास्तस्य पदानुगाः ।
व्यद्रवन्त भयाद्भीता यत्र दौर्योधनं बलम् ॥ २३ ॥
ततो जघान संक्रुद्धो वासविस्तां महाचमूम् ।
शरजालैरविच्छिन्नैस्तमः सूर्य इवांऽशुभिः ॥ २४ ॥

विद्ध किया ॥ अर्जुनका किरीट उन सुवर्णदण्डधारी बाणोंसे युक्त होनेके कारण तब उदित हुए सूर्यके समान अत्यन्त ही शोभित होने लगा। अर्जुनने उसही समय अपने बाणोंको चलाकर भल्लास्त्र से सुबाहुके अंगुलित्राणको काट दिया और फिर अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपा दिया ॥ (१७–१९)

अनन्तर सुशर्मा, सुरथ, सुधर्मा, सुधन्वा और सुबाहु, इन पांचों महाबलवान् योद्धाओंने [illegible] दश बाणोंसे फिर अर्जुनको विद्ध किया ॥ कपिध्वजावाले अर्जुनने पृथक् रूपसे उन पांचों वीरोंको अपने बाणोंसे विद्ध करके उनके रथकी सुवर्ण भूषित ध्वजाओंको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ अनन्तर पहिले अपने बाणोंसे सुधन्वाके धनुषको काटके रथके घोडोंको मारके फिर तीक्ष्ण बाण चलाकर मुकुट सहित उनका सिर काटके पृथ्वी में गिरा दिया ॥ (२०–२२)

उस बलवान् वीर सुधन्वाके मरनेपर उसके अनुयायी योद्धा लोग भयभीत होके दुर्योधनकी सेनाकी ओर भागने लगे ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणों से अन्धकारका नाश कर देता है, वैसे ही इन्द्रपुत्र अर्जुन क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके उस महासेनाका संहार करने लगे ॥ अनन्तर अर्जुनके

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

REGISTERED NO. B. 1819

अंक ५२ [द्रोणपर्व २]

महाभारत।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

तैय्यार हैं।

(१) आदिपर्व । पृष्ठ संख्या ११२५. मूल्य म. आ. से ६)
(२) सभापर्व । पृष्ठ संख्या ३५६. मूल्य म. आ. से २) रु.
(३) वनपर्व । पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य म. आ. से ८) रु.
[४] विराटपर्व । पृष्ठ संख्या ३०६ मूल्य. म. आ. से १॥)
[५] उद्योगपर्व । पृष्ठ संख्या ९५३ मूल्य. म. आ. से. ५) रु.
[६] भीष्मपर्व । पृष्ठ संख्या ८०० मूल्य म० आ० से ४) रु.

[५]महाभारत की समालोचना ।

१ प्रथम भाग मू.॥)वी. पी. से॥=)आने २ द्वितीय भाग मू.॥)वी. पी. से॥=)आने
महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६) रु. मूल्य होगा।
मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

तततो भग्ने बले तस्मिन्विप्रलीने समन्ततः ।
सव्यसाचिनि संक्रुद्धे त्रैगर्त्तान्भयमाविशत् ॥ २५ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अमुह्यंस्तत्र तत्रैव त्रस्ता मृगगणा इव ॥ २६ ॥
ततस्त्रिगर्त्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान् ।
अलं द्रुतेन वः शूरा न भयं कर्तुमर्हथ ॥ २७ ॥
शप्त्वाऽथ शपथान्घोरान्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
गत्वा दौर्योधनं सैन्यं किं वै वक्ष्यथ मुख्यशः॥ २८ ॥
नाऽवहास्याः कथं लोके कर्मणाऽनेन संयुगे ।
भवेम सहिताः सर्वे निवर्तध्वं यथाबलम् ॥ २९ ॥
एवमुक्तास्तु ते राजन्नुदक्रोशन्मुहुर्मुहुः ।
शङ्खांश्च दध्मिरे वीरा हर्षयन्तः परस्परम् ॥ ३० ॥
ततस्ते संन्यवर्तन्त संशप्तकगणाः पुनः ।
नारायणाश्च गोपाला मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥३१॥ [७४८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां० द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि सुधन्ववधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

क्रुद्ध होनेपर वह सम्पूर्ण सेना तितर बितर होके चारों ओर भागने लगी। सेनाको इधर उधर भागते देखकर त्रिगर्त्तराजके अनुयायी शूरवीर योद्धा लोग भयभीत होगये; वे सब अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विकल होके डरे हुए मृगसमूहकी भांति मुग्ध हो गये॥२३-२६

अनन्तर त्रिगर्त्तराज क्रुद्ध होकर भागते हुए महारथ वीरोंसे बोले, हे शूरवीर महारथ पुरुषो! तुम लोग क्यों युद्धसे भागे जाते हो? तुम लोग कुछ भी भय मत करो। तुम सब लोगोंने मुख्य मुख्य पराक्रमी योद्धा होकर सम्पूर्ण सेनाके संमुखमें वैसी कठिन प्रतिज्ञा तथा शपथ करी हैं; इस समय तुम लोग दुर्योधनकी सेनामें जाकर क्या कहोगे? ऐसा कर्म करनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंके बीचमें अवश्य ही हम लोगोंकी निन्दा और हंसी होगी। इससे तुम सब कोई मिलकर बची हुई सेनाके सहित युद्ध करनेके वास्ते लौट आओ॥ (२७-२९)

हे राजन्! उन पराक्रमी वीरोंने त्रिगर्त्तराजका ऐसा वचन सुन कर आपसमें एक दूसरेको हर्षित करनेके निमित्त बार बार सिंहनाद करके अपने शङ्खोंको बजाने लगे॥ अनन्तर नारायणी और गोपाली सेनासे युक्त संशप्तक योद्धा लोग मृत्यु हीको युद्धसे निवृत्त होनेका उपाय

सञ्जय उवाच— दृष्ट्वा तु सन्निवृत्तांस्तान्संशप्तकगणान्पुनः ।
वासुदेवं महात्मानमर्जुनः समभाषत ॥ १ ॥
चोदयाऽश्वान्हृषीकेश संशप्तकगणान्प्रति ।
नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे मतिः ॥ २ ॥
पश्य मेऽस्त्रबलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च ।
अद्यैतान्पातयिष्यामि क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ३ ॥
ततः कृष्णः स्मितं कृत्वा प्रतिनन्द्य शिवेन तम् ।
प्रावेशयत दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदर्जुनः ॥ ४ ॥
स रथो भ्राजतेऽत्यर्थमुह्यमानो रणे तदा ।
उह्यमानमिवाऽऽकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ॥ ५ ॥
मण्डलानि ततश्चक्रे गतप्रत्यागतानि च ।
यथा शक्ररथो राजन्युद्धे देवासुरे पुरा ॥ ६ ॥
अथ नारायणाः क्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
छादयन्तः शरव्रातैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ७ ॥

समझकर फिर लौटकर युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित हुए।(२०-२१)७४८

द्रोणपर्वमें अठारह अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें उन्नीस अध्याय।

सञ्जय बोले, उन संशप्तक वीरोंको फिर युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित देखकर अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले, हे हृषीकेश ! संशप्तक वीरोंकी ओर मेरे रथको लेचलो; मैं बोध करता हूं, कि ये लोग जीते जी संग्रामसे कदापि निवृत्त न होवेंगे ॥ आज तुम मेरी भुजा, धनुष और भयङ्कर अस्त्र शस्त्रोंके बलको देखो! जैसे प्रलय समयमें महाकाल रुद्र सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं, वैसेही मैं इन सम्पूर्ण वीरोंका नाश करूंगा॥ १–३

अनन्तर श्रीकृष्ण हंसके कल्याण दायक वचनोंसे उन्हें आनन्दित करते हुए जहां जहां उन्होंने जानेकी इच्छा की थी, वहां वहां पर रथको उपस्थित करते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे॥ वह पाण्डुरवर्ण अश्वोंसे युक्त रथ कृष्णके चलाने पर ऐसा शोभित होने लगा, जैसे आकाश मण्डलमें घूमता हुआ विमान शोभायमान लगता है॥ (४-५)

पूर्वकालमें देव और असुरोंके युद्धमें इन्द्ररथके समान वह अर्जुनका रथ उस युद्धमें नाना भांति की मण्डल, जाना आना इत्यादि करने लगे॥ अनन्तर नारायणी सेनाने क्रुद्ध होकर नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके

अदृश्यं च मुहूर्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ ।
कृष्णेन सहितं युद्धे कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ८ ॥
क्रुद्धस्तु फाल्गुनः संख्ये द्विगुणीकृतविक्रमः ।
गाण्डीवं धनुरासृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे ॥ ९ ॥
बध्वा च भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य प्रतिलक्षणम् ।
देवदत्तं महाशङ्खं पूरयामास पाण्डवः ॥ १० ॥
अथाऽस्त्रमरिसङ्घघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः ।
ततो रूपसहस्राणि प्रादुरासन्पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥
आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः ।
अन्योऽन्येनाऽर्जुनं मत्वा स्वमात्मानं च जघ्निरे ॥१२॥
अयमर्जुनोऽयं गोविन्द इमौ पाण्डवयादवौ ।
इति ब्रुवाणाः सम्मूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ १३ ॥
मोहिताः परमास्त्रेण क्षयं जग्मुः परस्परम् ।
अशोभन्त रणे योधाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ १४ ॥
ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात् ।

अर्जुनको अपने बाणोंसे छिपाते हुए चारों ओरसे घेर लिया ॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण योद्धाओंने मुहूर्त भरके बीचमें अपने बाणोंकी वर्षासे कृष्ण और कुन्तीपुत्र अर्जुनको छिपादिया ॥ (६–८)

अर्जुनने उस रणभूमिमें अत्यन्त क्रुद्ध होके बलपूर्वक गाण्डीवधनुष खींच कर अपने पराक्रमको प्रकाशित करने लगे, और क्रोधसे नेत्र लाल करके अपना देवदत्त महाशंख बजाने लगे ॥ अनन्तर शत्रुओंका नाश करनेके निमित्त उन्होंने त्वष्टा प्रजापतिके दिये हुये अस्त्रको शत्रु सेनाके उपर चलाया। उसके प्रभावसे अर्जुनके सहस्रों स्वरूप पृथक् पृथक् युद्धभूमिमें उत्पन्न हुए॥ (९–११)

वे सम्पूर्ण वीर लोग, युद्धभूमिमें अनेक अर्जुन देखकर अपनी सेनाके शूरवीरोंको ही अर्जुन जानके एक दूसरे-का वध करने लगे ॥ वे सब वीर योद्धा लोग उस अस्त्रके प्रभावसे मुग्ध होकर " यही कृष्ण ! यही अर्जुन, यही कृष्णअर्जुन दोनों हैं, " ऐसा ही कहते हुए आपसमें एक दूसरेके शस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ वे सम्पूर्ण योद्धा लोग आपसमें उस प्रबल अस्त्रके प्रभावसे एक दूसरेके ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करके अन्तमें फूले हुए पलाश वृक्षके समान रणभूमिमें शोभित होने लगे॥ १२-१४

कृत्वा तदस्त्रं तान्वीराननयद्यमसादनम् ॥ १५ ॥
अथ प्रहस्य बीभत्सुर्ललित्थान्मालवानपि ।
मावेल्लकांस्त्रिगर्तांश्च यौधेयांश्चार्दयच्छरैः ॥ १६ ॥
ते हन्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः ।
व्यसृजञ्छरजालानि पार्थे नानाविधानि च ॥ १७ ॥
न ध्वजो नार्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः ।
प्रत्यदृश्यत घोरेण शरवर्षेण संवृतः ॥ १८ ॥
ततस्तेऽलब्धलक्षत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः ।
हतौ कृष्णाविति प्रीत्या वासांस्यादुधुवुस्तदा ॥ १९ ॥
भेरीमृदङ्गशङ्खांश्च दध्मुर्वीराः सहस्रशः ।
सिंहनादरवांश्चोग्रांश्चक्रिरे तत्र मारिष ॥ २० ॥
ततः प्रसिष्विदे कृष्णः खिन्नश्चार्जुनमब्रवीत् ।
क्वासि पार्थ न पश्ये त्वां कच्चिज्जीवसि शत्रुहन् ॥२१॥
तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा त्वरमाणो धनञ्जयः ।
वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शरवृष्टिमपाहरत् ॥ २२ ॥

अनंतर अर्जुनके चलायेहुए त्वाष्ट्र अस्त्रने शत्रु सेनाके सहस्रों बाणोंको भस्म करके उन सब वीरोंको यमलोकमें पहुंचा दिया अनन्तर अर्जुन हंसकर ललित्थ, मालव, मावेल्लक और त्रैगर्तक योद्धाओंको अपने बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध करने लगे॥ वे सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा अर्जुन के बाणोंसे विकल होके भी मानो काल प्रेरित होकर अर्जुनके ऊपर नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५-१७

उन सम्पूर्ण वीर योद्धाओंके बाणोंसे छिप कर अर्जुन, कृष्ण और अर्जुनका रथ भी उस समयमें नहीं दीख पडता था ॥ अनन्तर कृष्ण-अर्जुनको इस प्रकारसे बाणोंके जालसे छिपा हुआ देख वे सब योद्धा लोग अपने उद्देश्यको सिद्ध हुआ समझ कर हर्षपूर्वक सिंहनाद करने लगे ॥ " कृष्ण-अर्जुन युद्धमें मारे गये, " ऐसा समझके वे सब लोग शंख,भेरी,मृदङ्ग आदि बाजोंको बजा कर हर्षपूर्वक सिंहनाद करने लगे ॥ १९-२०

उस समयमें कृष्णके शरीरसे पसीना निकलनेलगा वह दुःखित होके बोले, हे अर्जुन ! तुम कहां हो ! मैं तुमको नहीं देखता हूं। क्या तुम जीवित हो ? अर्जुनने कृष्णका वचन सुनकर शीघ्र ही वायव्य अस्त्र चला कर उन सब वीरोंकी बाणवृष्टिको निवारण किया ॥

ततः संशप्तकव्रातान्साश्वद्विपरथायुधान्।
उवाह भगवान्वायुः शुष्कपर्णचयानिव ॥ २३ ॥
उह्यमानास्तु ते राजन्बह्वशोभन्त वायुना।
प्रडीनाः पक्षिणः काले वृक्षेभ्य इव मारिष ॥ २४ ॥
तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनञ्जयः।
जघान निशितैर्बाणैः सहस्राणि शतानि च ॥ २५ ॥
शिरांसि भल्लैरहरद्बाहूनपि च सायुधान्।
हस्तिहस्तोपमांश्चोरून्शरैरुर्व्यामपातयत् ॥ २६ ॥
पृष्ठच्छिन्नान्विचरणान्बाहुपार्श्वेक्षणाकुलान्।
नानाङ्गावयवैर्हीनांश्चकारारीन्धनञ्जयः ॥ २७ ॥
गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्रथान्।
शरैर्विशकलीकुर्वंश्चक्रे व्यश्वरथद्विपान् ॥ २८ ॥
मुण्डतालवनानीव तत्र तत्र चकाशिरे।
छिन्ना रथध्वजव्राताः केचित्तत्र क्वचित्क्वचित् ॥ २९ ॥
सोत्तरायुधिनो नागाः सपताकांकुशध्वजाः।

उस समयमें वायु प्रबल वेगसे चल कर सूखे पत्तोंके समान संशप्तक वीरोंको रथ, घोडे आदि वाहनोंके सहित उडाने लगा ॥ (२१–२३)

हे राजन्! जैसे वृक्ष परसे उडते हुए पक्षी शोभायमान लगते हैं, वैसे ही वे सब योद्धा वायव्य अस्त्रके प्रभावसे युद्धमें उडते हुए शोभित होने लगे। अर्जुन उन सम्पूर्ण वीरोंको इस प्रकारसे अत्यन्त विकल करके फिर अपने चोखे बाणोंसे सहस्रों पुरुषोंका वध करने लगे॥ अपने बाणोंसे किसीके सिर, किसीके शस्त्र सहित भुजा, किसीके हस्तिशुण्डके समान जङ्घोंको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया॥ (२४–२६)

किसीको बीचोंबीचसे काट डाला, किसीके पांव, किसीके हाथ, किसीकी अंगुली और किसी किसी पुरुषको अनेक अंगोंसे हीन कर दिया; और जगह जगह गन्धर्व नगरके समान उत्तम रथोंको खण्ड खण्ड करके राजाओंको घोडे, रथ और हाथियोंसे रहित करदिया॥ किसी किसी स्थानमें रथमें रथकी ध्वजा इस प्रकारसे कटी हुई दिखाई देने लगीं, जैसे मुण्डित तालवन दीख पडता है॥ (२७–२९)

जैसे सम्पूर्ण वृक्षोंके सहित पर्वत इन्द्रके वज्रकी चोटसे टुकडे टुकडे होकर पृथ्वी पर गिर पडते हैं; वैसे ही अंकुश

पेतुः शाखाशनिहता द्रुमवन्त इवाऽचलाः　॥ ३० ॥
चामरापीडकवचाः स्रस्तान्त्रनयनास्तथा ।
सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थबाणहताः क्षितौ　॥ ३१ ॥
विप्रविद्धासिनखराश्छिन्नवर्मर्ष्टिशक्तयः ।
पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणाः शेरते हताः　॥ ३२ ॥
तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि ।
भ्रमद्भिर्निष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं बभौ　॥ ३३ ॥
रजश्च सुमहज्जातं शान्तं रुधिरवृष्टिभिः ।
मही चाऽप्यभवद् दुर्गा कबन्धशतसंकुला　॥ ३४ ॥
तद्बभौ रौद्रबीभत्सं बीभत्सोर्यानमाहवे ।
आक्रीडमिव रुद्रस्य घ्नतः कालात्यये पशून्　॥ ३५ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्च रथद्विपाः ।

और ध्वजाओंके सहित उत्तम उत्तम हाथी सवारोंके सहित अर्जुनके अस्त्रों की चोटसे मरमरके पृथ्वी पर गिरने लगे। चंवर, भूषण और कवचके सहित शिक्षित घोडे घुडसवारोंके सहित बाणों की चोटसे जिनके आंत्र और नेत्र बाहर निकल गये हैं, ऐसे होकर मरके पृथ्वी पर गिर पडे ॥ अर्जुनके बाणोंके लगनेसे सहस्रों पैदल चलनेवाले योद्धा ढाल तलवार और गदा प्रास आदि अस्त्रोंके कटनेसे पीडित होके कायरोंकी भांति पृथ्वी पर शयन करने लगे ॥ ३०-३२

कितने ही बाणोंकी चोटसे मरके गिर गये, कितने ही घायल हुए और कितने ही शस्त्रोंसे पीडित होकर पृथ्वी-में गिर पडते थे;कितने ही योद्धा युद्ध-भूमिमें इधर उधर घूमने लगे और कितनेही आर्त्तनाद करते हुए दिखाई देने लगे; इस प्रकारसे मनुष्योंके समूहसे युक्त युद्धभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर मालुम होने लगी ॥ शूरवीरोंके पांवके धक्केसे जो प्रबल वेगसे धूलि उडी थी, वह अर्जुनके बाणोंसे रुधिरसे शान्त होगई। उस समय रणभूमिमें सैकडों कबन्ध उठके दौडते थे॥ अर्जुनका रथ उस समय प्रलयकाल के समय सब प्राणियोंके संहार करनेवाले रुद्रदेवके क्रीडास्थानके समान भयङ्कर और विकृत रूपसे प्रकाशित होने लगा ॥ (३३-३५)

संशप्तक योद्धालोग अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त विकल और पीडित होने पर उनके घोडे, हाथी और रथके वाहन भी व्याकुल होगये, वे सम्पूर्ण योद्धा इस प्रकारसे विकल और पीडित होकर भी

तमेवाऽभिमुखाः क्षीणाः शक्रस्याऽतिथितां गताः॥३६॥
सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः ।
आस्तीर्णा सम्बभौ सर्वा प्रेतीभूतैः समन्ततः॥ ३७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव प्रमत्ते सव्यसाचिनि ।
व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥
तं प्रत्यगृह्णंस्त्वरिता व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ ३९ ॥ [७८७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि अर्जुनसंशप्तकयुद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच— परिणाम्य निशां तां तु भारद्वाजो महारथः ।
उक्त्वा सुबहु राजेन्द्र वचनं वै सुयोधनम् ॥ १ ॥
विधाय योगं पार्थेन संशप्तकगणैः सह ।
निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं प्रति ॥ २ ॥
व्यूढानीकस्ततो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम् ।
अभ्ययाद्भरतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया ॥ ३ ॥

इन्द्रलोकमें गमन करनेकी अभिलाषासे अर्जुनके रथ हीकी ओर दौडने लगे ॥ भारत ! यह रणभूमि सब ओरसे गिरे पडे घायल और मरे हुए महारथ वीर पुरुषोंके शरीरसे परिपूरित होगई ॥ जब अर्जुन इस प्रकारसे युद्धमें संशप्तक वीरोंके सङ्ग संग्राममें प्रवृत्त हुए, तब अवसर देखकर महातेजस्वी द्रोणाचार्य अपनी सेनाको व्यूहबद्ध करके राजा युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ तब युधिष्ठिर की ओरके मुख्य मुख्य पराक्रमी योद्धा लोग अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके द्रोणाचार्य-से उनकी रक्षा करनेके निमित्त वेग पूर्वक दौड कर द्रोणाचार्यको अपने अ-स्त्रोंसे निवारण करने लगे; इससे दोनों ओरकी सेनाओंका महाघोर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ (३६–३९) [७८७]

द्रोणपर्वमें उन्नीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें बीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! महाराज भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने उस रात्रिको बिता कर दुर्योधनको ऊपर कहे हुए अनेक प्रकारके वचनोंसे हर्षित करके अर्जुनके सङ्ग संशप्तक वीरोंका संग्राम करा दिया ॥ जब अर्जुन संशप्तक वीरों-के सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त उनकी ओर गये, तब उन्होंने अपनी सेनाका गरुड व्यूह बना कर धर्मराज युधिष्ठिर-

पेतुः शक्राशनिहता द्रुमवन्त इवाऽचलाः ॥ ३० ॥
चामरापीडकवचाः स्रस्तान्त्रनयनास्तथा ।
सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थबाणहताः क्षितौ ॥ ३१ ॥
विप्रविद्धासिनखराश्छिन्नवर्मर्ष्टिशक्तयः ।
पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणाः शेरते हताः ॥ ३२ ॥
तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि ।
भ्रमद्भिर्निष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं बभौ ॥ ३३ ॥
रजश्च सुमहज्जातं शान्तं रुधिरवृष्टिभिः ।
मही चाऽप्यभवद् दुर्गा कबन्धशतसंकुला ॥ ३४ ॥
तद्बभौ रौद्रबीभत्सं बीभत्सोर्यानमाहवे ।
आक्रीडमिव रुद्रस्य घ्नतः कालात्यये पशून् ॥ ३५ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्च रथद्विपाः ।

और ध्वजाओंके सहित उत्तम उत्तम हाथी सवारोंके सहित अर्जुनके अस्त्रों की चोटसे मरमरके पृथ्वी पर गिरने लगे। चंवर, भूषण और कवचके सहित शिक्षित घोडे घुडसवारोंके सहित बाणों की चोटसे जिनके आंत्र और नेत्र बाहर निकल गये हैं, ऐसे होकर मरके पृथ्वी पर गिर पडे ॥ अर्जुनके बाणोंके लगनेसे सहस्रों पैदल चलनेवाले योद्धा ढाल तलवार और गदा प्रास आदि अस्त्रोंके कटनेसे पीडित होके कायरोंकी भांति पृथ्वी पर शयन करने लगे ॥ ३०-३२

कितने ही बाणोंकी चोटसे मरके गिर गये, कितने ही घायल हुए और कितने ही शस्त्रोंसे पीडित होकर पृथ्वी-में गिर पडते थे;कितने ही योद्धा युद्ध-भूमिमें इधर उधर घूमने लगे और कि-तनेही आर्त्तनाद करते हुए दिखाई देने लगे; इस प्रकारसे मनुष्योंके समूहसे युक्त युद्धभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर मालू-म होने लगी ॥ शूरवीरोंके पांवके धके-से जो प्रबल वेगसे धूलि उडी थी, वह अर्जुनके बाणोंसे रुधिरसे शान्त होगई। उस समय रणभूमिमें सैकडों कबन्ध उठ-के दौडते थे ॥ अर्जुनका रथ उस समय प्रलयकाल के समय सब प्राणियोंके संहार करनेवाले रुद्रदेवके क्रीडास्थानके समान भयङ्कर और विकृत रूपसे प्रका-शित होने लगा ॥ (३३–३५)

संशप्तक योद्धालोग अर्जुनके बाणों से अत्यन्त विकल और पीडित होने पर उनके घोडे, हाथी और रथके वाहन भी व्याकुल होगये, वे सम्पूर्ण योद्धा इस प्रकारसे विकल और पीडित होकर भी

तमेवाऽभिमुखाः क्षीणाः शक्रस्याऽतिथितां गताः॥३६॥
सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः ।
आस्तीर्णा सम्बभौ सर्वा प्रेतीभूतैः समन्ततः॥ ३७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव प्रमत्ते सव्यसाचिनि ।
व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥
तं प्रत्यगृह्णंस्त्वरिता व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ ३९ ॥ [७८७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
अर्जुनसंशप्तकयुद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच— परिणाम्य निशां तां तु भारद्वाजो महारथः ।
उक्त्वा सुबहु राजेन्द्र वचनं वै सुयोधनम् ॥ १ ॥
विधाय योगं पार्थेन संशप्तकगणैः सह ।
निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं प्रति ॥ २ ॥
व्यूढानीकस्ततो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम् ।
अभ्ययाद्भरतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया ॥ ३ ॥

इन्द्रलोकमें गमन करनेकी अभिलाषासे अर्जुनके रथ हीकी ओर दौडने लगे ॥ भारत ! वह रणभूमि सब ओरसे गिरे पडे घायल और मरे हुए महारथ वीर पुरुषोंके शरीरसे परिपूरित होगई ॥ जब अर्जुन इस प्रकारसे युद्धमें संशप्तक वीरोंके सङ्ग संग्राममें प्रवृत्त हुए, तब अवसर देखकर महातेजस्वी द्रोणाचार्य अपनी सेनाको व्यूहबद्ध करके राजा युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ तब युधिष्ठिर की ओरके मुख्य मुख्य पराक्रमी योद्धा लोग अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके द्रोणाचार्य-से उनकी रक्षा करनेके निमित्त वेग पूर्वक दौड कर द्रोणाचार्यको अपने अ-स्त्रोंसे निवारण करने लगे; इससे दोनों ओरकी सेनाओंका महाघोर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ (३६–३९) [७८७]

द्रोणपर्वमें उन्नीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें बीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! महाराज भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने उस रात्रिको बिता कर दुर्योधनको ऊपर कहे हुए अनेक प्रकारके वचनोंसे हर्षित करके अर्जुनके सङ्ग संशप्तक वीरोंका संग्राम करा दिया ॥ जब अर्जुन संशप्तक वीरों-के सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त उनकी ओर गये, तब उन्होंने अपनी सेनाका गरुड व्यूह बना कर धर्मराज युधिष्ठिर-

व्यूहं दृष्ट्वा सुपर्णं तु भारद्वाजकृतं तदा ।
व्यूहेन मण्डलार्धेन प्रत्यव्यूहद्युधिष्ठिरः ।
मुखं त्वासीत्सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः ॥ ४ ॥
शिरो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ।
चक्षुषी कृतवर्माऽऽसीद्गौतमश्चाऽस्यतां वरः ॥ ५ ॥
भूतशर्मा क्षेमशर्मा करकाशश्च वीर्यवान् ।
कालिङ्गाः सिंहलाः प्राच्याः शूराभीरा दशेरकाः ॥ ६ ॥
शका यवनकाम्बोजास्तथा हंसपथाश्च ये ।
ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः ॥ ७ ॥
गजाश्वरथपत्त्योघास्तस्थुः परमदंशिताः ।
भूरिश्रवास्तथा शल्यः सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ ८ ॥
अक्षौहिण्या वृता वीरा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ ९ ॥
वामं पार्श्वं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रतः स्थिताः ।
पृष्ठे कलिङ्गाः साम्बष्ठा मागधाः पौण्ड्रमद्रकाः ॥ १० ॥
गान्धाराः शकुनाः प्राच्याः पार्वतीया वसातयः ।

को ग्रहण करनेकी इच्छासे पाण्डवोंकी सेनाकी ओर युद्ध करनेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ युधिष्ठिरने उस समय द्रोणाचार्यके गरुड व्यूहको देखकर अपनी सेनाका मण्डलार्द्ध व्यूह बनाया। (१-४)

अनन्तर द्रोणाचार्य उस गरुड व्यूहके मुखस्थलपर स्थित हुए॥ राजा दुर्योधन भाइयों और अनुयायियोंके सहित उस व्यूहके मस्तक हुए। बाणोंके चलानेमें मुख्य योद्धा कृपाचार्य और कृतवर्मा उसके नेत्र स्थानपर स्थित हुए ॥ भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, वीर्यवान् करकाश, कलिङ्ग योद्धा, सिंहलदेशीय लोग, प्राच्य शूर और आभीरक, दाशेरक, शक, यवन, काम्बोज, हंसपथ, शूरसेन दरद, मद्र और कैकय देशीय योद्धा लोग हाथी, घोडे और रथोंसे युक्त होके उस व्यूहकी ग्रीवापर स्थित किये गये ॥ (४-८)

भूरिश्रवा, शल्य, सोमदत्त और बाह्लिक, ये कई एक बलवान् राजा अक्षौहिणी सेनाके सहित उसके दहिने पक्षके स्थानपर स्थित हुए॥ अवन्तिराज विन्द अनुविन्द और काम्बोजराज सुदक्षिण, ये लोग द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाको आगे करके वामपक्षपर स्थित हुए ॥ कलिङ्ग, अम्बष्ठ, मागध, पौण्ड्र, मद्रक,

पुच्छे वैकर्त्तनः कर्णः सपुत्रज्ञातिवान्धवः ॥ ११ ॥
महत्या सेनया तस्थौ नानाजनपदोत्थया ।
जयद्रथो भीमरथः सम्पातिर्ऋषभो जयः ॥ १२ ॥
भूमिञ्जयो वृषक्राथो नैषधश्च महाबलः ।
वृता बलेन महता ब्रह्मलोकपरिष्कृताः ॥ १३ ॥
व्यूहस्योरसि ते राजन्स्थिता युद्धविशारदाः ।
द्रोणेन विहितो व्यूहः पदात्यश्वरथद्विपैः ॥ १४ ॥
वातोद्धूतार्णवाकारः प्रवृत्त इव लक्ष्यते ।
तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ॥ १५ ॥
सविद्युत्स्तनिता मेघाः सर्वदिग्भ्य इवोष्णगे ।
तस्य प्राग्ज्योतिषो मध्ये विधिवत्कल्पितं गजम् ॥१६॥
आस्थितः शुशुभे राजन्नंशुमानुदये यथा ।
माल्यदामवता राजञ्श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥ १७ ॥
कृत्तिकायोगयुक्तेन पौर्णमास्यामिवेन्दुना ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यो मदान्धो द्विरदो बभौ ॥ १८ ॥

गान्धार, शकुन, प्राच्य, पार्वतीय और वसातिदेशीय योद्धालोग उसके पीठ स्थानपर स्थित हुए ॥ (८-११)

सूर्यपुत्र कर्ण बन्धु बान्धव पुत्र और नाना देशके राजाओंकी सेनाके सहित उस व्यूहके पूंछ स्थलपर विराजमान हुए। हे राजन् ! जयद्रथ, भीमरथ, सम्पाति, ऋषभ, जय, भूमिञ्जय, वृष, क्राथ और महाबलवान् निषधराज इत्यादि सम्पूर्ण योद्धा लोग ब्रह्म लोकमें गमन करनेकी अभिलाष करके उस गरुडव्यूहके वक्षस्थलपर स्थित हुए ॥ (११-१४)

द्रोणाचार्यका बनाया हुआ हाथी, घोडे, रथ और पैदल चलनेवाले योद्धाओंसे वह व्यूह मानो वायुके वेगसे समुद्र की तरङ्ग के समान नृत्य करता हुआ दिखाई देने लगा ॥ जैसे वर्षा कालमें चारों ओरसे बादल गर्जते हुए आकाशमें इधर उधर दिखाई देते हैं, वैसे ही उस व्यूहमें सम्पूर्ण सेनाके योद्धा सिंहनाद करते हुए चलने लगे ॥ हे राजन् ! प्राग्ज्योतिषराज भगदत्त उस व्यूहके बीच विधिपूर्वक सज्जित हुए अपने गजराजपर चढके ऐसे शोभित हुए, जैसे उदयाचल पर्वतपर सूर्य शोभायमान लगते हैं ॥ (१४-१७)

हे राजन् ! कार्त्तिकमासके चन्द्रमा समान श्वेत छत्र उनके सिरपर अत्यन्त

अतिसृष्टो महामेघैर्यथा स्यात्पर्वतो महान्।
नानानृपतिभिर्वीरैर्विविधायुधभूषणैः ॥ १९ ॥
समन्वितः पार्वतीयैः शक्रो देवगणैरिव।
ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुषम् ॥ २० ॥
अजय्यमरिभिः संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत्।
ब्राह्मणस्य वशं नाऽहमियामद्य यथा प्रभो।
पारावतसवर्णाश्व तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥
धृष्टद्युम्न उवाच– द्रोणस्य यतमानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत।
अहमावारयिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम् ॥ २२ ॥
मयि जीवति कौरव्य नोद्वेगं कर्तुमर्हसि।
नहि शक्तो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथञ्चन ॥ २३ ॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्त्वा किरन्बाणान्द्रुपदस्य सुतो बली।
पारावतसवर्णाश्वः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ २४ ॥
अनिष्टदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम्।

ही प्रकाशित होने लगा। श्यामवर्ण वाला उनका मतवारा हाथी मेघ-समूहसे युक्त बड़े पर्वतके समान दिखाई देने लगा। वह अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र और नाना भांतिके आभूषणोंको धारण करनेवाले पर्वत प्रदेशीय वीरोंके सहित युद्धके निमित्त पाण्डवोंकी ओर इस प्रकारसे जाने लगे, जैसे दैवतोंके सहित इन्द्र चलते हैं ॥ (१७–२०)

अनन्तर राजा युधिष्ठिर शत्रुसेनाके उस अलौकिक और अजेय व्यूहको देखकर पारावत वर्णके समान रथपर स्थित धृष्टद्युम्नसे बोले, हे सेनापति धृष्टद्युम्न ! आज जिससे मैं इस ब्राह्मणके वशमें न होऊं, तुम वैसाही उपाय करो ॥ (२०–२१)

धृष्टद्युम्न बोले, हे राजन् ! द्रोणाचार्य तुम्हें ग्रहण करनेके निमित्त यत्नवान् होने पर भी ग्रहण न कर सकेंगे। मैं आज द्रोणाचार्यको उनके अनुयायियोंके सहित रणभूमिमें निवारण करूंगा ॥ हे भारत ! मेरे जीवित रहते तुमको कुछ भी भय नहीं है; क्योंकि द्रोणाचार्य मुझको रणभूमिमें कदापि पराजित न कर सकेंगे। (२२–२३)

सञ्जय बोले, पारावतके रूपके समान घोडोंसे युक्त रथ पर चढे हुए महारथ द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ऐसा कह कर फिर अपने बाणोंको चलाते हुए द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नको

क्षणेनैवाऽभवद् द्रोणो नाऽतिहृष्टमना इव ॥ २५ ॥
तं तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
प्रियं चिकीर्षुर्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत् ॥ २६ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलः सुघोरः समपद्यत ।
पार्षतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य च भारत ॥ २७ ॥
पार्षतः शरजालेन क्षिप्रमप्रच्छाद्य दुर्मुखम् ।
भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत् ॥ २८ ॥
द्रोणमावारितं दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवाऽऽत्मजः ।
नानालिङ्गैः शरव्रातैः पार्षतं सममोहयत् ॥ २९ ॥
तयोर्विषक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययोः ।
द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं बहुधा व्यधमच्छरैः ॥ ३० ॥
अनिलेन यथाऽभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ।
तथा पार्थस्य सैन्यानि विच्छिन्नानि क्वचित्क्वचित् ॥३१॥
मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्त्तत ॥ ३२ ॥
नैव स्वे न परे राजन्नाज्ञायन्त परस्परम् ।

संमुख आते देखकर अनिष्ट दर्शनको जान कर क्षण भर तक भावित रहे; उसे देखकर तुम्हारे पुत्र शत्रुनाशन दुर्मुखने उनके प्रियकार्यके करनेकी इच्छा से धृष्टद्युम्न की ओर आक्रमण किया ॥ (२४—२६)

हे भारत ! महापराक्रमी धृष्टद्युम्नके सङ्ग दुर्मुखका अत्यन्त भयङ्कर तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ ॥ धृष्टद्युम्नने शीघ्रता के सहित अपने बाणोंकी वर्षासे दुर्मुखको छिपा कर फिर महाघोर अस्त्रोंसे द्रोणाचार्यको निवारण करने लगे ॥ उसे देख दुर्मुखने क्रुद्ध हो धृष्टद्युम्नको अपने अस्त्रोंसे विद्ध किया ॥ (२७-२९)

पञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न और दुर्मुख को युद्धमें प्रवृत्त देखकर द्रोणाचार्य अपने अनेक प्रकारके बाणोंको चला कर युधिष्ठिरकी सेनाको भस्म करने लगे । जैसे वायुके प्रबल वेगसे बादल आकाश में चारों ओर छिन्नभिन्न हो जाते हैं, वैसे ही युधिष्ठिरकी सम्पूर्ण सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे इधर उधर तितर बितर होने लगी ॥ हे राजन् ! मुहूर्त भर तक वह युद्ध सरलभावसे होता रहा, फिर उन्मत्तोंके समान महाघोर विपरीत संग्राम होने लगा ॥ (३०–३२)

अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत्समवर्तत ॥ ३३ ॥
चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वपि वर्मसु ।
तेषामादित्यवर्णाभा रश्मयः प्रचकाशिरे ॥ ३४ ॥
तत्प्रकीर्णपताकानां रथवारणवाजिनाम् ।
बलाकाशबलाभ्राभं ददृशे रूपमाहवे ॥ ३५ ॥
नरानेव नरा जघ्नुरुदग्राश्च हया हयान् ।
रथांश्च रथिनो जघ्नुर्वारणा वरवारणान् ॥ ३६ ॥
समुच्छ्रितपताकानां गजानां परमद्विपैः ।
क्षणेन तुमुलो घोरः संग्रामः समपद्यत ॥ ३७ ॥
तेषां संसक्तगात्राणां कर्षतामितरेतरम् ।
दन्तसङ्घातसङ्घर्षात्सधूमोऽग्निरजायत ॥ ३८ ॥
विप्रकीर्णपताकास्ते विषाणजनिताग्नयः ।
बभूवुः खं समासाद्य सविद्युत इवाऽम्बुदाः ॥ ३९ ॥
विक्षिपद्भिर्नदद्भिश्च निपतद्भिश्च वारणैः ।

हे भारत ! तब उस युद्धमें अपना पराया कोई भी किसीको नहीं मालूम होता था; उस समयमें केवल अनुमान और नाम ले लेकर ही सब योद्धा युद्ध करने लगे ॥ ऐसे अवसरमें शूरवीरोंके सिरके छत्र कण्ठकी माला और अन्यान्य प्रकाशमान आभूषण ही सूर्यकी किरणके समान प्रकाशित होते थे ॥ हाथी, घोडे और रथोंकी पताका उस रणभूमिमें बकराजिसे विराजित बादलों के समूहके समान शोभित होने लगी ॥ (३३–३५)

उस समय क्रुद्ध होकर पैदल चलने वाले वीर योद्धा लोग पैदल वीरोंसे, घुडसवार घुडसवारोंसे, गजपति योद्धा गजसवारोंसे और रथी रथियोंके संमुख होकर एक दूसरेका वध करते हुए युद्ध करने लगे ॥ (३६)

क्षण भरके बीचमें उत्तम ध्वजाओंसे युक्त हाथियोंका आपसमें महाघोर युद्ध होने लगा ॥ वे सम्पूर्ण हाथी अपने सुण्डोंसे एक दूसरेको अपनी ओर खींचने लगे, उन हाथियोंके दांतोंकी रगडसे धूएंसे युक्त अग्नि उत्पन्न होने लगी ॥ उन सम्पूर्ण हाथियोंकी पताका फहराती और उनके दांतोंसे उत्पन्न हुई अग्निसे युक्त होकर मानो बादलोंसे युक्त बिजली के समान प्रकाशित होने लगी ॥ ३७-३९

कोई कोई हाथी एक दूसरेको उठाके फेंक देते थे, कोई बलपूर्वक चिंघाड

सम्बभूव मही कीर्णा मेघैर्द्यौरिव शारदी ॥ ४० ॥
तेषामाहन्यमानानां बाणतोमरऋष्टिभिः ।
वारणानां रवो जज्ञे मेघानामिव सम्प्लवे ॥ ४१ ॥
तोमराभिहताः केचिद्बाणैश्च परमद्विपाः ।
वित्रेसुः सर्वनागानां शब्दमेवाऽपरेऽव्रजन् ॥ ४२ ॥
विषाणाभिहताश्चापि केचित्तत्र गजा गजैः ।
चक्रुरार्तस्वनं घोरमुत्पातजलदा इव ॥ ४३ ॥
प्रतीपाः क्रियमाणाश्च वारणा वरवारणैः ।
उन्मथ्य पुनराजग्मुः प्रेरिताः परमांकुशैः ॥ ४४ ॥
महामात्रैर्महामात्रास्ताडिताः शरतोमरैः ।
गजेभ्यः पृथिवीं जग्मुर्मुक्तप्रहरणांकुशाः ॥ ४५ ॥
निर्मनुष्याश्च मातङ्गा विनदन्तस्ततस्ततः ।
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुः सम्प्रविश्य परस्परम् ॥ ४६ ॥
हतान्परिवहन्तश्च पतितान्पतितायुधान् ।

मारते थे, कोई कोई हाथी पृथ्वीमें गिर गये; इससे वह रणभूमि मानो शरत् ऋतुमें बादलोंसे युक्त आकाशके समान बोध होती थी ॥ हाथियोंके शरीरों पर बाण और तोमरोंकी वर्षा होने लगी, वे सम्पूर्ण हाथी उस समयमें वीरोंके अस्त्र शस्त्रोंसे पीडित होकर प्रलयकालके बादलोंके समान गर्जने लगे ॥ तोमर और बाणोंकी चोटसे विकल हुए हाथियोंके बीचमें कितने ही हाथी अत्यन्त पीडित होके भयसे विह्वल होगये; कितने ही अत्यन्त विकल होकर जोरसे चिंघाड मारने लगे ॥ (४०-४२)

कितने ही हाथी दूसरे हाथियोंके दांतोंसे पीडित होकर उत्पात करनेवाले बादलोंके समान घोररूपसे चीत्कार करके आर्त्तनाद करने लगे ॥ मुख्य मुख्य बलवान् हाथी जब अपने दांतोंसे दूसरे हाथियोंको पीडित करने लगे, तब वे सम्पूर्ण हाथी तीक्ष्ण अंकुशोंसे चलाये जाने पर भी उन बलवान् हाथियोंके शरीरमें अपने दांतोंसे प्रहार करने लगे ॥ पीलवानोंने आपसमें एक दूसरेके ऊपर अपने बाण और तोमरोंसे प्रहार करना आरंभ किया; अनन्तर कितने ही पीलवान अंकुश और शस्त्रोंसे रहित होके पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ (४३-४५)

कितने ही हाथी मनुष्योंसे रहित होकर चिंघाड मारते हुए दूसरे हाथियोंके दांत और वीरोंके अस्त्रोंसे पीडित

दिशो जग्मुर्महानागाः केचिदेकचरा इव ॥ ४७ ॥
ताडितास्ताड्यमानाश्च तोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
पेतुरार्त्तस्वनं कृत्वा तदा विशसने गजाः ॥ ४८ ॥
तेषां शैलोपमैः कायैर्निपतद्भिः समन्ततः ।
आहता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ॥ ४९ ॥
सादितैः सगजारोहैः सपताकैः समन्ततः ।
मातङ्गैः शुशुभे भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ॥ ५० ॥
गजस्थाश्च महामात्रा निर्भिन्नहृदया रणे ।
रथिभिः पातिता भल्लैर्विकीर्णाङ्कुशतोमराः ॥ ५१ ॥
क्रौञ्चवद्विनदन्तोऽन्ये नाराचाभिहता गजाः ।
परान्स्वांश्चापि मृद्नन्तः परिपेतुर्दिशो दश ॥ ५२ ॥
गजाश्वरथयोधानां शरीरौघसमावृता ।
बभूव पृथिवी राजन्मांसशोणितकर्दमा ॥ ५३ ॥
प्रमथ्य च विषाणाग्रैः समुत्क्षिप्ताश्च वारणैः ।

होके पृथ्वी पर गिर गये ॥ कितने ही वीर योद्धा हाथियोंके पीठही पर मरके गिर गये । और कितनेही गजपति योद्धाओंके अस्त्र शस्त्र गिर पडे, अनन्तर कितने ही मतवारे हाथी अपने सवारों को लेकर ही सब ओर वेगसे दौडने लगे ॥ कितने ही हाथी तोमर, ऋष्टि और परशु आदि अस्त्रकी चोटसे मरकर पृथ्वीमें गिर पडे । उनके पर्वतके समान शरीरोंके इधर उधर गिरने से पृथ्वी कम्पित होने लगी ॥ (४६-४९)

गजपति योद्धा और पताकाओंके सहित मरे हुए हाथियोंके शरीरसे पूर्ण होकर सम्पूर्ण रणभूमि मानो पर्वतोंके समूहसे युक्त होकर अत्यन्त ही शोभित होने लगी ॥ रथियोंने अपने अस्त्रोंसे हाथियोंके पीलवानोंको जब अत्यन्त ही विद्ध कर दिया, तब अस्त्रोंके सहित उनके अंकुश हाथोंसे छूटके पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ और वे लोग भी हाथी परसे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ कितने हाथी शूरवीरोंके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर क्रौञ्च पक्षीके समान घोर शब्दसे चीत्कार करते हुए दशोदिशाओंमें अपनी तथा शत्रुसेनाको अपने पांवोंसे मर्दन करते हुए मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ (५०-५२)

हे राजन् ! उस समय पृथ्वी घोडे, हाथी और वीर पुरुषोंके शरीरोंसे छिपकर रुधिर और मांससे युक्त हो गई ॥

सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः ॥ ५४ ॥
रथाश्च रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च वाजिनः ।
हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुर्भयातुराः ॥ ५५ ॥
जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५६ ॥
आगुल्फेभ्योऽवसीदन्ते नरा लोहितकर्दमैः ।
दीप्यमानैः परिक्षिप्ता दावैरिव महाद्रुमाः ॥ ५७ ॥
शोणितैः सिच्यमानानि वस्त्राणि कवचानि च ।
छत्राणि च पताकाश्च सर्वं रक्तमदृश्यत ॥ ५८ ॥
हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्च निपातिताः ।
संक्षुण्णाः पुनरावृत्य बहुधा रथनेमिभिः ॥ ५९ ॥
सगजौघमहावेगः परासुनरशैवलः ।
रथौघतुमुलावर्तः प्रबभौ सैन्यसागरः ॥ ६० ॥
तं वाहनमहानौभिर्योधा जयधनैषिणः ।

बहुतेरे हाथी अपने दोनों दांत और सुण्डोंसे बडे बडे रथोंको रथियोंके सहित उठाकर फैंकने लगे; उससे कितने ही रथ चक्रसे रहित होगये और कितने ही ध्वजा सहित टूटके पृथ्वीमें पडेही रह गये । कितने ही रथ रथियोंसे, घोडे घुडसवारोंसे और हाथी अपने सवारोंसे हीन होकर भयसे विकल होकर इधर उधर भागने लगे ॥ (५३–५५)

उस महाघोर युद्धमें पुत्र पिताका और पिता पुत्रका वध करने लगे । इस महाघोर भयङ्कर संग्राममें कुछ भी बोध नहीं होता था ॥ सम्पूर्ण मनुष्योंके पांवसे सब शरीर रुधिर और मांसके लगनेसे लालवर्ण होगये । जैसे बडे बडे वृक्ष जलती हुई अग्निके तेजसे प्रकाशित होते हैं, वैसेही मुकट, वस्त्र, शस्त्र, और रथकी पताका आदि रुधिरसे युक्त होकर रक्त वर्ण दीख पडने लगे ॥ रथी और मनुष्योंके समूह मरके पृथ्वीमें गिरने लगे और रथोंके चलनेसे और भी कट कटके टुकडे टुकडे होने लगे ॥ सम्पूर्ण सेना उस समय चलते हुए हाथियोंके समूह रूपी वेगवान् वायु, मरे हुए मनुष्य रूपी सवारों और चारों ओर भ्रमण करते हुए रथ समूह रूपी नौकासे युक्त होके समुद्रके समान प्रकाशित होने लगी ॥ (५६–६०)

योद्धा सरूप वणिक् लोग जय रूपी धनको प्राप्त करनेके अभिलाषी होकर

अवगाह्याऽथ मज्जन्तो नैव मोहं प्रचक्रिरे ॥ ६१ ॥
शरवर्षाभिवृष्टेषु योधेष्वञ्चितलक्ष्मसु ।
न तेष्वचिस्ततां लेभे कश्चिदाहतलक्षणः ॥ ६२ ॥
वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयङ्करे ।
मोहयित्वा परान्द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत ॥ ६३ ॥ [८५०]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि संकुलयुद्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

संजय उवाच— ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वाऽन्तिकमुपागतम् ।
महता शरवर्षेण प्रत्यगृह्णाद् भीतवत् ॥ १ ॥
ततो हलहलाशब्द आसीद्यौधिष्ठिरे बले ।
जिघृक्षति महासिंहे गजानामिव यूथपम् ॥ २ ॥
दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
युधिष्ठिरमभिप्रेप्सुराचार्यं समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥
तत आचार्यपाञ्चाल्यौ युयुधाते महाबलौ ।
विक्षोभयन्तौ तत्सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥ ४ ॥

वाहन रूपी नौका पर सवार होके डूबते हुए भी उस सेना रूपी महाघोर समुद्र में मोहित नहीं हुए ॥ बाणोंकी वर्षासे योद्धाओंका चिन्ह लोप होगया; तब उस समयमें कोई भी शत्रुको नहीं पहिचान सकता था ॥ इस प्रकार महाघोर संग्राममें द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाको अपने अस्त्रोंसे मोहित करके युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे ॥ ६१–६३ [८५०]

द्रोणपर्वमें बीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें इक्कीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, अनन्तर राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्यको अपने निकट आया हुआ देखकर निर्भयचित्तसे उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करके उन्हें विद्ध करने लगे ॥ अनन्तर जैसे महाबलवान् सिंह हाथियोंके यूथपतिको ग्रहण करनेके निमित्त उद्यत होता है, वैसे ही जब द्रोणाचार्य युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे उनकी ओर बढने लगे, तब पाण्डवोंकी सेनामें अत्यन्त ही कोलाहल होने लगा । सत्य पराक्रमी सत्यजित् द्रोणाचार्यको राजा युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे उनकी ओर आते देखकर वेगपूर्वक द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ (१–३)

महाबलवान् द्रोणाचार्य और सत्यजित्का उस समयमें इन्द्र और बलिराजके समान युद्ध होने लगा, उन

ततो द्रोणं महेष्वासः सत्यजित्सत्यविक्रमः।
अविध्यन्निशिताग्रेण परमास्त्रं विदर्शयन् ॥ ५ ॥
तथाऽस्य सारथेः पञ्च शरान्सर्पविषोपमान्।
अमुञ्चदन्तकप्रख्यान्संमुमोहाऽस्य सारथिः ॥ ६ ॥
अथास्य सहसाऽविध्यद्धयान्दशभिराशुगैः।
दशभिर्दशभिः क्रुद्ध उभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ७ ॥
मण्डलं तु समावृत्य विचरन्पृतनामुखे।
ध्वजं चिच्छेद च क्रुद्धो द्रोणस्याऽमित्रकर्षणः ॥ ८ ॥
द्रोणस्तु तत्समालोक्य चरितं तस्य संयुगे।
मनसा चिन्तयामास प्राप्तकालमरिन्दमः ॥ ९ ॥
ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः।
अविध्यच्छीघ्रमाचार्यश्छित्त्वाऽस्य सशरं धनुः ॥ १० ॥
स शीघ्रतरमादाय धनुरन्यत्प्रतापवान्।
द्रोणमभ्यहनद्राजंस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाऽऽहवे।

दोनों पराक्रमी पुरुषसिंहोंका संग्राम देखकर सम्पूर्ण सैनिक भयभीत होगये। अनन्तर महा पराक्रमी सत्यजित् अपने प्रबल अस्त्रोंको चला कर द्रोणाचार्यके ऊपर प्रहार करने लगे, और सारथीको अत्यन्त तीक्ष्ण पांच बाणोंसे विद्ध करके मूर्च्छित कर दिया॥ (४-६)

फिर शत्रुनाशन सत्यजित्ने क्रुद्ध होकर दश दश बाणोंसे द्रोणाचार्यके घोडोंको विद्ध किया; और दस दस बाणोंसे पार्ष्णि और सारथिको विद्ध किया॥ अनन्तर मण्डलाकार गतिसे भ्रमण करते हुए सत्यजित्ने अपने बाणोंसे द्रोणाचार्यके रथकी ध्वजाको काटके गिरा दिया॥ शत्रुनाशन द्रोणाचार्य रणभूमिमें सत्यजित्का ऐसा पराक्रम देखकर मनमें चिन्ता करने लगे। उनका मृत्युकाल उपस्थित हुआ जानकर शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यने दश बाणोंसे उनके धनुषको बाण समेत काट कर फिर उनको अपने तीक्ष्णबाणोंसे विद्ध किया॥ (७--१०)

हे राजन्! पराक्रमी सत्यजित्ने शीघ्रताके सहित दूसरा धनुष ग्रहण करके कङ्क पत्रयुक्त तीस बाणोंसे फिर द्रोणाचार्यको विद्ध किया॥ हे राजन्! युद्ध भूमिमें सत्यजित्ने मानो द्रोणाचार्यको ग्रास कर लिया; तब पांचाल्य वृकने

वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः पाञ्चाल्याद्द्रोणमार्दयत् ॥१२॥
सञ्छाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथम्।
चुक्रुशुः पाण्डवा राजन्वस्त्राणि दुधुवुश्च ह ॥ १३ ॥
वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं षष्ट्या स्तनान्तरे।
विव्याध बलवान्राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १४ ॥
द्रोणस्तु शरवर्षेण च्छाद्यमानो महारथः।
वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ १५ ॥
ततः सत्यजितश्चापं छित्वा द्रोणो वृकस्य च।
षड्भिः ससूतं सहयं शरैर्द्रोणोऽवधीद्वृकम् ॥ १६ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम्।
साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजम् ॥ १७॥
स तन्न ममृषे द्रोणः पाञ्चाल्येनाऽर्दितो मृधे।
ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥ १८ ॥
हयान्ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णिसारथी।
अवाकिरत्ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः ॥ १९ ॥
तथा संछिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः।

सैकड़ों बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया उनका पराक्रम देखके पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण वीर योद्धा हर्षित होकर सिंह नाद करने लगे ॥ हे भारत ! उसही समयमें बलवान् वृकने भी साठ बाणोंसे द्रोणाचार्यको प्रहार किया ॥ उस समय वह युद्ध अद्भुतरूपसे दिखाई देने लगा ॥ (११-१४)

महापराक्रमी महारथ द्रोणाचार्य उन लोगोंकी बाणवर्षासे छिपकर क्रोधसे प्रज्वालित होगये। अनन्तर उन्होंने लाल नेत्र करके छः तीक्ष्ण बाणोंको ग्रहण किया, और उन्हींसे सत्यजित् और वृकका धनुष काटके वृक और उनके सारथीको मार डाला ॥ अनन्तर सत्यजित्ने और एक दृढ धनुष ग्रहण करके अनेक बाणोंसे रथ, सारथी और घोडोंके सहित द्रोणाचार्यको विद्ध किया। १५-१७

द्रोणाचार्य इसी प्रकारसे पाञ्चाल और सत्यजित्के बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर अत्यन्त ही क्रुद्ध होगये; अनन्तर वह शीघ्रताके सहित सत्यजित्के वधके निमित्त अपने भयङ्कर बाणोंको चलाने लगे ॥ एक ही बार सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके द्रोणाचार्यने सत्यजित्के रथ, घोडे, ध्वजा, धनुष और अस्त्र शस्त्रोंके

पाञ्चाल्यः परमास्त्रज्ञः शोणाश्वं समयोधयत् ॥ २० ॥
स सत्यजितमालोक्य तथोदीर्णं महाहवे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः ॥ २१ ॥
तस्मिन्हते महामात्रे पञ्चालानां महारथे ।
अपायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणात्त्रस्तो युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥
पञ्चालाः केकया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः ।
युधिष्ठिरमभीप्सन्तो दृष्ट्वा द्रोणमुपाद्रवन् ॥ २३ ॥
ततो युधिष्ठिरं प्रेप्सुराचार्यः शत्रुपूगहा ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तूलराशिमिवाऽनलः ॥ २४ ॥
निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः ।
द्रोणं मत्स्यादवरजः शतानीकोऽभ्यवर्तत ॥ २५ ॥
सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
षड्भिः ससूतं सहयं द्रोणं विध्वाऽनदच्छ्रशम् ॥ २६ ॥
क्रूराय कर्मणे युक्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ।

सहित उन्हें छिपा दिया ॥ द्रोणाचार्यने सत्यजित्के धनुषको बार बार काटके पृथ्वीमें गिराया; तो भी परम अस्त्रोंको जाननेवाले सत्यजित् उनसे युद्ध करते ही रहे। (१८-२०)

द्रोणाचार्यने उस युद्धमें सत्यजित्को इस प्रकारसे अत्यन्त कठिन कर्म करते देखके अर्द्धचन्द्र बाणसे उनका सिर काट डाला ॥ उस महा पराक्रमी विशाल शरीरवाले पाञ्चाल योद्धा सत्यजित्के मरनेके अनन्तर राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्यसे भयभीत होकर वेग पूर्वक अपने रथके घोडोंको चलाकर रणभूमिसे भागने लगे॥ तब पाञ्चाल, केकय, चेदी, मत्स्य, करुष और कोशल देशीय योद्धाओंने हर्षित होकर राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके निमित्त द्रोणाचार्यको आक्रमण किया॥ जैसे अग्नि रूईको भस्म करती है,वैसे ही शत्रु नाशन द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छासे उन सम्पूर्ण योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे भस्म करने लगे ॥ (२१-२४)

मत्स्यराज विराटके छोटे भाई शतानीक उस समय द्रोणाचार्यको सम्पूर्ण सेना भस्म करते देखकर उनकी ओर दौडे ॥ उन्होंने शिला पर घिसे हुए छः बाणोंसे सारथि और घोडोंके साथ द्रोणाचार्यको विद्ध किया; उनको अपने बाणोंसे विद्ध करके शतानीकने सिंहनाद किया ॥ और क्रूर कर्म करनेमें उद्युक्त

अवाकिरच्छरशतैर्भारद्वाजं महारथम् ॥ २७ ॥
तस्य नानदतो द्रोणः शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
क्षुरेणाऽपाहरत्तूर्णं ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥
मत्स्याञ्जित्वाऽजयच्चेदीन्करूषान्केकयानपि ।
पञ्चालान्सृञ्जयान्पाण्डून्भारद्वाजः पुनः पुनः ॥ २९ ॥
तं दहन्तमनीकानि क्रुद्धमग्निं यथा वनम् ।
दृष्ट्वा रुक्मरथं वीरं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ ३० ॥
उत्तमं ह्याददानस्य धनुरस्याऽऽशुकारिणः ।
ज्याघोषो निघ्नतोऽमित्रान्दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥ ३१ ॥
नागानश्वान्पदातींश्च रथिनो गजसादिनः ।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथ्नन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥
नानद्यमानः पर्जन्यो मिश्रवातो हिमात्यये ।
अश्मवर्षमिवाऽवर्षत्परेषां भयमादधत् ॥ ३३ ॥
सर्वा दिशः समचरत्सैन्यं विक्षोभयन्निव ।

होकर दुष्कर कर्म करनेकी इच्छासे महारथी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यको सैकडों बाणोंसे विद्ध करने लगे॥ द्रोणाचार्यने उस ही समय क्षुरास्रसे उनके कुण्डल भूषित सिरको काटके धडसे अलग कर दिया॥ द्रोणाचार्यका ऐसा पराक्रम देख मत्स्यदेशीय योद्धा लोग रणभूमिसे भागने लगे॥ (२६–२८)

द्रोणाचार्यने मत्स्य देशीय योद्धाओंको जीतकर बार बार चेदी, करुष, केकय, पाञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डव सेनाके योद्धाओंको पराजित किया॥ जैसे अग्नि वनको भस्म कर देती है, वैसे ही क्रुद्ध द्रोणाचार्यको सम्पूर्ण सेना भस्म करते हुए देख कर सृञ्जय लोग कम्पित होने लगे॥ वह जिस समय उत्तम धनुष ग्रहण करके शीघ्रताके सहित शत्रुओंका वध करने लगे, उस समय उनके धनुष का शब्द चारों ओर सुनाई देने लगा, द्रोणाचार्य के हस्तलाघवसे छूटे हुए सम्पूर्ण बाण घोडे, हाथी, रथी और पैदल चलनेवाले वीरोंको पीडित तथा प्राणरहित कर के पृथ्वी में गिराने लगे॥ (२९–३३)

जैसे हेमन्त ऋतुके अन्तमें बार बार गर्जते हुए प्रबल वायुके झकोरेसे युक्त होकर कभी कभी बादल शिलाकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वह बार बार अपने बाणोंको चला कर शत्रु सेनाको भयभीत करने लगे॥ अपने सुहृद् मित्रों और

बली शूरो महेष्वासो मित्राणामभयङ्करः ॥ ३४ ॥
तस्य विद्युदिवाऽभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम्।
दिक्षु सर्वासु पश्यामो द्रोणस्याऽमिततेजसः ॥ ३५ ॥
शोभमानां ध्वजे चाऽस्य वेदीमद्राक्ष्म भारत।
हिमवच्छिखराकारां चरतः संयुगे भृशम् ॥ ३६ ॥
द्रोणस्तु पाण्डवानीके चकार कदनं महत्।
यथा दैत्यगणे विष्णुः सुरासुरनमस्कृतः ॥ ३७ ॥
स शूरः सत्यवाक्प्राज्ञो बलवान्सत्यविक्रमः।
महानुभावः कल्पान्ते रौद्रां भीरुविभीषणाम् ॥ ३८ ॥
कवचोर्मिध्वजावर्त्तां मर्त्यकूलापहारिणीम्।
गजवाजिमहाग्राहामसिमीनां दुरासदाम् ॥ ३९ ॥
वीरास्थिशर्करां रौद्रां भेरीमुरजकच्छपाम्।
चर्मवर्मप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ४० ॥

अनुयायी वीर योद्धाओंको अभय करके, उन्हें हर्षित करते हुए बलवान द्रोणाचार्य रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगे॥ उस समय महातेजस्वी द्रोणाचार्यका सुवर्ण भूषित उत्तम धनुष मानो बादलोंसे युक्त बिजलीके समान सब दिशाओंमें प्रकाशित होने लगा॥ (३३-३५)

हे भारत! जिस समय रथ पर चढके वह रणभूमिमें वेगपूर्वक चारों ओर भ्रमण करने लगे, उस समय उनके रथकी ध्वजा पर स्थित अत्यन्त शोभायमान विचित्र वेदी हिमालय पर्वतके शिखरके समान दिखाई देने लगी॥ जैसे सम्पूर्ण देवतोंमें पूजित भगवान् विष्णु दानवोंका नाश करते हैं, वैसे ही पराक्रमी द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धाओंको अपने अस्त्रोंके बलसे नष्ट करने लगे। सत्यवादी, बुद्धिमान, महाबली और सत्य पराक्रमी द्रोणाचार्यने मानो प्रलय कालके रुद्रदेवकी बनाई हुई प्राणियोंका संहार करनेवाली उस रणभूमिमें रुधिर की अत्यन्त भयङ्करी नदी उत्पन्न कर दी॥ (३६-३८)

उस नदीमें कवच तरंग रूपी तथा ध्वजा भंवर रूपी दिखाई देते थे। मरे हुए योद्धा, हाथी, और घोडोंके शरीर उसमें मगर घडियालके समान दीख पडते थे। तलवार आदि अस्त्र ही उस नदीमें मछरी रूपसे देख पडते थे; वीरोंकी हाड्डियां उसमें कंकड और बालूरूपसे बोध हो रही थी॥ भेरी नगाडे आदि बाजे कछुए के समान उस भयङ्कर नदीमें दिखाई

शरौघिणीं धनुः स्रोतां बाहुपन्नगसङ्कुलाम् ।
रणभूमिवहां तीव्रां कुरुसृञ्जयवाहिनीम् ॥ ४१ ॥
मनुष्यशीर्षपाषाणां शक्तिमीनां गदोडुपाम् ।
उष्णीषफेनवसनां विकीर्णान्त्रसरीसृपाम् ॥ ४२ ॥
वीरापहारिणीमुग्रां मांसशोणितकर्दमाम् ।
हस्तिग्राहां केतुवृक्षां क्षत्रियाणां निमज्जनीम् ॥ ४३ ॥
क्रूरां शरीरसङ्घट्टां सादिनक्रां दुरत्ययाम् ।
द्रोणः प्रावर्त्तयत्तत्र नदीमन्तकगामिनीम् ॥ ४४ ॥
क्रव्यादगणसञ्जुष्टां श्वशृगालगणायुताम् ।
निषेवितां महारौद्रैः पिशिताशैः समन्ततः ॥ ४५ ॥
तं दहन्तमनीकानि रथोदारं कृतान्तवत् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः ॥ ४६ ॥
ते द्रोणं सहिताः शूराः सर्वतः प्रत्यवारयन् ।

देते थे। बड़ेबड़े ढाल और कवच उस नदी में नौकाके समान बहे जाते थे। वीरोंके केश ही सेवार, बाणोंका समूह प्रवाहका वेग, धनुष स्रोत और वीरोंकी कटी हुई भुजायें सर्पके समान दिखाई देती थीं। रणभूमि प्रवाहका स्थान, और बहने तथा प्रवाहित होने वाली वस्तु उस युद्धभूमिमें कौरव तथा सृञ्जयोंकी सेनाके सब योद्धा लोग थे॥ (३९–४१)

मनुष्योंका सिर उस नदीमें पत्थर रूपी और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्र मत्स्य विशेषके समान बोध होते थे; उस नदीमें छत्र, मुकुट और वस्त्र आदिक संपूर्ण सामग्री फेनके समान दीख पड़ती थीं। टूटे फूटे अस्त्र-शस्त्र ही उसमें बालूरूपसे बोध हुए, हाथी ग्राहके समान, रथ और हाथियों पर लगी हुई ध्वजा नदी-तीरके वृक्षके समान दीख पड़ते थे। घुड़सवारोंके समूह उस नदीमें कुम्भीरोंके समान बोध होते थे। महा-भयङ्करी मृत पुरुषों और मरे हुए वाह-नोंके बांधसे युक्त, घोर रूपिणी, वीर पुरुषोंके संहार करनेवाली और यमलोक पर्यन्त प्रवाहित होनेवाली उस दुर्गम्य नदीमें क्षत्रिय लोग डूबने लगे। राक्षस, कुत्ते और सियार आदि मांस भक्षण करनेवाले भयङ्कर जीव वहां पर इधरउधर भ्रमण करने लगे॥ (४२–४५)

युधिष्ठिरकी सेनाके सम्पूर्ण राजा लोग महारथ द्रोणाचार्य को यमराजके समान पाण्डवोंकी सेनाको भस्म करते देख कर क्रुद्ध होकर उनकी ओर दौड़े॥

गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यं तपन्तं भुवनं यथा ॥ ४७ ॥
तं तु शूरं महेष्वासं तावकाऽभ्युद्यतायुधाः ।
राजानो राजपुत्राश्च समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ४८ ॥
शिखण्डी तु ततो द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
क्षत्रवर्मा च विंशत्या वसुदानश्च पञ्चभि ॥ ४९ ॥
उत्तमौजास्त्रिभिर्बाणैः क्षत्रदेवश्च सप्तभिः ।
सात्यकिश्च शतेनाजौ युधामन्युस्तथाऽष्टभिः ॥ ५० ॥
युधिष्ठिरो द्वादशभिर्द्रोणं विव्याध सायकैः ।
धृष्टद्युम्नश्च दशभिश्चेकितानस्त्रिभिः शरैः ॥ ५१ ॥
ततो द्रोणः सत्यसन्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत् ॥ ५२ ॥
ततो राजानमासाद्य प्रहरन्तमभीतवत् ।
अविध्यन्नवभिः क्षेमं स हतः प्रापतद्रथात् ॥ ५३ ॥
स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्दिशः ।
त्राता ह्यभवदन्येषां न त्रातव्यः कथञ्चन ॥ ५४ ॥

जैसे सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे सम्पूर्ण प्राणियोंको तपा कर भस्म करता है, वैसे ही द्रोणाचार्यने अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंकी वर्षासे पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंको विकल कर दिया । अनन्तर जब युधिष्ठिरकी ओरके सम्पूर्ण राजाओंने मिलकर चारों ओरसे द्रोणाचार्यको घेर लिया तब तुम्हारी ओरके राजा और राजपुत्र अस्त्रशस्त्र ग्रहण करके द्रोणाचार्य के समीप उपस्थित होकर शत्रुओंका निवारण करने लगे । (४६-४८)

अनन्तर शिखण्डीने पांच, क्षत्रवर्माने बीस, वसुदानने पांच, उत्तमौजाने तीन, क्षत्रदेवने सात, सात्यकिने सौ, युधामन्युने आठ, युधिष्ठिरने बारह, धृष्टद्युम्नने दश और चेकितानने तीन बाणोंसे द्रोणाचार्यको प्रहार किया ॥ अनन्तर सत्य पराक्रमी मदयुक्त हाथीके समान द्रोणाचार्यने रथ सेनाको अतिक्रम करके दृढसेनको मारके गिरा दिया ॥ क्षेमराजा निर्भयतासे अस्त्र चला रहे थे, द्रोणाचार्यने उन्हे नव बाणोंसे विद्ध किया । वह उनके बाणोंसे पीडित होकर रथपरसे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ (४९-५३)

द्रोणाचार्य सम्पूर्ण सेनाके बीचमें घूमते हुए अपनी ओरके शूरवीरोंकी रक्षा करने लगे। परन्तु वह स्वयं किसी के भी रक्षाधीन नहीं हुए ॥ उन्होंने

शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् ।
वसुदानं च भल्लेन प्रैषयद्यमसादनम् ॥ ५५ ॥
अशीत्या क्षत्रवर्माणं षड्विंशत्या सुदक्षिणम् ।
क्षत्रदेवं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५६ ॥
युधामन्युं चतुःषष्ट्या त्रिंशता चैव सात्यकिम् ।
विध्वा रुक्मरथस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५७ ॥
ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं गुरुतो राजसत्तमः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात् ॥ ५८ ॥
तं द्रोणः सधनुष्कं तु साश्वयन्तारमाक्षिणोत् ।
स हतः प्रापतद्भूमौ रथाज्ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥ ५९ ॥
तस्मिन्हते राजपुत्रे पञ्चालानां यशस्करे ।
हत द्रोणं हत द्रोणमित्यासीन्निःस्वनो महान् ॥ ६० ॥
तांस्तथा भृशसंरब्धान्पञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ।
सृञ्जयान्पाण्डवांश्चैव द्रोणो व्यक्षोभयद्बली ॥ ६१ ॥

बारह बाणोंसे शिखण्डी,और बीस बाणोंसे उत्तमौजाको विद्ध करके एक भल्लसे वसुदानको वध कर यमपुरीको भेज दिया॥ अनन्तर क्षत्रवर्माको अस्सी बाण, सुदक्षिणको छब्बीस बाण और क्षत्रदेव को भल्लके प्रहारसे पीडित करके रथसे पृथ्वीपर गिराया॥ फिर चौसठ बाणोंसे युधामन्यु और तीस बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके राजा युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ (५४–५७)

अनन्तर राजसत्तम युधिष्ठिर आचार्य द्रोणको संमुख आते देख, अत्यन्त वेगवान् घोडोंके रथपर बैठकर शीघ्रताके सहित रणभूमिसे भागने लगे; तब उस समयमें पाञ्चालराजपुत्रने द्रोणाचार्यको आक्रमण किया ॥ द्रोणाचार्यने घोडे, सारथी और धनुषके सहित उनको विद्ध किया; जैसे आकाशसे ज्योतिवाले पदार्थ पृथ्वी पर गिरते हैं वैसेही पाञ्चाल वीरोंमें वह यशस्वी राजपुत्र द्रोणाचार्य के अस्त्रोंसे पृथ्वीमें गिर पडा ॥ जब वह पराक्रमी राजपुत्र मारा गया, तब "द्रोणाचार्यको मारो। द्रोणाचार्यका वध करो" ऐसा ही महाघोर शब्द पाण्डवोंकी सेनामें सुनाई देने लगा ॥ (५८–६०)

महा बलवान् द्रोणाचार्य अत्यन्त क्रुद्ध होके पञ्चाल, मत्स्य, केकय, सृञ्जय और पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंको अपने बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित करने लगे ॥ द्रोणाचार्य कुरुसेनामें घिर कर

सात्यकिं चेकितानं च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ।
वार्धक्षेमिं चैत्रसेनिं सेनाबिन्दुं सुवर्चसम् ॥ ६२ ॥
एतांश्चाऽन्यांश्च सुबहून्नानाजनपदेश्वरान्।
सर्वान्द्रोणोऽजयद्युद्धे कुरुभिः परिवारितः ॥ ६३ ॥
तावकाश्च महाराज जयं लब्ध्वा महाहवे।
पाण्डवेयान्रणे जघ्नुर्द्रवमाणान्समन्ततः ॥ ६४ ॥
ते दानवा इवेन्द्रेण वध्यमाना महात्मना।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः समकम्पन्त भारत ॥ ६५ ॥ [९१५]

इति श्रीमहाभारते० संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

धृतराष्ट्र उवाच– भारद्वाजेन भग्नेषु पाण्डवेषु महामृधे।
पञ्चालेषु च सर्वेषु कश्चिदन्योऽभ्यवर्त्तत ॥ १ ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा क्षत्रियाणां यशस्करीम्।
असेवितां कापुरुषैः सेवितां पुरुषर्षभैः ॥ २ ॥
स हि वीरो न्नतः शूरो यो भग्नेषु निवर्त्तते।
अहो नाऽऽसीत्पुमान्कश्चिद्दृष्ट्वा द्रोणं व्यवस्थितम् ॥३॥
जृम्भमाणमिव व्याघ्रं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम्।

सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, वृद्धक्षेमसुत, चित्रसेनपुत्र, सेनाबिन्दु, सुवर्चा और दूसरे नाना देशोंसे आये हुए अनेक राजाओंको युद्धमें पराजित किया ॥ (६१–६३)

हे महाराज! तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग युद्धमें जयी होकर चारों ओर दौडते हुए पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका वध करने लगे॥ हे भारत! उस समयमें पाञ्चाल मत्स्य और केकय देशीय राजा लोग द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकारसे कांपने लगे, जैसे इन्द्रके अस्त्रोंसे पीडित होकर दानव लोग कम्पित होजाते हैं। ६४-६५[९१५]

द्रोणपर्वमें इक्कीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें बाईस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! उस युद्धमें जब पाण्डव और पाञ्चाल सेनाके योद्धा लोग द्रोणाचार्यके संमुख से भाग गये, तब फिर कौनसे यशस्वी पुरुष लोग सत्पुरुषोंसे सेवित श्रेष्ठबुद्धि अवलम्बन करके युद्धमें प्रवृत्त हुए थे? सम्पूर्ण सेनाके भागने पर भी जो पुरुष युद्धमें प्रवृत्त होते हैं, वे ही शूर और ऊंचे स्वभाववाले वीर योद्धा हैं॥ (१–३)

कैसे आश्चर्यका विषय है, कि जमु

त्यजन्तमाहवे प्राणान्सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४ ॥
महेष्वासं नरव्याघ्रं द्विषतां भयवर्धनम् ।
कृतज्ञं सत्यनिरतं दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ५ ॥
भारद्वाजं तथाऽनीके दृष्ट्वा शूरमवस्थितम् ।
के शूराः सन्न्यवर्तन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ६ ॥
सञ्जय उवाच— तान्दृष्ट्वा चलितान्संख्ये प्रणुन्नान्द्रोणसायकैः ।
पञ्चालान्पाण्डवान्मत्स्यान्सृञ्जयांश्चेदिकेकयान् ॥ ७ ॥
द्रोणचापविमुक्तेन शरौघेणाऽसुहारिणा ।
सिन्धोरिव महौघेन ह्रियमाणान्यथा प्लवान् ॥ ८ ॥
कौरवाः सिंहनादेन नानावाद्यस्वनेन च ।
रथद्विपनराश्चैव सर्वतः समवारयन् ॥ ९ ॥
तान्पश्यन्सैन्यमध्यस्थो राजा स्वजनसंवृतः ।
दुर्योधनोऽब्रवीत्कर्णं प्रहृष्टः प्रहसन्निव ॥ १० ॥
दुर्योधन उवाच—पश्य राधेय पञ्चालान्प्रणुन्नान्द्रोणसायकैः ।
सिंहेनेव मृगान्वन्यांस्त्रासितान्दृढधन्वना ॥ ११ ॥

हाई लेते हुए व्याघ्रके समान तथा मद-चूते हुए मतवारे हाथीकी भांति युद्धमें स्थित, संग्रामभूमिमें प्राण त्यागने के निमित्त उद्यत हुए, महा धनुर्धारी शत्रुओंको भयभीत करने वाले कृतज्ञ, सत्य निरत, पुरुषसिंह द्रोणाचार्य को देखकर, उस समयमें उनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होवे, ऐसा क्या कोई भी पुरुष पाण्डवोंकी सेनामें नहीं था ? हे सञ्जय ! कौन कौन शूरवीर योद्धा इस प्रकारसे द्रोणाचार्यको रणभूमिमें स्थित देखकर, उनके संमुख हुए थे ? वह मेरे समीप वर्णन करो ॥ (३-६)

सञ्जय बोले, हे राजन् ! जैसे समुद्र की प्रबल तरङ्गसे नौका विचलित होती हैं, वैसे ही पाञ्चाल, पाण्डव, मत्स्य, चेदी, सृञ्जय और केकय देशीय वीरोंको द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए अस्त्रोंसे पीडित होकर भागते देख रथी, घुड-सवार, गजपति और पैदल सेनाके सहित कौरवोंने सिंहनाद किया और जुझाऊ बाजोंको बजाकर रणभूमिको सिंहनाद और बाजोंके शब्दसे परिपूर्ण सेनाके बीचमें स्थित, बन्धु बान्धवोंसे युक्त राजा दुर्योधन पाण्डवों की सेनाको इस प्रकारसे विकल देख, हर्षित होकर हंसते हंसते कर्णसे यह बचन बोले। ७-१२

दुर्योधन बोले, हे कर्ण यह देखो,

नैते जातु पुनर्युद्धमीहेयुरिति मे मतिः ।
यथा तु भग्ना द्रोणेन वातेनेव महाद्रुमाः ॥ १२ ॥
अर्द्यमानाः शरैरेते रुक्मपुङ्खैर्महात्मना ।
पथा नैकेन गच्छन्ति घूर्णमानास्ततस्ततः ॥ १३ ॥
सन्निरुद्धाश्च कौरव्यैर्द्रोणेन च महात्मना ।
एतेऽन्ये मण्डलीभूताः पावकेनेव कुञ्जराः ॥ १४ ॥
भ्रमरैरिव चाऽऽविष्टा द्रोणस्य निशितैः शरैः ।
अन्योन्यं समलीयन्त पलायनपरायणाः ॥ १५ ॥
एष भीमो महाक्रोधी हीनः पाण्डवसृञ्जयैः ।
मदीयैरावृतो योधैः कर्ण नन्दयतीव माम् ॥ १६ ॥
व्यक्तं द्रोणमयं लोकमद्य पश्यति दुर्मतिः ।
निराशो जीविताद्नूनमद्य राज्याच्च पाण्डवः ॥ १७ ॥

जैसे वनके हरिणोंका समूह सिंहको देख कर भयभीत हो जाता है, वैसे ही पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके बाणों से पीडित होके युद्धभूमिसे भागे जाते हैं ! मुझे ऐसा बोध होता है, कि ये लोग फिर युद्ध नहीं करेंगे। जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे वृक्षोंके समूह टूट-के गिरते हैं, वैसे ही ये लोग द्रोणाचार्य के तीक्ष्ण शस्त्रोंसे विकल होके भागे जाते हैं॥ ये सम्पूर्ण योद्धा लोग महात्मा द्रोणाचार्यके रुक्मपक्षयुक्त बाणोंके प्रहार से अत्यन्त विकल होकर युद्धभूमिसे तितर बितर होकर चारों ओर भागे जाते हैं ॥ यह देखो, कितने ही शूर-वीर योद्धा लोग महात्मा द्रोणाचार्य और शूरवीर कौरवोंके बीचमें पडकर अग्निसे व्याप्त हाथियोंके समान मण्डला-कार गतिसे इधर उधर भ्रमण कर रहे हैं ॥ (११—१४)

द्रोणाचार्यके तीक्ष्ण बाण भ्रमरोंके झुण्डके समान उन योद्धाओंके ऊपर गिरते हुए दीख पडते हैं, इसहीसे ये लोग युद्धभूमिसे भागते और आपसमें एक दूसरेके धक्केसे इधर उधर गिरते हुए दिखाई देरहे हैं ॥ हे कर्ण ! यह देखो, यह महा क्रोधी भीम दूसरे सम्पूर्ण पाण्डव और सृञ्जयोंकी सेनाके शूरवीरों से रहित होकर मेरी सेनाके शूरवीर योद्धाओंमें घिर गया है, इसे देखकर मैं बहुत ही आनन्दित हो रहा हूं ॥ मुझे यह निश्चय बोध होरहा है, कि मूर्ख भीम आज जगत्को द्रोणमय दे-खकर राज्य और जीवनकी आशासे निराश हो रहा है ॥ (१५–१७)

कर्ण उवाच— नैष जातु महाबाहुर्जीवन्नाहवमुत्सृजेत् ।
न चेमान्पुरुषव्याघ्रा सिंहनादान्सहिष्यति ॥ १८ ॥
न चाऽपि पाण्डवा युद्धे भज्येरन्निति मे मतिः ।
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ १९ ॥
विषाग्निद्यूतसंक्लेशान्वनवासं च पाण्डवाः ।
स्मरमाणा न हास्यन्ति संग्राममिति मे मतिः ॥ २० ॥
निवृत्तो हि महाबाहुरमितौजा वृकोदरः ।
वरान्वरान्हि कौन्तेयो रथोदारान्हनिष्यति ॥ २१ ॥
असिना धनुषा शक्त्या हयैर्नागैर्नरै रथैः ।
आयसेन च दण्डेन व्रातान्व्रातान्हनिष्यति ॥ २२ ॥
तमेनमनुवर्त्तन्ते सात्यकिप्रमुखा रथाः ।
पञ्चाला केकया मत्स्याः पाण्डवाश्च विशेषतः ॥ २३ ॥
शूराश्च बलवन्तश्च विक्रान्ताश्च महारथाः ।
विनिघ्नन्तश्च भीमेन संरब्धेनाभिचोदिताः ॥ २४ ॥
ते द्रोणमभिवर्तन्ते सर्वतः कुरुपुङ्गवाः ।
वृकोदरं परीप्सन्तः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ २५ ॥

कर्ण बोले, हे पुरुषसिंह ! महाबाहु भीम जीवित रहते कदापि युद्धसे न हटेगा, और इन सम्पूर्ण योद्धाओंके सिंहनादको भी न सहेगा ॥ मेरे विचारमें पाण्डव लोग सब ही युद्धदुर्मद, बलवान् शूर और कृतास्त्र हैं, वे लोग युद्धमें भागने वाले नहीं हैं ॥ विशेष करके विष, अग्नि, जुए का खेल और वनवासके क्लेशोंको स्मरण करके वे लोग कदापि युद्ध परित्याग नहीं करेंगे ॥ (१८–२०)

यह महाबाहु अत्यन्त तेजस्वी कुन्तीपुत्र वृकोदर युद्धमें प्रवृत्त होकर हम लोगोंके मुख्य मुख्य महारथ वीरोंका संहार करेगा ॥ तलवार, धनुष, शक्ति, घोडे, हाथी, मनुष्य, रथ और लोहमय दण्डसे हम लोगोंकी सेनाके समूहको नष्ट करेगा ! सात्यकि प्रभृति महारथ योद्धा और पाञ्चाल, केकय, मत्स्य तथा पाण्डव सेनाके मुख्य मुख्य शूरवीर पुरुष उसका अनुमान कर रहे हैं ॥ विशेष करके दूसरे पाण्डव लोग भी शूरवीर, बलवान्, पराक्रमी तथा महारथ हैं; और उन सब लोगोंको युद्धके निमित्त उत्तेजित करने वाला क्रोधी भीम है ॥ (२१–२४)

इससे ये कुरुश्रेष्ठ पाण्डव लोग भीमको आगे कर चारों ओरसे द्रोणाचार्यको ऐसे

एकायनगता ह्येते पीडयेयुर्यतव्रतम् ।
अरक्षमाणं शलभा यथा दीपं मुमूर्षवः ॥ २६ ॥
असंशयं कृतास्त्राश्च पर्याप्ताश्चाऽपि वारणे ।
अतिभारमहं मन्ये भारद्वाजे समाहितम् ॥ २७ ॥
शीघ्रमनुगमिष्यामो यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ।
कोका इव महानागं मा वै हन्युर्यतव्रतम् ॥ २८ ॥
सञ्जय उवाच— राधेयस्य वचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः ।
भ्रातृभिः सहितो राजन्प्रायाद्द्रोणरथं प्रति ॥ २९ ॥
तत्रारावो महानासीदेकं द्रोणं जिघांसताम् ।
पण्डवानां निवृत्तानां नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥ ३० ॥ [९४५]

इति श्रीमहाभारते० संहितायां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सर्वेषामेव मे ब्रूहि रथचिह्नानि सञ्जय ।
ये द्रोणमभ्यवर्त्तन्त क्रुद्धा भीमपुरोगमाः ॥ १ ॥

आक्रमण करेंगे; जैसे बादल सूर्यको घेरकर छिपा देते हैं ॥ जैसे मुमूर्षु फतिङ्गे एक बार ही दीपकपर गिरते हैं, वैसे ही वे सब लोग एकत्रित होकर अरक्षित द्रोणाचार्यके समीप जाके अवश्य ही उन्हें अपने अस्त्रोंसे पीडित करेंगे ॥ वे सब ही कृतास्त्र हैं, इससे द्रोणाचार्यको निवारण करनेमें अवश्य ही समर्थ होंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । मैं बोध करता हूं, कि द्रोणाचार्यके ऊपर बहुत ही कठिन भार अर्पण किया गया है ॥ इससे चलिये, जिस स्थान पर द्रोणाचार्य हैं; वहां पर ही हमलोग भी गमन करें । जिससे वे लोग वृकोंमें गजराजरूपी यशस्वी द्रोणाचार्यका वध न कर सकें ॥ (२५-२८)

सञ्जय बोले, महाराज ! राजा दुर्योधन ने कर्णका वचन सुनकर भाइयोंके साथ शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यके समीप जानेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ वहांपर नाना वर्णोंके घोडों पर चढे हुए एक ही द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करनेवाले तथा युद्धमें प्रवृत्त हुए पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंका महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ (२९–३०) [९४५]

द्रोणपर्वमें बाईस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें तेईस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! भीम प्रभृति जो सब शूरवीर योद्धा लोग क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यके संमुख उपस्थित हुए थे, उन सम्पूर्ण शूरवीरोंके घोडे और रथकी ध्वजाका तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ (१)

सञ्जय उवाच— ऋक्षवर्णैर्हयैर्दृष्ट्वा व्यायच्छन्तं वृकोदरम्।
रजताश्वस्ततः शूरः शैनेयः सन्न्यवर्त्तत ॥ २ ॥
सारङ्गाश्वो युधामन्युः स्वयं प्रत्वरयन्हयान्।
पर्यवर्त्तत दुर्धर्षः क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ३ ॥
पारावतसवर्णैस्तु हेमभाण्डैर्महाजवैः।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नो न्यवर्त्तत ॥ ४ ॥
पितरं तु परिप्रेप्सुः क्षत्रधर्मा यतव्रतः।
सिद्धिं चास्य परां कांक्षञ्शोणाश्वः सन्न्यवर्त्तत ॥ ५ ॥
पद्मपत्रनिभांश्चाश्वान्मल्लिकाक्षानलंकृतान्।
शैखण्डिः क्षत्रदेवस्तु स्वयं प्रत्वरयन्ययौ ॥ ६ ॥
दर्शनीयास्तु काम्बोजाः शुकपत्रपरिच्छदाः।
वहन्तो नकुलं शीघ्रं तावकानभिदुद्रुवुः ॥ ७ ॥
कृष्णास्तु मेघसङ्काशा अवहन्नुत्तमौजसम्।
दुर्धर्षायाभिसन्धाय क्रुद्धं युद्धाय भारत ॥ ८ ॥
तथा तित्तिरिकल्माषा हया वातसमा जवे।
अवहंस्तुमुले युद्धे सहदेवमुदायुधम् ॥ ९ ॥

सञ्जय बोले, भीमसेनने ऋक्षके समान वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके गमन किया। उसे देख कर सात्यकि रजतके समान शुभ्र वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्ध करनेके निमित्त द्रोणाचार्यकी ओर दौडे॥ पराक्रमी युधामन्यु सारंग वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके क्रोधपूर्वक द्रोणाचार्यके रथकी ओर दौडे॥ पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न सुवर्णभूषित पारावतके रूपके समान वेगवान घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्ध में प्रवृत्त हुए॥ (२—४)

पराक्रमी क्षत्रधर्म पिताकी सहायता करनेके निमित्त लाल वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्ध करनेके निमित्त चले॥ और निर्मल नेत्रवाले शिखण्डी पुत्र क्षत्रदेव पद्मपत्र वर्णवाले, घोडोंके रथपर चढे॥ शुक पक्षीके पंखके समान वर्णवाले केशोंसे युक्त काम्बोज देशीय घोडे नकुलके रथको लेकर तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे॥ बादलके रूपवाले घोडे प्रसन्न और क्रुद्ध होकर उत्तमौजाके रथको लेकर द्रोणाचार्य की ओर चले॥ (५—८)

तीतर पक्षीके समान शीघ्रगामी घोडे उस घोर संग्राममें शस्त्रधारी सहदेवके

दन्तवर्णास्तु राजानं कालवाला युधिष्ठिरम् ।
भीमवेगा नरव्याघ्रमवहन्वातरंहसः ॥ १० ॥
हेमोत्तमप्रतिच्छन्नैर्हयैर्वातसमैर्जवे ।
अभ्यवर्त्तन्त सैन्यानि सर्वाण्येव युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
राज्ञस्त्वनन्तरो राजा पाञ्चाल्यो द्रुपदोऽभवत् ।
जातरूपमयच्छत्रः सर्वैस्तैरभिरक्षितः ॥ १२ ॥
ललामैर्हरिभिर्युक्तः सर्वशब्दक्षमैर्युधि ।
राज्ञां मध्ये महेष्वासः शान्तभीरभ्यवर्तत ॥ १३ ॥
तं विराटोऽन्वयाच्छीघ्रं सह सर्वैर्महारथैः ।
केकयाश्च शिखण्डी च धृष्टकेतुस्तथैव च ॥ १४ ॥
स्वैः स्वैः सैन्यैः परिवृता मत्स्यराजानमन्वयुः ।
तं तु पाटलिपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥ १५ ॥
वहमाना व्यराजन्त मत्स्यस्याऽमित्रघातिनः ।
हरिद्रासमवर्णास्तु जवना हेममालिनः ॥ १६ ॥
पुत्रं विराटराजस्य सत्वरं समुदावहन् ।
इन्द्रगोपकवर्णैश्च भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥ १७ ॥

रथको लेकर द्रोणाचार्यकी ओर चले॥ वायुके समान वेगशील भयानक श्याम वर्ण पूंछ और हाथी दांतके समान रंग वाले घोडे पुरुषसिंह युधिष्ठिरके रथको लेकर युद्धके निमित्त रणभूमिमें चलने लगे॥ सम्पूर्ण सेनाके शूरवीर योद्धा लोग वायुवेगी सुवर्णभूषित घोडोंपर चढकर राजा युधिष्ठिरका अनुगमन करने लगे॥ (९–११)

सुवर्णभूषित छत्र धारण करके राजा द्रुपद उस सम्पूर्ण सेनाके सहित महाराज युधिष्ठिरके पीछे पीछे चले। महाधनुर्धारी राजा द्रुपद युद्धभूमिमें सब प्रकारके शब्दोंको सहनेमें समर्थ, मस्तकमें चिन्ह विशेषसे युक्त उत्तम घोडोंके सहित रथ पर चढके युद्ध करनेके निमित्त कौरवों-की सेनाकी ओर चले॥ राजा विराट सम्पूर्ण महारथ वीरोंके सहित उनके अनुगामी हुए। केकय, शिखण्डी और धृष्टकेतु ये लोग अपनी सेनाके सहित मत्स्यराज विराटका अनुगमन करनेलगे। पाटलि पुष्प वर्णके घोडे शत्रुनाशन विराटके रथमें अत्यन्त ही शोभित होने लगे॥ (१२–१६)

हरिद्रवर्णके घोडे विराटपुत्र उत्तरके रथमें जोते गये। केकय राज पांचों भाई

जातरूपसमाभासाः सर्वे लोहितकध्वजाः ।
ते हेममालिनः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १८ ॥
वर्षन्त इव जीमूताः प्रत्यदृश्यन्त दंशिताः ।
आमपात्रनिकाशास्तु पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ १९ ॥
दत्तास्तुम्बुरुणा दिव्याः शिखण्डिनमुदावहन् ।
तथा द्वादश साहस्राः पञ्चालानां महारथाः ॥ २० ॥
तेषां तु षट्सहस्राणि ये शिखण्डिनमन्वयुः ।
पुत्रं तु शिशुपालस्य नरसिंहस्य मारिष ॥ २१ ॥
आक्रीडन्तो वहन्ति स्म सारङ्गशबला हयाः ।
धृष्टकेतुस्तु चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ॥ २२ ॥
काम्बोजैः शबलैरश्वैरभ्यवर्तत दुर्जयः ।
बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं सुकुमारं हयोत्तमाः ॥ २३ ॥
पलालधूमसङ्काशाः सैन्धवाः शीघ्रमावहन् ।
मल्लिकाक्षाः पद्मवर्णा बाल्हिजाताः स्वलंकृताः ॥२४ ॥
शूरं शिखण्डिनः पुत्रमृक्षदेवमुदावहन् ।

इन्द्रगोपक वर्णके घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्धके निमित्त प्रस्थान करने लगे॥ वे पांचों भाई सुवर्णके समान प्रकाशित होने लगे, उनके रथकी लाल ध्वजा थी, सुवर्णकी माला गलेमें डाले हुए सब युद्ध-विद्याके जाननेवाले वे पांचों भाई वर्म धारण करके कुरु सेनाके वीरोंके ऊपर अपने बाणोंको वर्षाते हुए इस प्रकारसे गमन करने लगे, जैसे बादल आकाशसे जलकी वर्षा करता है। (१६–१९)

मलिन श्वेत वर्ण वाले घोडे रथ-सहित शिखण्डीको लेकर युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर चले; बारह हजार पाञ्चाल योद्धाओंमेंसे छः हजार शूरवीर योद्धा शिखण्डीके अनुगामी हुए। हे भारत! सारङ्गके समान शबलवर्णके घोडे शिशुपालपुत्रको क्रीडा करते हुए रथसहित लेकर कुरुसेनाकी ओर चलने लगे। अत्यन्त बलवान् चेदिराज धृष्ट-केतु काम्बोजदेशीय खाकी घोडोंसे युक्त रथपर चढके कौरवोंकी सेनाकी ओर दौडे। पलाल धूम्रवर्णके शीघ्रगामी घोडे केकयराज सुकुमार बृहत् क्षत्रके रथमें जोते गये॥ (१९–२४)

मल्लिकालोचन, पद्मवर्णवाले बाल्हिक-देशीय सुन्दर अलङ्कारोंसे भूषित घोडे शिखण्डीपुत्र ऋक्ष देव को रथसहित लेकर युद्धभूमिकी ओर चले॥ शिक्षायुक्त,

रुक्मभाण्डप्रतिच्छन्नाः कौशेयसदृशा हयाः ॥ २५ ॥
क्षमावन्तोऽवहन्संख्ये सेनाबिन्दुमरिन्दमम् ।
युवानमवहन्युद्धे क्रौञ्चवर्णा हयोत्तमाः ॥ २६ ॥
काश्यस्याऽभिभुवः पुत्रं सुकुमारं महारथम् ।
श्वेतास्तु प्रतिविन्ध्यं तं कृष्णग्रीवा मनोजवाः ।
यन्तुः प्रेष्यकरा राजन्राजपुत्रमुदावहन् ॥ २७ ॥
सुतसोमं तु यः सौम्यं पार्थः पुत्रमजीजनत् ।
माषपुष्पसवर्णास्तमवहन्वाजिनो रणे ॥ २८ ॥
सहस्रसोमप्रतिमो बभूव पुरे कुरूणामुदयेन्दुनाम्नि ।
तस्मिञ्जातः सोमसंक्रन्दमध्ये यस्मात्तस्मात्सुतसोमोऽभवत्सः ॥२९ ॥
नाकुलिं तु शतानीकं शालपुष्पनिभा हयाः ।
आदित्यतरुणप्रख्याः श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३० ॥
काञ्चनापिहितैर्योक्त्रैर्मयूरग्रीवसन्निभाः ।
द्रौपदेयं नरव्याघ्रं श्रुतकर्माणमाहवे ॥ ३१ ॥
श्रुतकीर्तिं श्रुतनिधिं द्रौपदेयं हयोत्तमाः ।
ऊहुः पार्थसमं युद्धे चापपत्रनिभा हयाः ॥ ३२ ॥

सुवर्णभूषित सफेत और पीतवर्ण के घोडे शत्रुनाशन सेनाबिन्दु को रथ सहित लेकर कुरुसेनाकी ओर चले। क्रौञ्च पक्षीके वर्णवाले घोडे महारथ काशिराजपुत्र अभिभूके रथमें जोते गये ॥ हे राजेन्द्र! श्याम ग्रीवावाले मनके समान सारथीके वशवर्ती घोडे प्रतिविन्ध्यके रथमें जोते गये ॥ (२४—२७)

माषपुष्पके समान वर्णवाले घोडे भीमसेनके पुत्र सुतसोमके रथमें जोते गये ॥ वह भीमपुत्र कौरवों के उदयेन्दु अर्थात् इन्द्रप्रस्थ नाम की पुरी में सोमयाग के समय हजार सोम के समान सौम्य रूपसे उत्पन्न हुए थे, इस ही कारणसे उनका नाम सुतसोम हुआ॥ शालपुष्पवर्णके, उदित सूर्यके समान शोभावाले घोडे नकुलपुत्र, स्तुत्य, शतानीकके रथमें जोते गये ॥ (२८-३०)

मोरकी ग्रीवाके वर्ण समान उत्तम घोडे सुवर्ण-भूषित वस्त्र अलङ्कारोंसे सज्जित होकर पुरुषसिंह द्रौपदीपुत्र श्रुतकर्माको लेकर द्रोणाचार्यकी ओर चले ॥ चापपत्रके समान वर्णवाले उत्तम घोडे युद्धमें अर्जुनके समान पराक्रमी शस्त्रोंके जाननेवाले द्रौपदीपुत्र श्रुतकीर्त्तिको लेकर युद्धभूमिकी ओर चले ॥ जो

यमाहुरध्यर्धगुणं कृष्णात्पार्थाच्च संयुगे ।
अभिमन्युं पिशङ्गास्तं कुमारमवहन्रणे ॥ ३३ ॥
एकस्तु धार्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः ।
तं बृहन्तो महाकाया युयुत्सुमवहन्रणे ॥ ३४ ॥
पलालकाण्डवर्णास्तु वार्धक्षेमिं तरस्विनम् ।
ऊहुः सुतुमुले युद्धे हयाः कृष्णाः स्वलंकृताः ॥ ३५ ॥
कुमारं शितिपादास्तु रुक्मचित्रैरुरश्छदैः ।
सौचित्तिमवहन्युद्धे यन्तुः प्रेष्यकरा हयाः ॥ ३६ ॥
रुक्मपीठावकीर्णास्तु कौशेयसदृशा हयाः ।
सुवर्णमालिनः क्षान्ताः श्रेणिमन्तमुदावहन् ॥ ३७ ॥
रुक्ममालाधराः शूरा हेमपृष्ठाः स्वलंकृताः ।
काशिराजं नरश्रेष्ठं श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३८ ॥
अस्त्राणां च धनुर्वेदे ब्राह्मे वेदे च पारगम् ।
तं सत्यधृतिमायान्तमरुणाः समुदावहन् ॥ ३९ ॥
यः स पाञ्चालसेनानीर्द्रोणमंशमकल्पयत् ।

युद्धभूमिमें कृष्ण तथा अर्जुनसेभी अधिक पराक्रमका कार्य करता है, उस अभिमन्युको पिङ्गलवर्णके घोडे रथ सहित द्रोणाचार्यकी ओर लेजाने लगे। ३१-३३

जिन्होंने सम्पूर्ण धार्तराष्ट्रोंको त्यागकर युद्धमें पाण्डवोंका पक्ष ग्रहण किया है, उस युयुत्सुके रथमें विशाल शरीरवाले घोडे जोते हुए दिखाई देने लगे॥ पलालकाण्डवर्णके सुन्दर कृष्णरूपवाले घोडे उस युद्धमें पराक्रमी वार्द्धक्षेमिके रथमें जोते हुए दीख पडते थे॥ श्यामवर्णके चरणवाले सारथीके अधीन रहनेवाले, सुवर्ण चित्रित कवचसे युक्त, घोडे कुमार सौचित्तिके रथमें जोते हुए रणभूमिमें भ्रमण करने लगे॥ (३४-३६)

पीठपर सुवर्णमय वस्त्रोंसे युक्त कौशेयके सदृश पीतवर्ण सुवर्ण माला धारण करनेवाले शिक्षित घोडे श्रेणिमान्‌को रथ सहित लेकर युद्धभूमिमें उपस्थित हुए॥ सुवर्णमाला धारण करनेवाले, पीठपर सुवर्णवस्त्रोंसे युक्त, शूर, अच्छी तरहसे अलंकृत घोडे नरश्रेष्ठ श्लाघनीय काशिराजके रथको लेकर युद्धभूमिमें उपस्थित हुए॥ (३७-३८)

लालवर्णवाले घोडे अस्त्रविद्या, धनुर्वेद और ब्रह्मवेदके जाननेवाले सत्यधृतिके रथको लेकर युद्धभूमिमें उपस्थित हुए॥ जिस सेनापति पाञ्चाल धृष्टद्युम्नने

पारावतसवर्णास्तं धृष्टद्युम्नमुदावहन् ॥ ४० ॥
तमन्वयात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।
श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ॥ ४१ ॥
युक्तैः परमकाम्बोजैर्जवनैर्हेमसमालिभिः ।
भीषयन्तो द्विषत्सैन्यं यमवैश्रवणोपमाः ॥ ४२ ॥
प्रभद्रकास्तु काम्बोजाः षट्सहस्राण्युदायुधाः ।
नानावर्णैर्हयैः श्रेष्ठैर्हेमवर्णरथध्वजाः ॥ ४३ ॥
शरव्रातैर्विधुन्वन्तः शत्रून्विततकार्मुकाः ।
समानमृत्यवो भूत्वा धृष्टद्युम्नं समन्वयुः ॥ ४४ ॥
बभ्रुकौशेयवर्णास्तु सुवर्णवरमालिनः ।
ऊहुरम्लानमनसश्चेकितानं हयोत्तमाः ॥ ४५ ॥
इन्द्रायुधसवर्णस्तु कुन्तिभोजो हयोत्तमैः ।
आयात्सदश्वैः पुरुजिन्मातुलः सव्यसाचिनः ॥ ४६ ॥
अन्तरिक्षसवर्णास्तु तारकाचित्रिता इव ।
राजानं रोचमानं ते हयाः संख्ये समावहन् ॥ ४७ ॥

द्रोणाचार्यको वध करनेके निमित्त अपने हिस्सेमें चुना था, उस धृष्टद्युम्नके रथमें पारावत वर्णके घोडे जोते गये ॥ जब धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यकी ओर चले, तब कांबोज देशीय अश्वोंसे युक्त रथोंमें बैठकर शत्रुसेनाको भय दिखाते हुए सत्यधृति, सौचित्ति, श्रेणिमान्, वसुदान और काशिराजके पुत्र अभिभू—ये सब यम और कुबेरके समान पराक्रमी योद्धा धृष्टद्युम्नके अनुगामी हुए ॥ (३९-४२)

प्रभद्रक और काम्बोजदेशीय छः हजार योद्धा लोग वेगशील, सुवर्णकी माला धारण करनेवाले नाना भांतिके मुख्य मुख्य घोडोंसे युक्त सुवर्णकी ध्वजासे युक्त, सुवर्णभूषित रथोंपर चढके अपने अपने धनुष्य सज्यकर, शत्रुओंको बाणोंसे विद्ध करते हुए मृत्युकी डर छोडकर धृष्टद्युम्नके पीछे पीछे चलने लगे ॥ (४३-४४)

पिंगट गौरवर्णके घोडोंसे युक्त रथपर चढके पराक्रमी चेकितान युद्धभूमिकी ओर चलने लगे ॥ अर्जुनके मामा महारथ कुन्तिभोजराज पुरुजित् इन्द्र आयुधवर्ण घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्ध करनेके निमित्त शत्रु सेनाकी ओर चले ॥ तारकाओंसे चित्रित आकाश के समान वर्णवाले घोडे राजा रोचमान के रथको लेकर युद्धभूमिमें भ्रमण करते

कर्बुराः शितिपादास्तु स्वर्णजालपरिच्छदाः ।
जारासन्धिं हयाः श्रेष्ठाः सहदेवमुदावहन् ॥ ४८ ॥
ये तु पुष्करनालस्य समवर्णा हयोत्तमाः ।
जवे श्येनसमाश्चित्राः सुदामानमुदावहन् ॥ ४९ ॥
शशलोहितवर्णास्तु पाण्डुरोद्गतराजयः ।
पाञ्चाल्यं गोपतेः पुत्रं सिंहसेनमुदावहन् ॥ ५० ॥
पञ्चालानां नरव्याघ्रो यः ख्यातो जनमेजयः ।
तस्य सर्षपपुष्पाणां तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ॥ ५१ ॥
माषवर्णाश्च जवना बृहन्तो हेममालिनः ।
दधिपृष्ठाश्चित्रमुखाः पाञ्चाल्यमवहन्द्रुतम् ॥ ५२ ॥
शूराश्च भद्रकाश्चैव शरकाण्डनिभा हयाः ।
पद्मकिञ्जल्कवर्णाभा दण्डधारमुदावहन् ॥ ५३ ॥
रासभारुणवर्णाभाः पृष्ठतो मूषिकप्रभाः ।
वल्गन्त इव संयत्ता व्याघ्रदत्तमुदावहन् ॥ ५४ ॥
हरयः कालकाश्चित्राश्चित्रमाल्यविभूषिताः ।

हुए दीखने लगे ॥ (४५-४७)

श्यामवर्ण चरण, कर्बूरवर्ण उत्तम घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़के जरासन्धपुत्र सहदेव चले ॥ बाजपक्षीके समान वेगशील पुष्करनालके समान वर्णवाले घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़के पराक्रमी सुदाम चले ॥ शशलोहितवर्ण रोमराजीसे युक्त घोड़ोंके रथपर चढ़के पाञ्चाल देशीय गोपतिके पुत्र सिंहसेन द्रोणाचार्यकी ओर चले ॥ पाञ्चाल शूरवीर योद्धाओंमें विख्यात पुरुषसिंह जनमेजय सर्षप पुष्पके समान वर्णवाले घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़के युद्धभूमिमें कुरुसेनाके सम्मुख द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित हुए॥ (४८-५१)

दधिवर्ण पृष्ठ और विशाल शरीरवाले तथा सुवर्ण मालासे शोभित माषवर्ण वेगवान् उत्तम घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़के पराक्रमी पाञ्चाल्य चले। भद्रक देशीय शरकाण्डके समान पद्मकिंजल्क वर्ण पराक्रमी घोड़ोंसे युक्त रथ पर चढ़के महारथ दण्डधार चले ॥ गर्दभके समान किंचित् लालवर्णवाले चूंहेके समान वर्णयुक्त पीठवाले घोड़े उछलते हुए रथ सहित व्याघ्रदत्तको लेकर युद्धभूमिकी ओर चलने लगे ॥ (५२-५४)

विचित्र माल्य भूषित श्यामवर्ण मस्तक वाले घोड़ोंसे युक्त रथ पर चढ़के

सुधन्वानं नरव्याघ्रं पाञ्चाल्यं समुदावहन् ॥ ५५ ॥
इन्द्राशनिसमस्पर्शा इन्द्रगोपकसन्निभाः ।
काये चित्रान्तराश्चित्राश्चित्रायुधमुदावहन् ॥ ५६ ॥
बिभ्रतो हेममालास्तु चक्रवाकोदरा हयाः ।
कोसलाधिपतेः पुत्रं सुक्षत्रं वाजिनोऽवहन् ॥ ५७ ॥
शबलास्तु बृहन्तोऽश्वा दान्ता जाम्बूनदस्रजः ।
युद्धे सत्यधृतिं क्षेमिमवहन्प्रांशवः शुभाः ॥ ५८ ॥
एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
अश्वैश्च धनुषा चैव शुक्लैः शुक्लो न्यवर्त्तत ॥ ५९ ॥
समुद्रसेनपुत्रं तु सामुद्रा रुद्रतेजसम् ।
अश्वाः शशाङ्कसदृशाश्चन्द्रसेनमुदावहन् ॥ ६० ॥
नीलोत्पलसवर्णास्तु तपनीयविभूषिताः ।
शैब्यं चित्ररथं संख्ये चित्रमाल्या वहन्हयाः ॥ ६१ ॥
कलायपुष्पवर्णास्तु श्वेतलोहितराजयः ।
रथसेनं हयश्रेष्ठाः समूहुर्युद्धदुर्मदम् ॥ ६२ ॥
यं तु सर्वमनुष्येभ्यः प्राहुः शूरतरं नृपम् ।

पाञ्चाल योद्धाओंमें मुख्य सुधन्वा चलने लगे ॥ इन्द्रके वज्र समान स्पर्श करनेवाले और बीरवधूटी कीटके समान वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके चित्रायुध कुरुसेनाकी ओर चले ॥ सुवर्णमाला धारी चक्रवाकके समान उदरवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके कोशलराजपुत्र सुक्षत्र शत्रुसेनासे युद्ध करनेके निमित्त रणभूमिमें उपस्थित हुए ॥ (५५–५७)

शबलवर्ण उत्तम और विशाल शरीरवाले, दान्त, सुवर्ण मालायुक्त घोडोंके रथपर चढके युद्धभूमिमें क्षेमपुत्र सत्यधृति उपस्थित हुए ॥ शुक्ल शुक्लवर्णवाले धनुष, अस्त्र, घोडे और शुक्लवर्णवाले रथ पर चढके युद्धके निमित्त चले ॥ शशाङ्कके समान समुद्रसे उत्पन्न हुए घोडे समुद्रसेनपुत्र महातेजस्वी चन्द्रसेनके रथमें जोते हुए दिखाई पडते थे ॥ (५८–६०)

काले पत्थरके समान वर्णवाले चित्र विचित्र मालाओंसे शोभित घोडोंसे युक्त उत्तम रथ पर चढके चित्ररथ शैब्य युद्धके निमित्त शत्रुओंकी ओर चले ॥ कलायपुष्पके रूपके समान श्वेत और लाल रोमराजीसे युक्त उत्तम घोडोंके रथ पर चढके युद्ध दुर्मद रथसेन युद्ध

तं पटच्चरहन्तारं शुकवर्णावहन्हयाः ॥ ६३ ॥
चित्रायुधं चित्रमाल्यं चित्रवर्मायुधध्वजम् ।
ऊहुः किंशुकपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥ ६४ ॥
एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
धनुषा रथवाहैश्च नीलैर्नीलोऽभ्यवर्तत ॥ ६५ ॥
नानारूपै रत्नचित्रैर्वरूथध्वजकार्मुकैः ।
वाजिध्वजपताकाभिश्चित्रैश्चित्रोऽभ्यवर्तत ॥ ६६ ॥
ये तु पुष्करवर्णस्य तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ।
ते रोचमानस्य सुतं हेमवर्णमुदावहन् ॥ ६७ ॥
योधाश्च भद्रकाराश्च शरदण्डानुदण्डयः ।
श्वेताण्डाः कुक्कुटाण्डाभा दण्डकेतुं हयावहन् ॥ ६८ ॥
केशवेन हते संख्ये पितर्यथ नराधिपे ।
भिन्ने कपाटे पाण्ड्यानां विद्रुतेषु च बन्धुषु ॥ ६९ ॥
भीष्मादवाप्य चास्त्राणि द्रोणाद्रामात्कृपात्तथा ।
अस्त्रैः समत्वं सम्प्राप्य रुक्मिकर्णार्जुनाच्युतैः ॥ ७० ॥

करनेके निमित्त चलने लगे ॥ जिसको सब लोग पुरुषोंमें अधिक पराक्रमी कहके वर्णन करते हैं, उस पट्टचर हन्ता राजाको शुक्लवर्णवाले घोडे रथ सहित लेकर युद्धभूमिमें उपस्थित हुए॥६१-६३

किंशुक पुष्पके समान रूपवाले उत्तम घोडोंसे युक्त रथ पर चढकर विचित्र अस्त्र, माला, ध्वजा और विचित्र वर्मवाले, पराक्रमी चित्रायुध चले। नील वर्णके घोडोंसे युक्त रथ पर चढके नील राजा काली ध्वजा, काला कवच और नीलवर्णवाले अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके शत्रुसेनाकी ओर दौडे ॥ चित्र नामक राजा रत्नचिन्हित आश्चर्य जनक वर्म, धनुष और घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्धके निमित्त शत्रुसेनाकी ओर चले॥ ६४-६६

पुष्कर वर्ण घोडोंसे युक्त रथ पर चढके रोचमानके पुत्र हेमवर्ण शत्रुओंकी ओर शीघ्रतासे दौडे ॥ युद्धमें समर्थ, अच्छी क्रियावाले, शरदण्ड समान पृष्ठवाले तथा कुक्कुटाण्ड वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके दण्डकेतु चले ॥ ६७-६८

कृष्णके हाथसे जिसके पिता मारे गये, तथा पाण्ड्य देशके कपाटनगरका विध्वंस हुआ और बन्धु बान्धव भागे थे; जिन्होंने उसी कारणसे भीष्म, बलराम, द्रोणाचार्य और कृपाचार्यसे अस्त्रविद्या सीख कर रुक्मि, कर्ण, अर्जुन

इयेष द्वारकां हन्तुं कृत्स्नां जेतुं च मेदिनीम् ।
निवारितस्ततः प्राज्ञैः सुहृद्भिर्हितकाम्यया ॥ ७१ ॥
वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वराज्यमनुशास्ति यः ।
स सागरध्वजः पाण्ड्यश्चन्द्ररश्मिनिभैर्हयैः ॥ ७२ ॥
वैदूर्यजालसञ्छन्नैर्वीर्यद्रविणमाश्रितः ।
दिव्यं विस्फारयंश्चापं द्रोणमभ्यद्रवद्बली ॥ ७३ ॥
आटरूषकवर्णाभा हयाः पाण्ड्यानुयायिनाम् ।
अवहन्रथमुख्यानामयुतानि चतुर्दश ॥ ७४ ॥
नानावर्णेन रूपेण नानाकृतिमुखा हयाः ।
रथचक्रध्वजं वीरं घटोत्कचमुदावहन् ॥ ७५ ॥
भरतानां समेतानामुत्सृज्यैको मतानि यः ।
गतो युधिष्ठिरं भक्त्या त्यक्त्वा सर्वमभीप्सितम्॥७६॥
लोहिताक्षं महाबाहुं बृहन्तं तमरद्दजाः ।
महासत्वा महाकायाः सौवर्णस्यन्दने स्थितम् ॥७७॥
सुवर्णवर्णा धर्मज्ञमनीकस्थं युधिष्ठिरम् ।

और कृष्णके समान होके द्वारिका पुरीको नष्ट करने तथा सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतनेकी इच्छा की थी;–जो बुद्धिमान् हितैषी सुहृद्मित्रोंके निवारण करने पर कृष्णके सङ्ग शत्रुता त्यागके अपने राज्यका शासन करते हैं, वही ऐश्वर्य और पराक्रमसे युक्त पाण्ड्य राज सागरध्वज, वैदूर्यमणियोंके जालसे आच्छादित, चन्द्रकिरणके समान प्रकाशमान् घोडोंसे युक्त रथ पर चढके अपने दिव्य धनुषको खींचते हुए द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ (६९—७३)

वासक पुष्पके समान वर्णवाले उत्तम घोडे पाण्ड्यराजके अनुगामी एकलक्ष चालीस हजार महारथ शूरवीरोंको लेकर द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ नाना वर्ण और नाना प्रकारके मुखवाले घोडे रथचक्र चिन्हित ध्वजासे युक्त घटोत्कचको रथ सहित लेकर शत्रुसेनाकी ओर चले ॥ जो अकेलेही भरतवंशीय सम्पूर्ण पुरुषोंके मत का उल्लंघन और अभीष्ट वस्तुओंको त्यागकर भक्तिपूर्वक युधिष्ठिरकी ओर हुए हैं ॥ महा पराक्रमी बडे शरीरवाले घोडे ऊंची ध्वजासे युक्त सुवर्णमय रथके सहित लालनेत्रवाले उस महाबाहु बृहन्तको लेकर युद्धभूमिकी ओर चले ॥ ७४-७७

सुवर्णके समान रूपवाले उत्तम घोडोंसे युक्त रथोंपर चढके राजा युधिष्ठिर

राजश्रेष्ठं हयश्रेष्ठाः सर्वतः पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ७८ ॥
वर्णैरुच्चावचैरन्यैः सदश्वानां प्रभद्रकाः ।
सन्न्यवर्त्तन्त युद्धाय बहवो देवरूपिणः ॥ ७९ ॥
ते यत्ता भीमसेनेन सहिताः काञ्चनध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥ ८० ॥
अत्यरोचत तान्सर्वान्धृष्टद्युम्नः समागतान् ।
सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचत ॥ ८१ ॥
अतीव शुशुभे तस्य ध्वजः कृष्णाजिनोत्तरः ।
कमण्डलुर्महाराज जातरूपमयः शुभः ॥ ८२ ॥
ध्वजं तु भीमसेनस्य वैदूर्यमणिलोचनम् ।
भ्राजमानं महासिंहं राजन्तं दृष्टवानहम् ॥ ८३ ॥
ध्वजं तु कुरुराजस्य पाण्डवस्य महौजसः ।
दृष्टवानस्मि सौवर्णं सोमं ग्रहगणान्वितम् ॥ ८४ ॥
मृदङ्गौ चाऽत्र विपुलौ दिव्यौ नन्दोपनन्दकौ ।
यन्त्रेणाऽऽहन्यमानौ च सुस्वनौ हर्षवर्धनौ ॥ ८५ ॥

के पृष्ठरक्षक शूरवीर योद्धा लोग युद्ध करनेके निमित्त शत्रुसेनाकी ओर चले ॥ देवरूपी दूसरे कितने ही प्रभद्रक योद्धा लोग नानावर्णके उत्तम घोडोंसे युक्त रथ पर चढके युद्धके निमित्त द्रोणाचार्यकी ओर दौडे॥ हे राजेन्द्र! भीमसेनके आधिपत्यमें रहनेवाले सब सुवर्ण ध्वजासे युक्त प्रभद्रक योद्धा लोग ऐसे शोभित हुए जैसे इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता शोभायमान लगते हैं ॥ (७८–८०)

सेनापति धृष्टद्युम्न सम्पूर्ण सेना को अतिक्रम करके सब शूरवीरोंके सहित प्रकाशित होने लगे। परन्तु द्रोणाचार्य उन सम्पूर्ण शूरवीरों को अतिक्रम करके अत्यन्त ही प्रकाशित हुए ॥ हे राजेन्द्र! द्रोणाचार्यकी उत्तम ध्वजा और स्वर्णमय कमण्डलु अत्यन्त ही शोभित होने लगा॥ भीमसेनकी वैदूर्यमणिके नेत्र युक्त सुवर्णभूषित सिंहसे युक्त ध्वजाभी खूबही प्रकाशित होने लगी, उसे मैंने देख लिया॥ कुरुश्रेष्ठ महातेजस्वी युधिष्ठिरकी ग्रहोंके चित्र तथा सुवर्णमय चन्द्रमाके चिन्हसे युक्त उत्तम ध्वजा अत्यन्त सुन्दर दिखाई देने लगी ॥ (८१–८४)

राजा युधिष्ठिरकी ध्वजा पर नन्द, उपनन्दनामके दो दिव्य मृदङ्ग थे, विना बजाये ही यन्त्रके द्वारा मधुर स्वरसे बजते हुये सब शूरवीरोंको हर्षित करने

शरभं पृष्ठसौवर्णं नकुलस्य महाध्वजम् ।
अपश्याम रथेऽत्युग्रं भीषयाणमवस्थितम् ॥ ८६ ॥
हंसस्तु राजतः श्रीमान्ध्वजे घण्टापताकवान् ।
सहदेवस्य दुर्धर्षो द्विषतां शोकवर्धनः ॥ ८७ ॥
पञ्चानां द्रौपदेयानां प्रतिमाध्वजभूषणम् ।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोश्च महात्मनोः ॥ ८८ ॥
अभिमन्योः कुमारस्य शार्ङ्गपक्षी हिरण्मयः ।
रथे ध्वजवरो राजंस्तप्तचामीकरोज्ज्वलः ॥ ८९ ॥
घटोत्कचस्य राजेन्द्र ध्वजे गृध्रो व्यरोचत ।
अश्वाश्च कामगास्तस्य रावणस्य पुरा यथा ॥ ९० ॥
माहेन्द्रं च धनुर्दिव्यं धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
वायव्यं भीमसेनस्य धनुर्दिव्यमभून्नृप ॥ ९१ ॥
त्रैलोक्यरक्षणार्थाय ब्रह्मणा सृष्टमायुधम् ।
तद्दिव्यमजरं चैव फाल्गुनार्थाय वै धनुः ॥ ९२ ॥
वैष्णवं नकुलायाऽथ सहदेवाय चाऽश्विजम् ।

लगे ॥ नकुलके रथ पर सुवर्णमय पृष्ठ युक्त बहुत ऊंची शरभ चिह्नसे युक्त भयङ्कर अति उग्र ध्वजा दिखाई देने लगी ॥ सहदेवके रथ पर घण्टा और पताका विशिष्ट, शत्रुओंके शोकको बढानेवाली हंसचिन्हसे युक्त उत्तम ध्वजा दिखाई देने लगी ॥ (८५-८७)

द्रौपदीपुत्र पांचों भाइयोंके रथकी ध्वजा पर धर्म, वायु, इन्द्र, और दोनों अश्विनी कुमारोंकी प्रतिमा दीख पडती थी ॥ अभिमन्युके, रथकी ध्वजा पर उज्वल तपाये हुए स्वर्णके समान हिरण्यमय शार्ङ्ग पक्षीकी मूर्त्ति दीखने लगी ॥ हे राजेन्द्र ! घटोत्कचके रथ पर गिद्ध पक्षीके चिह्नसे युक्त ध्वजा प्रकाशित होती थी ॥ पहिले रावणके घोडे जैसे कामगामी थे, वैसे ही घटोत्कचके घोडे भी प्रकाशित होने लगे ॥ (८८-९०)

धर्मराज युधिष्ठिरके पास दिव्य माहेन्द्र धनुष्य और भीमसेनका दिव्य वायव्य धनुष्य था ॥ हे राजन् ! त्रैलोक्य की रक्षाके लिये कभी जीर्ण न होने वाला जो गाण्डीव धनुष्य ब्रह्माने उत्पन्न किया था वह इस समय अर्जुनके पास था ॥ नकुलके लिये वैष्णव धनुष्य और अश्विनी कुमारोंने निर्माण किया हुआ धनुष्य सहदेवके लिये था ॥ दिव्य

घटोत्कचाय पौलस्त्यं धनुर्दिव्यं भयानकम् ॥ ९३ ॥
रौद्रमाग्नेयकौबेरं याम्यं गिरिशमेव च।
पञ्चानां द्रौपदेयानां धनूरत्नानि भारत ॥ ९४ ॥
रौद्रं धनुर्वरं श्रेष्ठं लेभे यद्रौहिणीसुतः।
तत्तुष्टः प्रददौ रामः सौभद्राय महात्मने ॥ ९५ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो ध्वजा हेमविभूषिताः।
तत्राऽदृश्यन्त शूराणां द्विषतां शोकवर्धनाः ॥ ९६ ॥
तदभूद् ध्वजसम्बाधमकापुरुषसेवितम्।
द्रोणानीकं महाराज पटे चित्रमिवाऽर्पितम् ॥ ९७ ॥
शुश्रुवुर्नामगोत्राणि वीराणां संयुगे तदा।
द्रोणमाद्रवतां राजन्स्वयंवर इवाऽऽहवे ॥ ९८ ॥ [१०४३]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि ध्वजवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

धृतराष्ट्र उवाच- व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि सञ्जय।
आहवे ये न्यवर्तन्त वृकोदरमुखा नृपाः ॥ १ ॥
सम्प्रयुक्तः किलैवाऽयं दिष्टैर्भवति पूरुषः।

भयानक पौलस्त्य धनुष्य घटोत्कचका था॥ (९१-९३)

हे भारत! द्रौपदीके पांच पुत्रोंके धनुष्योंका नाम क्रमशः रौद्र, आग्नेय, कौबेर, याम्य, और गिरिश हैं, ये सब धनुष रत्नके समान हैं॥ रौद्र नामक जो श्रेष्ठ धनुष्य रोहिणीपुत्र बलरामको मिला था वह उसने संतुष्ट होकर अपने भांजे अभिमन्युको दिया।(९४-९५)

उस युद्धभूमिमें इस प्रकारसे दूसरे शूरवीर योद्धाओंके शत्रुओंके शोकको बढाने वाले, सुवर्ण भूषित अनेक ध्वज दीख पडने लगे॥ तब डरपोक पुरुषोंसे रहित, और सैकडों ध्वजाओंसे युक्त द्रोणाचार्यकी सेनाभी पटमें लिखे हुए चित्रके समान निश्चलरूप दीखने लगी॥ उस समय स्वयंवरमें इकट्ठे हुएके समान युद्धमें द्रोणाचार्यकी ओर गमन करने वाले शूरवीर योद्धाओंके नाम और गोत्र रणभूमिमें चारों ओर सुन पडने लगे॥ (९६-९८) [१०४३]

द्रोणपर्वमें तेईस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें चौबीस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! भीमसेन आदि जो सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा युद्धमें उपस्थित हुए थे, वे सब देवताओंकी सेनाको भी पीडित कर सकते हैं॥ पुरुष प्रारब्धहीके वशमें होकर

तस्मिन्नेव च सर्वार्था। प्रदृश्यन्ते पृथग्विधाः ॥ २ ॥
दीर्घं विप्रोषितः कालमरण्ये जटिलोऽजिनी ।
अज्ञातश्चैव लोकस्य विजहार युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
स एव महतीं सेनां समावर्त्तयदाहवे ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मम पुत्रस्य चाऽभवत् ॥ ४ ॥
युक्त एव हि भाग्येन ध्रुवमुत्पद्यते नरः ।
स तथाऽऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ॥ ५ ॥
द्यूतव्यसनमासाद्य क्लेशितो हि युधिष्ठिरः ।
स पुनर्भागधेयेन सहायानुपलब्धवान् ॥ ६ ॥
अद्य मे केकया लब्धाः काशिकाः कोसलाश्च ये ।
चेदयश्चाऽपरे वङ्गा मामेव समुपाश्रिताः ॥ ७ ॥
पृथिवी भूयसी तात मम पार्थस्य नो तथा ।
इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ॥ ८ ॥
तस्य सेनासमूहस्य मध्ये द्रोणः सुरक्षितः ।

कार्योंके करनेमें प्रवृत्त होता है और प्रारब्धहीसे नाना प्रकारके पुरुषार्थ प्रकाशित होते हैं ॥ जो युधिष्ठिर बहुत दिनों तक जटाधारी होकर वन वनमें भ्रमण करते थे, और सब पुरुषोंसे अविदित होकर अपना दिन काटते थे॥ इस समय वेही दैवी संयोगसे युद्धके निमित्त बडी भारी सेना संग्रह करके रणभूमिमें उपस्थित हुए हैं ॥ तब मेरे पुत्रोंके निमित्त इससे बढके और कौनसा अशुभ हो सकेगा ? ॥ (१–४)

मनुष्य निश्चय ही प्रारब्धके अनुसार जन्म ग्रहण करता है, क्योंकि स्वयं जिस वस्तुकी इच्छा नहीं करता, प्रारब्ध उसे अवश्य ही प्रतिपालन कर देता है ॥ देखो, युधिष्ठिर जुएके खेलमें हारके वनवासी हुए थे, और अब फिर प्रारब्ध से ही सहाय सम्पन्न हुए हैं ॥ मूर्ख दुर्योधनने पहिले मेरे समीपमें यह वचन कहा था, कि " हे तात ! इस समय कैकयराज, काशिराज और सब योद्धाओंके सहित कोशलराज मेरी ओर उपस्थित हैं, चेदिदेशीय शूरवीर और वङ्गदेशीय सम्पूर्ण योद्धा मेरी ओर होगये हैं; पृथ्वीके अधिकांश लोग तथा अनेक राजा जितने मेरी ओर हैं, उतने पाण्डवोंकी ओर नहीं हैं ॥ (५–८)

हे सूत ! आज उसी सेनाके बीचमें रहकर भी जब द्रोणाचार्य रणभूमिमें धृष्टद्युम्न के हाथसे मारेगये, तब भाग्य

निहतः पार्थेनाऽऽजौ किमन्यद्भागधेयतः ॥ ९ ॥
मध्ये राज्ञां महाबाहुं सदा युद्धाभिनन्दिनम् ।
सर्वास्त्रपारगं द्रोणं कथं मृत्युरुपेयिवान् ॥ १० ॥
समनुप्राप्तकृच्छ्रोऽहं मोहं परममागतः ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नाऽहं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥
यन्मां क्षत्ताऽब्रवीत्तात प्रपश्यन्पुत्रगृद्धिनम् ।
दुर्योधनेन तत्सर्वं प्राप्तं सूत मया सह ॥ १२ ॥
नृशंसं तु परं तु स्यात्त्यक्त्वा दुर्योधनं यदि ।
पुत्रशेषं चिकीर्षेयं कृत्स्नं न मरणं व्रजेत् ॥ १३ ॥
यो हि धर्मं परित्यज्य भवत्यर्थपरो नरः ।
सोऽस्माच्च हीयते लोकात्क्षुद्रभावं च गच्छति ॥ १४ ॥
अद्य चाऽप्यस्य राष्ट्रस्य हतोत्साहस्य सञ्जय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १५ ॥
कथं स्यादवशेषो हि धुर्ययोरभ्यतीतयोः ।

के अतिरिक्त और क्या कहा जायगा ? प्रारब्ध ही बलवान् है। नहीं तो सम्पूर्ण राजाओंके बीच रहनेवाले सदा युद्धकार्योंमें वन्दनीय, सब अस्त्रोंके जाननेवाले द्रोणाचार्यकी मृत्युकी कौनसी संभावना थी ? मैं भीष्म और द्रोणाचार्य की मृत्युका वृत्तान्त सुनके अत्यन्त ही सन्तापित और महामोहसे मुग्ध होगया हूं; अब मुझे जीवित रहनेकी इच्छा नहीं होती है ॥ (९–११)

हे तात ! विदुरने मुझे पुत्रप्रेमके वशमें देखकर जो कुछ वचन कहा था, मेरे और दुर्योधनके वेही सम्पूर्ण वचन दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥ उनके वचनके अनुसार यदि मैं दुर्योधनको परित्याग करके शेष पुत्रोंकी रक्षा करनेकी इच्छा करता, तो यह महा नीच कर्म क्यों उपस्थित होता ? ऐसा करनेहीसे दूसरे सब पुत्र भी जीवित रहते ॥ जो मनुष्य धर्म त्यागकर अर्थकी इच्छा करता है। वह लोक परलोक दोनोंसे रहित होकर क्षुद्रभावको प्राप्त होता है ॥ (१२–१४)

हे सञ्जय ! इस समय मेरे प्रधान पुरुषोंका विनाश होनेसे इस राष्ट्रके सम्पूर्ण पुरुषोंका उत्साह भङ्ग होगया। सुतरां अब जो कोई शूरवीर पुरुष युद्धसे जीता बचेगा, ऐसी आशा मुझे नहीं होती है ॥ जो क्षमाशील वीरधुरीण धर्मात्मा पुरुष भीष्म और द्रोणाचार्य मेरे सदा सर्वदा उपजीवी थे, जब वे लोग

यौ नित्यमुपजीवामः क्षमिणौ पुरुषर्षभौ ॥ १६ ॥
व्यक्तमेव च मे शंस यथा युद्धमवर्त्तत ।
केऽयुध्यन्के व्यपाकुर्वन्के क्षुद्राः प्राद्रवन्भयात्॥ १७ ॥
धनञ्जयं च मे शंस यच्चक्रे रथर्षभः ।
तस्माद्भयं नो भूयिष्ठं भ्रातृव्याच्च वृकोदरात् ॥ १८ ॥
यथाऽऽसीच्च निवृत्तेषु पाण्डवेयेषु सञ्जय ।
मम सैन्यावशेषस्य सन्निपातः सुदारुणः ॥ १९ ॥
कथं च वो मनस्तात निवृत्तेष्वभवत्तदा ।
मामकानां च ये शूराः के कांस्तत्र न्यवारयन्॥ २० ॥ [१०६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सञ्जय उवाच— महद्भैरवमासीन्नः सन्निवृत्तेषु पाण्डुषु ।
दृष्ट्वा द्रोणं छाद्यमानं तैर्भास्करमिवाऽम्बुदैः ॥ १ ॥

युद्धमें मारे गये,तब अब बाकी बचे हुए शूरवीर योद्धा लोग कैसे युद्धभूमि में जीवित बच सकते हैं ? ॥ हे सञ्जय ! इस समय स्पष्टरूपसे वर्णन करो,कि किस प्रकारसे युद्ध हुआ था, किन किन शूर-वीरोंने युद्ध किया था ? कौन कौन शूर-वीर योद्धा रणभूमिमें मारे गये और किन अधम पुरुषोंने युद्धसे पलायन किया था ? (१५-१७)

रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने जो कुछ इस महा घोर युद्धमें कर्म किया है, वह भी तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ अर्जुन और भीम इन दोनों भाइयोंसे ही मुझे बहुत भय लगता है ॥ हे सञ्जय ! पाण्डवोंके युद्धमें प्रवृत्त होनेपर मेरी सेनामें जो लगातार शूरवीरोंका नाश होता है, वह किस प्रकारसे हुआ था, उसे तुम मेरे समीप में वर्णन करो ॥ हे तात ! जब पाण्डव लोग युद्धके निमित्त रणभूमिमें उपस्थित हुए थे, उस समयमें तुम लोगोंका चित्त कैसा हुआ था ? और मेरी सेनाके किन किन शूरवीर पुरुषोंने उन्हें निवारण किया था ? (१८-२०) [१०६३]

द्रोणपर्वमें बीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें इक्कीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, जब सम्पूर्ण सेनाके सहित पाण्डवोंने द्रोणाचार्यको आक्रमण किया, उस समय मानो बादलोंके समूहमें सूर्यके समान छिपे हुए द्रोणा-चार्यको उन सब वीरोंके अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षासे छिपे हुए देखकर हम लोगोंको

तैश्चोद्धूतं रजस्तीव्रमवचक्रे चमूं तव ।
ततोऽहतममंस्याम द्रोणं दृष्टिपथे हृते ॥ २ ॥
तांस्तु शूरान्महेष्वासान्क्रूरं कर्म चिकीर्षतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनस्तूर्णं स्वसैन्यं समचूचुदत् ॥ ३ ॥
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं नराधिपाः ।
वारयध्वं यथायोगं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ४ ॥
ततो दुर्मर्षणो भीममभ्यगच्छत्सुतस्तव ।
आराद्दृष्ट्वा किरन्बाणैर्जिघृक्षुस्तस्य जीवितम् ॥ ५ ॥
तं बाणैरवतस्तार क्रुद्धो मृत्युरिवाऽऽहवे ।
तं च भीमोऽतुदद्बाणैस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ ६ ॥
त ईश्वरसमादिष्टाः प्राज्ञाः शूराः प्रहारिणः ।
राज्यं मृत्युभयं त्यक्त्वा प्रत्यतिष्ठन्परान्युधि ॥ ७ ॥
कृतवर्मा शिनेः पौत्रं द्रोणं प्रेप्सुं विशाम्पते ।
पर्यवारयदायान्तं शूरं समरशोभिनम् ॥ ८ ॥
तं शैनेयः शरव्रातैः क्रुद्धः क्रुद्धमवारयत् ।

महाभय उत्पन्न हुआ ॥ पाण्डवोंकी सेनाके चलनेसे जो धूलि उडी उससे तुम्हारी सेना छिप गई। उस समय हम लोगोंकी आंखोंसे कुछ भी नहीं दीख पडता था, हम लोगोंने समझा कि द्रोणाचार्य मारे गये। (१-२)

दुर्योधनने उन महा धनुर्द्धारी शूरवीरोंको न करने योग्य कर्मको करनेके निमित्त उत्सुक देखकर अपनी सेनाके पुरुषोंसे यह वचन बोले, हे क्षत्रिय पुरुषो! तुम लोग अपनी शक्ति, उत्साह, पराक्रम और अवसरके अनुसार पाण्डवों की सेनाके वीरोंका निवारण करो॥ (३-४)

अनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षण ने भीमसेनको संमुख पहुंचा हुआ देखकर, द्रोणाचार्यकी प्राणरक्षा करनेके निमित्त अपने बाणोंको चलाते हुए भीमसेनकी ओर दौडे और यमराजके समान क्रुद्ध होकर उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया॥ भीमसेन भी अपने बाणोंसे उनको पीडित करने लगे, इसी प्रकारसे महाघोर युद्ध होने लगा॥ (५-६)

ऐसे ही तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण राजा लोग राज्य और प्राणकी आशा त्याग कर दुर्योधनकी आज्ञासे शत्रुओंकी ओर दौडे॥ कृतवर्मा द्रोणाचार्यके संमुख में आये हुए पराक्रमी समरशोभी सात्यकीको निवारण करने लगे॥ सात्यकि

कृतवर्मा च शैनेयं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ९ ॥
सैन्धवः क्षत्रवर्माणमायान्तं निशितैः शरैः ।
उग्रधन्वा महेष्वासं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १० ॥
क्षत्रवर्मा सिन्धुपतेश्छित्वा केतनकार्मुके ।
नाराचैर्दशभिः क्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ११ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सैन्धवः कृतहस्तवत् ।
विव्याध क्षत्रवर्माणं रणे सर्वायसैः शरैः ॥ १२ ॥
युयुत्सुं पाण्डवार्थाय यतमानं महारथम् ।
सुबाहुर्भारतं शूरं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १३ ॥
सुबाहोः सुधनुर्बाणावस्यतः परिघोपमौ ।
युयुत्सुः शितपीताभ्यां क्षुराभ्यामच्छिनद्भुजौ॥ १४ ॥
राजानं पाण्डवश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
वेलेव सागरं क्षुब्धं मद्रराट् समवारयत् ॥ १५ ॥
तं धर्मराजो बहुभिर्मर्मभिद्भिरवाकिरत् ।
मद्रेशस्तं चतुःषष्ट्या शरैर्विध्वाऽनदद्भृशम् ॥ १६ ॥

भी क्रुद्ध होकर अपने बाणोंकी वर्षासे कृतवर्माको निवारण करने लगे । जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथी को आक्रमण करता है, वैसे ही कृतवर्मा सात्यकिको आक्रमण करके उन्हें अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ (७-९)

सिन्धुराज प्रचण्ड धनुष धारण करने वाले पराक्रमी जयद्रथ यत्नवान् होकर महाधनुर्द्धारी क्षत्रधर्माको निवारण करने लगे ॥ क्षत्रधर्माने अपने तीक्ष्ण बाणोंको चला कर सिन्धुराज जयद्रथका धनुष और रथकी ध्वजा काट कर फिर दश बाणोंसे उनके सम्पूर्ण मर्म स्थानोंको विद्ध किया ॥ राजा जयद्रथ शीघ्रता-पूर्वक दूसरा धनुष ग्रहण करके फिर क्षत्रधर्माको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ (१०—१२)

सुबाहु यत्नवान् होकर पाण्डवोंकी ओरसे युद्धके निमित्त उपस्थित निज भ्राता पराक्रमी युयुत्सुको निवारण करने लगे ॥ युयुत्सुने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे सुबाहुके परिघ समान भुजाओंको काट दिया ॥ जैसे तट समुद्रके वेगको निवारण करता है, वैसे ही पराक्रमी शल्य पाण्डवोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको निवारण करने लगे ॥ (१३-१५)

धर्मराज युधिष्ठिर भी मर्मभेदी बाणों-से मद्रराज शल्यको अत्यन्त ही विद्ध

तस्य नानदतः केतुमुच्चकर्त च कार्मुकम् ।
क्षुराभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १७ ॥
तथैव राजा बाह्लीको राजानं द्रुपदं शरैः ।
आद्रवन्तं सहानीकः सहानीकं न्यवारयत् ॥ १८ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं वृद्धयोः सहसेनयोः ।
यथा महायूथपयोर्द्विपयोः सम्प्रभिन्नयोः ॥ १९ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
सहसैन्यौ सहानीकं यथेन्द्राग्नी पुरा बलिम् ॥ २० ॥
तदुत्पिञ्जलकं युद्धमासीद्देवासुरोपमम् ।
मत्स्यानां केकयैः सार्धमभीताश्वरथद्विपम् ॥ २१ ॥
नाकुलिं तु शतानीकं भूतकर्मा सभापतिः ।
अस्यन्तमिषुजालानि यान्तं द्रोणादवारयत् ॥ २२ ॥
ततो नकुलदायादस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः ।
चक्रे विबाहुशिरसं भूतकर्माणमाहवे ॥ २३ ॥

करने लगे। मद्रराज शल्य चौसठ बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको विद्ध करके बारबार गर्जते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ अनन्तर युधिष्ठिरने दो क्षुरास्त्रसे गर्जते हुए मद्रराजके रथकी ध्वजा और उनका धनुष काट दिया, उनके ऐसे कर्मको देख कर सम्पूर्ण सेनाके पुरुष विस्मित हुए॥ राजा बाह्लिक अपनी सेनासे युक्त होकर तीक्ष्ण बाणोंसे राजा द्रुपद को सेनाके सहित निवारण करने लगे। जैसे दो मतवारे गजयूथपति हाथियोंका युद्ध होता है, वैसे ही सेनाके सहित उन दोनों महारथोंका संग्राम होने लगा॥ (१६-१९)

जैसे पहिले समयमें इन्द्र और अग्निने राजा बलिके सङ्ग युद्ध किया था, वैसे ही सम्पूर्ण सेनाके सहित अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द, मत्स्यराज विराट और उनकी सेनाके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ उससे मत्स्यदेशीय सेनाके साथ कैकय देशीय सेनाका देवता और असुरोंके युद्धके समान महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा॥ दोनों सेनाके रथी गजपति घुडसवार और पैदल चलनेवाले वीर योद्धा लोग निर्भय चित्तसे युद्ध करने लगे॥ २०-२१

सभापति भूतकर्मा पराक्रमी नकुल पुत्रको द्रोणाचार्यकी ओर युद्धके निमित्त आता हुआ देखकर अपने तीक्ष्ण बाणों से निवारण करने लगे ॥ अनन्तर

सुतसोमं तु विक्रान्तमायान्तं तं शरौघिणम् ।
द्रोणायाभिमुखं वीरं विविंशतिरवारयत् ॥ २४ ॥
सुतसोमस्तु संक्रुद्धः स्वपितृव्यमजिह्मगैः ।
विविंशतिं शरैर्भित्वा नाऽभ्यवर्तत दंशितः ॥ २५ ॥
अथ भीमरथः शाल्वमाशुगैरायसैः शितैः ।
षड्भिः साश्वनियन्तारमनयद्यमसादनम् ॥ २६ ॥
श्रुतकर्माणमायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
चैत्रसेनिर्महाराज तव पौत्रं न्यवारयत् ॥ २७ ॥
तौ पौत्रौ तव दुर्धर्षौ परस्परवधैषिणौ ।
पितॄणामर्थसिद्ध्यर्थं चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ २८ ॥
तिष्ठन्तमग्रे तं दृष्ट्वा प्रतिविन्ध्यं महाहवे ।
द्रौणिर्मानं पितुः कुर्वन्मार्गणैः समवारयत् ॥ २९ ॥
तं क्रुद्धं प्रतिविव्याध प्रतिविन्ध्यः शितैः शरैः ।
सिंहलांगूललक्ष्माणं पितुरर्थे व्यवस्थितम् ॥ ३० ॥
प्रवपन्निव बीजानि बीजकाले नरर्षभ ।

नकुलपुत्र शतानीकने तीन भल्लसे भूतकर्माकी दोनों भुजा और सिरको काट डाला॥ विविंशतिने पराक्रमी सुतसोमको द्रोणाचार्यकी ओर आते देखकर उन्हें अपने अस्त्रोंसे निवारण करने लगे ॥ पराक्रमी सुतसोमने क्रुद्ध होकर शीघ्रता के सहित अपने चचा विविंशतिको क्षत-विक्षत करके फिर उनको संमुखसे आगे नहीं बढने दिया ॥ (२२–२५)

भीमरथने लोहमय छः बाणोंसे घोडे और सारथीके सहित शाल्वको यमपुरीमें भेज दिया॥ हे राजन्! चित्रसेन पुत्रने मयूर वर्णके घोडोंसे युक्त रथ पर चढके तुम्हारे पौत्र श्रुतकर्माको द्रोणाचार्यकी ओर आते हुए देखकर उन्हें निवारण करने लगे ॥ आपसमें एक दूसरेके वधकी इच्छा करते हुए वे तुम्हारे दोनों पौत्र अपने अपने पिताके प्रियकार्य करनेकी इच्छासे तुमुल युद्ध करने लगे ॥ (२६-२८)

अश्वत्थामा उस युद्धभूमिमें प्रतिविन्ध्यको संमुखमें स्थित देखके अपने पिता द्रोणाचार्यकी मानरक्षाके निमित्त उन्हें युद्धसे निवारण करने लगे ॥ प्रतिविन्ध्य पिताकी मानरक्षाके निमित्त युद्धमें स्थित सिंह लांगूलवाली ध्वजासे युक्त क्रोधी अश्वत्थामाको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ हे राजेन्द्र ! जैसे

द्रोणायनिं द्रौपदेयाः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३१ ॥
आर्जुनिं श्रुतकीर्तिं तु द्रौपदेयं महारथम् ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं दौःशासनिरवारयत् ॥ ३२ ॥
तस्य कृष्णसमः कार्ष्णिस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः ।
धनुर्ध्वजं च सूतं च छित्वा द्रोणान्तिकं ययौ ॥ ३३ ॥
यस्तु शूरतमो राजन्नुभयोः सेनयोर्मतः ।
तं पटचरहन्तारं लक्ष्मणः समवारयत् ॥ ३४ ॥
स लक्ष्मणस्येष्वसनं छित्वा लक्ष्म च भारत ।
लक्ष्मणे शरजालानि विसृजन्बह्वशोभत ॥ ३५ ॥
विकर्णस्तु महाप्राज्ञो याज्ञसेनिं शिखण्डिनम् ।
पर्यवारयदायान्तं युवानं समरे युवा ॥ ३६ ॥
ततस्तमिषुजालेन याज्ञसेनिः समावृणोत् ।
विधूय तद्बाणजालं बभौ तव सुतो बली ॥ ३७ ॥
अङ्गदोऽभिमुखं वीरमुत्तमौजसमाहवे ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं शरौघेण न्यवारयत् ॥ ३८ ॥

खेतमें किसान लोग बीज बोते हैं, वैसे ही द्रौपदी पुत्रोंने अपने बाणोंकी वर्षासे अश्वत्थामाको छिपा दिया (२९-३१)

दुःशासनपुत्रने द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न हुए, अर्जुनपुत्र श्रुतकीर्तिको द्रोणाचार्यकी ओर दौडते हुए देखकर उसे अपने बाणोंसे निवारण किया ॥ कृष्णके समान पराक्रमी द्रौपदीपुत्र श्रुतकीर्त्ति तीन भल्लसे दुःशासनपुत्रके रथके घोडे, धनुष और सारथीको काटके द्रोणाचार्यकी ओर जाने लगे ॥ हे राजन् ! जो दोनों सेनाके बीच महा पराक्रमी योद्धा थे, उस पटचरहन्ताको लक्ष्मण निवारण करने लगे परन्तु वह पटचरहन्ता लक्ष्मणके धनुष और रथकी ध्वजाको काटके उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते हुए अत्यन्त ही शोभित होने लगे ॥ (३२-३५)

महा बुद्धिमान् विकर्ण युद्धभूमिमें दौडते हुए यज्ञसेनपुत्र शिखण्डीको निवारण करने लगे । शिखण्डीने अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपा दिया । तुम्हारे पुत्र बलवान् विकर्ण भी अपने बाणोंसे यज्ञसेनपुत्र शिखण्डीको अत्यन्त पीडित करके युद्धभूमिमें शोभित हुए ॥ अङ्गद युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर उत्तमौजाको आते देखकर उन्हें अपने अनेक बाणोंसे निवारण करने लगे ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
सैनिकानां च सर्वेषां तयोश्च प्रीतिवर्धनः ॥ ३९ ॥
दुर्मुखस्तु महेष्वासो वीरं पुरुजितं बली ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं वत्सदन्तैरवारयत् ॥ ४० ॥
सदुर्मुखं भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनाऽभ्यताडयत् ।
तस्य तद्विबभौ वक्त्रं सनालमिव पङ्कजम् ॥ ४१ ॥
कर्णस्तु केकयान्भ्रातॄन्पञ्च लोहितकध्वजान् ।
द्रोणायाऽभिमुखं यातान्शरवर्षैरवारयत् ॥ ४२ ॥
ते चैनं भृशसन्तप्ताः शरवर्षैरवाकिरन् ।
स च ताञ्छादयामास शरजालैः पुनः पुनः ॥ ४३ ॥
नैव कर्णो न ते पञ्च ददृशुर्बाणसंवृताः ।
साश्वसूतध्वजरथाः परस्परशराचिताः ॥ ४४ ॥
पुत्रास्ते दुर्जयश्चैव जयश्च विजयश्च ह ।
नीलकाश्यजयत्सेनांस्त्रयस्त्रीन्प्रत्यवारयन् ॥ ४५ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरमीक्षितृप्रीतिवर्धनम् ।
सिंहव्याघ्रतरक्षूणां यथर्क्षमहिषर्षभैः ॥ ४६ ॥

उन दोनोंके विचित्र संग्रामको देखके सम्पूर्ण सेनाके पुरुष प्रसन्न हुए ॥ (३६—३९)

महाधनुर्धारी बलवान् दुर्मुख पुरुजित्को द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित देखकर वत्सदन्त बाणोंसे निवारण करने लगे ॥ पुरुजित्ने नाराच अस्त्रसे दुर्मुखके दोनों भौंके मध्यस्थलमें प्रहार किया। उस बाणके भ्रूमध्यमें विद्ध होनेपर दुर्मुखका मस्तक मृणालयुक्त पद्मपुष्पके समान शोभित होने लगा ॥ ४०–४१

कर्णने द्रोणाचार्यकी ओर केकयराज पांचों भाइयोंको आता हुआ देखकर उन्हें अपने बाणोंसे छिपा दिया ॥ वे पांचों भ्राता क्रुद्ध होकर कर्णके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ कर्ण भी अपने बाणोंके जालसे उन लोगोंको बार बार छिपाने लगे ॥ कर्ण और पांचों भाई केकयराज परस्पर बाणोंसे विद्ध होके रथ घोडोंके सहित बाणोंकी वर्षासे इस प्रकार छिप गये, कि तनिक भी न दीख पडते थे ॥ (४२–४४)

दुर्जय, जय और विजय तुम्हारे ये तीनों पुत्र नीलराज, काशिराज और जयसेनको निवारण करने लगे ॥ जैसे भालु, भैंसा और वृषभके सङ्ग सिंह व्याघ्र

क्षेमधूर्तिबृहन्तौ तु भ्रातरौ सात्वतं युधि ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं शरैस्तीक्ष्णैस्ततक्षतुः ॥ ४७ ॥
तयोस्तस्य च तद्युद्धमत्यद्भुतमिवाऽभवत् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने॥ ४८ ॥
राजानं तु तथाऽम्बष्ठमेकं युद्धाभिनन्दिनम् ।
चेदिराजः शरानस्यन्क्रुद्धो द्रोणादवारयत् ॥ ४९ ॥
ततोऽम्बष्ठोऽस्थिभेदिन्या निरभिद्यच्छलाकया ।
स त्यक्त्वा सशरं चापं रथाद्भूमिमुपागमत् ॥ ५० ॥
वार्धक्षेमिं तु वार्ष्णेयं कृपः शारद्वतः शरैः ।
अक्षुद्रः क्षुद्रकैर्बाणैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५१ ॥
युध्यन्तौ कृपवार्ष्णेयौ येऽपश्यंश्चित्रयोधिनौ ।
ते युद्धासक्तमनसो नाऽन्यां बुबुधिरे क्रियाम् ॥ ५२ ॥
सौमदत्तिस्तु राजानं मणिमन्तमतन्द्रितम् ।
पर्यवारयदायान्तं यशो द्रोणस्य वर्धयन् ॥ ५३ ॥

और तेंदुएका युद्ध होता है, वैसे ही उन लोगोंका महाघोर संग्राम होने लगा, उसे देखके दर्शक लोग अत्यन्तही प्रसन्न हुए॥ क्षेमधूर्त्ति और बृहन्त ये दोनों भाई युद्ध भूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर सात्वतको दौडे आते देखके उन्हें अपने वाणोंसे विद्ध करने लगे। जैसे वनमें दो मतवारे हाथियोंके सङ्ग अकेले ही सिंहका युद्ध होता है, वैसे ही उन लोगोंका अत्यन्त आश्चर्य युक्त संग्राम होने लगा॥ (४५–४८)

चेदिराज क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यकी ओर युद्धके निमित्त अम्बष्ठराजको बढे आते देखकर उन्हें अपने वाणोंसे निवारण करने लगे॥ अनन्तर अम्बष्ठ राजने अस्थिभेदिनी शलाकासे उन्हें अत्यन्त ही विद्ध किया; उससे चेदिराज धनुष वाण त्यागके रथसे पृथ्वी पर गिर पडे॥ महा पराक्रमी कृपाचार्य क्षुद्रक वाणसे वृष्णिवंशीय वृद्धक्षेमपुत्रको निवारण करने लगे। जिन्होंने विचित्र योद्धा कृपाचार्य और वृद्धक्षेमपुत्रके युद्धको देखा है, उन पुरुषोंका चित्त उन्हीं दोनों वीरोंके युद्धकौशलके देखनेमें लगा रहता है; उनका चित्त किसी ओर उस समयमें नहीं जाता था॥ ४९–५२

द्रोणाचार्यके यशकी वृद्धिकी अभिलाषसे सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा राजा मणिमान्‌को युद्धमें द्रोणाचार्यके संमुखही में निवारण करने लगे॥ राजा मणिमान्‌ने

स सौमदत्तिस्त्वरितश्चित्रेष्वसनकेतने ।
पुनः पताकां सूतं च च्छत्रं चाऽपातयद्रथात् ॥ ५४ ॥
अथाऽऽप्लुत्य रथात्तूर्णं यूपकेतुरमित्रहा ।
साश्वसूतध्वजरथं तं चकर्त्त वरासिना ॥ ५५ ॥
रथं च स्वं समास्थाय धनुरादाय चाऽपरम् ।
स्वयं यच्छन्हयान्राजन्व्यधमत्पाण्डवीं चमूम् ॥ ५६ ॥
पाण्ड्यमिन्द्रमिवाऽऽयान्तमसुरान्प्रति दुर्जयम् ।
समर्थः सायकौघेन वृषसेनो न्यवारयत् ॥ ५७ ॥
गदापरिघनिस्त्रिंशपट्टिशायोधनोपलैः ।
कडङ्गरैर्भुशुण्डीभिः प्रासैस्तोमरसायकैः ॥ ५८ ॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चक्रैर्भिन्दिपालपरश्वधैः ।
पांसुवाताग्निसलिलैर्भस्मलोष्टतृणद्रुमैः ॥ ५९ ॥
आतुदन्प्ररुजन्भञ्जन्निघ्नन्विद्रावयन्क्षिपन् ।
सेनां विभीषयन्नायाद् द्रोणप्रेप्सुर्घटोत्कचः ॥ ६० ॥
तं तु नानाप्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः ।

शीघ्रताके सहित रथकी ध्वजा, धनुष, सारथी और उनके छत्रको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटके गिरा दिया ॥ ५३-५४

अनन्तर शत्रुनाशन सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा शीघ्रताके सहित रथसे कूदे और हाथमें तलवार ग्रहण करके शीघ्रही मणिमान्के समीप पहुंच कर ध्वजा, पताका, रथ, सारथी और घोडोंके सहित राजा मणिमान्को काट डाला; तिसके अनन्तर फिर अपने रथपर चढके घोडोंकी बागडोर अपने ही हाथसे पकडकर पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे जलाने लगे ॥ जैसे असुरोंकी ओर इन्द्र दौडते हैं, वैसेही कुरुसेनाकी ओर पाण्ड्यराजको दौडते देखकर महारथ वृषसेन उन्हे युद्धसे निवारण करने लगे ॥ (५५-५७)

घटोत्कच द्रोणाचार्यका वध करनेकी इच्छासे गदा, परिघ, पट्टिश, प्रस्तरास्त्र, मूषल, मुद्गर, चक्र, भिन्दिपाल, परश्वध, पांशु, वात, अग्नि, जल, भस्म, ढेले, तृण और वृक्षोंकी वर्षा करके कुरुसेना को भगाता मारता पीडित करता तथा भयभीत करके तितर बितर करता हुआ द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित हुआ ॥ (५८-६०)

अनन्तर राक्षस अलम्बुष ने क्रुद्ध होकर नाना भांतिके अस्त्रोंसे घटोत्कच

राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने ह्यलम्बुषः ॥ ६१ ॥
तयोस्तदभवद्युद्धं रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ।
तादृग्यादृक्पुरा वृत्तं शम्बरामरराजयोः ॥ ६२ ॥
एवं द्वन्द्वशतान्यासन्रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च भद्रं ते तव तेषां च सङ्कुले ॥ ६३ ॥
नैतादृशो दृष्टपूर्वः संग्रामो नैव च श्रुतः ।
द्रोणस्याऽभावभावे तु प्रसक्तानां यथाऽभवत् ॥ ६४ ॥
इदं घोरमिदं चित्रमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
तत्र युद्धान्यदृश्यन्त प्रततानि बहूनि च ॥ ६५ ॥ [११२८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– तेष्वेवं सन्निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
कथं युयुधिरे पार्था मामकाश्च तरस्विनः ॥ १ ॥
किमर्जुनश्चाऽप्यकरोत्संशप्तकबलं प्रति ।
संशप्तका वा पार्थस्य किमकुर्वत सञ्जय ॥ २ ॥

को पीडित करके उसे युद्धसे निवारण किया । पहिले समयमें जैसे इन्द्र और शम्बरासुरका संग्राम हुआ था, वैसे ही राक्षसोंमें अग्रणी उन दोनों राक्षसराजोंका महाघोर युद्ध होने लगा । (६१–६२)

इसी प्रकारसे दोनों ओरकी सेनाके रथी, गजपति, घुडसवार और पैदल चलनेवाले सहस्रों तथा लक्षों शूरवीर योद्धाओंका आपसमें महा भयङ्कर द्वन्द्व-युद्ध होने लगा ॥ द्रोणाचार्यका वध और द्रोणाचार्यकी जीवनरक्षा इन दोनों उद्देशोंसे युक्त होकर दोनों ओरकी सेनाके वीरोंका जैसा संग्राम हुआ, वैसा युद्ध हम लोगोंने न कभी पहिले देखा और न कभी सुना ही था । हे प्रजानाथ ! इस अनेक भांतिके बडे भारी संग्रामके समय युद्धको पृथक् रूपसे देखनेसे यह युद्ध भयानक आश्चर्य मय और तीव्ररूपका बोध होने लगा ॥ (६३–६५) [११२८]

द्रोणपर्वमें पच्चीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें छब्बीस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! इसी प्रकारसे पाण्डवोंकी सेना और मेरी सेनाके सब शूरवीरोंको यथा योग्य रीतिसे विभाग अनुसार युद्ध करनेपर दोनों सेनाके पराक्रमी शूरवीरोंने कैसा संग्राम किया ? और अर्जुनने संशप्तकोंसे और संशप्तक वीरोंने अर्जुनके सङ्ग किस

सञ्जय उवाच— तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
स्वयमभ्यद्रवद्भीमं नागानीकेन ते सुतः ॥ ३ ॥
स नाग इव नागेन गोवृषेणेव गोवृषः ।
समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत् ॥ ४ ॥
स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चाऽन्वितः ।
अभिनत्कुञ्जरानीकमचिरेणैव मारिष ॥ ५ ॥
ते गजा गिरिसङ्काशाः क्षरन्तः सर्वतो मदम् ।
भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदीकृताः ॥ ६ ॥
विधमेदभ्रजालानि यथा वायुः समुद्धतः ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तथैव पवनात्मजः ॥ ७ ॥
स तेषु विसृजन्बाणान्भीमो नागेष्वशोभत ।
भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः ॥ ८ ॥
ते भीमबाणाभिहताः संस्यूता विबभुर्गजाः ।
गभस्तिभिरिवाऽर्कस्य व्योम्नि नानाबलाहकाः ॥ ९ ॥

प्रकारसे युद्ध किया ? (१–२)

सञ्जय बोले, जब दोनों सेनाके योद्धा लोग इस प्रकारसे प्रारब्धके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त हुए, तब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन स्वयं हाथियोंकी सेना लेकर भीमसेनकी ओर दौडे ॥ जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे हाथीके अथवा एक वृषभ दूसरे वृषभके संमुख होता है, वैसे ही युद्धकुशल बाहुवीर्यसे युक्त पराक्रमी भीमसेन राजा दुर्योधन-को संमुख आया देखकर हाथियोंकी सेनाकी ओर दौडे; और शीघ्रताके सहित उस गजसेनाको तितर बितर करने लगे ॥ (३–५)

पर्वतके समान मदचूते हुए कितने ही मतवारे हाथी भीमसेनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित और मदसे रहित हो युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ जैसे प्रबल वायु मेघमण्डलको छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही पवन पुत्र भीमसेनने उस सम्पूर्ण गजसेनाको तितर बितर कर दिया ॥ जैसे जगत्के बीच सूर्यके उदय होनेसे सूर्य किरणें शोभित होती हैं, वैसे ही हाथियोंकी सेनाके ऊपर बाणोंको छोडने वाले भीमसेन शोभित होने लगे । जैसे आकाशमें सूर्यके किरणोंसे अनेक मेघ शोभित होते हैं, वैसे ही भीमसेनके बाणोंसे सम्पूर्ण हाथी ग्रसित, पूरित तथा पीडित होके शोभित होने लगे ॥ (६–९)

तथा गजानां कदनं कुर्वाणमनिलात्मजम् ।
क्रुद्धो दुर्योधनोऽभ्येत्य प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ १० ॥
ततः क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः ।
क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः ॥ ११ ॥
स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम् ।
नाराचैरर्करश्म्याभैर्भीमसेनं स्मयन्निव ॥ १२ ॥
तस्य नागं मणिमयं रत्नचित्रध्वजे स्थितम् ।
भल्लाभ्यां कार्मुकं चैव क्षिप्रं चिच्छेद पाण्डवः ॥ १३ ॥
दुर्योधनं पीड्यमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष ।
चुक्षोभयिषुरभ्यागादङ्गो मातङ्गमास्थितः ॥ १४ ॥
तमापतन्तं नागेन्द्रमम्बुदप्रतिमस्वनम् ।
कुम्भान्तरे भीमसेनो नाराचैरार्दयद्भृशम् ॥ १५ ॥
तस्य कायं विनिर्भिद्य न्यमज्जद्धरणीतले ।
ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाऽचलः ॥ १६ ॥
तस्याऽऽवर्जितनागस्य म्लेच्छस्याऽधः पतिष्यतः ।

राजा दुर्योधन भीमसेनको इस भांति हाथियोंकी सेना तितर बितर करते देख क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे उन्हें विद्ध करने लगे ॥ अनन्तर भीमसेन लाल नेत्र करके क्षण भरके बीचमें राजा दुर्योधनके नाश करनेकी इच्छासे उत्तम पानीसे बुझे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध करने लगे ॥ राजा दुर्योधन भीमसेनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर भी हंसते हुए, सूर्य किरणके समान प्रकाशमान बाणोंसे उनको प्रहार करने लगे ॥ पाडुपुत्र भीमसेनने क्रुद्ध होकर शीघ्रही एक भल्लसे उनके रथकी ध्वजाको मणिमय हाथीके चित्र सहित काटके गिरा दिया, फिर दूसरे एक बाणसे उनका धनुष भी काट डाला ॥ (१०-१३)

हे भारत ! अनन्तर हाथी पर चढे हुए अङ्गने दुर्योधनको भीमसेनके अस्त्रोंसे पीडित देखकर भीमको क्षोभित करनेकी इच्छासे अपना गजराज उनकी ओर चलाया ॥ भीमसेनने राजा अङ्गके बादलके गर्जनेके समान शब्दसे युक्त उस हस्तिराजको सम्मुख आते देखकर कितने ही तीक्ष्ण बाणोंसे उसके गंडस्थलके बीचमें जोरसे प्रहार किया ॥ वे सम्पूर्ण बाण उसके शरीरको भेदके पृथ्वीमें गिरे और वह गजराज भी मानों वज्रकी चोटसे टूटे हुए पर्वतके

शिरश्चिच्छेद भल्लेन क्षिप्रकारी वृकोदरः ॥ १७ ॥
तस्मिन्निपतिते वीरे सम्प्राद्रवत सा चमूः ।
सम्भ्रान्ताश्वद्विपरथा पदातीनवमृद्नती ॥ १८ ॥
तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समन्ततः ।
प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्रवत् ॥ १९ ॥
येन नागेन मघवानजयद्दैत्यदानवान् ।
तदन्वयेन नागेन भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २० ॥
स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्रवत् ।
चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण च ॥ २१ ॥
व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथन्निव पाण्डवम् ।
वृकोदररथं साश्वमविशेषमचूर्णयत् ॥ २२ ॥
पद्भ्यां भीमोऽप्यथो धावंस्तस्य गात्रेष्वलीयत ।
जानन्नञ्जलिकावेधं नाऽपाक्रामत पाण्डवः ॥ २३ ॥
गात्राभ्यन्तरगो भूत्वा करेणाऽताडयन्मुहुः ।

समान भीमके बाणोंके लगनेसे मरके पृथ्वी पर गिर पडा ॥ हाथीके गिरते समयमें ज्योंही म्लेच्छराज अङ्ग उसके ऊपरसे कूद रहे थे, उस ही समय भीमसेनने शीघ्रताके सहित एक भल्लसे उनका शिर काट डाला ॥ जब राजा अङ्ग मारे गये, तब उनकी सम्पूर्ण सेना युद्धभूमिसे भागने लगी । हाथी, घोडे और घोडोंसे युक्त रथ पैदल चलनेवाले वीर योद्धाओंको मर्दन करते हुए रणभूमिमें दौडने लगे ॥ (१४–१८)

जब सम्पूर्ण सेना रणभूमिमें भागती हुई चारों ओर दौडने लगी, तब राजा भगदत्त अपने गजराज पर चढके भीमसेनकी ओर दौडे ॥ जिस हाथीके बलसे देवतोंके राजा इन्द्रने दैत्य दानवोंको युद्धमें पराजित किया था, राजा भगदत्तने उस ही वंशमें उत्पन्न हुए महा बलवान् हस्तिराज पर चढके भीमसेनको आक्रमण किया ॥ उस महाबली विशाल हाथीने अपने दोनों पांव और सूण्डसे भीमसेनको आक्रमण करके क्रोधसे लाल नेत्र कर, मानो भीमसेनके बलको मथ कर उनके रथको घोडोंके सहित चूर चूर कर दिया ॥ (१९—२२)

भीमसेन भी दोनों पांवोंसे पृथ्वी पर दौड कर उस हाथीके शरीरसे लिपट गये । वह अञ्जलिकावेध विद्या जानते थे, इसीसे हाथीके उदरके नीचेसे बाहर नहीं निकले; उन्होंने उस क्रुद्ध गज-

लालयामास तं नागं वधाकांक्षिणमव्ययम् ॥ २४ ॥
कुलालचक्रवन्नागस्तदा तूर्णमथाऽभ्रमत् ।
नागायुतबलः श्रीमान्कालयानो वृकोदरम् ॥ २५ ॥
भीमोऽपि निष्क्रम्य ततः सुप्रतीकाग्रतोऽभवत् ।
भीमं करेणाऽवनम्य जानुभ्यामभ्यताडयत् ॥ २६ ॥
ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत ।
करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्वा व्यमोचयत् ॥ २७ ॥
पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः ।
यावत्प्रतिगजायातं स्वबले प्रत्यवैक्षत ॥ २८ ॥
भीमोऽपि नागगात्रेभ्यो विनिःसृत्याऽपयाज्जवात् ।
ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवन्महान् ॥ २९ ॥
अहो धिङ् निहतो भीमः कुञ्जरेणेति मारिष ।
तेन नागेन सन्त्रस्ता पाण्डवानामनीकिनी ॥ ३० ॥

राजको अपने वधके इच्छुक जान उसके उदरके नीचे ही रहे, और अञ्जलिका-वेधविद्याकी निपुणतासे अपने हाथोंसेही उसके शरीरमें प्रहार करने लगे ॥ दश हजार हाथीयोंके समान पराक्रमी वह भगदत्तका हाथी उस समय भीमसेनके वधकी इच्छा करके शीघ्रताके सहित कुम्हारके चाकके समान घूमने लगा। (२३–२५)

इसके भीमसेन उसके उदरके नीचेसे निकलके आगे खडे हुए ॥ उस ही अवसरमें उस गजराजने भीमसेनको सूण्डसे पकडके अपने दोनों पावोंसे उनके शरीरमें प्रहार किया; और उसी समय उनकी गर्दन पकडके उनका वध करनेकी इच्छा की। भीमसेनने महा भयङ्कर आर्त्तनाद किया, उस ही अवसरमें उसके सूण्डसे छूटकर फिर उदरके नीचे होकर उसके शरीरसे लिपट गये। अनन्तर जब उन्होंने देखा, कि युधिष्ठिरकी सेनासे उसके समान दूसरा हाथी आकर उसके सम्मुख उपस्थित हुआ है, तब उस हाथीके उदरके नीचे से निकल कर दूसरी ओर चले गये। (२६–२९)

हे भारत ! अनन्तर सम्पूर्ण सेनाके योद्धा कहने लगे, "ओहो ! धिक्कार है। भीमसेन हाथीसे मारा गया ! " ऐसा ही सम्पूर्ण सेनाके बीच महाघोर शब्द होने लगा। हे राजन्! पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा उस भगदत्तके हाथीसे भयभीत होकर जहां पर भीम-

सहसाऽभ्यद्रवद्राजन्यत्र तस्थौ वृकोदरः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा वृकोदरम् ॥ ३१ ॥
भगदत्तं सपाञ्चाल्यः सर्वतः समवारयत् ।
तं रथं रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य परन्तपाः ॥ ३२ ॥
अवाकिरञ्छरैस्तीक्ष्णैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
सविघातं पृषत्कानामंकुशेन समाहरन् ॥ ३३ ॥
गजेन पाण्डुपञ्चालान्व्यधमत्पर्वतेश्वरः ।
तदद्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे ॥ ३४ ॥
तथा वृद्धस्य चरितं कुञ्जरेण विशाम्पते ।
ततो राजा दशार्णानां प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥
तिर्यग्यातेन नागेन समदेनाऽऽशुगामिना ।
तयोर्युद्धं समभवन्नागयोर्भीमरूपयोः ॥ ३६ ॥
सपक्षयोः पर्वतयोर्यथा सद्रुमयोः पुरा ।
प्राग्ज्योतिषपतेर्नागः सन्निवृत्याऽपसृत्य च ॥ ३७ ॥
पार्श्वे दशार्णाधिपतेर्भित्त्वा नागमपातयत् ।

सेन थे, वहां पर सहसा दौड कर उपस्थित हुए। (२९–३१)

अनन्तर राजा युधिष्ठिर भीमसेनको मरा हुआ जान कर, पाञ्चाल योद्धाओंके सहित मिलके राजा भगदत्तको चारों ओरसे घेर कर उनके ऊपर तीक्ष्ण-बाणोंकी वर्षा करने लगे। महाराज भगदत्तने उन सम्पूर्ण योद्धाओंके बाणोंको अपने अस्त्रोंसे निवारण करके फिर अपने गजराजको अंकुश देकर पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंकी सेनाको अत्यन्त ही पीडित करने लगे। हे नरनाथ! उस समय हाथी पर चढके युद्ध करनेवाले राजा भगदत्तका मैंने अत्यन्त अद्भुत पराक्रम अवलोकन किया।३१-३५

दशार्णाधिपतिने शीघ्रताके सहित एक महाबलवान् वेगसे गमन करनेवाले गजराजसे राजा भगदत्तके हाथीको आक्रमण किया। जैसे पहिले समयमें वृक्षोंके सहित पंखवाले दो पर्वतोंका आपसमें युद्ध हुआ था, वैसे ही भयङ्कर मूर्त्तिवाले उन दोनों गजराजोंका युद्ध होने लगा। राजा भगदत्तका हाथी पहिले युद्धसे निवृत्त हो कुछ दूर हटके फिर वेगपूर्वक दौड कर दशार्णराजके हाथीकी कोखमें अपने दांतोंसे प्रहार किया; उसही प्रहारसे दशार्णराजका हाथी मरकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ हाथी

तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोऽथ सप्तभिः ॥ ३८ ॥
जघान द्विरदस्थं तं शत्रुं प्रचलितासनम् ।
ध्यवच्छिद्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
रथानीकेन महता सर्वतः पर्यवारयत् ।
स कुञ्जरस्थो रथिभिः शुशुभे सर्वतोवृतः ॥ ४० ॥
पर्वते वनमध्यस्थो ज्वलन्निव हुताशनः ।
मण्डलं सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥ ४१ ॥
किरतां शरवर्षाणि स नागः पर्यवर्तत ।
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा परिगृह्य महागजम् ॥ ४२ ॥
प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति ।
शिनेः पौत्रस्य तु रथं परिगृह्य महाद्विपः ॥ ४३ ॥
अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत् ।
बृहतः सैन्धवानश्वान्समुत्थाप्याऽथ सारथिः ॥ ४४ ॥
तस्थौ सात्यकिमासाद्य सम्प्लुतस्तं रथं प्रति ।
स तु लब्ध्वाऽन्तरं नागस्त्वरितो रथमण्डलात् ॥४५॥

के मरते समय ज्योंही दशार्णराज उस परसे कूदनेको उद्यत हुए, उसही समय भगदत्तने सूर्य किरणके समान प्रकाशमान् सात तोमरोंको चलाकर हाथी पर स्थित अपने शत्रु दशार्णराजका संहार किया ॥ (३५–३९)

तब राजा युधिष्ठिरने रथोंकी महासेना लेकर भगदत्तको चारों ओरसे घेर लिया। भगदत्त अपने महाबलवान् गजराज पर चढके सम्पूर्ण रथियोंसे घिरजानेसे वडे वनके बीचमें पर्वतके ऊपर प्रदीप्त हुए अग्निके समान शोभित होने लगे। उस समय भगदत्तका हाथी उग्र धनुष्य धारण करने वाले रथियोंके बाणोंकी वर्षासे चारों ओर विद्ध होनेसे मोहित होकर वहां मंडलाकारगतिसे चारों ओर भ्रमण करने लगा। अनन्तर राजा भगदत्तने अपने हाथीको निगृहीत कर सात्यकिकी ओर चलाया, उस गजराजने अपनी सूण्डसे सात्यकिके रथको उठाकर दूर फेंक दिया; तब सात्यकी वहांसे अत्यन्त शीघ्रताके सहित भाग गये। ३९–४४

अनन्तर उनके सारथीने सिन्धु देशीय विशाल शरीरवाले घोडोंको फिर उठा कर रथ पर चढके सात्यकिके समीप उपस्थित किया। अनन्तर वह गजराज अवसर पाकर शीघ्रताके सहित रथोंके समूहसे बाहर निकला, और चारों ओर

निश्चक्राम ततः सर्वान्परिचिक्षेप पार्थिवान् ।
ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः ॥ ४६ ॥
तमेकं द्विरदं संख्ये मेनिरे शतशो द्विपान् ।
ते गजस्थेन काल्यन्ते भगदत्तेन पाण्डवाः ॥ ४७ ॥
ऐरावतस्थेन यथा देवराजेन दानवाः ।
तेषां प्रद्रवतां भीमः पञ्चालानामितस्ततः ॥ ४८ ॥
गजवाजिकृतः शब्दः सुमहान्समजायत ।
भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ४९ ॥
प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात् ।
तस्याऽभिद्रवतो वाहान्हस्तमुक्तेन वारिणा ॥ ५० ॥
सिक्त्वा व्यत्रासयन्नागस्तं पार्थमहरंस्ततः ।
ततस्तमभ्ययात्तूर्णं रुचिपर्वाऽऽकृतीसुतः ॥ ५१ ॥
समग्रञ्छरवर्षेण रथस्थोऽन्तकसन्निभः ।
ततः स रुचिपर्वाणं शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ५२ ॥

रथ पर स्थित राजाओंको रथके सहित सूण्डसे उठा उठाकर फेंकने लगा । सम्पूर्ण राजा लोग उस शीघ्रगामी हाथीसे अत्यन्त भयभीत होकर उस एक ही हाथीको सैकडों रूपसे बोध करने लगे । (४४-४६)

जैसे दानव लोग ऐरावत पर चढे इन्द्रके अस्त्रोंसे पीडित हुए थे, वैसे ही पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाके योद्धा महाबलवान् गजराज पर चढे हुए राजा भगदत्तके अस्त्र शस्त्र और उनके गजराजके सूण्डसे पीडित होने लगे । उसी समय युधिष्ठिरकी सेनाके पाञ्चाल योद्धा इधर उधर भागने लगे, तब दौडते हुए उनके हाथी और घोडोंका महाघोर भयानक शब्द होने लगा । (४६-४९)

इस प्रकारसे पाण्डवोंकी सेना जब भगदत्तके अस्त्र शस्त्र और उनके बलवान् गजराजसे नष्ट होने लगी, तब भीमसेन अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर फिर राजा भगदत्तके संमुख उपस्थित हुए ॥ अनन्तर भगदत्तके हाथी अपने सूण्डकी जलधारासे भीमसेनके घोडोंको भिगा कर उन्हें भयभीत कर दिया इससे वे घोडे रथ सहित भीमसेनको लेकर वहांसे भाग गये । तिसके अनन्तर अन्तकके समान आकृती पुत्र रुचिपर्वा रथ पर चढके अपने वाणोंकी वर्षा करते हुए राजा भगदत्तकी ओर दौडे ॥ (४९-५२)

अनन्तर राजा भगदत्तने एक तीक्ष्ण

सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्वतक्षयम् ।
तस्मिन्निपतिते वीरे सौभद्रो द्रौपदीसुतः ॥ ५३ ॥
चेकितानो धृष्टकेतुर्युयुत्सुश्चाऽर्दयन्द्विपम् ।
त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदाः ॥ ५४ ॥
सिषिचुर्भैरवान्नादान्विनदन्तो जिघांसवः ।
ततः पार्ष्ण्यङ्कुशाङ्गुष्ठैः कृतिना चोदितो द्विपः ॥५५॥
प्रसारितकरः प्रायात्स्तब्धकर्णेक्षणो द्रुतम् ।
सोऽधिष्ठाय पदा वाहान्युयुत्सोः सूतमारुजत् ॥५६॥
युयुत्सुस्तु रथाद्राजन्नपाक्रामत्त्वरान्वितः ।
ततः पाण्डवयोधास्ते नागराजं शरैर्द्रुतम् ॥ ५७ ॥
सिषिचुर्भैरवान्नादान्विनदन्तो जिघांसवः ।
पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तः सौभद्रस्याऽऽप्लुतो रथम् ॥५८॥
स कुञ्जरस्थो विसृजन्निषूनरिषु पार्थिवः ।

बाणसे रुचिपर्वाका वध करके उसे यमपुरी में भेज दिया। उस पराक्रमी रुचिपर्वा के मारे जाने पर सुभद्रापुत्र अभिमन्यु द्रौपदीके पाचों पुत्र, चेकितान, धृष्टकेतु और युयुत्सु आदि महारथ योद्धा लोग भगदत्तके गजराजको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करने लगे। वे सब योद्धा लोग उस हस्तिराजके वधकी अभिलाषा करके बलपूर्वक सिंहनाद करते हुए उसके ऊपर इस प्रकारसे अपने बाणोंको वर्षाने लगे, जैसे पर्वतके ऊपर बादल आकाशसे जलकी वर्षा करते हैं ॥ (५२-५५)

अनन्तर पराक्रमी भगदत्तने उस गजराजको अंकुश देकर पांवके अंगूठेके इशारेसे उन महारथियोंकी ओर चलाया ॥ तब उस गजराजने क्रोधसे लाल नेत्र कर तथा कान उठा और सूण्ड पसार कर शीघ्रताके सहित उन महारथ वीरोंके समीप पहुंच अपने पांवसे युयुत्सुके रथके घोडोंको मारकर फिर उनके सारथीको भी सूण्डसे पकड अपने पांवके नीचे दबाकर मार डाला ॥ उस समय युयुत्सु, शीघ्रताके सहित रथपरसे कूदके पृथक् होगये। परन्तु पाण्डवोंकी ओरके अन्य सब महारथ योद्धा लोग उस हाथीके विनाशके निमित्त अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ (५५-५८)

तुम्हारे पुत्र युयुत्सु उस गजराजसे भयभीत होकर अभिमन्युके रथपर जा चढे। जैसे सूर्य जगत्के बीच अपने किरणोंके तेजसे युक्त होकर प्रकाशित

बभौ रश्मीनिवाऽऽदित्यो भुवनेषु समुत्सृजन् ॥ ५९ ॥
तमार्जुनिर्द्वादशभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिस्त्रिभिर्द्रौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः ॥ ६० ॥
सोऽतियत्नार्पितैर्बाणैराचितो द्विरदो बभौ ।
संस्यूत इव सूर्यस्य रश्मिभिर्जलदो महान् ॥ ६१ ॥
नियन्तुः शिल्पयत्नाभ्यां प्रेरितोऽरिशरार्दितः ।
परिचिक्षेप तान्नागः स रिपून्सव्यदक्षिणम् ॥ ६२ ॥
गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान्वने ।
आवेष्टयत तां सेनां भगदत्तस्तथा मुहुः ॥ ६३ ॥
क्षिप्रं श्येनाभिपन्नानां वायसानामिव स्वनः ।
बभूव पाण्डवेयानां भृशं विद्रवतां स्वनः ॥ ६४ ॥
स नागराजः प्रवरांकुशाहतः पुरा सपक्षोऽद्रिवरो यथा नृप ।
भयं तदा रिपुषु समादधद्भृशं वणिग्जनानां क्षुभितो यथाऽर्णवः ॥६५॥
ततो ध्वनिर्द्विरदरथाश्वपार्थिवैर्भयाद् द्रवद्भिर्जनितोऽतिभैरवः ।

होता है, वैसे ही राजा भगदत्त उस महा बलवान् हाथीपर चढकर शत्रुओंके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंको वर्षाने लगे ॥ परन्तु अभिमन्युने बारह, युयुत्सुने दश और द्रौपदीके पुत्रों तथा धृष्टकेतुने तीन तीन बाणोंसे राजा भगदत्तको विद्ध किया। जैसे प्रचण्ड बादल सूर्यकिरणसे शोभित होता है, वैसे ही वह हस्तिराज उन सम्पूर्ण महारथियोंके बाणोंसे पूरित होकर शोभित होने लगा ॥ (५८–६१)

परन्तु वह गजराज शत्रुओंके बाणोंसे पीडित होकर भी अपने स्वामी राजा भगदत्तके चलानेपर शत्रुओंको दाहिनी और बायीं ओर उठाकर फेंकने लगा ! जैसे वनमें पशुपालक पशुओंको लाठीसे ताडित करता है, वैसे ही राजा भगदत्त फिर पाण्डवोंकी सेनाको तितर बितर करने लगे ॥ जैसे शीघ्रगामी बाजपक्षीके आक्रमण समयमें कौवे कांव कांव करते हैं, वैसे ही पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भागते हुए महा घोर शब्द करने लगे ॥ (६२–६४)

हे राजन् ! जैसे समुद्रकी भयङ्कर लहरसे वणिक् लोग भयभीत होते हैं, वैसे ही वह हस्तिराज राजा भगदत्तके अंकुश देने तथा शत्रुओंकी ओर चलानेपर मानो पक्षयुक्त पर्वतके समान सम्पूर्ण पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंको भयभीत करने लगा ॥ अनन्तर उस

क्षितिं वियद्द्यां विदिशो दिशस्तथा समावृणोत्पार्थिवसंयुगे ततः ॥६६॥
स तेन नागप्रवरेण पार्थिवो भृशं जगाहे द्विषतामनीकिनीम् ।
पुरा सुगुप्तां विबुधैरिवाहवे विरोचनो देववरूथिनीमिव ॥ ६७ ॥
भृशं ववौ ज्वलनसखो वियद्रजः समावृणोन्मुहुरपि चैव सैनिकान् ।
तमेकनागं गणशो यथा गजान्समन्ततो द्रुतमथ मेनिरे जनाः ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥[११९६]

सञ्जय उवाच– यन्मां पार्थस्य संग्रामे कर्माणि परिपृच्छसि ।
तच्छृणुष्व महाबाहो पार्थो यदकरोद्रणे ॥ १ ॥
रजो दृष्ट्वा समुद्भूतं श्रुत्वा च गजनिःस्वनम् ।
भगदत्ते विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्णमब्रवीत् ॥ २ ॥
यथा प्राग्ज्योतिषो राजा गजेन मधुसूदन ।

महाघोर संग्राममें सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा रथ, हाथी और घोडोंके सहित रणभूमिसे भागने लगे। भागनेके समयमें उन सब योद्धाओंके भयानक शब्दसे पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग और सम्पूर्ण दिशा परिपूर्ण होगई ॥ (६५-६६)

पहिले समयमें जैसे दैत्यराज विरोचनने देवताओंकी सेनाको छिन्न भिन्न करके युद्ध भूमिसे भगादिया था, वैसे ही राजा भगदत्त अपने महाबलवान् हाथीसे पाण्डवोंकी सेनाको चारों ओर तितर बितर करके युद्धभूमिसे भगाने लगे ॥ उस ही समय वायु प्रचण्ड वेगसे बहने लगा, उससे इतनी धूलि उडी, कि सम्पूर्ण योद्धा लोग बार बार नेत्रोंसे दिखाई भी नहीं पडते थे; और हाथी भी चारों ओर शीघ्रताके सहित दौडने लगे ॥ पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग उस एक ही भगदत्तके हाथीको हाथियोंके समूहके समान बोध करने लगे ॥ (६७-६८) [११९६]

द्रोणपर्वमें छब्बीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें सत्ताईस अध्याय।

सञ्जय बोले, हे महाबाहो ! तुमने जो अर्जुनके युद्धका वृत्तान्त मुझसे पूछा है, उसे मैं वर्णन करता हूं; चित्त लगाके सुनो ॥ जब राजा भगदत्तने इस प्रकारके युद्धकार्यका अनुष्ठान किया, तब उस समय रणभूमिमें अत्यन्त ही धूलि उडने लगी; और उनका हस्तिराज महा भयङ्कर शब्दसे चिल्ला रहा था। कुन्तीपुत्र अर्जुन उस धूलिका उडना और हाथीका चिल्लाना सुनकर कृष्णसे बोले, हे मधुसूदन ! मैं बोध करता हूं, कि राजा भगदत्त अपने महा बलवान गजराजपर चढके मेरी सेनाके योद्धाओं

त्वरमाणो विनिष्क्रान्तो ध्रुवं तस्यैष निःस्वनः ॥ ३ ॥
इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः।
प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे मतिः ॥ ४ ॥
स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदाऽप्रतिगजो युधि।
सर्वशस्त्रातिगः संख्ये कृतवर्मा जितक्लमः ॥ ५ ॥
सहः शस्त्रनिपातानामग्निस्पर्शस्य चाऽनघ।
स पाण्डवबलं सर्वमद्यैको नाशयिष्यति ॥ ६ ॥
न चाऽऽवाभ्यामृतेऽन्योऽस्ति शक्तस्तं प्रतिबाधितुम्।
त्वरमाणस्ततो याहि यतः प्राग्जोतिषाधिपः ॥ ७ ॥
दृप्तं संख्ये द्विपबलाद्वयसा चापि विस्मितम्।
अथैनं प्रेषयिष्यामि बलहन्तुः प्रियातिथिम् ॥ ८ ॥
वचनादथ कृष्णस्तु प्रययौ सव्यसाचिनः।
दीर्यते भगदत्तेन यत्र पाण्डववाहिनी ॥ ९ ॥
तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः।

पर उपद्रव कर रहे हैं, उसही हस्तिराज का ऐसा शब्द होरहा है। मेरे विचार में राजा भगदत्त संग्राममें हाथीपर चढके लडनेमें इन्द्रसे न्यून नहीं है। पृथ्वीमें हाथीपर चढके युद्ध करनेमें राजा भगदत्त सबसे श्रेष्ठ अथवा अद्वितीय रूपसे गिने जानेके योग्य हैं।(१-४)

उनका हस्तिराज भी श्रेष्ठ है, युद्धमें उस हाथीके समान पराक्रमी और दूसरा कोई हाथी भी इस पृथ्वीपर नहीं है। यह गजराज सम्पूर्ण शस्त्रोंको अतिक्रम कर सकता है, यह हाथी युद्धमें अत्यन्त पराक्रमी और न थकने वाला है॥ यह सम्पूर्ण शस्त्रोंके प्रहार और अग्निस्पर्श भी सह सकता है। यह हाथी आज अकेले ही पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर सकता है॥ हम दोनोंके अतिरिक्त और कोई भी उस गजराजको निवारण करने में समर्थ न हो सकेगा। जहांपर राजा भगदत्त युद्ध कर रहे हैं; तुम शीघ्रताके सहित उस ही स्थानपर मेरे रथको ले चलो॥ अवस्था और बलके अभिमानमें मतवारे भगदत्तको आज मैं इन्द्रका प्रिय अतिथि स्वरूप कर के स्वर्ग में भेजूंगा॥(५-८)

कृष्णने अर्जुनके वचनको सुनते ही जहां पर राजा भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाको तितर बितर कर रहे थे, उस ही ओर रथको चलाया॥ अर्जुनको युद्ध छोडकर दूसरे ओर जाते देख, चौदह

संशप्तकाः समारोहन्सहस्राणि चतुर्दश ॥ १० ॥
दशैव तु सहस्राणि त्रिगर्त्तानां महारथाः ।
चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य चाऽनुगाः ॥ ११ ॥
दीर्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष ।
आहूयमानस्य च तैरभवद्धृदयं द्विधा ॥ १२ ॥
किं नु श्रेयस्करं कर्म भवेदद्येति चिन्तयन् ।
इह वा विनिवर्त्तेयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥
तस्य बुद्ध्या विचार्यैवमर्जुनस्य कुरूद्वह ।
अभवद्भूयसी बुद्धिः संशप्तकवधे स्थिरा ॥ १४ ॥
स सन्निवृत्तः सहसा कपिप्रवरकेतनः ।
एको रथसहस्राणि निहन्तुं वासवी रणे ॥ १५ ॥
सा हि दुर्योधनस्याऽऽसन्मतिः कर्णस्य चोभयोः ।
अर्जुनस्य वधोपाये तेन द्वैधमकल्पयत् ॥ १६ ॥

हजार संशप्तक योद्धा लोग अपनी सम्पूर्ण सेनाके सहित उनके पीछे गमन करके उन्हें युद्ध करने के निमित्त आवाहन करने लगे। इन चौदह हजार शूरवीर योद्धाओंमें दश हजार त्रिगर्त्त देशीय महारथ थे, और चार हजार वासुदेव के अनुयायी महारथी योद्धा थे ॥ (९-११)

हे राजेन्द्र ! इधर राजा भगदत्त पाण्डवों की सेनाका नाश करते हुए दीख पडते थे, और दूसरी ओर संशप्तक योद्धा लोग अर्जुनको आवाहन करने लगे। इससे अर्जुन अपने मनमें चिन्ता करने लगे, कि इस समय संशप्तक वीरोंसे युद्ध करनेके निमित्त पीछे फिरूं वा राजा युधिष्ठिरके समीपमें जाकर भगदत्तका वध करूं? इन दोनों कर्मोंके बीच कौनसा कार्य उत्तम है इसी प्रकार चिन्ता करते हुए उनके मनमें द्वैधभाव उत्पन्न हुआ॥ हे राजन् ! अन्तमें उन्होंने अपने विचारसे यह निश्चय किया, कि इस समय संशप्तक वीरोंका वध करना उचित है ॥ महारथियोंमें श्रेष्ठ कपिध्वजावाले इन्द्र पुत्र अर्जुन सहसा सहस्र संशप्तक योद्धाओंको नाश करनेके निमित्त पीछे लौटके उनके संग युद्ध करने में प्रवृत्त हुए। (१२-१५)

दुर्योधन और कर्णको अर्जुनके वधके विषयमें यही संमति हुई थी, कि एक ओर अर्जुनको संशप्तक योद्धा लोग युद्धके निमित्त आवाहन करें और दूसरी ओर राजा भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाके ऊपर अपने महाबलवान् गजराजको चला कर उपद्रव करना आरम्भ करें ॥ एक ही

स तु दोलायमानोऽभूद् द्वैधीभावेन पाण्डवः ।
वधेन तु नराग्र्याणामकरोत्तां मृषा तदा ॥ १७ ॥
ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।
असृजन्नर्जुने राजन्संशप्तकमहारथाः ॥ १८ ॥
नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः ।
न हया न रथो राजन्दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः ॥ १९ ॥
तदा मोहमनुप्राप्तः सिष्विदे हि जनार्दनः ।
ततस्तान्प्रायशः पार्थो ब्रह्मास्त्रेण निजघ्निवान् ॥ २० ॥
शतशः पाणयश्छिन्नाः सेषुज्यातलकार्मुकाः ।
केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चाऽपतन्क्षितौ ॥ २१ ॥
द्रुमाचलाग्राम्बुधरैः समकायाः सुकल्पिताः ।
हतारोहाः क्षितौ पेतुर्द्विपाः पार्थशराहताः ॥ २२ ॥
विप्रविद्धकुथा नागाश्छिन्नभाण्डाः परासवः ।

समयमें दो कार्य दोनों ओरसे उपस्थित होनेपर अर्जुन मनमें चिन्ता करेगा, कि किस ओरकी रक्षा करूं ? ऐसी चिन्ता करनेसे उसके मनमें द्वैधभाव उत्पन्न होगा, तब ऐसा होनेसे उसका वध किया जायगा ऐसा विचार कर उन्होंने एक ही समयमें दो कार्योंका अनुष्ठान करके अर्जुनके मनमें द्वैधभाव उत्पन्न होनेकी कल्पना की थी। परन्तु अर्जुनने उस द्वैधभावसे उनके कल्पित उपायको परिवर्तित कर दिया, संशप्तक योद्धाओंके बीचसे मुख्य मुख्य वीरोंका वध करके दुर्योधन और कर्णके उक्त अभिप्रायको व्यर्थ कर दिया। (१६-१७)

हे राजन् अनन्तर संशप्तक महारथ योद्धा लोग अर्जुनके ऊपर एकवारही सौ हजार वाणोंको छोडने लगे। अर्जुन कृष्ण और रथके घोडे तथा रथ वाणोंकी जालसे छिपकर उस समय दिखाई भी नहीं पडते थे ॥ जब कृष्णके शरीरसे पसीना निकलने लगा और वह मोहित होगये; तब अर्जुन ब्रह्मास्त्रसे संशप्तक वीरोंका वध करने लगे॥ १८-२०

धनुष, वाण, रोदा और तनुत्राण के सहित सैकडों वीर योद्धा घोडे, रथ, ध्वजा और सारथीके सहित अर्जुनके ब्रह्मास्त्र से मर कर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ वृक्षोंके सहित पर्वतोंके शिखर और बादलकी घटाके समान सज्जित हुए हाथियोंके समूह जिनके ऊपर के आसन फटगये हैं, अलंकार टूटे हैं ऐसे होकर सवारोंके सहित अर्जुनके वाणोंसे मरके

सारोहास्तु रणे पेतुर्मथिता मार्गणैर्भृशम् ॥ २३ ॥
सर्ष्टिप्रासासिनखराः समुद्गरपरश्वधाः ।
विच्छिन्नबाहवः पेतुर्नृणां भल्लैः किरीटिना ॥ २४ ॥
बालादित्याम्बुजेन्दूनां तुल्यरूपाणि मारिष ।
संछिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्व्यां प्रपेदिरे ॥ २५ ॥
जज्वालाऽलंकृता सेना पत्त्रिभिः प्राणिभोजनैः ।
नानारूपैस्तदाऽमित्रान्क्रुद्धे निघ्नति फाल्गुने ॥ २६ ॥
क्षोभयन्तं तदा सेनां द्विरदं नलिनीमिव ।
धनञ्जयं भूतगणाः साधुसाध्वित्यपूजयन् ॥ २७ ॥
दृष्ट्वा तत्कर्म पार्थस्य वासवस्येव माधवः ।
विस्मयं परमं गत्वा प्राञ्जलिस्तमुवाच ह ॥ २८ ॥
कर्मैतत्पार्थ शक्रेण यमेन धनदेन च ।
दुष्करं समरे यत्ते कृतमद्येति मे मतिः ॥ २९ ॥
युगपच्चैव संग्रामे शतशोऽथ सहस्रशः ।
पतिता एव मे दृष्टाः संशप्तकमहारथाः ॥ ३० ॥

पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ शूरवीर पुरुषोंके ऋष्टि,प्रास, तलवार,परिघ, मूसल,मुद्गर और परश्वध अस्त्रोंके सहित भुजा कट-के पृथ्वीमें गिरती हुई दिखाई देने लगीं ॥ (२१–२४)

हे भारत ! कितने ही महारथ शूर-वीरोंके सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रका-शमान् शिर अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे कट कर पृथ्वी पर पड़े ॥ जब अर्जुन क्रुद्ध होकर शत्रुओंका संहार करने लगे, तब उस समय सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग नाना भांतिके बाणोंके समूहसे पूर्ण होकर शोभित होने लगे जैसे मतवारा हाथी कमलके वनको तोडता और मर्दन करता हुआ चारों ओर भ्रमण करता है, वैसे ही अर्जुन सम्पूर्ण सेनाके पुरु-षोंको अपने अस्त्रोंसे पीडित करने लगे; और दर्शक वृन्द धन्य धन्य कहके उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ (२५–२७)

यदुकुल शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रके समान अर्जुनके इस अद्भुत कर्म-को देखकर विस्मित होकर यह वचन बोले, हे अर्जुन ! तुमने आज युद्धभूमि में जो कर्म किया है, मेरे विचारमें यह इन्द्र,यम और कुबेरसे भी कठिनता से सिद्ध होने योग्य है । सैकडों तथा सहस्रों संशप्तक वीरोंको तुम्हारे बाणोंसे लगातार मर कर पृथ्वीमें गिरते हुए

संशप्तकांस्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः ।
भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयत् ॥३१॥ [१२२७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि
संशप्तकवधपर्वणि संशप्तकवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच— यियासतस्ततः कृष्णः पार्थस्याऽश्वान्मनोजवान् ।
सम्प्रैषीद्धेमसञ्छन्नान्द्रोणानीकाय सन्त्वरन् ॥ १ ॥
तं प्रयान्तं कुरुश्रेष्ठं स्वान्भ्रातॄन्द्रोणतापितान् ।
सुशर्मा भ्रातृभिः सार्धं युद्धार्थी पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ २ ॥
ततः श्वेतहयः कृष्णमब्रवीदजितं जयः ।
एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयतेऽच्युत ॥ ३ ॥
दीर्यते चोत्तरेणैव तत्सैन्यं मधुसूदन ।
द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य कृतं संशप्तकैरिदम् ॥ ४ ॥
किं नु संशप्तकान्हन्मि स्वान्रक्षाम्यहितार्दितान् ।
इति मे त्वं मतं वेत्सि तत्र किं सुकृतं भवेत् ॥ ५ ॥

मैंने देखा है ॥ महाराज ! अनन्तर जो सब संशप्तक योद्धा वहां पर उस समय अवशिष्ट थे, अर्जुनने शीघ्रताके सहित उनका वध करके कृष्णसे बोले, अब तुम मेरे रथको भगदत्तकी ओर ले चलो ॥ (२८–३१) [१२२७]

द्रोणपर्वमें सत्ताईस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें अठाईस अध्याय ।

सञ्जय बोले, अनन्तर जब अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनाके समीपमें जानेकी इच्छा की, तब श्रीकृष्णने वायु और मनके समान शीघ्र गमन करनेवाले उनके रथके श्वेत घोडोंको द्रोणाचार्यकी ओर चलाया ॥ तब सुशर्मा और उनके भ्राताओंने अर्जुनको अपने भाइयोंकी रक्षा करने के वास्ते द्रोणाचार्यकी ओर जाते देख उनके पीछे पीछे गमन करके उन्हें युद्धके निमित्त फिर आवाहन करने लगे ॥ (१–२)

अनन्तर श्वेतवाहन अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, हे कृष्ण ! इधर सुशर्मा और उसके भ्राता लोग युद्ध करनेके निमित्त मुझको आवाहन कर रहे हैं ॥ और उत्तर ओर हम लोगोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश होरहा है; इससे संशप्तकोंने आज मेरे मनको द्वैधीभूत कर दिया है ॥ मैं आज संशप्तक वीरोंके सङ्ग युद्ध करूं, वा शत्रुओंसे पीडित अपने बन्धु बान्धवोंकी रक्षा करूं ? इन दोनों कार्योंमें जो श्रेष्ठ तथा उत्तम होवे, उसे तुम विचार

एवमुक्तस्तु दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्त्तयत्।
येन त्रिगर्त्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥
ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः।
ध्वजं धनुश्चाऽस्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत ॥ ७ ॥
त्रिगर्त्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं षड्भिराशुगैः।
साश्वं ससूतं परितः पार्थः प्रैषीद्यमक्षयम् ॥ ८ ॥
ततो भुजगसङ्काशां सुशर्मा शक्तिमायसीम्।
चिक्षेपाऽर्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम् ॥ ९ ॥
शक्तिं त्रिभिः शरैश्छित्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः।
सुशर्माणं शरव्रातैर्मोहयित्वा न्यवर्त्तयत् ॥ १० ॥
तं वासवमिवाऽऽयान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम्।
राजंस्तावकसैन्यानां नोग्रं कश्चिदवारयत् ॥ ११ ॥
ततो धनञ्जयो बाणैः सर्वानेव महारथान्।
आयाद्विनिघ्नन्कौरव्यान्दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ १२ ॥
तस्य वेगमसह्यं तं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः।

करके मुझसे कहो। (३-५)

कृष्णने अर्जुनका ऐसा वचन सुनकर जिस ओर त्रिगर्त्तराज सुशर्मा उन्हें आवाहन कर रहे थे उस ही ओर अर्जुन के रथको बढाया ॥ अनन्तर अर्जुनने सात बाणोंसे सुशर्माको विद्ध करके दो क्षुरास्त्रोंसे उनके रथ,ध्वजा और धनुष को काटकर गिरा दिया; फिर शीघ्रता के सहित त्रिगर्त्त राजके भ्राताको छः बाणोंसे रथ घोडे और सारथीके सहित काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (६-८)

अनन्तर सुशर्माने कृष्ण अर्जुनको समयके अनुसार वचन कह कर अर्जुनके ऊपर सर्पके समान भयङ्कर एक शक्ति और कृष्णके ऊपर एक तोमर चलाया॥ अर्जुनने तीन तीन बाणोंसे उस शक्ति और तोमरको काटकर अपने बाणोंसे सुशर्माको मूर्च्छित करके युद्धसे निवृत्त किया॥ अनन्तर इन्द्रके समान अर्जुन अनेक बाणोंको वर्षाते हुए वेग पूर्वक तुम्हारी सेनाकी ओर आने लगे। उस समय तुम्हारी सेनाके बीच कोई भी शूरवीर योद्धा अर्जुनको निवारण करनेमें समर्थ न हुए। (९-११)

जैसे अग्नि तृण और काष्ठ आदिको भस्म कर देती है, वैसे ही महारथ अर्जुन अपने बाणोंसे तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंको जलाते हुए द्रोणा-

नाऽशक्नुवंस्ते संसोढुं स्पर्शमग्नेरिव प्रजाः ॥ १३ ॥
संवेष्टयन्ननीकानि शरवर्षेण पाण्डवः ।
सुपर्णपातवद्राजन्नायात्प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १४ ॥
यत्तदाऽनामयज्जिष्णुर्भरतानामपापिनाम् ।
धनुः क्षेमकरं संख्ये द्विषतामश्रुवर्धनम् ॥ १५ ॥
तदेव तव पुत्रस्य राजन्दुर्द्यूतदेविनः ।
कृते क्षत्रविनाशाय धनुरायच्छदर्जुनः ॥ १६ ॥
तथा विक्षोभ्यमाणा सा पार्थेन तव वाहिनी ।
व्यशीर्यत महाराज नौरिवाऽऽसाद्य पर्वतम् ॥ १७ ॥
ततो दशसहस्राणि न्यवर्तन्त धनुष्मताम् ।
मतिं कृत्वा रणे क्रूरां वीरा जयपराजये ॥ १८ ॥
व्यपेतहृदयत्रासा आवव्रुस्तं महारथाः ।
आच्छर्त्पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि ॥ १९ ॥
यथा नलवनं क्रुद्धः प्रभिन्नः षष्टिहायनः ।
मृद्गीयात्तद्वदायस्तः पार्थोऽमृद्नाच्चमूं तव ॥ २० ॥
तस्मिन्प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः ।

चार्यकी ओर आने लगे । जैसे सम्पूर्ण प्राणी अग्निस्पर्श नहीं सह सकते, वैसेही सम्पूर्ण योद्धा अर्जुनके वेगको न सह सके ॥ वह अपने बाणोंकी वर्षासे शत्रु-सेनाके योद्धाओंको पीडित करके गरुड पक्षीके समान वेगपूर्वक राजा भगदत्तकी ओर जाने लगे ॥ (१२-१४)

अर्जुन पापरहित भरतोंके आनन्द और शत्रुओंके शोकको बढानेवाले अपने गाण्डीवधनुषको कपट द्यूत खेलनेवाले तेरे पुत्रके लिये क्षत्रियोंका नाश करनेके निमित्त खींचने लगे ॥ हे राजेन्द्र ! जैसे नौका पर्वतसे टकर खाकर टुकडे टुकडे होजाती है; वैसे ही तुम्हारी सेना अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर तितर बितर होने लगी । (१५-१७)

अनन्तर दश हजार धनुर्द्धारी महारथ योद्धा लोग युद्धके निमित्त दृढ निश्चय कर प्राणकी आशा छोड कर अर्जुनके संमुख उपस्थित हुए ॥ युद्धमें सब भार सहन करने वाले अर्जुनने इस प्रकारके समयमें ऐसा बडा भार ग्रहण किया ॥ जैसे मदचूता हुआ मतवारा साठवर्षकी अवस्थावाला बलवान् हाथी कमलवनको मर्दन करता है, वैसे ही अर्जुन क्रुद्ध होकर सेनाका नाश करने लगे ॥ (१८-२०)

तेन नागेन सहसा धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥
तं रथेन नरव्याघ्रः प्रत्यगृह्णाद्धनञ्जयः ।
स सन्निपातस्तुमुलो बभूव रथनागयोः ॥ २२ ॥
कल्पिताभ्यां यथाशास्त्रं रथेन च गजेन च ।
संग्रामे चेरतुर्वीरौ भगदत्तधनञ्जयौ ॥ २३ ॥
ततो जीमूतसङ्काशान्नागादिन्द्र इव प्रभुः ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण भगदत्तो धनञ्जयम् ॥ २४ ॥
स चापि शरवर्षं तं शरवर्षेण वासविः ।
अप्राप्तमेव चिच्छेद भगदत्तस्य वीर्यवान् ॥ २५ ॥
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवार्य तत् ।
शरैर्जघ्ने महाबाहुं पार्थं कृष्णं च मारिष ॥ २६ ॥
ततस्तु शरजालेन महताऽभ्यवकीर्य तौ ।
चोदयामास तं नागं वधायाऽच्युतपार्थयोः ॥ २७ ॥
तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवाऽन्तकम् ।
चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥ २८ ॥

जब इसप्रकारसे कुरुसेनाका नाश होने लगा तब राजा भगदत्त अपने उस महाबलवान् हाथी पर चढके सहसा अर्जुनके संमुख उपस्थित हुए ॥ पुरुषसिंह अर्जुनने रथ परसे ही उस बलवान् गजराजको निवारण करना आरम्भ किया। अर्जुनके सङ्ग उस हस्तिराजका महाघोर तुमुल संग्राम होने लगा। अर्जुन और भगदत्त दोनों महावीर योद्धा विधिपूर्वक सजित हो रथ और हाथी पर चढे हुए संग्रामभूमिके बीच चारों ओर युद्ध करते हुए भ्रमण करने लगे। (२१-२३)

अनन्तर राजा भगदत्त बादलके समान हस्तिराज पर चढ कर मेघवाहन इन्द्रके समान अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ इन्द्रपुत्र पराक्रमी अर्जुन अपने बाणोंको चला कर राजा भगदत्तके बाणोंको निकट न आते ही आते मार्ग ही में काट काट गिराने लगे ॥ फिर राजा भगदत्त अर्जुनकी बाणवर्षाको निवारण करके अपने बाणोंसे महाबाहु कृष्ण और अर्जुनको विद्ध करने लगे ॥ अनन्तर अपने बाण जालसे कृष्ण अर्जुन को छिपाकर उनका वध करने की इच्छासे अपने उस महाबलवान् गजराजको उनकी ओर बढाया ॥ (२४-२७)

जनार्दन कृष्णने उस महाबली हाथीको क्रुद्ध हुए यमराजके समान

सम्प्राप्तमपि नेयेष परावृत्तं महाद्विपम्।
सारोहं मृत्युसात्कर्तुं स्मरन्धर्मं धनञ्जयः ॥ २९ ॥
स तु नागो द्विपरथान्हयांश्चाऽऽमृद्य मारिष।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय ततः क्रुद्धो धनञ्जयः ॥३०॥ [१२५७]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– तथा क्रुद्धः किमकरोद्भगदत्तस्य पाण्डवः।
प्राग्ज्योतिषो वा पार्थस्य तन्मे शंस यथातथम् ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच— प्राग्ज्योतिषेण संसक्तावुभौ दाशार्हपाण्डवौ।
मृत्युदंष्ट्रान्तिकं प्राप्तौ सर्वभूतानि मेनिरे ॥ २ ॥
तथा तु शरवर्षाणि पातयत्यनिशं प्रभो।
गजस्कन्धान्महाराज कृष्णयोः स्यन्दनस्थयोः ॥ ३ ॥
अथ कार्ष्णायसैर्बाणैः पूर्णकार्मुकनिःसृतैः।
अविध्यद्देवकीपुत्रं हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥
अग्निस्पर्शसमास्तीक्ष्णा भगदत्तेन चोदिताः।

संमुख आते देख शीघ्रताके सहित बायीं ओर रथको लौटाया। अर्जुनने उस समय दाहिनी ओर स्थित उस महा गजराजको राजा भगदत्तके सहित वध करनेका अच्छा अवसर पाकरभी धर्मको विचार कर उनके वधकी इच्छा नहीं की॥इधर वह गजराज हाथी घोडे और रथोंको मर्दनकर मृत्युके लोकमें पहुंचाने लगे, यह देखकर अर्जुन क्रुद्ध हुआ॥ (२८-३०)

द्रोणपर्वमें अठाईस अध्याय समाप्त। १२५७

द्रोणपर्वमें उनतीस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! अर्जुनने क्रुद्ध होकर राजा भगदत्तसे किस प्रकार युद्ध किया, और पराक्रमी भगदत्तनेभी अर्जुनके सङ्गमें कैसा संग्राम किया था! वह सब वृत्तान्त विस्तारसे तुम मेरे समीप वर्णन करो॥ (१)

सञ्जय बोले, जब कृष्ण और अर्जुन राजा भगदत्तके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए तब सम्पूर्ण शूरवीर योद्धा उनको मृत्युके कराल मुखमें ही पडे हुए बोध करने लगे॥ हे भारत! राजा भगदत्त गजराज पर चढके रथ पर चढे हुए कृष्ण और अर्जुनके ऊपर लगातार बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ और बलपूर्वक धनुषको कान पर्यन्त खींच कर शिलापर घिसे हुए लोहमय बाणोंसे देवकीपुत्र कृष्णको विद्ध किया॥ (२-४)

भगदत्तके धनुषसे छूटे हुए अग्नि-के समान स्पर्श करनेवाले वे सम्पूर्ण

निर्भिद्य देवकीपुत्रं क्षितिं जग्मुः सुवाससः ॥ ५ ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा परिवारं निहत्य च।
लालयन्निव राजानं भगदत्तमयोधयत् ॥ ६ ॥
सोऽर्करश्मिनिभांस्तीक्ष्णांस्तोमरान्वै चतुर्दश।
अप्रेषयत्सव्यसाची द्विधैकैकमथाऽच्छिनत् ॥ ७ ॥
ततो नागस्य तद्वर्म व्यधमत्पाकशासनिः।
शरजालेन महता तद्व्यशीर्यत भूतले ॥ ८ ॥
शीर्णवर्मा स तु गजः शरैः सुभृशमार्दितः।
बभौ धारानिपाताक्तो व्यभ्रः पर्वतराडिव ॥ ९ ॥
ततः प्राग्ज्योतिषः शक्तिं हेमदण्डामयस्मयीम्।
व्यसृजद्वासुदेवाय द्विधा तामर्जुनोऽच्छिनत् ॥ १० ॥
ततश्छत्रं ध्वजं चैव च्छित्वा राज्ञोऽर्जुनः शरैः।
विव्याध दशभिस्तूर्णमुत्स्मयन्पर्वतेश्वरम् ॥ ११ ॥
सोऽतिविद्धोऽर्जुनशरैः सुपुङ्खैः कङ्कपत्रिभिः।
भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य जनाधिपः ॥ १२ ॥
व्यसृजत्तोमरान्मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च।

बाण कृष्णके शरीरको भेद कर पृथ्वीमें गिरे। तब अर्जुन राजा भगदत्तका धनुष और कवच अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट· कर प्रसन्नता पूर्वक उनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ राजा भगदत्तने सूर्य किरणके समान प्रकाशमान् चौदह तोमर अर्जुन-के ऊपर चलाये। अर्जुनने अपने बाणों-से हर एक तोमरोंको दोन दोन टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया॥ (५-७)

अनन्तर अर्जुनने अपने बाणोंके जालसे राजा भगदत्तके हाथीका कवच काट कर पृथ्वीमें गिरा दिया। अर्जुनके बाणोंसे कवच कटनेपर उनके बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध होकर मेघरहित जल-धारासे युक्त पर्वतके समान वह हाथी श-रीरसे रुधिरकी वर्षा करता हुआ अत्यन्त शोभित हुआ ॥ अनन्तर प्रतापी भग-दत्तने कृष्णकी ओर सुवर्ण दण्डसे युक्त एक लौहमयी शक्ति चलाई। अर्जुनने शीघ्रताके सहित उस शक्तिको मार्ग-हीमें काटके गिरा दिया, फिर उनकी ध्वजा और छत्रको काटकर हंसते हुए दश बाणोंसे विद्ध किया॥ (८-११)

हे राजेन्द्र! भगदत्त अर्जुनके कङ्क-पत्र युक्त बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और क्रुद्ध होकर कई एक तोमरोंको अर्जुनके

तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्त्तितम् ॥ १३ ॥
परीवृतं किरीटं तद्यमयन्नेव पाण्डवः।
सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत् ॥ १४ ॥
एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पाण्डवम्।
अभ्यवर्षन्सगोविन्दं धनुरादाय भास्वरम् ॥ १५ ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा तूणीरान्सन्निकृत्य च।
त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ १६ ॥
विद्धस्ततोऽतिव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन्।
अभिमन्त्र्यांऽकुशं क्रुद्धो व्यसृजत्पाण्डवोरसि॥ १७ ॥
विसृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वघाति वै।
उरसा प्रतिजग्राह पार्थं सञ्छाद्य केशवः ॥ १८ ॥
वैजयन्त्यभवन्माला तदस्त्रं केशवोरसि।
पद्मकोशविचित्राढ्या सर्वर्तुकुसुमोत्कटा ॥ १९ ॥
ज्वलनार्केन्दुवर्णाभा पावकोज्ज्वलपल्लवा।
तया पद्मपलाशिन्या वातकम्पितपत्रया ॥ २० ॥

शिरपर चलाकर सिंहनाद करने लगे। उन तोमरोंसे अर्जुनका किरीट छिप गया; अर्जुन अपने मस्तकके किरीटको संवारते हुए राजा भगदत्तसे बोले, " तुम अब इस समय सम्पूर्ण लोकको भली भांति देख लो, क्योंकि फिर न देख सकोगे ॥" (१२–१४)

राजा भगदत्त अर्जुनका ऐसा वचन सुनकर एक प्रचण्ड धनुष ग्रहण करके कृष्ण और अर्जुनके ऊपर अपने वाणोंकी वर्षा करने लगे॥ अर्जुनने शीघ्रताके सहित उनके धनुष और तूणीरको अपने वाणोंसे काटकर फिर बहुतेरे वाणोंसे उनके सम्पूर्ण मर्म स्थानोंमें प्रहार किया॥ अनन्तर मर्मस्थानोंसे विद्ध होकर राजा भगदत्त अत्यन्त ही पीडित हुए और वैष्णवास्त्रसे अंकुश अभिमन्त्रित करके अर्जुनके वक्षस्थलको लक्ष्य करके छोड दिया॥ (१५–१७)

कृष्णने अर्जुनको छिपाकर उस सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाले अस्त्रको अपने वक्षस्थल पर ग्रहण किया॥ वह वैष्णवास्त्र कृष्णके वक्षस्थलपर गिरकर उन के अंगस्पर्शसे वैजयन्ती माला बन गया। वह माला कमलगुच्छोंसे सम्पन्न, अनेक ऋतुओंमें उत्पन्न हुए पुष्पोंसे गुफित, अग्नि सूर्य और चंद्रके समान प्रकाशित थी, उसमें कमल पत्र गुफे हुए थे, और

शुशुभेऽभ्यधिकं शौरिरतसीपुष्पसन्निभः।
ततोऽर्जुनः क्लान्तमनाः केशवं प्रत्यभाषत ॥ २१ ॥
अयुध्यमानस्तुरगान्संयन्ताऽस्मीति चाऽनघ।
इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न रक्षसि ॥ २२ ॥
यद्यहं व्यसनी वा स्यामशक्तो वा निवारणे।
ततस्त्वयैवं कार्यं स्यान्न तत्कार्यं मयि स्थिते ॥ २३ ॥
सबाणः सधनुश्चाऽहं ससुरासुरमानुषान्।
शक्तो लोकानिमाञ्जेतुं तच्चाऽपि विदितं तव ॥ २४ ॥
ततोऽर्जुनं वासुदेवः प्रत्युवाचाऽर्थवद्वचः।
शृणु गुह्यमिदं पार्थ पुरावृत्तं यथाऽनघ ॥ २५ ॥
चतुर्मूर्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमुद्यतः।
आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे ॥ २६ ॥
एका मूर्तिस्तपश्चर्यां कुरुते मे भुवि स्थिता।
अपरा पश्यति जगत्कुर्वाणं साध्वसाधुनी ॥ २७ ॥

वे वायुसे कंपित होते थे, ऐसी मालासे अतसी पुष्पके समान श्याम वर्ण भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अत्यंत शोभित हुए ॥ (१८-२१)

अनन्तर अर्जुन दुःखित होकर कृष्णसे बोले, हे पुण्डरीकाक्ष! तुमने यह प्रतिज्ञा किया, कि मैं केवल तुमारे रथका सारथी बनकर घोडोंको चलाऊंगा और युद्ध नहीं करूंगा; इस समय तुमने उस प्रतिज्ञाकी रक्षा नहीं की ॥ यदि मैं व्यसनी अथवा अस्त्र निवारण करनेमें असमर्थ होता, तो तुमको ऐसा करना भी उचित था, परन्तु मेरे उपस्थित रहते तुमको ऐसा कर्म करना उचित नहीं था ॥ मैं धनुष बाण ग्रहण करके देवता और असुरोंके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत सकता हूं; इसे तुम भी जानते हो ॥ (२२-२४)

अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनका यह अर्थयुक्त वचन सुनकर उनसे बोले, हे पापरहित अर्जुन! तुम एक गुप्त प्राचीन इतिहास मुझसे सुनो ॥ मेरी चार सनातन मूर्त्तियां हैं ॥ मैं इस जगत्में प्राणियोंके परित्राणके निमित्त उद्यत हो निज आत्माको विभाग करके चार मूर्त्तियोंसे प्राणियोंका हित साधन किया करता हूं ॥ मेरी एक मूर्त्ति मर्त्य लोकमें स्थित होके तपस्या कर रही है, दूसरी जगत्के सत् और असत् कर्मोंको देखती है तीसरी मनुष्य लोकका आश्रय

अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता ।
शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकीम् ॥ २८ ॥
याऽसौ वर्षसहस्रान्ते मूर्त्तिरुत्तिष्ठते मम।
वरार्हेभ्यो वराञ्श्रेष्ठांस्तस्मिन्काले ददाति सा ॥ २९ ॥
तं तु कालमनुप्राप्तं विदित्वा पृथिवी तदा ।
अयाचत वरं यन्मां नरकार्थाय तच्छृणु ॥ ३० ॥
देवानां दानवानां च अवध्यस्तनयोऽस्तु मे ।
उपेतो वैष्णवास्त्रेण तन्मे त्वं दातुमर्हसि ॥ ३१ ॥
एवं वरमहं श्रुत्वा जगत्यास्तनये तदा ।
अमोघमस्त्रं प्रायच्छं वैष्णवं परमं पुरा ॥ ३२ ॥
अवोचं चैतदस्त्रं वै ह्यमोघं भवतु क्षमे ।
नरकस्याऽभिरक्षार्थं नैनं कश्चिद्वधिष्यति ॥ ३३ ॥
अनेनाऽस्त्रेण ते गुप्तः सुतः परबलार्दनः ।
भविष्यति दुराधर्षः सर्वलोकेषु सर्वदा ॥ ३४ ॥
तथेत्युक्त्वा गता देवी कृतकामा मनस्विनी ।

कर के कर्म करती है; और चौथी मूर्त्ति सहस्र वर्ष पर्यन्त निद्रित होके शयन करती रहती है ॥ (२५-२८)

जब मेरी वह चौथी मूर्त्ति सहस्र वर्ष के अनन्तर निद्रासे जागके सावधान होकर उठती है, तब वही मूर्त्ति वरदान पानेके योग्य पुरुषोंको श्रेष्ठ वर दिया करती है, एक समयमें उस ही मूर्त्तिके उठनेके समयमें पृथिवीने अपने पुत्र नरकासुरके निमित्त जो वरदान मांगा था, वह मैं तुमसे कहता हूं ॥ २९-३०

पृथिवी बोली, "मेरा पुत्र वैष्णवास्त्रसे युक्त होवे, जिससे देवता तथा दैत्य कोई उसका वध न कर सकें इस निमित्त तुम मुझे यही वरदान करो ।" (३१)

मैंने पृथिवीकी प्रार्थना सुनकर उसी समय भूमिपुत्र नरकासुरको अपना अमोघ परम वैष्णव अस्त्र प्रदान किया और उस समय मैंने पृथ्वीसे यह वचन कहा था, कि हे पृथ्वी ! मैंने इस वैष्णवास्त्रको तुम्हारे पुत्रकी रक्षाके निमित्त दिया है, यह अमोघ अस्त्र है, इसके प्रतापसे तुम्हारे पुत्रको कोई भी युद्धमें न मार सकेगा ॥ तुम्हारा पुत्र सदा सर्वदा इस अस्त्रसे रक्षित होकर शत्रुओंको पीडित करता रहेगा और जगत्के बीच इस अस्त्रके बलसे तुम्हारा पुत्र महा पराक्रमी गिना जावेगा ॥ (३२-३४)

स चाऽप्यासीद् दुराधर्षो नरकः शत्रुतापनः ॥ ३५ ॥
तस्मात्प्राग्ज्योतिषं प्राप्तं तदस्त्रं पार्थ मामकम् ।
नाऽस्याऽवध्योऽस्ति लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ॥ ३६ ॥
तन्मया त्वत्कृते चैतदन्यथा व्यपनामितम् ।
विमुक्तं परमास्त्रेण जहि पार्थ महासुरम् ॥ ३७ ॥
वैरिणं जहि दुर्धर्षं भगदत्तं सुरद्विषम् ।
यथाऽहं जघ्निवान्पूर्वं हितार्थं नरकं तथा ॥ ३८ ॥
एवमुक्तस्तदा पार्थः केशवेन महात्मना ।
भगदत्तं शितैर्बाणैः सहसा समवाकिरत् ॥ ३९ ॥
ततः पार्थो महाबाहुरसम्भ्रान्तो महामनाः ।
कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्पयत् ॥ ४० ॥
स समासाद्य तं नागं बाणो वज्र इवाऽचलम् ।
अभ्यगात्सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ॥ ४१ ॥
स करी भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः ।

मनस्विनी पृथ्वीदेवी ऐसा ही होवे, यह वचन कहकर कृतकार्य चली गई। उसका पुत्र नरकासुर भी उस अस्त्रके प्रभावसे महा पराक्रमी हुआ था, और उसने सम्पूर्ण शत्रुओंको इसही अस्त्रके प्रतापसे युद्धमें पीडित किया था॥ हे पुरुषर्षभ! वही मेरा अस्त्र इस समय में नरकासुरसे भगदत्तको मिला था, इन्द्र और रुद्र आदि देवता भी इस अस्त्रसे अवध्य नहीं हैं; इस ही कारणसे तुम्हारी रक्षाके निमित्त मैंने इस अस्त्रको अन्यथा परिवर्तित कर दिया है॥ हे अर्जुन! इस समय यह पर्वतराज भगदत्त वैष्णवास्त्रसे रहित होगया है, इससे मैंने पहिले जिस प्रकारसे नरकासुरका वध किया था, वैसे ही तुम भी इस देवतोंके द्रोही महाबलवान् भगदत्तका नाश करो॥ (३५-३८)

जब महात्मा कृष्णने अर्जुनसे ऐसा वचन कहा, तब महारथ अर्जुनने निर्भयचित्त होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे राजा भगदत्तको छिपा दिया; फिर अर्जुनने एक तीक्ष्ण बाणसे भगदत्तके गजराजके गण्डस्थलके मध्यभागमें प्रहार किया। हे नरनाथ! जैसे सर्प बिलके बीच प्रवेश करता है, तथा जिस प्रकारसे वज्र लगनेसे पर्वत भेद होता है; वैसे ही अर्जुनके धनुषसे छूटा हुआ तीक्ष्ण बाण भगदत्तके हाथीके शरीरमें घुस गया॥ (३९-४१)

न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव योषिता ॥ ४२ ॥
स तु विष्टभ्य गात्राणि दन्ताभ्यामवनिं ययौ ।
नदन्नार्त्तस्वनं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः ॥ ४३ ॥
ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः ।
अयं महत्तरः पार्थ पलितेन समावृतः ॥ ४४ ॥
वलीसञ्छन्ननयनः शूरः परमदुर्जयः ।
अक्ष्णोरुन्मीलनार्थाय बद्धपट्टो ह्यसौ नृपः ॥ ४५ ॥
देववाक्यात्प्रचिच्छेद शरेण भृशमर्जुनः ।
छिन्नमात्रेंऽशुके तस्मिन्रुद्धनेत्रो बभूव सः ॥ ४६ ॥
तमोमयं जगन्मेने भगदत्तः प्रतापवान् ।
ततश्चन्द्रार्धबिम्बेन बाणेन नतपर्वणा ॥ ४७ ॥
बिभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः ।
स भिन्नहृदयो राजा भगदत्तः किरीटिना ॥ ४८ ॥
शरासनं शरांश्चैव गतासुः प्रमुमोच ह ।
शिरसस्तस्य विभ्रष्टं पपात च वरांशुकम् ।

उस समय राजा भगदत्तने उस हाथीको बारबार उत्तेजित किया; परन्तु जैसे स्वामीके दरिद्र होनेपर उसकी भार्या उसके वचनको नहीं ग्रहण करती, वैसे ही उस गजराजने भगदत्तके प्रिय कार्य को नहीं किया ॥ और सूण्ड सिकोड कर महाभयङ्कर आर्त्तनाद करके प्राण त्याग किया (४२–४३)

तब गाण्डीव धनुष्य धारण करनेवाले अर्जुनसे श्रीकृष्ण कहने लगे। हे अर्जुन ! इस भगदत्तके बुढापेके कारण सब केश श्वेत हुए हैं, शूर और अत्यंत दुर्जय इस भगदत्तके नेत्र वलियोंसे व्याप्त होनेके कारण उन्मीलित नहीं होते, इस लिये नेत्रोंको उन्मीलित रहने के लिये उस राजाने उन्हें पटबद्ध किये हैं ॥ (४४-४५)

श्रीकृष्ण के वचन सुनकर अर्जुनने शीघ्र ही अपने बाणसे भगदत्तके नेत्रका पट काटडाला,उससे भगदत्तके नेत्र ढांप गये और वह प्रतापवान् भगदत्त सब जगत् को अंधकारसे व्याप्त ही मानने लगा। तिसके अनन्तर अर्जुनने अपने तीक्ष्ण और अर्द्धचन्द्र बाणसे राजा भगदत्तके हृदयमें प्रहार किया । राजा भगदत्त अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर चेत-रहित होगये, अनन्तर उनके हाथसे धनुष और बाण छूटके पृथ्वीपर गिर पडा; जैसे कमल-नालको उखाडनेसे

नालताडनविभ्रष्टं पलाशं नलिनादिव ॥ ४९ ॥
स हेममाली तपनीयभाण्डात्पपात नागाद्गिरिसन्निकाशात्।
सुपुष्पितो मारुतवेगरुग्णो महीधराग्रादिव कर्णिकारः ॥ ५० ॥
निहत्य तं नरपतिमिन्द्रविक्रमं सखायमिन्द्रस्य तदैन्द्रिराहवे।
ततोऽपरांस्तव जयकांक्षिणो नरान्बभञ्ज वायुर्बलवान्द्रुमानिव ॥५१॥१३०८

इति श्रीमहाभारते॰ वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तवधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

सञ्जय उवाच— प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितौजसम्।
हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रदक्षिणमवर्त्तत ॥ १ ॥
ततो गान्धारराजस्य सुतौ परपुरञ्जयौ।
अर्देतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ ॥ २ ॥
तौ समेत्याऽर्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ।
अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्भृशम् ॥ ३ ॥
वृषकस्य हयान्सूतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम्।
तिलशो व्यधमत्पार्थः सौबलस्य शितैः शरैः ॥ ४ ॥

कमलके मृणालसे उसके पत्र पृथक् होजाते हैं, वैसे ही उनके सिरके ऊपरसे उत्तम वस्त्र पृथ्वीपर गिर पडा। (४६-४९)

जैसे भली भांति फला हुआ कर्णिकारका सुन्दर वृक्ष वायुके वेगसे टूटकर पर्वतकी शिखरपर गिर पडता है, वैसे ही सुवर्ण माला विभूषित राजा भगदत्त उस पर्वतके समान ऊंचे हाथीसे पृथ्वीपर गिर पडे ॥ जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षोंको उखाडके फेंक देता है वैसे ही इन्द्रपुत्र अर्जुनने युद्धमें इन्द्रके सखा इन्द्रके समान महा पराक्रमी राजा भगदत्तका संहार करके तुम्हारी सेनाके अन्यान्य शूरवीरोंका वध करने लगे॥ (५०-५१)[१३०८]

द्रोणपर्वमें उनतीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें तीस अध्याय।

सञ्जय बोले, अर्जुनने इन्द्रका प्रिय मित्र और सखा महातेजसी राजा भगदत्तका युद्धमें वध करके उनकी प्रदक्षिणा की॥ अनन्तर गान्धार-राजके शत्रु नाशन वृषक और अचल नामक दो पुत्र युद्धभूमिमें अर्जुनको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे॥ वे दोनों मिलकर धनुष धारण कर अर्जुनके आगे और पीछे स्थित होके उन्हें तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित करने लगे॥ (१-३)

अर्जुनने अपने चोखे बाणोंसे सुबलपुत्र वृषकके घोडे, सारथी, छत्र, ध्वजा और धनुषको काट दिया और नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको चला कर

ततोऽर्जुनः शरव्रातैर्नानाप्रहरणैरपि ।
गान्धारानाकुलांश्चक्रे सौबलप्रमुखान्पुनः ॥ ५ ॥
ततः पञ्चशतान्वीरान्गान्धारानुद्यतायुधान् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो बाणैर्धनञ्जयः ॥ ६ ॥
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवतीर्य महाभुजः ।
आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च धनुराददे ॥ ७ ॥
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृषकाचलौ ।
शरवर्षेण बीभत्सुमविध्येतां मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥
स्यालौ तव महात्मानौ राजानौ वृषकाचलौ ।
भृशं विजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रबलाविव ॥ ९ ॥
लब्धलक्षौ तु गान्धारावहतां पाण्डवं पुनः ।
निदाघवार्षिकौ मासौ लोकं घर्मांशुभिर्यथा ॥ १० ॥
तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृषकाचलौ ।
संश्लिष्टाङ्गौ स्थितौ राजञ्जघानैकेषुणाऽर्जुनः ॥ ११ ॥
तौ रथात्सिंहसङ्काशौ लोहिताक्षौ महाभुजौ ।

उनके अनुयायी सौबल आदि गान्धार योद्धाओंको अत्यन्त ही पीडित करने लगे ॥ अनन्तर महाभुज वृषक घोडोंसे रहित रथसे उतरके अपने भाईके रथ पर जा चढे और दूसरा दृढ धनुष ग्रहण किया ॥ इतने ही समयमें अर्जुनने पांच सौ गान्धार वीरोंका वध करके उन्हें यमपुरीमें भेज दिया । (४-७)

अनन्तर एकरथमें स्थित वृषक और अचल दोनों भाई अपने बाणोंकी वर्षा करने और अर्जुनको बार बार विद्ध करने लगे ॥ जैसे वृत्रासुर और बलासुरने मिल कर इन्द्रके ऊपर अपने अस्त्रोंसे प्रहार किया था, वैसे ही तुम्हारे साले शकुनिके पुत्र-दोनों बलवान् भाई वृषक और अचल बार बार अपने तीक्ष्ण बाणोंको चला कर अर्जुनके ऊपर प्रहार करने लगे । जैसे ग्रीष्म और वर्षा ये दोनों ऋतु धूप और जलकी वर्षासे सम्पूर्ण प्राणियोंको क्लेश देती हैं, वैसे ही लक्ष्य (निशाने) को वेधनेवाले उन दोनों गान्धार राजके पुत्रोंने अर्जुनको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करना आरम्भ किया ॥ (८-१०)

हे राजन् ! अर्जुनने एक महा भयङ्कर बाण चला कर एक ही रथमें स्थित पुरुषसिंह वृषक और अचल दोनों भाइयोंका संहार किया ॥ वे एक

राजन्सम्पेततुर्वीरौ सोदर्यावेकलक्षणौ ॥ १२ ॥
तयोर्भूमिं गतौ देहौ रथाद्बन्धुजनप्रियौ ।
यशो दश दिशः पुण्यं गमयित्वा व्यवस्थितौ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ ।
भृशं मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ १४ ॥
निहतौ भ्रातरौ दृष्ट्वा मायाशतविशारदः ।
कृष्णौ सम्मोहयन्मायां विदधे शकुनिस्ततः ॥ १५ ॥
लगुडायोगुडाश्मानः शतघ्न्यश्च सशक्तयः ।
गदापरिघनिस्त्रिंशशूलमुद्गरपट्टिशाः ॥ १६ ॥
सकम्पनर्ष्टिनखरा मुसलानि परश्वधाः
क्षुराः क्षुरप्रनालीका वत्सदन्तास्थिसन्धयः ॥ १७ ॥
चक्राणि विशिखाः प्रासा विविधान्यायुधानि च ।
प्रपेतुः शतशो दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यश्चाऽर्जुनं प्रति॥१८ ॥
खरोष्ट्रमहिषाः सिंहा व्याघ्राः सृमरचित्रकाः ।
ऋक्षाः शालावृका गृध्राः कपयश्च सरीसृपाः ॥ १९ ॥
विविधानि च रक्षांसि क्षुधितान्यर्जुनं प्रति ।

ही रूपवाले सिंहके समान पराक्रमी रक्तनेत्रवाले महाभुज दोनों भाई मर कर रथसे पृथ्वी पर गिर गये ॥ उन दोनों शूरवीरोंके शरीर उस युद्धभूमिमें सब ओर अपने पवित्र शूरवीरोंके यशको विस्तार करके अन्तमें पृथ्वी पर स्थित हुए ॥ (११-१३)

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्रोंने युद्धसे पीछे न हटनेवाले अपने दोनों मातुलेयोंको अर्जुनके बाणोंसे मरे हुए देखकर क्रोधपूर्वक सव्यसाची अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंको चलाना आरम्भ किया ॥ अनन्तर सैकडों माया विद्याओंके जाननेवाले शकुनिने अपने पुत्र दोनों भाइयोंको मरते देख कर कृष्ण और अर्जुनको मोहित करनेके निमित्त माया उत्पन्न की ॥ शकुनिकी मायाके प्रभावसे सैकडों शक्ति, शतघ्नी, गदा, परिघ, शूल, मुद्गर, पट्टिश, ऋष्टि, मूसल, परशु, क्षुरास्त्र, क्षुरप्र, नालीक, वत्सदन्त, अस्थिसन्धि, चक्रविशिख, प्रास और दूसरे प्रकारके सैकडों तथा सहस्रों अस्त्र सब ओरसे अर्जुनके ऊपर पडने लगे ॥ (१४-१८)

अनन्तर ऊंट, गदहे, भैंसे, व्याघ्र, सिंह चित्ते, भेडिये, वानर आदि पशु

संक्रुद्धान्यभ्यधावन्त विविधानि वयांसि च ॥ २० ॥
ततो दिव्यास्त्रविच्छूरः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
विसृजन्निषुजालानि सहसा तान्यताडयत् ॥ २१ ॥
ते हन्यमानाः शूरेण प्रवरैः सायकैर्दृढैः ।
विरुवन्तो महारावान्विनेशुः सर्वतो हताः ॥ २२ ॥
ततस्तमः प्रादुरभूदर्जुनस्य रथं प्रति ।
तस्माच्च तमसो वाचः क्रूराः पार्थमभर्त्सयन् ॥ २३ ॥
तत्तमो भैरवं घोरं भयकर्तृ महाहवे ।
उत्तमास्त्रेण महता ज्यौतिषेणाऽर्जुनोऽवधीत् ॥ २४ ॥
हते तस्मिञ्जलौघास्तु प्रादुरासन्भयानकाः ।
अम्भसस्तस्य नाशार्थमादित्यास्त्रमथाऽर्जुनः ॥ २५ ॥
प्रायुंक्ताम्भस्ततस्तेन प्रायशोऽस्त्रेण शोषितम् ।
एवं बहुविधा मायाः सौबलस्य कृताः कृताः ॥ २६ ॥
जघानाऽस्त्रबलेनाऽऽशु प्रहसन्नर्जुनस्तदा ।
तदा हतासु मायासु त्रस्तोऽर्जुनशराहतः ॥ २७ ॥

और गिद्ध कौवें, आदि पक्षी तथा नाना प्रकारके मांस भक्षण करनेवाले राक्षस क्षुधासे पीडित होकर अर्जुनकी ओर दौडे ॥ अनन्तर दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाले पराक्रमी कुन्तीपुत्र बलवान् अर्जुनने अपने दिव्य अस्त्रोंको चला कर उन सम्पूर्ण मायाको नष्ट कर दिया ॥ वे मायासे उत्पन्न हुए सब जन्तु अर्जुनके प्रबल अस्त्रोंसे पीडित होकर प्राण त्यागते हुए महा भयङ्कर शब्द करने लगे । और विद्ध होकर नष्ट होगये ॥ (१९-२२)

अनन्तर अर्जुनके रथमें अन्धकार प्रकट हुआ और उस ही अन्धकारसे नाना प्रकारकी कडई बातें सुनाई देने लगीं । अर्जुनने उस भयङ्कर अन्धकारका नाश किया ॥ अन्धकारके दूर होने पर महा भयङ्कर जलकी वर्षा होने लगी; तब अर्जुनने जलवर्षाको निवारण करने के निमित्त आदित्यास्त्र चलाया, उस अस्त्रके प्रभावसे सम्पूर्ण जल सूख गया ॥ (२३-२६)

शकुनिने इसी प्रकार बहुतसी माया उत्पन्न की थी ॥ परन्तु शकुनिने जिस समय जो माया उत्पन्न की, अर्जुनने हंसते हंसते अपने दिव्य अस्त्रोंसे उसका नाश किया । इसी प्रकार सम्पूर्ण माया के नष्ट होने पर अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर शकुनि साधारण

अपायाज्जवनैरश्वैः शकुनिः प्राकृतो यथा ।
ततोऽर्जुनोऽस्त्रविच्छैघ्र्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिषु ॥ २८ ॥
अभ्यवर्षच्छरौघेण कौरवाणामनीकिनीम् ।
सा हन्यमाना पार्थेन तव पुत्रस्य वाहिनी ॥ २९ ॥
द्वैधीभूता महाराज गङ्गेवाऽऽसाद्य पर्वतम् ।
द्रोणमेवाऽन्वपद्यन्त केचित्तत्र नरर्षभाः ॥ ३० ॥
केचिद् दुर्योधनं राजन्नर्द्यमानाः किरीटिना ।
नाऽपश्याम ततस्त्वेनं सैन्ये वै रजसाऽऽवृते ॥ ३१ ॥
गाण्डीवस्य च निर्घोषः श्रुतो दक्षिणतो मया ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वादित्राणां च निःस्वनम् ॥ ३२ ॥
गाण्डीवस्य तु निर्घोषो व्यतिक्रम्याऽस्पृशद्दिवम् ।
ततः पुनर्दक्षिणतः संग्रामश्चित्रयोधिनाम् ॥ ३३ ॥
सुयुद्धं चाऽर्जुनस्याऽऽसीदहं तु द्रोणमन्वियाम् ।
यौधिष्ठिराण्यनीकानि प्रहरन्ति ततस्ततः ॥ ३४ ॥
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव भारत ।
अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाऽभ्राणि मारुतः ॥ ३५ ॥

मनुष्यकी भांति वेगगामी घोडोंसे युक्त रथ पर चढ कर उनके सम्मुखसे भाग गये ॥ (२६–२८)

अनन्तर अर्जुन शत्रुओंको अपना हस्तलाघव दिखानेके निमित्त कुरुसेना के ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। हे भारत! जैसे गङ्गा पर्वतको मार्गमें पाकर दो भागसे विभक्त हुई हैं, वैसे ही तुम्हारी सेना अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर दो भागोंमें बंट गई। हे राजन्! अर्जुनके बाणोंसे पीडित शूरवीर योद्धा द्रोणाचार्यके और कितने ही लोग दुर्योधनके समीपमें आकर स्थित हुए। अनन्तर सेनाके पुरुषोंके इधर उधर दौडनेसे रणभूमिमें जो उन योद्धाओंके पावोंके धक्केसे धूलि उडी, उससे अर्जुन का रथ छिप गया॥ केवल उस समय सब ओर गाण्डीव धनुषका शब्द ही सुनाई देता था। उस गाण्डीव धनुषका शब्द दुन्दुभी आदि युद्धके शब्दोंको अतिक्रम करके आकाशमें व्याप्त होगया॥ (२८-३३)

अनन्तर दक्षिण दिशामें चित्रवेधी वीरोंके सङ्ग अर्जुनका युद्ध होने लगा, मैं उस समय द्रोणाचार्यका अनुयायी हुआ था। हे भारत! युधिष्ठिरकी

तं वासवमिवाऽऽयान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
महेष्वासा नरव्याघ्रा नोग्रं केचिदवारयन् ॥ ३६ ॥
ते हन्यमानाः पार्थेन त्वदीया व्यथिता भृशम् ।
स्वानेव बहवो जघ्नुर्विद्रवन्तस्ततस्ततः ॥ ३७ ॥
तेऽर्जुनेन शरा मुक्ताः कङ्कपत्रास्तनुच्छिदः ।
शलभा इव सम्पेतुः संवृण्वाना दिशो दश ॥ ३८ ॥
तुरगं रथिनं नागं पदातिमपि मारिष ।
विनिर्भिद्य क्षितिं जग्मुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ३९ ॥
न च द्वितीयं व्यसृजत्कुञ्जराश्वनरेषु सः ।
पृथगेकशरा रुग्णा निपेतुस्ते गतासवः ॥ ४० ॥
हतैर्मनुष्यैर्द्विरदैश्च सर्वतः शराभिसृष्टैश्च हयैर्निपातितैः ।
तदाऽश्वगोमायुबलाभिनादितं विचित्रमायोधशिरो बभूव तत् ॥४१॥

सेना इधर उधर शत्रु सेनाके शूरवीरों के ऊपर अपने अस्त्र शस्त्रोंसे प्रहार करने लगी। हे राजेन्द्र! जैसे समयके अनुसार प्रबल वायु चल कर आकाशमें स्थित बादलोंके समूहको नष्ट करता है, वैसे ही शत्रुनाशन अर्जुन शत्रुसेनाके योद्धाओंको तीक्ष्ण बाणोंसे भस्म करने लगे। (३३-३५)

तुम्हारी सेनाकी ओर दौडते हुए इन्द्रके समान पराक्रमी पुरुषसिंह अर्जुनको कोई भी शूरवीर योद्धा निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुआ। तुम्हारी सम्पूर्ण सेना अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर तथा अपने अनेक इष्ट मित्र या योद्धाओंका नाश करके युद्धभूमिसे तितर बितर होने लगी॥ अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए कङ्कपत्रसे युक्त अनेक मर्मभेदी बाण शलभ समूहकी भांति सब दिशाओंमें परिपूर्ण होगये। ३५--३८

हे राजेन्द्र! वे ही सब बाण घोडे, हाथी, रथ और पैदल चलनेवाले योद्धाओंको भेद करके वल्मीकमें सर्पके समान पृथ्वीमें प्रवेश करने लगे॥ अर्जुन हाथी, घोडे और पैदल युद्ध करने वाले वीरोंके ऊपर दूसरा बाण नहीं चलाते थे, वह हर एक पुरुषको एक एक बाणसे प्राण-रहित करके पृथ्वीमें गिराने लगे॥ उस समय वह संग्रामभूमि बाणोंसे विद्ध, घायल तथा मरे मनुष्य और हाथी घोडोंके शरीरसे पूरित होकर विचित्र रूपसे दीख पडती थी। कौवे, गिद्ध, कुत्ते और शृगाल आदि मांसभक्षी जीव मांस खानेकी इच्छासे भयङ्कर बोली बोलते

पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत्तथैव पुत्रः पितरं शरातुरः।
स्वरक्षणे कृतमतयस्तदा जनास्त्यजन्ति वाहानपि पार्थपीडिताः॥ ४२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि शकुनिपलायने त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥ [१३५०]

धृतराष्ट्र उवाच—तेष्वनीकेषु भग्नेषु पाण्डुपुत्रेण सञ्जय।
चलितानां द्रुतानां च कथमासीन्मनो हि वः॥ १॥
अनीकानां प्रभग्नानामवस्थानमपश्यताम्।
दुष्करं प्रतिसन्धानं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय॥ २॥
सञ्जय उवाच— तथाऽपि तव पुत्रस्य प्रियकामा विशाम्पते।
यशः प्रवीरा लोकेषु रक्षन्तो द्रोणमन्वयुः॥ ३॥
समुद्यतेषु चास्त्रेषु सम्प्राप्ते च युधिष्ठिरे।
अकुर्वन्नार्यकर्माणि भैरवे सत्यभीतवत्॥ ४॥

हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे॥ अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर पिताने पुत्रको और मित्रने अपने सुहृद् मित्रको तथा बाणोंसे पीडित पुत्रने अपने पिताको त्याग दिया; अपने अपने प्राणकी रक्षाके निमित्त व्यग्रचित्त होकर कितने ही शूरवीर अपने वाहनोंको युद्धभूमि में त्यागने लगे॥ (३९–४२) [१३५०]

द्रोणपर्वमें तीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें इकतीस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! जिस समय अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर मेरी सम्पूर्ण सेना भागने लगी और तुम लोग भी भयभीत होकर भागने लगे, उस समयमें तुम लोगोंके चित्तमें कैसा विचार उत्पन्न हुआ था? सम्पूर्ण सेना जब उसको रक्षाका आश्रयस्वरूप कोई भी न मिला, तब युद्धसे भागने लगी, भागती हुई सेनाको फिर लौटाकर युद्धमें प्रवृत्त करना बहुत कठिन होता है; परन्तु उस समयमें उन सम्पूर्ण योद्धाओंकी जैसी दशा हुई थी, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो॥ (१–२)

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र! उस समय में तुम्हारे पुत्रके प्रिय कार्य करनेकी इच्छा तथा यशकी रक्षा करनेके वास्ते वीरलोग द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेके निमित्त उनके समीप उपस्थित हुए॥ जब सब अस्त्र शस्त्रोंको धारण करनेवाली राजा युधिष्ठिरकी महासेना द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित हुई, तब उस महाभयङ्कर संग्राममें तुम्हारी ओरके वे शूरवीर योद्धा लोग क्षत्रियोंके योग्य

अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्नमितौजसः ।
सात्यकेश्चैव वीरस्य धृष्टद्युम्नस्य वा विभो ॥ ५ ॥
द्रोणं द्रोणमिति क्रूराः पञ्चालाः समचोदयन् ।
मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून्सर्वानचोदयन् ॥ ६ ॥
द्रोणं द्रोणमिति ह्येके मा द्रोणमिति चाऽपरे ।
कुरूणां पाण्डवानां च द्रोणद्यूतमवर्त्तत ॥ ७ ॥
यं यं प्रमथते द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजम् ।
तत्र तत्र तु पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ ८ ॥
तथा भागविपर्यासैः संग्रामे भैरवे सति ।
वीराः समासदन्वीरान्कुर्वन्तो भैरवं रवम् ॥ ९ ॥
अकम्पनीयाः शत्रूणां बभूवुस्तत्र पाण्डवाः ।
अकम्पयन्ननीकानि स्मरन्तः क्लेशमात्मनः ॥ १० ॥

श्रेष्ठ कर्मको करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ वे लोग महा तेजस्वी भीमसेन, सात्यकि और धृष्टद्युम्नके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ (३–५)

निठुर पाञ्चाल योद्धा लोग, "द्रोणाचार्यका वध करो ! द्रोणाचार्यका वध करो !" ऐसा वचन कह कह कर अपनी ओरके योद्धाओंको उत्तेजित करने लगे ॥ पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंका पण (बाजी) द्रोणाचार्यके वधके लिये और तुम्हारी ओरके योद्धाओंका पण द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये स्थिर हुआ। तुम्हारे पुत्र लोग अपनी सेनाके पुरुषोंको यह वचन कहके उत्तेजित करने लगे, कि जिससे शत्रु लोग द्रोणाचार्यका वध न कर सकें तुम लोग वैसा ही उपाय करो। इसी प्रकारसे द्रोणाचार्यको पण (बाजी) स्वरूप मान कर दोनों ओरकी सेनाके पुरुषोंका मानो जुआ रूपी युद्ध क्रीडा आरंभ हुई ॥ (६–७)

द्रोणाचार्य पाञ्चाल सेनाके जिन जिन शूरवीरोंको अपने अस्त्रोंसे पीडित करने लगते थे, उन महात्माओंकी रक्षा करनेके निमित्त धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सम्मुख उपस्थित होते थे, इसी प्रकारसे दोनों सेनाके शूरवीर योद्धाओंने अपने अपने भागोंको त्याग कर विपर्यययुद्ध करना आरम्भ किया, और सम्पूर्ण योद्धा लोग सिंहनाद करते हुए एक दूसरेको आक्रमण करने लगे ॥ उस महा युद्धमें पाण्डव लोग शत्रुसेनाके शूरवीरोंके अस्त्रोंसे पीडित होकर भी युद्धसे विचलित नहीं हुए। वरन वह लोग वनवास आदि क्लेशको स्मरण करके हम

ते त्वमर्षवशं प्राप्ता ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः ।
त्यक्त्वा प्राणान्न्यवर्त्तन्त घ्नन्तो द्रोणं महाहवे॥११॥
अयसामिव सम्पातः शिलानामिव चाऽभवत् ।
दीव्यतां तुमुले युद्धे प्राणैरमिततेजसाम् ॥ १२ ॥
न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधम् ।
दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा ॥ १३ ॥
प्राकम्पतेव पृथिवी तस्मिन्वीरावसादने ।
निवर्त्तता बलौघेन महता भारपीडिता ॥ १४ ॥
घूर्णतोऽपि बलौघस्य दिवं स्तब्ध्वेव निःस्वनः ।
अजातशत्रोस्तत्सैन्यमाविवेश सुभैरवः ॥ १५ ॥
समासाद्य तु पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः ।
द्रोणेन चरता संख्ये प्रभग्ना निशितैः शरैः ॥ १६ ॥
तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनाऽद्भुतकर्मणा ।
पर्यवारयदासाद्य द्रोणं सेनापतिः स्वयम् ॥ १७ ॥
तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तथा ।

लोगोंको युद्धसे विचालित करने लगे ॥ (८-१०)

महापराक्रमी लज्जावान् पाण्डव लोग क्रोधके वशमें होके अपने प्राणोंकी आशा त्याग कर द्रोणाचार्यको अस्त्र शस्त्रोंसे पीडित करने लगे ॥ वे अपने प्राणोंकी आशा छोड कर महाभयङ्कर तुमुल युद्ध रूपी द्यूतक्रीडा करने लगे। उन लोगोंके अस्त्र शस्त्र तुम्हारी सेनापर इसप्रकारसे पडने लगे, कि मानो आकाशसे लोहा और पत्थरकी शिलाकी वर्षा होरही है। हे महाराज ! बूढे मनुष्योंने ऐसा संग्राम पहिले कभी देखा वा सुना था, वह किसीको भी स्मरण नहीं होता। ११-१३

उस वीर पुरुषोंको नाश करनेवाले महा घोर संग्राममें भागनेसे लौटती हुई महा सेनाके भारसे पृथ्वी कांपने लगी॥ उस सम्पूर्ण सेनाके लौटनेके समय उन शूरवीरोंका सिंहनाद आकाशमें गूंज कर युधिष्ठिरकी महासेनामें प्रविष्ट हुआ॥ अनन्तर युद्धमें प्रशंसित द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाके सहस्रों योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करके युद्धभूमिसे भगाने लगे ॥ जब सम्पूर्ण सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे विकल होकर रणभूमिमें भागने लगी, तब सेनापति धृष्टद्युम्न स्वयं ही द्रोणाचार्यके सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें युद्धसे निवारण करनेमें

नैव तस्योपमा काचिदिति मे निश्चिता मतिः ॥ १८ ॥
ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुरुवाहिनीम् ।
शरस्फुलिङ्गश्चापार्चिर्दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ १९ ॥
तं दहन्तमनीकानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
पूर्वाभिभाषी सुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २० ॥
नील किं बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शरार्चिषा ।
मयैकेन हि युद्ध्यस्व क्रुद्धः प्रहर चाऽऽशु माम् ॥ २१ ॥
तं पद्मनिकराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
व्याकोशपद्माभमुखो नीलो विव्याध सायकैः ॥ २२ ॥
तेनापि विद्धः सहसा द्रौणिर्भल्लैः शितैस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च द्विषतः स न्यकृन्तत ॥ २३ ॥
स प्लुतः स्यन्दनात्तस्मान्नीलश्चर्मवरासिभृत् ।
द्रौणायनेः शिरः कायाद्धर्तुमैच्छत्पतत्रिवत् ॥ २४ ॥
तस्योन्नतांसं सुनसं शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
भल्लेनाऽपाहरद् द्रौणिः स्मयमान इवाऽनघ ॥ २५ ॥

प्रवृत्त हुए ॥ उस समय द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका अद्भुत युद्ध होने लगा ! मुझे बोध होता है, कि उस युद्धकी उपमा नहीं होसकती ॥ (१४–१८)

अनन्तर जैसे अग्नि सूखे तृण आदिकोंको भस्म करदेती है, वैसे ही नील-राजा अपने तीक्ष्ण बाणोंसे कुरु सेनाको भस्म करने लगे ॥ महाप्रतापी अश्वत्थामा नील राजाको तीक्ष्ण अस्त्रोंसे कुरु सेनाके शूरवीरोंको जलाते देख कर हंसते हुए उनसे यह वचन बोले ॥ हे नील ! तुम्हारे बाहुरूपी अग्निसे अनेक योद्धाओंको भस्म करनेकी क्या आवश्यकता है ? तुम केवल एकमात्र मुझसे ही युद्ध करो, तुम क्रोध पूर्वक मेरे ही ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करो ।(१९–२१)

तब राजा नील अपने बाणोंसे पद्म-पुष्पके समान वर्ण, कमलनेत्र और प्रसन्न वदनवाले अश्वत्थामाको विद्ध करने लगे ॥ अश्वत्थामाने उनके बाणोंसे सहसा अत्यन्त ही विद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर उनके रथकी ध्वजा, धनुष और छत्र काट दिया ॥ तब राजा नीलने उत्तम तलवार और ढाल ग्रहण करके पक्षीके समान रथसे कूदकर अश्वत्थामाके शिरको काटनेकी इच्छा की ॥ परन्तु अश्वत्थामाने हंसते हंसते एक बाणसे तलवार ग्रहण

सम्पूर्णचन्द्राभमुखः पद्मपत्रनिभेक्षणः।
प्रांशुरुत्पलपत्राभो निहतो न्यपतद्भुवि ॥ २६ ॥
ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भृशमाकुला।
आचार्यपुत्रेण हते नीले ज्वलिततेजसि ॥ २७ ॥
अचिन्तयंश्च ते सर्वे पाण्डवानां महारथाः।
कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति मारिष ॥ २८ ॥
दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं बली।
संशप्तकावशेषस्य नारायणबलस्य च ॥ २९ ॥ [१२७०]

इति श्रीमहाभारते॰ वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि नीलवधे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

सञ्जय उवाच— प्रतिघातं तु सैन्यस्य नामृष्यत वृकोदरः।
सोऽभ्याहनद्गुरुं षष्ट्या कर्णं च दशभिः शरैः ॥ १ ॥
तस्य द्रोणः शितैर्बाणैस्तीक्ष्णधारैरजिह्मगैः।
जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्मर्मण्याशु जघान ह ॥ २ ॥
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः षड्विंशत्या समार्पयत्।
कर्णो द्वादशभिर्बाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ ३ ॥
षड्भिर्दुर्योधनो राजा तत एनमथाकिरन्।

करनेवाले राजा नीलका मस्तक काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (२२–२५)

पूर्णचन्द्रमाके समान मुख, पद्मपुष्पके समान नेत्र और विशाल शरीरवाले राजा नील मर कर पृथ्वीपर गिरपडे ॥ जब महा तेजस्वी राजा नील अश्वत्थामाके बाणसे मरकर पृथ्वीमें गिरे, तब पाण्डवोंकी सेना अत्यन्त ही शोकित होगई॥ हे राजेन्द्र! उस समय पाण्डवोंके सब महारथ योद्धा चिन्ता करने लगे; कि अर्जुन इस समय दक्षिण ओर नारायणी सेना के सङ्ग युद्ध कर रहे हैं, वह किस प्रकारसे आकर हम लोगोंको इन शत्रुके हाथसे बचावेंगे? (२६–२९) [१२७०]

द्रोणपर्वमें इकतीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें बत्तीस अध्याय।

सञ्जय बोले, भीमसेनने शत्रुओंके अस्त्र शस्त्रोंसे अपनी सेनाके शूरवीरोंका नाश होते देखकर महाराज बाह्लिकको साठ और कर्णको दश बाणोंसे प्रहार किया॥ अनन्तर द्रोणाचार्यने भीमके मारनेकी इच्छासे छब्बीस तीक्ष्ण धार वाले बाणोंसे उनके सम्पूर्ण मर्मस्थानको विद्ध किया॥ और फिर अग्निके समान स्पर्श करनेवाले तथा विषधर सर्पके समान भयङ्कर छब्बीस बाणोंसे प्रहार किया।

भीमसेनोऽपि तान्सर्वान्प्रत्यविध्यन्महाबलः ॥ ४ ॥
द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णं च दशभिः शरैः।
दुर्योधनं द्वादशभिर्द्रौणिमष्टाभिराशुगैः ॥ ५ ॥
आरावं तुमुलं कुर्वन्नभ्यवर्त्तत तान्रणे।
तस्मिन्सन्त्यजति प्राणान्मृत्युसाधारणीकृते ॥ ६ ॥
अजातशत्रुस्तान्योधान्भीमं त्रातेत्यचोदयत्।
ते ययुर्भीमसेनस्य समीपममितौजसः ॥ ७ ॥
युयुधानप्रभृतयो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
ते समेत्य सुसंरब्धाः सहिताः पुरुषर्षभाः ॥ ८ ॥
महेष्वासवरैर्गुप्ता द्रोणानीकं बिभित्सवः।
समापेतुर्महावीर्या भीमप्रभृतयो रथाः ॥ ९ ॥
तान्प्रत्यगृह्णादव्यग्रो द्रोणोऽपि रथिनां वरः।
महारथानतिबलान्वीरान्समरयोधिनः ॥ १० ॥
बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावकान्पाण्डवा ययुः।
सादिनः सादिनोऽभ्यघ्नंस्तथैव रथिनो रथान् ॥ ११ ॥

कर्णने बारह, राजा दुर्योधनने छः और अश्वत्थामाने सात बाणोंसे भीमसेनको प्रहार किया ॥ (१–४)

महारथ भीमसेन भी उन सब महारथियों को अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे। भीमसेनने द्रोणाचार्यको पचास, कर्णको दश, दुर्योधनको बारह और अश्वत्थामाको आठ बाणोंसे विद्ध कर के सिंहनाद किया। जब भीमसेन मृत्यु का भय त्यागकर प्राणकी आशा छोड युद्ध करने लगे, तब राजा युधिष्ठिरने अपने अनुयायी योद्धाओंको भीमसेनकी रक्षा करनेके निमित्त आज्ञा दी॥ (४-७)

उनकी आज्ञासे महातेजस्वी सात्यकि और नकुल सहदेव भीमसेनके निकट उपस्थित हुए। वे सब भीमसेन आदि महा पराक्रमी महारथ योद्धा लोग क्रुद्ध होकर महा धनुर्द्धारी वीरोंसे रक्षित होकर द्रोणाचार्यकी सेनाको तितर बितर करने लगे। रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य निर्भयता से उन सब महारथियोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे निवारण करने लगे। (७-१०)

तुम्हारी ओरके महारथ योद्धा भी अपने चित्तसे मृत्यु का भय त्यागके पाण्डवोंकी सेनाके महारथियोंकी ओर दौडे। उस समयमें घुडसवार घुडसवारोंके ऊपर और रथी रथियोंके ऊपर अपने अस्त्रशस्त्रोंको चलाने लगे ॥ उस महाघोर

आसीच्छक्त्यसिसम्पातो युद्धमासीत्परश्वधैः ।
प्रकृष्टमसियुद्धं च बभूव कटुकोदयम् ॥ १२ ॥
कुञ्जराणां च सम्पाते युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
अपतत्कुञ्जरादन्यो हयादन्यस्त्ववाक्शिराः ॥ १३ ॥
नरो बाणविनिर्भिन्नो रथादन्यश्च मारिष ।
तत्राऽन्यस्य च सम्मर्दे पतितस्य विवर्मणः ॥ १४ ॥
शिरः प्रध्वंसयामास वक्षस्याक्रम्य कुञ्जरः ।
अपरांश्चाऽपरे मृद्नन्वारणाः पतितान्नरान् ॥ १५ ॥
विषाणैश्चाऽवनिं गत्वा व्यभिन्दन्रथिनो बहून् ।
नरान्त्रैः केचिदपरे विषाणालग्नसंश्रयैः ॥ १६ ॥
बभ्रमुः समरे नागा मृद्नन्तः शतशो नरान् ।
कार्ष्णायसतनुत्राणान्नराश्वरथकुञ्जरान् ॥ १७ ॥
पतितान्पोथयाञ्चक्रुर्द्विपाः स्थूलनलानिव ।
गृध्रपक्षाधिवासांसि शयनानि नराधिपाः ॥ १८ ॥
ह्रीमन्तः कालसम्पक्वात्सुदुःखान्यनुशेरते ।

युद्धमें शक्ति, तलवार और परशु आदि शस्त्रोंसे दोनों सेनाके शूरवीरोंका अत्यन्त ही नाश होने लगा ॥ तलवार ग्रहण करनेवाले शूरवीर योद्धाओं और गजपति योद्धा तथा हाथियोंका महा दारुण भयङ्कर संग्राम होने लगा । कोई हाथी-परसे और कोई कोई घोडों-परसे अस्त्रों-की चोटसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ (११–१३)

कितने ही रथी बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर रथसे पृथ्वीपर गिरने लगे । कितने ही पुरुष कवचसे रहित और बाणोंसे पीडित होकर पृथ्वीमें गिर पडे, रणभूमि में पडेहुए कितने पुरुषोंके शरीरोंमें मतवारे अपने हाथियोंने आक्रमण करके अपने पावोंसे उनके शिरोंको तोड डाला, कितने ही हाथी रणभूमिमें पडे हुए पुरुषोंको ही मर्दन करने लगे ॥ (१४-१५)

कितने ही हाथी अपने दांतोंसे रथियों को पीडित करने लगे । कितने हाथियोंके दांतोंमें जो वीर पुरुषोंके अस्त्र लगे थे, वे हाथी उन अस्त्रोंके सहित ही सैकडों मनुष्योंको मर्दन करते हुए रणभूमिमें भ्रमण करने लगे । कितने ही हाथी लोहेसे बने हुए कवचोंको धारण करने-वाले पृथ्वीमें पडे हुए मनुष्य, घोडे, रथ और हाथियोंको कमल वनके समान मर्दते हुए चारों ओर घूमने लगे ।

हन्ति स्माऽत्र पिता पुत्रं रथेनाऽभ्येत्य संयुगे ॥ १९ ॥
पुत्रश्च पितरं मोहान्निर्मर्यादमवर्त्तत ।
रथो भग्नो ध्वजश्छिन्नश्छत्रमुर्व्यां निपातितम् ॥ २० ॥
युगार्द्धं छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः ।
सासिर्बाहुर्निपतितः शिरश्छिन्नं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥
गजेनाऽऽक्षिप्य बलिना रथः सञ्चूर्णितः क्षितौ ।
रथिना ताडितो नागो नाराचेनाऽपतत्क्षितौ ॥ २२ ॥
सारोहश्चाऽपतद्वाजी गजेनाऽभ्याहतो भृशम् ।
निर्मर्यादं महद्युद्धमवर्तत सुदारुणम् ॥ २३ ॥
हा तात हा पुत्र सखे क्वाऽसि तिष्ठ क धावसि ।
प्रहराऽऽहर जह्येनं स्मितक्ष्वेडितगर्जितैः ॥ २४ ॥
इत्येवमुच्चरन्ति स्म श्रूयन्ते विविधा गिरः ।
नरस्याऽश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २५ ॥

क्षत्रिय योद्धा लोग मानो लज्जित होकर गिद्धपङ्खसे युक्त बाणोंसे विद्ध होकर पृथ्वीपर शयन करने लगे ॥ (१५-१९)

इस प्रकारका मर्यादा रहित संग्राम आरम्भ हुआ; कि रथपर चढके एक दूसरे के सम्मुख हो कर पिता पुत्रका और पुत्र पिता का वध करने लगे । कितने ही रथ टूटे, कितने ही रथोंकी ध्वजा टूटी, कितनोंका छत्र पृथ्वीमें टूटकर गिर पडा, कितने ही घोडे सवारोंसे रहित होकर रणभूमिमें दौडने लगे॥ कितने ही शूरवीरोंकी भुजा तलवार सहित कटके पृथ्वीपर गिर पडीं और कितनोंके शिर मुकुट और कुण्डलोंके सहित कटके युद्धभूमिमें गिर पडे।१९-२१

कितने ही बलवान् हाथी रथोंको सूण्डसे उठाकर दूर फेंककर चूर्ण करने लगे। कितने ही हाथी नाराच और रथियोंके बाणोंसे पीडित होकर तथा घोडे सवार के सहित गजसे ताडित होनेसे मरकर पृथ्वीमें गिरगये । इस प्रकार वह संग्राम महा दारुण और मर्यादा रहित होगया ॥ (२०-२३)

उस संग्राममें कितनेही पुरुष "हा तात ! हा पुत्र ! हा मित्र ! तुम कहां हो ? इसी स्थानपर रहो ! कहां दौडे जाते हो ? प्रहार करो, उसे मारो,"ऐसे ही वचन बोलते हुए शूरवीर लोग हंसते, रोते, चिल्लाते और कितने ही सिंहनाद करते हुए दिखाई देते थे ॥ मनुष्य, हाथी और मरे हुए घोडोंके रुधिरसे रणभूमिकी उडती हुई धूलि

उपाशाम्यद्रजो भौमं भीरून्कश्मलमाविशत् ।
चक्रेण चक्रमासाद्य वीरो वीरस्य संयुगे ॥ २६ ॥
अतीतेषुपथे काले जहार गदया शिरः ।
आसीत्केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम् ॥ २७ ॥
नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम् ।
तत्राऽच्छिद्यत शूरस्य सखड्गो बाहुरुद्यतः ॥ २८ ॥
सधनुश्चाऽपरस्यापि सशरः सांकुशस्तथा ।
आक्रोशदन्यमन्योऽत्र तथाऽन्यो विमुखोऽद्रवत् ॥ २९ ॥
अन्यः प्राप्तस्य चाऽन्यस्य शिरः कायादपाहरत् ।
सशब्दमद्रवच्चाऽन्यः शब्दादन्योऽत्रसद्भृशम् ॥ ३० ॥
स्वानन्योऽथ परानन्यो जघान निशितैः शरैः ।
गिरिशृङ्गोपमश्चाऽत्र नाराचेन निपातितः ॥ ३१ ॥
मातङ्गो न्यपतद्भूमौ नदीरोध इवोष्णगे ।
तथैव रथिनं नागः क्षरन्गिरिरिवाऽरुजत् ॥ ३२ ॥
अभ्यतिष्ठत्पदा भूमौ सहाश्वं सहसारथिम् ।
शूरान्प्रहरतो दृष्ट्वा कृतास्त्रान्रुधिरोक्षितान् ॥ ३३ ॥

शान्त होगई और कायरोंका चित्त व्याकुल होने लगा। कितने ही रथी योद्धा रथचक्र उठाकर शत्रुओंसे युद्ध करने लगे और कितने ही योद्धा अवकाश पाकर गदासे एक दूसरेके शिरको तोडने लगे॥ (२५-२७)

उस द्वीपरहित युद्धसागरमें द्वीप प्राप्त करनेकी इच्छासे शूरवीर लोग आपसमें एक दूसरेके केशोंको आकर्षण करते हुए मुके, नख और दांतोंसे दारुण युद्ध करने लगे। किसीकी तलवार, किसीके धनुष बाण और किसी किसीकी भुजा अंकुशोंके सहित कटकर पृथ्वीमें गिरने लगीं॥ कोई कोई योद्धा एक दूसरेकी ओर क्रोधपूर्वक दौडते हीं अस्त्र त्यागकर रणभूमिसे भागने लगे॥ कितने ही पुरुष शूरवीरोंके शब्दहीको सुनकर भयभीत होगये; और कितने ही पुरुष शस्त्रोंसे अपने तथा शत्रुसेनाके पुरुषोंके शिरको काटने लगे॥ (२७-३१)

कितने ही पर्वतके शृङ्ग समान हाथी शूरवीर पुरुषोंके अस्त्रोंसे मरकर उष्ण ऋतुमें नदीके तीरके समान पृथ्वीमें गिर पडे। कितने ही पर्वतके समान मदचूते हुए हाथी अपने पावोंसे घोडे, सारथी और रथोंको चूर्ण करके पृथ्वीपर स्थित

पद्गनप्याविशन्मोहो भीरून्हृदयदुर्बलान् ।
सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ३४ ॥
सैन्येन रजसा ध्वस्तं निर्मर्यादमवर्त्तत ।
ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन् ॥ ३५ ॥
नित्याभित्वरितानेव त्वरयामास पाण्डवान् ।
कुर्वन्तः शासनं तस्य पाण्डवा बाहुशालिनः ॥ ३६ ॥
सरो हंसा इवाऽऽपेतुर्घ्नन्तो द्रोणरथं प्रति ।
गृह्णीताऽऽद्रवताऽन्योन्यं विभीता विनिकृन्तत ॥ ३७॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो दुर्धर्षस्य रथं प्रति ।
ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणी राजा जयद्रथः ॥ ३८ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यश्चैतानवारयन् ।
ते त्वार्यधर्मसंरब्धा दुर्निवारा दुरासदाः ॥ ३९ ॥
शरार्त्ता न जहुर्द्रोणं पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।

हुए। कृतास्त्र शूरवीरोंको रुधिर पूरित शरीरसे युक्त और अस्त्रोंको चलाते हुए देखकर कायरोंका चित्त भयसे कांपने लगा। जब सम्पूर्ण सेना वेगपूर्वक चारों ओर दौडने लगी, तब उसके पदके धक्केसे इतनी धूल उडी, उससे इधर उधर गमन करनेका मार्ग नहीं दीख पडता था; उस समय कुछ भी नहीं बोध होता था, ऐसे अवसरमें महा भयङ्कर उन्मत्तकी भांति संग्राम होने लगा॥ (३१–३५)

अनन्तर सेनापति धृष्टद्युम्नने अपनी सम्पूर्ण सेनाके शूरवीरोंसे कहा, कि यही द्रोणाचार्यके वधका समय उपस्थित हुआ है, इससे शीघ्रताके सहित सब कोई उनकी ओर दौडो। जैसे हंसोंका समूह सरोवरमें उतरता है, वैसे ही सेनापति धृष्टद्युम्नकी आज्ञा सुनकर सम्पूर्ण पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीर द्रोणाचार्यके रथके ऊपर अपने अस्त्र शस्त्रोंको चलाते हुए उनकी ओर दौडने लगे। पराक्रमी द्रोणाचार्यके रथके समीपमें आक्रमण करो, पकड लो, निर्भय चित्त होकर शत्रुओंको काटो,–इसी प्रकारके महा घोर शब्द सुनाई देने लगे। (३५–३८)

अनन्तर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, जयद्रथ, अवन्तिराज विन्द, अनुविन्द और शल्य अपने बाणोंकी वर्षासे उन सम्पूर्ण योद्धाओंको निवारण करने लगे॥ श्रेष्ठ क्षत्रिय धर्मके अनु-यायी युद्धसे पीछे न हटनेवाले पाण्डव

ततो द्रोणोऽतिसंक्रुद्धो विसृजञ्शतशः शरान् ॥ ४० ॥
चेदिपञ्चालपाण्डूनामकरोत्कदनं महत् ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे दिक्षु मारिष ॥ ४१ ॥
वज्रसंह्लादसङ्काशस्त्रासयन्मानवान्बहून् ।
एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्जित्वा संशप्तकान्बहून् ॥ ४२ ॥
अभ्यायात्तत्र यत्राऽसौ द्रोणः पाण्डून्प्रमर्दति ।
तान्शरौघान्महावर्त्ताञ्शोणितोदान्महाह्रदान्॥ ४३ ॥
तीर्णः संशप्तकान्हत्वा प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः ।
तस्य कीर्तिमतो लक्ष्म सूर्यप्रतिमतेजसः ॥ ४४ ॥
दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम् ।
संशप्तकसमुद्रं तमुच्छोष्यास्त्रगभस्तिभिः ॥ ४५ ॥
स पाण्डवयुगान्तार्कः कुरूनप्यभ्यतीतपत् ।
प्रददाह कुरून्सर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा ॥ ४६ ॥
युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः ।

और पाञ्चाल योद्धाओंने बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भी द्रोणाचार्यको नहीं परित्याग किया। अनन्तर द्रोणाचार्य अत्यन्त क्रुद्ध होकर सैकडों बाणोंकी वर्षा करके चेदि पाञ्चाल और पाण्डवों की सेनाके शूरवीर योद्धाओंका नाश करने लगे। हे राजेन्द्र! इन्द्रके वज्र समान उनके धनुषटङ्कार और तलत्राण का शब्द अनेक मनुष्योंको भयभीत करता हुआ चारों ओर सुनाई देने लगा। (३८-४१)

उस ही समय अर्जुन अनेक संशप्तक वीरोंको पराजित करके जहांपर द्रोणाचार्य युद्ध कर रहे थे, उसी स्थानपर उपस्थित हुए। अर्जुन युद्धमें अनेक संशप्तक योद्धाओंको मारकर बाणोंके वेगरूपी तरङ्गसे और रुधिररूपी जलसे युक्त महाह्रदको पार होकर पाण्डवोंकी सेनाका नाश करनेवाले द्रोणाचार्य के समीप दिखाई देने लगे। मैंने सूर्यके समान तेजस्वी कीर्त्तिमान् अर्जुनकी कपिध्वजाको अवलोकन किया॥ ४२-४५

वह अर्जुन प्रलय कालके सूर्यके समान प्रकाशित होकर अपने अस्त्रोंके प्रतापसे संशप्तक सेनारूपी समुद्रको शुष्क करके फिर कुरुसेनाके संमुख उपस्थित होकर सम्पूर्ण योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे पीडित करने लगे॥ जैसे प्रलय कालके समयमें धूमकेतु उदय होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म करता है, वैसे

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

[द्रोणपर्व ३]

महाभारत।

(भाषा–भाष्य–समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

तैय्यार हैं।

(१) आदिपर्व। पृष्ठ संख्या ११२५. मूल्य म. आ. से ६) रु.

(२) सभापर्व। पृष्ठ संख्या ३५६. मूल्य म. आ. से २) रु.

(३) वनपर्व। पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य म. आ. से ८) रु.

[४] विराटपर्व। पृष्ठ संख्या ३०६ मूल्य. म. आ. से १॥)

[५] उद्योगपर्व। पृष्ठ संख्या ९५३ मूल्य. म. आ. से. ५) रु.

[६] भीष्मपर्व। पृष्ठ संख्या ८०० मूल्य म० आ० से ४) रु.

[५] महाभारत की समालोचना।

१ प्रथम भाग मू.॥) वी. पी. से ॥=) आने। २ द्वितीय भाग मू.॥) वी. पी. से ॥=) आने।
महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६) रु. मूल्य होगा।
मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

तेन बाणसहस्रौघैर्गजाश्वरथयोधिनः ॥ ४७ ॥
ताड्यमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तकेशाः शरार्दिताः ।
केचिदार्त्तस्वनं चक्रुर्विनेशुरपरे पुनः ॥ ४८ ॥
पार्थबाणहताः केचिन्निपेतुर्विगतासवः ।
तेषामुत्पतितान्कांश्चित्पतितांश्च पराङ्मुखान् ॥ ४९ ॥
न जघानाऽर्जुनो योधान्योधव्रतमनुस्मरन् ।
ते विकीर्णरथाश्चित्राः प्रायशश्च पराङ्मुखाः ॥ ५० ॥
कुरवः कर्ण कर्णेति हाहेति च विचुक्रुशुः ।
तमाधिराधिराक्रन्दं विज्ञाय शरणैषिणाम् ॥ ५१ ॥
मा भैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोऽर्जुनम् ।
स भारतरथश्रेष्ठः सर्वभारतहर्षणः ॥ ५२ ॥
प्रादुश्चक्रे तदाऽऽग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ॥ ५३ ॥
शरौघाञ्शरजालेन विदुधाव धनञ्जयः ।

ही अर्जुन अपने अस्त्रोंके बलसे सम्पूर्ण कुरुसेनाके वीरोंको भस्म करने लगे । हाथी, गजपति, घुडसवार और पैदल चलने वाले योद्धा लोग खुले हुए केशके सहित अर्जुनके अस्त्र प्रभावसे मरके पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ (४५-४८)

अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर ही मनुष्य आर्त्तनाद करके रोदन करने लगे, और कितने ही योद्धा प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर पडे । जो लोग शीघ्रता पूर्वक भागने लगे और जो लोग पीडित होकर पृथ्वीमें गिरे तथा युद्धसे विमुख होने लगे उन लोगों के ऊपर अर्जुनने योद्धाओंके नियमको स्मरण करके प्रहार नहीं किया ॥ कितने ही योद्धाओंके रथ घोडे और हाथी इधर उधर छिन्न भिन्न होगये वे सब योद्धा हाहाकार शब्द करते हुए प्रायः कर्ण कर्ण कहके रोदन करने लगे ॥ (४८-५१)

कर्ण शरणकी इच्छा करने वाले कौरवोंके रुदनको सुनकर वेगपूर्वक उस ही ओर गमन करके उन सम्पूर्ण योद्धाओं से बोले, 'तुम लोगोंको कुछ भी भय नहीं है' ऐसा वचन कहके कर्ण अर्जुनके संमुख उपस्थित हुए । कुरुसेनाके बीच सम्पूर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रों-के जानने वाले महाधनुर्द्धारी कर्णने संपूर्ण योद्धाओंके हर्षको बढानेके निमित्त आग्नेयास्त्र चलाया । (५१-५३)

अर्जुनने अपने बाणोंके जालसे प्रकाश

तथैवाऽऽधिरथिस्तस्य बाणाञ्ज्वलिततेजसः ॥ ५४ ॥
अस्त्रमस्त्रेण संवार्य प्राणदद्विसृजञ्शरान्।
धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ५५ ॥
विव्यधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
अर्जुनास्त्रं तु राधेयः संवार्य शरवृष्टिभिः ॥ ५६ ॥
तेषां त्रयाणां चापानि चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः।
ते निकृत्तायुधाः शूरा निर्विषा भुजगा इव ॥ ५७ ॥
रथशक्तीः समुत्क्षिप्य भृशं सिंहा इवाऽनदन्।
ता भुजाग्रैर्महावेगा निसृष्टा भुजगोपमाः ॥ ५८ ॥
दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुराधिरथिं प्रति।
ता निकृत्य शरव्रातैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ५९ ॥
ननाद बलवान्कर्णः पार्थाय विसृजञ्शरान्।
अर्जुनश्चापि राधेयं विध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ६० ॥
कर्णादवरजं बाणैर्जघान निशितैः शरैः।
ततः शत्रुञ्जयं हत्वा पार्थः षड्भिरजिह्मगैः ॥ ६१ ॥

मान धनुष बाण धारण करने वाले कर्णके बाणोंको निवारण किया। कर्णने भी अपने बाणोंसे अर्जुनके प्रकाशमान बाणोंको निवारण किया और फिर अर्जुन के ऊपर झुण्डके झुण्ड बाणोंको चलाकर सिंहनाद करने लगे। तब महा रथ धृष्टद्युम्न, सात्यकि और भीमसेनने कर्णके समीप आकर अपने तीन तीन तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया। (५३–५६)

कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनके अस्त्रोंको निवारण करके फिर तीन बाणोंसे तीनों महारथियोंका धनुष काट दिया। वे तीनों महारथ योद्धा धनुष कटनेपर विषधारी सर्पके समान क्रुद्ध होगये। तब उन तीनों महारथियोंने अपने रथपरसे कर्णके ऊपर शक्ति चलाकर सिंहनाद किया। तेजसे जलती हुई सर्पके समान भयङ्कर शक्ति उन महारथियोंकी भुजासे छूटकर कर्णके संमुख चली॥ (५६–५९)

महा बलवान् कर्ण तीन तीन बाणोंसे उन तीनों शक्तियोंको काटकर अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके फिर सिंहनाद करने लगे। अर्जुनने भी सात बाणोंसे कर्णको विद्ध करके फिर तीन तीक्ष्ण बाणोंसे उनके कनिष्ठ भ्राताका वध किया। अनन्तर उसी समय अर्जुनने छः तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुञ्जयको मारकर फिर एक

जहार सद्यो भल्लेन विपाटस्य शिरो रथात् ।
पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणामेकेनैव किरीटिना ॥ ६२ ॥
प्रमुखे सूतपुत्रस्य सोदर्या निहतास्त्रयः ।
ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथाद्वैनतेयवत् ॥ ६३ ॥
वरासिना कर्णपक्षाञ्जघान दश पञ्च च ।
पुनस्तु रथमास्थाय धनुरादाय चाऽपरम् ॥ ६४ ॥
विव्याध दशभिः कर्णं सूतमश्वांश्च पञ्चभिः ।
धृष्टद्युम्नोऽप्यसिवरं चर्म चाऽऽदाय भास्वरम् ॥ ६५ ॥
जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रं च नैषधम् ।
ततः स्वरथमास्थाय पाञ्चाल्योऽन्यच्च कार्मुकम् ॥ ६६ ॥
आदाय कर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या नदन्रणे ।
शैनेयोऽप्यन्यदादाय धनुरिन्दुसमद्युतिः ॥ ६७ ॥
सूतपुत्रं चतुःषष्ट्या विध्वा सिंह इवाऽनदत् ।
भल्लाभ्यां साधु मुक्ताभ्यां छित्वा कर्णस्य कार्मुकम् ॥ ६८ ॥
पुनः कर्णं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ।
ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जयद्रथः ॥ ६९ ॥
निमज्जमानं राधेयमुज्जह्रुः सात्यकार्णवात् ।

बाणसे विपाटका शिर काटके रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया। इसी प्रकारसे अकेले अर्जुनने धृतराष्ट्रपुत्रों तथा कर्णके संमुखमें ही उसके तीन भाइयोंका संहार किया। (५९–६३)

अनन्तर भीमसेनने अपने रथसे गरुड पक्षीकी भांति कूदके कर्णकी ओरके दश योद्धाओंको तलवारसे काट डाला और फिर रथपर चढके दूसरा धनुष ग्रहण कर दश बाणोंसे कर्णको विद्ध कर के फिर पांच बाणोंसे उनके सारथी और रथके घोडोंको विद्ध किया। धृष्टद्युम्नने प्रकाशमान तलवार और ढाल ग्रहण करके निषधराज बृहत्क्षत्र और चन्द्रवर्माका वध किया। अनन्तर अपने रथपर चढके फिर दूसरा धनुष लेकर तिहत्तर बाणोंसे कर्णको विद्ध किया॥ (६३–६७)

चन्द्रके समान तेजस्वी सात्यकिने भी दूसरा धनुष ग्रहण करके चौसठ बाणोंसे कर्णको विद्ध करके सिंहनाद करने लगे। और तीन तीक्ष्ण बाणोंसे कर्णका धनुष काटकर तीन बाणोंसे कर्णकी भुजा और वक्षस्थल में प्रहार किया। अनन्तर

पत्त्यश्वरथमातङ्गास्त्वदीयाः शतशोऽपरे ॥ ७० ॥
कर्णमेवाऽभ्यधावन्त त्रास्यमानाः प्रहारिणः ।
धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोऽर्जुन एव च ॥ ७१ ॥
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुपू रणे ।
एवमेष महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम् ॥ ७२ ॥
तावकानां परेषां च त्यक्त्वा प्राणानभूद्रणः ।
पदातिरथनागाश्वा गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ ७३ ॥
रथिनो नागपत्त्यश्वै रथपत्ती रथद्विपैः ।
अश्वैरश्वा गजैर्नागा रथिनो रथिभिः सह ॥ ७४ ॥
संयुक्ताः समदृश्यन्त पत्तयश्चापि पत्तिभिः ।
एवं सुकलिलं युद्धमासीत्क्रव्यादहर्षणम् ॥
महद्भिस्तैरभीतानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ७५ ॥
ततो हता नररथवाजिकुञ्जरैरनेकशो द्विपरथपत्तिवाजिनः ।
गजैर्गजा रथिभिरुदायुधा रथा हयैर्हयाः पत्तिगणैश्च पत्तयः ॥ ७६ ॥

राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य और जयद्रथ ने सात्यकिरूप समुद्रमें डूबते हुए कर्ण का उद्धार किया। तुम्हारी सैकडों पत्ति, रथ, घोडे और हाथी स्वतः पीडित होकर भी शत्रुओंकी सेनाके शूरवीरोंको भयभीत करते हुए कर्ण की ओर से युधिष्ठिरकी सेनाके योद्धाओंको पीडित करते हुए रणभूमि में दौडने लगे ॥ (६७-७१)

तब धृष्टद्युम्न भीमसेन, अभिमन्यु, अर्जुन, नकुल और सहदेव आदि योद्धा सात्यकिकी रक्षा करने लगे। इसी प्रकारसे प्राण देनेका प्रण करके तुम्हारी सेनाके योद्धाओं और शत्रु सेनाके धनुर्धारी वीरोंका महाघोर विनाश करनेवाला दारुण युद्ध होने लगा। रथी, गजपति, घुडसवार और पैदल चलने वाले योद्धा लोग रथी गजारोही घुडसवार और पदाति सेनाके शूरवीरोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ अनन्तर रथी गजपतियोंसे, पैदल चलने वाले योद्धा घुडसवारोंसे, कितने ही रथी योद्धा पदाति सेनाके सङ्ग और कितने ही रथी घुडसवारोंके सङ्ग युद्ध करने लगे। इसी प्रकारसे दोनों सेनाके शूरवीरोंका महाघोर यमराजके राष्ट्रको बढानेवाला, मांसभक्षी प्राणियोंको आनंद देनेवाला दारुण संग्राम होने लगा। (७१-७५)

अनन्तर मनुष्य, रथ, हाथी और घोडोंसे कितने ही हाथी घुडसवार और

रथैर्द्विपा द्विरदवरैर्महाहया हयैर्नरा वररथिभिश्च वाजिनः ।
निरस्तजिह्वा दशनेक्षणाः क्षितौ क्षयं गताः प्रमथितवर्मभूषणाः ॥ ७७ ॥
तथाऽपरैर्बहुकरणैर्वरायुधैर्हता गताः प्रतिभयदर्शनाः क्षितिम् ।
विपोथिता हयगजपादताडिता भृशाकुला रथमुखनेमिभिः क्षताः॥७८॥
प्रमोदने श्वापदपक्षिरक्षसां जनक्षये वर्त्तति तत्र दारुणे ।
महाबलास्ते कुपिताः परस्परं निषूदयन्तः प्रविचेरुरोजसा ॥ ७९ ॥
ततो बले भृशलुलिते परस्परं निरीक्षमाणे रुधिरौघसम्प्लुते ।
दिवाकरेऽस्तं गिरिमास्थिते शनैरुभे प्रयाते शिबिराय भारत ८०॥ १४५९

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
द्वितीयदिवसावहारे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ समाप्तं च संशप्तकवधपर्व ।

पैदल चलनेवाले योद्धा मरकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ हाथीसे हाथी, घोडोंसे घोडे और पदाति सेनाके योद्धाओंसे पैदल योद्धा लोग शस्त्र ग्रहण करके युद्ध करते हुए एक दूसरेके अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ! रथियोंके अस्त्रोंसे कितने ही मतवारे हाथी, कितने ही बडे बडे मतवारे हाथीयोंसे सुन्दर घोडे, घोडोंसे मनुष्य और कितने ही रथियोंके अस्त्रोंसे घुडसवारोंकी सेना मरकर पृथ्वीमें गिरने लगी । (७६-७७)

किसीके दांत,किसीकी जीभ,किसीके नेत्र बाहर निकले हुए भयङ्कर दीखने लगे। कितने ही योद्धाओंके कवच और भूषण कटके पृथ्वीमें गिर पडे। बहुतेरे योद्धा नाना भांतिके तीक्ष्ण अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीमें पडे हुए भयङ्कर बोध होते थे। कितने ही शूरवीर योद्धा हाथी और घोडोंके पांवोंके धकेसे पृथ्वीमें गिर पडते थे और फिर उठकर युद्ध करते हुए दिखाई देते थे। कितने ही योद्धा टूटे हुए रथके काठ, कितने ही योद्धा घोडोंके खुर और कितने ही रथके चकेसे क्षत-विक्षत शरीर होकर अत्यन्त ही व्याकुल होगये ॥ (७७-७८)

उस महा भयंकर अनेक श्वापद, पक्षि और राक्षसोंके हर्षको बढानेवाले मनुष्योंके नाशरूपी घोर युद्धमें महाबलवान् शूरवीर योद्धा लोग कुपित होकर आपसमें एक दूसरेका वध करते हुए रणभूमिमें भ्रमण करने लगे॥ हे भारत ! अनन्तर सूर्यके अस्त होनेपर दोनों ओरकी सेना अत्यन्त ही पीडित और रुधिरपूरित होकर आपसमें एक दूसरेकी ओर देखती हुई अपने अपने शिबिरोंकी ओर धीरे धीरे गमन करने लगीं ॥ (७९-८०)

द्रोणपर्वमें बत्तीस अध्याय और
संशप्तकवधपर्व समाप्त । [१४५९]

३ अभिमिमन्युवधपर्वं ।

सञ्जय उवाच– पूर्वमस्मासु भग्नेषु फाल्गुनेनाऽमितौजसा ।
द्रोणे च मोघसङ्कल्पे रक्षिते च युधिष्ठिरे ॥ १ ॥
सर्वे विध्वस्तकवचास्तावका युधि निर्जिताः ।
रजस्वला भृशोद्विग्ना वीक्षमाणा दिशो दश ॥ २ ॥
अवहारं ततः कृत्वा भारद्वाजस्य सम्मते ।
लब्धलक्षैः शरैर्भिन्ना भृशावहसिता रणे ॥ ३ ॥
श्लाघमानेषु भूतेषु फाल्गुनस्याऽमितान्गुणान् ।
केशवस्य च सौहार्दे कीर्त्यमानेऽर्जुनं प्रति ॥ ४ ॥
अभिशस्ता इवाऽभूवन्ध्यानमूकत्वमास्थिताः ।
ततः प्रभातसमये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥
प्रणयादभिमानाच्च द्विषद्वृद्ध्या च दुर्मनाः ।
शृण्वतां सर्वयोधानां संरब्धो वाक्यकोविदः ॥ ६ ॥
नूनं वयं वध्यपक्षे भवतो द्विजसत्तम ।
तथा हि नाऽग्रहीः प्राप्तं समीपेऽद्य युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥

द्रोणपर्वमें तैंतिस अध्याय और अभिमन्युवधपर्व ।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! महातेजस्वी अर्जुनके अस्त्रोंसे पीडित होकर जब हम लोग युद्धभूमिमें पराजित हुए और युधिष्ठिरके रक्षित होनेसे द्रोणाचार्यका सङ्कल्प निष्फल हुआ। तब तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग अस्त्रधारी शत्रु सेनाके योद्धाओंसे अत्यन्त पीडित होकर ध्वजा और कवचसे रहित होगये, और चारों ओर अन्धकार उपस्थित होते देखकर द्रोणाचार्यकी आज्ञाके अनुसार युद्धसे निवृत्त हुए। अनन्तर बहुतेरे पुरुष अर्जुनके गुणोंकी प्रशंसा और कृष्णके सङ्ग उनके सुहृद् भावकी कथा वर्णन करते हुए गमन करने लगे। उससे तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण-योद्धा मानो शापग्रस्त की भांति अत्यन्त ही चिन्ता करने लगे। उनके मुखसे वचन बाहर नहीं निकलता था। (१–५)

तिसके अनन्तर प्रातःकालमें वाक्य-विशारद राजा दुर्योधन शत्रुओंकी वृद्धि देखकर दुःखित और क्रुद्ध होके सम्पूर्ण योद्धाओंके संमुखही में प्रीति और अभिमानके सहित द्रोणाचार्यसे यह वचन बोले, हे द्विजसत्तम ! हम लोग अवश्य ही तुम्हारे वध्य पक्ष हुए हैं, क्योंकि तुमने युधिष्ठिरको अपने समीपमें पाकर

इच्छतस्ते न मुच्येत चक्षुःप्राप्तो रणे रिपुः ।
जिघृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥
वरं दत्वा मम प्रीतः पश्चाद्विकृतवानसि ।
आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्याऽऽर्याः कथञ्चन ॥ ९ ॥
ततोऽप्रीतस्तथोक्तः सन्भारद्वाजोऽब्रवीन्नृपम् ।
नाऽर्हसे मां तथा ज्ञातुं घटमानं तव प्रिये ॥ १० ॥
ससुरासुरगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
नाऽलं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना ॥ १० ॥
विश्वसृग्यत्र गोविन्दः पृतनानीस्तथाऽर्जुनः ।
तत्र कस्य बलं क्रामेदन्यत्र त्र्यम्बकात्प्रभोः ॥ १२ ॥
सत्यं तात ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
अद्यैकं प्रवरं कञ्चित्पातयिष्ये महारथम् ॥ १३ ॥
तं च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि ।
योगेन केनचिद्राजन्नर्जुनस्त्वपनीयताम् ॥ १४ ॥

भी ग्रहण नहीं किया । यदि तुम युद्ध-भूमिमें शत्रुको ग्रहण करनेकी इच्छा करो, तो वह पुरुष देवताओंके सहित पाण्डवोंसे रक्षित होकर भी तुम्हारे नेत्रके सामने आकर कदापि मुक्त नहीं हो सकता। श्रेष्ठ पुरुष किसी प्रकारसे भी अपने भक्तोंकी आशा भङ्ग नहीं करते; परन्तु तुमने प्रीतिपूर्वक मुझे वर प्रदान करके फिर अन्यथा आचरण किया है। (५-९)

द्रोणाचार्य राजा दुर्योधनका ऐसा वचन सुनकर अत्यन्त खिन्न होके उनसे बोले, महाराज ! मैं सदा तुम्हारे प्रियकार्योंको करने ही की चेष्टा करता रहता हूं, तुम मुझको अन्यथाचारी मत समझो॥ अर्जु-न जिसकी रक्षा करते हैं, उसको देवता असुर, यक्ष, राक्षस, सर्प और गन्धर्व आदि भी युद्धमें नहीं जीत सकते ॥ जहांपर जगत्कर्त्ता गोविन्द और अर्जुन सेनाकी रक्षा करते हैं; वहांपर देवोंके देव महादेवके अतिरिक्त और किसीकी सामर्थ्य है, कि वहांपर अपने पराक्रमको प्रकाशित कर सके ? ॥ (१०-१२)

हे तात ! मैं सत्य वचन कहता हूं यह कदापि अन्यथा न होगा; आज उन लोगों के एक प्रधान महारथ का वध करूंगा ॥ हे राजन् ! मैं आज एक ऐसे व्यूहकी रचना करूंगा, कि देवताओंको भी उस व्यूहको भेद करने की सामर्थ्य नहीं; परन्तु आप लोग किसी उपायसे

न ह्यज्ञातमसाध्यं वा तस्य संख्येऽस्ति किञ्चन।
तेन ह्युपात्तं सकलं सर्वज्ञानमितस्ततः ॥ १५ ॥
द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तकगणाः पुनः।
आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १६ ॥
ततोऽर्जुनस्याऽथ परैः सार्धं समभवद्रणः।
तादृशो यादृशो नाऽन्यः श्रुतो दृष्टोऽपि वा क्वचित् ॥१७॥
तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन्व्यरोचत।
चरन्मध्यन्दिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः ॥ १८ ॥
तं चाऽभिमन्युर्वचनात्पितुर्ज्येष्ठस्य भारत।
बिभेद दुर्भिदं संख्ये चक्रव्यूहमनेकधा ॥ १९ ॥
स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान्सहस्रशः।
षट्सु वीरेषु संसक्तो दौःशासनिवशङ्गतः ॥ २० ॥
सौभद्रः पृथिवीपाल जहौ प्राणान्परन्तपः।
वयं परमसंहृष्टाः पाण्डवाः शोककर्शिताः।
सौभद्रे निहते राजन्नवहारमकुर्महि ॥ २१ ॥

अर्जुन को उन लोगोंके समीपसे हटाकर अन्यस्थानमें ले जाइये॥ क्योंकि युद्धका कोई कर्म भी उससे असाध्य वा अज्ञात नहीं है यह दिव्य और समस्त मानुषिक अस्त्र शस्त्रोंको जानता है। (१३–१५)

हे राजन्! जब द्रोणाचार्यने ऐसा वचन कहा तब फिर संशप्तक योद्धाओंने दक्षिण ओर अर्जुनको पुनर्वार युद्धके निमित्त आवाहन किया॥ अनन्तर संशप्तक वीरोंके सङ्ग अर्जुनका ऐसा युद्ध होने लगा, कि जैसा युद्ध पहिले कभी न मैंने देखा और न सुना ही था॥ इधर जैसें शरत्कालके मध्यान्ह समयमें भगवान् सूर्य अत्यन्त प्रचण्ड होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने तेजसे तपाके भस्म कर देते हैं, वैसे ही द्रोणाचार्यने भी प्रकाशमान चक्रव्यूहकी रचना की॥ (१६–१८)

हे भारत! अभिमन्यु ने राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे कठिनाईसे भेद होने योग्य उस चक्रव्यूहको अपने पराक्रमके अनुसार भेद किया था॥ वह बहुत ही कठिन कर्म करके तथा सहस्रों शूरवीर पुरुषोंका वध करके अन्त में छः महा रथियों की सहायतासे दुःशासन पुत्रके वशवर्ती होकर युद्धमें मारा गया॥ अभिमन्युके मरनेसे पाण्डव लोग शोकसे अत्यन्त ही व्याकुल हुए, और हम

धृतराष्ट्र उवाच—पुत्रं पुरुषसिंहस्य सञ्जयाऽप्राप्तयौवनम् ।
रणे विनिहतं श्रुत्वा भृशं मे दीर्यते मनः ॥ २२ ॥
दारुणः क्षत्रधर्मोऽयं विहितो धर्मकर्तृभिः ।
यत्र राज्येप्सवः शूरा बाले शस्त्रमपातयन् ॥ २३ ॥
बालमत्यन्तसुखिनं विचरन्तमभीतवत् ।
कृतास्त्रा बहवो जघ्नुर्ब्रूहि गावल्गणे कथम् ॥ २४ ॥
बिभित्सता रथानीकं सौभद्रेणाऽमितौजसा ।
विक्रीडितं यथा संख्ये तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २५ ॥
सञ्जय उवाच— यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सौभद्रस्य निपातनम् ।
तत्ते कार्त्स्न्येन वक्ष्यामि शृणु राजन्समाहितः ॥ २६ ॥
विक्रीडितं कुमारेण यथाऽनीकं बिभित्सता ।
आरुग्णाश्च यथा वीरा दुःसाध्याश्चापि विप्लवे ॥ २७ ॥
दावाग्न्यभिपरीतानां भूरिगुल्मतृणद्रुमे ।

लोग परम आनन्दित होकर उस दिन युद्धसे निवृत्त हुए ॥ (१९-२१)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! पुरुषसिंह अर्जुनपुत्र सुकुमार अभिमन्यु-का वध सुनकर मेरा चित्त अत्यन्त ही दुःखित हो रहा है ॥ धर्मशास्त्र बनानेवाले पण्डितोंने इस क्षत्रिय धर्मको महा अनर्थ का मूल करके सिद्ध किया है; जिस धर्मके आश्रयसे राज्यकी अभिलाषा करके शूरवीर योद्धाओंने बालकके ऊपर शस्त्र चलाया ॥ हे सञ्जय ! अभिमन्यु अत्यन्त ही सुखी बालक था, वह निर्भय चित्तवाले योद्धाओंकी भांति जब रण भूमिमें भ्रमण कर रहा था, तब बहुतसे योद्धाओंने मिलकर किस प्रकारसे उसका वध किया ? और महातेजस्वी उस बालक होने किस प्रकारसे रथ सेनाको भेद करके युद्धकी इच्छासे रणभूमिमें क्रीडा की थी ? वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो । (२२-२५)

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! तुमने अभि-मन्युके वधके विषयमें मुझसे जो कुछ प्रश्न किया है ? और कुमार अभिमन्युने सेनाको भेद करनेकी इच्छासे रणभूमिमें क्रीडा करते हुए महापराक्रमी वीरोंको जिस प्रकारसे पीडित किया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तुम्हारे निकट में विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं, तुम भली भांतिसे चित्त लगाकर सुनो ॥ जिस प्रकारसे बहुतसे तृण, गुल्म और वृक्षोंसे युक्त वनमें दावाग्निके लगनेसे सम्पूर्ण वनवासी जीवजन्तु भयभीत होजाते हैं,

वनौकसामिवाऽरण्ये त्वदीयानामभूद्भयम् ॥ २८ ॥ [१४८७]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधसंक्षेपकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

सञ्जय उवाच— समरेऽत्युग्रकर्माणः कर्मभिर्व्यञ्जितश्रमाः।
सकृष्णाः पाण्डवाः पञ्च देवैरपि दुरासदाः ॥ १ ॥
सत्त्वकर्मान्वयैर्बुद्ध्या कीर्त्या च यशसा श्रिया।
नैव भूतो न भविता नैव तुल्यगुणः पुमान् ॥ २ ॥
सत्यधर्मरतो दान्तो विप्रपूजादिभिर्गुणैः।
सदैव त्रिदिवं प्राप्तो राजा किल युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
युगान्ते चाऽन्तको राजञ्जामदग्न्यश्च वीर्यवान्।
रथस्थो भीमसेनश्च कथ्यन्ते सदृशास्त्रयः ॥ ४ ॥
प्रतिज्ञाकर्मदक्षस्य रणे गाण्डीवधन्वनः।
उपमां नाऽधिगच्छामि पार्थस्य सदृशीं क्षितौ ॥ ५ ॥
गुरुवात्सल्यमत्यन्तं नैभृत्यं विनयो दमः।
नकुलेऽप्रातिरूप्यं च शौर्यं च नियतानि षट् ॥ ६ ॥
श्रुतगाम्भीर्यमाधुर्यसत्त्वरूपपराक्रमैः।

इसी भांतिसे अभिमन्युके आक्रमणके समयमें तुम्हारी सेनाके शूरवीर योद्धा लोग भयभीत होगये थे॥ (२६–२८)

द्रोणपर्वमें तैंतीस अध्याय समाप्त। [१४८०]

द्रोणपर्वमें चौतीस अध्याय।

सञ्जय बोले; हे भारत ! कृष्ण और पांचों पाण्डव युद्धमें अत्यन्त प्रचण्ड कर्मोंके करनेवाले और देवतोंसे भी न जीते जाने योग्य हैं; उनका परिश्रम समर्थ कर्मसे ही प्रसिद्ध है ॥ पराक्रम, कर्म, अन्वय, बुद्धि, कीर्त्ति, यश और श्री, इन सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त महात्मा कृष्णके समान न कोई पुरुष पहिले हुआ और न भविष्यहीमें होगा॥ सत्य कर्ममें निष्ठावान् धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर विप्रपूजा आदि गुणोंसे सदा सर्वदा स्वर्ग प्राप्त करनेहीके योग्य हैं॥ (१–३)

प्रलय कालके यमराज, महापराक्रमी परशुराम और रथस्थित भीमसेन, —ये तीनों ही समान रूपसे वर्णन किये गये हैं॥ सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले तथा गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनकी उपमा इस पृथ्वी पर नहीं मिल सकती॥ नकुलमें अत्यन्त ही गुरुभक्ति, धीरज, विनय, दम, सुरूपता और वीरता ये छहों गुण सदासर्वदा विराजमान रहते हैं॥ (४—६)

वीर सहदेव शास्त्रके ज्ञान, गम्भीरता

सदृशो देवयोर्वीरः सहदेवः किलाऽश्विनोः ॥ ७ ॥
ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः पाण्डवेषु च ये गुणाः ।
अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसञ्चयाः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च ।
कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥ ९ ॥
धनञ्जयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च ।
विनयात्सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च ॥ १० ॥
धृतराष्ट्र उवाच—अभिमन्युमहं सूत सौभद्रमपराजितम् ।
श्रोतुमिच्छामि कार्त्स्न्येन कथमायोधने हतः ॥ ११ ॥
सञ्जय उवाच— स्थिरो भव महाराज शोकं धारय दुर्धरम् ।
महान्तं बन्धुनाशं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ १२ ॥
चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाऽभिकल्पितः ।
तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः ॥ १३ ॥
आरास्थानेषु विन्यस्ताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
सङ्घातो राजपुत्राणां सर्वेषामभवत्तदा ॥ १४ ॥
कृताभिसमयाः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ।

माधुर्य, सत्य, रूप और पराक्रममें दोनों अश्विनीकुमारोंके समान हैं। कृष्ण और पाण्डवोंमें जो कुछ गुण हैं, अभिमन्युमें भी वे सम्पूर्ण गुण विद्यमान थे ॥ अभिमन्यु, धीरज धारण करनेमें युधिष्ठिर, चरित्रोंमें कृष्ण, बलमें भीमसेन और रूप, पराक्रम, शस्त्र तथा अस्त्रोंके ज्ञानमें अर्जुन और विनयमें नकुल और सहदेवके समान था। ७-१०

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! अपराजित अभिमन्यु किस प्रकारसे युद्धभूमिमें मारा गया ? इस वृत्तान्तको विस्तारपूर्वक सुननेकी मुझे अत्यन्त ही इच्छा है ॥ (११)

सञ्जय बोले, महाराज ! मैं तुम्हारे समीपमें यह तुम्हारे बन्धु बान्धवोंका नाश होनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, तुम शोक मत करो, चित्त लगाकर मेरे वचनोंको सुनो ॥ हे राजेन्द्र ! अब द्रोणाचार्यने चक्र-व्यूहकी रचना की उसमें इन्द्रके समान पराक्रमी राजा लोग यथास्थानमें स्थित और महातेजस्वी राजपुत्र लोग जगह जगह नियत किये गये; उस समय सम्पूर्ण राजा वा राजपुत्र उस चक्रव्यूहमें इकट्ठे हुए ॥ (१२-१४)

सुवर्ण निर्मित ध्वजासे युक्त, लाल

रक्ताम्बरधराः सर्वे सर्वे रक्तविभूषणाः ॥ १५ ॥
सर्वे रक्तपताकाश्च सर्वे वै हेममालिनः ।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गाः स्रग्विणः सूक्ष्मवाससः ॥ १६ ॥
सहिताः पर्यधावन्त कार्ष्णिं प्रति युयुत्सवः ।
तेषां दशसहस्राणि बभूवुर्दृढधन्विनाम् ॥ १७ ॥
पौत्रं तव पुरस्कृत्य लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
अन्योन्यसमदुःखास्ते अन्योन्यसमसाहसाः ॥ १८ ॥
अन्योन्यं स्पर्धमानाश्च अन्योन्यस्य हिते रताः ।
दुर्योधनस्तु राजेन्द्र सैन्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ १९ ॥
कर्णदुःशासनकृपैर्वृतो राजा महारथैः ।
देवराजोपमः श्रीमाञ्श्वेतच्छत्राभिसंवृतः ॥ २० ॥
चामरव्यजनाक्षेपैरुद्यन्निव भास्करः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोऽवस्थितनायकः ॥ २१ ॥
सिन्धुराजस्तथाऽतिष्ठच्छ्रीमान्मेरुरिवाऽचलः ।
सिंधुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरोगमाः ॥ २२ ॥

अम्बर धारण किये, लाल भूषणोंसे भूषित लालवर्णकी पताकाके सहित सुवर्णकी माला धारण करनेवाले, चन्दन चर्चित शरीरमें फूलोंकी माला और सूक्ष्मवस्त्र पहिने हुए सम्पूर्ण योद्धा लोग एक ही समयमें कृतप्रतिज्ञ और युद्धके निमित्त उत्सुक होकर एकबारही अभिमन्युकी ओर दौडे। उन लोगोंके बीचसे दश हजार धनुर्द्धारियोंने तुम्हारे पौत्र लक्ष्मणको आगे करके अभिमन्युकी ओर गमन किया। (१५-१८)

वे सब ही युद्धभूमिमें परस्पर समदुःखी, तुल्य साहसी, पराक्रमी, दीखनेमें स्पर्धावाले, और एक दूसरेके हितकार्यमें तत्पर थे। हे राजेन्द्र ! राजा दुर्योधन उस व्यूहके बीच महारथ कर्ण कृपाचार्य और दुःशासनके सङ्ग सेनाके सहित स्थित होकर ऐसे शोभित हुए, जैसे देवतोंके बीचमें इन्द्र शोभायमान लगते हैं। उसके दोनों तरफ श्वेत चंवर और शिरके ऊपर सफेद छाता लगाया गया; अनन्तर राजा दुर्योधन उस सेनाके बीच में सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे। उस व्यूहके मुखस्थलपर सेनापति द्रोणाचार्य और पराक्रमी सिन्धु राज जयद्रथ सुमेरु पर्वतकी भांति शोभने लगे। (१८-२२)

हे राजेन्द्र ! देवताओंके समान तुम्हारे तीस पुत्र अश्वत्थामाको आगे

सुतास्तव महाराज त्रिशत्त्रिदशसन्निभाः ।
गान्धारराजः कितवः शल्यो भूरिश्रवास्तथा ॥ २३ ॥
पार्श्वतः सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः ।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २४ ॥
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ २५ ॥[१५१२]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि चक्रव्यूहनिर्माणे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

सञ्जय उवाच— तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम् ।
पार्थाः समभ्यवर्त्तन्त भीमसेनपुरोगमाः ॥ १ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महारथः ॥ २ ॥
आर्जुनिः क्षत्रधर्मा च बृहत्क्षत्रश्च वीर्यवान् ।
चेदिपो धृष्टकेतुश्च माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः ॥ ३ ॥
युधामन्युश्च विक्रान्तः शिखण्डी चाऽपराजितः ।
उत्तमौजाश्च दुर्धर्षो विराटश्च महारथः ॥ ४ ॥
द्रौपदेयाश्च संरब्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान् ।
केकयाश्च महावीर्याः सृञ्जयाश्च सहस्रशः ॥ ५ ॥
एते चाऽन्ये च सगणाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।

करके सिन्धुराज जयद्रथके दाहिनी ओर स्थित हुए । गान्धारराज मायावी शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा जयद्रथके बांई ओर स्थित हुए। अनन्तर मृत्युही इस युद्धसे निवृत्त होनेका उपाय है, ऐसा विचारकर तुम्हारी सेना और शत्रुओंकी ओरके शूरवीरोंका महा भयङ्कर रोएंको खडा करनेवाला युद्ध होने लगा। (२२-२५) [१५१२]

द्रोणपर्वमें चौंतीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें पैंतीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, भीमसेनको आगे करके पाण्डव लोग द्रोणाचार्यसे रक्षित व्यूहबद्ध कुरुसेनाकी ओर दौडे ॥ सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, पराक्रमी कुन्तिभोज, महारथ द्रुपद, अर्जुनपुत्र क्षत्रधर्मा, बृहत्क्षत्र, पराक्रमी चेदिराज, धृष्टकेतु, नकुल, सहदेव, घटोत्कच, युधामन्यु, पराक्रमसे युक्त अपराजित शिखण्डी, महाबली उत्तमौजा, महारथ विराट, द्रौपदीके पांचों पुत्र और शिशुपालपुत्र आदि पराक्रमी राजा लोग सहस्रों युद्धविद्याके जाननेवाले अस्त्रशस्त्रोंके प्रहारमें निपुण योद्धाओं सहित द्रोणाचार्यकी

समभ्यधावन्सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः ॥ ६ ॥
समीपे वर्त्तमानांस्तान्भारद्वाजोऽनिवीर्यवान्।
असम्भ्रान्तः शरौघेण महता समवारयत् ॥ ७ ॥
महौघः सलिलस्येव गिरिमासाद्य दुर्भिदम्।
द्रोणं ते नाऽभ्यवर्त्तन्त वेलामिव जलाशयाः ॥ ८ ॥
पीड्यमानाः शरै राजन्द्रोणचापविनिःसृतैः।
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः ॥ ९ ॥
तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्य भुजयोर्बलम्।
यदेनं नाऽभ्यवर्त्तन्त पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ॥ १० ॥
तमायान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः।
बहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणम् ॥ ११ ॥
अशक्यं तु तमन्येन द्रोणं मत्वा युधिष्ठिरः।
अविषह्यं गुरुं भारं सौभद्रे समवासृजत् ॥ १२ ॥
वासुदेवादनवरं फाल्गुनाच्चाऽमितौजसम्।
अब्रवीत्परवीरघ्नमभिमन्युमिदं वचः ॥ १३ ॥

ओर दौडे ॥ (१-६)

पराक्रमी द्रोणाचार्य भी अपना प्रचण्ड धनुष चढाकर बाणोंकी वर्षा करके उन सम्पूर्ण समीप स्थित राजाओंको उस युद्धसे निवारण करने लगे ॥ (७)

जैसे जलका प्रचण्ड प्रवाह अभेद पर्वत वा समुद्रके प्रबल वेगका प्रवाह तटके अगाडी नहीं जा सकता, वैसे ही वे सम्पूर्ण राजा लोग द्रोणाचार्यके समीप पहुंचकर आगे न बढ सके॥ हे राजेन्द्र! पाण्डव और सृञ्जय द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर संमुखमें न ठहर सके। उस समय में मैंने द्रोणाचार्यका यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि पाञ्चालयोद्धा सृञ्जयोंके सहित एकत्र होकर भी उनके सम्मुखमें खडे न हो सके ॥ (८-१०)

राजा युधिष्ठिरने उस संग्रामभूमिमें युद्धके निमित्त उपस्थित हुए अत्यन्त क्रुद्ध द्रोणाचार्यको देखकर उनको निवारण करनेके विषयमें नाना प्रकारसे चिन्ता करने लगे ॥ अनन्तर द्रोणाचार्यको दूसरा कोई भी निवारण नहीं कर सकेगा, ऐसा विचारकर कृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी अभिमन्युके ऊपर इस असह्य तथा अत्यन्त कठिन युद्धके भारको अर्पित किया॥ (११-१३)

एत्य नो नाऽर्जुनो गर्हेद्यथा तात तथा कुरु ।
चक्रव्यूहस्य न वयं विद्मो भेदं कथञ्चन ॥ १४ ॥
त्वं वाऽर्जुनो वा कृष्णो वा भिन्द्यात्प्रद्युम्न एव वा ।
चक्रव्यूहं महाबाहो पञ्चमो नोपपद्यते ॥ १५ ॥
अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि ।
पितॄणां मातुलानां च सैन्यानां चैव सर्वशः ॥ १६ ॥
धनञ्जयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात् ।
क्षिप्रमस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशातय ॥ १७ ॥
अभिमन्युरुवाच– द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकप्रवरं युधि ।
पितॄणां जयमाकांक्षन्नवगाहेऽविलम्बितम् ॥ १८ ॥
उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीकविशातने ।
नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं कस्यांश्चिदापदि ॥ १९ ॥
युधिष्ठिर उवाच– भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
वयं त्वाऽनुगमिष्यामो येन त्वं तात यास्यसि॥ २० ॥

वह शत्रुनाशन पराक्रमी अभिमन्युसे बोले, हे तात ! चक्रव्यूह किस प्रकारसे भेद किया जाता है, उसे हम लोग नहीं जानते हैं; इससे जिसमें अर्जुन आकर हम लोगोंकी निन्दा न करें, तुम वैसा ही उपाय करो। हे तात! अर्जुन, कृष्ण, प्रद्युम्न, और तुम,–यही चार पुरुषोंके अतिरिक्त कोई भी बलवान् योद्धा चक्र व्यूहको भेद करनेमें समर्थ नहीं है॥ हे तात ! तुम अपने पितृकुल, मातृकुल, और इन सम्पूर्ण योद्धाओंके मनोरथको पूर्ण करो ॥ तुम शीघ्रही अस्त्र ग्रहण करके द्रोणाचार्यकी सेनाका नाश करो, ऐसा होनेसे ही अर्जुन संशप्तक योद्धाओंके युद्धसे लौटकर हम लोगोंकी निन्दा नहीं कर सकेंगे ॥ (१४–१७)

अभिमन्यु बोले, मैं युद्धभूमिमें आप लोगोंकी विजयके निमित्त द्रोणाचार्यकी सेनाका महा प्रचण्ड और दृढ चक्रव्यूह भेद करूंगा ॥ परन्तु पिताने मुझे केवल उसे भेद करनेहीकी युक्ति सिखाई है; उस व्यूहसे बाहर होनेका उपदेश नहीं दिया है। इससे यदि वहांपर कोई आपद उपस्थित होगी,तो मैं उस व्यूहके भीतरसे निकल नहीं सकूंगा॥ १७–१९

राजा युधिष्ठिर बोले, हे तात ! हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! तुम उस सेनाके व्यूह को तोडके हम लोगोंके प्रवेश करनेका मार्ग बना दो; तुम जिस मार्गसे गमन करोगे, हम लोग भी उस ही मार्गसे

धनञ्जयसमं युद्धे त्वां वयं तात संयुगे ।
प्रणिधायाऽनुयास्यामो रक्षन्तः सर्वतोमुखाः ॥ २१ ॥

भीम उवाच— अहं त्वाऽनुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ।
पञ्चालाः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः ॥२२ ॥
सकृद्भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः ।
वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान्वरान् ॥ २३ ॥

अभिमन्युरुवाच– अहमेतत्प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम् ।
पतङ्ग इव संक्रुद्धो ज्वलितं जातवेदसम् ॥ २४ ॥
तत्कर्माऽद्य करिष्यामि हितं यद्वंशयोर्द्वयोः ।
मातुलस्य च यत्प्रीतिं करिष्यति पितुश्च मे ॥ २५ ॥
शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि सङ्घशः ।
द्रक्ष्यन्ति सर्वभूतानि द्विषत्सैन्यानि वै मया ॥ २६ ॥
नाऽहं पार्थेन जातः स्यां न च जातः सुभद्रया ।
यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाऽद्य मुच्यते ॥ २७ ॥
यदि चैकरथेनाऽहं समग्रं क्षत्रमण्डलम् ।

तुम्हारे पीछे पीछे गमन करेंगे ॥ हे पुत्र ! तुम युद्धमें अर्जुनके समान हो, इससे हम लोग तुम्हारे अनुगामी बनकर तुम्हारी रक्षा करते हुए शत्रुसेनाके शूरवीरोंसे युद्ध करेंगे ॥ (२०–२१)

भीमसेन बोले, मैं,धृष्टद्युम्न,सात्यकि, पाञ्चाल,केकय, मत्स्य और सब प्रभद्रक योद्धा इत्यादि;–हम सब लोग तुम्हारे पीछे पीछे चलैंगे ॥ तुम एक बेर व्यूह को भेद करके जिस मार्गसे गमन करोगे, हम लोग उस ही मार्गमें मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध करके उन स्थलोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश कर देंगे ॥ (२२–२३)

अभिमन्यु बोले, जैसे पतङ्ग जलती हुई अग्निमें प्रवेश करते हैं,वैसेही आज मैं क्रुद्ध होकर इस दुर्गम शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करूंगा । आज मैं पितृ और मातृबंशके हित कर और पिता तथा मामाके प्रीतिजनक कर्मका अनुष्ठान करूंगा ॥ मैं बालक हूं, परन्तु आज सम्पूर्ण प्राणी झुण्डके झुण्ड शत्रुसेनाके शूरवीरोंको मेरे अस्त्रशस्त्रोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीमें गिरे हुए देखेंगे ॥ मेरे युद्धमें यदि आज कोई पुरुष मुझसे युद्ध करके जीवित मुक्त हो सके तो मैं पिता अर्जुन और माता सुभद्राका पुत्र ही नहीं हूं ॥ यदि आज मैं अकेलेही एक रथपर चढके सम्पूर्ण

न करोम्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥ २८ ॥

युधिष्ठिर उवाच– एवं ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धताम् ।
यत्समुत्सहसे भेत्तुं द्रोणानीकं दुरासदम् ॥ २९ ॥
रक्षितं पुरुषव्याघ्रैर्महेष्वासैर्महाबलैः ।
साध्यरुद्रमरुत्तुल्यैर्वस्वग्न्यादित्यविक्रमैः ॥ ३० ॥

सञ्जय उवाच— तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स यन्तारमचोदयत् । ॥ ३१ ॥
सुमित्राऽश्वान्रणे क्षिप्रं द्रोणानीकाय चोदय॥ ३२ ॥[१५४४]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां द्रोणपर्वण्यभिमन्युवधपर्वण्यभिमन्युप्रतिज्ञायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सञ्जय उवाच— सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।
अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ १ ॥
तेन सञ्चोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः ।
प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २ ॥
अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः ।
सम्प्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ॥ ३ ॥

क्षत्रियोंको युद्धमें तितरबितर न करूं, तो मैं अर्जुनका पुत्रही नहीं हूं॥ (२४–२८)

राजा युधिष्ठिर बोले, हे सुभद्रानन्दन! तुम साध्य, रुद्र, वायु, वसु, अग्नि और आदित्यके समान पराक्रमसे युक्त, महा-धनुर्धर, महाबली पुरुषसिंहोंसे रक्षित दुर्गम द्रोणसेनाके व्यूहको भेद करनेका उत्साह प्रकाशित करते हो, इससे तुम्हारे बलकी वृद्धि होवे ॥ (२८–३०)

सञ्जय बोले, राजा युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनकर अभिमन्यु सारथीसे बोले, हे सुमित्र ! तुम द्रोणाचार्यकी सेनाके संमुख ही घोडोंको हांककर मेरे रथको लेचलो ॥ (३२) [१५४४]

द्रोणपर्वमें पैंतीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें छतीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! अभिमन्युने बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरके वचनको सुनकर सारथीको " चलो, चलो " कहके द्रोणाचार्यकी सेनाके निकट जानेकी आज्ञा दी ॥ तब अभिमन्युका सारथी उनसे यह वचन कहने लगा, हे शत्रुनाशन ! पाण्डवोंने तुम्हारे ऊपर अत्यन्त ही प्रचण्ड गुरुभार अर्पण किया है,परन्तु तुम अपने पराक्रमको विचारके देख लो, कि इस असाध्य कर्मके सिद्ध करनेमें तुम्हारी शक्ति है, या नहीं ! तुमको बुद्धिसे भली भांति सोच विचार करके इस युद्धमें प्रवृत्त होना ही उचित है ॥ (१–३)

आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः।
अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वं चाऽयुद्धविशारदः ॥ ४ ॥
ततोऽभिमन्युः प्रहसन्सारथिं वाक्यमब्रवीत्।
सारथे को न्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥ ५ ॥
ऐरावतगतं शक्रं सहाऽमरगणैरहम्।
अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणार्चितम् ॥
योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ॥ ६ ॥
न ममैतद् द्विषत्सैन्यं कलामर्हति षोडशीम्।
अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ॥ ७ ॥
पितरं चाऽर्जुनं युद्धे न भीर्मामुपयास्यति।
अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ॥ ८ ॥
याहीत्येवाऽब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम्।
ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान् ॥ ९ ॥
नाऽतिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान्।
ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः ॥ १० ॥
द्रोणमभ्यद्रवन्राजन्महावेगपराक्रमम्।

द्रोणाचार्य सम्पूर्ण अस्त्र विद्याको जानते और युद्ध करनेमें परिश्रमरहित हैं। तुम भी युद्ध विद्याको जानते हो, परन्तु अत्यन्त ही सुखपूर्वक पाले पोषे गये हो ॥ (४)

अनन्तर अभिमन्यु हंसकर अपने सारथीसे बोले, हे सारथी! मैं सम्पूर्ण देवताओंसे युक्त ऐरावतपर चढे हुए इन्द्रके सङ्ग अथवा सब भूतगणोंसे पूजित ईशान रुद्रके संग भी युद्ध कर सकता हूं; यह द्रोणाचार्य तथा दूसरे सम्पूर्ण क्षत्रियोंसे मुझे कुछ भी भय नहीं है ॥ हे सूत! यह सम्पूर्ण कुरुसेना मेरे सोलह भागका एक भाग भी नहीं हो सकती। विश्व-विजयी मामा कृष्ण और पिता अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें भी मुझे कुछ भय नहीं होता ॥ (५-८)

अनन्तर अभिमन्युने सारथीके वचनको न मानकर उसे द्रोणाचार्यकी सेनाके संमुख शीघ्र गमन करनेके निमित्त आज्ञा दी। सारथी प्रसन्न चित्तसे तीन वर्षकी अवस्थावाले सुवर्ण भूषित साजोंसे युक्त उत्तम घोडोंको द्रोणाचार्यसे रक्षित सेनाकी ओर चलाने लगा। हे राजेन्द्र! महा वेगवान् पराक्रमी घोडे सुमित्र सारथीसे चलानेपर द्रोणाचार्यकी ओर दौडे, तब

तमुदीक्ष्य तथा यान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः ॥
अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः ॥ ११ ॥
स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः सुवर्णवर्माऽऽर्जुनिरर्जुनाद्वरः ।
युयुत्सया द्रोणमुखान्महारथान्समासदत्सिंहशिशुर्यथा द्विपान्॥१२॥
ते विंशतिपदे यत्ताः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
आसीद्गाङ्ग इवाऽऽवर्तो मुहूर्तमुदधाविव ॥ १३ ॥
शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
संग्रामस्तुमुलो राजन्प्रावर्तत सुदारुणः ॥ १४ ॥
प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयङ्करे ।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्त्वा प्राविशदार्जुनिः॥ १५ ॥
तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसङ्घान्महाबलम् ।
हस्त्यश्वरथपत्त्योघाः परिवव्रुरुदायुधाः ॥ १६ ॥
नानावादित्रनिनदैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टगर्जितैः ।
हुङ्कारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥ १७ ॥

द्रोणाचार्य आदि सम्पूर्ण कौरव लोग अभिमन्युको इस प्रकारसे संमुख आते देखकर उसके संमुख उपस्थित हुए। पाण्डव लोग अभिमन्युके पीछे पीछे गमन करने लगे ॥ (८-११)

जैसे सिंहका किशोर बच्चा हाथियोंके झुण्डपर आक्रमण करता है, वैसे ही सुवर्ण भूषित कवच और सुन्दर ध्वजासे युक्त महाबलवान् अभिमन्यु द्रोणाचार्य आदि महारथ वीरोंको आक्रमण करने लगे ॥ जैसे गङ्गा और समुद्रका सङ्गम होनेसे मुहूर्तभरमें जलही जल उस स्थलमें दीख पडता है। वैसे ही उस समय में दोनों सेनाके शूरवीरोंका समागम हुआ। महाराज! अभिमन्युके द्रोणसेनाके बीच प्रवेश करनेके समयमें दोनों सेनाके शूरवीर योद्धा लोग युद्धमें प्रवृत्त होकर एक दूसरेके ऊपर शस्त्रोंको प्रहार करने लगे; उससे महा भयङ्कर तुमुल युद्ध होने लगा ॥ (१२-१४)

जब इस प्रकारसे महा घोर युद्ध होने लगा, तब उस ही समय अभिमन्युने द्रोणाचार्यके सम्मुखहीमें व्यूहभेद करके शत्रुसेनाके बीच प्रवेश किया ॥ गजपति, घुडसवार, रथी और पैदल सेनाके योद्धा लोग पराक्रमी अभिमन्युको आगे बढते और शस्त्रोंसे प्रहार करते देखकर चारों ओरसे अस्त्रशस्त्र ग्रहण करके उन्हें घेरने लगे। वे सम्पूर्ण योद्धा लोग नाना प्रकारके युद्धके बाजोंको बजाते और

घोरैर्हलहलाशब्दैर्मागास्तिष्ठेहि मामिति ।
असावहममित्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥
बृंहितैः सिञ्जितैर्हासैः करनेमिस्वनैरपि ।
सन्नादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥ १९ ॥
तेषामापततां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः ।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन्मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥
ते हन्यमाना विवशा नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।
अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम् ॥ २१ ॥
ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः ।
सन्तस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदिमिवाऽध्वरे ॥ २२ ॥
बद्धगोधांगुलित्राणान्सशरासनसायकान् ।
सासिचर्माङ्कुशाभीषून्सतोमरपरश्वधान् ॥ २३ ॥
सगदायोगुडप्रासान्सर्ष्टितोमरपट्टिशान् ।
सभिन्दिपालपरिघान्सशक्तिवरकम्पनान् ॥ २४ ॥
सप्रतोदमहाशङ्खान्सकुन्तान्सकचग्रहान् ।

तर्जन धनुषटङ्कार तथा सिंहनाद करके अभिमन्युको पुकार पुकारके कहने लगे, " खडा रह ! कहां जायगा ! यहां पर ही खडा रह ! मेरे सम्मुख होके युद्ध कर, मैं इधर हूं, यहांपर खडा हूं, " इसी प्रकार का बचन बार बार कहते हुए हाथियोंके चिंघाड, घोडोंकी हिनहिनाहट और रथोंकी घरघराहटके सहित सम्पूर्ण योद्धा अभिमन्युकी ओर दौडे । (१५–१९)

युद्ध विद्याके मर्मके जाननेवाले महावीर अभिमन्यु उन लोगोंको सम्मुख आते देखकर शीघ्रताके सहित समूहके समूह वीर योद्धाओंको मर्मभेदक बाणोंसे विद्ध करके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ जैसे फतिङ्गोंका समूह जलती हुई अग्निमें प्रवेश करता है, वैसे ही वे सम्पूर्ण योद्धा लोग अभिमन्युके अस्त्रोंसे पीडित होकर भी उसके सम्मुख बढने लगे । जैसे यज्ञस्थलमें कुशके समूहसे वेदी छिपजाती है, वैसे ही अभिमन्युने उन सम्पूर्ण वीरोंके हाथ, पांव शिर आदि अङ्गोंको अपने अस्त्रोंसे काट कर संग्रामकी भूमि को पूर्ण कर दिया ॥ (२०—२२)

मरे हुए वीरपुरुषोंके शरीरोंसे उस स्थानमें पृथ्वी छिप गई, तलवार, ढाल, अंकुश, घोडोंकी बागडोर, तोमर, परशु, गदा, प्रास, ऋष्टि, पट्टिश, भिन्दिपाल, परिघ, शक्ति, ध्वजा, कोडे, मुद्गर, घडे,

समुद्गरक्षेपणीयान्सपाशपरिघोपलान् ॥ २५ ॥
सकेयूराङ्गदान्बाहून्हृद्यगन्धानुलेपनान् ।
सञ्चिच्छेदाऽऽर्जुनिस्तूर्णं त्वदीयानां सहस्रशः॥ २६ ॥
तैः स्फुरद्भिर्महाराज शुशुभे भूः सुलोहितैः ।
पञ्चास्यैः पन्नगैश्छिन्नैर्गरुडेनेव मारिष ॥ २७ ॥
सुनासाननकेशान्तैरव्रणैश्चारुकुण्डलैः ।
सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रोधात्क्षरद्भिः शोणितं बहु ॥ २८ ॥
सचारुमुकुटोष्णीषैर्मणिरत्नविभूषितैः ।
विनालनलिनाकारैर्दिवाकरशशिप्रभैः ॥ २९ ॥
हितप्रियंवदैः काले बहुभिः पुण्यगन्धिभिः ।
द्विषच्छिरोभिः पृथिवीं स वै तस्तार फाल्गुनिः॥३० ॥
गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्रथान् ।
वीषामुखान्वित्रिवेणून्न्यस्तदण्डकबन्धरान् ॥ ३१ ॥
विजङ्घाकूबरांस्तत्र विनेमिदशनानपि ।
विचक्रोपस्करोपस्थान्भग्नोपकरणानपि ॥ ३२ ॥

पास तथा पत्थर आदि अस्त्रशस्त्रोंके धारण करनेवाले शूरवीर योद्धाओं तथा कवच और अंगुलित्राणसे भूषित चन्दन चर्चित वीरोंकी सहस्रों उत्तम भुजाओंको काटकाटकर गिराने लगे। (२३—२८)

हे महाराज! जैसे गरुडके द्वारा काटे हुए पञ्चमुखवाले सर्पोंके समूहसे पृथ्वी शोभित होती है, वैसेही रुधिर पूरित कांपती हुई उन वीरोंकी कटी हुई भुजाओं से संग्रामभूमि शोभायमान होने लगी॥ महापराक्रमी अभिमन्यु उत्तम नासिका, मुख, उत्तम केश और सुन्दर कुण्डलोंके सहित वीरोंके शिर तथा मुकुट छत्र शोभित कमलनालसे रहित कमलपुष्पके समान प्रकाशित मणि और सुवर्ण युक्त रत्नोंसे भूषित, सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान, हितकारी और प्रियवादी, पवित्र चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओं से युक्त वह तेरे शत्रु सेनाके शूरवीरोंके शिरको अस्त्रशस्त्रोंसे काटकर संग्रामभूमि को पूरित कर दिया॥ (२७—३०)

महाराज! उस समयमें मैंने देखा, कि अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ने अपने अनेक तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर सब ओर नाना प्रकारके विधिसे कल्पित गन्धर्व नगरके समान सहस्रों रथोंकी ध्वजा, धुरी, चके, रथके ऊपर तथा नीचेके हिस्सोंको काटकर उन रथोंको रथियोंसे रहित कर

प्रपातितोपस्तरणान्हतयोधान्सहस्रशः ।
शरैर्विशकलीकुर्वन्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ॥ ३३ ॥
पुनर्द्विपान्द्विपारोहान्वैजयन्त्यंकुशध्वजान् ।
तूणान्वर्माण्यथो कक्ष्या ग्रैवेयांश्च सकम्बलान् ॥ ३४ ॥
घण्टाः शुण्डाविषाणाग्रान्छत्रमालाः पदानुगान् ।
शरैर्निशितधाराग्रैः शात्रवाणामशातयत् ॥ ३५ ॥
वनायुजान्पार्वतीयान्काम्बोजानथ बाह्लिकान् ।
स्थिरवालधिकर्णाक्षाञ्जवनान्साधुवाहिनः ॥ ३६ ॥
आरूढाञ्शिक्षितैर्योधैः शक्त्यृष्टिप्रासयोधिभिः ।
विध्वस्तचामरमुखान्विप्रविद्धप्रकीर्णकान् ॥ ३७ ॥
निरस्तजिह्वानयनान्निष्कीर्णान्त्रयकृद्धनान् ।
हतारोहांश्छिन्नघण्टान्क्रव्याद्गणमोदकान् ॥ ३८ ॥
निकृत्तचर्मकवचाञ्शकृन्मूत्रासृगाप्लुतान् ।

दिया। रथोंके दण्ड और ध्वजा पताकाओंके सहित कितने ही रथोंको बाणोंसे काटके खण्ड खण्ड कर दिया। ३१-३३

शत्रुसेनाके हाथी, गजसवार और उनकी पताका, अंकुश, ध्वजा, तूणीर, वर्म, हौदे, गलेके भूषण, कम्बल (जीनपोष) घण्टा, सूण्ड, दांत और पांव, माला और उनके पादरक्षक योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटडाला॥ वनवासी, पार्वतीय, काम्बोज और वाह्लिक देशीय स्थिर पूंछ उत्तम कर्ण और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त वायुके समान वेगगामी उत्तम उत्तम अनेक घोडोंको शक्ति ऋष्टि और प्रास आदि अस्त्रोंको धारण करने वाले अत्यन्त शिक्षित शूरवीर घुडसवार योद्धाओंके सहित मारकर पृथ्वीमें गिराया॥ (३४— ३७)

कितने ही घोडोंकी जिह्वा और कितनोंके नेत्र निकल आये, कितने ही घोडोंके पेट फट गये, और कितने ही घुडसवारोंके सहित मरकर पृथ्वीमें गिर पडे; कितने ही घोडोंके चंवरोंके सहित जीनपोष कटके पृथ्वीमें गिर पडे; कितने ही घोडोंके कवच कट गये और कितने ही वायुवेगी घोडे घण्टारहित और सवारोंसे हीन होगये। कितने ही घोडे अभिमन्युके बाणोंसे पीडित होके रुधिर युक्त शरीरसे मूत्रमल परित्याग करने लगे। वे सम्पूर्ण घोडे इसी प्रकारसे रुधिर युक्त होकर सम्पूर्ण मांस भक्षी प्राणियों के आनन्दको बढाते हुए अभिमन्यु के बाणोंसे मरकर पृथ्वीमें गिर पडे। उस

निपातयन्नश्ववरांस्तावकान्स व्यरोचत ॥ ३९ ॥
एको विष्णुरिवाऽचिन्त्यं कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
तथा निर्मथितं तेन त्र्यङ्गं तव बलं महत् ॥ ४० ॥
यथाऽसुरबलं घोरं त्र्यम्बकेन महौजसा।
कृत्वा कर्म रणेऽसह्यं परैरार्जुनिराहवे ॥ ४१ ॥
अभिनच्च पदात्योघांस्त्वदीयानेव सर्वशः।
एवमेकेन तां सेनां सौभद्रेण शितैः शरैः ॥ ४२ ॥
भृशं विप्रहतां दृष्ट्वा स्कन्देनेवाऽऽसुरीं चमूम्।
त्वदीयास्तव पुत्राश्च वीक्षमाणा दिशो दश ॥ ४३ ॥
संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना रोमहर्षिणः।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४४ ॥
गोत्रनामभिरन्योन्यं क्रन्दन्तो जीवितैषिणः।
हतान्पुत्रान्पितॄन्भ्रातॄन्बन्धून्सम्बन्धिनस्तथा ॥ ४५ ॥

समय अभिमन्यु शोभित हुए॥ ३७-३९

जैसे महातेजस्वी महात्मा विष्णुने अकेले ही पहिले समयमें अत्यन्त कठिन कर्मोंको किया, अर्थात् दैत्योंका नाश किया था, वैसे ही अभिमन्यु तुम्हारी सेनाका तीन भाग करके उसका नाश करने लगे॥ जैसे महातेजस्वि देवों के देव महादेवने महाघोर असुरों की सेनाका संहार किया था, वैसे ही अभिमन्युने युद्धभूमिमें अत्यन्त कठिन कर्म करके तुम्हारी सम्पूर्ण पैदल चलनेवाली सेनाका उस स्थलमें नाश किया॥ ४०-४२

जैसे पहिले समयमें देवतोंके सेनापति स्वामिकार्तिकने असुरोंकी सेनाका नाश किया था, वैसेही सम्पूर्ण सेनाको अभिमन्युके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्तही पीडित तथा मरते देखकर तुम्हारी ओरके पराक्रमी योद्धा तथा तुम्हारे सम्पूर्ण पुत्र शत्रुको जीतनेमें उत्साह-रहित होगये, और चकित होकर दशों दिशाओंको अवलोकन करने लगे॥ उन सब शूर वीरोंका मुख सूखने लगा, शरीरसे पसीना आने लगा और शरीरके रोंएं खडे हो गये। अनन्तर वे सम्पूर्ण योद्धा अपने जीवनकी अभिलाप करके युद्धभूमिसे भागने लगे॥ (४३—४४)

वे सब लोग मरे तथा घायल पिता, पुत्र, भाई और दूसरे सम्बन्धियों को संग्रामभूमि में छोड कर उनके नाम और गोत्रको सुनाकर आपसमें एक दूसरेको आवाहन करते हुए शीघ्रताके सहित घोडे हाथियोंको चलाकर अभि-

प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥४६॥ [१५९०]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सञ्जय उवाच- तां प्रभग्नां चमूं दृष्ट्वा सौभद्रेणाऽमितौजसा ।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात् ॥ १ ॥
ततो राजानमावृत्तं सौभद्रं प्रति संयुगे ।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्योधान्परीप्सध्वं नराधिपम् ॥ २ ॥
पुराऽभिमन्युर्लक्ष्यं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान् ।
तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम् ॥ ३ ॥
ततः कृतज्ञा बलिनः सुहृदो जितकाशिनः ।
त्रास्यमाना भयाद्वीरं परिवव्रुस्तवाऽऽत्मजम् ॥ ४ ॥
द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौबलः ।
बृहद्बलो मद्रराजो भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ५ ॥
पौरवो वृषसेनश्च विसृजन्तः शिताञ्शरान् ।
सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन् ॥ ६ ॥
संमोहयित्वा तमथ दुर्योधनममोचयन् ।

मन्युके सम्मुखसे भागने लगे। ४५-४६

द्रोणपर्वमें छत्तीस अध्याय समाप्त। [१५९०]

द्रोणपर्वमें सैंतीस अध्याय।

सञ्जय बोले, राजा दुर्योधन अपनी सेनाको महा पराक्रमी सुभद्रापुत्र अभिमन्युके सम्मुखसे भागती हुई देखकर क्रुद्ध होकर रथपर चढके अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ अनन्तर द्रोणाचार्य दुर्योधनको अभिमन्युके सम्मुख आते देखकर सम्पूर्ण राजाओंसे बोले, कि पराक्रमी अभिमन्यु जबतक हम लोगोंके संमुखमें लक्ष्य (निशाना) नहीं विद्ध करता है, तुम लोग उसके पहिले ही भय त्याग कर अभिमन्यु के सम्मुख शीघ्रता के सहित जाके कुरुराज दुर्योधनकी रक्षा करो। (१-३)

अनन्तर कृतज्ञ, मित्र बलवान् और युद्धको जीतने वाले राजाओंने भयभीत होके भी दुर्योधनको चारों ओरसे घेरकर युद्धभूमिमें अभिमन्युके सम्मुख खडे हुए; और द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, बृहद्बल, मद्रराज शल्य, भूरिश्रवा, शल, पौरव और वृषसेन आदि पराक्रमी योद्धा लोग अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके अभिमन्युको बाणोंसे छिपाने लगे॥ (४-६)

उन सम्पूर्ण महारथ वीरोंने अपने बाणोंकी वर्षासे अभिमन्यु को मोहित

आस्याद्ग्रासमिवाऽऽक्षिप्तं ममृषे नाऽर्जुनात्मजः ॥ ७ ॥
ताञ्शरौघेण महता साश्वसूतान्महारथान् ।
विमुखीकृत्य सौभद्रः सिंहनादमथाऽनदत् ॥ ८ ॥
तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवाऽऽमिषैषिणः ।
नाऽमृष्यन्त सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ ९ ॥
त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
व्यसृजन्निषुजालानि नानालिङ्गानि संघशः ॥ १० ॥
तान्यन्तरिक्षे चिच्छेद पौत्रस्ते निशितैः शरैः ।
तांश्चैव प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ११ ॥
ततस्ते कोपितास्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
परिवव्रुर्जिघांसन्तः सौभद्रमपराजितम् ॥ १२ ॥
समुद्रमिव पर्यस्तं त्वदीयं तं बलार्णवम् ।
दधारैकोऽर्जुनिर्बाणैर्वेलेव भरतर्षभ ॥ १३ ॥
शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।

करके उसके संमुखमें पडे हुए ग्रास के समान राजा दुर्योधन को मुक्त किया; उन शूरवीरोंका यह कर्म अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से नहीं सहा गया ॥ उसने अनेक तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर घोडे और सारथियोंके सहित उन महारथियोंको युद्धभूमिसे विमुख करके सिंहनाद किया ॥ द्रोणाचार्य आदि महारथ योद्धा ओंने मांसकी इच्छावाले सिंहस्वरूप अभिमन्युके सिंहनादको सुनकर अत्यन्त ही क्रोध किया; और फिर उनकी ओर दौडे ॥ (७–९)

अनन्तर उन सम्पूर्ण महारथियोंने चारों ओरसे रथोंके समूहसे अभिमन्युको घेरकर उसके ऊपर नाना भांतिके बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ अर्जुनपुत्र उन लोगोंके चलाये हुए बाणोंको आकाश मार्गहीमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटने लगे; और अपने चोखे बाणोंसे उन महारथ योद्धाओंको भी विद्ध करने लगे, वह युद्ध अद्भुत रूपसे दिखाई देने लगा ॥ अनन्तर उन महारथियोंने अत्यन्त ही कुपित होकर विषधारी सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंको वर्षा कर अभिमन्युका वध करनेकी इच्छासे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ (१०–१२)

हे भारत ! जैसे तट समुद्रको सीमा लङ्घन नहीं करने देता वैसे ही अकेले ही अभिमन्युने अपने पराक्रमसे तुम्हारे उन सम्पूर्ण सेनाके महारथ वीरोंको

अभिमन्योः परेषां च नाऽऽसीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥१४॥
तस्मिंस्तु घोरे संग्रामे वर्तमाने भयङ्करे ।
दुःसहो नवभिर्बाणैरभिमन्युमविध्यत ॥ १५ ॥
दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
द्रोणस्तु सप्तदशभिः शरैराशीविषोपमैः ॥ १६ ॥
विविंशतिस्तु सप्तत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ।
बृहद्बलस्तथाऽष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ १७ ॥
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्मद्रेशः षड्भिराशुगैः ।
द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः ॥ १८॥
स तु तान्प्रतिविव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान् ॥ १९ ॥
ततोऽभिमन्युः संक्रुद्धस्त्रास्यमानस्तवाऽऽत्मजैः ।
विदर्शयन्वै सुमहच्छिक्षौरसकृतं बलम् ॥ २० ॥
गरुडानिलरंहोभिर्यन्तुर्वाक्यकरैर्हयैः ।
दान्तैरश्मकदायादस्त्वरमाणो न्यवारयत् ॥ २१ ॥
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।

आगे नहीं बढने दिया । आपसमें एक दूसरेके ऊपर बाणोंको चलाने वाले अभिमन्यु तथा तुम्हारी सेनाके महारथ योद्धाओं में से कोई भी युद्धसे पीछे न हटा ॥ (१३–१४)

उस महाघोर भयङ्कर युद्धमें दुःसहने नव, दुःशासनने बारह, शारद्वत कृपाचार्यने तीन, द्रोणाचार्यने विषैले सर्पके समान सतरह तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ विविंशतिने सत्तर, कृतवर्माने सात, बृहद्बलने आठ, अश्वत्थामाने सात, भूरिश्रवाने तीन, मद्रराज शल्यने छः, शकुनिने दो और दुर्योधनने तीन बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया ॥ (१५–१८)

हे राजेन्द्र ! उस महाधनुर्धारी, प्रतापी अर्जुनपुत्र अभिमन्युने मानो रणभूमिमें नृत्य करते हुए उस सम्पूर्ण महारथ वीरोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ अनन्तर अभिमन्युने तुम्हारे पुत्रोंसे भयभीत और क्रुद्ध होकर अपने अस्त्रशिक्षा और पराक्रमको प्रकाशित करते हुए गरुड और वायुके समान वेगगामी उत्तम घोडोंसे युक्त रथ पर चढकर संमुख आये हुए राजा अश्मकपुत्रको अपने अस्त्रशस्त्रोंसे निवारण किया; और "खडा रह ! खडा रह !"

तस्याऽभिमन्युर्दशभिर्हयान्सूतं ध्वजं शरैः ॥२२॥
बाहू धनुः शिरश्चोर्व्यां स्मयमानोऽभ्यपातयत् ।
ततस्तस्मिन्हते वीरे सौभद्रेणाऽश्मकेश्वरे ॥ २३ ॥
संचचाल बलं सर्वं पलायनपरायणम् ।
ततः कर्णः कृपो द्रोणो द्रौणिर्गान्धारराट् शलः ॥२४॥
शल्यो भूरिश्रवाः क्राथः सोमदत्तो विविंशतिः ।
वृषसेनः सुषेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः ॥ २५ ॥
वृन्दारको ललित्थश्च प्रबाहुर्दीर्घलोचनः ।
दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २६ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्मगैः ।
शरमादत्त कर्णाय वर्मकायावभेदिनम् ॥ २७ ॥
तस्य भित्त्वा तनुत्राणं देहं निर्भिद्य चाऽऽशुगः ।
प्राविशद्धरणीं वेगाद्वल्मीकमिव पन्नगः ॥ २८ ॥
स तेनाऽतिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ।
सञ्चचाल रणे कर्णः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥ २९ ॥

कहके उन्हें दश बाणोंसे विद्ध किया;फिर हंसते हंसते एक बाणसे उसके सारथी, चार बाणोंसे उसके रथके चारों घोडे, एक बाणसे रथकी ध्वजा, दो बाणोंसे उनकी दोनों भुजा, एक बाणसे धनुष और एक बाणसे उनका सिर काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (१९-२३)

अनन्तर जब पराक्रमी वीर अश्मक-पति अभिमन्युके अस्त्रोंसे मारे गये, तब तुम्हारी सम्पूर्ण सेना भयभीत होके अभिमन्युके संमुखसे भागने लगी ॥ अनन्तर कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, गान्धारराज शल, शल्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोमदत्त, विविंशति, वृषसेन, सुसेन, कुम्भभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, ललित्थ, प्रबाहु, दीर्घलोचन दुर्योधन आदि योद्धा लोग क्रुद्ध होकर अभिमन्युके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ (२३-२६)

अभिमन्युने उन सम्पूर्ण महारथ धनुर्द्धारियोंके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर कर्णके ऊपर शत्रुदेह भेद करने वाला एक तीक्ष्ण बाण चलाया। हे राजेन्द्र ! जैसे सर्प बिलमें प्रवेश करता है, वैसे ही वह बाण कर्णके तनुत्राण और शरीरको भेद करके पृथ्वीमें गिरा॥ जैसे भूचालसे पर्वत कम्पित होता है वैसेही कर्ण अभिमन्युके बाणके प्रहारसे

तथाऽन्यैर्निशितैर्बाणैः सुषेणं दीर्घलोचनम् ।
कुण्डभेदिं च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥ ३० ॥
कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
अश्वत्थामा च विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ॥ ३१ ॥
स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धः शक्रात्मजात्मजः ।
विचरन्ददृशे सैन्ये पाशहस्त इवाऽन्तकः ॥ ३२ ॥
शल्यं च शरवर्षेण समीपस्थमवाकिरत् ।
उदक्रोशन्महाबाहुस्तव सैन्यानि भीषयन् ॥ ३३ ॥
ततः स विद्धोऽस्त्रविदा मर्मभिद्भिरजिह्मगैः
शल्यो राजन्रथोपस्थे निषसाद मुमोह च ॥ ३४ ॥
तं हि दृष्ट्वा तथा विद्धं सौभद्रेण यशस्विना ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥
संप्रेक्ष्य तं महाबाहुं रुक्मपुङ्खैः समावृतम् ।
त्वदीयाः प्रपलायन्ते मृगाः सिंहार्दिता इव ॥ ३६ ॥
स तु रणयशसाऽभिपूज्यमानः पितृसुरचारणसिद्धयक्षसङ्घैः ।

व्यथित और विह्वल होगये ॥ २७-२९

अनन्तर बलवान् अभिमन्युने फिर तीन तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर दीर्घ लोचन, सुषेण और कुम्भभेदी, इन तीन शूर वीरोंका वध किया ॥ तब कर्णने पचीस, अश्वत्थामाने बीस और कृतवर्माने सात बाणोंसे अभिमन्युको प्रहार किया ॥ उस समय अर्जुनपुत्र अभिमन्युका सम्पूर्ण शरीर उन महारथियोंके बाणोंसे परिपूर्ण होगया, और वह क्रुद्ध होकर पाशधारी यमराजके समान सम्पूर्ण सेनाके बीच घूमते हुए दिखाई देने लगे ॥ (३०-३२)

महाबाहु अभिमन्युने समीपमें ही स्थित महारथ शल्यको देख कर उन्हें अपने बाणोंसे छिपा दिया; और तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको भयभीत करके सिंहनाद करने लगे ॥ हे राजन् ! शल्य अभिमन्युके मर्मभेदी बाणोंसे पीड़ित होकर रथदण्ड पकड़के मूर्च्छित होकर बैठ गये ॥ सम्पूर्ण सेना शल्यको यशस्वी अभिमन्युके बाणोंसे इस प्रकारसे पीड़ित देखकर द्रोणाचार्यके संमुख ही में अभिमन्युके आगेसे भागने लगी ॥ ३३-३५

तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग महाबाहु शल्यको अभिमन्युके बाणोंसे छिपे हुए देखकर युद्धभूमिसे इस प्रकार भागने लगे, जैसे सिंहसे पीड़ित होकर

अवनितलगतैश्च भूतसङ्घैरतिविबभौ हुतभुग्यथाऽऽज्यसिक्तः ॥ ३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अभिमन्युवधपर्वणि
अभिमन्युपराक्रमे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ [१६२७]

धृतराष्ट्रउवाच— तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगैः ।
आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन् ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच— शृणु राजन्कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत् ।
बिभित्सतो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम् ॥ २ ॥
मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाऽऽशुगै रणे ।
शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन्बाणान्समभ्ययात् ॥ ३ ॥
स विद्ध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम् ।
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ४ ॥
तस्याऽर्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान् ।
छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च ॥ ५ ॥
चक्रं युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षं च सायकैः ।

मृगोंका समूह भागता है ॥ महात्मा अभिमन्यु आकाशमें स्थित पितर, देवता, चारण, सिद्ध और पृथ्वीपर स्थित सम्पूर्ण पुरुषोंके बीच यशयुक्त और प्रशंसित होकर मानों घीसे सिंचित अग्नि के समान उस संग्रामभूमिमें प्रकाशित होने लगे । (३६–३७) [१६२७]

द्रोणपर्वमें सैंतीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें अडतीस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! जिस समय अर्जुनपुत्र महाधनुर्धारी अभिमन्यु महारथ वीरोंको अपने बाणोंसे पीडित कर रहा था, उस समयमें मेरी ओरके किनकिन शूरवीर योद्धाओंने उसे निवारण किया ? (१)

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! अर्जुन पुत्र अभिमन्युने द्रोणाचार्यसे रक्षित रथसेनाको भेद करनेकी इच्छा करके जिस प्रकारसे कठिन कार्य किया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम सुनो ॥ मद्रराज शल्यको अभिमन्युके बाणोंसे मूर्च्छित देखकर उनके छोटे भाई क्रुद्ध हो बाणवर्षा करते हुए अभिमन्युके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ उन्होंने दश बाणोंसे अभिमन्युको घोडे और सारथीके सहित विद्ध करके "खडा रह ! खडा रह !" कहके महाघोर शब्दके सहित सिंहनाद किया ॥ (२–४)

अभिमन्युने हस्त लाघवके सहित शीघ्रही उनके रथके चारों घोडे, सारथी,

पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च ॥ ६ ॥
लघुहस्तः प्रचिच्छेद ददृशे तं न कश्चन ।
स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः ॥ ७ ॥
वायुनेव महाशैलः सम्भग्नोऽमिततेजसा ।
अनुगास्तस्य वित्रस्ताः प्राद्रवन्सर्वतो दिशः ॥ ८ ॥
आर्जुनेः कर्म तद् दृष्ट्वा सम्प्रणेदुः समन्ततः ।
नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत ॥ ९ ॥
शल्यभ्रातर्यथाऽऽरुग्णे बहुशस्तस्य सैनिकाः ।
कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥१०॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
रथैरश्वैर्गजैश्चाऽन्ये पद्भिश्चाऽन्ये बलोत्कटाः ॥ ११ ॥
बाणशब्देन महता रथनेमिस्वनेन च ।
हुङ्कारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः ॥ १२ ॥
ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम् ।

धनुष, हाथ, पांव, गर्दन, शिर, छत्र ध्वजा, रथके चक्र, रथकी धूरी, तूणीर, और दो चक्र-रक्षक तथा रथकी सम्पूर्ण सामग्रियोंके सहित उन्हे इस प्रकार अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंसे काट डाला, कि कोई पुरुष उन्हें देख भी न सका। जैसे प्रचण्डवायुके झोकेसे बडे बडे वृक्ष टूटके पृथ्वीपर गिर पडते हैं, वैसे ही वह अभिमन्युके अस्त्रोंसे कटकर पृथ्वीमें गिर पडे। तब उनके सम्पूर्ण अनुयायी योद्धा भयभीत होकर अभिमन्युके संमुखसे इधर उधर भागते दिखाई देने लगे ॥ (५–८)

हे भारत! अभिमन्युको इस प्रकारसे कठिन कर्म करते हुए देखकर आकाश और पृथ्वीपर स्थित सम्पूर्ण प्राणी धन्य धन्य करके उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ हे भारत! जब राजा शल्यका कनिष्ठ भ्राता अभिमन्युके अस्त्रोंसे मारा गया तब उसकी बहुतसी सेना अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपना कुछ निवास, स्थान और नाम सुनाकर अभिमन्युकी ओर दौडी। उसमेंसे कितने शूरवीर योद्धा लोग रथपर चढके चले, कितने ही हाथी, घोडेपर चढके अभिन्युकी ओर दौडे; और कितनेही पैदलही उनके सम्मुख उपस्थित हुए। उनके बाणोंके शब्द, रथकी घर घराहट, हाथियोंके चिङ्घाड घोडोंकी हिनहिनाहट, हुङ्कार, सिंहनाद, वीरोंके गर्जन, धनुषटङ्कार और तनुत्राणके शब्द

ब्रुवन्तश्च न नौ जीवन्मोक्ष्यसे जीवितादिति ॥ १३ ॥
तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव ।
यो योऽस्मै प्राहरत्पूर्वं तं तं विव्याध पत्रिभिः ॥ १४ ॥
सन्दर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि लघूनि च ।
आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत ॥ १५ ॥
वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनञ्जयात् ।
अदर्शयत तत्कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषवत् ॥ १६ ॥
दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसं च पुनः पुनः ।
सन्दधद्विसृजंश्चेषूनिर्विशेषमदृश्यत ॥ १७ ॥
चापमण्डलमेवाऽस्य विस्फुरद्दिक्ष्वदृश्यत ।
सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १८ ॥
ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः ।
महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निःस्वनः ॥ १९ ॥

से वह रणभूमि पूर्ण होगई। शूरवीर योद्धा यह वचन कहते हुए अभिमन्युकी ओर दौडे, कि "तुम जीतेजी हमारे संमुखके नहीं बच सकोगे" ऐसे वचन कहते हुए उन सम्पूर्ण योद्धाओंने अभिन्युको आक्रमण किया ॥ (९-१३)

सुभद्रापुत्र अभिमन्युने उन सम्पूर्ण वीरोंको इस प्रकारसे प्रलाप करते हुए संमुख आते देखा, और उन योद्धाओं-मेंसे जिन शूरवीरोंने पहिले उनके ऊपर प्रहार किया था, अभिमन्युने हंसते हुए उन्हें अपने तीक्ष्ण वाणोंसे विद्ध करना आरम्भ किया ॥ उन समय पराक्रमी अभिमन्यु विचित्र रूपसे हस्तलाघवके सहित अस्त्र शस्त्रोंकी निपुणता दिखाते हुए मृदु युद्ध करने लगे ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनके समीपमें अभिमन्युने जिन सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या सीखी थी, उसे वह उस समयमें सम्पूर्ण शूरवीरोंके संमुख प्रकाशित करने लगे ॥ १४।१६

वह इस अत्यन्त कठिन भार और भयको त्यागकर बार बार बाणोंको सन्धान करके उन सम्पूर्ण शूरवीरोंके ऊपर छोडने लगे, कि उनका धनुष मण्डलाकार रूपसे शरत्कालके सूर्य मण्डलके समान उस समय संग्रामभूमिमें प्रकाशित होने लगा ॥ हे भारत! जैसे प्रलयकालके समय महा भयङ्कर बाद-लोंके गर्जने और बिजली गिरनेके समय भयानक शब्द होता है, वैसे ही अभि-मन्युके दृढ धनुष और तनुत्राणका शब्द युद्धभूमिमें सुनाई देने लगा ॥ १७–१९

ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत्प्रियदर्शनः।
संमिमानयिषुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाऽप्ययुध्यत ॥ २० ॥
मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत।
वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्शरदीव दिवाकरः ॥ २१ ॥
शरान्विचित्रान्सुबहून्रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान्।
मुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥ २२ ॥
क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः।
नाराचैरर्द्धचन्द्राभैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ २३ ॥
अवाकिरद्रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः।
ततस्तत्सैन्यमभवद्विमुखं शरपीडितम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते० संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥ (१५५१)

धृतराष्ट्र उवाच—द्वैधीभवति मे चित्तं भिया तुष्ट्या च सञ्जय।
मम पुत्रस्य यत्सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥ १ ॥
विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः।

लज्जाशील, योग्य पुरुषोंके समान कर्म करनेवाले सुकुमार अभिमन्यु क्रोध पूरित मानो वीर योद्धाओंके संमान कर नेकेही निमित्त उस समय महा घोर संग्राम करने लगे॥ हे राजेन्द्र! वह वर्षाके अनन्तर शरद्ऋतुके सूर्यके समान पहिले मृदु युद्ध करके फिर तीव्र रूपसे युद्ध करने लगे॥ जैसे सूर्य चारों ओर अपने किरणोंका विस्तार करके आकाश में शोभित होते हैं, वैसे ही अभिमन्यु स्वर्ण दण्ड युक्त सैकडों तथा सहस्रों अपने प्रकाशमान बाणोंको चलाकर युद्ध भूमिमें शोभित होने लगे। (२१–२२)

उस महायशस्वी अभिमन्युने द्रोणाचार्यके सम्मुख क्षुरप्र, वत्सदन्त, विपाठ, नाराच, अर्द्धचन्द्र, भल्ल और अञ्जलिक अस्त्रोंको चलाकर शत्रुसेनाके रथियोंको छिपा दिया। अनन्तर सेनाके सम्पूर्ण योद्धा अभिमन्युके अस्त्रोंसे पीडित होकर युद्ध भूमिसे भागने लगे॥ (२३–२४)

द्रोणपर्वमें अडतीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें उनतालीस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! अभिमन्यु ने जो मेरी सेनाके योद्धाओंको युद्धभूमि में निवारण किया था, उसे सुनकर मेरे चित्तमें भीति और सन्तोष दोनोंही उत्पन्न हो रहे हैं॥ हे सूत! असुरोंके सङ्ग जैसे देवतोंके सेनापति कुमार स्वामिकार्तिकने युद्धभूमिमें क्रीडा किया था, वैसे ही कुमार अभिमन्युने

विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवाऽसुरैः सह ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच- हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणम् ।
एकस्य च बहूनां च यथाऽऽसीत्तुमुलो रणः ॥ ३ ॥
अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिन्दमान् ।
रथस्थो रथिनः सर्वांस्तावकानभ्यवर्षयत् ॥ ४ ॥
द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलम् ।
दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिं च महाबलम् ॥ ५ ॥
नानानृपान्नृपसुतान्सैन्यानि विविधानि च ।
अलातचक्रवत्सर्वांश्चरन्बाणैः समार्पयत् ॥ ६ ॥
निघ्नन्नमित्रान्सौभद्रः परमास्त्रैः प्रतापवान् ।
अदर्शयत तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७ ॥
तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्याऽमितौजसः ।
समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि सहस्रशः ॥ ८ ॥
अथाऽब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९ ॥

रणभूमिमें जिस प्रकारसे क्रीडा की है, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें विस्तारपूर्वक वर्णन करो। (१-२)

सञ्जय बोले, हे महाराज! उस एक सुकुमार बालकके सङ्ग, तुम्हारी सेनाके जो बहुतेरे महारथ योद्धाओंका महाघोर तुमुल संग्राम हुआ था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तुम्हारे समीप विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं॥ उत्साहसे युक्त रथपर चढे हुए अभिमन्यु, तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण उत्साही रथी और महारथियोंके ऊपर अपने बाणोंको वर्षाने लगे, और अलात चक्रकी भांति रणभूमिमें चारों ओर घूमते हुए द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, शल्य, भोजराज कृतवर्मा, बृहद्बल, दुर्योधन, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा महा बलवान् शकुनि और दूसरे अनेक राजाओं, विविध राजपुत्रों, तथा सेनाके योद्धाओं को अपने तीक्ष्ण बाणों से विद्ध करने लगा। (३-६)

हे भारत! उस प्रतापी अत्यन्त तेजस्वी अभिमन्युको उस समय रणभूमिमें चारों ओर सब पुरुष परम अस्त्रोंसे शत्रुओंको पीडित करते हुए देखने लगे॥ तुम्हारी सहस्रावधि सेना उस युद्धभूमि में महातेजस्वी अभिमन्युके चरित्रको देख कर कांपने लगी॥ (७-८)

हे भारत! अनन्तर महा बुद्धिमान्

घट्यन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत ।
अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥ १० ॥
एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
नन्दयन्सुहृदः सर्वान्राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च पाण्डवम् ।
बन्धून्सम्बन्धिनश्चाऽन्यान्मध्यस्थान्सुहृदस्तथा ॥१२॥
नाऽस्य युद्धे समं मन्ये कञ्चिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन्हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥ १३ ॥
द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवाऽऽत्मजः ।
आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥ १४ ॥
अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद्बाह्लिकं नृपः ।
दुःशासनं मद्रराजं तांस्तथाऽन्यान्महारथान् ॥ १५ ॥
सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः ।
अर्जुनस्य सुतं मूढं नाऽयं हन्तुमिहेच्छति ॥ १६ ॥
न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः ।

प्रतापी द्रोणाचार्य अभिमन्युकी युद्धमें निपुणता देखकर हर्षित होकर मानो तुम्हारे पुत्रके मर्मको भेद करके ही कृपाचार्य से यह वचन बोले, यह तरुण अवस्थावाला अभिमन्यु सम्पूर्ण इष्टमित्र और राजा युधिष्ठिर,नकुल, सहदेव,भीमसेन तथा दूसरे बन्धुवर्ग,सम्बधी,मध्यस्थ सुहृद् लोगोंको आनंदित करता हुआ पाण्डवोंके आगे गमन कर रहा है; मैं बोध करता हूं, युद्धमें इसके समान कोई भी धनुर्धारी योद्धा नहीं है । यह इच्छा करनेसे सम्पूर्ण सेनाका नाश कर सकता है, परन्तु न जाने किस कारणसे इच्छा नहीं करता; मैं इस विषयको कुछ कह नहीं सकता हूं । (९—१३)

तुम्हारे पुत्र लोग द्रोणाचार्यके प्रीतिसे युक्त इस वचनको सुनकर उनकी ओर देखकर हंसे और फिर अत्यन्तही क्रुद्ध हुए ॥ अनन्तर कर्ण, बाह्लिक, दुःशासन, मद्रराज शल्य और दूसरे यहां पर स्थित हुए सम्पूर्ण महारथियोंसे बोले, कि सम्पूर्ण राजाओंके गुरु ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्य मोहित होकर इस रणभूमिमें अर्जुनपुत्र अभिमन्युका वध करनेकी इच्छा नहीं करते हैं। (१४-१६)

मैं तुम लोगोंके समीप यह सत्य वचन कहता हूं, कि द्रोणाचार्यके क्रुद्ध होनेपर यमराज भी उनके समीपसे मुक्त

किमङ्ग पुनरेवाऽन्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥
अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति ।
शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम् ॥१८॥
संरक्षमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः ।
आत्मसम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत मा चिरम् ॥ १९ ॥
एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः ।
संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ २० ॥
दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा ।
अब्रवीत्कुरुशार्दूल दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१ ॥
अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते ।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च पश्यताम् ॥ २२ ॥
ग्रसिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरम् ।
उत्क्रुश्य चाऽब्रवीद्वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥ २३ ॥
श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ ।
गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः ॥ २४ ॥
तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पाण्डोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः ।

नहीं हो सकते, मनुष्यकी तो बात ही क्या है। वह अर्जुनके पुत्रको शिष्य समझकर उसकी रक्षा करते हैं। शिष्य, पुत्र और उनकी सन्तान भी धर्मशील पुरुषोंको प्रिय हुआ करती हैं। यह अभिमन्यु द्रोणाचार्यसे रक्षित होकर ही अपनेको बलवान समझ रहा है; इससे तुम सब कोई इस अभिमानी मूढ अभिमन्युका संहार करो। (१७-१९)

हे भारत ! सम्पूर्ण राजाओंने राजा दुर्योधनकी ऐसी आज्ञा सुनकर द्रोणाचार्यके संमुख ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर अभिमन्युके वधकी इच्छा करके उसकी ओर दौडे ॥ कुरु शार्दूल दुःशासन दुर्योधनका वचन सुनकर उनसे बोले, हे महाराज ! मैं आपसे यह वचन कहता हूं, कि " मैं पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओं के संमुखमें ही इसका वध करूंगा। " जैसे राहु सूर्यको ग्रास करता है, वैसे ही मैं युद्धभूमिमें अभिमन्युको ग्रास करूंगा। ऐसा कहकर फिर दुःशासन ऊंचे स्वरसे कुरुराज दुर्योधनसे बोले, अत्यन्त मानी कृष्ण और अर्जुन अभिमन्युको मेरे हाथसे मरा हुआ सुनकर अवश्य ही प्राण त्याग करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ (२०-२४)

एकाह्ना ससुहृद्वर्गाः क्लैव्याद्धास्यन्ति जीवितम् ॥२५॥
तस्मादस्मिन्हते शत्रौ हताः सर्वेऽहितास्तव ।
शिवेन मां ध्याहि राजन्नेष हन्मि रिपूंस्तव ॥ २६ ॥
एवमुक्त्वाऽनदद्राजन्पुत्रो दुःशासनस्तव ।
सौभद्रमभ्ययात्क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २७ ॥
तमतिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिन्दमः ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥२८॥
दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अयोधयत सौभद्रमभिमन्युश्च तं रणे ॥ २९ ॥
तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्यदक्षिणम् ।
चरमाणावयुध्येतां रथशिक्षाविशारदौ ॥ ३० ॥
अथ पणवमृदङ्गदुन्दुभीनां क्रकचमहानकभेरिझर्झराणाम् ।
निनदमतिभृशं नराः प्रचक्रुर्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥३१॥ [१६८२]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि दुःशासनयुद्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

पाण्डुके और सब पुत्र लोग इन दोनोंकी मृत्युका संवाद सुनकर बल-हीन होकर अपने सुहृद् मित्रोंके सहित एक ही दिनमें प्राणत्याग करेंगे; इससे तुम्हारे इस एक ही शत्रुके मारे जाने पर और सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश होगा। महाराज ! तुम मेरे कल्याणकी चिन्ता करो, मैं अकेले ही इस शत्रुका वध करूंगा ॥ हे राजन्! तुम्हारे पुत्र दुःशासनने ऐसा वचन कहकर क्रुद्ध हो सिंह-नाद करते और बाणोंको वर्षाते हुए अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ (२५–२७)

शत्रुनाशन अभिमन्युने दुःशासनको अत्यन्त क्रोध-पूर्वक अपनी ओर आता हुआ देखकर छब्बीस चोखे बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ क्रोधी दुःशासन मतवारे हाथीके समान उस रणभूमिमें अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करने लगे; अभि-मन्यु भी दुःशासनके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ रथशिक्षामें निपुण ये दोनों महारथ योद्धा रथकी गतिसे बांई और दाहिनी ओर मण्डलाकार गतिके सहित विचित्र रूपसे घूमते हुए युद्ध करने लगे॥ अनन्तर सम्पूर्ण योद्धा लोग लवण-समुद्रके महा भयङ्कर शब्दकी भांति वीरोंके सिंहनाद और धनुष टङ्कारके सहित ढोल, नगाडे, मृदङ्ग, शंख, भेरी और झांझ आदि बाजोंको बजाने लगे ॥ (२८–३१) [१६८२]

द्रोणपर्वमें उनतालीस अध्याय समाप्त ।

सञ्जय उवाच– शरविक्षतगात्रस्तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् ।
अभिमन्युः स्मयन्धीमान्दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम् ।
निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् ॥ २ ॥
यत्सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषिनः ।
अक्षकूटं समाश्रित्य सौबलस्याऽऽत्मनो बलम् ॥ ४ ॥
तत्त्वयेदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः ।
परवित्तापहारस्य क्रोधस्याऽप्रशमस्य च ॥ ५ ॥
लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्याऽत्याहितस्य च ।
पितॄणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनाम् ॥ ६ ॥
तत्त्वयेदमनुप्राप्तं प्रकोपाद्वै महात्मनाम् ।
स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ॥ ७ ॥
शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
अद्याऽहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे ॥ ८ ॥

द्रोणपर्वमें चालीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, बाणोंसे क्षतविक्षत शरीरवाले बुद्धिमान् अभिमन्यु हंसते हुए निकटमें ही स्थित शत्रु दुःशासनसे बोले, कि तुम शूरवीर, मानी, क्रोधी, निठुर और धर्मत्यागी हो; प्रारब्ध ही से मैंने तुम्हें रणभूमिमें संमुख आये हुए देखा है ॥ तुमने ही राजा धृतराष्ट्रके संमुखमें धर्मराज युधिष्ठिरको कडवी बातोंसे कुपित किया था ॥ (१–२)

तुमने ही जुएके खेलमें जय प्राप्त कर उन्मत्त होकर वाह वाह करके भीमसेन-को कुपित किया था, उसही महात्माके कोपके वशमें होकर तुम इस युद्धभूमिमें उपस्थित हुए हो । रे नीच बुद्धिवाले, मूढ ! तू पराये धनके हरने, विवाद करने, क्रोध, लोभ, निर्बुद्धिता और महात्मा मेरे पिता पितृव्योंके विषयमें उनकी बुराई करनेकी इच्छा, प्राणनाश होनेवाले नीच कर्मोंके अनुष्ठान, और राज्य हरण आदि दोषोंके कारणसे ही इस रणभूमिमें उपस्थित हुआ है । तू उस सम्पूर्ण अधर्मका फल शीघ्र ही पावेगा ॥ (५–७)

आज मैं सम्पूर्ण सेनाके संमुखहीमें तुझे शासित करूंगा । आज मैं रणभूमिमें

अमर्षितायाः कृष्णायाः कांक्षितस्य च मे पितुः ।
अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि ॥ ९ ॥
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन्यदि नोत्सृजसे रणम् ।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम् ॥ १० ॥
सन्दधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम् ।
तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ॥ ११ ॥
जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ।
अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत् ॥ १२ ॥
शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्णसमचोदितैः ।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १३ ॥
दुःशासनो महाराज कश्मलं चाऽविशन्महत् ।
सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम् ॥ १४ ॥
रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम् ।
पाण्डवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीक्ष्य तम् ॥ १५ ॥
पञ्चालाः केकयाश्चैव सिंहनादमथाऽनदन् ।

सदासे क्रोधयुक्त कृष्णा द्रौपदी और अर्जुनके क्रोधको शान्त करके उनकी अभिलाष पूर्ण करके ऋणरहित होऊंगा। आज मैं इस युद्धभूमिमें भीमसेनके ऋणसे मुक्त होऊंगा॥ यदि तुम युद्ध त्याग कर, रणभूमिसे भाग न जाओगे, तो मेरे समीपसे जीते हुए मुक्त न हो सकोगे, ऐसेही वचन कह कर महाबाहु शत्रु नाशन वीर अभिमन्युने दुःशासनके वधके निमित्त महा भयङ्कर कालाग्निके समान प्रकाशमान् और वायुके समान वेगशील बाण सन्धान करके दुःशासनकी ओर चलाया। जैसे सर्प बिलको भेद करके बाहर निकलता है वैसे ही वह दुःशासनके वक्षस्थलमें लगा और कोखेको भेदकर पृथ्वीमें गिरा॥ (८-१२)

अनन्तर अभिमन्युने फिर अग्निके समान स्पर्श करनेवाले पचीस बाणोंको धनुषपर चढाकर दुःशासनके ऊपर चलाया। महाराज! उनसे दुःशासन अत्यन्त विद्ध पीडित और मूर्च्छित हो रथका दण्ड पकडके रथपर बैठ गये, उनके सारथीने उन्हें अभिमन्युके बाणोंसे पीडित और मूर्च्छित देखकर शीघ्रताके सहित रणभूमिसे पृथक् किया॥ १२-१५

अनन्तर सम्पूर्ण पाण्डव, द्रौपदीके पांचो पुत्र, विराट, पाञ्चाल और केकय

वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः ॥ १६ ॥
प्रावाद्यन्त संहृष्टाः पाण्डूनां तत्र सैनिकाः ।
अपश्यन्स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ॥ १७ ॥
अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा ॥ १८ ॥
धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ १९ ॥
केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्याः पञ्चालसृञ्जयाः ।
पाण्डवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥
अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं बिभित्सवः ।
ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ २१ ॥
जयमाकांक्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
तथा तु वर्तमाने वै संग्रामेऽतिभयङ्करे ॥ २२ ॥
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ।
पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशङ्गतम् ॥ २३ ॥
प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ।

देशीय लोग अभिमन्युके इस कर्मको देखकर सिंहनाद करने लगे; पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा हर्षित होकर युद्धके बाजे बजाने लगे ॥ ध्वजाओंके अग्रभागमें धर्म, वायु इन्द्र और अश्विनी कुमारोंकी प्रतिमासे युक्त रथोंपर स्थित द्रौपदीके पांचों महारथ पुत्र अत्यन्त वैरी दुःशासनको पराजित देखकर अभिमन्युकी प्रशंसा करने लगे । १५–१९

राजा युधिष्ठिरके अनुयायी सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, कैकय योद्धा, धृष्टकेतु, मत्स्यदेशीय योद्धा लोग और पाञ्चाल तथा पाण्डवोंके सम्पूर्ण योद्धा लोग प्रसन्न और हर्षित होकर द्रोणाचार्यकी सेनाको भेद करनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक आगे बढने लगे । अनन्तर जयकी इच्छावाले उन सम्पूर्ण योद्धाओंके संग तुम्हारी ओरके शूरवीर पीछे न हटनेवाले योद्धाओंका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ (१९—२२)

महाराज ! उस भयङ्कर युद्धके उपस्थित होनेपर दुर्योधनने कर्णसे कहा, हे कर्ण ! देखो वीर दुःशासन सूर्यके समान प्रतापवान् होकर शत्रुओंकी सेनाको भस्म करते रहते हैं, परन्तु अभिमन्युके निकटमें आज वह परास्त हुए हैं ! और ये सब

अथ चैते सुसंरब्धाः सिंहा इव बलोत्कटाः ॥ २४ ॥
सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पाण्डवाः ।
ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ॥ २५ ॥
अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत्तव ।
तस्य चाऽनुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ २६ ॥
अवज्ञापूर्वकं शूरः सौभद्रस्य रणाजिरे ।
अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ २७ ॥
अविध्यत्त्वरितो राजन्द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः
तं तथा नाऽशकत्कश्चिद् द्रोणाद्वारयितुं रथी ॥ २८ ॥
आरुजन्तं रथव्रातान्वज्रहस्तात्मजात्मजम् ।
ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुष्मताम् ॥ २९ ॥
सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ।
सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान्॥ ३० ॥
समरे शत्रुदुर्धर्षमभिमन्युमपीडयत् ।
स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनाऽस्त्रवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥
समरेऽमरसङ्काशः सौभद्रो न व्यशीर्यत ।

बलके घमण्डसे मतवारे सिंहके समान पराक्रमी पाण्डव लोग क्रुद्ध हो कर अभिमन्युकी रक्षा करते हुए चले आते हैं। (२३—२५)

अनन्तर तुम्हारे पुत्रके हितकी इच्छा करनेवाले कर्ण क्रुद्ध होकर अभिमन्युके ऊपर अपने अनेक तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे, और अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे अभिमन्युके अनुयायियों को विद्ध करके उनकी अवज्ञा करते हुए अपने बाणोंको वर्षाने लगे। हे राजन् ! महा- [illegible] अभिमन्यु द्रोणाचार्यके समीपमें [illegible] जानेकी इच्छासे कर्णको तिहत्तर बाणोंसे विद्ध किया। उस समयमें कोई भी योद्धा रथसमूहोंको पीडित करने वाले अर्जुनपुत्र अभिमन्युको द्रोणाचार्य के सम्मुखमें जाते देख, उन्हें निवारण करने में समर्थ न हुए। (२५-२९)

अनन्तर सपूर्ण अस्त्रधारियों में अग्रणी, मानी और विजयकी इच्छा करने वाले परशुरामके शिष्य महावीर कर्ण सैकडों तथा सहस्रों उत्तम अस्त्रोंको चलाकर रणभूमि में अभिमन्युको पीडित करने लगे। देवतोंके समान पराक्रमी अर्जुनपुत्र अभिमन्यु राधानन्दन कर्ण की अस्त्र-वर्षासे अत्यन्त पीडित होकर

ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भल्लैरानतपर्वभिः ॥ ३२ ॥
छित्त्वा धनूंषि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत् ।
धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३३ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ।
कर्णोऽपि चास्य चिक्षेप बाणान्सन्नतपर्वणः ॥ ३४ ॥
असम्भ्रान्तश्च तान्सर्वानगृह्णात्फाल्गुनात्मजः ।
ततो मुहूर्तात्कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
स ध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्त्वा भूमावपातयत् ।
ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥ ३६ ॥
सौभद्रमभ्ययात्तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम् ।
तत उच्चुक्रुशुः पार्थास्तेषां चानुचरा जनाः ।
वादित्राणि च सञ्जघ्नुः सौभद्रं चाऽपि तुष्टुवुः ॥३७॥ १७१९

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि कर्णदुःशासनपराभवे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

सञ्जय उवाच— सोऽतिगर्जन्धनुष्पाणिर्ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ।
तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत् ॥ १ ॥

भी दुःखित नहीं हुए; बल्कि शिलापर घिसे हुए चोखे बाणोंसे दूसरे शूरवीर योद्धाओंके धनुषको काटकर, फिर हंसते मण्डलाकार गतिसे धनुष घुमाते हुए शीघ्रतापूर्वक विषैले सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर छत्र, ध्वजा, सारथी और घोडोंके सहित कर्ण को पीडित करने लगे। (२९–३४)

कर्ण भी अनेक तीक्ष्ण बाणोंको अभिमन्युके ऊपर चलाने लगे; अर्जुनपुत्र अभिमन्युने निर्भयचित्तसे कर्णके चलाये हुए उन सम्पूर्ण बाणों को ग्रहण किया। अनन्तर पराक्रमी वीर अभिमन्युने मुहूर्त्त भरमें एक बाणसे कर्णकी ध्वजा और धनुषको काटके पृथ्वी में गिरा दिया ॥ अनन्तर कर्णका कनिष्ठ भ्राता उन्हें विपद्ग्रस्त देख कर धनुष चढाकर अभिमन्युके समीप प्राप्त हुआ। अनन्तर सम्पूर्ण पाण्डव और उन के अनुयायी योद्धा लोग हर्षपूर्वक युद्धके बाजे बजा कर सिंहनाद करते हुए अभिमन्युकी प्रशंसा करने लगे। (३४–३७) १७१९

द्रोणपर्वमें चालीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें इकतालिस अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! कर्णका कनिष्ठ भ्राता अत्यन्त ही तर्जन गर्जन धनुषटङ्कार करते हुए उन दोनों महात्माओंके दोनों रथोंके बीच में आकर

सोऽविध्यद्दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम् ।
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ॥ २ ॥
पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुषम् ।
दृष्ट्वाऽर्पितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताऽभवन्॥ ३ ॥
तस्याऽभिमन्युरायस्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा ।
शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात्प्रापतद्भुवि ॥ ४ ॥
कर्णिकारमिवाऽऽधूतं वातेनाऽऽपतितं नगात् ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन्कर्णो व्यथां ययौ ॥ ५ ॥
विमुखीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः ।
अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाऽभिदुद्रुवे ॥ ६ ॥
ततस्तद्विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमत् ।
क्रुद्धोऽभिमन्युरभिनत्तिग्मतेजा महारथः ॥ ७ ॥
कर्णस्तु बहुभिर्बाणैरर्द्यमानोऽभिमन्युना ।
अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोऽनीकमभज्यत ॥ ८ ॥
शलभैरिव चाऽऽकाशे धाराभिरिव चाऽऽवृते ।

उपस्थित हुए; और हंसते हंसते छत्र ध्वजा घोडे और सारथीके सहित पराक्रमी अभिमन्युको शीघ्रताके सहित दश बाणोंसे विद्ध किया। तुम्हारी ओरके योद्धा लोग पिता और पितामहके समान अलौकिक कर्म करनेवाले अभिमन्युको उसके बाणोंसे पीडित देखकर आनन्दित हुए ॥ (१-३)

परन्तु अभिमन्युने हंसते हुए धनुष खींचकर एक ही बाणसे उसका शिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिया॥ हे राजेन्द्र! जैसे पर्वतके ऊपरसे वायुके झोकेसे कर्णिकार वृक्ष गिरता है, वैसे ही उसका शिर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ अपने भाई को रथसे पृथ्वीपर गिरता हुआ देखकर कर्ण अत्यन्त ही दुःखित हुए॥ अभिमन्यु कङ्कपत्रयुक्त बाणोंसे कर्ण को युद्धसे विमुख करके शीघ्रताके सहित दूसरे धनुर्द्धारियोंकी ओर दौडे ॥ (४-६)

वह महातेजस्वी पराक्रमी अभिमन्यु क्रुद्ध होकर हाथी, घोडे और रथोंसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको तितर बितर करने लगे ॥ उधर कर्ण अभिमन्युके अनेक बाणोंसे विद्ध तथा पीडित होकर वेगगामी घोडोंसे युक्त रथपर चढे हुए युद्धभूमिसे पृथक् हुए, तब उनकी सम्पूर्ण सेना अभिमन्युके संमुखसे भागने लगी ॥ (७-८)

अभिमन्योः शरै राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ९ ॥
तावकानां तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः ।
अन्यत्र सैन्धवाद्राजन्न स कश्चिदतिष्ठत ॥ १०॥
सौभद्रस्तु ततः शङ्खं प्रध्माय पुरुषर्षभः ।
शीघ्रमभ्यपतत्सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥ ११ ॥
स कक्षेग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।
मध्यं भारत सैन्यानामार्जुनिः प्रत्यवर्तत ॥ १२ ॥
रथनागाश्वमनुजानर्दयन्निशितैः शरैः ।
सम्प्रविश्याऽकरोद्भूमिं कबन्धगणसंकुलाम् ॥ १३ ॥
सौभद्रचापप्रभवैर्निकृत्ताः परमेषुभिः ।
स्वानेवाऽभिमुखान्घ्नन्तः प्राद्रवञ्जीवितार्थिनः ॥ १४ ॥
ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठा बहवः शिताः ।
निघ्नन्तो रथनागाश्वाञ्जग्मुराशु वसुन्धराम् ॥ १५ ॥
सायुधाः सांगुलित्राणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।

हे राजेन्द्र! अभिमन्युके बाण शलभ-पुञ्ज तथा जलधाराके समान आकाशको परिपूर्ण करने लगे; उस समयमें कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥ तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा अभिमन्युके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित हुए। उन सब योद्धाओंके बीच केवल सिन्धुराज जयद्रथको छोडके और कोई भी युद्धभूमिमें खडे न हो सके ॥ (९-१०)

हे भरतर्षभ ! अनन्तर पुरुषसिंह अभिमन्यु अपना शंख बजाकर शीघ्र ही भारती सेनाकी ओर बढे, और अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंको इस प्रकारसे भस्म करने लगे, जैसे अग्नि रुईको शीघ्रही भस्म कर देती है ॥ उस सेनाके बीच प्रवेश करके अभिमन्युने अपने चोखे बाणोंसे रथी, हाथी, घोडे और पैदल चलनेवाले योद्धाओंका वध करके रणभूमिको सैकडों कबन्धोंसे युक्त कर दिया ॥ (११-१३)

कितने ही शूरवीर योद्धा उनके तीक्ष्ण अस्त्रोंसे क्षत विक्षत शरीर होके अपने जीवनकी रक्षाके निमित्त अपनी ओरके योद्धाओंकाही वध करते हुए अभिमन्यु के समीपसे भागने लगे। उसके अनेक भयङ्कर चोखे बाण रथी, गजपति और घुडसवारोंका वध करके पृथ्वीमें गिरने लगे। कितने ही वीरोंके अस्त्रशस्त्र, अंगुलित्राण गदा कवच सुवर्णसे भूषित वीर पुरुषोंकी सुन्दर भुजा

दृश्यन्ते वाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १६ ॥
शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन्सहस्रशः ॥ १७ ॥
सोपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डैश्च बन्धुरैः।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्बहुधा पतितैर्युगैः ॥ १८ ॥
शक्तिचापासिभिश्चैव पतितैश्च महाध्वजैः।
चर्मचापशरैश्चैव व्यवकीर्णैः समन्ततः ॥ १९ ॥
निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशाम्पते।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेनाऽऽसीत्सुदारुणा ॥ २० ॥
वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम्।
प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्धनः ॥ २१ ॥
स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत्।
सौभद्रश्चाऽद्रवत्सेनां मन्वराश्वरथद्विपान् ॥ २२ ॥
कक्षमग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून्।
मध्ये भारत सैन्यानामार्जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥ २३ ॥

कट कट कर पृथ्वीमें गिरती हुई दिखाई देने लगी ॥ सहस्र सहस्र बाण, धनुष, तलवार, कुण्डलोंके सहित सिर और मालासे शोभायमान योद्धाओंके मृत शरीर भूमिमें गिरते हुए दिखाई देने लगे ॥ (१४-१७)

हे राजेन्द्र ! क्षण भरके बीचमें भागते, और मरते हुए हाथी, घोडे, रथोंके समूह, रथकी धुरी, चक्र, ध्वजा, ढाल, दण्ड, दूसरी अनेक युद्धकी सामग्री, और योद्धाओंके शरीर, धनुष, बाण, शक्ति और उत्तम तलवारोंके इधर उधर गिरनेसे वह रणभूमि अत्यन्तही भयङ्कर दिखाई देने लगी ॥ (१८-२०)

अस्त्रोंकी चोटसे पीडित क्षत्रिय योद्धाओंके आर्त्तनाद शब्दको सुनकर कायरोंके भयको बढानेवाला महाघोर शब्द उत्पन्न होने लगा ॥ हे भारत ! उस शब्दसे सम्पूर्ण दिशा परिपूर्ण हो गई, परन्तु अभिमन्यु हाथी, घोडे, रथ और पैदल चलनेवाले वीरोंका वध करते हुए सेनाके बीच भ्रमण करने लगे ॥ जैसे अग्नि सूखे हुए तृणसमूहके बीच जलती हुई दीख पडती है, वैसे ही अर्जुनपुत्र अभिमन्यु कुरुसेनाके बीच शत्रुओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे भस्म करते हुए दिखाई देने लगे ॥ (२१-२३)

हे भारत ! उस समय अभिमन्यु

विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चाऽपि भारत ।
तं तदा नाऽनुपश्यामः सैन्ये च रजसाऽऽवृते ॥ २४ ॥
आददानं गजाश्वानां नृणां चाऽऽयूंषि भारत ।
क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यन्दिने यथा ॥ २५ ॥
अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान् ।
स वासवसमः संख्ये वासवस्याऽऽत्मजात्मजः ॥
अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥ २६ ॥ [१७४५]

इति श्रीमहाभारते ० वैयासिक्यां अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

धृतराष्ट्र उवाच—बालमत्यन्तसुखिनं स्ववाहुबलदर्पितम् ।
युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥ १ ॥
गाहमानमनीकानि सदश्वैश्च त्रिहायनैः ।
अपि यौधिष्ठिरात्सैन्यात्कश्चिदन्वपतद्बली ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच— युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः ॥ ३ ॥
धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाऽभ्यपतन्रणे ।

सम्पूर्ण सेनाके पांवके धक्केसे धूलि उड-नेसे उसमें छिप गये, और सेनाके बीच इधर उधर भ्रमण करनेसे हम लोग उन्हें देख न सके ॥ क्षण भरके बीचमें मैंने फिर देखा, कि वह दोपहरके सूर्य समान प्रकाशित होकर शत्रुओंको पीडित करते; तथा हाथी घोडे और पैदल चलने वाले वीरोंका वध करते हुए रणभूमिमें भ्रमण कर रहे हैं। हे राजन् ! अर्जुनपुत्र अभिमन्यु कुरुसेनाके बीचमें इंद्रके समान प्रकाशित होने लगे ॥ (२४—२६)

द्रोणपर्वमें इकतालिस अध्याय समाप्त । १७४५

द्रोणपर्वमें बियालिस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! वह बालक अत्यन्त सुखी, अपने बाहु बलसे मतवारा, युद्धविद्याको जाननेवाला और शुद्धवंशमें उत्पन्न हुआ था; वह जिस समय प्राणकी आशा त्याग कर त्रिवर्षीय उत्तम घोडोंसे युक्त रथपर चढके हमारी सेनाके बीच प्रविष्ट हुआ, उस समय युधिष्ठिरकी सेनामेंसे कौन कौन बलवान योद्धा उसके अनुगामी हुए थे ? (१—२)

सञ्जय बोले, महाराज ! युधिष्ठिर भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय धृष्टकेतु, और मत्स्यदेशीय योद्धा क्रुद्ध होकर उससमय अभिमन्युका अनुगमन

तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह ॥ ४ ॥
अभ्यद्रवन्परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाऽभवन् ॥ ५ ॥
ततस्तद्विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद्बलम् ।
जामाता तव तेजस्वी संस्तंभयिषुराद्रवत् ॥ ६ ॥
सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः ।
स पुत्रगृद्धिनः पार्थान्सहसैन्यानवारयत् ॥ ७ ॥
उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
वार्धक्षत्रिरुपासेधत्प्रवणादिव कुञ्जरः ॥ ८ ॥
धृतराष्ट्र उवाच– अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे सञ्जयाऽऽहितम् ।
यदेकः पाण्डवान्क्रुद्धान्पुत्रप्रेप्सूनवारयत् ॥ ९ ॥
अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्यं च सैन्धवे ।
तस्य प्रब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाऽग्र्यं महात्मनः॥ १० ॥

करते हुए तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे । पाण्डव और वृष्णिवंशीय योद्धा तथा ऊपर कहे हुए सम्पूर्ण महारथ योद्धा लोग सेनाको व्यूहबद्ध करके अभिमन्यु की रक्षाके निमित्त उसके अनुगामी हुए ॥ (३—५)

तुम्हारी ओरके योद्धा लोग उन शूर वीर तथा पराक्रमी योद्धाओंको आते देखकर रणभूमिसे विमुख हुए । तुम्हारे तेजस्वी पराक्रमी दामाद तुम्हारी सेनाको युद्धभूमिसे विमुख होते देख पाण्डवोंको निवारण करनेकी इच्छासे उनके संमुख आकर उपस्थित हुए । हे राजेन्द्र ! सिन्धुराज के पुत्र जयद्रथ अभिमन्युकी रक्षा करनेवाले पाण्डवोंको सेनाके सहित युद्धभूमिमें निवारण करने लगे । जैसे मतवारा हाथी उतारवाली भूमिपर स्थित शत्रुओंको अनायास ही निवारण करता है, वैसे ही प्रचण्ड धनुष्य ग्रहण करने वाले महारथ जयद्रथने दिव्य अस्त्रोंको प्रकाशित करके उन लोगोंको युद्धसे निवारण किया । (५—८)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! मैं बोध करता हूं, कि सिन्धुराज जयद्रथ के ऊपर अत्यन्त कठिन भार अर्पित हुआ था, क्योंकि उन्होंने अकेले ही पुत्रकी रक्षा करनेवाले क्रुद्ध पाण्डवोंको रणभूमिमें निवारित किया ? मैं सिन्धुराज जयद्रथको अत्यन्त अद्भुत पराक्रमी और बलवान समझता हूं । तुम उनके उसही प्रबल बल पराक्रमसे युक्त युद्धके कर्मोंका वृत्तान्त मेरे समीपमें वर्णन करो॥

किं दत्तं हुतमिष्टं वा किं सुतप्तमथो ततः ।
सिन्धुराजो हि येनैकः पाण्डवान्समवारयत् ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच- द्रौपदीहरणे यत्तद्भीमसेनेन निर्जितः ।
मानात्स तप्तवान्राजा वरार्थी सुमहत्तपः ॥ १२ ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः सन्निवर्त्य सः ।
क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसन्ततः ॥ १३ ॥
देवमाराधयच्छर्व गृणन्ब्रह्म सनातनम् ।
भक्तानुकम्पी भगवांस्तस्य चक्रे ततो दयाम् ॥ १४ ॥
स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाऽऽह हरः सिन्धुपतेः सुतम् ।
वरं वृणीष्व प्रीतोऽस्मि जयद्रथ किमिच्छसि ॥ १५ ॥
एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः ।
उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥ १६ ॥
पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान् ।
वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत ॥ १७ ॥
एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाऽब्रवीत् ।

उन्होंने ऐसा कौनसा दान, होम, व्रत वा तपस्या की थी, कि जिससे अकेले ही युद्धभूमिमें क्रुद्ध पाण्डवोंको निवारण करनेमें समर्थ हुए ॥ (९—११)

सञ्जय बोले, राजा जयद्रथ द्रौपदीके हरण समयमें जो भीमसेनके संमुखसे पराजित हुए थे, उस ही निमित्त उन्होंने वर पानेकी इच्छासे अत्यन्त कठीन तपस्या की थी ॥ वह विषयवासना से इन्द्रियोंको निवृत्त करके भूख प्यास, सर्दी, गर्मी आदि क्लेशोंको सहकर शरीरसे कृशित हो अत्यन्त काठिन तपस्या करके सनातन ब्रह्म महादेवकी स्तुति करते हुए उनकी आराधना वा उपासना करने लगे । अनन्तर भक्त वत्सल महादेवने उनके ऊपर दया की । (१२–१४)

भक्तोंपर कृपा करने वाले भोलानाथ ने सिन्धुराजपुत्र जयद्रथसे स्वप्नकालमें यह वचन कहा, "हे जयद्रथ ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम कौनसा वर मांगनेकी इच्छा करते हो ? वह मुझसे स्पष्ट रूपसे कहो ॥ महादेवका ऐसा वचन सुन व्रत करने वाले जयद्रथ ने विनयपूर्वक हाथ जोडकर यह वचन कहा, हे देवोंके देव ! मैं युद्धमें अकेले ही रथपर चढके महाबली अत्यन्त पराक्रमी सम्पूर्ण पाण्डवोंको जीतनेकी इच्छा करता हूं ॥ (१५—१७)

ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थं धनञ्जयम् ॥ १८ ॥
वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पाण्डुनन्दनान् ।
एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाऽबुध्यत पार्थिवः ॥ १९ ॥
स तेन वरदानेन दिव्येनाऽस्त्रबलेन च ।
एकः संवारयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २० ॥
तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान्भयमाविशत् ।
परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमाहितम् ।
उत्क्रुश्याऽभ्यद्रवन्राजन्येन यौधिष्ठिरं बलम् ॥२२॥ [१७६७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि
अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

सञ्जय उवाच—यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्रमम् ।
शृणु तत्सर्वमाख्यास्ये यथा पाण्डूनयोधयत् ॥ १ ॥
तमूहुर्वाजिनो वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः ।

जब जयद्रथने इस प्रकारसे वर माँगा, तब देवोंके देव महादेव प्रसन्न होकर उनसे यह वचन बोले, कि हे तात ! मैं तुमको यह वर देता हूं, कि अर्जुनको छोड़ कर युद्धमें तुम चारों पाण्डवोंको जीत सकोगे। राजा जयद्रथने महादेवके वचनोंको मानकर निद्रासे सावधान हुए। महाराज ! राजा जयद्रथने उस ही वरके प्रभाव और दिव्य अस्त्रोंके बलसे अकेलेही सम्पूर्ण पाण्डवोंकी सेनाके सहित युद्धसे निवारण किया था ॥ (१८—२०)

उनके धनुषटङ्कार और तनुत्राणके शब्दको सुनकर शत्रुसेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग भयभीत होगये; और तुम्हारी सेनाके शूरवीर योद्धा अत्यन्त ही आनन्दित हुए ॥ हे राजेन्द्र ! तुम्हारे ओरके योद्धाओंने सिन्धुराज जयद्रथके ऊपर सम्पूर्ण भार अर्पित देखकर सिंहनाद करते हुए युधिष्ठिरकी सेनाको आक्रमण किया ॥ (२१—२२)[१७६७]

द्रोणपर्वमें बियालिस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें तैतालिस अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! तुम मुझसे सिन्धुराजके बल और पराक्रमका विषय पूछते हो, इससे सिन्धुराज जयद्रथने पाण्डवोंके सङ्ग जिस प्रकारसे युद्ध किया, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं; चित्त लगाकर सुनो॥ सारथीके वशमें चलनेवाले वायुके

विकुर्वाणा बृहन्तोऽश्वाः श्वसनोपमरंहसः ॥ २ ॥
गन्धर्वनगराकारं विधिवत्कल्पितं रथम् ।
तस्याऽभ्यशोभयत्केतुर्वाराहो राजतो महान् ॥ ३ ॥
श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च ।
स बभौ राजलिङ्गैस्तैस्तारापतिरिवाऽम्बरे ॥ ४ ॥
मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितं तमयस्मयम् ।
वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवाऽऽवृतम् ॥५॥
स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान्बहून् ।
तत्खण्डं पूरयामास यद्व्यदारयदार्जुनिः ॥ ६ ॥
स सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टभिश्च वृकोदरम् ।
धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः ॥ ७ ॥
द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम् ।
केकयान्पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरं तु सप्तत्या ततः शेषानपानुदत् ।

समान वेगगामी सिन्धुदेशीय उत्तम घोडे रथ सहित जयद्रथको लेकर पाण्डवोंके संमुख बढे ॥ उनका गन्धर्व नगर के समान विधिपूर्वक सज्जित रथ और वराह चिन्हसे युक्त सुवर्णभूषित उत्तम ध्वजा अत्यन्त ही शोभित होने लगी ॥ (१—३)

जैसे आकाशमें तारोंके बीच चन्द्रमा शोभित होता है, वैसेही वह श्वेत छत्र, श्वेत पताका, श्वेत चंवर आदि नाना भांतिके राजचिन्हसे युक्त होकर सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके बीच शोभित होने लगे ॥ उनके गलेमें मोतीकी माला, वज्रमणि और सुवर्ण भूषित लोहमयी कवच मणियोंसे युक्त होकर रणभूमिमें इस प्रकार से शोभित होने लगी, जैसे तारोंके सहित आकाश शोभायमान लगता है । अभिमन्युने शत्रुसेनाके व्यूहका जो जो अङ्ग विदारण किया, जयद्रथने अपने प्रचण्ड धनुषको फेरते हुए शत्रुओं के ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा कर, उन सम्पूर्ण स्थानोंको अपनी सेनासे फिर पूर्ण कर दिया ॥ (४—६)

उन्होंने तीन बाणोंसे सात्यकि, आठ से भीमसेन, साठ बाणोंसे धृष्टद्युम्न, दश बाणोंसे विराट, पांचसे द्रुपद, सात बाणोंसे शिखण्डी, पचीस बाणोंसे केकयदेशीय योद्धाओंको, तीन तीन बाणोंसे द्रौपदीके पुत्रोंको, और सत्तर बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको विद्ध करके फिर अनेक

इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ९ ॥
अथाऽस्य शितपीतेन भल्लेनाऽऽदिश्य कार्मुकम् ।
चिच्छेद प्रहसन्राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ १० ॥
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध दशभिः पार्थं तांश्चैवाऽन्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ११ ॥
तत्तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च छत्रं च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १२ ॥
सोऽन्यदादाय बलवान्सज्जं कृत्वा च कार्मुकम् ।
भीमस्याऽपातयत्केतुं धनुरश्वांश्च मारिष ॥ १३ ॥
स हताश्वादवप्लुत्य च्छिन्नधन्वा रथोत्तमात् ।
सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥ १४ ॥
ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु साध्विति वादिनः ।
सिन्धुराजस्य तत्कर्म प्रेक्ष्याऽश्रद्धेयमद्भुतम् ॥ १५ ॥
संक्रुद्धान्पाण्डवानेको यद्दधाराऽस्त्रतेजसा ॥

बाणों को वर्षाकर बाकी बचे हुए सम्पूर्ण योद्धाओंको विद्ध किया, उस समय जयद्रथका पराक्रम अद्भुत रूपसे दिखाई देने लगा। (७–९)

हे राजन्! अनन्तर महाप्रतापी राजा युधिष्ठिर हंसते हंसते एक तीक्ष्ण भल्ल ग्रहण करके जयद्रथसे बोले, "यही तुम्हारा धनुष काटता हूं," ऐसा कहकर उस भल्ल से जयद्रथका धनुष काट दिया॥ जयद्रथने निमेष भरमें दूसरा धनुष ग्रहण करके दस बाणोंसे राजा युधिष्ठिर और तीन तीन बाणोंसे वहांपर स्थित दूसरे सम्पूर्ण योद्धाओंको विद्ध किया॥ भीमसेनने जयद्रथके हस्तलाघवको देखकर तीन बाणोंसे उनका धनुष, ध्वजा और छत्र काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया। (१०–१२)

महा बलवान् सिन्धुराज जयद्रथने फिर दूसरा धनुष ग्रहण करके उसपर शीघ्र ही रोदा चढा दिया; और भीमसेनके रथकी ध्वजा, चारों घोडे और धनुषको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया॥ जैसे सिंह पर्वतके शृङ्गपर चढता है, वैसे ही भीमसेन धनुषके कटने और घोडोंके रहित होनेपर अपने रथसे कूद कर सात्यकिके रथपर जा चढे॥ अनन्तर तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग सिन्धुराज जयद्रथके इस अद्भुत विश्वास योग्य कर्मको देखकर आनन्दित होके धन्य धन्य कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे॥ (१३—१५)

तत्तस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाऽभ्यपूजयन् ॥ १६ ॥
सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः ।
पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः ॥ १७ ॥
यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपश्चालकेकयाः ।
पाण्डवाश्चाऽन्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम् ॥ १८ ॥
यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाऽहितः ।
तं तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥ [१७८६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

सञ्जय उवाच— सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पाण्डुषु ।
सुघोरमभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ १ ॥
प्रविश्याऽथाऽऽर्जुनिः सेनां सत्यसन्धो दुरासदः ॥
व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २ ॥
तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम् ।

उन्होंने जो अकेले ही अपने अस्त्रोंके प्रभावसे क्रुद्ध हुए सम्पूर्ण पाण्डवोंको युद्धसे निवारण किया,उससे युद्ध देखने वाले प्राणी उनके पराक्रम और युद्धके कर्मोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ पहिले सवारोंमें मुख्य गजपति और घुडसवार योद्धा जो अभिमन्युके शस्त्रोंसे मरके पृथ्वीमें गिरे थे, उसीसे व्यूहके बीच पाण्डवोंके प्रवेश करनेका मार्ग दीख पडा था ? परन्तु सिन्धुराज जयद्रथने उसे अपनी सेनासे फिर रुद्ध कर दिया ॥ पाण्डव, मत्स्य, पाञ्चाल और केकय-देशीय योद्धाओंने यत्नवान होकर अकेले सिन्धुराज जयद्रथकोही आक्रमण किया॥ जिन जिन वीरोंने यत्नवान होकर द्रोणाचार्यका बनाया हुआ तुम्हारी सेनाका व्यूह तोडनेकी इच्छा की, जयद्रथने वर के प्रभावसे उन सम्पूर्ण वीरोंको युद्ध भूमिमें निवारण किया ॥ (१६–१९)

द्रोणपर्वमें तैंतालिस अध्याय समाप्त । [१७८६]

द्रोणपर्वमें चौवालिस अध्याय ।

सञ्जय बोले, जयकी इच्छा करनेवाले पाण्डवलोग जब सिन्धुराज जयद्रथके सम्मुखसे आगे न बढ सके, तब पाण्डवोंकी सेनाके सङ्ग तुम्हारी सेनाका महा घोर युद्ध होने लगा ॥ जैसे मकर मच्छ समुद्रके जलको मथते हुए भ्रमण करते हैं, वैसे ही महाबली तेजस्वी सत्य पराक्रमी अभिमन्यु तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश करके अपने अस्त्रोंके बलसे उसे तितर बितर करने लगे ॥ मुख्य मुख्य योद्धा लोग अभिमन्युको सम्पूर्ण सेना-

यथा प्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः ॥ ३ ॥
तेषां तस्य च सम्मर्दो दारुणः समपद्यत ।
सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ॥ ४ ॥
रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैस्तथाऽऽर्जुनिः ।
वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ५ ॥
तस्य विव्याध बलवाञ्शरैरश्वानजिह्मगैः ।
वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥ ६ ॥
तेनाऽन्तरेणाऽभिमन्योर्यन्ताऽपासारयद्रथम् ।
रथव्रजास्ततो हृष्टाः साधुसाध्विति चुक्रुशुः ॥ ७ ॥
तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन् ।
आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ८ ॥
सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत् ।
अब्रवीच्च न मे जीवञ्जीवतो युधि मोक्ष्यसे ॥ ९ ॥
तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना ।

का नाश करते देखकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ (१—३)

उन महारथ वीरोंके सङ्ग अभिमन्यु-का महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा। अर्जुनपुत्र पराक्रमी अभिमन्युने उन सम्पूर्ण शत्रुओंके रथ समूहसे घिरकर शीघ्रगामी बाणोंसे वृषसेनके धनुषको काटकर उनके सारथीको भी तीक्ष्णबाण मारके पृथ्वीमें गिराया, और उनके रथ के चारों घोडोंको भी अपने बाणोंसे विद्ध किया । वृषसेनके घोडे बाणोंसे विद्ध होकर वायुके समान गमन करते हुए शीघ्रही रणभूमिसे पृथक् हुए । (४-६)

अभिमन्युके सारथीने उसही समय अवसर पाकर अभिमन्युके रथको शीघ्र ही वहांसे दूसरी ओर चलाया । उसके सारथीकी ऐसी निपुणता देखकर अभि-मन्युके अनुयायी सम्पूर्ण रथी धन्य धन्य करके उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ उधर अभिमन्युका रथ वसातिराजके समीपमें जाकर स्थित हुआ । वसातिराज क्रुद्ध होकर सिंहके समान शत्रुओंका नाश करने वाले अभिमन्युको अपने निकट देखकर शीघ्रही आक्रमण किया, और रुक्मपङ्ख युक्त साठ बाणोंसे अभिमन्यु को विद्ध करके यह वचन बोले, " मेरे जी-वित रहते तुम हमारे सम्मुखसे जीतेजी मुक्त न हो सकोगे।" (७—९)

परन्तु अभिमन्युने लोहमय कवच धारण करने वाले वसातिराजके हृदयमें

विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ॥ १० ॥
वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥ ११ ॥
विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः ।
तद्युद्धमभवद्रौद्रं सौभद्रस्यारिभिः सह ॥ १२ ॥
तेषां शरान्सेष्वसनाञ्शरीराणि शिरांसि च ।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः॥१३॥
सखङ्गाः साङ्गुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः ।
अपश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १४ ॥
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च महाध्वजैः ।
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥ १५ ॥
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ १६ ॥
अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः ।
रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाऽभवन्मही ॥ १७ ॥
निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नानाजनपदेश्वरैः ।

एक तीक्ष्ण बाणसे प्रहार किया, उसके लगते ही वह प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ हे राजन् ! वसातिराजको मरते देखकर मुख्य मुख्य क्षत्रिय वीरोंने क्रुद्ध होकर अभिमन्युका वध करनेकी इच्छासे धनुष चढ़ाकर उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ उस समूहमें उन सम्पूर्ण योद्धाओंके सङ्गमें अभिमन्युका महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा। (१०-१२)

अर्जुनपुत्र अभिमन्यु क्रुद्ध होकर उन सम्पूर्ण शूरवीरोंके धनुष बाण शरीर माला और कुण्डलोंसे युक्त शिरोंको अपने अस्त्रोंसे काट काट कर पृथ्वी में गिराने लगे ॥ तलवार, अंगुलित्राण, पट्टिश, परश्वध और सुवर्णसे भूषित वीरोंकी भुजा कट कट कर पृथ्वीमें गिरती हुई दिखाई देने लगी ॥ माला आभूषण वस्त्र, रथकी बडी बडी ध्वजा, कवच, ढाल, गलेके हार, मुकुट, छत्र, चंवर, रथके चक्र, धुरी, दण्ड, धनुकर्ष, पताका, सारथी, घोडे तथा मरे हुए वीरपुरुषोंके शरीरसे वह रणभूमि परिपूरित होगई ॥ (१३-१७)

नाना प्रकारके वीर योद्धा तथा अनेक देशोंसे आये हुए जयकी इच्छा करनेवाले वीर क्षत्रिय राजाओंके मृत शरीर

जयगृद्धैर्वृता भूमिर्दारुणा समपद्यत ॥ १८ ॥
दिशो विचरतस्तस्य सर्वाश्च प्रदिशस्तथा।
रणेऽभिमन्योः क्रुद्धस्य रूपमन्तरधीयत ॥ १९ ॥
काञ्चनं यद्यदस्याऽऽसीद्वर्म चाऽऽभरणानि च।
धनुषश्च शराणां च तदपश्याम केवलम् ॥ २० ॥
तं तदा नाऽशकत्कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम्।
आददानं शरैर्योधान्मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥२१ ॥[१८०७]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

सञ्जय उवाच— आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान्काल इवाऽऽगते ॥ १ ॥
स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली।
अभिमन्युस्तदाऽनीकं लोडयन्समदृश्यत ॥ २ ॥
प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः।
सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणः ॥ ३ ॥
सत्यश्रवसि चाऽऽक्षिप्ते त्वरमाणा महारथाः।

से वह रणभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर शोभ होने लगी ॥ चारों ओर भ्रमण करनेवाले क्रुद्ध अभिमन्युकी मूर्ति उस समय रण भूमिके बीच नहीं देख पडती थी; केवल उसके धनुष, बाण कवच और दूसरे सब आभूषण जो सुवर्णयुक्त थे उन्हींकी चमक दमक देख पडती थी ॥ वह जिस समय योद्धाओंकी मण्डलीमें धनुष चढा कर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे उस समय कोई पुरुष उनकी ओर देखनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ (१८–२१) [१८०७]

द्रोणपर्वमें चौवालीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें पचालिस अध्याय।

सञ्जय बोले, जिस प्रकार समय पूर्ण होनेसे यमराज सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण को संहार करते हैं, वैसेही अभिमन्यु सम्पूर्ण शूरवीरोंका नाश करने लगे ॥ वह महातेजस्वी इन्द्रके समान पराक्रमी इन्द्रपौत्र अभिमन्यु शत्रुओंकी सेनाको तितर बितर करके युद्ध करते हुए इन्द्र के समान रणभूमिमें शोभित होने लगे ॥ हे राजेन्द्र! जैसे महाबलवान् क्रुद्ध सिंह हरिणको आक्रमण करता है, वैसेही क्षत्रिय योद्धाओंमें मुख्य यमराजके समान अभिमन्युने शत्रुसेनाके बीच प्रविष्ट होके सत्यश्रवाको आक्रमण किया। (१–३)

सत्यश्रवाको अभिमन्युके अस्त्रोंसे पीडित देखकर महारथी योद्धा लोग नाना

प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ॥ ४ ॥
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुङ्गवाः ।
स्पर्धमानाः समाजग्मुर्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ५ ॥
क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम् ।
जग्राह तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवार्णवे ॥ ६ ॥
ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः ।
न ते प्रतिन्यवर्त्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ॥ ७ ॥
महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता ।
समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवार्णवे ॥ ८ ॥
अथ रुक्मरथो नाम मद्रेश्वरसुतो बली ।
त्रस्तामाश्वासयन्सेनामत्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः ॥ १० ॥
एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान् ।

भांतिके अस्त्रशस्त्रों को ग्रहण करके शीघ्रतापूर्वक अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ पराक्रमी क्षत्रिय योद्धाओंने "पहिले मैं, पहिले मैं" ऐसा वचन कहते हुए क्रोधपूर्वक अभिमन्युका वध करनेकी इच्छासे उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ जैसे समुद्रके बीचमें तिमिङ्गिल मत्स्य छोटी छोटी मछलियोंको सम्मुख पाकर निगल लेता है, वैसे ही अर्जुनपुत्र अभिमन्युने उन सम्पूर्ण महारथ वीरोंकी सेना के पुरुषोंको अपनी ओर चढे आते देखकर तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर उनका नाश करने लगे ॥ (४–६)

जैसे सम्पूर्ण नदी समुद्रमें पहुंचकर फिर आगे बढती हुई नहीं दीख पडती, वैसे ही युद्धमें पीछे न हटनेवाले जो शूरवीर योद्धा लोग अभिमन्युके समीप उपस्थित हुए, वे उसके सम्मुखसे बचकर फिर पीछे नहीं लौट सके ॥ उस सेनारूपी समुद्रमें वे सम्पूर्ण योद्धा लोग मानो भयङ्कर ग्राहसे पकडे गये, तथा वायुके वेगसे डगमगाती नौकाकी भांति कम्पित होने लगे ॥ (७–८)

अनन्तर मद्रराज के एक बलवान् रुक्मरथ नामक पुत्रने वहांपर उपस्थित होके उन भयभीत सेनाके पुरुषोंको धीरज देते हुए कहा, हे शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग क्यों भय करते हो? मेरे रहते यह क्या कर सकेगा? मैं ही इसके प्राण का नाश करूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह

सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥ ११ ॥
सोऽभिमन्युं त्रिभिर्बाणैर्विद्ध्वा वक्षस्यथाऽनदत् ।
त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः॥१२॥
स तस्येष्वसनं छित्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ ।
भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् ।
जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना ॥ १४ ॥
संग्रामदुर्मदा राजन्राजपुत्राः प्रहारिणः ।
वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १५ ॥
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ।
आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १६ ॥
शूरैः शिक्षाबलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः ।
दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७ ॥
छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोऽभवत् ।
वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यत ॥ १८ ॥

नहीं है ॥ ऐसा वचन कहकर उस बलवान् रुक्मरथने अच्छे प्रकारसे सज्जित हुए प्रकाशमान रथपर चढके अभिमन्युको आक्रमण किया ॥ उसने अभिमन्युके वक्षस्थलमें तीन, दाहिनी भुजामें तीन, और बायें भुजामें तीन बाणोंका प्रहार करके सिंहनाद किया ॥ (९—१२)

अर्जुनपुत्र अभिमन्युने उसके धनुष और दोनों भुजाओंको अपने बाणोंसे काटकर उसके सुन्दर नेत्र और भ्रकुटियोंसे युक्त शिरको भी काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ हे राजन् ! अभिमन्युने प्राण-नाशकी इच्छा करनेवाले यशस्वी शल्यपुत्र महामानी रुक्मरथको उसके अस्त्रोंसे मरके पृथ्वीमें गिरता हुआ देखकर युद्धविद्याको जाननेवाले, शस्त्र चलानेमें निपुण, सुवर्ण भूषित ध्वजाओंसे युक्त रुक्मरथके अनुयायी महारथ योद्धाओंने ताल प्रमाण अपने दृढ धनुषोंको चढाकर बाणोंकी वर्षासे अभिमन्युको छिपा दिया ॥ (१३—१६)

युद्धभूमिमें अकेले पराक्रमी अभिमन्युको युद्ध विद्या जानने वाले, अत्यन्त क्रोधी तरुण अवस्थावाले राजपुत्रोंके बाणोंके जालसे छिपे देखकर राजा दुर्योधन अत्यन्त ही हर्षित हुए; और मनमें समझा, कि अबकी बार अभिमन्यु अवश्य ही यमपुरीमें गमन करेगा।

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ।
अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात्ते नृपात्मजाः ॥ १९ ॥
ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष ।
आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव ॥ २० ॥
स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्त्रैर्गज इवार्दितः ।
गान्धर्वमस्त्रमायच्छद्रथमायां च भारत ॥ २१ ॥
अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम् ।
तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनामोहयताहितान् ॥ २२ ॥
एकधा शतधा राजन्दृश्यते स्म सहस्रधा ।
अलातचक्रवत्संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् ॥ २३ ॥
रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परन्तपः ।
बिभेद शतधा राजञ्शरीराणि महीक्षिताम् ॥ २४ ॥
प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषिता निशितैः शरैः ।
राजन्प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः ॥ २५ ॥

उन राजपुत्रोंने निमेष भरमें नाना प्रकारके सुवर्ण दण्डसे युक्त अनेक बाणोंको चलाकर अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को छिपा दिया ॥ हे राजन्! अभिमन्यु और उनके सारथी तथा रथके घोडे और ध्वजाके सहित उनका रथ उन सम्पूर्ण राजपुत्रोंके बाणोंसे अदृश्यके समान बोध होने लगे ॥ (१७–२०)

हे भारत ! उन्होंने उन राजपुत्रोंके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और अंकुशके प्रहारसे मतवारे हाथीके समान अत्यन्त क्रुद्ध होकर गान्धर्व अस्त्र और रथकी दुर्लक्ष्य गतिका कौशल प्रयोग किया; अर्जुनने तप करके तुंबुरु आदि गंधर्वोंसे गांधर्व अस्त्र प्राप्त किया था, उसहीसे अभिमन्युने सम्पूर्ण शत्रुओंको मोहित किया ॥ हे राजेन्द्र ! चक्रकी भांति रणभूमिमें भ्रमण करते और हस्तलाघवके सहित अस्त्रोंको चलाते हुए एक ही अभिमन्यु उस समयमें मानो सैकडों तथा सहस्रों अभिमन्यु रूपसे दीख पडने लगे ॥ (२१–२३)

हे भारत ! शत्रुनाशन अभिमन्यु रथकी गति और अस्त्र- मायाके बलसे सैकडों तथा सहस्रों क्षत्रिय योद्धाओंको मोहित करके उनका नाश करने लगे ॥ उसके तीक्ष्ण बाणोंसे सम्पूर्ण शूरवीर पुरुषोंका प्राण शरीरसे निकलकर परलोक गमन करने लगा, और उनके मृत शरीर पृथ्वीमें गिरते दिखाई देने

धनूंष्यश्वांश्च यन्तृंश्च ध्वजान्बाहूंश्च साङ्गदान् ।
शिरांसि च शितैर्बाणैस्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः ॥२६॥
चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः ।
राजपुत्रशतं तद्वत्सौभद्रेण निपातितम् ॥ २७ ॥
क्रुद्धाशीविषसङ्काशान्सुकुमारान्सुखोचितान् ।
एकेन निहतान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् ॥ २८ ॥
रथिनः कुञ्जरानश्वान्पदातींश्चापि मज्जतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रमुपायात्समर्षितः ॥ २९ ॥
तयोः क्षणमिवाऽपूर्णः संग्रामः समपद्यत ।
अथाऽभवत्ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः ॥ ३० ॥ [१८३७]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुर्योधनपराजये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह ।
संग्रामं तुमुलं घोरं जयं चैव महात्मनः ॥ १ ॥
अश्रद्धेयमिवाऽऽश्चर्यं सौभद्रस्याऽथ विक्रमम् ।

लगे ॥ उन्होंने उत्तम पानीसे बुझे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे उन लोगोंके धनुष, घोडे, सारथी, ध्वजा, चन्दनचर्चित भुजा और सुन्दर शिरोंको काटकर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ (२४-२६)

फल लगे हुए पांच वर्ष वाले आमका बाग टूटते समय जिस प्रकार दीख पडता है, वैसे ही राजपुत्र अभिमन्युके तीक्ष्ण बाणोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरते हुए दीख पडे ॥ राजा दुर्योधन क्रुद्ध सर्पके समान सुकुमार और सुख सेवित राजपुत्रोंको अकेले अभिमन्युके अस्त्रोंमे मरकर पृथ्वीमें गिरते हुए देखकर भयभीत हुए ॥ रथी, गजपति, और घुडसवार योद्धा लोग पैदल चलने वाले शूरवीरोंका मर्दन करते हुए ही युद्धभूमिसे भागने लगे; योद्धाओंको भागते देख दुर्योधन क्रुद्ध होके अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ क्षण भरतक उन दोनों पुरुषसिंहोंका महाघोर तुमुल संग्राम हुआ; परन्तु अन्तमें तुम्हारे पुत्र दुर्योधन अभिमन्युके बाणोंसे पीडित होकर युद्धभूमिसे विमुख हुए॥ २७-३० [१८३७]

द्रोणपर्वमें पैंतालिस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें छियालिस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! तुम अनेक पुरुषोंके सङ्ग अकेले अभिमन्युका अत्यन्त अद्भुत युद्ध विश्वासके अयोग्य पराक्रम और उसकी विजयका वृत्तान्त वर्णन करते हो । परन्तु इस वृत्तान्तको

किन्तु नाऽत्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥ २ ॥
दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते।
सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच — संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४ ॥
हतान्भ्रातॄन्पितॄन्पुत्रान्सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान्।
उत्सृज्योत्सृज्य सञ्जग्मुस्त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ५ ॥
तान्प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः।
कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माऽथ सौबलः ॥ ६ ॥
अभ्यधावन्सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम्।
ते तु पौत्रेण ते राजन्प्रायशो विमुखीकृताः ॥ ७ ॥
एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद्दर्पाच्च निर्भयः।
इष्वस्त्रवित्महातेजा लक्ष्मणोऽर्जुनिमभ्ययात् ॥ ८ ॥
तमन्वगेवाऽस्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्तत।

सुनकर मैं कुछभी आश्चर्य नहीं मानता हूं, क्योंकि उसका पक्ष धर्मसे युक्त है॥ जो हो, सो राजपुत्रोंके मारे जाने और दुर्योधनके युद्धसे विमुख होनेपर मेरी ओरके योद्धाओंने अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त कौनसे उपायको अवलम्बन किया ? (१–३)

सञ्जय बोले, महाराज ! तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग शुष्कमुख, मनमलिन, चञ्चलचित्त, पसीनेसे युक्त, शत्रुके जीतनेमें उत्साह रहित होकर मरे हुए भाई, बन्धु, पिता, पुत्र तथा दूसरे सम्बन्धियोंको रणभूमिमें छोड; अपने अपने रथ, घोडे और हाथियोंपर चढके शीघ्रतापूर्वक युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ उन सम्पूर्ण शूरवीरोंको इस प्रकारसे भागते हुए देखकर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, बृहद्बल, दुर्योधन, कृतवर्मा और शकुनि अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपराजित अभिमन्युकी ओर दौडे। हे राजन् ! महारथ योद्धा लोग भी अभिमन्युके बाणोंकी चोटसे विमुखप्राय हो गये ॥ (४–७)

अनन्तर केवल अस्त्रविद्याके जाननेवाले महातेजस्वी सुकुमार लक्ष्मण बालस्वभाव और अभिमानके कारण निर्भय चित्तसे अकेलेही अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ पुत्रप्रेमी उनके पिता राजा दुर्योधन पुत्रको अभिमन्युकी ओर जाते देख फिर उसके पीछे पीछे गमन करने लगे।

अनुदुर्योधनं चाऽन्ये न्यवर्त्तन्त महारथाः ॥ ९ ॥
तं तेऽभिषिषिचुर्बाणैर्मेघा गिरिमिवाऽम्बुभिः ।
स तु तान्प्रममाथैको विष्वग्वातो यथाऽम्बुदान् ॥ १० ॥
पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ॥ ११ ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम् ।
आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ १२ ॥
लक्ष्मणेन तु सङ्गम्य सौभद्रः परवीरहा ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत ॥ १३ ॥
संक्रुद्धो वै महाराज दण्डाहतइवोरगः ।
पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥ १४ ॥
सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि ।
पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम् ॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा ।

तब दूसरे महारथ योद्धा लोग भी दुर्योधनको युद्धके निमित्त अभिमन्युके सम्मुख जाते हुए देखकर पुनर्वार राजा दुर्योधनका अनुगमन करते हुए युद्धभूमि में अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ जैसे बादल सम्पूर्ण पर्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वे सम्पूर्ण महारथ योद्धा अर्जुनपुत्र अभिमन्युके ऊपर अपने बाणोंको वर्षा करने लगे । जैसे चारों ओर से बहनेवाली वायु बादलोंको तितर बितर करती है, वैसे ही अकेले अभिमन्युने उन सम्पूर्ण महारथियोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित किया ॥ (८-१०)

जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीको आक्रमण करता है, वैसे ही अभिमन्युने महातेजस्वी पिताके समीपमें स्थित धनुर्द्धारी सुकुमार कुबेरपुत्र के समान सुन्दर तुम्हारे पौत्र लक्ष्मणको आक्रमण किया । लक्ष्मणने भी उसके सम्मुख होकर शत्रुनाशन अभिमन्युकी दोनो भुजा और वक्षस्थलमें तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार किया ॥ हे राजेन्द्र ! अनन्तर अर्जुनपुत्र अभिमन्यु मानो दण्डसे पीडित हुए सर्पके समान क्रुद्ध होकर दुर्योधनपुत्र लक्ष्मणसे बोले ॥ तुम इस समय इस सम्पूर्ण लोकको भली भांति देख लो; क्योंकि अब तुम शीघ्र ही परलोकमें गमन करोगे । मैं तुम्हारे बन्धुबान्धवोंके सम्मुखहीमें तुम्हें यमपुरीको भेजता हूं । (११-१५)

उद्वर्हं महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसन्निभम् ॥ १६ ॥
स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम् ।
सुनसं सुभ्रु केशान्तं शिरोऽहार्षीत्सकुण्डलम् ॥ १७ ॥
लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुक्रुशुर्जनाः ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते ॥ १८ ॥
हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्बलः ॥ १९ ॥
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ।
तांस्तु विध्वा शितैर्बाणैर्विमुखीकृत्य चाऽऽर्जुनिः ॥२०॥
वेगेनाऽभ्यपतत्क्रुद्धः सैन्धवस्य महद्बलम् ।
आवव्रुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः ॥ २१ ॥
कलिङ्गाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान् ।
तत्प्रसक्तमिवाऽत्यर्थं युद्धमासीद्विशाम्पते ॥ २२ ॥
ततस्तत्कुञ्जरानीकं व्यधमद्धृष्टमार्जुनिः ।

शत्रुनाशन महाबाहु वीर अभिमन्यु ने ऐसा वचन कहकर विषधर सर्पके समान एक महाभयङ्कर भल्ल लक्ष्मणकी ओर चलाया। वह भल्ल अभिमन्युकी भुजासे छूटकर तेजस्वी लक्ष्मणकी सुन्दर नासिका, केश और प्रकाशमान कुण्डल के सहित उनका शिर काटके पृथ्वीमें गिरा ॥ (१६-१७)

राजपुत्र लक्ष्मणको मरता हुआ देखकर सम्पूर्ण पुरुषोंने हाहाकार किया! अनन्तर क्षत्रिय श्रेष्ठ राजा दुर्योधन अपने प्यारे पुत्रको पृथ्वीमें गिरते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और सम्पूर्ण सेनाके महारथ योद्धाओंसे ऊंचे स्वरसे बोले, तुम लोग इस अभिमन्युका शीघ्र ही वध करो। अनन्तर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कर्ण और हृदिकनन्दन कृतवर्मा इन छः महारथियोंने अभिमन्युको चारों ओरसे घेर लिया। अभिमन्यु तीक्ष्ण बाणोंसे उन सम्पूर्ण महारथियोंको विद्ध तथा युद्धमें विमुख करके क्रोध पूर्वक सिन्धु राज जयद्रथकी महा सेनाको आक्रमण करते हुए आगे गमन करने लगे ॥ (१८—२१)

कवच धारण करनेवाले कलिङ्ग और निषधदेशीय योद्धा तथा पराक्रमी क्राथराज पुत्रने हाथियोंकी सेना लेकर अभिमन्युके गमन करनेका मार्ग रुद्ध किया। हे राजेन्द्र! उससमय उन

यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदाञ्शतशोऽम्बरे ॥ २३ ॥
ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत्।
अथेतरे सन्निवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ २४ ॥
परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः।
तान्निवार्याऽऽर्जुनिर्बाणैः क्राथपुत्रमथाऽर्दयत् ॥ २५ ॥
शरौघेणाऽप्रमेयेण त्वरमाणा जिघांसया।
सधनुर्बाणकेयूरौ बाहू समुकुटं शिरः ॥ २६ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाऽश्वान्न्यपातयत्।
कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चाऽस्त्रबलेन च।
युक्ते तस्मिन्हते वीराः प्रायशो विमुखाऽभवन्॥२७॥ [१८६४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अभिमन्युवधपर्वणि
लक्ष्मणवधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम्।
कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपराजितम् ॥ १ ॥

लोगोंका महादारुण भयङ्कर संग्राम होने लगा॥ जैसे प्रबल वायु आकाशमें बादलोंको छिन्नभिन्न कर देता है, वैसे ही अभिमन्यु हाथियोंकी सेना अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तितर बितर करने लगे। अनन्तर क्राथने अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनपुत्र अभिमन्युको छिपा दिया; उसे देख द्रोणाचार्य आदि सम्पूर्ण महारथी योद्धालोग अभिमन्युके ऊपर अपने परम अस्त्रोंको चलाते हुए फिर क्रोध पूर्वक उसके संमुख उपस्थित हुए॥ (२१—२५)

अभिमन्युने अपने बाणोंसे उन सम्पूर्ण महारथियोंको निवारण करके क्राथपुत्रके वध करनेकी इच्छासे उनके ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा कर पीडित किया॥ अनन्तर उनके धनुष बाणके सहित दोनों भुजा, ध्वजा, छत्र, सारथी, रथके घोडे और किरीट शोभित शिरको एक ही समयमें काटके गिरा दिया। महाराज! कुल, शील, ज्ञानबल, कीर्त्ति और अस्त्रोंके बलसे युक्त उस पराक्रमी क्राथपुत्रके मरनेपर वहांपर स्थित सम्पूर्ण शूरवीर योद्धा लोग युद्धभूमिसे विमुख होके अभिमन्युके सम्मुखसे भागने लगे॥ (२५–२७) [१८६४]

द्रोणपर्वमें छियालिस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें सैंतालिस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! त्रिवर्षीय सुन्दर बलवान् उत्तम जाति-

आजानेयैः सुबलिभिर्यान्तमश्वैस्त्रिहायनैः ।
प्लवमानमिवाऽऽकाशे के शूराः समवारयन् ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच— अभिमन्युः प्रविश्यैतांस्तावकान्निशितैः शरैः ।
अकरोत्पार्थिवान्सर्वान्विमुखान्पाण्डुनन्दनः ॥ ३ ॥
तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च सबृहद्बलः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा तु सैन्धवे भारमतिमात्रं समाहितम् ।
सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥
सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षञ्शराम्बुभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ॥ ६ ॥
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्सर्वविद्यासु निष्ठितान् ।
व्यष्टम्भयद्रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ ७ ॥
द्रोणं पञ्चाशताऽविध्यद्विंशत्या च बृहद्बलम् ।
अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥

वाले, आकाशमार्ग कूदनेवाले घोडोंसे युक्त रथ पर चढे हुए युद्धमें अपराजित तरुण अवस्थावाले अभिमन्युको कुलके अनुसार युद्धमें कठिन कर्म करते तथा सेनाके बीच प्रवेश करते देखकर मेरी सेनाके किन किन शूरवीरोंने उसे युद्धसे निवारण किया था ? (१–२)

सञ्जय बोले, अर्जुनपुत्र अभिमन्युने व्यूहके बीच प्रवेश करके अपने चोखे बाणोंसे तुम्हारे सम्पूर्ण राजाओंको युद्धसे विमुख किया ॥ अनन्तर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और हृदिकनन्दन कृतवर्मा इन छः महारथियोंने अभिमन्युके सम्मुख उपस्थित होकर उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ हे राजेन्द्र ! तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग सिन्धु राज जयद्रथके ऊपर अत्यन्त कठिन भार अर्पित होते देखकर क्रोध पूर्वक युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ (३–५)

दूसरे महाबलवान् शूरवीर योद्धा लोग तालके प्रमाण धनुषोंको खींचते हुए अभिमन्युके ऊपर अपने बाणोंको बर्षाने लगे ॥ शत्रुनाशन वीर अभिमन्युने उस युद्धभूमिमें उन सम्पूर्ण महाधनुर्द्धारी युद्ध विद्याके जाननेवाले महारथियोंको अपने बाणोंसे स्तम्भित कर दिया, और द्रोणाचार्यको पचास, बृहद्बलको बीस, कृतवर्माको अस्सी, कृपाचार्यको साठ और कान पर्यन्त धनुष खींच

रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्णसमचोदितैः ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ ९ ॥
स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च ।
फाल्गुनिर्द्विषतां मध्ये विव्याध परमेषुणा ॥ १० ॥
पातयित्वा कृपस्याश्वांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ११ ॥
ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्द्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद्बली ॥ १२ ॥
तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३ ॥
स तु बाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत मारिष ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ १४ ॥
षष्ट्या शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजनैः ।
उग्रैर्नाकम्पयद्विध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५ ॥
स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥ १६ ॥
तस्मिन्द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत् ।

कर अश्वत्थामाको दश बाणोंसे विद्ध किया ॥ (६–९)

फिर सम्पूर्ण योद्धाओंके सम्मुखहीमें उत्तम पानीसे बुझे हुए कर्णि अस्त्रसे कर्णका कान विद्ध किया ॥ अनन्तर अभिमन्युने कृपाचार्यके रथके घोडे, पृष्ठ-रक्षक और सारथीको मार कर दश बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार किया ॥ बलवान् अभिमन्युने तुम्हारे पुत्रोंके आगेही कुरुवंशकी कीर्त्तिको बढानेवाले वीर वृन्दारक का वध किया ॥ (१०-१२)

अश्वत्थामाने अभिमन्युको कुरुसेनाके मुख्य मुख्य वीरोंको निर्भय चित्तसे नाश करते देखकर उसके ऊपर पचीस क्षुद्रकास्त्र चलाये । हे राजेन्द्र ! अभिमन्युने भी तुम्हारे पुत्रोंके सम्मुखमें तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाको विद्ध किया । अश्वत्थामा अभिमन्युको अत्यन्त चोखे साठ बाणोंसे विद्ध करके भी उसे मैनाक पर्वतके समान युद्धसे विचलित नहीं कर सके ॥ महाबलवान् अत्यन्त तेजस्वी अभिमन्युने स्वर्णदण्डयुक्त तिहत्तर तीक्ष्ण बाणोंसे अपकारी अश्वत्थामाको प्रहार किया । (१३–१६)

अश्वत्थामा तथाऽष्टौ च परीप्सन्पितरं रणे ॥ १७ ॥
कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान्कृतवर्मा च विंशतिम् ।
बृहद्बलस्तु पञ्चाशत्कृपः शारद्वतो दश ॥ १८ ॥
तांस्तु प्रत्यवधीत्सर्वान्दशभिर्दशभिः शरैः ।
तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥ १९ ॥
तं कोसलानामधिपः कर्णिनाऽताडयद्धृदि ।
स तस्याऽश्वान्ध्वजं चापं सूतं चाऽपातयत्क्षितौ ॥ २० ॥
अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत् ।
इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥
स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥
बभञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां महात्मनाम् ।
सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम् ॥ २३ ॥
तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद्रणे ।

अनन्तर पुत्रवत्सल द्रोणाचार्यने अभिमन्युके ऊपर एक सौ बाण चलाये और अश्वत्थामाने भी पिताकी रक्षाके निमित्त आठ बाणोंसे अभिमन्युके ऊपर प्रहार किया ॥ कर्णने बाईस, कृतवर्माने बीस, बृहद्बलने पचास और कृपाचार्यने दश भल्लोंसे अभिमन्युको प्रहार किया ॥ अभिमन्युने सब ओरसे उन महारथियोंके बाणोंसे पीडित होकर उन हर एक शूरवीरोंको दश दश बाणोंसे विद्ध किया ॥ (१७–१९)

अनन्तर कोशलराज बृहद्बलने अभिमन्युके हृदयमें कर्णि अस्त्रका प्रहार किया। अभिमन्युने कोशलराज बृहद्बलके रथके घोडे सारथी रथकी ध्वजा और उनके धनुषको काट कर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ तब कोशलराज बृहद्बलने रथ रहित होके तलवार और ढाल ग्रहण कर अभिमन्युके शरीरसे कुण्डल सहित उसके सुन्दर शिरको काटनेकी इच्छा की; उसही समय अभिमन्युने कोशल राज बृहद्बलके हृदयमें अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार किया। उस बाणके लगते ही बृहद्बल भिन्नहृदय होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ (२०–२२)

अनन्तर अभिमन्युने तलवार ढाल ग्रहण करनेवाले दश हजार क्षत्रिय वीरोंको कठोर वचन कहते हुए युद्धके निमित्त संमुख उपस्थित होते देख कर अपने बाणोंको वर्षाकर उन सम्पूर्ण शूर

व्यद्रावयन्महेष्वासो योधांस्तव शराम्बुभिः॥२४॥[१८८८]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि बृहद्बलवधे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

सञ्जय उवाच— स कर्णं कार्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः।
शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत्कोपयन्भृशम् ॥ १ ॥
प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः।
शरैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत ॥ २ ॥
कर्णं चाऽप्यकरोत्क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम्।
कर्णोऽपि विबभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः ॥ ३ ॥
तावुभौ शरचित्राङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ।
बभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥
अथ कर्णस्य सचिवान्षट् शूरांश्चित्रयोधिनः।
साश्वसूतध्वजरथान्सौभद्रो निजघान ह ॥ ५ ॥
तथेतरान्महेष्वासान्दशभिर्दशभिः शरैः।
प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६ ॥

वीरोंको युद्ध-भूमिसे विमुखकर दिया॥ अभिमन्यु इसी प्रकारसे कोशल राज बृहद्बलका वध करके फिर अपने बाणों को बर्षाकर तुम्हारी ओरके शूरवीरोंको पीडित करने लगे॥(२३-२४)[१८८८]

द्रोणपर्वमें सैंतालिस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें अडतालिस अध्याय।

सञ्जय बोले, हे, भारत! अभिमन्यु ने कर्णको अत्यन्त कुपित करनेकी इच्छासे कर्णि बाणसे उसका कान विद्ध किया; और फिर शीघ्रता के सहित पचास बाणोंसे कर्णको विद्ध किया॥ हे भारत! कर्णने भी अभिमन्युको उतनेही बाणोंसे विद्ध किया। कर्णके चलाये हुए बाणोंसे अभिमन्युका सम्पूर्ण शरीर पूरित हो कर वह अत्यन्तही शोभित हुए॥ और क्रुद्ध होकर कर्णके शरीरको भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे रुधिर पूरित कर दिया। बलवान् कर्ण भी अभिमन्युके बाणोंसे विद्ध होकर रुधिरयुक्त शरीरसे युद्धभूमिमें अत्यन्तही शोभित होने लगे॥ उस समय वे दोनों वीर एक दूसरेके बाणों-से विद्ध होनेके कारण रुधिरसे उनका शरीर भींग गया तब वे दोनों पुष्पित पलाश वृक्षके समान शोभित होने लगे॥(१-४)

अनन्तर अभिमन्युने कर्णके चित्रयोधी छः मन्त्रियोंके रथके घोडे, सारथी, और ध्वजा काट कर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनका वध किया; फिर दश बाणोंसे दूसरे सम्पूर्ण महारथियोंको विद्ध किया;

मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः ।
साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपानयत् ॥ ७ ॥
मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् ।
क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजञ्शरान् ॥ ८ ॥
तस्य दौःशासनिर्विध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चाऽर्जुनात्मजम् ॥ ९ ॥
ततो दौःशासनिं कार्ष्णिर्विध्वा सप्तभिराशुगैः ।
संरम्भाद्रक्तनयनो वाक्यमुच्चैरथाऽब्रवीत् ॥ १० ॥
पिता तवाऽऽहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा ।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे ॥ ११ ॥
एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमार्जितम् ।
नाराचं विससर्जाऽस्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२ ॥
तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छित्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् ।
तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत् ॥ १३ ॥

अभिमन्युका यह पराक्रम अद्भुत दीख पडा ॥ अनन्तर छः तीक्ष्ण बाणोंसे मगधराजके पुत्रका वध करके फिर घोडे और सारथीके सहित तरुण अवस्थावाले अश्वकेतुका संहार करके उन्हे रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ तिसके अनन्तर एक क्षुरप्र अस्त्रसे हाथीकी ध्वजावाले मार्त्तिकावतदेशीय भोजको पीडित करके अपने बाणोंको वर्षाते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ (७-८)

अनन्तर दुःशासनपुत्रने चार बाणोंसे अभिमन्युके चारों घोडे और एक बाण से उनके सारथीको विद्ध करके दश बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया ॥ अनन्तर अभिमन्युने क्रोधसे नेत्र लाल करके सात बाणोंसे दुःशासनपुत्रको विद्ध करके उससे यह वचन बोले, तुम्हारा पिता कायरकी भांति युद्धमें मेरे संमुखसे भाग गया है, प्रारब्धहीसे तुम युद्ध करना जानते हो; परन्तु आज मेरे संमुखसे बचकर न लौट सकोगे ॥ ऐसा वचन कह उत्तम पानीसे बुझे हुए एक तीक्ष्ण बाणको धनुषपर चढाकर अभिमन्युने दुःशासनपुत्रकी ओर चलाया; परन्तु अश्वत्थामाने तीन बाणोंसे उस बाणको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया । (९-१२)

तब अभिमन्युने अश्वत्थामाके रथकी ध्वजाको अपने बाणसे काटकर तीन बाणोंसे शल्यको पीडित किया ॥ शल्यने

हृद्यसम्भ्रान्तवद्राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा हत्वोभौ पार्ष्णिसारथी॥१४॥
तं विव्याधाऽऽयसैः षड्भिः सोऽपाक्रामद्रथान्तरम् ।
शत्रुञ्जयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥ १५ ॥
सूर्यभासं च पञ्चैतान्हत्वा विव्याध सौबलम् ।
तं सौबलस्त्रिभिर्विद्ध्वा दुर्योधनमथाऽब्रवीत् ॥ १६ ॥
सर्व एनं विमश्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः ।
अथाऽब्रवीत्पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे ॥ १७ ॥
पुरा सर्वान्प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वधमाशु नः ।
ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान्प्रत्यभाषत ॥ १८ ॥
अस्ति वाऽस्याऽन्तरं किञ्चित्कुमारस्याऽथ पश्यत ।
अण्वप्यस्याऽन्तरं ह्यद्य चरतः सर्वतोदिशम् ॥ १९ ॥
शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत ।

भी क्रुद्ध होकर निर्भय चित्तसे नव बाणोंसे अभिमन्युके हृदयमें प्रहार किया, उस समयमें शल्यका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ अनन्तर अभिमन्युने शल्यका धनुष काटकर उनके पृष्ठरक्षक और सारथीका वध करके फिर लोहमय छः बाणोंसे शल्यको विद्ध किया। अनन्तर राजा शल्य घोडे और सारथीसे रहित रथको छोडकर दूसरे रथ पर चढके अभिमन्युके सम्मुख उपस्थित हुए ।.(१३-१५)

अनन्तर अभिमन्युने शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चस और सूर्यभास इन पांच योद्धाओंका वध करके अपने बाणोंसे शकुनिको विद्ध किया। शकुनि तीन बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध करके दुर्योधनसे बोले, कि हम सब कोई मिलकर शीघ्र ही इसका वध करें, नहीं तो एक एक करके यह सबका नाश कर देगा। अनन्तर सूर्यपुत्र कर्ण भी द्रोणाचार्यसे बोले; कि यह पहिले ही हम सब लोगोंका वध करना चाहता है, इससे आप शीघ्र ही इसके वधका उपाय कहिये ॥ (१५-१८)

तब महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य उन सम्पूर्ण महारथियोंसे बोले, कि तुम लोगोंके बीचमें क्या कोई ऐसा पुरुष भी है, जो इस कुमारको क्षण भरके लिये भी अवकाश लेते देख सका हो ? यह अपने पिताके समान युद्धभूमिमें सब ओर भ्रमण करता रहता है; देखो यह किस प्रकारसे हस्तलाघवके सहित अस्त्र-

धनुर्मण्डलमेवाऽस्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥ २० ॥
सन्दधानस्य विशिखाञ्शीघ्रं चैव विमुञ्चतः ।
आरुजन्नपि मे प्राणान्मोहयन्नपि सायकैः ॥ २१ ॥
प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा ।
अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन्रणे ॥ २२ ॥
अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः ।
अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ॥ २३ ॥
न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः ।
अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहाऽर्जुनिशराहतः ॥ २४ ॥
स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना ।
तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः ॥ २५ ॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ।
तमाचार्योऽब्रवीत्कर्णं शनकैः प्रहसन्निव ॥ २६ ॥
अभेद्यमस्य कवचं युवा चाऽऽशुपराक्रमः ।

शस्त्रोंको चला रहा है । यह कुमार इतनी शीघ्रताके सहित बाणोंको सन्धान करके चलाता है, कि इसके रथके ऊपर केवल मण्डलाकार उसका धनुषही दीख पडता है। वह शत्रुनाशन सुभद्रापुत्र वीर अभिमन्यु बार बार बाणोंको चलाकर हम लोगोंके प्राणोंको पीडित और मोहित कर रहा है; परन्तु मैं उसका युद्धकार्य देखकर आनन्दित हो रहा हूं।। रणभूमिमें इसको शीघ्रतापूर्वक चारों ओर भ्रमण करते देखकर मुझे अत्यन्त ही आनन्द उत्पन्न होरहा है । (१८-२२)

सम्पूर्ण महारथ योद्धा अत्यन्त क्रुद्ध होकर भी इसका तनिक छिद्र नहीं देख सकते हैं । यह युद्धभूमिमें महा अस्त्रोंको जिस प्रकारसे चला रहा है, उससे यह गाण्डीवधारी अर्जुनसे किसी भांति युद्ध करनेमें कम नहीं दीख पडता है । अनन्तर अभिमन्युके बाणोंसे पीडित कर्ण फिर द्रोणाचार्यसे बोले, मैं अभिमन्युके बाणोंसे पीडित होकर अब युद्धभूमिमें नहीं ठहर सकता हूं, परन्तु युद्धभूमिमें ही रहना उचित है, यही विचार कर संग्राममें स्थित हूं । इस तेजस्वी बालकके परम दारुण अग्निके समान स्पर्श करनेवाले बाण मेरे हृदयको पीडित कर रहे हैं ॥ (२३-२६)

द्रोणाचार्य मन्द मुसकराकर कर्णसे बोले, उसका कवच अभेद है और यह तेजस्वी बालक युद्धमें महा पराक्रमी है।

उपदिष्टा मया चाऽस्य पितुः कवचधारणा　॥ २७ ॥
तामेष निखिलां वेत्ति ध्रुवं परपुरञ्जयः ।
शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं ज्यां च बाणैः समाहितैः ॥२८॥
अभीषूश्च हयांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
एतत्कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते　॥ २९ ॥
अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात्प्रहरणं कुरु ।
सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः　॥ ३० ॥
विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्त्तनस्त्वरन्　॥ ३१ ॥
अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत् ।
अश्वानस्याऽवधीद्भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी ॥ ३२ ॥
शेषास्तु च्छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् ।
त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः　॥ ३३ ॥
शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन् ।
स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन्　॥ ३४ ॥

मैंने इसके पिताको कवच धारण करनेका उपदेश दिया था; यह शत्रुओंके देशको जीतनेवाले कुमार अभिमन्युने अपने पितासे उसही कवचको धारण करनेका सम्पूर्ण कौशल सीख लिया है। हे राजनन्दन कर्ण ! तुम लोग यदि युद्धभूमिमें स्थित होके अपने बाणोंसे इसके धनुषका रोदा काटकर घोडे सारथी और पृष्ठरक्षक वीरोंका वध कर सको तो ऐसा ही कार्य करो; पीछे इसे रथरहित करके फिर अस्त्र शस्त्रोंसे इसको प्रहार करना। इसके हाथमें धनुष बाण रहते-तक देवता और राक्षस इसका वध न कर सकेंगे॥ तुम यदि इच्छा करते हो, तो इसे धनुष रहित तथा रथसे रहित करो। (२२–३१)

कर्णने द्रोणाचार्यका वचन सुनकर शीघ्रताके सहित अपने धनुष बाण चलानेके समय अभिमन्युका धनुष काट दिया। अनन्तर भोजने अभिमन्युके रथके चारों घोडे, कृपाचार्यने उसके पृष्ठ रक्षक योद्धाओं और सारथीका वध किया, तिसके अनन्तर वहांपर स्थित सम्पूर्ण महारथ योद्धा लोग धनुषरहित उस बालकके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। वे छहों महारथ शीघ्रताके सहित दया रहित होकर लगातार अपने बाणोंकी वर्षासे उस रथरहित कुमार अभिमन्यु

खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसा ।
मार्गैः स कौशिकाद्यैश्च लाघवेन बलेन च ॥ ३५ ॥
आर्जुनिर्व्यचरद्व्योम्नि भृशं वै पक्षिराडिव ।
मय्येव निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ॥ ३६ ॥
विव्यधुस्तं महेष्वासं समरे छिद्रदर्शिनः ।
तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुम् ॥ ३७ ॥
क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् ।
राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥ ३८ ॥
व्यसिचर्मेषुपूर्णाङ्गः सोऽन्तरिक्षात्पुनः क्षितिम् ।
आस्थितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं क्रुद्धोऽभ्यधावत ॥ ३९ ॥
स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो बभावतीवोज्ज्वलचक्रपाणिः ।
रणेऽभिमन्युः क्षणमास रौद्रः स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥ ४० ॥

को बारबार छिपाने लगे। (३१-३४)

वह तेजस्वी बालक रथरहित तथा धनुष कटनेसे अपने क्षत्रिय धर्मके अनुसार तलवार ढाल ग्रहण करके रथ से कूद पडा, और पक्षिराज गरुडके समान वेगपूर्वक अत्यन्त ही बल प्रकाशित करता हुआ अति शीघ्रताके सहित गति विशेषसे आकाश मार्गसे कूदता हुआ रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगा। महाधनुर्द्धारी महारथ योद्धा लोग "यह तलवार ग्रहण करनेवाला अभिमन्यु मेरी ओर आ रहा है" ऐसा वचन करते हुए ऊपरको दृष्टि करके उसे अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ (३४ – ३७)

महा तेजस्वी शत्रुओंको जीतनेवाले द्रोणाचार्यने शीघ्रताके सहित क्षुरप्र बाणसे मुट्ठीमें ग्रहण किये हुए मणि जटित मूठसे शोभित अभिमन्युके तलवारको काट डाला। कर्णने कई एक तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर अभिमन्युकी उत्तम ढाल काट दी वह ढाल तलवार रहित और सम्पूर्ण शरीरमें बाणोंसे परिपूरित होकर क्रुद्धचित्तसे कूदते हुए आकाशसे पृथ्वीपर आकर चक्र ग्रहण करके द्रोणाचार्यकी ओर दौडा ॥ (३७-३९)

उसका शरीर और चक्र धूलिसे तेजस्वी होगया तथा ऊंचे हाथसे चक्र ग्रहण किये हुए वह अत्यन्त ही शोभित होने लगा। वह हाथमें चक्र लेकर कृष्णके समान कठिन कार्य करके क्षण भरतक भयङ्कर रूपसे रणभूमिमें स्थित हुआ ॥ उसके दृढ कवचके भीतरसे रुधिर झर रहा था; अनन्तर वह अत्यन्त बलवान् अभिमन्यु उन सम्पूर्ण मुख्य

सुतरुधिरकृतैकरागवक्त्रो भ्रुकुटिपुटाकुलितोऽतिसिंहनादः।
प्रभुरमितबलो रणेऽभिमन्युर्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत्॥४१॥[१९२९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युविरथकरणे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

सञ्जय उवाच— विष्णोः स्वसुर्नन्दकरः स विष्णवायुधभूषणः।
रराजाऽतिरथः संख्ये जनार्दन इवाऽपरः ॥ १ ॥
मारुतोद्धूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम्।
वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि ॥ २ ॥
तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः सञ्चिच्छिदुरनेकधा।
महारथस्ततः कार्ष्णिः स जग्राह महागदाम् ॥ ३ ॥
विधनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चाऽरिभिः कृतः।
अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमार्दयत् ॥ ४ ॥
स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव।
अपाक्रामद्रथोपस्थाद्विक्रमांस्त्रीन्नरर्षभः ॥ ५ ॥
तस्याऽश्वान्गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी।

मुख्य राजाओंके बीच टेढी भृकुटी मुख और भयङ्कर मूर्त्तिसे महाघोर सिंहनाद करता हुआ अत्यन्तही प्रकाशित होने लगा॥ (४०–४१)[१९२९]

द्रोणपर्वमें अडतालीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें उनचास अध्याय।

सञ्जय बोले, सुभद्राके आनन्दको बढाने- वाला अतिरथ अभिमन्यु विष्णु के समान चक्र ग्रहण करके मानो दूसरे जनार्दन रूपसे युद्धभूमिमें स्थित हुआ॥ सम्पूर्ण राजाओंने उसको वायुवेगसे उडते हुए खुले केश और चक्र ग्रहण करके युद्धके निमित्त तैयार तथा देवता ओंसे भी न देखने योग्य उसके भयङ्कर शरीरको देखकर अत्यन्त ही व्याकुलचित्त से उसके चक्रको अपने अस्त्रोंसे काट दिया। तब महारथ अभिमन्युने एक महा भयङ्कर गदाको ग्रहण किया॥(१-३)

शत्रुओंने उसको धनुष रथ तलवार और चक्रसे रहित भी कर दिया; तौभी वह हाथमें गदा ग्रहण करके अश्वत्था- माकी ओर दौडे॥ पुरुषसिंह अश्वत्था- मा अभिमन्युके उस प्रकाशमान् वज्रके समान भयङ्कर महाघोर गदाको देख- कर रथसे कूदकर तीन पग दूर हट गये, परन्तु अभिमन्युने उस ही गदासे अश्व- त्थामाके रथके घोडे, पृष्ठ रक्षक और सारथीका संहार किया और सम्पूर्ण

शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत्समदृश्यत ॥ ६ ॥
ततः सुबलदायादं कालिकेयमपोथयत् ।
जघान चाऽस्याऽनुचरान्गान्धारान्सप्तसप्ततिम् ॥ ७ ॥
पुनश्चैव वसातीयाञ्जघान रथिनो दश ।
केकयानां रथान्सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् ॥ ८ ॥
दौःशासनी रथं साश्वं गदया समपोथयत् ।
ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष ॥ ९ ॥
अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ १० ॥
भ्रातृव्यौ सम्प्रजह्राते पुरेव त्र्यम्बकान्धकौ ।
तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ क्षितौ ॥ ११ ॥
इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परन्तपौ ।
दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ १२ ॥
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ।

शरीरमें बाणोंसे परिपूर्ण होकर अत्यन्त ही शोभित होने लगे (४—६)

अनन्तर अभिमन्युने सुबलराजके दामाद कालिकेय और उनके अनुयायी गान्धारदेशीय सतहत्तर योद्धाओंका वध किया ॥ फिर वसाति देशीय दश रथियों और केकयदेशीय सात रथी तथा दश गजपति योद्धाओंका नाश कर दिया । अनन्तर उस ही गदासे दुःशासनपुत्रके रथको घोडोंके सहित चूर्ण कर दिया । (७—९)

हे भारत ! अनन्तर दुःशासनपुत्र अत्यन्त क्रुद्ध हो, गदा उठाकर "खडा रह ! खडा रह ! " करता हुआ अभिमन्युकी ओर दौडा। जैसे पहिले समय में महादेव और अन्धकासुरने आपसमें एक दूसरेके ऊपर अस्त्रोंका प्रहार किया था, वैसे ही वे दोनों भ्राता गदा लेकर एक दूसरेके वधकी इच्छा करते हुए प्रहार करने लगे । वे शत्रुनाशन दोनों वीर रणभूमिमें इसी प्रकार आपसमें एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते हुए गदाकी चोटसे पीडित होकर दोनों ही इन्द्र ध्वजाकी भांति पृथ्वीमें गिर पडे ॥ (९—१२)

अनन्तर कुरुकुलकी कीर्त्तिको बढाने वाले दुःशासनपुत्र उठकर खडे हुए । अभिमन्यु उठ रहे थे, उस ही समयमें दुःशासनपुत्रने उनके शिरमें गदासे प्रहार किया। शत्रुनाशन वीर अभिमन्यु

गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः ॥ १३ ॥
विचेता न्यपतद्भूमौ सौभद्रः परवीरहा ।
एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ १४ ॥
क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः ।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥ १५ ॥
तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् ।
दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये ॥१६ ॥
विमृद्य नगशृङ्गाणि सन्निवृत्तमिवाऽनिलम् ।
अस्तङ्गतमिवाऽऽदित्यं तप्त्वा भारत वाहिनीम्॥ १७ ॥
उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम् ॥ १८ ॥
तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः ।
मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहवन्मुहुः ॥ १९ ॥

पहिले ही से युद्धभूमि में चारों ओर दौडनेसे थके हुए थे उसपर भी अत्यन्त वेगपूर्वक उनके शिरपर गदाकी चोट लगनेसे वह चेतरहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे । हे राजेन्द्र ! जैसे वनके बीच एक हाथी अनेक व्याधोंके हाथसे मारा जाता है, वैसे ही महा पराक्रमी वीर अभिमन्यु तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाको तितर बितर करते हुए अनेक योद्धाओंका वध करके, अन्तमें कई एक महारथियोंके अस्त्रोंसे पीडित होकर दुःशासनपुत्रके हाथसे मरकर युद्धभूमिमें पडे हुए दिखाई देने लगे ॥ (१३-१५)

जैसे हेमन्त ऋतुके अन्तमें दावाग्नि प्रगट होके सम्पूर्ण वनके वृक्षोंको भस्म करके शान्त होजाती है, वैसे ही युद्धसे शान्त हुए और पृथ्वीमें गिरे अभिमन्यु को तुम्हारी ओर के योद्धाओंने चारों ओर से घेर लिया ॥ जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षोंकी शाखाओं को तोडके गिरा देता है, अथवा जैसे सूर्य सम्पूर्ण जगत्के प्राणियोंको तपाकर सन्ध्याके समय अस्त होजाता है, वैसे ही कुरुसेनाके प्राणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंमें भस्म करके तथा सम्पूर्ण योद्धाओंको युद्धभूमिसे भगाकर पराक्रमी अभिमन्यु अनेक वीरोंसे युद्ध कर अन्तमें मरकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ उस राहुग्रस्त चन्द्रमा तथा सूखे हुए समुद्रके समान प्रकाशमान शरीरसे युक्त काकपक्षसे नेत्र मूदे हुए अभिमन्यु को देखकर तुम्हारी ओरके महारथी लोग अत्यन्त हर्षके सहित वार वार सिंहनाद करने लगे॥(१६-१९)

आसीत्परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते ।
इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २० ॥
अन्तरिक्षे च भूतानि प्राक्रोशन्त विशाम्पते ।
दृष्ट्वा निपतितं वीरं च्युतं चन्द्रमिवाऽम्बरात् ॥ २१ ॥
द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्त्तराष्ट्रमहारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥ २२ ॥
तस्मिन्विनिहते वीरे बह्वशोभत मेदिनी ।
द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥ २३ ॥
रुक्मपुङ्खैश्च सम्पूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता ।
उत्तमाङ्गैश्च शूराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥ २४ ॥
विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता ।
चामरैश्च कुथाभिश्च प्रविद्धैश्चाऽम्बरोत्तमैः ॥ २५ ॥
तथाऽश्वनरनागानामलङ्कारैश्च सुप्रभैः ।
खड्गैः सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥ २६ ॥
चापैश्च विविधैश्छिन्नैः शक्त्यृष्टिप्रासकम्पनैः ।

हे राजेन्द्र ! तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग अत्यन्त हर्षित हुए, परन्तु पाण्डव तथा उनकी सेनाके योद्धाओंके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी ॥ अन्तरिक्षमें निवास करने वाले सम्पूर्ण प्राणी अभिमन्यु को आकाशसे गिरे हुए चन्द्रमाके समान पृथ्वीमें पडे हुए देखकर ऊंचे स्वरसे यह वचन बोले, " द्रोणाचार्य तथा कर्ण आदि छः महा रथियोंने एक बालकको मारकर पृथ्वीमें गिराया है, यह हम लोगों के मतसे धर्म का कार्य नहीं हुआ है । " (२०—२२)

महाराज ! जैसे तारोंके सहित आकाश पूर्ण चन्द्रमाके उदय होने पर शोभित होता है, वैसेही महावीर अभिमन्युके मरकर पृथ्वीमें गिरने पर इधर उधर रणभूमि प्रकाशित होने लगी ॥ सुवर्णयुक्त बाण, कुण्डल और मुकुटोंके सहित प्रकाशमान वीरोंके शिर, छत्र, पताका, चंवर, टूटे हुए रथके चक्के, धुरी, कटे फटे उत्तम वस्त्र, रथ, हाथी, घोडे और मनुष्योंके उत्तम आभूषणोंसे युद्धभूमि प्रकाशित होने लगी । केंचुलीसे सर्पके समान मियानसे निकले हुए उत्तम तलवार, कटे हुए धनुष, बाण, शक्ति, ऋष्टि, प्रास और दूसरे बहुतेरे रुधिर युक्त अस्त्रशस्त्रोंसे पृथ्वी

विविधैश्चाऽऽयुधैश्चाऽन्यैः संवृता भूरशोभत ॥ २७ ॥
वाजिभिश्चापि निर्जीवैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
सारोहैर्विषमा भूमिः सौभद्रेण निपातितैः ॥ २८ ॥
सांकुशैः समहामात्रैः सवर्मायुधकेतुभिः ।
पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥ २९ ॥
पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः ।
ह्रदैरिव प्रक्षुभितैर्हतनागैं रथोत्तमैः ॥ ३० ॥
पदातिसङ्घैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
भीरूणां त्रासजननी घोररूपाऽभवन्मही ॥ ३१ ॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनां चाऽभवद्व्यथा ॥ ३२ ॥
अभिमन्यौ हते राजञ्शिशुकेऽप्राप्तयौवने ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥
दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते ।
अजातशत्रुस्तान्वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

परिपूर्ण होकर अत्यन्त ही शोभित होने लगी ॥ (२३-२७)

अभिमन्युके अस्त्रोंसे मरे हुए शरीर से युक्त सवारोंके सहित घोडे और हाथी रणभूमिमें पडे हुए दिखाई देने लगे ॥ विध्वस्त पर्वतके समान कितने ही हाथी अंकुशधारी पीलवानोंके सहित ध्वजा पताका समेत पृथ्वीमें पडे हुए दीख पडते थे ॥ घोडे सारथी और रथियोंसे रहित कितने ही टूटे हुए रथोंसे चारों और पृथ्वी परिपूर्ण होगई। कितने ही पैदल चलने वाले मरे हुए शूरवीरोंके शरीरसे वह रणभूमि अत्यन्त भयङ्कर घोर रूपसे दिखाई देने लगी; उसे देख कायर पुरुष अत्यन्त ही भयभीत होने लगे ॥ (२८—३१)

उस चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी अभिमन्यु को मरे हुए पृथ्वी में पडे देख कर तुम्हारी ओर के योद्धा लोग बहुत ही हर्षित और आनन्दित हुए परन्तु पाण्डवोंकी ओरके शूरवीरोंको अत्यन्त ही दुःख तथा क्लेश हुआ॥ हे राजन् ! उस सुकुमार बालक अभिमन्यु के मारे जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरकी सम्पूर्ण सेना उनके संमुखहीमें रणभूमि से भागने लगी ॥ अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर अभिमन्यु के मरनेपर अपनी सेनाको दुःखित और युद्धभूमिसे भागती

स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः ।
संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥ ३५ ॥
इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः ।
धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन्दुःखमपानुदत् ॥ ३६ ॥
युद्धे ह्याशीविषाकारान्राजपुत्रान्रणे रिपून् ।
पूर्वं निहत्य संग्रामे पश्चादार्जुनिरभ्ययात् ॥ ३७ ॥
हत्वा दशसहस्राणि कौसल्यं च महारथम् ।
कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णिः शक्रलोकं गतो ध्रुवम् ॥ ३८ ॥
रथाश्वनरमातङ्गान्विनिहत्य सहस्रशः ।
अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् ।
गतः पुण्यकृताँल्लोकाञ्शाश्वतान्पुण्यनिर्जितान् ॥ ३९ ॥ [१९६८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

सञ्जय उवाच— वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः ।

हुये देखकर यह वचन बोले, हम लोगोंका महावीर अभिमन्यु युद्धभूमिमें पीछे न हटके शूरवीरोंके हाथसे मारा गया है, इससे उसको स्वर्ग लोक प्राप्त हुआ है; तुम लोग कुछ भी भय मत करो; रणभूमि में स्थित हो के युद्ध करो ; हम लोग अवश्य शत्रुओं को जीतेंगे । (३२-३५)

वीरोंमें मुख्य महातेजस्वी पराक्रमी धर्मराज युधिष्ठिरने सेनाके सम्पूर्ण दुःखित पुरुषोंसे फिर ऐसे ही वचनोंको कहके उनके दुःख और क्लेशको दूर किया, कि "हे शूरवीर पुरुषों! अभिमन्यु ने पहिले युद्धभूमिमें सर्पके समान अपने शत्रु राजपुत्रोंका वध करके अन्तमें वह भी स्वर्ग लोकको गया है; अभिमन्यु युद्धभूमिमें कृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रम करके दश हजार योद्धा और महारथ कोशलराजका वध करके इन्द्रलोकमें गया है ॥ पुण्यकर्म करनेवाला अभिमन्यु उससेभी तृप्त न होकर सहस्रों रथी, घुडसवार, गजपति और पैदल चलनेवाले वीरोंका नाश करके पुण्यात्मा पुरुषोंके निवासयोग्य प्रकाशित लोकमें गमन किया है; इससे उसके निमित्त क्या शोक है ? (३६-३९) [१९६८]

द्रोणपर्वमें उनचास अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें पचास अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! हम लोग पाण्डवोंके उस मुख्य वीर अभिमन्युका

निवेशायाऽभ्युपायामः सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ १ ॥
निरीक्षमाणास्तु वयं परे चाऽऽयोधनं शनैः।
अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः ॥ २ ॥
ततो निशाया दिवसस्य चाऽशिवः शिवारुतैः सन्धिरवर्तताऽद्भुतः।
कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम् ॥ ३ ॥
वरासिशक्त्यृष्टिवरूथचर्मणां विभूषणानां च समाक्षिपन्प्रभाः।
दिवं च भूमिं च समानयन्निव प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम् ॥ ४ ॥
महाभ्रकूटाचलशृङ्गसन्निभैर्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः।
सवैजयन्त्यंकुशवर्मयन्तृभिर्निपातितैर्नष्टगतिश्रिता क्षितिः ॥ ५ ॥
हतेश्वरैश्चूर्णितपर्युपस्करैर्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः।
महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः पुरैरिवाऽमित्रहतैर्नराधिप ॥ ६ ॥
रथाश्ववृन्दैः सह सादिभिर्हतैः प्रविद्धभाण्डाभरणैः पृथग्विधैः।

वध करके बाणोंसे क्षत विक्षत शरीरसे रुधिरयुक्त होकर सन्ध्याको अपने शिविरोंमें जानेके निमित्त गमन करने लगे। मार्गमें चलते हुए हम लोगोंने देखा, पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग अत्यन्त ही दुःखित और चेतरहितके समान होकर धीरे धीरे रणभूमिसे गमन कर रहे हैं। रक्त कमलके समान वर्णवाले सूर्यदेवने अस्त होके अस्ताचल पर्वतके ऊपर गमन किया; सियारोंके महा भयङ्कर शब्द चारों ओरसे सुनाई देने लगे, इसी प्रकारसे अशुभ और अद्भुत लक्षणोंके सहित वह सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ ॥ (१—२)

सूर्यदेव नेमानो उत्तम तलवार, शक्ति, ऋष्टि, ढाल, कवच और आभूषणोंके प्रकाशकी निन्दा करते हुए आकाश तथा पृथ्वीको एक रूपसे करके अपने प्रिय शरीरके सहित अग्निमें प्रवेश किया ॥ वज्रकी चोटसे गिरे हुए बादलोंके समूह तथा पर्वतके शृङ्गके समान वैजयन्ती माला अंकुश वर्म और पीलवानोंके सहित मरे हुए हाथियोंके समूहसे पृथ्वी परिपूर्ण होकर महाभयङ्कर दीख पडती थी ॥ कितने ही बडे बडे रथ घोडे, सारथी और रथियोंसे रहित पृथ्वीमें इधर उधर पडे हुए दीख पडते थे, कितने ही टूटे हुए रथोंके नीचे बहुतसे पैदल चलनेवाले योद्धा लोग मरे हुए पडे दिखाई देते थे। हे राजेन्द्र! जैसे शत्रुओं के हाथसे मनुष्योंका नाश होने पर सूना नगर दीख पडता हैं वैसे घोडे सारथी और रथियोंसे रहित होनेपर युद्धभूमिमें सूने रथ दिखाई देते थे। (४–६)

निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनैर्धरा बभौ घोरविरूपदर्शना ॥ ७ ॥
प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः ।
महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा क्षितावनाथा इव शेरते हताः ॥ ८ ॥
अतीव हृष्टाः श्वशृगालवायसा बकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः ।
वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः पिशाचसङ्घाश्च सुदारुणा रणे ॥ ९ ॥
त्वचो विनिर्भिद्य पिबन्वसामसृक् तथैव मज्जाः पिशितानि चाऽश्नुवन् ।
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः॥१०॥
शरीरसङ्घातवहा ह्यसृग्जला रथोडुपा कुञ्जरशैलसङ्कटा ।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी ॥ ११ ॥
भयावहा वैतरणीव दुस्तरा प्रवर्त्तिता योधवरैस्तदा नदी ।

कितने ही घुडसवारोंके सहित उत्तम घोडे मरे हुए पडे थे, कितनेही घोडोंकी जीभ, कितनोंके दांत कितनों के नेत्र बाहर निकले हुए दिखाई देते थे; कितनेही घोडों और सवारोंके कवच तथा आभूषण अस्त्रोंसे कटे हुए पृथ्वी-पर गिरे हुए इधर उधर पडे थे। इसी भांतिसे जगह जगह मरे हुए घोडों और शूरवीरोंके शरीरसे रणभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर दिखाई देने लगी ॥ उत्तम वस्त्रोंसे युक्त मणिजटित शय्यापर शयन करने योग्य कितने ही पराक्रमी राजा-लोग मरे हुए उस रणभूमिमें अनाथकी भांति पृथ्वीपर शयन करते हुए दिखाई देते थे ॥ (७–८)

कौवे, बगुले, सियार, कुत्ते, भेडिये और रुधिर पीनेवाले पक्षी मांस भक्षण करके रुधिर पीते थे; भूत,प्रेत, पिशाच लोग अत्यन्त हर्षित होकर मरे हुए मनुष्योंके शरीरोंको फाड मांस मज्जा (चर्बि) और रुधिर खाते पीते तथा मृत पुरुषोंके शरीरोंको इधर उधर खींचते हुए दिखाई देते थे। कितने ही राक्षस हंसते [illegible] दिखाई देते थे। कितने ही राक्षस हंसते हुए मृत मनुष्योंके शरीरसे चामोंको खींच रहे थे ॥ (९–१०)

उस रणभूमिके बीचसे वैतरणी नदी के समान महाभयङ्करी शूरवीर पुरुषों-के रुधिर रूपी जलसे युक्त नदी उत्पन्न होकर बहती हुई दिखाई देने लगी। रथ उस नदी में नौका के समान-बहे जाते थे। मरे हुए हाथी उस नदी के बीच पडे हुए पर्वत शृङ्गके समान दिखाई देते थे। मनुष्योंके शिर ही उसमें पत्थरके टुकडेके समान बोध होते थे, मांस ही उसमें कीचड रूपमें दीख पडता था; टूटे, फूटे कवच, आदि अस्त्रशस्त्र ही उस नदीमें फेन युक्त मालाके समान

उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ॥ १२ ॥
पिबन्ति चाऽश्नन्ति च यत्र दुर्दृशाः पिशाचसङ्घास्तु नदन्ति भैरवाः ।
सुनन्दिताः प्राणभृतां भयङ्कराः समानभक्षाः श्वसृगालपक्षिणः ॥१३॥
तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम् ।
निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः समुत्थिता नृत्तकबन्धसंकुलम् ॥ १४ ॥
अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं निपातितं शक्रसमं महाबलम् ।
रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जना व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अभिमन्युवधपर्वणि
तृतीयदिवसावहारे समरभूमिवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ [१९८३]

सञ्जय उवाच— हते तस्मिन्महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे ।
विमुक्तरथसन्नाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः ॥ १ ॥
उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम् ।

मालूम होते थे; और मरे तथा अधमरे योद्धा लोग उस नदीमें बहते हुए दिखाई देते थे। उस नदीमें प्राणियोंको भयभीत करनेवाले भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस लोग महा भयंकरी बोली बोलते हुए मांस भक्षण करके रुधिर पीते थे; सियार कौवे बगुले और गिद्ध आदि पक्षी उस रुधिररूपी नदीके समीप मृत पुरुषोंके शरीरसे मांस खाते और रुधिर पीते हुए अत्यन्त ही आनन्दित होते थे। (११-१३)

जगह जगह सैकडों कबन्ध अस्त्र ग्रहण करके दौडते और युद्धभूमिमें नृत्य करते हुए चारों ओर कूदते हुए दीख पडते थे। महाराज! सम्पूर्ण सेनाके पुरुष लोग इस प्रकारसे यमराजके राष्ट्रको बढानेवाली भयङ्करी रणभूमिको धीरे धीरे देखते हुए उससे पृथक् हुए॥ उन लोगोंने रणभूमिसे लौटते हुए इन्द्रके समान अभिमन्युको पृथ्वीमें पडे हुए देखा; उसके कवच आभूषण कटके शरीरसे पृथक् पडे हुए इधर उधर दिखाई देते थे; और मरे हुए कुमार अभिमन्युका शरीर उस रणभूमिमें इस प्रकारसे प्रकाशित होरहा था, जैसे आहुति-रहित वेदीकी अग्नि प्रकाशमान दिखाई देती है॥ (१४-१५) [१९८३]

द्रोणपर्वमें पचास अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकावन अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! उस रथ यूथपति अभिमन्युके मारे जानेपर सम्पूर्ण योद्धा लोग उसके शोकसे दुःखित होकर रथ कवच और धनुष बाण त्यागकर उस ही युद्धका ध्यान करते हुए

तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः ॥ २ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः ।
अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥ ३ ॥
द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रियचिकीर्षया ।
भित्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ४ ॥
यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे ।
प्रभग्ना विनिवर्त्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५ ॥
अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः ।
क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥ ६ ॥
स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीकमहार्णवम् ।
प्राप्य दौःशासनिं कार्ष्णिः प्राप्तो वैवस्वतक्षयम्॥ ७ ॥
कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम् ।
सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥ ८ ॥
किं स्विद्वयमपेतार्थमक्लिष्टमसमञ्जसम् ।
तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनञ्जयौ ॥ ९ ॥

चारों ओरसे राजा युधिष्ठिरको घेरकर बैठ गये ॥ अनन्तर राजा युधिष्ठिर महावीर भ्रातृपुत्र अभिमन्युके शोक से अत्यन्त दुःखित होके रोदन करने लगे ॥ (१-३)

हा ! जैसे गौओंके बीचमें सिंह प्रवेश करता है, वैसे ही अभिमन्युने मेरे प्रिय कार्यके निमित्त निर्भयचित्तसे द्रोणाचार्यके बनाये हुए चक्रव्यूहको भेद करके उसमें प्रवेश किया था ॥ जिसके अस्त्रोंके प्रभावसे युद्धदुर्मद महाधनुर्द्धर अत्यन्त ही शिक्षित शूरवीर योद्धा लोग युद्धभूमिसे भाग गये थे; जिस पराक्रमी वीर अभिमन्यु ने हमारे परम शत्रु दुःशासनको अपने अस्त्रोंसे पीडित करके युद्धभूमिसे भगा दिया था, वही बलवान् अभिमन्यु महासमुद्रके समान द्रोणाचार्यकी महासेनाको तितर बितर करके अन्त में दुःशासनपुत्रकी गदाके चोट से मर कर यमलोक को चला गया ॥ (४-७)

इस समय अब मैं अर्जुन और यशस्विनी सुभद्राके संमुख कैसे जाऊंगा ! ओहो ! अब वे अपने प्यारे पुत्र अभिमन्युको न देख सकेंगे । मैं कृष्ण और वीर अर्जुनके समीपमें किस प्रकारसे अर्थशून्य इस रूखे संवादको सुनाऊंगा । मैंने ही स्वार्थके वशमें होकर

अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि।
प्रियकामो जयाकांक्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥ १० ॥
न लुब्धो बुध्यते दोषाँल्लोभान्मोहात्प्रवर्त्तते।
मधुलिप्सुर्हि नाऽपश्यं प्रपातमहमीदृशम् ॥ ११ ॥
यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च।
भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥ १२ ॥
कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः।
सदश्व इव सम्बाधे विषमे क्षेममर्हति ॥ १३ ॥
नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनुशयीमहि।
बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥ १४ ॥
अलुब्धो मतिमान्ह्रीमान्क्षमावान्रूपवान्बली।
वपुष्मान्मानकृद्वीरः प्रियः सत्यपराक्रमः ॥ १५ ॥
यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्यूर्जितकर्मणः।
निवातकवचाञ्जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥

जयकी इच्छासे कृष्ण अर्जुन और सुभद्राके ऐसे अप्रियकार्यको किया है॥ लोभी पुरुष दोषकी ओर दृष्टि नहीं करता। मनुष्योंकी मोहके वशमें होकर ही लोभमें प्रवृत्ति होती है। जैसे मधुकी इच्छावाला पुरुष पर्वतकी शिखरपर चढता है, और अपने गिरनेकी सम्भावना नहीं समझ सकता; वैसे ही मैंने भी इस प्रकारकी महाघोर विपद्को नहीं समझा था॥ (८-११)

भोजन, सवारी, शय्या और आभूषण देकर जिसका आनन्दित करना उचित था, हम लोगोंने ऐसे बालकको युद्धके निमित्त रणभूमिमें सबके आगे किया था॥ वह सोलह वर्षका बालक था, युद्धके कार्योंमें भली भांतिसे निपुण नहीं हुआ था; तब महा सङ्कटरूपी युद्धभूमिमें अकेले गमन करनेसे अच्छे अश्वके समान किस प्रकारसे उसके कल्याणकी सम्भावना हो सकती थी? हाय! मैं भी आज क्रोधसे प्रज्वलित अर्जुनकी क्रूर दृष्टिसे भस्म होकर पृथ्वीमें अभिमन्युके समान शयन करूंगा। (१२-१४)

जो लोभरहित बुद्धिमान्, लज्जाशील, क्षमावान्, बलवान्, दृढ धनुर्द्धारी, मानी, धीर, सब लोकोंके प्यारे, सत्य पराक्रमी, तेजस्वी और जिसके कर्म अत्यन्तही पवित्र हैं; पण्डित लोग जिसके कर्मोंकी सदा प्रशंसा किया करते हैं, जिसने युद्धमें

महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः ॥ १७ ॥
परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः ।
तस्याऽस्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो बली॥ १८ ॥
भयं तु सुमहत्प्राप्तं धार्तराष्ट्रान्महाबलान् ।
पार्थः पुत्रवधात्क्रुद्धः कौरवाञ्शोषयिष्यति ॥ १९ ॥
क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयकारकः ।
व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन्हास्यति जीवितम्॥ २० ॥
न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं न चाऽमरत्वं न सुरैः सलोकता ।
इमं समीक्ष्याऽप्रतिवीर्यपौरुषं निपातितं देववरात्मजात्मजम् ॥२१॥ २००४

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि युधिष्ठिरप्रलापे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

सञ्जय उवाच— अथैनं विलपन्तं तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृषिः ॥ १ ॥
अर्चयित्वा यथान्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः ।

निवातकवच और कालकेय दानवोंका वध किया था, जिन्होंने निमेष भरमें हिरण्यपुरवासी इन्द्रके शत्रु पौलोमको उसके अनुयायिओंके सहित मारकर गिरा दिया था; और जो पराक्रमी अर्जुन अभय चाहनेवाले शत्रुओंको भी अभय दान करते हैं; हम लोग आज भयसे युक्त होकर उनके प्यारे पुत्र अभिमन्युकी रक्षा युद्धभूमिमें नहीं कर सके ? १५-१८

परन्तु दुर्योधनकी सेनाके योद्धाओंको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ है, क्योंकि अर्जुन पुत्रके वधसे अत्यन्त ही क्रुद्ध होके कौरवोंका नाश कर देंगे ॥ नीच बुद्धि-वाला दुष्ट दुर्योधन अपने क्षुद्र सहायोंका नाश देखके आतुर और शोकित होकर अवश्य ही प्राणत्याग करेगा ॥ इन्द्रपौत्र महातेजस्वी अभिमन्युका नाश देखकर विजय, राज्य, अमरत्वकी प्राप्ति, अथवा शूरवीरोंका सहवास आदि कुछ भी मुझे इस समय अच्छा नहीं लगता है ॥ (१९—२१) [२००४]

द्रोणपर्वमें एकावन अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें बावन अध्याय ।

सञ्जय बोले, अनन्तर महर्षि कृष्ण-द्वैपायन कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको विलाप करते जानकर अकस्मात् वहांपर उप-स्थित हुए ॥ भ्रातृष्पुत्रके शोकसे कातर राजा युधिष्ठिरने विधिपूर्वक उनकी पूजा

अब्रवीच्छोकसन्तप्तो भ्रातुः पुत्रवधेन च ॥ २ ॥
अधर्मयुक्तैर्बहुभिः परिवार्य महारथैः ।
युध्यमानो महेष्वासैः सौभद्रो निहतो रणे ॥ ३ ॥
बालश्च बालबुद्धिश्च सौभद्रः परवीरहा ।
अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥ ४ ॥
मया प्रोक्तः स संग्रामे द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
प्रविष्टेऽभ्यन्तरे तस्मिन्सैन्धवेन निवारिताः ॥ ५ ॥
ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजीविभिः ।
इदं चैवाऽसमं युद्धमीदृशं यत्कृतं परैः ॥ ६ ॥
तेनाऽस्मि भृशसन्तप्तः शोकबाष्पसमाकुलः ।
शमं नैवाऽधिगच्छामि चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ ७ ॥
सञ्जय उवाच— तं तथा विलपन्तं वै शोकव्याकुलमानसम् ।
उवाच भगवान्व्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ८ ॥
व्यास उवाच— युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।

की । अनन्तर जब महर्षि कृष्णद्वैपायन आसनपर बैठे, तब राजा युधिष्ठिर उनसे कहने लगे, हे ब्राह्मण ! अधार्मिक महारथ महाधनुर्द्धर बहुतसे पुरुषोंने मिलकर अकेले अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करके उसका वध किया है ॥ (१-३)

शत्रुनाशन वीर अभिमन्यु बालक था, और उसकी बुद्धि ही बालकोंके समान थी; उसने शस्त्ररहित होकर भी विशेष रूपसे युद्ध किया था ॥ मैंने उससे कहा था, कि तुम शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करनेका द्वार कर दो; हम लोग उस ही मार्गसे शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करेंगे । अनन्तर जब उसने चक्रव्यूहके भीतर प्रवेश किया; उस समयमें सिन्धु राज जयद्रथने मार्ग रोककर हम लोगोंको भीतर नहीं जाने दिया ॥ युद्ध करनेवाले क्षत्रियोंको अपने समानके वीरोंसे ही युद्ध करना उचित है; परन्तु शत्रुओंने जो इस प्रकारसे अन्याय युद्ध करके बालकका वध किया है; उस ही निमित्त मैं अत्यन्त दुःखित और शोकित हो रहा हूं, यही मैं बार बार सोच रहा हूं परन्तु किसी प्रकारसे भी शान्ति लाभ नहीं कर सकता हूं ॥ (४-७)

सञ्जय बोले, महाराज ! भगवान् वेदव्यास मुनि राजा युधिष्ठिरको अत्यन्त शोकित और व्याकुलचित्तसे विलाप करते हुए देखकर उनसे यह वचन बोले, हे भरतर्षभ युधिष्ठिर ! तुम महा-

व्यसनेषु न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ　॥ ९ ॥
स्वर्गमेष गतः शूरः शत्रून्हत्वा बहून्रणे ।
अबालसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः　॥ १० ॥
अनतिक्रमणीयो वै विधिरेष युधिष्ठिर ।
देवदानवगन्धर्वान्मृत्युर्हरति भारत　॥ ११ ॥
युधिष्ठिर उवाच– इमे वै पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले ।
निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महाबलाः　॥ १२ ॥
नागायुतबलाश्चाऽन्ये वायुवेगबलास्तथा ।
त एते निहताः संख्ये तुल्यरूपा नरैर्नराः　॥ १३ ॥
नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे क्वचित् ।
विक्रमेणोपसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः　॥ १४ ॥
जेतव्यमिति चाऽन्योन्यं येषां नित्यं हृदि स्थितम् ।
अथ चेमे हताः प्राज्ञाः शेरते विगतायुषः　॥ १५ ॥
मृता इति च शब्दोऽयं वर्तते च ततोऽर्थवत् ।
इमे मृता महीपालाः प्रायशो भीमविक्रमाः ॥ १६ ॥

बुद्धिमान् और सब शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले हो; तुम्हारे समान महात्मा पुरुष विपद्में मोहित नहीं होते । वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी अभिमन्यु बालक होकर भी रणभूमिमें अनेक शत्रुओंका नाश करके स्वर्ग लोकमें गया है । हे युधिष्ठिर ! मृत्युको कोई पुरुष भी अतिक्रम नहीं कर सकता; मृत्यु देवता, दानव, और गन्धर्वोंका भी नाश करती है । (८–११)

राजा युधिष्ठिर बोले, ये सब महा-बलवान् ! पराक्रमी राजा लोग सेनाके बीच रण भूमिमें मृत संज्ञा प्राप्त होकर पृथ्वीपर सोये पडे हैं ॥ इनमेंसे कोई दश हजार हाथियोंके समान बलवान् और कितने ही वायुके समान वेग और पराक्रमसे युक्त थे; परन्तु वे लोग भी अपने समान मनुष्योंके हाथसे मरकर पृथ्वीमें पडे हैं । उन योद्धाओंका वध करने वाला कोई था; ऐसा बोध नहीं होता है; क्योंकि वे सबही बल, तेज और पराक्रमसे युक्त थे ॥ सबहीको मन ही मन " मैं जीतूंगा, मैं जीतूंगा; " ऐसा ही निश्चय था । परन्तु वे सम्पूर्ण बुद्धिमान् राजा लोग प्राणरहित होकर पृथ्वीमें पडे हैं, और मृतशब्द भी उनके निमित्त प्रयोग हो रहा है ॥ (१२–१६)

ये सम्पूर्ण राजा लोग अत्यन्त

निश्चेष्टा निरभीमाना शूराः शत्रुवशङ्गताः ।
राजपुत्राश्च संरब्धा वैश्वानरमुखं गताः ॥ १७ ॥
अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा मृता इति ।
कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः कथं संहरते प्रजाः ॥ १८ ॥
हरत्यमरसङ्काश तन्मे ब्रूहि पितामह ।

सञ्जय उवाच— तं तथा परिपृच्छन्तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः ॥ १९ ॥

व्यास उवाच— अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अकम्पनस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥ २० ॥
स चापि राजा राजेन्द्र पुत्रव्यसनमुत्तमम् ।
अप्रसह्यतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः ॥ २१ ॥
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् ।
ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात्स्नेहबन्धनसंश्रयात् ॥ २२ ॥
समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्तयतो मम ।

पराक्रमी होकर भी मृत्युको प्राप्त हुए हैं। कितने ही राजपुत्र लोग भी शूरवीर थे, वे लोगभी क्रोधपूर्वक शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करके अन्तमें शत्रुओंके वशमें हो अभिमानशून्य और निश्चेष्ट होकर मृत्युके मुखमें पतित हुए॥ इस विषयमें मुझे यह संशय उत्पन्न हो रहा है, कि मृत यह संज्ञा किस कारणसे होती है, मृत्यु क्या वस्तु है, किस प्रकार और कहांसे उत्पन्न हुई है; और मृत्यु प्राणियोंका किस प्रकारसे संहार करती है, तथा किस भांति इस लोकसे परलोकमें ले जाती है? हे देवतोंके समान पितामह! आप इस सम्पूर्ण वृत्तान्तको वर्णन करके मेरे सन्देहका नाश कीजिये। १६–१९

संजय बोले, राजा युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुन भगवान् वेदव्यास उन्हें धीरज देते हुए यह वचन बोले,हे राजन्! पहिले समयमें नारद ऋषिने राजा अकम्पनको जो वृत्तान्त सुनाया था,पण्डित लोग इस ही स्थानपर उस पुराने इतिहासको उदाहरण रूपसे वर्णन करते हैं॥ हे राजेन्द्र! मेरे विचारसे राजा अकम्पन भी इस लोकमें न सहने योग्य पुत्रशोक पाया था॥ मैं उस ही उपाख्यानमें कही हुई मृत्युकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, तुम चित्त लगाकर सुनो। हे तात! मैं इस पुराने इतिहास को विस्तारपूर्वक कहता हूं,उसके सुनने से तुम स्नेहके बन्धनमें पड़े हुए दुःख

धन्यमाख्यानमायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्धनम् ॥ २३ ॥
पवित्रमरिसङ्घघ्नं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
यथैव वेदाध्ययनमुपाख्यानमिदं तथा ॥ २४ ॥
श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं नृपोत्तमैः ।
पुत्रानायुष्मतो राज्यमीहमानैः श्रियं तथा ॥ २५ ॥
पुरा कृतयुगे तात आसीद्राजा ह्यकम्पनः ।
स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राममूर्धनि ॥ २६ ॥
तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले ।
श्रीमान्कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो बली ॥ २७ ॥
स शत्रुभिः परिवृतो बहुधा रणमूर्धनि ।
व्यस्यन्बाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु च ॥ २८ ॥
स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः ।
शत्रुभिर्निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर ॥ २९ ॥
स राजा प्रेतकृत्यानि तस्य कृत्वा शुचाऽन्वितः ।
शोचन्नहनि रात्रौ च नाऽलभत्सुखमात्मनः ॥ ३० ॥

से मुक्त हो सकोगे ॥ (१७–२२)

यह उपाख्यान संपूर्ण पापराशियोंका नाश करनेवाला, धन्य, शोकदुःखका नाशक, आयुको बढानेवाला, और पुष्टिको देनेवाला है । हे महाराज ! इस अत्यन्त पवित्र शत्रुसमूहका विनाशक और परम मंगल उपाख्यानका पाठ करनेसे वेदाध्ययनके समान फल मिलता है । यह राज्य और आयुकी इच्छा करनेवाले तथा पुत्र चाहनेवाले राजाओंको नित्य ही प्रातःकाल सुनना चाहिये । (२३—२५)

सतयुगमें पहिले अकम्पन नामक राजा थे, वह संग्रामभूमिके बीच शत्रुओंके वशवर्ती हुए ॥ उनका हरिनामक एक पुत्र था । हरि बल तथा पराक्रममें इन्द्रके समान था । श्रीमान्, शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाला और युद्धमें इन्द्रके समान बलवान् था । उसने अनेक प्रकारसे शत्रुओंके बीच घिरकर रणभूमिमें बहुतेरे योद्धाओं और हाथियोंके ऊपर सहस्रों बाण चलाये थे ॥ शत्रुनाशन हरि रणभूमिमें अत्यन्त कठिन कर्मोंको करके अन्तमें सेनाके बीच शत्रुओंके हाथसे मारे गये ॥ २६–२९

राजा अकम्पन शोकसे युक्त होकर उसका श्राद्ध आदि कर्म करके निवृत्त हुए । अनन्तर रात दिन उसके शोकसे

तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम् ।
आजगामाऽथ देवर्षिर्नारदोऽस्य समीपतः ॥ ३१ ॥
स तु राजा महाभागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथयत्तदा ॥ ३२ ॥
तस्य सर्वं समाचष्ट यथावृत्तं नरेश्वरः ।
शत्रुभिर्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ॥ ३३ ॥
मम पुत्रो महावीर्य इन्द्रविष्णुसमद्युतिः ।
शत्रुभिर्बहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो बली ॥ ३४ ॥
क एष मृत्युर्भगवन्किं वीर्यबलपौरुषः ।
एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं मतिमतां वर ॥३५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदो वरदः प्रभुः ।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ॥ ३६ ॥
नारद उवाच— शृणु राजन्महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम् ।
यथावृत्तं श्रुतं चैव मयाऽपि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥
प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे पितामहः ।

चिन्ता करने लगे; किसी प्रकारसेभी उस का शोक नहीं दूर हुआ ॥ अनन्तर देवर्षि नारदने उन्हें पुत्रशोकसे दुःखित देखकर उनके निकट आगमन किया ॥ ३०-३१

राजा अकम्पनने देवर्षि सत्तम नारद मुनिको देखके उनकी यथा उचित पूजा की और आसनपर बैठनेके अनन्तर उनसे अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करने लगे ॥ जिस प्रकारसे युद्ध हुआ था, उसमें जैसे शत्रुओंकी विजय हुई थी तथा जिस प्रकारसे उस संग्राममें उनके पुत्रका नाश हुआ था वह सम्पूर्ण वृत्तान्त नारदमुनिको सुनाकर फिर बोले, मेरा पुत्र महाबलवान् इन्द्र और विष्णुके समान पराक्रमी था; अनेक शत्रुओंने मिलकर युद्धभूमिमें मेरे पुत्रका वध किया है ॥ हे महामुनि मृत्यु कौन है ? मृत्युका बल, पराक्रम और पुरुषार्थ किस प्रकारका है ? हे ऋषिश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे समीपमें इस विषयको विस्तार पूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३२-३५

उनका ऐसा वचन सुनकर वरदान देनेवाले नारदमुनि पुत्रशोकका नाश करनेवाले इस बडे उपाख्यानको विस्तर पूर्वक कहने लगे । नारदमुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ ! मैंने एक उपाख्यान विस्तारपूर्वक सुना है, उसे तुम अच्छी प्रकारसे चित्त लगाकर सुनो । महातेजस्वी

असंहृतं महातेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥ ३८ ॥
तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव ।
चिन्तयन्न ह्यसौ वेद संहारं वसुधाधिप ॥ ३९ ॥
तस्य रोषान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत ।
तेन सर्वा दिशो व्याप्ताः सान्तर्देशा दिधक्षता॥ ४० ॥
ततो दिवं भुवं चैव ज्वालामालासमाकुलम् ।
चराचरं जगत्सर्वं ददाह भगवान्प्रभुः ॥ ४१ ॥
ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ॥ ४२ ॥
ततो रुद्रो जटी स्थाणुर्निशाचरपतिर्हरः ।
जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ ४३ ॥
तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया ।
अब्रवीत्परमो देवो ज्वलन्निव महामुनिः ॥ ४४ ॥
किं कुर्मं कामं कामार्ह कामाज्जातोऽसि पुत्रक ।

पितामह ब्रह्माने पहिले सृष्टिके उत्पत्ति समयमें सम्पूर्ण प्रजाओंको उत्पन्न किया॥ अनन्तर इस संसारको धीरे धीरे सम्पूर्ण प्राणियोंसे पूर्ण होते देखकर उसका संहार करनेकी चिन्ता करने लगे । हे राजेन्द्र ! ब्रह्मा बहुत चिन्ता करनेपर भी जगत्के प्राणियोंका नाश करनेका कुछ उपाय स्थिर न करे सके॥ ३६-३९

तब उनके शरीरसे क्रोध उत्पन्न हुआ और उस ही क्रोधसे आकाशमें अग्नि प्रकट हुई । वह अग्नि सम्पूर्ण जगत्का नाश करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण दिशा तथा समस्त स्थानोंमें व्याप्त होगई ॥ अनन्तर वह अग्नि स्वर्ग पृथ्वी और आकाशवासी सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनी प्रचण्ड ज्वालासे विकल करके भस्म करने लगी ॥ स्थावर जङ्गम आदि सम्पूर्ण जीव ब्रह्माके क्रोधाग्निसे जलते हुए अत्यन्त ही भय भीत हुए॥ ४०-४२

अनन्तर जटाधारी संपूर्ण निशाचरों के स्वामी देवोंके देव महादेव ब्रह्माकी शरणमें उपस्थित हुए ॥ महादेव सम्पूर्ण प्रजाके कल्याणके वास्ते जब जगत्पितामह ब्रह्माके निकट उपस्थित हुए, तब जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी ब्रह्मा उनसे बोले, हे पुत्र ! हे शिव ! तुम अपनी खेच्छापूर्वक उत्पन्न हुए हो । तुम वर ग्रहण करनेके योग्य पात्र हो; इससे तुम्हारी जो इच्छा हो वह प्रकाश रूपसे मेरे समीपमें वर्णन

करिष्यामि प्रियं सर्वं ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि॥४५॥[२०४९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५२ ॥

स्थाणुरुवाच — प्रजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो।
त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः ॥ १ ॥
तास्तवेह पुनः क्रोधात्प्रजा दह्यन्ति सर्वशः।
ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भगवन्प्रभो ॥ २ ॥
ब्रह्मोवाच — संहर्तुं न च मे काम एतदेवं भवेदिति।
पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत् ॥ ३ ॥
इयं हि मां सदा देवी भारार्त्ता समचूचुदत्।
संहारार्थं महादेव भारेणाऽभिहता सती ॥ ४ ॥
ततोऽहं नाऽभिगच्छामि तथा बहुविधं तदा।
संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥ ५ ॥
रुद्र उवाच — संहारार्थं प्रसीदस्व मा रुषो वसुधाधिप।

करो, मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूंगा॥ (४३-४५) [२०४९]

द्रोणपर्वमें बावन अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें तिरपन अध्याय।

महादेव बोले, हे विधाता ! आपने प्रजाको उत्पन्न करनेके निमित्त यत्न किया था, उसहीसे नाना प्रकारके सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होकर क्रमशः बढ रहे हैं॥ इस समयमें उन ही सम्पूर्ण प्राणियोंको तुम्हारे क्रोधाग्निसे जलते हुए देखकर उन समस्त जीवोंके निमित्त मेरे हृदयमें दया उत्पन्न हुई है। हे भगवन् ! हे प्रभो ! इससे आप प्रसन्न होइये॥ १-२

ब्रह्मा बोले, हे महादेव ! प्रजाओंको नाश करनेकी मेरी इच्छा नहीं है, तुम जो वचन कहते हो, वही होगा; परन्तु पृथ्वीके हितके निमित्त मेरे शरीरसे क्रोध उत्पन्न हुआ है॥ यह वसुन्धरा पृथ्वी देवी इन बढे हुए प्रजा समूहके भारसे पीडित होकर उनके नाशके निमित्त मुझसे अनुरोध कर रही है॥ मैंने इन अनगिनत प्रजासमूहका नाश करनेके निमित्त अनेक भांतिसे चिन्ता की, परन्तु उनका नाश करनेके निमित्त मेरे विचारमें कोई उपाय भी स्थिर नहीं हुआ; उस ही कारण मेरे शरीरसे क्रोध प्रकट हुआ है॥ (३-५)

रुद्र बोले, हे ब्रह्मन् ! हे जगत्कर्त्ता आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। आप अपने इस क्रोधको शान्त कीजिये, जिससे

मा प्रजाः स्थावराश्चैव जङ्गमाश्च व्यनीनशः ॥ ६ ॥
तव प्रसादाद्भगवन्निदं वर्तेत्त्रिधा जगत् ।
अनागतमतीतं च यच्च सम्प्रति वर्तते ॥ ७ ॥
भगवन्क्रोधसन्दीप्तः क्रोधादग्निमवासृजत् ।
स दहत्यश्मकूटानि द्रुमांश्च सरितस्तथा ॥ ८ ॥
पल्वलानि च सर्वाणि सर्वे चैव तृणोलपाः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥ ९ ॥
तदेतद्भस्मसाद्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसीद भगवन्स त्वं रोषो न स्याद्वरो मम ॥ १० ॥
सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथञ्चन ।
तस्मान्निवर्त्ततां तेजस्त्वय्येवेदं प्रलीयताम् ॥ ११ ॥
तत्पश्यदेव सुभृशं प्रजानां हितकाम्यया ।
यथेमे प्राणिनः सर्वे निवर्त्तेरंस्तथा कुरु ॥ १२ ॥
अभावं नेह गच्छेयुरुत्सन्नजननाः प्रजाः ।
आदिदेव नियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेषु लोककृत् ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण जगत्का नाश न होवे-आप वैसा ही उपाय कीजिये ॥ हे भगवन् ! तुम्हारी कृपासे यह जगत् भूत वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालमें स्थित रहे ॥ तुमने क्रुद्ध होकर अपने क्रोधसे अग्नि उत्पन्न की है; वह अग्नि पर्वत, वृक्ष, तालाव, नदी, तृण और सम्पूर्ण वस्तुओंको ही भस्म कर रही है ॥ हे भगवन् ! आप जगत्के ऊपर कृपा करके प्रसन्न होईये मेरी यही प्रार्थना है ॥ (६-१०)

हे देवोंके देव ! यह सम्पूर्ण संसार नश्वर अर्थात् नाशमान है यह अवश्य नष्ट होवेगा; परन्तु इस समयमें आपके क्रोधसे नष्ट हुआ चाहता है, इस निमित्त अपने क्रोधको शान्त कीजिये; यह प्रचण्ड अग्निका तेज आपहीके शरीरमें लीन होजावे ॥ हे देव ! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके निमित्त भली भांति इनकी ओर कृपादृष्टि कीजिये, जिसमें सम्पूर्ण जीवों की रक्षा होवे आप उसही का विधान कीजिये ॥ (११-१२)

जिसमें ये सम्पूर्ण प्रजा उत्पादक शक्तिसे रहित होकर नष्ट न होवें; आप वैसा ही कार्य कीजिये । हे लोकनाथ ! आपने इस सम्पूर्ण लोकके बीच मुझको जगत्का संहार करनेके निमित्त नियुक्त किया है; और इस समय आप स्वयं ही जगत्का संहार करनेकी इच्छा करते

मा विनश्येज्जगन्नाथ जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसादाभिमुखं देवं तस्मादेवं ब्रवीम्यहम् ॥ १४ ॥

नारद उवाच— श्रुत्वा हि वचनं देवः प्रजानां हितकारणे ।
तेजः सन्धारयामास पुनरेवाऽन्तरात्मनि ॥ १५ ॥
ततोऽग्निमुपसंहृत्य भगवाँल्लोकसत्कृतः ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः ॥ १६ ॥
उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तथा ।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः ॥ १७ ॥
कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना ।
कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा ॥ १८ ॥
सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां दिशमाश्रिता ।
स्मयमाना च साऽवेक्ष्य देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥ १९ ॥
तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः ।
मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति ॥ २० ॥
त्वं हि संहारबुद्ध्याऽथ प्रादुर्भूता रुषो मम ।

हैं। आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, इस ही निमित्त मैं यह प्रार्थना करता हूं कि इस स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण जगत्का नाश मत कीजिये ॥ (१३–१४)

नारद मुनि बोले, ब्रह्माने सम्पूर्ण प्रजाके कल्याणकारी महादेवके वचनको सुनके अपने तेजको फिर समेटकर निज-आत्मामें धारण किया॥ अनन्तर जगत् पितामह ब्रह्माने अग्निको शान्त करके जगत्की सृष्टि और संहार करनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया ॥ महात्मा ब्रह्माने जिस समयमें उस प्रचण्ड अग्निका सम्पूर्ण तेज अपनी आत्मामें धारण किया; उस समय उनके समस्त इंद्रियोंके छिद्रोंसे एक कन्या प्रकट हुई ॥ हे राजेन्द्र ! उस स्त्रीका शरीर पीला और नीला वर्णसे युक्त, था; उसकी जिह्वा, मुख और नेत्र काले थे । उस स्त्रीके कुण्डल आदि संपूर्ण भूषण तप्त सुवर्णके थे ॥ (१५-१८)

वह उसी भांति ब्रह्माके लोमकूपसे प्रकट हो विश्वेश्वर महादेव और जगत् पितामह ब्रह्माको देखके हंसकर उनकी दाहिनी ओर स्थित हुई ॥ हे राजन् ! अनन्तर जगत्के उत्पन्न और संहार करनेके निमित्त ईश्वर ब्रह्माने उस कन्याको मृत्यु कहके आवाहन किया और उससे यह वचन बोले, तुम संहारबुद्धिसे युक्त होकर मेरे क्रोधसे उत्पन्न हुई हो

तस्मात्संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ २१ ॥
मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ।
एवमुक्ता तु सा तेन मृत्युः कमललोचना ॥ २२ ॥
दध्यौ चाऽत्यर्थमबला प्ररुरोद च सुस्वरम् ।
पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः ।
सर्वभूतहितार्थाय तां चाऽप्यनुनयत्तदा ॥ २३ ॥ [२०७२]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

नारद उवाच— विनीय दुःखमबला आत्मन्येव प्रजापतिम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवाऽऽवर्जिता पुनः ॥ १ ॥
मृत्युरुवाच— त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदतां वर ।
क्रूरं कर्माऽऽहितं कुर्यां तदेव किमु जानती ॥ २ ॥
बिभेम्यहमधर्माद्धि प्रसीद भगवन्प्रभो ।
प्रियान्पुत्रान्वयस्यांश्च भ्रातॄन्मातॄः पितॄन्पतीन् ॥ ३ ॥
अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेभ्वेभ्यो बिभेम्यहम् ।
कृपणानां हि रुदतां ये पतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ४ ॥

इससे मेरी आज्ञासे इस सम्पूर्ण जगत्के प्रजाओंका नाश करो; ऐसा कार्य करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ (१९-२२)

वह कमल नैनी मृत्यु नाम्नी कन्या ब्रह्माकी ऐसी आज्ञा सुनकर अत्यन्त ही चिन्ता करके मन्द स्वरसे रोदन करने लगी। पितामह ब्रह्माने सब प्राणियोंके हितके निमित्त दोनों हाथोंकी अञ्जलियोंमें उसके आंसुओंको ग्रहण किया फिर जगत्के संहारके निमित्त उससे अत्यन्त ही विनंती करने लगे॥ २२-२३

द्रोणपर्वमें तिरपन अध्याय समाप्त। [२०७२]

द्रोणपर्वमें चौवन अध्याय।

नारद मुनि बोले, उस कन्याने अपने दुःखको देखकर नीचे गिरी हुई लताके समान दोनों हाथ जोडके पितामह ब्रह्मासे यह वचन बोली, हे महा बुद्धिमान् ! हे विधाता ! तुमने किस प्रकारसे ऐसी स्त्रीको उत्पन्न किया ! मैं जान बूझ कर किस भांति सम्पूर्ण प्राणियोंके अहित और क्रूरकर्मका अनुष्ठान करूंगी ? हे भगवन् ! हे प्रभो ! मैं इस अधर्म कार्य से भयभीत हो रही हूं, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ॥ (१-३)

जिसके प्यारे पुत्र, भाई पिता और पतिकी मृत्यु होगी, वह उन लोगोंके निमित्त मेरे अनिष्टकी चिन्ता करेंगे;

तेभ्योऽहं भगवन्भीता शरणं त्वाऽहमागता ।
यमस्य भवनं देव गच्छेयं न सुरोत्तम ॥ ५ ॥
कायेन विनयोपेता मूर्ध्नोद्ग्रनखेन च ।
एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ॥ ६ ॥
इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तुं प्रजेश्वर ।
प्रदिशेमं वरं देव त्वं मह्यं भगवन्प्रभो ॥ ७ ॥
त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि धेनुकाश्रममुत्तमम् ।
तत्र तप्स्ये तपस्तीव्रं तवैवाऽऽराधने रता ॥ ८ ॥
न हि शक्ष्यामि देवेश प्राणान्प्राणभृतां प्रियान् ।
हर्तुं विलपमानानामधर्मादभिरक्ष माम् ॥ ९ ॥
ब्रह्मोवाच— मृत्यो सङ्कल्पिताऽसि त्वं प्रजासंहारहेतुना ।
गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचारणा ॥ १० ॥
भविता ह्येतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
भवत्वनिन्दिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥ ११ ॥

मैं उन लोगोंके भयसे भी डर रही हूं । हे भगवन् ! वे लोग अत्यन्त हीनता पूर्वक रोदन करेंगे मैं उनके आंसू गिरनेके भयसे दुःखित होकर तुम्हारी शरणमें रहना चाहती हूं । हे देवोंके देव ! मैं यमराजके भवनमें जाकर प्रजा समूह का नाश नहीं करूंगी ॥ (३—५)

हे वर देनेवाले पितामह ! मैं हाथ जोड तथा शिर झुकाकर तुम्हारी प्रसन्नता चाहती हूं और तुमसे यह प्रार्थना करती हूं, कि तुम्हारी कृपासे मैं तपस्याका अनुष्ठान करूं । हे भगवन् ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे यही वर दान कीजिये ॥ तुम्हारी आज्ञा मिलनेसे मैं धेनुकाश्रममें गमन करूंगी ॥ वहां जाकर तुम्हारी आराधनामें तत्पर होकर कठिन तपस्या करूंगी । हे देवेश ! मैं रोदन तथा विलाप करनेवाले प्राणियोंके प्रिय प्राणको हरण नहीं कर सकूंगी; आप मुझे इस अधर्म कर्मसे बचाइये ॥ ६–९

ब्रह्मा बोले, हे मृत्यु ! मैंने प्रजासंहारके निमित्त सङ्कल्प करके तुम्हें उत्पन्न किया है । अब तुम सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करो; इस विषयमें कुछ भी विचार मत करो ॥ यह मेरा वचन अवश्य सत्य होगा यह कभी अन्यथा होनेवाला नहीं है ; तुम मेरे इस वचनको पालन करनेसे लोकके बीचमें निन्दासे रहित होगी ॥ (१०—११)

नारद मुनि बोले, जब ब्रह्माने

नारद उवाच— एवमुक्ताऽभवत्प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी ।
संहारे नाऽकरोद् बुद्धिं प्रजानां हितकाम्यया ॥ १२ ॥
तूष्णीमासीत्तदा देवः प्रजानामीश्वरेश्वरः ।
प्रसादं चाऽगमत्क्षिप्रमात्मनैव प्रजापतिः ॥ १३ ॥
स्मयमानश्च देवेशो लोकान्सर्वानवेक्ष्य च ।
लोकास्त्वासन्यथापूर्वं दृष्टास्तेनाऽपमन्युना ॥ १४ ॥
निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते ।
सा कन्याऽपि जगामाऽथ समीपात्तस्य धीमतः॥ १५॥
अपसृत्याऽप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा ।
त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् ॥ १६ ॥
सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमुत्तमम् ।
सा तदा ह्येकपादेन तस्थौ पद्मानि षोडश ॥ १७ ॥
पञ्च चाऽब्दानि कारुण्यात्प्रजानां तु हितैषिणी ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सा॥ १८ ॥
ततस्त्वेकेन पादेन पुनरन्यानि सप्त वै ।
तस्थौ पद्मानि षट् चैव सप्त चैकं च पार्थिव ॥ १९ ॥

मृत्युसे ऐसा वचन कहा, तब मृत्यु नाम्नी कन्या भयभीत हो हाथजोड कर उनके संमुखमें खडी हो रही, और प्रजासमूहके कल्याणकी अभिलाष करके उनका नाश करनेकी इच्छा नहीं की ॥ (१२)

प्रजापति पितामह ब्रह्मा उस समय शान्त होकर शीघ्र ही प्रसन्न हुए। अनन्तर सम्पूर्ण लोकोंकी ओर देखकर जगत् पितामह ब्रह्मा हंसे, तब सम्पूर्ण प्राणी उनकी प्रसन्न दृष्टिसे पहिलेके समान शान्त होकर स्थित हुए । उन अपराजित बुद्धिमान् ब्रह्माका क्रोध शान्त होनेपर उस मृत्यु नाम्नी कन्याने उनके निकटसे प्रस्थान किया ॥ (१३-१५)

हे राजेन्द्र ! वह कन्या प्रजासमूहका संहार करनेके कार्यको अस्वीकार करके शीघ्र ही धेनुकाश्रममें पहुंची ॥ अनन्तर प्रजापुञ्ज तथा प्राणियोंके हितकी इच्छा कर इन्द्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करके वहांपर एक पांवसे खडी होकर इक्कीस पद्म वर्ष पर्यन्त महाघोर अत्यन्त कठिन तपस्याका अनुष्ठान किया। (१६-१८)

फिर दूसरी बार एक ही चरणसे खडी होकर इक्कीस पद्म वर्षतक कठोर व्रतका अनुष्ठान किया । तिसके अनन्तर

ततः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा।
पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकाम्॥ २० ॥
अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च साऽनयत्।
धारयित्वा तु नियमं नन्दायां वीतकल्मषा ॥ २१ ॥
सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैधिता।
तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥ २२ ॥
पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च।
तपोविशेषैर्बहुभिः कर्षयद्देहमात्मनः ॥ २३ ॥
ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुं च केवलम्।
तस्थौ चाऽश्मेव निश्चेष्टा प्राणायामपरायणा ॥ २४ ॥
पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुराऽयजन्।
तत्राऽङ्गुष्ठेन सा तस्थौ निखर्वं परमा शुभा ॥ २५ ॥
पुष्करेष्वथ गोकर्णे नैमिषे मलये तथा।
अपाकर्षत्स्वकं देहं नियमैर्मानसप्रियैः ॥ २६ ॥
अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्ता पितामहे।

दशसहस्र पद्मवर्ष पर्यन्त मृगोंके सहित वनमें भ्रमण किया॥ अनन्तर पापरहित होके जलपूरित पवित्र शीत नन्दा नदीमें गमन करके जलमें खडी होकर आठ सहस्र वर्षतक व्रत किया॥ अनन्तर फिर नियम अवम्बलन करके पहिले कौशिकीमें गमन करके वायु भक्षण तथा जलपान करके नियमाचरण किया॥ १९—२२

फिर उस पवित्रकर्मवाली कन्याने पञ्चगङ्गा और वेतस तीर्थमें गमन करके नाना प्रकारकी तपस्याका अनुष्ठान करके अपने शरीरको सुखा दिया॥ तिसके अनन्तर गङ्गा और मुख्य तीर्थ महामेरु में जाकर प्राणायाम करती हुई चेष्टा रहित होके स्थित हुई॥ फिर उस पवित्र चरित्रवाली कन्याने उसी पुण्य स्थानमें गमन किया। जहांपर देवताओंने पहिले समयमें यज्ञ किया था। उस हिमालय पर्वतके शृङ्गपर जाकर निखर्व वर्ष पर्यन्त केवल अंगूठेके सहारेसे खडी रही॥ तिसके बाद पुष्कर, गोकर्ण, नैमिषारण्य और मलय तीर्थमें गमन करके अभिलषित नियमका अनुष्ठान करती हुई अपने शरीरको सुखाने लगी॥ हे भारत! उसने लगातार किसी देवताकी भी आराधना न करके निरन्तर पितामह ब्रह्माके ऊपर दृढ भक्तिपूर्वक केवल उन्हीं की उपासना करके उन्हें प्रसन्न

तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास धर्मतः ॥ २७ ॥
ततस्तामब्रवीत्प्रीतो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
सौम्येन मनसा राजन्प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥ २८ ॥
मृत्यो किमिदमत्यन्तं तपांसि चरसीति ह ।
ततोऽब्रवीत्पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ॥ २९ ॥
नाऽहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाऽऽक्रोशतीस्तथा ।
एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥ ३० ॥
अधर्मभयभीताऽस्मि ततोऽहं तप आस्थिता ।
भीतायास्तु महाभाग प्रयच्छाऽभयमव्ययम् ॥ ३१ ॥
आर्त्ता चाऽनागसी नारी याचामि भव मे गतिः ।
तामब्रवीत्ततो देवो भूतभव्यभविष्यवित् ॥ ३२ ॥
अधर्मो नाऽस्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः ।
मया चोक्तं मृषा भद्रे भविता न कथञ्चन ॥ ३३ ॥
तस्मात्संहर कल्याणि प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ।

किया ॥ (२३-२७)

हे राजन् ! अनन्तर जगत् पितामह ब्रह्मा सम्पूर्ण प्राणी और उस कन्याके ऊपर प्रसन्न होकर उससे यह वचन बोले, हे मृत्यु ! तुम किस निमित्त इस प्रकारकी कठोर तपस्याका अनुष्ठान कर-रही हो ? (२८—२९)

अनन्तर मृत्यु भगवान् ब्रह्मासे फिर बोली, हे देवोंके देव ! मुझको प्रजाओंके स्वास्थ्यको भङ्ग करके उनका संहार करना न पडे; वे सम्पूर्ण ऊंचे स्वरसे रोदन करेंगे, वह मुझसे नहीं सहा जायगा । मैं तुम्हारे निकटमें यही वर मांगती हूं, कि मुझको प्रजा समूहका नाश न करना पडे । मैंने अधर्मके डरसे भयभीत होकर तपस्याका अनुष्ठान किया है । हे लोक पितामह ! आप इस भयसे दुःखिता कन्याके ऊपर कृपा करके अभयदान कीजिये । मैं निरपराधिनी कन्या हूं, मैं आर्त्त होकर तुमसे प्रार्थना कर रही हूं; आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये ॥ (२९-३२)

अनन्तर भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् वृत्तान्तोंके जाननेवाले पितामह ब्रह्मा उस कन्यासे यह वचन बोले, हे मृत्यु ! इन सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करनेसे तुम्हें अधर्म नहीं होगा । हे भद्रे ! मेरा वचनभी मिथ्या नहीं होगा ॥ हे कल्याणि ! इससे तुम जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज, इन चारों प्रकारकी

धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥ ३४ ॥
लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते ।
अहं च विबुधाश्चैव पुनर्दास्याम ते वरम् ॥ ३५ ॥
यथा त्वमेनसा मुक्ता विरजाः ख्यातिमेष्यसि ।
सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिरिदं विभुम् ॥ ३६ ॥
पुनरेवाऽब्रवीद्वाक्यं प्रसाद्य शिरसा तदा ।
यद्येवमेतत्कर्तव्यं मया न स्याद्विना प्रभो ॥ ३७ ॥
तवाऽऽज्ञा मूर्ध्नि मे न्यस्ता यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
लोभः क्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥३८॥
अह्रीश्चाऽन्योन्यपरुषा देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः ।

ब्रह्मोवाच— तथा भविष्यते मृत्यो साधु संहर भोः प्रजाः ॥
अधर्मस्ते न भविता नाऽपध्यास्याम्यहं शुभे ॥ ३९ ॥
यान्यश्रुबिन्दूनि करे ममाऽऽसंस्ते व्याधयः प्राणिनामात्मजाताः ।
ते मारयिष्यन्ति नरान्गतासून्नाऽधर्मस्ते भविता मा स्म भैषीः ॥४०॥

प्रजाका संहार करो; ऐसा कार्य करनेसे सनातन धर्म तुमको पवित्र करेगा ॥ लोकपाल यमराज और सम्पूर्ण व्याधि तुम्हारी सहायता करेगी। इस के अतिरिक्त सम्पूर्ण देवता और मैं तुम्हें वर प्रदान करूंगा ॥ उसके प्रभावसे तुम सब पापों से छूटकर रजोगुण से रहित होकर सम्पूर्ण लोकमें विख्यात हो जाओगी। (३२–३६)

हे राजेन्द्र! जब मृत्युरूपी कन्यासे ब्रह्माने ऐसा वचन कहा, तब वह कन्या हाथ जोड शिर झुकाकर उन्हें प्रसन्न करके फिर यह वचन बोली,—हे प्रभो यदि यह कर्म मेरे विना न सिद्ध होसकेगा; तो मैं तुम्हारी आज्ञा मानती हूं, परन्तु मैं, जो कुछ आपके समीप निवेदन करती हूं, उसे सुनिये। लोभ, क्रोध, इर्षा, मोह, निर्लज्जता और आपस के कठोर वचन,— ये सब पृथक् पृथक् रूपसे प्राणियोंके शरीरका नाश करेंगे ॥ (३६–३९)

ब्रह्मा बोले, हे मृत्यु! वैसा ही होगा; तुम्हारा कल्याण होवे, तुम सम्पूर्ण प्राणियों का संहार करना तुम्हें अधर्म नहीं होगा। हे भद्रे! मैं तुम्हारे अनिष्टकी कभी चिन्ता नहीं करूंगा ॥ मेरे अञ्जलीमें तुम्हारे आंसूकी जितनी बूंद गिरी हैं, वे ही प्राणियोंके शरीरमें व्याधि रूपसे प्रवेश करेंगी। वेही सम्पूर्ण व्याधि समयके अनुसार प्राणियोंके

नाऽधर्मस्ते भविता प्राणिनां वै त्वं वै धर्मस्त्वं हि धर्मस्य चेशा ।
धर्म्या भूत्वा धर्मनित्या धरित्री तस्मात्प्राणान्सर्वथेमान्नियच्छ ॥४१॥
सर्वेषां वै प्राणिनां कामरोषौ सन्त्यज्य त्वं संहरस्वेह जीवान् ।
एवं धर्मस्त्वां भविष्यत्यनन्तो मिथ्या वृत्तान्मारयिष्यत्यधर्मः ॥ ४२॥
तेनाऽऽत्मानं पावयस्वाऽऽत्मना त्वं पापेऽऽत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात् ।
तस्मात्कामं रोषमभ्यागतं त्वं सन्त्यज्याऽन्तः संहरस्वेति जीवान् ॥४३॥
नारद उवाच- सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशाच्छापाद्भीता बाढमित्यब्रवीत्तम् ।
सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले कामक्रोधौ त्यज्य हरत्यसक्ता ॥ ४४ ॥
मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः ।
सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम् ४५॥
सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते गत्वा वृत्ताः सन्निवृत्तास्तथैव ।

प्राणको हरण करेगी । उससे तुम्हें कुछ भी अधर्म नहीं होगा; तुम भय मत करो ॥ हे भद्रे ! तुम्हें अधर्म नहीं होगा तथा तुम्ही प्राणियोंके धर्मस्वरूप और धर्मकी चलानेवाली बनोगी । इससे तुम धर्मपरायण धर्मपालिनी और धरित्री होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको नियमित करोगी । (३९–४१)

तुम काम क्रोध त्याग करके सम्पूर्ण प्राणियोंको परलोकमें लाओगी; उससे सनातन धर्म तुमको पवित्र करेगा । जो सब प्राणी मिथ्याचारी हैं, अधर्म ही उन मिथ्याचारियोंका नाश करेगा; परन्तु तुम अपनेको पवित्र समझोगी । क्योंकि अधर्म ही पापियोंको उनके मिथ्या आरणके कारण उन्हें संहारके कर्मोंमें नियुक्त करेगा; उस ही निमित्त तुम असंहार बुद्धि त्यागकर आजसे सम्पूर्ण जीवोंके प्राणको हरण करो ॥ (४१-४३)

नारद मुनि बोले, उस कन्याको जब ब्रह्माने मृत्यु नामसे सम्बोधन किया, तब वह उस मृत्युनामसे तथा मृत पुरुषोंके आप्तोंके शापके डरसे भयभीत होकर उनके समीपमें " बाढं " कहके प्राणियोंका संहार करनेका कार्य स्वीकार किया ॥ वही मृत्यु काम, क्रोध और आसक्तिरहित होकर अन्त समयमें प्राणियोंके प्राणको हरण करती है ॥ आपत्कालमें प्राणियोंको स्वयं ही व्याधि उत्पन्न होती है, वही व्याधि रोग शब्दसे पुकारी जाती है; उसहीसे सम्पूर्ण जीव रोगी होते रहते हैं, वेही व्याधि अन्त समयमें प्राणियोंकी मृत्युके कारण होती हैं, इससे तुम वृथा शोक मत करो ॥ हे राजेन्द्र ! प्राणियोंके मरने के अनन्तर जैसे समस्त इन्द्रिय पर-

एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा वृत्ता देवा मर्त्यवद्राजसिंह ॥ ४६ ॥
वायुर्भीमो भीमनादो महौजा भेत्ता देहान्प्राणिनां सर्वगोऽसौ ।
नो वाऽऽवृत्तिं नैव वृत्तिं कदाचित्प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः ॥४७॥
सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टास्तस्मात्पुत्रं मा शुचो राजसिंह ।
स्वर्गं प्राप्तो मोदते ते तनूजो नित्यं रम्यान्वीरलोकानवाप्य ॥ ४८ ॥
त्यक्त्वा दुःखं सङ्गतः पुण्यकृद्भिरेषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम् ।
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम् ॥ ४९ ॥
आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे नैतान्मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति ।
तस्मान्मृतान्नाऽनुशोचन्ति धीराः मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम् ॥
इत्थं सृष्टिं देवक्लृप्तां विदित्वा पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व ॥ ५० ॥
द्वैपायन उवाच—एतच्छ्रुत्वाऽर्थवद्वाक्यं नारदेन प्रकाशितम् ।
उवाचाऽकम्पनो राजा सखायं नारदं तथा ॥ ५१ ॥

लोकमें गमन करके तृप्तिमान होती हैं, और फिर वहांसे लौटती हैं, वैसे ही इन्द्र आदि देवता लोग भी मनुष्योंकी भांति परलोक गमन करते रहते हैं ॥ (४४—४६)

इसके अतिरिक्त महाबलवान् भयङ्कर शब्दसे युक्त सर्व व्यापी अनन्ततेजस्वी असाधारण वायु ही प्रचण्ड रूप होकर प्राणियोंके शरीरको भेद करता रहता है; उसकी कभी भी गति प्रत्यागति नहीं होती ॥ हे राजेन्द्र ! सम्पूर्ण देवता भी मर्त्यनामसे युक्त हैं, इससे तुम पुत्रके निमित्त शोक मत करो । तुम्हारा पुत्र अत्यन्त मनोहर वीर लोकमें गमन करके नित्य-सुखभोग कर रहा है, वह दुःखोंसे छूटकर पुण्यात्मा पुरुषोंके सङ्ग स्वर्ग लोकमें वास कर रहा है। ब्रह्माने स्वयं ही इस मृत्युको सम्पूर्ण जीवोंके प्राण हरण करनेके निमित्त उत्पन्न किया है, जब प्राणियोंका काल उपस्थित होता है, तब यही देवविहित मृत्यु उन लोगोंका प्राण हरण किया करती है ॥ सम्पूर्ण प्राणी स्वयं ही अपने नाशके मूल हैं, दण्ड धारी यमराज उन लोगोंका नाश नहीं करते, इससे धीर पुरुष मृत्यु-को विधाताकी उत्पन्न की हुई समझकर मरे हुए प्राणियोंके निमित्त शोक नहीं करते । इस लिये तुम भी इस ईश्वर निर्मित सृष्टिको यथार्थ रूपसे जानकर पुत्रके विषयमें शोक मत करो । (४७-५०)

व्यास मुनि बोले, नारद ऋषिके इस प्रकार अर्थ युक्त वचन सुनकर राजा अकम्पनने फिर अपने मित्र नारद मुनिसे कहा ॥ हे भगवन् ! हे ऋषिसत्तम ! मैं

व्यपेतशोकः प्रीतोऽस्मि भगवन्नृषिसत्तम ।
श्रुत्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये ॥ ५२ ॥
तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः ।
जगाम नन्दनं शीघ्रं देवर्षिरमितात्मवान् ॥ ५३ ॥
पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यं च धन्यमायुष्यमेव च ।
अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ॥ ५४ ॥
एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिरः ।
क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां च परां गतिम् ॥ ५५ ॥
सम्प्राप्तोऽसौ महावीर्यः स्वर्गलोकं महारथः ।
अभिमन्युः परान्हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥ ५६ ॥
युध्यमानो महेष्वासो हतः सोऽभिमुखो रणे ।
असिना गदया शक्त्या धनुषा च महारथः ॥ ५७ ॥
विरजाः सोमसूनुः स पुनस्तत्र प्रलीयते ।
तस्मात्परां धृतिं कृत्वा भ्रातृभिः सह पाण्डव ।
अप्रमत्तः सुसन्नद्धः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥ ५८ ॥ [२१३०]

इति श्रीमहाभारते० अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

आज तुम्हारी कृपा से इस इतिहास को सुन कर कृतार्थ, शोकरहित और प्रसन्न हुआ हूं; इस समय आपको प्रणाम करता हूं ॥ (५१-५२)

महाबुद्धिमान् ऋषियोंमें श्रेष्ठ देवर्षि नारद मुनिने राजा अकम्पनसे इस प्रकारसे पूजित होकर शीघ्र ही नन्दन वनमें गमन किया । इस इतिहासको सुनानेसे तथा सुननेसे पुरुष पुण्यवान् यशस्वी आयुष्मान् और कीर्तिमान् होकर अन्त समयमें स्वर्ग लोक में गमन करते हैं ॥ हे युधिष्ठिर! महा पराक्रमी महारथ राजा अकम्पनने यह इतिहास सुनकर और क्षत्रिय शूरवीरोंका धर्म तथा उनके अनुसार परम गतिका लाभ होना जानकर अन्त समय में स्वर्ग लोकमें गमन किया । (५३-५६)

महाधनुर्धारी महारथ अभिमन्यु सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके सम्मुख रणभूमिमें युद्ध करते हुए गदा तलवार और धनुष बाणसे बहुतेरे शत्रुओंका नाश करके अन्तमें उनके हाथसे मारे गये हैं ॥ वह चन्द्रमाके पुत्र विरजानामक थे, युद्ध भूमिमें मृत्युकाल पहुंचनेमें प्राणरहित होकर फिर चन्द्र लोकमें गमन किया है ॥ हे पाण्डुपुत्र ! इससे तुम भाईयोंके

सञ्जय उवाच— श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च।
धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाद्यैनमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच—गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिमविक्रमाः।
स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्ननघाः सत्यवादिनः ॥ २ ॥
भूय एव तु मां तथ्यैर्वचोभिरभिबृंहय।
राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ॥ ३ ॥
कियन्त्यो दक्षिणा दत्ताः कैश्च दत्ता महात्मभिः।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ४ ॥
व्यास उवाच— शैब्यस्य नृपतेः पुत्रः सञ्जयो नाम नामतः।
सखायौ तस्य चैवोभौ ऋषी पर्वतनारदौ ॥ ५ ॥
तौ कदाचिद् गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्षया।
विधिवच्चाऽर्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोषतुः सुखम् ॥ ६ ॥
तं कदाचित्सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता।
दुहिताऽभ्यागमत्कन्या सृञ्जयं वरवर्णिनी ॥ ७ ॥

सहित धीरज धारण कर शोक विषाद तथा करुणासे रहित होकर फिर शीघ्र ही युद्धकी तैयारी करो ॥ (५६—५८)

द्रोणपर्वमें चौवन अध्याय समाप्त। [२१३०]

द्रोणपर्वमें पचपन अध्याय।

सञ्जय बोले, अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने मृत्युकी उत्पत्ति और उसके कर्मका मनोहर इतिहास सुनकर व्यास मुनिको प्रसन्न करके उनसे फिर बोले ॥ हे ब्रह्मन्! पुण्य कर्म करनेवाले इन्द्रके समान पराक्रमी, गुरुके समान पूजनीय, सत्यवादी, पापरहित, पुराने राजर्षियोंने जिन जिन कर्मोंका अनुष्ठान किया था, उनके विषयके यथार्थ वृत्तान्तको वर्णन कर आप फिर मेरे चित्तको शान्त करके मुझे धीरज दीजिये ॥ किन किन महात्मा पुण्यवान् राजर्षियोंने कितनी दक्षिणा दी तथा कितना दान किया था ? वह सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मेरे समीपमें वर्णन कीजिये ॥ (१-४)

व्यासमुनि बोले, शैब्य राजाका पुत्र सृञ्जय नामक पहिले समयमें एक राजा थे, पर्वत और नारद दो ऋषि उनके मिलनेके निमित्त उनके राजभवनमें गये, और राजासे विधिपूर्वक सम्मानित तथा पूजित होकर प्रसन्न चित्तसे सुखपूर्वक वहां पर निवास करने लगे ॥ किसी समयमें राजा सृञ्जय उन दोनों ऋषियोंके सङ्ग सुखसे बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे, उस ही समय उनकी

तयाऽभिवादितः कन्यामभ्यनन्दद्यथाविधि ।
तत्सलिङ्गाभिराशीर्भिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ॥ ८ ॥
तां निरीक्ष्याऽब्रवीद्वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव ।
कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्वलक्षणसम्मता ॥ ९ ॥
उताऽहो भाः स्विदर्कस्य ज्वलनस्य शिखा त्वियम् ।
श्रीर्ह्रीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥ १० ॥
एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोऽब्रवीत् ।
ममेयं भगवन्कन्या मत्तो वरमभीप्सति ॥ ११ ॥
नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप ।
भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुं चेदिच्छसे नृप ॥ १२ ॥
ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम् ।
पर्वतस्तु सुसंक्रुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥
हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि ।

मृदुहासिनी परम सुन्दरी कन्या उसी स्थानपर आकर उपस्थित हुई और पिताको विधिपूर्वक प्रणाम करके उनकी बगलमें खडी होगई। उसके पिता सृञ्जयने भी उसके योग्य और इष्ट आशीर्वाद दे कर उसे आनन्दित किया ॥ (५—८)

अनन्तर पर्वत ऋषि उस कन्याको देखकर हंसते हुए यह वचन बोले, यह सुन्दर अङ्गवाली सब लक्षणोंसे युक्त किसकी कन्या है ? यह सूर्यकी ज्योति, अग्निकी शिखा, या चन्द्रमाकी चन्द्रिका है ? यह श्री, कीर्त्ति, धृति, पुष्टि अथवा सिद्धि इनमेंसे कोई एक होगी ॥ (९—१०)

राजा सृञ्जय देवर्षि पर्वतके ऐसे वचन सुनकर उनसे बोले, हे भगवन् ! यह मेरी कन्या है, यह मेरे समीपमें आकर वर पानेकी प्रार्थना कर रही है । (११)

नारद मुनि बोले, हे राजेन्द्र ! यदि तुम अपने अत्यन्त कल्याणकी अभिलाषा करते हो, तो इस कन्याको मेरी भार्या बननेके निमित्त मुझे दान करो। सृञ्जयने प्रसन्न होकर नारद मुनिके निकट "दान करूंगा" कहके उनके वचनको स्वीकार किया। तब पर्वत मुनि अत्यन्त क्रुद्ध होकर नारद मुनिसे बोले, हे विप्र ! मैंने इसके सङ्ग विवाह करनेकी इच्छासे इसे मन ही मन वरण किया है; इससे यह मेरी भार्या हुई है, परन्तु मैंने जिसको वरण किया था, तुमने भी

यस्माद्वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया॥ १४॥
एवमुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः।
मनोवाग्बुद्धिसम्भाषादत्ता चोदकपूर्वकम् ॥ १५॥
पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम्।
न त्वेषां निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ॥१६॥
अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं व्याहृतवानसि।
तस्मात्त्वमपि न स्वर्गं गमिष्यसि मया विना॥ १७॥
अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा।
अथ सोऽपि नृपो विप्रान्पानाच्छादनभोजनैः॥ १८॥
पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाचोपाचरच्छुचिः।
तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित्पुत्रमीप्सवः ॥ १९॥
तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्गपारगाः।
सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥ २०॥

उसीको वरण किया है, इससे मैं तुम्हें शाप देता हूं, कि तुम इच्छाके अनुसार स्वर्ग लोकमें गमन नहीं कर सकोगे॥ (१२-१४)

नारद मुनिने पर्वतके ऐसे वचनोंको सुनकर उन्हें उत्तर दिया। वरको "मेरी यह भार्या है" ऐसा ज्ञान होना, और "मेरी यह भार्या है"ऐसा वचन कहना, उसपर कन्यादान करने वाले का बुद्धि पूर्वक कन्यादान करना, लौकिक आचारके अनुसार कन्यादाता और कन्या ग्रहण करनेवालेके परस्पर शास्त्र वचनके अनुसार वरवधूका मिलाप, हाथमें जल और कुश लेकर दान, वरसे कन्याका पाणिग्रहण और विवाहके मन्त्र,-यह सात विवाहके लक्षण हैं, इन सम्पूर्ण लक्षणोंके सिद्ध होजाने पर भी जबतक सप्तपदी फेरी नहीं पूरी होती, तबतक भार्यात्वकी सिद्धि नहीं समझी जाती। इससे विना कारणके ही तुमने जो मुझे अभिशाप दिया है, उस ही निमित्त मैं भी तुम्हें शाप देता हूं, कि तुम भी मुझे छोडकर स्वर्ग लोकमें नहीं जा सकोगे। इसी प्रकार वे दोनों ऋषि आपसमें एक दूसरेको शाप देकर उस ही स्थान में वास करने लगे। (१५—१८)

अनन्तर उस राजाने पवित्र होकर पुत्र कामनासे अपनी शक्तिके अनुसार दान, पान तथा भोजन और वस्त्रोंसे ब्राह्मणोंकी सेवा करने लगा। अनन्तर कुछ दिनोंके बाद तपस्या और वेदपाठमें रत वेदवेदाङ्गके जाननेवाले ब्राह्मण लोग

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा

REGISTERED No. B. 1819

[द्रोणपर्व ४]

महाभारत।

(भाषा--भाष्य--समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

तैय्यार हैं।

(१) आदिपर्व । पृष्ठ संख्या ११२५. मूल्य म. आ. से ६) रु.
(२) सभापर्व । पृष्ठ संख्या ३५६. मूल्य म. आ. से २) रु.
(३) वनपर्व । पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य म. आ. से ८) रु.
[४] विराटपर्व । पृष्ठ संख्या ३०६ मूल्य. म. आ. से १॥)
[५] उद्योगपर्व । पृष्ठ संख्या ९५३ मूल्य. म. आ. से ५) रु.
[६] भीष्मपर्व । पृष्ठ संख्या ८०० मूल्य म० आ० से ४) रु.

[५]महाभारत की समालोचना ।

१ प्रथम भाग मू.॥)वी. पी. से॥=)आने। २ द्वितीय भाग मू.॥)वी. पी. से॥=)आने।
महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६-) रु. मूल्य होगा।
मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोऽब्रवीत् ।
तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥ २१
वरं वृणीष्व भद्रं ते यादृशं पुत्रमीप्सितम् ।
तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् ॥ २२ ॥
यशस्विनं कीर्त्तिमन्तं तेजस्विनमरिन्दमम् ।
यस्य मूत्रं पुरीषं च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥ २३ ॥
सुवर्णष्ठीविरित्येवं तस्य नामाऽभवत्कृतम् ।
तस्मिन्वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥ २४ ॥
कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम् ।
गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ॥ २५ ॥
शय्यासनानि यानानि स्थालीपिठरभाजनम् ।
तस्य राज्ञोऽपि यद्वेश्म बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ॥ २६ ॥
सर्वं तत्काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् ।
अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ॥ २७ ॥
सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम् ।

राजाके ऊपर प्रसन्न होकर नारद मुनिसे बोले, हे देवऋषि ! राजाको उनकी इच्छाके अनुसार पुत्र दान कीजिये ॥ ब्राह्मणोंका वचन सुनकर नारद मुनि राजा सृञ्जयसे बोले, कि हे राजर्षि सृञ्जय ! ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर तुम्हारे पुत्रके निमित्त इच्छा करते हैं, तुम्हें जिस प्रकारके पुत्रकी इच्छा होवे, तुम वैसा ही वर मांगो। (१८–२२)

राजाने हाथ जोड कर सब गुणोंसे पूर्ण, यशस्वी, कीर्तिमान्, तेजस्वी और शत्रुओंको नाश करने वाले एक पुत्रके निमित्त वर मांगा। समयके अनुसार उनको एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रके शरीरसे मूत्र, मल और पसीना जो बाहर होता था, वह सुवर्ण होजाता था। इससे उस पुत्रका "सुवर्णष्ठीवी" नाम रक्खा गया। उस ही पुत्रके प्रभावसे राजा सृञ्जयके धनकी अत्यन्तही वृद्धि हुई ॥ और उन्होंने इच्छानुसार सम्पूर्ण वस्तुओं को सुवर्ण मय बना दिया ॥ २२–२५

राजमन्दिर, राजसभा, दुर्ग (किला) ब्राह्मणोंके घर, शय्या, आसन, सवारी, तथा भोजन करनेके पात्र आदि सम्पूर्ण वस्तुओंको, तथा राजभवन के भीतर और बाहर में जितनी शिल्पकी वस्तुएं थीं वह सब राजाने धीरे धीरे सोनेकी बनवायी। एक समय चोर लोग राजा

केचित्तत्राऽब्रुवन्राज्ञः पुत्रं गृह्णीम वै स्वयम् ॥ २८ ॥
सोऽस्याऽऽकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नं चरामहे।
ततस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ॥ २९ ॥
राजपुत्रं तथाऽऽजह्रुः सुवर्णष्ठीविनं बलात्।
गृह्यैनमनुपायज्ञा नीत्वाऽरण्यमचेतसः ॥ ३० ॥
हत्वा विशस्य चाऽपश्यँल्लुब्धा वसु न किञ्चन।
तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टं तद्वरदं वसु ॥ ३१ ॥
दस्यवश्च तदाऽन्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः।
हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाऽद्भुतं भुवि ॥ ३२ ॥
असम्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः।
तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥ ३३ ॥
विललाप सुदुःखार्त्तो बहुधा करुणं नृपः।
विलपन्तं निशम्याऽथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४ ॥
प्रत्यदृश्यत देवर्षिर्नारदस्तस्य सन्निधौ।
उवाच चैनं दुःखार्तं विलपन्तमचेतसम् ॥ ३५ ॥

का ऐसा ऐश्वर्य सुनकर उनका धन चुरानेके निमित्त उद्यत हुए। उन में से किसी किसीने कहा, कि चलो हम लोग राजाके पुत्रही को चुरा लावें क्योंकि वही सम्पूर्ण सुवर्णकी जड है, इससे उस हीके चुरानेके वास्ते हम लोग सब प्रकार से यत्न करेंगे। (२५–२९)

अनन्तर चोरोंने लोभसे राजाके घरमें घुसके बलपूर्वक सुवर्णष्ठीवी राजपुत्रको हरण किया। उपाय न जाननेवाले मूढ चोरोंने जङ्गलमें ले जाकर उस राजपुत्रको टुकडे टुकडे करके काटडाला, परन्तु कुछ भी धन न पाया। इस प्रकारसे राजपुत्रका प्राणनाश होनेपर वर पाये हुए राजा सृञ्जयका सम्पूर्ण धन नष्ट होने लगा॥ दुष्ट कर्म करनेवाले मूर्ख चोरोंने जब पृथ्वीके बीच उस अद्भुत राजपुत्रको नष्ट करके कुछ भी धन नहीं पाया, तब क्रोध पूर्वक आपसमें लडके मरगये और इस पाप कर्मके करनेसे महाघोर नरकमें पतित हुए॥ (२९–३३)

इधर महातेजस्वी राजा सृञ्जय वरके प्रभावसे मिले हुए पुत्रका प्राण नाश होनेपर अत्यन्त ही दुःखित होकर करुणाके सहित विलाप करने लगे। देवर्षि नारदने राजाको पुत्र शोकसे कातर और विलाप करते हुए जानकर उनके समीप उपस्थित हुए, और उन्होंने

सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठिर ।
कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ॥ ३६ ॥
यस्य चैते वयं गेहे उषिता ब्रह्मवादिनः ।
आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३७ ॥
संवर्त्तो याजयामास स्पर्धया वै बृहस्पतेः ।
यस्मै राजर्षये प्रादाद्धनं स भगवान्प्रभुः ॥ ३८ ॥
हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः सवैः ।
यस्य सेन्द्रामरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
देवा विश्वसृजः सर्वे यजनान्ते समासते ।
यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चाऽऽसन्परिच्छदाः ॥ ४० ॥
यस्य सर्वं तदा ह्यन्नं मनोभिप्रायगं शुचि ।
कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वे चाऽन्नार्थिनो द्विजाः ॥ ४१ ॥
पयो दधि घृतं क्षौद्रं भक्ष्यं भोज्यं च शोभनम् ।
यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च ॥ ४२ ॥
ईप्सितान्युपतिष्ठन्ते प्रहृष्टान्वेदपारगान् ।

उस दुःखसे विह्वल और विलाप करनेवाले राजा सृञ्जयसे जो कुछ वचन कहा था, वह मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, हे राजेन्द्र युधिष्ठिर ! तुम चित्त लगाकर सुनो ।(२३—३६)

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय ! तुम्हारे घरमें हम लोग ब्रह्मवादी पुरुष वास करते हैं, तुम इस प्रकारके पुरुष होकर कामनासे तृप्त न होकर क्यों मरते हो ? हे सृञ्जय ! मैंने महा तेजस्वी पुत्रसे युक्त मरुत्त राजाका भी मरन सुना है॥ संवर्त्त बृहस्पतिकी स्पर्द्धासे जिसके हवन कर्ममें रत हुए थे; और इस ही भगवान् प्रभु संवर्तकने जिस राजर्षिको बहुत धन दिया था; जिसके नाना प्रकारके यज्ञोंके समाप्त होनेके समयमें बृहस्पतिके सहित सम्पूर्ण देवता हिमालय पर्वतके सुवर्णमय शिखर पर इकट्ठे हुए थे । (३७-४०)

जिसके यज्ञकी सम्पूर्ण वस्तु सुवर्ण की बनी हुई थीं और जिस यज्ञमें ब्राह्मण क्षत्रिय आदि लोग भोजन की इच्छा करके इच्छानुसार पवित्र अन्न, घृत, दही,दूध,मधु आदि उत्तम उत्तम भोजन पान और भक्षण करनेकी सम्पूर्ण वस्तु पाते थे । जिसके सम्पूर्ण यज्ञोंहीमें वेद पढनेवाले ब्राह्मणोंको उत्तम वस्त्र आभूषण उनकी इच्छा के अनुसार दिया गया

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याऽभवन्गृहे ॥ ४३ ॥
आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वेदेवाः सभासदः ।
यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या सस्यसम्पदः ॥ ४४ ॥
हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक्क्लृप्तैर्दिवौकसः ।
ऋषीणां च पितॄणां च देवानां सुखजीविनाम् ॥ ४५ ॥
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वैर्दानैश्च सर्वदा ।
शयनासनपानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥ ४६ ॥
तत्सर्वममितं वित्तं दत्तं विप्रेभ्य इच्छया ।
सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वा निरामयाः ॥ ४७ ॥
श्रद्दधानो जिताँल्लोकान्गतः पुण्यदुहोऽक्षयान् ।
सप्रजः सनृपामात्यः सदारापत्यबान्धवः ॥ ४८ ॥
यौवनेन सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ४९ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।

था; जिस राजऋषिके यहां मरुद्गण अन्न परोसनेवाले थे, तथा विश्वे देव सभासद हुए थे और जिस पराक्रमी मरुत्त राजाके यज्ञकी हविसे तृप्त होकर देवताओंने जल वर्षाके उनके राज्यके सम्पूर्ण अन्न और सम्पत्तियोंकी वृद्धि की थी ॥ (४०–४५)

जिन्होंने ब्रह्मचर्य वेदाध्ययन और सम्पूर्ण प्रकारके दानसे ऋषि, पितर, देवता तथा पुरवासियोंको प्रसन्न किया था, और शय्या आसन सवारी सुवर्ण तथा अनेक प्रकारकी वस्तु सदा सर्वदा ब्राह्मणोंको दान किया था; इन्द्र जिसकी प्रजाको आनन्दित करके सदा कृपा प्रकाशित किया करते थे, उस श्रद्धावान् राजऋषिने भी पुण्य कर्मसे अक्षय स्वर्गलोकमें गमन किया। उन्होंने स्त्री, पुत्र, क्षत्रिय योद्धा, सेवक और बन्धुबान्धवोंके सहित सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य शासन किया था ॥ (४५–४९)

व्यास मुनि बोले, नारद मुनि राजा सृञ्जयसे ऐसा वचन कहकर फिर उन्हें श्वित्यपुत्र कहकर यह वचन बोले, महाप्रतापी मरुत्त राजाने दान समेत वित्त, गर्वरहित ज्ञान, क्षमासे युक्त पराक्रम, आसक्तिरहित भोग इन चारों प्रकारके श्रेष्ठ विषयोंमें तुम्हारे पुत्र और तुमसे अधिक पुण्यात्मा होकर भी मृत्युके कराल ग्रासमें पतित हुए। हे राजेन्द्र! तब तुम यज्ञशून्य दक्षिणा रहित अपने पुत्रके

अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥५०॥[२१८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वण्यभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

नारद उवाच— सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
एकवीरमशक्यं तममरैरभिवीक्षितुम् ॥ १ ॥
यः प्राप्य राज्यं धर्मेण ऋत्विग्ब्रह्मपुरोहितान्।
अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्ट्वा तेषां मते स्थितः ॥ २ ॥
प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः।
एतत्सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद्धनागमम् ॥ ३ ॥
धर्मेणाऽऽराधयन्देवान्बाणैः शत्रूञ्जयंस्तथा।
सर्वाण्यपि च भूतानि स्वगुणैरप्यरञ्जयत् ॥ ४ ॥
यो भुक्त्वेमां वसुमतीं म्लेच्छाटविकवर्जिताम्।
यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान् ॥ ५ ॥
हैरण्यास्तत्र वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन्पुरा।
ग्राहान्कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्च विविधान्बहून् ॥ ६ ॥

निमित्त शोक मत करो ॥ (४९–५०)

द्रोणपर्वमें पचपन अध्याय समाप्त । [२१८०]

द्रोणपर्वमें छप्पन अध्याय।

नारद मुनि बोले,हे सञ्जय ! सुहोत्र राजाकी भी मृत्यु हुई है। मैंने सुना,कि वह पृथ्वीके बीच एक ही वीर तथा शत्रुओंका नाश करनेवाले थे, और सम्पूर्ण पुरुष जिसके दर्शनकी अभिलाष करते थे, जिसने धर्मके अनुसार राज्य पाकर ऋत्विक् पुरोहित तथा दूसरे ज्ञानवान् ब्राह्मणोंसे अपने कल्याणकी बातका विचार करके उन लोगोंके मतके अनुसार सब कार्य किया था॥ वह प्रजा पालन; धर्म, दान, यज्ञ और शत्रुओंको जीतना इन सम्पूर्ण कार्योंको भली भांतिसे जानकर धर्मके अनुसार धन उपार्जनकी इच्छा करते थे॥ (१–३)

जो धर्मके आचारसे देवताओंकी उपासना, और बाणोंसे शत्रुओंको वशमें करते तथा अपने गुणोंसे सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रसन्न करते थे; जिसने इस समस्त पृथ्वीको म्लेच्छ और चोरोंसे रहित करके राज्य भोग किया था, बादलोंने जिसके राज्यमें सदा सर्वदा सुवर्णकी वर्षा की थी, उससे सम्पूर्ण नदी सुवर्णमयी होकर सर्व साधारण पुरुषोंके व्यवहारकी मूल हुई थीं; इन सम्पूर्ण नदियोंसे बहुतेरे नाना भांतिके सुवर्णमय ग्राह,

कामान्वर्षति पर्जन्यो रूपाणि विविधानि च।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः ॥ ७ ॥
सहस्रं वामनान्कुब्जान्नक्रान्मकरकच्छपान्।
सौवर्णान्विहितान्दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा ॥ ८ ॥
तत्सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ९ ॥
सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च।
पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः ॥ १० ॥
काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टां गतिमवाप्तवान्।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥[२१९२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वण्यभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

केंकडे और मछरी जलमें बहती हुई, दीख पडती थी ॥ (४—६)

जिसके राज्यमें बादलोंने सुवर्णमय विविध प्रकारकी अनेक भोगप्रद वस्तुओंकी वर्षा की थी, और कोश भरके बीच जिसके राज्यमें सुवर्णमयी वापी थी ॥ जो सुवर्णमय नाना प्रकारके मकर मच्छसे युक्त वापियोंको देखकर आश्चर्य बोध करते थे; जिस राजऋषिने कुरुजाङ्गलमें विविध भांतिके यज्ञोंके अनुष्ठान करके उन सुवर्णमयी सम्पूर्ण वस्तुओंको ब्राह्मणोंको दान किया था;उन्होंने सहस्र अश्वमेध, सौ राजसूय, तथा अनेक दक्षिणोंसे युक्त क्षत्रिय धर्मके अनुसार अनेक प्रकारके यज्ञोंको पूर्ण करके अपनी इच्छाके अनुकूल परम गति प्राप्त की थी ॥ (७—११)

व्यास मुनि बोले, नारद मुनि राजा सृञ्जयको इतनी कथा सुनाकर फिर उन्हें पुकारके यह वचन बोले, वह राजा सुहोत्र दानसमेत वित्त, गर्वरहित ज्ञान, क्षमायुक्त पराक्रम और आसक्तिरहित भोग,—इन चारों प्रकारके श्रेष्ठ विषयोंमें तुम्हारे पुत्र तथा तुम से भी श्रेष्ठ थे, हे सृञ्जय ! जब ऐसे राजा भी कालके कराल ग्रासमें पतित हुए तब तुम यज्ञ और दान आदि उत्तम कर्मोंसे रहित अपने पुत्रके निमित्त शोक मत करो ॥ (११-१२) [२१९२]

द्रोणपर्वमें छप्पन अध्याय समाप्त।

नारद उवाच— राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ॥ १ ॥
तस्याऽश्वमेधे राजर्षेर्देशाद्देशात्समीयुषाम्।
शिक्षाक्षरविधिज्ञानां नाऽऽसीत्संख्या विपश्चिताम् २॥
वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः।
सुभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ॥ ३ ॥
नटनर्तकगन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः।
नित्योद्योगैश्च क्रीडद्भिस्तत्र स्म परिहर्षिताः ॥ ४ ॥
यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोऽत्यकालयत्।
द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥ ५ ॥
सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा।
यः सहस्रं सहस्राणि कन्या हेमविभूषिताः ॥ ६ ॥
धूर्युजाश्वगजारूढाः सगृहक्षेत्रगोशताः।
शतं शतसहस्राणि स्वर्णमाली महात्मनाम् ॥ ७ ॥
गवां सहस्रानुचरान्दक्षिणामत्यकालयत्।

द्रोणपर्वमें सतावन अध्याय।

नारद मुनि बोले, सृञ्जय! मैंने सुना है, कि पौरवको भी कालके ग्रासमें पतित होना पडा है। जिसने दश लाख घोडों को दान किया था॥ उस राजऋषिके अश्वमेध यज्ञमें नाना देशोंसे वेद पढने वाले इतने ब्राह्मण आके इकट्ठे हुए थे कि उनकी संख्या नहीं होसकती थी। उस यज्ञमें वेदपाठी, शास्त्र तथा ब्रह्म-विद्या जाननेवाले विनयसे युक्त ब्राह्म-णोंको उत्तम अन्न, वस्त्र, गृह, शय्या, आसन और नाना भांतिकी सवारी देकर उनका सम्मान किया गया था; और नृत्य करनेवाले नट, वेश्या और गन्धर्व लोग उत्तम गीतोंको गाकर उन आये हुए ब्राह्मणोंको आनन्दित करते थे॥ (१-४)

जिन्होंने हर एक यज्ञमें यथा समय पर भली भांतिसे दक्षिणा दी थी। और ऋत्विक् ब्राह्मणोंको छोडके दूसरे ब्राह्मणोंको भी इच्छाके अनुसार दश हजार हाथी, दश सहस्र सुवर्णभूषित उत्तम शरीरवाली प्रमदा स्त्री, दश हजार सुवर्ण भूषित ध्वजा, पताकासे युक्त उत्तम रथ दान किया था, और दश लाख कन्याओंको सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित करके हाथी, घोडे और रथों पर चढाके हर एक कन्याको गृह, भूमि और

हेमशृंग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥ ८ ॥
दासीदासखरोष्ट्रांश्च प्रादादाजाविकं बहु ।
रत्नानां विविधानां च विविधांश्चान्नपर्वतान् ॥ ९ ॥
तस्मिन्संविततते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ १० ॥
अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः ।
गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्याऽऽसन्सार्वकामिकाः ॥ ११ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२॥ [२२०४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वण्यभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

नारद उवाच— शिबिमौशीनरं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।

एक सौ करके गऊ प्रदान किया था; जिसने विशाल शरीरवाली एक करोड गऊ और सहस्रों दास दासीभी दक्षिणा में ब्राह्मणोंको दान किया था । (५–८)

इसके अतिरिक्त सोनेके सींग, रूपेके खुर और दूध दुहनेके निमित्त कांसेके पात्रसे युक्त गौओंको बछडोंके सहित दान दिया था, फिर अनेक दासी, ऊंट गदहे और भेडे तथा बकरीका भी दान किया था । उन अनेक प्रकारके यज्ञोंमें अनुष्ठानके समयमें उन्होंने अनेक प्रकार के रत्न और बहुतसे पर्वतके समान अन्नकी राशियोंको भी दान किया था । पुराने इतिहासके जाननेवाले प्राचीन पुरुष [illegible] गाथाको गाया करते हैं, कि " अङ्गराज पौरवकी सम्पूर्ण यज्ञही यथा उचित धर्मपूर्वक सिद्ध हुई थीं। हर एक यज्ञ शुभसूचक तथा सम्पूर्ण कामनाओं के पूर्ण करनेवाली हुई थीं॥ " (८–११)

व्यास मुनि बोले, इतनी कथा सुनाकर श्रीनारदमुनि राजा सृञ्जयसे फिर बोले, कि वह राजऋषि पौरव दानसहित वित्त, गर्वसे रहित ज्ञान, क्षमायुक्त पराक्रम और ममतारहित भोग— इन चारों प्रकारके श्रेष्ठ विषयोंमें तुम तथा तुम्हारे पुत्रसे श्रेष्ठ और पुण्यात्मा थे, हे सृञ्जय ! जब ऐसे राजाकीभी मृत्यु हुई है,तब तुम यज्ञ दक्षिणासे हीन अपने पुत्र के निमित्त क्यों शोक करते हो ? (१२)

द्रोणपर्वमें सतावन अध्याय समाप्त ।[२२०४]

द्रोणपर्वमें अठावन अध्याय ।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय ! मैंने

य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत्पर्यवेष्टयत् ॥ १ ॥
साद्रिद्वीपार्णववनां रथघोषेण नादयन्।
स शिविर्वै रिपून्नित्यं मुख्याञ्जिन्नन्सपत्नजित् ॥ २ ॥
तेन यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः।
स राजा वीर्यवान्धीमानवाप्य वसु पुष्कलम् ॥ ३ ॥
सर्वमूर्धाभिषिक्तानां सम्मतः सोऽभवद्युधि।
अयजच्चाऽश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४ ॥
निरर्गलैर्बहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः।
हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोजाविभिस्तथा ॥ ५ ॥
विविधां पृथिवीं पुण्यां शिविर्ब्राह्मणसात्करोत्।
यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥ ६ ॥
यावत्यः सिकता गाङ्ग्यो यावन्मेरोर्महोपलाः।
उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च।
तावतीरददद्गा वै शिविरौशीनरोऽध्वरे ॥ ७ ॥
नो यन्तारं धुरस्तस्य कश्चिदन्यं प्रजापतिः।

सुना है, कि उशीनरके पुत्र शिवि राजाकी भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने इस समुद्र, पर्वत, वन और द्वीपोंके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने रथके शब्दसे अनुनादित किया था, और चमडेकी भांति अपने रथचक्रसे लपेट लिया था॥ जो शिविराजा मुख्य मुख्य शत्रुओंको जीत कर सपत्नजित् कहके प्रसिद्ध हुए थे। जिसने पूर्णरीतिसे दक्षिणा प्रदान करके नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, उस धीमान्, पराक्रमी राजाने बहुतसा धन प्राप्त करके ब्राह्मणोंको दान किया था और युद्ध विषयमें सम्पूर्ण राजाओंके बीच पूजित हुए थे॥ (१-४)

उन्होंने विना विघ्नके सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतकर अनेक अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण किया था। जिसने सहस्र करोड स्वर्ण मुद्रा ब्राह्मणोंको दान किया और उत्तम भूमिको हाथी, घोडे, दास, गौ, बकरी और भेडके सहित ब्राह्मणोंको दान किया था, बादलोंकी वर्षाके समय जितनी जल धारा वा जलकी बूंदें गिरती हैं, आकाश में जितने तारे दीख पडते हैं और गङ्गाके बालूमें जितने दाने हैं, पहाडों में जितने पत्थरके टुकडे और समुद्रमें जितने रत्न तथा जीव जन्तु रहते हैं, राजा शिविने अपने यज्ञमें उतनी ही गौओंको दान किया था॥ (४—७)

भूतं भव्यं भवन्तं वा नाऽध्यगच्छन्नरोत्तमम् ॥ ८ ॥
तस्याऽऽसन्विविधा यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः ॥९॥
हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः ।
शुचि स्वाद्वन्नपानं च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ॥ १० ॥
नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाह्रदाः ।
तस्याऽऽसन्यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः ॥ ११ ॥
पिबत स्नात खादध्वमिति यत्रोच्यते जनाः ।
यस्मै प्रादाद्वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२ ॥
अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धा कीर्तिस्तथा क्रियाः ।
यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥
एताँल्लब्ध्वा वरानिष्टाञ्शिबिः काले दिवं गतः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १४ ॥

प्रजापतिको अपनी सृष्टिमें दूसरा कोई राजा उनके समान राज्यधुराका चलानेवाला नहीं दीखा था और उनसे पहिले भी कोई राजा उनके समान नहीं हुआ था और न भविष्य ही में होगा। सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाली नाना भांतिकी यज्ञोंका अनुष्ठान करके उनको पूर्ण किया था॥ (८—९)

इन सम्पूर्ण यज्ञोंमें गृह,आसन, यज्ञके पात्र और तोरण पताका आदि सुवर्णके बने थे; अन्नपानकी सम्पूर्ण वस्तु उत्तम और पवित्र थीं, दही दूधकी बडी बडी नदियां तालावोंसे युक्त होकर बहती हुई दीख पडती थीं; और उत्तम अन्नोंके ढेर पर्वतके समान दीख पडते थे; दश दश हजार तथा लखों ब्राह्मण जिसके यज्ञमें आकर उत्तम भोजन पान तथा प्यारे वचनोंसे सन्तुष्ट होकर प्रसन्न हुए थे; उनके यज्ञमें इस प्रकार वचन सदा ही सुनाई पडते थे, कि " हे ब्राह्मण ! स्नान करो, भोजन-पान करो; आप लोगोंकी जैसी अभिलाषा होवे, वैसा ही करो।" (१०—१२)

भगवान् रुद्रने जिसके पुण्य कार्यसे प्रसन्न होकर यह वरदान किया था, कि "दान करनेसे तुम्हारा धन अक्षय होगा; और तुम्हारी श्रद्धा, कीर्ति, यश, सत् क्रिया और प्राणियोंके ऊपर यथार्थ प्रेमसे तुम्हें उत्तम सुवर्णका लाभ होगा।" यही सम्पूर्ण उत्तम वर पाकर भी वह शिवि राजा समयके अनुसार स्वर्ग लोकमें गये। (१२-१४)

व्यास मुनि बोले, नारद मुनि इतनी कथा सुनाकर सृञ्जयसे बोले, कि शिबि

पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १५ ॥[२२१९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

नारद उवाच— रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ १ ॥
असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि ।
यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात्पितुरच्युतः ॥ २ ॥
वने वनितया सार्धमवसल्लक्ष्मणाग्रजः ।
जघान च जनस्थाने राक्षसान्मनुजर्षभः ॥ ३ ॥
तपस्विनां रक्षणार्थं सहस्राणि चतुर्दश ।
तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ॥ ४ ॥
जहार भार्यां वैदेहीं सम्मोह्यैनं सहानुजम् ।
तमागस्कारिणं रामः पौलस्त्यमजितं परैः ॥ ५ ॥
जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोऽन्धकम् ।

राजा तुम्हारे पुत्र और तुमसे भी श्रेष्ठ थे, वह दान सहित चित्त, गर्वरहित ज्ञान, क्षमायुक्त पराक्रम और ममतारहित भोग,—इन चारों श्रेष्ठ विषयोंमें अत्यन्त ही पुण्यात्मा थे । हे सृञ्जय ! वह भी जब मृत्युके कराल ग्रासमें पतित हुए, तब यज्ञदक्षिणासे हीन अपने पुत्रके निमित्त तुम क्यों शोक करते हो ? (१४–१५)

द्रोणपर्वमें अठावन अध्याय समाप्त । [२२१९]

द्रोणपर्वमें उनसठ अध्याय ।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय ! दशरथके पुत्र रामचन्द्रने भी लोकान्तरमें गमन किया है । सम्पूर्ण प्रजा रामको अपने प्रिय पुत्रके समान जानती थी । राम महातेजस्वी और सम्पूर्ण गुणोंसे पूर्ण थे । उन्होंने अपने पिताकी आज्ञाको मानकर अपनी भार्या सीताके सहित चौदह वर्ष पर्यन्त वनमें वास किया था; और मुनियोंके स्थानमें तपस्वियोंकी रक्षाके निमित्त चौदह हजार राक्षसोंका वध किया था । (१–४)

वह उस ही स्थानमें अपनी प्यारी भार्या सीतादेवीके सहित निवास कर रहे थे, उस ही समयमें रावण नामके राक्षसने राम और लक्ष्मणको मायासे मोहित कर जानकीको हर ले गया । जैसे पहिले समयमें महादेवने अन्धकासुरका वध किया था, वैसे ही महाबाहु

सुरासुरैरवध्यं तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ६ ॥
जघान स महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे ।
स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥ ७ ॥
व्याप्य कृत्स्नं जगत्कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः ।
स प्राप्य विविधं राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥
आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
निरर्गलं सजारूथ्यमश्वमेधं च तं विभुः ॥ ९ ॥
आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः ॥ १० ॥
क्षुत्पिपासेऽजयद्रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् ।
सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥
अति सर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्बभौ ।
ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः ॥
पृथिव्यां सहवासोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ १२ ॥
नाऽहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा ।

रामचन्द्रने देवता और असुरोंसे अवध्य, शत्रुओंसे अपराजित, देव ब्राह्मणोंके द्वेषी उस पुलस्त्यनन्दन रावणको उसके उसही अपराधके निमित्त अनुयायियोंके सहित युद्ध भूमिमें मारा था ॥ (४–७)

वह राम प्रजासमूहके उपर कृपा प्रकाश करते हुए देवता और देवऋषियोंसे पूजित हुए; और उनकी कीर्ति इस सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त होगई। वह समस्त प्राणियोंके ऊपर कृपा प्रकाशित करते थे। उन्होंने विधिपूर्वक राज्य करते हुए महायज्ञोंको पूर्ण किया था। रामने ब्राह्मणोंको द्विगुण दक्षिणा देकर सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके उन यज्ञोंकी हविसे देवराज इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंको तृप्त किया था; फिर अनेक प्रकारकी दक्षिणा देकर नाना प्रकारके यज्ञोंको भी पूर्ण किया था ॥ (७–१०)

देहधारी जीवोंको जो कुछ रोग उत्पन्न होते हैं, रामने उन समस्त रोग तथा भूख-प्यास आदि सम्पूर्ण दुःखोंको जीत लिया था। वह अपने अनेक उत्तम गुण तथा तेजसे प्रकाशित होकर सम्पूर्ण प्राणियोंके तेजको अतिक्रम करके शोभित हुए थे। उनके राज्य शासनके समय पृथ्वीपर ऋषि, देवता और मनुष्योंका एकत्र सहवास होता था; उस समयमें प्राणियोंके बल, प्राणकी

प्राणोऽपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥ १३ ॥
पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदाऽनर्थाश्च नाऽभवन् ॥ १४ ॥
दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा ।
वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥ १५ ॥
हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्तं हुतमेव च ।
अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ॥ १६ ॥
नाऽप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाऽकाले ज्वलनोऽदहत् ।
अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाऽभवंस्तदा ॥ १७ ॥
शिष्टेष्टप्राज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाऽभवन् ।
स्वधां पूजां च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणाशिताम् ॥ १८ ॥
प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः ।
सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥ १९ ॥
न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन् ।
श्यामो युवा लोहिताक्षो मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २० ॥
आजानुबाहुः सुभुजः सिंहस्कन्धो महाबलः ।

हानि तथा अपान और समान वायुका विकृतभाव नहीं होता था ॥ ११-१३

तेजस्वी पदार्थ अपने तेजपुञ्जसे प्रकाशित रहते थे, उस समय कोई भी अनर्थ नहीं होते थे ॥ सम्पूर्ण प्रजासमूहकी दीर्घायु थी,युवा पुरुषोंकी मृत्यु नहीं होती थी, और देवता चारों वेदोंसे संतुष्ट होकर यथारीतिसे हव्य कव्य और पूर्ण हुई हविको ग्रहण करते थे । उनके राज्यमें मच्छड, सर्प, काटनेवाले जीव-जन्तु उपद्रव नहीं करते थे; प्राणियोंकी मृत्यु उस समयमें अग्नि और जलसे नहीं होती थी; कोई पुरुष रामके राज्यमें अधर्मी, मूर्ख और लोभी नहीं था; सब ही पुरुष श्रेष्ठ वर्णके और यज्ञ आदि उत्तम कर्मोंसे युक्त थे ॥ (१४-१८)

मुनियोंके स्थानपर राक्षसोंने उपद्रव किया था, रामने उनका वध करके नाना प्रकारके यज्ञोंसे देवता, ऋषि और पितरोंको तृप्त किया था । उनके राज्य शासनके समयमें पुरुषोंकी आयु दश सहस्र वर्ष पर्यन्त थी; उनके सहस्र पुत्र होते थे और उस समयमें कनिष्ठका श्राद्ध जेष्ठको नहीं करना पडता था । (१८-२०)

महा बलवान् रामचन्द्र श्यामवर्ण, युवा, कमल नेत्र, मतवारे हाथीके समान पराक्रमी, आजानुबाहु, अत्यन्त सुन्दर

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१ ॥
सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत् ।
रामो रामो राम इति प्रजानामभवत्कथा ॥ २२ ॥
रामाद्रामं जगद्भूद्रामे राज्यं प्रशासति ।
चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥ २३ ॥
आत्मानं सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाऽष्टधा ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २४ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥२५ ॥ [२२४४]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

नारद उवाच— भगीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ॥ १ ॥
यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः ।

तेजस्वी और सिंहस्कन्ध थे; उन्होंने ग्यारह हजार वर्षतक सम्पूर्ण प्राणियोंके चित्तको प्रसन्न करके इस पृथ्वीमण्डलपर राज्य किया था। उस समयमें सम्पूर्ण प्रजाओंके मुंहसे " राम ! राम ! " इसी प्रकारके वचन सदा सर्वदा सुनाई पडते थे ॥ रामके राज्य शासनसे सम्पूर्ण जगत् सुखका स्थान हुआ था। अन्तमें रामने अपने और तीनों भाइयोंसे उत्पन्न भये दो दो पुत्रोंको राज्यका अंश आठ हिस्सोंमें बांटकर उन्हें समर्पण कर दिया और चारों प्रकारकी प्रजाके सहित उस ही शरीरसे स्वर्गको चले गये। (२०-२४)

व्यास जी बोले, नारद मुनि इतनी कथा सुनाकर फिर सृञ्जयसे बोले "हे सृञ्जय ! रामचन्द्र तुम्हारे पुत्र और तुमसे भी श्रेष्ठ थे, वह दान सहित वित्त, गर्वहीन ज्ञान, क्षमायुक्त पराक्रम और आसक्तिरहित भोग–इन चारों उत्तम विषयोंमें श्रेष्ठ और पुण्यात्मा थे वह भी जब इस पृथ्वीसे परलोकको चले गये, तब तुम यज्ञ और दक्षिणा-रहित अपने पुत्रके निमित्त क्यों शोक करते हो ? (२४–२५) [२२४४]

द्रोणपर्वमें उनसठ अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें साठ अध्याय।

नारद मुनि बोले हे सृञ्जय ! मैंने सुना है, कि भगीरथ राजाकी भी मृत्यु हुई है। उस राजा भगीरथने इस पृथ्वीके बीच भागीरथीको दोनों ओर सुवर्णकी इष्टिकाओंसे युक्त किया था॥ तथा सुवर्णके भूषणोंसे भूषित कर दश हजार कन्या-

राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥
सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः ।
रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ॥ ३ ॥
सहस्रमश्वाश्चैकैकं गजानां पृष्ठतोऽन्वयुः ।
अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम् ॥ ४ ॥
तेनाऽऽक्रान्ता जनौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत् ।
उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्याऽङ्के निषसाद ह ॥ ५ ॥
तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चाऽभवत्पुरा ।
दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत्तदा ॥ ६ ॥
तां तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ।
पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः ॥ ७ ॥
भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥ ८ ॥
तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलंकृतः ।

ओंको राजा और राजपुत्रोंको अतिक्रम कर ब्राह्मणोंको दान किया था ॥ जिन जिन कन्याओंको दान किया था, उन हर एक कन्याओंके निमित्त चार चार घोडोंसे युक्त एक एक रथ, हर एक रथके पीछे सुवर्ण मालाभूषित एक एक सौ हाथी ॥ एक एक हाथियोंके सङ्ग एक एक हजार घोडे और एक एक घोडों के सङ्ग एक एक सौ गौ, और एक एक गौवोंके सङ्ग अनेक बकरी भेड राजा भगीरथने दान किया था ॥ (१–४)

गङ्गाके तीर प्रवाहके समीप विविक्त स्थानमें ब्राह्मणोंको बहुत सी दक्षिणा प्रदान कर रहे थे, उस दक्षिणाके भारसे वह स्थान नीचे बैठ गया, उससे भागीरथी गङ्गा अत्यन्त व्यथित और पाताल गामिनी होकर फिर जलरूपी प्रवाहसे बहकर भगीरथ राजाके क्रोडमें आकर बैठ गई थीं ॥ जिस स्थानमें भगीरथ राजाके क्रोडमें गङ्गा आकर बैठ गई थीं उस स्थानका नाम उर्वसी तीर्थ हुवा॥ गङ्गाने राजाके पूर्व पुरुषोंका उद्धार किया, इस ही कारणसे गङ्गा भगीरथ राजाकी दुहिता अर्थात् पुत्री कही जाती है ॥ (५–६)

सूर्यके समान तेजस्वी गन्धर्वोंने प्रसन्न होकर प्रियवादी देवता और पितरोंको यह उत्तम गाथा सुनाई ॥ " समुद्रगामिनी गङ्गा देवीने अनगिनत दक्षिणा देनेवाले इक्ष्वाकुनन्दन राजा

सम्यक्परिगृहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ॥ ९ ॥
यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्राऽऽत्मनः प्रियम् ।
भगीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राऽददद्वशी ॥ १० ॥
नाऽदेयं ब्राह्मणस्याऽऽसीद्यस्य यत्स्यात्प्रियं धनम् ।
सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥ ११ ॥
येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविह पादपाः ।
तेनाऽध्यस्यातुमिच्छन्ति तं गत्वाराजमीश्वरम् ॥ १२ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १३ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १४ ॥ [२२५८]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षष्टितमोऽध्याय ॥ ६० ॥

भगीरथको पिता कहके पुकारा था ॥ इन्द्र वरुण आदि देवताओंने राजा भगीरथके विघ्नरहित यज्ञोंमें प्रत्यक्ष रूपसे हव्य ग्रहण किया था ॥ जिन जिन ब्राह्मणोंने जैसी जैसी अभिलाष की थी, भगीरथ राजाने उनको वह सम्पूर्ण वस्तु प्रदान की थी, जिन ब्राह्मणोंको जो धन प्रिय था, राजा भगीरथने उन्हें वही प्रदान किया था, वह राजा भगीरथ अनेक यज्ञ करके तथा ब्राह्मणोंको अनेक भांतिसे दान देकर उस पुण्यके प्रभावसे ब्रह्म लोकमें गये ॥ (७–११)

कर्मयज्ञ और योगयज्ञ जिनकी प्राप्ति के द्वाररूप हैं, तथा जो अपनी किरणोंसे सब दिशाओं को व्यापते हुए प्रतिदिन उदय को प्राप्त होते हैं, ऐसे सूर्य और तदन्तर्यामी ईश्वर की उपासना मरीचिपादि ऋषि जिस कारण से करते थे, उस ही कारणसे त्रैलोक्य विख्यात राजा भगीरथकी भी उपासना करनेकी इच्छा करते थे, उनका उद्देश्य यह था, कि सूर्यके दर्शनसे पातकोंका नाश और तदन्तर्यामी ईश्वरकी उपासनासे सत्यसंकल्पादि जो फल प्राप्त होते हैं वे सब ही फल भगीरथकी उपासनासे ही प्राप्त होते हैं, तो हम उनकी उपासना क्यों न करेंगे ? (१२)

व्यास मुनि बोले, नारद मुनि इतनी कथा सुनाकर फिर सृञ्जयसे बोले, राजा भगीरथ तुम्हारे पुत्र और तुमसे भी श्रेष्ठ थे; उन्होंने दान समेत वित्त, गर्वरहित ज्ञान, क्षमायुक्त पराक्रम और ममता रहित भोग, इन चारों श्रेष्ठ विषयोंसे युक्त और पुण्यात्मा थे। हे सृञ्जय वह भी जब कालके कराल ग्रासमें पतित हुए हैं; तब तुम यज्ञ तथा

नारद उवाच— दिलीपं चैलविलं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य यज्ञशतेष्वासन्प्रयुतायुतशो द्विजाः ॥
तन्त्रज्ञानार्थसम्पन्ना यज्वानः पुत्रपौत्रिणः ॥ १ ॥
य इमां वसुसम्पूर्णां वसुधां वसुधाधिपः ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥
दिलीपस्य तु यज्ञेषु कृतः पन्था हिरण्मयः ।
तं धर्म इव कुर्वाणाः सेन्द्रा देवाः समागमन् ॥ ३ ॥
सहस्रं यत्र मातङ्गा गच्छन्ति पर्वतोपमाः ।
सौवर्णं चाऽभवत्सर्वं सदः परमभास्वरम् ॥ ४ ॥
रसानां चाऽभवन्कुल्या भक्ष्याणां चापि पर्वताः ।
सहस्रव्यामा नृपते यूपाश्चाऽऽसन्हिरण्मयाः ॥ ५ ॥
चषालं प्रचषालं च यस्य यूपे हिरण्मये ।
नृत्यन्तेऽप्सरसस्तस्य षट्सहस्राणि सप्तधा ॥ ६ ॥
यत्र वीणां वादयति प्रीत्या विश्वावसुः स्वयम् ।

दक्षिणारहित अपने पुत्रके निमित्त शोक मत करो ॥ (१३–१४) [२२५८]

द्रोणपर्वमें साठ अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें इकसठ अध्याय ।

नारद मुनि बोले हे सृञ्जय ! मैंने सुना है, कि इलविलापुत्र दिलीप राजाकी भी मृत्यु हुई है । उन्होंने सैकडों यज्ञ किया था, उन यज्ञोंमें दश दश हजार तथा लाख लाख तत्त्वज्ञान रखनेवाले पुत्र और पौत्र युक्त अग्निहोत्र करने वाले ब्राह्मण लोग इकट्ठे हुए थे ॥ उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञोंको करके इस सम्पूर्ण पृथ्वीको सब वस्तुओंसे पूर्ण करके ब्राह्मणोंको दान किया था ॥ उनके यज्ञका सम्पूर्ण मार्ग सुवर्णमय था । इन्द्र आदिक देवता धर्मोत्पत्तिके कारण राजा दिलीपकी यज्ञभूमिमें आगमन करते थे ॥ (१–३)

पर्वतके समान शरीरवाले एक हजार हाथी उस यज्ञमंडप के समीप घूमते थे, सब यज्ञमण्डप सुवर्णका बनाया हुआ और परम तेजस्वी था ॥ वहां अनेक रसोंके स्रोत बह रहे थे, और भक्ष्य पदार्थोंके तो पर्वतके समान ढेर लगे रहे थे ॥ हे राजन् ! वहांके यज्ञस्तंभ सहस्र व्याम परिमित थे और सब सुवर्णमय थे ॥ उस सुवर्णके स्तंभके ऊपरके सब चक्र आदि भी सुवर्णके ही थे ॥ उस सभास्थानमें साठ हजार अप्सराएं सात प्रकारसे नृत्य करती थी ॥ वहां

सर्वभूतान्यमन्यन्त राजानं सत्यशीलिनम् ॥ ७ ॥
रागखाण्डवभोज्यैश्च मत्ताः पतिषु शेरते ।
तदेतदद्भुतं मन्ये अन्यैर्न सदृशं नृपैः ॥ ८ ॥
यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न परिपेततुः ।
राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥
येऽपश्यन्भूरिदाक्षिण्यं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ।
पञ्च शब्दा न जीर्यन्ति खट्वाङ्गस्य निवेशने ॥ १० ॥
स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताश्नीत खादत ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥ [२२७०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

स्वयं विश्वावसु गन्धर्व प्रेमसे वीणा बजाते थे। उस सत्यशीलवाले राजा दिलीपकी संपूर्ण प्राणी संमान करते थे। (४-७)

उनके यज्ञमें रागखांडव अर्थात् गुडोदन आदि अनेक प्रकारकी भक्षण और भोजनकी वस्तुसे तृप्त और मतवारी होकर वहांकी स्त्रियां अपने पति के साथ ही समागम करती थी। उनका एक आश्चर्यमय कार्य देखकर सब पुरुष चकित होते थे, कि जलके ऊपर भी युद्ध करने के समय उनके रथका चक्र पानीमें नहीं डूबता था; उनके उस रथकी उपमा नहीं हो सकती। जिन महात्माओंने दृढ धनुर्धारी राजा दिलीपका दर्शन किया; उन्होंने भी स्वर्ग लोकको प्राप्त किया है। उस दिलीप राजाके राजभवनमें वेदाध्ययन स्वर, धनुषटङ्कार और भोजन करो, पान करो, खाओ--इत्यादि शब्द सदा सुनाई पडते थे। (७-११)

व्यास मुनि बोले, नारद मुनि इतनी कथा सुनाकर श्वित्यपुत्र राजा सृञ्जयसे फिर बोले, राजा दिलीप तुम्हारे पुत्र और तुम्हारी अपेक्षाभी दानसमेत वित्त, गर्वहीन ज्ञान, क्षमायुक्त पराक्रम और आसक्ति रहित भोग,–इन चारों उत्तम विषयोंमें श्रेष्ठ और पुण्यात्मा थे। हे संजय ! जब वह भी कालके करालग्रास में पतित हुए; तब तुम यज्ञ और दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके निमित्त क्यों शोक करते हो ? (११-१२)

द्रोणपर्वमें तैंतालिस अध्याय समाप्त। [२२७०]

नारद उवाच— मान्धाता चेद्यौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम ।
देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ १ ॥
यं देवावश्विनौ गर्भात्पितुः पूर्वं चकर्षतुः ।
मृगयां विचरन्राजा तृषितः क्लान्तवाहनः ॥ २ ॥
धूमं दृष्ट्वाऽगमत्सत्रं पृषदाज्यमवाप सः ।
तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य जठरे सूनुतां गतम् ॥ ३ ॥
गर्भाद्धि जह्रतुर्देवावश्विनौ भिषजां वरौ ।
तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥ ४ ॥
अन्योन्यमब्रुवन्देवाः कमयं धास्यतीति वै ।
मामेवाऽयं धयत्वग्रे इति ह स्माऽऽह वासवः ॥ ५ ॥
ततोऽङ्गुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरासीत्पयोऽमृतम् ।
मां धास्यतीति कारुण्याद्यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत् ॥ ६ ॥
तस्मात्तु मान्धातेत्येवं नाम तस्याऽद्भुतं कृतम् ।

द्रोणपर्वमें चौवालिस अध्याय ।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय ! मैंने सुना है, युवनाश्व राजाके पुत्र मान्धाता की मृत्यु हुई है । देवता असुर और मनुष्योंके बीच में राजा मान्धाता त्रि- लोक विजयी थे । अश्विनीकुमार दोनों देवतोंने उनको पिताके उदरसे बाहर किया था । किसी समय में राजा युवनाश्व शिकार खेलते हुए प्यासे हुए॥ उनका घोडा भी थक गया ॥ उसने दूरसे यज्ञ के धूएंको देखा, और उसके अनुरोधसे उस सत्रके स्थान में जाकर प्याससे पीडित होने के कारण यज्ञसे शुद्ध भये पृषदाज्य (दही और घी मि- श्रित वस्तुको) सेवन किया । उससे उनके उदरमें एकपुत्र उत्पन्न हुआ।१-३

वैद्यक विद्या जानने वाले अश्विनी कुमारोंने उनके उदरमें पुत्रका सञ्चार होते जानकर यत्न पूर्वक उस पुत्रको बाहर करके राजा युवनाश्वके कांड में समर्पण किया । देवतालोग देवपुत्र के समान उस तेजस्वी बालकको अपने पिताकी गोदीमें सोते हुए देखकर आ- पसमें कहने लगे, यह बालक किसकी ओर देखकर दूध पीनेकी इच्छा करेगा? इन्द्रने प्रथम ही कहा, "यह बालक मुझे देखकर दुग्धपान करेगा । " अनन्तर इन्द्रकी अंगुलियों से अमृत के समान दुग्ध उत्पन्न हुआ । इन्द्रने जिस प्रकार से करुणा पूरित वचनोंको कहा, "मां- धास्यति" अर्थात् मेरी ओर देखके यह दुग्धपान करेगा; इसही कारणसे उसका

ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥
तस्याऽऽस्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चाऽस्रवत् ।
अपिबत्पाणिमिन्द्रस्य स चाऽप्यह्नाऽभ्यवर्धत ॥ ८ ॥
सोऽभवद् द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान् ।
इमां च पृथिवीं कृत्स्नामेकाह्ना स व्यजीजयत् ॥ ९ ॥
धर्मात्मा धृतिमान्वीरः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ॥ १० ॥
असितं च नृगं चैव मान्धाता मनुजोऽजयत् ।
उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ॥ ११ ॥
तत्सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ।
सोऽश्वमेधशतैरिष्ट्वा राजसूयशतेन च ॥ १२ ॥
अददद्रोहितान्मत्स्यान्ब्राह्मणेभ्यो विशाम्पते ।
हैरण्यान्योजनोत्सेधानायतान्शतयोजनम् ॥ १३ ॥
बहुप्रकारान्सुस्वादून्भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान् ।
अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ॥ १४ ॥

अद्भुत नाम 'मान्धाता' हुआ । (४-७)

तिसके अनन्तर महात्मा युवनाश्व पुत्रके निमित्त इन्द्रके अंगुली और अंगूठे से दूध और घृतकी धारा बाहर होने लगी, वह बालक इन्द्रके हाथके अवलम्बसे दूधघृतको पान करके बढने लगा ॥ वह पराक्रमी बालक बारह दिनमें बारह वर्षकी अवस्थाके समान होगया । समयके अनुसार वह बालक मान्धाता नामक प्रसिद्ध राजा हुआ । वह धर्मात्मा, पराक्रमी, धीर, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हुआ था । उस धर्मात्मा मान्धाताने एक ही दिनमें इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया था ॥ ७-१०

जनमेजय, सुधन्वा, गय, पुरु, बृहद्रथ, असित, राम और सम्पूर्ण पुरुषोंको युद्धमें पराजित किया था, सूर्य जहांसे उदय होते और जिस स्थानमें अस्त होते हैं, वे सम्पूर्ण स्थान मान्धाता राजाके अधिकारमें थे, उन्होंने सौ अश्वमेध और एक सौ राजसूययज्ञ पूर्ण करके दश योजनके परिमाण ऊंचे पद्मराग मणियोंसे युक्त सुवर्णके बने हुए बडे बडे एक योजन चौंडे और शतयोजन दीर्घ मत्स्य देश ब्राह्मणोंको दान किया था । (१०-१३)

उनके यज्ञमें बहुतेरे भक्ष्य, भोज्य आदि अन्नोंके बहुतसे पर्वतोंके ढेर लगे थे ? और ब्राह्मणोंने भली भांतिसे

भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः ।
घृतह्रदाः सूपपङ्का दधिफेना गुडोदकाः ॥ १५ ॥
रुरुधुः पर्वतान्नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः ।
देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः ॥ १६ ॥
विप्रास्तत्राऽऽगताश्चाऽऽसन्वेदवेदाङ्गपारगाः ।
ब्राह्मणा ऋषयश्चाऽपि नाऽऽसंस्तत्राऽविपश्चितः ॥१७॥
समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णां तु सर्वतः ।
स तां ब्राह्मणसात्कृत्वा जगामाऽस्तं तदा नृपः ॥१८॥
गतः पुण्यकृतां लोकान्व्याप्य स्वयशसा दिशः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १९ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥२०॥ [२२९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

भोजनपान किया था॥ ब्राह्मणोंके भोजन से अवशिष्ट भोजन करने वाले ही कम थे परन्तु अन्न बहुत ही था ॥ अन्नके पर्वतोंसे वह यज्ञभूमि अत्यन्तही शोभित हुई थी । घीके तालाव, सूपपङ्क, दहीके फेन और गुडके जलसे युक्त थे ॥ मधु खीरसे युक्त अनेक नदियां पर्वतोंसे घिरी थीं । देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष,गन्धर्व, सर्प, पक्षी, वेद वेदाङ्गके जाननेवाले ब्राह्मण आदि सब ही उस मान्धाता राजाकी यज्ञ में उपस्थित हुए थे, उनके बीचमें कोई भी मूर्ख नहीं थे । १४–१७

राजा मान्धाताने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको समस्त वस्तुओंसे पूरित कर ब्राह्मणोंको दान करके अन्तमें परलोकमें गये॥ उन्होंने समस्त दिशाओंमें यशसे युक्त होकर पुण्यात्मा पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य लोकमें गमन किया ॥ १८—१९

व्यासमुनि बोले, नारदमुनि इतनी कथा सुनाकर फिर श्वित्यपुत्र सृञ्जयसे बोले, राजा ययाति तुम्हारे पुत्र और तुमसे भी दान सहित वित्त, अभिमान रहित ज्ञान, क्षमायुक्त पराक्रम और आसक्ति रहित भोग; इन चारों उत्तम विषयोंमें श्रेष्ठ और पुण्यात्मा थे;हे सृञ्जय! वह भी जब मृत्युके कराल ग्रासमें पतित हुए, तब तुम यज्ञ और दक्षिणारहित अपने पुत्रके निमित्त क्यों शोक करते हो ? (१९-२०) [२२९०]

द्रोणपर्वमें बासठ अध्याय समाप्त ।

नारद उवाच— ययातिं नाहुषं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
राजसूयशतैरिष्ट्वा सोऽश्वमेधशतेन च ॥ १ ॥
पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा ।
अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः ।
अग्निष्टोमैश्च विविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः ॥ २ ॥
अब्राह्मणानां यद्वित्तं पृथिव्यामस्ति किञ्चन ।
तत्सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ॥ ३ ॥
सरस्वती पुण्यतमा नदीनां तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च ।
ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे घृतं पयो दुदुहुर्नाहुषाय ॥ ४ ॥
व्यूढे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम् ।
चतुर्धा व्यभजत्सर्वां चतुर्भ्यः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥
यज्ञैर्नानाविधैरिष्ट्वा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम् ।
देवयान्यां चौशनस्यां शर्मिष्ठायां च धर्मतः ॥ ६ ॥
देवारण्येषु सर्वेषु विजह्राराऽमरोपमः ।
आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ॥ ७ ॥
यदा नाऽभ्यगमच्छान्तिं कामानां सर्ववेदवित् ।

द्रोणपर्वमें तिरसठ अध्याय ।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय ! मैंने सुना है, कि नहुष राजाके पुत्र ययातिने भी परलोकमें गमन किया है । वह एक सौ अश्वमेध, एक सौ राजसूय, एक सौ वाजपेय, एक हजार पुण्डरीक, एक हजार अतिरात्र, यथेच्छ चातुर्मास्य, अग्निष्टोम दूसरे नाना प्रकारके यज्ञोंको दक्षिणा सहित पूर्ण किया था॥ ब्राह्मणोंसे शत्रुता करनेवाले म्लेच्छों का जितना धन पृथ्वीके बीचमें था, वह सम्पूर्ण धन उन्होंने म्लेछोंसे छीनकर ब्राह्मणोंको दान किया था ॥ (१–३)

वह देवासुर संग्राममें देवताओंकी सहायता करते थे । और पृथ्वीको चार भागोंमें बाटकर ऋत्विजोंको दान किया था । उस महात्मा ययातिने नानाप्रकारके यज्ञोंको समाप्त कर शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी और शर्मिष्ठाके गर्भसे उत्तम पुत्रोंको उत्पन्न किया था । ४-६

बडे पुण्यवान नहुषपुत्र राजा ययातिके प्रतियज्ञके समय नदीयोंमें पुण्यतमा सरस्वती, सात समुद्र, तथा पर्वतोंके सहित अन्य सब नादियां दूध और घीकी समृद्धि करते थे॥ सब वेदोंके जाननेवाले राजा ययातिने इच्छानुसार सम्पूर्ण देवता

ततो गाथामिमां गीत्वा सदारः प्राविशद्वनम् ॥ ८ ॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नाऽलमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ ९ ॥
एवं कामान्परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च ।
पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य प्रयातो वनमीश्वरः ॥ १० ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥११॥ [२३०१]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

नारद उवाच— नाभागमम्बरीषं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत ॥ १ ॥
जिगीषमाणाः संग्रामे समन्ताद्वैरिणोऽभ्ययुः ।
अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाऽशिवा गिरः ॥ २ ॥

ओं के वनमें विहार किया जब राजा ययाति मुख्य भोग करके भी नाना प्रकारकी कामनाओंको समाप्त न कर सके, तब वह यह गाथा गाते हुए अपनी भार्यांके सहित वनवासी हुए, कि इस पृथ्वी के बीचमें सपूर्ण, वस्तु, जो, सुवर्ण, पशु, स्त्री आदि होवे, तौ भी किसीकी कामनाकी तृप्ति नहीं हो सकती है, यह समझ कर मनुष्योंको शान्तभाव, अवलम्बन करना उचित है। महाराज ययाति ऐसा विचार कर धीरज धारण करके अपने पूरु नामके पुत्रको राज्य देकर वनको चले गये ॥ (७–१०)

व्यास मुनि बोले, नारद मुनि इतनी कथा सुनाकर श्वित्यपुत्र सृञ्जयसे फिर बोले, राजा ययाति तुम्हारे पुत्र और तुम से भी दान सहित वित्त, अभिमानरहित दान, क्षमायुक्त पराक्रम और आसक्तिरहित भोग,—इन चार प्रकारके उत्तम विषयोंमें श्रेष्ठ और पुण्यात्मा थे। हे सृञ्जय! जब ऐसे राजा भी मृत्युके कराल ग्रास में पतित हुए, तब यज्ञ और दक्षिणारहित अपने पुत्रके निमित्त तुम को शोक करना उचित नहीं है। (११)

द्रोणपर्वमें तिरसठ अध्याय समाप्त। [२३०१]

द्रोणपर्वमें चौसठ अध्याय।

नारदमुनि बोले, हे सृञ्जय! मैंने सुना है, नाभागपुत्र अम्बरीष राजाकी भी मृत्यु हुई है। उन्होंने एक रथ पर चढके दश लाख राजाओंको पराजित किया था॥ अस्त्रयुद्ध जाननेवाले दूसरे शत्रु राजाओंने जयकी इच्छा करके युद्ध

बललाघवशिक्षाभिस्तेषां सोऽस्त्रबलेन च।
छत्रायुधध्वजरथांश्छित्वा प्रासान्गतव्यथः ॥ ३ ॥
त एनं मुक्तसन्नाहाः प्रार्थयञ्जीवितैषिणः।
शरण्यमीयुः शरणं तवाऽऽस्म इति वादिनः ॥ ४ ॥
स तु तान्वशगान्कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम्।
ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथाशास्त्रं तथाऽनघ ॥ ५ ॥
बुभुजुः सर्वसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः सदा।
तस्मिन्यज्ञे तु विप्रेन्द्राः सन्तृप्ताः परमार्चिताः ॥ ६ ॥
मोदकान्पूरिकापूपान्स्वादुपूर्णांश्च शष्कुलीः।
करम्भान्पृथुमृद्वीका अन्नानि सुकृतानि च ॥ ७ ॥
सूपान्मैरेयकापूपान्रागखाण्डवपानकान्।
मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ॥ ८ ॥
घृतं मधु पयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च।
फलं मूलं च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ॥ ९ ॥
मादनीयानि पापानि विदित्वा चाऽऽत्मनः सुखम्।

करते हुए जब राजा अम्बरीषको आक्रमण किया, तब उन्होंने क्रीडाके समान उन लोगोंके शस्त्र ध्वजा रथ और प्रास आदि अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे काटके उन्हें अपने वशमें किया; अन्तमें वे लोग धर्महीन और निर्मल होकर अपने प्राणकी आशा करके राजा अम्बरीषके शरणागत हुए थे ॥ (१-४)

हे पापरहित ! उन्होंने इसी प्रकारसे सम्पूर्ण राजाओंको जीत कर और संपूर्ण पृथ्वीको स्वाधीन कर एक सौ यज्ञोंको शास्त्रविधिके अनुसार पूर्ण किया ॥ उन यज्ञोंमें ब्राह्मण और दूसरे सम्पूर्ण पुरुष अत्यन्त ही प्रसन्न होकर नाना प्रकारके स्वाद युक्त उत्तम अन्न आदिको भक्षण और भोजन करके आनन्दित हुए थे। लड्डू, पूरी, मिठाई, शाक, धमक (घीके पकान्न) काला जीरा और दाखसे युक्त दहीके सालन, दहीसे युक्त उत्तम सत्तू, उत्तम पकान्न, दाल मैरेयक पूप, रागखांडव (गुडके मिष्टान्न-युक्त भोज्य) और दूसरे अनेक सुगन्धित, कोमल और भली भांतिसे घी, दूध, दही, मधु आदिसे युक्त अनेक उत्तम स्वादसे युक्त फल मूल इत्यादि नाना प्रकारके भक्षण, भोजन और पीनेवाली वस्तुओंसे ब्राह्मणोंको तृप्त किया था। (५--९)

सहस्रों पुरुष अपनी अभिलाषाके

अपिबन्त यथाकामं पानपा गीतवादितैः ॥ १० ॥
तत्र स्म गाथा गायन्ति क्षीवा हृष्टाः पठन्ति च ।
नाभागस्तुतिसंयुक्ता ननृतुश्च सहस्रशः ॥ ११ ॥
तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्यकालयत् ।
राज्ञां शतसहस्राणि दशप्रयुतयाजिनाम् ॥ १२ ॥
हिरण्यकवचान्सर्वाञ्श्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान् ।
हिरण्यस्यन्दनारूढान्सानुयात्रपरिच्छदान् ॥ १३ ॥
ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
मूर्धाभिषिक्तांश्च नृपान्राजपुत्रशतानि च ॥ १४ ॥
सदण्डकोशनिचयान्ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
नैवं पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चाऽपरे ॥ १५ ॥
यदम्बरीषो नृपतिः करोत्यमितदक्षिणः ।
इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥ १६ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।

अनुसार सुखपूर्वक नानाभांतिकी उत्तम पीने योग्य मधु आदि वस्तुओंको पाप-हेतु जानकरभी सुखकी इच्छासे पीकर मतवारे और प्रसन्न होकर नाभागनन्दन अम्बरीष राजाकी स्तुति युक्त उनके उत्तम चरित्रोंको गाकर नृत्य करते तथा प्रसन्न होते थे। इसी प्रकारसे दश प्रयुत यज्ञोंको राजा अम्बरीषने पूर्ण किया था; और दश लाख राजाओंको ब्राह्मणोंको दक्षिणा रूपसे प्रदान किया था, वे सब राजा लोग सुवर्ण कवचधारी श्वेतछत्र शोभित सुवर्ण भूषित रथोंमें चढे हुए थे, और उनके संगमें सम्पूर्ण सामान तथा उनके अनुयायी लोग भी थे ॥ (१०-१३)

उन्होंने राजअङ्ग राजदण्ड और राजकोषके सहित उन सब मूर्धाभिषिक्त राजाओंको तथा राजपुत्रोंको दक्षिणा-रूपसे ब्राह्मणोंको दान किया था ॥ मह-र्षियोंने प्रसन्न होकर यह वचन कहा था, कि राजा अम्बरीषने बहुतसी दक्षिणाके सहित जो सब यज्ञोंको पूर्ण किया है, इस प्रकारसे पहिले किसीने भी यज्ञके कार्यको पूर्ण नहीं किया था ! और भवि-ष्यमें भी नहीं कर सकेगा ॥ (१४-१६)

व्यास मुनि बोले; नारद मुनि इतनी कथा सुनाकर श्वित्यपुत्र सृञ्जयसे फिर बोले, हे राजेन्द्र ! नाभागपुत्र अम्बरीष तुम्हारे पुत्र और तुमसे भी दान सहित चित्त, क्षमा युक्त पराक्रम, गर्व रहित

पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येतिव्याहरन् ॥ १७ ॥ [२३१८]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥ ६४ ॥

नारद उवाच— शशबिन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान्सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥
तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः।
एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं तनयाऽभवन् ॥ २ ॥
ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः।
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ॥ ३ ॥
हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः।
सर्वेऽश्वमेधैरीजाना कुमाराः शाशिबिन्दवः ॥ ४ ॥
तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत्पिता।
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ५ ॥
राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः।

ज्ञान और आसक्ति रहित भोग,—इन चारों श्रेष्ठ विषयोंमें मुख्य और पुण्यात्मा थे, हे सृञ्जय! जब ऐसे पुण्यात्मा राजा भी कालके कराल ग्रासमें पतित हुए तब यज्ञ और दक्षिणारहित अपने पुत्रके निमित्त तुम किस कारणसे शोक करते हो? (१७) [२३१८]

द्रोणपर्वमें चौसठ अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें पैंसठ अध्याय।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय! मैंने सुना है, कि राजा शशबिन्दुकी भी मृत्यु हुई है। उस सत्यपराक्रमी श्रीमान शशबिन्दु राजाने नाना प्रकारके यज्ञों-का अनुष्ठान किया था। उस महात्मा शशबिन्दु राजाके एक लाख भार्या थीं, उन एक एक स्त्रियोंके एक एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए॥ वे सब राजपुत्र महा पराक्रमी वेदविद्याके, जानने वाले, सुवर्णके कवचों को धारण करने वाले महाधनुर्द्धर राजा थे और उन्होंने एक नियुत यज्ञोंको पूर्ण किया था, जब उन राजपुत्रोंने मुख्य मुख्य यज्ञोंका अनुष्ठान किया। और सबने मिलके अश्वमेध यज्ञको पूर्ण किया था॥ (१–४)

उन राजपुत्रोंके पिता राजाओंमें मुख्य शशबिन्दुने अश्वमेध यज्ञमें सम्पूर्ण पुत्रोंको ब्राह्मणोंको दान किया था॥ एक एक राजपुत्रके पीछे सौ सौ रथ और सौ सौ हाथी थे। तथा सुवर्णभूषित अनेक कन्या उनके पीछे गमन करती

कन्यां कन्यां शतं नागा नागे नागे शतं रथाः ॥ ६ ॥
रथे रथे शतं चाऽश्वा बलिनो हेममालिनः।
अश्वे अश्वे गोसहस्रं गवां पञ्चाशदाविकाः ॥ ७ ॥
एतद्धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे।
शशिविन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ८ ॥
वार्क्षाश्च यूपा यावन्त अश्वमेधे महामखे।
ते तथैव पुनश्चाऽन्ये तावन्तः काञ्चनाऽभवन् ॥ ९ ॥
भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः क्रोशमुच्छ्रिताः।
तस्याऽश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥ १० ॥
तुष्टपुष्टजनाकीर्णां शान्तविघ्नामनामयाम्।
शशिविन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः॥ ११ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।

थीं। एक एक कन्याके पीछे एक एक सौ हाथी, एक एक हाथीके पीछे एक एक सौ रथ, एक एक रथके पीछे एक एक सौ सुवर्ण मालाधारी उत्तम घोडे, एक एक घोडेके पीछे एक एक सहस्र गऊ, और एक एक गौके पीछे पचास पचास भेड और बकरियों का झुण्ड था॥ महात्मा शशविन्दुने अश्वमेध यज्ञमें इसी प्रकारसे ब्राह्मणोंको अपरम्पार दक्षिणा दी थी॥ (५-८)

उस महाअश्वमेध यज्ञमें जितने स्तंभ लकडीसे बने हुए थे, वे सम्पूर्ण सुवर्ण-से बनाये गये॥ उस यज्ञमें ब्राह्म-णोंके भोजन करनेके वास्ते सब ओर अन्नका ढेर तैयार रहता था; यहां तक कि यज्ञके समाप्त होनेपर भी एक कोस भरके बीचमें एक ऐसे अन्नके तेरह पर्वत शेष रहे दीख पडते थे॥ उनके राज्य शासनके समयमें सम्पूर्ण प्रजा हृष्टपुष्ट रोग शोकसे रहित थी, वहां सदा सुकाल रहता था। राजा शशवि-न्दुने बहुत दिनोंतक राज्यका सुख भोग करके अन्त समयमें परलोकमें गमन किया॥ (९—११)

व्यास मुनि बोले, इतनी कथा सुनाकर श्रीनारद मुनि सृञ्जयसे बोले, कि राजा शशविन्दु तुम्हारे पुत्र और तुमसे भी दान सहित वित्त, क्षमायुक्त पराक्रम, गर्वरहित ज्ञान और पुण्यात्मा थे; हे सृञ्जय! जब ऐसे राजा भी कालके कराल ग्रासमें पतित हुए, तब यज्ञ और दक्षिणारहित अपने पुत्रके निमित्त तुम

अयज्वानमदाक्षिण्यमभिमैत्येति व्याहरन्॥ १२ ॥[२३३०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥ ६५ ॥

नारद उवाच— गयं चाऽऽमूर्त्तरयसं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनो भवत् ॥ १ ॥
तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात्ततो वव्रे वरं गयः ।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥ २ ॥
गुरूणां च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम् ।
स्वधर्मेणाऽविहिंस्याऽन्यान्धनमिच्छामि चाऽक्षयम्॥३॥
विप्रेषु ददतश्चैव श्रद्धा भवतु नित्यशः ।
अनन्यासु सवर्णासु पुत्रजन्म च मे भवेत् ॥ ४ ॥
अन्नं मे ददतः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः ।
अविघ्नं चाऽस्तु मे नित्यं धर्मकार्येषु पावक ॥ ५ ॥
तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवाऽन्तरधीयत ।
गयो ह्यवाप्य तत्सर्वं धर्मेणाऽरीनजीजयत् ॥ ६ ॥

क्यों शोक करते हो ? (१२) [२३३०]

द्रोणपर्वमें पैंसठ अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें छासठ अध्याय ।

नारद मुनि बोले, सृञ्जय ! मैंने सुना है, कि अमूर्तरयके पुत्र गय राजाकी भी मृत्यु हुई है, उन्होंने एक सौ वर्ष पर्यन्त यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन करके व्रतका निर्वाह किया था॥ जब अग्निने उन्हें वरदान करनेकी इच्छा करी, तब उन्होंने यही वर मांगा था, कि " मैं तपस्या, व्रत, ब्रह्मचर्य, नियम और गुरुकी सेवासे वेदके तत्त्वको जाननेकी इच्छा करता हूं, किसीकी हिंसा न करके अपनेको धर्मके अनुसार ही अक्षय धन प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं ॥ मुझे सदा सर्वदा ब्राह्मणोंको दान देनेके निमित्त श्रद्धा बनी रहे; अपने वर्णवाली भार्यासे पुत्र उत्पन्न होवे ॥ अन्न दान करनेकी सदा श्रद्धा बनी रहे; और धर्मविषयमें मेरा मन सदा ही रत रहे। हे अग्नि ! और भी मैं एक वर मांगनेकी अभिलाष करता हूं; कि मेरे इन उत्तम कर्मोंकी समाप्तिमें किसी प्रकारका विघ्न न होवे" । १-५

अग्निने कहा " ऐसा ही होगा " यह वचन कहकर अग्नि अन्तर्द्धान हुए। गय राजाने इस प्रकारसे वर पाकर धर्मपूर्वक शत्रुओंको जीत लिया ॥

स दर्शपौर्णमासीभ्यां काल्येष्वाग्रयणेन च ।
चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चाऽऽप्तदक्षिणैः ॥ ७ ॥
अयजच्छ्रद्धया राजा परिसंवत्सराञ्शतम् ।
गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥ ८ ॥
शतं निष्कसहस्राणि गवां चाऽप्ययुतानि षट् ।
उत्थायोत्थाय स प्रादात्परिसंवत्सराञ्शतम् ॥ ९ ॥
नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः ।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥ १० ॥
सौवर्णां पृथिवीं कृत्वा य इमां मणिशर्कराम् ।
विप्रेभ्यः प्राददद्राजा सोऽश्वमेधे महामखे ॥ ११ ॥
जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः ।
गयस्याऽऽसन्समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥
सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥ १३ ॥
ससमुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च ।
नगरेषु च राष्ट्रेषु दिवि व्योम्नि च येऽवसन् ॥ १४ ॥
भूतग्रामाश्च विविधाः सन्तृप्ता यज्ञसम्पदा ।

उन्होंने एक सौ वर्ष पर्यन्त दर्शपौर्णमास नवशस्यागमन निमित्त यज्ञ, चातुर्मास्य यज्ञ और दूसरे अनेक प्रकारके यज्ञोंको दक्षिणा सहित पूर्ण किया था॥ उन्होंने एक सौ वर्ष पर्यन्त सवेरे ही उठकर एक लाख गौ, अयुत गौ, दश हजार घोडे और एक लाख सुवर्ण मुद्रा ब्रह्मणोंको दान किया था॥ (६–९)

हर एक नक्षत्रमें जो सब वस्तु दान करने योग्य थीं, उन्होंने वह सम्पूर्ण वस्तु ब्राह्मणोंके निमित्त दान करके चन्द्रमा और अङ्गिराके समान नाना भांतिके यज्ञोंको पूर्ण किया था॥ राजा गयने अश्वमेध महायज्ञमें रत्नरूपी कङ्करोंसे युक्त सुवर्णकी पृथ्वी बनाकर ब्राह्मणोंको दान किया था॥ उनके यज्ञके सम्पूर्ण स्तंभ तथा यज्ञकी समस्त वस्तु सुवर्ण भूषित और रत्नोंसे युक्त हुई थीं। उन्होंने अपने यज्ञमें ब्राह्मण और सम्पूर्ण प्राणियोंको सर्वगुण संपन्न अन्न देकर संतुष्ट किया। (१०—१३)

समुद्र, वन, द्वीप, नदी, नद, तालाव, नगर, राष्ट्र, द्युलोक और आकाशमें जितने प्राणिसंघ वास करते थे, उन

गयस्य सदृशो यज्ञो नाऽस्त्यन्य इति तेऽब्रुवन्॥ १५ ॥
षट्त्रिंशद्योजनायामा त्रिंशद्योजनमायता ।
पश्चात्पुरश्चतुर्विंशद्वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ॥ १६ ॥
गयस्य यजमानस्य मुक्ता वज्रमणिस्तृता ।
प्रादात्स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च॥ १७ ॥
यथोक्ता दक्षिणाश्चाऽन्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः ।
यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥ १८ ॥
कुल्या कुशलवाहिन्यो रसानामभवंस्तदा ।
वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥ १९ ॥
यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
वटश्चाऽक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ॥ २० ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।

सबोंने गय राजाके यज्ञसे तृप्त होकर यह वचन कहा था " गय राजाके समान और किसी राजाका भी यज्ञ नहीं हुआ " ॥ उस यज्ञकी एक वेदी पश्चिम दिशामें बनी थी वह छत्तीस योजन लम्बी और तीस योजन चौडी थी और पूर्व दिशामें जो वेदी बनी थी वह चौवीस योजनके परिमाणकी बनाई थी ॥ (१४—१६)

ये दोनों ही वेदी सुवर्णकी बनाई गई थीं और हीरा मोती आदि रत्नोंसे खचित थीं । उस यज्ञमें बहुत दक्षिणा देनेवाले गय राजाने ब्राह्मणोंको वस्त्र आभूषण तथा और भी बहुतसी यथा योग्य दक्षिणा दी थी । उनके यज्ञके समयसे बचे हुए पचीस अन्नके पर्वत और बहुतेरी उत्तम रसोंसे युक्त नदियां चारों ओर दीख पडती थीं, इसके अतिरिक्त अलग अलग नाना भांतिके वस्त्र, आभूषण सुगन्धित वस्तुओंकी यज्ञसे बची हुई अनेक राशियां दीख पडती थीं; उस ही कर्मके प्रभावसे राजा गय जगत् में विख्यात हुए थे । उनका कीर्ति-स्वरूप अक्षयवट और ब्रह्म सरोवर तीनों लोक में विख्यात होकर जगत्में स्थित है ॥ (१७—२०)

व्यास मुनि बोले श्रीनारद मुनि इतनी कथा सुनाकर राजा सृञ्जयसे फिर बोले, राजा गय तुम्हारे पुत्र और तुमसे भी तपस्या, सत्य, दया और दान, इन चार प्रकारके उत्तम विषयोंमें श्रेष्ठ और पुण्यात्मा थे, हे सृञ्जय ! जब

अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन्॥ २१ ॥(२३५१)

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

नारद उवाच— सांकृतिं रन्तिदेवं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यस्य द्विशतसाहस्रा आसन्सूदा महात्मनः ॥ १ ॥
गृहानभ्यागतान्विप्रानतिथीन्परिवेषकाः।
पक्वापक्वं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम् ॥ २ ॥
न्यायेनाऽधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत।
वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ॥ ३ ॥
उपस्थिताश्च पशवः स्वयं यं शंसितव्रतम्।
बहवः स्वर्गमिच्छन्तो विधिवत्सत्रयाजिनम् ॥ ४ ॥
नदी महानसाद्यस्य प्रवृत्ता चर्मराशितः।
तस्माच्चर्मण्वती पूर्वमग्निहोत्रेऽभवत्पुरा ॥ ५ ॥
ब्राह्मणेभ्योऽददन्निष्कान्सौवर्णान्स प्रभावतः।
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह स्म प्रभाषते ॥ ६ ॥

ऐसे राजाकी भी मृत्यु हुई है, तब यज्ञ और दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके निमित्त तुम क्यों शोक करते हो ? (२१) [२३५१]

द्रोणपर्वमें छासठ अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें सैंसठ अध्याय।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय ! मैंने सुना है, कि संकृति पुत्र महात्मा रन्तिदेव राजाकी भी मृत्यु हुई है। इस महात्मा राजाके यहां दो लाख भोजन बनानेवाले ब्राह्मण थे ॥ उस रन्तिदेवके राजभवनमें अतिथि, अभ्यागत और ब्राह्मणोंको भक्षण भोजन और पीनेकी बहुतसी उत्तम सामग्री रात दिन तैयार थीं; उन्होंने चारों वेदोंको पढाथा और न्यायपूर्वक धन उपार्जन करके ब्राह्मणोंको दान किया था; तथा धर्मके अनुसार शत्रुओंको जीता था। (१-३)

वे ऐसे धर्मात्मा व्रत और यज्ञ करनेवाले हुए थे; कि बहुतेरे पशु स्वर्गगमन करनेकी अभिलाष करके स्वयं ही आकर उनके यज्ञमें प्राण देनेको तैयार होते थे ॥ उनके अग्निहोत्रके समय महानस के चर्मराशि से एक रसकी धारासे युक्त नदी उत्पन्न हुई थी, उसका नाम चर्मण्वती कहके विख्यात हुआ है। हे राजेन्द्र ! उन्होंने अपनी सामर्थके अनुसार ब्राह्मणोंको अनेक निष्क (स्वर्णमुद्रा) प्रदान किये थे। तुम्हे सुवर्णमुद्रा देता हूं, ऐसा कहकर

तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादान्निष्कान्निष्कान्सहस्रशः।
ततः पुनः समाश्वास्य निष्कानेव प्रयच्छति ॥ ७ ॥
अल्पं दत्तं मयाऽद्येति निष्ककोटिं सहस्रशः।
एकाह्ना दास्यति पुनः कोऽन्यस्तत्सम्प्रदास्यति ॥ ८ ॥
द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत्।
भविष्यति न सन्देह एवं राजाऽददद्वसु ॥ ९ ॥
सहस्रशश्च सौवर्णान्वृषभान्गोशतानुगान्।
साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ॥ १० ॥
अध्यर्धमासमददद्ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः।
अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणं च यत् ॥ ११ ॥
ऋषिभ्यः करकान्कुम्भान्स्थालीः पिठरमेव च।
शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ॥ १२ ॥
वृक्षांश्च विविधान्दद्यादन्नानि च धनानि च।
सर्वं सौवर्णमेवाऽऽसीद्रन्तिदेवस्य धीमतः ॥ १३ ॥

राजा रन्तिदेव ब्राह्मणोंको लाखों निष्क (स्वर्णमुद्रा) दान करते थे। करोडों निष्क दान करनेपर भी आज बहुत थोडे निष्क ब्राह्मणोंको दान किये गये कह कर राजा रन्तिदेव ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते और उन्हें प्रसन्नता देकर फिर स्वर्णमुद्रा दान देते थे। हे राजन्! उन्होंने एकदिनमें जितने स्वर्ण मुद्रा प्रदान किये थे, दूसरा पुरुष अपनी सम्पूर्ण अवस्था भरमें उतना धन दान नहीं कर सकेगा। (४—८)

राजा रन्तिदेव दान देनेके समय यह वचन कहते हुए धन दान करते थे, कि " यदि ब्राह्मण लोग दान नहीं पावेंगे, तो मुझे सदा अत्यन्त कठिन दुःख भोगना पडेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। उन्होंने एक सौ सुवर्ण भूषित गौ; उनके सङ्ग एक सहस्र स्वर्ण भूषित बैल, एक सौ वर्ष पन्द्रह दिन पर्यन्त नित्य ही दान किया था; और ऋषियोंको अग्निहोत्र तथा यज्ञके उपयोगी सम्पूर्ण वस्तुओंको दान किया था। इसके अतिरिक्त नानाप्रकारके भोजन करने और जल पीनेके बहुतसे पात्र ब्राह्मणोंको दान किया था, घडे, थाली, शय्या, आसन, सवारी, घर, नाना भांतिके वृक्ष, पर्वत और उपवन आदि ब्राह्मणोंको प्रदान किया था; इन सम्पूर्ण वस्तुओंको महात्मा रन्तिदेवने सुवर्णमयी बनवा कर दान किया था। ९-१३

तत्राऽस्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ॥ १४ ॥
नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि ।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥ १५ ॥
व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः ।
सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् ॥ १६ ॥
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः ।
तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १७ ॥
सूपं भूयिष्ठमश्नध्वं नाऽद्य मांसं यथा पुरा ।
रन्तिदेवस्य यत्किञ्चित्सौवर्णमभवत्तदा ॥ १८ ॥
तत्सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ १९ ॥
कव्यानि पितरः काले सर्वकामान्द्विजोत्तमाः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २० ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।

पुराने पुरुषोंने महात्मा रन्तिदेवकी अलौकिक समृद्धि तथा सम्पत्ति देखके विस्मित होकर इस गाथाको गाया था, कि " हमलोगोंने कुबेरके भवनमें भी इस प्रकारके सम्पूर्ण ऐश्वर्यको कभी नहीं देखा था, मनुष्योंकी तो कुछ बात ही नहीं है; रन्तिदेवका राजभवन निश्चय ही इन्द्रलोकके समान है। " महात्मा रन्तिदेवके गृहमें जो एक रात्रि अतिथियोंने वास किया था उसमें इक्कीस सहस्र गौवोंसे उनका सत्कार किया गया था॥ (१४–१७)

मणि जटित कुण्डलोंसे भूषित पाकशालामें रहनेवाले पुरुषोंने ऊंचे स्वरसे यह वचन कहा था, कि " नित्यनित्य जैसे मांसरन्धन होता था उतना आज नहीं हुआ है; इससे आज आप लोग अधिक परिमाणसे सूप (दाल) का भोजन कीजिये। राजा रन्तिदेवके राजमन्दिरमें जितना सुवर्ण था, वह सब उन्होंने ब्राह्मणोंको दान किया था। उनके यज्ञकी हव्य को देवता और पितर प्रकट होकर हाथ बढा बढाके ग्रहण करते थे, ब्राह्मण लोग भी अपनी इच्छाके अनुसार समस्त वस्तुओंको पाते थे। (१७–२०)

व्यासमुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर! नारद मुनि राजा सृञ्जयको इतनी कथा

अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन्॥ २१ ॥[२३७२]

इति श्रीमहाभारते० अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

नारद उवाच— दौष्यन्तिं भरतं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान्यः शिशुर्वने ॥ १ ॥
हिमावदातान्यः सिंहान्नखदंष्ट्रायुधान्बली।
निर्वीर्यांस्तरसा कृत्वा विचकर्ष बबन्ध च ॥ २ ॥
क्रूरांश्चोग्रतरान्व्याघ्रान्दमित्वा चाऽकरोद्वशे।
मनःशिला इव शिलाः संयुक्ता जतुराशिभिः॥ ३ ॥
व्यालादींश्चाऽतिबलवान्सुप्रतीकान्गजानपि।
दंष्ट्रासु गृह्य विमुखाञ्शुष्कास्यानकरोद्वशे ॥ ४ ॥
महिषानप्यतिबलो बलिनो विचकर्ष ह
सिंहानां च सुदृप्तानां शतान्याकर्षयद्बलात् ॥ ५ ॥
बलिनः सृमरान्खड्गान्नानासत्वानि चाप्युत।
कृच्छ्रप्राणं वने बध्वा दमयित्वाप्यवासृजत् ॥ ६ ॥

सुनाकर बोले कि राजा रन्तिदेव तुम्हारे पुत्र और तुमसे भी धन, धर्म, सुख और बलमें श्रेष्ठ, तथा पुण्यात्मा हुए थे। हे सृञ्जय ! जब वह भी कालके कराल ग्रासमें पडके मर गये, तब यज्ञ और दक्षिणा रहित अपने पुत्रके निमित्त तुमको शोक करना उचित नहीं है। २०-२१

द्रोणपर्वमें सडसठ अध्याय समाप्त। [२३७२]

द्रोणपर्वमें अडसठ अध्याय।

नारदमुनि बोले, हे सृञ्जय ! मैंने सुना है, कि दुष्यन्तराजाके पुत्र भरतकी भी मृत्यु हुई है। उन्होंने बालक अवस्था हीमें दूसरेसे न सिद्ध होने योग्य कठिन कर्म किये थे; वह ऐसे बलवान् थे, कि नख, दांत रूपी अस्त्रोंसे युक्त श्वेतवर्णवाले बलवान् सिंहोंको अपने पराक्रमसे तेजहीन करके उन्हें पकडके बांधते थे॥ जतुयुक्त मनःशिलामय शिलाके समान रङ्गवाले अत्यन्त बली व्याघ्र आदि हिंसक पशुओंको वह अनायासही अपने पराक्रमसे वशीभूत करते थे। (१—३)

महाबली वनके सर्प आदिओंको पकडके घसीट लाते थे; सैकडों बलवान् वनके भैंसे तथा मतवारे सिंहोंको ग्रहण करके उनका नाश करते थे; अत्यन्त हिंसक पशु और मतवारे हाथियोंके दांतको पकडके उनके ऊपर चढ जाते थे, और उन्हें अत्यन्त विकल करके अपने वशमें करते थे; बलवान् सावर और गैंडा आदि पशुओंको पकडके उनके

तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनाऽस्य कर्मणा ।
तं प्रत्यषेधज्जननी मा सत्वानि विजीजहि ॥ ७ ॥
सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान् ।
त्रिशताश्वान्सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ॥ ८ ॥
सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ९ ॥
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यामिष्ट्वा विश्वजिता अपि ।
वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंभृतैः ॥ १० ॥
इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान्धनैः ।
सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥ ११ ॥
जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः ।
यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥ १२ ॥
समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः ।
अलंकृतान्राजमानान्सर्वरत्नैर्मनोहरैः ॥ १३ ॥
हैरण्यानश्वान्द्विरदान्रथानुष्ट्रानजाविकम् ।

गर्दनको बांधकर घसीटते हुए मूर्च्छित करके छोड देते थे ॥ उनके उस कार्यको देखकर वनवासी ब्राह्मण और ऋषियोंने उनका " सर्वदमन " नाम रक्खा था। उनकी माता उनको प्राणियोंकी हिंसा करनेके निमित्त निषेध करती थी ॥ (४-७)

उस शकुन्तलापुत्र राजा भरतने सौ अश्वमेध यज्ञ यमुनाके तीरपर, तीन सौ अश्वमेध सरस्वती नदीके किनारे, और चार सौ अश्वमेध यज्ञोंको गङ्गाके तीर पर पूर्ण किया था॥ उन्होंने एक हजार अश्वमेध यज्ञ और एक सौ राजसूययज्ञोंको समाप्त करके फिर बहुतसी दक्षिणाओंके सहित बहुतेरे महायज्ञोंको पूर्ण किया था ॥ अग्निष्टोम, अतिरात्र, विश्वजित् और सहस्रों वाजपेय यज्ञोंको समाप्त किया था। महायशस्वी भरत राजाने इन सम्पूर्ण यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको तृप्त करके जाम्बूनद स्वर्णके बने हुए एक सहस्र पद्म स्वर्ण मुद्रा कण्व ऋषिको दान किया था ॥ (८-१२)

उनके यज्ञका स्तंभ शतव्यामपरिमित और सब सुपर्णका बना था, इन्द्रादिक देवताओंने उन यज्ञोंमें ब्राह्मणोंके सहित आगमन करके उस यज्ञ स्तंभको खडा किया था॥ उन्होंने सैकडों सहस्रों लाखों तथा करोडों सुवर्णके

दासी दासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः ॥१४॥
ग्रामान्गृहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान् ।
कोटीशतायुतांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ १५ ॥
चक्रवर्ती ह्यदीनात्मा जितारिर्ह्यजितः परैः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १६ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥ १७ ॥२३८९

इतिश्रीमहाभारते० द्रोणपर्वण्यभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

नारद उवाच— पृथुं वैन्यं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यमभ्यषिञ्चन्साम्राज्ये राजसूये महर्षयः ॥ १ ॥
यत्नतः प्रथितेत्यूचुः सर्वानभिभवन्पृथुः ।
क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत् ॥ २ ॥
पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् ।

भूषणोंसे भूषित हाथी, घोडे, ऊंट, बछडेके सहित दूधवाली गऊ, बकरी, भेड, सुवर्ण, दास, दासी, अन्न, गांव, घर, भूमि, नाना भांतिके वस्त्र तथा दूसरी अनेक प्रकारकी सामग्रियोंको ब्राह्मणोंके निमित्त दान किया था। महाराज भरत अत्यन्त ही महात्मा, सार्वभौम, शत्रुनिजयी और अपराजित थे। (१२–१६)

व्यास मुनि बोले, हे राजन्! नारद मुनि इतनी कथा सुनाकर सृञ्जयसे बोले, हे राजेन्द्र! राजा भरत तुम्हारे पुत्र और तुमसे तपस्या सत्य दया और दान आदि विषयोंमें श्रेष्ठ और पुण्यात्मा थे; हे सृञ्जय! जब ऐसे राजाकी भी मृत्यु हुई है, तब तुम यज्ञ और दक्षिणा हीन अपने पुत्रके निमित्त क्यों शोक करते हो॥ (१६–१७) [२३८९]

द्रोणपर्वमें अडसठ अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें उनहत्तर अध्याय।

नारदमुनि बोले, सृञ्जय! मैंने सुना है, कि वेनराजाके पुत्र पृथुको भी मृत्युके कराल ग्रासमें पतित होना पडा है। उनको महर्षियोंने राजसूय यज्ञमें इस पृथ्वीके साम्राज्यपर अभिषेक किया था॥ वह महात्मा पृथुराज यत्न पूर्वक सम्पूर्ण शत्रुओंको पराजित करके पृथ्वीके बीच प्रसिद्ध हुए थे, इसही निमित्त सम्पूर्ण पुरुषोंने उन्हें पृथु नामसे सम्बोधन किया था; उन्होंने हम लोगोंको सम्पूर्ण विघ्नसे उबारा था, इसीसे क्षत्रिय कहके विख्यात हुए थे॥ वेनपुत्र राजा पृथुको देखकर सम्पूर्ण प्रजाओंने

ततो राजेति नामाऽस्य अनुरागादजायत ॥ ३ ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद्वैन्यस्य कामधुक् ।
सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ४ ॥
आसन्हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः ।
तेषां चीराणि संवीताः प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥ ५ ॥
फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च ।
तेषामासीत्तदाऽऽहारो निराहाराश्च नाऽभवन् ॥ ६ ॥
अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः ।
न्यवसन्त यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७ ॥
प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां नाऽभवत्तदा ।
यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥ ८ ॥
तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाऽभवत् ॥ ९ ॥

कहा था, "हमलोग तुम्हारे अनुरक्त हैं" प्रजा समूहके ऐसे अनुरागके कारणसे उनका "राजा" नाम हुआ ॥ १-३

उस पृथु राजाके समयमें खेतीके निमित्त भूमि पर हल चलाना नहीं पडता था; पृथ्वी इच्छानुसार सबको अन्न आदि वस्तु प्रदान करती थी; सम्पूर्ण गऊ कामधेनु थीं; फलोंके हर एक दल में मधु होती थी॥ कुश और दूर्व सुवर्णमय और स्पर्शमें अत्यन्त कोमल होते थे, उन्हीं कुशोंके वस्त्रोंको सम्पूर्ण प्रजा पहनती और उस ही का बिछौना बनाकर शयन करती थी ॥ उस समयमें सम्पूर्ण फल अमृतके समान स्वादयुक्त और कोमल होते थे, उनही फलोंको सम्पूर्ण प्रजा आहार करती थी; कोई उस समय में भूखा नहीं रहता था ॥ (४-६)

उस समयमें सम्पूर्ण मनुष्य रोग रहित रहते थे, सम्पूर्ण कार्योंको सिद्ध करके अपने अपने जीवनका काल बिताते थे, और वृक्षोंके नीचे वा पर्वतोंकी कन्दराओंमें इच्छाके अनुसार वास करते थे ॥ राष्ट्र वा नगरके विभाग उस समयमें नहीं थे; सम्पूर्ण प्रजा इच्छाके अनुसार अपने जीवनके समयको व्यतीत करती थी। राजा पृथु जब समुद्रयात्रा करते थे,तब समुद्रका जल स्तंभित होजाता था; और पर्वतोंके मार्गसे गमन करने पर सम्पूर्ण पर्वत उन्हें मार्गप्रदान करते थे। उनके गमनके कालमें वृक्ष आदिकोंसे उनके रथकी ध्वजाको रुकावट वा कोई बाधा नहीं उपस्थित होती थी ॥ ७—९

तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः।
सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥ १० ॥
पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन्।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पिताऽसि नः॥११॥
देह्यस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान्वरान्।
यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्तीर्वर्त्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२ ॥
तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाऽऽजगवं धनुः।
शरांश्चाऽप्रतिमान्घोरांश्चिन्तयित्वाऽब्रवीन्महीम् ॥१३॥
एह्येहि वसुधे क्षिप्रं क्षरैभ्यः कांक्षितं पयः।
ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम् ॥ १४ ॥
वसुधोवाच— दुहितृत्वेन मां वीर सङ्कल्पयितुमर्हसि।
तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद्वशी ॥ १५ ॥
ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा।
तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुक्षवः ॥ १६ ॥
साऽतिष्ठद्वत्सला वत्सं दोग्धृपात्राणि चेच्छती।

हे सुञ्जय! एक समयमें राजा पृथु सुखसे बैठे थे; कि उस समयमें सम्पूर्ण वनस्पति,पर्वत,देवता,असुर,मनुष्य,सर्प, सप्त ऋषि, गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा और पितर लोग उसके समीपमें आकर यह वचन बोले, हे महाराज! तुम सम्राट् क्षत्रिय लोगोंके राजा रक्षक और पिता स्वरूप हो; इससे तुम हमलोगोंके स्वामी होकर हम सबके निमित्त ऐसा वर दान करो जिससे हमलोग सुखपूर्वक सदा-सर्वदा तृप्त होते रहें॥ (१०–१२)

राजा पृथु बोले, "ऐसा ही होगा" यह वचन कह कर चिन्ता पूर्वक अप्रतिम महा प्रचण्ड धनुष महा भयङ्कर सम्पूर्ण बाण और अस्त्र ग्रहण करके पृथ्वीसे बोले, हे वसुन्धरे! तुम आगमन करो, जलदी आगमन करो। तुम्हारा कल्याण होगा, तुम इन सम्पूर्ण प्राणियोंके निमित्त शीघ्र ही इनकी इच्छाके अनुसार दुग्ध दान करो; अनन्तर जिसको जो अन्न प्रदान करना उचित है, उसे मैं वही दूंगा॥ (१३–१४)

पृथ्वी बोली, हे महाबाहो! तुम मुझे कन्यारूपसे स्वीकार करो। राजा पृथु "ऐसा ही होवे" कहकर पृथ्वीके वचनको स्वीकार किया। तिसके अनन्तर वे सम्पूर्ण प्राणी पृथ्वीको दोहनेमें प्रवृत्त हुए। पहिले वनस्पतियोंने दोहने

वत्सोऽभूत्पुष्पितः शालः प्लक्षो दोग्धाऽभवत्तदा॥१७॥
छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम् ।
उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः ॥ १८ ॥
रत्नान्योषधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तथा ।
दोग्धा चाऽऽसीत्तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम् ॥१९॥
असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा ।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्राऽऽसीद्वत्सश्चाऽऽसीद्विरोचनः॥२०॥
कृषिं च सस्यं च नरा दुदुहुः पृथिवीतले ।
स्वायम्भुवो मनुर्वत्सस्तेषां दोग्धाऽभवत्पृथुः ॥ २१ ॥
अलाबुपात्रे च तथा विषं दुग्धा वसुन्धरा ।
धृतराष्ट्रोऽभवद्दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः ॥ २२ ॥
सप्तर्षिभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाऽक्लिष्टकर्मभिः ।
दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट्॥२३॥
अन्तर्धानं चाऽऽमपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट् ।
दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चाऽऽसीद्वृषध्वजः ॥ २४ ॥

की इच्छा प्रकाशित की। पृथ्वी बछडा, दूध दोहनेवाला और दूधके पात्रकी इच्छा करके स्थित हुई। तब पुष्पयुक्त शाल वृक्ष बछडा, पलाश वृक्ष दुग्ध दोहनेवाला और उदुम्बर वृक्ष दूधका पात्र हुआ और तोडनेसे जो अंखुवा बाहर होते हैं, वही दूध हुआ। (१५—१८)

पर्वत जब पृथ्वीको दोहनेमें प्रवृत्त हुए, तब उदयाचल बछडा, पर्वतोंमें श्रेष्ठ सुमेरु पर्वत दूध दोहनेवाला, रत्न और सम्पूर्ण औषधी दूध और पत्थरमय दूध दुहनेका पात्र हुआ। जब इन्द्रने दूध दोहा तब देवता बछडे और अमृत दूध हुआ। असुरोंने आमपात्रमें माया दोहन किया तब द्विमुर्द्धा असुर दूध दोहने वाला और विरोचन बछडा बने॥ (१८–२०)

मनुष्योंने कृषि और शस्य दोहन किया; उस समय पृथु दूध दोहनेवाले और स्वयंभू मनु बछडा बने ॥ नागोंने अलावू पात्रमें विष दोहन किया; उस समय धृतराष्ट्र नाग दूध दोहनेवाले और तक्षक नाग बछडा बने॥ अच्छे कर्मोंके करनेवाले सप्त ऋषियोंने ब्रह्म दोहन किया, उस समय बृहस्पति दूध दोहनेवाले छन्द दूधके पात्र और सोमराज बछडा बने ॥ (२१–२३)

पुण्यजनोंने पृथ्वीमें आम पात्रमें अन्तर्द्धान दोहन किया; उस समय वैश्रवण

पुण्यगन्धान्पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन्।
वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः ॥ २५ ॥
स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम्।
वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धाऽन्तकस्तदा ॥ २६ ॥
एवं निकायैस्तैर्दुग्धा पयोऽभीष्टं हि सा विराट्।
यैर्वर्त्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः ॥ २७ ॥
यज्ञैश्च विविधैरिष्ट्वा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्।
सन्तर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः ॥ २८ ॥
हैरण्यानकरोद्राजा ये केचित्पार्थिवा भुवि।
तान्ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्वमेधे महामखे ॥ २९ ॥
षष्टिनागसहस्राणि षष्टिनागशतानि च।
सौवर्णानकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान्ददौ ॥ ३० ॥
इमां च पृथिवीं सर्वां मणिरत्नविभूषिताम्।
सौवर्णीमकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ॥ ३१ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ३२ ॥

दूध दोहनेवाले और वृषध्वज बछडा बने। गन्धर्व और अप्सराओंने पद्मपात्रमें पुण्यगन्ध दोहन किया; उस समय विश्वरुचि [illegible] दोहनेवाले और चित्ररथ बछडा बने ॥ पितरोंने सुवर्णके पात्रमें स्वधा दोहन किया; उस समयमें प्राणियोंका नाश करनेवाले यमराज दोग्धा और वैवस्वत मनु बछडा बने ॥ (२४-२६)

महाराज! उन सम्पूर्ण प्राणियोंने जिन सम्पूर्ण पात्र और बछडोंसे पृथ्वीको दोहन किया था, उससे वे लोग आज पर्यन्त अपने जीवनका समय सुखसे भोग कर रहे हैं ॥ महाप्रतापी वेनपुत्र पृथुने अनेक प्रकारके यज्ञोंको समाप्त करके प्राणियोंको उनकी इच्छाके अनुसार वस्तु प्रदान करके सबको तृप्त किया था ॥ और जो कुछ वस्तु भूमिमें थी, वह सम्पूर्ण सुवर्ण भूषित करके ब्राह्मणोंको दान किया था ॥ उन्होंने छासठ हजार स्वर्ण नाग ब्राह्मणोंको दान किया और इस सम्पूर्ण पृथ्वीको भी सुवर्ण भूषित करके विप्रोंको प्रदान किया था। २७-३१

व्यास मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर! नारद मुनि राजा सृञ्जयसे इतनी कथा सुनाकर बोले, हे राजेन्द्र! राजा पृथु तुम्हारे पुत्र और तुमसे तपस्या, सत्य,

अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन्॥ ३३ ॥(२४२२)

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

नारद उवाच— रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः ।
जामदग्न्योऽप्यतियशा अवितृप्तो मरिष्यति ॥ १ ॥
यः स्मेमामनुपर्येति भूमिं कुर्वन्निमां सुखाम् ।
न चासीद्विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् ॥ २ ॥
यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाब्रुवन् ।
ततोऽवधीत्कार्त्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥ ३ ॥
क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः ।
तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाऽजयत् ॥ ४ ॥
ब्रह्मद्विषां चाथ तस्मिन्सहस्राणि चतुर्दश ।
पुनरन्यान्निजग्राह दन्तकूरं जघान ह ॥ ५ ॥
सहस्रं मुसलेनाहन्सहस्रमसिनावधीत् ।

दया और दान आदि विषयोंमें श्रेष्ठ और पुण्यात्मा थे; हे सृञ्जय ! जब ऐसे राजा की भी मृत्यु हुई है, तब यज्ञ और दक्षिणा रहित अपने पुत्रके निमित्त तुमको शोक करना उचित नहीं है ॥ (३२-३३)

द्रोणपर्वमें उनहत्तर अध्याय समाप्त । [२४२२]

द्रोणपर्वमें सत्तर अध्याय ।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय ! शूरवीर पुरुषोंके नमस्कार करने योग्य जमदग्नि ऋषिके पुत्र महातपस्वी अत्यन्त यशस्वी महावीर परशुरामभी मृत्युके कराल ग्रास में पतित होंगे॥ महात्मा परशुराम इस पृथ्वी को सुखी करते हुए उसमें आदि युगमें विहित धर्मकी प्रवृत्ति करते थे ॥ अपरम्पार उत्तम ऐश्वर्योंको पाकर भी उनके चित्तमें कोई विकार तथा चञ्चलता उपस्थित नहीं हुई । कार्तवीर्य अर्जुनके पुत्रोंने वत्स सहित परशुरामके पिताको पीडा दी थी, परशुरामने वृथा प्रलाप न कर युद्धभूमि में अकेले ही शत्रुओंसे अपराजित कार्त्तवीर्य अर्जुन का वध किया । (१—३)

महा प्रतापी परशुरामने कार्त्तवीर्य अर्जुनके अनुयायी चौसठ कोटी क्षत्रियोंको युद्धभूमिमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारा था ॥ इसके अतिरिक्त ब्राह्मणोंसे वैर करनेवाले चौदह हजार क्षत्रियोंका निग्रह किया और दन्तकूरका नाश किया। परशुरामने मूसलसे एक सहस्र, तलवारसे एक सहस्र और प्राससे एक

उद्बन्धनात्सहस्रं च सहस्रमुदके धृतम् ॥ ६ ॥
दन्तान्भंक्त्वा सहस्रस्य कर्णाशासा न्यकृन्तत ।
ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥ ७ ॥
शिष्टान्बध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च ।
गुणावतीमुत्तरेण खाण्डवाद्दक्षिणेन च ।
गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहयाः समरे हताः ॥ ८ ॥
सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते ।
पितुर्वधामर्षितेन जामदग्न्येन धीमता ॥ ९ ॥
निजघ्ने दशसाहस्रान्रामः परशुना तदा ।
नह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ॥ १० ॥
भृगो रामाऽभिधावेति यदाऽऽक्रन्दन्द्विजोत्तमाः ।
ततः काश्मीरदरदान्कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥ ११ ॥
अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च विदेहांस्ताम्रलिप्तकान् ।
रक्षोवाहान्वीतिहोत्रांस्त्रिगर्त्तान्मार्तिकावतान्॥ १२ ॥
शिबीनन्यांश्च राजन्यान्देशान्देशान्सहस्रशः ।

सहस्र तथा पानीमें डुबाकर एक सहस्र क्षत्रियोंका संहार किया था, तथा एक सहस्र क्षत्रियोंके दांत तोडकर उनके कान और नाक काट डाले थे॥ अनन्तर सात हजार वीर क्षत्रियोंसे तीखा धूम सेवन कराया था, और अन्य किसीको बांधडाला, किसीको मारा तथा किसीके मस्तकोंको फोडा था ॥ (४-८)

उसने गुणावतीके उत्तर और खाण्डवके दक्षिण ओर गिरिभागमें एक लाख हैहय योद्धाओंको युद्धमें मारा था॥ पिताके वधसे क्रुद्ध हुए बुद्धिमान् परशुरामके हाथसे हाथी घोडे रथ पैदल सेना सहित हैहयवंशीय वीर क्षत्रिय मरकर पृथ्वीमें सोगये । उन्होंने दश सहस्र क्षत्रियोंके प्रलाप वचनको सुनकर क्रुद्ध होके फरसेसे उनके शिर काटडाले॥ (८-१०)

ब्राह्मण लोग काश्मीर आदि देशोंके क्षत्रियोंसे पीडित होकर "हे भृगुनन्दन! हे परशुराम ! तुम शीघ्र हम लोगोंकी रक्षाके निमित्त आगमन करो ।" ऐसे ही वचन कहते हुए रोदन करने लगे। प्रबल प्रतापी परशुरामने काश्मीर, दरद, कुन्ति, क्षुद्रक, मालव, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, विदेह, ताम्रलिप्तक, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त्त, मार्तिकावत और शिबि आदि देशों तथा दूसरे सम्पूर्ण देशोंके युद्धमें इकट्ठे हुए सहस्रों, लाखों, तथा करोडों

निजघान शितैर्बाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १३ ॥
कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः ।
इन्द्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥ १४ ॥
रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च ।
सर्वानष्टादश द्वीपान्वशमानीय भार्गवः ॥ १५ ॥
इजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनिर्मिताम् ॥ १६ ॥
सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम् ।
ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णां च महीमिमाम् ॥ १७ ॥
रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः ।
ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान्हेमभूषणान् ॥ १८ ॥
निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम् ।
कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥ १९ ॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २० ॥
सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः ।

क्षत्रियोंको अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे वध करके पृथ्वीमें सुला दिया। ११-१३

भृगुनन्दन परशुरामने इन्द्रगोप कीट के समान क्षत्रियोंके रुधिरसे सम्पूर्ण पृथ्वीको लाल वर्ण कर दिया और उन वीर क्षत्रियोंके रुधिरसे पांच तालावोंको परिपूर्ण कर दिया; फिर अठारहों द्वीपोंको वशीभूत करके अपरम्पार दक्षिणाके सहित एक सौ पुण्यजनक यज्ञोंको समाप्त किया। इस ही यज्ञमें महर्षि कश्यपको उत्तम भांतिसे सुवर्णकी बनी हुई सैकडों सहस्रों मणियोंसे खचित, सैकडों ध्वजा पताकासे शोभित रत्न-जटित मालाओंसे युक्त अष्टनल परिमित सुन्दर वेदी ग्राम, पशु और वनपशुओं से पूरित उस सम्पूर्ण पृथ्वी तथा सुवर्ण भूषित लाखों हाथियोंको परशुरामने दान किया था॥ (१४-१८)

महात्मा परशुरामने पृथ्वीको दुष्टोंसे रहित और साधु तथा श्रेष्ठ पुरुषोंसे परिपूर्ण करके अश्वमेध महायज्ञमें कश्यप मुनिको दान किया था। महावीर परशुराम ने इक्कीस वार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करके एक सौ यज्ञोंको समाप्त किया और ब्राह्मणोंको अपरम्पार दक्षिणा प्रदान की थी ॥ मरीचिपुत्र कश्यप

रामं प्रोवाच निर्गच्छ वसुधातो ममाऽऽज्ञया ॥ २१ ॥
स कश्यपस्य वचनात्प्रोत्सार्य सरितां पतिम् ।
इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन्ब्राह्मणशासनम् ॥ २२ ॥
अध्यावसद्गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ।
एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्तिवर्धनः ॥ २३ ॥
जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः ।
त्वया चतुर्भद्रतरः पुण्यात्पुण्यतरस्तव ॥ २४ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः ।
मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ॥ २५ ॥[२४४७]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वण्यभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

व्यास उवाच— पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजकम् ।
अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत्स सृञ्जयः ॥ १ ॥

इस सप्त द्वीपसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीको परशुरामसे पाकर उनसे यह वचन बोले, तुम मेरी आज्ञाके अनुसार इस पृथ्वीपर से पृथक् चले जाओ ॥ (१९—२१)

वह योद्धाओंमें श्रेष्ठ परशुराम ब्राह्मण शासनको मानकर कश्यप मुनिके वचन के अनुसार जलनिधि समुद्रमें अपने बाणोंसे मार्ग बनाकर उसी मार्गसे गमन करते हुए महेन्द्र पर्वतपर जाकर निवास करने लगे ॥ जमदग्नि पुत्र परशुराम इसी प्रकारसे भृगु कुलके कीर्तिके बढानेवाले अत्यन्त यशस्वी, महातेजस्वी और सैकडों तथा अनेक गुणोंसे युक्त होकर भी पर लोक गमन करेंगे ॥ (२२–२४

व्यासमुनि बोले, हे युधिष्ठिर ! इतनी कथा सुना कर नारदमुनि राजा सृञ्जयसे बोले, परशुराम तुम्हारे पुत्र और तुमसे भी दान सहित वित्त, क्षमायुक्त पराक्रम, गर्व रहित ज्ञान और आसक्ति रहित योग, इन चारों उत्तम विषयोंमें श्रेष्ठ और पुण्यात्मा हैं। हे सृञ्जय ! जब वह भी मृत्युके मुखमें पतित होंगे,तब तुम पुत्रके निमित्त शोक मत करो, क्योंकि सब प्राणी कालके वशमें होकर अवश्य परलोकमें गमन करेंगे ॥ (२४–२५) [२४४७]

द्रोणपर्वमें सत्तर अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें इकत्तर अध्याय ।

व्यासमुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! राजा सृञ्जय देवऋषि नारदके मुखसे पुण्यजनक और आयुके बढानेवाले इन सोलह राजाओंके उत्तम उपाख्यानों को सुनकर कुछ भी नहीं बोले,

तमब्रवीत्तथाऽऽसीनं नारदो भगवानृषिः ।
श्रुतं कीर्त्तयतो मह्यं गृहीतं ते महाद्युते ॥ २ ॥
आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव ।
स एवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा ॥ ३ ॥
एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यानमुत्तमम् ।
राजर्षीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम् ॥ ४ ॥
विस्मयेन हृते शोके तमसीवाऽर्कतेजसा ।
विपाप्माऽस्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम्॥ ५ ॥
नारद उवाच— दिष्ट्याऽपहृतशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि ।
तत्तत्प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम् ॥ ६ ॥
सृञ्जय उवाच— एतेनैव प्रतीतोऽहं प्रसन्नो यद्भवान्मम ।
प्रसन्नो यस्य भगवान्न तस्याऽस्तीह दुर्लभम् ॥ ७ ॥

यह चुपचाप बैठे ही रहे ॥ भगवान् नारदऋषिने राजा सृञ्जयको मौन व्रत-धारी तथा चुपचाप आसनके ऊपर बैठे हुए देखकर यह वचन कहा, हे महा-तेजस्वी सृञ्जय ! मैंने जो इन उपाख्या-नोंको तुम्हारे समीपमें वर्णन किया है; इन सम्पूर्ण विषयोंको सुनकर तुमने हृदयमें धारण किया है न ? या शूद्री-पति ब्राह्मणमें श्राद्धकी भांति मेरे वचन निष्फल होगये ? (१–२)

राजा सृञ्जयने नारदमुनिके ऐसे वचनोंको सुनके हाथ जोडके उत्तर दि-या, कि हे भगवन् ! यज्ञ करने वाले तथा अनेक प्रकारकी दक्षिणा देनेवाले पुराने राज ऋषियों के इन उत्तम उपाख्यानोंको सुनकर मैं अत्यन्तही आनन्दित हुआ हूं ॥ जैसे सूर्यके उदय होने पर अन्धकार का नाश होजाता है, वैसेही मेरे चित्तका सम्पूर्ण शोक और दुःखका नाश होगया है, मैं पापरहित और क्लेशशून्य हुआ हूं; इस समयमें मुझको कौनसा कार्य करना होगा–आप उसके निमित्त आज्ञा कीजिये । (३–५)

नारद मुनि बोले, तुम प्रारब्धहीसे शोक रहित हुए हो, इस समय तुम जो वर पानेकी अभिलाष करोगे, मैं तुम्हे वही प्रदान करूंगा; इसमें कुछ भी सन्देह मत करना; क्यों कि मैं मिथ्यावादी नहीं हूं ॥ (६)

सृञ्जय बोले, हे भगवन् ! तुम जो मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हो, इसहीसे मैं सन्तुष्ट हुआ हूं; जिसके ऊपर आप प्रसन्न हुए हैं, उसे इस संसार में कोई वस्तु भी दुर्लभ नहीं है ॥ (७)

नारद उवाच— मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा।
उद्धृत्य नरकात्कष्टात्पशुवत्प्रोक्षितं यथा ॥ ८ ॥

व्यास उवाच— प्रादुरासीत्ततः पुत्रः सृञ्जयस्याऽद्भुतप्रभः।
प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ॥ ९ ॥
ततः सङ्गम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः।
ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदाक्षिणैः ॥ १० ॥
अकृतार्थश्च भीतश्च न च साङ्ग्रामिको हतः।
अयज्वा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ जीवितः पुनः ॥ ११ ॥
शूरो वीरः कृतार्थश्च प्रताप्याऽरीन्सहस्रशः।
अभिमन्युर्गतो वीरः पृतनाभिमुखो हतः ॥ १२ ॥
ब्रह्मचर्येण यान्कांश्चित्प्रज्ञया च श्रुतेन च।
इष्टैश्च क्रतुभिर्यान्ति तांस्ते पुत्रोऽक्षयान्गतः ॥ १३ ॥
विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः स्वर्गमीहन्ति नित्यशः।

नारदमुनि बोले, हे सृञ्जय! तुम्हारे पुत्रको चोरोंने निरर्थक ही पशुके समान मार डाला है, उससे वह कष्टदायक नरकमें गया है, अब मैं तुम्हारे पुत्रको नरकसे निकाल कर फिर तुम्हें प्रदान करता हूं॥ (८)

व्यासमुनि बोले, हे धर्मराज युधिष्ठिर! तिसके अनन्तर देवऋषि नारदने प्रसन्न होकर कुबेरके समान उनके सुन्दर पुत्रको नरकसे बाहर करके राजा सृञ्जय को समर्पण किया॥ उस समय में वह प्रकाशमान बालक अपने पिताके समीपमें प्रकट हुआ॥ राजा सृञ्जय पुत्र पाकर प्रसन्न हुए, अनन्तर बहुतेरी दक्षिणा प्रदान करते हुए पुण्यजनक नाना प्रकारके यज्ञोंको पूर्ण किया॥ (९-१०)

हे राजन् युधिष्ठिर! राजा सृञ्जयका पुत्र अकृतार्थ, यज्ञ दक्षिणा रहित तथा भयभीत था; और युद्धभूमिमें भी नहीं मरा था, इस ही निमित्त वह फिर जीवित हुआ॥ परन्तु तुम्हारा भ्रातृपुत्र अभिमन्यु शूरवीर और कृतार्थ था॥ वीरताको प्रकाशित करके अपने अस्त्र शस्त्रोंके प्रतापसे सहस्रों वीर योद्धाओंका नाश करके सेनाके बीच युद्ध करते हुए रणभूमिमें मारा गया है, इससे ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन और यज्ञके कर्मोंसे पुण्यात्मा पुरुष अक्षय स्वर्ग लोकमें गमन करते हैं, अभिमन्युने भी उस ही प्रकाशमान् लोकमें गमन किया है॥ विद्वान् पुरुष नित्य ही पुण्यकर्मोंसे स्वर्ग प्राप्त

न तु स्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः ॥ १४ ॥
तस्मात्स्वर्गगतं पुत्रमर्जुनस्य हतं रणे ।
न चेहाऽऽनयितुं शक्यं किञ्चिदप्राप्यमीहितम् ॥ १५ ॥
यां योगिनो ध्यानविविक्तदर्शनाः प्रयान्ति यां चोत्तमयज्विनो जनाः ।
तपोभिरिद्धैरनुयान्ति यां तथा तामक्षयां ते तनयो गतो गतिम् ॥ १६ ॥
अन्तात्पुनर्भावगतो विराजते राजेव वीरो ह्यमृतात्मरश्मिभिः ।
तामैन्दवीमात्मतनुं द्विजोचितां गतोऽभिमन्युर्न स शोकमर्हति ॥ १७ ॥
एवं ज्ञात्वा स्थिरो भूत्वा जह्यरीन्धैर्यमाप्नुहि ।
जीवन्त एव नः शोच्या न तु स्वर्गगतोऽनघ ॥ १८ ॥
शोचतो हि महाराज अघमेवाऽभिवर्धते ।
तस्माच्छोकं परित्यज्य श्रेयसे प्रयतेद् बुधः ॥ १९ ॥

करनेकी इच्छा करते हैं, परन्तु स्वर्ग लोकवासी पुरुष इसलोकमें आनेके निमित्त अभिलाष नहीं करते; इससे युद्धमें मरे और स्वर्ग प्राप्त हुए अर्जुन पुत्र अभिमन्युको इस मर्त्य लोक में अल्प तथा क्षणिक भोग तथा सुखके निमित्त स्वर्ग लोकसे कोई पुरुष नहीं ला सकता ॥ (११-१५)

ध्यान करनेवाले योगी पुरुष जिस उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं; उत्तम यज्ञोंके करनेवाले पुण्यात्मा पुरुष जिन लोकोंको जाते हैं, तथा व्रत और तपस्या करनेवाले महात्मा पुरुष जिन प्रकाशमान लोगोंमें गमन करते हैं, तुम्हारा भ्रातृपुत्र अभिमन्यु उस ही अक्षय लोगमें पहुंचा है॥ महावीर अभिमन्यु क्षत्रियोंके धर्मके अनुसार उत्पन्न होकर अन्त समयमें वीरोंके धर्मके अनुसार युद्धमें मरके फिर चन्द्रसम्बन्धीय स्वाभाविक शरीर पाया है और अमृतरूपी आत्म - सुख पाकर चन्द्रमाके समान स्वर्ग लोकमें विराजमान है, इससे उसके निमित्त शोक करना उचित नहीं है ॥ (१६-१७)

हे पापरहित धर्मराज युधिष्ठिर ! तुम ऐसा ही समझ कर धीरज धारण करो और फिर शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होजाओ। हम लोगोंको जीते हुए पुरुषोंके निमित्त ही शोक करना उचित है, स्वर्गमें पहुंचे हुए पुरुषोंके निमित्त किसी प्रकारसे भी शोक करना उचित नहीं है, महाराज ! शोक चिन्ता करनेसे वह और भी बढती ही रहती है, इस ही निमित्त ज्ञानी पुरुष, शोक चिन्ता तथा हर्ष और विषाद त्याग कर अपने कल्याणके निमित्त यत्न करते हैं। पण्डित लोग इन सब बातोंको भली

प्रहर्षमभिमानं च सुखप्राप्तिं च चिन्तयन् ।
एतद् बुध्वा बुधाः शोकं न शोकः शोक उच्यते ॥२०॥
एवं विद्वन्समुत्तिष्ठ प्रयतो भव मा शुचः ।
श्रुतस्ते सम्भवो मृत्योस्तपांस्यनुपमानि च ॥ २१ ॥
सर्वभूतसमत्वं च चञ्चलाश्च विभूतयः ।
सृञ्जयस्य तु तं पुत्रं मृतं सञ्जीवितं पुनः ॥ २२ ॥
एवं विद्वन्महाराज मा शुचः साधयाम्यहम् ।
एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ २३ ॥
वागीशाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे ।
गते मतिमतां श्रेष्ठे समाश्वास्य युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥
पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमौजसाम् ।
न्यायाधिगतवित्तानां तां श्रुत्वा यज्ञसम्पदम् ॥ २५ ॥
सम्पूज्य मनसा विद्वान्विशोकोऽभूद्युधिष्ठिरः ।
पुनश्चाऽचिन्तयद्दीनः किंस्विद्वक्ष्ये धनञ्जयम् ॥२६॥ (२४७३)

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ समाप्तमभिमन्युवधपर्व ।

भांतिसे जानकर मरे हुए पुरुषोंके निमित्त शोक नहीं करते; चिन्ता करने ही से शोक बढ़ता है, नहीं तो शोक क्या कर सकता है ? तुम ऐसा ही समझके सावधान होकर उठके खड़े होजाओ शोक मत करो। (१८–१९)

मृत्युकी उत्पत्ति, अत्यन्त श्रेष्ठ तपस्या, सब प्राणियोंमें समान दृष्टि, संसारकी सम्पूर्ण वस्तुओंको नश्वर और सृञ्जयका मरा हुआ पुत्र जिस कारणसे फिर जीवित हुआ था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुमने सुना है, हे राजन् युधिष्ठिर ! इससे तुम यह सम्पूर्ण विषय जानके अब शोक मत करो, मैं अपने श्रेष्ठ कार्यके साधन करनेके निमित्त तुम्हारे समीपसे विदा होता हूं। ऐसा कहकर भगवान् वेदव्यास अन्तर्द्धान होगये ॥ (२१–२३)

हे राजेन्द्र ! मेघरहित आकाशके समान शरीरवाले बुद्धिमान् भगवान् वेदव्यासने जब युधिष्ठिरको धीरज देकर वहांसे गमन किया, तब राजा युधिष्ठिर इन्द्रके समान तेजस्वी न्यायसे उपार्जित वित्तसे युक्त, पुराने राजसिंहों के इस प्रकार यज्ञोंके वृत्तान्त सुनकर अपने मन ही मन उन लोगोंकी प्रशंसा करके

४ प्रतिज्ञापर्व ।

सञ्जय उवाच— तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये ।
आदित्येऽस्तं गते श्रीमान्सन्ध्याकाल उपस्थिते ॥ १ ॥
व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ ।
हत्वा संशप्तकव्रातान्दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः ॥ २ ॥
प्रायात्स शिबिरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम् ।
गच्छन्नेव च गोविन्दं साश्रुकण्ठोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥
किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक्यं सज्जति केशव ।
स्यन्दन्ति चाऽप्यनिष्टानि गात्रं सीदति चाऽच्युत ॥४॥
अनिष्टं चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापसर्पति ।
भुवि ये दिक्षु चाऽप्युग्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम् ॥५॥
बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्व एवाऽघशंसिनः ।
अपि स्वस्ति भवेद्राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम ॥ ६ ॥

शोक रहित हुए; और फिर कातर होके यह चिन्ता करने लगे, कि मैं अर्जुनसे क्या कहूंगा? (२३—२६) [२४७३]

द्रोणपर्वमें इकत्तर अध्याय और अभिमन्युवधपर्व समाप्त ।

द्रोणपर्वमें बाहत्तर अध्याय और प्रतिज्ञापर्व ।

सञ्जय बोले, हे भारत ! महाभयङ्कर युद्धमें प्राणियोंका नाश होने पर उस दिन युद्धसे सब योद्धा लोग निवृत्त हुए । सूर्यके अस्त होने पर सन्ध्याकाल उपस्थित हुआ; सम्पूर्ण सेना युद्धभूमिसे अपने शिबिरों (डेरों) पर गई । उस ही सन्ध्याके समयमें कपिध्वजावाले प्रतापी अर्जुनने अपने दिव्य अस्त्रोंसे संशप्तक वीरोंका वध करके जयसे युक्त रथ पर कृष्णके सहित चढके अपने शिबिरकी ओर जाने लगे; और शिबिरके समीप पहुंचकर आंखोंमें आंसू भर कर कृष्णसे यह वचन बोले ॥ (१-३)

हे केशव ! मेरा चित्त व्याकुल होरहा है, मेरे मुंहसे वचन बाहर नहीं निकलता है, अशुभ सूचक बायां अङ्ग फडक रहा है, शरीर सुस्त हुआ जाता है; मेरे चित्तमें अनिष्टकी शंका होरही है; यह शङ्का किसी प्रकारसे भी निवृत्त नहीं होती है; पृथ्वी, आकाश तथा चारों ओरसे भयङ्कर उत्पात प्रकट होके मुझे भयभीत कर रहे हैं । मैं अनेक प्रकार के अशुभसूचक उत्पातोंको देख रहा हूं; मेरे ज्येष्ठ भ्राता पूजाके योग्य महाराज युधिष्ठिर और उनके अनुयायियों-

वासुदेव उवाच- व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति।
मा शुचः किञ्चिदेवाऽन्यत्तत्राऽनिष्टं भविष्यति ॥ ७ ॥
सञ्जय उवाच— ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ ८ ॥
ततः स्वशिबिरं प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषम्।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥
ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा।
बीभत्सुरब्रवीत्कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १० ॥
नदन्ति नाऽद्य तूर्याणि मङ्गल्यानि जनार्दन।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाऽडम्बरैः सह ॥ ११ ॥
वीणा नैवाऽद्य वाद्यन्ते शम्या तालस्वनैः सह।
मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च॥ १२ ॥
स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममाऽनीकेषु बन्दिनः।
योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते ह्यधोमुखाः ॥१३ ॥

का कल्याण तो है ? (४-६)

श्रीकृष्ण बोले, हे अर्जुन ! अवश्य तुम्हारे भाई और उनके अनुयायी राजाओंके पक्षमें कुशल होवेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, तौभी कुछ थोडा अनिष्ट होवेगा; उसके निमित्त तुम शोक मत करो। (७)

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! तिसके अनन्तर वे दोनों वीर सन्ध्योपासन करके फिर रथपर चढे और उस दिनके वीरोंकी मृत्युके विषयके युद्धवृत्तान्त वर्णन करते हुए शिविरकी ओर जाने लगे। संग्राम भूमिमें कठिन कर्मोंको करके वे दोनों महात्मा अपने शिविर पर पहुंचे॥ उन दोनों पुरुषसिंहोंने देखा, शिविर आनन्दहीन और शोभासे रहित हो रहा है। अनन्तर शत्रुनाशन अर्जुन प्रकाश रहित शिविरको देखकर घबडाके कृष्णसे बोले ॥ (८-१०)

हे जनार्दन ! आज मङ्गलसूचक बाजोंका शब्द नहीं सुनाई पडता है। तथा शङ्ख नगाडे, वीरोंकी करताली और वीणा आदि बाजोंके सहित कुछ भी शब्द नहीं सुनाई पडता है, किसी सेनाके बीचमें बन्दीजन मङ्गलसूचक गीत और स्तुति पाठ नहीं करते हैं। वीर योद्धा मुझे देखकर पहिले जिस प्रकारसे कार्य करते थे, वह आज मुझे देखकर कुछभी वचन नहीं बोलते हैं; मुझसे कोई पुरुष वार्तालाप भी नहीं करते हैं; बल्कि

कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाऽभिवदन्ति माम् ।
अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ॥ १४ ॥
नहि शुद्ध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम् ।
अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद ॥ १५ ॥
सर्वेषां चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाऽच्युत ।
न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह ।
रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव ॥ १६ ॥
सञ्जय उवाच— एवं सङ्कथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिविरं स्वकम् ।
ददृशाते भृशास्वस्थान्पाण्डवान्नष्टचेतसः ॥ १७ ॥
दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः ।
अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥
मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते ।
न चाऽभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥ १९ ॥
मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः ।
न च वस्तस्य भेत्ताऽस्ति विना सौभद्रमर्भकम् ॥ २० ॥

नीचे शिर झुकाकर मेरे समीपसे हटे जाते हैं॥ हे भारत! मेरे भाइयोंके विषय में कुछ अमङ्गल घटना तो नहीं हुई ?(११–१४)

अपने अनुयायी पुरुषोंको व्याकुल देखकर मेरा चित्त तो शान्त नहीं होता है । द्रुपद विराट तथा मेरी सेनाके दूसरे महारथ योद्धाओंमेंसे किसीकी प्राणहानि तो नहीं हुई है ? हे आनन्द कन्द कृष्ण ! और दिनों जब मैं रथसे उतरता था तब अभिमन्यु अपने भाइयोंके सहित प्रसन्न चित्तसे हंसते हुए मेरे समीपमें आता था, परन्तु वह आज मेरे समीपमें क्यों नहीं आता है ? (१५–१६)

सञ्जय बोले, इसी प्रकारसे बातचीत करते हुए उन दोनों पुरुषसिंहोंने शिबिरके भीतर प्रवेश करके देखा, कि पाण्डव लोग अत्यन्त दुःखित और कातर होरहे हैं ॥ कपिध्वजवाले अर्जुनने भ्राता पुत्र तथा भ्रातृपुत्रोंको अत्यन्त दुःखित देखा और अभिमन्युको न देखकर खिन्न होकर यह वचन कहने लगे- मैं तुम लोगोंके मुख वर्णको अप्रसन्न देखता हूं, तुम लोग जैसे दूसरे दिन मुझे आनन्दित करते थे, वैसा आज नहीं करते हो; और अभिमन्युको भी मैं आज नहीं देखता हूं ॥ (१७–१९)

मैंने सुना था; कि इधर द्रोणाचार्यने

न चोपदिष्टस्तस्याऽऽसीन्मयाऽनीकाद्विनिर्गमः।
कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः ॥ २१ ॥
भित्त्वाऽनीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि।
कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा ॥ २२ ॥
लोहिताक्षं महाबाहुं जातं सिंहमिवाऽद्रिषु।
उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २३ ॥
सुकुमारं महेष्वासं वासवस्याऽऽत्मजात्मजम्।
सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २४ ॥
सुभद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च।
अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽवधीत्कालमोहितः॥ २५ ॥
सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महात्मनः।
विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः ॥ २६ ॥
वार्ष्णेयीदयितं शूरं मया सततलालितम्।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥ २७ ॥
मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम्।

चक्रव्यूह बनाया था, उस बालकके सिवा और किसीकी भी सामर्थ्य नहीं थी जो उस चक्रव्यूहको भेद करे। मैंने उसे चक्रव्यूहको भेद करके उसके बीच प्रवेश करनेका उपदेश दिया था; परन्तु उस व्यूहसे निकलनेकी शिक्षा मैंने नहीं दी थी। तुम लोगोंने तो उस बालकको शत्रुओंकी सेनाके चक्रव्यूहके बीच प्रवेश नहीं कराया था? वह महाधनुर्द्धर युद्धभूमिमें अपरम्पार शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करके मारा तो नहीं गया? २०-२२

सिंहके समान पराक्रमी कमलनेत्रवाला महाबाहु अभिमन्यु युद्धमें किस प्रकारसे मारा गया है, वह सब वृत्तान्त तुमलोग मेरे समीपमें वर्णन करो॥ मेरा अत्यन्त प्यारा महाधनुर्द्धर देवराज इन्द्र का पौत्र सुकुमार अभिमन्यु युद्धमें कैसा मारा गया है, वह मुझसे कहो॥ माता कुन्तीदेवी, सुभद्रा, द्रौपदी और कृष्ण इन सबका सदा प्यारा उस अभिमन्युको कालप्रेरित होकर किसने युद्धभूमिमें मारा है? पराक्रम शस्त्र और अस्त्रके ज्ञान तथा महात्म्यमें यदुकुलभूषण कृष्णके समान प्रतापी अभिमन्यु किस प्रकारसे युद्धभूमि में मारा गया? (२३-२६)

जिसका मैंने नित्य प्रेमसे पालन किया था, उस परमप्रिय सुभद्रापुत्र अभिमन्यु को यदि मैं न देखूंगा, तो प्राणत्याग

मत्तद्विरदविक्रान्तं सिंहपोतमिवोद्धतम् ॥ २८ ॥
स्मिताभिभाषिणं दान्तं गुरुवाक्यकरं सदा ।
बाल्येऽप्यतुलकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम् ॥ २९ ॥
महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम् ।
भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम् ॥ ३० ॥
कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम् ।
युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतां भयवर्धनम् ॥ ३१ ॥
स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितॄणां जयगृद्धिनम् ।
न च पूर्वं प्रहर्त्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम् ॥ ३२ ॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।
रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम् ॥ ३३ ॥
मयाऽध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम् ।
प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं केशवस्य ममैव च ॥ ३४ ॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।

करूंगा॥ जिसके श्याम वर्ण अत्यन्त कोमल और घंघर वारे केश थे, जिसके नेत्र हरिणके किशोर बालकके समान सुन्दर थे, जिसका पराक्रम मतवारे हाथीके समान था। जिसकी गति सिंहके बच्चेके समान थी, जिसके वचन हास्यमिश्रित थे, जो बालक अवस्थामें भी युवा पुरुषोंके समान आचरण प्रकाशित करता था, और जिसने कभी गुरुके वचनोंको अतिक्रम नहीं किया, जो कभी अप्रिय वचनोंका प्रयोग नहीं करता था, नीच पुरुषोंका अनुगमन नहीं करता था, जो युद्धमें कभी पराजित नहीं हुआ था, वरन युद्धमें सदा जयसे युक्त ही होता था, जो युद्ध में शत्रुओं के ऊपर पहिले शस्त्र-प्रहार नहीं करता था;जो निर्भय होकर युद्ध करता था;जो शान्त,अभिमान रहित,महाउत्साही, महाबाहु, बड़े नेत्रवाला, भक्तोंके ऊपर कृपा करने वाला,जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, ज्ञानसे युक्त, सब शस्त्रोंको जानने वाला, शत्रुओंके शोकको बढानेवाला, पिता और पितृव्योंके विजयकी इच्छा करनेवाला और अपने अनुयायियोंका प्यारा तथा उनके प्रियकार्यमें रत था,—यदि मैं अपने उस प्यारे पुत्र अभिमन्युको नहीं देखूंगा तो प्राण त्याग करूंगा॥ २७-३२

जो रथियोंके बीच महारथ कहके विख्यात था, जो प्रद्युम्न कृष्ण और मेरा प्रिय शिष्य था,जो युद्धके कार्योंमें मुझसे

सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम् ॥ ३५ ॥
अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
तन्त्रीस्वनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम् ॥ ३६ ॥
अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
रूपं चाऽप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम् ॥ ३७ ॥
अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
अभिवादनदक्षं तं पितॄणां वचने रतम् ॥ ३८ ॥
नाऽद्याऽहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः ॥ ३९ ॥
भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः ।
शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ॥ ४० ॥
तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः ।
यः पुरा बोध्यते सुप्तः सूतमागधबन्दिभिः ॥ ४१ ॥

भी श्रेष्ठ था, उस युवा पुत्र अभिमन्युको यदि न देखूंगा, तो मैं यमपुरीमें गमन करूंगा। उसके सुन्दर नासिका,ललाट, नेत्र भौ और सुन्दर ओठोंसे युक्त शोभायमान मुखको यदि मैं नहीं देखूंगा; तो मेरे चित्तमें कैसे शान्ति होसकेगी? उसके प्रसन्न मुखको यदि मैं नहीं देखूंगा और कोकिलके समान यदि उसके मीठे वचनोंको मैं नहीं सुनूंगा, तो मेरे चित्तमें शान्ति किस प्रकारसे होवेगी? (३३—३७)

उस शत्रु नाशन वीर अभिमन्युका देवदुर्लभ अत्यन्त सुन्दर रूप यदि आज मैं न देखूंगा तो मेरे हृदय में शान्ति कहां है? प्रणाम करने वाले और पिताओं के वचन में रत अपने उस प्यारे पुत्रको यदि आज नहीं देखूंगा, तो मेरा चित्त कैसे शान्त होवेगा? ॥ वीरोंमें अग्रणी सनाथ बालक सदा सर्वदा कोमल शय्या पर शयन करनेके योग्य होकर भी अनाथके समान पृथ्वीमें शयन किया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ जब वह मणि-रत्नोंसे भूषित उत्तम शय्यामें शयन करते थे,तब अनेक अच्छी परिचारिकाएं उनकी सेवामें लगी रहती थीं, इस समय क्षत विक्षत शरीरसे युक्त पृथ्वी पर शयन करनेसे अशुभ सूचक, सियार आदिक जन्तु उसके समीप अमांगलिक वाणी बोल रहेंगे? (३७-४१)

पहिले शयन करने पर सूत, मागध और बन्दीजन जिसे स्तुतिपाठ सुनाकर

बोधयन्त्यद्य तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः ।
छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद्वदनं शुभम् ॥ ४२ ॥
नूनमद्य रजोध्वस्तं रणरेणुः करिष्यति ।
हा पुत्र कावितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥ ४३ ॥
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात् ।
सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ॥ ४४ ॥
स्वभाभिर्मोहिता रम्या त्वयाऽत्यर्थं विराजते ।
नूनं वैवस्वतश्च त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम् ॥ ४५ ॥
शतक्रतुर्धनेशश्च प्राप्तमर्चन्त्यभीरुकम् ।
एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग्यथा ॥ ४६ ॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत ।
कच्चित्स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन ॥ ४७ ॥
स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः ।
स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥ ४८ ॥
असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान्ध्रुवम् ।

निद्रासे जागरित करते थे, इस समय भयानक पशु पक्षी अपने भयङ्कर शब्दोंसे उसे जागरित कर रहे हैं। जिसका सुन्दर मुखमण्डल छत्र छायाके योग्य था इस समय वही प्रसन्न मुख रणभूमिकी धूलिसे छिप गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हा पुत्र! जो तुमको देखकर सदा सर्वदा अप्रसन्न रहते थे, उन भाग्य-हीन पुरुषोंके संमुखमें तुम काल प्रेरित होकर बलपूर्वक यमपुरीमें पहुंचे हो; इस समयमें उत्तम कर्म करनेवाले पुरुषोंके आश्रय स्थल वह यमपुरीकी सभा तुम्हारे तेजसे अत्यन्त मनोहर और शोभायमान हुई है। वैवस्वत, वरुण, इन्द्र और कुबेर तुम्हें भयरहित प्रिय अतिथि पाकर तुम्हारी पूजा अर्चना कर रहे हैं। (४१—४६)

महाराज! जलमें नौका डूब जाने पर जैसे वणिक् लोग व्याकुल होकर विलाप करते हैं; उसी प्रकारसे अर्जुन बार बार विलाप करते हुए युधिष्ठिरसे पूछने लगे,—हे कुरुनन्दन! क्या अभिमन्यु महारथ पुरुषोंके सङ्ग युद्ध करके शत्रु सेनाको नाश करते हुए, युद्धभूमिसे स्वर्ग लोकमें गया है? मुझे यह निश्चय बोध होता है, कि उस पुरुषसिंहके सङ्ग बहुतेरे शूरवीर योद्धा इकट्ठे होकर जब युद्ध करने लगे होंगे, तब उसने सहाय-

पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्णद्रोणकृपादिभिः ॥ ४९ ॥
नानालिङ्गैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः।
इह मे स्यात्परित्राणं पितेति स पुनः पुनः ॥ ५० ॥
इत्येवं विलपन्मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः।
अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्रीयो माधवस्य च ॥ ५१ ॥
सुभद्रायां च संभूतो नैवं वक्तुमर्हति।
वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ ५२ ॥
अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते।
कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः ॥ ५३ ॥
स्वस्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपञ्शरान्।
यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याऽभिनन्दति ॥५४ ॥
उपायान्तं रिपून्हत्वा सोऽद्य मां किं न पश्यति।
नूनं स पातितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ॥ ५५ ॥
शोभयन्मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः।

रहित होकर मुझे स्मरण किया होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। (४६-४९)

मैं अनुमान करता हूं, द्रोणाचार्य, कर्ण और कृपाचार्य आदि निठुर योद्धाओंने जब नाना भांतिके तीक्ष्ण शस्त्रोंसे मेरे पुत्र अभिमन्युको पीडित किया था, उस समयमें उसने चेतरहितके समान होकर मेरा स्मरण किया होगा, कि "मेरे पिता जो इस स्थलमें होते, तो मेरी रक्षा करते" ऐसा वचन कहते हुए बार-बार विलाप करके वह निठुर पुरुषोंके अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरा होगा। नहीं नहीं! वह मेरा पुत्र, कृष्णका भानजा और सुभद्राके गर्भसे उत्पन्न हुआ था; वह कभी स्मरणकी अभिलाष करके ऐसे वचनोंके कहने योग्य नहीं था। मेरा हृदय मानो पत्थरसे बना हुवा अत्यन्त कठोर है, कि विशाल भुजासे युक्त कमल नेत्रवाले अपने पुत्रको विना देखे क्यों नहीं फट जाती है? (४९-५३)

उस महाधनुर्द्धर निठुर स्वभाववाले योद्धाओंने किस प्रकारसे मेरे पुत्र तथा कृष्णके भानजेके ऊपर मर्मभेदक बाणोंको चलाया था। पहिले जब मैं शत्रुओंका वध करके डेरेपर आता था तो वह निर्भयचित्त वाला मेरा पुत्र मुझे अभिनन्दित करता था, वह किस कारणसे आज मुझे देखनेके निमित्त आगमन नहीं करता है? उसने अवश्यही रुधिर

सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम् ॥ ५६ ॥
रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनंक्ष्यति ।
सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ॥ ५७ ॥
द्रौपदी चैव दुःखार्ते ते च वक्ष्यामि किं त्वहम् ।
वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ॥ ५८ ॥
सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम् ।
हृष्टानां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ॥ ५९ ॥
युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुतो वीरानुपालभन् ।
अशक्नुवन्तो बीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः ॥ ६० ॥
किं मोदध्वमधर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां बलम् ।
किं तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ॥ ६१ ॥
सिंहवन्नदथ प्रीताः शोककाल उपस्थिते ।
आगमिष्यति वः क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६२ ॥
अधर्मो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम् ।

पूरित शरीरसे युक्त होकर सूर्यके समान अपने तेजसे पृथ्वीको शोभित करके रणभूमिमें शयन किया है । मैं सुभद्राके निमित्त शोक करता हूं, वह युद्धमें अपराजित अपने पुत्रको मरा हुआ सुनकर दुःखित होके प्राणत्याग करेंगी; इसमें कुछ सन्देह नहीं है । सुभद्रा और द्रौपदी अभिमन्युको न देखकर मुझे क्या कहेंगी ? मैं ही भला उन दुःखसे त्रस्त हुई दुःखिताओंसे क्या कहूंगा ? और पुत्रवधूको मैं क्या कहकर समझाऊंगा ! (५३-५८)

मेरा हृदय अवश्यही पाषाणसे निर्मित है, क्योंकि शोक करनेवाली पुत्रवधूको रुदन करते हुए देखकर मेरा हृदय सहस्र टुकडे नहीं हो जावेगा। धार्तराष्ट्रोंके अभिमानयुक्त सिंहनादको मैंने सुना था और युयुत्सुने उन वीर पुरुषोंका जो तिरस्कार किया था, उसे भी श्रीकृष्णचन्द्रने सुना था । (५८—६०)

युयुत्सुने ऊंचे स्वरसे यह वचन कहकर उन योद्धाओंका तिरस्कार किया था, कि हे अधार्मिक महारथ पुरुषो ! तुम लोग अर्जुनको पराजित न करके बालकका वध करके क्या सिंहनाद कर रहे हो ? इसके बाद पाण्डवोंका पराक्रम देखोगे । इस समय युद्धभूमिमें कृष्णार्जुनके अप्रिय कार्य और उनके शोकको बढाकर तुम लोग प्रसन्न होकर क्या सिंहनाद कर रहे हो ? तुम लोगोंको इस

इति तान्परिभाषन्वै वैश्यापुत्रो महामतिः ॥ ६३ ॥
अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः ।
किमर्थमेतन्नाऽऽख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ॥ ६४ ॥
अधाक्षं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान्महारथान् ।
सञ्जय उवाच— पुत्रशोकार्दितं पार्थं ध्यायन्तं साश्रुलोचनम् ॥ ६५ ॥
निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।
मैवमित्यब्रवीत्कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥ ६६ ॥
सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥ ६७ ॥
एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
विहिता सर्वशास्त्रज्ञैर्गतिर्मतिमतां वर ॥ ६८ ॥
ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनाम् ।
गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ ६९ ॥
एतच्च सर्ववीराणां कांक्षितं भरतर्षभ ।

पाप कर्मका फल शीघ्रही मिलेगा॥ तुम लोगोंने जो इस अधर्म कर्मको किया है, इसका फल शीघ्र ही तुम लोगोंको भोग करना पडेगा । महा बुद्धिमान् वैश्यापुत्र युयुत्सु क्रोध और दुःखके सहित उन योद्धाओंकी निन्दा करते हुए अस्त्रशस्त्र त्यागकर रणभूमिसे पृथक् हुए थे । हे कृष्ण ! तुमने उस ही समय रणभूमिमें मुझसे यह वृत्तान्त क्यों नहीं कहा था; मैं [illegible] वृत्तान्तको जाननेसे ही उसी समय इन निठुर क्रूर महारथियोंको अपने बाणोंसे भस्म करदेता। (६१–६५)

सञ्जय बोले, महाराज ! अर्जुनको पुत्र शोकसे आर्त्त दुःखी, आंखोंमें आंसू भरे और अत्यन्त कातरचित्तसे चिन्ता करते देखकर श्रीकृष्णचन्द्र "ऐसा मत करो " ऐसी बात कह कर उनका हाथ पकडके यह वचन बोले, क्षत्रियोंके निमित्त युद्ध ही विशेष जीविका और धर्म है, इससे पराक्रमयुक्त युद्धसे पीछे न हटनेवाले सम्पूर्ण क्षत्रियोंका यही श्रेष्ठ मार्ग है। हे भारत ! धर्मशास्त्र जाननेवाले ऋषियोंने युद्धसे पीछे न हटनेवाले शूरवीर पुरुषोंकी ऐसी ही गतिको श्रेष्ठ कहके वर्णन किया है। युद्धसे पीछे न हटनेवाले पुरुषोंको युद्धभूमिमें मरना ही उत्तम है; इससे अभिमन्युने पुण्यात्मा पुरुषोंके पानेयोग्य प्रकाशमान लोकमें गमन किया है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ (६५-६९)

हे भरतर्षभ ! वीर लोग सदा यही

संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद ॥ ७० ॥
स च वीरान्रणे हत्वा राजपुत्रान्महाबलान् ।
वीरैराकांक्षितं मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे ॥ ७१ ॥
मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः ।
धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥ ७२ ॥
इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम ।
त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ ७३ ॥
एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वासय मानद ।
विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ७४ ॥
एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाऽद्भुतकर्मणा ।
ततोऽब्रवीत्तदा भ्रातृन्सर्वान्पार्थः सगद्गदान् ॥ ७५ ॥
स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः ।
अभिमन्युर्यथा वृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥ ७६ ॥
सनागस्यन्दनहयान्द्रक्ष्यध्वं निहतान्मया ।
संग्रामे सानुबन्धांस्तान्मम पुत्रस्य वैरिणः ॥ ७७ ॥

अभिलाष करते हैं, कि मैं युद्धभूमिमें मरूं वह वीर अभिमन्यु महाबली और पराक्रमी राजपुत्रों को रणभूमिमें संहार करके युद्ध करतेहुए वीरोंकी अभिलाषा के अनुसार मरकर स्वर्ग लोकमें गया है। हे पुरुषसिंह! पुराने ऋषि तथा धर्मशास्त्र बनानेवाले पण्डितोंने क्षत्रियों-के निमित्त युद्धमें मरने ही को सनातन धर्म कहके वर्णन किया है, इससे तुम शोक मत करो॥ हे भरतसत्तम! तुम्हारे शोक करनेसे ये तुम्हारे भ्राता सुहृद्-मित्र और सम्पूर्ण राजा लोग कातर हो रहे हैं;तुम इन लोगोंको धीरज प्रदान करो। जानने योग्य कुछ भी वस्तु तुमसे छिपी नहीं है, इससे तुम्हारे समान पुरुष शोक करनेके योग्य नहीं हैं॥ ७०-७४

अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णने जब अर्जुनको इस प्रकारसे धीरज धारण कराया, तब अर्जुन गद्गद होकर अपने भाइयोंसे यह वचन बोले,वह लम्बी भुजा-वाला विशाल स्कन्ध और बडे पुण्डरीक नेत्रवाला अभिमन्यु युद्धभूमिमें किस प्रकारसे मारा गया है, वह वृत्तान्त मैं सुननेकी इच्छा करता हूं॥ तुमलोग बतलाओ कि कौन कौनसे योद्धा मेरे पुत्रके वैरी हुए थे? रथ, हाथी, घोडे और अनुयायियोंके सहित उन लोगोंको युद्धभूमिमें तुम लोग मेरे शस्त्रोंसे मरे

कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम् ।
सौभद्रो निधनं गच्छेद्वज्रिणाऽपि समागतः ॥ ७८ ॥
यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान्रक्षणे मम ।
पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालान्मया गुप्तो भवेत्ततः ॥ ७९ ॥
कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः ॥ ८० ॥
अहो वः पौरुषं नाऽस्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः ।
यत्राऽभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः ॥ ८१ ॥
आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वै सुदुर्बलान् ।
युष्मानाज्ञाय निर्यांतो भीरूनकृतनिश्चयान् ॥ ८२ ॥
आहोस्विद्भूषणार्थाय वर्मशस्त्रायुधानि वः ।
वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम् ॥ ८३ ॥
एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान् ।

हुए देखोंगे ॥ अस्त्रशस्त्रोंका युद्ध जानने वाले तुम सब लोगोंके हाथमें शस्त्रधारण करके युद्धभूमिमें उपस्थित रहनेपर वह वज्रधारी इन्द्रके सङ्गमें यदि संग्राम करता, तो क्या उसकी मृत्यु होसकती थी ? (७५-७८)

यदि मैं पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंको अपने पुत्रकी रक्षा करनेमें असमर्थ समझता, तो स्वयं ही उसकी रक्षा करता ॥ तुम लोग ॥॥ पर चढके जब बाण वर्षा कर रहे थे, उस समयमें शत्रुओंने किस प्रकारसे तुम लोगोंको पराजित करके अभिमन्युका वध किया ? ओहो ! जिस स्थलमें तुम लोगोंके सम्मुखहीमें अभिमन्यु मारा गया है, तब मुझे यह निश्चय बोध हो रहा है, कि तुम लोगोंमें कुछ भी पुरुषार्थ और पराक्रम नहीं है ॥ (७९-८१)

तुम लोगोंकी निन्दा निरर्थक है, परन्तु मैं अपनी ही निन्दा करता हूं। क्योंकि तुम लोग डरपोक, कायर, अकृतनिश्चय और अत्यन्तही निर्बल हो; ऐसी अवस्थामें मैंने तुम लोगोंके ऊपर युद्धका भार अर्पण करके प्रस्थान किया था जब तुम लोक रणभूमि में मेरे पुत्रकी रक्षा नहीं कर सके, तब तुम लोगोंके शस्त्र, अस्त्र, कवच और सम्पूर्ण आयुध केवल देखने ही के लिये हैं, और तुम लोगों के बडे वचन केवल सभामें ही सुन पडते हैं ॥ (८२-८३)

प्रचण्ड गाण्डीव धनुष और तलवार धारण करने वाले अर्जुनने जिस समय

न स्माऽशक्यत बीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुम् ॥ ८४ ॥
तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा ॥ ८५ ॥
न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम् ।
अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात् ॥ ८६ ॥
सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोनुगौ ।
बहुमानात्प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः ॥ ८७ ॥
ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् ।
राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत् ॥ ८८ ॥ [२५६१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनकोपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

युधिष्ठिर उवाच— त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति ।
प्रयत्नमकरोत्तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम ॥ १ ॥
व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः ।
प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे ॥ २ ॥

खडे होकर ऐसा वचन कहा, उस समय उनकी ओर देखनेको भी कोई पुरुष समर्थ न हुए॥ वह पुत्रशोकसे अत्यन्त क्रुद्ध और दुःखित होकर बार बार लम्बी सांस लेते हुए यमराजके समान क्रुद्ध होगये। उस समयमें श्रीकृष्णचन्द्र तथा युधिष्ठिरको छोडके और कोई पुरुष उनसे कुछ बात चीत न करसके॥ श्रीकृ-ष्ण और राजा युधिष्ठिर दोनों ही उनके मनके भावको जानते थे, और अर्जुन इन दोनों महात्माओंको परम प्रिय समझते त-था उनका उचित संमान करते थे;इस हीसे दोनों पुरुषसिंह सब अवस्थामें उनसे बातचीत करनेमें समर्थ होते थे॥ अनन्तर राजा युधिष्ठिर पुत्रशोकसे अत्यन्त ही पीडित चित्त और क्रोधसे युक्त कमल नेत्र अर्जुनको सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाने लगे॥ (८४—८८) [२५६१]

द्रोणपर्वमें बाहत्तर अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें तिहत्तर अध्याय।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहो ! जब तुमने संशप्तक वीरोंके वध करनेके निमित्त यहांसे प्रस्थान किया, तब द्रो-णाचार्य मुझे ग्रहण करनेके निमित्त अत्यंत ही यत्न करने लगे॥ वह अपनी सेनाका व्यूह बनाके रणभूमिमें उपस्थित हुए, तब हम लोग भी अपनी रथसेनाका व्यूह बनाकर उन्हें निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए।

स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते ।
अस्मानभिजगामाऽऽशु पीडयन्निशितैः शरैः ॥ ३ ॥
ते पीड्यमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः ।
प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुं तत्कुत एव तु ॥ ४ ॥
वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम् ।
उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो ॥ ५ ॥
स तथा नोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान् ।
असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे ॥ ६ ॥
स तवाऽस्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः ।
प्राविशत्तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम् ॥ ७ ॥
ते नु याता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे ।
प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥ ८ ॥
ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात जयद्रथः ।
वरदानेन रुद्रस्य सर्वान्नः समवारयत ॥ ९ ॥

हम लोगोंकी सेनाके रथी और महारथी योद्धा लोग मेरी रक्षा करने लगे, और द्रोणाचार्यको भी युद्धसे निवारण करने लगे। परन्तु वह अपने तीक्ष्ण बाणोंसे हम लोगोंको अत्यन्त ही पीडित करने लगे ॥ (१-३)

वह हस्तलाघवके सहित बाणोंको चलाकर हम लोगोंको इस प्रकारसे पीडित करने लगे, कि हम लोग उनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उनकी सेनाके व्यूहकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हुए, व्यूह भेद करनेकी बात तो दूर है ॥ उस समय मैंने महाबली सुभद्राके पुत्र अभिमन्युसे कहा, हे पुत्र ! तुम शत्रुसेनाके व्यूहका भेद करो। " वह पराक्रमी बालक मेरी आज्ञासे सिंहके समान अकेले ही अच्छे अश्वके समान इस कठिन भारको उठानेके निमित्त तैयार हुआ। (४-६)

पराक्रमसे युक्त वह बालक तुम्हारे सिखाये हुए अस्त्रोंके बलसे इस प्रकार शत्रु सेनाके व्यूहमें प्रविष्ट हुआ, जैसे गरुड समुद्रमें प्रवेश किया करते हैं ॥ उस महावीरने जिस मार्गसे सेनाके बीच प्रवेश किया हम लोगोंने भी उसके अनुगामी बनकर उस ही मार्गसे व्यूहके बीच प्रवेश करनेकी इच्छा किया; परन्तु सिन्धुराजका पुत्र क्षुद्र अभिलाष करनेवाला जयद्रथ भगवान् रुद्रदेवके वर प्रभावसे हम सब लोगोंको निवारण करने लगा;

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च ।
कृतवर्मा च सौभद्रं षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ १० ॥
परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः ।
यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ॥ ११ ॥
ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् ।
संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाऽभ्ययोजयत् ॥ १२ ॥
स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम् ।
अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च ॥ १३ ॥
राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चाऽलक्षितान्बहून् ।
बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाऽऽजौ प्रयोज्य ह ॥ १४ ॥
ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।
एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ॥ १५ ॥
स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।
ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम् ॥ १६ ॥
हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद्भुवि ।

उससे हम लोग किसी प्रकारसे भी व्यूह के भीतर प्रवेश नहीं कर सके ॥ (७–९)

हे तात ! अनन्तर द्रोणाचार्य कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, कोशलराज बृहद्बल और कृतवर्मा,—इन छः महारथियोंने अभिमन्युको आक्रमण किया ॥ ये सब महारथी लोग चारों ओरसे उस बालकको घेरकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करने लगे, परन्तु वह अपनी शक्तिके अनुसार उन सब वीरोंके सङ्गमें युद्ध करताही रहा। अन्तमें उन सम्पूर्ण महारथियोंने उसको रथरहित कर दिया तब वह रथहीन होकर सब अस्त्र शस्त्रोंसे हीन हुआ, तब दुःशासनपुत्रने उस बालकका प्राण नाश किया ॥ १०-१२

उस परम धर्मात्मा अभिमन्युने सहस्रों मनुष्य रथी गजपति और घुडसवारोंका संहार किया। उसने आठ सहस्र रथी, नव सौ हाथी, दो हजार राजपुत्र और दूसरे पैदल चलनेवाले अगणित योद्धाओंको तथा राजा बृहद्बलको यमपुरीमें भेजकर अन्तमें युद्धभूमिमें मारा गया। वह पुरुषसिंह जो इस प्रकारसे स्वर्गमें गया है, यह हम लोगोंके शोककी आन्तिम सीमा हुई है ॥ (१३–१६)

अनन्तर अर्जुनने धर्मराजके वचनोंको सुनकर हा पुत्र ! हा पुत्र! कहके लम्बी

विषण्णवदनाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ १७ ॥
नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैक्षन्परस्परम् ।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्छितः ॥ १८ ॥
कम्पमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः ।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान्॥१९॥
उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत् ।
अर्जुन उवाच— सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ।
न चेद्वधभयाद्भीतो धार्तराष्ट्रान्प्रहास्यति ॥ २० ॥
न चास्मान्शरणं गच्छेत्कृष्णं वा पुरुषोत्तमम् ।
भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्॥ २१ ॥
धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम् ।
पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २२ ॥
रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योत्स्यन्ति केचन ।
अपि द्रोणकृपौ राजन्छादयिष्यामि ताञ्शरैः॥ २३ ॥
यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः ।

सांस छोड़ते हुए दुःखित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े। उस समय अर्जुनको कातर और चेतरहित होके पृथ्वीपर गिरते देखकर वहां पर खड़े हुए सम्पूर्ण योद्धा लोग उन्हें ग्रहण करके टकटक नेत्रसे देखने लगे। अनन्तर इन्द्रपुत्र अर्जुन थोड़ी देरके बाद सावधान होकर क्रोधसे मूर्च्छित और कांपते हुये शरीर बार बार लम्बी सांस छोड़ते तथा आखोंमें आंसू भरके उन्मत्तके समान इधर उधर देखते हुए यह वचन कहने लगे॥१६ २०

अर्जुन बोले, "मैं तुम लोगोंके समीप यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कल्ह मैं जयद्रथका वध करूंगा; परन्तु यदि वह युद्धसे भीत होके धृतराष्ट्रपुत्रोंको छोड़के उसके समीपसे भाग नहीं जावें, अथवा यदि वह देवकी नन्दन कृष्ण वा युधिष्ठिरकी शरणमें नहीं आवेगा; तो कल्ह मैं उस धृतराष्ट्रपुत्रोंके प्रिय करनेमें दक्ष, मेरे साथ द्वेष करनेवाले, मेरे पुत्रके मृत्युके कारण हुए पापी जयद्रथ का वध करूंगा। यदि कोई रणभूमिमें उसकी रक्षा करनेके निमित्त मेरे सङ्गमें युद्ध करेगा; ऐसा क्या यदि द्रोणाचार्य वा कृपाचार्य भी उसकी रक्षा करनेके निमित्त मेरे सङ्ग युद्ध करे, उन्हें भी तीक्ष्ण बाणोंसे छिपा दूंगा॥ (२०—२३)

हे पुरुष-श्रेष्ठ राजसिंहो ! यदि युद्ध

मा स्म पुण्यकृताँल्लोकान्प्राप्नुयां शूरसम्मतान् ॥ २४ ॥
ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृघातिनाम् ।
गुरुदारगतानां ये पिशुनानां च ये सदा ॥ २५ ॥
साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम् ।
ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम् ॥ २६ ॥
भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम् ।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि ॥ २७ ॥
पायसं वा यवान्नं वा शाकं कृसरमेव वा ।
संयावापूपमांसानि ये च लोका वृथाऽश्नताम् ॥ २८ ॥
तानह्नायाऽधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ।
वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशितं वा द्विजोत्तमम् ॥ २९ ॥
अवमन्यमानो यान्याति वृद्धान्साधून्गुरूंस्तथा ।
स्पृशतो ब्राह्मणं गां च पादेनाऽग्निं च या भवेत्॥३०॥
याऽप्सु श्लेष्मपुरीषं च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः ।
तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३१ ॥
नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः ।

भूमिमें मैं ऐसा कार्य नहीं करूं, तो मैं शूरवीरोंके मिलने योग्य उत्तम और पुण्यलोकोंमें गमन न कर सकूं ॥ मैं यदि जयद्रथका वध न करूं तो मातृहत्या करनेवाले, पितृघाती, गुरुकी स्त्रीसे कुकर्म करनेवाले, चुगुल, साधुओंके सङ्ग दुष्ट आचरण करनेवाले, निन्दक, विश्वास-घाती, पहिले विवाह करी हुई स्त्रीको प्राप्त करनेवाले, यशहीन, ब्रह्मघाती, गोहत्यारे और जो घृत, दुग्ध, मधु, उत्तम अन्न तथा शाक और मांस आदि वस्तुओंको विना देव और ब्राह्मणोंको समर्पण किये ही भोजन करते हैं, वे सम्पूर्ण पापी लोग जिन जिन लोगोंमें गमन करते हैं, मैं भी उन्हीं लोगोंमें गमन करूंगा । (२४–२९)

मैं यदि जयद्रथका प्राणनाश न करूं, तो वेद पढनेवाले और अत्यन्त प्रशंसा के योग्य उत्तम ब्राह्मण, बूढे, साधु और गुरुलोगोंके अपमान करनेवाले पुरुष जिन लोकोंमें गमन करते हैं, मैं भी उन ही लोकोंमें गमन करूंगा। चरणसे ब्राह्मण गौ अग्निको स्पर्श करनेवाले और जलमें श्लेष्म मूत्र मल त्याग करनेवाले पुरुषोंकी जो गति होती है, मुझे भी वही प्राप्त होवे॥ मैं यदि जयद्रथका वध न करूं, तो जो

उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ॥ ३२ ॥
आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिशंसिनाम् ।
भृत्यैः सन्दिश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ॥ ३३ ॥
असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्नताम् ।
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३४ ॥
संश्रितं चापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम् ।
न बिभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चाऽपकारिणम् ॥३५ ॥
अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च ।
अनर्हेभ्यश्च यो दद्याद्वृषलीपतये तथा ॥ ३६ ॥
मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः ।
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३७ ॥
भुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम् ।
पालाशमासनं चैव तिन्दुकैर्दन्तधावनम् ॥ ३८ ॥
ये चाऽऽवर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोषसि ।

पुरुष नङ्गे स्नान करते हैं; जिनके घरमें अतिथिका आगमन निष्फल होजाता है, जो कपटता करते और जो पुरुष मिथ्या वचन बोलते हैं, जो दूसरेको ठगते हैं, जो अपने आत्माकी हिंसा करते हैं, जो मिथ्या नीच पुरुष सेवक स्त्री तथा अपने आश्रितों को उनका भाग बिना उन्हें समर्पण किये ही मिष्टान्न भोजन करते हैं; उन सम्पूर्ण पुरुषोंकी जो गति होती है, मेरी भी वही गति होवे ॥ (२९-३४)

मैं यदि जयद्रथका वध न करूं, तो जो दुष्टात्मा आज्ञाकारी उत्तम चरित्रवाले आश्रितोंका पालन नहीं करते और उनकी निन्दाही करते हैं, तथा जो योग्यपात्रको श्राद्ध आदिमें उचित वस्तु दान नहीं करते, सदा अयोग्य पात्र, वा विवाहके पूर्व रजस्वला हुई कन्याके अथवा शूद्री के साथ विवाह करनेवालेको श्राद्धकी सामग्री देते हैं, वे सम्पूर्ण पुरुष और मद पीनेवाले, मर्यादा तोडनेवाले, कृतघ्न और भर्ता की निन्दा करनेवाले पुरुषोंको जो गति होती है, मेरी भी शीघ्र वही गति होवे ॥ (३५—३७)

मैं यदि जयद्रथका वध न करूं तो, बांये हाथसे भोजन करनेवाले, उत्सङ्गके ऊपर रखकर खाने वाले, पर्णके आसन पर बैठनेवाले, तिंदुककाष्ठसे दन्तधावन करनेवाले, दूसरोंके प्राण घातक, उषःकाल में सोनेवाले इनको जो लोक प्राप्त होते हैं, वे मुझे प्राप्त होवें । (३८—३९)

शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः ॥ ३९ ॥
एककूपोदकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते ।
षण्मासं तत्र वसतां तथा शास्त्रं विनिन्दताम् ॥४० ॥
दिवा मैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते ।
अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ॥ ४१ ॥
अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः ।
रजस्वलां सेवयन्तः कन्यां शुल्केन दायिनः ॥ ४२ ॥
या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम् ।
आस्यमैथुनिकानां च ये दिवा मैथुने रताः ॥ ४३ ॥
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद्ददाति न ।
तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥४४॥
धर्मादपेता ये चाऽन्ये मया नात्राऽनुकीर्तिताः ।
ये चाऽनुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ।
इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत ॥ ४६ ॥

यदि मैं जयद्रथका प्राणनाश न करूं तो, शीतसे डरनेवाले ब्राह्मण, युद्धभूमिमें भयसे ग्रस्त होनेवाले क्षत्रिय, जिस ग्राममें एकही कूप है और जिसमें कभी वेद ध्वनि नहीं होती है, ऐसे ग्राममें छः मास वास करनेवाले, शास्त्रकी निंदा करनेवाले, दिनमें मैथुन करनेवाले, दिनमें सोने-वाले, घरको जलाने वाले, विष देनेवाले ऐसे लोगोंकी जिन लोकोंमें गति होती है मेरी भी वहां ही होवे ॥ (३९-४१)

यदि मैं कल्ह जयद्रथको न मारूं तो अग्नि होत्र रहित, अतिथियोंका सत्कार न करनेवाले, जब गौएं जल पीती हैं तब विघ्न करनेवाले, रजस्वला स्त्रीके साथ समागम करने वाले, कन्या विक्रय करनेवाले, बहुयाजी और श्ववृत्ति वाले ब्राह्मण, मुखमें मैथुन करनेवाले, दिनमें मैथुन करनेवाले, देने की प्रतिज्ञा करकेभी लोभके वशमें होकर ब्राह्मणोंको न देनेवाले ऐसे लोगोंकी जो गति होती है, मेरी भी वही गति होवे ॥ (४२-४४)

दूसरे भी जो बहुतसे धर्मरहित पुरुषोंका मैंने नाम नहीं लिया है, उनकी जो गति होती है, यदि मैं जयद्रथका वध न करूं, तो मुझे भी वही गति प्राप्त होवे ॥ इसके अतिरिक्त और भी मैं दूसरी यह प्रतिज्ञा करता हूं उसे भी आप सब लोग सुनिये,-आजकी रात्रि

यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति ।
इहैव स प्रवेष्टाऽहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ४७ ॥
असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा ।
चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मात्तदपि मम रिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः॥४८
यदि विशति रसातलं तदग्र्यं वियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहर्ता ॥ ४९ ॥
एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् ।
तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद्दिवम् ॥ ५० ॥
अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।
प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तं च फाल्गुनः ॥ ५१ ॥
स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना भृशं सुपूर्णो ध्वनिःस्तनध्वनिः ।
जगत्सपातालवियद्दिगीश्वरं प्रकम्पयामास युगात्यये यथा॥ ५२ ॥
ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन्सहस्रशः ।
सिंहनादश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महात्मना ॥ ५३ ॥ [२६१४]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

बीतनेपर कल्ह सबेरेसे सूर्यके अस्त होने पर्यन्त यदि मैं उस पापी जयद्रथ का वध न करूं, तो इस ही स्थलपर मैं जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके प्राण त्याग करूंगा ॥ देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, सर्प, पक्षी, पितर, राक्षस, ब्रह्मर्षि आदि तथा उन से भी श्रेष्ठ जो कोई प्राणी होवे;—वे कोई भी कल्ह मेरे सम्मुखसे हमारे उस शत्रु जयद्रथकी रक्षा करनेमें समर्थ न हो सकेंगे॥(४५-४८

यदि वह स्वर्ग पाताल देवलोक वा दितिलोकोंमें भी प्रवेश करे, तौभी मैं कल्ह उसके समीपमें गमन करके सैकडों तीक्ष्ण बाणोंसे उसका शिर काट कर गिराऊंगा;—ऐसा वचन कहके अर्जुन बायें और दहिने हाथसे गाण्डीव धनुष चढाते हुए धनुष टङ्कार करने लगे, [illegible] धनुष टङ्कारका शब्द अर्जुनके वचनोंको अतिक्रम करके आकाशमें व्याप्त होगया ॥ जब अर्जुनने इस प्रकारसे प्रतिज्ञा किया तब श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया और अर्जुन भी क्रुद्ध होकर अपने देव दत्त शंखको बजाने लगे ॥ (४९-५१)

कृष्णके मुखवायुसे पूरित पाञ्चजन्य शंखके शब्दसे स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल और सम्पूर्ण दिशा प्रलय कालके समयके अनुसार कम्पित होने लगीं ॥ तिसके अनन्तर चारों ओरसे पाण्डवोंकी सेनामें

सञ्जय उवाच— श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जयगृद्धिनाम् ।
चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः ॥ १ ॥
शोकसम्मूढहृदयो दुःखेनाऽभिपरिप्लुतः ।
मज्जमान इवाऽगाधे विपुले शोकसागरे ॥ २ ॥
जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन्बहु ।
स तेषां नरदेवानां सकाशे पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥
अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत् ।
योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना ॥४॥
स निनीषति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम् ।
तत्स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि स्वगृहं जीवितेप्सया॥ ५ ॥
अथवाऽस्त्रप्रतिबलास्त्रात मां क्षत्रियर्षभाः ।
पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते सन्दत्त ममाऽभयम् ॥ ६ ॥
द्रोणदुर्योधनकृपाः कर्णमद्रेशवाल्हिकाः ।
दुःशासनादयः शक्तास्त्रातुं मामन्तकार्दितम् ॥ ७ ॥

युद्धके जुझाऊ बाजोंके सहित वीरोंके सिंहनाद सुनाई देने लगे ॥ (५२-५३)

द्रोणपर्वमें तिहत्तर अध्याय समाप्त । [२६१४]

द्रोणपर्वमें चौहत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! सिन्धुराजके पुत्र राजा जयद्रथ पुत्रवत्सल पाण्डवोंके उस महाघोर शब्दको सुनकर तथा दूत के मुखसे अर्जुनकी प्रतिज्ञाका सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर अपने शिविरसे उठे ॥ वह शोकसे मोहित अत्यन्त दुःखित और आर्त्त होगये; तथा अगाध शोक समुद्रमें डूबते हुए अपने मन ही मन अनेक प्रकारकी चिन्ता करते हुए राजाओंके समीपमें गमन किया । १-२

वह अभिमन्युके पिता अर्जुनके डरसे भीत होकर लज्जापूर्वक राजाओंके समीपमें जाकर यह वचन बोले,—जो नीचबुद्धि पाण्डुके क्षेत्रमें कामी इन्द्रके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, वह केवल अकेले मुझे ही यमपुरीमें भेजनेकी इच्छा करता है। हे क्षत्रियश्रेष्ठ राजसिंहो ! आप लोगोंका कल्याण होवे, मैं अपनी प्राणरक्षाके निमित्त इसीसमय यहांसे गमन करके अपने घर पर जाऊं; अथवा हे वीर पुरुषो ! आप लोग उस अर्जुनके विरुद्ध अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके मेरी रक्षा करके मुझे अभय कीजिये ॥ (३–६)

द्रोणाचार्य, दुर्योधन, कृपाचार्य, कर्ण, मद्रराज शल्य, वाह्लिक, दुःशासन आदि आप सब कोई यमराजके हाथसे भी

किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता ।
न त्रायेयुर्भवन्तो मां समस्ताः पतयः क्षितेः ॥ ८ ॥
प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद्भयम् ।
सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः ॥ ९ ॥
वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना ।
तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककाले स्म पाण्डवाः १० ॥
तत्र देवा न गन्धर्वा नाऽसुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं कुत एव नराधिपाः ॥ ११ ॥
तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः ।
अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥१२॥
एवं विलपमानं तं भयाद्व्याकुलचेतसम् ।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥
न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ ।
मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद्युधि ॥ १४ ॥
अहं वैकर्त्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः ।

मनुष्यकी रक्षा कर सकते हैं, परन्तु क्या अकेले अर्जुनके हाथसे मुझे न बचा सकेंगे ? पाण्डवोंके हर्षनादको सुनकर मैं अत्यन्त ही भयभीत होगया हूं, मुमूर्षु पुरुषके समान मेरा शरीर कांप रहा है ॥ (७–९)

गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाले अर्जुनने अवश्यही मेरे वधके निमित्त प्रतिज्ञा किया है, नहीं तो पाण्डव लोग इस शोकके समयमें हर्ष पूर्वक सिंहनाद क्यों करेंगे ? देवता असुर गन्धर्व सर्प और राक्षसलोग भी अर्जुनकी प्रतिज्ञाको निष्फल करनेका उत्साह नहीं कर सकते, तो आप लोग मनुष्योंके राजा होकर क्या कर सकेंगे ? इससे आप लोगोंका मङ्गल होवे आप सब कोई मुझे घर जानेकी आज्ञा दीजिये मैं इस प्रकारसे अदृश्य होकर गमन करूं; जिसमें पाण्डवलोग मुझे न देख सकें ॥ (१०–१२)

राजा दुर्योधन अपने पक्षकी श्रेष्ठतासे युक्त होके विलाप करते हुए राजा जयद्रथको देखकर यह वचन बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम भय मत करो, इन सम्पूर्ण क्षत्रिय वीरोंके बीचमें रहनेसे कौन तुम्हें युद्धभूमिमें आवाहन कर सकेगा ? मैं कर्ण, दुःशासन, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल्य, वृषसेन,

भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः ॥ १५ ॥
पुरुमित्रो जयो भोजः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह ॥ १६ ॥
दुःशासनः सुबाहुश्च कालिङ्गश्चाऽप्युदायुधः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौबलः॥१७ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
ससैन्यास्त्वाऽभियास्यन्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः॥१८॥
त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठः स्वयं शूरोऽमितद्युते ।
स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव ॥ १९ ॥
अक्षौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे ।
यत्ता योत्स्यन्ति मा भैस्त्वं सैन्धव व्येतु ते भयम्॥२०॥

सञ्जय उवाच— एवमाश्वासितो राजन्पुत्रेण तव सैन्धवः ।
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ २१ ॥
उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशाम्पते ।
उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥ २२ ॥

पुरुमित्र, जय, भोज, काम्बोजराज सुदक्षिण, सत्यव्रत, महाबाहु विकर्ण, दुर्मुख, सुबाहु, शस्त्रधारी कलिङ्गराज, अवन्तिनगरीके राजा विन्द और अनुविन्द, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि और भी नाना देशोंसे आये हुए बहुतेरे राजाओंके संग हम लोग अपनी सेनाके सहित इकट्ठे होकर तुम्हारी रक्षा करेंगे इससे तुम अपने मानसिक शोकको दूर करो; तुम कुछ भी चिन्ता मत करो ॥ (१३–१८)

हे महातेजस्विन् ! तुम भी स्वयं शूरवीर तथा रथियोंमें श्रेष्ठ हो; इससे तुम किस निमित्त पाण्डवोंसे डरते हो? विशेष करके मेरी यह ग्यारह अक्षौहिणी सेना तुम्हारी रक्षा करनेके निमित्त यत्न पूर्वक शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करेगी । हे सिन्धुराज जयद्रथ ! इससे तुम अपने चित्तके शोकको दूर करो, तुम्हें कुछ भी भय नहीं है ॥ (१९–२०)

सञ्जय बोले, हे राजन् ! सिन्धुराज जयद्रथ तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके ऐसे वचनोंको सुनकर धीरज धारण कर उस ही समय दुर्योधनके साथ द्रोणाचार्यके समीप गये । अनन्तर राजा जयद्रथ द्रोणाचार्य की चरणवन्दना कर उनके समीपमें बैठके यह वचन बोले, हे भगवन् ! निमित्त, निश्चय, दूर तक शस्त्र चलाने और

निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने ।
मम ब्रवीतु भगवान्विशेषं फाल्गुनस्य च ॥ २३ ॥
विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः ।
अर्जुनस्याऽऽत्मनश्चैव याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे ॥ २४ ॥
द्रोण उवाच— सममाचार्यकं तात तव चैवाऽर्जुनस्य च ।
योगाद् दुःखोषितत्वाच्च तस्मात्त्वत्तोऽधिकोऽर्जुनः॥२५॥
न तु ते युधि सन्त्रासः कार्यः पार्थात्कथश्चन ।
अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नाऽत्र संशयः॥ २६ ॥
न हि मद्बाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि ।
व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति॥ २७ ॥
तस्माद्युद्ध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय ।
पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ ॥ २८ ॥
अधीत्य विधिवद्वेदानग्नयः सुहुतास्त्वया ।
इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युभयङ्करः ॥ २९ ॥
दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु ।

हस्तलाघवमें मुझसे अर्जुनमें कितनी विशेषता है; उसे आप वर्णन कीजिये । हे आचार्य ! मुझसे अर्जुनमें विशेष विद्या कौनसी है, उसे मैं तुम्हारे समीपसे सुनने की इच्छा करता हूं आप इस विषयको यथार्थ रीतिसे वर्णन कीजिये। (२१-२४

द्रोणाचार्य बोले हे तात ! गुरुका उपदेश तुम दोनोंको समान मिला है परन्तु योग साधन और वनवासके दुःखोंको सहनेसे अर्जुन तुमसे अधिक सामर्थ्यवान् हुआ है॥ तौभी तुम युद्धमें अर्जुनसे तनिकभी भय मत करो, क्योंकि मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ जो मेरे बाहुबलसे रक्षित होता है, उसके ऊपर देवता भी अपने बलको प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं होते । मैं कल्ह एक ऐसा व्यूह बनाऊंगा, कि अर्जुन उसे भेद नहीं कर सकेगा ॥ इससे तुम युद्ध करना, तुम कुछ भी भय मत करो, तुम्हारे पितर और पितामह जिस मार्गसे गये हैं, तुम भी उस ही मार्गसे गमन करके अपने क्षत्रिय धर्मको पालन करो ॥ (२५–२८)

तुमने विधिपूर्वक वेद पढके अग्निमें आहुति प्रदान किया है, तुमने बहुतसी यज्ञोंको पूर्ण किया है, तब तुम्हें मृत्युसे क्या भय है ? तुमने प्रारब्धके अनुसार

भुजवीर्यार्जिताँल्लोकान्दिव्यान्प्राप्स्यस्यनुत्तमान् ३० ॥
कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः ।
अहं च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥
पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः ।
परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वा तु यॉंल्लोकान्प्राप्नुवन्ति तपस्विनः ।
क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥ ३३ ॥
एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः ।
अपानुदद्भयं पार्थाद्युद्धाय च मनो दधे ॥ ३४ ॥
ततः प्रहर्षः सैन्यानां तवाऽप्यासीद्विशाम्पते ।
वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः सिंहनादरवैः सह ॥ ३५ ॥ [२६४९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जयद्रथाश्वासे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सञ्जय उवाच— प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा ।
वासुदेवो महाबाहुर्धनञ्जयमभाषत ॥ १ ॥
भ्रातॄणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ।

अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य शरीर पाया है इससे उस ही शरीरसे अपने बाहुबलसे उपार्जित दिव्य तथा श्रेष्ठ लोकमें गमन कर सकोगे ॥ ये सम्पूर्ण कौरव, पाण्डव, यदुवंशी, मैं और मेरा पुत्र सब ही को अस्थायी समझो, समयके अनुसार हम सब लोग नष्ट होकर अपने कर्मके अनुकूल परलोकमें गमन करेंगे ॥ देखो, तपस्वी लोग तपस्या करके जिन सम्पूर्ण उत्तम लोकोंमें गमन करते हैं, क्षत्रियधर्मको अवलम्बन करनेवाले शूरवीर क्षत्रिय लोग भी उन ही श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते हैं ॥ (२९–३३)

हे राजन् ! भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके निकटमें इस प्रकारसे आश्वास तथा धीरजके वचन सुनकर सिन्धुराज जयद्रथकी भय दूर हुई; और उन्होंने युद्ध करनेमें अपना चित्त लगाया ॥ हे प्रजानाथ ! तिसके अनन्तर तुम्हारी सेनाके शूरवीरोंके हर्षपूर्वक सिंहनाद शब्दके सहित जुझाऊ बाजे बजने लगे, और उससे अत्यन्त ही तुमुल शब्द उत्पन्न हुआ ॥ (३४–३५) (२६४९)

द्रोणपर्वमें चौहत्तर अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें पचत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! जब अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके वध करनेके वास्ते प्रतिज्ञा किया तब वसुदेवपुत्र कृष्ण उन-

सैन्धवं चाऽस्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम् ॥ २ ॥
असम्मन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः ।
कथं नु सर्वलोकस्य नाऽवहास्या भवेमहि ॥ ३ ॥
धार्त्तराष्ट्रस्य शिबिरे मया प्रणिहिताश्चराः ।
त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥ ४ ॥
त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो ।
सिंहनादः सवादित्रः सुमहानिह तैः श्रुतः ॥ ५ ॥
तेन शब्देन वित्रस्ता धार्तराष्ट्राः ससैन्धवाः ।
नाऽकस्मात्सिंहनादोऽयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥६॥
सुमहाञ्शब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुज ।
आसीन्नागाश्वपत्तीनां रथघोषश्च भैरवः ॥ ७ ॥
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमार्त्तो धनञ्जयः ।
रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥

से यह वचन बोले, हे अर्जुन ! तुमने अपने भाइयोंके अभिप्रायको न जानतेही वचनसे जो प्रतिज्ञा किया है, 'मैं कल्ह सिन्धुराज जयद्रथका वध करूंगा,' यह तुमने साहसका कर्म किया है ॥ तुम मेरे सङ्ग विना परामर्श किये ही जो अत्यन्त कठिन भारके उठानेमें तैयार हुए हो; इससे जिसमें सम्पूर्ण पुरुषोंके बीच हम लोगोंकी हंसी न होवे मैं उस ही उपायको विचार रहा हूं ॥ (१-३)

मैंने धृतराष्ट्रकी सेनामें दूत भेजा था उसने शीघ्रताके सहित आकर मुझे यह संवाद सुनाया है, कि अर्जुनने जिस समय सिन्धुराज जयद्रथके वध करनेके निमित्त प्रतिज्ञा किया उस समयमें यहां पर सिंहनाद और बाजेका महाघोर शब्द हुवा था; उसे जयद्रथके सहित धृतराष्ट्र के पुत्रोंने सुना। उस ही शब्दको सुनकर उन लोगोंने विना कारणके यह सिंहनाद नहीं होता है ऐसा समझकर भयभीत होके युद्धके निमित्त तैयार हुए ॥ (४-६)

हे महाबाहो ! उस समयमें उन लोगोंके अत्यन्त भयङ्कर रथके शब्द, हाथी, घोडे और पैदल चलनेवाले योद्धाओंका शब्दभी अत्यन्त तुमुल हुआ था ॥ वे लोग यही समझ कर युद्धके निमित्त तैयार होके खडे हुए कि अर्जुन अभिमन्युके वधका वृत्तान्त सुनकर दुःखसे आर्त्त और क्रुद्ध होकर आज रात्रिके समयमें ही युद्धके निमित्त शिबिरसे बाहर होवेगा ॥ हे अर्जुन ! उन लोगोंने इसी

तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवतस्तव ।
प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ॥ ९ ॥
ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।
आसन्सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥ १० ॥
अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिबिरमात्मनः ।
आयात्सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः ॥ ११ ॥
स मन्त्रकाले सम्मन्त्र्य सर्वा नैःश्रेयसीं क्रियाम् ।
सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद्राजसंसदि ॥ १२ ॥
मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनञ्जयः ।
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम ॥ १३ ॥
तां न देवा न गन्धर्वा नाऽसुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथाकर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥
ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनञ्जयः ।
पदं कृत्वाऽऽप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम् ॥ १५ ॥
अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन ।

प्रकारसे युद्धके निमित्त सावधान होने पर, जयद्रथके वधके निमित्त तुम्हारी दृढ प्रतिज्ञा सुनी; और तुम्हें सत्यप्रतिज्ञ समझके सुयोधनके अनुयायी और जयद्रथ आदि योद्धा लोग तुच्छ हरिणोंके समान भयभीत होगये ॥ ७–१०

अनन्तर सिन्धु और सौवीर देशके राजा जयद्रथ अत्यन्त दुःखित तथा कातर होके अनुयायियोंके सहित उठकर अपने शिबिरपर गये ॥ अनन्तर उन्होंने अपने कल्याणके निमित्त आपसमें विचार करके सम्पूर्ण राजाओंकी सभा में जाकर सुयोधनके समीपमें यह वचन कहा ॥ (११—१२)

हे समस्त शूरवीर आर्य पुरुषों ! वह अर्जुन मुझे अपने पुत्रका वध करने वाला कहकर कलह युद्धभूमिमें आक्रमण करेगा । अर्जुनने सेनाके बीच मेरे वध करनेके निमित्त प्रतिज्ञा किया है ॥ उस सत्यव्रत करनेवाले अर्जुनकी प्रतिज्ञाको देवता गन्धर्व असुर, सर्प और राक्षस आदि भी मिथ्या करनेका उत्साह नहीं कर सकते ॥ (१३–१४)

इससे आप लोग युद्धभूमिमें मेरी रक्षा कीजिये जिससे वह आप लोगोंके शिरको पददलित करके अपना लक्ष्य ग्रहण न कर सके, आप लोग वैसे ही उपायका विधान कीजिये ॥ यदि आप लोग सब कोई

अनुजानीहि मां राजन्गमिष्यामि गृहान्प्रति ॥ १६ ॥
एवमुक्तस्त्ववाक्शीर्षो विमनाः स सुयोधनः ।
श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यानमेवाऽन्वपद्यत ॥ १७ ॥
तमार्तमभिसम्प्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः ।
मृदु चाऽऽत्महितं चैव सापेक्षमिदमुक्तवान् ॥ १८ ॥
नेह पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् ।
योऽर्जुनस्याऽस्त्रमस्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे ॥ १९ ॥
वासुदेवसहायस्य गाण्डीवं धुन्वतो धनुः ।
कोऽर्जुनस्याऽग्रतस्तिष्ठेत्साक्षादपि शतक्रतुः ॥ २० ॥
महेश्वरोऽपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा ।
पदातिना महावीर्यो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥ २१ ॥
दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जघानैकरथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥ २२ ॥
समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन्हन्यादिति मतिर्मम ॥ २३ ॥

मिलके भी मेरी रक्षा न कर सके, तो हे कुरुनन्दन ! हे राजा लोगो ! मुझे आज्ञा दो मैं घर जानेके निमित्त यहांसे प्रस्थान करूं ॥ (१५–१६)

जब जयद्रथने सुयोधनसे ऐसा वचन कहा, तब सुयोधन तुम्हारी प्रतिज्ञा सुन कर शिर नीचाकर दुःखित होके चिन्ता करने लगे, सिन्धुराज जयद्रथ सुयोधन को दुखितचित्तसे चिन्ता करते हुए देखकर अपने हितके निमित्त कोमल और कठोर यह वचन बोले, मैं तुम्हारी सेनाके बीच ऐसे किसी धनुर्द्धर पुरुषको भी नहीं देखता हूं, जो युद्धमें अपने अस्त्रोंसे अर्जुनके अस्त्रोंका निवारण कर सके ॥ कृष्णकी सहायतासे युक्त अर्जुन गाण्डीव धनुष ग्रहण करके युद्धभूमिमें अपने बाणोंको चलाता रहे, तौ इन्द्र भी उसके विरुद्ध संग्राम भूमि में सम्मुख नहीं खडे हो सकेंगे ॥ (१७–२०)

मैंने सुना है, कि अर्जुनने हिमालय पर्वतके ऊपर पैदल ही खडा होके अत्यन्त तेजस्वी महादेवके सङ्ग युद्ध किया था ॥ और देवताओंके राजा इन्द्रकी आज्ञा अनुसार केवल एक रथपर चढके हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवोंका वध किया था ॥ मेरे विचारमें यह निश्चय होता है, कि अर्जुन कृष्णके सङ्ग मिलके देव लोकके सहित तीनों लोकोंका भी

सोऽहमिच्छाम्यनुज्ञातुं रक्षितुं वा महात्मना।
द्रोणेन सहपुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥ २४ ॥
स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्राऽर्थितोऽर्जुन।
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः ॥ २५ ॥
कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः।
कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः ॥ २६ ॥
शकटः पद्मकश्चाऽर्धो व्यूहो द्रोणेन निर्मितः।
पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूचीपार्श्वे जयद्रथः ॥ २७ ॥
स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिन्धुराट् स सुदुर्मदः।
धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे ॥ २८ ॥
अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड्रथाः।
एतानजित्वा षड्रथान्नैव प्राप्यो जयद्रथः ॥ २९ ॥
तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय।
सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा ॥ ३० ॥

संहार कर सकता हूं॥ इससे आप आज्ञा कीजिये, तो मैं घर जाऊं। अथवा यदि आपका मत होवे, तो द्रोणाचार्य अपने पराक्रमी पुत्रके सहित मिलकर मेरी रक्षा करें॥ (२१-२४)

हे अर्जुन! अनन्तर राजा दुर्योधनने जयद्रथकी रक्षाके निमित्त रुदन करके द्रोणाचार्यसे अनुरोध किया। उससे आचार्य द्रोणने रथ सज्जा तथा दूसरे उपायोंको स्थिर किया है॥ कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, वृषसेन, पराक्रमी-कृपाचार्य, और मद्रराज शल्य, — ये महारथ योद्धा जयद्रथके आगे युद्धभूमिमें स्थित होंगे। द्रोणाचार्य अद्भुत व्यूह रचना करेंगे, उस व्यूहके अगाडीका हिस्सा शकटाकार और पीछेका आधा भाग पद्मकी आकृतिके समान रहेगा; इस ही पद्मकी कर्णिकाके बीच के भाग में और एक सूचीव्यूह बनावेंगे; उसही सूचीव्यूहके बीचमें युद्धदुर्मद सिन्धुदेश के राजा जयद्रथ उन सम्पूर्ण महावीर योद्धाओं के द्वारा रक्षित हो कर स्थित होंगे। (२५-२८)

धनुर्विद्या, अस्त्रोंके चलाने, पराक्रम और बलमें ये छहों रथी निश्चय ही न सहनेके योग्य हैं; उन लोगोंको उनके अनुयायियोंके सहित विना पराजित किये तुम जयद्रथके समीपमें नहीं जा सकोगे। हे पुरुषसिंह! इन छहों रथियोंमें से एक एकैक बल पराक्रमको

भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै।
मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये ॥३१॥ [२६८०]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

अर्जुन उवाच— षड्रथान्धार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान्बलाधिकान्।
तेषां वीर्यं ममार्धेन न तुल्यमिति मे मतिः ॥ १ ॥
अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन।
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा ॥ २ ॥
द्रोणस्य मिषतश्चाऽहं सगणस्य विलप्यतः।
मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले ॥ ३ ॥
यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वे देवाः सहेश्वराः ॥ ४ ॥
पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागरादयः।
द्यौर्वियत्पृथिवी चेयं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ५ ॥
ग्राम्यारण्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।

विचार करके देखो तो सही! उसपर भी उन छहोंके एक ही स्थानपर इकट्ठे होनेपर बोध होता है, कि उन लोगोंको किसी प्रकारसे भी बलपूर्वक पराजित करनेमें तुम समर्थ न हो सकोगे॥ हे अर्जुन! हम लोग फिर इस विषयमें मन्त्री अनुयायी राजा और सुहृद्मित्रोंके सहित अपने कार्यको सिद्ध करनेके निमित्त विचार करेंगे॥ (२८-३१) [२६८०]

द्रोणपर्वमें पचत्तर अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें छिहत्तर अध्याय।

अर्जुन बोले, हे कृष्ण! तुम धार्त-राष्ट्रोंके ऊपर कहे हुए छः रथियोंको अधिक बलवान् समझते हो, परन्तु मैं बोध करता हूं, उन लोगोंका बल पराक्रम मेरे आधे पराक्रमके समान भी न होगा॥ हे मधुसूदन! मैं जब जयद्रथके वध करनेकी इच्छा करूंगा; तब तुम उन सम्पूर्ण रथियोंके अस्त्रशस्त्रोंको मेरे अस्त्रोंसे कटकर पृथ्वीमें गिरते हुए देखोगे॥ मैं कल्ह सिन्धुराज जयद्रथके शिरको द्रोणाचार्यके संमुखहीमें काटकर भूतलमें गिरा दूंगा; उसे देखके द्रोणाचार्य अनुयायियोंके सहित विलाप करेंगे। (१—३)

विश्वे देवता, साध्य, वसु, दोनों आश्विनीकुमार, असुर, पितर, गन्धर्व, गरुड, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, सम्पूर्ण दिशा और दिक्पाल, ग्रामवासी और वनवासी और सम्पूर्ण

त्रातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति मधुसूदन ॥ ६ ॥
तथाऽपि बाणैर्निहतं श्वो द्रष्टासि रणे मया ।
सत्येन च शपे कृष्ण तथैवाऽऽयुधमालभे ॥ ७ ॥
यस्य गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः ।
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥ ८ ॥
तस्मिन्द्यूतमिदं बद्धं मन्यते स सुयोधनः ।
तस्मात्तस्यैव सेनाग्रं भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥९॥
द्रष्टासि श्वो महेष्वासान्नाराचैस्तिग्मतेजितैः ।
शृङ्गाणीव गिरेर्वज्रैर्दार्यमाणान्मया युधि ॥ १० ॥
नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्राविष्यति शोणितम् ।
पतद्भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥११ ॥
गाण्डीवप्रेषिता बाणा मनोऽनिलसमा जवे ।
नृनागाश्वान्विदेहासून्कर्त्तारश्च सहस्रशः ॥ १२ ॥
यमात्कुबेराद्वरुणादिन्द्राद्रुद्राच यन्मया ।
उपात्तमस्त्रं घोरं तद् द्रष्टारोऽत्र नरा युधि ॥ १३ ॥

चराचर प्राणी भी यदि सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करें, तौभी मैं अपने शस्त्रोंको स्पर्श करके शपथ करता हूं, कि तुम सिन्धुराज जयद्रथको मेरे बाणोंसे, कल्ह मरा हुआ देखोगे ॥ (४-७)

महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य जो उस पापीकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त होवेंगे, तो मैं पहिले द्रोणाचार्यहीको आक्रमण करूंगा ॥ हे कृष्ण ! जयद्रथ वध पण (बाजी) विषयक उस युद्धरूपी जुए के खेलमें दुर्योधन जिसके पराक्रमसे अभिमान करता है, मैं उस हीके सेनाका अग्रभाग भेद करके जयद्रथके समीप उपस्थित होऊंगा ॥ तुम कल्ह युद्धमें मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे उन महाधनुर्द्धर वीरोंको इस प्रकारसे क्षत-विक्षत शरीरसे युक्त देखोगे, जैसे वज्रकी चोटसे पर्वत विदीर्ण होता है ॥ कल्ह तुम देखोगे, कि मेरे बाणोंसे मनुष्य, हाथी और घोडोंके मृत शरीर पृथ्वीपर गिर रहे हैं, और उन मृत शरीरोंसे रुधिर झर रहा है ॥ ८-११

कल्ह तुम देखोगे, मेरे गाण्डीवधनुषसे छूटे हुए सम्पूर्ण बाण मन और वायु के समान वेगशील होकर सहस्रों मनुष्य, हाथी और घोडोंको प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिरा रहे हैं ॥ मैंने यम, कुबेर, इन्द्र और वरुणके समीपमें जिन उत्तम अस्त्रोंको प्राप्त किया

ब्राह्मेणाऽस्त्रेण चाऽस्त्राणि हन्यमानानि संयुगे ।
मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याऽभिरक्षिणाम्॥ १४ ॥
शरवेगसमुत्कृत्तै राज्ञां केशव मूर्धभिः ।
आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टासि श्वो मया युधि ॥ १५॥
क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान् ।
सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्धवम्॥ १६ ॥
बह्वागस्कृत्कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः ।
मया सैन्धवको राजा हतः स्वाञ्शोचयिष्यति ॥१७॥
सर्वक्षीरान्नभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे ।
मया सराजकं बाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्धवम् ॥ १८ ॥
तथा प्रभाते कर्त्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः ।
नाऽन्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि ॥ १९ ॥
गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाऽहं नरर्षभ ।
त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया ॥२० ॥
तव प्रसादाद्भगवन्किं नाऽवाप्तं रणे मम ।
अविषह्यं हृषीकेश किं जानन्मां विगर्हसे ॥ २१ ॥

है, उनको सम्पूर्ण मनुष्य देखेंगे ॥ जो लोग जयद्रथकी युद्धभूमिमें रक्षा करेंगे, तुम उन सम्पूर्ण योद्धाओंके अस्त्रोंको मेरे ब्रह्मास्त्रसे नष्ट होते हुए देखोगे॥१२–१४

हे कृष्ण! तुम कल्ह मेरे बाणोंके वेगसे राजपुरुषोंके शिरसे पृथ्वीको परिपूरित हुई देखोगे ॥ मैं कल्ह मांसकी अभिलाष करनेवाले जीवोंको तृप्त करूंगा, शत्रु ओंको तितर बितर करते हुए सुहृद् मित्रोंको आनन्दित करके जयद्रथका वध करूंगा ॥ वह कुसम्बन्धीय पापी राजा जयद्रथ मेरे अस्त्रोंसे मरकर अपने [illegible] मित्रोंको शोकित करेगा। तुम सबके क्षीर और अन्नको भोजन करनेवाले उस पापी जयद्रथको अनुयायियोंके सहित कल्ह मेरे बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर गिरते हुए देखोगे ॥ (१५–१८)

हे कृष्ण! मैं कल्ह सबेरे ऐसा कार्य करूंगा उससे सब कोई यह समझेंगे। कि अर्जुनके समान धनुर्द्धारी योद्धा वीर दूसरा कोई भी नहीं है ॥ हे भरतर्षभ! जहांपर गाण्डीव धनुष, मैं योद्धा और तुम सारथी हो उस स्थलमें मुझसे अजेय कौन है? हे हृषीकेश! हे भगवन्! तुम्हारी कृपासे रणभूमिमें मुझसे कोई कर्म भी असाध्य नहीं है, इन सब

यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम्।
एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥ २२ ॥
माऽवमंस्था ममाऽस्त्राणि माऽवमंस्था धनुर्दृढम्।
माऽवमंस्था बलं बाह्वोर्माऽवमंस्था धनञ्जयम् ॥ २३ ॥
तथाऽभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च।
तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम् ॥ २४ ॥
ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु सन्नतिः।
श्रीर्ध्रुवाऽपि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः ॥ २५ ॥
सञ्जय उवाच —एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमात्मना।
सन्दिदेशाऽर्जुनो नर्दन्वासविः केशवं प्रभुम् ॥ २६ ॥
यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद्रथो मम।
तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम् ॥२७॥ [२७०७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

बातोंको जानकर भी तुम किस कारणसे मेरी निन्दा कर रहेहो ? (१९-२१)

हे जनार्दन ! जैसे चन्द्रमामें निश्चय ही कलङ्कका चिन्ह और समुद्रमें सदा जल उपस्थित रहता है, उसी प्रकारसे तुम हमारी इस प्रतिज्ञाकोभी निश्चय ही सत्य समझो॥ तुम हमारे सम्पूर्ण अस्त्रोंकी, मेरे दृढ धनुषकी, मेरे बाहुओंके बलकी और मेरी अवमानना मत करो ॥ मैं रणभूमिमें गमन करके किसीके सम्मुखसे कभी पराजित नहीं होता बल्कि विजयी होता रहता हूं; यह सत्य वचन प्रसिद्ध है, तुम उसही सत्यसे जयद्रथको मेरे अस्त्रोंसे मरनेका निश्चय कर लो॥ जैसे ब्राह्मणोंमें निश्चय ही सत्य रहता है, वैसी साधु पुरुषोंमें सदा नम्रता रहती है और जैसी अत्यन्त कार्यदक्ष पुरुषके समीप सदा ही लक्ष्मी विद्यमान रहती है, वैसे ही नारायणमें निश्चय ही विजय वर्त्तमान रहती है ॥ २२-२५)

सञ्जय बोले, इन्द्रपुत्र अर्जुन साक्षात् परमात्मा स्वरूप हृषीकेश कृष्णसे ऐसा वचन कहकर फिर बलपूर्वक सिंहनाद करके यह वचन बोले, हे कृष्ण ! रात्रि बीतने पर सवेरे मेरा रथ जिस प्रकारसे सज्जित हुआ करता है, कल्ह तुम उसी प्रकारसे मेरे रथको सज्जित करके तैयार रखना, क्योंकि कल्ह बहुत बडा कार्य करना है ॥ (२६-२७) [२७०७]

द्रोणपर्वमें छिहत्तर अध्याय समाप्त।

सञ्जय उवाच— तां निशां दुःखशोकार्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ।
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १ ॥
नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः।
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किंस्विदेतद्भविष्यति ॥ २ ॥
ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिशंसिनः।
सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिघः समदृश्यत ॥ ३ ॥
शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः।
चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४ ॥
चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः।
प्रतिस्रोतःप्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥ ५ ॥
रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम्।
क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६ ॥
वाहनानि शकृन्मूत्रे मुमुचू रुरुदुश्च ह।
तान्दृष्ट्वा दारुणान्सर्वानुत्पातांल्लोमहर्षणान् ॥ ७ ॥
सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ।

द्रोणपर्वमें सत्तर अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! कृष्ण और अर्जुन दोनोंही उस रात्रिके समय शोक तथा दुःखसे आर्त होकर लम्बी सांस छोडने लगे, किसी प्रकारसे उन्हें निद्रा-का सुख नहीं मिला॥ इन्द्रआदिक सम्पूर्ण देवता नर नारायणको क्रुद्ध और दुःखित देखकर यह चिन्ता करने लगे, कि न जाने कलह कौनसी घटना होवेगी॥ १-२

उस समय कष्टजनक प्रचण्ड वायु बहने लगा, सूर्यमण्डलमें कबन्धके सहित परिधि देख पडा, बादलहीन आकाशमें गर्जन सुनाई देने लगा, बिजली कडकने लगी, और आकाशसे उल्कापात होने लगा; वन उपवन और पर्वतोंके सहित पृथ्वी कांपने लगी तथा समुद्रका जल उथलने लगा। नदियां [illegible] एक सोतेसे युक्त होकर वेग पूर्वक बहने लगीं॥ मांस भक्षण करनेवाले पशुपक्षी हर्षित होकर डरावनी बोली बोलने लगे; और यमराजके राष्ट्रकी वृद्धि करनेके निमित्त रथ, हाथी, घोडे और मनुष्योंकी उलटी गति होने लगी; सवारीके सम्पूर्ण वाहन मलमूत्र त्याग करते हुए रुदन करने लगे॥ (३-७)

हे भरतश्रेष्ठ राजेन्द्र! रोएंको खडे करनेवाले उन सम्पूर्ण महाभयङ्कर उत्पातोंको देख और महावीर अर्जुनकी

श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥
अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत्पाकशासनिः ।
आश्वासय सुभद्रां त्वं भगिनीं स्नुषया सह ॥ ९ ॥
स्नुषां चाऽस्या वयस्याश्च विशोकाः कुरु माधव ।
साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो ॥ १० ॥
ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः ।
भगिनीं पुत्रशोकार्त्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ११ ॥
वासुदेव उवाच– मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा ।
सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता ॥ १२ ॥
कुले जातस्य वीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः
सदृशं मरणं ह्येतत्तव पुत्रस्य मा शुचः ॥ १३ ॥
दिष्ट्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम् ॥ १४॥
जित्वा सुबहुशः शत्रून्प्रेषयित्वा च मृत्यवे ।
गतः पुण्यकृतां लोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १५ ॥

अत्यन्त कठिन प्रतिज्ञा सुनकर तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण वीर योद्धालोग व्याकुल होगये ॥ (७-८)

इधर इन्द्रपुत्र महाबाहु अर्जुन कृष्णसे बोले, हे माधव ! तुम्हारी बहन सुभद्रा और उसकी पुत्रवधू अभिमन्युके शोकसे कातर हुई होंगी, तुम जाके उन्हें धीरज धारण कराओ । समयके अनुसार उचित वचन कहकर सुभद्रा, पुत्रवधू और उनकी सेवा करनेवाली परिचारिकाओं (दासियों)के शोकको दूर करो॥ (९-१०)

अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त दुःखित होकर अर्जुनके शिविरमें जाकर शोक और दुःखसे अत्यन्त आर्त्त हुई अपनी बहिन सुभद्राको धीरज देते हुए उसे शान्त करने लगे ॥ (११)

श्रीकृष्ण बोले, हे सुभद्रे ! तुम पुत्रके निमित्त शोक मत करो, पुत्रवधूको भी धीरज धारण कराओ । हे भीरु ! कालने सम्पूर्ण प्राणियोंकी, विशेष करके क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए वीरपुरुषोंकी ऐसी ही गतिका विधान किया है ॥ पिताके समान पराक्रमी तुम्हारे महारथ पुत्रकी प्रारब्ध हीसे ऐसी मृत्यु हुई है, इससे उसके निमित्त तुम शोक मत करो, तुम्हारे पुत्रने धर्मके अनुसार अनेक शूरवीर पुरुषोंको यमपुरीमें पहुंचाकर, अन्तमें वीर पुरुषोंकी अभिलषित गतिको प्राप्त

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयाऽपि च।
सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः ॥ १६॥
वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा।
मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥ १७॥
प्राप्स्यते चाऽप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः।
अस्याऽवलेपस्य फलं ससुहृद्गणबान्धवः ॥ १८॥
व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत्।
नहि मोक्ष्यति पार्थात्स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥१९॥
श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम्।
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २०॥
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम्।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चाऽन्ये शस्त्रजीविनः ॥ २१॥
व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती रथप्रणुत्।
गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥ २२॥
अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान्।

किया है ॥ उसने पुण्यात्मा पुरुषोंके पाने योग्य श्रेष्ठ तथा अक्षय लोकमें गमन किया ॥ (१२–१५)

साधुपुरुष तपसा ब्रह्मचर्य और बुद्धिसे जो गति पानेकी इच्छा करते हैं, तुम्हारे पुत्रने उस ही गतिको प्राप्त किया है ॥ हे भद्रे ! तुम वीरमाता, वीरपत्नी, वीरकन्या और वीर बन्धु बान्धवोंसे युक्त हो, इससे परमगति पानेवाले अपने पुत्रके निमित्त शोक मत करो ॥ हे वरारोहे ! इस रात्रिके बीतने पर वह क्षुद्र अभिलाष करनेवाला शिशुघाती पापी सिन्धुराज जयद्रथ इष्टमित्र और बन्धु बान्धवोंके सहित अपने किये हुए अपराधका फल पावेगा। वह यदि इन्द्रपुरीमें प्रवेश करे, तौ भी अर्जुनके बाणोंसे जीता न बचेगा ॥ (१६–१९)

कल्ह तुम सुनोगी, कि उसका शिर अर्जुनके बाणसे कट कर समन्त पंचकके बाहर गिरा हुआ है। इससे शोकत्याग करो, रुदन मत करो ॥ हमलोग तथा दूसरे शस्त्रधारी वीर पुरुष जो गति पानेकी अभिलाष करते हैं, तुम्हारे बल और पराक्रमसे युक्त महारथ पुत्र अभिमन्युने उस ही गतिको प्राप्त किया है॥ अत्यन्त पराक्रमी महाबाहु तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु स्वर्ग लोकमें गया है, उसके निमित्त तुम शोक मत करो ॥ महा

सहस्रशो रिपून्हत्वा हतः शूरो महारथः ॥ २३ ॥
आश्वासय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम् ।
श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि २४॥
यत्पार्थेन प्रतिज्ञातं तत्तथा न तदन्यथा ।
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥ २५ ॥
यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा रजनिचराः पतगा सुरासुराश्च ।
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं न स भविता सह तैरपि प्रभाते ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि
सुभद्राश्वासने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ [२७३३]

सञ्जय उवाच— एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः ।
सुभद्रा पुत्रशोकार्त्ता विललाप सुदुःखिता ॥ १ ॥
हा पुत्र मम मन्दायाः कथमेत्याऽसि संयुगम् ।
निधनं प्राप्तवांस्तात पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ २ ॥
कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम् ।

पराक्रमी महारथ महावीर अभिमन्यु पितृ और मातृकुलका अनुगामी होकर सहस्रों शत्रुओंका नाश करके तब रणभूमिमें मरकर स्वर्ग लोकमें गया है ॥ (२०-२३)

हे भद्रे ! हे सुभद्रे ! तुम शोक त्याग कर पुत्रवधूको धीरज देओ । कल्ह तुम बहुत बडे अत्यन्त प्रिय संवादको सुनोगी, इससे शोक करनेका इसमें कौनसा विषय है ? अर्जुनने जो प्रतिज्ञा करी है, वह अवश्य सिद्ध होवेगी; क्योंकि तुम्हारे पति जिस कार्यके करनेकी इच्छा करते हैं, वह कभी निष्फल नहीं होता ॥ कल्ह सवेरा होने पर यदि मनुष्य सर्प, पिशाच, देवता वा राक्षस भी रणभूमिमें सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करें तौ भी वह तो जीवित बचेगा ही नहीं, परन्तु उसके ये सम्पूर्ण रक्षक भी यमपुरीमें गमन करेंगे ॥ (२४-२६) (२७३३)

द्रोणपर्वमें सतत्तर अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें अठत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महात्मा कृष्णके ऐसे वचनोंको सुनकर पुत्र शोकसे आरत हुई सुभद्रा अत्यन्त दुःखित होकर रुदन करने लगी ॥ हा पुत्र ! हा तात! मेरी कैसी अभाग्य है ! तुम पिताके समान पराक्रमी होकर किस प्रकार रणभूमिमें मारे गये ॥ हे तात ! तुम्हारे श्यामवर्ण, सुन्दर दांत और मनोहर

मुखं ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना ॥ ३ ॥
नूनं शूरं निपतितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम् ।
सुशिरोग्रीवबाह्वंसं व्यूढोरस्कं नतोदरम् ॥ ४ ॥
चारूपचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम् ।
भूतानि त्वां निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम् ॥ ५ ॥
शयनीयं पुरा यस्य स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम् ।
भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः ॥ ६ ॥
योऽन्वास्यते पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः ।
कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे ॥ ७ ॥
योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधबन्दिभिः ।
सोऽद्य क्रव्याद्गणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते ॥ ८ ॥
पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो ।

नेत्रोंसे युक्त प्रसन्न मुखको इस समय रणभूमिकी धूलिसे छिपे हुए देखकर मैं कैसे धीरज धारण करूंगी? हे पुत्र! तुम्हारा मुख, गर्दन, भुजा और कन्धे कैसे मनोहर थे! तुम्हारा वक्षस्थल कैसा विशाल सुन्दर था, तुम्हारा उदर कैसा शोभायमान और सुडौल था! तुम बालक होकर भी शूरवीर योद्धा थे। तुम कभी पीछे नहीं हटते थे। इस समय सम्पूर्ण प्राणी तुमको मरे हुए पृथ्वीमें पडे देख रहे हैं ॥ (१-४)

हा पुत्र! तुम्हारे दोनों नेत्र क्या ही सुन्दर दीख पडते थे! तुम्हारा सम्पूर्ण अद्भुत शरीर ही अत्यन्त मनोहर था; इस समय तुम्हारा वही शरीर अस्त्र-शस्त्रोंकी चोट से क्षत विक्षत हुआ है! सम्पूर्ण प्राणी तुम्हें रणभूमिमें उदित हुए दूसरे चन्द्रमाके समान देख रहे हैं॥ जो पहिले सुन्दर और कोमल वस्त्रोंसे युक्त उत्तम शय्या पर शयन करता था, वही मेरा पुत्र अभिमन्यु आज अस्त्र शस्त्रोंसे क्षतविक्षत शरीर पृथ्वी पर किस प्रकारसे शयन कर रहा है॥ जो महाबाहु वीर अभिमन्यु पहिले श्रेष्ठ स्त्रियोंके सङ्ग शयन करता था वह रणभूमिमें गिर कर आज सियार आदि भयानक पशुओंके सङ्गमें कैसे शयन कर रहा है ॥ ५-७

पहिले सूत, मागध और वन्दीजन स्तुतिपाठ करते हुए प्रसन्नचित्तसे जिसकी उपासना करते थे आज डरावनी बोली बोलने वाले मांस भक्षी प्राणी उसकी उपासना कर रहे हैं॥ हे विभो! हे कृष्ण! पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा लोग उसके सहायक थे तब वह किस

पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनाऽस्यनाथवत् ॥ ९ ॥
अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवाऽनघ।
मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यमक्षयम् ॥१०॥
विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च।
तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम् ॥ ११ ॥
धिग्बलं भीमसेनस्य धिक्पार्थस्य धनुष्मताम्।
धिग्वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानां च धिग्बलम् ॥१२॥
धिक्केकयांस्तथा चेदीन्मत्स्यांश्चैवाऽथ सृञ्जयान्।
ये त्वां रणगतं वीरं न शेकुरभिरक्षितुम् ॥ १३ ॥
अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतत्विषम्।
अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना ॥ १४ ॥
स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः।
कथं त्वाऽतिरथं वीरं द्रक्ष्याम्यद्य निपातितम् ॥ १५ ॥
एह्येहि तृषितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिबाऽऽशु मे।
अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृप्तायाश्च दर्शने ॥ १६ ॥
हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवाऽसि मे।

प्रकारसे युद्धभूमिमें मारा गया ? ॥ हे पुत्र ! हे पापरहित ! मैं तुमको देखकर तृप्तिका शेषफल नहीं प्राप्त कर सकी ! हाय ! मैं बहुत ही अभागिन हूं मैं निश्चय ही आज यमलोकमें गमन करूंगी ॥ (८—१०)

हे पुत्र ! तुम्हारे बडे बडे नेत्र उत्तम केशोंसे युक्त मनोहर और मीठे वचनों-के कहनेवाले सुन्दर सुगन्धित, व्रण रहित मुखको मैं अब कैसे देख सकूंगी ? भीमसेन अर्जुन धनुर्द्धारी सम्पूर्ण यदु-वंशीय वीर योद्धा पाञ्चाल कैकेय चेदि मत्स्य और सृञ्जय देशीय योद्धा जब उन्हें रणभूमिमें जाकर देख भी न सके तब उन सब लोगोंके बल और परा-क्रमको धिक्कार है। (११—१३)

आज मैं अभिमन्युको न देखकर शोक और दुःखसे व्याकुल हो पृथ्वीको शोभारहित तथा सूनी देख रही हूं ॥ तुम कृष्णके भानजे गाण्डीवधारी अर्जुन के पुत्र और स्वयं अतिरथी योद्धा थे, ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हें कैसे रणभूमिमें गिरे हुए देख सकूंगी ? हे पुत्र ! जिस कारणसे मैं अभागिनी तुम्हे देखकर तृप्त नहीं हो सकी थी इससे आवो शीघ्र मेरी गोदमें बैठकर दूधसे युक्त

अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम् ॥ १७ ॥
इमां ते तरुणीं भार्यां तवाऽऽधिभिरभिप्लुताम्।
कथं सन्धारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम् ॥ १८ ॥
अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक।
विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने ॥ १९ ॥
नूनं गतिः कृतान्तस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा।
यत्र त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः ॥ २० ॥
यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम्।
चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम् ॥ २१ ॥
कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि।
सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ २२ ॥
या गतिर्युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्।
हत्वाऽरीन्निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज ॥ २३ ॥
गोसहस्रप्रदातॄणां क्रतुदानां च या गतिः।

स्तनोंका पान करो॥ (१४—१६)

हा पुत्र! तुम मेरे समीप स्वप्नमें मिले हुए धनके समान दिखाई देकर फिर नष्ट होगये। हा! मनुष्योंका प्रकृतिक जीवन पानीके बुल्लेकी भांति चञ्चल और अनित्य है ॥ हे पुत्र! तुम्हारी यह तरुणी भार्या तुम्हारे शोकसे अत्यन्त दुःखित और कातर हुई है, मैं इसको बछडे रहित गऊके समान कैसे रक्षा करूंगी? हा पुत्र! मैं दर्शन करनेके निमित्त अत्यन्त ही उत्सुक थी और तुम फल प्राप्त होनेके कालमें मुझे छोडकर असमय में ही चले गये॥ (१७-१९)

जब कृष्ण सहायता करनेके निमित्त उपस्थित थे तौ भी तुम अनाथके समान युद्धभूमिमें मारे गये, कालकी गति बुद्धिमानोंसे भी नहीं जानी जाती इसमें सन्देह नहीं है॥ हे पुत्र! यज्ञ करनेवाले, दानी पुण्यात्मा, ब्रह्ममें निष्ठावान् ब्रह्मचारी पुण्य तीर्थोंमें अवगाहन करनेवाले, कृतज्ञ, दान देनेवाले, गुरुकी सेवा करनेवाले और सहस्र दक्षिणा देनेवाले पुरुषोंको जो गति मिलती है, तुम्हें भी वही गति मिले॥ शूरवीर योद्धा लोग युद्धसे पीछे न हटके शत्रुओंका नाश करते हुए युद्धभूमिमें मरकर जिस गतिको प्राप्त करते हैं, तुम भी वही गति प्राप्त करो॥ (२०-२३)

सहस्रों गऊ दान करनेवाले यज्ञके निमित्त धन देनेवाले और इच्छानुसार गृह

नैवेशिकं चाऽभिमतं ददतां या गतिः शुभा ॥ २४ ॥
ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निधिं निदधतां च या।
या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २५ ॥
ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः।
एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २६ ॥
राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती।
चतुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां सुरक्षितैः ॥ २७ ॥
दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम्।
पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २८ ॥
व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि।
अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २९ ॥
कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च।

दान करनेवाले पुरुषोंको जो उत्तम गति मिलती है, तुम्हें भी वही गति मिले॥ हे पुत्र! जो लोग ब्राह्मण और शरणागत पुरुषोंको अभय करके उनका सत्कार तथा उन्हें योग्य वस्तुओंको समर्पण करते हैं, उन पुरुषोंको जो उत्तम गति मिलती है, तुम्हें भी वही गति प्राप्त होवे। जो पुरुष दण्डपानेवाले पुरुषोंको यथा उचित दण्ड देते हैं उनको जो श्रेष्ठ गति मिलती है, तुम्हें भी वही गति मिले॥ हे पुत्र! ध्याननिष्ठ योगी और मुनि लोग ब्रह्मचर्य व्रत करके जो गति प्राप्त करते हैं तुम्हें भी वही गति मिले॥ एक ही स्त्रीमें रत रहनेवाले पुरुषोंको जो गति मिलती है, तुम्हें भी वही गति मिले॥ (२४–२६)

हे पुत्र! राजाओंको उत्तम चरित और श्रेष्ठ कर्मोंसे जो गति मिलती है तथा अपने अपने आश्रमके अनुसार धर्म करनेवाले पुण्यात्मा पुरुषोंको जो गति मिलती है, और जो लोग दीन दुःखियोंके ऊपर कृपा करते हैं, जो लोग सदा पुत्र कलत्र और सेवकोंको अन्न और वस्त्रको विभाग करके उन्हें प्रदान करते हुए सब वस्तुओंको उपभोग करते हैं, और जो लोग धूर्त्ततासे निवृत्त रहते हैं, उन सम्पूर्ण पुरुषोंको जो गति होती है, वही तुम्हारी भी होवे॥ हे पुत्र! गुरुकी सेवा करनेवाले, व्रतमें निष्ठावान्, धर्मात्मा पुरुषोंकी और जिसके घरसे अतिथि निराश होकर नहीं लौट जाते हैं; उनकी जो गति होती है तुमभी उसही गतिको प्राप्त करो॥ (२७–२९)

गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३० ॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह ये सदा ।
स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३१ ॥
ऋतुकाले स्वकां भार्यां गच्छतां या मनीषिणाम् ।
परस्त्रीभ्यो निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३२ ॥
साम्ना ये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः ।
नाऽरुन्तुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३३ ॥
मधुमांसनिवृत्तानां मदाद्दम्भात्तथाऽनृतात् ।
परोपतापत्यक्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३४ ॥
ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः ।
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३५ ॥
एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम् ।
अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराटिसहितां तदा ॥ ३६ ॥

हे पुत्र ! व्यसन तथा और किसी विषयके उपस्थित होनेपर शोक आदि क्लेशोंसे युक्त होकर भी जो पुरुष धैर्य अवलम्बन करके आत्माको नियम अनुसार स्थित रखते हैं, उन लोगोंको जो गति मिलती है, तुम भी उस ही गतिको प्राप्त करो ॥ जो लोग माता पिताकी सदा सेवा टहल किया करते हैं, उन लोगोंको जो गति मिलती है, तुम भी उस ही गतिको प्राप्त करो ॥ हे पुत्र ! जो मनस्वी पुरुष ऋतुकाल होनेपर अपनी भार्यामें समागम करते हैं, और पराई स्त्रीकी ओर दृष्टि नहीं करते, उन लोगोंकी जो गति होती है, तुम्हारी भी वही गति होवे ॥ (३०—३२)

हे पुत्र ! जो पुरुष अभिमान रहित होकर सब प्राणियोंको प्रिय दृष्टिसे देखते हैं, जो लोग दूसरेके मर्मपीडक नहीं बनते, जो क्षमावान् होते हैं, उन सम्पूर्ण पुरुषोंकी जो गति होती है, तुम्हारी भी वही गति होवे ॥ हे पुत्र ! जो पुरुष मधु मांस भक्षण करनेसे निवृत्त रहते हैं, जो लोग क्रोध अभिमान मिथ्या व्यवहारोंको त्याग देते हैं, और जो दूसरेको दुःख देनेकी इच्छा नहीं करते उन लोगोंकी जो गति होती है, तुम्हें वही गति मिले॥ हे पुत्र ! लज्जाशील, सब शास्त्रोंके जाननवाले, ज्ञानसे तृप्त हुए, जितेन्द्रिय साधु पुरुषोंको जो गति मिलती है तुम्हेंभी वही गति मिले॥ ३३-३५

हे राजन् ! विराट राजाकी कन्या उत्तराके सहित सुभद्रा शोक और दुःखसे

ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः ।
उन्मत्तवत्तदा राजन्विसंज्ञा न्यपतन्क्षितौ ॥ ३७ ॥
सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितां भृशदुःखितः ।
सिक्त्वाऽम्भसा समाश्वास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः॥३८॥
विसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपनीम् ।
भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥
सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम् ।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४० ॥
ये चाऽन्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने ।
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः ॥ ४१ ॥
कुर्याम तद्वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः ।
कृतवान्यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२ ॥
एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम् ।
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिन्दमः ॥ ४३ ॥

पीडित होकर इसी प्रकारसे विलाप करती हुई रुदन कर रही थीं उस ही समयमें द्रौपदी वहांपर आके उपस्थित हुई। वे तीनों अत्यन्तही कातर होकर अपनी शक्तिके अनुसार रुदन और विलाप करती हुई उन्मत्तके समान चेतरहित होकर पृथ्वीमें गिर पडी। ॥ (३६-३७)

पुण्डरीकाक्ष कृष्ण जल आदि सामग्रियोंके सहित वहांपर उपस्थित थे वह अत्यन्त ही दुःखित स्त्रियोंको जलके छींटेसे सावधान कर समयके अनुसार धीरज धारण कराके दुःखित चेतरहितके समान रोदन करनेवाली और कांपती हुई शरीरसे युक्त अपनी बहिन सुभद्रासे यह वचन बोले, हे सुभद्रे ! तुम पुत्रके निमित्त शोक मत करो, हे द्रौपदी ! शोक त्याग करके उत्तराको धीरजदान करो। क्षत्रियोंमें मुख्य अभिमन्युने प्रसिद्ध उत्तम गति प्राप्त किया है ॥ (३८-४०)

हे वरानने ! तुम लोगोंके कुलमें और दूसरे जो सब मनस्वी पुरुष हैं, वे सब लोग भी अभिमन्युके समान ही श्रेष्ठगति लाभ करें, तुम्हारा पुत्र महाबलवान् अभिमन्युने अकेले ही जैसा कर्म किया है हम लोगोंके इष्ट मित्र और हम सब कोई भी युद्धभूमिमें वैसे ही कर्मोंको कर सके ॥ (४१-४२)

शत्रुनाशन महाबाहु कृष्ण अपनी बहिन सुभद्रा द्रौपदी और उत्तराको ऐसे ही वचनोंसे धीरज देकर अर्जुनके

ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान्कृष्णो बन्धूंस्तथाऽर्जुनम् ।
विवेशाऽन्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथाऽऽलयम् ॥ ४४ ॥ [२७७७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राप्रविलापे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

सञ्जय उवाच— ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याऽप्रतिमं विभुः ।
स्पृष्ट्वाऽम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे ॥ १ ॥
सन्तस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसन्निभैः ।
ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः ॥ २ ॥
अलञ्चकार तां शय्यां परिवार्याऽऽयुधोत्तमैः ।
ततः स्पृष्टोदके पार्थे विनीताः परिचारकाः ॥ ३ ॥
दर्शयन्तोऽन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम् ।
ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम् ॥ ४ ॥
अलंकृत्योपहारं तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् ।
स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥
सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय व्रजाम्यहम् ।

समीप उपस्थित हुए ॥ हे राजन् ! तिसके अनन्तर कृष्णने अर्जुन उनके भाईयों तथा दूसरे सम्पूर्ण राजाओंसे समयके अनुसार बातचीत करके अन्तःपुरमें प्रवेश किया और उन सम्पूर्ण राजाओंने भी अपने अपने शिबिरोंमें गमन किया ॥ (४३–४४) [२७७७]

द्रोणपर्वमें अठत्तर अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें उनासी अध्याय ।

सञ्जय बोले, तिसके अनन्तर पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनके भवनमें जाकर आचमन करके विधिपूर्वक शुभलक्षण युक्त स्थण्डिलमें वैदूर्य मणियोंके समान कुशसे शुभशय्या तैयार किया, फिर उत्तम उत्तम अस्त्र शस्त्रोंको चारों ओर उस शय्याके रक्षाके निमित्त स्थापित किया; और मङ्गलकारी सुगन्धित माला और शुभ वस्त्रोंसे उसे अलंकृत किया। तिसके अनन्तर जब अर्जुनने आचमन किया, तब परिचारकोंने रात्रिमें कही हुई रीतिके अनुसार शिवबलि उनके सम्मुख तैयार करी। अनन्तर अर्जुनने प्रीतिपूर्वक उत्तम मालाओंसे कृष्णको अलंकृत करके रात्रिविहित सम्पूर्ण उपहारोंको उन्हें समर्पण किया ॥ (१–५)

कृष्णने हंसके अर्जुनसे यह वचन कहा, हे अर्जुन तुम सुखसे शयन करो,

स्थापयित्वा ततो द्वास्थान्गोप्तॄंश्चाऽऽत्तायुधान्नरान् ॥६॥
दारुकानुगतः श्रीमान्विवेश शिबिरं स्वकम् ।
शिश्ये च शयने शुभ्रे बहु कृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥
पार्थाय सर्वं भगवाञ्शोकदुःखापहं विधिम् ।
व्यदधात्पुण्डरीकाक्षस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ॥ ८ ॥
योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेषामीश्वरेश्वरः ।
श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियङ्करः ॥ ९ ॥
न पाण्डवानां शिबिरे कश्चित्सुष्वाप तां निशाम् ।
प्रजागरः सर्वजनं ह्याविवेश विशाम्पते ॥ १० ॥
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ॥ ११ ॥
तत्कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा ।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् ॥ १२ ॥
कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः स ताम् ॥ १३ ॥

मैं तुम्हारे कल्याणके निमित्त गमन करता हूं, ऐसा वचन कहकर वसुदेवनन्दन कृष्णने अर्जुनके शिबिरमें दरवाजेपर पुरुषोंको खडाकर दारुक सारथीके सहित अपने शिबिरमें गमन किया। अनन्तर कृष्णने इस उपस्थित वृहत् कार्यकी चिन्ता करतेहुए शुभ शय्यापर शयन किया ॥ पृथ्वीके बीच राजाओंके भी स्वामी अर्जुनके प्यारे मित्र यदुवंशीय और पाण्डवोंके यशको बढानेवाले भगवान् कृष्ण योग अवलम्बन करके अर्जुनके निमित्त उसके तेजकी वृद्धि और शोक तथा दुःखके दूर करनेवाले सम्पूर्ण उपायोंका अनुष्ठान करने लगे ॥ (५-९)

हे राजेन्द्र! उस रात्रिको पाण्डवोंके शिबिरोंमें किसीको भी निद्रा न हुई, सब पुरुष जागते ही रह गये ॥ शत्रुनाशन महाबाहु गाण्डीव धनुष ग्रहण करनेवाले महात्मा अर्जुनने पुत्र शोकसे दुःखित तथा क्रुद्ध होकर जो सहसा जयद्रथके निमित्त प्रतिज्ञा किया है उसे वह किस प्रकारसे पूर्ण कर सकेंगे; ऐसा ही विचारते हुए सम्पूर्ण पाण्डवोंकी ओरके योद्धा चिन्ता करने लगे ॥ वे सब आपसमें कहने लगे, कि महात्मा अर्जुनने इस अत्यन्त ही कठिन कर्मके करनेका निश्चय किया है; वह राजा जयद्रथ महाबली तथा पराक्रमी है और अर्जुनने पुत्र

पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता।
भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च ॥ १४ ॥
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम्।
स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनञ्जयः ॥ १५ ॥
जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयत्वर्जुनो व्रतम्।
श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति ॥ १६ ॥
न ह्यसावनृतं कर्त्तुमलं पार्थो धनञ्जयः।
धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥ १७ ॥
तस्मिन्हि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः।
यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चिद्यदि दत्तं हुतं यदि ॥ १८ ॥
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन्।
एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥ १९ ॥
कृच्छ्रेण महता राजन्रजनी व्यत्यवर्त्तत।
तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥ २० ॥

शोकसे क्रुद्ध होकर कठिन प्रतिज्ञा किया है। हम लोग विधातासे प्रार्थना करते हैं, कि अर्जुन इस प्रतिज्ञासे पार होवे ॥ (१०—१४)

दुर्योधनके सम्पूर्ण भ्राता महापराक्रमी हैं और सेना भी उनके समीपमें बहुतसी वर्त्तमान है, उस समस्त सेनाको दुर्योधनने जयद्रथकी रक्षाके निमित्त नियुक्त किया है, जो हो अर्जुन युद्धमें जयद्रथका वध करके कुशल पूर्वक फिर लौटे तथा शत्रुओंको पराजित करके अपनी प्रतिज्ञासे पार होजावे! अगर अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथका वध नहीं करेंगे,तो अवश्य ही अग्निमें प्रवेश करके प्राणत्याग करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है ॥ (१४–१७)

अर्जुनके न रहने पर धर्मराज युधिष्ठिर कभी भी जीवित न रहेंगे, क्योंकि अर्जुनहीके ऊपर वे सम्पूर्ण विजयके कार्यको निर्भर किये हैं। हमलोगोंने दान, होम वा दूसरे और भी जो कुछ पुण्यदायक कर्मोंको किये हैं, उन्हीं कर्मोंके फलोंसे अर्जुन शत्रुओंको जीतके अपनी प्रतिज्ञासे पार होवें ॥ अर्जुनके इसी प्रकारसे विजयकी अभिलाष करके आपसमें वार्त्तालाप करते हुए उन सम्पूर्ण पुरुषोंकी अत्यन्त कष्टसे रात्रि व्यतीत हुई ॥ (१७–२०)

उस ही रात्रिके समय जनार्दन कृष्ण निद्रासे सावधान होकर अपने दारुक

स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ।
अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतबन्धुना ॥ २१ ॥
जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक ।
तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति ॥ २२ ॥
यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे ।
अक्षौहिण्यो हिताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम् ॥ २३ ॥
द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः ।
एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवदर्पहा ॥ २४ ॥
सोऽपि तं नोत्सहेताऽऽजौ हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ।
सोऽहं श्वस्तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः ॥ २५ ॥
अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् ।
न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः ॥ २६ ॥
कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममाऽर्जुनात् ।
अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्त्तमपि दारुक ॥ २७ ॥
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत्तथा ।
अहं विजित्य तान्सर्वान्सहसा सहयद्विपान् ॥ २८ ॥

सारथीसे यह वचन बोले, हे दारुक ! अर्जुनने पुत्रवधसे कातर और क्रुद्ध हो कर जो जयद्रथके वध करनेके निमित्त प्रतिज्ञा किया है; दुर्योधनने उस प्रतिज्ञाको सुनकर मन्त्रियोंके सहित यह विचार किया है, कि जिससे अर्जुन युद्धभूमिमें जयद्रथका वध न करसकें ही उपाय करा जावे इससे दुर्योधनकी जो संपूर्ण अक्षौहिणी सेना है वह जयद्रथकी रक्षा करेगी ॥ (२०--२३)

सब अस्त्रोंके मर्मको जाननेवाले धनुर्द्धारी द्रोणाचार्य भी अपने पुत्रके सहित जयद्रथकी रक्षा करेंगे । युद्धभूमि में द्रोणाचार्य जिसकी रक्षा करेंगे दैत्यदानवोंके नाश करनेवाले देवतोंके स्वामी साक्षात् इन्द्रभी उस पुरुषका वध करनेमें उत्साह नहीं कर सकते । इससे अर्जुन सूर्यके अस्त होने तक जिससे जयद्रथका वध कर सकें, मैं कल्ह वैसे ही उपायका विधान करूंगा मुझे कुन्तीपुत्र अर्जुनसे बढके स्त्री मित्र जाति बन्धु बान्धव कोई भी प्रिय नहीं है। २४--२७

हे दारुक ! मैं इस जगत्को मुहूर्त्त मात्र भी अर्जुनसे सुना न देख सकूंगा, ऐसा होगा भी नहीं । मैं कल्ह अर्जुनके निमित्त हाथी रथ घोडोंसे युक्त कौरवों

अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान्ससुयोधनान् ।
श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ॥ २९ ॥
धनञ्जयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक ।
श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ॥ ३० ॥
साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक ।
श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ॥ ३१ ॥
मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् ।
श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३२ ॥
ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः ।
यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चाऽनु स मामनु॥ ३३ ॥
इति सङ्कल्प्य तां बुद्ध्या शरीरार्धं ममाऽर्जुनः ।
यथा त्वं मे प्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम्॥ ३४ ॥
कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रज संयतः ।
गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान्॥ ३५ ॥
आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च ।
स्थानं च कल्पयित्वाऽथ रथोपस्थे ध्वजस्य मे ॥ ३६ ॥

की सपूर्ण सेना और कर्ण तथा दुर्योधनको पराजित करके उनका संहार करूंगा । हे दारुक ! कल्ह मैं अर्जुनके निमित्त युद्धभूमिमें अपना पराक्रम करूंगा । मेरे बल वीर्य और पराक्रमको कल्ह तीनों लोकके प्राणी देखेंगे। कल्ह सहस्रों राजा तथा सैकडों राजपुत्र घोडे हाथी और रथोंके सहित युद्धभूमिसे भाग जावेंगे ॥ (२७-३१)

तुम देखोगे, कि कल्ह मैं पाण्डवोंके निमित्त युद्धभूमिमें क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण राजाओंकी सेनाको चक्रसे विडराते हुए उन शत्रु-सेनाके पुरुषोंका वध करूंगा। अर्जुन जो मेरा प्यारा मित्र है, इस बातको कल्ह देवता गन्धर्व सर्प पिशाच और राक्षस आदि सम्पूर्ण प्राणी भली भांति समझ जावेंगे। जो अर्जुनसे शत्रुता करता है वह मेरा भी शत्रु है, जो अर्जुनका मित्र है वह मेरा भी मित्र ही है ऐसा क्या अर्जुनको तुम मेरा आधा शरीर जानो ॥ (३१-३४)

हे सूत ! इससे रात बीतने पर सवेरे ही तुम मेरे उत्तम रथको शास्त्र विधिसे तैयार रखना । कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति, चक्र, धनुष बाण तथा दूसरी युद्धके उपयोगी समस्त वस्तुओंको

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा.)

REGISTERED NO. B. 1819

[द्रोणपर्व ५]

महाभारत ।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः।
छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसप्रभैः ॥ ३७ ॥
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान्।
बलाहकं मेघपुष्पं शैब्यं सुग्रीवमेव च ॥ ३८ ॥
युक्तान्वाजिवरान्यत्तः कवची तिष्ठ दारुक।
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम् ॥ ३९ ॥
श्रुत्वा च भैरवं नादमुपेयास्त्वं जवेन माम्।
एकाह्नाऽहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह ॥ ४० ॥
भ्रातुः पैतृष्वसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक।
सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४१ ॥
पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम्।
यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति ॥
आशंसे सारथे तत्र भविताऽस्य ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥

दारुक उवाच— जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः।
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ४३ ॥
एवं चैतत्करिष्यामि यथा मामनुशाससि।

रथमें सज्जितकरके रखना और युद्धभूमिमें शोभायमान मेरे वीर गरुडध्वजाको भी रथके ऊपर लगा रखना। हे दारुक! अनन्तर बलाहक, मेघपुष्प, शैब्य और सुग्रीव इन चारों घोडोंको विश्वकर्माके बनाये हुए सूर्यके समान प्रकाशमान दिव्य सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित करके रथमें नियुक्त करके कवच पहन कर सावधान रहना॥ (३४-३९)

जब मेरे अत्यन्त भयङ्कर पाञ्चजन्य शंखके ऋषभ शब्दको सुनना उस ही समय शीघ्र रथको लेकर युद्धभूमिमें मेरे समीप आगमन करना। हे दारुक! मैं एक ही दिनमें अपने फूफे तथा फुफेरे-भाइयोंके क्रोध और सम्पूर्ण दुःखोंको दूर कर दूंगा। अर्जुन जिसमें सम्पूर्ण धार्त्तराष्ट्रोंके संमुख ही में जयद्रथका वध कर सके, मैं सब भांतिसे वही उपाय और यत्न करूंगा। हे सारथी! अर्जुन जिसका वध करनेके निमित्त यत्न करेंगे उस पुरुषको वह अवश्य युद्धमें जीतेंगे; मैं ऐसीही अभिलाप करता हूं। (३९-४२)

दारुक बोला, हे पुरुषोत्तम! आप जिसके सारथी हुए हैं उसकी पराजय किस प्रकार हो सकती है! अवश्य ही उसकी जय होवेगी। आपने जिस प्रकार

सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि ॥ ४४ ॥ [२८२१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदारुकसंभाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

सञ्जय उवाच— कुन्तिपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनञ्जयः।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्मुमोहाऽचिन्त्यविक्रमः ॥ १ ॥
तं तु शोकेन सन्तप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम्।
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः ॥ २ ॥
प्रत्युत्थानं च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनञ्जयः।
न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ॥ ३ ॥
प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ।
न चाऽऽसने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यदधात्तदा ॥ ४ ॥
ततः कृष्णो महातेजा जानन्पार्थस्य निश्चयम्।
कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥ ५ ॥
मा विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः।
कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ ॥ ६ ॥

से मुझे आज्ञा दिया है, कल्ह सबेरे अर्जुनकी जयके निमित्त मैं वैसा ही कार्य करूंगा ॥ (४३–४४) [२८२१]

द्रोणपर्वमें उनासी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें अस्सी अध्याय।

सञ्जय बोले, इधर अत्यन्त पराक्रमी कुन्तीपुत्र अर्जुन द्रोणाचार्य आदि महा-वीर शस्त्रधारी पुरुषोंके पराक्रमसे जयद्रथ की रक्षाका समाचार सुनके चिन्ता करने लगे, कि मेरी प्रतिज्ञा किस प्रकार-से पूर्ण हो सकेगी! यही सोचते विचार-ते हुए अर्जुन निद्रित होगये। महा-तेजस्वी कृष्ण शोक और दुःखसे युक्त अर्जुनके समीप स्वप्नमें उपस्थित होगये। किसी अवस्थामें क्यों न रहें परन्तु कृष्ण को अपने समीपमें आया हुआ देखकर अर्जुन भक्ति और प्रेम पूर्वक उठके खडे होनेमें त्रुटि नहीं करते थे ॥ इस समय उन्होंने कृष्णको देखकर स्वप्नमें भी बैठने के वास्ते आसन प्रदान किया; परन्तु उस समयमें स्वयं बैठनेकी इच्छा नहीं करी ॥ (१—४)

अनन्तर महातेजस्वी कृष्ण अर्जुनके मनके दुःखको जान कर बैठके उनसे यह वचन बोले ॥ हे अर्जुन! तुम शोक मत करो, क्योंकि कालकी बात जानी नहीं जाती ॥ काल ही सम्पूर्ण प्राणियोंको अवश्य होनेवाले विषयोंमें लगा देता

किमर्थं च विषादस्ते तद् ब्रूहि द्विपदां वर ।
न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः ॥ ७ ॥
यत्तु कार्यं भवेत्कार्यं कर्मणा तत्समाचर ।
हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनञ्जय ॥ ८ ॥
शोचन्नन्दयते शत्रून्कर्शयत्यपि बान्धवान् ।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥
इत्युक्तो वासुदेवेन बीभत्सुरपराजितः ।
आबभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत् ॥ १० ॥
मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता ।
श्वोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव ॥ ११ ॥
मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्त्तराष्ट्रैः किलाऽच्युत ।
पृष्ठतः सैन्धवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः ॥ १२ ॥
दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः ।
हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया ॥ १३ ॥
ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः ।

है । हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! तुम किस निमित्त शोक विषाद करते हो उस वृत्तान्तको मेरे समीपमें वर्णन करो । विद्वान् पुरुष किसी विषयमें भी कभी शोक नहीं करते; शोक ही कार्यविनाश का मूल है । इससे जो कार्य करना है, उसका अनुष्ठान करो; क्योंकि चेष्टा न करनेवाले पुरुषोंको जो शोक होता है; वही उनका शत्रु होजाता है ॥ शोकित होनेसे शत्रुलोग आनन्दित होते हैं तथा अपने अनुयायि बन्धु बान्धवोंको दुःख उत्पन्न होता है; और शोक करनेवाला पुरुष अपना भी नाश करता है, इससे तुम शोक से व्याकुल क्यों होते हो ? कहो । (४-९)

महाबुद्धिमान् अपराजित, अर्जुनसे जब श्रीकृष्णने ऐसे वचन कहे, तब अर्जुन उनसे यह अर्थयुक्त वचन बोले; हे कृष्ण ! " मैं अपने पुत्रके वध करने वाले जयद्रथका वध करूंगा " यह जो मैंने बहुत कठिन प्रतिज्ञा किया है, उस ही प्रतिज्ञाके भङ्ग करनेके वास्ते धृत-राष्ट्रकी ओर के सम्पूर्ण महारथ वीर योद्धा लोग जयद्रथको अपने पीछे करके उसे रक्षा करेंगे । (१०-१२)

हे कृष्ण ! उनकी दुःखसे जीती जाने योग्य ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके बीच केवल एक अक्षौहिणी सेना नष्ट-

कथं शक्येत सन्द्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः ॥ १४ ॥
प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव ।
प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवति मद्विधः ॥ १५ ॥
दुःखोपायस्य मे वीर विकांक्षा परिवर्त्तते ।
द्रुतं च याति सविता तत एतद्ब्रवीम्यहम् ॥ १६ ॥
शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
संस्पृश्याऽम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवस्थितः॥१७॥
इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती ॥ १८ ॥
पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् ।
येन सर्वान्मृधे दैत्याञ्जघ्ने देवो महेश्वरः ॥ १९ ॥
यदि तद्विदितं तेऽद्य श्वो हन्तासि जयद्रथम् ।
अथाऽज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥ २० ॥
तं देवं मनसा ध्यात्वा जोषमास्व धनञ्जय ।

हुई है; बाकी दश अक्षौहिणी सेनाके सहित सम्पूर्ण महारथ योद्धा उस दुष्टात्मा जयद्रथको चारों ओरसे घेरकर उसकी रक्षा करेंगे । जब सम्पूर्ण महारथ योद्धा लोग दश अक्षौहिणी सेनाके सहित उसकी रक्षा करेंगे तब मैं उसकी ओर कैसे देख सकूंगा॥ हे कृष्ण! अत्यन्त कठिन तथा दुःखसे सिद्ध होनेवाले कर्मको करनेके निमित्त मेरी अभिलाषा हुई है, विशेष करके आजकल्ह सूर्य बहुत जलदी अस्त होजाते हैं; इसहीसे मैं ऐसा वचन कह रहा हूं—कि मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न होसकेगी और प्रतिज्ञा भङ्ग होनेसे मेरे समान पुरुष कैसे जीवित रह सकेगा ? (१३–१६)

महा तेजस्वी कमलनेत्रवाले गरुड ध्वज कृष्णने अर्जुनके ऐसे शोकयुक्त वचनोंको सुनकर पूर्व ओर मुंह करके आचमन किया और फिर खडे होकर अर्जुनके हितके निमित्त सिन्धुराजके वधके विषयमें उनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन ! देवोंके देव महादेवने युद्धमें जिस अस्त्रोंसे सम्पूर्ण दैत्योंका नाश किया था वही पाशुपत नामक सनातन परम अस्त्र यदि तुमको इस समयमें विदित होगा, तो तुम कल्ह जयद्रथका वध कर सकोगे; परन्तु यदि वह पाशुपत अस्त्र तुम्हें अविदित होवे, तो तुम अपने मनही मन वृषभध्वज महादेवका ध्यान करो ॥ हे अर्जुन ! तुम भक्ति-

ततस्तस्य प्रसादात्त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत् ॥२१॥
ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याऽम्भो धनञ्जयः ।
भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम् ॥ २२ ॥
ततः प्रणिहितो ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
आत्मानमर्जुनोऽपश्यद्गगने सहकेशवम् ॥ २३ ॥
पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तं च पर्वतम् ।
ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २४ ॥
वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः ।
केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥ २५ ॥
प्रेक्षमाणो बहून्भावाञ्जगामाऽद्भुतदर्शनान् ।
उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतम्॥२६॥
कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् ।
सरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम् ॥ २७ ॥
सदापुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् ।
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम् ॥ २८ ॥

पूर्वक उन ही देवोंके देव महादेवका ध्यान करते हुए उनका जप करते रहो; तो तुम उन महेश्वरकी कृपासे उस पाशुपत नामक परम अस्त्रको पाओगे । (१७-२१)

अर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्रके वचनको सुनकर पृथ्वीपर बैठकर आचमन किया और एकाग्रचित्त होकर महादेवका ध्यान करने लगे ॥ तिसके अनन्तर शुभ ब्राह्म मुहूर्त्तमें तैयार होकर अर्जुन कृष्णके सहित महादेवके दर्शन करनेके वास्ते आकाश मार्गसे गमन करने लगे ॥ जाते जाते प्रकाशमान, सिद्ध चारणोंसे सेवित हिमालय पर्वत के पुण्य-अत्यन्त-गिरि और मणिवान् पर्वत को देखा ॥ (२२-२४)

अर्जुन कृष्णके दहिने हाथको पकडते हुए उनके सङ्ग वायुके समान वेगवान् गतिसे आकाश मार्गसे गमन करने लगे ॥ उन दोनों महात्माओंने उत्तर दिशामें अनेक प्रकारके अद्भुत भावोंको देखते देखते श्वेतपर्वतको अवलोकन किया ॥ अनन्तर कुबेरका विहार स्थान, अत्यन्त रमणीय,जलसे युक्त सदा सर्वदा फूल और फलोंसे शोभित,नाना प्रकारसे मृगआदि सुन्दर पशु पक्षियोंसे युक्त जगह जगह पुण्यात्मा महात्माओंके आश्रम और मनोहर बोली बोलनेवाले पक्षियोंसे

पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् ।
मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् ॥ २९ ॥
हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान् ।
तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ॥ ३० ॥
स्निग्धाञ्जनचयाकारं सम्प्राप्तः कालपर्वतम् ।
ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चाऽन्यास्तथा जनपदानपि ॥ ३१ ॥
स तुङ्गं शतशृङ्गं च शर्यातिवनमेव च ।
पुण्यमश्वशिरःस्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ॥ ३२ ॥
वृषदंशं च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च ।
अप्सरोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम् ॥ ३३ ॥
तस्मिञ्शैले व्रजन्पार्थः सकृष्णः समवैक्षत ।
शुभैः प्रस्रवणैर्जुष्टां हेमधातुविभूषिताम् ॥ ३४ ॥
चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् ।
समुद्रांश्चाऽद्भुताकारानपश्यद्बहुलाकरान् ॥ ३५ ॥
वियद्द्यां पृथिवीं चैव तथा विष्णुपदं व्रजन् ।
विस्मितः सह कृष्णेन क्षिप्तो बाण इवाऽभ्यगात् ॥३६॥

शोभायमान पद्मपुष्प और कुमुदिनी पुष्पोंसे युक्त मनको हरनेवाली गङ्गाको देखा।(२५–२९)

तिसके अनन्तर सोने रूपेके शृङ्गोंसे शोभित प्रकाशमान् फूले हुए मन्दारके वृक्षोंसे लहलहाते हुए मन्दर गिरिका स्थान उन लोगोंको दृष्टिगोचर हुआ ॥ तिसके अनन्तर उन्होंने अञ्जनवर्णके समान कैलास पर्वतको ब्रह्मतुङ्ग और दूसरी कई एक नदी तथा जीवजन्तुओंसे युक्त देखा। फिर उत्तम एक सौ शृङ्गोंसे युक्त पर्वत, शर्यातिवन, पुण्य अश्वशिरका स्थान, अथर्वणका स्थान, अप्सरा और किन्नरोंसे शोभित पर्वतोंमें श्रेष्ठ वृषदंश और महामन्दरगिरि देख पडे। (२९–३३)

कृष्णके सहित अर्जुन उस ही पर्वत पर गमन करने लगे; वहांपर गमन करते हुए शुभ झरनोंसे युक्त सुवर्ण धातुसे भूषित चन्द्रकिरणके समान प्रकाशमान पुररूपी माला से युक्त पृथ्वी और सम्पूर्ण रत्नोंके आकर स्थान (खान) समुद्रोंको देखा। फिर धनुषसे छूटे हुए बाणवेगके समान कृष्णके सहित अर्जुनने विस्मित होकर आकाश पृथ्वी, स्वर्ग तथा अन्तरिक्षमें गमन किया ॥ (३४–३६)

ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विषम् ।
अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥ ३७ ॥
समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् ।
तपोनित्यं महात्मानमपश्यद्वृषभध्वजम् ॥ ३८ ॥
सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम् ॥ ३९ ॥
नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् ।
पार्वत्या सहितं देवं भूतसङ्घैश्च भास्वरैः ॥ ४० ॥
गीतवादित्रसन्नादैर्हास्यलास्यसमन्वितम् ।
वल्गितास्फोटितोत्क्रुष्टैः पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥ ४१ ॥
स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ॥ ४२ ॥
वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् ।
पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥ ४३ ॥
लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् ।
मनसः परमं योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम् ॥४४॥

वहां पर ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान एक सुन्दर पर्वत देखा ॥ उस पर्वतपर जाके देखा कि पर्वतके आगेके हिस्सेमें स्थित तपस्यामें रत महात्मा वृषभध्वज महादेव बैठे हुए हैं ॥ त्रिशूल ग्रहण करनेवाले जटाधारी भगवान् महादेव अपने तेजसे सहस्रों सूर्यके समान प्रकाशित होरहे हैं। उनके वल्कल वसन मृगछाला और उनका शरीर सहस्रों नेत्रोंसे विचित्र रूपका दिखाई दे रहा है। वह महा-तेजस्वी महादेव पार्वतीके सहित उसही प्रकाशमान पर्वतपर विराजमान होरहे हैं। (३७-४०)

सुन्दर मीठे और मनोहर गीत और बाजोंके सहित वह सुन्दर पर्वत जगमगा रहा है; पुण्यजनक सुगन्धियोंसे वह शोभित होरहा है; और ब्रह्मवादी मुनि लोग दिव्य स्तोत्रोंसे उस धनुर्द्धर अच्युत देवोंके देव सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले महादेवकी स्तुति कर रहे हैं ॥ (४१-४२)

अर्जुनके सहित महात्मा कृष्णने उनका दर्शन करके पृथ्वीपर मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया, और वह सम्पूर्ण लोकोंके रचनेवाले जन्मरहित

स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम्।
देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम् ॥ ४५ ॥
योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदां निधिम्।
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहर्तारमेव च ॥ ४६ ॥
कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम्।
ववन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोबुद्धिकर्मभिः ॥ ४७ ॥
यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः।
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम् ॥ ४८ ॥
अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽप्यवन्दत।
ज्ञात्वा तं सर्वभूतादिं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ ४९ ॥
ततस्तावागतौ दृष्ट्वा नरनारायणावुभौ।
सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ॥ ५० ॥
स्वागतं वो नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतक्लमौ।
किं च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यताम् ॥५१॥

ईशान, अव्यय, मनकी परम उत्पत्तिका स्थान, आकाशस्वरूप, वायुरूपी, ज्योतिके सागर, जलधारा के आधारस्वरूप, पृथ्वी के परम प्रकृति, देवता, दानव, यक्ष और मनुष्योंके भावन, योगगम्य परब्रह्म, ब्रह्मज्ञानियों के निधिस्वरूप सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के उत्पन्नकर्त्ता और संहार करनेवाले, कालस्वरूप, कोपयुक्त, महात्मा, इन्द्र और सूर्यके गुणोंको प्रकाशित करनेवाले, देवोंके ईश्वर वृषभध्वजको वचन मन और बुद्धिसे नमन करने लगे ॥ (४३—४७)

विद्वान् पुरुष सूक्ष्म अध्यात्म उपदेशोंसे जिनका ध्यान करते हैं, कृष्ण और अर्जुन उस ही अज अविनाशी, कारणात्मा महादेवके शरणमें उपस्थित हुए ॥ अर्जुनने उनको भूत भविष्य और वर्त्तमान कालके उत्पादक जानकर बार बार स्तुति करके उन्हें प्रणाम किया ॥ (४८-४९)

तिसके अनन्तर सम्पूर्ण देवतोंके स्वामी महादेव उन दोनों महात्मा नर-नारायणको अपने समीपमें आये हुए देखके प्रसन्नतापूर्वक हंसकर उनसे यह वचन बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम लोगोंका शुभ आगमन हुआ है, तुम लोगोंकी थकावट दूर होवे, तुम लोग उठके खडे होजाओ, हे वीर पुरुषो ! तुम्हारे मनमें कौनसी अभिलाषा है, वह शीघ्र ही मुझसे प्रकट करो; तुम लोग जिस कार्य

येन कार्येण सम्प्राप्तौ युवां तत्साधयामि किम् ।
म्रियतामात्मनः श्रेयस्तत्सर्वं प्रददामि वाम् ॥ ५२ ॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली ।
वासुदेवार्जुनौ शर्वं तुष्टुवाते महामती ॥ ५३ ॥
भक्त्या स्तवेन दिव्येन महात्मानावनिन्दितौ ॥ ५४ ॥
कृष्णार्जुनावूचतुः-नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ५५ ॥
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये ।
ईशानाय मखघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥ ५६ ॥
कुमारगुरवे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे ।
पिनाकिने हविष्याय सत्याय विभवे सदा ॥ ५७ ॥
विलोहिताय धूम्राय व्याधायाऽनपराजिते ।
नित्यनीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥ ५८ ॥
होत्रे पोत्रे त्रिनेत्राय व्याधाय वसुरेतसे ।
अचिन्त्यायाऽम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥ ५९ ॥
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ।

के निमित्त मेरे समीपमें आये हो उसे मैं सिद्ध करूंगा, तुम लोग अपने कल्याण के निमित्त जिस वस्तु की प्रार्थना करोगे, उसे मैं अवश्य प्रदान करूंगा ॥ (५०-५२)

तिसके अनन्तर महाबुद्धिमान् कृष्ण और अर्जुन उनके वचनोंको सुनके खडे हुए और हाथ जोडके विनयपूर्वक स्तुति वचनोंसे उनकी स्तुति करने लगे-हे प्रभो! तुम भव, शर्व, वरदान देनेवाले, पशुपति, नित्य, उग्र और कपर्दी हो; हम लोग तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ तुम महादेव, भीम, त्र्यम्बक, शान्ति, ईशान, दक्ष यज्ञके नाशक और अन्धकासुरके संहार करनेवाले हो, इससे तुम्हें नमस्कार है ॥ तुम कुमार स्वामि कार्त्तिकके पिता, नीलग्रीव, वेधा, पिनाकी, हवि दान करने योग्य पात्र, सत्य और सर्वदा विभु हो, इससे तुम्हें नमस्कार है ॥ तुम विशेषरूपसे लोहितवर्ण, धूम्ररूप, अपराजित, नीलचूड, त्रिशूलधारी और दिव्य नेत्रवाले हो इससे हम लोग तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ (५३-५८)

तुम होता, पोता, त्रिनेत्र, व्याधरूप, वसुरेता, अचिन्त्य, अम्बिकापति और सब देवोंके द्वारा स्तुति करने योग्य हो ॥ इससे

तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाऽजिताय च ॥ ६० ॥
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते।
नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ॥ ६१ ॥
ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च।
नमोऽस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥ ६२ ॥
नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥ ६३ ॥
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे।
नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च ॥
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो॥ ६४ ॥
सञ्जय उवाच— एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः।
प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥ ६५ ॥ [२८८६]

इति श्रीमहाभारते० शतसाहस्र्यां० द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्वप्ने अशीतितमोऽध्यायः ॥८० ॥

सञ्जय उवाच— ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्वृषभध्वजम्।

तुम्हें नमस्कार है ॥ तुम वृषभध्वज, पिङ्ग जटाधारी जलके बीच तपस्या करनेवाले, ब्रह्मण्य और अजित हो; इससे हम लोग तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ तुम विश्वआत्मा, विश्वस्रष्टा, और संसारके बीच व्यापक होके स्थित होरहे हो इससे हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम सबके सेव्य और सम्पूर्ण प्राणी तुम्हारे सेवक हैं तुम्हें वार वार नमस्कार हैं ॥ (५९-६१)

हे शिव! तुम वेदमुख सब प्राणियोंके ईश्वर वाचस्पति और प्रजापति हो; इससे हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। तुम जगत्के नियन्ता और महत्तत्वोंके नियन्ता और सहस्रशिरा हो, तुम्हारे क्रोधसे जीवोंका संहार होता है, तुम सहस्र नेत्र सहस्र भुजा और सहस्र चरणवाले हो इससे हम लोग तुम्हें नमस्कार करते हैं। हे प्रभु! तुम असंख्येय कर्मवाले, हिरण्यवर्ण, सुवर्ण कवचधारी और भक्तोंके ऊपर सदा कृपा करनेवाले हो, इससे तुम हम दोनोंकी प्रार्थना सिद्ध करो। (६२-६४)

सञ्जय बोले, श्रीकृष्ण चन्द्र और अर्जुनने उस समय अस्त्र प्राप्त करनेकी इच्छासे इसी प्रकारसे स्तुति करते हुए महादेवको प्रसन्न किया ॥ (६५) २८८६

द्रोणपर्वमें अस्सी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकासी अध्याय।

सञ्जय बोले, अनन्तर अर्जुनने प्रसन्न चित्त और प्रफुल्लित नेत्रसे तेजके

ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ १ ॥
तं चोपहारं सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मना ।
ददर्श त्र्यम्बकाभ्याशे वासुदेवनिवेदितम् ॥ २ ॥
ततोऽभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वं च पाण्डवः ।
इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शङ्करम् ॥ ३ ॥
ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थे वचनं तदा ।
वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥
स्वागतं वां नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेप्सितम् ।
येन कामेन सम्प्राप्तौ भवद्भ्यां तं ददाम्यहम् ॥ ५ ॥
सरोऽमृतमयं दिव्यमभ्याशे शत्रुसूदनौ ।
तत्र मे तद्धनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६ ॥
येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः ।
तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७ ॥
तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिषदैः सह ।
प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ॥ ८ ॥
निर्दिष्टं यद्वृषाङ्केन पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ।

आधार वृषभध्वज महादेवका दर्शन किया, और उस अवश्य करने योग्य रात्रिके समयमें जो उपहार कृष्णको निवेदन किया था उसे महादेवके समीप में अवलोकन किया ॥ अनन्तर अर्जुन शङ्कर और कृष्णकी मनही मन पूजा करके यह वचन बोले, मैं दिव्य अस्त्र-पानेकी इच्छा करता हूं ॥ (१-३)

जगत्के स्वामी महादेव अर्जुनकी प्रार्थना सुनकर हंसके कृष्ण अर्जुनसे यह वचन बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ दोनो वीर! तुम्हारे मनकी अभिलाष मुझे विदित हुई है तुम लोग जो अभिलाषा करके आये हो, मैं तुम्हें वही वर प्रदान करता हूं ॥ हे शत्रुओंके नाश करनेवाले! यह निकटहीमें जो अमृतमय दिव्य सरोवरमें दिव्य धनुष और बाण पहिलेसे ही रक्खा हुआ है ॥ इसही दिव्य अस्त्रसे युद्धमें मैंने देवताओंके शत्रु दैत्योंका नाश किया था; तुम लोग उस ही धनुष और बाणको उस सरोवरमेंसे उठाकर मेरे समीप ले आवो। (४-७)

कृष्ण अर्जुन दोनों वीरोंने जो आज्ञा कहके भगवान् शिव शङ्करके पारिषदोंके सहित दिव्य सैकडों ऐश्वर्योंसे युक्त उस दिव्यसरोवरमें अस्त्रके निमित्त प्रस्थान

तौ जग्मतुरसम्भ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥
ततस्तौ तत्सरो गत्वा सूर्यमण्डलसन्निभम् ।
नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेऽर्जुनाच्युतौ ॥ १० ॥
द्वितीयं चाऽपरं नागं सहस्रशिरसं वरम् ।
वमन्तं विपुला ज्वाला ददृशातेऽग्निवर्चसम् ॥ ११ ॥
ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्याऽम्भः कृताञ्जली ।
तौ नागावुपतस्थाते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥ १२ ॥
गृणन्तौ वेदविद्वांसौ तद्ब्रह्म शतरुद्रियम् ।
अप्रमेयं प्रणमतो गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥ १३ ॥
ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ ।
धनुर्बाणश्च शत्रुघ्नं तद् द्वन्द्वं समपद्यत ॥ १४ ॥
तौ तज्जगृहतुः प्रीतौ धनुर्बाणं च सुप्रभम् ।
आजह्रतुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने ॥ १५ ॥
ततः पार्श्वाद्वृषाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्त्तत ।
पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान्नीललोहितः ॥ १६ ॥

किया ॥ वृषभध्वज, देवोंके देव महादेवने जो पुण्यजनक सरोवर बतलाया था, नरनारायण दोनों ऋषि निर्भयचित्तसे उसही सरोवर पर जा पहुंचे ॥ वे दोनों सूर्यके समान उस सरोवर पर पहुंचके क्या देखते हैं, कि उस सरोवर में जलके बीच एक भयङ्कर सर्प दीख पड रहा है। और दूसरा अग्निके समान तेजवाला सर्प दीखने लगा। उसके शरीरसे अत्यन्त ही ज्वाला निकल रही है ॥ (८–११)

तिसके अनन्तर वेद जाननेवाले कृष्ण अर्जुनने आचमन करके हाथ जोड समीप खडे हुए और सब भांतिसे अविनाशी वृषभध्वज महादेवके शरणागत होकर विनय पूर्वक शतरुद्रियस्तुतिका पाठ करने लगे। तब वे दोनो महाभयङ्कर सर्प रुद्रका महात्म्य सुनकर अपने सर्प रूपको त्याग कर शत्रुओंके नाश करने वाले धनुष और बाणरूपसे दीख पडे ॥ (१२—१४)

तब कृष्ण और अर्जुनने उस प्रकाशमान धनुष्यबाणको ग्रहण करके महात्मा वृषभध्वज महादेवको समर्पण किया। उस समय पिङ्गलवर्णवाले नेत्रसे युक्त पीले और काले वर्णके शरीरसे शोभित तपस्याके आधार स्वरूप एक ब्रह्मचारी बलवान् पुरुषने महादेवके समीपसे उठके

स तद्गृह्य धनुःश्रेष्ठं तस्थौ स्थानं समाहितः ।
विचकर्षाऽथ विधिवत्सशरं धनुरुत्तमम् ॥ १७ ॥
तस्य मौर्वीं च मुष्टिं च स्थानं चाऽऽलक्ष्य पाण्डवः ।
श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जग्राहाऽचिन्त्यविक्रमः॥ १८ ॥
स सरस्येव तं बाणं मुमोचाऽतिबलः प्रभुः ।
चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन्सरसि तद्धनुः ॥ १९ ॥
ततः प्रीतं भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा ।
वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्करस्य च ॥ २० ॥
मनसा चिन्तयामास तन्मे सम्पद्यतामिति ।
तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद्वरं भवः ॥ २१ ॥
तच्च पाशुपतं घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम् ।
ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्वरात् ॥ २२ ॥
संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत ।
ववन्दतुश्च संहृष्टौ शिरोभ्यां तं महेश्वरम् ॥ २३ ॥

उस श्रेष्ठ धनुष बाणको ग्रहण किया । अनन्तर उसने बायां पांव आगे और दहिना पांव पीछे करके स्थिरचित्तसे सावधान होकर उस धनुषको विधिपूर्वक आकर्षण करके रोदा चढाया । उस समय महा पराक्रमी अर्जुनने जिस प्रकारसे मौर्वी आकर्षण करी गई जैसे मुट्ठीसे धनुष धारण किया गया; जिस भांतिसे चरण रखके खडा होना पडता है,—वह सम्पूर्ण देखकर और शिवके कहे हुए मन्त्रको सुनकर उस अस्त्रका ग्रहण किया ॥ (१५-१८)

उस अत्यन्त बलवान् वीर ब्रह्मचारी पुरुषने उस बाणोंको धनुष पर चढाके उस ही सरोवरमें छोड दिया, अनन्तर उस धनुषको भी फिर उस ही सरोवरमें फेंक दिया। तिसके अनन्तर स्मरणशक्ति-वाले अर्जुनने महादेवको प्रसन्न जानकर " वनमें शिवने जो मुझे वरदान किया था, वह सार्थक होवे ! " ऐसे वचन कहते हुए मनही मन चिन्ता करने लगे। महादेवने उनके मनकी अभिलाष जान-कर उस भयङ्कर पाशुपत अस्त्र और जयद्रथ वधकी प्रतिज्ञासे पार होनेका वर प्रदान किया ॥ (१९—२१)

दिव्य पाशुपत अस्त्रको सम्पूर्ण प्राणि-योंके ईश्वर महादेवके निकटसे फिर पाकर पराक्रमी अर्जुनके रोंएं खडे हो गये, अनन्तर अर्जुनने अपनेको कृतकार्थ समझा। महावीर असुरोंके नाश करनेवाले

अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन्भवेनाऽर्जुनकेशवौ।
प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥ २४ ॥
तथा भवेनाऽनुमतौ महासुरनिघातिना।
इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ जम्भस्य वधकांक्षिणौ ॥२५॥ [२९११]

इती श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्य पुनः पाशुपतास्त्रप्राप्तौ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच— तयोः संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तथा।
साऽत्यगाद्रजनी राजन्नथ राजाऽन्वबुध्यत ॥ १ ॥
पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किकाः।
वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम् ॥ २ ॥
नर्तकाश्चाऽप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः।
कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३ ॥
मृदङ्गा झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः।
आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः ॥ ४ ॥
एवमेतानि सर्वाणि तथाऽन्यान्यपि भारत।

इन्द्र और विष्णुने जिस प्रकार महादेवकी अनुमतिसे जम्भासुरके वधके वास्ते गमन किया था; उस ही प्रकारसे कृष्ण और अर्जुन दोनों वीर महादेवकी वन्दना करके प्रसन्न चित्तसे उसही समय उनकी अनुमति तथा आज्ञा पाकर अत्यन्त आनन्दित होकर अपने शिविरमें आकर उपस्थित हुए ॥ (२१–२५) [२९११]

द्रोणपर्वमें एकासी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें बियासी अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र! कृष्ण और दारुक सारथीकी ऐसी ही वार्त्तालापमें रात्रि व्यतीत हुई; और सवेरा हुआ; राजा युधिष्ठिर भी निद्रासे जागके सावधान हुए। उस समयमें पुरुषोंकी करतालिसे युक्त मीठे स्वरके सहित उत्तम गीत गानेवाले सूत मागध बन्दी माधुपर्किक, (मधुपर्क प्रदान करनेके समय स्तुति पाठ करनेवाले) वैतालिक (राजाको निद्रासे जगानेके समय प्रातःकालके स्तुतिपाठ करनेवाले) ये सब कोई पुरुषश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरकी स्तुति करनेलगे॥ गीत गानेवाले तथा नृत्य करनेवाले राग-रागिनियोंसे युक्त मधुर और मनोहर स्वरोंके सहित कुरु-वंशकी स्तुतिसूचक गीतोंको गाते हुए नृत्य करनेलगे॥ (१—३)

बाजा बजानेवाले अच्छी भांतिसे शिक्षित पुरुष लोग झांझें मृदङ्ग भेरी ढोल सहनाई नरसिंहे शंख और नगाडा

वादयन्ति सुसंहृष्टाः कुशलाः साधु शिक्षिताः॥ ५ ॥
स मेघसमनिर्घोषो महाञ्शब्दोऽस्पृशद्दिवम्।
पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६ ॥
प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे।
उत्थायाऽवश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं नृपः ॥ ७ ॥
ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शतमष्ट च।
स्नापकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे ॥ ८ ॥
भद्रासनेपूपविष्टः परिधायाऽम्बरं लघु।
सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ॥ ९ ॥
उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः।
आप्लुतः साधिवासेन जलेन ससुगन्धिना ॥ १० ॥
राजहंसनिभं प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम्।
जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास मूर्धनि ॥ ११ ॥
हरिणा चन्दनेनाऽङ्गमुपलिप्य महाभुजः।
स्रग्वी चाऽक्लिष्टवसनः प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः ॥१२॥

आदि बाजोंको बजाने लगे॥ वह बादलके गर्जनेके समान महाघोर शब्द आकाशको स्पर्श करने लगा; जब इस प्रकारसे बादलके गर्जने समान भयङ्कर शब्द होने लगा तब महाराज युधिष्ठिर निद्रासे सावधान हुए ॥ (४–६)

वह मणिजटित उत्तम शय्या पर शयन कर रहे थे—शय्यासे उठके आ-वश्यक कार्योंको करके स्नान करनेके स्थानमें गये। तिसके अनन्तर श्वेतवस्त्रों को पहरानेवाले एकसौ आठ पुरुष जलसे भरे हुए सुवर्णके कलसोंको लेके राजा युधिष्ठिरको स्नान कराने लगे। अनन्तर राजा युधिष्ठिर उत्तम आसन पर बैठ कर चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंसे युक्त पवित्र जलसे स्नान करने लगे। उत्तम शिक्षासे युक्त सेवकोंने उबटन आदि वस्तुओंसे उनके शरीरको मलते हुए सुगन्धित जलसे स्नान कराया॥ (७-१०)

अनन्तर महाबाहु महाराज युधिष्ठिर के सेवकोंने उनके मस्तक तथा केशोंके जलको सुखानेके निमित्त राजहंसके समान सफेद वस्त्रको शिरपर डालके अच्छी प्रकारसे निचोडके केशोंको सुखाया॥ अनन्तर उनके शरीरमें सुगन्धित चन्दन आदि वस्तु लगाई गयीं; और वह उत्तम वस्त्र माला धारण करके तथा पवित्र होके श्रेष्ठ आसन पर बैठ कर सन्ध्या

जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः।
तत्राऽग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥ १३ ॥
समिद्भिः सपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा।
मन्त्रपूताभिरार्चित्वा निश्चक्राम गृहात्ततः ॥ १४ ॥
द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्ष्यां निर्गम्य पार्थिवः।
ततो वेदविदो वृद्धानपश्यद्ब्राह्मणर्षभान् ॥ १५ ॥
दान्तान्वेदव्रतस्नातान्स्नातानवभृथेषु च।
सहस्रानुचरान्सौरान्सहस्रं चाऽष्ट चाऽपरान् ॥ १६ ॥
अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः।
तान्द्विजान्मधुसर्पिर्भ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमङ्गलैः ॥ १७ ॥
प्रादात्काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः।
अलंकृतं चाऽश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः ॥ १८ ॥
तथा गाः कपिला दोग्ध्रीः सवत्साः पाण्डुनन्दनः।
हेमशृङ्गा रौप्यखुरा दत्वा तेभ्यः प्रदक्षिणम् ॥ १९ ॥
स्वस्तिकान्वर्धमानांश्च नन्द्यावर्तांश्च काञ्चनान्।

उपासना प्रभृति नित्य कर्मोंका अनुष्ठान करने लगे। नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करके मन्त्रोंका जप करने लगे॥ तिसके अनन्तर प्रकाशमान अग्निहोत्रके स्थान में जाकर मन्त्र उच्चारण करके अग्निमें आहुति पवित्र समिधा प्रदान करके अग्नि देवताकी पूजा अर्चना करके अग्निहोत्रके गृहसे बाहर हुए॥ (११–१४)

पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरने तिसके अनन्तर उस स्थानके दूसरे हिस्सेमें जाकर देखा कि वहां पर सहस्रों सेवकोंके सहित वेद जानने वाले वृद्ध शम दम आदि गुणोंसे युक्त वैदिक व्रत करनेवाले ब्रह्मचारी तपस्या करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण और उनसे अतिरिक्त आठ सहस्रसे ऊपर नित्य सूर्यकी उपासना करनेवाले ब्राह्मण लोग उपस्थित थे। महाबाहु महाराज धर्मपुत्र युधिष्ठिरने उन सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको चन्दन अक्षत फूल फल घृत मधु आदिसे पूजा करी और उनसे मङ्गल वाचन (स्वस्तिवाचन) करा कर उन [illegible] एक ब्राह्मणोंको सुवर्ण निष्क (स्वर्ण मुद्रा) आभूषणोंसे भूषित एक एक सौ घोडे कई एक सोनेके सींगे और रूपेके खुरसे युक्त बछडेके सहित दूध देनेवाली कपिला गऊ तथा ब्राह्मणोंको उनकी इच्छानुसार दक्षिणा प्रदान करके उन्हें प्रदक्षिण किया॥ (१५–१९)

माल्यं च जलकुम्भांश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥२०॥
पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकं रोचनास्तथा ।
स्वलंकृताः शुभाः कन्या दधिसर्पिर्मधूदकम् ॥ २१ ॥
मङ्गल्यान्पक्षिणश्चैव यच्चाऽन्यदपि पूजितम् ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो बाह्यां कक्ष्यां ततोऽगमत् ॥२२॥
ततस्तस्यां महाबाहोस्तिष्ठतः परिचारकाः ।
सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमण्डितम् ॥ २३ ॥
परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत् ।
विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजह्रुर्वरासनम् ॥ २४ ॥
तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः ।
उपाजह्रुर्महार्हाणि प्रेष्याः शुभ्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥
मुक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
रूपमासीन्महाराज द्विषतां शोकवर्धनम् ॥ २६ ॥
चामरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैः सुशोभनैः ।

अनन्तर स्वास्तिक, वर्द्धमान, नन्द्यावर्त्त काञ्चन माला, जलसे भरे हुए घडे, जलती हुई अग्नि, अक्षतोंसे भरे हुए अक्षय पात्र, रुचक, गोरोचन, तथा आभूषणोंसे अलंकृत सब लक्षणोंसे युक्त कन्याओंका समूह, दही घृत मधु जल और मङ्गल सूचक सम्पूर्ण पक्षी, इन सम्पूर्ण माङ्गलिक द्रव्य और इसके अतिरिक्त दूसरी भी पूजनके योग्य बहुतसी वस्तुओंके दर्शन तथा स्पर्श करते हुए स्थानके बाहरी हिस्सेमें आकर उपस्थित हुए ॥ (२०–२२)

उन महाबाहु महाराज युधिष्ठिरके वहीं पर उपस्थित होते ही सेवकोंने विश्वकर्माके बनाये हुए मोती और वैदूर्य मणियोंसे युक्त उत्तम वस्त्रोंसे भूषित सब भांतिसे सुन्दर दिव्य सिंहासनको उनके बैठनेके निमित्त प्रदान किया ॥ महात्मा धर्मराज युधिष्ठिर जब सिंहासन पर बैठे तब सेवकोंने उनके यथायोग्य अङ्गोंमें महामूल्यवान् सफेद आभूषणोंको पहना दिया ॥ महाराज! कुन्तीपुत्र महात्मा युधिष्ठिर जब मुक्ता आदि सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित होकर सिंहासन पर बैठे तब उनका रूप तथा उनकी सुन्दरताई शत्रुओंके शोकको बढाने लगी ॥ (२३–२६)

सेवक लोग उनके समीप खडे होकर सुवर्ण दण्डसे शोभित चन्द्रकिरण के समान प्रकाशमान् सफेद चंवरको लेकर

दोधूयमानैः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २७ ॥
संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः ॥ २८ ॥
ततो मुहूर्तादासीत्तु स्यन्दनानां स्वनो महान् ।
नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् ॥ २९ ॥
ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ॥ ३० ॥
ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः ।
शिरसा वन्दनीयं तमभिवाद्य जनेश्वरम् ॥ ३१ ॥
कुण्डली बद्धनिस्त्रिंशः सन्नद्धकवचो युवा ।
अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै ॥ ३२ ॥
न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयान्तं महात्मने ।
सोऽब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनैव माधवम् ॥ ३३ ॥
अर्घ्यं चैवाऽऽसनं चाऽस्मै दीयतां परमार्चितम् ।
ततः प्रवेश्य वार्ष्णेयमुपवेश्य वरासने ॥ ३४ ॥

झुलाने लगे। श्वेत चवंरके इधर उधर डोलने पर वह बादलसे युक्त बिजलीके समान प्रकाशित होने लगे। सूत मागध उनकी स्तुति, वन्दीजन उनकी वन्दना करने लगे, और गन्धर्वोंके समान गीत गानेवाले पुरुष उनकी स्तुतिसूचक गीतोंको गाने लगे। अनन्तर मुहूर्त भरके बाद हाथियोंके महाघोर चिंघाड शब्द, रथोंकी घरघराहट, घोडोंकी हिनहिनाहट और उनके टापोंके शब्द चारों ओर सुनाई देने लगे। हाथियोंके चलने पर उनके हौदे परसे लटकते हुए घण्टोंका शब्द सुनाई देने लगा; मनुष्योंके पांवके धकेसे पृथ्वी कांपने लगी॥ (२७—३०)

अनन्तर कुण्डल, कवच और अस्त्रधारी एक युवा द्वारपालने सर्वसाधारण पुरुषोंसे भरी हुई उस राजसभामें आकर दोनों घुटनोंको झुका कर पृथ्वीको स्पर्श किया और धर्मराज युधिष्ठिरको प्रणाम करके यह वचन बोले;— महाराज! हृषीकेश कृष्ण आये हैं। पुरुषश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने माधवको लानेके निमित्त आज्ञा किया; अनन्तर उनका स्वागत पूंछ कर अत्यन्त उत्तम आसन और अर्घ प्रदान किया। तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर वृष्णिनन्दन कृष्णको अपने निकट लिवा लाये, और उन्हें आसन पर

पूजयामास विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥ [२९४६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिरसज्जतायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

सञ्जय उवाच— ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्द्य जनार्दनम् ।
उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीसुतम् ॥ १ ॥
सुखेन रजनी व्युष्टा कच्चित्ते मधुसूदन ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाऽच्युत ॥ २ ॥
वासुदेवोऽपि तद्युक्तं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरम् ।
ततश्च प्रकृतीः क्षत्ता न्यवेदयदुपस्थिताः ॥ ३ ॥
अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम् ।
विराटं भीमसेनं च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥ ४ ॥
चेदिपं धृष्टकेतुं च द्रुपदं च महारथम् ।
शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं सकेकयम् ॥ ५ ॥
युयुत्सुं चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम् ।
युधामन्युं सुबाहुं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ६ ॥
एते चाऽन्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।

बैठाया। अनन्तर कृष्णसे सत्कार पाकर फिर उनकी पूजा अर्चना करने लगे ॥ (३१-३५) [२९४६]

द्रोणपर्वमें बियासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें तिरासी अध्याय ।

सञ्जय बोले, कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न होकर देवकी पुत्र जनार्दन कृष्णको आनन्दित करके यह वचन बोले, हे मधुसूदन ! तुम्हें सुखसे निद्रा हुई थी न ? तुमने सुख पूर्वक रात्रि व्यतीत करी है न ? तुम्हें सम्पूर्ण विषयक ज्ञान तो बना हुआ है ? (१—२)

अनन्तर वसुदेवपुत्र कृष्ण भी युधिष्ठिरसे उनके योग्य वचनोंको पूछने लगे, वे दोनों महात्मा इसी प्रकारसे आपसमें वार्त्तालाप कर रहे थे, उस ही समय सारथीने आके निवेदन किया, "महाराज ! सम्पूर्ण मन्त्रीवर्ग और राजा लोग आये हैं। अनन्तर सारथी महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे उन सम्पूर्ण राजा और राजपुरुषोंको सभामण्डपमें प्रवेश कराने लगा । विराट,भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज, धृष्टकेतु, द्रुपद, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, चेकितान, केकयराज युयुत्सु, पाञ्चाल उत्तमौजा, युधामन्यु, द्रौपदी के पांचों पुत्र और दूसरे बहुतेरे क्षत्रिय पुरुष राजा युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार उस सभा में

उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चाऽऽसने शुभे ॥ ७ ॥
एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ ।
कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥ ८ ॥
ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम् ।
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥ ९ ॥
एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवाऽमराः ।
प्रार्थयामो जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥ १० ॥
त्वं हि राज्यविनाशं च द्विषद्भिश्च निराक्रियाम् ।
क्लेशांश्च विविधान्कृष्ण सर्वांस्तानपि वेद नः ॥ ११ ॥
त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल ।
सुखमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १२ ॥
स तथा कुरु वार्ष्णेय यथा त्वयि मनो मम ।
अर्जुनस्य यथा सत्या प्रतिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता ॥ १३ ॥
स भवांस्तारयत्वस्माद्दुःखामर्षमहार्णवात् ।

आकर उत्तम उत्तम शुभ आसनोंपर बैठ गये ॥ (३–७)

महाबलशाली महातेजस्वी महात्मा कृष्ण और सात्यकि एकही आसनपर बैठे । तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर उन सम्पूर्ण राजाओं के सम्मुख पुण्डरीक नेत्रवाले मधुसूदन कृष्णसे मधुर वचनोंसे वार्त्तालाप करते हुए यह वचन बोले ॥ हे मधुसूदन ! जैसे देवता लोग केवल सहस्र नेत्रवाले देवराज इन्द्रके आसरेसे वास करते हैं । हम लोग भी उसही प्रकारसे तुम्हारे आसरेसे युद्धमें विजय करने तथा परम सुख प्राप्त करने का अभिलाष करते हैं ॥ (८—१०)

तुम हम लोगों के राज्य नाश, शत्रु विद्रोह और सम्पूर्ण नाना प्रकार के क्लेशोंको जानते हो । हे सबके स्वामी ! हे मधुसूदन ! हे भक्तवत्सल ! हम सब लोगोंका सुख तुम्हारेही अधिकारमें है; और तुमही हम लोगोंके सब विषयोंमें उपाय स्वरूप हो । हे कृष्ण ! जिस प्रकारसे तुम्हारे ऊपर लोगोंका मन लगा रहे तुम वैसेही उपायका विधान करो; और जिस प्रकारसे अर्जुनकी करी हुई प्रतिज्ञा पूर्ण होवे तुम उसही उपाय का विधान करो । हे कृष्ण ! हम लोग इस दुःखरूपी महासमुद्रसे पार होनेकी अभिलाष करते हैं; तुम नौकारूपी होकर इस दुःखरूपी घोर समुद्रसे हम

पारं तितीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥ १४ ॥
नहि तत्कुरुते संख्ये रथी रिपुवधोद्यतः ।
यथा वै कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥ १५ ॥
यथैव सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीञ्जनार्दन ।
तथैवाऽस्मान्महाबाहो वृजिनात्त्रातुमर्हसि ॥ १६ ॥
त्वमगाधेऽप्लवे मग्नान्पाण्डवान्कुरुसागरे ।
समुद्धर प्लवो भूत्वा शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥
नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन ।
विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ १८ ॥
नारदस्त्वां समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम् ।
वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत्सत्यं कुरु माधव ॥ १९ ॥
इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि ।
तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २० ॥
वासुदेव उवाच– सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः ।

लोगोंको पार उतारो ॥ (११–१४)

हे कृष्ण ! युद्धस्थलमें सारथी यत्नवान् होकर जिस प्रकार कार्योंको कर सकता है, शत्रुओंके वधके निमित्त तैयार हुआ रथी वैसे कार्योंको नहीं कर सकता है ॥ हे महाबाहो जनार्दन कृष्ण! जैसे सम्पूर्ण आपदाओंसे तुम यदुवंशीयोंकी रक्षा करते रहते हैं हम लोगोंको भी इस महाघोर आपदासे उसही भांतिसे उबारनेके निमित्त चिन्ता करके अपना चित्त लगाओ ॥ हे शंख-चक्र गदा ग्रहण करने वाले ! हम लोग इस समय में नौकारहित होकर इस अगाध कुरुसागर में डूब रहे हैं, तुम नौकारूपी होकर हम लोगोंको इस महा घोर कुरुसेना रूपी समुद्रसे पार करो ॥ (१५–१७)

हे सम्पूर्ण देवोंके ईश्वर ! हे सनातन पुरुष ! हे विश्व संहार करनेवाले! हे विष्णो ! हे हरे ! हे कृष्ण ! हे वैकुण्ठवासिन् ! हे पुरुषोत्तम ! तुम्हें नमस्कार है ॥ देवऋषि नारद तुम्हें पुरातन ऋषिसत्तम शार्ङ्ग धनुषधारी और वर देनेवाले नारायण कहके तुम्हारे चरित्रोंका वर्णन किया करते हैं ॥ हे माधव ! उन नारद मुनिके वचनोंको तुम सत्य करो ।(१८–१९)

बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ पुण्डरीक नेत्रवाले कृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरसे राजसभाके बीच इसही प्रकारसे पूजित तथा सत्कृत होकर बादलके समान गंभीर स्वरसे महाराज युधिष्ठिरसे यह वचन बोले, हे

शरासनधरः कश्चिद्यथा पार्थो धनञ्जयः ॥ २१ ॥
वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तो महाबलः।
युद्धशौण्डः सदाऽमर्षी तेजसा परमो नृणाम् ॥ २२ ॥
स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः।
सिंहर्षभगतिः श्रीमान्द्विषतस्ते हनिष्यति ॥ २३ ॥
अहं च तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः।
धार्त्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ २४ ॥
अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम्।
अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्स्यतेऽर्जुनः ॥ २५ ॥
तस्याऽद्य गृध्राः श्येनाश्च चण्डगोमायवस्तथा।
भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चाऽन्ये पुरुषादकाः॥ २६॥
यद्यस्य देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे तथाऽप्यसौ।
राजधानीं यमस्याऽद्य हतः प्राप्स्यति संकुले ॥ २७ ॥
निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति।
विशोको विज्वरो राजन्भव भूतिपुरस्कृतः ॥ २८ ॥[२९७४]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३ ॥

पृथापुत्र धर्मराज युधिष्ठिर! अर्जुनके समान धनुर्द्धारी योद्धा इन्द्र लोक आदि किसी लोकमें भी नहीं हैं॥ वह पराक्रमी, सब अस्त्रशस्त्रोंके मर्मको जाननेवाले, सब समय युद्धमें पराक्रम प्रकाशित करनेकी अभिलाष करने वाले, मनुष्योंके बीच परम तेजस्वी, क्रोधी, युवा अवस्थावाले, वृषभके समान कन्धेसे युक्त, लम्बी भुजावाले, महाबलवान्; महाबली पराक्रमी सिंहकी चालसे गमन करने वाले और श्रीमान् तथा महातेजस्वी हैं, वह अवश्य ही तुम्हारे शत्रुओंका नाश करेंगे ॥ (२०–२३)

वह जिससे धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी सेनाको अग्निके समान भस्म कर सके, मैं भी वैसाही यत्न करूंगा ॥ आज अर्जुन क्षुद्र अभिलाष करनेवाले पापी अभिमन्युका वध करनेवाले जयद्रथके शिरको काटके अपने बाणोंसे अदृश्य पथमें फेंक देंगे ॥ कौवे बगुले बाज आदि मांस खानेवाले भयङ्कर पशु आज उसका मांस भक्षण करेंगे ॥ (२४–२६)

महाराज! यदि इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता भी उसकी रक्षा करें, तौभी वह आज युद्धभूमिमें मरकर यमपुरीमें गमन करेगा॥ हे राजन्! अर्जुन आज सिन्धु-

सञ्जय उवाच— तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद्धनञ्जयः ।
दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ १ ॥
तं निविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवन्द्याऽग्रतः स्थितम् ।
तमुत्थायाऽर्जुनं प्रेम्णा सस्वजे पाण्डवर्षभः ॥ २ ॥
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना ।
आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥
व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान् ।
यादृग्रूपा च ते च्छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ४ ॥
तमब्रवीत्ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम् ।
दृष्टवानस्मि भद्रं ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५ ॥
ततस्तत्कथयामास यथादृष्टं धनञ्जयः ।
आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम् ॥ ६ ॥
ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः ।

राज जयद्रथका वध करके तुम्हारे निकट आवेंगे,तुम आनन्दित होकर शोक और चिन्ता त्याग दो। (२७–२८)[२९७४]

द्रोणपर्वमें तिरासी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें चौरासी अध्याय।

सञ्जय बोले हे राजेन्द्र ! वे दोनों आपसमें इसी प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, उस ही समय अर्जुन इष्ट मित्रोंके सहित भरतश्रेष्ठ महाराजा युधिष्ठिरका दर्शन करनेकी इच्छासे वहांपर उपस्थित हुए॥ वह उस सभामण्डपके भीतर जाकर महाराज युधिष्ठिरको प्रणाम करके आगे खडे हुए। राजा युधिष्ठिरने उठके उन्हें प्रीतिपूर्वक आलिङ्गन किया। उन्होंने अर्जुनके मस्तकको सूंघा और अपनी लम्बी भुजाओंसे उन्हें आलिङ्गन किया। फिर आशीर्वाद देकर हंसते हुए उनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन ! तुम्हारे शरीर की कान्ति जिस प्रकारसे दीख पडती है और जनार्दन कृष्णको भी मैं जिस भांतिसे प्रसन्न देखता हूं; इससे मुझे निश्चय ही बोध होता है, कि युद्धभूमिमें तुम्हारी अवश्य विजय होवेगी॥ (१–४)

तिसके अनन्तर अर्जुन बोले, महाराज ! मङ्गल होवे; मैंने श्रीकृष्णकी कृपासे बहुत बडा आश्चर्ययुक्त स्वप्न देखा है॥ ऐसा कह कर अर्जुनने सुहृद मित्रोंको धीरज देनेके निमित्त जिस प्रकारसे रात्रिके समयमें स्वप्न देखा, और जिस भांतिसे महादेव त्रिनेत्रवाले शिवशङ्करका दर्शन किया था,वह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया॥ तब

नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाऽब्रुवन् ॥ ७ ॥
अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना ।
त्वरमाणाः सुसन्नद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८ ॥
अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः ।
हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥ ९ ॥
रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् ।
तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत् ॥ १० ॥
रथं रथवरस्याऽऽजौ वानरर्षभलक्षणम् ।
स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ॥ ११ ॥
बभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद्यथा ।
ततः पुरुषशार्दूलः सज्जः सज्जपुरःसरः ॥ १२ ॥
कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत तं रथम् ।
तं तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ॥ १३ ॥

वहांपर इकट्ठे हुए सम्पूर्ण राजा तथा शूरवीर पुरुषोंने विस्मित होकर धन्य धन्य कहते हुए अपने मस्तकसे पृथ्वीको स्पर्श करके महादेव वृषभध्वजको प्रणाम किया ॥ (५-७)

अनन्तर सम्पूर्ण सुहृद्-मित्र राजा युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार शीघ्रताके सहित अत्यन्त क्रुद्ध होकर हर्षपूर्वक युद्ध करनेके निमित्त अपने शिबिरोंसे बाहर हुए ॥ सात्यकि, कृष्ण और अर्जुनने राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक उनकी सभासे निकलके युद्धके निमित्त प्रस्थान किया ॥ महा पराक्रमी सात्यकि और श्रीकृष्णचन्द्र एक ही रथपर चढके अर्जुनके शिबिर-पर उपस्थित हुए ॥ (८-१०)

हृषीकेश कृष्ण वहां पहुंचकर रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके वानर ध्वजासे युक्त उत्तम रथको सारथीकी भांति भली भांति सज्जित करने लगे ॥ बादल गर्जनेके समान शब्दसे युक्त वह रथ उत्तम भांतिसे तपाये हुए सुवर्णसे साजित होकर ऐसे शोभित होने लगा; जैसे भोरके समयमें बाल सूर्य प्रकाशित होता है। तिसके अनन्तर पुरुषसिंह कृष्णने स्वयं सज्जित होकर सन्ध्या उपासना आदि नित्यकर्मोंसे निवृत्त हुए अर्जुनके समीपमें जाकर रथ सज्जित होनेका संवाद सुनाया। (१०-१३)

सुवर्णभूषित कवच बाण धनुष और

चापबाणधरो वाहं प्रदक्षिणमवर्तत ।
तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः ॥ १४ ॥
स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम् ।
जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ॥ १५ ॥
अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा ।
स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ॥ १६ ॥
विबभौ विमलोऽर्चिष्मान्मेराविव दिवाकरः ।
अन्वारुरुहतुः पार्थं युयुधानजनार्दनौ ॥ १७ ॥
शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ।
अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन्रश्मिविदां वरः ॥ १८ ॥
मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः ।
स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः ॥ १९ ॥
सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन्यथा शशी ।
सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ॥ २० ॥

किरीट धारण करनेवाले अर्जुन रथके समीप जाकर उसकी प्रदक्षिणा करने लगे। अनन्तर विद्यावृद्ध अवस्था में बडे उत्तम कर्म करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष महारथ तेजस्वी अर्जुनको विजयके निमित्त उन्हें शुभ आशीर्वाद प्रदान करने लगे। अनन्तर सूर्य जैसे उदयाचल पर्वतपर आरोहण करते हैं, वैसे ही अर्जुन जय युक्त युद्धमें विजय देनेवाले वेदमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित होकर सुवर्णभूषित होके, उस प्रकाशमान रथ पर चढे;सुवर्ण भूषित कवचधारी अर्जुन सुवर्ण खचित उस उत्तम रथमें चढकर ऐसे शोभित हुये जैसे सूर्य मेरु गिरिपर शोभायमान लगते हैं। (१३-१७)

युयुधान और जनार्दन कृष्ण अर्जुन के रथपर चढे । शर्याति राजाके यज्ञमें इन्द्रके समीप जैसे दोनों अश्विनीकुमार शोभित हुए थे, वैसे ही कृष्ण और युयुधान अर्जुनके समीप शोभित होने लगे । जैसे मातलिने वृत्रासुरके वधके निमित्त युद्धभूमिमें गमन करनेवाले इन्द्र के रथके घोडोंकी बागडोर ग्रहण करी थी वैसे ही पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने अर्जुन के रथ पर चढके उनके घोडोंकी बाग-डोर (लगाम) ग्रहण किया ; जैसे अन्धकार नाश करनेवाले चन्द्रमा बुध और शुक्र ग्रहके सहित आकाशमें शोभित होते हैं अर्जुन भी सात्यकि और कृष्णके सहित रथपर चढे हुए उसी

सहाऽम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये।
ततो वादित्रनिर्घोषैर्माङ्गल्यैश्च स्तवैः शुभैः ॥ २१ ॥
प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः।
सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः ॥ २२ ॥
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत्।
समन्तु प्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ॥ २३ ॥
ववौ संहर्षयन्पार्थं द्विषतश्चाऽपि शोषयन्।
ततस्तस्मिन्क्षणे राजन्विविधानि शुभानि च ॥ २४ ॥
प्रादुरासन्निमित्तानि विजयाय बहूनि च।
पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष ॥ २५ ॥
दृष्ट्वाऽर्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम्।
युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥
युयुधानाऽद्य युद्धे मे दृश्यते विजयो ध्रुवः।
यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥ २७ ॥

भांतिसे शोभित होने लगे; और जैसे वरुण और सूर्यके सहित देवराज इन्द्रने तारकासुरके युद्धमें गमन किया था, वैसे ही शत्रुओंके नाश करनेवाले अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके वधकी अभिलाष करके युद्धके निमित्त प्रस्थान किया। (१७—२१)

उस समयमें बाजा बजानेवाले पुरुषोंने नाना प्रकारके बाजे बजाये, और सूत मागध बन्दीजन शुभसूचक मङ्गलकारी स्तोत्रोंका पाठ करके अर्जुनकी स्तुति करने लगे॥ सूत मागधोंके जय आशीर्वाद और पुण्याहवाचनकी ध्वनि जुझाऊ बाजोंके शब्दके सङ्ग मिलकर उन्हें आनन्दित करने लगी। वायु शीतल मन्द तथा सुगन्धित गतिसे बहके अर्जुनको हर्षित करने लगा, और उधर शत्रुओंके शोकको बढाते हुए वायु प्रचण्डवेगसे बहने लगा॥ हे राजन्! उस ही समय पाण्डवोंके शुभसूचक नाना प्रकारके शकुन चारों ओर प्रकट हुए और तुम्हारी ओरकी सेनामें उससे उलटे अशकुन दिखाई देने लगे॥ (२१—२५)

अर्जुन अपने विजयके विषयमें उत्तम तथा अनुकूल शकुन देखकर महाधनुर्धारी सात्यकिसे बोले, हे सात्यकि! आज जिस प्रकारके सम्पूर्ण निमित्त लक्षण (शकुन) देख रहा हूं, उससे बोध होता है, कि आज युद्धमें अवश्य

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः ।
पिपासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८ ॥
यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम ।
तथैव सुमहत्कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९ ॥
स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय ।
यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत्तथा ॥ ३० ॥
न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत् ।
वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१ ॥
त्वयि चाऽहं पराश्वस्तः प्रद्युम्ने वा महारथे ।
शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३२ ॥
मय्यपेक्षा न कर्त्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत ।
राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया ॥ ३३ ॥
नहि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
किञ्चिद्व्यापद्यते तत्र यत्राऽहमपि च ध्रुवम् ॥ ३४ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा ।

ही मेरी विजय होवेगी ॥ सिन्धुराज जयद्रथ यमलोकमें गमन करनेकी इच्छा से यहांपर स्थित होके मेरे बल पराक्रम की प्रतीक्षा कर रहा है; मैं उस ही स्थल में गमन करता हूं ॥ (२६–२८)

जैसे सिन्धुराज जयद्रथका वध करना मेरा बहुत बडा कार्य है, वैसे ही धर्म राज युधिष्ठिरकी रक्षा करना भी बृहत् कार्य है ॥ हे महाबाहो ! इससे आज तुम धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना। जैसे मैं उनकी रक्षा करता था, वैसे ही तुम भी आज धर्मराजकी रक्षा करना॥ तुम युद्ध करनेमें कृष्णके समान हो, युद्धभूमिमें तुम्हें पराजित कर सके; ऐसे मैं किसी पुरुषको इस पृथ्वीपर नहीं देखता हूं, देवतोंके राजा इन्द्र भी उन्हें पराजित नहीं कर सकेंगे ॥ (२९–३१)

हे पुरुषर्षभ ! मैं तुम्हारे वा प्रद्युम्नके ऊपर यह भार अर्पण करके विश्वास करके तथा निश्चिन्त होकर सिन्धुराज जयद्रथके वधके निमित्त गमन कर सकता हूं ॥ हे सात्यके ! तुम मेरे वास्ते किसी प्रकारसे भी चिन्ता मत करना, राजा युधिष्ठिरहीकी सब भांतिसे यत्न पूर्वक रक्षा करना । जहां महाबाहु वासुदेव कृष्ण और मैं स्थित हूं, वहां किसी प्रकार भी भयकी संभावना नहीं है ॥ शत्रुनाशन सात्यकि ने इस प्रकारसे

तथेत्युक्त्वाऽगमत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥३५॥ [३००९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ समाप्तं प्रतिज्ञापर्व ।

५ जयद्रथवधपर्व ।

धृतराष्ट्र उवाच—श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः ।
अभिमन्यौ हते तत्र के वाऽयुद्ध्यन्त मामकाः ॥ १ ॥
जानन्तस्तस्य कर्माणि कुरवः सव्यसाचिनः ।
कथं तत्किल्बिषं कृत्वा निर्भया ब्रूहि मामकाः ॥ २ ॥
पुत्रशोकाभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवाऽन्तकम् ।
आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे ॥ ३ ॥
कपिराजध्वजं संख्ये विधुन्वानं महद्धनुः ।
दृष्ट्वा पुत्रपरिद्यूनं किमकुर्वत मामकाः ॥ ४ ॥
किं नु सञ्जय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति ।
परिदेवो महानत्र श्रुतो मे नाऽभिनन्दनम् ॥ ५ ॥

अर्जुनके वचनोंको सुनके उनकी आज्ञाके अनुसार धर्मराज युधिष्ठिरके समीपमें गमन किया। (३२-३५) [३००९]

द्रोणपर्वमें चौरासी अध्याय और प्रतिज्ञापर्व समाप्त।

द्रोणपर्वमें पचासी अध्याय और जयद्रथवधपर्व।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! अभिमन्युके मरनेपर दुःख और शोकसे सन्तप्त पाण्डवोंने रात्रि बीतनेके अनन्तर किन कार्योंका अनुष्ठान किया? मेरी सेनाके कौरव योद्धा लोग अर्जुनके बल पराक्रमको जानबूझ कर और उसके समीप अपराधी होकर किस प्रकारसे निर्भय हुए॥ वह वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो॥ पुत्र शोकसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए प्राणियोंके नाश करने वाले यमराजके समान उस पुरुषसिंह अर्जुनको मेरी सेनाके शूरवीर योद्धा लोग कैसे देख सके? पुत्र शोकसे आर्त्त हुए कपिध्वजावाले अर्जुनको गाण्डीव-धनुष चढाते देखकर मेरी ओरके शूर-वीरोंने किस कार्यका अनुष्ठान किया? वह सब वृत्तान्त तुम मेरे निकट वर्णन करो॥ (१-४)

हे सञ्जय! संग्रामभूमिमें दुर्योधनकी सेनामें कैसी घटना हुई है? आज कुछ भी हर्ष ध्वनि मेरे कानोंमें नहीं सुन पडती है; बल्कि विलापके शब्दही सुन पडते हैं॥ जयद्रथके शिविरमें पहिले

बभूवुर्ये मनोग्राह्याः शब्दाः श्रुतिसुखावहाः ।
न श्रूयन्तेऽद्य सर्वे ते सैन्धवस्य निवेशने ॥ ६ ॥
स्तुवतां नाऽद्य श्रूयन्ते पुत्राणां शिविरे मम ।
सूतमागधसङ्घानां नर्त्तकानां च सर्वशः ॥ ७ ॥
शब्देन नादिनाऽभीक्ष्णमभवद्यत्र मे श्रुतिः ।
दीनानामद्य तं शब्दं न श्रृणोमि समीरितम् ॥ ८ ॥
निवेशने सत्यधृतेः सोमदत्तस्य सञ्जय ।
आसीनोऽहं पुरा तात शब्दमश्रौषमुत्तमम् ॥ ९ ॥
तदद्य पुण्यहीनोऽहमार्त्तस्वरनिनादितम् ।
निवेशनं गतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये ॥ १० ॥
विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः ।
अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ॥ ११ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते ।
द्रोणपुत्रं महेष्वासं पुत्राणां मे परायणम् ॥ १२ ॥
वितण्डालापसँल्लापैर्हुतवादित्रवादितैः ।

मनोहर, कानोंको सुख देनेवाले शब्द सुन पडते थे, वह सम्पूर्ण शब्द इस समय में नहीं सुन पडते हैं ॥ मेरे पुत्रोंके शिविरोंमेंसे भी स्तुतिपाठ करनेवाले सूत मागध बन्दी और नर्त्तकोंके शब्द भी आज नहीं सुन पडे ॥ (५-७)

जिन लोगोंके शब्द बार बार मेरे कानमें सुनाई पडते थे, वे सम्पूर्ण योद्धा हीनभावसे युक्त होगये हैं ॥ इस ही से उनके शब्द मेरे कानसे नहीं सुन पडते हैं ॥ हे तात सञ्जय! पहिले मैं सावधान होकर भोरके समय सत्य पराक्रमी सोमदत्तके शिविरसे मनोहर शब्दोंको सुनता था, परन्तु इस समयमें वे शब्द मुझे नहीं सुनाई देते हैं। हा! मैं कैसा पुण्यहीन हूं, कि मुझे अपने पुत्रोंके उन शिविरोंको इस समय उत्साह रहित और आर्त्त स्वरोंसे युक्त बोध करना पडा ॥ (८-१०)

विविंशति, दुर्मुख, चित्रसेन, विकर्ण और दूसरे पुत्रोंके शिविरोंसे भी पहिलेके समान आज कोई शब्द नहीं सुन पडते हैं ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग शिष्य होकर जिसकी उपासना किया करते हैं जो मेरे महाधनुर्द्धर पुत्रोंके आश्रयस्वरूप हैं जो आपसमें वार्त्तालाप, इच्छाके अनुसार नृत्यगीत और सुन्दर बाजोंसे सदा आनन्दित होते रहते हैं,

गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम् ॥ १३ ॥
उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डवसात्वतैः ।
सूत तस्य गृहे शब्दो नाऽद्य द्रौणेर्यथा पुरा ॥ १४ ॥
द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्त्तकाश्च ये ।
अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥ १५ ॥
विन्दानुविन्दयोः सायं शिबिरे यो महाध्वनिः ॥१६॥
श्रूयते सोऽद्य न तथा केकयानां च वेश्मसु ।
नित्यं प्रमुदितानां च तालगीतस्वनो महान् ॥ १७ ॥
नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न स्वनः ।
सप्ततन्तून्वितन्वाना याजका यमुपासते ॥ १८ ॥
सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः ।
ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः ॥ १९ ॥
द्रोणस्याऽऽसीदविरतो गृहे तं न शृणोम्यहम् ।
नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत्स्वनः ॥ २० ॥
वादित्रनादितानां च सोऽद्य न श्रूयते महान् ।

और बहुतेरे कौरव पाञ्चाल तथा यदु वंशी जिसकी उपासना करते रहते हैं, उस द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाके डेरेसे जो शब्द नित्य सुनाई देता था, वह आज नहीं सुन पड़ता है॥ (११–१४)

जो सम्पूर्ण गीत गाने और नाचने वाले अश्वत्थामाकी अत्यन्तही उपासना करते रहते थे उन लोगोंके कुछ भी शब्द इस समय नहीं सुन पड़ते हैं। विन्द और अनुविन्दके शिबिरसे सन्ध्याके समय जो शब्द सुनाई देते थे, वह इस समय मुझे नहीं सुनाई देते हैं। और कैकयराजके शिबिरसे भी कुछ शब्द नहीं सुन पड़ता है। नृत्य करनेवाले जैसे ताल–स्वरके सहित प्रसन्नतापूर्वक गीत गाते हुए नृत्य करते थे; उन लोगोंके वह ताल स्वरसे युक्त गीतके शब्द इस समय नहीं सुन पड़ते हैं। बहुतसी यज्ञोंके अनुष्ठान करनेवाले यज्ञशील पुरुष सोमदत्तके पुत्र श्रुतनिधिकी उपासना करते रहते हैं, उन लोगोंकी वेदध्वनि भी इस समयमें नहीं सुन पड़ती है। (१५–१९)

वेदध्वनि, धनुषटंकारके शब्द, तोमर, तलवार और रथके शब्द द्रोणाचार्यके शिबिरसे लगातार सुन पड़ते थे, वह भी इस समयमें नहीं सुन पड़ते हैं; और नाना स्थानोंसे जो गीत और

यदागमभृत्युपप्लव्याच्छान्तिमिच्छञ्जनार्दनः ॥ २१ ॥
आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः ।
ततोऽहमब्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ २२ ॥
वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ।
कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनाऽतिगाः ॥ २३ ॥
शमं चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
हितार्थमभिजल्पन्तं न तवाऽस्ति रणे जयः ॥ २४ ॥
प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम् ।
अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नाऽन्वपद्यत ॥ २५ ॥
ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः ।
अन्ववर्त्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥ २६ ॥
न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति ।
सैन्धवो नेच्छति द्यूतं भीष्मो न द्यूतमिच्छति॥ २७ ॥
शल्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो जयस्तथा ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति सञ्जय॥ २८ ॥

बाजोंकी ध्वनि सुन पड़ती थी, वह भी आज नहीं सुनाई देती है॥ हे सूत! जिस समय जनार्दन कृष्ण सब भूतोंकी दयासे प्रेरित होकर कुरुपाण्डवोंमें सन्धि स्थापित करनेके निमित्त विराट नगरसे यहां आये थे, मैंने उसही समय नीच-बुद्धिवाले दुर्योधनसे कहा था॥ "हे पुत्र! तुम कृष्णके वचनोंको मानके पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करलो; मैं बोध करता हूं, कि सन्धि करनेका यही उचित समय है। हे दुर्योधन! तुम मेरे वचनों को मत टालो॥ कृष्ण तुम्हारे हितके निमित्त ही शान्तिके निमित्त प्रार्थना कर रहे हैं इससे यदि तुम कृष्णके वचनोंको न मानोगे तो तुम्हारी विजय न होवेगी॥(१९-२४)

उस समय सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ दाशार्ह कृष्णने अनेक प्रकारसे विनय युक्त वचन कहे थे; परन्तु दुर्योधन दुष्टनीतिके वशमें होकर उनका अनुगामी नहीं हुआ, वरन उनकी विरुद्धता किया करता था॥ तिसके अनन्तर वह नीचबुद्धि मेरी बातोंको न मानकर कालके वशमें होकर दुःशासन और कर्णका मतानुवर्ती हुआ॥ हे सञ्जय! जुएके खेलमें मेरी इच्छा नहीं थी; विदुरने भी जुए की प्रशंसा नहीं किया था; सिन्धुराज, भीष्म, शल्य, भूरिश्रवा

एतेषां मतमादाय यदि वर्त्तेत पुत्रकः।
सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः ॥ २९ ॥
श्लक्ष्णा मधुरसम्भाषा ज्ञातिबन्धुप्रियंवदाः।
कुलीनाः संमताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ॥३०॥
धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम्।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥
अर्हास्ते पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेऽपि च।
तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही ॥ ३२ ॥
वियुज्यमानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि।
सन्ति मे ज्ञातयस्तात येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥३३॥
शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः।
द्रोणस्याऽथ विकर्णस्य बाह्लीकस्य कृपस्य च ॥ ३४ ॥
अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम्।

पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य इन लोगोंमें किसी पुरुषने जुएके खेलको अनुमोदन नहीं किया था ॥ वरन जुआ खेलनेसे निवारण किया था ॥ (२५–२८)

मेरा पुत्र यदि इन लोगोंके मतके अनुसार चलता, तो ज्ञातिके लोग और इष्टमित्रोंके सहित आनन्दित होके सुख-पूर्वक अपने जीवन समयको व्यतीत करता ॥ मैंने दुर्योधनसे कहा था, " हम लोगोंके ज्ञाति तथा कुलके बीच पाण्डव लोग मनको आनन्दित करनेवाले मधुर प्यारे वचनोंके कहनेवाले, कुलके अनुसार उत्तम चरित्रवाले, सम्पूर्ण पुरुषोंमें आदरके योग्य और बुद्धिमान हैं। वह लोग अवश्य सुख प्राप्त करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है ॥ क्योंकि धर्मात्मा पुरुष ही इस लोक और परलोकमें सुख और कल्याण पानेके अधिकारी होते हैं ॥ (२९-३१)

सब साधनोंसे युक्त पाण्डव लोग समुद्र पर्यन्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोग करनेके योग्य पात्र हैं; विशेष करके इस समुद्रांत पृथ्वीका राज्य उनके पिता पितामहसे चला आता है ॥ वह राजपुत्र लोग राज्यपर अभिषिक्त होनेसे धर्मत्याग कर तुम्हारी अवज्ञा नहीं करेंगे; वह धर्म पथपर अवश्य स्थित रहेंगे; हम लोगोंमें अपने ज्ञातिके पुरुष ऐसे हैं, कि पाण्डव लोग अवश्य उनके वचनोंको मान्य करेंगे ॥ शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, विकर्ण, बाह्लिक, कृपाचार्य तथा और भी दूसरे बहुतेरे वृद्ध भरत-

त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हि ते ॥ ३५ ॥
कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्तान्ब्रूयादतोऽन्यथा ।
कृष्णो न धर्मं सञ्जह्यात्सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥ ३६ ॥
मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम् ।
नाऽन्यथा प्रकरिष्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः॥३७॥
इत्यहं विलपन्सूत बहुशः पुत्रमुक्तवान् ।
न च मे श्रुतवान्मूढो मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ३८ ॥
वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः ।
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ॥ ३९ ॥
धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चाऽपराजितः ।
अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः ॥ ४० ॥
चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ।
द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४१ ॥
यमौ च पुरुषव्याघ्रौ मन्त्री च मधुसूदनः ।

वंशीय महात्मा लोग तुम्हारे निमित्त पाण्डवोंसे जो वचन कहेंगे, पाण्डव लोग उन वचनोंका कभी भी निरादर नहीं कर सकते ! (३२–३५)

तुम क्या किसीको ऐसा समझते हो, जो तुम्हारे विरुद्ध उन लोगोंसे कुछ वचन कह सके । कृष्ण कभी धर्मको त्याग नहीं करेंगे; और वह लोग भी कृष्णके अनुयायी हैं; कृष्ण पाण्डवोंसे जो वचन कहेंगे, उनके विरुद्ध वे लोग कदापि आचरण नहीं कर सकेंगे, और मैं भी धर्मके अनुसार वचन यदि उन शूरवीर पाण्डवोंसे कहूंगा, तो वे लोग कभी मेरे वचनोंको न मेटेंगे। हे सूत ! मैंने अपने पुत्र दुर्योधनको इसी प्रकारसे अनेक वचन कहा था परन्तु बोध होता है, कि उस मूढने कालके वशमें होकर मेरे वचनोंको ग्रहण नहीं किया ॥ ३७-३८

हे सञ्जय ! भीमसेन, अर्जुन, वृष्णि-वंशीय सात्यकि, पाञ्चाल उत्तमौजा, युधामन्यु, पराक्रमी धृष्टद्युम्न,अपराजित शिखण्डी, अश्मक और केकयदेशीय शूरवीर योद्धा, सोमकनन्दन क्षत्रधर्मा, चेदिराज, चेकितान, काशिराजके पुत्र अभिभू, द्रौपदीके पांचो पुत्र, विराट, महारथ द्रुपद, पुरुषसिंह नकुल और सहदेव, ये सम्पूर्ण शूरवीर पुरुष जिस सेनाके योद्धा और मधुसूदन कृष्ण जिसके मन्त्री हैं, उस स्थलमें कौन पुरुष इस लोकमें जीवित रहनेकी इच्छा करके इन

क एताञ्जातु युध्येत लोकेऽस्मिन्वै जिजीविषुः ॥ ४२ ॥
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान्प्रसहेद्वा परान्मम ।
अन्यो दुर्योधनात्कर्णाच्छकुनेश्चापि सौबलात् ॥४३॥
दुःशासनचतुर्थानां नान्यं पश्यामि पञ्चमम् ।
येषामभीषुहस्तः स्याद्विष्वक्सेनो रथे स्थितः॥ ४४ ॥
सन्नद्धश्चार्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः ।
तेषामथ विलापानां नाऽयं दुर्योधनः स्मरेत ॥ ४५ ॥
हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ वै ।
तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शिनात ॥ ४६ ॥
दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
सेनां दृष्ट्वाऽभिभूतां मे शैनेयेनाऽर्जुनेन च ॥ ४७ ॥
शून्यान्दृष्ट्वा रथोपस्थान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
हिमात्यये यथा कक्षं शुष्कं वातेरितो महान् ॥ ४८ ॥
अग्निर्दहेत्तथा सेनां मामिकां स धनञ्जयः ।
आचक्ष्व मम तत्सर्वं कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ४९ ॥

सम्पूर्ण योद्धाओंके सङ्ग युद्ध कर सकता है ? (३९-४२)

इन सम्पूर्ण पुरुषोंके दिव्य अस्त्र चलानेपर कौन पुरुष उनके अस्त्रोंकी चोट सह सकेगा ? जनार्दन कृष्ण जिसके घोडेकी बागडोर ग्रहण करके सारथी हुए हैं और अर्जुन जिस सेनाका मुख्य योद्धा है; उसके पराजयकी सम्भावना कैसे हो सकती है ? तुमने मेरे समीप इस वृत्तान्तको वर्णन किया है, कि पुरुषसिंह भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये हैं, इससे दुर्योधन मेरे उन सम्पूर्ण विलाप युक्त वचनोंको क्या नहीं स्मरण करता है ? (४३-४६)

शोच होता है, मेरे पुत्र लोग दीर्घ दर्शी विदुरके वचनोंको सफल होते हुए देखकर शोक कररहे हैं, और मेरी सेनाको सात्यकि तथा अर्जुनके बाणोंसे नष्ट होती हुई देखकर भी शोकसे आर्त्त हुए हैं। जैसे वसन्त ऋतुके बीतने पर अग्नि वायुके सहित मिलकर सूखे तृण और काष्ठोंको भस्म कर देती है; वैसे ही कृष्ण की सहायतासे अर्जुन मेरी सेनाको भस्म कर रहा है; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे सञ्जय ! तुम इस सम्पूर्ण वृत्तान्तके वर्णन करनेमें निपुण हो; इससे युद्धमें जैसी घटना हुई है, वह संपूर्ण वृत्तान्त मेरे समीपमें वर्णन करो। (४६-४९)

यदुपायात सायाह्ने कृत्वा पार्थस्य किल्विषम् ।
अभिमन्यौ हते तात कथमासीन्मनो हि वः ॥ ५० ॥
न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः ।
अपकृत्य महत्तात सोढुं शक्ष्यन्ति मामकाः ॥ ५१ ॥
किन्नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत् ।
दुःशासनः सौबलश्च तेषामेवङ्गतेष्वपि ॥ ५२ ॥
सर्वेषां समवेतानां पुत्राणां मम सञ्जय ।
यद्वृत्तं तात संग्रामे मन्दस्याऽपनयैर्भृशम् ॥ ५३ ॥
लोभानुगस्य दुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः ।
राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः ॥
दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥५४॥ [३०६३]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

सञ्जय उवाच — हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् ॥ १ ॥

तुम लोग सन्ध्याके समय उपाय रचकर जब अभिमन्युका वध करके अर्जुन के अपराधी हुए, तब उस समयमें तुम लोगोंका चित्त किस प्रकारका हुआ था? हे तात ! मेरे पुत्र लोग गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्जुनका बहुत बडा अपराध करके युद्ध में उस पराक्रम के कार्यों को कभी भी सहनेमें समर्थ नहीं होसकते। दुर्योधन कर्ण और शकुनिने उस समयमें किन कार्योंका अनुष्ठान किया था? और नीच बुद्धिवाले दुर्योधनके सङ्ग मिलके मेरे सम्पूर्ण पुत्रोंने भी उस समयमें युद्धके निमित्त किन कार्योंका विचार किया था ? मूर्ख दुर्योधनका चित्त विषय वासनासे क्षुब्ध होगया है, उस नीचबुद्धिवाले दुर्योधनने लोभके वशमें होकर अपने आत्माके भावको अत्यन्त टेढा कर डाला है । हे सञ्जय ! उसकी दुष्ट नीति होवे, अथवा सुनीति होवे, युद्धभूमिमें जो जो घटना हुई है वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ (५०-५४) [३०६३]

द्रोणपर्वमें पचासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें छियासी अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! युद्ध विषयक सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको मैंने प्रत्यक्ष देखा है; वह सम्पूर्ण समाचार मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, आप चित्त लगाकर सुनिये ॥ हे भरतर्षभ ! महा अनीतिका कार्य आपहीसे प्रकट हुआ

गतोदके सेतुबन्धो यादृक्तादृगयं तव ।
विलापो निष्फलो राजन्मा शुचो भरतर्षभ ॥ २ ॥
अनतिक्रमणीयोऽयं कृतान्तस्याऽद्भुतो विधिः ।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत्पुरातनम् ॥ ३ ॥
यदि त्वं हि पुरा द्यूतात्कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
निवर्त्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ४ ॥
युद्धकाले पुनः प्राप्ते तदैव भवता यदि ।
निवर्तिताः स्युः संरब्धा न त्वां व्यसनमाव्रजेत्॥ ५ ॥
दुर्योधनं चाऽविधेयं बध्नीतेति पुरा यदि ।
कुरूनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ६ ॥
न ते बुद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः ।
पञ्चाला वृष्णयः सर्वे ये चाऽन्येऽपि नराधिपाः॥ ७ ॥
स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे ।
वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ८ ॥
त्वं तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम् ।

हैं ॥ जल निकलनेसे जैसे पुल बांधनेका कार्य निष्फल होता है, उसही प्रकारसे इस समयमें आपके ये विलाप वचन निष्फल होरहे हैं; इससे आप इस समय शोक मत कीजिये ॥ हे भारत! कालकी अद्भुत गतिको कोई भी नहीं रोक सकता है ॥ यह प्राणियोंके नाश होनेका वृत्तान्त पहिले हीसे सबको विदित है, इससे उसके निमित्त आप शोक न कीजिये ॥ (१–३)

यदि पहिले तुम युधिष्ठिर और अपने पुत्रोंको जूएके खेलसे रोकते, तो इस समयमें तुम्हें यह व्यसन प्राप्त न होता॥ युद्धके समय पहिले यदि आप अपने क्रोधी पुत्रोंको युद्ध करनेसे रोकते तो भी इस समयमें तुम्हें यह व्यसन उपस्थित न होता ॥ तुमने पहिलेसे इस दुष्ट दुर्योनके बंधनके विषयमें कौरवोंको आज्ञा नहीं की, उसहीसे व्यसनमें पडे हो, और उसहीसे पाण्डव पाञ्चाल यदुवंशी और दूसरे सम्पूर्ण राजाओंने समझा था, कि तुम्हारी बुद्धि इस समय उलटी होगयी है ॥ (४–७)

आप यदि धर्ममार्ग पर स्थित रहते पुत्रको श्रेष्ठ मार्गमें चला कर पिताके योग्य कर्मोंको करते; तो आपको ऐसे विपद्में न फंसना पडता॥ आप पृथ्वी के बीच बुद्धिमान् होकर भी सनातन-

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चाऽन्वगा मतम् ॥ ९ ॥
तत्ते विलपितं सर्वं मया राजन्निशामितम् ।
अर्थे निविशमानस्य विषमिश्रं यथा मधु ॥ १० ॥
नाऽमन्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा ।
न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः ॥११॥
अज्ञानात्स यदा तु त्वां राजधर्मादधश्च्युतम् ।
तदाप्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते ॥ १२ ॥
परुषाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे ।
तस्याऽनुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुक ॥ १३ ॥
पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदाऽनघ ।
अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥ १४ ॥
पाण्डुना निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा ।
ततश्चाऽप्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ १५ ॥
तेषां तत्तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम् ।

धर्मको त्यागके दुर्योधन, कर्ण और शकुनिके मतानुवर्त्ती हुए ॥ आपका अन्तःकरण अर्थ-लाभसे मुग्ध होगया था ! इतने पर भी आप इस समयमें विलाप कर रहे हैं; इससे आपके विलाप वचनोंको विष मिले हुए मधुके समान मैं बोध कर रहा हूं ॥ (८–१०)

कृष्ण आपको पहिले जैसे मानते थे, राजा युधिष्ठिर, भीष्म और द्रोणाचार्यको वैसा नहीं मानते थे ॥ जब उन्होंने आपको राजधर्मसे भ्रष्ट होते देखा उस ही समयसे फिर तुम्हारा वैसा मान नहीं किया ॥ जिस समय तुम्हारे पुत्रोंने पाण्डवोंको कडवे वचन सुनाकर उन्हें वनवासी बनाया था, उस समय आप जो राज्यके लोभमें पडके पुत्रोंके वचनों को क्षमा किया था। उसीका फल इस समयमें आप अनुभव कर रहे हैं ॥ (११–१३)

हे पापरहित ! तुम्हारा यह पैतृक राज्य तो अनेक अंशसे नष्ट होगया था अनन्तर पाण्डवोंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतकर तुम्हें समर्पण किया; तभीसे आप सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको भोगरहे हैं। पाण्डुने जितनी पृथ्वीके राज्यको ग्रहण करके कुरुवंशके यशको बढाया था, धर्मात्मा पाण्डवोंने उनसे भी अधिक विशाल राज्य ग्रहण करके यश प्राप्त किया है ॥ उन लोगोंका ऐसा बडा कार्य तुम्हारे ही कारणसे निष्फल हुआ;

यत्पित्र्याद्भ्रंशिता राज्यात्त्वयेहाऽऽमिषगृद्धिना ॥१६ ॥
यत्पुनर्युद्धकाले त्वं पुत्रान्गर्हयसे नृप ।
बहुधा व्याहरन्दोषान्न तदद्योपपद्यते ॥ १७ ॥
न हि रक्षन्ति राजानो युद्ध्यन्तो जीवितं रणे ।
चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रियर्षभाः ॥ १८ ॥
यां तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरौ ।
रक्षेरन्को नु तां युद्ध्येच्चमूमन्यत्र कौरवैः ॥ १९ ॥
येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
येषां च सात्यकिर्योद्धा येषां योद्धा वृकोदरः ॥ २० ॥
को हि तान्विषहेद्योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः ।
अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः ॥ २१ ॥
यावत्तु शक्यते कर्तुमन्तरज्ञैर्जनाधिपैः ।
क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत्कुर्वन्ति कौरवाः ॥ २२ ॥
यथा तु पुरुषव्याघ्रैर्युद्धं परमसङ्कटम् ।

क्योंकि तुमने उन लोगोंके ज्येष्ठ तात होकर मांसकी अभिलाष करनेवाले पक्षीके समान राज्य लोभके आधीन होकर उन लोगोंको इकबारगी राज्यसे भ्रष्ट किया है ॥ (१४-१६)

परन्तु इस समय युद्ध उपस्थित होने पर तुम अपने दोषोंको स्वीकार न करके पुत्रोंके ऊपर दोषारोपण कर रहे हो ॥ यह उचित कार्य नहीं होता है; देखो क्षत्रिय श्रेष्ठ राजालोग युद्धमें प्रवृत्त होकर पाण्डवोंकी सेनामें प्रविष्ट हो के अपने प्राणकी रक्षा नहीं कर सकते हैं॥ जिस सेनाको कृष्ण अर्जुन तथा जिस सेनाको सात्यकि और भीमसेन रक्षा करते हैं, कौरवोंको छोडके उस सेना के सङ्ग और दूसरा कौन पुरुष युद्ध कर सकता है ? (१७-१९)

जिस सेनाके अर्जुन योद्धा और कृष्ण मन्त्री हैं, जिस सेनाके रक्षक पराक्रमी सात्यकि और भीमसेन हैं; उस सेनासे कौरव तथा कौरवोंके अनुयायी पुरुषोंको छोडके और कौन मरण- धर्मशील धनुर्धारी पुरुष युद्ध करनेका उत्साह कर सकता है ? कौरवोंकी ओरके क्षत्रिय धर्म अवलम्बन करनेवाले शूरवीर राजा और पराक्रमी क्षत्रिय पुरुष भी अपनी सामर्थ्यके अनुसार युद्ध कर रहे हैं। जो हो, पुरुषसिंह पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा ओंने कौरवोंके सङ्ग जिस प्रकारसे महा- घोर संग्राम किया है। वह सम्पूर्ण वृत्तान्त

कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत्सर्वं श्रृणु तत्त्वतः ॥२३॥ [३०८६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सञ्जयवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सञ्जय उवाच— तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद्व्यूहितुं ततः ॥ १ ॥
शूराणां गर्जतां राजन्संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ।
श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्परवधैषिणाम् ॥ २ ॥
विस्फार्य च धनूंष्यन्ये ज्याः परे परिमृज्य च ।
विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन्क्वेदानीं स धनञ्जयः ॥ ३ ॥
विकोशान्सुत्सरूनन्ये कृतधारान्समाहितान् ।
पीतानाकाशसङ्काशानसीन्केचिच्च चिक्षिपुः ॥ ४ ॥
चरन्तस्त्वसिमार्गांश्च धनुर्मार्गांश्च शिक्षया ।
संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ ५ ॥
सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः ।
समुत्क्षिप्य गदाश्चाऽन्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम् ॥ ६ ॥
अन्ये बलमदोन्मत्ताः परिघैर्बाहुशालिनः ।

मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं, आप चित्त लगाकर सुनिये ॥ (२०-२३)[३०८६]

द्रोणपर्वमें छियासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें सतासी अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! उस रात्रिके बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने अपनी सम्पूर्ण सेनाका व्यूह बनाना आरम्भ किया ॥ क्रोधी बाहुबलसे मतवारे आपसमें एक दूसरेके वधकी अभिलाष करनेवाले शूरवीरोंके सिंहनादके सहित विचित्र शब्द सुनाई देने लगे ॥ कितने ही शूरवीर योद्धा लोग धनुषपर रोदा चढाकर हाथमें धनुष फेरते हुए लम्बी और गर्म सांस लेकर " इस समयमें वह अर्जुन कहां है ? " ऐसे वचनोंको कहते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ १-३

सहस्रों शूरवीर शस्त्रविद्या जाननेवाले योद्धा युद्ध करनेके निमित्त उत्सुक होकर धनुष, तलवार तथा दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंको घुमाते हुए मार्गमें गमन करते हुए दिखाई देने लगे ॥ कितने ही पराक्रमी योद्धा लोग घण्टायुक्त चन्दनचर्चित सुवर्ण और हीरा रत्नोंसे प्रकाशमान गदा घुमाते हुए " कहां है अर्जुन " ऐसे ही वचनोंको कहते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे ॥ कितने ही पराक्रमी वीर योद्धा अपने बाहुबलसे मतवारे होकर

चक्रुः सम्बाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः ॥ ७ ॥
नानाप्रहरणैश्चाऽन्ये विचित्रस्रगलंकृताः ।
संग्राममनसः शूरास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥
क्वाऽर्जुनः क स गोविन्दः क्व च मानी वृकोदरः ।
क्व च ते सुहृदस्तेषामाह्वयन्ते रणे तदा ॥ ९ ॥
ततः शङ्खमुपाध्माय त्वरयन्वाजिनः स्वयम् ।
इतस्ततस्तान्रचयन्द्रोणश्चरति वेगितः ॥ १० ॥
तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु ।
भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाऽब्रवीत् ॥ ११ ॥
त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः ।
अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा ॥ १२ ॥
शतं चाऽश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट् ।
द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १३ ॥
पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः ।

इन्द्रधनुषके समान परिघ उछालते हुए आकाशको अवलोकन करते हुए गमन करने लगे ॥ (४–७)

विचित्र माला और आभूषणधारी नाना भांतिके शूरवीर योद्धा लोग अपने नियमित स्थानोंपर स्थित होके युद्धकी अभिलाष करके "कहां है अर्जुन ? किधर कृष्ण है ? बल पराक्रमके अभिमानसे मतवारा वह भीमसेन कहां है ? और उन पाण्डवोंके अनुयायी उनके सुहृद लोग कहां हैं ?" ऐसे ही वचनोंको कहते हुए तुम्हारी ओरके पराक्रमी योद्धा लोग रणभूमिमें पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंको युद्धके निमित्त आवाहन करने लगे ॥ द्रोणाचार्य अपना शंख बजाकर निज रथको सेनाके बीच चारों ओर घुमाते और उन सम्पूर्ण वीर योद्धाओंको यथा योग्य स्थानोंमें स्थित करते हुए सेनाको व्यूहबद्ध करके युद्धके निमित्त गमन करने लगे ॥ (८–१०)

हे महाराज ! युद्ध करनेके वास्ते उत्सुक उस सम्पूर्ण सेनाको व्यूहबद्ध करके द्रोणाचार्यने योद्धाओंको यथा योग्य स्थानोंमें स्थित किया। अनन्तर भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य राजा जयद्रथसे यह वचन बोले, हे सिन्धुराज ! तुम सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा, महारथ कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन और कृपाचार्य, इन छहों महारथियोंके सहित एक लाख घुडसवार, साठ हजार रथी, चौदह हजार

गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत ॥ १४ ॥
तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः ।
किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव ॥ १५ ॥
एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः ।
सम्प्रायात्सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः ॥ १६ ॥
वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः ।
चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः ॥ १७ ॥
जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः ।
ते चैकसप्तसाहस्रास्त्रिसाहस्राश्च सैन्धवाः ॥ १८ ॥
मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः ।
नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥ १९ ॥
अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां युद्ध्यमानो व्यवस्थितः ॥ २० ॥
ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवाऽऽत्मजौ ।
सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥ २१ ॥

मतवारे हाथियोंपर चढे हुए गजारोही योद्धा और इक्कीस हजार कवचधारी पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धाओंको सङ्ग लेकर मेरे समीपसे छः कोसकी दूरीपर जाकर सेनाके बीचमें निवास करो ॥ तुम सब इस ही प्रकारसे उस स्थानमें स्थित रहोगे तो पाण्डवोंकी तो बातही क्या है; सम्पूर्ण देवतोंके सहित इन्द्र भी तुम्हें युद्ध भूमिमें आक्रमण नहीं कर सकेंगे।११-१५

सिन्धुराज जयद्रथसे जब द्रोणाचार्यने ऐसे वचन कहे तब उन्होंने धीरज धरके द्रोणाचार्यके बतलाये हुए उन सम्पूर्ण महारथवीरोंके बीच में घिरकर प्रासधारी कवच पहने हुए यत्नशील घुडसवारों और गान्धार देशीय शूरवीरोंके सहित अपने निश्चित स्थानपर जानेके निमित्त प्रस्थान किया, चवंर और सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित सात हजार उत्तम घोडे और दो हजार सिन्धु देशीय घोडे उनके सङ्ग गमन करने लगे ॥ (१६–१८)

तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षण युद्ध विद्यामें निपुण घुडसवार और भयङ्कर मूर्त्तिवाले युद्धमें भयानक कार्योंके करनेमें समर्थ मतवारे हाथियोंके साथ सम्पूर्ण सेनाके आगाडी स्थित हुए ॥ तिसके अनन्तर तुम्हारे दो पुत्र दुःशासन और विकर्ण सिन्धुराज जयद्रथके प्रयोजनके सिद्ध करनेके निमित्त सेनाके आगाडीके हिस्सेमें स्थित

दीर्घो द्वादशगव्यूतिः पश्चार्धे पञ्चविस्तृतः ।
व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ २२ ॥
नानानृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः ।
रथाश्वराजपत्त्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥ २३ ॥
पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः ।
सूचीपद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥ २४ ॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः ।
सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥ २५ ॥
अनन्तरं च काम्बोजो जलसन्धश्च मारिष ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च ॥ २६ ॥
ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम् ।
व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम् ॥ २७ ॥
तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः ।
जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ २८ ॥

हुए ॥ भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यने स्वयं सेनाके बीच चारों ओर भ्रमण करके रथी, घुडसवार, गजपति, पैदल चलनेवाले, शूरवीर योद्धा और नाना देशोंसे आयेहुए पराक्रमी राजाओंको यथा योग्य स्थानोंमें स्थित करते हुए अपनी महा विशाल सेनाका चक्रशकट व्यूह बनाया। इस व्यूहकी लम्बाई चौबीस कोसकी हुई और उसके पीछे सेनाके आधे हिस्से में जो चक्रव्यूह बनाया उसका विस्तार घेरा दश कोसका हुआ ॥ (१९–२३)

उस दुःखसेभी न भेद होनेवाले पद्मकी आकृतिके समान चक्रव्यूह के बीचमें महात्मा द्रोणाचार्यने सूचीव्यूह नामक एक गूढ व्यूह बनाया॥ इसी प्रकारसे पराक्रमी द्रोण महाव्यूहको सज्जित करके सम्पूर्ण सेनाके आगे स्थित हुए॥ महाधनुर्द्धर कृतवर्मा उस पद्मव्यूहके भीतर सूची व्यूहके मुखस्थल पर स्थित हुए ॥ उनके पीछे काम्बोज और जलसन्ध खडे हुए उनके पश्चात् अपने अनुयायी तथा सेवकोंसे घिरकर राजा दुर्योधन और कर्ण स्थित हुए; उनके बाद युद्धभूमिमें पीछे न हटने वाले एक लाख शूरवीर योद्धालोग युद्धके निमित्त खडे हुए ॥ (२४–२७)

उन सम्पूर्ण शकट व्यूहके मुखरक्षक योद्धाओंके पीछेके हिस्सेमें पहिले कहे हुए सूचीव्यूहके चारों ओर बहुत बडे सेनादलसे घिरकर राजा जयद्रथ स्थित हुए॥

शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः ।
अनु तस्याऽभवद्भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम् ॥ २९ ॥
श्वेतवर्माऽम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
धनुर्विस्फारयन्द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवाऽन्तकः ॥ ३० ॥
पताकिनं शोणहयं वेदिकृष्णाजिनध्वजम् ।
द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन् ॥ ३१ ॥
सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयः सुमहानभूत् ।
द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥ ३२ ॥
सशैलसागरवनां नानाजनपदाकुलाम् ।
ग्रसेद्व्यूहः क्षितिं सर्वामिति भूतानि मेनिरे ॥ ३३ ॥
बहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं प्रतिभयनिःस्वनमद्भुतानुरूपम् ।
अहितहृदयभेदनं महद्वै शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा ॥ ३४ ॥ [३१२०]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कौरवव्यूहनिर्माणे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच— ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष ।

द्रोणाचार्य शकटव्यूहके मुखस्थलपर स्थित हुए। महारथ कृतवर्मा उनके पीछे खडे होकर उनकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ सफेद कवच और सफेद वस्त्रों तथा सफेद शिरस्त्राणको धारणकरनेवाले, विशाल वक्षस्थलवाले महाबाहु द्रोणाचार्य धनुष चढाकर क्रुद्ध यमराजके समान सम्पूर्ण सेनाके आगे स्थित हुए॥ २८-३०

कौरवलोग लालवर्णके घोडोंके सहित उनके सुन्दर रथ और पताकाके सहित उनके रथकी ध्वजाके ऊपर प्रकाशमान् वेदी और कृष्णाजिनको देखकर हर्षित हुए ॥ सिद्ध चारण आदि प्राणी उथलते हुये समुद्र समान द्रोणाचार्यके बनाये हुए उस अद्भुत व्यूहको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए ॥ सम्पूर्ण प्राणी उस व्यूहको देखकर यह बोध करने लगे, कि यह सेनाका अद्भुत व्यूह सम्पूर्ण चराचरोंसे युक्त पर्वत, समुद्र और वनके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीको ग्रास कर सकता है ॥ राजा दुर्योधन अनेक रथ, मनुष्य घोडे, हाथी और पैदल सेनासे युक्त शत्रु सेनाके योद्धाओं तथा शत्रुओंको भयभीत करनेवाले अद्भुत रूपसे युक्त शत्रु-हृदयमें सालनेवाले, उस महा विकट शकट व्यूहको देखकर आनन्दित हुए॥ (३१-३४) [३१२०]

द्रोणपर्वमें सतासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें अठासी अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! जब इस

ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च ॥ १ ॥
अनीकानां च संह्रादे वादित्राणां च निःस्वने।
प्रध्मापितेषु शङ्खेषु सन्नादे लोमहर्षणे ॥ २ ॥
अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु।
रौद्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ ३ ॥
बलानां वायसानां च पुरस्तात्सव्यसाचिनः।
बहुलानि सहस्राणि प्राक्रीडंस्तत्र भारत ॥ ४ ॥
मृगाश्च घोरसन्नादाः शिवाश्चाऽशिवदर्शनाः।
दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तथा ॥ ५ ॥
सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः सहस्रशः।
चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरे समुत्थिते ॥ ६ ॥
विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करकर्षिणः।
ववुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥ ७ ॥
नाकुलिश्च शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।

प्रकारसे कुरुसेनाका व्यूह बनाया गया तब व्यूहके बीच स्थित शूरवीर योद्धालोग बार बार सिंहनाद करके तर्जन करने लगे। भेरी और मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग महाघोर शब्दके सहित सिंहनाद करने लगे; और भी युद्धके जुझाऊ बाजोंके शब्द सेनाके बीच चारों ओर सुनाई देने लगे। वह सम्पूर्ण नाना प्रकारके शब्द एक सङ्ग मिलके अत्यन्त भयङ्कर बोध होने लगे; और उस महाघोर तुमुल शब्दको सुनके रोएं खडे होगये। अनन्तर तुम्हारी ओरके शूरवीर योद्धा हर्षित होकर धीरे धीरे शस्त्र चलानेके निमित्त तैयार होकर युद्ध भूमिमें स्थित हुए। उस ही भयङ्कर रौद्र मुहूर्तके समयमें सव्यसाची अर्जुन वहां पर दीख पडे ॥ (१—३)

हे भारत! अर्जुनके रथके आगे आगे मांसकी अभिलाष करनेवाले सहस्रों पक्षी तथा कौवे गिद्ध आदि हर्षित होकर गमन करने लगे॥ हमलोगोंने जब युद्धके निमित्त गमन किया तब हरिण और भयङ्कर रूपवाले सियार आदिक पशु हमलोगोंके दाहिनी ओर भयानक शब्द करने लगे॥ उस महाभयङ्कर युद्धके समय में भयानक शब्दों के सहित आकाशसे सहस्रों उल्कापात होने लगे और पृथ्वी कांपने लगी॥ (४—६)

अर्जुनके समागम होनेके समय वायु प्रचण्ड वेगसे युक्त होकर कङ्कडोंके

पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहतुस्तदा ॥ ८ ॥
ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च ।
त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥ ९ ॥
अध्यर्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोऽब्रवीत्॥ १० ॥
अद्य गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम् ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ११ ॥
अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् ।
विषक्तं मयि दुर्धर्षमश्मकूटमिवाऽश्मनि ॥ १२ ॥
तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकांक्षिणः ।
युध्यामि संहतानेतान्यशो मानं च वर्धयन् ॥ १३ ॥
एवं ब्रुवन्महाराज महात्मा स महामतिः ।
महेष्वासैर्वृतो राजन्महेष्वासो व्यवस्थितः ॥ १४ ॥
ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।
दण्डपाणिरिवाऽसह्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥ १५ ॥
शूलपाणिरिवाऽक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव ।

सहित भयङ्कर रूपसे बहने लगा ॥ नकुल पुत्र शतानीक और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न इन दोनों बुद्धिमान् पुरुषोंने उस समयमें पाण्डवोंकी सेनाका व्यूह बनाया ॥ ७-८

महाराज ! तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षण एक सहस्र रथी एक सौ गजपति तीन हजार घुडसवार दश हजार पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धा और पांच सौ धनुर्द्धारी योद्धाओंके बीचमें सब सेनाके आगे खडे होकर यह वचन कहने लगे, कि हे रथिश्रेष्ठ पुरुषो ! तुम लोग केवल युद्धकी अभिलाष करके यहांपर खडे रहो, मैं अकेले ही इन सम्पूर्ण शूरवीरों-के सङ्ग युद्ध करके यशको बढाऊंगा । जैसे तट समुद्रके वेगको रोकता है वैसे ही मैं आज शत्रुनाशन गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनको पत्थर से पत्थरका निवारण करनेके समान युद्ध-भूमिमें निवारण करूंगा ॥ (९-१३)

हे राजेन्द्र ! महाधनुर्धारी वीरोंके बीच में स्थित हुए महा धनुर्द्धर महा तेजस्वी महाबाहु दुर्मर्षण इसी प्रकारसे वचन कहते हुए सम्पूर्ण सेनाके आगे खडे होकर शत्रुओंको आवाहन करने लगे ॥ तिसके अनन्तर पाशधारी वरुण, वज्रधारी इन्द्र, दण्डधारी यमराज और

युगान्ताग्निरिवाऽर्चिष्मान्प्रधक्ष्यन्वै पुनः प्रजाः ॥१६॥
क्रोधामर्षबलोद्धूतो निवातकवचान्तकः ।
जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन्महाव्रतम् ॥१७॥
आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत् ।
शुभ्रमाल्याम्बरधरः स्वङ्गदश्चारुकुण्डलः ॥ १८ ॥
रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणानुगः ।
विधुन्वन्गाण्डिवं संख्ये बभौ सूर्य इवोदितः ॥ १९ ॥
सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनञ्जयः ।
व्यवस्थाप्य रथं राजञ्शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २० ॥
अथ कृष्णोऽप्यसम्भ्रान्तः पार्थेन सह मारिष ।
प्राध्मापयत्पाञ्चजन्यं शङ्खप्रवरमोजसा ॥ २१ ॥
तयोः शङ्खप्रणादेन तव सैन्ये विशाम्पते ।
आसन्संहृष्टरोमाणः कम्पिता गतचेतसः ॥ २२ ॥
यथा त्रस्यन्ति भूतानि सर्वाण्यशनिनिःस्वनात् ।
तथा शङ्खप्रणादेन वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ २३ ॥

त्रिशूलधारी महादेवके समान; निवात-कवच नाम दानवोंके निमित्त यमरूपी सत्यवादी और विजयी विजय नामक पराक्रमी अर्जुन जयद्रथ वधरूपी प्रतिज्ञा-से पार होनेके निमित्त मानो प्रलय कालकी प्रज्वलित अग्निके समान फिर संसारको भस्म करनेकी अभिलाषसे क्रोध, अमर्ष, बल पराक्रमरूपी वायुसे युक्त और नारायणके अनुगामी होकर सफेदमाला, स्वेत अम्बर और सफेद कवच पहन कर तीक्ष्ण धारवाले, तलवार, सुवर्णमय किरीट, शोभायमान वस्त्र और सुन्दर कुण्डलोंको धारण करके, प्रकाशमान रथपर चढकर गाण्डीव धनुष फेरते हुए युद्धभूमिमें उदित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे॥ (१४-१९)

प्रतापी अर्जुनने अपने रथको शत्रु-सेनासे बाण चलाने तककी दूरीपर खडा करके अपना शङ्ख बजाया ॥ अनन्तर कृष्णने भी अर्जुनके सहित निर्भयचित्तसे बलपूर्वक शंखोंमें श्रेष्ठ अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया ॥ हे राजेन्द्र! उन दोनों पुरुषसिंहोंके शङ्खके शब्दको सुनकर तुम्हारी सेनाके पुरुषोंके रोएं खडे होगये, कितने ही पुरुष कांपने लगे और कितने मूर्च्छित होगये। जैसे वज्रके शब्दको सुनकर सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होजाते हैं, उस ही प्रकारसे कृष्ण अर्जुनके शङ्खके

प्रसुस्रुवुः शकृन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः ।
एवं सवाहनं सर्वमाविग्नमभवद्बलम् ॥ २४ ॥
सीदन्ति स्म नरा राजञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
विसंज्ञाश्चाऽभवन्केचित्केचिद्राजन्वितत्रसुः ॥ २५ ॥
ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः ।
अकरोद्व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान् ॥ २६ ॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चाऽऽनकैः सह ।
पुनरेवाऽभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥ २७ ॥
नानावादित्रसंह्रादैः क्ष्वेडितास्फोटिताकुलैः ।
सिंहनादैः समुत्कुष्टैः समाधूतैर्महारथैः ॥ २८ ॥
तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने ।
अतीव हृष्टो दाशार्हमब्रवीत्पाकशासनिः ॥ २९ ॥ [३१४९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनरणप्रवेशेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

अर्जुन उवाच— चोदयाऽश्वान्हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ।

शब्दको सुनकर तुम्हारी सेनाके पुरुष भयभीत होगये; सवारीके सम्पूर्ण वाहन मलमूत्र त्याग करने लगे। इसी प्रकारसे सम्पूर्ण सेना मोहित होगई ॥ (२०–२४)

हे राजन् ! कुरुसेनाके सम्पूर्ण मनुष्य उन दोनों पुरुषसिंहोंके शङ्खके शब्द सुनकर उत्साहरहित होगये; कितने ही मूर्च्छित हुए; और कितने ही योद्धा भयभीत होगये ॥ तिसके अनन्तर अर्जुन की ध्वजापर स्थित वानर मुंह पसारकर ध्वजस्थित भूतोंके सहित तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको भय भीत करते हुए महा घोर शब्द करने लगा ॥ तिसके अनन्तर तुम्हारी सेनाके बीच शूरवीरोंके हर्षको बढानेवाले शङ्ख भेरी मृदङ्ग ढोल और नगाडे आदि युद्धके बाजे बजने लगे ॥ नाना प्रकारके बाजोंका शब्द महारथ शूरवीरोंके धनुषटङ्कार और सम्पूर्ण वीर योद्धाओंका सिंहनाद जुझाऊ बाजोंके सङ्ग मिलकर शूरवीर पुरुषोंके हर्ष और कायरोंके भयको बढाता हुआ अत्यन्त तुमुल उत्पन्न होने लगा। अनन्तर इन्द्र पुत्र अर्जुन अत्यन्त हर्षित होकर श्रीकृष्णसे नीचे कहे हुए वचन बोले ॥(२५–२९) [३१४९]

द्रोणपर्वमें अठासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें नवासी अध्याय ।

अर्जुन बोले, हे हृषीकेश ! जहां

एतद्भित्त्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम् ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच— एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ।
अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥ २ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलः सम्प्रवृत्तः सुदारुणः ।
एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः ॥ ३ ॥
ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
परानवाकिरत्पार्थः पर्वतानिव नीरदः ॥ ४ ॥
ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत् ।
अवाकिरन्बाणजालैस्तत्र कृष्णधनञ्जयौ ॥ ५ ॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि ।
शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः ॥ ६ ॥
उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः सन्दष्टौष्ठपुटैः शुभैः ।
सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥ ७ ॥
पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।

दुर्मर्षण स्थित है, उस ही स्थानपर मेरे रथको ले चलो, मैं इसही गजसेनाको भेद करके शत्रु सेनाके बीच प्रवेश करूंगा ॥ (१)

सञ्जय बोले, हे राजन् ! जब सव्य-साची अर्जुनने श्रीकृष्णसे ऐसा वचन कहा, तब श्रीकृष्णचन्द्रने जिस स्थान पर दुर्मर्षण सेनाके सहित स्थित थे, उस ही ओर अर्जुनके रथके घोडोंको चलाया॥ अनन्तर अकेले अर्जुनके सङ्ग अनेक रथ, हाथी और मनुष्योंका नाश करनेवाला भयङ्कर तुमुल संग्राम होने लगा॥ बादल जैसे पर्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही अर्जुन अपने बाणोंको शत्रुसेनाके ऊपर वर्षाने लगे ॥ (२-४)

वे सम्पूर्ण रथ योद्धा भी शीघ्रताके सहित कृष्ण अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ तिसके अनन्तर पराक्रमी अर्जुन शत्रुसेनाके वीरोंके अस्त्रोंसे विद्ध होकर भी क्रोध-पूर्वक अपने बाणोंसे उन रथियोंके शिरको धडसे काट काटके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ कितने ही कटे हुए शिरोंसे नेत्र बाहर होगये; कितनोंके ओठ लगे हुए दीख पडते थे। कितने ही शिर कुण्डलोंके सहित पृथ्वी पर गिरे हुए दिखाई देने लगे; उस समयमें वीरोंके कटे हुए शिरोंसे पृथ्वी परिपूरित होगई ॥ (५-७)

योद्धाओंका मृतशरीर इधर उधर

विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे ॥ ८ ॥
तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसङ्घाः सविद्युतः ॥ ९ ॥
शिरसां पततां राजञ्शब्दोऽभूद्वसुधातले ।
कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥ १० ॥
ततः कबन्धं किञ्चित्तु धनुरालम्ब्य तिष्ठति ।
किञ्चित्खड्गं विनिष्कृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति ॥ ११ ॥
पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः ।
अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयगृद्धिनः ॥ १२ ॥
हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी ।
बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत ॥ १३ ॥
अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो ।
तव सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाऽभवत् ॥ १४ ॥
अन्योऽन्यमपि चाऽऽजघ्नुरात्मानमपि चाऽपरे ।

रणभूमिमें गिर कर टूटे हुए कमलवनके समान दिखाई देने लगा ॥ शूरवीरोंके सुवर्णमय कवच रुधिरसे पूरित होकर मानों बादलोंसे युक्त बिजलीके समान दिखाई देने लगे ॥ समयके पके हुए तालवृक्षके फलोंके गिरनेसे जिस प्रकार शब्द होता है, वैसे ही पृथ्वी पर शूर-वीरोंके कटे हुए शिरोंके गिरनेका शब्द होने लगा ॥ (८--१०)

तिसके अनन्तर रणभूमिमें चारों ओर कबन्ध उठके इधर उधर दौडने लगे । कितने ही कबन्ध धनुष चढा कर युद्ध करनेकी इच्छासे संग्रामभूमिके बीच खडे हुए; कितने ही कबन्ध मियानसे तलवार निकालके वेगपूर्वक दौडते हुए दीख पडते थे ॥ सम्पूर्ण वीर पुरुषोंने अर्जुनको युद्धभूमिसे पराजित करके ही संग्रामसे निवृत्त होनेकी इच्छा करी थी; उन लोगोंके शिर जो शरीरसे कटकर पृथ्वीमें गिर पडे, यह उन शूर वीरोंको मालूम ही हुआ ॥ घोडे और मनुष्योंके बहुतेरे शिर तथा कितनेही हाथियोंके कटे हुए खण्डोंसे पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥ (११--१३)

हे राजेन्द्र ! तुम्हारी सेनाके बीच सम्पूर्ण योद्धा लोग " यही अर्जुन ! कहांसे अर्जुन आगया ? यही अर्जुन है ! " ऐसे कहते हुए कोई परस्पर तथा कोई अपने को ही मारने लगे । तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धालोग रण-

पार्थभूतममन्यन्त जगत्कालेन मोहिताः ॥ १५ ॥
निष्टनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः ।
शयाना बहवो वीराः कीर्त्तयन्तः स्वबान्धवान् ॥ १६ ॥
सभिन्दिपालाः सप्रासाः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः ।
सनिर्व्यूहाः सनिस्त्रिंशाः सशरासनतोमराः ॥ १७ ॥
सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
महाभुजगसङ्काशा बाहवः परिघोपमाः ॥ १८ ॥
उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति संवेष्टन्ति च सर्वशः ।
वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेषुभिः ॥ १९ ॥
यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसञ्चरते नरः ।
तस्य तस्याऽन्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥ २० ॥
नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा ।
न कश्चित्तत्र पार्थस्य ददर्शेऽन्तरमण्वपि ॥ २१ ॥
यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान् ।

भूमिको अर्जुनमय देखने लगे ॥ उन सम्पूर्ण योद्धाओंमें कितने ही कालके वशमें होकर मोहित होगये, और अपनी ओरके योद्धाओंको ही अर्जुन समझकर आपस ही में युद्ध करके एक दूसरेके अस्त्रोंसे मरकर गिरने लगे। कितने ही शूरवीर योद्धा लोग अस्त्रोंकी चोटसे अत्यन्त पीडित होके रुधिर बहते हुए शरीरसे चेतरहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे और अपने बन्धुबान्धवोंका नाम लेकर कातर स्वरसे पुकारने लगे ॥ (१४–१६)

लोहमय परिघ और सर्पके समान शूरवीरोंकी विशाल भुजा भिन्दिपाल, तोमर, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, परशु, धनुष, बाण, वर्म, अंगुलित्राण तथा दूसरे अनेक प्रकारके अस्त्र और गदाके सहित अर्जुनके महाअस्त्रोंसे कटके वेगपूर्वक इधर उधर गिरती और हाथ पसार के शस्त्रों-को चलाती हुई दीख पडती थीं, कितने ही वीरोंकी भुजा कटके पृथ्वीमें गिर कर इधर उधर लुढकती और कितने ही वीरोंकी विशाल भुजा इधर उधर भ्रमण करती हुई दीख पडी ॥ (१७–१९)

जो पुरुष क्रोधपूर्वक दौडके अर्जुनके संमुख हुए अर्जुनके बाणोंसे उन सम्पूर्ण योद्धाओंके शरीर कटके पृथ्वी पर गिर पडे ॥ अर्जुन मानो रथ पर चढ कर नृत्य करते हुए धनुष चढा कर चारों ओर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय कोई पुरुष तनिक भी

लाघवात्पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥ २२ ॥
हस्तिनं हस्तियन्तारमश्वमाश्विकमेव च ।
अभिनत्फाल्गुनो बाणै रथिनं च ससारथिम् ॥ २३ ॥
आवर्त्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः ।
प्रमुखे तिष्ठमानं च न किञ्चिन्न निहन्ति सः ॥ २४ ॥
यथोद्यन्वै गगने सूर्यो हन्ति महत्तमः ।
तथाऽर्जुनो गजानीकमवधीत्कङ्कपत्रिभिः ॥ २५ ॥
हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत ।
अन्तकाले यथा भूमिर्व्यवकीर्णा महीधरैः ॥ २६ ॥
यथा मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा ।
तथा धनञ्जयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥ २७ ॥
तत्तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परन्तप ।
प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम् ॥ २८ ॥
मारुतेनेव महता मेघानीकं व्यदीर्यत ।

उन्हें अवकाश लेते हुए नहीं देख सके॥ वह बलवान् होकर ऐसे बड़ी शीघ्रताके सहित बाणोंको चलाने लगे, कि सम्पूर्ण सेनाके शूरवीर योद्धा लोग उनके हस्तलाघवको देखकर विस्मित होगये ॥ (२०—२२)

वह गजपतियोंके सहित हाथी, सवारोंके सहित घोडे और सारथियोंके सहित रथियोंके शरीरको काटके गिराने लगे ॥ मण्डलाकार गतिसे घूमनेवाले संमुख स्थित युद्ध करनेवाले पुरुषोंके बीच वहां पर ऐसा कोई भी बाकी न रह गया जिसको कि अर्जुनने अपने बाणोंसे मारकर पृथ्वी पर न गिराया हो ॥ जैसे आकाशमें सूर्य उदय होके सम्पूर्ण अन्धकारको दूर कर देता है वैसे ही अपने बाणोंसे अर्जुन तुम्हारी गज सेनाका नाश करने लगे ॥ जैसे प्रलयकालके समय पर्वतोंके समूहसे पृथ्वी पूरित होजाती है वैसे ही तुम्हारी सेनाके बीच मरे हुए हाथियोंके समूहसे रणभूमि परिपूरित हो गई॥ (२३-२६)

जैसे दोपहरके समयमें सम्पूर्ण प्राणि सूर्यको नहीं देख सकते, वैसे ही शत्रु लोग अर्जुनको युद्धभूमिमें न देख सके॥ हे परन्तप ! हे महाराज ! अन्तमें तुम्हारे पुत्रकी बहुतसी सेना अर्जुनके बाणोंसे पीडित और भयभीत होकर युद्धभूमिसे भागने लगी । जैसे प्रचण्डवायुके वेगसे बादलोंका समूह तितर बितर होजाता

प्रकाल्यमानं तत्सैन्यं नाऽशक्नुत्प्रतिवीक्षितुम् ॥ २९ ॥
प्रतोदैश्चापकोटीभिर्हुङ्कारैः साधुवाहितैः ।
कशापार्ष्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥ ३० ॥
चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः ।
सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चाऽर्जुनार्दिताः ॥ ३१ ॥
पार्ष्ण्यङ्गुष्ठांकुशैर्नागं चोदयन्तस्तथा परे ।
शरैः सम्मोहिताश्चाऽन्ये तमेवाऽभिमुखा ययुः ॥३२॥
तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा ॥ ३३ ॥ [३१८२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनयुद्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्प्रभग्ने सैन्याग्रे वध्यमाने किरीटिना ।
के नु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनञ्जयम् ॥ १ ॥
आहोस्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः ।
द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच— तथाऽर्जुनेन सम्भग्ने तस्मिंस्तव बलेऽनघ ।

है, उस ही प्रकारसे वह सम्पूर्ण सेना अर्जुनके बाणोंसे तितर बितर होने लगी तब सेनाके योद्धा लोग अर्जुनकी ओर देख भी न सके ॥ (२७-२९)

रथी और घुडसवार योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर कोई कोई कोडे, कोई धनुषके नोक, कोई हुङ्कार शब्द, कोई कठोर वचन कहते हुए अपने घोडोंको युद्धभूमिसे लौटा कर अर्जुनके संमुखसे भागने लगे। हाथियोंके समूह पीलवानोंके अंकुश और पांवके अंगूठेसे इधर उधर दौडने लगे; और कितने ही शूरवीर योद्धा बाणोंकी चोटसे मोहित उत्साह रहित होकर भ्रमपूर्वक अर्जुन ही की ओर दौडने लगे। (३०—३३) [३१८२]

द्रोणपर्वमें नवासी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें नब्बे अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! सम्पूर्ण सेना जब अर्जुनके अस्त्रोंसे पीडित होकर युद्धभूमिसे भागने लगी तब कौन कौन योद्धा उस समयमें अर्जुनके सम्मुख हुए थे? जो सम्पूर्ण वीरोंके सङ्कल्प निष्फल हुए और सब योद्धा द्रोणाचार्य रूपी दिवालका आश्रय कर शकटव्यूहमें प्रवेश करके भयसे रहित होकर स्थित हुए? (१—२)

सञ्जय बोले, हे पापरहित! जब उस

हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥ ३ ॥
पाकशासनिनाऽभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः ।
न तत्र कश्चित्संग्रामे शशाकाऽर्जुनमीक्षितुम् ॥ ४ ॥
ततस्तव सुतो राजन्दृष्ट्वा सैन्यं तथा गतम् ।
दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायाऽर्जुनमभ्यगात् ॥ ५ ॥
स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः ।
जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६ ॥
नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम् ।
दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ॥ ७ ॥
ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम् ॥ ८ ॥
भूर्दिशश्चाऽन्तरिक्षं च शब्देनाऽसीत्समावृतम् ।
स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९ ॥
तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णमंकुशैरभिचोदितान् ।
व्यालम्बहस्तान्संरब्धान्सपक्षानिव पर्वतान् ॥ १० ॥
सिंहनादेन महता नरसिंहो धनञ्जयः ।

सम्पूर्ण सेनाके शूरवीर बहुतेरे योद्धा उत्साह रहित होकर अर्जुनके बाणोंसे मारे गये; तब बचे हुए योद्धा उत्साह रहित होकर युद्धभूमिमें अर्जुनके सम्मुखसे भागने लगे और बार बार बाणोंसे पीडित होने पर कोई पुरुष अर्जुनकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुए। (३–४)

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्र दुःशासन सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको इस प्रकार अर्जुनके सम्मुखसे भागते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो युद्ध करनेके वास्ते अर्जुनकी ओर बढे ॥ महा पराक्रमी बलवान् दुःशासनने सुवर्ण भूपित विचित्र कवच और सुवर्ण भूपित शिरस्त्राण धारण करके बडी भयङ्कर हाथियोंकी सेना सङ्ग लेकर मानो पृथ्वीको ग्रास करते हुए सव्यसाची अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ (५–७)

हाथियोंके घंटे, शूरवीरोंके सिंहनाद, धनुषटंकार और हाथियोंके चिंघाडसे सम्पूर्ण दिशा परिपूर्ण होगई । उस मुहूर्त्तका समय भयङ्कर बोध होने लगा ॥ पुरुष सिंह अर्जुनने उन सम्पूर्ण सर्पके समान सूण्डवाले हाथियोंको अंकुश देकर चलाने पर क्रुद्ध होके पक्षयुक्त पर्वतके समान सम्मुख आते देख बल-

गजानीकममित्राणामभीतो व्यधमच्छरैः ॥ ११ ॥
महोर्मिणमिवोद्धूतं श्वसनेन महार्णवम् ।
किरीटी तद्गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा ॥ १२ ॥
काष्ठातीत इवाऽऽदित्यः प्रतपन्स युगक्षये ।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरञ्जयः ॥ १३ ॥
खुरशब्देन चाऽश्वानां नेमिघोषेण तेन च ।
तेन चोत्क्रुष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च ॥ १४ ॥
नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च ।
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च ॥ १५ ॥
मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः ।
शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना ॥ १६ ॥
ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः ।
अनेकशतसाहस्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः ॥ १७ ॥
आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना ।
निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाऽद्रयः ॥ १८ ॥

पूर्वक सिंहनाद किया और अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंकी गजसेनाको सब भांतिसे नष्ट करने लगे ॥(८-११)

जैसे समुद्रमें प्रचण्ड वायुके वेगसे महाभयङ्कर तरङ्ग उठके इधर उधर गिरती हुई दीख पडती है, वैसे ही हाथियोंका समूह अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर इधर उधर दौडते हुए शोभित होने लगा। जैसे मकर घडियाल वायुके वेगसे उठती हुई महावेगवान् समुद्रकी तरङ्गमें प्रवेश करते हैं अर्जुनने उसही प्रकारसे उस गजसेनाके बीच प्रवेश किया। उस समय शत्रुनाशन अर्जुन प्रलय समयके दोपहरके सूर्य समान चारों ओर दिखाई देने लगे॥ घोडोंके टाप, रथोंकी घरघराहट, वीरोंके सिंहनाद, धनुषटङ्कार, गाण्डीवधनुषके शब्द, नाना भांतिके जुझाऊ बाजे, पाञ्चजन्य और देवदत्त शंखके शब्द को सुनके तथा अर्जुनके विषधर सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध होकर सम्पूर्ण हाथी चेतरहितके समान होकर धीरे धीरे आगे बढने लगे॥ (१२-१६)

गाण्डीव धनुषसे छुटे हुए सैकडों तथा सहस्रों बाणोंसे क्षत विक्षत शरीर और अत्यन्त पीडित होकर बारबार महाघोर शब्द करते हुए वे सम्पूर्ण हाथी पक्षरहित पर्वतके समान मरकर पृथ्वी-

अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्चवद्व्यनदन्मुहुः ॥ १९ ॥
गजस्कन्धगतानां च पुरुषाणां किरीटिना ।
छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले ।
पद्मानामिव सङ्घातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम् ॥ २१ ॥
यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः ।
भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥ २२ ॥
केचिदेकेन बाणेन सुमुक्तेन सुपत्रिणा ।
द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥ २३ ॥
अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
सारोहा न्यपतन्भूमौ द्रुमवन्त इवाऽचलाः ॥ २४ ॥
मौर्वीं ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च ।
रथिनां कुट्टयामास भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥
न सन्दधन्न चाऽऽकर्षन्न विमुञ्चन्न चोद्वहन् ।

पर गिरने लगे। कितने ही हाथी दांत पेट पांव आदि सम्पूर्ण शरीरोंमें बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर क्रौञ्च पक्षीके समान शब्द करने लगे। हाथियोंके कन्धे और पीठपर स्थित पुरुषोंके शिर अर्जुनके तीक्ष्णबाणोंसे कटकर पृथ्वीमें गिरने लगे॥ जिस समय उन सम्पूर्ण योद्धाओं के कुण्डल भूषित पद्मपुष्पके समान शिर अर्जुनके बाणोंसे कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे, उस समय मानो कुन्तीपुत्र अर्जुन इष्टदेव को पद्मपुष्प निवेदन करने लगे॥ (१७–२१)

हाथियों के ऊपर अस्त्रशस्त्र ग्रहण करने वाले जो यन्त्रबद्ध शूरवीर योद्धा थे, वे सम्पूर्ण योद्धा लोग हाथियोंके चारों ओर भ्रमण करनेके समय अत्यन्त पीडित रुधिरसे पूरित और कवचरहित होके हाथियोंके हौदेपर इधर उधर झुलने लगे। अर्जुनके धनुषसे वेगपूर्वक छूटे हुए, एक एक बाणोंसे दो, तीन वा उससे भी अधिक पुरुष मरकर पृथ्वीपर गिरने लगे॥ वृक्षयुक्त पर्वतके समान कितने ही हाथी सवारोंके सहित बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर मुंहसे रुधिर उगिलते हुए पृथ्वी पर गिरने लगे॥ (२२–२४)

वह अपने तीक्ष्ण बाणोंसे रथियोंकी मौर्वी धनुष ध्वजा और रथके चक्केको काट काट गिराने लगे॥ उस समयमें

मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन्पार्थः स्म दृश्यते ॥ २६ ॥
अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
मुहूर्त्तान्न्यपतन्नन्ये वारणा वसुधातले ॥ २७ ॥
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥ २८ ॥
सचापाः सांगुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे ।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ २९ ॥
सूपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ ३० ॥
चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ॥ ३१ ॥
निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः ।
अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ ३२ ॥
एवं दुःशासनबलं वध्यमानं किरीटिना ।
सम्प्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥ ३३ ॥

बाण ग्रहण सन्धान करने और बाणोंको चलानेके समय कोई पुरुष भी अर्जुनको न देख सके। केवल उस समयमें उनका धनुष ही मण्डलाकार रूपसे चारों ओर दीखपड़ता था ॥ कितने ही हाथी अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर मुहूर्त भरमें रुधिर उगलते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ (२५-२७)

महाराज! उस महाघोर भयङ्कर संग्रामके समय युद्धभूमिसे अनगिनत कबन्ध उठके चारों ओरसे दौड़ते हुए दिखाई देने लगे॥ कटी हुई सुवर्ण भूषित वीरोंकी भुजा, धनुष,तलवार और अंगुलित्राणके सहित इधर उधर युद्धभूमिमें गिरती हुई दिखाई देने लगीं ॥ कितने ही टूटे पड़े और इधर उधर छिटके हुए रथके चक्र धुरी ध्वजा आदि वस्तु, चक्रधारी, दण्ड ग्रहण करनेवाले मनुष्य, आभूषण, वस्त्र, गलेकी माला, रथकी विशाल ध्वजा और मरे हुए हाथी, घोड़े तथा क्षत्रिय योद्धाओंके मृत शरीरसे वह रणभूमि देखनेमें अत्यन्त ही भयङ्कर बोध होने लगी ॥ (२८-३२)

महाराज! जब दुःशासनकी सेना अर्जुनके बाणोंसे इस प्रकारसे नष्ट होने लगी, तब बचे हुए सेनाके योद्धा लोग अपने नायकके सहित अर्जुनके अस्त्रोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर उनके संमुखसे

ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः ।
द्रोणं त्रातारमाकांक्षञ्शकटव्यूहमभ्यगात् ॥ ३४ ॥ [३२१६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्यपराभवे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

सञ्जय उवाच— दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः ।
सिन्धुराजं परीप्सन्वै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १ ॥
स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्याऽनुमतेऽब्रवीत् ॥ २ ॥
शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन्स्वस्ति चैव वदस्व मे ।
भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम् ॥ ३ ॥
भवान्पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च ।
तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥
अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयाऽनघ ।
तथाऽहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ॥ ५ ॥
तव प्रसादादिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे ।
निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो ॥ ६ ॥

भागने लगे ॥ तिसके अनन्तर सेनाके सहित पीडित होकर दुःशासनने भी भयभीत होके परित्राणकी अभिलाषसे द्रोणाचार्यके निकट जाकर शकटव्यूहमें प्रवेश किया ॥ (३३-३४) [३२१६]

द्रोणपर्वमें नब्बे अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकानब्बे अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! महारथ अर्जुन दुःशासनकी सेना नष्ट करके सिन्धुराज जयद्रथके समीप जानेकी इच्छासे द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौडे ॥ उन्होंने व्यूहके मुखपर द्रोणाचार्यको स्थित देखकर कृष्णकी परामर्श के अनुसार आचार्य द्रोणसे यह वचन कहा, हे ब्राह्मण ! आप मेरे मङ्गल और कल्याणकी चिन्ता करके स्वस्तिवाद कीजिये; मैं तुम्हारी कृपासे इस दुर्भेद्य शत्रु सेनाके व्यूहमें प्रवेश करनेकी अभिलाष करता हूं ॥ (१-३)

मैं सत्य कहता हूं, कि आप मेरे पिताके सदृश तथा धर्मराज युधिष्ठिर और कृष्णके समान मुझे प्रिय हैं । हे द्विजसत्तम ! हे पापरहित ! अश्वत्थामा जिस प्रकारसे तुम्हारी रक्षाके योग्य पात्र है, मैं भी उस ही प्रकारसे तुमसे रक्षित होनेके योग्य हूं ॥ हे पुरुषर्षभ ! हे आचार्य ! मैंने तुम्हारी कृपासे युद्धभूमिमें सिन्धुराज जयद्रथके वध करनेकी

सञ्जय उवाच— एवमुक्तस्तदाऽऽचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ॥ ७ ॥
एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् ।
सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन्वै ससारथिम् ॥ ८ ॥
ततोऽर्जुनः शरव्रातान्द्रोणस्याऽऽवार्य सायकैः ।
द्रोणमभ्यद्रवद्बाणैर्घोररूपैर्महत्तरैः ॥ ९ ॥
विव्याध च रणे द्रोणमनुमान्य विशाम्पते ।
क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥ १० ॥
तस्येषूनिषुभिश्छित्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ ।
विषाग्निज्वलितप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥
इयेष पाण्डवस्तस्य बाणैश्छेत्तुं शरासनम् ।
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
द्रोणः शरैरसम्भ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाऽऽशु वीर्यवान् ।
विव्याध च हयानस्य ध्वजं सारथिमेव च ॥ १३ ॥

प्रतिज्ञा किया है। आज मेरी प्रतिज्ञाकी रक्षा कीजिये ॥ (४–६)

सञ्जय बोले जब द्रोणाचार्यसे अर्जुन ने ऐसा वचन कहा, तब द्रोणाचार्यने हंसकर उन्हें यह उत्तर दिया, कि हे अर्जुन ! तुम मुझे बिना पराजित किये जयद्रथको न जीत सकोगे ॥ ऐसा वचन कहकर द्रोणाचार्यने हंसते हुए तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनको रथके घोडे और सारथीके सहित छिपा दिया ॥ (७–८)

तिसके अनन्तर अर्जुनने भी अपने बाणोंके समूहसे द्रोणाचार्यके बाणोंको निवारण करके फिर अत्यन्त भयङ्कर अनेक बाणोंको चलाकर द्रोणाचार्यको आक्रमण किया ॥ हे नरनाथ ! तिसके अनन्तर अर्जुनने द्रोणाचार्यको सम्मानित कर के क्षत्रियधर्म अवलम्बन करने से फिर नव बाणों से उन्हें विद्ध किया ॥ (९–१०)

द्रोणाचार्यने अपने बाणोंसे अर्जुनके बाणोंको काटके विष तथा जलती हुई अग्निके समान भयङ्कर बाणोंको चलाकर अर्जुन कृष्ण दोनोंको विद्ध किया ॥ तब महात्मा अर्जुनने द्रोणाचार्यके धनुष काटनेकी इच्छा किया; वह धनुष काटने की इच्छा करते ही थे कि उस ही समयमें पराक्रमी द्रोणाचार्यने निर्भय चित्तसे अपने बाणोंसे अर्जुनके धनुषका रोदा काट दिया; और तिसके अनन्तर उनके रथके घोडे, ध्वजा और सारथीको

अर्जुनं च शरैर्वीरः स्मयमानोऽभ्यवाकिरत्।
एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद्धनुः ॥ १४ ॥
विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः।
मुमोच षट्शतान्बाणान्गृहीत्वैकमिव द्रुतम् ॥ १५ ॥
पुनः सप्तशतानन्यान्सहस्रं चाऽनिवर्तिनः।
चिक्षेपाऽयुतशश्चाऽन्यांस्तेऽघ्नन्द्रोणस्य तां चमूम् ॥१६॥
तैः सम्यगस्तैर्बलिना कृतिना चित्रयोधिना।
मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः ॥ १७ ॥
विसूताश्वध्वजाः पेतुः संछिन्नायुधजीविताः।
रथिनो रथमुख्येभ्यः सहसा शरपीडिताः ॥ १८ ॥
चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः।
तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम् ॥ १९ ॥
पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः।
हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥ २० ॥

विद्ध करके फिर हंसकर अर्जुनको अपने बाणोंसे छिपा दिया। उस ही समय अर्जुनने अपने प्रचण्ड गाण्डीव धनुषपर रोदा चढाकर सम्पूर्ण अस्त्रोंके मर्मको जाननेवाले द्रोणाचार्यको अपनी युद्ध विषयक निपुणता दिखानेकी इच्छासे शीघ्रता पूर्वक छः सौ बाणोंको ग्रहण करके हस्तलाघवके सहित मानो एकही बाण धनुषसे चलाया ॥ (११–१५)

तिसके अनन्तर सात सौ, फिर एक सहस्र, इसी प्रकारसे लगातार दश दश हजार बाण एक एक बार अर्जुन धनुषपर रखके द्रोणाचार्यकी ओर चलाने लगे॥ अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए वे सम्पूर्ण बाण द्रोणाचार्यकी सेनाका नाश करने लगे। विचित्र योद्धा पराक्रमी अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए उन सम्पूर्ण बाणोंसे विद्ध होकर मनुष्य, घोडे,हाथी प्राण त्यागकर पृथ्वीमें गिरने लगे॥ रथी योद्धा लोग सहसा अर्जुनके बाणोंसे पीडित हो अस्त्रोंके कटनेसे, सारथी और रथके घोडोंसे रहित होकर तीक्ष्ण बाणोंकी चोटसे मरकर पृथ्वीपर गिरने लगे॥ (१६–१८)

हाथी मानो वज्रसे टूटे हुए पर्वत, प्रचण्ड वायुके वेगसे तितर बितर हुए बादलोंके समूह और अग्निसे जलते हुए घरके समान अर्जुनके बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर गिरने लगे॥ सहस्रों घोडे अर्जुनके बाणोंसे कटकर इस भांति

रथाश्वद्विपपत्त्योघाः सलिलौघा इवाऽद्भुताः ।
युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः ॥ २१ ॥
तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं कुरुप्रवीरान्युधि निष्टपन्तम् ।
स द्रोणमेघः शरवृष्टिवेगैः प्राच्छादयन्मेघ इवाऽर्करश्मीन् ॥२२॥
अथाऽत्यर्थं विसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना ।
आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनञ्जयम् ॥ २३ ॥
सविह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।
धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्त्रिभिः ॥ २४ ॥
द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या ध्वजं चाऽस्य त्रिभिः शरैः॥ २५ ॥
विशेषयिष्यञ्छिष्यं च द्रोणो राजन्पराक्रमी ।
अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छरवृष्टिभिः ॥ २६ ॥
प्रसक्तान्पततोऽद्राक्ष्म भारद्वाजस्य सायकान् ।

पृथ्वीपर गिरते हुए दिखाई देने लगे, जैसे हिमालयपर्वतपर जलधाराके वेगसे हंसोंके समूह पर्वतके ऊपर गिरते हुए दिखाई देते हैं ॥ ऐसा क्या वरन समूहके समूह रथ, घोड़े हाथी और पैदल सेनाके शूरवीर योद्धा लोग अर्जुनके हाथसे छूटे हुए प्रलय कालके सूर्यकी किरणके समान प्रकाशमान बाणोंसे अद्भुत जलरूपी होकर उस समय नष्ट होने लगे ॥ इसी प्रकारसे अर्जुनके सूर्यकिरण समान बाणोंकी जाल जब कुरुसेनाके शूरवीरोंको दुःखित करने लगी, तब द्रोणाचार्यने बादलरूपी अपने बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनके बाणोंको तथा अर्जुनको इस प्रकार छिपा दिया जैसे बादल सूर्यको छिपा देते हैं ॥ (१९–२२)

अनन्तर द्रोणाचार्यने शत्रुओंके प्राण नाश करनेवाले एक भयङ्कर बाणको ग्रहण करके वेगपूर्वक अर्जुनके वक्षस्थल में प्रहार किया। जैसे भूकम्प होनेसे पर्वत विचलित नहीं होता, वैसे ही अर्जुन उस बाणकी चोटसे विह्वल होके भी धीरज धारण कर द्रोणाचार्यको विद्ध करने लगे ॥ द्रोणाचार्यनेभी फिर कृष्णको पांच बाणोंसे विद्ध करके अर्जुन को तिहत्तर और उनके रथकी ध्वजाको तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ २३-२५

अत्यन्त पराक्रमी द्रोणाचार्यने शिष्य अर्जुनको अपनी युद्ध विषयक निपुणता दिखानेकी इच्छासे निमेष भरके बीच अपने बाणोंकी वर्षासे रथ सहित अर्जुन

मण्डलीकृतमेवाऽस्य धनुश्चाऽदृश्यताऽद्भुतम् ॥ २७ ॥
तेऽभ्ययुः समरे राजन्वासुदेवधनञ्जयौ ।
द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः ॥ २८ ॥
तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा ।
वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत् ॥ २९ ॥
ततोऽब्रवीद्वासुदेवो धनञ्जयमिदं वचः ।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ ३० ॥
द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम् ।
पार्थश्चाप्यब्रवीत्कृष्णं यथेष्टमिति केशवम् ॥ ३१ ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम् ।
परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद्विसृजञ्शरान् ॥ ३२ ॥
ततोऽब्रवीत्स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते ।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्त्तसे ॥ ३३ ॥

को इस प्रकार छिपा दिया, कि उस समयमें कृष्णके सहित अर्जुन युद्धभूमिमें देख भी नहीं पडे ॥ उससमयसे मैं केवल द्रोणाचार्यके बाणोंको अर्जुनके रथ पर गिरते और उनके धनुषको मण्डलाकार गतिसे चारों ओर भ्रमण करते हुए देखने लगा, हे राजन्! उस समय युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके धनुषके छूटे हुए कङ्कपत्र युक्त अनेक बाण कृष्ण और अर्जुनके ऊपर पडने लगे॥ (२६–२८

महाबुद्धिमान् वसुदेव पुत्र कृष्ण उस समयमें द्रोणाचार्य और अर्जुनका ऐसा युद्ध देखकर चिन्ता करने लगे, अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन! हमलोगोंका निरर्थक समय बीत रहा है इससे चलो हमलोग द्रोणाचार्यको परित्याग करके जिस बडे कार्यको करनेकी इच्छासे आये हैं; उसहीके पूर्ण करनेके निमित्त गमन करें। कृष्णके ऐसे वचन सुनकर अर्जुन उससे बोले, तुम्हारी जैसी इच्छा है, वैसाही करो ॥ (२९—३१)

तिसके अनन्तर महारथ अर्जुनने द्रोणाचार्यको प्रदक्षिण करके उनके समीपसे जयद्रथ वधके निमित्त प्रस्थान किया ॥ अर्जुन अपने बाणोंको चलाते हुए दूसरे मार्गसे गमन करने लगे, तब उन्हें इस प्रकारसेजाते देखकर द्रोणाचार्य हंसके यह वचन बोले, ॥ (३२–३३)

अर्जुन! तुम किधर जारहे हो? तुम जो संग्राममें शत्रुको बिना पराजित किये निवृत्त नहीं होगे वह प्रतिज्ञा

अर्जुन उवाच— गुरुर्भवान्न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते।
न चास्ति स पुमाँल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत्॥ ३४॥
सञ्जय उवाच— एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः।
त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत्॥ ३५॥
तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलम्॥ ३६॥
ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनञ्जयमवारयन्॥ ३७॥
तेषां दशसहस्राणि रथानामनुयायिनाम्।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः॥ ३८॥
मावेल्लका ललित्थाश्च केकया मद्रकास्तथा।
नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानां च ये गणाः॥ ३९॥
कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसम्मताः।
भारद्वाजं पुरस्कृत्य हृष्टात्मानोऽर्जुनं प्रति॥ ४०॥
पुत्रशोकाभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवाऽन्तकम्।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान्सन्नद्धं चित्रयोधिनम्॥ ४१॥

कहां गई? अर्जुन बोले, आप हमारे गुरु हैं, शत्रु नहीं हैं; मैं भी तुम्हारा पुत्रके समान प्रिय शिष्य हूं; विशेष करके इस जगत्के बीच ऐसा कौन पुरुष है, जो युद्धभूमिमें आपको पराजित कर सके। (३४)

सञ्जय बोले, महाराज! जयद्रथवधकी इच्छासे महाबाहु अर्जुन ऐसे ही वचन कहते हुए शीघ्रता पूर्वक उसकी सेनाकी ओर दौड़े अर्जुनके पृष्ठरक्षक पाञ्चाल देशीय युधामन्यु और उत्तमौजा तुम्हारी सेनाके बीच अर्जुनके प्रवेश करनेके समय उनके अनुगामी हुए॥ अनन्तर जय, सात्वत कृतवर्मा, काम्बोजराज और श्रुतायु अर्जुनको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे॥ (३५–३७)

उनके अनुगामी दस हजार रथी और अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति मावेल्लक, ललित्थ, कैकेय, मद्रक देशीय योद्धा गोपाली, नारायणी सेना और काम्बोज देशीय जो सम्पूर्ण शूरवीरोंमें पूजित और प्रशंसित सेना पहिले कर्णके संमुखसे पराजित हुई थी—वे सम्पूर्ण योद्धा लोग द्रोणाचार्यको आगे करके प्राणकी आशा छोड़के पुत्रशोकसे क्रुद्ध हुए, प्राणियोंके नाश करनेवाले, मृत्युके

गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् ।
महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥ ४२ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥ ४३ ॥
जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् ।
न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम् ॥४४॥ ३२६०

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणातिक्रमे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

सञ्जय उवाच— सन्निरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ।
द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १ ॥
किरन्निषुगणांस्तीक्ष्णान्स्वरश्मीनिव भास्करः ।
तापयामास तत्सैन्यं देहं व्याधिगणो यथा ॥ २ ॥
अश्वो विद्धो रथश्छिन्नः सारोहः पातितो गजः ।

समान तुमुल युद्धमें प्राण त्याग करनेके निमित्त उत्सुक, कवच धारण करनेवाले, विचित्रयोद्धा हाथियोंके यूथपतिके समान शत्रुसेना को मर्दन करनेवाले महा पराक्रमी धनुर्द्धर पुरुष सिंह अर्जुनको युद्धसे निवारण करने लगे॥ (३८-४२)

उस समय अकेले अर्जुनके सङ्ग उन सम्पूर्ण योद्धाओंका रोएंको खडा करने-वाला महा भयङ्कर तुमुल संग्राम होने लगा। अर्जुन और वे सम्पूर्ण योद्धा क्रुद्ध होकर आपसमें एक दूसरेकी ओर अपने अस्त्र शस्त्रोंको चलाने लगे ॥ नाना प्रकारकी औषधी जैसे उत्पन्न हुई एक व्याधिको निवारण करती है, वैसे ही जयद्रथ वधके निमित्त गमन करनेवाले पुरुषसिंह अर्जुनको वे सम्पूर्ण योद्धा लोग आपसमें मिलकर युद्धभूमिसे निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए। (४३-४४) [३२६०]

द्रोणपर्वमें एकानब्बे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें बानब्बे अध्याय।

सञ्जय बोले, वे सम्पूर्ण योद्धा लोग महाबली अत्यन्त पराक्रमी अर्जुनको आगे बढते देख उन्हें रोकने लगे, और द्रोणाचार्य भी उस समय युद्ध करनेकी इच्छासे अर्जुनके पीछे पीछे आकर उनके सम्मुख हुए। सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे सर्वत्र प्रकाश करता है अथवा व्याधि उत्पन्न होकर जैसे देहको पीडित करती है, वैसे ही अर्जुन अपने बाणोंको बर्षाते हुए सम्पूर्ण योद्धाओंको पीडित करने लगे॥ कितने ही घोडे बाणोंसे विद्ध हुए, कितने रथियोंके रथ टूट

छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चक्रैर्विनाकृताः ॥ ३ ॥
विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्त्तानि समन्ततः ।
इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४ ॥
तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमजिह्मगैः ।
अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥ ५ ॥
सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसङ्गरः ।
अभ्यद्रवद्रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः ।
अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समार्पयत् ॥ ७ ॥
तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेगविघातकान् ॥ ८ ॥
तस्याऽऽशु क्षिप्तान्भल्लान्हि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥ ९ ॥

गये। गजसवारोंके सहित कितने ही हाथी मरकर पृथ्वीमें गिर पडे, कितने वीरोंके छत्र कटकर छिन्नभिन्न होगये कितने ही रथोंके चक्र टूट गये। और कितने ही शूरवीर योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर चारों ओर भागने लगे। उस समयमें ऐसा दारुण संग्राम होने लगा, कि कुछ भी वहांपर बोध नहीं, होता था ॥ (१-४)

पहिले वे सम्पूर्ण राजा और राजपुरुष शूरवीर योद्धा लोग अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए थे; अर्जुनने भी अपने बाणोंकी वर्षासे उन राजाओंकी सेनाके शूरवीरोंको वार वार पीडित करके उन्हें भयभीत किया था; परन्तु द्रोणाचार्यको आते हुए देखकर सत्य-पराक्रमी श्वेतवाहन अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेकी अभिलाषसे लाल वर्ण वाले घोडोंसे युक्त उत्तम रथपर चढे हुए रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको आक्रमण किया ॥ (५-६)

द्रोणाचार्यने महाधनुर्द्धर शिष्य अर्जुनके ऊपर मर्मभेदी पच्चीस बाण चलाये; सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन उन बाणोंके निवारण करने योग्य बाणोंको शीघ्रताके सहित चलाते हुए द्रोणाचार्य की ओर दौडे ॥ जब इस प्रकार वह शीघ्रताके सहित बाणोंको चला रहे थे तब उस ही समय महात्मा द्रोणाचार्य ब्रह्मास्त्र प्रकट करके नतपर्व बाणोंके समूहसे अर्जुनके बाणोंको काट काट कर गिराने लगे ॥ (७-९)

तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याऽऽचार्यकं युधि ।
यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यद्यदर्जुनः ॥ १० ॥
क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः ।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ११ ॥
अर्जुनः शरवर्षं तद्ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्बाणान्निशातयन् ॥ १२ ॥
द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत् ।
वासुदेवं च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाऽऽशुगैः ॥ १३ ॥
पार्थस्तु प्रहसन्धीमानाचार्यं सशरौघिणम् ।
विसृजन्तं शितान्बाणानवारयत तं युधि ॥ १४ ॥
अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ ।
आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ १५ ॥
वर्जयन्निशितान्बाणान्द्रोणचापविनिःसृतान् ।
किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत्॥ १६ ॥
सोऽन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।

उस समय युद्धभूमिमें मैंने द्रोणाचार्यका अद्भुत पराक्रम तथा आश्चर्यमय कार्य अवलोकन किया, कि युवा अर्जुन यत्नवान् होकर भी उस बूढे आचार्य द्रोणको प्रतिविद्ध करनेमें समर्थ न हुए। महाघोर बादलोंका समूह जैसे सहस्रों धारासे जल वर्षा करते हैं, वैसेही द्रोणाचार्यरूपी बादलने अर्जुनरूपी पर्वतके ऊपर बाणरूपी वर्षा करके उन्हें छिपा दिया ।। अर्जुन भी ब्रह्मास्त्र प्रकट करके अपने बाणोंसे द्रोणाचार्यकी बाणवर्षाको निवारण करने लगे ।। परन्तु द्रोणाचार्यने पचीस बाणोंसे अर्जुन और सात बाणोंसे कृष्णके वक्षस्थल और भुजामें प्रहार किया ॥ (१०-१३)

बुद्धिमान् अर्जुन भी हंसते हुए तीक्ष्ण बाणोंके चलानेवाले द्रोणाचार्यको अपने बाणोंसे निवारण करने लगे ।। अनन्तर अर्जुनके चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होके प्रलय कालकी अग्निके समान तेजस्वी द्रोणाचार्यके समीप युद्धसे पृथक् होगये ।। किरीट धारण करनेवाले अर्जुन भी द्रोणाचार्यके बाणोंके मार्गको छोडके भोजराज कृतवर्माकी सेनामें प्रवेश करके शूरवीर योद्धाओंका नाश करने लगे ।। वह मैनाक पर्वत के समान अलङ्घनीय

अभ्ययाद्दुर्जयन्द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १७ ॥
ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम् ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ १८ ॥
तमर्जुनः शतेनाऽऽजौ राजन्विव्याध पत्रिणाम् ।
पुनश्चाऽन्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥ १९ ॥
भोजस्तु प्रहसन्पार्थं वासुदेवं च माधवम् ।
एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत ॥ २० ॥
तस्याऽर्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ।
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसन्निभैः ॥ २१ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय कृतवर्मा महारथः ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥ २२ ॥
पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः ।
तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ २३ ॥
दृष्ट्वा विषक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति ।
चिन्तयामास वार्ष्णेयो न नः कालात्ययो भवेत्॥२४॥
ततः कृष्णोऽब्रवीत्पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम् ।

द्रोणाचार्यको त्यागके कृतवर्मा और काम्बोजराज सुदक्षिणकी सेनाके बीच आपहुंचे ॥ (१४–१७)

तिसके अनन्तर भोजराज कृतवर्माने महापराक्रमी कुरुसत्तम अर्जुनको शीघ्रता के सहित कंक पत्र से युक्त दश बाणों से विद्ध किया ॥ अर्जुनने कृतवर्माको पहिले एकसौ बाणोंसे विद्ध करके फिर तीन बाणोंके प्रहारसे उन्हें मोहित कर दिया; परन्तु कृतवर्माने हंसके कृष्ण और अर्जुनके ऊपर पचीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ अनन्तर अर्जुनने कृतवर्माके धनुष को काटकर अग्निके समान स्पर्श करनेवाले इक्कीस बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ (१८--२१)

तिसके अनन्तर कृतवर्माने दूसरा धनुष ग्रहण करके पहिले पांच बाणोंसे अर्जुनके वक्षस्थलमें प्रहार करके फिर पांच बाणोंसे उन्हें विद्ध किया। अर्जुनने भी नव बाणोंसे दोनों स्तनोंके बीचमें प्रहार किया ॥ वृष्णिनन्दन कृष्ण अर्जुन को कृतवर्माके सङ्ग युद्धमें फंसे हुए देख कर ऐसा वृथा कालयापन करना ठीक नहीं ऐसा विचारकर यह वचन बोले, हे अर्जुन ! कृतवर्माके सङ्ग सम्बन्ध है, यह समझके तुम उसके ऊपर दया मत

कुरु सम्बन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय ॥ २५ ॥
ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वाऽर्जुनः शरैः ।
अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम् ॥ २६ ॥
अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने ।
विधुन्वन्सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः ॥ २७ ॥
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ ।
पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा रथेषुभिः ॥ २८ ॥
तावविध्यत्ततो भोजः कृतवर्मा शितैः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥ २९ ॥
तावप्येनं विविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजास्त्रिभिस्तथा ॥ ३० ॥
सञ्चिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्छितः ॥ ३१ ॥
कृत्वा विधनुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत् ।
तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं विजघ्नतुः ॥ ३२ ॥
तेनाऽन्तरेण बीभत्सुर्विवेशाऽमित्रवाहिनीम् ।

करो; उसे बाणोंसे पीडित करके शीघ्र विनष्ट करो॥ (२२—२५)

तिसके अनन्तर अर्जुनने बाणोंसे कृतवर्माको मोहित कर वेगगामी घोडोंसे युक्त रथ पर चढके काम्बोज सेनाके बीच प्रवेश किया ॥ कृतवर्मा अर्जुनको काम्बोज सेनाकी ओर जाते देख कर क्रोधपूर्वक धनुष फेरते हुए उनके दोनों पृष्ठरक्षकोंके सहित युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ उन्होंने उन दोनों वीरोंको आते देखकर उन्हें निवारण किया । तिसके अनन्तर भोजराज कृतवर्माने उत्तम पानीसे बुझे हुए तीन बाणोंसे युधामन्यु और चार बाणोंसे उत्तमौजाको विद्ध किया ॥ (२६–२९)

उन दोनोंने दश दश बाणोंसे कृतवर्माको और तीन तीन बाणोंसे उसकी ध्वजा और धनुषको काट दिया। कृतवर्माने क्रोधसे मूर्छित होकर दूसरा धनुष ग्रहण किया और उन दोनों योद्धाओंको धनुष रहित करके फिर अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपा दिया । वे दोनों भी दूसरा धनुष ग्रहण करके भोजराज कृतवर्माको विद्ध करने लगे ॥ (३०–३२)

उस ही समय अर्जुनने शत्रुसेनाके बीच प्रवेश किया । उनके अनुगामी वे

न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा ॥ ३३ ॥
धार्त्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ।
अनीकान्यर्दयन्युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
नाऽवधीत्कृतवर्माणं प्राप्तमप्यरिसूदनः।
तं दृष्ट्वा तु तथाऽऽयान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः॥ ३५ ॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो विधुन्वानो महद्धनुः।
स पार्थं त्रिभिरानर्च्छत्सप्तत्या च जनार्दनम् ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत्।
ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३७ ॥
आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम्।
स तं न ममृषे राजन्पाण्डवेयस्य विक्रमम् ॥ ३८ ॥
अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत्।
तस्याऽर्जुनो धनुश्छित्वा शरावापं निकृत्य च ॥ ३९ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः।
अथाऽन्यद्धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्छितः ॥ ४० ॥
वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत्।

दोनों पुरुषसिंह तुम्हारे पुत्रकी सेनाके बीच प्रवेश करनेके निमित्त यत्नवान् होनेपर भी कृतवर्मासे निवारित होकर प्रवेश करनेमें समर्थ न हुए॥ शीघ्रताके सहित शत्रुनाशन श्वेतवाहन अर्जुनने शत्रुसेनाको पीडित करके गमन करते हुए कृतवर्माको युद्धमें पाकर भी उनका वध नहीं किया॥ (३३–३५)

महा पराक्रमी राजा श्रुतायुध अर्जुन को इस प्रकार शत्रुसेनाका नाश करते हुए युद्धभूमिमें आगे बढे आते देखकर अपने बडे धनुषको फेरते हुए उनकी ओर दौडे। उन्होंने अर्जुनको तीन और कृष्णको सत्तर बाणोंसे विद्ध करके एक तीक्ष्ण धारवाले क्षुरप्र बाणसे उनके रथ-की ध्वजाको विद्ध किया॥ जैसे महा-बलवान् हाथी को कोडेसे प्रहार करते हैं, वैसे ही अर्जुनने नतपर्व नब्बे बाणोंसे श्रुतायुधके ऊपर प्रहार किया। श्रुतायुधने भी अर्जुनके पराक्रमको न सहके उनके ऊपर सतहत्तर बाणोंसे प्रहार किया॥ (३५–३९)

अर्जुनने क्रोधपूर्वक राजा श्रुतायुधके धनुष-बाणको काट कर नतपर्व सात बाणोंसे उनके वक्षस्थलमें प्रहार किया। राजा श्रुतायुधने क्रोधमें भर कर दूसरा

ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिन्दमः ॥ ४१ ॥
शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत ।
अश्वांश्चाऽस्याऽवधीत्तूर्णं सारथिं च महारथः ॥ ४२ ॥
विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः ।
हताश्वं रथमुत्सृज्य स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४३ ॥
अभ्यद्रवद्रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
वरुणस्याऽऽत्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४४ ॥
पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी ।
तस्य माताऽब्रवीद्राजन्वरुणं पुत्रकारणात् ॥ ४५ ॥
अवध्योऽयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम ।
वरुणस्त्वब्रवीत्प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ॥ ४६ ॥
दिव्यमस्त्रं सुतस्तेऽयं येनाऽवध्यो भविष्यति ।
नाऽस्ति चाऽप्यमरत्वं वै मनुष्यस्य कथञ्चन ॥ ४७ ॥
सर्वेणाऽवश्यमर्तव्यं जातेन सरितां वरे ।
दुर्धर्षस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ॥ ४८ ॥
अस्त्रस्याऽस्य प्रभावाद्वै व्येतु ते मानसो ज्वरः ।

धनुष ग्रहण करके नव बाणोंसे अर्जुनकी भुजा और वक्षस्थलमें प्रहार किया; हे भारत ! तिसके अनन्तर महापराक्रमी शत्रुनाशन महारथ अर्जुनने हंसते हुए सहस्रों बाणोंसे राजा श्रुतायुधको पीडित करके शीघ्रताके सहित उनके चारों घोडे तथा सारथीका वध किया और सत्तर बाणोंसे उन्हें फिर विद्ध किया ॥ महा पराक्रमी राजा श्रुतायुध घोडोंसे रहित रथको त्याग कर गदा उठाके अर्जुनके रथकी ओर दौडे ॥ (३९-४४)

महाराज ! राजा श्रुतायुधके पिता वरुणदेव थे और उनकी माता शीतल जलसे युक्त पर्णाशानाम्नी नदी थी। एक बार पर्णाशाने पुत्रके वास्ते वरुणसे प्रार्थना किया ॥ कि "हे स्वामिन् ! मेरा यह पुत्र जगत्के बीच अवध्य होवे, मैं यह वर मांगती हूं।" वरुण प्रसन्न होके पर्णाशासे बोले, हे नदि प्रवरे ! जिस प्रकारसे तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओंसे अवध्य होगा उस निमित्त मैं इसको दिव्य अस्त्र प्रदान करता हूं। मनुष्य किसी प्रकारसे भी अमर नहीं होता; जन्म लेनेसे अवश्य मरना पडता है; परन्तु तुम्हारा यह पुत्र मेरे दिये हुए अस्त्रके प्रभावसे सदा सर्वदा युद्धभूमिमें

इत्युक्त्वा वरुणः प्रादाद्गदां मन्त्रपुरस्कृताम् ॥ ४९ ॥
यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुतायुधः।
उवाच चैनं भगवान्पुनरेव जलेश्वरः ॥ ५० ॥
अयुध्यति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति।
हन्यादेषा प्रतीपं हि प्रयोक्तारमपि प्रभो ॥ ५१ ॥
न चाऽकरोत्स तद्वाक्यं प्राप्ते काले श्रुतायुधः।
स तया वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ॥ ५२ ॥
प्रतिजग्राह तां कृष्णः पीनेनांऽसेन वीर्यवान्।
नाऽकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं गिरिमिवाऽनिलः॥५३॥
प्रत्युद्यान्ती तमेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता।
जघान चाऽऽस्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ॥ ५४ ॥
हत्वा श्रुतायुधं वीरं धरणीमन्वपद्यत।
गदां निवर्त्तितां दृष्ट्वा निहतं च श्रुतायुधम् ॥ ५५ ॥
हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत।

शत्रुओंको पराजित करता रहेगा; इससे तुम अपने इस पुत्रके निमित्त कुछ भी चिन्ता मत करो ॥ (४४—४९)

वरुणने ऐसा वचन कह कर पुत्रको मन्त्रके सहित एक गदा प्रदान किया। उस गदाको पाकर राजा श्रुतायुध सम्पूर्ण लोकोंके बीच विख्यात होगये! भगवान् वरुण राजा श्रुतायुधसे फिर यह वचन बोले॥ हे पुत्र! जो पुरुष युद्ध नहीं करे उसके ऊपर तुम इस गदासे प्रहार मत करना; यदि तुम युद्ध न करनेवाले पुरुषके ऊपर इस गदाको चलाओगे तो यह लौटकर तुम्हारे ही ऊपर गिरेगी॥ और उलट आकर यह गदा उस ही प्रयोग करनेवाले पुरुषका वध कर सकेगी॥ (४९–५१)

महाराज! श्रुतायुधने अपने पिताके वचन अनुसार कार्य नहीं किया, उन्होंने उस वीरघातिनी गदाको कृष्णके ऊपर चलाया॥ पराक्रमी कृष्णने अपने विशाल कन्धेपर उस महाघोर गदाकी चोटको ग्रहण किया। जैसे वायु विन्ध्याचल पर्वतको विचलित नहीं कर सकता, वैसे ही वह गदा कृष्णको विचलित न कर सकी॥ बल्कि अच्छीतरहसे प्रयुक्त न हुई अभिचार देवताके समान घूमकर युद्धभूमिमें खडे हुए अत्यन्त क्रुद्ध वीर श्रुतायुधके ऊपर गिरके उसका प्राण नाश करती हुई पृथ्वीमें गिर पडी॥ (५२–५५)

स्वेनाऽस्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ५६ ॥
अयुध्यमानाय ततः केशवाय नराधिप ।
क्षिप्ता श्रुतायुधेनाऽथ तस्मात्तमवधीद्गदा ॥ ५७ ॥
यथोक्तं वरुणेनाऽऽजौ तथा स निधनं गतः ।
व्यसुश्चाऽप्यपतद्भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥ ५८ ॥
पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः प्रियः सुतः ।
स भग्न इव वातेन बहुशाखो वनस्पतिः ॥ ५९ ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः ।
प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ६० ॥
ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥ ६१ ॥
तस्य पार्थः शरान्सप्त प्रेषयामास भारत ।
ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन्धरणीतलम् ॥ ६२ ॥
सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे ।
अर्जुनं प्रति विव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ६३ ॥

शत्रुनाशन श्रुतायुधको अपने ही अस्त्रसे मरके पृथ्वी पर गिरते देखकर उनकी सेनाके सम्पूर्ण पुरुष तुमुल शब्दके सहित हाहाकार करने लगे ॥ हे राजेन्द्र ! श्रुतायुधने उस गदाको युद्ध न करनेवाले कृष्णके ऊपर चलाया था इसही कारण-से उस गदाकी चोटसे स्वयं प्राणरहित होकर युद्धभूमिमें गिर पडे ॥ वरुणने जैसा वचन कहा था, उसही वचन के अनुसार वह युद्ध भूमि में मारे गये। वह सम्पूर्ण धनुर्धारियोंके संमुख हीमें प्राण त्याग कर पृथ्वीमें गिर पडे । पर्णाशाके प्रिय पुत्र श्रुतायुध मानो वायुके वेगसे टूटे हुए अनेक शाखाओंसे युक्त वृक्षके समान पृथ्वी पर गिरके शोभित होने लगे । (५६–५९)

तिसके अनन्तर सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग सेनापति श्रुतायुधको मरे हुए देखकर युद्धभूमिसे भागने लगे । तिस के अनन्तर काम्बोजराजके पराक्रमी पुत्र सुदक्षिण वेगवान् घोडोंसे युक्त अपने सुन्दर रथपर चढके अर्जुनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ अर्जुनने सुद-क्षिणके ऊपर सात बाण चलाये, वे सातों बाण सुदक्षिणके शरीरको भेदकर पृथ्वी पर गिरे ॥ (६०–६२)

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर सुदक्षिणने कङ्क

वासुदेवं त्रिभिर्विध्वा पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा केतुं चिच्छेद मारिष ॥ ६४ ॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तं च विव्याध पाण्डवः ।
स तु पार्थं त्रिभिर्विध्वा सिंहनादमथाऽनदत् ॥ ६५ ॥
सर्वपारसवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः ।
स घण्टां प्राहिणोद्घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने ॥ ६६ ॥
सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम् ।
सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ६७ ॥
शक्त्या त्वभिहतो गाढं मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
समाश्वास्य महातेजाः सृक्किणी परिलेलिहन् ॥ ६८ ॥
तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः ।
साश्वध्वजधनुःसूतं विव्याधाऽचिन्त्यविक्रमः ॥ ६९ ॥
रथं चाऽन्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः ।
सुदक्षिणं तं काम्बोजं मोघसङ्कल्पविक्रमम् ॥ ७० ॥
बिभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः ।
स भिन्नवर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ॥ ७१ ॥

पत्र युक्त दश बाणोंसे अर्जुनके ऊपर प्रहार किया; फिर दूसरी बार तीन बाणोंसे कृष्णको विद्ध करके पांच बाणों से अर्जुनको विद्ध किया ॥ अर्जुनने उनके धनुषको काट कर उनके रथकी ध्वजा काट दिया और अत्यन्त तीक्ष्ण दो भल्लसे उन्हें विद्ध किया। सुदक्षिणने भी तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनको विद्ध करके सिंहनाद किया (६३–६५)

तिसके अनन्तर सुदक्षिणने घण्टा युक्त एक महाघोर शक्ति अर्जुनकी ओर चलाया। प्रकाशमान महोल्का समान वह जलती हुई प्रचण्ड शक्ति महारथ अर्जुनके शरीरको भेद कर पृथ्वीमें प्रविष्ट हुई ॥ उससे अर्जुन अत्यन्त ही विद्ध होकर मूर्च्छित होगये। अत्यन्त पराक्रमी महातेजस्वी अर्जुन कुछ समय बीतने पर फिर सावधान हुए और दांत पीसते हुए कङ्कपत्र युक्त चौदह बाणोंसे घोड़े, ध्वजा, धनुष और सारथीके-सहित काम्बोजराज सुदक्षिणको विद्ध करके फिर अनेक बाणोंसे उनके रथको काटके खण्ड खण्ड कर दिया। (६६–७०)

अनन्तर तीक्ष्ण धारवाले एक बाणसे हृदयको भेद करके सङ्कल्प और पराक्रम को निष्फल कर दिया ॥ उनका वर्म

पपाताऽभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः ।
गिरेः शिखरजः श्रीमान्सुशाखः सुप्रतिष्ठितः॥ ७२ ॥
निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये ।
शेते स निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः ॥ ७३ ॥
महार्हाभरणोपेतः सानुमानिव पर्वतः ।
सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः ॥ ७४ ॥
पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः ।
धारयन्नग्निसङ्काशां शिरसा काञ्चनीं स्रजम् ॥ ७५ ॥
अशोभत महाबाहुर्व्यसुर्भूमौ निपातितः ।
ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते ॥
हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥ ७६ ॥ [३३३६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि
श्रुतायुधसुदक्षिणवधे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

सञ्जय उवाच— हते सुदक्षिणे राजन्वीरे चैव श्रुतायुधे ।

कट गया, अंगुलित्राण मुकुट और कवच कटके पृथ्वी पर गिर पडे; वीर सुदक्षिण संमुख होकर ही यन्त्र-युक्त ध्वजाकी भांति रणभूमिमें गिर पडे। जैसे पर्वतके शिर पर उत्पन्न हुए उत्तम शाखासे युक्त अत्यन्त विशाल शोभायमान कर्णिकार का सुन्दर वृक्ष हेमन्त ऋतुके अन्तमें वायुके वेगसे टूट कर पर्वतके ऊपर गिरता है, वैसे ही सुदक्षिण अर्जुनके बाणकी चोटसे मरकर पृथ्वीपर गिरे हुए शोभित होने लगे ॥ (७०–७२)

काम्बोजदेशीय उत्तम वस्त्रोंसे युक्त शोभायमान शय्यापर शयन करने योग्य महामूल्यवान् प्रकाशमान आभूषणोंको पहने हुए राजा सुदक्षिण मर कर पर्वत के समान पृथ्वीपर शयन करने लगे ॥ अग्निके समान तेजस्वी सुवर्णकी माला पहने हुए लालनेत्रसे युक्त उत्तम शरीर वाले काम्बोजराजके पुत्र सुदक्षिण अर्जुन के बाणकी चोटसे प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिर कर भी अत्यन्त शोभित होने लगे। तिसके अनन्तर तुम्हारे पुत्रकी सम्पूर्ण सेनाके योद्धालोग श्रुतायुध और काम्बोजराजके पुत्र सुदक्षिणको मरे हुए देखकर युद्ध भूमिसे भागने लगे ॥ (७३–७६) [३३३६]

द्रोणपर्वमें बानब्वे अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें तिरानब्वे अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! महापराक्रमी वीर सुदक्षिण और श्रुतायुधके मरने पर

जवेनाऽभ्यद्रवन्पार्थं कुपिताः सैनिकास्तव ॥ १ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः।
अभ्यवर्षंस्ततो राजञ्शरवर्षैर्धनञ्जयम् ॥ २ ॥
तेषां षष्टिशतानन्यान्प्रामथ्नात्पाण्डवः शरैः।
ते स्म भीताः पलायन्ते व्याघ्रात्क्षुद्रमृगा इव ॥ ३ ॥
ते निवृत्ताः पुनः पार्थं सर्वतः पर्यवारयन्।
रणे सपत्नान्निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान्युधि ॥ ४ ॥
तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः।
शिरांसि पातयामास बाहूंश्चाऽपि धनञ्जयः ॥ ५ ॥
शिरोभिः पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा।
अभ्रच्छायेव चैवाऽऽसीद् ध्वांक्षगृध्रबलैर्युधि ॥ ६ ॥
तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च धनञ्जयमयुध्यताम् ॥ ७ ॥
बलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ।

तुम्हारी बहुतसी सेना क्रुपित होकर अर्जुनके ऊपर अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करती हुई वेगपूर्वक उनके संमुख आपहुंची॥ अभीषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति देशीय सेनाके शूरवीर योद्धा लोग अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ इन्द्रपुत्र अर्जुनने उन सम्पूर्ण वीरोंके बीचसे छः हजार मुख्य मुख्य योद्धाओंको अपने बाणोंसे पीडित किया;उससे वे लोग अर्जुनके संमुखसे इस प्रकार भाग गये, जैसे व्याघ्रके संमुखसे छोटे हरिण भाग जाते हैं (१–३)

अनन्तर उन शूरवीरोंने फिर लौट कर क्रोध पूर्वक शत्रुओंको मारनेवाले और जीतनेवाले अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया॥ उन लोगोंके लौटते ही अर्जुनने अपने गाण्डीवधनुष पर बाणों-को चढा कर उनके शिर और भुजा आदि अंगोंको काटना आरम्भ किया॥ उन लोगोंके कटे हुए शिरोंसे उस उस स्थलकी रणभूमि परिपूरित होगई, गिद्ध, कौवे, बगुले आदि मांस भक्षण करने-वाले पक्षियोंने वहां पर उडते हुए आकाशमण्डलको मेघच्छायाकी भांति छिपा दिया॥ (४–६)

जब वह सम्पूर्ण सेना अर्जुनके बाणों से पीडित होने लगी तब श्रुतायु और अच्युतायु अर्जुनके सङ्ग युद्ध करने लगे॥ महाराज! महाबलवान् अत्यन्त पराक्रमी वे दोनों धनुर्द्धारी वीर महत् यश को

तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥ ८ ॥
त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद्यशः ।
अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ ॥ ९ ॥
तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् ।
पूरयामासतुः क्रुद्धौ तटाकं जलदौ यथा ॥ १० ॥
श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनञ्जयम् ।
आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
जगाम परमं मोहं मोहयन्केशवं रणे ॥ १२ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः ।
शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥ १३ ॥
क्षते क्षारं स हि ददौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १४ ॥
ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनञ्जयम् ॥ १५ ॥

प्राप्त करनेकी अभिलाषासे अर्जुनके वध और तुम्हारे पुत्रके हितकी इच्छा करके शीघ्रताके सहित दहिनी और बायीं ओर स्थित होकर अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ जैसे बादल जल वर्षा करके तालाबोंको परिपूर्ण कर देते हैं वैसेही उन दोनों वीरोंने क्रुद्ध होकर नतपर्व सहस्र बाणोंसे अर्जुनको छिपा दिया ॥ (७-१०)

अनन्तर रथियोंमें मुख्य श्रुतायुने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अर्जुनके ऊपर शिला पर घिसे हुए तीक्ष्णधारसे युक्त एक तोमर चलाया। शत्रु नाशन अर्जुन उस बलवान् शत्रुके तोमरकी चोटसे अत्यन्त विद्ध होकर मूर्छित होगये, और कृष्णभी उस समय मोहित होगये ॥ उस ही अवसरमें महारथी अच्युतायुने एक तीक्ष्ण त्रिशूलसे अर्जुनके ऊपर प्रहार किया ॥ उस समय अच्युतायुने त्रिशूल से प्रहार करके मानो महात्मा अर्जुनके कटे हुए घाव पर लोन लगा दिया, उस त्रिशूलकी चोटसे अर्जुन अत्यन्त पीडित हो कर रथ के ध्वजा का दण्ड पकडके बैठ गये ॥ (११-१४)

उस समयमें अर्जुनको मरा हुआ समझके तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण शूरवीर योद्धालोग महाघोर सिंहनाद करने लगे, तब कृष्ण अर्जुनको मूर्च्छित देखकर

कृष्णश्च भृशसन्तप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम् ।
आश्वासयत्सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनञ्जयम् ॥ १६ ॥
ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्षौ धनञ्जयम् ।
वासुदेवं च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः ॥ १७ ॥
सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम् ।
अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १८ ॥
प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत ।
प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा ॥ १९ ॥
सञ्छन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम् ।
शत्रू चाऽभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवाऽनलौ ॥ २० ॥
प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः ।
तस्मादासन्सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ २१ ॥
ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां मुक्तांश्च सायकान् ।
विचेरुराकाशगताः पार्थबाणविदारिताः ॥ २२ ॥
प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः ।
प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन्वै महारथान् ॥ २३ ॥

मित्रोंके धर्म अनुसार धीरज देने लगे ॥ लक्ष्य देखनेवाले उन दोनों वीरोंने उस ही समयमें रथके चक्के धुरी घोडे ध्वजा और पताकाके सहित कृष्ण अर्जुनको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया, वह युद्ध उस समयमें अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ (१५—१८)

हे भारत ! अनन्तर अर्जुन धीरे धीरे सावधान हुए । उस समय मानों अर्जुन यमलोकमें जाकर फिर वहांसे लौट आये ॥ महारथ अर्जुनने कृष्णके सहित अपने रथको उन दोनों शूरवीरोंके बाणोंके जालसे छिपे हुए देखकर और उन दोनों शत्रुओंको जलते हुए अग्निके समान अवलोकन करके ऐन्द्र अस्त्र चलाया । उस ऐन्द्र अस्त्रसे सहस्र नतपर्व बाण छूटकर उन दोनों महाधनुर्द्धर वीरोंके बाणोंको निवारण करने लगे । उन दोनों वीरोंके सम्पूर्ण बाण उस समय अर्जुनके बाणोंसे कटते हुए आकाशमें भ्रमण करते हुए दिखाई देने लगे ॥ (१९—२२)

पाण्डुपुत्र अर्जुन उन दोनों शूरवीरोंको अपने बाणोंके वेगसे शीघ्र ही निवारण करके महारथियोंके सङ्ग युद्ध करते हुए इधर रणभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ वे दोनों पराक्रमी वीर अर्जुनके बाणोंसे

तौ च फाल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसौ कृतौ ।
वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥ २४ ॥
श्रुतायुषश्च निधनं वधश्चैवाऽच्युतायुषः ।
लोकविस्मापनमभूत्समुद्रस्येव शोषणम् ॥ २५ ॥
तयोः पदानुगान्हत्वा पुनः पञ्चाशतं रथान् ।
प्रत्यगाद्भारतीं सेनां निघ्नन्पार्थो वरान्वरान् ॥ २६ ॥
श्रुतायुषं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाऽच्युतायुषम् ।
नियतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत ॥ २७ ॥
पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः ।
किरन्तौ विविधान्बाणान्पितृव्यसनकर्शितौ ॥ २८ ॥
तावर्जुनो मुहूर्तेन शरैः सन्नतपर्वभिः ।
प्रैषयत्परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥
लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३० ॥
अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन् ।

भुजा और शिरसे रहित होकर मानों वायुके वेगसे टूटे हुए दो वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ श्रुतायु और अच्युतायुका मरना समुद्र सूखनेके समान सम्पूर्ण पुरुषोंको विस्मित करने लगा ॥ तिसके अनन्तर अर्जुनने उन दोनों महारथोंके अनुयायी पचास रथियोंका वध करके फिर मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धाओंका संहार करते हुए भारती सेनाके बीच प्रवेश किया । (२३ – २६)

श्रुतायु और अच्युतायुका मरना देखकर उन लोगोंके दो पुत्र पुरुषश्रेष्ठ नियतायु और दीर्घायु अपने पिताके मरनेपर अत्यन्त दुःखित और क्रुद्ध होकर अपने बाणोंको चलाते हुए अर्जुनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ अर्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुहूर्त भरके बीचमें उन दोनोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे प्राण रहित करके यमपुरीमें भेज दिया ॥ जैसे मतवारा हाथी कमलसे युक्त तालावके कमलनालको तोडते हुए भ्रमण करता है, उस ही भांतिसे कुन्तीपुत्र अर्जुन तुम्हारी सेनाको तितर बितर करने लगे; मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धालोग यत्नवान् होकर भी अर्जुनको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए । (२७—३०)

अनन्तर दुर्योधनकी आज्ञासे अङ्गदेशीय पश्चिम और दक्षिण दिशा के

४७८ महाभारत । [५ जयद्रथवधपर्व

क्रुद्धाः सहस्रशो राजञ्शिक्षिता हस्तिसादिनः॥ ३१ ॥
दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ ३२ ॥
तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रो बाहूनपि सुभूषणान् ॥ ३३ ॥
तैः शिरोभिर्मही कीर्णा बाहुभिश्च सहाऽङ्गदैः ।
बभौ कनकपाषाणा भुजगैरिव संवृता ॥ ३४ ॥
बाहवो विशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च ।
पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥ ३५ ॥
शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रस्रुतशोणिताः ।
अदृश्यन्ताऽद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव ॥ ३६ ॥
निहताः शेरते स्माऽन्ये बीभत्सोर्निशितैः शरैः ।
गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः ॥ ३७ ॥
नानावेषधरा राजन्नानाशस्त्रौघसंवृताः ।
रुधिरेणाऽनुलिप्ताङ्गा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८ ॥

सहस्रों शूरवीर योद्धाओंने हाथी और घोडों पर चढके कलिङ्गदेशीय योद्धाओं को आगे कर क्रोधपूर्वक पर्वतके समान अपने हाथियों के समूहसे आक्रमण किया ॥ उन लोगोंको सम्मुख पहुंचते ही अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुषसे बाणोंको छोडते हुए शीघ्रताके सहित उन शूरवीर योद्धाओंके शिर और सुन्दर आभूषणोंसे भूषित भूजाओंको काट काटके पृथ्वीमें गिराने लगे । ३१-३३

उन सम्पूर्ण कटे हुए शिरों और प्रकाशमान आभूषणों के सहित सर्पके समान भुजाओंसे पृथ्वी मानो सुवर्णमयीके समान शोभित होने लगी ॥ जैसे वृक्षोंसे पक्षियोंका समूह उडते हुए दीख पडता है, वैसेही अर्जुनके बाणोंसे वीरोंके कटे हुए शिर और भुजा इधर उधर गिरती हुई दिखाई देने लगी ॥ बाणोंकी चोटसे सहस्रों हाथियोंके शरीर से इस प्रकार रुधिरकी धारा बहती हुई दिखाई देने लगी जैसे पर्वतके ऊपर से गेरू की धारा बहती हुई दीख पडती है ॥ (३४-३६)

हाथियोंपर चढे हुए कितने ही म्लेच्छ अर्जुनके बाणोंसे प्राण रहित होकर पृथ्वीमें गिरकर अत्यन्तही भयङ्कर रूप से दिखाई पडते थे ॥ नाना वेषवाले शूरवीर योद्धा लोग नाना भांतिके अस्त्र

शोणितं निर्वमन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः।
सहस्रशश्छिन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः ॥ ३९ ॥
चुकुशुश्च निपेतुश्च वभ्रमुश्चाऽपरे दिशः।
भृशं त्रस्ताश्च वहवः स्वानेव ममृदुर्गजाः ॥ ४० ॥
सान्तरायुधिनश्चैव द्विपांस्तीक्ष्णविषोपमाः।
विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः ॥ ४१ ॥
यवनाः पारदाश्चैव शकाश्च सह वाल्हिकैः।
काकवर्णा दुराचाराः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥ ४२ ॥
द्राविडास्तत्र युध्यन्ते मत्तमातङ्गविक्रमाः।
गोयोनिप्रभवाम्लेच्छा कालकल्पाः प्रहारिणः॥ ४३ ॥
दार्वातिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रशः।
ते न शक्याः स्म संख्यातुं व्राताः शतसहस्रशः॥ ४४ ॥
अभ्यवर्षन्त ते सर्वे पाण्डवं निशितैः शरैः।
अवाकिरंश्च ते म्लेच्छा नानायुद्धविशारदाः ॥ ४५ ॥

शस्त्रोंको धारण करके अर्जुनके सङ्ग युद्ध करते हुए उन के तीक्ष्ण बाणोंसे मरकर रुधिरपूरित शरीरसे पृथ्वीमें गिरने लगे। सहस्रों हाथी घोडे और पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धा लोग अर्जुन के बाणोंसे पीडित होकर रुधिर वमन करने लगे; बहुतेरे हाथी चिंघाडते हुए चारों ओर भ्रमण करके बाणोंसे मरकर पृथ्वी में गिरने लगे; कितने ही हाथी भयभीत होगये और बहुतेरे हाथी क्रुद्ध होकर अपने सङ्गवाले हाथियोंसे ही युद्ध करने लगे। कितनेही मतवारे हाथी विषधारी सर्पके समान अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित होके सवारोंके सहित सेना के पुरुषोंको मर्दन करते और इधर उधर युद्धभूमि में भागते हुए दिखाई देने लगे। (३७-४०)

तिसके अनन्तर महाघोर स्वरूप और भयङ्कर नेत्रवाले, कालके समान शस्त्रधारी, शस्त्र चलानेमें निपुण, असुर मायाको जाननेवाले, काकके समान वर्ण वाले, दुराचारी, स्त्री लंपट, कलह प्रिय, मतवारे हाथीके समान पराक्रमवाले, द्राविड, यवन, पारद, शक, वाह्लिक, गोयोनिसे उत्पन्न हुए म्लेच्छ लोग और दार्वातिसार, दरद, तथा पुण्ड्रदेशीय युद्धविद्याके जाननेवाले सहस्रों तथा लाखों म्लेच्छोंके दल जिनकी गिनती नहीं हो सकती वे सम्पूर्ण म्लेच्छ अर्जुनको आक्रमण करके उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी

तेषामपि ससर्जाऽऽशु शरवृष्टिं धनञ्जयः ।
सृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवाऽऽयतिः ॥ ४६ ॥
अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनञ्जयः ।
मुण्डार्धमुण्डाञ्जटिलानशुचीञ्जटिलाननान् ॥ ४७ ॥
म्लेच्छानशातयत्सर्वान्समेतानस्त्रतेजसा ।
शरैश्च शतशो विद्धास्ते सङ्घा गिरिचारिणः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः ॥ ४८ ॥
गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शितैः शरैः ।
बकाः कङ्का वृका भूमावपिबन्रुधिरं मुदा ।
पत्त्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंक्रमाम् ॥ ४९ ॥
शरवर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ।
प्रावर्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ५० ॥
छिन्नांगुलीक्षुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसन्निभाम् ।
प्राकरोद्गजसम्बाधां नदीमुत्तरशोणिताम् ॥ ५१ ॥
देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् ।
यथा स्थलं च निम्नं च न स्याद्वर्षति वासवे ॥ ५२ ॥

वर्षा करने लगे । अर्जुन उन लोगोंके ऊपर शलभ समूहकी भांति झुण्डके झुण्ड बाण चलाने लगे ॥ (४१-४६)

अर्जुनने बाणोंसे आकाश मण्डलको मेघच्छायाकी भांति छालिया; और उन मूडे हुए शिर अधमुण्डित शिर सम्पूर्ण शिर पर जटा बढाये हुए अपवित्र सम्पूर्ण म्लेच्छोंके दलका अपने अस्त्रके प्रतापसे इकबारगी संहार किया । बाकी बचे हुए कितने ही पर्वतकी कन्दरा तथा पहाडों पर वास करनेवाले म्लेच्छ अर्जुनके सैकडों बाणोंसे विद्ध और भयभीत होकर रणभूमिसे भागने लगे । कौवे गिद्ध और सियार आदि मांस भक्षण करनेवाले प्राणी हर्षित होकर मरे हुए हाथी घोडे और म्लेच्छोंको भक्षण करके रुधिर पीने लगे ॥ (४७-४९)

इसी प्रकारसे अर्जुनने हाथी गजपति राजपुत्र घोडे घुडसवार रथी और पैदल चलनेवाले सेनाके पुरुषोंके रुधिरके सहित घोडे हाथी और रथरूपी (पुल) से युक्त बाणरूपी नौका, रुधिर रूपी तरङ्ग, कटीहुई अंगुलि रूपी छोटी छोटी मछरी, केशरूपी सिवार और मरे हुए हाथीरूपी द्वीपोंसे युक्त प्रलयकालके समान एक भयङ्करी नदी उत्पन्न कर

तथाऽऽसीत्पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता ।
षट्सहस्रान्हयान्वीरान्पुनर्दशशतान्वरान् ॥ ५३ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
शरैः सहस्रशो विद्धा विधिवत्कल्पिता द्विपाः॥ ५४ ॥
शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव ।
स वाजिरथमातङ्गान्निघ्नन्व्यचरदर्जुनः ॥ ५५ ॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो मृद्नन्नलवनं यथा ।
भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम् ॥ ५६ ॥
निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः ।
सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः ॥ ५७ ॥
शरार्चिरदहत्क्रुद्धः पाण्डवाग्निर्धनञ्जयः ।
शून्यान्कुर्वन्नथोपस्थान्मानवैः संस्तरन्महीम् ॥ ५८ ॥
प्रानृत्यदिव सम्बाधे चापहस्तो धनञ्जयः ।
वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम् ॥ ५९ ॥
प्राविशद्भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनञ्जयः ।

दिया । जैसे बादलोंकी जल वर्षाके समय में कोई गढा भी जलसे खाली नहीं रह जाता, वैसे ही वह नीची ऊंची रणभूमि रुधिरसे युक्त होकर समान होगई ॥ (४९—५३)

क्षत्रिय श्रेष्ठ अर्जुनने छः हजार घुडसवार और एक हजार मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धाओंको यमपुरीमें भेज दिया । उत्तम भांतिसे सज्जित हुए सहस्रों हाथी अर्जुनके वाणोंसे मर कर मानो वज्रकी चोटसे पक्ष रहित पर्वतकी भांति पृथ्वीपर गिरेहुए दिखाई देने लगे । जैसे मतवारा हाथी कमल वनको मर्दन करते हुए भ्रमण करता है, और जैसे अग्नि वायुसे प्रेरित होकर बहुतेरे वृक्ष, लता, सूखे तृण, काष्ठ और पत्थरोंसे युक्त जङ्गलको भस्म कर देती है, उसी प्रकारसे क्रुद्ध अर्जुनरूपी अग्नि कृष्णरूपी वायुसे प्रेरित होकर भस्मरूपी शिखासे वनरूपी तुम्हारी सेनाको भस्म करने लगे ॥ (५३—५८)

उन्होंने क्रुद्ध होकर वज्र समान अपने तीक्ष्ण वाणोंसे रथोंको घोडे और सारथि तथा रथियोंसे रहित करके मनुष्योंके रुधिरसे रणभूमिको परिपूर्ण करते और हाथ में गाण्डीव धनुष धारण कर सम्पूर्ण सेनाको तितर बितर करते हुए भारती सेनाके बीच प्रवेश किया ।

तं श्रुतायुस्तथाऽऽम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत् ॥ ६० ॥
तस्याऽर्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः।
न्यपातयद्धयाञ्शीघ्रं यतमानस्य मारिष ॥ ६१ ॥
धनुश्चाऽस्याऽपरैश्छित्वा शरैः पार्थो विचक्रमे।
अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य कोपपर्याकुलेक्षणः ॥ ६२ ॥
आससाद रणे पार्थं केशवं च महारथम्।
ततः सम्प्रहरन्वीरो गदामुद्यम्य भारत ॥ ६३ ॥
रथमावार्य गदया केशवं समताडयत्।
गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ॥ ६४ ॥
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धः सोऽम्बष्ठं प्रति भारत।
ततः शरैर्हेमपुङ्खैः सगदं रथिनां वरम् ॥ ६५ ॥
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम्।
अथाऽपरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥
अचूर्णयत्तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाऽभवत्।
अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्याऽन्यां च महागदाम्॥ ६७ ॥
अर्जुनं वासुदेवं च पुनः पुनरताडयत्।
तस्याऽर्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ ॥ ६८ ॥

अम्बष्ठ श्रुतायु यत्नवान् होकर मार्गमें अर्जुनके संमुख खडे होकर उन्हें निवारण करने लगे। (५८–६०)

अर्जुनने कङ्कपत्र युक्त तीक्ष्ण बाणोंसे अम्बष्ठके घोडोंका वध करके फिर अपने बाणोंसे उनका धनुष काट कर पराक्रम प्रकाशित किया। तब वीर अम्बष्ठने गदा ग्रहण कर कृष्ण और अर्जुनके समीप जाकर हंसते हुए रथ को घेर कर गदासे कृष्णके ऊपर प्रहार किया॥ (६१—६४)

शत्रुनाशन अर्जुनने कृष्णको गदासे पीडित देखकर अम्बष्ठके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर सुवर्ण दण्डवाले बाणोंसे उन्हें इस प्रकार छिपा दिया, जैसे बादल आकाशमें सूर्यको छिपा देते हैं। फिर अनेक बाणोंको चलाकर पराक्रमी अर्जुन ने महात्मा अम्बष्ठकी गदाको टुकडे टुकडे कर दिया; उस समय अर्जुनका पराक्रम अद्भुतरूपसे दीख पडा। ६४-६७

अम्बष्ठ उस गदाको अर्जुनके बाणों से नष्ट हुई देख दूसरी गदा ग्रहण कर के कृष्ण-अर्जुनके ऊपर बार बार प्रहार करने लगे। तब अर्जुनने दो क्षुरप्र बाणों

चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चाऽन्येन पत्रिणा।
स पपात हतो राजन्वसुधामनुनादयन् ॥ ६९ ॥
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः।
रथानीकावगाढश्च वारणाश्वशतैर्वृतः।
अदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवाऽऽवृतः ॥७०॥ [३४०६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

सञ्जय उवाच— ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिन्धुराजजिघांसया।
द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १ ॥
काम्बोजस्य च दायादे हते राजन्सुदक्षिणे।
श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना ॥ २ ॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ ३ ॥
त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत्।
गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैतां महाचमूम् ॥ ४ ॥
अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किन्नु कार्यमनन्तरम्।

से गदाके सहित उनकी दोनों भुजा और एक बाणसे उनका शिर काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया। हे राजन्! पराक्रमी अम्बष्ठ मर कर मानों यन्त्रसे छूटे हुए इन्द्रध्वजाकी भांति गिर कर पृथ्वी को अनुनादित करने लगे। उस समय अर्जुन सैकडों हाथी घोडे और रथ सेनाके बीच घिरकर उन सम्पूर्ण योद्धाओंको अपने बाणोंसे तितर वितर करने लगे; उस समय अर्जुन सम्पूर्ण सेनाके बीच घिरकर मानों बादलोंके बीच सूर्य के समान छिपे हुए दिखाई देने लगे॥ (६७—७०) [३४०६]

द्रोणपर्वमें तिरानव्वे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें चौरानव्वे अध्याय।

सञ्जय बोले, हे भारत! कुन्तीपुत्र अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके वधकी अभिलाष करके द्रोणाचार्य और कृतवर्मोकी सेनाको भेदकर उस शकट व्यूह के बीच प्रवेश किया। काम्बोजराजके पुत्र सुदक्षिण और श्रुतायुध जब अर्जुनके हाथसे मारे गये और सम्पूर्ण सेना अत्यन्त पीडित होके उनके सम्मुखसे भागने लगी; तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन द्रोणाचार्यके समीप गये॥ (१-४)

राजा दुर्योधन शीघ्रताके सहित अपने रथपर चढके द्रोणाचार्यके समीप जाकर यह वचन बोले, हे ब्राह्मण! वह पुरुष-

अर्जुनस्य विघाताय दारुणेऽस्मिञ्जनक्षये ॥ ५ ॥
यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जयद्रथः ।
तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ६ ॥
असौ धनञ्जयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः ।
सेनाकक्षं दहति मे वह्निः कक्षमिवोत्थितः ॥ ७ ॥
अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्त्वा सैन्यं परन्तप ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ८ ॥
स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद्ब्रह्मविदां वर ।
नाऽतिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवन्धनञ्जयः ॥ ९ ॥
योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते ।
सर्वं ह्यद्याऽऽतुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम ॥ १० ॥
जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां हिते रतम् ।
तथा मुह्यामि च ब्रह्मन्कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥

सिंह अर्जुन मेरी इस सम्पूर्ण सेनाको पीडित करते हुए तितर बितर करके आगे बढा जा रहा है; इस समय मेरी सेनाके पुरुषोंका अत्यन्त ही नाश हो रहा है, इससे उसे निवारण करनेके निमित्त जो कुछ कर्त्तव्य कार्य हो, उसका आप विचार कीजिये ॥ वह पुरुषसिंह जिस प्रकार जयद्रथका वध न कर सके आप उसही उपायका विधान कीजिये। आपका मङ्गल होवे, आपही हम लोगों के परम आश्रयस्वरूप हैं । (४-६)

जैसे जलती हुई अग्नि सूखे हुए तृण काष्ठ आदिको भस्म कर देती है, वैसे ही अर्जुनरूपी अग्नि क्रोधरूपी वायुसे प्रेरित होकर मेरी सेनाको अपने बाणोंसे जलारहा है । हे परन्तप ! जब कुन्ती-पुत्र अर्जुन सम्पूर्ण सेनाको भेदकर जयद्रथके समीप पहुंचेगा तो जयद्रथके सम्पूर्ण रक्षक योद्धाओंको अत्यन्त ही संशय उत्पन्न होवेगा ॥ हे ब्रह्मज्ञ सत्तम ! राजाओंको यह निश्चय हुआ था, कि अर्जुन जीवित रहते द्रोणाचार्यको कभी भी अतिक्रम नहीं कर सकेगा । ७-९

हे महातेजस्विन् ! जब अर्जुनने तुम्हारे संमुख ही व्यूहबद्ध सेनाको भेदकर कुरुसेनाके बीच प्रवेश किया है; तब मैं बोध करता हूं, मेरी सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग आतुर होरहे हैं ऐसा क्या मेरी इस सम्पूर्ण सेनाको नष्ट हुई ही समझ लेना चाहिये ॥ हे भारत ! मैं आपको पाण्डवोंका हितैषी जानता हूं, तौभी इस उपस्थित अत्यन्त बडे कार्यमें

यथाशक्ति च ते ब्रह्मन्वर्त्तये वृत्तिमुत्तमाम्।
प्रीणामि च यथाशक्ति तच त्वं नाऽवबुध्यसे॥ १२॥
अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिच्छस्यमितविक्रम।
पाण्डवान्सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान्॥ १३॥
अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः।
न ह्यहं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरम्॥ १४॥
नाऽदास्यचेद्वरं मह्यं भवान्पाण्डवनिग्रहे।
नाऽवारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान्॥ १५॥
मया त्वाशंसमानेन त्वत्तस्त्राणमबुद्धिना।
आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद्दत्तश्च मृत्यवे॥ १६॥
यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येताऽपि हि मानवः।
नाऽर्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताऽऽजौ जयद्रथः॥१७॥
स तथा कुरु शोणाश्व यथा मुच्येत सैन्धवः।

तुम्हारे ऊपर सम्पूर्ण भारको अर्पित करके मोहित होरहा हूं॥ हे ब्राह्मण! आपकी उपजीविकाभी शक्तिके अनुसार उत्तम रीतिसे देता रहता हूं, और तुम्हारे ऊपर शक्तिके अनुसार प्रीति भी करता हूं; परन्तु आप इन बातोंका विचार नहीं करते हैं॥ (१०—१२)

हे अत्यन्त पराक्रमिन्! हम लोग तुम्हारे भक्त हैं तौभी तुम हमारे ऊपर प्रीति नहीं करते हो; वरन हम लोगोंसे शत्रुता करनेवाले पाण्डवोंके ऊपर आप प्रीति करते हैं॥ आप हम लोगोंके यहांसे उपजीविका पाते हैं, और हमारे ही अप्रिय कार्योंके करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं; इससे आप जो मधु युक्त छूरेके समान हैं, उस बातको मैं नहीं जानता था॥ आप यदि पाण्डवोंकी विरुद्धता करनेके निमित्त प्रतिज्ञा करके हम लोगोंको धीरज न देते, तो मैं सिन्धुराज जयद्रथको घर जानेके निमित्त न रोकता। १३-१५

मेरी बुद्धिहीनतासे ऐसा हुआ है, मैंने समझा था, कि आप सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करेंगे! इस ही कारणसे जयद्रथको धीरज देकर मैंने यमराजके हाथमें समर्पण किया है॥ मनुष्य यमराजके कराल मुखमें प्रवेश करके भी जीता बच सकता है, परन्तु जयद्रथ युद्धमें अर्जुनके वशमें होकर कभी भी जीते जी मुक्त न हो सकेंगे,॥ जो हो इस समय सिन्धुराज जयद्रथ जिस प्रकारसे बच सके आप वैसे ही उपायका विधान करके जयद्रथकी रक्षा कीजिये।

४८६ महाभारत । [५ जयद्रथवधपर्वे

मम चाऽऽर्त्तप्रलापानां मा क्रुद्धः पाहि सैन्धवम् ॥१८॥

द्रोण उवाच— नाऽभ्यसूयामि ते वाक्यमश्वत्थाम्नाऽसि मे समः ।
सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुषस्व विशाम्पते ॥ १९ ॥
सारथिः प्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चाऽस्य हयोत्तमाः ।
अल्पं च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनञ्जयः ॥ २० ॥
किं न पश्यसि बाणौघान्क्रोशमात्रे किरीटिनः ।
पश्चाद्रथस्य पतितान्क्षिप्तान्शीघ्रं हि गच्छतः ॥ २१ ॥
न चाऽहं शीघ्रयानेऽद्य समर्थो वयसाऽन्वितः ।
सेनामुखे च पार्थानामेतद्बलमुपस्थितम् ॥ २२ ॥
युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥ २३ ॥
धनञ्जयेन चोत्सृष्टो वर्त्तते प्रमुखे नृपः ।
तस्माद्व्यूहमुखं हित्वा नाऽहं योत्स्यामि फाल्गुनम् ॥२४॥

मैं इस समयमें आर्त्त हो रहा हूं; इससे आप मेरे आर्त्तप्रलापको सुनकर क्रोध मत कीजिये ॥ (१६—१८)

द्रोणाचार्य बोले, हे राजन् ! मैं तुम्हारी बातों में दोषारोपण नहीं करता हूं, तुम मुझे अश्वत्थामाके समान प्रिय हो । मैं तुमसे यह यथार्थ वचन कहता हूं, उसे तुम अच्छी प्रकार से निश्चय करके हृदयमें धारण करो ॥ कृष्ण सारथियोंमें मुख्य है और उसके रथके घोडे महावेगवान् हैं; इससे अर्जुन थोडासा मार्ग बना कर ही सेना के बीच शीघ्र गमन कर सकता है ॥ तुम क्या नहीं देखते हो, कि उसके धनुषसे छूटे हुए बाण उसके द्रुतगामी रथसे एककोसकी दूरी पर जाके गिरते हैं । (१९-२१)

विशेष करके मैं वृद्ध होनेके कारण अर्जुनके सङ्ग शीघ्र गमन करनेके वास्ते समर्थ नहीं हूं, और पाण्डवोंकी यह सम्पूर्ण सेनाभी हमारे इस व्यूहके मुखस्थल पर उपस्थित है; यदि मैं यहांपर नहीं रहूंगा, तो पाण्डवोंकी सेना मेरे इस व्यूहको तोड कर आगे बढ सकती है; और मैंने क्षत्रिय योद्धाओंके बीचमें यह प्रतिज्ञा किया है, कि सम्पूर्ण धनुर्द्धारियों के सम्मुखहीमें राजा युधिष्ठिरको जीते ही ग्रहण करूंगा । युधिष्ठिरभी इस समय अर्जुनसे रहित होकर मेरे सम्मुख उपस्थित हुआ है । इस वास्ते मैं व्यूह मुखको छोडकर अर्जुन के सङ्ग युद्ध करने के लिये गमन नहीं करूंगा ॥ २२-२४

हे महाबाहो ! तुम और अर्जुन

तुल्याभिजनकर्माणं शत्रुमेकं सहायवान्।
गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं ह्यस्य जगतः पतिः ॥ २५ ॥
राजा शूरः कृती दक्षो नेतुं परपुरञ्जयः।
वीरः स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनञ्जयः ॥ २६ ॥
दुर्योधन उवाच– कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
धनञ्जयो मया शक्य आचार्य प्रतिबाधितुम् ॥ २७ ॥
अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरन्दरः।
नाऽर्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरञ्जयः ॥ २८ ॥
येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः।
अस्त्रप्रतापेन जिता श्रुतायुश्च निवर्हितः ॥ २९ ॥
सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च म्लेच्छाश्चाऽयुतशो हताः ॥३०॥
तं कथं पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम्।
प्रतियोत्स्यामि दुर्धर्षं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥ ३१ ॥

एकही वंशमें उत्पन्न हुए हो, विशेष करके तुम इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राजा और सहायतासे युक्त हो, परन्तु अर्जुन सहायकोंसे रहित तुम्हारा शत्रु है, इससे तुम भय त्याग कर जाके उसके सङ्ग युद्ध करो।। तुम राजा, शूरवीर कृतास्त्र तथा युद्धके सम्पूर्ण कार्योंके जाननेवाले हो; और तुमने ही पाण्डवोंके सङ्ग शत्रुता उत्पन्न करी है; इस समय जहां पर अर्जुन तुम्हारी सेनाके सङ्ग युद्ध कररहा है उस ही स्थान पर जाकर तुम उसके सङ्ग युद्ध करो ॥ (२५–२६)

दुर्योधन बोले, हे आचार्य! तुम सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें अग्रगण्य हो, जब तुम्हे भी अर्जुनने अतिक्रम करके व्यूह बद्ध सेनाके बीच प्रवेश किया है, तब मैं उसे किस प्रकारसे निवारण कर सकूंगा? युद्धमें वज्रधारी इन्द्रको भी पराजित किया जासकता है, परन्तु पराये देशके जीतनेवाले अर्जुनको पराजित नहीं किया जासकता ॥ (२७–२८)

जिस पाण्डुपुत्र अर्जुनने जलती हुई अग्निके समान अपने अस्त्रोंके बलसे भोजराज, कृतवर्मा और देवतोंके समान पराक्रमी आप को जीत कर सेना के बीच प्रवेश किया है, और जिस ने राजा सुदक्षिण, श्रुतायुध, श्रुतायु, अच्युतायु तथा दश दश हजार म्लेच्छोंका वध किया है उसके विरुद्ध मैं कैसे युद्ध करूंगा? मैं तुम्हारे आधीन हूं, यदि

महाभारत । [५ जयद्रथवधपर्व

क्षमं च मन्यसे युद्धं मम तेनाऽद्य संयुगे ।
परवानस्मि भवति प्रेष्यवद्रक्ष मद्यशः ॥ ३२ ॥

द्रोण उवाच— सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनञ्जयः ।
अहं तु तत्करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥ ३३ ॥
अद्भुतं चाऽद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः ।
विषक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥
एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनम् ।
यथा न बाणा नाऽस्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥ ३५ ॥
यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः ।
योधयन्ति त्रयो लोका सनरा नास्ति ते भयम् ॥ ३६ ॥
न कृष्णो न च कौन्तेयो च चाऽन्यः शस्त्रभृद्रणे ।
शरानर्पयितुं कश्चित्कवचे तव शक्ष्यति ॥ ३७ ॥
स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेऽर्जुनम् ।
त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वाऽसौ विसहिष्यति॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच— एवमुक्त्वा त्वरन्द्रोणः स्पृष्ट्वाऽम्भो वर्म भास्वरम् ।

तुम मुझे अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेके योग्य समझते हो, तो जैसे अपने अनुयायी पुरुषकी रक्षा करी जाती है वैसेही आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ (२९–३२)

द्रोणाचार्य बोले, हे कुरुकुल श्रेष्ठ राजन् ! अर्जुन जो युद्धमें न जीतने योग्य हैं, यह तुमने सत्य ही कहा है परन्तु जिस प्रकार तुम उसके अस्त्रोंको निवारण करनेमें समर्थ होंगे, मैं वही विधान करता हूं ॥ आज सम्पूर्ण धनुर्द्धर योद्धा कृष्णके संमुख तुम्हें अर्जुनसे युद्ध करते हुए देखकर अचरज मानेंगे॥ महाराज ! इस सुवर्ण मय कवचको मैं तुम्हारे शरीरमें इस प्रकारसे पहनादूंगा; जिससे किसी अस्त्रकी चोट तुम्हारे शरीरमें न लगेगी ॥ (३३–३५)

यदि सुर, असुर, यक्ष, सर्प, राक्षस और मनुष्योंके सहित तीनों लोकके प्राणी इकट्ठे होकर युद्ध करैं, तो भी युद्ध भूमिमें तुम्हें भय न होगा ॥ न कृष्ण न अर्जुन और न दूसरा कोई शस्त्रधारी पुरुष,— कोई भी युद्धभूमिमें तुम्हारे इस कवचके भीतर अपने अस्त्रोंसे प्रहार नहीं कर सकेगा ॥ इससे तुम इस कवचको पहन कर शीघ्रताके सहित उस क्रुद्ध अर्जुनके समीप जाकर उसके सङ्ग युद्ध करो ॥ (३६–३८)

सञ्जय बोले, ब्रह्मज्ञसत्तम द्रोणाचार्य

आवबन्धाऽद्भुततमं जपन्मन्त्रं यथाविधि ॥ ३९ ॥
रणे तस्मिन्सुमहति विजयस्य सुतस्य ते ।
विसिस्मापयिषुर्लोकान्विद्यया ब्रह्मवित्तमः ॥ ४० ॥
द्रोण उवाच— करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म ब्रह्मा चापि द्विजातयः ।
सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥ ४१ ॥
ययातिर्नाहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः ।
तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥ ४२ ॥
स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च ।
स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥ ४३ ॥
स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥ ४४ ॥
असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाऽङ्गिराः ।
वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥ ४५ ॥
धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः ।
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च षण्मुखः ॥ ४६ ॥
विवस्वान्भगवान्स्वस्ति करोतु तव सर्वशः ।

ने ऐसा वचन कह कर तुम्हारे पुत्रको उस महाभयङ्कर युद्धके समयमें, विजयके निमित्त सम्पूर्ण प्राणियोंको विस्मित करनेके वास्ते शीघ्रताके सहित जलस्पर्श करके मन्त्र जपते हुए अद्भुत प्रकाशमान एक वर्म (सनाह) पहना दिया ॥ (३९-४०)

अनन्तर दुर्योधनसे बोले, हे भरत कुल भूषण ! ब्रह्म और ब्रह्मा तुम्हारे स्वस्तिको विधान करें; ब्राह्मण लोग तुम्हारी स्वस्ति करें; जो सम्पूर्ण सर्प हैं उनसे भी तुम्हारी स्वस्ति होवे; नहुष पुत्र ययाति, धुन्धुमार, भगीरथ और दूसरे राजऋषि लोग भी सर्वदा तुम्हारे स्वस्तिका विधान करें ॥ एक पांववाले और बहुतसे पांववाले तथा पांवरहित जीवोंसे भी इस रणभूमिमें तुम्हारी स्वस्ति होवे ॥ (४१—४३)

हे पापरहित! स्वाहा, स्वधा, शची और अरुन्धती ये सब तुम्हारी स्वस्तिका विधान करें ॥ असित, देवल, विश्वामित्र, अङ्गिरा, वसिष्ठ और कश्यप ये सम्पूर्ण ऋषि लोग तुम्हारी स्वस्तिका विधान करें । धाता, विधाता, लोकपाल, दिशा, दिग्पाल और षडानन स्वामी कार्त्तिक आज तुम्हें स्वस्ति प्रदान करें । ४३-४६

भगवान् विवस्वान्, चारों दिशाके

[५ जयद्रथवधपर्व

दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ॥ ४७ ॥
अधस्ताद्धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप ।
शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥
गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः ।
पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९ ॥
हृततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्वृत्राद्भीता महासुरात् ॥ ५० ॥

देवा ऊचुः— प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम ।
गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥ ५१ ॥
अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान्सुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥
रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः सद्विजातयः ।
त्वष्टुः सुदुर्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः ॥ ५३ ॥
त्वष्टा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा ।
वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्याऽनुज्ञां महेश्वरात् ॥ ५४ ॥

चारों दिग्गज, पृथ्वी, आकाश और सम्पूर्ण ग्रह तुम्हारी स्वस्ति का विधान करें ॥ और जो पृथ्वीके नीचे रहकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करते हैं, वह सर्पोंमें श्रेष्ठ शेषनाग तुम्हें स्वस्ति प्रदान करें ॥ (४७–४८)

हे गान्धारी नन्दन ! पहिले समयमें जब वृत्रासुर नामक दैत्यने पराक्रमको प्रकाशित करके सहस्रों देवताओंके सहित इन्द्रको पराजित किया था; तब सम्पूर्ण देवतोंके सहित क्षतविक्षत शरीर होकर इन्द्र बल और पराक्रमसे रहित होके वृत्रासुरके भयसे ब्रह्माके निकट गये ॥ वे सम्पूर्ण देवता ब्रह्माके समीप जाकर उनसे यह वचन बोले, कि हे देव सत्तम ! वृत्रासुरने हम सब लोगोंको पीडित किया है, इससमय आपही हम लोगोंके आश्रयस्वरूप हैं, आप इस महा भयसे हम लोगोंकी रक्षा कीजिये ॥ ४९–५१

उस समय ब्रह्माने विष्णु और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको दुःखित देख कर यह वचन कहा,— इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवताओं और द्विजपतियोंकी सदा रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य कार्य है। त्वष्टा ऋषिका तेज महाप्रचण्ड है उस ही त्वष्टाऋषिके तेजसे वृत्रासुर उत्पन्न हुवा है ॥ हे देवतो ! त्वष्टाने पहिले दश लाख वर्ष पर्यन्त तपस्या करके महादेव

स तस्यैव प्रसादाद्धो हन्यादेव रिपुर्बली ।
नाऽगत्वा शङ्करस्थानं भगवान्दृश्यते हरः ॥ ५५ ॥
दृष्ट्वा जेष्यथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम् ।
यत्राऽऽस्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः ॥ ५६ ॥
पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः ।
ते गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम् ॥ ५७ ॥
अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
सोऽब्रवीत्स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहम् ॥ ५८ ॥
अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः ।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः ५९ ॥
तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम् ।
मूर्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः ।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर ॥ ६० ॥

की आज्ञासे वृत्रासुरको उत्पन्न किया है। वह बलवान् वृत्रासुर महादेवकी कृपासे ही देवताओंका शत्रु होकर सम्पूर्ण देवतोंको पराजित कर रहा है, तुम लोग महादेवके समीप बिना गये, उनका दर्शन न कर सकोगे ॥ (५२–५५)

उनका दर्शन पाकर तुम लोग वृत्रासुरको जीत सकोगे, इससे शीघ्रही तुम लोग मन्दर पर्वतपर महादेवके समीप गमन करो ॥ महाराज ! देवता लोग ब्रह्माके सहित उसी स्थलपर गये जहां तपस्याके उत्पत्ति स्थान दक्ष यज्ञके नाश करनेवाले पिनाकधारी सब प्राणियोंके ईश्वर भगदेवके नेत्र निपातन करनेवाले महादेव थे। देवताओंने उसही मन्दर पर्वतपर गमन करके सहस्र सूर्यके समान प्रकाशमान अत्यन्त तेजस्वी महादेवका दर्शन किया। महादेव बोले,हे देवगण ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं; मैं तुम लोगोंका कौनसा कार्य करूं ? मेरा दर्शन तुम लोगोंके पक्षमें निष्फल नहीं होगा; तुम लोगोंकी अभिलाषा सिद्ध होवेगी ॥ (५६—५९)

महादेवने जब सम्पूर्ण देवताओंसे ऐसा वचन कहा; तब वे देवता लोग महादेवसे यह वचन बोले, हे भगवन् ! वृत्रासुरने हम लोगोंका तेज हरण किया है; इससे आप हम लोगोंके आश्रयस्वरूप होइये ! हे महादेव ! देखिये हम लोगोंका शरीर अस्त्रोंकी चोटसे क्षतविक्षत होरहा है; इससे हम लोग तुम्हारे शरणागत हुए, आप हम

शर्व उवाच— विदितं वो यथा देवाः कृत्येयं सुमहाबला।
त्वष्टुस्तेजोभवा घोरा दुर्निवार्याऽकृतात्मभिः॥ ६१॥
अवश्यं तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसाम्।
ममेदं गात्रजं शक्र कवचं गृह्य भास्वरम् ॥ ६२॥
बधानाऽनेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर।
वधायाऽसुरमुख्यस्य वृत्रस्य सुरघातिनः ॥ ६३॥
द्रोण उवाच— इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद्वर्म तन्मन्त्रमेव च।
स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद्यत्र चमूं प्रति ॥ ६४॥
नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पात्यमानैर्महारणे।
न सन्धिः शक्यते भेत्तुं वर्मबन्धस्य तस्य तु॥ ६५॥
ततो जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम्।
तं च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाऽङ्गिरसे ददौ ॥ ६६॥
अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पतेः।
बृहस्पतिरथोवाच अग्निवेश्याय धीमते ॥ ६७॥

लोगोंकी रक्षा कीजिये॥ (५९–६०)

महादेव बोले, हे देवता लोगो! त्वष्टाऋषिके तेजसे उत्पन्न हुए अत्यन्त बलवान् भयङ्कर मूर्तिवाला अग्निशिखा-स्वरूप वृत्रासुर कृतात्मा पुरुषोंसे भी पराजित नहीं होसकता; यह मुझे विदित है॥ परन्तु सम्पूर्ण देवताओंकी सहायता करना मेरा कर्त्तव्य कार्य है। हे देवताओंके राजा इन्द्र! तुम देवताओंको पीडा देनेवाले उस असुर श्रेष्ठ वृत्रके वधके निमित्त मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए इस प्रकाशमान कवचको ग्रहण करो और यह मानस मन्त्र जपते हुए इसे अपने शरीरमें बांधो॥ (६१–६३)

द्रोणाचार्य बोले, हे राजसत्तम! वर दान करनेवाले महादेवने ऐसा वचन कहकर उसका मन्त्र इन्द्रको प्रदान किया। इन्द्रने उसही वर्मको पहनकर वृत्रासुरकी सेनाके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त गमन किया। वृत्रासुर भी अपनी सेना सङ्ग लेकर इन्द्रके सङ्ग महाघोर युद्ध करने लगा परन्तु नाना प्रकारके अस्त्रोंसे प्रहार करके भी वर्म धारण करनेवाले इन्द्रके कवच और शरीरको भेद नहीं कर सका॥ तिसके अनन्तर देवराज इन्द्रने युद्धभूमिमें वृत्रासुरका वध किया। (६४–६६)

अनन्तर मन्त्रके सहित उस ही वर्मको इन्द्रने अङ्गिराको प्रदान किया, अङ्गिराने पुत्र बृहस्पतिको बतलाया,

अग्निवेश्यो मम प्रादात्तेन बध्नामि वर्म ते ।
तवाऽद्य देहरक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥ ६८ ॥

सञ्जय उवाच— एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाद्युतिम् ।
पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥ ६९ ॥
ब्रह्मसूत्रेण बध्नामि कवचं तव भारत ।
हिरण्यगर्भेण यथा बद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥ ७० ॥
यथा च ब्रह्मणा बद्धं संग्रामे तारकामये ।
शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा बध्नाम्यहं तव ॥ ७१ ॥
बध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ।
प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥ ७२ ॥
स सन्नद्धो महाबाहुराचार्येण महात्मना ।
रथानां च सहस्रेण त्रिगर्त्तानां प्रहारिणाम् ॥ ७३ ॥
तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम् ।
अश्वानां नियुतेनैव तथाऽन्यैश्च महारथैः ॥ ७४ ॥
वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति ।
नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥ ७५ ॥

बृहस्पतिने अग्निवेशको प्रदान किया; और अग्निवेशने मन्त्र सहित उस वर्मको मुझे प्रदान किया, मैंने आज तुम्हारे शरीरकी रक्षाके वास्ते उस ही वर्मको इस समय तुम्हें पहना दिया है ॥ (६६—६८)

सञ्जय बोले द्रोणाचार्य तुम्हारे महातेजस्वी पुत्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहकर फिर बोले। हे पृथ्वीनाथ ! जैसे हिरण्यगर्भने युद्धमें विष्णुको और ब्रह्माने तारकामय युद्धमें इन्द्रको दिव्य कवच पहनाया था; वैसे ही मैंने भी ब्रह्मसूत्रसे इस वर्मको तुम्हें पहना दिया॥ द्रोणाचार्यने इसी प्रकारसे राजा दुर्योधन के शरीरमें विधिपूर्वक मन्त्रके सहित कवच बांधकर महा युद्धके निमित्त अर्जुनके समीप भेजा ॥ (६९-७२)

महाबाहु दुर्योधन महात्मा द्रोणाचार्यके समीपसे अभेद कवच पाकर अस्त्र शस्त्रोंके चलानेमें निपुण त्रिगर्त्तदेशीय एक हजार मतवारे हाथी एक नियुत घुडसवार और दूसरे बहुतसे महारथ शूरवीरोंके सहित नाना प्रकारके जुझाऊ बाजे बजवाते हुए अर्जुनके रथकी ओर जाने लगे; उस समय राजा दुर्योधनने विरोचनपुत्र राजा बलिकी भांति युद्धकरनेके निमित्त

ततः शब्दो महानासीत्सैन्यानां तव भारत।
अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥ ७६ ॥ [३४८२]

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकवचबन्धने चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

सञ्जय उवाच— प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययो रणे।
दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभे ॥ १ ॥
जवेनाऽभ्यद्रवद् द्रोणं महता निःस्वनेन च।
पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्त्तत ॥ २ ॥
तद्युद्धमभवत्तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम्।
कुरूणां पाण्डवानां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम् ॥ ३ ॥
राजन्कदाचिन्नाऽस्माभिर्दृष्टं तादृङ् न च श्रुतम्।
यादृङ् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद्विशाम्पते ॥ ४ ॥
धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ५ ॥
वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
पार्षतप्रमुखान्पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः ॥ ६ ॥

प्रस्थान किया ॥ अगाध समुद्रके समान सेनाके सहित कुरुराज दुर्योधनको अर्जुनकी ओर जाते देख तुम्हारी सेनाके शूरवीर हर्षित होकर सिंहनाद करने लगे ॥ (७३—७६) [३४८२]

द्रोणपर्वमें चौरानब्बे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें पचानब्बे अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! उधर अर्जुन और कृष्णने शत्रुसेनाके व्यूहके बीच प्रवेश किया; और दुर्योधन उनके पीछे पीछे युद्ध करनेके निमित्त गमन करने लगे। इधर सोमकवीरोंके सहित पाण्डवों ने महा तर्जन गर्जन करके कौरवोंको आक्रमण किया॥ इसके उस शकटव्यूह के अग्रभागमें कुरु-पाण्डवोंका अत्यन्त तुमुल रोएं को खडा करनेवाला प्रचण्ड युद्ध होने लगा॥ (१–३)

महाराज! उस दिन दो पहरके समय जिस प्रकार भयङ्कर युद्ध होने लगा, वैसा संग्राम मैंने पहिले कभी नहीं देखा और न सुना ही था॥ प्रहार करनेमें निपुण धृष्टद्युम्न और पाण्डव लोग अपनी सेनाका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्यकी सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ हम लोग भी सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोणको आगे करके धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्षीय योद्धाओंको बाणों की वर्षासे छिपाने लगे॥ (४–६)

महामेघाविवोद्दीर्णौ मिश्रवातौ हिमात्यये ।
सेनाग्रे प्रचकाशेते रुचिरे रथभूषिते ॥ ७ ॥
समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम् ।
जान्हवीयमुने नद्यौ प्रावृषीवोल्वणोदके ॥ ८ ॥
नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः ।
गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान् ॥ ९ ॥
भारद्वाजानिलोद्धूतः शरधारासहस्रवान् ।
अभ्यवर्षन्महासैन्यः पाण्डुसेनाग्निमुद्धतम् ॥ १० ॥
समुद्रमिव घर्मान्ते विशन्घोरो महानिलः ।
व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तम ॥ ११ ॥
तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन् ।
विभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रबला इव ॥ १२ ॥
वारयामास तान्द्रोणो जलौघमचलो यथा ।
पाण्डवान्समरे क्रुद्धान्पञ्चालांश्च सकेकयान् ॥ १३ ॥

हेमन्त ऋतुके अन्तमें जैसे बादलके दो टुकडे वायुके वेगसे आगे बढते हुए प्रकाशित होते हैं, वैसे ही रथभूषित अत्यन्त मनोहर दोनों सेनाओंका अग्रभाग प्रकाशित होने लगा। जैसे वर्षा कालमें तरङ्ग मालासे युक्त गङ्गा और यमुना नदी आपस में मिलकर महावेगवती होती हैं, वैसेही दोनों ओर-की सेना आपसमें वेगपूर्वक अपने अपने पराक्रमको प्रकाशित करने लगी॥ आगे बढते हुए नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्ररूपी वायुसे युक्त गदारूपी बिजलीसे अत्यन्त भयङ्कर द्रोणाचार्यरूपी प्रचण्ड पवनके वेगसे चलाते और हाथी घोडे रथोंसे घिरे हुए अत्यन्त भयङ्कर महासंग्राममें कुरु-सेनारूपी बादल पाण्डवोंकी सेनाके ऊपर सहस्रों बाणोंकी धारारूपी जलकी वर्षा करने लगे॥ (७--१०)

जिस प्रकार ग्रीष्मऋतुके अन्तमें महाप्रचण्ड वेगवान् वायु समुद्रके जल-को उथलित करता है, वैसेही द्विजसत्तम द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको छिन्न भिन्न करने लगे॥ जैसे अत्यन्त प्रबल जलका वेग पुलको तोड देता है, वैसे ही पाण्डव लोग कुरुसेनाके व्यूहको तोडते हुए द्रोणाचार्यपर आक्रमण करने लगे। जैसे पर्वत बहते हुए जलराशिके स्रोतको रोकता है, वैसे ही द्रोणाचार्य क्रुद्ध पाण्ड-व पाञ्चाल और कैकय देशीय योद्धाओंको युद्धभूमिमें निवारण करने लगे, और

अथाऽपरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः।
महाबला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन् ॥ १४ ॥
ततो रणे नरव्याघ्र पार्षतः पाण्डवैः सह।
सन्दधानाऽसकृद् द्रोणं बिभित्सुररिवाहिनीम् ॥१५॥
यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते।
तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत ॥ १६ ॥
स निस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः।
ज्याविद्युच्चापसंह्रादो धृष्टद्युम्नबलाहकः ॥ १७ ॥
शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत्सर्वतो दिशम्।
निघ्नन्रथवराश्वौघान्प्लावयामास वाहिनीम् ॥ १८ ॥
यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम्।
ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः ॥ १९ ॥
तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत ॥ २० ॥
भोजमेकेऽभ्यवर्तन्त जलसन्धं तथाऽपरे।

दूसरे महाबली पराक्रमी योद्धा लोग पाण्डवोंकी सेनामें योद्धाओंको घेर कर पाञ्चाल वीरोंको युद्ध भूमिसे निवारण करने लगे ॥ (११-१४)

अनन्तर पाण्डवोंके सहित पुरुषसिंह धृष्टद्युम्न शत्रुसेनाको भेद करनेकी इच्छासे बार बार द्रोणाचार्यके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नके ऊपर जैसे बाणोंकी वर्षा कर रहे थे, धृष्टद्युम्न भी उस ही भांति द्रोणाचार्यके ऊपर अपने बाणोंको वर्षाने लगे॥ तलवार, शक्ति, प्रास, ऋष्टिरूपी बिजली धनुष टङ्कार रूपी गर्जनसे युक्त धृष्टद्युम्न रूपी बादलने सम्पूर्ण दिशाओंमें अपने बाणोंको चला कर मानो शिला रूपी जलधाराकी वर्षा करके तुम्हारी ओरके मुख्यरथी और घुडसवारोंको युद्धसे तितर बितर करने लगे ॥ (१५-१८)

द्रोणाचार्य अपने बाणोंकी वर्षासे पाण्डवोंकी सेनाके रथियोंको जिस ओर विद्ध करने लगते थे, धृष्टद्युम्न उस ही स्थानोंसे द्रोणाचार्य को निवारण करते थे। हे भारत! द्रोणाचार्यके ऐसे सावधान होने पर भी उनकी सेना धृष्टद्युम्नके अस्त्रोंसे पीडित होके तीन हिस्सोंमें बंट गई। पाण्डवोंकी सेनासे पीडित होकर कितने ही कुरुसेना के शूरवीरों ने कृतवर्मा का, कईयों ने

पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवाऽपरे ययुः ॥ २१ ॥
सङ्गृह्यति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः ।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २२ ॥
धार्तराष्ट्रास्तथाभूता वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः ।
अगोपाः पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव ॥ २३ ॥
कालः स्म ग्रसते योधान्धृष्टद्युम्नेन मोहितान् ।
संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति सम्मेनिरे जनाः ॥ २४ ॥
कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी ॥ २५ ॥
अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च ।
चक्षूंषि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा ॥ २६ ॥
त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः ।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान्व्यधमच्छरैः ॥ २७ ॥
मृद्नतस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः ।

जलसंधका और दूसरे वीरोंने द्रोणका आश्रय ग्रहण किया,रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपनी सेनाको ज्योंही इकट्ठे करके व्यूहबद्ध करते थे,उस ही समय महारथ धृष्टद्युम्न उन योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करके तितर बितर कर देते थे ॥ (१९-२२)

जैसे वनके बीच गोपालरहित पशुओंका समूह हिंसक जीवोंसे नष्ट होता है, वैसे ही तुम्हारी सेना पाण्डव और सृञ्जयोंके अस्त्रोंसे पीडित होकर तीन हिस्सोंमें बटके नष्ट होने लगी। उस समय सम्पूर्ण पुरुष यह समझने लगे, कि इस तुमुल संग्राममें काल ही धृष्टद्युम्नके जरियेसे योद्धाओंको मोहित करके ग्रास कर रहा है। जैसे दुष्ट राजाकी राज्य चोर, व्याधि और दुर्भिक्षसे नष्ट होती है। वैसे ही तुम्हारी सेना पाण्डवोंके अस्त्रोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर विपद सागरमें डूबने लगी ॥ सेनाके पुरुषोंके अस्त्र शस्त्र और कवचों पर सूर्यकिरणके पडने तथा धूलिके उडनेसे आखोंमें चकाचौंध आती और उस समय कुछ भी नहीं दिखाई देता था ॥ (२३-२६)

जब पाण्डवोंने द्रोणाचार्यकी सेनाको अपने अस्त्रोंसे पीडित करके तीन भाग कर दिया, तब द्रोणाचार्यनेभी अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाञ्चाल योद्धाओं को तितर बितर कर दिया ॥ अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंसे शत्रुसेनाको तितर बितर करते

बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः ॥ २८ ॥
रथं नागं हयं चापि पत्तिनश्च विशाम्पते ।
एकैकेनेषुणा संख्ये निर्बिभेद महारथः ॥ २९ ॥
पाण्डवानां तु सैन्येषु नाऽस्ति कश्चित्स भारत ।
दधार यो रणे बाणान्द्रोणचापच्युतान्प्रभो ॥ ३० ॥
तत्पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् ।
बभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत ॥ ३१ ॥
तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव ।
अभवत्सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाऽग्निना ॥ ३२ ॥
बाध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतसायकैः ।
त्यक्त्वा प्राणान्परं शक्त्या युध्यन्ते सर्वतोमुखाः ॥३३॥
तावकानां परेषां च युध्यतां भरतर्षभ ।
नाऽऽसीत्कश्चिन्महाराज योऽत्याक्षीत्संयुगं भयात् ॥३४॥
भीमसेनं तु कौन्तेयं सौदर्याः पर्यवारयन् ।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ॥ ३५ ॥

हुए योद्धाओंके वध करनेके समयमें द्रोणाचार्यका स्वरूप जलती हुई प्रलय कालकी अग्निके समान दिखाई देने लगा ॥ महारथ द्रोणाचार्य एक एक बाणसे ही रथी गजपति घुड़सवार और पैदल सेनाके योद्धाओंका वध करने लगे ॥ (२७-२९)

हे राजन् ! उस समयमें ऐसा कोई पुरुष भी नहीं था जो द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंको सहनेमें समर्थ होसके । सूर्यके प्रचण्ड उत्तापके समान पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग द्रोणाचार्यके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विकल होके इधर उधर भ्रमण करने लगे॥ तुम्हारी सेना भी धृष्टद्युम्नके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकार दीखने लगी, जैसे सूखे हुए वृक्ष जलती हुई अग्निके वेगसे भस्म हो जाते हैं । तुम्हारी ओर द्रोणाचार्य पाण्डवों की ओर धृष्टद्युम्न, इन दोनों पुरुषसिंहोंके बाणोंसे दोनों ओरकी सेना पीडित होकर नष्ट होने लगीं; परन्तु दोनों सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग अपने प्राणकी आशा त्यागकर शक्ति के अनुसार युद्ध करने लगे ॥ (३०-३३)

दोनों सेनाके बीचमें उस समय कोई पुरुष भी नहीं था, जो संग्रामसे हटके रणभूमिसे भाग जावे ॥ विविंशति चित्रसेन और महारथ विकर्ण इन तीनों

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्त्तिश्च वीर्यवान् ।
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवाऽनुयायिनः ॥ ३६ ॥
वाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः ।
सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत् ॥ ३७ ॥
शैव्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः ।
काश्यस्याऽभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥ ३८ ॥
अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत्॥ ३९ ॥
दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः ।
सात्यकिं प्रययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥ ४० ॥
स्वकेनाऽहमनीकेन सन्नद्धः कवचावृतः ।
चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम् ॥ ४१ ॥
शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत् ।
गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः ॥ ४२ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।

भाइयोंने भीमसेनको आक्रमण किया । अवन्ती नगरीके राजा विन्द अनुविन्द और क्षेमकीर्त्ति ये तीनों महारथ योद्धा विविंशति आदि तुम्हारे तीनों पुत्रोंके अनुगामी हुए ॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए और महारथ वाह्लिक राज अपनी सेना और अनुयायियोंको सङ्ग लेकर द्रौपदीके पुत्रोंके ऊपर बाणवर्षा करने लगे। सहस्र योद्धाओंके सहित गोवासन देशीय शैब्य राजा महाबलवान् पराक्रमी काशिराज पुत्रको युद्धसे निवारण करने लगे ॥ (३५-३८)

मद्रदेशके राजा शल्यने जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी अजात शत्रु राजा युधिष्ठिरको आक्रमण किया ॥ पराक्रमी दुःशासन अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी सेनाको युद्धके निमित्त खडी करके रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ मैं अपनी सेनाके सहित चार सौ धनुर्द्धारी वीरोंको सङ्ग लेकर युद्धभूमिमें चेकितानको निवारण करने लगा ॥ (३९-४१)

शकुनि अपनी सेनाके सहित धनुष बाण शक्ति तलवार ग्रहण करनेवाले सात सौ गान्धार देशीय योद्धाओंको सङ्ग लेकर माद्रीपुत्र नकुल सहदेवको युद्ध-भूमिसे निवारण करने लगे। अवन्तिराजा महाधनुर्धारी विन्द और अनुविन्दने

प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेऽभ्युद्यतायुधौ॥४३ ॥
शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम् ।
बाह्लीकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत् ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः ।
आवन्त्यः सह सौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत ॥ ४५ ॥
घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम् ।
अलायुधोऽद्रवत्तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे ॥ ४६ ॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः ।
सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४७ ॥
सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत्सर्वसैन्यस्य भारत ।
रक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः ॥ ४८ ॥
तस्याऽऽस्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्धवस्य बृहत्तमौ ।
द्रौणिर्दक्षिणतो राजन्सूतपुत्रश्च वामतः ॥ ४९ ॥
पृष्ठगोपास्तु तस्याऽऽसन्सौमदत्तिपुरोगमाः ।
कृपश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः ॥ ५० ॥

राजा दुर्योधनके निमित्त प्राणकी आशा छोड के मत्स्यराज विराटको आक्रमण किया ॥ बाह्लिक देशीय राजाने महाबली पराक्रमी याज्ञसेनि पुत्र शिखण्डीको युद्धमें प्रवृत्त देखकर यत्नपूर्वक उसे संग्रामसे निवारण करना आरम्भ किया ॥ (४२–४४)

अवन्ति देशके राजा सौवीर सेनाको सङ्ग लेकर प्रभद्रक वीरोंके सहित क्रोधी धृष्टद्युम्नको युद्धभूमिमें निवारण करने लगे ॥ क्रूर कर्म करने वाले महा पराक्रमी राक्षस घटोत्कचको युद्धके निमित्त आगे बढे आते देखकर अलायुधने उसे शीघ्रताके सहित आक्रमण किया। महारथ कुन्तिभोज अपनी बडी सेनाको संग लेकर राक्षसोंमें श्रेष्ठ क्रोधी अलम्बुषका निवारण करने लगे ॥ (४५–४८)

हे राजेन्द्र ! इसी प्रकार सैकडों द्वन्द्वयुद्ध दोनों ओरके योद्धाओंमें होने लगा। सिन्धुराज जयद्रथ सम्पूर्ण सेनाके पीछे थे, कृपाचार्य आदि महारथ योद्धा लोग जयद्रथकी रक्षा करनेमें नियुक्त हुए थे; दो महारथी योद्धा उनके चक्ररक्षक थे, उनमेंसे अश्वत्थामा दहिने और कर्ण बाये चक्रकी रक्षा करते थे। सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवाको आगे करके कृपाचार्य, वृषसेन, शल, और पराक्रमी शल्य ये लोग राजा जयद्रथके रक्षक थे। युद्धके सम्पूर्ण

नीतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सैन्धवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः ॥ ५१ ॥ [३५३३]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सञ्जय उवाच— राजन्संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्तयतो मम ।
कुरूणां पाण्डवानां च यथा युद्धमवर्तत ॥ १ ॥
भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अयोधयन् रणे पार्था द्रोणानीकं बिभित्सवः ॥ २ ॥
रक्षमाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोऽपि सह सैनिकैः ।
अयोधयद्रणे पार्थान्प्रार्थयानो महद्यशः ॥ ३ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः ।
आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्रहितैषिणौ ॥ ४ ॥
विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ ।
पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ ॥ ५ ॥
तेषां युद्धं समभवद्दारुणं शोणितोदकम् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ६ ॥

कार्यों के जाननेवाले सम्पूर्ण महारथ धनुर्धर योद्धालोग राजा जयद्रथ की रक्षाके निमित्त इसही प्रकारका विधान कर युद्ध करने लगे॥ ४९-५१ [३५३३]

द्रोणपर्वमें पचानवे अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें छानवे अध्याय ।

सञ्जय बोले महाराज ! कौरव और पाण्डवोंका जिस प्रकारसे आश्चर्य मय युद्ध हुआ था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तुम्हारे समीपमें वर्णन करता हूं, आप चित्त लगा कर सुनिये ॥ पाण्डवोंने द्रोणाचार्य की व्यूहबद्ध सेनाको भेद करनेकी इच्छासे व्यूहके मुखस्थल पर स्थित द्रोणाचार्यको आक्रमण किया ॥ द्रोणाचार्य भी महत् यश उपार्जन करनेकी इच्छासे अपनी व्यूह बद्ध सेनाकी रक्षा करते पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ १-३

अवन्तिराज विन्द और अनुविन्दने क्रुद्ध होकर तुम्हारे पुत्रके हितकी अभिलाष करके दश बाणोंसे राजा विराटको विद्ध किया ॥ राजा विराट भी अनुयायी योद्धाओंसे घिरे हुए पराक्रमी विन्द और अनुविन्दके ऊपर अपने बाणोंको चलाने लगे ॥ जैसे वनके बीच दो मतवारे हाथियोंके सङ्ग एक सिंहका युद्ध होता है उस ही भांतिसे उन महारथ योद्धाओंका महा भयङ्कर संग्राम होने लगा । (४-६)

बाल्हीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः।
आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥ ७ ॥
बाल्हीको याज्ञसेनिं तु हेमपुङ्खैः शिलाशितैः।
आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ८ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं शरशक्तिसमाकुलम्।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ९ ॥
ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिशस्तथा।
अभवत्संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १० ॥
शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम्।
ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥
बाल्हीकराजः संक्रुद्धो द्रौपदेयान्महारथान्।
मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन्रणे ॥ १२ ॥
अयोधयंस्ते सुभृशं तं शरौघैः समन्ततः।
इन्द्रियार्था यथा देहं शश्वद्देहवतां वर ॥ १३ ॥
वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव।

महा बलवान् शिखण्डीने वेगशील बाह्लिकको मर्मस्थल और हड्डीके भेदने वाले तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया॥ इन दोनों महारथ वीरोंके बाण और शक्ति आदि अस्त्रोंसे इस प्रकार युद्ध होने लगा, कि उस संग्रामको देखकर कायर पुरुष भयभीत होगये और शूरवीर योद्धा हर्षित होने लगे॥ बाह्लिकने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शिलापर घिसे हुए सुवर्ण दण्डयुक्त नव बाणोंसे शिखण्डीको विद्ध किया। उस समय उन दोनों महारथ वीरोंके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे आकाश मण्डल के सहित सम्पूर्ण दिशा परिपूरित हो गई। उस समय कुछ भी नहीं दीख पड़ता था॥ (७-१०)

जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीके सङ्ग युद्ध करता है, वैसेही गोवासन शैब्य अपनी सेनाको सङ्ग ले कर महारथ काशिराज पुत्रके साथ संग्राम करने लगे॥ जैसे पांचों इन्द्रियोंके सङ्गमें मनका युद्ध होता है, वैसेही द्रौपदीके पांचों पुत्रोंके सङ्ग बाह्लिक राज का संग्राम होने लगा॥ जैसे इन्द्रियोंके पांचों विषय शरीरको क्लेश देते हैं, वैसेही द्रौपदीके पांचों पुत्र चारों ओरसे अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए बाह्लिक राजको पीडित करने लगे॥ (११-१३)

हे भारत! तुम्हारे पुत्र दुःशासनने

आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना ।
ईषन्मूर्च्छां जगामाऽऽशु सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥१५॥
समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम् ।
विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १६ ॥
तावन्योन्यं दृढं विद्धावन्योन्यशरपीडितौ ।
रेजतुः समरे राजन्पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १७ ॥
अलम्बुषस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः ।
अशोभत भृशं लक्ष्म्या पुष्पाढ्य इव किंशुकः ॥ १८ ॥
कुन्तिभोजं ततो रक्षो विध्वा बहुभिरायसैः ।
अनदद्भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १९ ॥
ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम् ।
ददृशुः सर्वसैन्यानि शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥ २० ॥
शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत ।
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैश्चाऽर्दयतां भृशम् ॥ २१ ॥
तुमुलः स महान्राजन्प्रावर्त्तत जनक्षयः ।

वृष्णिवंशीय सात्यकिको नव तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया॥ महाधनुर्द्धर सत्य पराक्रमी सात्यकि दुःशासनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर मूर्च्छित होगये॥ फिर सावधान होकर सात्यकिने शीघ्र ही तुम्हारे पुत्र दुःशासन को कङ्कपत्र युक्त दश बाणोंसे विद्ध किया॥ वे दोनों महारथ योद्धा आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे रुधिरपूरित क्षतविक्षत शरीर होकर फूले हुए पलाश वृक्षके समान रणभूमि में शोभित होने लगे॥ (१४—१७)

क्रुद्ध राक्षस अलम्बुष कुन्तिभोजके बाणोंसे पीडित होकर फूले पलाशवृक्षके समान शोभित होने लगा॥ और वह राक्षस अलम्बुष अनेक बाणोंसे राजा कुन्तिभोजको विद्ध करके तेरी सेनाके आगे भयङ्कर शब्दके सहित सिंहनाद करने लगा॥ जैसे पहिले समयमें इन्द्रके संग जम्भासुरका युद्ध हुआ था, वैसे ही अपनी अपनी सेना संग लेकर वे दोनों पराक्रमी योद्धा आपसमें युद्ध करते हुए दिखाई देने लगे॥ (१८—२०)

माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव अत्यन्त क्रुद्ध होकर शत्रुताकी जड उत्पन्न करने वाले पराक्रमी शकुनिको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे॥ हे राजेन्द्र! सम्पूर्ण

त्वया सञ्जनितोऽत्यर्थं कर्णेन च विवर्धितः ॥ २२ ॥
रक्षितस्तव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः।
य इमां पृथिवीं राजन्दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥ २३ ॥
शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः।
न स्म जानाति कर्त्तव्यं युद्धे किञ्चित्पराक्रमम् ॥ २४ ॥
विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ।
ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५ ॥
स वध्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः।
संप्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः ॥ २६ ॥
घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम्।
अभ्ययाद्रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाऽभवत्।
यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥ २८ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा मद्रराजानमाहवे।

वीरपुरुषोंके नाश होनेका मूल कारण तुमसे ही प्रकट हुआ है, कर्णने उस ही जडको बढाया है और तुम्हारे पुत्रोंने उस क्रोधरूपी अग्निको रक्षित किया है; इस समय वही क्रोधरूपी अग्नि सम्पूर्ण पृथ्वीको भस्म करनेके निमित्त उद्यत हुई है॥ (२१—२३)

अन्त में शकुनि नकुल सहदेव के बाणोंसे पीडित होकर उनके सम्मुखसे भाग गये॥ वह युद्धसे भागते हुए अपने मनमें विचार करने लगे, कि मैं इस समय क्या कार्य करूं, परन्तु किसी कार्यका निश्चय न कर सके॥ महारथ नकुल और सहदेव उन्हे अपने सम्मुखसे पृथक् होते देखकर जैसे दो दिशासे दो बादल के टुकडे एकही स्थल में इकट्ठे होकर पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही फिर उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ शकुनिने उन दोनों महारथ पुरुषोंके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर अपने वेगगामी घोडोंसे युक्त रथ पर चढकर द्रोणाचार्यके समीप जानेके निमित्त प्रस्थान किया॥ (२४–२६)

महापराक्रमी राक्षस घटोत्कच मध्यम वेगके सहित महावेगशील राक्षस अलायुधके संग युद्ध करने लगा॥ जैसे पहिले समयमें राम रावणका संग्राम हुआ था, वैसे ही उन दोनों राक्षसोंका आश्चर्यमय युद्ध होने लगा॥ (२७–२८)

तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिरने मद्र-

छूत और अछूत।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ!! अत्यन्त उपयोगी!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढ़ी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
११ वैदिक कालकी उदारता,
१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

प्रथम भाग। मू. १)

द्वितीय भाग। मू. ॥।)

अतिशीघ्र मंगवाइये।

स्वाध्याय मंडल. औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा

अंक ५६

[द्रोणपर्व ६]

महाभारत ।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवलेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

तैय्यार हैं ।

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६.) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

विध्वा पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ २९ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप ।
यथापूर्वं महद्युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।
अयोधयन्भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ॥ ३१ ॥ [३५६४]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वंद्वयुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सञ्जय उवाच— तथा तस्मिन्प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे ।
कौरवेयांस्त्रिधा भूतान्पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥ १ ॥
जलसन्धं महाबाहुं भीमसेनोऽभ्यवर्त्तत ।
युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २ ॥
किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांऽशुमान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद्रणे ॥ ३ ॥
ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥ ४ ॥
संक्षये तु तथा भूते वर्त्तमाने महाभये ।
द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीतवत् ॥ ५ ॥

राज शल्यको पचास बाणोंसे विद्ध कर के फिर दूसरी बार सात बाणोंसे विद्ध किया। जैसे पहिले समयमें शम्बरासुर के सङ्ग इन्द्रका युद्ध हुआ था, वैसेही इन दोनों राजाओंका अद्भुत रूपसे संग्राम होने लगा ॥ विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण तुम्हारे ये तीनों पुत्र बडी सेनासे घिरकर भीमसेनके सङ्ग संग्राम करने लगे। (२९—३१) [३५६४]

द्रोणपर्वमें छानब्बे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें सतानब्बे अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज ! इसी प्रकार रोएं को खडे करनेवाले भयङ्कर संग्रामके समय जब कौरवोंकी सेना तीन हिस्सेमें बंट गई तब पाण्डव लोग तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको आक्रमण करने लगे॥ भीमसेनने महाबाहु जलसन्धको, युधिष्ठिरने सेनाके सहित कृतवर्माको और धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके ऊपर सूर्यकिरणके समान अपने प्रकाशमान बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ किया ॥ (१–३)

कौरव और पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण धनुर्द्धारी योद्धा लोग अत्यन्त क्रुद्ध और यत्नवान् होकर आपसमें युद्ध करने लगे। उस प्राणियोंके नाश होने वाले भयङ्कर संग्रामके समयमें निर्भय चित्तसे द्वन्द्व

द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह।
यदक्षिपत्पृषत्कौघांस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६ ॥
पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः।
चक्राते द्रोणपाञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ॥ ७ ॥
विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः।
वस्त्राभरणशस्त्राणि ध्वजवर्मायुधानि च ॥ ८ ॥
तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसङ्घाः सविद्युतः ॥ ९ ॥
कुञ्जराश्वनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ॥ १० ॥
असिचर्माणि चापानि शिरांसि कवचानि च।
विप्रकीर्यन्त शूराणां सम्प्रहारे महात्मनाम् ॥ ११ ॥
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥ १२ ॥
गृध्राः कङ्का बकाः श्येना वायसा जम्बुकास्तथा।

युद्ध करनेवाले योद्धाओंके बीच महाबल द्रोणाचार्य और पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न ये दोनों पुरुषसिंह जब आपसमें एक दूसरेके ऊपर बाणोंको चलाने लगे, तब उस समयमें वह युद्ध अद्भुत रूपसे दिखाई देने लगा ॥ (४–६)

वे दोनों पुरुषसिंह चारों ओर टूटे हुए कमल वनके समान मनुष्योंके शिरको काट काटके युद्धभूमिमें गिराने लगे। सेनाके योद्धाओंके वस्त्र, आभूषण, शस्त्र, ध्वजा, धनुष बाण कटकर इधर उधर गिरते हुए दीख पडते थे। सुवर्ण-भूषित वर्मसे युक्त शूरवीर पुरुषोंके शरीर आपसमें सटके मानो बादलसे युक्त बिजलीके समान दिखाई देते थे ॥ (७–९)

कितने ही महारथी योद्धा ताल प्रमाण अपने धनुषोंको चलाकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे हाथी घोडे और मनुष्यों का वध करके पृथ्वीमें गिराने लगे॥ महारथ शूरवीर पुरुषोंके तलवार, ढाल, धनुष, बाण, कवच और कटे हुए शिरोंसे वह रणभूमि परिपूरित होगई॥ महाराज! जब इस प्रकारसे शूरवीरोंका अत्यन्त ही नाश होने लगा, तब शिर कटे हुए बहुतेरे कबन्ध रणभूमिमें चारों ओर दौडते हुए दिखाई देने लगे॥(१०-१२)

गिद्ध, कङ्क, बगुले, बाज, कौवे और

बहुशः पिशिताशाश्च तत्राऽदृश्यन्त मारिष ॥ १३ ॥
भक्षयन्तश्च मांसानि पिबन्तश्चाऽपि शोणितम् ।
विलुम्पन्तश्च केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप ॥ १४ ॥
आकर्षन्तः शरीराणि शरीरावयवांस्तथा ।
नराश्वगजसङ्घानां शिरांसि च ततस्ततः ॥ १५ ॥
कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिता रणशालिनः ।
रणे जयं प्रार्थयाना भृशं युयुधिरे तदा ॥ १६ ॥
असिमार्गान्बहुविधान्विचेरुः सैनिका रणे ।
ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूलतोमरपट्टिशैः॥ १७ ॥
गदाभिः परिघैश्चाऽन्यैरायुधैश्च भुजैरपि ।
अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः ॥ १८ ॥
रथिनो रथिभिः सार्धमश्वारोहाश्च सादिभिः ।
मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः ॥ १९ ॥
क्षीबा इवाऽन्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः ।
उच्चुक्रुशुरथाऽन्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥ २० ॥

सियार आदि मांस भक्षी जीव उस रणभूमिमें चारों ओर दिखाई देने लगे। वे सब मांस भक्षण करते रुधिर पीते मृत शरीरोंसे केश खींचते और आतोंको बाहर निकाल कर इधर उधर लेकर दौडते तथा मनुष्य, घोडे और हाथियोंके शरीर, शरीरोंके अवयव और मस्तकोंको इधर उधर खींचते हुए दिखाई देते थे॥ (१२-१५)

उस समय अस्त्र शस्त्रोंके चलानेमें निपुण युद्धविद्या जाननेवाले सेनाके शूरवीर योद्धा लोग अपने विजयकी अभिलाष करके महाघोर संग्राम करने लगे॥ युद्ध करते हुए रुधिरपूरित शरीरसे कितने ही शूरवीर योद्धा तलवार घुमाते हुए रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगे। कोई कोई ऋष्टि शक्ति प्रास त्रिशूल तोमर पट्टिश गदा और परिघसे युद्ध करते हुए आपसमें एक दूसरेका वध करने लगे,कितने ही शूरवीर योद्धा अस्त्र शस्त्रोंसे रहित होकर बाहुयुद्ध करते हुए एक दूसरेका नाश करने लगे॥ १६-१८

रथी रथीसे, घुडसवार घुडसवारोंसे हाथी हाथियोंसे और पैदल चलनेवाले सेनाके शूरवीर योद्धा लोग पैदल चलने वाले योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करने लगे॥ बहुतेरे मतवारे हाथी रणभूमिमें मदमत्त तथा उन्मत्तके समान होकर दूसरे मतवारे हाथियोंसे युद्ध करते हुए आपसमें मरकर

वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते।
धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् ॥ २१ ॥
ते हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः।
पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे ॥ २२ ॥
पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणविमिश्रिताः।
हयाः शुशुभिरे राजन्मेघा इव सविद्युतः ॥ २३ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु सम्प्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतम्।
असिचर्माऽऽददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत ॥ २४ ॥
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीरहा।
ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् ॥ २५ ॥
अतिष्ठद्युगमध्ये स युगसन्नहनेषु च।
जघानाऽर्धेषु चाऽश्वानां तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन्॥ २६॥
खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः।
न ददर्शाऽन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २७ ॥

पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ (१९—२०)

हे राजन्! उस महाघोर संग्रामके समयमें धृष्टद्युम्नने रथके घोडोंको द्रोणाचार्यके रथके घोडोंके सङ्ग मिला दिया ॥ उन दोनों पुरुषसिंहोंके महावेगशील रथके घोडे एकही स्थलपर मिल कर अत्यन्तही शोभित हुए। धृष्टद्युम्नके पारावत-वर्ण और द्रोणाचार्य के लाल वर्णवाले घोडे एक ही स्थानपर मिलके बिजलीसे युक्त बादलके समान शोभित हुए ॥ (२१—२३)

हे भारत! पराक्रमी धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको अपने समीप स्थित देखकर धनुष बाण त्यागके ढाल तलवार ग्रहण किया॥ शत्रुनाशन पृषत् पुत्र धृष्टद्युम्नने कठिन कर्म करनेकी इच्छासे रथकी धुरी अतिक्रम करके द्रोणाचार्यके रथ पर चढ गये ॥ जब वह शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्य के रथ पर चढ के उन के घोडोंके पिछाडी स्थित होकर अश्वोंके मध्यभागमें प्रहार करने लगे, तब उसके उस अद्भुत कर्मको देखकर पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग धृष्टद्युम्नकी प्रशंसा करने लगे ॥ (२४—२६)

वह जिस समय द्रोणाचार्यके लालवर्णवाले घोडोंके ऊपर स्थित हुए उस समय पराक्रमी द्रोणाचार्य उनका तनिक भी छिद्र न देख सके; उस स्थलमें धृष्टद्युम्नका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ जैसे बाजपक्षी मांसकी अभिलाष

यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः ।
तथैवाऽऽसीद्भीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥ २८ ॥
ततः शरशतेनाऽस्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः ॥ २९ ॥
हयांश्चैव चतुःषष्ट्या शराणां जघ्निवान्बली ।
ध्वजं छत्रं च भल्लाभ्यां तथा तौ पार्ष्णिसारथी ॥३०॥
अथाऽस्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम् ।
आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३१ ॥
तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत् ॥ ३२ ॥
सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष ।
द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः ॥ ३३ ॥
सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यं च महाहवे ।
शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समार्पयत्॥ ३४ ॥
ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमपि सृञ्जयान् ।

करके वनके बीच वेगपूर्वक अपने भक्ष्य की ओर दौडता है वैसेही धृष्टद्युम्न वध की इच्छा करके उनके रथपर चढ गये ॥ (२७ -- २८)

तिसके अनन्तर द्रोणाचार्यने सौ बाणोंसे सौ चन्द्रप्रतिमासे शोभित ढाल-को, दश बाणोंसे उनके तलवार और चौसठ बाणोंसे उनके रथके घोडोंका वध करके दो बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा छत्र पृष्ठरक्षक और सारथीका वध किया॥ तिसके अनन्तर शीघ्रताके सहित प्राणनाश करनेवाले एक भयङ्कर बाणको द्रोणाचार्यने धनुषपर चढा कर इन्द्रके वज्र छोडनेके समान धृष्टद्युम्नके ऊपर चलाया ॥ (२९ — ३१)

सात्यकिने सम्पूर्ण योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके कराल ग्रासमें धृष्टद्युम्नको पतित हुए देखकर उन्हें द्रोणाचार्यके हाथसे मुक्त करनेकी इच्छासे अपने चौदह बाणोंसे द्रोणाचार्यके उस भयंकर बाणको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ सात्यकिने सिंहके सम्मुख पहुंचे हुए छोटे हरिणके समान द्रोणाचार्यके सम्मुख से धृष्टद्युम्नको मुक्त किया ॥ (३२-३३)

द्रोणाचार्यने सात्यकिको धृष्टद्युम्नकी रक्षा करते देखकर शीघ्रताके सहित छब्बीस बाणोंको चला कर उनको विद्ध किया ॥ तिसके अनन्तर शिनि पौत्र

प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः षड्विंशत्या स्तनान्तरे ॥ ३५ ॥
ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृद्धिनः।
सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ॥ ३६ ॥ [३६००]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणधृष्टद्युम्नयुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच--बाणे तस्मिन्निकृत्ते तु धृष्टद्युम्ने च मोक्षिते।
तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन सञ्जय ॥ १ ॥
अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद्युधि ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच-- सम्प्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः।
तीक्ष्णधारेषुदशनः शितनाराचदंष्ट्रवान् ॥ ३ ॥
संरम्भामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन्।
नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥ ४ ॥
उत्पतद्भिरिवाऽऽकाशे क्रामद्भिरिव पर्वतम्।
रुक्मपुङ्खाञ्शरानस्यन्युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

सात्यकिने द्रोणाचार्यको सृञ्जय योद्धाओंको ग्रास करते देखकर छब्बीस बाणोंसे उन्हें दोनों स्तनोंके बीचमें विद्ध किया ॥ जब द्रोणाचार्य सात्यकिके संग युद्ध करने लगे तब विजयकी अभिलाष करनेवाले सम्पूर्ण पाञ्चाल देशीय महारथी लोग दूसरी ओर युद्ध करने लगे ॥ (३४-३५) [३६००]

द्रोणपर्वमें सतानब्बे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें अठानब्बे अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले,हे सञ्जय! वृष्णि-वंशीय वीर सात्यकिने जब द्रोणाचार्यके बाणको काटकर धृष्टद्युम्नको उनके हाथसे छुडाया तब महाधनुर्द्धारी,सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ,क्रोधसे भरे द्रोणाचार्यने उस समयमें शिनि पौत्र पुरुषसिंह सात्यकिके संग किस प्रकारसे युद्ध किया? (१-२)

सञ्जय बोले, पुरुषसिंह द्रोणाचार्यने क्रोधसे लाल नेत्र करके धनुषरूपी मुख तीक्ष्ण धारावाले बाणरूपी दांतसे युक्त महावेगशील लालवर्णवाले घोडोंसे युक्त रथ पर चढे तथा गर्जते हुए महा भयङ्कर सर्पके समान शीघ्रताके सहित रुक्म पंखवाले बाणोंको चलाते हुए सात्यकिको आक्रमण किया ॥ रणभूमि में गमन करनेके समय आकाशमें उडते हुए उनके रथके घोडे मानो पर्वतोंको भी अतिक्रम करके युद्धभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगे ॥ (३-५)

शरपातमहावर्षं रथघोषबलाहकम् ।
कार्मुकाकर्षविक्षेपं नाराचबहुविद्युतम् ॥ ६ ॥
शक्तिखड्गाशनिधरं क्रोधवेगसमुत्थितम् ।
द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥ ७ ॥
दृष्ट्वैवाऽभिपतन्तं तं शूरः परपुरञ्जयः ।
उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन्युद्धदुर्मदः ॥ ८ ॥
एनं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम् ।
आश्रयं धार्त्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥ ९ ॥
शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत् ।
आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् ॥ १० ॥
ततो रजतसङ्काशा माधवस्य हयोत्तमाः ।
द्रोणस्याऽभिमुखाः शीघ्रमगच्छन्वातरंहसः ॥ ११ ॥
ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परन्तपौ ।
शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् ॥ १२ ॥
इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ ।
पूरयामासतुर्वीरावुभौ दश दिशः शरैः ॥ १३ ॥
मेघाविवाऽऽतपापाये धाराभिरितरेतरम् ।

पराये देशके जीतनेवाले शत्रुनाशन सात्यकिने बाणोंकी वर्षा करनेवाले रथकी घरघराहट रूपी गर्जन, प्रकाशमान बाणरूपी बिजली, शक्ति और तलवार रूपी वज्रधारी, क्रोधरूपी वायुके वेगसे प्रेरित द्रोणाचार्यको बादलके समान संमुख आते देखकर हंसके अपने सारथिसे यह वचन कहा, हे सारथि! दुर्योधनके आश्रय रूपी राजा युधिष्ठिरके दुःख और भ्रमके कारण राजपुत्रोंके आचार्य अपने ब्राह्मण कर्मसे भ्रष्ट हुए क्रूर स्वभाववाले सदा सर्वदा वीरताके अभिमानसे मतवारे इस ब्राह्मणके समीप शीघ्रही मेरे रथको लेचलो। (६-१०)

तिसके अनन्तर सात्यकिने स्वर्णवर्ण वाले, वायुके समान वेगवान् घोड़ोंसे युक्त अपने रथके सहित द्रोणाचार्यके समीप गमन किया॥ तिसके अनन्तर शत्रुनाशन द्रोणाचार्य और शिनिपौत्र सात्यकि ये दोनों पुरुषसिंह एक दूसरेके ऊपर सहस्रों बाणोंसे प्रहार करते हुए आपसमें युद्ध करने लगे॥ जैसे ग्रीष्म ऋतुके बीतने पर दो बादलके टुकडे दो दिशासे आपसमें मिलकर जलकी वर्षासे

न स्म सूर्यस्तदा भाति न ववौ च समीरणः ॥ १४ ॥
इषुजालावृतं घोरमन्धकारं समन्ततः ।
अनाधृष्यमिवाऽन्येषां शूराणामभवत्तदा ॥ १५ ॥
अन्धकारीकृते लोके द्रोणशैनेययोः शरैः ।
तयोः शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥ १६ ॥
नाऽन्तरं शरवृष्टीनां ददृशे नरसिंहयोः ।
इषूणां सन्निपातेन शब्दो धाराभिघातजः ॥ १७ ॥
शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ।
नाराचैर्व्यतिविद्धानां शराणां रूपमाबभौ ॥ १८ ॥
आशीविषविदष्टानां सर्पाणामिव भारत ।
तयोर्ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डयोः ॥ १९ ॥
अजस्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाऽऽहन्यतामिव ।
उभयोस्तौ रथौ राजंस्ते चाऽश्वास्तौ च सारथी ॥ २० ॥
रुक्मपुङ्खैः शरैश्छिन्नाश्चित्ररूपा बभुस्तदा ।
निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशाम्पते ॥ २१ ॥

सम्पूर्ण दिशाको परिपूर्ण कर देते हैं, वैसे ही वे दोनों महारथ योद्धा अपने बाणोंके जालसे आकाशमण्डल तथा दशों दिशाओंको परिपूरित करने लगे ॥ ११-१४

उस समय सूर्यका प्रकाश कुछ भी नहीं दीख पड़ा। वायु भी भलीभांति उस समय नहीं चल सकता था और चारों ओर बाणजाल परिपूरित होनेसे महाघोर अन्धकार उत्पन्न होगया। उस समय सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग भयभीत होने लगे ॥ शीघ्र शस्त्र चलानेवाले द्रोणाचार्य और सात्यकीके बाणवृष्टिके समयमें कोई पुरुष उन्हें तनिक अवकाश लेते हुए भी न देख सके। केवल इन्द्रके हाथसे छूटे हुए वज्रके समान उसके धनुषसे छूटे हुए बाणोंके शब्द ही चारों ओर सुनाई देने लगे॥ (१४—१८)

उन दोनों पुरुष सिंहोंके बाण आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे विद्ध होकर सर्पसे पकड़े गये दूसरे सर्पके समान प्रकाशित होने लगे॥ महा पराक्रमी युद्ध-विद्याके जाननेवाले उन दोनों शूरवीरोंके तनुत्राण और धनुष टङ्कारके शब्द इस प्रकार सुनाई देने लगे जैसे वज्र पर्वतके ऊपर गिरकर भयंकर शब्दसे सुनाई देता है॥ उन दोनोंके रथ, सारथी, और घोड़े सुवर्ण भूषित बाणोंसे विद्ध होनेसे विचित्र रूपके

निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत्सुदारुणः ।
उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ॥ २२ ॥
उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च विजयैषिणौ ।
स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्रुताविव वारणौ ॥ २३ ॥
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः ।
गर्जितोत्क्रुष्टसन्नादाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥ २४ ॥
उपारमन्महाराज व्याजहार न कश्चन ।
तूष्णींभूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् ॥ २५ ॥
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः ।
रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः ॥ २६ ॥
अवैक्षन्ताऽचलैर्नेत्रैः परिवार्य नरर्षभौ ।
हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथाऽनीकानि वाजिनाम् ॥२७॥
तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः ।
मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ २८ ॥
ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिरण्मयैः ।

दीखने लगे ॥ (१८—२१)

केंचुलीसे रहित सर्पके समान शीघ्र चलनेवाले चोखे बाणोंसे महा दारुण शब्द होने लगा । दोनोंको अपने अपने विजयकी अभिलाष थी, दोनों ही के छत्र और ध्वजा कट गये, तथा दोनों हीका शरीर रुधिरसे परिपूरित हो गया। दोनोंके शरीरसे रुधिर बहने लगा उस समय वे दोनों ही वीर मदचूते हुए मतवारे हाथी की भांति युद्ध करते हुए आपसमें एक दूसरेको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ (२१-२४)

महाराज ! उस समय शूरवीरोंके तर्जन गर्जन सिंहनाद और नगाडे आदि बाजोंके सब शब्द एकदम बंद होगये । उस समय किसीके मुखसे कुछ वचन न निकलता था, सेनाके सम्पूर्ण योद्धा-लोग युद्धसे निवृत्त हुए ॥ सम्पूर्ण पुरुष द्रोणाचार्य और सात्यकीके आश्चर्यमय युद्धको देखने लगे । रथी, गजपति, घुडसवार और पैदल सेनाके शूरवीर योद्धा लोग चारों ओरसे उन दोनों पुरुषसिंहोंको घेर कर उनका आश्चर्यमय युद्ध देखने लगे ॥ (२४-२७)

गजपति घुडसवार और रथियोंकी सेना व्यूहबद्ध होकर रणभूमिमें स्थित होके उन दोनों पुरुषसिंहोंका संग्राम अवलोकन करने लगी ॥ मणि, सुवर्ण,

वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ॥ २९ ॥
विमलैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः।
जातरूपमयीभिश्च राजतीभिश्च मूर्द्धसु ॥ ३० ॥
गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत।
सबलाकाः सखद्योताः सैरावतशतह्रदाः ॥ ३१ ॥
अदृश्यन्तोष्णपर्याये मेघानामिव वागुराः।
अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठिराः स्थिताः ॥ ३२ ॥
तद्युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः।
विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥ ३३ ॥
सिद्धचारणसङ्घाश्च विद्याधरमहोरगाः।
गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैरस्त्रविघातिभिः ॥ ३४ ॥
विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः।
हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ॥ ३५ ॥
अन्योन्यमभिविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी।
ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३६ ॥

मोती और रत्नोंसे विचित्र सुन्दर ध्वजा, विचित्र आभूषण, सुवर्णमय, कवच, उत्तम वस्त्र, शिलापर घिसे हुये चोखे अस्त्र शस्त्र, घोडे पर लटकते हुये चंवर, हाथियोंके गलेमें पड़ी हुई सुवर्ण युक्त रत्न जटित माला और उन के दांतों के आभूषण इन सम्पूर्ण वस्तुओंके सहित युद्ध देखनेवाले सेनाके पुरुषोंको मैं हेमन्त ऋतुके बीतने पर बकपांतिसे युक्त खद्योतश्रेणीके सहित ऐरावत हाथी और बिजली युक्त बादलोंकी भांति देखने लगा॥ (२८–३१)

महात्मा द्रोणाचार्य और सात्यकिके उस भयङ्कर युद्धको दोनों ओरकी सेनाके योद्धा लोग रणभूमिमें खडे होकर देखने लगे। आकाशमण्डलमें विमानों पर चढे हुए ब्रह्मा और चन्द्रमा आदि देवता सिद्ध चारण विद्याधर और सर्प आदि आकाशमें भ्रमण करनेवाले प्राणी उन दोनों पुरुषसिंहों के शस्त्र चलानेकी तथा नाना प्रकारकी शस्त्र गति निवारण करने की प्रक्रिया और युद्ध विषयक निपुणता देखकर विस्मित होगये॥ (३२–३५)

महाबली अत्यन्त पराक्रमी वे दोनों महारथ योद्धा अस्त्र विषयक हस्तलाघव दिखाते हुए एक दूसरेको अपने अस्त्रोंसे विद्ध करने लगे। तिसके अनन्तर

पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युतेः ।
निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः ॥ ३७ ॥
सज्यं चकार तदपि चिच्छेदाऽस्य च सात्यकिः ।
ततस्त्वरन्पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥ ३८ ॥
सज्यं सज्यं धनुश्चाऽस्य चिच्छेद निशितैः शरैः ।
एवमेकशतं छिन्नं धनुषां दृढधन्विना ॥ ३९ ॥
न चाऽन्तरं तयोर्दृष्टं सन्धाने छेदनेऽपि च ।
ततोऽस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्माऽतिमानुषम् ॥ ४० ॥
युयुधानस्य राजेन्द्र मनसैतदचिन्तयत् ।
एतदस्त्रबलं रामे कार्त्तवीर्ये धनञ्जये ॥ ४१ ॥
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे ।
तं चाऽस्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम् ॥४२ ॥
लाघवं वासवस्येव सम्प्रेक्ष्य द्विजसत्तमः ।
तुतोषाऽस्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ॥ ४३ ॥
न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः ।

वृष्णिवंशी पराक्रमी सात्यकिने अपने तीक्ष्ण-बाणोंसे महातेजस्वी द्रोणाचार्यके धनुष बाणको शीघ्रही काट दिया ॥ अनन्तर द्रोणाचार्यने क्षणभरके बीच दूसरे धनुष पर रोदा चढा लिया; सात्यकिने उस ही समय उस धनुषको भी काट दिया । द्रोणाचार्य जब दूसरे धनुषको लेकर उस पर रोदा चढाते थे, सात्यकि उस ही समय अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनके धनुषको काट देते थे । इसही प्रकार सात्यकिने एकसौ बार द्रोणाचार्यके धनुषको अपने बाणोंसे काट कर पृथ्वीमें गिराथा । (३५-३९)

हे राजेन्द्र ! तिसके अनन्तर द्रोणाचार्यने युद्धभूमिके बीच सात्यकिका अलौकिक कर्म देखकर अपने मनही मन चिन्ता किया, कि यदुकुलभूषण सात्यकिका जिस ही भांति परशुराम कार्त्तवीर्य अर्जुन और पुरुषसिंह भीष्म का अस्त्र पराक्रम मैंने अवलोकन किया था, और पाण्डुपुत्र अर्जुनमें भी वैसा ही पराक्रम विद्यमान है ऐसा विचार करते हुए द्रोणाचार्य ने मन ही मन सात्यकि के पराक्रम की प्रशंसा करी ॥ (४०-४२)

अस्त्रशस्त्रोंके मर्मको जाननेवाले द्विजसत्तम द्रोणाचार्य देवराज इन्द्रके समान सात्यकिका हस्तलाघव देख जिस भांति

देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
सिद्धचारणसङ्घाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म तत्।
ततोऽन्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योधयामास भारत।
तस्याऽस्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहत्य स सात्यकिः॥४६॥
जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाऽभवत्।
तस्याऽतिमानुषं कर्म दृष्ट्वाऽन्यैरसमं रणे ॥ ४७ ॥
युक्तं योगेन योगज्ञास्तावकाः समपूजयन्।
यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवाऽस्यति सात्यकिः ॥ ४८ ॥
तमाचार्योऽथ सम्भ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः।
ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ॥ ४९ ॥
वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत्।
तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ॥ ५० ॥
दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत्।

प्रसन्न हुए, उस ही प्रकारसे इन्द्र आदिक देवता भी सात्यकिके पराक्रमको देखकर सन्तुष्ट हुए। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण गण शीघ्र अस्त्र चलानेवाले सात्यकिका ऐसा हस्तलाघव पहिले कभी नहीं देख सके थे, परन्तु द्रोणाचार्यके वैसे कर्मको वे सब कोई जानते थे। (४३-४५)

हे भारत ! तिसके अनन्तर क्षत्रियोंके नाश करनेवाले सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले पराक्रमी द्रोणाचार्य दूसरा धनुष लेकर अस्त्रयुद्ध करने लगे॥ सात्यकि उनके अस्त्रोंको निवारण करके तीक्ष्ण बाणोंसे द्रोणाचार्यके ऊपर प्रहार करने लगे, उस समय वह युद्ध अद्भुत प्रकारसे दीख पडा। सात्यकिका ऐसा अलौकिक कर्म देखके तुम्हारी ओरके शस्त्रधारी योद्धा लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। द्रोणाचार्य जैसे अस्त्रोंको चलाते थे, सात्यकि भी वैसे ही अस्त्रोंको चलाकर उनके अस्त्रको निवारण करता था॥ (४५—४८)

शत्रुनाशन द्रोणाचार्य भी उसकी युद्ध विषयक निपुणता देखते हुए लीलाके अनुसार उसके संग युद्ध करने लगे। तिसके अनन्तर धनुर्वेद जाननेवाले द्रोणाचार्यने सात्यकिके वध करनेकी इच्छा करके दिव्य आग्नेय अस्त्र प्रकट किया। महाधनुर्धर सात्यकिने शत्रुओंके नाश करनेवाले उस महा

हाहाकारो महानासीद् दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ॥५१॥
न विचेरुस्तदाऽऽकाशे भूतान्याकाशगान्यपि ।
अस्त्रं ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते ॥ ५२ ॥
न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्त्तदथ भास्करः
ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ५३ ॥
नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम् ।
धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः ॥ ५४ ॥
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा ।
दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः ॥ ५५ ॥
द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम् ।
ततो युद्धमभूद्राजंस्तेषां तव च धन्विनाम् ॥ ५६ ॥
रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते ।
सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ।
सैन्येन रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्त्तत ॥ ५७ ॥ [३६५७]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणसात्यकियुद्धे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

भयंकर आग्नेय अस्त्रको देखकर दिव्य वारुणास्त्र ग्रहण किया । उन दोनों पुरुषसिंहोंको दिव्य अस्त्र ग्रहण किये हुए देखकर दोनों सेनाके बीच महा हाहाकार शब्द होने लगा॥ (४९-५१)

उस समय आकाशमें आकाशचारी प्राणी भ्रमण नहीं कर सके। उन दोनों पुरुषोंने आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्रको अपने धनुषोंपर चढाया, परन्तु चलाया नहीं । उस समय सूर्य पश्चिम दिशाकी ओर गमन कर रहे थे। तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्नके सहित विराट, कैकय, मत्स्य और शाल्वदेशी सेनाके शूरवीरों को सङ्ग लेकर सात्यकिकी रक्षा करने के वास्ते द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित हुए और सहस्रों राजपुत्र योद्धा लोग दुःशासन को आगे करके शत्रुओं के बीच में घिरे हुए द्रोणाचार्य की रक्षा करने के निमित्त पाण्डवों के संमुख आपहुंचे । (५२-५५)

हे राजेन्द्र ! तिसके अनन्तर पाण्डवों के सङ्ग तुम्हारी ओर के धनुर्द्धारी योद्धाओंका महा घोर युद्ध होने लगा ॥ उस समय सम्पूर्ण रणभूमिमें धूलिके उडने और बाणोंके चलनेसे अन्धकार होगया । सेनाके पुरुषोंको कुछ भी उस समय नहीं सूझ पडता था ॥ सम्पूर्ण

सञ्जय उवाच— विवर्त्तमाने त्वादित्ये तत्राऽस्तशिखरं प्रति।
रजसाऽऽकीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे ॥ १ ॥
तिष्ठतां युद्ध्यमानानां पुनरावर्त्ततामपि।
भज्यतां जयतां चैव जगाम तदहः शनैः ॥ २ ॥
तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु।
अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ३ ॥
रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः।
चकार तत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४ ॥
यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः।
तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥
रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान्।
उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ६ ॥
ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसन्निभाः।

योद्धा व्याकुल होकर मर्यादा रहित युद्ध करने लगे। उस समय आंखसे कुछ भी नहीं दीख पड़ता था॥ (५६-५७)

द्रोणपर्वमें अठानब्बे अध्याय समाप्त। [३९५७]

द्रोणपर्वमें निनानब्बे अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजन्! सूर्य उस समय अस्ताचल पर्वतकी ओर गमन करते हुए धूलिसे छिपकर तनिक देख पड़ते थे॥ युद्ध करते हुए सेनाके शूर-वीर योद्धा लोग कभी रणभूमिमें स्थित होते भागते और कभी जयकी अभिलाष करके युद्ध करने लगते थे। इसी प्रकार धीरे धीरे उस दिनका समय बीतने लगा॥ दोनों सेनाके शूरवीर योद्धा विजयकी अभिलाष करके महा घोर युद्ध कर रहे थे, अर्जुन और कृष्ण सिन्धुराज जयद्रथके समीप जानेकी इच्छासे सेनाके बीच प्रवेश करते हुए आगे गमन कर रहे थे॥ (१-३)

कृष्ण जिस ओर अर्जुनके रथको चलाते थे अर्जुन उस ही ओर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा कर रथके गमन करने योग्य मार्ग बना देते थे॥ महात्मा अर्जुनका रथ जिस ओरसे गमन करता था, उस ही ओर सेनाके योद्धा लोग उनके बाणोंसे तितरबितर होने लगते थे॥ दाशार्हनन्दन पराक्रमी कृष्ण उत्तम मध्यम और मन्दरीतिसे मण्डलाकार गतिविशेषसे रथको चलाते हुए रथ चलानेकी निपुणता प्रकाशित करने लगे॥ (४-६)

उस रणभूमिमें जैसे मांस भक्षण

स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो दीर्घगामिनः ॥ ७ ॥
वैणवाश्चाऽऽयसाश्चोग्रा ग्रसन्तो विविधानरीन्।
रुधिरं पतगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे ॥ ८ ॥
रथस्थितोऽग्रतः क्रोशं यानस्यत्यर्जुनः शरान्।
रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान् ॥ ९ ॥
तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधु वाजिभिः।
तदाऽगच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयञ्जगत् ॥ १० ॥
न तथा गच्छति रथस्तपनस्य विशाम्पते।
नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च ॥ ११ ॥
नाऽन्यस्य समरे राजन्गतपूर्वस्तथा रथः।
यथा ययावर्जुनस्य मनोऽभिप्रायशीघ्रगः ॥ १२ ॥
प्रविश्य तु रणे राजन्केशवः परवीरहा।
सेनामध्ये हयांस्तूर्णं चोदयामास भारत ॥ १३ ॥
ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमाः।
कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासासमन्विताः ॥ १४ ॥

करनेवाले पक्षी इधर उधर उडते और मृत पुरुषोंके शरीरसे रुधिर पीते हुए दीख पडते थे, वैसे ही अर्जुनके धनुष-से छूटे हुए उनके नामसे अंकित, चोखे प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर, पङ्खवाले, स्थूल, दूर पर्यन्त गमन करनेवाले, महाकठोर लोहमय बाण शत्रुसेनाके योद्धाओंका संहार करते हुए उनके शरीरमें घुसकर रुधिर पान करने लगे ॥ अर्जुन रथपर चढके एक कोसकी दूरीतक शत्रुसेनाके ऊपर बाण चलाते थे, रथ चलनेके मार्गको एक कोस तक उल्लङ्घन करके जाते तब वे सम्पूर्ण बाण शत्रुओंका संहार करते हुए पृथ्वीमें गिरते थे ॥ (७-९)

श्रीकृष्ण शीघ्रताके सहित गरुड और वायुके समान वेगशील अर्जुनके रथके घोडोंको चलाकर युद्धभूमिमें सम्पूर्ण प्राणियोंको विस्मित करते हुए गमन करने लगे ॥ महाराज! मनके समान शीघ्र गमन करनेवाला अर्जुनका रथ जिस प्रकारसे वेगपूर्वक युद्धभूमिमें गमन करने लगा; सूर्य, इन्द्र, वरुण और कुबेरके-रथ भी उस भांतिसे गमन नहीं कर सके थे ॥ (१०—१२)

हे राजेन्द्र! शत्रुनाशन कृष्ण संग्राम-भूमिमें शत्रुओंकी सेनाके बीच प्रवेश करके रथके घोडोंको शीघ्रताके सहित

क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥
हतानां वाजिनागानां रथानां च नरैः सह।
उपरिष्टादविक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥ १६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप।
सहसेनौ समार्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥ १७ ॥
तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम्।
शराणां च शतैरश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥ १८ ॥
तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः।
आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ १९ ॥
ततस्तौ तु शरौघेण बीभत्सुं सहकेशवम्।
आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च चक्रतुः ॥ २० ॥
तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥

चलाने लगे ॥ अनन्तर अर्जुन के रथके घोडे युद्धभूमिमें बहुतेरे महाबली पराक्रमी योद्धाओंके नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी चोटसे क्षत विक्षत शरीरसे पीडित और भूक प्याससे अत्यन्त निर्बल होगये थे; और पर्वतके समान मरे हुए सहस्रों घोडे, हाथी तथा मनुष्योंके मुर्दोंको उल्लङ्घन करते हुए गमन करना पडता था; इससे शत्रुसेनाके रथियोंके समूहके बीचमें अत्यन्त क्लेशसे अर्जुन के रथको खींचते हुए गमन करते हुए बार बार विचित्र गतिसे रणभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ (१३—१६)

महाराज! उसही समय महापराक्रमी अवन्तिराज दोनों भाई विन्द अनुविन्दने अपनी सेनाको सङ्ग लेकर थके हुए रथके घाडोंसे युक्त अर्जुनको आक्रमण किया ॥ उन दोनों भाइयोंने हर्षित होकर चौसठ बाणोंसे अर्जुन, सत्तरसे कृष्ण और सौ बाणोंसे उनके रथके घोडोंको विद्ध किया ॥ युद्ध विद्या जाननेवाले अर्जुनने क्रुद्ध होकर मर्मभेदी नौ तीक्ष्ण बाणोंसे उन दोनों महा रथ वीरोंको विद्ध किया ॥ (१७-१९)

अनन्तर उन दोनों वीरोंने कृष्ण अर्जुनको अपने बाणोंसे छिपाकर सिंहनाद किया ॥ परन्तु श्वेतवाहन अर्जुनने दो भल्लसे उन दोनों महारथियोंके विचित्र धनुष और सुवर्णभूषित उनके रथकी दोनों ध्वजाओंको काटके पृथ्वीमें

अथाऽन्ये धनुषी राजन्प्रगृह्य समरे तदा ।
पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः ॥ २२ ॥
तयोस्तु भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः ।
धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनञ्जयः ॥ २३ ॥
तथाऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
जघानाऽश्वांस्तथा सूतौ पार्ष्णी च सपदानुगौ ॥२४॥
ज्येष्ठस्य च शिरः कायात्क्षुरप्रेण न्यकृन्तत ।
स पपात हतः पृथ्व्यां वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ २५ ॥
विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान् ।
हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः ॥ २६ ॥
अभ्यवर्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ।
गदया रथिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः ॥ २७ ॥
अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम् ।
स्पृष्ट्वा नाऽकम्पयत्क्रुद्धो मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २८ ॥
तस्याऽर्जुनः शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः ।

गिरा दिया ॥ हे राजन् ! वे दोनों भ्राता अत्यन्त क्रुद्ध होके दूसरा धनुष ग्रहण कर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुन को पीडित करने लगे ॥ (२०—२२)

पाण्डुनन्दन अर्जुननेभी अत्यन्त क्रुद्ध होके उन दोनों महारथियों के धनुष को फिर काट दिया, और शिलापर घिसे हुए रुक्म पंखवाले बाणोंसे उनके रथके घोडे, सारथी और पृष्ठरक्षक योद्धाओंका संहार किया ॥ तिसके अनन्तर एक क्षुरप्र बाणसे बडे भाई विन्दके शिरको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया। महारथ विन्द मर कर मानो वायु के वेगसे टूटे हुए वृक्षके समान पृथ्वी पर गिर पडे ॥ (२३-२५)

रथियोंमें श्रेष्ठ महारथ महाबलवान् प्रतापी अनुविन्द अपने बडे भाईके मरनेसे अत्यन्त दुःखित होके घोडोंसे रहित रथको त्याग कर एक गदा उठाकर मानो नृत्य करते हुए अर्जुनकी ओर दौडे ॥ अनन्तर अनुविन्दने उस गदासे श्रीकृष्णके ललाटमें प्रहार किया; परन्तु गदाके प्रहारसे अनुविन्द कृष्णको मैनाक पर्वतके समान विचलित नहीं कर सके ॥ (२६—२८)

तब अर्जुनने छः बाणोंसे अनुविन्दके गर्दन, दोनों पांव, हाथ तथा शिरको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया । अनुविन्द

निचकर्त स सञ्छिन्नः पपाताऽद्रिचयो यथा ॥ २९ ॥
ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन्पदानुगाः।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतशः शरान्॥ ३० ॥
तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ।
व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये ॥ ३१ ॥
तयोः सेनामतिक्राम्य कृच्छ्रादिव धनञ्जयः।
विबभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥ ३२ ॥
तं दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाऽभवन्पुनः।
अभ्यवर्तन्त पार्थं च समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ३३ ॥
श्रान्तं चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवम्।
सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥
तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्स्मयन्पुरुषर्षभः।
शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥
शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः।
किमिहाऽनन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥ ३६ ॥

अर्जुनके बाणोंसे कट कर पर्वतके समान पृथ्वीमें गिर पडे॥ तिसके अनन्तर उन दोनों भाइयोंको मरते हुए देखकर उनके अनुयायी सम्पूर्ण योद्धा लोग क्रोध पूर्वक सैकडों बाणोंको चलाते हुए अर्जुनकी ओर दौडे ॥ अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन शूरवीरोंका संहार करके मानो हेमन्त ऋतुके अन्तमें वनको भस्म करनेवाले दावाग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे ॥ (२९-३१)

अनन्तर जैसे सूर्य बादलोंके समूहको भेद करके उदय होता है, वैसे ही अर्जुन विन्द अनुविन्दकी सेनाको अत्यन्त कष्टसे अतिक्रम करके सेनाके बीच प्रकाशित होने लगे॥ हे भारत! अर्जुनका ऐसा पराक्रम देखकर कुरुसेनाके शूरवीर योद्धाओंने भयभीत और हर्षित होकर फिर चारों ओरसे अर्जुन को घेर लिया॥ उन सम्पूर्ण योद्धाओंने अर्जुनको थके हुए और सिन्धुराज जयद्रथको दूर स्थित देख कर महाघोर सिंहनाद करके सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित कर दिया॥ ३२-३४

पुरुष श्रेष्ठ अर्जुनने उन समस्त शूरवीरोंको अत्यन्त क्रुद्ध हुए देखकर हंसके कृष्णसे यह वचन बोले, हे कृष्ण! मेरे सब घोडे बाणोंसे विद्ध होकर थक गये हैं, और जयद्रथ भी अब बहुत दूर है, तो इस समय कौनसा कार्य करना

ब्रूहि कृष्ण यथातत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा ।
भवन्नेत्रा रणे शत्रून्विजेष्यन्तीह पाण्डवाः ॥ ३७ ॥
मम त्वनन्तरं कृत्यं यद्वै तत्त्वं निबोध मे ।
हयान्विमुच्य हि सुखं विशल्यान्कुरु माधव ॥ ३८ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् ।
ममाऽप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥
अर्जुन उवाच— अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव ।
त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ ४० ॥
सञ्जय उवाच— सोऽवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनञ्जयः ।
गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥ ४१ ॥
तमभ्यधावन्क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकांक्षिणः ।
इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥
तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ४३ ॥
शस्त्राणि च विचित्राणि क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन् ।

उचित है, जो तुम्हें उत्तम बोध होवे, वह मुझ से कहो, क्योंकि तुम्हारी बुद्धिका कभी भी रदबदल नहीं होता। ३५-३७

जब तुम पाण्डवोंके मन्त्री हुए हो, तो पाण्डव लोग अवश्यही अपने शत्रुओंको जीतेंगे ॥ इससे मैं जो इससमय कर्त्तव्य कर्मका विचार करता हूं, उसे सुनिये। हे माधव ! घोडोंको रथसे खोलके उनके शल्योंको निकालो ॥ जब अर्जुनने कृष्णसे ऐसा वचन कहा, तब कृष्ण बोले, हे अर्जुन ! तुमने जो कहा है, उसमें मेरी भी सम्मति है। अर्जुन बोले, हे कृष्ण ! तुम इस ही स्थानमें इस कार्यको पूर्ण करो, मैं सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको निवारण करूंगा। ३७-४०

सञ्जय बोले, अर्जुन निर्भय चित्तसे रथ परसे नीचे उतरे और गाण्डीव धनुष चढाये हुए अचल रूपसे पर्वतके समान पृथ्वी पर खडे हुए ॥ जब अर्जुन पृथ्वी पर खडे हुए तब तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग यह उत्तम छिद्र देखकर विजयकी अभिलाषसे सिंहनाद करते हुए उनकी ओर दौडे ॥ उन सम्पूर्ण योद्धाओंने क्रुद्ध होकर अनेक रथोंके समूहसे अर्जुनको घेर कर धनुष चढाते, विचित्र अस्त्रोंको प्रकाशित करते और बाणोंको धनुषसे खींचके इस प्रकार उनके ऊपर अस्त्र-शस्त्रोंको वर्षा

छादयन्तः शरैः पार्थं मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४४ ॥
अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥ ४५ ॥
तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत ।
यत्क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवारयत् ॥ ४६ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतो विभुः ।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥ ४७ ॥
तत्राऽन्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशाम्पते ।
सङ्घर्षेण महार्चिष्मान्पावकः समजायत ॥ ४८ ॥
तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
हयैर्नागैश्च सम्भिन्नैर्नदद्भिश्चाऽरिकर्षणैः ॥ ४९ ॥
संरब्धैश्चाऽरिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे ।
एकस्थैर्बहुभिः क्रुद्धैरूष्मेव समजायत ॥ ५० ॥
शरोर्मिणं ध्वजावर्त्तं नागनक्रं दुरत्ययम् ।

कर उन्हें अस्त्रोंके जालसे छिपाने लगे, जैसे बादल सूर्यको छिपा देते हैं॥ (४१-४४)

जैसे बहुतसे मतवारे हाथी एक सिंह को आक्रमण करनेके वास्ते दौडते हैं वैसे ही वे सम्पूर्ण महारथ क्षत्रिय योद्धा लोग क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ पुरुष सिंह अर्जुन की ओर वेगपूर्वक दौडे ॥ उस ही समय अर्जुनकी दोनों भुजाओंका महा बल दीख पडा, कि वह अकेलेही चारों ओरसे दौडते हुए बहुतसे सेनाके क्रुद्ध शूरवीर योद्धाओं को निवारण करने लगे ॥ पराक्रमी अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे शत्रुओंके अस्त्र शस्त्रोंको निवारण करके हस्तलाघवके सहित अनेक बाणोंकी वर्षा करके उन सम्पूर्ण योद्धाओंको अपने बाणोंके जालसे छिपा दिया ॥ ४५-४७

हे प्रजानाथ ! उस समय आकाश-मण्डलमें अनेक बाणोंके रगडसे अग्नि उत्पन्न होने लगी॥ रुधिर से युक्त क्षत-विक्षत शरीर होके कितने ही हाथी और पैदल सेनाके योद्धा लोग भयङ्कर शब्द करने लगे; शत्रुनाशन महाधनुर्धर योद्धा लोग इकडे होकर अर्जुनके सम्मुख उपस्थित हुए; उस समय सम्पूर्ण योद्धाओंके अस्त्रशस्त्रोंके प्रहार और इधर उधर दौडनेसे अत्यन्त ही उत्ताप उत्पन्न हुआ ॥ (४८—५०)

उस समय उन सम्पूर्ण इकडे हुए रथियोंका समूह समुद्रके समान शोभित

पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ५१ ॥
असंख्येयमपारं च रथोर्मिणमतीव च ।
उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ॥ ५२ ॥
रणसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम् ।
वेलाभूतस्तदा पार्थः पत्रिभिः समवारयत् ॥ ५३ ॥
धृतराष्ट्र उवाच– अर्जुने धरणीं प्राप्ते हयहस्ते च केशवे ।
एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न घातितः ॥ ५४ ॥
सञ्जय उवाच— सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः ।
रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छान्दसं यथा ॥ ५५ ॥
स पार्थः पार्थिवान्सर्वान्भूमिस्थोऽपि रथस्थितान् ।
एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव ॥ ५६ ॥
ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम् ।
असम्भ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥
उदपानमिहाऽश्वानां नाऽलमस्ति रणेऽर्जुन ।

होने लगा । इस दुर्गम्य रथ सेनारूपी समुद्रमें बाणोंके वेग तरङ्ग, ध्वजा भंवर, पैदल सेनाके योद्धा लोग मछरी, शङ्ख नगाडे आदि बाजोंके शब्द ही समुद्रके लहरके भयङ्कर शब्द, रथ लहरी, उष्णीष कछुवे, छत्र और पताका फेन और हाथियोंके शरीर ही पत्थरके टुकडे रूपसे बोध होने लगे ॥ अर्जुन तटरूपी होकर उस महा भयंकर अपरम्पार रथ सेनारूपी महासमुद्रको अपने बाणोंके बलसे निवारण करने लगे ॥ (५१-५३)

राजा धृतराष्ट्र बोले, जब अर्जुन भूमिपर स्थित हुए और केशव श्रीकृष्ण घोडोंको हाथसे पकडकर खडे हुए तब ऐसा अवसर पाकर भी अर्जुन क्यों नहीं मारा गया ? (५४)

सञ्जय बोले, हे राजन् भूमिपर स्थित अकेले ही अर्जुनने उन रथस्थित सब राजाओंको श्रुतिविरोधी वाक्यके समान निरुद्ध किया ॥ जैसा एक ही लोभ सब गुणोंका निवारण करनेवाला होता है वैसे ही भूमिपर खडे हुए अकेले ही अर्जुन ने रथस्थित उन सब राजाओंका निवारण किया ॥ (५५-५६)

तिसके अनन्तर महाबाहु कृष्ण निर्भयचित्तसे पुरुषसत्तम अर्जुनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन ! घोडोंको पानी पीनेकी इच्छा हुई है, जिससे घोडे जल पीवें, ऐसा कोई तालाव यहां नहीं है। इस समय जैसा घोडोंको जल अवश्य पिलाना

परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम् ॥ ५८ ॥
इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम् ।
अभिहत्याऽर्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ५९ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
सुविस्तीर्णं प्रसन्नाम्भः प्रफुल्लवरपङ्कजम् ॥ ६० ॥
कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमृषिसेवितम् ।
आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥ ६१ ॥
शरवंशशरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम् ।
शरवेश्माऽकरोत्पार्थस्त्वष्टेवाऽद्भुतकर्मकृत् ॥ ६२ ॥
ततः प्रहस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाऽब्रवीत् ।
शरवेश्मनि पार्थेन कृते तस्मिन्महात्मना ॥ ६३ ॥ [३७२०]

इति श्रीमहाभारते० जयद्रथवधपर्वणि विन्दानुविन्दवधे अर्जुनसरोनिर्माणे च एकोनशततमोऽध्यायः ॥९९॥

सञ्जय उवाच— सलिले जनिते तस्मिन्कौन्तेयेन महात्मना ।

चाहिये वैसा थोना नहीं है ॥(५७-५८)

अर्जुनने निर्भयचित्तसे "यहीं तैयार है," ऐसा वचन कहकर क्षण भरके बीच पृथ्वीको अपने बाणोंसे विद्ध करके घोडोंके जल पीने और तैरनेके योग्य अगाध जलसे युक्त एक बहुत बडे उत्तम तालावको रणभूमिमें उत्पन्न किया॥ उस सरोवरमें हंस, सारस और चक्र- वाक आदि पक्षी उसके चारों ओर भ्र- मण करने लगे और उसका जल बहुत ही निर्मल था, उसमें भली भांतिसे फूले हुए कमलके पुष्प अत्यन्त ही शोभित होने लगे; तथा कछुवे और मछरियोंसे यह तालाव परिपूरित हुआ दीख पडता था। ऋषि लोग उस ता- लावके तटपर वास कर रहे थे; भगवान् नारदने उस सरोवरको देखकर उसे और भी शोभित कर दिया॥ (५८-६१)

जैसे विश्वकर्मा अद्भुत कर्मको करते रहते हैं, वैसे ही अर्जुनने बाणोंसे एक मनोहर तालाव बना दिया। जब अर्जुन ने उस महारणभूमिमें अपने बाणोंके प्रतापसे बाणोंके खंभेसे युक्त एकघर बना कर घोडोंके खूंटे आदि सब वस्तु- ओंको ठीक करके इस प्रकार सरोवर तैयार किया, तब कृष्ण हंसकर धन्य धन्य कहके उनके कर्मोंकी प्रशंसा करने लगे॥ (६२-६३) [३७२०]

द्रोणपर्वमें निनानवे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र! महात्मा कुन्तीपुत्र अर्जुनने जब उस ही स्थान-

निस्तारिते द्विषत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥ १ ॥
वासुदेवो रथात्तूर्णमवतीर्य महाद्युतिः।
मोचयामास तुरगान्वितुन्नान्कङ्कपत्रिभिः ॥ २ ॥
अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत्।
सिद्धचारणसङ्घानां सैनिकानां च सर्वशः ॥ ३ ॥
पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं महारथाः।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४ ॥
आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु।
नाऽसम्भ्रमत्तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥ ५ ॥
व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः।
न चाऽव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥ ६ ॥
शतानि शरजालानि गदाप्रासांश्च वीर्यवान्।
आगतानग्रसत्पार्थः सरितः सागरो यथा ॥ ७ ॥
अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च।

पर जल उत्पन्न कर शत्रुसेनाके शूरवीरोंको निवारण किया और अपने बाणोंके प्रतापसे सुन्दर तालाव बना दिया; तब महा तेजस्वी कृष्णने रथसे उतर बाणोंसे विद्ध हुये घोडोंको खोल दिया॥ पहिले कभी भी जो कर्म देखनेमें नहीं आया था, उस अलौकिक कार्यको देखकर सिद्ध, चारण और सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे॥ (१-३)

अर्जुनके पृथ्वीपर खडे होकर युद्ध करनेपर भी मुख्य मुख्य योद्धा लोग जो उन्हें पराजित न कर सके वह अर्जुन का पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा॥ रथोंके समूह और अनेक हाथियोंके झुण्डने उन्हें आक्रमण किया; तौभी अर्जुनके चित्तमें तनिक भी भय उत्पन्न नहीं हुआ, यह उनका अमानुषिक भाव कहना चाहिये॥ अनेक क्षत्रिय योद्धा लोग इकट्ठे होकर शत्रुनाशन अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। तौभी वह उनके अस्त्रोंकी चोटसे पीडित तथा दुःखित नहीं हुए। (४-६)

पुरुषसिंह अर्जुनके संमुखमें उन सम्पूर्ण शूरवीरोंके गदा प्रास और बाणोंके समूह इस प्रकारसे नष्ट होने लगे, जैसे नदियां समुद्रमें पहुंच कर फिर आगे नहीं देख पडतीं॥ उन्होंने अपनी दोनों भुजाओंके बल और महाअस्त्रोंसे क्षत्रिय शूरवीरोंके चलाये हुए सम्पूर्ण

सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत्ताञ्शरोत्तमान् ॥ ८ ॥
तत्तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः ।
अपूजयन्महाराज कौरवा महदद्भुतम् ॥ ९ ॥
किमद्भुततमं लोके भविताऽप्यथ वा ह्यभूत् ।
यदश्वान्पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥ १० ॥
भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ ।
तेजो विदधतुश्चोग्रं विस्रब्धौ रणमूर्धनि ॥ ११ ॥
अथ स्मयन्हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत ।
अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगृहे तथा ॥ १२ ॥
उपावर्त्तयदव्यग्रस्तानश्वान्पुष्करेक्षणः ।
मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते ॥ १३ ॥
तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथुं वेपथुं व्रणान् ।
सर्वं व्यपानुदत्कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥ १४ ॥
शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान्हयान् ।
उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥ १५ ॥

अस्त्र शस्त्रोंको निवारण किया (७-८)

महाराज ! कौरव लोग कृष्णअर्जुन का परम अद्भुत पराक्रम देखके यह वचन कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे, कि कृष्ण अर्जुनने रणभूमिके बीच अपने घोडोंको रथसे पृथक् करके शल्य निकाला और उन्हें जल पिलाया है, इस प्रकारका अद्भुत कार्य क्या कभी फिर दीख पडेगा, वा कभी ऐसा हुआ था? इन दोनों पुरुषसिंहोंने रणभूमिके बीच निर्भय होके प्रचण्डतेज धारण कर हमलोगोंके चित्तमें अत्यन्त ही भय उत्पन्न किया है ॥ (९-११)

हे भारत ! कमलनेत्रवाले कृष्णने हंस कर तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाके संमुख निर्भय चित्तसे अर्जुनके बनाये हुए बाणों के घर में घोडों को लेकर इस प्रकारसे गमन किया, जैसे पुरुष स्त्रियोंके बीच अपने घरमें प्रवेश करते हैं ॥ घोडोंके सम्पूर्ण कार्योंके जानने वाले कृष्णने घोडोंकी थकावट, ग्लानि और बाणोंकी चोटसे उत्पन्न हुए घावोंकी पीडा दूर करके तथा दोनों हाथोंसे घोडोंके शरीरसे शल्य बाहर करके उन्हें नहलाके साफ किया ! यथा योग्य रीतिसे घोडोंको इधर उधर घुमाकर जल पिलाया और उनके खाने योग्य वस्तुओंको उन्हें खिला कर स्थित किया॥ १२-१५

स ताँल्लब्धोदकान्स्नाताञ्जग्धान्नान्विगतक्लमान् ।
योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥
स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥ १७ ॥
रथं रथवरस्याऽऽजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः ।
दृष्ट्वा कुरुबलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोऽभवन् ॥ १८ ॥
विनिःश्वसन्तस्ते राजन्भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
धिगहो धिग्गतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन्पृथक् ॥ १९ ॥
तत्सैन्यं सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् ।
त्वरध्वमिति चाऽऽक्रन्दन्नैतदस्तीति चाऽब्रुवन् ॥ २० ॥
सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथेनैकेन दंशितौ ।
बालः क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥ २१ ॥
क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परन्तपौ ।
दर्शयित्वाऽऽत्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ॥ २२ ॥

जब घोडे स्नान करके भोजन और जलपानसे निवृत्त होके क्लेश रहित हुए, तब कृष्णने रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके रथमें उन घोडोंको फिर जोत दिया ॥ तिसके अनन्तर सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महा तेजस्वी कृष्ण और अर्जुन शीघ्रताके सहित रथ पर चढके आगे बढे ॥ रथियोंमें मुख्य अर्जुनके रथमें स्नान कराये हुए घोडोंको फिर जुते हुए देख कर कुरुसेनाके मुख्य मुख्य योद्धा लोग व्याकुल होगये। वे हर एक योद्धा दांत टूटे हुए सर्पके समान लम्बी सांस छोडते हुए आपसमें कहने लगे, यह देखो, अर्जुन और कृष्ण आगे बढे जाते हैं, ओहो ! हम लोगों को धिक्कार है ॥ (१६—१९)

महाराज ! तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग कृष्ण अर्जुनके अत्यन्त अद्भुत, रोएंको खडे करनेवाले कर्मको देखकर आपसमें कहने लगे, तुमलोग शीघ्रताके सहित क्यों नहीं अर्जुनकी ओर दौडते हो ? क्या हम लोगोंकी सेनाके ये सम्पूर्ण योद्धा वीर नहीं हैं ? सिंहनाद करनेवाले बलवान् क्षत्रियोंके संमुख ही में ये दोनों वर्मधारी पुरुष तनिक भी न रुककर बालक्रीडाके समान लीलाके क्रमसे हम लोगोंकी सेनाकी अवज्ञा करके सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी सेनाके बीच प्रवेश करते हुए गमन कर रहे हैं ॥ (२०—२२)

तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदाऽन्ये सैनिकाऽब्रुवन् ।
त्वरध्वं कुरवः सर्वे वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥ २३ ॥
रथयुक्तो हि दाशार्हो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥ २४ ॥
तत्र केचिन्मिथो राजन्समभाषन्त भूमिपाः ।
अदृष्टपूर्वं संग्रामे तद् दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २५ ॥
सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रोऽत्ययं गतः ।
दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥ २६ ॥
विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते ।
इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवन्त्यन्ये च भारत ॥ २७ ॥
सिन्धुराजस्य यत्कृत्यं गतस्य यमसादनम् ।
तत्करोतु वृथादृष्टिर्धार्त्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ॥ २८ ॥
ततः शीघ्रतरं प्रायात्पाण्डवः सैन्धवं प्रति ।
विवर्त्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥ २९ ॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।

कोई कोई योद्धा कहने लगे, कृष्ण अर्जुनका शीघ्रताके सहित वध करो, क्योंकि वे दोनों सब धनुर्धारियोंके संमुख में हमलोगोंके सैनिक वीरोंकी अवज्ञा करके जयद्रथके समीप जानेकी इच्छासे आगे बढे जाते हैं ॥ कोई कोई रणभूमि के बीच कृष्ण अर्जुनके पहिले कभी भी न देखे हुए उस अद्भुत कर्मको देखकर आपसमें कहने लगे, कि दुर्योधनके दोष हीसे सम्पूर्ण सेनाके क्षत्रिय योद्धा लोग और राजा धृतराष्ट्रका नाश होरहा है, उसे राजा धृतराष्ट्र नहीं समझ सकते हैं ॥ (२३–२७)

इसी प्रकारसे वचन कहते हुए वे सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा लोग भयभीत होगये, और बहुतेरे योद्धा लोग यह वचन भी कहने लगे, कि सिन्धुराज जयद्रथके यमपुरीमें गमन करने पर जो कर्म करना योग्य है उपाय न जानने वाले मूर्ख दुर्योधन उन ही कार्यका अनुष्ठान करे ॥ (२७–२८)

तिसके अनन्तर सूर्य पश्चिम दिशामें गमन करने लगे; पाण्डुनन्दन अर्जुन भी भूखप्याससे रहित प्रसन्न घोडोंसे युक्त अपने रथपर चढे हुए सिन्धुराज जयद्रथके वधकी इच्छासे शीघ्रताके सहित गमन करने लगे ॥ क्रुद्ध यमराजके समान तेजस्वी सब धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ

नाऽशक्नुवन्वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवाऽन्तकम्॥ ३०॥
विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः।
यथा मृगगणान्सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत् ॥ ३१ ॥
गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत्।
बलाकाभं तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ३२ ॥
कौन्तेयेनाऽग्रतः सृष्टा न्यपतन्पृष्ठतः शराः।
तूर्णात्तूर्णतरं ह्यश्वाः प्रावहन्वातरंहसः ॥ ३३ ॥
ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनञ्जयम्।
क्षत्रिया बहवश्चाऽन्ये जयद्रथवधैषिणम् ॥ ३४ ॥
सैन्येषु विप्रयातेषु धिष्ठितं पुरुषर्षभम्।
दुर्योधनोऽन्वयात्पार्थं त्वरमाणो महाहवे ॥ ३५ ॥
वातोद्धूतपताकं तं रथं जलदनिःस्वनम्।
घोरं कपिध्वजं दृष्ट्वा विषण्णा रथिनोऽभवन् ॥ ३६ ॥

महाबाहु अर्जुन जब जयद्रथकी ओर गमन कर रहे थे, उस समय कोई भी शूरवीर योद्धा उन्हें निवारण करनेमें समर्थ न हुए ॥ (२९—३०)

जैसे अकेला सिंह मृगोंके झुण्डको तितर बितर कर देता है, वैसे ही शत्रुनाशन पाण्डुपुत्र अर्जुन जयद्रथके लिये शत्रुसेनाके योद्धाओंको तितर बितर करते हुए आगे बढने लगे ॥ वसुदेवपुत्र कृष्णने बहुतसी सेना उल्लङ्घन करके अपना महाप्रचण्ड बकपांतिके समान श्वेत पाञ्चजन्य शंख बजाया॥ वायुके समान शीघ्रगामी घोडे इतनी शीघ्रताके सहित गमन करने लगे, कि अर्जुन उस समयमें जितने बाण अगाडी चलाते थे वे सम्पूर्ण बाण उनके रथके पीछे गिरते हुए दिखाई पडते थे ॥ (३१-३३)

अनन्तर बहुतेरे राजा दूसरे बहुतसे क्षत्रिय योद्धालोग जयद्रथ वधकी इच्छा करनेवाले पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनके रथको चारों ओरसे घेरने लगे। इससे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनका रथ आगे बढनेसे रुक गया ॥ तब राजा दुर्योधन अपने अनुयायियोंके सहित शीघ्रतापूर्वक अर्जुनके समीप पहुंचनेकी इच्छासे उनकी ओर गमन करने लगे ॥ बादलके समान शब्दसे युक्त, वायुके समान उडते हुए, ध्वजा पताकाके सहित ध्वजाके ऊपर वानर श्रेष्ठ हनुमान्‌की भयङ्कर मूर्ति और उस भयानक रथको देखकरही कितने शूरवीर योद्धा भयभीत होगये ॥ उनके गमन करनेके समयमें सूर्य धूलिके उडने

दिवाकरेऽथ रजसा सर्वतः संवृते भृशम् ।
शरार्त्ताश्च रणे योधाः शेकुः कृष्णौ न वीक्षितुम्॥३७॥[३७५७]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सैन्यविस्मये शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

सञ्जय उवाच— संसन्त इव मज्जानस्तावकानां भयान्नृप ।
तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १ ॥
सर्वे तु प्रतिसंरब्धा ह्रीमन्तः सत्वचोदिताः ।
स्थिरीभूता महात्मानः प्रत्यगच्छन्धनञ्जयम् ॥ २ ॥
ये गताः पाण्डवं युद्धे रोषामर्षसमन्विताः ।
तेऽद्यापि न निवर्त्तन्ते सिन्धवः सागरादिव ॥ ३ ॥
असन्तस्तु न्यवर्त्तन्त वेदेभ्य इव नास्तिकाः।
नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त किल्बिषम् ॥ ४ ॥
तावतीत्य रथानीकं विमुक्तौ पुरुषर्षभौ ।
ददृशाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ ॥ ५ ॥
मत्स्याविव महाजालं विदार्य विगतक्लमौ ।

से छिप गये; सेनाके शूरवीर योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर उनकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हुए ॥ (३४-३७) [३७५७]

द्रोणपर्वमें एकसौ अध्याय समाप्त ॥

द्रोणपर्वमें एकसौ एक अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र! अतिक्रमण करके गये हुए कृष्ण और अर्जुनको देखकर तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भय भीत होने लगे; परन्तु वे सब ही महात्मा और लज्जाशील थे, इससे प्रकृति के अनुसार प्रेरित और क्रुद्ध होकर उन सम्पूर्ण योद्धाओंने अर्जुनके समीप गमन किया, जो लोग उस समय क्रोधके वश में होकर अर्जुनके संमुख उपस्थित हुए, वे अर्जुनके समीप पहुंचकर इस प्रकार नष्ट होगये, जैसे नदी समुद्रमें पहुंचकर लुप्त होजाती हैं। (१-३)

जैसे नास्तिक लोग वेदमें कहे हुए धर्मसे भ्रष्ट होकर नरकमें गमन करके पापको भोगते हैं, वैसे ही पापी पुरुष ही पाप भोग करनेके वास्ते उस समय रणभूमि से भागने लगे ॥ जैसे सूर्य, चन्द्रमा राहुके मुखसे छूटकर सम्पूर्ण प्राणियोंको दिखाई देते हैं, वैसे ही ये दोनों पुरुषश्रेष्ठ कृष्णार्जुन शूरवीरों की रथ सेनाको अतिक्रम करके उन सम्पूर्ण योद्धाओंसे मुक्त हुए दिखाई देने लगे॥ उस समय मैंने देखा, कि जैसे दो बडे मत्स्य जालको फाडके बाहर निकल

तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत् ॥ ६ ॥
विमुक्तौ शस्त्रसम्बाधाद् द्रोणानीकात्सुदुर्भिदात्।
अदृश्येतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ ७ ॥
अस्त्रसम्बाधनिर्मुक्तौ विमुक्तौ शस्त्रसङ्कटात्।
अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसम्बाधकारिणौ ॥ ८ ॥
विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शान्मकरास्याज्झषाविव।
अक्षोभयेतां सेनां तौ समुद्रं मकराविव ॥ ९ ॥
तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकस्थयोस्तयोः।
नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम् ॥ १० ॥
तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती।
नाऽऽशशंसुर्महाराज सिन्धुराजस्य जीवितम् ॥ ११ ॥
आशा बलवती राजन्सिन्धुराजस्य जीविते।
द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति प्रभो॥१२ ॥

आते हैं, वैसेही वे दोनों पुरुषसिंह व्यूह बद्ध सेनाको तितर बितर करते हुए आगे बढे ॥ (४—६)

जैसे प्रलयकालके समय दो सूर्य उदय होते हैं, उसही प्रकारसे वे दोनों महात्मा अत्यन्त दुःखसे भेद होने वाली द्रोणाचार्यकी सेना और उन शूरवीरों के अस्त्रोंसे मुक्त हुए ॥ वे दोनों पुरुषसिंह रथरूपी नौका और अस्त्ररूपी पतवारसे शत्रु ओंको पीडित करते हुए कुरुसेनारूपी समुद्रके पार जानेकी इच्छासे आगे बढने लगे। वे दोनों महात्मा मानो अग्निके समान स्पर्श करने वाले मकर घडियालके मुखसे मुक्त हुए दो बडे मछलियोंके समान शत्रुसेनाके शूरवीरों के संमुखसे मुक्त हुए, और जैसे घडियाल समुद्रके जलको क्षोभित करता हुआ भ्रमण करता है, वैसे ही पराक्रमी अर्जुन शत्रु सेनाके योद्धाओंको तितर बितर करने लगे ॥ (७–९)

जिस समय वे दोनो महात्मा द्रोणाचार्यकी सेनाके समीप पहुंचे थे, उस समय तुम्हारे पुत्रों और दूसरे सम्पूर्ण योद्धाओंने यह समझा था, कि ये दोनों पुरुषसिंह द्रोणाचार्यके संमुखसे आगे न बढ सकेंगे; परन्तु इस समय उन सम्पूर्ण योद्धाओंने इन दोनों महातेजस्वी पुरुषसिंहोंको द्रोणाचार्यकी सेनासे पार हुए देखकर सिन्धुराज जयद्रथकी प्राणरक्षाके निमित्त संशय किया । १०–११

हे पृथ्वीनाथ ! तुम्हारे पुत्रोंको यह प्रबल आशा थी, कि द्रोणाचार्य और

तामाशां विफलीकृत्य सन्तीर्णौ तौ परन्तपौ ।
द्रोणानीकं महाराज भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १३ ॥
अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ ज्वलिताविव पावकौ ।
निराशाः सिन्धुराजस्य जीवितं न शशंसिरे ॥ १४ ॥
मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ ।
जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः कृष्णधनञ्जयौ ॥ १५ ॥
असौ मध्ये कृतः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
चक्षुर्विषयसम्प्राप्तो न मे मोक्ष्यति सैन्धवः ॥ १६ ॥
यद्यस्य समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह ।
तथाऽप्येनं निहंस्याव इति कृष्णावभाषताम् ॥ १७ ॥
इति कृष्णौ महाबाहू मिथः कथयतां तदा ।
सिन्धुराजमवेक्षन्तौ त्वत्पुत्रा बहु चुक्रुशुः ॥ १८ ॥
अतीत्य मरुधन्वानं प्रयान्तौ तृषितौ गजौ ।
पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवाऽऽस्तामरिन्दमौ ॥ १९॥

कृतवर्मीके समीपसे कृष्ण अर्जुन आगे नहीं बढ सकेंगे; परन्तु वे दोनों शत्रु-नाशन महात्मा तुम्हारे पुत्रोंकी उस आशाको निष्फल करके द्रोणाचार्य और कृतवर्मीकी अपरंपार सेनासे पार होगये। तब उस समयमें तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग उन दोनों पुरुषसिंहोंकी जलती हुई अग्निके समान सेनाके योद्धाओंको तितर बितर करते और आगे बढते देखकर सिन्धुराज जयद्रथके जीवन की अभिलाषसे निराश होगये। १२-१४

महाराज! शत्रुओंके भयको बढाने वाले कृष्ण अर्जुन निर्भय चित्तसे गमन करते हुए जयद्रथके वध विषयक वार्तालाप आपसमें करने लगे ॥ कि " वह सिन्धुराज जयद्रथ दुर्योधनकी ओरके छः महारथ वीरोंसे युद्धभूमिमें रक्षित होरहा है; परन्तु वह हमलोगोंके नेत्रसे दिखाई देनेसे कभी भी हमारे संमुखसे मुक्त न हो सकेगा ॥ यदि देवराज इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता भी सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करेंगे, तो भी मैं युद्धभूमिमें उसका वध करूंगा ॥ (१५-१७)

महाबाहु कृष्ण अर्जुन युद्धभूमिमें गमन करते हुए जयद्रथको दूरसे देखकर इस ही प्रकारसे वार्त्तालाप कर रहे थे, उस समय तुम्हारे पुत्रोंने बहुत आक्रोश किया ॥ जैसे दो मतवारे हाथी प्यासे होके मरुभूमिको अतिक्रम करने के पश्चात् पानी पीके गमन करते हुए

व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्य च पर्वतान् ।
वणिजाविव दृश्येतां हीनमृत्यू जरातिगौ ॥ २० ॥
तथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तावका वीक्ष्य मुक्तौ तौ विक्रोशन्ति स्म सर्वशः॥२१॥
द्रोणादाशीविषाकाराज्ज्वलितादिव पावकात् ।
अन्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भास्वन्ताविव भास्करौ॥ २२ ॥
विमुक्तौ सागरप्रख्याद् द्रोणानीकादरिन्दमौ ।
अदृश्येतां मुदा युक्तौ समुत्तीर्याऽर्णवं यथा ॥ २३ ॥
अस्त्रौघान्महतो मुक्तौ द्रोणहार्दिक्यरक्षितात् ।
रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्न्योः सदृशौ रणे ॥ २४ ॥
उद्भिन्नरुधिरौ कृष्णौ भारद्वाजस्य सायकैः ।
शितैश्चितौ व्यरोचेतां कर्णिकारैरिवाऽचलौ ॥ २५ ॥
द्रोणग्राहह्रदान्मुक्तौ शक्त्याशीविषसङ्कटात् ।

दीख पडते हैं, वैसेही वे दोनों पुरुषसिंह सेनाको अतिक्रम करके गमन करते हुए दिखाई देने लगे ॥ जैसे दो वणिक् सिंह व्याघ्र और हाथी आदि जीवोंसे युक्त पहाडके भयंकर मार्गको उल्लङ्घन करके जीते जागते फिर दीख पडते हैं, वैसे ही वे दोनों पुरुष तुम्हारी ओरकी भयंकर सेनाको अतिक्रम करके आगे बढते हुए दिखाई देने लगे ॥ (१८–२०)

तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग उन दोनों पुरुषसिंहोंके मुखवर्ण उन ऊपर कहे हुए दोनों बनियोंके समान प्रफुल्लित देख तथा द्रोणाचार्यकी सेनासे मुक्त हुए देखकर चारों ओरसे महाघोर शब्द करने लगे ॥ महाराज ! जैसे मनुष्य समुद्रसे पार होता है, वैसे ही वे दोनों शत्रुनाशन पुरुषसिंह जलती हुई अग्निके समान द्रोणाचार्य और दूसरे क्षत्रिय योद्धाओं तथा द्रोणाचार्यकी सेनासे इस प्रकार मुक्त हुए दिखाई देने लगे, जैसे बादलोंके समूहसे सूर्य मुक्त होकर प्रकाशित होते हैं ॥ (२१–२३)

वे दोनों पुरुषसिंह द्रोणाचार्य और कृतवर्माके अस्त्रोंसे क्षतविक्षत शरीर होके तथा अनेक शस्त्रधारी पुरुषोंके अस्त्रोंकी चोटसे बच कर इन्द्र और अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ वे दोनों द्रोणाचार्यके बाणोंसे परिपूर्ण और रुधिरसे युक्त होके कर्णिकार पुष्पसे शोभित हुए दोपर्वतके समान प्रकाशित हुए और मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धारूपी जल, शक्तिरूपी सर्प, लोहमय बाणरूपी मकर, और

अयःशराग्रमकरात्क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥ २६ ॥
ज्याघोषतलनिर्ह्रादाद्गदानिस्त्रिंशविद्युतः ।
द्रोणास्त्रमेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्दू तिमिरादिव ॥ २७ ॥
बाहुभ्यामिव सन्तीर्णौ सिन्धुषष्ठाः समुद्रगाः ।
तेषां ते सरितः पूर्णा महाग्रहसमाकुलाः ॥ २८ ॥
इति कृष्णौ महेष्वासौ प्रशस्तौ लोकविश्रुतौ ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्रबलवारणात् ॥ २९ ॥
जयद्रथं समीपस्थमवेक्षन्तौ जिघांसया ।
रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्राविव व्यतिष्ठताम्॥ ३० ॥
यथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तव योधा महाराज हतमेव जयद्रथम् ॥ ३१ ॥
लोहिताक्षौ महाबाहू संयुक्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥ ३२ ॥
शौरेरभीषुहस्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः ।

द्रोणाचार्य रूपी ग्राहसे युक्त शत्रुसेना रूपी ह्रदसे पार होकर प्रकाशित होने लगे ॥ (२४–२६)

जैसे सूर्य अन्धकारसे मुक्त होते हैं, वैसे ही वे दोनों महात्मा गदा तलवार रूपी बिजली, धनुषटंकार और तनुत्राण रूपी गर्जनसे युक्त द्रोणाचार्यके अस्त्र रूपी बादलसे मुक्त हुए॥ सम्पूर्ण प्राणी द्रोणाचार्यके अस्त्र बलसे विस्मित थे; इससे सबने महातेजस्वी कृष्ण अर्जुनको उनके अस्त्रोंसे मुक्त होते देखकर आश्चर्य करने लगे, उन दोनोंको वे लोग मुक्त हुए देखकर ऐसा समझने लगे, जैसे मकर मच्छसे युक्त वर्षा कालकी सिन्धु आदि छः नदियोंको अपने भुजाओंके बलसे तैरकर पार होता हुआ दिखाई देता है ॥ (२७–२९)

जिस प्रकार दो व्याघ्र जलाशयके समीप हरिणोंको खोजते हुए स्थिर होते हैं, वैसे ही वे दोनों पुरुषसिंह जयद्रथके वधकी अभिलाष करके उन्हें खोजते हुए गमन करने लगे ॥ उस समय उन दोनों महात्माओंके मुख वर्णको देखकर तुम्हारी ओरके योद्धालोग राजा जयद्रथ को मरा हुआ ही समझने लगे ॥ कमल नेत्रवाले कृष्ण अर्जुन यत्नपूर्वक सिन्धु राज जयद्रथको देखकर बार बार सिंहनाद करने लगे ॥ (३०–३२)

घोड़ोंकी लगाम हाथमें ग्रहण किये हुए कृष्ण और धनुर्द्धारी अर्जुनका तेज

तयोरासीत्प्रभा राजन्सूर्यपावकयोरिव ॥ ३३ ॥
हर्ष एव तयोरासीद् द्रोणानीकप्रमुक्तयोः ।
समीपे सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥ ३४ ॥
तौ तु सैन्धवमालोक्य वर्त्तमानमिवाऽन्तिके ।
सहसा पेततुः क्रुद्धौ क्षिप्रं श्येनाविवाऽमिषम् ॥ ३५ ॥
तौ दृष्ट्वा तु व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनञ्जयौ ।
सिन्धुराजस्य रक्षार्थं पराक्रान्तः सुतस्तव ॥ ३६ ॥
द्रोणेनाऽऽबद्धकवचो राजा दुर्योधनस्ततः ।
ययावेकरथेनाऽऽजौ हयसंस्कारवित्प्रभो ॥ ३७ ॥
कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याऽथ ते सुतः ।
अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥ ३८ ॥
ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत् ।
प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनञ्जयम् ॥ ३९ ॥
सिंहनादरवाश्चाऽऽसञ्शङ्खशब्दविमिश्रिताः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितम् ॥ ४० ॥
ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः ।

उस समय सूर्य और अग्निके समान दिखाई देने लगा ॥ जैसे मांस देखकर दो बाज पक्षी हर्षित होते और शीघ्रताके सहित उसके समीप गमन करते हैं, वैसे ही वे दोनों महात्मा द्रोणाचार्यकी सेनासे मुक्त होकर सिन्धुराज जयद्रथको समीप देखके हर्षित हुए और क्रोध पूर्वक शीघ्रताके सहित उनकी ओर गमन करने लगे ॥ (३३-३५)

हे भारत ! घोडोंके चलानेमें निपुण द्रोणाचार्यसे अभेद कवच पाकर महा-पराक्रमी तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने कृष्ण अर्जुनको सेना अतिक्रमण करते हुए देखकर अकेले ही [illegible] पर चढके सिन्धु राज जयद्रथकी रक्षा करनेके वास्ते शीघ्रताके सहित अर्जुनकी ओर जाने लगे ॥ राजा दुर्योधन महाधनुर्द्धर कृष्ण अर्जुनको अतिक्रम करके उनके संमुख उपस्थित हुए ॥ (३६-३८)

उस समयमें सम्पूर्ण सेनाके बीच हर्ष सूचक नाना प्रकारके युद्धके जुझाऊ बाजे बजने लगे और शंखके सहित चारों ओरसे शूरवीरोंका सिंहनाद सुनाई देने लगा । अग्निके समान तेजस्वी जो महारथ योद्धा लोग सिन्धुराज जयद्रथके रक्षक हुए थे, वे सब कोई तुम्हारे

ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥ ४१ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनं कृष्णौ व्यतिक्रान्तं सहानुगम् ।
अब्रवीदर्जुनं राजन्प्राप्तकालमिदं वचः ॥ ४२ ॥[३७९९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनागमे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

वासुदेव उवाच—दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनञ्जय ।
अत्यद्भुतमिमं मन्ये नाऽस्त्यस्य सदृशो रथः ॥ १ ॥
दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥ २ ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धो मानितश्च महारथः ।
कृती च सततं पार्थ नित्यं द्वेष्टि च बान्धवान् ॥ ३ ॥
तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवाऽनघ ।
अत्र वो द्यूतमायत्तं विजयायेतराय वा ॥ ४ ॥
अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिरसम्भृतम् ।
एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥ ५ ॥
सोऽयं प्राप्तस्तवाऽऽक्षेपं पश्य साफल्यमात्मनः ।

पुत्र दुर्योधनको कृष्णअर्जुनके संमुख युद्धके वास्ते स्थित देखकर आनान्दित हुए॥ हे राजेन्द्र! श्रीकृष्णचन्द्र अनुयायियोंके सहित दुर्योधनको संमुख स्थित देखकर समयके अनुसार यह वचन कहने लगे ॥ (३९–४२) [३७९९]

द्रोणपर्वमें एकसौ एक अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ दो अध्याय ।

श्रीकृष्ण बोले, हे अर्जुन ! यह देखो सुयोधन अतिक्रमण करके सम्मुख उपस्थित है, यह आश्चर्य देख रहा हूं, कि उसके समान रथी कोई भी नहीं है ॥ वह दूर तक बाण चलानेवाला महाधनुर्द्धारी, अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाला, युद्धमें महापराक्रमी, दृढ शस्त्रधारी, विचित्र योद्धा और महाबलवान है ॥ यह महारथ अत्यन्त सुखी मानी कृतास्त्र और पाण्डवोंका वैरी है ॥(१–३)

मैं बोध करता हूं, उसके सङ्ग युद्ध करनेका तुम्हारा यही समय उपस्थित हुआ है । इस युद्धरूपी जुएके खेलमें जीत और हार तुम दोनोंके सामर्थ्यके अनुसार हैं ॥ यह महारथ पाण्डवोंके कष्टभोग करानेका मूल कारण है, तुम सदासे रुके हुए क्रोधको इस समय उसके ऊपर प्रकट करो । और वह जब तुम्हारे बाणोंके चलानेके मार्गमें आया है, तब तुम अपनी सफलता समझो । कौन

कथं हि राजा राज्यार्थी त्वया गच्छेत संयुगम् ॥ ६ ॥
दिष्ट्या त्विदानीं सम्प्राप्त एष ते बाणगोचरम् ।
यथाऽयं जीवितं जह्यात्तथा कुरु धनञ्जय ॥ ७ ॥
ऐश्वर्यमदसम्मूढो नैष दुःखमुपेयिवान् ।
न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥
त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ ससुरासुरमानुषाः ।
नोत्सहन्ते रणे जेतुं किमुतैकः सुयोधनः ॥ ९ ॥
स दिष्ट्या समनुप्राप्तस्तव पार्थ रथान्तिकम् ।
जह्येनं त्वं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः ॥ १० ॥
एष ह्यनर्थे सततं पराक्रान्तस्तवाऽनघ ।
निकृत्या धर्मराजं च द्यूते वञ्चितवानयम् ॥ ११ ॥
बहूनि सुनृशंसानि कृतान्येतेन मानद ।
युष्मासु पापमतिना अपापेष्वेव नित्यदा ॥ १२ ॥
तमनार्यं सदा क्रुद्धं पुरुषं कामरूपिणम् ।

राजा राज्यकी अभिलाषा करके तुम्हारे सङ्ग युद्ध कर सकता है ? (४—६)

हे अर्जुन ! प्रारब्धहीसे दुर्योधन तुम्हारे संमुख उपस्थित हुआ है; इससे जिस प्रकारसे उसका प्राण नाश होवे तुम वैसे ही कार्यका विधान करो ॥ उसने ऐश्वर्यके अभिमानसे मतवारा होकर आजतक दुःख अनुभव नहीं किया है, उसही भांतिसे युद्धभूमिमें तुम्हारे बल और पराक्रमकोभी नहीं जानता है ॥ हे अर्जुन ! मनुष्य देवता और दानवोंके सहित तीनों लोकके प्राणि इकट्ठे होकर भी तुम्हें युद्धभूमिमें पराजित करनेका उत्साह नहीं कर सकते तब युद्धभूमिके बीच अकेला सुयोधन तुम्हारा क्या कर सकेगा ? (७–९)

अब प्रारब्धके अनुसार वह तुम्हारे रथके समीप आया है, तो इन्द्रने जैसे वृत्रासुरका नाश किया था, वैसे ही तुमभी इस दुर्योधनका वध करो ॥ हे पापरहित ! हे महापराक्रमी अर्जुन ! दुर्योधनने तुम्हारे नाशके वास्ते सदासे यत्न किया है, इस ही पापीने धर्मराज युधिष्ठिरको जुएमें छलसे जीता तथा ठगा है और तुम लोगोंके कुछ अपराध न रहने पर भी इसने तुम लोगोंके सङ्ग अनेक भांतिसे निठुरताके सहित व्यवहार किया है ॥ (१०–१२)

हे अर्जुन ! इससे तुम इस दुष्ट अभिलाष करनेवाले, नीचबुद्धि निठुर

आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाऽविचारयन् ॥१३॥
निकृत्या राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव।
परिक्लेशं च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रम ॥ १४ ॥
दिष्ट्यैष तव बाणानां गोचरे परिवर्त्तते।
प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यततेऽग्रतः ॥ १५ ॥
दिष्ट्या जानाति संग्रामे योद्धव्यं हि त्वया सह।
दिष्ट्या च सफलाः पार्थ सर्वे कामा ह्यकामिताः ॥१६॥
तस्माज्जहि रणे पार्थ धार्त्तराष्ट्रं कुलाधमम्।
यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो देवासुरे मृधे ॥ १७ ॥
अस्मिन्हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदम्।
वैरस्याऽस्याऽस्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम्॥१८॥
सञ्जय उवाच— तं तथेत्यब्रवीत्पार्थः कृत्यरूपमिदं मम।
सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ १९ ॥
येनैतद्दीर्घकालं नो भुक्तं राज्यमकण्टकम्।

और स्वेच्छाचारी दुर्योधनके विषयमें कुछ भी विचार न करके इसका वध करो॥ इस ही दुष्टात्माके छलसे तुम्हारा राज्य हरण किया गया है, इसहीके कारण तुम लोगोंको वनवासी होना पड़ा है; तुम इस समय द्रौपदीके क्लेश-को स्मरण करके अपना पराक्रम प्रका-शित करो॥ (१३-१४)

यह प्रारब्ध हीसे तुम्हारे बाण चलाने के मार्गमें आया है, प्रारब्ध हीसे तुम्हारे कार्यमें विघ्न डालनेके वास्ते तुम्हारे सं-मुख उपस्थित हुआ है: और प्रारब्ध हीसे तुम्हारे सङ्ग युद्ध करनेको अपना कर्त्तव्य कर्म समझ रहा है। हम लोगोंने इसके वधकी इच्छा नहीं किया था, प्रारब्धहीसे वह इच्छा आज सफल हुई है॥ हे अर्जुन! इससे पहिले देवासुर युद्धमें जैसे इन्द्रने जंभासुरका वध किया था वैसे ही तुम इस नीच तथा अधम पुरुषका वध करो॥ दुर्योधनके मारे जानेसे उसकी सम्पूर्ण सेना अनाथ होवेगी, तब उसकी सेनाके योद्धाओंका सहजहीमें वध हो सकेगा। यही पापी दुष्टात्मा पुरुषोंका मूल है, उसका वध करके तुम शत्रुताका शेष करो॥ (१५-१८

सञ्जय बोले, जब कृष्णने अर्जुनसे ऐसा वचन कहा, तब अर्जुन उनके वचनोंको स्वीकार करके यह वचन बोले, यह कार्य मेरे करनेही योग्य है। इससे तुम और सम्पूर्ण योद्धाओंको त्यागके

अप्यस्य युधि विक्रम्य च्छिन्द्यां मूर्धानमाहवे॥ २० ॥
अपि तस्य ह्यनर्हायाः परिक्लेशस्य माधव।
कृष्णायाः शक्नुयां गन्तुं पदं केशप्रधर्षणे ॥ २१ ॥
इत्येवं वादिनौ कृष्णौ हृष्टौ श्वेतान्हयोत्तमान्।
प्रेषयामासतुः संख्ये प्रेप्सन्तौ तं नराधिपम् ॥ २२ ॥
तयोः समीपं सम्प्राप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ।
न चकार भयं प्राप्ते भये महति मारिष ॥ २३ ॥
तदस्य क्षत्रियास्तत्र सर्वं एवाऽभ्यपूजयन्।
यदर्जुनहृषीकेशौ प्रत्युद्यातौ न्यवारयत ॥ २४ ॥
ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते।
महानादो ह्यभूत्तत्र दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥
तस्मिञ्जनसमुन्नादे प्रवृत्ते भैरवे सति।
कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥ २६ ॥
आवारितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना।

सुयोधनके निकट रथ ले चलो॥ जिसने हम लोगोंके राज्यको निष्कण्टक रूपसे बहुत दिनोंतक भोग किया है, युद्धमें पराक्रम प्रकाशित करके क्या मैं उसका शिर काट सकूंगा? हे कृष्ण! क्लेश भोगने में अयोग्य द्रौपदीके केशोंको पकडकर जिस दुष्टने उसे बहुत क्लेशित किया है, हे कृष्ण! मैं आज इस दुष्ट दुर्योधनको रणभूमिमें मार कर इस दुष्टके कृत्योंका बदला ले सकूंगा? (१९–२१)

दोनों पुरुषसिंह इस ही प्रकार बातचीत करते हुए हर्षपूर्वक दुर्योधनके निकट जानेकी इच्छासे अपने रथके सफेद घोडोंको उसकी ओर बढाने लगे॥ तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने कृष्ण अर्जुनके समीप पहुंचके अत्यन्त भयकी सम्भावना रहनेपर भी तनिक भय नहीं किया॥ वह जब निर्भय चित्तसे कृष्ण अर्जुनके संमुख होकर युद्ध करनेके वास्ते आगे बढे, तब सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धाओंने उनके इस कठिन कर्मकी अत्यन्त प्रशंसा किया॥ (२२–२४)

अनन्तर राजा दुर्योधनको अर्जुनके सङ्ग युद्ध करते देखकर तुम्हारी सेनाके बीच शूरवीरोंका महाघोर सिंहनाद शब्द होने लगा॥ उस महाघोर शब्द उत्पन्न होनेके समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधन शत्रु अर्जुनके उद्देश्यको भङ्ग करनेके निमित्त उन्हें युद्धसे निवारण करने लगे॥ अर्जुन तुम्हारे पुत्रसे निवारित होकर फिर

संरम्भमगमत्क्रुद्धः स च तस्मिन्परन्तपः ॥ २७ ॥
तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ दुर्योधनधनञ्जयौ।
अभ्यवैक्षन्त राजानो भीमरूपाः समन्ततः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा तु पार्थं संरब्धं वासुदेवं च मारिष।
प्रहसन्नेव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत ॥ २९ ॥
ततः प्रहृष्टो दाशार्हः पाण्डवश्च धनञ्जयः।
व्यक्रोशेतां महानादं दध्मतुश्चाऽम्बुजोत्तमौ ॥ ३० ॥
तौ हृष्टरूपौ सम्प्रेक्ष्य कौरवेयास्तु सर्वशः।
निराशाः समपद्यन्त पुत्रस्य तव जीविते ॥ ३१ ॥
शोकमापुः परे चैव कुरवः सर्व एव ते।
अमन्यन्त च पुत्रं ते वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ३२ ॥
तथा तु दृष्ट्वा योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ।
हतो राजा हतो राजेत्यूचिरे च भयार्दिताः ॥ ३३ ॥
जनस्य सन्निनादं तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत्।
व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ ३४ ॥
इत्युक्त्वा सैनिकान्सर्वाञ्जयापेक्षी नराधिपः।

अत्यन्त क्रुद्ध हुए। शत्रुनाशन दुर्योधन भी अर्जुनके ऊपर क्रुद्ध हुए॥ २५--२७

उन दोनोंको एक दूसरेके ऊपर क्रुद्ध और उनके भयङ्कर रूपको देखकर चारों ओरसे सम्पूर्ण योद्धा लोग उनका पराक्रम देखने लगे॥ अनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने अर्जुन और कृष्णको क्रुद्ध देखके हंसकर उन्हें युद्धके निमित्त आवाहन किया॥ अनन्तर कृष्ण अर्जुन भी अत्यन्त हर्षित होकर सिंहनाद करके अपने शङ्ख बजाने लगे॥ (२८--३०)

उन दोनों पुरुषोंको हर्षित देखकर सम्पूर्ण कौरव तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके जीवनसे निराश हुए॥ और कितने ही पुरुष तुम्हारे पुत्रको अग्निमें पड़े आहुतिके घृत समान बोध करते हुए शोकसे व्याकुल होगये॥ तुम्हारी सेनाके बहुतेरे योद्धा कृष्ण--अर्जुनको हर्षित देखकर भयभीत होगये और "राजा मारे गये, राजा मारे गये!" ऐसे ही वचनोंको कहते हुए शोर मचाने लगे॥ (३१--३३)

जयकी अभिलाषा करनेवाले राजा दुर्योधन उन लोगोंके शब्दको सुनकर यह वचन बोले, तुम लोग कुछ भय मत करो, मैं कृष्ण अर्जुनको यमपुरीमें भेजूंगा॥ अपनी सेनाके योद्धाओंसे

पार्थमामाष्य संरम्भादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥
पार्थ यच्छिक्षितं तेऽस्त्रं दिव्यं पार्थिवमेव च ।
तद्दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोऽसि पाण्डुना ॥ ३६ ॥
यद्बलं तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च ।
तत्कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्यामस्तव पौरुषम् ॥ ३७ ॥
अस्मत्परोक्षं कर्माणि कृतानि प्रवदन्ति ते ।
स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ॥ ३८ ॥ [३८३७]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनवचने द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

सञ्जय उवाच— एवमुक्त्वाऽर्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः ।
अभ्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १ ॥
वासुदेवं च दशभिः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
प्रतोदं चाऽस्य भल्लेन छित्वा भूमावपातयत् ॥ २ ॥
तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रस्ते चाऽभ्रश्यन्त वर्मणि ॥ ३ ॥

ऐसा वचन कहके राजा दुर्योधन क्रोधपूर्वक अर्जुनसे बोले ॥ हे अर्जुन ! तुमने दिव्य और मानुषिक जिन सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या सीखी है, यदि तुम पाण्डुसे उत्पन्न हुए हो, तो मेरे निकट अपने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको शीघ्र प्रकाशित करो ॥ (३४–३६)

तुम्हारा और कृष्णका जो कुछ बल और पराक्रम हो, वह मेरे ऊपर शीघ्र प्रकट करो; तुम्हारा कितना बल पराक्रम है, उसे मैं देखूंगा ॥ लोग कहते हैं तुमने प्रभु तथा गुरुके निकट सत्कार पाने योग्य कर्म किया है, परन्तु तुमने मेरे निकट अपना कुछ पराक्रम नहीं दिखाया है; इससे तुम अपने बल-पराक्रमको इस समय मेरे निकट प्रकाशित करो ॥ (३७–३८) [३८३७]

द्रोणपर्वमें एकसौ दोय अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ तीन अध्याय ।

सञ्जय बोले, राजा दुर्योधनने ऐसा वचन कहके मर्मभेदी तीन बाणोंसे अर्जुनको, चार बाणोंसे उनके रथके घोडोंको और दश बाणोंसे कृष्णके हृदयमें प्रहार किया । तिसके अनन्तर फिर राजा दुर्योधनने एक बाणसे कृष्णके हाथमें स्थित उत्तम कोडेको पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (१–२)

अर्जुनने निर्भय चित्तसे शीघ्रताके सहित शिलापर घिसे हुए चौदह बाण दुर्योधनकी ओर चलाये, परन्तु वे बाण

तेषां नैष्फल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च।
प्राहिणोन्निशितान्बाणांस्ते चाऽभ्रश्यन्त वर्मणः ॥ ४ ॥
अष्टाविंशांस्तु तान्बाणानस्तान्विप्रेक्ष्य निष्फलान्।
अब्रवीत्परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥ ५ ॥
अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम्।
त्वया सम्प्रेषिताः पार्थ नाऽर्थं कुर्वन्ति पत्रिणः॥ ६ ॥
कच्चिद्गाण्डीवजः प्राणस्तथैव भरतर्षभ।
मुष्टिश्च ते यथापूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ ७ ॥
न वा कच्चिदयं कालः मासः स्यादद्य पश्चिमः।
तव चैवाऽस्य शत्रोश्च तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः ॥ ८ ॥
विस्मयो मे महान्पार्थ तव दृष्ट्वा शरानिमान्।
व्यर्थान्निपतितान्संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥ ९ ॥
वज्राशनिसमा घोराः परकायावभेदिनः।
शराः कुर्वन्ति ते नाऽर्थं पार्थ काऽद्य विडम्बना ॥१०॥

दुर्योधनके वर्म पर लगते ही पृथ्वीमें गिर पडे; उन चौदह बाणोंको निष्फल होते देख अर्जुनने फिर चौदह बाण दुर्योधनकी ओर चलाये; वे बाण भी दुर्योधनके वर्म पर लगते ही छटकके पृथ्वीमें गिर पडे ॥ (३–४)

उन अट्ठाइस बाणोंको व्यर्थ होते देखकर शत्रुओंके नाश करनेवाले कृष्ण अर्जुनसे यह वचन बोले ॥ हे अर्जुन! जो मैंने पहिले कभी नहीं देखा था, वह आज देख रहा हूं! तुमने जो सम्पूर्ण बाण दुर्योधनके ऊपर चलाये, वे मानों पत्थरसे टकर खाकर निरर्थक ही खाली गये! पहिलेके समान क्या तुम्हारे गाण्डीव धनुषका बल नहीं है? वा तेरी मुष्टि अच्छी कार्य नहीं करती? वा तेरे बाहुओंका बल कम हुआ है? आजका यह उपस्थित समय दुःखसे प्राप्त होनेवाला है, परन्तु यह तुम्हारे वा शत्रुके पक्षमें निष्फल तो नहीं होगा! मैं यही तुमसे पूंछता हूं तुम मुझे इसका उत्तर दो ॥ (५—८)

दुर्योधनके ऊपर चलाये हुए तुम्हारे बाणोंको व्यर्थ होते देखकर मैं अत्यन्त ही विस्मित हुआ हूं ॥ हे अर्जुन! आज यह कैसा आश्चर्यमय कार्य हो रहा है? तुम्हारे वज्रके समान जो सम्पूर्ण बाण शत्रुओंके शरीरको विदारण करते रहते हैं; क्या आज उन ही बाणोंका प्रहार होरहा है? (९–१०)

अर्जुन उवाच— द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण धार्त्तराष्ट्रे निवेशिता।
अभेद्या हि ममाऽस्त्राणामेषा कवचधारणा ॥ ११ ॥
अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि।
एको द्रोणो हि वेदैतदहं तस्माच्च सत्तमात् ॥ १२ ॥
न शक्यमेतत्कवचं बाणैर्भेत्तुं कथञ्चन।
अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥ १३ ॥
जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम्।
यद्वृत्तं त्रिषु लोकेषु यच्च केशव वर्त्तते ॥ १४ ॥
तथा भविष्यच्चैव तत्सर्वं विदितं तव।
न त्विदं वेद वै कश्चिद्यथा त्वं मधुसूदन ॥ १५ ॥
एष दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम्।
तिष्ठत्यभीतवत्संख्ये बिभ्रत्कवचधारणाम् ॥ १६ ॥
यत्त्वत्र विहितं कार्यं नैष तद्वेत्ति माधव।
स्त्रीवदेष बिभर्त्येतां युक्तां कवचधारणाम् ॥ १७ ॥
पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन।

अर्जुन बोले, हे कृष्ण ! मुझे बोध होता है, कि द्रोणाचार्यने उसे अभेद कवच धारण करा दिया है; यह कवच अस्त्रोंसे अभेद्य है; तीनों लोकके प्राणी एकत्र होके भी उस कवचको नहीं भेद कर सकते, उसे अकेले द्रोणाचार्य ही जानते हैं, और मैं भी उस द्विजसत्तम द्रोणाचार्यकी कृपासे जानता हूं। यह कवच बाणोंसे किसी प्रकार भी भेदित नहीं हो सकता। इन्द्र भी वज्र लेकर इस कवच को भेद करनेमें समर्थ नहीं हो सकते॥ (११—१३)

हे कृष्ण ! इन सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको जानकर भी तुम मुझे क्यों मोहित कर रहे हो ? तीनों लोकके बीच भूत, भविष्य, वर्त्तमान जो कुछ विषय है, वह सम्पूर्ण तुम्हें विदित है, इस बातको जैसा तुम जानता है, वैसा दूसरा कोई नहीं जानता है॥ द्रोणाचार्यने इस दुर्योधनको कवच पहना दिया है; इस हीसे वह अभेद कवचधारी होकर निर्भय चित्तसे मेरे संमुख खडा है, यह ठीक है॥ परन्तु इस कवचके विषयमें किन कार्यों का विधान करना होता है, उसे वह नहीं जानता; स्त्रियोंके आभूषणके समान केवल उसने उस कवचको पहन लिया है॥ (१४-१७)

जो हो, तुम मेरे धनुषका बल और

पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनाऽपि रक्षितम् ॥ १८ ॥
इदमङ्गिरसे प्रादादेवेशो वर्म भास्वरम् ।
तस्माद् बृहस्पतिः प्राप ततः प्राप पुरन्दरः ॥ १९ ॥
पुनर्ददौ सुरपतिर्मह्यं वर्म ससंग्रहम् ।
दैवं यद्यस्य वर्मैतद्ब्रह्मणा वा स्वयं कृतम् ॥ २० ॥
नैनं गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया ।
सञ्जय उवाच— एवमुक्त्वाऽर्जुनो बाणानभिमन्त्र्य व्यकर्षयत् ॥ २१ ॥
मानवास्त्रेण मानार्हस्तीक्ष्णावरणभेदिना ।
विकृष्यमाणांस्तेनैव धनुर्मध्यगताञ्छरान् ॥ २२ ॥
तानस्यास्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वास्त्रघातिना ।
तान्निकृत्तान्निपून्दृष्ट्वा दूरतो ब्रह्मवादिना ॥ २३ ॥
न्यवेदयत्केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः ।
नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः प्रयोक्तुं जनार्दन ॥ २४ ॥
अस्त्रं मामेव हन्याद्धि हन्याच्चापि बलं मम ।

भुजाओंका पराक्रम देखो; इस कुरुराज दुर्योधनको कवचसे रक्षित होने पर भी मैं उसे पराजित करूंगा ॥ देवराज इन्द्रने इस प्रकाशमान कवचकी विद्या अङ्गिरा को सिखाया था, अंगिरासे बृहस्पतिने सीखा था, फिर इन्द्रने बृहस्पतिके समीप से इस कवचको प्राप्त किया ॥ अनन्तर इन्द्रने इस वर्मको सम्पूर्ण मन्त्र और इसके उपयोगी कर्मोंके सहित मुझे प्रदान किया है। यह वर्म देवताओंका बनाया होवे, वा ब्रह्माने स्वयं उसे तैयार किया हो; परन्तु आज मैं नीच बुद्धिवाले दुर्योधनको अपने बाणोंसे संहार करूंगा। यह कवच उसकी रक्षा नहीं कर सकेगा। (१८–२१)

सञ्जय बोले, अर्जुन कृष्णको इतनी कथा सुनाकर कई एक बाणोंको चढाकर कान पर्यन्त खींचने लगे। उन सम्पूर्ण बाणोंको अर्जुन धनुषपर चढाके खींच ही रहे थे उस ही समय महापराक्रमी अश्वत्थामाने सर्वास्त्रघाती बाणोंसे अर्जुनके बाणोंको उनके धनुषके बीचहीमें काटके गिरा दिया। उन बाणोंको कटके गिरते हुए देखकर अर्जुन विस्मित होके कृष्णसे यह वचन बोले, हे कृष्ण! यह अस्त्र अब मैं दूसरी बार नहीं चला सकता। यदि मैं फिर इन अस्त्रोंको चलाऊंगा, तो वे अस्त्र मुझे तथा मेरी सेनाके पुरुषों को संहार कर सकते हैं ॥ (२१–२५)

ततो दुर्योधनः कृष्णौ नवभिर्नवभिः शरैः ॥ २५ ॥
अविध्यत रणे राजञ्शरैराशीविषोपमैः ।
भूय एवाऽभ्यवर्षच्च समरे कृष्णपाण्डवौ ॥ २६ ॥
शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः ।
चक्रुर्वादित्रनिनदान्सिंहनादरवांस्तथा ॥ २७ ॥
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
नाऽपश्यच्च ततोऽस्याऽङ्गं यन्न स्याद्वर्मरक्षितम् ॥२८ ॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः ।
हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ २९ ॥
धनुरस्याऽच्छिनत्तूर्णं हस्तावापं च वीर्यवान् ।
रथं च शकलीकर्तुं सव्यसाची प्रचक्रमे ॥ ३० ॥
दुर्योधनं च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतम् ।
आविद्धयद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥ ३१ ॥
प्रयत्नज्ञो हि कौन्तेयो नखमांसान्तरेषुभिः ।
स वेदनाभिराविग्नः पलायनपरायणः ॥ ३२ ॥
तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः ।

महाराज! तिसके अनन्तर दुर्योधनने विषधारी सर्पके समान नौ तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनको विद्ध करके फिर अपने बाणोंकी वर्षासे उन दोनों पुरुषसिंहोंको छिपा दिया। तुम्हारी ओरके योद्धा लोग दुर्योधनको कृष्ण-अर्जुनके ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा करते देखकर हर्षित होके जुझाऊ बाजोंको बजाते हुए सिंहनाद करने लगे। (२५—२७)

अनन्तर अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होकर ओठों को काटते हुये दुर्योधनके छिद्रको देखने लगे। उस समय अर्जुनने दुर्योधनके शरीरमें ऐसा कोई स्थान भी खाली नहीं देखा, जो कि वर्मसे रक्षित न हुआ हो। तिसके अनन्तर अर्जुनने यमराजके समान भयङ्कर तीक्ष्ण और चोखे बाणोंसे उनके रथके घोडे सारथी पृष्ठरक्षक और उनके विचित्र धनुषको काट दिया। फिर उनके रथको टुकडे टुकडे करनेकी इच्छा किया॥ अनन्तर दुर्योधनको रथरहित करके दो तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनने उनके दोनों हथेलियोंमें नख मांसके बीच प्रहार किया॥ (२८-३२)

महाधनुर्द्धर दुर्योधनको अर्जुनके बाणोंसे पीडित और आपद्ग्रस्त देखकर

समापेतुः परीप्सन्तो धनञ्जयशरार्दितम् ॥ ३३ ॥
तं रथैर्बहुसाहस्रैः कल्पितैः कुञ्जरैर्हयैः ।
पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ३४ ॥
अथ नाऽर्जुनगोविन्दौ न रथो वा व्यदृश्यत ।
अस्त्रवर्षेण महता जनौघैश्चाऽपि संवृतौ ॥ ३५ ॥
ततोऽर्जुनोऽस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां वरूथिनीम् ।
तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोऽथ रथद्विपाः ॥ ३६ ॥
ते हता हन्यमानाश्च न्यगृह्णंस्तं रथोत्तमम् ।
स रथस्तम्भितस्तस्थौ क्रोशमात्रे समन्ततः ॥ ३७ ॥
ततोऽर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्यमब्रवीत् ।
धनुर्विस्फारयाऽत्यर्थमहं ध्मास्यामि चाऽम्बुजम् ॥३८॥
ततो विस्फार्य बलवद्गाण्डीवं जघ्निवान्रिपून् ।
महता शरवर्षेण तलशब्देन चाऽर्जुनः ॥ ३९ ॥
पाञ्चजन्यं च बलवान्दध्मौ तारेण केशवः ।

तुम्हारी सेनाके कितने ही शूरवीर योद्धा लोग उनकी रक्षा करनेके निमित्त क्रुद्ध होकर कई हजार रथी गजपति घुडसवार और पैदल सेनाके योद्धाओंको सङ्ग लेके चारों ओरसे अर्जुनके रथको घेरकर उनके ऊपर अपने अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ (३२-३४)

उन शूरवीर योद्धाओंके बीचमें घिरकर चारों ओरसे उनके अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षासे क्या कृष्ण, क्या अर्जुन, क्या उनका [illegible] उस समयमें नहीं दिखाई पडते थे ॥ अनन्तर अर्जुन अपने अस्त्रोंकी वर्षा करके उस सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंका वध करने लगे; उस समय अर्जुनके अस्त्रोंसे सैकडों रथी और गजपति योद्धा प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ उन शूरवीरोंके बीच कितने ही मरके पृथ्वीमें गिर पडे, कितने ही उनके अस्त्रोंसे पीडित होके प्राणत्याग कर रहे थे, ऐसी अवस्थामें भी वे सम्पूर्ण योद्धा अर्जुनके रथके ऊपर अपने अस्त्रोंसे प्रहार करने लगे; उससे अर्जुनका रथ एक कोसके भीतर चारों ओरसे घिरकर उस योद्धाओंके बीचमें रुक गया ॥ (३५-३७)

तिसके अनन्तर यदुकुलभूषण पराक्रमी कृष्ण अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! तुम धनुष चढाओ, मैं अपना शङ्ख बजाता हूं ! तब अर्जुन अपने तनुत्राण शब्दके सहित धनुषको चढाकर तीक्ष्ण बाणोंसे

रजसा ध्वस्तपक्ष्मान्तः प्रस्विन्नवदनो भृशम् ॥ ४० ॥
तस्य शङ्खस्य नादेन धनुषो निःस्वनेन च ।
निःसत्वाश्च ससत्वाश्च क्षितौ पेतुस्तदा जनाः ॥ ४१ ॥
तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवाऽम्बुदः ।
जयद्रथस्य गोप्तारस्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥ ४२ ॥
ते दृष्ट्वा सहसा पार्थं गोप्तारः सैन्धवस्य तु ।
चक्रुर्नादान्महेष्वासाः कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ ४३ ॥
बाणशब्दरवांश्चोग्रान्विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः ।
प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ॥ ४४ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां समुत्थितम् ।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ४५ ॥
तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुन्धरा ।
सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशाम्पते ॥ ४६ ॥

शत्रु सेनाके योद्धाओंका वध करने लगे; और कृष्णने भी अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उस समय कृष्णके नेत्रकी वरौनी और सम्पूर्ण शरीर धूलिसे परिपूरित होगया था; तथा उनके मुखपर पसीना ही आया था ॥ (३८—४०)

उनके शङ्खके शब्द और अर्जुनके धनुष टङ्कार शब्दको सुनकर क्या निर्बल क्या बलवान् सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग मोहित होके पृथ्वी पर गिरने लगे। अनन्तर जैसे बादल वायुके वेगसे नष्ट हुए दिखाई देते हैं वैसेही अर्जुनका रथ उन सम्पूर्ण शूरवीरोंसे मुक्त होकर प्रकाशित होने लगा। उसे देखकर जयद्रथके सम्पूर्ण रक्षक महारथ योद्धा लोग अपने अनुयायी योद्धाओंके सहित अत्यन्त क्रुद्ध हुए॥ जयद्रथकी रक्षा करने वाले वे सम्पूर्ण महारथी योद्धा लोग सहसा अर्जुनको देखकर अपने महा भयङ्कर शब्दसे पृथ्वीको कम्पित करने लगे ॥ (४१—४३)

उन महात्माओंके बाण छोडनेके प्रचण्ड शब्द शंख और वीरोंके सिंहनाद के सहित मिलकर महाघोर सुनाई देने लगे। कृष्ण अर्जुन भी उन सम्पूर्ण योद्धाओंके महाघोर शब्दको सुनकर शंख बजाने लगे॥ महाराज! उस समय वह सम्पूर्ण शूरवीरोंके शंख धनुष टङ्कार और महाघोर शूरवीरोंके सिंहनादके शब्दसे पर्वत, समुद्र, द्वीप और पातालके सहित सम्पूर्ण पृथ्वी परिपूरित होगई; और कुरु पाण्डवोंकी सेनाके

स शब्दो भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश ।
प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्डवयोर्बले ॥ ४७ ॥
तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
सम्भ्रमं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥ ४८ ॥
अथ कृष्णौ महाभागौ तावका वीक्ष्य दंशितौ ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४९ ॥ [३८८६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनपराजये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

सञ्जय उवाच— तावका हि समीक्ष्यैवं वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ ।
प्रागत्वरञ्जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान् ॥ १ ॥
सुवर्णचित्रैर्वैयाघ्रैः स्वनवद्भिर्महारथैः ।
दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २ ॥
रुक्मपुङ्खैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते ।
कूजद्भिरतुलान्नादान्कोपितैस्तुरगैरिव ॥ ३ ॥
भूरिश्रवाः शलः कर्णो वृषसेनो जयद्रथः ।
कृपश्च मद्रराजश्च द्रौणिश्च रथिनां वरः ॥ ४ ॥
ते पिबन्त इवाऽऽकाशमश्वैरष्टौ महारथाः ।

बीच दशों दिशामें व्याप्त होकर वह शब्द प्रतिध्वनित होने लगा ॥ ४४-४७

तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा लोग कृष्ण अर्जुनको देखकर अत्यन्तही विस्मित और क्रुद्ध हुए ॥ अनन्तर वे सम्पूर्ण महारथी लोग कृष्ण अर्जुनको वर्मधारी और क्रुद्ध देखकर उनकी ओर दौडे, उन महारथियोंकी अर्जुनकी ओर गमन करनेके समय अद्भुत शोभा हुई ॥ (४८-४९) [३८८६]

द्रोणपर्वमें एकसौ तीन अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ चार अध्याय।

सञ्जय बोले, तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा लोग कृष्ण अर्जुनको देखकर क्रोधके वशमें हो शीघ्रताके सहित उनकी ओर बढे, अर्जुन भी उन लोगोंके वध करनेके निमित्त क्रुद्ध हो शीघ्रताके सहित आगे बढे ॥ भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य, और अश्वत्थामा, ये आठ रथी सुवर्ण चित्रित व्याघ्रके चमडेसे युक्त महाघोर शब्द करनेवाले अपने उत्तम उत्तम रथोंपर चढके तथा क्रोधी सर्पके समान सुवर्ण खचित अपने दृढ धनुषोंको फेरते हुए जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान् वायुके समान गमन करनेवाले

व्यराजयन्दश दिशो वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥ ५ ॥
ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मेघौघनिःस्वनैः।
समावृण्वन्दश दिशः पार्थस्य निशितैः शरैः ॥ ६ ॥
कौलूतका हयाश्चित्रा वहन्तस्तान्महारथान्।
व्यशोभन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो दिशो दश॥ ७ ॥
आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः।
पार्वतीयैर्नदीजैश्च सैन्धवैश्च हयोत्तमैः ॥ ८ ॥
कुरुयोधवरा राजंस्तव पुत्रं परीप्सवः।
धनञ्जयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥ ९ ॥
ते प्रगृह्य महाशङ्खान्दध्मुः पुरुषसत्तमाः।
पूरयन्तो दिवं राजन्पृथिवीं च ससागराम् ॥ १० ॥
तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ।
प्रवरौ सर्वदेवानां सर्वशङ्खवरौ भुवि ॥ ११ ॥
देवदत्तं च कौन्तेयः पाञ्चजन्यं च केशवः।
शब्दस्तु देवदत्तस्य धनञ्जयसमीरितः ॥ १२ ॥
पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च दिशश्चैव समावृणोत्।
तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ॥ १३ ॥

घोडोंसे युक्त रथपर चढके मानो आकाशमार्गसे गमन करते हुए रणभूमिमें शोभित होने लगे ॥ (१—५)

वर्मधारी और अत्यन्त क्रोधी उन सम्पूर्ण महारथियोंने बादलके गर्जनेके समान रथ शब्दके सहित अपने तीक्ष्ण बाणोंको वर्षाकर अर्जुनको दशों दिशासे छिपा दिया। शीघ्र गमन करनेवाले उत्तम विचित्र घोडे उन महारथियोंके रथको खींचते हुए दशों दिशा को प्रकाशित करके रणभूमिमें शोभित होने लगे। उन महारथियोंने महा वेगशील पर्वत नदी सिन्धु तथा दूसरे देशोंके उत्तम उत्तम घोडोंसे युक्त रथ पर चढके तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी रक्षा करनेकी अभिलाषसे शीघ्रताके सहित अर्जुनके रथको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६-९

उन महारथी योद्धाओंने अपने शंखोंको बजाके पृथ्वी और आकाशको परिपूरित करदिया; कृष्ण अर्जुनने भी अपने अपने शङ्ख बजाये ॥ अर्जुन और कृष्ण सम्पूर्ण प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं; उनके शङ्खभी सबके शङ्खोंसे श्रेष्ठ हैं; अर्जुनके देवदत्त शङ्खसे पृथ्वी आकाश और

सर्वशब्दानतिक्रम्य पूरयामास रोदसी ।
तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने दारुणे नादसंकुले ॥ १४ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।
प्रवादितासु भेरीषु झर्झरेष्वानकेषु च ॥ १५ ॥
मृदङ्गेष्वपि राजेन्द्र वाद्यमानेष्वनेकशः ।
महारथाः समाहूता दुर्योधनहितैषिणः ॥ १६ ॥
अमृष्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधान्विनः ।
नानादेश्या महीपालाः स्वसैन्यपरिरक्षिणः ॥ १७ ॥
अमर्षिता महाशङ्खान्दध्मुर्वीरा महारथाः ।
कृते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्याऽर्जुनस्य च ॥ १८ ॥
बभूव तच तत्सैन्यं शङ्खशब्दसमीरितम् ।
उद्विग्नरथनागाश्वमस्वस्थमिव वा विभो ॥ १९ ॥
तत्प्रविद्धमिवाऽऽकाशं शूरैः शङ्खविनादितम् ।
बभूव भृशमुद्विग्नं निर्घातैरिव नादितम् ॥ २० ॥
स शब्दः सुमहान्राजन्दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
त्रासयामास तत्सैन्यं युगान्त इव सम्भृतः ॥ २१ ॥

सम्पूर्ण दिशा परिपूरित होगई। कृष्णके मुख वायुके वेगसे बजते हुए पाञ्चजन्य शङ्खकी शब्द सम्पूर्ण शब्दोंको अतिक्रम करके स्वर्ग, और मर्त्यलोकमें परिपूर्ण होगये ॥ (१०–१४)

शूरवीरोंके हर्ष और कादरोंके भयको बढानेवाले उन महा शङ्खोंके शब्दके समय अनेक ढोल नगाडे भेरी झांझ और मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे ॥ दुर्योधनके हितैषी तुम्हारी सेनाके रक्षक नाना देशोंके राजाओं और मुख्य मुख्य महारथ वीरोंको कृष्ण अर्जुनके शङ्खका शब्द असह्य हुआ। वे लोग कृष्ण अर्जुनके कार्यका प्रतिकार करेंगे, ऐसा विचारके ऊंचे शब्दके सहित अपने शङ्ख बजाने लगे ॥ (१५–१८)

हे भारत! तुम्हारी सेनाके बीच मनुष्य, हाथी, घोडे उस भयङ्कर शब्दसे व्याकुल होगये जैसे वज्रके शब्दसे आकाश अनुनादित होता है, वैसे ही रणभूमि शङ्खके शब्दोंसे परिपूरित होगई और तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग अत्यन्त ही व्याकुल हुए। वह महा भयङ्कर शब्द प्रलय कालके महाघोर शब्दके समान सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करके तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको भयभीत करने

ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजानस्ते महारथाः ।
जयद्रथस्य रक्षार्थं पाण्डवं पर्यवारयन् ॥ २२ ॥
ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिभिर्भल्लैर्ध्वजमश्वांश्च पञ्चभिः ॥ २३ ॥
तमर्जुनः पृषत्कानां शतैः षड्भिरताडयत् ।
अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥ २४ ॥
कर्णं च दशभिर्विध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा ।
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद वीर्यवान् ॥ २५ ॥
गृहीत्वा धनुरन्यत्तु शल्यो विव्याध पाण्डवम् ।
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २६ ॥
कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
जयद्रथस्त्रिसप्तत्या कृपश्च दशभिः शरैः ॥ २७ ॥
मद्रराजश्च दशभिर्विव्यधुः फाल्गुनं रणे ।
ततः शराणां षष्ट्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत् ॥२८॥
वासुदेवं च विंशत्या पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।
प्रहसंस्तु नरव्याघ्रः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २९ ॥
प्रत्यविध्यत्स तान्सर्वान्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।

लगा (१९–२१)

महाराज ! तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन और ऊपर कहे आठों महारथियोंने जयद्रथकी रक्षा करनेके वास्ते अर्जुनको आक्रमण किया ॥ अश्वत्थामाने तिहत्तर बाणोंसे कृष्ण, तीन बाणोंसे अर्जुन और पांच बाणोंसे अर्जुनके रथकी ध्वजा तथा उनके रथके चार घोडोंके ऊपर प्रहार किया ॥ (२२–२३)

जनार्दन कृष्णके विद्ध होने पर अर्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा के ऊपर छः सौ बाण चलाया ॥ फिर कर्णको दश और वृषसेनको तीन बाणोंसे विद्ध किया; फिर शल्यके धनुषको बीचसे काट दिया ॥ शल्य दूसरा धनुष ग्रहण करके अर्जुनको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे । भूरिश्रवाने शिलापर घिसे हुए सुवर्ण दण्डयुक्त तीन बाणोंसे, कर्णने बत्तीस, वृषसेनने सात, जयद्रथने तिहत्तर, कृपाचार्यने दश, मद्रराज शल्यने दश और अश्वत्थामाने साठ बाण अर्जुनके ऊपर चलाया ॥ और बीस बाणोंसे कृष्णके शरीर में प्रहार करके, फिर पांच बाणोंसे अर्जुनको विद्ध

कर्णं द्वादशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३० ॥
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे व्यकृन्तत ।
सौमदत्तिं त्रिभिर्विद्ध्वा शल्यं च दशभिः शरैः ॥३१॥
शितैरग्निशिखाकारैर्द्रौणिं विव्याध चाऽष्टभिः ।
गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्धवं च शतेन ह ॥ ३२ ॥
पुनर्द्रौणिं च सप्तत्या शराणां सोऽभ्यताडयत् ।
भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः प्रतोदं चिच्छिदे हरेः ॥ ३३ ॥
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या बाणानामाजघान ह ।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीञ्श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
प्रत्यषेधद् द्रुतं क्रुद्धो महावातो घनानिव ॥ ३५ ॥ [३९२१]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– ध्वजान्बहुविधाकारान्भ्राजमानानतिश्रिया ।
पार्थानां मामकानां च तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच— ध्वजान्बहुविधाकाराञ्शृणु तेषां महात्मनाम् ।

किया ॥ (२४–२९)

अर्जुन हंसकर अपना हस्तलाघव दिखाते हुए उन सम्पूर्ण महारथियोंको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ कर्णको बारह और वृषसेनको तीन बाणोंसे विद्ध करके मद्रराज शल्यके सशर धनुषका मुष्टिग्रह काट दिया। अनन्तर भूरिश्रवाको तीन और शल्यको दस बाणोंसे विद्ध करके अश्वत्थामाको अग्निके समान तेजस्वी आठ, कृपाचार्यको पचीस, सिन्धुराज जयद्रथको एक सौ और फिर अश्वत्थामाको सत्तर बाणोंसे विद्ध किया ॥ (३०–३३)

परन्तु भूरिश्रवाने क्रुद्ध होकर कृष्ण के हाथमें स्थित कोडेको काटके तिहत्तर बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया, तिसके अनन्तर श्वेतवाहन अर्जुनने क्रुद्ध होकर अपने सैकडों तीक्ष्ण बाणोंसे उन सम्पूर्ण महारथियोंको इस प्रकारसे निवारण किया जैसे प्रबल वायु बादलोंको निवारण करता है ॥ (३३–३५) [३९२१]

द्रोणपर्वमें एकसौ चार अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ पांच अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले हे सञ्जय ! मेरी और पाण्डवोंकी ओर के महारथियों के रथकी जिस प्रकारकी शोभायमान ध्वजायें थीं, वह तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ (१)

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! उन महा-पुरुषोंके रथकी ध्वजा नाना प्रकारकी

रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥ २ ॥
तेषां तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥ ३ ॥
काञ्चनाः काञ्चनापीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः ।
काञ्चनानीव शृङ्गाणि काञ्चनस्य महागिरेः ॥ ४ ॥
अनेकवर्णा विविधा ध्वजाः परमशोभनाः ।
ते ध्वजाः संवृतास्तेषां पताकाभिः समन्ततः ॥ ५ ॥
नानावर्णविरागाभिः शुशुभुः सर्वतो वृताः ।
पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ॥ ६ ॥
नृत्यमाना व्यदृश्यन्त रङ्गमध्ये विलासिकाः ।
इन्द्रायुधसवर्णाभाः पताका भरतर्षभ ॥ ७ ॥
दोधूयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान् ।
सिंहलांगूलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ८ ॥
धनञ्जयस्य संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम् ।
स वानरवरो राजन्पताकाभिरलंकृतः ॥ ९ ॥
त्रासयामास तत्सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।

थीं; उन सम्पूर्ण ध्वजाओंके नाम रूप और चिन्हके अनुसार मैं वर्णन करता हूं आप सुनिये ॥ उन मुख्य मुख्य राजाओं तथा महारथियोंके रथकी नाना प्रकारकी ध्वजा अग्निके समान प्रकाशित हो रही थीं ॥ चारों ओरसे नाना भांतिकी पताकाओंके सहित नाना वर्णवाली अनेक भांतिकी ध्वजा अत्यन्त शोभित होती थीं । सोनेकी माला सुवर्णमय चित्र और सुवर्ण दण्डसे युक्त वायुके झोंकेसे लहराती हुई संपूर्ण ध्वजा मानो सुवर्णके पहाडके ऊपर सोनेके शिखरके समान शोभित होने लगी । (२–५)

उन ध्वजाओंकी सुवर्ण पताका वायुके वेगसे इधर उधर डोलती हुई मानो रङ्गभूमिमें नृत्य करती हुई नर्त्तकीके समान दिखाई देने लगीं । उन संपूर्ण रथियोंके इन्द्रधनुषके समान प्रकाशमान समस्त पताका वार वार वायुके झकोरसे लहराती हुई उत्तम उत्तम रथोंके ऊपर शोभित होने लगीं । (६—८)

महाराज ! मैंने देखा, कि अर्जुनके रथपर उग्रमुखवाले सिंह लांगूलसे-युक्त महाभयङ्कर रूपवाली वानर ध्वजा लगी है, यह वन्दरके रूपकी ध्वजा उत्तम पताकाओंसे शोभित होकर तुम्हारी

तथैव सिंहलांगूलं द्रोणपुत्रस्य भारत ॥ १० ॥
ध्वजाग्रं समपश्याम बालसूर्यसमप्रभम् ।
काञ्चनं पवनोद्धूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ॥ ११ ॥
नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौणेर्लक्ष्म समुच्छ्रितम् ।
हस्तिकक्ष्या पुनर्हैमी बभूवाऽधिरथेर्ध्वजः ॥ १२ ॥
आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव ।
पताका काञ्चनी स्रग्वी ध्वजे कर्णस्य संयुगे ॥ १३ ॥
नृत्यतीव रथोपस्थे श्वसनेन समीरिता ।
आचार्यस्य तु पाण्डूनां ब्राह्मणस्य तपस्विनः ॥ १४ ॥
गोवृषो गौतमस्याऽऽसीत्कृपस्य सुपरिष्कृतः ।
स तेन भ्राजते राजन्गोवृषेण महारथः ॥ १५ ॥
त्रिपुरघ्नरथो यद्वद्गोवृषेण विराजता ।
मयूरो वृषसेनस्य काञ्चनो मणिरत्नवान् ॥ १६ ॥
व्याहरिष्यन्निवाऽतिष्ठत्सेनाग्रमुपशोभयन् ।
तेन तस्य रथो भाति मयूरेण महात्मनः ॥ १७ ॥

सेनाके योद्धाओंको भयभीत करने लगीं। अश्वत्थामाके रथपर लालवर्ण वाली सिंहलांगूलसे युक्त सुवर्णमय इन्द्रध्वजाके समान प्रकाशमान ध्वजाका अग्रभाग वायुके झोकेसे लहराता हुआ कौरवोंकी ओरके श्रेष्ठ योद्धाओंको आनन्दित करने लगा। (९-१२)

अधिरथपुत्र कर्णके रथपर सुवर्णमय हाथी कक्षा चिन्हसे युक्त सुन्दर पताका और स्वर्ण मालासे शोभित उछलती हुई उत्तम ध्वजा वायुके वेगसे लहराती और आकाशको परिपूर्ण करती हुई शोभित होने लगी। (१३—१४)

यशस्वी द्विजसत्तम पाण्डवोंके आचार्य और गौतमपुत्र कृपाचार्यके रथपर अत्यन्त सुन्दर वृषभचिन्हसे युक्त ध्वजा दीख पडती थी। जैसे त्रिपुरासुरके नाश करनेवाले महादेवके रथकी ध्वजा वृषभचिन्हसे शोभित होती हैं वैसेही कृपाचार्यका रथ भी वृषभध्वजासे शोभायमान लगता था। (१४—१६)

वृषसेनके रथ पर नाना भांतिके रत्नोंसे शोभित सुवर्ण मय मयूरध्वजा लगी थी। वृषसेनके रथकी ध्वजाका वह मयूर मानो रणभूमिमें शोभित होकर बोलनेके निमित्त उद्यत हुआ दिखाई देता था। जैसे मोरोंपर चढे हुए स्वामिकार्त्तिक विराजमान होते हैं,

यथा स्कन्दस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता।
मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव ॥ १८ ॥
सौवर्णी प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम्।
सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष ॥ १९ ॥
सर्वबीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता।
वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ॥ २० ॥
ध्वजाग्रेऽलोहिताकाभो हेमजालपरिष्कृतः।
शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः ॥ २१ ॥
यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते।
सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ॥ २२ ॥
ध्वजः सूर्य इवाऽऽभाति सोमश्चाऽत्र प्रदृश्यते।
स यूपः काञ्चनो राजन्सौमदत्तेर्विराजते ॥ २३ ॥
राजसूये मखश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः।
शलस्य तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ॥ २४ ॥
केतुः काञ्चनचित्राङ्गैर्मयूरैरुपशोभितः।

वैसे ही मयूर ध्वजासे युक्त अपने उत्तम रथ पर चढे हुए महारथ वृषसेन शोभित होने लगे। मद्रराज शल्यके रथकी ध्वजा पर अग्निशिखाके समान मनोहर और शोभासे युक्त लाङ्गल रेखाका चिन्ह था। जैसे खेतको हलसे जोतने पर बीजोंके अंकुर शोभित होते हैं, वैसे ही सुवर्ण चित्रित उनके ध्वजाकी लाङ्गलरेखा शोभित होने लगी॥ (१६–२०)

सिन्धुराज जयद्रथके रथकी ध्वजाके अग्रभाग पर सुवर्णके तारोंसे बनाये हुए जालसे शोभित स्वच्छ स्फटिकके समान कांतिसे युक्त और रजत का बनाया हुआ वराह चिन्ह विराजमान था। राजा जयद्रथ उस सुवर्णमय वराह ध्वजा से युक्त होकर इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे पहिले समय देवासुर संग्राममें तेजस्वी पूषाकी शोभा हुई थी। यज्ञशील बुद्धिमान् सोमदत्तपुत्रके सूर्यके समान प्रकाशमान रथ पर यूप चिन्हसे युक्त ध्वजा लगी थी। उस यूप ध्वजा पर चन्द्रमाकी प्रतिमा दीख पडती थी। जैसे राजसूय महा यज्ञमें खडा किया हुआ प्रकाशमान यूप विराजमान होता है उस ही प्रकार उनकी सुवर्णमय यूपध्वजा रणभूमि में शोभित होने लगी। (२०-२४)

राजा शलके रथकी ध्वजा सुवर्णमयी मतवारे हाथीके चिन्हसे युक्त थी और

स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ २५ ॥
यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूं तथा।
नागो मणिमयो राज्ञो ध्वजः कनकसंवृतः ॥ २६ ॥
किङ्किणीशतसंह्रादो भ्राजंश्चित्रो रथोत्तमे।
व्यभ्राजत भृशं राजन्पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २७ ॥
ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृषभस्तदा।
नवैते तव वाहिन्यामुच्छ्रिताः परमध्वजाः ॥ २८ ॥
व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्यसन्निभाः।
दशमस्त्वर्जुनस्याऽऽसीदेक एव महाकपिः ॥ २९ ॥
अदीप्यताऽर्जुनो येन हिमवानिव वह्निना।
ततश्चित्राणि शुभ्राणि सुमहान्ति महारथाः ॥ ३० ॥
कार्मुकाण्याददुस्तूर्णमर्जुनार्थे परन्तपाः।
तथैव धनुरायच्छत्पार्थः शत्रुविनाशनः ॥ ३१ ॥
गाण्डीवं दिव्यकर्मा तद्राजन्दुर्मन्त्रिते तव।

विचित्र हस्तीचिन्हसे युक्त मयूरोंकी प्रतिमासे शोभित वह ध्वजा रणभूमिमें प्रकाशित होने लगी। जैसे सफेद महा गजराज देवतोंके राजा इन्द्रकी सेनाके बीच शोभित होता था, वैसे ही तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके उत्तम रथ पर सुवर्णके तारोंसे खचित और छोटी छोटी घण्टियोंसे युक्त ध्वजा पर सुवर्ण और रत्नोंसे चित्रित हाथीकी प्रतिमा तुम्हारी सेनाके बीच शोभित होने लगी। कुरुश्रेष्ठ तुम्हारे पुत्र दुर्योधन उस सफेद गजराज-चिन्ह वाली ध्वजासे अत्यन्त ही शोभायमान हुए ॥ (२४—२८)

उस संग्रामभूमिमें तुम्हारी सेनाके बीच अश्वत्थामा आदि नव महारथियोंके सिंहलांगूल आदि चिन्हसे युक्त नव रथोंकी नव भांतिकी ध्वजा वायुके झोकसे लहराती हुई प्रलय कालके सूर्य समान रणभूमिमें प्रकाशित होरही थीं। परन्तु अर्जुनके रथकी ध्वजा पर अकेले ही जो केवल महा विकराल बन्दरकी मूर्त्ति थी उस ही से अर्जुनका रथ जलती हुई अग्निसे युक्त हिमालय पर्वतकी भांति प्रकाशित होने लगा। तिसके अनन्तर शत्रुओंके नाश करनेवाले उन महारथ वीरोंने अर्जुनको पीडित करनेके वास्ते अपने विचित्र दृढ और प्रकाशमान धनुषोंको ग्रहण किया; दिव्य कर्म करनेवाले शत्रुनाशन अर्जुनने भी गाण्डीवधनुष ग्रहण किया। महाराज!

तवाऽपराधाद्राजानो निहता बहुशो युधि ॥ ३२ ॥
नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः ।
तेषामासीद्व्यतिक्षेपो गर्जतामितरेतरम् ॥ ३३ ॥
दुर्योधनमुखानां च पाण्डूनामृषभस्य च ।
तत्राऽद्भुतं परं चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः ॥ ३४ ॥
यदेको बहुभिः सार्धं समागच्छदभीतवत् ।
अशोभत महाबाहुर्गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः ॥ ३५ ॥
जिगीषुस्तान्नरव्याघ्रो जिघांसुश्च जयद्रथम् ।
तत्राऽर्जुनो नरव्याघ्रः शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ॥ ३६ ॥
अदृश्यांस्तावकान्योधान्प्रचक्रे शत्रुतापनः ।
ततस्तेऽपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः ॥ ३७ ॥
अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समन्ततः ।
संवृते नरसिंहैस्तु कुरूणामृषभेऽर्जुने ॥
महानासीत्समुद्भूतस्तस्य सैन्यस्य निःस्वनः ॥ ३८ ॥[३९५९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि ध्वजवर्णने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

यह सम्पूर्ण युद्ध कार्य तुम्हारी अनीतिसे ही उपस्थित हुआ है और तुम्हारे ही दोषसे राजा लोग नाना देशोंसे आके घोडे हाथी और रथोंके सहित नष्ट हुए तथा सम्पूर्ण योद्धाओंका नाश होरहा है ॥ (२८-३३)

दुर्योधन आदि सम्पूर्ण योद्धा और दिव्य कर्म करनेवाले अर्जुन ये सब लोग तर्जन गर्जन करते हुए युद्ध करने लगे। शत्रुनाशन कुन्तीपुत्र अर्जुनने जिसके सारथी कृष्ण थे उन्होंने युद्धभूमिमें यह अद्भुत कर्म किया कि अकेलेही अनेक महारथियों के सङ्ग युद्ध करने लगे। वह महाबाहु अर्जुन उन सम्पूर्ण महारथ राजाओं तथा जयद्रथके वधकी इच्छासे क्रुद्ध होकर अपना गाण्डीव धनुष फेरते हुए रणभूमिमें शोभित हुए ॥ (३३-३६)

उन्होंने सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके तुम्हारी ओरके उन महारथियोंको अदृश्य कर दिया। अनन्तर उन महारथ योद्धाओंने भी चारों ओरसे अपने बाणोंकी वर्षा कर अर्जुनको छिपा दिया। जब तुम्हारी ओरके महारथियोंने अपने बाणों के समूहसे अर्जुनको छिपा दिया तब तुम्हारी सेनाके बीच शूरवीरोंके महाघोर सिंहनाद शब्द सुनाई देने लगे। ३६-३८

द्रोणपर्वमें एकसौ पांच अध्याय समाप्त। [३९५९]

धृतराष्ट्र उवाच- अर्जुने सैन्धवं प्राप्ते भारद्वाजेन संवृताः।
पञ्चालाः कुरुभिः सार्धं किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच— अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे।
पञ्चालानां कुरूणां च द्रोणद्यूतमवर्तत ॥ २ ॥
पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः।
अभ्यमुञ्चन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि मारिष ॥ ३ ॥
ततस्तु तुमुलस्तेषां संग्रामोऽवर्तताऽद्भुतः।
पञ्चालानां कुरूणां च घोरो देवासुरोपमः ॥ ४ ॥
सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पञ्चालाः पाण्डवैः सह।
तदनीकं विभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन् ॥ ५ ॥
द्रोणस्य रथपर्यन्तं रथिनो रथमास्थिताः।
कम्पयन्तोऽभ्यवर्तन्त वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ ६ ॥
तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः।
प्रवपन्निशितान्बाणान्महेन्द्राशनिसन्निभान् ॥ ७ ॥

द्रोणपर्वमें एकसौ छह अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! अर्जुन जब जयद्रथके समीप उपस्थित हुए तब पाञ्चाल योद्धाओंने द्रोणाचार्य से निवारित होकर कौरवोंके सङ्ग किस प्रकारसे युद्ध किया ? (१)

सञ्जय बोले, महाराज! अपराह्न समयमें पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग जो कौरवोंका महाभयङ्कर रोएंको खडा करनेवाला तुमुल संग्राम हुआ था, वह मानो द्रोणाचार्यको लेकर जुएंका खेल होने लगा, अर्थात् द्रोणाचार्य पणरूपी हुए॥ पाञ्चाल योद्धालोग द्रोणाचार्य के वध करनेकी इच्छासे हर्षित होके सिंहनाद करते हुए अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। इसके बाद उन पाञ्चाल और कौरव लोगोंका देवासुर युद्धके समान अत्यन्त भयङ्कर महाघोर तुमुल युद्ध होने लगा।(२—४)

पाण्डवोंके सहित पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके रथके निकट उपस्थित होकर उनकी व्यूह बद्ध सेनाके भेद-करनेकी इच्छासे अपने अस्त्र शस्त्रोंको चलाने लगे ॥ रथी लोग रथपर चढके धीरे धीरे आगे बढ द्रोणाचार्यके रथके समीप पहुंच कर उनकी सेनाके शूरवीर योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे पीडित करने लगे ॥ केकय योद्धाओंके महारथ योद्धा बृहत्क्षत्रने इन्द्रके वज्रके समान तीक्ष्ण बाणों को चलाते हुए द्रोणाचार्य को

तं तु प्रत्युद्ययौ शीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशाः ।
विमुञ्चन्निशितान्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥
धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
त्वरितोऽभ्यद्रवद् द्रोणं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥ ९ ॥
तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ १० ॥
युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषुं समवस्थितम् ।
सहानीकं ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥
नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यगच्छत्समायान्तं विकर्णस्ते सुतः प्रभो ॥ १२ ॥
सहदेवं तथाऽऽयान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः ॥ १३ ॥
सात्यकिं तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत् ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन्वै मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥
द्रौपदेयान्नरव्याघ्रान्मुञ्चतः सायकोत्तमान् ।
संरब्धान्रथिनः श्रेष्ठान्सौमदत्तिरवारयत् ॥ १५ ॥

आक्रमण किया ॥ (५–७)

महायशस्वी क्षेमधूर्तिने शीघ्रताके सहित सैकडों तथा सहस्रों बाणोंको चलाते हुए बृहत्क्षत्रको आक्रमण किया था ॥ जैसे इन्द्र शम्बरासुरकी ओर दौडते हैं, उस ही प्रकारसे पराक्रमी चेदिराज धृष्टकेतु शीघ्रतासे द्रोणाचार्य की ओर दौडे ॥ उसको मुख फैलाये हुए कालके समान सम्मुख आते देख महाधनुर्धर वीरधन्वा शीघ्रताके सहित उनके सम्मुख उपस्थित हुए॥(८-१०)

तिसके अनन्तर पराक्रमी द्रोणाचार्य विजयकी अभिलाष करनेवाले युद्धभूमिमें स्थित महारथ युधिष्ठिरको उनकी सेनाके सहित निवारण करने लगे ॥ तुम्हारे पुत्र महा बली पराक्रमी विकर्ण युद्ध विद्या जानने वाले पराक्रमी नकुलको युद्धभूमिसे निवारण करने लगे ॥ शत्रु-नाशन दुर्मुख सहदेवको सम्मुख आते देखकर सहस्रों बाण चलाते हुए उनके निकट उपस्थित हुए ॥ व्याघ्रदत्त पुरुष-श्रेष्ठ सात्यकिको वारवार अपने अस्त्रोंसे पीडित करते हुए युद्धसे निवारण करने लगे ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ सोमदत्त पुत्र क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाण चलानेवाले द्रौपदी पुत्रोंको निवारण करने लगे।(११–१५)

भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः ।
प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यशृङ्गिर्महारथः ॥ १६ ॥
तयोः समभवद्युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे ।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप ॥ १७ ॥
ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत ॥ १८ ॥
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे ।
रोषितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना ॥ १९ ॥
भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत् ।
साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ २० ॥
ताञ्शरान्द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः ।
अवारयत धर्मात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ २१ ॥
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे ।
चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः ॥ २२ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास सर्वतः ॥ २३ ॥

महारथी ऋष्यशृङ्गके पुत्र अलम्बुष अत्यन्त क्रुद्ध भीमसेनको सम्मुख आते देखकर उन्हें युद्धभूमिसे निवारण करने लगा ॥ जैसे पहिले समयमें राम रावण का युद्ध हुआ था वैसे ही भीमसेन और अलम्बुषका युद्ध होने लगा ॥ श्रेष्ठ महारथ द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रुद्ध होकर महात्मा राजा युधिष्ठिरके धनुषको अपने बाण से काट दिया। भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिरने क्रुद्ध होके दूसरा धनुष ग्रहण करके द्रोणाचार्यके सम्पूर्ण मर्मस्थलोंमें प्रहार किया ॥ (१६-१८)

द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरके बाणोंके प्रहारसे क्रुद्ध होके पचीस बाणोंसे राजा युधिष्ठिरके दोनों स्तनोंके बीचमें प्रहार किया॥ सब धनुर्धारियोंके संमुखही फिर बीस बाणोंसे अश्व,सारथी और ध्वज सहित उनको विद्ध किया॥ तब महात्मा युधिष्ठिरने अपना हस्तलाघव दिखाकर द्रोणाचार्यके बाणोंको निवारण किया ॥ (१९-२१)

अनन्तर द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर राजा युधिष्ठिरका धनुष्य काट दिया और शीघ्रताके सहित अपने बाणोंकी वर्षासे उनको छिपा दिया ॥ सम्पूर्ण पुरुषोंने राजा युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके बाणोंके जालसे छिपे हुए देखकर समझा

अदृश्यं वीक्ष्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥
केचिच्चैनममन्यन्त तथैव विमुखीकृतम् ।
हतो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन महात्मना ॥ २५ ॥
स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्यक्त्वा तत्कार्मुकं छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे ॥ २६ ॥
आददेऽन्यद्धनुर्दिव्यं भास्वरं वेगवत्तरम् ।
ततस्तान्सायकांस्तत्र द्रोणमुक्तान्सहस्रशः ॥ २७ ॥
चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
छित्त्वा तु ताञ्शरान्राजन्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २८ ॥
शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि दारिणीम् ।
स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघण्टां भयावहाम् ॥ २९ ॥
समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद्बली ।
नादेन सर्वभूतानि त्रासयन्निव भारत ॥ ३० ॥
शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन संयुगे ।
स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाऽब्रुवन् ॥ ३१ ॥

कि महाराज युधिष्ठिर मारे गये॥ किसी किसीने समझा कि राजा युधिष्ठिर युद्ध भूमिसे भाग गये, किसी किसीने समझा कि यशस्वी द्विजसत्तम द्रोणाचार्यने राजा युधिष्ठिरको हरण किया॥ २२–२५

महाबलवान् राजा युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर अपना कटा हुआ धनुष्य छोडकर फिर एक दिव्य, प्रकाशमान, वेगयुक्त धनुष चढाके उनके बाणोंको काट काटके पृथ्वीमें गिरा दिया। वह युधिष्ठिरका पराक्रम उस समय अद्भुत रूपसे दीख पडा। राजा युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यके उन सम्पूर्ण बाणोंको अपने बाणोंसे काटकर पर्वतको भी तोडनेमें समर्थ एक महाघोर शक्तिको ग्रहण किया। सुवर्ण दण्डसे युक्त आठ घण्टियोंसे शोभित उस भयङ्कर शक्तिको द्रोणाचार्यकी ओर चलाकर राजा युधिष्ठिरने बलपूर्वक सिंहनाद किया; उनके सिंहनादके शब्दको सुनकर सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगये॥ (२६—३०)

धर्मराज युधिष्ठिर के हाथसे छूटी हुई उस भयङ्कर शक्ति को देखकर सम्पूर्ण प्राणी द्रोणाचार्यकी स्वस्ति निमित्त ईश्वरसे प्रार्थना करने लगे॥

सा राजभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा ।
प्रज्वालयन्ती गगनं दिशः सप्रदिशस्तथा ॥ ३२ ॥
द्रोणान्तिकमनुप्राप्ता दीप्तास्या पन्नगी यथा ।
तामापतन्तीं सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशाम्पते ॥ ३३ ॥
प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम् ॥ ३४ ॥
जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत्समुद्यतम् ॥ ३५ ॥
अशामयन्महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
विध्वा तं च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदाऽस्य महद्धनुः ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३७ ॥
गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष ।
तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
गदामेवाऽग्रहीत्क्रुद्धश्चिक्षेप च परन्तप ।
ते गदे सहसा मुक्ते समासाद्य परस्परम् ॥ ३९ ॥
सङ्घर्षात्पावकं मुक्त्वा समेयातां महीतले ।

राजा युधिरके हाथसे छूटी हुई केंचुली-से रहित सर्पके समान वह शक्ति सम्पूर्ण दिशा और आकाशमण्डलको प्रकाशित करती हुई सांपिनके समान द्रोणाचार्य की ओर जाने लगी ॥ (३१–३३)

हे राजेन्द्र ! अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले द्रोणाचार्यने उस शक्तिको अपनी ओर आते देखकर ब्रह्मास्त्र प्रकट किया । पराक्रमी द्रोणाचार्य ब्रह्मास्त्रसे उस शक्तिको भस्म करके यशस्वी युधिष्ठिरके रथके समीप उपस्थित हुए । महाराज युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रका ब्रह्मास्त्रसे ही निवारण किया । फिर राजा युधिष्ठिरने शीघ्रताके सहित पांच बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करके एक क्षुरप्र बाणसे उनका दृढ धनुष काट दिया ॥ (३३–३७)

क्षत्रियोंके नाश करनेवाले द्रोणाचार्य ने उस कटे हुए धनुषको त्यागके युधिष्ठिरके ऊपर एक गदा चलाया । द्रोणाचार्यके हाथसे छूटी हुई उस गदा को संमुख आती देख कर शत्रुनाशन युधिष्ठिरने भी एक गदा ग्रहण करके द्रोणाचार्यकी ओर चलाया। दोनों पुरुष

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ॥ ४० ॥
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयाञ्जघ्ने शरोत्तमैः।
चिच्छेदैकेन भल्लेन धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम् ॥ ४१ ॥
केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवं चाऽर्दयत्त्रिभिः।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः ॥ ४२ ॥
तस्थावूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ।
विरथं तं समालोक्य व्यायुधं च विशेषतः ॥ ४३ ॥
द्रोणो व्यमोहयच्छत्रून्सर्वसैन्यानि वा विभो।
मुञ्चंश्चेषुगणांस्तीक्ष्णाँल्लघुहस्तो दृढव्रतः ॥ ४४ ॥
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्वणः।
तमभिद्रुतमालोक्य द्रोणेनाऽमित्रघातिना ॥ ४५ ॥
हाहेति सहसा शब्दः पाण्डूनां समजायत।
हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष ॥ ४६ ॥
इत्यासीत्सुमहाञ्शब्दः पाण्डुसैन्यस्य भारत।
ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः।

सिंहोंके हाथसे छूटी हुई वे दोनों गदाएं आपसमें टकर खाके अग्निको उत्पन्न करती हुई पृथ्वीमें गिर पडीं॥ ३७-४०

तिसके अनन्तर द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रुद्ध होके चार बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको मारकर एक बाणसे फिर इन्द्र धनुषके समान राजा युधिष्ठिरके धनुष को काट दिया॥ अनन्तर एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा काट के तीन बाणोंसे द्रोणाचार्यने युधिष्ठिर के ऊपर प्रहार किया। राजा युधिष्ठिर अस्त्ररहित होकर घोडोंसे हीन रथसे कूदकर दोनों भुजा उठाके पृथ्वीपर खडे हुए। ४०-४३

हे राजन्! द्रोणाचार्य उन्हें रथरहित और अस्त्रहीन देखकर हस्तलाघवके सहित तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर उनकी सेनाके योद्धाओंको मोहित करने लगे। अनन्तर, जैसे पराक्रमी सिंह हरिणकी ओर दौड-ता है वैसे ही द्रोणाचार्य अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके वास्ते युधिष्ठिरकी ओर दौडे। (४३-४५)

शत्रुनाशन द्रोणाचार्यको युधिष्ठिरकी ओर दौडते देखकर पाण्डवोंकी सेनामें महा घोर हाहाकार शब्द होने लगा; और "द्रोणाचार्यने राजाको हरण किया, द्रोणाचार्यने राजाको हरण किया" ऐसे ही तुमुल शब्द पाण्डवोंकी सेनाके बीच चारों ओरसे सुनाई देने लगे।

अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४७ ॥ [४००६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरापयाने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सञ्जय उवाच— बृहत्क्षत्रमथाऽऽयान्तं कैकेयं दृढविक्रमम् ।
क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥ १ ॥
बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने त्वरितो राजन्द्रोणानीकबिभित्सया ॥ २ ॥
क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन ह ॥ ३ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥ ४ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे क्षेमधूर्तिं महारथम् ॥ ५ ॥
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
जहार नृपतेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ ६ ॥
तच्छिन्नं सहसा तस्य शिरः कुञ्चितमूर्धजम् ।
सकिरीटं महीं प्राप्य बभौ ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥ ७ ॥

तिसके अनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर शीघ्रताके सहित सहदेवके रथपर चढके वेगपूर्वक घोडोंको दौडा कर रणभूमिसे भाग गये ॥ (४५-४७)

द्रोणपर्वमें एकसौ छह अध्याय समाप्त । ४००६

द्रोणपर्वमें एकसौ सात अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र! केकयराज महापराक्रमी बृहत्क्षत्रको संमुख आते देख,पराक्रमी क्षेमधूर्त्तिने तीक्ष्ण बाणोंसे उनके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ बृहत् क्षत्रने शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यकी सेनाको भेद करनेकी इच्छासे नौवें बाणोंसे क्षेमधूर्त्तिके ऊपर प्रहार किया । क्षेमधूर्त्तिने क्रुद्ध होके एक तीक्ष्णधारवाले बाणसे बृहत्क्षत्रके धनुषको काट दिया, और रथियोंमें श्रेष्ठ केकयराजको एक बाणसे विद्ध किया ॥ (१-४)

अनन्तर बृहत्क्षत्रने हंसते हुए दूसरा धनुष ग्रहण करके महारथ क्षेमधूर्त्तिके रथके घोडे और सारथीका वध करके उन्हें रथ रहित कर दिया; और उसके अनन्तर उत्तम पानीसे बुझे हुए एक तीक्ष्ण भल्लसे सुन्दर कुण्डलोंसे शोभित उनके शिरको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ उनका घुंघुरवारे केश और किरीट शोभित शिर पृथ्वीपर गिरके

तं निहत्य रणे हृष्टो बृहत्क्षत्रो महारथः ।
सहसाऽभ्यपतत्सैन्यं तावकं पार्थकारणात् ॥ ८ ॥
धृष्टकेतुं तथाऽऽयान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी ।
वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत ॥ ९ ॥
तौ परस्परमासाद्य शरदंष्ट्रौ तरस्विनौ ।
शरैरनेकसाहस्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १० ॥
तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम् ।
महावने तीव्रमदौ वारणाविव यूथपौ ॥ ११ ॥
गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव रोषितौ ।
युयुधाते महावीर्यौ परस्परजिघांसया ॥ १२ ॥
तद्युद्धमासीत्तुमुलं प्रेक्षणीयं विशाम्पते ।
सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥ १३ ॥
वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत ॥ १४ ॥
तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः ।

ऐसा शोभित हुआ, जैसे आकाशसे गिरे हुए ज्योतिवाले पदार्थ दीख पडते हैं ॥ महाबलवान् पराक्रमी बृहत्क्षत्र क्षेमधूर्त्ति का वध करके प्रसन्न चित्तसे पाण्डवोंके प्रिय कार्यको करनेके वास्ते तुम्हारी सेनाकी ओर बढे ॥ (५—८)

हे भारत ! महाधनुर्द्धारी पराक्रमी वीरधन्वा द्रोणाचार्यकी ओर धृष्टकेतु को आये हुए देखकर उनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ वे दोनों अपने बल पराक्रमको प्रकाशित करते हुए आपसमें एक दूसरेके ऊपर सहस्रों बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ जैसे महाघोर वनके बीच क्रुद्ध हुए दो मतवारे हाथी आपसमें युद्ध करते हैं, वैसेही उन दोनों पुरुषसिंहोंका आपसमें संग्राम होने लगा ॥ (९-११)

वे दोनों ही एक दूसरेके वधकी अभिलाष करके मानो पर्वतकी कन्दरामें स्थित दो शार्दूलोंके समान अपने पराक्रमको प्रकाशित करने लगे ॥ महाराज! उन दोनों वीरोंके अद्भुत युद्धको आकाशसे सिद्ध, चारण आदि सम्पूर्ण प्राणी देखने लगे ॥ वीरधन्वाने क्रुद्ध होकर हंसते हुए एक बाणसे धृष्टकेतुके धनुषको काटके दो टुकडे करदिया ॥ (१२-१४)

महाराज ! चेदिराज धृष्टकेतुने कटे हुए धनुषको त्यागकर स्वर्णदण्डसे युक्त

शक्तिं जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ १५ ॥
तां तु शक्तिं महावीर्यो दोर्भ्यामायम्य भारत।
चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथं प्रति ॥ १६ ॥
तया तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम्।
निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥ १७ ॥
तस्मिन्विनिहते वीरे त्रैगर्तानां महारथे।
बलं तेऽभज्यत विभो पाण्डवेयैः समन्ततः ॥ १८ ॥
सहदेवे ततः षष्टिं सायकान्दुर्मुखोऽक्षिपत्।
ननाद च महानादं तर्जयन्पाण्डवं रणे ॥ १९ ॥
माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखं च शितैः शरैः।
भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रहसन्निव ॥ २० ॥
तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम्।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥ २१ ॥
दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्त्वा केतुं महाबलः।
जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह।
चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥२३॥

लोहमयी एक प्रचण्ड शक्ति ग्रहण किया। उस महापराक्रमी धृष्टकेतुने उस शक्तिको बलपूर्वक वीरधन्वाके रथपर चलाया। वीरधन्वा उस शक्तिकी चोटसे प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे। (१५ – १७)

त्रिगर्त्तदेशीय महारथ पराक्रमी वीरधन्वाके मरनेपर पाण्डवलोग तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको चारों ओरसे रणभूमिमें भगाने लगे ॥ हे भारत ! तुम्हारे पुत्र दुर्मुख सहदेवके ऊपर साठ बाणोंसे प्रहार करके बलपूर्वक सिंहनाद करने लगे ॥ महाबली पराक्रमी माद्रीपुत्र सहदेवने क्रुद्ध होकर रणभूमिके बीच दुर्मुखको दश बाणोंसे विद्ध किया ॥ १८-२०

महाबलवान् सहदेवको वेगशील देखकर दुर्मुखने नौ बाणोंसे फिर उनके शरीरमें प्रहार किया ॥ परन्तु सहदेवने एक बाणसे दुर्मुखके रथकी ध्वजाको काटके चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको मार डाला ॥ तिसके अनन्तर उत्तम पानीसे बुझे हुए एक तीक्ष्ण बाणसे कुण्डलशोभित उनके सारथीका शिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥

क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन कौरव्यस्य महद्धनुः ।
सहदेवो रणे छित्वा तं च विव्याध पञ्चभिः ॥ २४ ॥
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा ।
आरुरोह रथं राजन्निरमित्रस्य भारत ॥ २५ ॥
सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे ।
जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥ २६ ॥
स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः ।
त्रिगर्त्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम् ॥ २७ ॥
तं तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत ।
यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥ २८ ॥
हाहाकारो महानासीत्त्रिगर्त्तानां जनेश्वर ।
राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा निरमित्रं महारथम् ॥ २९ ॥
नकुलस्ते सुतं राजन्विकर्णं पृथुलोचनम् ।
मुहूर्त्ताज्जितवाँल्लोके तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३० ॥
सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे ॥ ३१ ॥

फिर एक क्षुरप्र बाणसे दुर्मुखके धनुषको काटकर पांच बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ (२१—२४)

अनन्तर दुर्मुख घोडोंसे रहित रथको त्यागके निरमित्रके रथपर जाचढे ॥ अनन्तर शत्रुनाशन सहदेवने क्रुद्ध होकर सेनाके बीच निरमित्रको तीक्ष्ण भल्लके प्रहारसे प्राणरहित कर दिया ॥ हे भारत! त्रिगर्त्तराजके पुत्र अपने सेनाके योद्धाओंको दुःखित करते हुए पृथ्वीमें गिर पडे ॥ जैसे दशरथपुत्र रामचन्द्र महाबली पराक्रमी खर राक्षसको मारकर युद्धभूमिमें शोभित हुए थे, उसही भांति महाबाहु सहदेव निरमित्रका वध करके संग्रामभूमिमें प्रकाशित होने लगे॥ त्रिगर्त्तराजके पुत्र महापराक्रमी, निरमित्रको मरते देखकर त्रिगर्त्तसेनाके बीच महाघोर हाहाकार शब्द उत्पन्न हुआ ॥ (२५–२९)

हे राजन् ! नकुलने तुम्हारे पुत्र बडे नेत्रवाले, विकर्णको मुहूर्त्त भरके बीच युद्धभूमिमें पराजित किया; वह नकुलका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ व्याघ्रदत्तने रणभूमिके बीच अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको घोडे, सारथी और रथकी ध्वजाके सहित

तान्निवार्य शराञ्शूरः शैनेयः कृतहस्तवत् ।
साश्वसूतध्वजं बाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥ ३२ ॥
कुमारे निहते तस्मिन्मागधस्य सुते प्रभो ।
मागधाः सर्वतो यत्ता युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३३ ॥
विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सहस्रशः ।
भिन्दिपालांस्तथा प्रासान्मुद्गरान्मुसलानपि ॥ ३४ ॥
अयोधयन्रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
तांस्तु सर्वान्स बलवान्सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ ३५ ॥
नाऽतिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभः ।
मागधान्द्रवतो दृष्ट्वा हतशेषान्समन्ततः ॥ ३६ ॥
बलं तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम् ।
नाशयित्वा रणे सैन्यं त्वदीयं माधवोत्तमः ॥ ३७ ॥
विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं व्यभ्राजत महायशाः ।
भज्यमानं बलं राजन्सात्वतेन महात्मना ॥ ३८ ॥
नाऽभ्यवर्त्तत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना ।

छिपा दिया ॥ शिनिपुत्र बलवान् सात्यकिने हस्तलाघवके सहित उनके सम्पूर्ण बाणोंको निवारण किया और अपने तीक्ष्ण बाणोंसे घोडे, सारथी और रथकी ध्वजाको काटकर व्याघ्रदत्तका भी वध करके उन्हें रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ (३०-३२)

मगध राजके पुत्र व्याघ्रदत्तको मरते देख मागधीसेनाके शूरवीरोंने क्रुद्ध होकर सात्यकिको आक्रमण किया ॥ वे सम्पूर्ण शूरवीर योद्धालोग सहस्रों बाण, तोमर, भिन्दिपाल, प्रास, मुद्गर और मुसल चलाते हुए युद्धविद्याके जाननेवाले सात्यकिके सङ्ग युद्ध करने लगे । युद्धमें कठिन कर्मोंके करनेवाले महाबाहु बलवान् सात्यकिने हंसते हुए उन सम्पूर्ण योद्धाओंको लीलाकी भांति युद्धभूमिमें पराजित किया । (३३-३६)

सात्यकिके बाणोंसे पीडित हुई तुम्हारी सेना मरनेसे बचे हुए मागधी सेनाके शूरवीरोंको इधर उधर भागते देख युद्धभूमिसे भागने लगी । यदुवंशियोंकी कीर्त्तिको बढानेवाले यशस्वी सात्यकि तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको युद्धभूमिसे पराजित करके अपने दृढधनुषको फेरते हुए उस संग्रामभूमिमें अत्यन्त शोभित होने लगे । महाबाहु महात्मा सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः सहसोद्वृत्य चक्षुषी ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाऽभिदुद्रुवे ॥ ३९ ॥ [४०४५]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

सञ्जय उवाच— द्रौपदेयान्महेष्वासान्सौमदत्तिर्महायशाः ।
एकैकं पञ्चभिर्विध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ १ ॥
ते पीडिता भृशं तेन रौद्रेण सहसा विभो ।
प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म किञ्चन ॥ २ ॥
नाकुलिश्च शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम् ।
द्वाभ्यां विध्वाऽनदद्धृष्टः शराभ्यां शत्रुकर्शनः ॥ ३ ॥
तथेतरे रणे यत्तास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ॥ ४ ॥
स तान्प्रति महाराज चिक्षेप पञ्च सायकान् ।
एकैकं हृदि चाऽऽजघ्ने एकैकेन महायशाः ॥ ५ ॥
ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महात्मनः ।
परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम् ॥ ६ ॥
आर्जुनिस्तु हयांस्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।

भागती हुई वह सम्पूर्ण सेना युद्ध करनेके वास्ते फिर उनके संमुख नहीं हुई ॥ तिसके अनन्तर महापराक्रमी द्रोणाचार्य अत्यन्त क्रुद्ध होके सात्यकिके संमुख स्वयं उपस्थित हुए ॥ (३६-३९)

द्रोणपर्वमें एकसौ सात अध्याय समाप्त ।४०४५

द्रोणपर्वमें एकसौ आठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे भारत ! महायशस्वी सोमदत्तके पुत्रने महा धनुर्द्धारी द्रौपदी पुत्रोंको पांच और फिर सात वाणोंसे विद्ध किया ॥ वे पांचों सोमदत्तके वाणोंसे अत्यन्त पीडित होके रणभूमिमें मोहित होगये । और किसी भी युद्धका कार्य नहीं जानसके ॥ (१-२)

अनन्तर शत्रुनाशन नकुलपुत्र शतानीकने पुरुषश्रेष्ठ सौमदत्तिको दो वाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया । और सुतसोम आदि महारथियोंने सावधान हो के तीन तीन वाणोंसे सौमदत्तिको शीघ्रताके सहित विद्ध किया ॥ (३-४)

महाराज ! महा यशस्वी सौमदत्तिने उन पांचों महारथियोंके हृदयमें एक एक वाणसे प्रहार किया ॥ तिसके अनन्तर वे पांचों भाई महात्मा सौमदत्तिको वाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ (५-६)

अर्जुनपुत्रने अत्यन्त क्रुद्ध होके अपने

प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ ७ ॥
भैमसेनिर्धनुश्छित्त्वा सौमदत्तेर्महात्मनः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ ८ ॥
यौधिष्ठिरिर्ध्वजं तस्य छित्त्वा भूमावपातयत् ।
नाकुलिश्चाऽथ यन्तारं रथनीडादपाहरत् ॥ ९ ॥
साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम् ।
क्षुरप्रेण शिरो राजन्निचकर्त महात्मनः ॥ १० ॥
तच्छिरो न्यपतद्भूमौ तपनीयविभूषितम् ।
भ्राजयत्तं रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥ ११ ॥
सौमदत्तेः शिरो दृष्ट्वा निहतं तन्महात्मनः ।
वित्रस्तास्तावका राजन्प्रदुद्रुवुरनेकधा ॥ १२ ॥
अलम्बुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् ।
योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥ १३ ॥
सम्प्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा तावुभौ नरराक्षसौ ।
विस्मयः सर्वभूतानां प्रहर्षः समजायत ॥ १४ ॥
आर्ष्यश्रृङ्गिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन्राजन्राक्षसेन्द्रममर्षणम् ॥ १५ ॥

तीक्ष्ण बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको मार डाला ॥ भीमसेनके पुत्रने उनका धनुष काट दिया; और सिंहनाद करते हुए अपने बाणोंसे उन्हें अत्यन्त विद्ध करने लगा ॥ युधिष्ठिरके पुत्रने रथकी ध्वजाको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया। नकुलपुत्रने सारथीका वध किया॥ सहदेवपुत्रने सोमदत्तपुत्रको भाइयोंके द्वारा विमुख किये हुए जान-कर एक क्षुरप्र बाणसे सोमदत्तपुत्रके शिरको काटकर पृथ्वीमें गिराया॥ सुवर्णभूषित सोमदत्तपुत्रका कटा हुआ शिर पृथ्वीमें गिरकर बाल सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा। (७-११)

महात्मा सोमदत्त पुत्रको मरता देख तुम्हारी सेनाके योद्धालोग चारों ओर भागने लगे। जैसे रावणपुत्र मेघनादने लक्ष्मणके संग युद्ध किया था, वैसे ही अलम्बुष राक्षस क्रुद्ध होके भीमसेनके संग युद्ध करने लगा ॥ अलम्बुष और भीमसेनको आपसमें युद्ध करते हुए देखकर सम्पूर्ण प्राणियोंको हर्ष और विस्मय उत्पन्न हुआ ॥ (१२-१४)

भीमसेनने हंसके राक्षसश्रेष्ठ क्रोधी

तद्रक्षः समरे विद्धं कृत्वा नादं भयावहम् ।
अभ्यद्रवत्ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥ १६ ॥
स भीमं पञ्चभिर्विध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
भैमान्परिजघानाऽऽशु रथांस्त्रिशतमाहवे ॥ १७ ॥
पुनश्चतुःशतान्हत्वा भीमं विव्याध पत्रिणा ।
सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महाबलः ॥ १८ ॥
निपपात रथोपस्थे मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्छितः ॥ १९ ॥
विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम् ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः ॥ २० ॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः ।
शुशुभे सर्वतो राजन्प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ २१ ॥
स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
स्मरन्भ्रातृवधं चैव पाण्डवेन महात्मना ॥ २२ ॥
घोरं रूपमथो कृत्वा भीमसेनमभाषत ।
तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ २३ ॥

अलम्बुपको अपने नौ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ वह राक्षस युद्धभूमिमें भीमसेनके बाणोंसे विद्ध होकर महाभयङ्कर शब्द करता हुआ भीमसेन और उनके अनुयायी योद्धाओंकी ओर दौड़ा ॥ अलम्बुपने पांच बाणोंसे उनको विद्ध करके अपने अस्त्रोंसे उनके तीन सौ अनुयायी योद्धाओंका नाश किया; और फिर उनकी सेनाके चार सौ योद्धाओंका वध करके एक बाणसे भीमसेनको विद्ध किया ॥ (१५—१८)

महाबलवान् भीमसेन उस राक्षसके बाणसे अत्यन्त विद्ध और मूर्च्छित होके रथका दण्ड पकड़के बैठ गये । अनन्तर पवनपुत्र भीमसेन सावधान होकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और एक प्रचण्ड धनुष ग्रहण कर तीक्ष्ण बाणोंसे अलम्बुप को पीडित करने लगे ॥ (१८-२०)

कज्जलके नील वर्ण ढेरके समान श्याम मूर्त्तिवाला अलम्बुप भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए अनेक बाणोंसे विद्ध होकर फूले पलास वृक्षके समान शोभित हुआ और महात्मा भीमके हाथसे अपने भाई वकका वध स्मरणकर भयङ्कर रूप धारण करके यह वचन बोला, हे नीचबुद्धिवाला भीम ! मेरे भाई राक्षसश्रेष्ठ बलवान्

बको नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली।
परोक्षं मम तद्वृत्तं यद्भ्राता मे हतस्त्वया ॥ २४ ॥
एवमुक्त्वा ततो भीममन्तर्धानं गतस्तदा।
महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत् ॥ २५ ॥
भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा।
आकाशं पूरयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥
स वध्यमानो भीमेन निमेषाद्रथमास्थितः।
जगाम धरणीं चैव क्षुद्रः खं सहसाऽगमत् ॥ २७ ॥
उच्चावचानि रूपाणि चकार सुबहूनि च।
अणुर्बृहत्पुनः स्थूलो नादान्मुञ्चन्निवाऽम्बुदः ॥ २८ ॥
उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समन्ततः।
निपेतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः ॥ २९ ॥
शक्तयः कणपाः प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः।
शतघ्न्यः परिघाश्चैव भिन्दिपालाः परश्वधाः॥ ३० ॥
शिलाः खड्गा गुडाश्चैव ऋष्टीर्वज्राणि चैव ह।
सा राक्षसविसृष्टा तु शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ॥ ३१ ॥

बकका जो तूने वध किया था, वह मेरे सामने तूने अपना पराक्रम नहीं दिखलाया था, इस समय खडा रह, युद्धभूमिमें मेरा बल और पराक्रम देख, ऐसा कहकर उस ही समय अन्तर्द्धान हुआ और आकाशमें जाकर भीमसेनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ (२१—२५)

परन्तु उस राक्षसके अन्तर्द्धान होनेपर भीमसेनने अपने चोखे बाणोंसे आकाशमण्डलको परिपूरित कर दिया॥ अनन्तर वह राक्षस आकाशमें पीडित होके क्षण भरके बीच रथपर चढे हुए पृथ्वीपर आके उपस्थित हुआ। और उस ही समय अन्तर्द्धान होके आकाशमें चला गया॥ अनन्तर नाना प्रकारके छोटे बडे और मोटे अनेक भांतिके रूप धारणकर बादलके समान गर्जता हुआ चारों ओरसे भीमसेनको कडवी बातें सुनाने लगा। उस समय आकाशसे जलधाराकी भांति बाणोंकी वर्षा होने लगी॥ (२६—२९)

शक्ति, त्रिशूल, प्रास, पट्टिस, तोमर, मुद्गर, परशु, शतघ्नी, परिघ, भिन्दिपाल, पत्थर, तरवार और वज्र इन सम्पूर्ण अस्त्रों को वर्षाता हुआ वह राक्षस भीमसेनकी सेनाके योद्धाओंका वध

जघान पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान्रणमूर्धनि ।
तेन पाण्डवसैन्यानां सूदिता युधि वारणाः ॥ ३२ ॥
हयाश्च बहवो राजन्पत्तयश्च तथा पुनः ।
रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य नुन्नाः स्म सायकैः ॥ ३३ ॥
शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
छत्रहंसां कर्दमिनीं बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥ ३४ ॥
नदीं प्रावर्त्तयामास रक्षोगणसमाकुलाम् ।
वहन्तीं बहुधा राजंश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ॥ ३५ ॥
तं तथा समरे राजन्विचरन्तमभीतवत् ।
पाण्डवा भृशसंविग्नाः प्रापश्यंस्तस्य विक्रमम् ॥ ३६ ॥
तावकानां तु सैन्यानां प्रहर्षः समजायत ।
वादित्रनिनदश्चोग्रः सुमहान्रोमहर्षणः ॥ ३७ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः ।
नाऽमृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥ ३८ ॥
ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः ।
सन्दधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः ॥ ३९ ॥

करने लगा । पाण्डवोंकी सेनाके बहुतेरे हाथी घोडे रथी और पैदल चलनेवाले वीर योद्धा उस राक्षसके अस्त्रोंसे कटकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ (३०–३३)

उससे रथरूपी नौका, मरे हुए हाथी घडियालरूपी, छत्र हंसकी श्रेणी, वीरोंकी भुजारूपी सर्प, रुधिररूपी जल और मांसरूपी कीचडसे युक्त रणभूमिके बीच एक भयङ्करी नदी उत्पन्न हुई ॥ उसमें राक्षस लोग मांस भक्षण करते हुए रुधिर पीने लगे, और चेदि, पाञ्चाल तथा सृञ्जय योद्धा लोग उस नदीके प्रवाहमें बहने लगे ॥ (३४–३५)

पाण्डव लोग उस राक्षसको इस भांति पराक्रम प्रकाशित करते हुए निर्भयचित्तसे रणभूमिके बीच घूमते देख अत्यन्तही व्याकुल हुए ॥ तुम्हारी ओरके योद्धाओंको महा हर्ष उत्पन्न हुआ, वे सम्पूर्ण योद्धा लोग सिंहनाद करते हुए जुझाऊ बाजे बजाने लगे ॥ (३६–३७)

भीमसेनने तुम्हारी सेनाके योद्धाओंके सिंहनाद और बाजोंके भयङ्कर शब्दको सुनकर मतवारे हाथीकी भांति उस शब्दको सहन नहीं किया ॥ पवनपुत्र भीमसेन क्रोधसे लालनेत्र करके अग्निके समान प्रज्वलित होगये । और

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन्समन्ततः।
तैः शरैस्तव सैन्यस्य विद्रवः सुमहानभूत् ॥ ४० ॥
तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगे।
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमर्दयत् ॥ ४१ ॥
स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः।
सन्त्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥
तस्मिंस्तु निर्जिते राजन्राक्षसेन्द्रे महात्मना।
अनादयन्सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतोदिशम् ॥ ४३ ॥
अपूजयन्मारुतिं च संहृष्टास्ते महाबलम्।
प्रह्लादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः ॥ ४४ ॥[४०८९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषपराजये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

सञ्जय उवाच— अलम्बुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत्।
हैडिम्बिः प्रययौ तूर्णं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १ ॥
तयोः प्रतिभयं युद्धमासीद्राक्षससिंहयोः।
कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बरयोरिव ॥ २ ॥

साक्षात् त्वष्टादेवकी भांति त्वाष्ट्र अस्त्र प्रकट किया॥ उससे चारों ओर सहस्रों बाण उत्पन्न हुए। उन बाणोंकी वर्षासे तुम्हारी सेनाके पुरुष शीघ्रताके सहित रणभूमिसे भागने लगे॥ और वह अस्त्र राक्षसी मायाको नाश करके उस राक्षसको पीडित करने लगा॥ (३८–४१)

अनन्तर वह नाना भांति से पीडित होके भीमसेनको छोडकर द्रोणाचार्यकी सेनामें चला गया॥ इस प्रकारसे जब वह अलम्बुष राक्षस महात्मा भीमसेनके संमुखसे पराजित हुआ, तब पाण्डवोंने अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित कर दिया॥ प्रह्लादके पराजित करनेपर मरुत्गणोंने जैसे इन्द्रकी प्रशंसा करी थी, वैसे ही पाण्डव लोग प्रसन्न होके भीमसेनकी प्रशंसा करने लगे॥ (४२–४४) [४०८९]

द्रोणपर्वमें एकसौ आठ अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ नौ अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! अलम्बुषको रणभूमिमें निर्भयचित्तसे घूमते हुए देखकर हिडम्बापुत्र घटोत्कच शीघ्र ही उसके समीप जाके उसे तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगा॥ जैसे पहिले समयमें इन्द्र और शंबरासुरका संग्राम हुआ था, वैसे ही वे दोनों राक्षस नाना भांति माया उत्पन्न करके भयङ्कर युद्ध करने

अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत् ।
तयोर्युद्धं समभवद्रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ॥ ३ ॥
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोः प्रभो ।
घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनान्तरे ॥ ४ ॥
अलम्बुषमथो विध्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ।
तथैवाऽलम्बुषो राजन्हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम् ॥ ५ ॥
विध्वा विध्वाऽनदद्धृष्टः पूरयन्खं समन्ततः ।
तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबली ॥ ६ ॥
निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम् ।
मायाशतसृजौ नित्यं मोहयन्तौ परस्परम् ॥ ७ ॥
मायायुद्धेषु कुशलौ मायायुद्धमयुध्यताम् ।
यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृपः ॥ ८ ॥
तां तामलम्बुषो राजन्माययैव निजघ्निवान् ।
तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्धविशारदम् ॥ ९ ॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाऽक्रुध्यन्त पाण्डवाः ।
त एनं भृशसंविग्नाः सर्वतः प्रवरा रथैः ॥ १० ॥

लगे ॥ तब अलंबुष क्रोधसे व्याप्त होकर घटोत्कचको विद्ध करने लगे। उस समयमें उन दोनों राक्षसोंका युद्ध इस प्रकारसे होने लगा, जैसे पहिले राम रावणका संग्राम हुआ था। (१-४)

अनन्तर अत्यन्त क्रुद्ध होकर घटोत्कच भी अलम्बुषके हृदयमें बीस बाणोंसे प्रहार करके बार बार सिंहनाद करने लगा। अनन्तर अलम्बुषने युद्ध-दुर्मद घटोत्कचको बार बार अपने बाणोंसे विद्ध करके हर्षित होकर चारों ओर आकाशको अपने भयङ्कर शब्दसे परिपूरित करदिया। महाबली पराक्रमी वे दोनों राक्षस माया उत्पन्न करते हुए समान रूपसे युद्ध करने लगे। दोनों ही माया युद्धमें निपुण और बलसे मतवारे थे, इससे दोनों ही सैकडों प्रकारकी माया उत्पन्न करके एक दूसरेको मोहित करते हुए मायायुद्ध करने लगे। घटोत्कच जितनी माया उत्पन्न करता था, अलम्बुष मायासे ही उसकी मायाको नष्ट कर देता था। (४-९)

मायायुद्ध जाननेवाले क्रोधी अलम्बुषको इस प्रकार युद्ध करते देख महारथ पाण्डवोंने अत्यन्त क्रुद्ध होके चारों ओरसे अपने रथों पर चढके उसे घेर

अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप ।
त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ॥ ११ ॥
सर्वतो व्यकिरन्बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।
स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्याऽस्त्रमायया ॥ १२ ॥
तस्माद्रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः ।
स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ १३ ॥
मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिं च पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरं त्रिभिर्विध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ १४ ॥
नकुलं च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्विध्वा घोरं नादं ननाद ह ॥ १५ ॥
तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥
नकुलस्तु चतुःषष्ट्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः ।
हैडिम्बो राक्षसं विध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः ॥ १७ ॥
पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः ।
तस्य नादेन महता कम्पितेयं वसुन्धरा ॥ १८ ॥
सपर्वतवना राजन्सपादपजलाशया ।

लिया और जैसे मशाल जलाके चारों ओरसे हाथीको पीडित करते हैं वैसेही वे सब कोई चारों ओरसे उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते हुए उसे पीडित करने लगे। जैसे जलते हुए वनसे हाथी मुक्त होता है, वैसे ही वह राक्षस उन सम्पूर्ण महारथोंके अस्त्रोंको अपनी मायासे नष्ट करके उन लोगोंके रथोंके बीचसे निकल कर पृथक् हुआ। (९-१२)

अनन्तर उसने इन्द्रके वज्र समान शब्द करके अपना भयंकर धनुष चढा कर भीमसेनको पचीस, युधिष्ठिरको तीन, सहदेवको सात, घटोत्कचको पांच, नकुलको तिहत्तर और द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको पांच पांच बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया। (१३-१५)

अनन्तर भीमसेनने नौ सहदेवने सात, युधिष्ठिरने एक सौ, नकुलने चौसठ और द्रौपदीके पुत्रोंने तीन तीन बाणोंसे उस राक्षसको विद्ध किया। महाबलवान् घटोत्कचने उसे पचास बाणोंसे विद्ध किया, फिर सत्तर बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद करने लगा॥ महाराज ! घटोत्कचके उस शब्दसे वन, पर्वत

सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वतस्तैर्महारथैः ॥ १९ ॥
प्रतिविव्याध तान्सर्वान्पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः ॥ २० ॥
हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः ।
सोऽतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ २१ ॥
व्यसृजत्सायकांस्तूर्णं रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
ते शरा नतपर्वाणो विविशू राक्षसं तदा ॥ २२ ॥
रुषिताः पन्नगा यद्वद्गिरिशृङ्गं महाबलाः ।
ततस्ते पाण्डवा राजन्समन्तान्निशिताञ्शरान्॥ २३ ॥
प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः ।
स विध्यमानः समरे पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ २४ ॥
मर्त्यधर्ममनुप्राप्तः कर्तव्यं नाऽन्वपद्यत ।
ततः समरशौण्डो वै भैमसेनिर्महाबलः ॥ २५ ॥
समीक्ष्य तदवस्थं तं वधायाऽस्य मनो दधे ।

वृक्ष और समुद्रके सहित सम्पूर्ण पृथ्वी कांपने लगी। (१५—१९)

महाधनुर्द्धर अलम्बुषने उन सम्पूर्ण महारथियोंके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर फिर उन लोगोंको पांच पांच बाणोंसे विद्ध किया। परन्तु घटोत्कच राक्षसने उसके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होके उस क्रोधी राक्षसको सात बाणोंसे फिर विद्ध किया॥ अनन्तर राक्षसेन्द्र महाबलवान् अलम्बुष पराक्रमी घटोत्कचके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर स्वर्णपङ्खवाले शिलापर घिसे हुए अनेक तीक्ष्णबाणोंको चलाने लगा। (१९–२२)

जैसे महा बलवान् सर्प क्रुद्ध होकर कठिन पर्वतमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे समस्त बाण घटोत्कचके शरीरमें घुस गये। तिसके अनन्तर पाण्डव लोग व्याकुल होकर चारों ओरसे अपने बाणोंको उनकी ओर चलाने लगे, और घटोत्कच भी उसके ऊपर तीक्ष्ण बाण चलाने लगा। जब जयकी अभिलाष करनेवाले पाण्डव लोग; उसके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा कर रहे, तब वह मानो मृत्युके समीप पहुंच कर इस समय क्या करूं! ऐसाही विचार करता हुआ किसी कार्यका निश्चय नहीं कर सका॥ (२२—२५)

तिसके अनन्तर महाबली पराक्रमी भीमसेनपुत्र, क्रोधी घटोत्कच उसे इस प्रकार आपद्ग्रस्त देख कर उसके वध

वेगं चक्रे महान्तं च राक्षसेन्द्ररथं प्रति ॥ २६ ॥
दग्धाद्रिकूटश्रृङ्गाभं भिन्नाञ्जनचयोपमम्।
रथाद्रथमभिद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिराक्षिपत् ॥ २७ ॥
उद्ववर्ह रथाच्चाऽपि पन्नगं गरुडो यथा।
समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविद्ध्य च पुनः पुनः॥ २८॥
निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णकुम्भमिवाऽश्मनि।
बललाघवसम्पन्नः सम्पन्नो विक्रमेण च ॥ २९ ॥
भैमसेनी रणे क्रुद्धः सर्वसैन्यान्यभीषयत्।
स विस्फारितसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिर्विभीषणः ॥ ३० ॥
घटोत्कचेन वीरेण हतः शालकटङ्कटः।
ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन्निशाचरे ॥ ३१ ॥
चुक्रुशुः सिंहनादांश्च वासांस्यादुधुवुश्च ह।
तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं महाबलम् ॥ ३२ ॥
अलम्बुषं तथा शूरा विशीर्णमिव पर्वतम्।
हाहाकारमकार्षुश्च सैन्यानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥
जनाश्च तद्ददृशिरे रक्षः कौतूहलान्विताः।

करनेकी इच्छासे अपने रथसे कूद पडा और त्रिकूटगिरिके जले हुए शिखरके समान रूपवाले अलंबुषके रथकी ओर अत्यन्त वेगसे दौडके उसे आक्रमण किया॥ (२५—२७)

अनन्तर जैसे गरुड सर्पको ग्रहण करता है; वैसे ही घटोत्कचने अलम्बुषको रथसे निकलकर ऊपरकी ओर फेंक दिया और फिर अपने दोनों हाथोंसे पकड बार बार घुमा कर इस प्रकार पृथ्वीपर फेंक कर उसको प्राण रहित कर दिया जैसे जलसे भरे हुए घडेको पत्थरके ऊपर पटकके चूर चूर कर देते हैं। महावीर घटोत्कचके हाथसे मरकर कंटक युक्त शाल वृक्षके समान दीखनेवाले अलम्बुषके शरीरकी सम्पूर्ण हड्डियां छितरा गई। उस समय उसका स्वरूप अत्यन्त भयङ्कर दिखाई देने लगा। क्रोधी घटोत्कचके बल पराक्रम और फुर्तीको देखकर सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग भय भीत हो गये। (२७-३१)

उस राक्षसके मरनेपर पाण्डवलोग आनन्दित होके सिंहनाद करने लगे। और आनंद से वस्त्रोंको फहराने लगे। तुम्हारी ओर के शूरवीर योद्धालोग टूटे हुए पर्वतके समान अलम्बुषको मरे

यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ॥ ३४ ॥
घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो बलवतां वरम् ।
मुमोच बलवन्नादं बलं हत्वेव वासवः ॥ ३५ ॥
स पूज्यमानः पितृभिः सबान्धवैर्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते ।
रिपुं निहत्याऽभिननन्द वै तदा ह्यलम्बुषं पक्वमलम्बुषं यथा ॥३६॥
ततो निनादः सुमहान्समुत्थितः सशङ्खनानाविधबाणघोषवान् ।
निशम्य तं प्रत्यनदंस्तु पाण्डवास्ततो ध्वनिर्भुवनमथाऽस्पृशद्भृशम् ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते०द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥ [४१२६]

धृतराष्ट्र उवाच— भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानो न्यवारयत् ।
सञ्जयाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच— शृणु राजन्महाप्राज्ञ संग्रामं लोमहर्षणम् ।
द्रोणस्य पाण्डवैः सार्धं युयुधानपुरोगमैः ॥ २ ॥

देखकर हाहाकार शब्द करने लगे॥ उस समय सम्पूर्ण प्राणी उस राक्षसको कौतुककी भांति पृथ्वीपर गिरे हुए मंगल ग्रह के समान प्रकाशमान देखने लगे ॥ जैसे इन्द्रने बलासुरका वध करके सिंहनाद किया था; उस ही प्रकारसे महाबलवान् राक्षसराज घटोत्कचने अलम्बुषका वध करके बलपूर्वक सिंहनाद किया ॥ (३१–३५)

घटोत्कचके पिता पितृव्य और दूसरे बन्धु बान्धव लोग उसे कठिन कर्म करते देख आदरके सहित उसकी प्रशंसा करने लगे। घटोत्कच भी उस समय पके हुए फल तोडनेके समान अलम्बुषका वध करके अत्यन्त ही आनन्दित हुआ॥ तिसके अनन्तर पाण्डवोंकी सेनामें शङ्खके शब्द और झुझाऊ बाजों के सहित नाना भांतिके शब्द सुनाई देने लगे। उसे सुनकर कौरव लोगभी उसके विरुद्ध नाना भांतिके बाजोंके सहित महाघोर शब्द करने लगे। उससे अत्यन्त भयङ्कर शब्द उत्पन्न होकर सम्पूर्ण पृथ्वीमें परिपूरित हो गया॥ (३६-३७)

द्रोणपर्वमें एकसौ नौ अध्याय समाप्त। [४१२६]

द्रोणपर्वमें एकसौ दस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! सात्यकिने द्रोणाचार्यको किस भांति निवारण किया उसे सुनके आश्चर्य बोध होता है,इससे इस वृत्तान्तको तुम विस्तार पूर्वक मेरे समीप वर्णन करो॥ (१)

सञ्जय बोले, सात्यकि और उसके अनुयायी पाण्डवोंके सहित द्रोणाचार्यका जो रोएंको खडा करनेवाला तुमुल युद्ध हुआ था वह मैं वर्णन करता हूं; तुम

वध्यमानं बलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष ।
अभ्यद्रवत्स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ३ ॥
तमापतन्तं सहसा भारद्वाजं महारथम् ।
सात्यकिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४ ॥
द्रोणोऽपि युधि विक्रान्तो युयुधानं समाहितः ।
अविध्यत्पञ्चभिस्तूर्णं हेमपुङ्खैः शरैः शितैः ॥ ५ ॥
ते वर्म भित्त्वा सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः ।
अभ्ययुर्धरणीं राजञ्श्वसन्त इव पन्नगाः ॥ ६ ॥
दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
द्रोणं पञ्चाशताऽविध्यन्नाराचैरग्निसन्निभैः ॥ ७ ॥
भारद्वाजो रणे विद्धो युयुधानेन सत्वरम् ।
सात्यकिं बहुभिर्बाणैर्यतमानमविध्यत ॥ ८ ॥
ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः ।
सात्वतं पीडयामास शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ९ ॥
स वध्यमानः समरे भारद्वाजेन सात्यकिः ।
नाऽन्वपश्यत कर्तव्यं किञ्चिदेव विशाम्पते ॥ १० ॥

एकाग्रचित्त होकर सुनो । सत्यपराक्रमी सात्यकि जब तुम्हारी सेनाके पुरुषोंका वध कर रहा था तब द्रोणाचार्य स्वयं उसकी ओर दौडे ॥ सात्यकिने महारथ भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यको सहसा अपनी ओर आते देख उनके ऊपर पचीस क्षुद्रक बाण चलाया ॥ (२–४)

पराक्रमी द्रोणाचार्यने भी सावधान चित्त और शीघ्रताके सहित हेमपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण पांच बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया ॥ शत्रुमांस भक्षण करनेवाले वे बाण सात्यकिके वर्मको भेद कर क्रुद्ध सर्पोंके समान पृथ्वीमें घुस गये । महाबाहु सात्यकि उन बाणोंसे विद्ध होकर मानो अंकुशसे विद्ध हुए गजराजके समान क्रुद्ध होकर अग्नि तुल्य पचास बाणों से द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ (५–७)

महाबलवान् महाधनुर्द्धारी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य यत्नवान् सात्यकिके बाणोंसे विद्ध होकर क्रुद्ध हुए, और शीघ्रताके सहित अनेक बाणोंसे उसे विद्ध करके फिर एक नतपर्व बाणसे सात्यकि को पीडित किया ॥ (८–९)

हे राजेन्द्र ! सात्यकि उस समय द्रोणाचार्यके बाणोंसे विद्ध होकर क्या कार्य करना उचित है, ऐसी ही चिन्ता

विषण्णवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्नृप।
भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विसृजन्तं शिताञ्शरान् ॥ ११ ॥
तं तु सम्प्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च विशाम्पते।
प्रहृष्टमनसो भूत्वा सिंहवन्ननदन्मुहुः ॥ १२ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं पीड्यमानं च माधवम्।
युधिष्ठिरोऽब्रवीद्राजा सर्वसैन्यानि भारत ॥ १३ ॥
एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः।
ग्रस्यते युधि वीरेण भानुमानिव राहुणा ॥ १४ ॥
अभिद्रवत गच्छध्वं सात्यकिर्यत्र युध्यते।
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यमिदमाह जनाधिपः ॥ १५ ॥
अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किमु तिष्ठसि पार्षत।
न पश्यसि भयं द्रोणाद्घोरं नः समुपस्थितम् ॥ १६ ॥
असौ द्रोणो महेष्वासो युयुधानेन संयुगे।
क्रीडते सूत्रबद्धेन पक्षिणा बालको यथा ॥ १७ ॥
तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेनपुरोगमाः।

करते हुए कुछ भी निश्चय नहीं कर सके, बल्कि द्रोणाचार्यको तीक्ष्ण बाण चलाते देखकर व्याकुल हो गये। तुम्हारे पुत्र और कुरुसेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग सात्यकिको इस प्रकार विकल देखकर आनन्दित हो बार बार सिंहनाद करने लगे। (१०—१२)

राजा युधिष्ठिर उन योद्धाओंके भयङ्कर सिंहनाद और सात्यकिको द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित देखकर अपनी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंसे बोले॥ जैसे राहु सूर्यको ग्रास करता है, वैसे ही पराक्रमी द्रोणाचार्य यदुवंशियोंमें मुख्य बलवान् सात्यकिका ग्रास कर रहे हैं; इससे जहां पर सात्यकि युद्ध कर रहे हैं; उस ही स्थानपर तुम लोग गमन करो; जल्दी दौडो। (१३–१५)

तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नसे बोले, हे पृषतनन्दन! तुम किस प्रकारसे निश्चिन्त हो रहे हो? क्या तुम नहीं देखते हो, द्रोणाचार्यसे हम लोगोंको महाभय उपस्थित हुआ है। इससे शीघ्र ही द्रोणाचार्यके निकट गमन करो॥ जैसे बालक सूत्र से बद्ध किये पक्षीसे खेल करते हैं, वैसेही महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें सात्यकिको अपने बाणोंसे पीडित करते हुए क्रीडा कर रहे हैं॥ भीमसेन आदि

त्वयैव सहिताः सर्वे युयुधानरथं प्रति ॥ १८ ॥
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि त्वामहं सहसैनिकः ।
सात्यकिं मोक्षयस्वाऽद्य यमदंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ १९ ॥
एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन भारत ।
अभ्यद्रवद्रणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥ २० ॥
तत्राऽऽरावो महानासीद् द्रोणमेकं युयुत्सताम् ।
पाण्डवानां च भद्रं ते सृञ्जयानां च सर्वशः ॥ २१ ॥
ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम् ।
अभ्यवर्षञ्शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २२ ॥
स्मयन्नेव तु तान्वीरान्द्रोणः प्रत्यग्रहीत्स्वयम् ।
अतिथीनागतान्यद्वत्सलिलेनाऽऽसनेन च ॥ २३ ॥
तर्पितास्ते शरैस्तस्य भारद्वाजस्य धन्विनः ।
आतिथेयगृहं प्राप्य नृपतेऽतिथयो यथा ॥ २४ ॥
भारद्वाजं च ते सर्वे न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ।

महारथी लोग तुम्हारे सहित बलवान् होकर उसही स्थानपर गमन करें । तुम सब कोई मिलकर यमराजके कराल मुखमें पडे हुए के समान सात्यकिको इस समय द्रोणाचार्यके हाथ से छुडाओ; सेनाके सहित मैं भी तुम लोगोंके पीछे पीछे जाऊंगा ॥ (१५-१९)

राजा युधिष्ठिरने ऐसा कहके सम्पूर्ण सेनाके सहित सात्यकिकी रक्षाके वास्ते द्रोणाचार्यके समीप गमन किया ॥ सम्पूर्ण पाण्डव और सृञ्जय लोग जब अकेले द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेके वास्ते उनकी ओर गमन करने लगे, तब उन लोगोंका उस समय महाभयङ्कर शब्द होने लगा ॥ अनन्तर वे सम्पूर्ण योद्धा लोग इकट्ठे होके कङ्क और मोरपङ्खसे युक्त तीक्ष्णबाणोंको द्रोणाचार्यके ऊपर बरसाने लगे ॥ (२०-२२)

जैसे अतिथियोंको देखकर गृहस्थपुरुष आसन, जल आदि वस्तुओंको प्रदान करके उनका सत्कार करते हैं, वैसेही द्रोणाचार्यने युद्धभूमिमें उन वीरोंके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करके उनका युद्धके योग्य संमान किया ॥ जैसे अतिथि लोग अतिथिशालामें पहुंचकर आसन आदि वस्तुओंको पाकर संमानित होते हैं, वैसेही वे सम्पूर्ण योद्धा लोग महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे संमानित हुए ॥ उस समय मध्यन्दिनके सूर्यके समान प्रकाशमान

मध्यन्दिनमनुप्राप्तं सहस्रांशुमिव प्रभो ॥ २५ ॥
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांऽशुमान् ॥ २६ ॥
वध्यमाना महाराज पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा ।
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥ २७ ॥
द्रोणस्य च व्यदृश्यन्त विसर्पन्तो महाशराः ।
गभस्तय इवाऽर्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥ २८ ॥
तस्मिन्द्रोणेन निहताः पञ्चालाः पञ्चविंशतिः ।
महारथाः समाख्याता धृष्टद्युम्नस्य सम्मताः ॥ २९ ॥
पाण्डूनां सर्वसैन्येषु पञ्चालानां तथैव च ।
द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान्वरान् ॥ ३० ॥
केकयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समन्ततः ।
द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इवाऽन्तकः ॥ ३१ ॥
पञ्चालान्सृञ्जयान्मत्स्यान्केकयांश्च नराधिप ।
द्रोणोऽजयन्महाबाहुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यकी ओर कोईभी नहीं देख सके ॥ (२३—२५)

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य सूर्य-किरणके समान अपने बाणोंको चारों ओर चलाकर पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंको पीडित करने लगे ॥ पाण्डव और सृञ्जय लोग द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होके कीचडमें फंसे हुए हाथीके समान किसीको भी अपना परित्राण करनेवाला न देख सके ॥ उस समय द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए सूर्य किरणके समान प्रकाशमान बाण ही चारों ओर दिखाई देते थे ॥ २६-२८

धृष्टद्युम्नसे संमानित हुए पाञ्चाल देशीय पचीस महारथी योद्धा द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ उस समय सम्पूर्ण प्राणी महापराक्रमी द्रोणाचार्यको पाण्डवसेना और पाञ्चाल सेनाके मुख्य मुख्य योद्धाओंका ही वध करते हुए देखने लगे ॥ महाबाहु द्रोणाचार्यने केकयदेशीय एक सौ योद्धाओंका वध किया और संपूर्ण योद्धाओंको रणभूमिसे भगाकर मुंह पसारे हुए यमराजके समान रणभूमिमें स्थित हुए ॥ अनन्तर उन्होंने सैकडों, सहस्रों, पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य, केकय और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओं को युद्ध-भूमिसे पराजित किया ॥ (२९-३२)

तेषां समभवच्छब्दो विद्धानां द्रोणसायकैः ।
वनौकसामिवाऽऽरण्ये व्याप्तानां धूमकेतुना ॥ ३३ ॥
तत्र देवाः सगन्धर्वाः पितरश्चाऽऽब्रुवन्नृप ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः पाण्डवाश्च ससैनिकाः ॥ ३४ ॥
तं तथा समरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान्रणे ।
न चाऽप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥ ३५ ॥
वर्त्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन्वीरवरक्षये ।
अशृणोत्सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम् ॥ ३६ ॥
पूरितो वासुदेवेन शङ्खराट् स्वनते भृशम् ।
युध्यमानेषु वीरेषु सैन्धवस्याऽभिरक्षिषु ॥ ३७ ॥
नदत्सु धार्त्तराष्ट्रेषु विजयस्य रथं प्रति ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषे विप्रणष्टे समन्ततः ॥ ३८ ॥
कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः ।
न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शङ्खराट् ॥ ३९ ॥
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः ।

वे सम्पूर्ण योद्धा द्रोणाचार्य के बाणोंसे पीडित होकर चारों ओरसे अग्नि से व्याप्त,अरण्यमें वास करनेवाले प्राणियोंके समान आर्त शब्द करते हुए युद्धभूमिसे भागने लगे । आकाशमें स्थित देवता गन्धर्व और पितर लोग यह वचन कहने लगे । "यह पाण्डवोंकी सेना पाञ्चाल योद्धाओंके सहित युद्धभूमिसे भाग रही है ॥ " (३३—३४)

द्रोणाचार्य जब इस प्रकारसे सोमकोंका वध कर रहे थे; तब कोई योद्धा भी उनके संमुख न जा सके । और न उन्हें अपने बाणोंसे विद्ध ही कर सके ॥ महाराज ! वीरोंके नाश होनेवाले उस महाघोर संग्राममें युधिष्ठिरने अकस्मात् पाञ्चजन्य शङ्खका शब्द सुना ॥ सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करनेवाले महारथी वीरोंके समीप श्रीकृष्ण उस समय पाञ्चजन्य नाम शङ्खको बलपूर्वक बजा रहे थे । धृतराष्ट्रकी ओरके महारथ योद्धालोग अर्जुनके समीप उस समय सिंहनाद कर रहे थे, उस ही कारणसे गाण्डीव धनुषका शब्द नहीं सुन पडता था । (३५–३८)

गाण्डीव धनुषके शब्दको न सुनकर राजा युधिष्ठिर दुःखित होकर चिन्ता करने लगे । " जब केवल पाञ्चजन्य शङ्खका शब्द सुनाई देता है, और कौरव

एवं स चिन्तयित्वा तु व्याकुलेनाऽन्तरात्मना ॥ ४० ॥
अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत ।
बाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ।
कृत्यस्याऽनन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुङ्गवम् ॥ ४१ ॥
युधिष्ठिर उवाच—यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः ।
साम्पराये सुहृत्कृत्ये तस्य कालोऽयमागतः ॥ ४२ ॥
सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्शिनिपुङ्गव ।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाऽभिजानामि सात्यके ॥ ४३ ॥
यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः ।
स कार्ये साम्पराये तु नियोज्य इति मे मतिः॥ ४४ ॥
यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम् ।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ ४५ ॥
सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि ।
अभिप्रायं च मे नित्यं न वृथा कर्त्तुमर्हसि ॥ ४६ ॥
स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे ।

लोग भी हर्षित होकर बार बार सिंहनाद कर रहे हैं; तब अवश्यही अर्जुनके स्वस्तिविषयमें विघ्न उपस्थित हुआ है।" इसी प्रकार चिन्ता करते हुए अजातशत्रु कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर व्याकुलचित्तसे बार बार मोहित होने लगे। और उस समय के कर्त्तव्य कार्यको विचारकर पराक्रमी सात्यकिसे यह वचन बोले॥ हे महाबाहु! युद्धमें सुहृद् मित्रोंके कर्त्तव्य विषयमें पहिले समयके ऋषियोंने जो सनातन धर्म वर्णन किया है, उसका समय यही उपस्थित हुआ है ॥ मैंने खूब सोच कर देखा, परन्तु सम्पूर्ण योद्धालोगोंके बीच तुमसे बढके सुहृद्-पुरुष मैं किसीको भी नहीं समझता हूं ॥ (३८-४३)

जो पुरुष सदा प्रेम करते और सर्वदा अपने अनुकूल रहते हैं, मेरे विचारसे युद्धसम्बन्धी कार्योंमें उन्हें ही नियुक्त करना उचित है॥ हे वृष्णिकुलभूषण ! जैसे कृष्ण सदा पाण्डवोंके सहायक हैं, वैसेही कृष्णके समान पराक्रमी तुम भी पाण्डवोंके अवलम्बस्वरूप हो ॥ इससे तुम्हारे ही ऊपर मैं यह भार अर्पण करता हूं, तुम इस भारके शीघ्र उठाने योग्य हो, और तुम कदापि मेरे अभिप्रायको व्यर्थ न करोगे ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! अर्जुन तुम्हारे भाई, मित्र और गुरु हैं, इससे तुम इस संकटके

कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥ ४७ ॥
त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥ ४८ ॥
यो हि शैनेय मित्रार्थे युध्यमानस्त्यजेत्तनुम्।
पृथिवीं च द्विजातिभ्यो यो दद्यात्स समो भवेत्॥४९॥
श्रुताश्च बहवोऽस्माभी राजानो ये दिवं गताः।
दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि॥ ५० ॥
एवं त्वामपि धर्मात्मन्प्रयाचेऽहं कृताञ्जलिः।
पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकं वा फलं विभो ॥ ५१ ॥
एक एव सदा कृष्णो मित्राणामभयङ्करः।
रणे सन्त्यजति प्राणान्द्वितीयस्त्वं च सात्यके॥ ५२ ॥
विक्रान्तस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः।
शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥ ५३ ॥
ईदृशे तु परामर्दे वर्त्तमानस्य माधव।

समय संग्रामभूमिके बीच उनकी सहायता करनेके वास्ते शीघ्र गमन करो ॥ (४४–४७)

हे महाबाहो! तुम सत्य व्रत करनेवाले, शूरवीर, मित्रोंको अभय देनेवाले, सत्यवादी और श्रेष्ठ कर्मोंसे पृथ्वीके बीच विख्यात हो ॥ हे सात्यकि! जो मित्रके निमित्त युद्धभूमिमें प्राणत्याग करते हैं, और जो ब्राह्मणोंको भूमिदान करते हैं, वे दोनों ही समान पुण्यात्मा कहे जाते हैं ॥ मैंने सुना है, अनेक राजा लोग इस सम्पूर्ण पृथ्वीको ब्राह्मणोंको यथारीतिसे दान करके स्वर्गलोकको गये हैं ॥ (४८–५०)

पापरहित! तुम्हारे समीप मैं हाथ जोडकर यह प्रार्थना करता हूं, कि तुम मेरी इच्छा पूर्ण करो, तो तुम्हें पृथ्वी दान करनेके समान वा उससे भी अधिक पुण्य-फल मिलेगा॥ हे सात्यकि! अकेले कृष्ण मित्रोंके ऊपर प्रेम करते और उन्हें अभय देते हुए युद्धमें प्राणत्याग कर सकते हैं, और दूसरे तुम भी प्राणत्याग करनेमें समर्थ हो ॥ जो युद्ध करके यश प्राप्त करनेकी अभिलाष करते हैं, वैसे पराक्रमी शूरवीरोंकी सहायता उन्हींके समान शूरवीर पुरुष कर सकते हैं, साधारण पुरुष उनकी सहायता नहीं कर सकते ॥ (५१–५३)

ऐसे भयंकर संग्रामभूमिमें अर्जुनकी रक्षा करनेवाला इस समय तुम्हें छोडकर

त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते ॥ ५४ ॥
श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः ।
मम सञ्जनयन्हर्षं पुनः पुनरकीर्तयत् ॥ ५५ ॥
लघुहस्तश्चित्रयोधी तथाऽलघुपराक्रमः ।
प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे ॥ ५६ ॥
महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाहनुः ।
महाबलो महावीर्यः स महात्मा महारथः ॥ ५७ ॥
शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याऽहं प्रियश्च मे ।
युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान् ॥ ५८ ॥
अस्मदर्थं च राजेन्द्र संनह्येद्यदि केशवः ।
रामो वाऽप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः ॥ ५९ ॥
गदो वा सारणो वाऽपि साम्बो वा सह वृष्णिभिः ।
सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तममूर्धनि ॥ ६० ॥
तथाऽप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम् ।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नाऽस्ति मेऽन्यो हि तत्समः ॥ ६१ ॥
इति द्वैतवने तात मामुवाच धनञ्जयः ।
परोक्षे त्वद्गुणांस्तथ्यान्कथयन्नार्यसंसदि ॥ ६२ ॥

और कोई नहीं हो सकता ॥ अर्जुनने तुम्हारे सैकडों कर्मोकी प्रशंसा करके मुझे हर्षित करते हुए वार वार तुम्हारे गुणोंका वर्णन किया है, कि सात्यकि हस्त लाघवसे अस्त्र चलानेवाला, पराक्रमी बुद्धिमान् सब शस्त्रोंके मर्मको जाननेवाला, शूरवीर और युद्धमें कदापि भयभीत नहीं होता ॥ वह ऊंचे कन्धे, चौडी छाती, लम्बी भुजा, महाधनुर्द्धारी, महाबलवान्, महारथी, महात्मा तथा मेरा मित्र, शिष्य और प्रेमपात्र है; मेरे ऊपर भी उसकी प्रीति है; वह युद्धके समयमें मेरा सहायक होकर कौरवोंका नाश करेगा ॥ (५४-५८)

हे राजेन्द्र ! यदि श्रीकृष्ण, बलराम, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न, गद, सारण अथवा सम्पूर्ण यदुवंशियोंके सहित साम्ब युद्धभूमिमें मेरी सहायता करेंगे, तो भी मैं पराक्रमी पुरुषसिंह सात्यकिको अपनी सहायताके निमित्त युद्धके कार्योंमें नियुक्त करूंगा, उसके समान मेरा हितू कोई नहीं है ॥ यह वचन अर्जुनने मुझसे द्वैतवनके बीच महात्मा ऋषियोंकी सभामें तुम्हारे यथार्थ गुणोंको वर्णन

तस्य त्वमेवं सङ्कल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि ।
धनञ्जयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥
यच्चापि तीर्थानि चरन्नगच्छं द्वारकां प्रति ।
तत्राऽहमपि ते भक्तिमर्जुनं प्रति दृष्टवान् ॥ ६४ ॥
न तत्सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम् ।
यथा त्वमस्मान्भजसे वर्त्तमानानुपप्लवे ॥ ६५ ॥
सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्याऽऽचार्यकस्य च ।
सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥ ६६ ॥
सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च ।
अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ६७ ॥
सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः ।
पूर्वमेवाऽनुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥ ६८ ॥
सुमहान्निनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति ।
स शैनेय जवेनाऽऽशु गन्तुमर्हसि मानद ॥ ६९ ॥
भीमसेनो वयं चैव संयताः सहसैनिकाः ।

करके कहा था ॥ (५९-६२)

इससे तुम अर्जुन, भीमसेन और मेरे इस आशाको व्यर्थ मत करो, और तुम्हारी जो अर्जुनके ऊपर दृढ भक्ति और प्रेम है, उसे हम लोग तीर्थाटन करते हुए जब द्वारिकाके समीप पहुंचे थे, उस ही समय सब मालूम कर लिया था ॥ हम लोग जिस समय विराट के उपप्लव नगरमें थे, उस समय भी हम लोगोंके ऊपर तुम्हारी जैसी भक्ति और मित्रता जान पडी थी, वैसी दूसरे किसी की भी नहीं मालूम हुई ॥ हे महाबाहो! तुम्हारा जैसे उत्तम वंशमें जन्म हुआ है, हम लोगोंके ऊपर जैसी तुम्हारी भक्ति है, मित्रता और प्रेमके सहित अर्जुनको अपना गुरु कहके तुम जिस प्रकार उनको मान्य करते रहते हो, तथा तुम्हारी जैसी सत्यनिष्ठा है, उसहीके अनुरूप तुम्हें कार्य करनेमें प्रवृत्त होना उचित है, और कृपा करके भी तुम इस कार्यको कर सकते हो ॥ (६३-६८)

द्रोणाचार्यने दुर्योधनको अभेद कवच पहना दिया है, इस ही से वह निडर होकर अर्जुनके समीप गया है और जयद्रथकी रक्षा करनेवाले कौरवोंके महारथी योद्धा लोग पहिले ही से वहां युद्धके निमित्त तैयार हैं ॥ इस समय

द्रोणमावारयिष्यामो यदि त्वां प्रतियास्यति ॥ ७० ॥
पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमाणानि संयुगे।
महान्तं च रणे शब्दं दीर्यमाणां च भारतीम् ॥ ७१ ॥
महामारुतवेगेन समुद्रमिव पर्वसु।
धार्त्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह।
सैन्यं रजःसमुद्भूतमेतत्सम्परिवर्त्तते ॥ ७३ ॥
संवृतः सिन्धुसौवीरैर्नखरप्रासयोधिभिः।
अत्यन्तोपचितैः शूरैः फाल्गुनः परवीरहा ॥ ७४ ॥
नैतद्बलमसंवार्य शक्यो जेतुं जयद्रथः।
एते हि सैन्धवस्यार्थे सर्वे सन्त्यक्तजीविताः ॥ ७५ ॥
शरशक्तिध्वजवरं हयनागसमाकुलम्।
पश्यैतद्धार्त्तराष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ॥ ७६ ॥
शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दांश्च पुष्कलान्।
सिंहनादरवांश्चैव रथनेमिस्वनांस्तथा ॥ ७७ ॥

अर्जुनके समीप महाभयङ्कर शब्द सुनाई दे रहा है, इससे तुम शीघ्र ही वहां जाओ। यदि द्रोणाचार्य तुम्हें रोकनेके निमित्त तुम्हारे संग युद्ध करेंगे, तो भीमसेन और सम्पूर्ण सेनाके सहित मैं यत्नपूर्वक उन्हें निवारण करूंगा ॥ (६९–७०)

हे महाबाहो ! यह देखो सम्पूर्ण सेना इधर ऊधर भाग रही है; और रणभूमिमें महाघोर शब्द हो रहा है ॥ जैसे महाप्रचण्ड वायुके वेगसे समुद्र उथलित होता है वैसेही अर्जुन कौरवों-की सेनाको अपने बाणोंसे पीड़ित करके तितर बितर कर रहे हैं, ॥ रथी, गज-पति,घुड़सवार और पैदल सेनाके योद्धा-ओंके इधर उधर दौड़नेसे धूलि उड़ रही है। (७१–७३)

शत्रुनाशन अर्जुन अस्त्र–शस्त्र और प्रास चलाने वाले अत्यन्त पराक्रमी सिन्धु और सौवीर देशीय शूरवीरोंके बीचमें घिर गये हैं॥ वे लोग जयद्रथके वास्ते प्राण देनेको तैयार हैं, उन लोगों-को विना पराजित किये अर्जुन जयद्रथ का वध न कर सकेंगे ॥ धनुष, बाण, शक्ति, ध्वजा, घोड़े और हाथियोंसे युक्त यह सम्पूर्ण धृतराष्ट्रकी सेना अत्यन्त दुर्गम्य है ॥ (७४–७६)

यह सुनो, नगाड़े और शङ्खके शब्द शूरवीरोंके सिंहनाद, रथोंकी घरघराहट,

नागानां शृणु शब्दं च पत्तीनां च सहस्रशः ।
सादिनां द्रवतां चैव शृणु कम्पयतां महीम् ॥ ७८ ॥
पुरस्तात्सैन्धवानीकं द्रोणानीकं च पृष्ठतः ।
बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत् ॥ ७९ ॥
अपर्यन्ते बले मग्नो जह्यादपि च जीवितम् ।
तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ॥ ८० ॥
सर्वथाऽहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः ॥ ८१ ॥
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चाऽतिवर्तते ॥ ८२ ॥
तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा न वा ।
कुरूणां चापि तत्सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥ ८३ ॥
एक एव च बीभत्सुः प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
अविषह्यां महाबाहुः सुरैरपि महाहवे ॥ ८४ ॥
न हि मे वर्त्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथञ्चन ।

हाथियोंकी चिह्वाड और घोडोंकी हिनहिनाहट और पैदल सेनाके शूरवीरोंके तितर बितर होके महाघोर शब्द करते हुए इधर उधर दौडनेसे पृथ्वी कांप रही है॥ द्रोणाचार्यकी सेनाके आगे और पीछे सिन्धुदेशीय ऐसी बहुतसी सेना है, कि वह देवराज इन्द्रको भी पीडित कर सकती है ॥ (७७–७९)

इस अपरम्पार सेनाके बीचमें घिर कर यदि अर्जुन प्राणत्याग करेंगे, तो उनके न रहनेसे मेरे समान पुरुष कैसे जीवित रह सकेगा? मुझे जीवन धारण करना सब भांतिसे कष्टसाध्य होगा। श्यामवर्ण, युवा, सुन्दर, हस्तलाघवके सहित, अस्त्रोंके चलानेवाले महाबाहु अर्जुन सूर्य-उदयके समय कौरवोंकी सेनाके बीचमें प्रविष्ट हुए हैं, इस समय अपराह्न समय हो गया; वह जीवित हैं, या नहीं? कुछ मालूम नहीं कर सकता हूं, शूरवीर पुरुषोंके समूहसे भी न सहने योग्य कौरवोंकी समुद्र समान महासेनाके बीच महाबाहु अर्जुनने अकेले ही प्रवेश किया है॥ (८०–८४)

इधर द्रोणाचार्य भी अत्यन्त वेगके सहित मेरी सेनाके योद्धाओंको पीडित कर रहे हैं। वह द्विजसत्तम द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें जिस भांतिसे भ्रमण कर रहे हैं, उसे तुम अपनी आंखसे देख रहे

द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीडयते बलम् ॥ ८५ ॥
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथाऽसौ चरति द्विजः।
युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ॥ ८६ ॥
महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद ।
तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं महत ॥ ८७ ॥
अर्जुनस्य परित्राणं कर्त्तव्यमिति संयुगे ।
नाऽहं शोचामि दाशार्हं गोप्तारं जगतः पतिम् ॥८८॥
स हि शक्तो रणे तात त्रीँल्लोकानपि सङ्गतान् ।
विजेतुं पुरुषव्याघ्रः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ८९ ॥
किं पुनर्धार्त्तराष्ट्रस्य बलमेतत्सुदुर्बलम् ।
अर्जुनस्त्वेव वार्ष्णेय पीडितो बहुभिर्युधि ॥ ९० ॥
प्रजह्यात्समरे प्राणांस्तस्माद्विन्दामि कश्मलम् ।
तस्य त्वं पदवीं गच्छ गच्छेयुस्त्वादृशा यथा ॥ ९१ ॥
तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाऽभिनोदितः ।

हो । इससे आजके युद्धमें किसी प्रकार भी मेरी बुद्धि प्रविष्ट नहीं होती है । हे यदुकुलभूषण ! अर्जुनकी कौरवोंकी समुद्र समान महासेनाके बीचसे रक्षा करना, और इधर द्रोणाचार्यको युद्धभूमिसे निवारण करना, ये दो कार्य एकही समयमें उपस्थित हुए हैं । परन्तु तुम बुद्धिमान् हो, इन दोनों कार्योंके बीच कौन कार्य बडा और कौन छोटा है, उसे तुम अपनी बुद्धिसे जान सकते हो। मेरे विचारमें सम्पूर्ण कार्योंके बीच यही श्रेष्ठ बोध होता है, कि सब भांतिसे अर्जुनकी रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य है ॥ (८५–८८)

मैं दाशार्ह कृष्णके निमित्त चिन्ता नहीं करता, क्योंकि मैं यह सत्य वचन कहता हूं, कि जगत्प्रभु कृष्ण तीनों लोकके प्राणियोंके इकट्ठे होनेपर भी उनकी रक्षा वा उन्हें पराजित कर सकते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है; तब उनका यह निर्बल धृतराष्ट्रकी सेना क्या कर सकती है ? परन्तु हे सात्यकि ! यदि अर्जुन युद्धभूमिमें बहुतेरे योद्धाओंके अस्त्रोंसे पीडित होकर प्राणत्याग करें, तो उसही निमित्त मैं मोहित हो रहा हूं। इससे तुम्हें मैं अर्जुनके समीप भेजता हूं, ऐसे समय सङ्कटमें पडे हुए अर्जुनकी सहायता करनेके वास्ते तुम्हारे जैसे उनके निकट जा सकता है, तुम उस ही भांतिसे अर्जुनके समीप गमन

रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवाऽतिरथौ स्मृतौ ॥ ९२ ॥
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं च सात्वत विश्रुतः ।
अस्त्रे नारायणसमः सङ्कर्षणसमो बले ॥ ९३ ॥
वीरतायां नरव्याघ्र धनञ्जयसमो ह्यसि ।
भीष्मद्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ॥ ९४ ॥
त्वामेव पुरुषव्याघ्रं लोके सन्तः प्रचक्षते ।
नाऽशक्यं विद्यते लोके सात्यकेरिति माधव ॥ ९५ ॥
तत्त्वां यदभिवक्ष्यामि तत्कुरुष्व महाबल ।
सम्भावना हि लोकस्य मम पार्थस्य चोभयोः॥ ९६ ॥
नाऽन्यथा तां महाबाहो सम्प्रकर्तुमिहाऽर्हसि ।
परित्यज्य प्रियान्प्राणान्रणे चर विभीतवत् ॥ ९७ ॥
नहि शैनेय दाशार्हा रणे रक्षन्ति जीवितम् ।
अयुद्धमनवस्थानं संग्रामे च पलायनम् ॥ ९८ ॥
भीरूणामसतां मार्गो नैष दाशार्हसेवितः ।
तवाऽर्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव ॥ ९९ ॥

करो। (८८-९१)

यदुवंशीय शूरवीरोंके बीच तुम और प्रद्युम्न दोनों ही अतिरथी कहके विख्यात हो। तुम अस्त्रोंके चलानेमें श्रीकृष्ण, बलमें बलराम और वीरतामें अर्जुनके समान हो। पृथ्वीके बीच इस समय भीष्म और द्रोणाचार्यसे भी तुम युद्धके सम्पूर्ण कार्योंमें निपुण हो। महात्मा लोग "युद्धमें सात्यकिसे असाध्य कोई कार्य नहीं है।" ऐसा कहके तुम्हारे पराक्रमका वर्णन करते हैं। हे महा-बलवान्! इस समय मैं जो कुछ वचन तुमसे कहता हूं, उसे तुम पालन करो। (९२-९३)

सब कोई तुम्हारे पराक्रमकी जैसी सम्भावना करते हैं, और मैं तथा अर्जुन दोनों ही जिस प्रकार तुम्हारी सहाय-ताकी आशा करता हूं; इस उपस्थित युद्धमें उस आशाको व्यर्थ करना तुम्हें उचित नहीं है। तुम प्राणकी आशा छोड निर्भय युद्धभूमिके बीच भ्रमण करो॥ हे सात्यकि! यदुवंशीय शूरवीर पुरुष युद्धमें अपने जीवनसे प्रीति नहीं करते और युद्धभूमिके बीच जाकर युद्ध न करना, सम्मुखमें खडा न होना और रणभूमिसे भागना; ये तीनों जो कायरों के कार्य हैं, उसका सेवन यदुवंशीय योद्धा लोग नहीं करते॥ (९६—९८)

वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः ।
कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामहमब्रुवम् ॥ १०० ॥
माऽवमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम् ।
वासुदेवमतं चैव मम चैवाऽर्जुनस्य च । ॥ १०१ ॥
सत्यमेतन्मयोक्तं ते याहि यत्र धनञ्जयः ।
एतद्वचनमाज्ञाय मम सत्यपराक्रम ॥ १०२ ॥
प्रविशैतद्बलं तात धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
प्रविश्य च यथान्यायं सङ्गम्य च महारथैः ।
यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय॥ १०३ ॥ [४२२९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

सञ्जय उवाच— प्रीतियुक्तं च हृद्यं च मधुराक्षरमेव च ।
कालयुक्तं च चित्रं च न्याय्यं वचापि भाषितुम्॥ १ ॥
धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २ ॥
श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाऽच्युत ।
न्याययुक्तं च चित्रं च फाल्गुनार्थे यशस्करम् ॥ ३ ॥

हे तात ! बुद्धिमान् धर्मात्मा अर्जुन तुम्हारे गुरु हैं, और उनके गुरु कृष्ण हैं । इन दोनों बातोंको जान कर मैं तुमसे यह वचन कहता हूं—मैं भी तुम्हारा गुरु हूं; तुम मेरे वचनोंकी अवमानना मत करना । मैंने जिस अभिप्राय से तुमसे ऐसा वचन कहा है, वह कृष्ण अर्जुन दोनों हीको प्रिय है, यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं ! हे सत्य-पराक्रमी ! मेरी इस ही आज्ञाके अनुसार तुम अर्जुनके समीप गमन करो; नीच बुद्धिवाले दुर्योधनकी सेनाके बीच प्रवेश करो; और महारथियोंके सङ्ग न्यायके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त होकर अपनी सामर्थ्यके योग्य युद्ध करो । (९९-१०३) ४२२९

द्रोणपर्वमें एकसौ दस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ ग्यारह अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे भरतर्षभ ! शिनिपौत्र सात्यकि धर्मराज युधिष्ठिरके प्रीतिसे भरे, धर्म युक्त, समयके अनुसार, युक्ति से पूरित, मीठे और मनोहर विचित्र वचनोंको सुनकर उनसे यह वचन बोले। हे पापरहित ! आपने जो अर्जुनके निमित्त यश बढानेवाले, न्याय से युक्त विचित्र वचनोंको मुझसे कहे; वह तुम्हारे सब वचन मैंने सुने ॥ हे राजेन्द्र!

एवंविधे तथा काले मादृशं प्रेक्ष्य सम्मतम्।
वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थं तथैव माम् ॥ ४ ॥
न मे धनञ्जयस्यार्थे प्राणा रक्ष्याः कथञ्चन।
त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किन्न कुर्यां महाहवे ॥ ५ ॥
लोकत्रये योधयेयं सदेवासुरमानुषम्।
त्वत्प्रयुक्तो नरेन्द्रेह किमुतैतत्सुदुर्बलम् ॥ ६ ॥
सुयोधनबलं त्वद्य योधयिष्ये समन्ततः।
विजेष्ये च रणे राजन्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥
कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनञ्जयम्।
हते जयद्रथे राजन्पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ८ ॥
अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप।
वासुदेवस्य यद्वाक्यं फाल्गुनस्य च धीमतः ॥ ९ ॥
दृढं त्वभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः पुनः।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ १० ॥
अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय।

ऐसे समयमें जिस प्रकार आप अर्जुनको आज्ञा दे सकते हैं,वैसेही इस समय मेरे समान पुरुषको आज्ञा करना आपके लिये योग्य ही है ॥ (१-४)

अर्जुनके वास्ते किसी प्रकार मुझे अपनी प्राणरक्षा करना उचित नहीं है; विशेष करके मैं इस संग्रामके समय तुम्हारी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता हूं। देवलोक, मनुष्यलोक और असुरलोकके सहित तीनों लोकके प्राणियोंके इकठे होनेपर भी मैं उनके सङ्ग युद्ध कर सकता हूं, इससे मैं जो इस निर्बल कुरुसेनाके सङ्ग युद्ध करूंगा उनकी बात ही क्या है ? महाराज ! मैं तुम्हारे निकट यह सत्य वचन कहता हूं, कि आज दुर्योधनकी सम्पूर्ण सेनाके सङ्ग युद्ध करके मैं विजय प्राप्त करूंगा; अर्जुनको कुशल क्षेमसे युक्त और जयद्रथको मरा हुआ देखकर फिर कुशलपूर्वक मैं तुम्हारे समीप आऊंगा ॥ (५-८)

परन्तु बुद्धिमान् कृष्णके समीप अर्जुनने मुझसे जो वचन कहा है, वह सम्पूर्ण तुम्हें सुना देना उचित है। महाराज ! सम्पूर्ण सेनाके बीच बुद्धिमान् कृष्णके सम्मुख अर्जुनने बार बार यत्नपूर्वक मुझे यह आज्ञा दी है, 'हे सात्यकि ! आज जब तक मैं जयद्रथका वध करके न लौटूं, तब तक तुम प्रमाद

आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि जयद्रथम् ॥ ११ ॥
त्वयि चाऽहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे ।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥ १२ ॥
जानीषे हि रणे द्रोणं कुरुषु श्रेष्ठसम्मतम् ।
प्रतिज्ञातं हि तेनेदं पश्यमानेन वै प्रभो ॥ १३ ॥
ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्यति ।
शक्तश्चापि रणे द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम् ॥ १४ ॥
एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम् ।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥ १५ ॥
जयद्रथं च हत्वाऽहं द्रुतमेष्यामि माधव ।
धर्मराजं न चेद् द्रोणो निगृह्णीयाद्रणे बलात् ॥ १६ ॥
निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।
सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाऽप्रीतिस्तथा भवेत् ॥१७॥
एवं गते नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि ।
अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत्पुनः ॥ १८ ॥

रहित और युद्धमें सावधान होकर महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना ॥ हे महाबाहो ! महारथी प्रद्युम्न और तुम्हारे समीप धर्मराज युधिष्ठिरको समर्पण करके आज मैं निश्चिन्त होकर सिन्धुराज जयद्रथके वधके वास्ते गमन कर सकता हूं ॥ (९–१२)

योद्धाओंमें सम्मानित द्रोणाचार्य जैसे वेगशील और पराक्रमी हैं, उसे तुम जानते हो, उन्होंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे भी तुमने सुना है ॥ वह धर्मराज युधिष्ठिरके ग्रहण करनेके अभिलाषी हुए हैं, और इस कार्य के पूर्ण करने में भी महात्मा द्रोणाचार्य समर्थ हैं ॥ इससे पुरुषोंमें श्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिरको मैं तुम्हारे समीप समर्पण करके सिन्धुराज जयद्रथके वध करनेके वास्ते गमन करता हूं ॥ यदि द्रोणाचार्य बलपूर्वक रणभूमि में धर्मराज युधिष्ठिरको न ग्रहण करे; तो मैं अवश्य ही जयद्रथका वध करके उनके समीप आऊंगा ॥ (१३–१६)

यदि द्रोणाचार्य धर्मराज युधिष्ठिरको ग्रहण करेंगे, तो सिन्धुराज जयद्रथका वध नहीं होगा और मेरे मनमें सन्तोष भी न हो सकेगा; वरन फिर भी अवश्य ही हम लोगोंको वनवासी होना पडेगा ॥ इससे यदि द्रोणाचार्यके हाथसे महाराज युधिष्ठिर पकडे जावेंगे, तो युद्धमें हम

सोऽयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति ।
यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद्युधिष्ठिरम् ॥ १९ ॥
स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव ।
जयार्थं च यशोर्थं च रक्ष राजानमाहवे ॥ २० ॥
स भवान्मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना ।
भारद्वाजाद्भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो ॥ २१ ॥
तस्याऽपि च महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे ।
नाऽन्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो ॥ २२ ॥
मां चापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः ।
सोऽहं सम्भावनां चैतामाचार्यवचनं च तत् ॥ २३ ॥
पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते ।
आचार्यो लघुहस्तत्वादभेद्यकवचावृतः ॥ २४ ॥
उपलभ्य रणे क्रीडेद्यथा शकुनिना शिशुः ।
यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः ॥ २५ ॥

लोगोंकी विजय होनेपर भी वह व्यर्थ होगी ॥ हे महाबाहो ! इससे तुम युद्धमें जय यश और मेरे सन्तोषके निमित्त युद्धभूमिमें महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना ॥" (१७—२०)

हे प्रभो ! अर्जुन तुम्हारे निमित्त सदा सर्वदा द्रोणाचार्यके भयसे शङ्कित रहते हैं, इस हीसे उन्होंने मुझसे यह सब वृत्तान्त सुना कर तुम्हें थाती रूपसे मुझे समर्पण किया है ॥ उन्होंने जो कुछ निश्चय किया है, उसका फल भी तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो, द्रोणाचार्य सब समय तुम्हें ग्रहण करनेकी इच्छा कर रहे हैं ॥ अर्जुन द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करने योग्य मुझे वा रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्नको छोडके और किसी भी इस कार्य के योग्य नहीं समझते हैं ॥ (२१-२३)

ऐसे अवसरमें इस उपस्थित सम्भावनाको छोड कर तथा गुरु अर्जुनके वचनों को बदल कर कोई दूसरे कार्य के करने का मुझे उत्साह नहीं होता है, और तुम्हें छोड कर मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करने हीके वास्ते भला कैसे उत्साह कर सकता हूं ? जैसे बालक पक्षि को शब्द करके खेलवाड खेलते हैं, वैसेही अभेद्य कवचधारी द्रोणाचार्य अस्त्रयुद्धमें हस्तलाघवके सहित रणभूमिमें तुम्हारे सङ्ग क्रीडा कर रहे हैं । यदि कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न हाथमें धनुष लेकर यहां उपस्थित होते, तो मैं उनके निकट

तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद्यथाऽर्जुनः ।
कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ २६ ॥
यः प्रतीयाद्रणे द्रोणं यावद्गच्छामि पाण्डवम् ।
मा च ते भयमद्याऽस्तु राजन्नर्जुनसम्भवम् ॥ २७ ॥
न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति ।
ये च सौवीरका योधास्तथा सैन्धवपौरवाः ॥ २८ ॥
उदीच्या दाक्षिणात्याश्च ये चान्येऽपि महारथाः ।
ये च कर्णमुखा राजन्रथोदाराः प्रकीर्तिताः ॥ २९ ॥
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नाऽर्हन्ति षोडशीम् ।
उद्युक्ता पृथिवी सर्वा ससुरासुरमानुषा ॥ ३० ॥
सराक्षसगणा राजन्सकिन्नरमहोरगा ।
जङ्गमाः स्थावराः सर्वे नाऽलं पार्थस्य संयुगे ॥ ३१ ॥
एवं ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनञ्जये ।
यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ ॥ ३२ ॥
न तत्र कर्मणो व्यापत्कथञ्चिदपि विद्यते ।

तुम्हें समर्पण कर सकता; वह अर्जुनकी भांति तुम्हारी रक्षा करते । इससे आप अपनी रक्षाका उपाय कीजिये; परन्तु ऐसा कोई भी नहीं है, जो मेरे गमन करनेके अनन्तर जब तक मैं अर्जुनके समीपसे न लौट आऊं; तब तक तुम्हारी रक्षा करनेके वास्ते द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध कर सके ॥ (२३-२७)

महाराज! आप अर्जुनके निमित्त कुछ भय न कीजिये, वह महाबाहु अर्जुन कोई भार ग्रहण करके कदापि दुःखित नहीं होते। सिन्धु, सौवीर, पौरव, उदीच्य दाक्षिणी और दूसरे देशोंके सम्पूर्ण योद्धा तथा कर्ण आदि पृथ्वीके बीच विख्यात जो सम्पूर्ण महारथ योद्धा लोग कौरवोंकी सेनामें उपस्थित हैं, वे सब कोई क्रुद्ध अर्जुनके सोलहवें अंशके एक अंश नहीं हो सकते। देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर, सर्प तथा स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण पृथ्वीके प्राणी युद्ध भूमिमें खडे होकर अर्जुनको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हो सकते॥ २७-३१

आप यही समझके अर्जुनके ऊपर भयकी आशङ्का न कीजिये। जहां महाबली सत्य पराक्रमी महाधनुर्द्धारी दो कृष्ण एक ही स्थानपर विराजमान हैं; वहां किसी प्रकारकी कोई आपदाकी सम्भावना नहीं हो सकती। तुम्हारे भाई

दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाऽऽहवे　॥ ३३ ॥
कृतज्ञतां दयां चैव भ्रातुस्त्वमनुचिन्तय।
मयि चाप्यपयाते वै गच्छमानेऽर्जुनं प्रति　॥ ३४ ॥
द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय।
आचार्यो हि भृशं राजन्निग्रहे तव गृध्यति　॥ ३५ ॥
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्सत्यां कर्त्तुं च भारत।
कुरुष्वाऽद्याऽऽत्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि॥३६॥
यस्याऽहं प्रत्ययात्पार्थं गच्छेयं फाल्गुनं प्रति।
नह्यहं त्वां महाराज अनिक्षिप्य महाहवे　॥ ३७ ॥
क्वचिद्यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद्ब्रवीमि ते।
एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर　॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन्प्रशाधि माम् ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच– एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव।
न तु मे शुद्ध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष ॥ ४० ॥
करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणे ह्यहम्।

अर्जुनमें जैसी कृतज्ञता दया युद्धमें दैवी अस्त्रोंकी कृतास्त्रता, योग और पराक्रम विद्यमान है, उसे आप विचार कर देखिये! मैं जब अर्जुनके समीप गमन करूंगा, तब अब अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले द्रोणाचार्य जिस भांति अपने पराक्रमको प्रकाशित करेंगे, उसका भी विचार कर लीजिये। वह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके वास्ते तुम्हें ग्रहण करनेकी अत्यन्त अभिलाष कर रहे हैं॥ (३२-३६)

इससे आप अपनी रक्षाका उपाय कीजिये, मेरे यहांसे चले जानेपर तुम्हारा ऐसा कौन रक्षक होवेगा, जो उसके ऊपर विश्वास करके मैं अर्जुनके समीप जा सकूं? मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूं, कि इस महाघोर संग्राममें विना किसी पराक्रमी पुरुषके निकट तुम्हें समर्पण किये, कहीं भी न जा सकूंगा। हे महाबुद्धिमान्! तुम इस विषयको अपनी बुद्धिसे भली भांति विचार लो, फिर जैसा आपको उचित बोध होवे मुझे वैसी आज्ञा कीजिये॥ ३६-३९

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे यदुकुल श्रेष्ठ महाबाहु सात्यकि! तुमने जो कुछ वचन कहे, वे सब यथार्थ ही हैं; परन्तु अर्जुनके वास्ते मेरे चित्तमें शान्ति नहीं होती है॥ इससे मैं अपनी रक्षाके

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा

REGISTERED No. B. 1819

अंक ५७ [द्रोणपर्व ७]

महाभारत ।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवलेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

तैय्यार हैं ।

(१) आदिपर्व । पृष्ठ संख्या ११२५. मूल्य म. आ. से ६॥) रु.
(२) सभापर्व । पृष्ठ संख्या ३५६. मूल्य म. आ. से २) रु.
(३) वनपर्व । पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य म. आ. से ८) रु.
[४] विराटपर्व । पृष्ठ संख्या ३०६ मूल्य. म. आ. से १॥)
[५] उद्योगपर्व । पृष्ठ संख्या ९५३ मूल्य. म. आ. से. ५) रु.
[६] भीष्मपर्व । पृष्ठ संख्या ८०० मूल्य म० आ० से ४) रु.

[५]महाभारत की समालोचना ।

१ प्रथम भाग मू.॥)वी. पी. से॥=)आने।२द्वितीय भाग। मू.॥)वी. पी. से॥=)आने।
महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६) रु. मूल्य होगा।
मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी.पी. से ७) विदेशके लिये ८)

गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनञ्जयः ॥ ४१ ॥
आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनं चार्जुनं प्रति ।
विचार्यैतत्स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचये ॥ ४२ ॥
स त्वमातिष्ठ यानाय यत्र यातो धनञ्जयः ।
ममापि रक्षणं भीमः करिष्यति महाबलः ॥ ४३ ॥
पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः ।
द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ४४ ॥
केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः ॥ ४५ ॥
धृष्टकेतुश्च बलवान्कुन्तिभोजश्च मातुलः ।
नकुलः सहदेवश्च पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ॥ ४६ ॥
एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ।
न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे ॥ ४७ ॥
समासादयितुं शक्तो न च मां धर्षयिष्यति ।
धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परन्तपः ॥ ४८ ॥
वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम् ।

वास्ते अत्यन्त ही यत्न करूंगा, तुम मेरी आज्ञाके अनुसार अर्जुनके समीप जाओ॥ मेरी रक्षा और अर्जुनके समीप जाना, ये दो कार्य उपस्थित हैं, इनमेंसे मैं अपनी बुद्धिसे विचार करके तुम्हारा अर्जुनके निकट जाना ही उत्तम समझता हूं, इससे जहां अर्जुन हैं, तुम उसही स्थानमें गमन करो ॥ (४०-४२)

महाबलवान् भीमसेन, सहोदर भाइयोंके सहित धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पांचों पुत्र, और दूसरे बहुतेरे राजा मेरी रक्षा करेंगे; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। और केकयराज पांचों भाई, घटोत्कच राक्षस, विराट, द्रुपद, महारथ शिखण्डी, बलवान् धृष्टकेतु, कुन्तिभोज, नकुल, सहदेव, पाञ्चाल तथा सृञ्जय देशीय सम्पूर्ण सेनाके योद्धालोग मिलकर मेरी रक्षा करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। सेनाके सहित द्रोणाचार्य वा कृतवर्मा जो सहसा मेरे समीप पहुंच सकें अथवा मुझे पीडित करें, ऐसी संभावना भी नहीं हो सकती। (४३-४८)

जैसे तट समुद्रके वेगको रोकता है, वैसे ही क्रुद्ध द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्न युद्धभूमिसे निवारण करेंगे। युद्धभूमिमें जहां शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न स्थित होंगे,

यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा ॥ ४९ ॥
द्रोणो न सैन्यं बलवत्क्रामेत्तत्र कथञ्चन ।
एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ॥ ५० ॥
कवची सशरी खड्गी धन्वी च वरभूषणः ।
विश्रब्धं गच्छ शैनेय मा कार्षीर्मयि सम्भ्रमम् ।
धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥ ५१ ॥ [४२८०]

इति श्रीमहाभारते०द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरसात्यकिवाक्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥१११॥

सञ्जय उवाच— धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
स पार्थाद्भयमाशंसन्परित्यागान्महीपतेः ॥ १ ॥
अपवादं ह्यात्मनश्च लोकात्पश्यन्विशेषतः ।
ते मां भीतमिति ब्रूयुरायान्तं फाल्गुनं प्रति ॥ २ ॥
निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत्पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥
कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशाम्पते ।
अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव ॥ ४ ॥
नहि मे पाण्डवात्कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

उस स्थानकी बलवती सेनाको द्रोणाचार्य किसी प्रकारसे भी न आक्रमण कर सकेंगे। धृष्टद्युम्न तो द्रोणाचार्यके बध करने हीके निमित्त अग्निसे तलवार,ढाल, धनुषबाण और कवचसे भूषित होकर उत्पन्न हुए हैं॥ इससे तुम मेरे निमित्त कुछ भी सन्देह न करके अर्जुनकी ओर गमन करो। रणभूमिमें धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यको युद्धसे निवारण करेंगे॥(४८—५१)

द्रोणपर्वमें एकसौ ग्यारह अध्याय समाप्त॥४२८०

द्रोणपर्वमें एकसौ बारह अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! पुरुषश्रेष्ठ पराक्रमी सात्यकिने धर्मराज युधिष्ठिरके वचनोंको सुनके युधिष्ठिरके त्यागके निमित्त अर्जुनके निकट अपराधी होनेकी शङ्का करके भी "यदि मैं अर्जुनके समीप न आऊंगा, तो सब कोई मुझे डरपोक समझेंगे इसी प्रकार अनेक भांतिकी चिन्ता करके लोकापवादको दूर करते हुए धर्मराज युधिष्ठिरसे यह वचन बोले; हे प्रजानाथ ! यदि तुम यह समझते हो, कि मेरी रक्षा हो सकेगी । तो तुम्हारा मङ्गल होवे, मैं अर्जुनके समीप जानेके वास्ते प्रस्थान करता हूं ॥ (१-४)

मैं तुम्हारे समीप यह सत्य ही कहता हूं, कि तीनों लोकमें अर्जुनसे

यो मे प्रियतरो राजन्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ५ ॥
तस्याऽहं पदवीं यास्ये सन्देशात्तव मानद ।
त्वत्कृते न च मे किञ्चिदकर्त्तव्यं कथञ्चन ॥ ६ ॥
यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदां वर ।
तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥ ७ ॥
प्रिये हि तव वर्त्तेते भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ ।
तयोः प्रिये स्थितं चैव विद्धि मां राजपुङ्गव ॥ ८ ॥
तवाऽऽज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो ।
भित्त्वेदं दुर्भिदं सैन्यं प्रयास्ये नरपुङ्गव ॥ ९ ॥
द्रोणानीकं विशाम्येष क्रुद्धो झष इवाऽर्णवम् ।
तत्र यास्यामि यत्राऽसौ राजन्राजा जयद्रथः ॥१० ॥
यत्र सेनां समाश्रित्य भीतास्तिष्ठति पाण्डवात् ।
गुप्तो रथवरश्रेष्ठैर्द्रौणिकर्णकृपादिभिः ॥ ११ ॥
इतस्त्रियोजनं मन्ये तमध्वानं विशाम्पते ।
यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः ॥ १२ ॥

बढ कर मुझे कोई भी प्रिय नहीं है; उसपर भी तुम्हारी आज्ञासे उनकी सहायताके वास्ते जाना पडेगा, इससे बढके दूसरा कार्य और कौन है ? तुम्हारे निमित्त मैं किसी कर्मके करनेमें अवहेलना करना नहीं चाहता ॥ जैसे मुझे गुरु अर्जुनके वचन मानने योग्य हैं, उससे भी बढके तुम्हारे वचनोंको मान्य करना उचित है ॥ तुम्हारे दो भाई कृष्ण-अर्जुन जैसे तुम्हारे कार्यमें रत हैं, वैसेही मुझे भी तुम उन लोगोंके प्रिय कार्य करनेमें रत हुआ ही समझो ॥ (५–८)

मैं तुम्हारी आज्ञाको माथेपर चढा कर इस दुःखसे भेद होनेवाली कुरुसेना को भेद करनेके वास्ते गमन करूंगा ॥ राजा जयद्रथ जिस स्थानमें स्थित है, मैं द्रोणाचार्यकी सेनाके बीच प्रवेश करके उस स्थानपर इस भांति उपस्थित होऊंगा, जैसे मछली समुद्रमें प्रवेश करके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गमन करती है ॥ अर्जुनके भयसे डरे हुए राजा जयद्रथ सम्पूर्ण सेनाके अवलम्ब और अश्वत्थामा, कर्ण, तथा कृपाचार्य आदि महारथियोंसे रक्षित होकर जिस स्थानमें निवास करते हैं, मैं अनुमान करता हूं, कि उससे बारह कोस दूरीपर जयद्रथ वधकी इच्छा करके अर्जुन उपस्थित हुए हैं ॥ (९–१२)

त्रियोजनगतस्याऽपि तस्य यास्याम्यहं पदम् ।
आसैन्धववधाद्राजन्सुदृढेनाऽन्तरात्मना ॥ १३ ॥
अनादिष्टस्तु गुरुणा को नु युध्येत मानवः ।
आदिष्टस्तु यथा राजन्को न युध्येत मादृशः ॥ १४ ॥
अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो ।
हलशक्तिगदाप्रासचर्मखड्गर्ष्टितोमरम् ॥ १५ ॥
इष्वस्त्रवरसम्बाधं क्षोभयिष्ये बलार्णवम् ।
यदेतत्कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ॥ १६ ॥
कुलमाञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः ।
आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः॥ १७ ॥
नागा मेघनिभा राजन्क्षरन्त इव तोयदाः ।
नैते जातु निवर्त्तेरन्प्रेषिता हस्तिसादिभिः ॥ १८ ॥
अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन्पराजयः ।
अथ यान्रथिनो राजन्सहस्रमनुपश्यसि ॥ १९ ॥

मैं अत्यन्त दृढता और पराक्रमके सहित जयद्रथ वधके पहिलेही इस बारह कोसके मार्गको अतिक्रम करके अर्जुनके समीप उपस्थित होऊंगा ॥ जिससे युद्ध के वास्ते गुरुने आज्ञा नहीं की है ऐसा कौन पुरुष युद्ध करेगा? और मेरे समान मनुष्य ही भला आपकी आज्ञा पाकर युद्ध क्यों न करेगा ? (१३—१४)

मुझे जिस स्थान पर जाना होगा, उसे मैं जानता हूं । और वहां पर जानेके वास्ते सब अस्त्र, शस्त्र, शक्ति, गदा, प्रास, तलवार, ढाल, ऋष्टि, तोमर और धनुष बाण इत्यादि अस्त्रों से युक्त समुद्र के समान शत्रुसेना को क्षुभित करना पडेगा ॥ (१३–१६)

महाराज ! ये जो सहस्रों हाथी दीख पडते हैं, अञ्जन नाम दिग्हस्तीके वंशमें इनकी उत्पत्ति हुई है, वे सब ही प्रहार करनेमें श्रेष्ठ और युद्धमें महापराक्रमी हैं, उन हाथियों पर बहुतेरे म्लेच्छ चढके युद्ध करनेके वास्ते तैयार हैं; वर्षा करने वाले बादलोंके समान उन मतवारे हाथियोंके शरीरसे मद चूरहा है । वे सम्पूर्ण हाथी गजारोही योद्धाओं के चलाने पर युद्धभूमिमें कभी निवृत्त नहीं होते; इससे विना उन हाथियोंके वध किये, वहांकी सेना पराजित होनेवाली नहीं है ॥ (१७—१९)

तिसके अनन्तर यह जो सहस्रों रथियोंका समूह दीख पडता है, वे सब

एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः ।
रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशाम्पते ॥२० ॥
धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः ।
गदायुद्धविशेषज्ञा नियुद्धकुशलास्तथा ॥ २१ ॥
खड्गप्रहरणे युक्ताः सम्पाते चाऽसिचर्मणोः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ॥ २२ ॥
नित्यं हि समरे राजन्विजिगीषन्ति मानवान् ।
कर्णेन विहिता राजन्दुःशासनमनुव्रताः ॥ २३ ॥
एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान्प्रशंसति ।
सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः ॥ २४ ॥
तस्यैव वचनाद्राजन्निवृत्ताः श्वेतवाहनात् ।
तेन क्लान्ता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः ॥ २५ ॥
मदर्थे धिष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ।
एतान्प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ॥ २६ ॥
प्रयास्यामि ततः पश्चात्पदवीं सव्यसाचिनः ।
यांस्त्वेतानपरान्राजन्नागान्सप्तशतानिमान् ॥ २७ ॥

योद्धा लोग रुक्मरथ नामसे विख्यात राजपुत्र हैं। वे सबही महारथी, धनुर्वेदके जाननेवाले, रथ, घोडे, हाथी, भुजा, मुक्के, गदा, तलवार, ढाल और भालेकी युद्धमें अत्यन्त ही निपुण हैं। ये सम्पूर्ण योद्धा लोग युद्ध करनेकी सदा अभिलाषा करते और पुरुषोंके वध करनेके वास्ते सदा ही इच्छुक रहते हैं। कर्णने इन राजपुत्रों को नियुक्त किया है, और ये लोग इस स्थलमें दुःशासनके वशमें होकर स्थित हैं ॥ (१९-२३)

श्रीकृष्ण सदा इन राजपुत्रोंको महारथी कहके उनकी प्रशंसा किया करते हैं, सम्पूर्ण राजपुत्र सदा कर्णके वशमें रहकर उनके प्रियकार्योंके करनेकी अभिलाषा करते रहते हैं और कर्ण ही के वचनसे अर्जुनके समीपमें युद्धसे निवृत्त हुए हैं। उनके वर्म दृढ हैं, वे युद्धमें न थकते और न घायल ही होते हैं ॥ मुझे निश्चय होता है, कि वे सब दुर्योधनकी आज्ञासे मेरे सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते युद्धभूमिमें स्थित हैं। परन्तु मैं तुम्हारी आज्ञासे उन महारथ राजपुत्रोंको अपने अस्त्रोंसे पीडित करके अर्जुनकी सहायताके वास्ते आगे बढूंगा ॥ (२४-२७)

महाराज ! उसके अतिरिक्त ये जो

प्रेक्षसे वर्मसञ्छन्नान्किरातैः समधिष्ठितान् ।
किरातराजो यान्प्रादाद्द्विरदान्सव्यसाचिनः ॥ २८ ॥
स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्यानिच्छञ्जीवितमात्मनः ।
आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम् ॥ २९ ॥
त्वामेवाऽद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य पर्ययम् ।
एषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ॥ ३० ॥
हस्तिशिक्षाविदश्चैव सर्वे चैवाऽग्नियोनयः ।
एते विनिर्जिताः संख्ये संग्रामे सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥
मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः ।
एतान्हत्वा शरैः राजन्किरातान्युद्धदुर्मदान् ॥ ३२ ॥
सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम् ।
ये त्वेते सुमहानागा अञ्जनस्य कुलोद्भवाः ॥ ३३ ॥
कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
जाम्बूनदमयैः सर्वैर्वर्मभिः सुविभूषिताः ॥ ३४ ॥

वर्म पहने हुए सात सौ हाथी दीख पडते हैं, जिनके ऊपर किरात लोग चढे हुए हैं। पहिले किरातराज अर्जुनके समीपसे पराजित होकर अपने जीवनकी रक्षाके वास्ते इन किरातोंको भूषणोंसे भूषित करके सेवक रूपसे अर्जुनके हाथमें समर्पण किया था। ये सम्पूर्ण किरात पहिले तुम्हारे आज्ञाकारी दास थे, देखिये कालकी कैसी उलटी गति है। इस समय वेही सब तुम्हारे विरुद्ध युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं। (२७-३०)

इन किरातोंके बीच मुख्य मुख्य किरात योद्धा हाथियोंकी शिक्षामें निपुण और युद्धमें महा पराक्रमी हैं, ये सब ही अग्निसे उत्पन्न हुए और म्लेच्छजाति हैं। ये सम्पूर्ण किरात लोग पहिले अर्जुनके सङ्ग युद्ध करके पराजित हुए थे, इस समय दुर्योधनके वशवर्त्ती होकर तुम्हारे सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते अभिलाषा करते हैं। इन सम्पूर्ण युद्ध दुर्मद किरातोंको मैं अपने बाणोंसे नष्ट करते हुए जयद्रथके वधकी इच्छा करनेवाले अर्जुनका अनुगामी होऊंगा। (३०-३३)

यह जो सम्पूर्ण मदचूते हुए मतवारे हाथी सुवर्ण भूषित वर्मसे युक्त होकर रणभूमिके बीच प्रकाशित हो रहे हैं, ये सम्पूर्ण हाथी अञ्जन हस्तीके वंशमें उत्पन्न हुए हैं; इन हाथियोंका स्वभाव अत्यन्त क्रूर है, ये सब शिक्षित और शत्रुको भयभीत करनेवाले हैं; ये सम्पूर्ण

लब्धलक्षा रणे राजन्नैरावणसमा युधि ।
उत्तरात्पर्वतादेते तीक्ष्णैर्दस्युभिरास्थिताः ॥ ३५ ॥
कर्कशैः प्रवरैर्योधैः कार्ष्णायसतनुच्छदैः ।
सन्ति गोयोनयश्चाऽत्र सन्ति वानरयोनयः ॥ ३६ ॥
अनेकयोनयश्चाऽन्ये तथा मानुषयोनयः ।
अनीकं समवेतानां धूम्रवर्णमुदीर्यते ॥ ३७ ॥
म्लेच्छानां पापकर्तॄणां हिमदुर्गनिवासिनाम् ।
एतद्दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं राजमण्डलम् ॥ ३८ ॥
कृपं च सौमदत्तिं च द्रोणं च रथिनां वरम् ।
सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत पाण्डवान् ॥ ३९ ॥
कृतार्थमथ चाऽऽत्मानं मन्यते कालचोदितः ।
ते तु सर्वेऽद्य सम्प्राप्ता मम नाराचगोचरम् ॥ ४० ॥
न विमोक्ष्यन्ति कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः ।
तेन सम्भाविता नित्यं परवीर्योपजीविना ॥ ४१ ॥
विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरौघनिपीडिताः ।
ये त्वेते रथिनो राजन्दृश्यन्ते काञ्चनध्वजाः ॥ ४२ ॥

हाथी युद्धमें ऐरावण हाथीके समान कार्य किया करते हैं। काले और लाल-वर्णवाले चर्मको पहने हुए क्रूर स्वभाव-वाले निर्दयी डाकू लोग उन हाथियों पर चढके उत्तरीय पहाडोंसे आये हैं,उन योद्धाओंके बीच कितने ही गोयोनिसे उत्पन्न हुए हैं, कितने ही वानर योनिसे कितने ही मनुष्योनि और कितनेही दूसरी बहुतेरी योनियोंसे पैदा हुए हैं । हिमालय पर्वतके दुर्गम स्थानोंमें निवास करनेवाले इन पापी म्लेच्छोंसे पापपूरित होकर यह सम्पूर्ण सेना धुएंके वर्ण समान प्रकाशित होरही है ॥ (३३–३८)

दुर्योधन इन सम्पूर्ण राजाओं और रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य, सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा, द्रोणाचार्यके पुत्र महारथ अश्वत्थामा, सिन्धुराज जयद्रथ और महारथ कर्णको पाकर अपनेको कृतार्थ समझ रहा है। परन्तु वे सब कोई मनके समान वेगवाले होवें तोभी आज मेरे बाणोंके सम्मुखसे मुक्त न हो सकेंगे । दुर्योधन उन लोगोंके बल पराक्रमके अभिमानसे मतवारा होकर सदा उन लोगोंकी पूजा और सत्कार किया करता है, परन्तु आज वे लोग मेरे बाणोंसे पीडित होकर प्राणत्याग करेंगे॥ ३८-४२

एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः ॥ ४३ ॥
संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः ।
अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्त्तराष्ट्रस्य भारत ॥ ४४ ॥
यत्ता मदर्थं तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः ।
अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः ॥ ४५ ॥
तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः ।
तस्मात्सर्वानुपासङ्गान्सर्वोपकरणानि च ॥ ४६ ॥
रथे कुर्वन्तु मे राजन्यथावद्रथकल्पकाः ।
अस्मिंस्तु किल सम्मर्दे ग्राह्यं विविधमायुधम् ॥ ४७ ॥
यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः ।
काम्बोजैर्हि समेष्यामि तीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥ ४८ ॥
नानाशस्त्रसमावायैर्विविधायुधयोधिभिः ।
किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः ॥ ४९ ॥
लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः ।

महाराज! ये जो सब सुवर्ण ध्वज भूषित रथी दीख पड़ते हैं; उन लोगोंका नाम आपने सुना होगा, वे सब काम्बोज देशीय दुर्वारण नामक शूरवीर हैं, वे सब कोई सम्पूर्ण युद्ध विद्या और धनुर्वेदके जाननेवाले तथा आपसमें एक दूसरेकी सहायता करनेके वास्ते युद्धभूमिमें इकट्ठे होकर स्थित हैं। दुर्योधनकी यह कई अक्षौहिणी सेना कुरुश्रेष्ठ वीरोंसे रक्षित, क्रुद्ध और बलवान् होकर मेरे सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते तैयार है, परन्तु जैसे अग्नि सूखे तृण-फूसको भस्म करती है, वैसेही उन सम्पूर्ण योद्धाओंको मैं अपने अस्त्रोंसे भस्म करते हुए गमन करूंगा। (४२-४६)

हे महाराज! इससे रथसजा करने वाले पुरुष मेरे रथमें सब अस्त्र शस्त्र, धनुष तूणीर आदि युद्धके उपयोगी, सम्पूर्ण वस्तुओंको उचित रीतिसे लाकर इकट्ठी करें॥ इस संग्राममें नाना भांतिके अस्त्रशस्त्रोंको संग्रामके निमित्त रखना और आचार्यके उपदेशके अनुसार रथको पंचगुणोंसे युक्त करना उचित है। मुझे नानाभांतिके अस्त्र शस्त्र धारण करनेवाले विषधारी सर्पके समान क्रोधी काम्बोज देशीय योद्धाओंके सङ्ग रणभूमिमें युद्ध करना होगा। (४६-४९)

राजा दुर्योधनसे सदा सत्कार पाने-

शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५० ॥
अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः ।
तथाऽन्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः ॥ ५१ ॥
समेष्यामि रणे राजन्बहुभिर्युद्धदुर्मदैः ।
तस्माद्वै वाजिनो मुख्या विश्रुताः शुभलक्षणाः ॥५२॥
उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे ।

सञ्जय उवाच— तस्य सर्वानुपासङ्गान्सर्वोपकरणानि च ॥ ५३ ॥
रथे चाऽस्थापयद्राजा शस्त्राणि विविधानि च ।
ततस्तान्सर्वतोयुक्तान्सदश्वांश्चतुरो जनाः ॥ ५४ ॥
रसवत्पाययामासुः पानं मदसमीरणम् ।
पीतोपवृत्तान्स्नातांश्च जग्धान्नान्समलंकृतान् ॥ ५५ ॥
विनीतशल्यांस्तुरगांश्चतुरो हेममालिनः ।
तान्युक्तान्रुक्मवर्णाभान्विनीताञ्शीघ्रगामिनः ॥५६॥
संहृष्टमनसो ऽव्यग्रान्विधिवत्कल्पितान्रथे ।
महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना ॥ ५७ ॥

वाले उनके हितैषी प्रहार करनेमें निपुण विषधर सर्पके समान महाक्रूर किरातोंके सङ्ग मुझे युद्ध करना पडेगा । इन्द्रके समान पराक्रमी जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी महाबली शक देशीय और दूसरे महापराक्रमी अत्यन्त भयङ्कर नाना भांतिसे युद्ध करनेवाले योद्धाओंके सङ्ग मुझे युद्ध करना होगा । इससे मेरा सारथी मेरे रथसे घोडोंको खोलके उन्हें जल पिलावे और वार वार पृथ्वीपर लुटा कर उनकी थकावट दूर करके फिर मेरे रथमें जोतदेवे । (४९–५२)

सञ्जय बोले, तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिरने सात्यकिके रथमें तूणीर और युद्धके योग्य समस्त वस्तु तथा अस्त्र शस्त्रोंको रखवा दिया; और सेवकोंने सात्यकिके रथसे चारों घोडोंको खोल कर उन्हें उत्तम पीने योग्य मद-पान कराया; फिर उन घोडोंके शल्यको निकालकर यथा रीतिसे उनकी थकावट दूर करनेके वास्ते वार वार पृथ्वीमें लुटा कर स्नान, पान और भोजन करा के उन्हें उत्तम रीतिसे सुन्दर आभूषणों से अलंकृत किया । (५३—५६)

अनन्तर वे सब सुवर्णके समान प्रकाशित उत्तम शिक्षासे युक्त शीघ्रगामी घोडे हर्षित होकर युद्धभूमिमें भ्रमण करनेके वास्ते उत्सुक हुए तब उन्हें

संवृते केतकैर्हैमैर्मणिविद्रुमचित्रितैः ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥ ५८ ॥
हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे ।
योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषितान् ॥ ५९ ॥
दारुकस्यानुजो भ्राता सूतस्तस्य प्रियः सखा ।
न्यवेदयद्रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥ ६० ॥
ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः ।
स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्कानथो ददौ ॥ ६१ ॥
आशीर्वादैः परिष्वक्तः सात्यकिः श्रीमतां वरः ।
ततः स मधुपर्कार्हः पीत्वा कैलातकं मधु ॥ ६२ ॥
लोहिताक्षो बभौ तत्र मदविह्वललोचनः ।
आलभ्य वीरकांस्यं च हर्षेण महताऽन्वितः ॥ ६३ ॥
द्विगुणीकृततेजा हि प्रज्वलन्निव पावकः ।
उत्सङ्गे धनुरादाय सशरं रथिनां वरः ॥ ६४ ॥
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः कवची समलंकृतः ।
लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः कन्याभिश्चाभिनन्दितः ॥ ६५ ॥

सुवर्णभूषित करके अनेक अस्त्र शस्त्रोंसे पूर्ण, सुवर्ण दण्डसे युक्त, छत्र शोभित, सुवर्णयुक्त मणि रत्नोंसे चित्रित छोटी छोटी पताका और सोनेकी मालासे युक्त बादलके समान पाण्डुर वर्णवाली सिंह ध्वजासे सात्यकिके रथको अलंकृत किया; और उन उत्तम घोडोंको उस रथमें जुतवा दिया ॥ (५६— ५९)

तिसके अनन्तर सात्यकिका प्यारा मित्र, दारुकका छोटा भाई इन्द्रके सारथी मातलिकी भांति सात्यकिके रथको सज्जित करके उनके निकट जाकर रथके सज्जित होनेका संवाद दिया ॥ अनन्तर श्रीमान् पुरुषोंके बीच अग्रगण्य माननीय सात्यकि स्नान करके पवित्र हुए और एक सहस्र स्नातक ब्राह्मणोंको स्वर्णमुद्रा दान किया; ब्राह्मणोंने सात्यकिको आशीर्वाद दिया। अनन्तर सात्यकि किरात देशीय मधुपान करके मदसे मतवारे लालनेत्रसे युक्त होकर कल्याण दायक वीरकांस्यपात्र को स्पर्श किया। फिर अत्यन्त हर्षित होकर द्विगुण तेजस्वी हुए; और अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ (६० —६४)

ब्राह्मण लोग उनको स्वस्तिवाचन करने लगे, और कन्या लोग सुगन्धित फूल

युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
तेन मूर्द्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम् ॥ ६६ ॥
ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टा वातरंहसः ।
अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वाणाः स सैन्धवाः ॥ ६७ ॥
तथैव भीमसेनोऽपि धर्मराजेन पूजितः ।
प्रायात्सात्यकिना सार्धमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ॥ ६८ ॥
तौ दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तौ तव सेनामरिन्दमौ ।
संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः ॥ ६९ ॥
सन्नद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः ।
अभिनन्द्याऽब्रवीद्वीरस्तदा हर्षकरं वचः ॥ ७० ॥
त्वं भीम रक्ष राजानमेतत्कार्यतमं हि ते ।
अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम् ॥ ७१ ॥
आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोऽभिरक्षणम् ।

तथा मालासे उन्हें आनन्दित करने लगीं । वह कवच तथा सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे भूषित हुए; फिर धनुष बाण बगलमें लेकर हाथ जोड राजा युधिष्ठिर के दोनों पावोंको छूके प्रणाम किया, युधिष्ठिरने उनका मस्तक सूंघा, तब सात्यकि अपने उत्तम रथ पर चढे ॥ (६५–६६)

तिसके अनन्तर वायुके समान वेग गामी सिन्धुदेशीय हृष्टपुष्ट अजेय घोडे हिनहिनाते हुए सात्यकिके रथको लेकर बढे और भीमसेन भी धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर उन्हें प्रणाम कर सात्यकिके सङ्ग गमन करने लगे ॥ द्रोणाचार्य आदि तुम्हारी सेनाके महारथी लोग सात्यकि और भीमसेनको अपनी सेनाके बीच प्रवेश करते देख, सावधान होके युद्ध करनेके वास्ते रण भूमिमें स्थित हुए ॥ (६७–६९)

परन्तु महाबाहु सात्यकि भीमसेनको कवच धारण करके अनुसरण करते हुए देख हर्षके सहित पुलकित होकर उन्हें आनन्दित करते हुए उनसे हर्षजनक यह वचन बोले, हे भीमसेन ! इस समय तुम महाराज धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षा करो । क्योंकि यही तुम्हारा सबसे श्रेष्ठ कार्य है । मैं इन कालके वशमें हुए कुरुसेनाके पुरुषोंको तितर बितर करके इस महासेनाके बीच प्रवेश करूं-गा। राजाकी रक्षा करना वर्त्तमान और भविष्य दोनों कालमें श्रेष्ठ तथा मङ्गल-का कार्य है । इससे यदि तुम मेरे प्यारे

जानीषे मम वीर्यं त्वं तव चाऽहमरिन्दम ॥ ७२ ॥
तस्माद्भीम निवर्त्तस्व मम चेदिच्छसि प्रियम् ।
तथोक्तः सात्यकिं प्राह व्रज त्वं कार्यसिद्धये ॥ ७३ ॥
अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः ॥ ७४ ॥
गच्छ गच्छ ध्रुवं पार्थ ध्रुवो हि विजयो मम ।
यन्मे गुणानुरक्तश्च त्वमद्य वशमास्थितः ॥ ७५ ॥
निमित्तानि च धन्यानि यथा भीम वदन्ति माम् ।
निहते सैन्धवे पापे पाण्डवेन महात्मना ॥ ७६ ॥
परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ७७ ॥
एतावदुक्त्वा भीमं तु विसृज्य च महायशाः ।
सम्प्रैक्षत्तावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ॥ ७८ ॥
तं दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तं सैन्यं तव जनाधिप ।
भूय एवाऽभवन्मूढं सुभृशं चाऽप्यकम्पत ॥ ७९ ॥

कार्यको करनेकी इच्छा करते हो, तो यहांसे ही लौट जाओ; तुम मेरे बल पराक्रमको जानते हो और मैं भी तुम्हारे बलको जानता हूं ॥ (७०–७२)

भीमसेन सात्यकिके ऐसे वचन सुनके उनके वचन अनुसार कार्य करनेमें संमत हुए और सात्यकिसे यह वचन बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम अपने कार्यको सिद्ध करनेके वास्ते गमन करो, मैं महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करूंगा। मधुकुलश्रेष्ठ सात्यकि भीमकी बात सुन कर उनसे फिर बोले, " हे पार्थ ! तुम शीघ्र गमन करो, क्योंकि तुम मेरे प्रीतिके पात्र, अनुरक्त और वशवर्त्ती हुए हो अर्थात् तुमने मेरे अभिप्रायके विरुद्ध कार्य नहीं किया है, यह एक शुभ शकुन है, और दूसरे भी जो सब शुभ शकुन दीख पडते हैं; उससे आज मेरी अवश्य ही युद्धभूमिमें विजय होवेगी। पापी सिन्धुराज जयद्रथ जब महात्मा अर्जुनके अस्त्रोंसे मारा जावेगा, तब मैं वहांसे लौट कर महात्मा राजा युधिष्ठिरको आलिङ्गन करूंगा, इसमें सन्देह नहीं है।" (७४–७७)

महात्मा सात्यकि भीमसेनसे ऐसा वचन कह कर तुम्हारी सेनाकी ओर इस प्रकार देखने लगे, जैसे हरिणोंके झुण्डकी ओर सिंह देखता है ।। तुम्हारी सेनाके योद्धालोग सात्यकिको उस महा सेनाके बीच प्रवेश करनेका इच्छुक

ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः ।
दिदृक्षुरर्जुनं राजन्धर्मराजस्य शासनात् ॥ ८० ॥ [४३६०]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

सञ्जय उवाच— प्रयाते तव सैन्यं तु युयुधाने युयुत्सया ।
धर्मराजो महाराज स्वेनानीकेन संवृतः ॥ १ ॥
प्रायाद् द्रोणरथं प्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः ।
ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः ॥ २ ॥
प्राक्रोशत्पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः ।
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ॥ ३ ॥
यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ॥ ४ ॥
इति ब्रुवन्तो वेगेन निपेतुस्ते महारथाः ।
वयं प्रतिजिगीषन्तस्तत्र तान्समभिद्रुताः ॥ ५ ॥
ततः शब्दो महानासीद्युयुधानरथं प्रति ।

जान, फिर मोहित होकर कांपने लगे॥ तिसके अनन्तर धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार अर्जुनके देखनेकी इच्छा करनेवाले सात्यकिने सहसा तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश किया ॥ (७८-८०) [४३६०]

द्रोणपर्वमें एकसौ बारह अध्याय समाप्त ॥

द्रोणपर्वमें एकसौ तेरह अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! जब सात्यकिने युद्धकी इच्छासे तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश किया, तब धर्मराज युधिष्ठिर अपनी सेनाके बीचमें घिरकर द्रोणाचार्यके रथके समीप जानेकी इच्छासे सात्यकिके पीछे गमन करने लगे । अनन्तर युद्धदुर्मद पाञ्चालराज पुत्र और राजा वसुदान पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंके बीच ऊंचे स्वरसे पुकारके यह वचन कहने लगे, हे शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग जल्दी बढो, शस्त्र चलाओ, द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौडो, जिससे पराक्रमी सात्यकि सुख पूर्वक कौरवोंकी सेनाके बीच प्रवेश कर सकें; क्योंकि बहुतेरे महारथी योद्धा सात्यकिको पराजित करनेके वास्ते यत्न करेंगे ॥ (१-४)

पाण्डवोंकी ओरके महारथी योद्धा-लोग इसी प्रकार वचन कहते हुए वेग पूर्वक द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौडने लगे। हम लोग भी उन लोगोंके वधकी इच्छा करके उनकी ओर दौडे ॥ दोनों ओर की सेनाके दौडने पर सात्यकिके रथके समीपमें महाघोर शब्द होने

आकीर्यमाणा धावन्ती तव पुत्रस्य वाहिनी ॥ ६ ॥
सात्वतेन महाराज शतधाऽभिव्यशीर्यत।
तस्यां विदीर्यमाणायां शिनेः पुत्रो महारथः ॥ ७ ॥
सप्त वीरान्महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत्।
अथाऽन्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदेश्वरान् ॥ ८ ॥
शरैरनलसङ्काशैर्निन्ये वीरान्यमक्षयम्।
शतमेकेन विव्याध शतेनैकं च पत्त्रिणाम् ॥ ९ ॥
द्विपारोहान्द्विपांश्चैव हयारोहान्हयांस्तथा।
रथिनः साश्वसूतांश्च जघानेशः पशूनिव ॥ १० ॥
तं तथाऽद्भुतकर्माणं शरसम्पातवर्षिणम्।
न केचनाऽभ्यद्रवन्वै सात्यकिं तव सैनिकाः ॥ ११ ॥
ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना।
आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ॥ १२ ॥
तमेकं बहुधाऽपश्यन्मोहितास्तस्य तेजसा।
चक्रैर्विमथितैश्चैव भग्ननीडैश्च मारिष ॥ १३ ॥

लगा; तुम्हारे पुत्रकी महासेना सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर तितर बितर होने लगी। उस सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंके तितर बितर होने पर शिनिपौत्र सात्यकि अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे शत्रु सेनाके अगाडी स्थित महाधनुर्द्धारी सात वीरोंका वध करके दूसरे देशोंसे आये हुए शूरवीरोंका संहार करके उन्हें यम पुरीमें भेजने लगे॥ उस समय सात्यकि एक एक बाणसे एक एक सौ मनुष्योंको और एक एक मनुष्योंको एक एकसौ बाणोंसे विद्ध करने लगे॥ (५-९)

गजसवार, हाथी, घुडसवार, घोडे, तथा सारथियोंके सहित रथियोंका इसी प्रकार नाश करने लगा, जैसे भगवान् रुद्र सब प्राणियोंका संहार करते हैं॥ तुम्हारी सेनाके बीचसे कोई दल भी शस्त्र चलानेवाले सात्यकिके संमुख गमन करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ सेनाके योद्धा लोग महाबाहु सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर तथा सात्यकिके बलपराक्रमको देख युद्धभूमिसे पृथक् होने लगे। (१०—१२)

तब शूरवीर योद्धालोग सात्यकिको युद्धभूमिमें भ्रमण करते देख, उसके तेजसे मोहित होकर एक ही सात्यकि को अनेक रूपसे बोध करने लगे। हे राजेन्द्र! टूटे रथ, रथके चक्के, धुरी,

चक्रैर्विमथितैश्छत्रैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अनुकर्षैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः ॥ १४ ॥
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैश्च विशाम्पते ।
हस्तिहस्तोपमैश्चाऽपि भुजङ्गाभोगसन्निभैः ॥ १५ ॥
ऊरुभिः पृथिवी च्छन्ना मनुजानां नराधिप ।
शशाङ्कसन्निभैश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ १६ ॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां सा बभावति मेदिनी ।
गजैश्च बहुधा छिन्नैः शयानैः पर्वतोपमैः ॥ १७ ॥
रराजाऽतिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ।
तपनीयमयैर्योक्त्रैर्मुक्ताजालविभूषितैः ॥ १८ ॥
उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्यशोभन्त तुरङ्गमाः ।
गतसत्वा महीं प्राप्य प्रहृष्टा दीर्घबाहुना ॥ १९ ॥
नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः ।
प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम् ॥ २० ॥
ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनञ्जयः ।
इयेष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः ॥ २१ ॥
भारद्वाजं समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः ।

ध्वजा, पताका, दण्ड, मनुष्योंके सुवर्ण भूषित शिरस्त्राण, सर्पके समान लम्बी सुन्दर भुजा और हाथियोंके सूण्डसमान शूरवीरोंके कटे हुए जङ्घोंसे वह रणभूमि परिपूरित होगई। वृषभ और हरिणके समान नेत्रवाले सुन्दर और मनोहर कुण्डलोंसे शोभित शूरवीरोंके कटे हुए शिरसे परिपूर्ण होके वह रणभूमि शोभित होने लगी॥ (१३—१७)

जैसे टूटे फूटे पर्वतोंके समूहसे पृथ्वी शोभित होती है, वैसेही पर्वतके समान पृथ्वीमें पडे मरे हुए हाथियोंके समूहसे वह रणभूमि प्रकाशित होने लगी। सुवर्ण की माला और मोतियों की झालरसे युक्त कितने ही उत्तम घोडे महाबाहु सात्यकिके बाणोंसे मर युद्ध-भूमिमें गिर कर शोभित होने लगे। सात्यकिने इसी भांति तुम्हारी सेनाके अनेक योद्धाओंका वध करके और सम्पूर्ण योद्धाओंको पराजित करके दूसरी सेनाके बीच प्रवेश किया था, सात्यकिने अर्जुनके मार्गसे गमन करनेकी अभिलाष किया; परन्तु द्रोणाचार्यने उसे निवारण किया॥ (१८—२१)

न न्यवर्त्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः ॥ २२ ॥
निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥
सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन्विव्याध सप्तभिः ।
हेमपुङ्खैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २४ ॥
तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत् ।
स तं न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥ २५ ॥
सिंहनादं ततः कृत्वा द्रोणं विव्याध सात्यकिः ।
दशभिः सायकैश्चाऽन्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च ॥ २६ ॥
युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः ।
एकेन सारथिं चाऽस्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ २७ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष ।
तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः ॥ २८ ॥
त्वरन्प्राच्छादयद्बाणैः शलभानामिव व्रजैः ।
तथैव युयुधानोऽपि द्रोणं बहुभिराशुगैः ॥ २९ ॥
आच्छादयदसम्भ्रान्तस्ततो द्रोण उवाच ह ।

क्रोधी सात्यकि द्रोणाचार्यके समीप पहुंच कर अपने नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको चला कर भी इस भांतिसे आगे नहीं बढ सके, जैसे समुद्रका वेग तटसे रुक कर आगे नहीं बढ सकता॥ द्रोणाचार्यने महारथ सात्यकिको रोक कर उसे पांच तीक्ष्ण मर्मभेदी बाणोंसे विद्ध किया॥ सात्यकिने भी कङ्क पंखवाले सात बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया॥ द्रोणाचार्यने छः बाणोंसे उसके रथके चारों घोडे सारथी और सात्यकिको विद्ध किया ॥ (२३–२५)

महारथ सात्यकिने द्रोणाचार्य के हस्तलाघव को न सहके सिंहनाद करके पहिले दश, फिर छह और उसके बाद आठ बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करके फिर दश बाणोंसे उन्हें विद्ध किया। अनन्तर सात्यकिने एक बाणसे द्रोणाचार्यके सारथी, चार बाणोंसे उनके चारों घोडे और एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा विद्ध किया ॥ (२६–२८)

तिसके अनन्तर द्रोणाचार्यने शीघ्रताके सहित शलभसमूहके समान अपने बाणोंके समूहसे सात्यकिको घोडे, सारथी, रथ और ध्वजाके सहित छिपा दिया। सात्यकिने भी उस ही भांति अपने

तवाऽऽचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा ॥ ३० ॥
युध्यमानं च मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्त्तत ।
त्वं हि मे युध्यतो नाऽद्य जीवन्यास्यसि माधव ॥३१॥
यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद् द्रुतम् ।
सात्यकिरुवाच— धनञ्जयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात् ॥ ३२ ॥
गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन्न मे कालात्ययो भवेत् ।
आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वास्यते सदा ॥ ३३ ॥
तस्मादेव व्रजाम्याशु यथा मे स गुरुर्गतः ।
सञ्जय उवाच— एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन् ॥ ३४ ॥
प्रयातः सहसा राजन्सारथिं चेदमब्रवीत् ।
द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे ॥ ३५ ॥
यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम् ।
एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम् ॥ ३६ ॥
अस्याऽनन्तरतस्त्वेतद्दाक्षिणात्यं महद्बलम् ।
तदनन्तरमेतच्च बाल्हिकानां महद्बलम् ॥ ३७ ॥

अनेक बाणोंकी वर्षा करके द्रोणाचार्यको छिपा दिया । (२८-३०)

तिसके अनन्तर द्रोणाचार्य सात्यकिसे बोले, हे सात्यकि ! तुम्हारा गुरु कादर की भांति युद्धभूमिमें मेरे संमुखसे हटके चला गया है; मैं युद्ध करता ही था, तो भी वह मुझे त्याग कर मेरी प्रदक्षिण करके चला है । परन्तु तुम यदि अपने गुरुकी भांति मुझे त्यागके नहीं जाओगे तो आज मेरे सङ्ग युद्ध करके तुम जीते जी मेरे संमुखसे मुक्त न हो सकोगे।(३०-३२)

सात्यकि बोले, हे ब्राह्मण ! तुम्हारी स्वस्ति होवे, मैं धर्मराजकी आज्ञा के अनुसार अर्जुनका अनुसरण करके गमन करूंगा; क्योंकि शिष्य लोग आचार्यके दिखाये हुए मार्गहीसे सदा गमन करते हैं । (३२-३४)

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! सात्यकिने ऐसा कहकर सहसा द्रोणाचार्यको त्याग के गमन किया । अनन्तर सात्यकि अपने सारथीसे यह वचन बोले, कि द्रोणाचार्य मुझे सब भांतिसे निवारण करनेके वास्ते यत्न करेंगे । तुम यत्नवान् होकर शीघ्रताके सहित रणभूमिमें अगाडी बढो; और मेरी बातोंको सुनो;- यह देखो, यह महातेजस्वी अवन्ती नगरीकी सेना है, उसके बाद बाल्हिक देशीय बडी सेना दीख पडती है; और

वाल्हिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च महद्बलम् ।
अन्योन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे॥ ३८॥
अन्योन्यं समुपाश्रित्य न त्यक्ष्यन्ति रणाजिरम् ।
एतदन्तरमासाद्य चोदयाऽश्वान्प्रहृष्टवत् ॥ ३९ ॥
मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे ।
वाल्हिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः ॥ ४० ॥
दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः ।
हस्त्यश्वरथसम्बाधं यत्राऽनीकं विलोक्यते ॥ ४१ ॥
नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम् ।
एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन् ॥ ४२ ॥
मध्यतो याहि यत्रोग्रं कर्णस्य च महद्बलम् ।
तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन्विशिखान्बहून्॥ ४३ ॥
युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्तिनम् ।
कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः ॥ ४४ ॥
प्राविशद्भारतीं सेनामपर्यन्तां स सात्यकिः ।

उसके आगे कर्णकी महासेना युद्धके निमित्त रणभूमिमें स्थित है ॥ ये सब सेना अलग अलग युद्धमें स्थित हैं, परन्तु ये सम्पूर्ण सेना एक दूसरीके आसरेसे युद्धभूमिसे न हटेंगी । तुम उन सेनाके बीचमें होकर मध्यम वेगके सहित घोडोंको चलाओ ॥ (३४-३९)

जिस स्थानमें नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रों को ग्रहण कर के वाह्लिक देशीय सेना और सूतपुत्र कर्णके वशवर्त्ती अनेक दक्षिणी योद्धा; हाथी, घोडे, रथोंके समूह और नाना देशीय पैदल सेनाके योद्धा लोग स्थित हैं; तुम उस ही स्थान पर तथा जहां कर्णकी घोर सेना स्थित है उस स्थान पर ही मेरे रथको ले चलो । ऐसा वचन कहके द्विजसत्तम द्रोणाचार्यको त्यागके सात्यकिने भारती महासेनाके बीच प्रस्थान किया ॥ (४०—४३)

महाराज ! जब महाबाहु सात्यकि युद्धभूमिमें निवृत्त न होकर दूसरी ओरसे सेनाके बीच गमन करने लगे, तब द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर अनेक बाणोंको चलाते हुए सात्यकिके पीछे पीछे दौडे। सात्यकिने अपने तीक्ष्ण-बाणोंसे कर्णकी महासेनाके योद्धाओंको विद्ध करते तथा कुरुसेनाके योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे पीडित करते हुए उस भारती महा

प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च ॥ ४५ ॥
अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत् ।
तमापतन्तं विशिखैः षड्भिराहत्य सात्यकिः ॥ ४६ ॥
चतुर्भिश्चतुरोऽस्याश्वानाजघानाऽऽशु वीर्यवान् ।
ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः ॥ ४७ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
स ताड्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः ॥ ४८ ॥
सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे ।
स वत्सदन्तं सन्धाय जिह्मगानिलसन्निभम् ॥ ४९ ॥
आकृष्य राजन्नाकर्णाद्विव्याधोरसि सात्यकिम् ।
स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहं च सायकः ॥ ५० ॥
सपुङ्खपत्रः पृथिवीं विवेश रुधिरोक्षितः ।
अथाऽस्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत्परमास्त्रवित् ॥ ५१ ॥
समार्गणगणं राजन्कृतवर्मा शरासनम् ।
विव्याध च रणे राजन्सात्यकिं सत्यविक्रमं ॥ ५२ ॥
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे ।

सेनाके बीच प्रवेश किया। (४३–४५)

जब सात्यकिने इस प्रकार से कुरु-सेनाके बीच प्रवेश किया, और उनके अस्त्रोंसे पीडित होकर सेनाके योद्धा इधर ऊधर भागने लगे, तब महारथ कृतवर्मा अत्यन्त क्रुद्ध होके सात्यकिको निवारण करने लगे। महापराक्रमी सात्यकिने कृतवर्माको संमुख आये हुए देख, छः बाणोंसे उनके ऊपर प्रहार किया, फिर चार बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको विद्ध करके सोलह बाणोंसे कृतवर्माके हृदयमें प्रहार किया। ४५-४८

महारथ कृतवर्मा सात्यकिके महा-तेजस्वी अनेक बाणोंसे विद्ध होकर उसे नहीं सह लिया; उन्होंने सर्प और अग्निके समान तेजस्वी वत्सदन्त नाम एक बाण धनुषपर खींचके सात्यकिके वक्षस्थलमें प्रहार किया, वह बाण सात्यकिके कवच और शरीरको भेद कर रुधिर पीता हुआ उनके शरीरसे निकल कर पृथ्वीमें घुस गया। सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले कृतवर्माने उसके बाद अत्यन्त क्रुद्ध होकर सात्यकिके धनुषको रोदा और बाणके सहित अपने तीक्ष्णबाणोंसे काट कर गिरा दिया; फिर दश तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिके

ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ ५३ ॥
जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः ।
ततोऽन्यत्सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः ॥ ५४ ॥
व्यसृजद्विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ।
सरथं कृतवर्माणं समन्तात्पर्यवारयत् ॥ ५५ ॥
छादयित्वा रणे राजन्हार्दिक्यं स तु सात्यकिः ।
अथाऽस्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत ॥ ५६ ॥
स पपात हतः सूतो हार्दिक्यस्य महारथात् ।
ततस्ते यन्तृरहिताः प्राद्रवन्तुरगा भृशम् ॥ ५७ ॥
अथ भोजस्तु सम्भ्रान्तो निगृह्य तुरगान्स्वयम् ।
तस्थौ वीरो धनुष्पाणिस्तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ ५८ ॥
स मुहूर्त्तमिवाऽऽश्वस्य सदश्वान्समनोदयत् ।
व्यपेतभीरमित्राणामावहत्सुमहद्भयम् ॥ ५९ ॥
सात्यकिश्चाऽभ्यगात्तस्मात्स तु भीममुपाद्रवत् ।
युयुधानोऽपि राजेन्द्र भोजानीकाद्विनिःसृतः ॥ ६० ॥
प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्बोजानां महाचमूम् ।

हृदयमें प्रहार किया ॥ (४८—५३)

तिसके अनन्तर महापराक्रमी सात्यकिने अपना धनुष कटता हुआ देख एक शक्ति ग्रहण करके कृतवर्माकी दाहिनी भुजामें प्रहार किया। अनन्तर एक दृढ धनुष ग्रहण करके सात्यकिने कृतवर्माको सैकडों, सहस्रों बाणोंकी वर्षासे रथके सहित छिपा दिया॥ महाराज! सात्यकिने कृतवर्माको अपने बाणोंसे अदृश्य करके फिर एक भल्लसे उनके सारथीका सिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिया; जब सारथि मरके उस महारथके उपरसे नीचे गिरा, तब कृतवर्माके रथके घोडे सारथीसे रहित होकर दूसरी ओर रथको खींचते हुए दौडने लगे॥ (५४—५७)

अनन्तर भोजराज कृतवर्मा निर्भय चित्तसे घोडोंको रोक कर धनुष ले स्थित हुए। सेनाके सम्पूर्ण योद्धा कृतवर्माके इस कार्यको देख कर उनकी प्रशंसा करने लगे॥ वह मुहूर्त भरमें फिर तैयार होकर तथा घोडोंको आगे बढा कर शत्रुओंको भयभीत करने लगे; परन्तु सात्यकिने वहांसे प्रस्थान किया और कृतवर्मा भीमसेनकी ओर दौडे ॥ (५८—६०)

हे राजेन्द्र! सात्यकिने भोजसेनासे

स तत्र बहुभिः शूरैः सन्निरुद्धो महारथैः ॥ ६१ ॥
न चचाल तदा राजन्सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सन्धाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवेश्य च॥ ६२ ॥
अभ्यधावद्रणे यत्तो युयुधानं युयुत्सया ।
तथा तमनुधावन्तं युयुधानस्य पृष्ठतः ॥ ६३ ॥
न्यवारयन्त संहृष्टाः पाण्डुसैन्ये बृहत्तमाः ।
समासाद्य तु हार्दिक्यं रथानां प्रवरं रथम् ॥ ६४ ॥
पञ्चाला विगतोत्साहा भीमसेनपुरोगमाः ।
विक्रम्य वारिता राजन्वीरेण कृतवर्मणा ॥ ६५ ॥
यतमानांश्च तान्सर्वानीषद्विगतचेतसः ।
अभितस्ताञ्शरौघेण क्लान्तवाहानकारयत् ॥ ६६ ॥
निगृहीतास्तु भोजेन भोजानीकेप्सवो रणे ।
अतिष्ठन्नार्यवद्वीराः प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६७ ॥ [४४२७]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११३॥

निकल कर काम्बोज देशीय महासेनाके बीच प्रवेश किया । वहां पर अनेक शूरवीर योद्धा और महारथियोंने उन्हें आगे बढनेसे रोका, इस हीसे सात्यकि उस स्थानसे आगे नहीं बढ सके । उधर द्रोणाचार्य सेनाको यथायोग्य स्थानोंमें स्थित कर और भोजराज कृतवर्माके ऊपर सम्पूर्ण सेनाका भार समर्पण करके सात्यकिके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे ॥ (६०-६३)

उन्हें सात्यकिके पीछे पीछे युद्ध करनेके वास्ते गमन करते देख भीमसेन आदि पाण्डव और पाञ्चाल देशीय अनेक शूरवीर योद्धा क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यको निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए; परन्तु कृतवर्माके समीप पहुंचकर वे सब कोई उत्साह रहित होगये । महावीर कृतवर्मा अपने पराक्रमको प्रकाशित करके उन सम्पूर्ण योद्धाओंको निवारण करने लगे। पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण वाहन थके [illegible] थे; और उनकी सेनाके योद्धा बाणोंकी चोटसे पीडित होकर उत्साह रहित होगये थे; इससे अत्यन्त यत्नवान् होकर भी कृतवर्माके संमुखसे आगे नहीं बढ सके । परन्तु वे सम्पूर्ण योद्धा भोजराज कृतवर्माके अस्त्रोंसे निवारित होकर भी यशकी अभिलाषा करके भोजसेनाके योद्धाओंको आक्रमण करनेकी इच्छासे क्षत्रिय धर्मको स्मरण करके युद्धभूमिसे विमुख

धृतराष्ट्र उवाच—एवं बहुगुणं सैन्यमेवं प्रविचितं बलम् ।
व्यूढमेवं यथान्यायमेवं बहु च सञ्जय ॥ १ ॥
नित्यं पूजितमस्माभिरभिकामं च नः सदा ।
प्रौढमत्यद्भुताकारं पुरस्ताद् दृष्टविक्रमम् ॥ २ ॥
नाऽतिवृद्धमबालं च न कृशं नाऽतिपीवरम् ।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥
आत्तसन्नाहसञ्छन्नं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यासु बह्वीषु परिनिष्ठितम् ॥ ४ ॥
आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते ।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ५ ॥
नागेष्वश्वेषु बहुशो रथेषु च परीक्षितम् ।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ६ ॥
न गोष्ठ्या नोपकारेण न सम्बन्धनिमित्ततः ।

नहीं हुए ॥ (६३–६७) [४४२७]

द्रोणपर्वमें एक सौ तेरह अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एक सौ चौदह अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! हमारी सम्पूर्ण सेना अनेक गुणोंसे युक्त है; और युद्धके सब कार्योंको जानती है; उसका यथा रीतिसे उत्तम व्यूह भी बनाया जाता है और वह गिनतीमें भी थोडी नहीं है ॥ हम लोग उस सेनाका सदा संमान करते रहते हैं; और मेरी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भी हमलोगोंके प्रिय कार्यके करनेकी अभिलाष किया करते हैं। वे सब योद्धा हृष्ट-पुष्ट, अद्भुत रूपवाले, युद्ध करनेमें निपुण और पराक्रमी हैं ॥ (१–२)

मेरी सेनाके योद्धा लोग न बहुत बूढे और बाल हैं, न शरीरसे दुबले और न बहुत मोटे हैं। उस सम्पूर्ण योद्धाओंका मध्यम शरीर है। वे सब ही पराक्रमी और शीघ्र गमन करनेवाले हैं, सबही सावधान रोगरहित और कवचधारी हैं, वे सब कोई अनेक अस्त्र शस्त्रोंकी युद्ध जाननेवाले; घोडे, हाथी और रथोंपर चढके लडनेवाले, वाहनोंसे शीघ्रताके सहित उतरनेमें समर्थ, शत्रु-सेनाके बीच प्रवेश करने और उससे बाहर निकलनेमें निपुण हैं ॥ उन योद्धाओंको यथारीतिसे परीक्षा करके उनको यथा योग्य वेतन नियत किया गया है ॥ (३–६)

उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए कहके तथा मित्रता और सम्बन्धके कारणसे उन्हें

नाऽनाहूतं नाऽप्यभृतं मम सैन्यं बभूव ह ॥ ७ ॥
कुलीनार्यजनोपेतं तुष्टपुष्टमनुद्धतम्।
कृतमानोपचारं च यशस्वि च मनस्वि च ॥ ८ ॥
सचिवैश्चाऽपरैर्मुख्यैर्बहुभिः पुण्यकर्मभिः।
लोकपालोपमैस्तात पालितं नरसत्तमैः ॥ ९ ॥
बहुभिः पार्थिवैर्गुप्तमस्मत्प्रियचिकीर्षुभिः।
अस्मानभिसृतैः कामात्सबलैः सपदानुगैः ॥ १० ॥
महोदधिमिवाऽऽपूर्णमापगाभिः समन्ततः।
अपक्षैः पक्षिसङ्काशै रथैरश्वैश्च संवृतम् ॥ ११ ॥
प्रभिन्नकरटैश्चैव द्विरदैरावृतं महत्।
यदहन्यत मे सैन्यं किमन्यद्भागधेयतः ॥ १२ ॥
योधाक्षय्यजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम्।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्रासझषाकुलम् ॥ १३ ॥
ध्वजभूषणसम्बाधरत्नोपलसुसञ्चितम्।

सेनामें नहीं नियुक्त किया गया है। वे सब विना बुलाये, वा अपनी प्रार्थनाके अनुसार तथा नवीन रीतिसे मेरी सेनाके बीच नहीं नियुक्त हुए हैं। विशेष करके वे सब श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए, श्रेष्ठ कुलके योग्य श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, सन्तोषी, हृष्ट पुष्ट, यशस्वी और मनस्वी हैं उन लोगोंका संमान और उपकार भी किया जाता है ॥ (७—८)

वे सब योद्धालोग मन्त्रियों तथा लोकपालोंके समान पराक्रमी मुख्य मुख्य सेनापतियोंसे परिपालित होते रहते हैं; और वे सब योद्धा लोग मेरे प्रिय कार्यके करनेकी अभिलाष करते हैं; मुझसे अनुरक्त हुए राजा लोग अपने अनुयायियोंके सहित उन योद्धाओंकी रणभूमिमें रक्षा करते हैं। चारों ओरसे आई हुई नदियोंके समूहकी भांति सम्पूर्ण सेना मेरी समुद्र समान महासेनामें मिल कर परिपूर्ण हुई है। यह सब सेना पक्षरहित और पक्षियोंके समान रथ, घोडे और मदचूते हुए मतवारे हाथियोंसे परिपूरित है। हे सञ्जय! मेरी सेना ऐसी श्रेष्ठ होकर भी जब रणभूमिमें मारी जारही है; तब उसका कारण प्रारब्ध को छोडके और क्या कहा जासकता है? (९–१२)

शूरवीर योद्धारूपी अगाध समुद्र; वाहन रूपी लहर, रथरूपी नौका; तलवार, गदा, प्रास, परशु और बाणरूपी

वाहनैरभिधावद्भिर्वायुवेगविकम्पितम् ॥ १४ ॥
द्रोणगम्भीरपातालं कृतवर्ममहाह्रदम् ।
जलसन्धमहाग्राहं कर्णचन्द्रोदयोद्धतम् ॥ १५ ॥
गते सैन्यार्णवं भित्त्वा तरसा पाण्डवर्षभे ।
सञ्जयैकरथेनैव युयुधाने च मामकम् ॥ १६ ॥
तत्र शेषं न पश्यामि प्रविष्टे सव्यसाचिनि ।
सात्वते च रथोदारे मम सैन्यस्य सञ्जय ॥ १७ ॥
तौ तत्र समतिक्रान्तौ दृष्ट्वाऽतीव तरस्विनौ ।
सिन्धुराजं तु सम्प्रेक्ष्य गाण्डीवस्येषुगोचरे ॥ १८ ॥
किं नु वा कुरवः कृत्यं विदधुः कालचोदिताः ।
दारुणैकायनेऽकाले कथं वा प्रतिपेदिरे ॥ १९ ॥
ग्रस्तान्हि कौरवान्मन्ये मृत्युना तात सङ्गतान् ।
विक्रमोऽपि रणे तेषां न तथा दृश्यते हि वै ॥ २० ॥
अक्षतौ संयुगे तत्र प्रविष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।

मछरियोंसे युक्त, रत्न आभूषण, ध्वजा और वस्त्ररूपी कमलपुष्पसे शोभित, दौडते हुए सम्पूर्ण वाहनरूपी वायुसे उछलित, द्रोणाचार्यरूपी आधार और मकर मच्छसे युक्त कृतवर्मारूपी महाह्रदसे शोभित; जलसन्ध आदि मकर घडियालसे युक्त और कर्ण रूपी चन्द्रके उदय होनेपर अत्यन्त भयङ्कर लहरसे युक्त होनेवाले समुद्रके समान मेरी महाभयङ्कर सेना है। (१३–१५)

शीघ्रताके सहित भेदकर भरतकुलश्रेष्ठ अर्जुन और सात्यकि अकेलेही रथपर चढके जब मेरी महासेनाके बीच प्रविष्ट हुए हैं; मेरी सेनाके बीच जो कोई पुरुष जीवित बचेगा, ऐसा पराक्रमी मैं किसीको नहीं देखता हूं। कालके वशमें हुए कौरवोंने अर्जुन और सात्यकिको वेगपूर्वक सेना अतिक्रम करते देख, तथा सिन्धुराज जयद्रथको गाण्डीवधनुर्द्धारी अर्जुनके समीप स्थित देखकर उस समय कौनसा कार्य किया? उस महाघोर संग्रामके समय उन लोगोंकी कैसी दशा हुई थी? (१६–१९)

हे तात! मैं बोध करता हूं, वे सब कालके वशमें होगये हैं; इस समय युद्ध भूमिमें उनका पहिलेके समान पराक्रम नहीं दीख पडता है॥ कृष्ण अर्जुन घाव रहित शरीरसे मेरी सेनाके बीच प्रविष्ट हुए हैं, उन लोगोंको युद्धभूमिसे निवारण करे, ऐसा कोई भी पुरुष मेरी

न च वारयिता कश्चित्तयोरस्तीह सञ्जय ॥ २१ ॥
भृताश्च बहवो योधाः परीक्ष्यैव महारथाः ।
वेतनेन यथायोगं प्रियवादेन चाऽपरे ॥ २२ ॥
असत्कारभृतस्तात मम सैन्ये न विद्यते ।
कर्मणा ह्यनुरूपेण लभ्यते भक्तवेतनम् ॥ २३ ॥
न चाऽयोधोऽभवत्कश्चिन्मम सैन्ये तु सञ्जय ।
अल्पदानभृतस्तात तथा चाऽभृतको नरः ॥ २४ ॥
पूजितो हि यथाशक्त्या दानमानासनैर्मया ।
तथा पुत्रैश्च मे तात ज्ञातिभिश्च सबान्धवैः ॥ २५ ॥
ते च प्राप्यैव संग्रामे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
शैनेयेन परामृष्टाः किमन्यद्भागधेयतः ॥ २६ ॥
रक्ष्यते यश्च संग्रामे ये च सञ्जय रक्षिणः ।
एकः साधारणः पन्था रक्ष्यस्य सह रक्षिभिः ॥ २७ ॥
अर्जुनं समरे दृष्ट्वा सैन्धवस्याऽग्रतः स्थितम् ।
पुत्रो मम भृशं मूढः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ २८ ॥

इस सम्पूर्ण सेनाके बीच नहीं दिखाई देता है ॥ (२०–२१)

हे सञ्जय ! मेरी सेनाके सैनिक महारथियोंको परीक्षा करके यथायोग्य वेतनके अनुसार और बहुतेरे महारथी वीरोंको मीठे वचनोंसे संमानित करके सेनाके बीच नियुक्त किया गया है; उन लोगोंके बीच कोई निरादरके सहित मेरी सेनाके बीच नहीं नियुक्त किया है; मेरी सेनाके सब पुरुष अपनी योग्यताके अनुसार अन्न और वेतन पाते हैं ॥ मेरी सेनामें कोई वीर योद्धा थोड़े वेतन पर नियुक्त नहीं है। जातिके पुरुष बन्धु-बान्धवोंके सहित उन्हें दान, मान और आदरसे उन सम्पूर्ण सैनिक पुरुषों को अपनी शक्तिके अनुसार संमानित करते हैं ॥ (२२–२५)

परन्तु ऐसे योद्धालोग भी जब सव्यसाची अर्जुन और सात्यकिके संमुखसे युद्धभूमिमें पराजित हुए हैं, तब उसका कारण भाग्यके अतिरिक्त और क्या कहा जासकता है ? संग्रामभूमिमें जो महारथी उनकी रक्षा करते हैं, और जो योद्धा मेरे शूरवीर महारथियोंसे रक्षित होते हैं; उन दोनोंको ही एक साधारण मार्ग ही से गमन करना पड़ता है ॥ मेरे महामूर्ख पुत्र दुर्योधनको सिन्धुराजके आगे स्थित और सात्यकिको भी

सात्यकिं च रणे दृष्ट्वा प्रविशन्तमभीतवत्।
किं नु दुर्योधनः कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ २९ ॥
सर्वशस्त्रातिगौ सेनां प्रविष्टौ रथिसत्तमौ।
दृष्ट्वा कां वै धृतिं युद्धे प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३० ॥
दृष्ट्वा कृष्णं तु दाशार्हमर्जुनार्थे व्यवस्थितम्।
शिनीनामृषभं चैव मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३१ ॥
दृष्ट्वा सेनां व्यतिक्रान्तां सात्वतेनाऽर्जुनेन च।
पलायमानांश्च कुरून्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३२ ॥
विद्रुतान्रथिनो दृष्ट्वा निरुत्साहान्द्विषज्जये।
पलायनकृतोत्साहान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३३ ॥
शून्यान्कृतान्रथोपस्थान्सात्वतेनाऽर्जुनेन च।
हतांश्च योधान्संदृश्य मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥३४ ॥
व्यश्वनागरथान्दृष्ट्वा तत्र वीरान्सहस्रशः।
धावमानान्रणे व्यग्रान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः॥ ३५ ॥
महानागान्विद्रवतो दृष्ट्वाऽर्जुनशराहतान्।

अपनी सेनाके बीच निर्भय चित्तसे प्रवेश करते देख, उस समयके अनुसार किस कार्यका निश्चय किया ? २६-२९

मेरी सेनाके दूसरे महारथ योद्धाओं ने रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन और सात्यकि को सब शस्त्रधारीयोंको अतिक्रम करते हुए सेनाके बीच प्रवेश करते देख किस भांतिसे धीरज धारण किया ? मुझे बोध होता है, कृष्ण-अर्जुनको सेना अतिक्रम करते और अपनी सेनाके योद्धाओंको भागते देख, दुर्योधन शोकित हुआ होगा और कृष्ण तथा सात्यकिको अर्जुनके सहायक देख, मेरे सम्पूर्ण पुत्र शोकसे आर्त्त हुए होंगे ॥ रथियोंको शत्रुजय करनेमें उत्साहरहित भागनेमें तत्पर और युद्धसे विमुख होते देख, मेरे पुत्र अत्यन्त शोकित हुए होंगे ॥ (३०—३३)

अर्जुन और सात्यकिको अपनी ओरके रथियोंका वध करते और सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंका नाश करते देख, मेरे पुत्र शोकसे आर्त्त होगये होंगे ॥ मनुष्य और घोडोंको अर्जुनके अस्त्रोंसे रथ-रहित होते और व्याकुल होके इधर उधर दौडते देख मेरे पुत्र शोकसे व्याकुल हुए होंगे ॥ महा मतवारे हाथियोंको अर्जुनके बाणोंसे पीडित होते, भागते, मरते और अधरेही पृथ्वीमें

पतितान्पततश्चाऽन्यान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३६॥
विहीनांश्च कृतानश्वान्विरथांश्च कृतान्नरान् ।
तत्र सात्यकिपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥३७॥
हयौघान्निहतान्दृष्ट्वा द्रवमाणांस्ततस्ततः ।
रणे माधवपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३८ ॥
पत्तिसङ्घान्रणे दृष्ट्वा धावमानांश्च सर्वशः ।
निराशा विजये सर्वे मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३९ ॥
द्रोणस्य समतिक्रान्तावनीकमपराजितौ ।
क्षणेन दृष्ट्वा तौ वीरौ मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ४० ॥
संमूढोऽस्मि भृशं तात श्रुत्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
प्रविष्टौ मामकं सैन्यं सात्वतेन सहाऽच्युतौ ॥ ४१ ॥
तस्मिन्प्रविष्टे पृतनां शिनीनां प्रवरे रथे ।
भोजानीकं व्यतिक्रान्ते किमकुर्वत कौरवाः ॥ ४२ ॥
तथा द्रोणेन समरे निगृहीतेषु पाण्डुषु ।
कथं युद्धमभूत्तत्र तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ४३ ॥

गिरते देख मेरे पुत्र शोकसे आर्त्त होगये होंगे ॥ (३४—३६)

अर्जुन और सात्यकिके बाणोंसे सवारोंसे रहित अश्व और विरथ किये हुए रथियोंको देखकर मुझे निश्चय होता है, कि मेरे पुत्र शोकसे आर्त्त होगये होंगे॥ रणभूमिमें अर्जुन और सात्यकिके बाणों-से विद्ध होकर इधर उधर दौडते हुए घोडोंके झुण्डके झुण्ड देख कर मेरे पुत्र निश्चयसे शोकित हुए होंगे॥ झुण्डके झुण्ड पैदल सेनाके योद्धाओंको इधर उधर दौडते और भागते देख, मेरे पुत्र विज-यकी इच्छाके निराश होके शोकित हुए होंगे ॥ (३७–३९)

अपराजित कृष्ण और सात्यकिको थोडे ही समयके बीच द्रोणसेनासे पार होते देख, मेरे पुत्र लोग शोकित हुए होंगे ॥ हे तात ! कृष्ण अर्जुन और सात्यकिने घावरहित शरीरसे ही मेरी सेनाके बीच प्रवेश किया है, यह वृत्ता-न्त सुनकर मैं भी अत्यन्त मोहित हो रहा हूं ॥ (४०-४१)

हे सञ्जय ! शिनि पौत्र सात्यकिने जब मेरी सेनाके बीच प्रवेश किया और भोजराज कृतवर्माकी सेना अतिक्रम करके अगाडी गमन करने लगा; तथा पाण्डव लोग द्रोणाचार्यसे निवारित हुए तब उस समय कैसा युद्ध हुआ था ?

द्रोणो हि बलवाञ्श्रेष्ठः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
पञ्चालास्ते महेष्वासं प्रत्यविध्यन्कथं रणे ॥ ४४ ॥
बद्धवैरास्ततो द्रोणे धनञ्जयजयैषिणः ।
भारद्वाजसुतस्तेषु दृढवैरो महारथः ॥ ४५ ॥
अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति ।
तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ४६ ॥
सञ्जय उवाच— आत्मापराधात्सम्भूतं व्यसनं भरतर्षभ ।
प्राप्य प्राकृतवद्वीर न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ४७ ॥
पुरा यदुच्यसे प्राज्ञैः सुहृद्भिर्विदुरादिभिः ।
मा हार्षीः पाण्डवान्राजन्निति तन्न त्वया श्रुतम् ॥४८॥
सुहृदां हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह ।
स महद्व्यसनं प्राप्य शोचते वै यथा भवान् ॥ ४९ ॥
याचितोऽसि पुरा राजन्दाशार्हेण शमं प्रति ।
न च तं लब्धवान्कामं त्वत्तः कृष्णो महायशाः ॥ ५० ॥

यह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ (४२—४३)

द्रोणाचार्य बलवान्, कृतास्त्र, शूरवीर, अस्त्रविद्याके जाननेवाले, दृढ पराक्रमी और महाधनुर्द्धारी हैं, उनकी पाञ्चाल-राजसे शत्रुता है; पाञ्चाल योद्धा लोग भी धनञ्जय अर्जुनके विजयकी अभि-लाष कर रहे हैं; और महारथ द्रोणा-चार्यसे भी उनकी पुरानी शत्रुता है। इससे पाञ्चाल योद्धाओंने द्रोणाचार्यसे किस प्रकार युद्ध किया ? हे सञ्जय ! तुम वचन बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ हो; इससे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त और अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके वधके निमित्त जैसा कार्य किया था, वह सम्पूर्ण समाचार तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ४४-४६

सञ्जय बोले, हे भारत ! तुम्हें अपने किये हुए अपराधसे ही ऐसे व्यसनमें फंसना हुआ है; इससे आपको साधा-रण पुरुषोंके समान शोक करना उचित नहीं है ॥ पहिले विदुर आदि बुद्धिमान् पुरुषोंने तुमसे कहा था, कि हे राजन् ! तुम पाण्डवोंको परित्याग मत करो, परन्तु आपने उन महात्मा पुरुषोंके वचनोंको नहीं सुना। जो पुरुष हित चाह-नेवाले अपने सुहृद्मित्रोंके वचनको नहीं सुनता, वह तुम्हारी भांति महा व्यसनमें पडके शोकित होता है ॥ (४७-४९)

महायशस्वी दाशार्ह कृष्णने पहिले सन्धि करनेके वास्ते तुमसे प्रार्थना किया

तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च।
द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ॥ ५१ ॥
तव जिह्ममभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान्प्रति।
आर्त्तप्रलापांश्च बहून्मनुजाधिपसत्तम ॥ ५२ ॥
सर्वलोकस्य तत्त्वज्ञः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः।
वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ॥ ५३ ॥
आत्मापराधात्सुमहान्प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः।
नैनं दुर्योधने दोषं कर्त्तुमर्हसि मानद ॥ ५४ ॥
नहि ते सुकृतं किञ्चिदादौ मध्ये च भारत।
दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः ॥ ५५ ॥
तस्मादवस्थितो भूत्वा ज्ञात्वा लोकस्य निर्णयम्।
शृणु युद्धं यथावृत्तं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५६ ॥
प्रविष्टे तव सैन्यं तु शैनेये सत्यविक्रमे।
भीमसेनमुखाः पार्थाः प्रतीयुर्वाहिनीं तव ॥ ५७ ॥
आगच्छतस्तान्सहसा क्रुद्धरूपान्सहानुगान्।

था, परन्तु वह सन्धि करानेमें कृतकार्य न हो सके ॥ वह तुम्हारी बुद्धिहीनता, पुत्रोंके निमित्त पक्षपात, धर्मके विषयमें अनिश्चय, पाण्डवोंके ऊपर द्वेषभाव, मत्सरता, आर्त प्रलाप और कुटिलता जान कर सर्व लोक तत्त्वज्ञ सब लोगोंके ईश्वर वासुदेव प्रभु श्रीकृष्ण इस समय इस महाघोर युद्धके वास्ते उद्योग कर रहे हैं ॥ (५०-५३)

तुम्हारी दुष्टनीतिके कारणसे ही बन्धु-बान्धव और स्वजनोंका नाश हो रहा है; आप इस दोषको दुर्योधनके ऊपर मत लगाइये ॥ आपने पहिले वा मध्य समयमें भी कुछ अच्छा नहीं किया, तथा पीछे भी कुछ अच्छा नहीं किया है, इससे तुम ही इस पराजयके मूल हो ॥ आप सम्पूर्ण लौकिक व्यवहारोंको जानते हैं, इस समय स्थित होकर देवासुर युद्धके समान कुरु-पाण्डवोंके भयङ्कर युद्धका वृत्तान्त विस्तार पूर्वक सुनिये ॥ (५४-५६)

महाराज ! जब सत्य पराक्रमी सात्यकिने तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश किया, तब भीमसेन आदि पाण्डवोंकी ओरके योद्धा लोग तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे ॥ पाण्डवोंको क्रोध पूर्वक अनुयायियोंके सहित अपनी सेना की ओर आते देख, महारथ कृतवर्माने

द्धारैको रणे पाण्डून्कृतवर्मा महारथः ॥ ५८ ॥
यथोद्धृत्तं वारयते वेला वै सलिलार्णवम्।
पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये हार्दिक्यः समवारयत्॥ ५९ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम हार्दिक्यस्य पराक्रमम्।
यदेनं सहिताः पार्था नाऽतिचक्रमुराहवे ॥ ६० ॥
ततो भीमस्त्रिभिर्विध्वा कृतवर्माणमाशुगैः।
शङ्खं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन्सर्वपाण्डवान् ॥ ६१ ॥
सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः।
शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ॥ ६२ ॥
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः।
धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माणमार्दयत ॥ ६३ ॥
विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः।
शिखण्डी चैव हार्दिक्यं विध्वा पञ्चभिराशुगैः ॥६४॥
पुनर्विव्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव।
कृतवर्मा ततो राजन्सर्वतस्तान्महारथान् ॥ ६५ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विध्वा भीमं विव्याध सप्तभिः।

अकेले ही उन सम्पूर्ण योद्धाओंको निवारण किया। ॥ जिस प्रकार उछलते हुए समुद्रको तट निवारण करता है उसी प्रकार पाण्डवोंकी सेनाका निवारण अकेले कृतवर्मा ही करने लगे ॥ उस समय कृतवर्माका मैंने यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा उन्हें अतिक्रम करके आगे न बढ सके ॥ (५७–६०)

अनन्तर महाबाहु भीमसेनने तीन बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध करके अपनी ओरके योद्धाओंको आनन्दित करते हुए अपना शंख बजाया ॥ तिसके अनन्तर सहदेवने बीस, धर्मराज युधिष्ठिरने पांच, नकुलने एक सौ, द्रौपदीके पांचों पुत्रोंने तिहत्तर, घटोत्कचने सात और धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया विराट और राजा द्रुपदने भी पांच पांच बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया और शिखण्डीने पांच बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध करके फिर हंसकर बीस बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ ६१–६५

तिसके अनन्तर कृतवर्माने उन सम्पूर्ण महारथियोंको पांच पांच बाणोंसे विद्ध किया; फिर सात बाणोंसे भीमके धनुष और ध्वजाको काटके

धनुर्ध्वजं चास्य तदा रथाद्भूमावपातयत् ॥ ६६ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तत्या निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥
स गाढविद्धो बलवान्हार्दिक्यस्य शरोत्तमैः ।
चचाल रथमध्यस्थः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥ ६८ ॥
भीमसेनं तथा दृष्ट्वा धर्मराजपुरोगमाः ।
विसृजन्तः शरान्राजन्कृतवर्माणमार्दयन् ॥ ६९ ॥
तं तथा कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
विव्यधुः सायकैर्हृष्टा रक्षार्थं मारुतेर्मृधे ॥ ७० ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
शक्तिं जग्राह समरे हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ ७१ ॥
चिक्षेप च रथात्तूर्णं कृतवर्मरथं प्रति ।
सा भीमभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा ॥ ७२ ॥
कृतवर्माणमभितः प्रजज्वाल सुदारुणा ।
तामापतन्तीं सहसा युगान्ताग्निसमप्रभाम् ॥ ७३ ॥
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यो निजघान द्विधा तदा ।

रथसे पृथ्वीमें गिरा दिया; उसके बाद धनुष और रथसे रहित भीमसेनके हृदय में सत्तर बाणोंसे प्रहार किया। जैसे भूकम्प होनेसे पहाड़ कम्पित होता है, वैसे ही बलवान भीमसेन हृदिकपुत्र कृतवर्माके प्रचण्ड बाणोंकी चोटसे अत्यन्त विद्ध होकर रणभूमिमें कांपने लगे ॥ (६५ – ६८)

युधिष्ठिरके अनुयायी सम्पूर्ण योद्धा लोग भीमसेनकी वैसी दशा देख अपने तीक्ष्ण बाणोंको कृतवर्माके ऊपर बरसाते हुए उन्हें पीडित करने लगे ॥ वे सब योद्धा हर्ष पूर्वक भीमसेनकी रक्षा करने के वास्ते कृतवर्माको अपने रथोंके समूहसे घेर कर तीक्ष्ण-बाणोंसे उन्हें विद्ध करने लगे ॥ परन्तु महाबलवान् भीमसेन थोडी देरके बाद सावधान हुए और एक लोहमयी सुवर्णदण्डभूषित शक्ति ग्रहण करके शीघ्रताके सहित कृतवर्माके रथ पर चलाया ॥ ६९–७१

भीमसेनके हाथसे छूटी हुई केंचुलीसे रहित सर्पके समान वह भयङ्कर शक्ति जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित होती हुई कृतवर्माके संमुख चली; परन्तु हृदिकनन्दन कृतवर्माने प्रलय कालकी अग्नि समान उस प्रकाशमान शक्तिको संमुख

सा छिन्ना पतिता भूमौ शक्तिः कनकभूषणा ॥ ७४ ॥
द्योतयन्ती दिशो राजन्महोल्केव नभश्च्युता ।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा भीमश्चुक्रोध वै भृशम् ॥ ७५ ॥
ततोऽन्यद्धनुरादाय वेगवत्सुमहास्वनम् ।
भीमसेनो रणे क्रुद्धो हार्दिक्यं समवारयत् ॥ ७६ ॥
अथैनं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमो भीमबलो राजंस्तव दुर्मन्त्रितेन च ॥ ७७ ॥
भोजस्तु क्षतसर्वाङ्गो भीमसेनेन मारिष ।
रक्ताशोक इवोत्फुल्लो व्यभ्राजत रणाजिरे ॥ ७८ ॥
ततः क्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनं हसन्निव ।
अभिहत्य दृढं युद्धे तान्सर्वान्प्रत्यविध्यत ॥ ७९ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्महेष्वासो यतमानान्महारथान् ।
तेऽपि तं प्रत्यविध्यन्त सप्तभिः सप्तभिः शरैः ॥ ८० ॥
शिखण्डिनस्ततः क्रुद्धः क्षुरप्रेण महारथः ।
धनुश्चिच्छेद समरे प्रहसन्निव सात्वतः । ॥ ८१ ॥

आती देख, दो बाणोंसे दो खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया। जैसे महालुक आकाशसे गिरते हुए दशों दिशामें प्रकाशित होते हैं, वैसे ही सुवर्णभूषित वह शक्ति कृतवर्माके बाणोंसे कटके पृथ्वीमें गिर पड़ी ॥ (७२–७५)

शक्ति कटती देख, महाबली भीमसेन क्रुद्ध होकर अत्यन्त भयङ्कर शब्द करनेवाले एक वेगशील धनुष चढा कर कृतवर्माको अपने बाणोंसे छिपाने लगे, फिर भीमने पांच बाणोंसे कृतवर्माके दोनों स्तनोंके बीच प्रहार किया। महाराज! यह सम्पूर्ण युद्धका कार्य तुम्हारे अविचारसे ही उपस्थित हुआ है। ७५–७७

भोजराज कृतवर्मा भीमसेन के बाणोंसे विद्ध होकर फूले हुए रक्त अशोक वृक्षके समान शोभित हुए ॥ तिसके अनन्तर उन्होंने क्रुद्ध होकर तीन बाणोंसे भीमको विद्ध करके फिर हंसते हंसते पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण धनुर्धारियोंको अत्यन्त विद्ध किया ॥ महारथी कृतवर्माने तीन तीन बाणोंसे उन यत्नवान् पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण महारथियोंको विद्ध किया, और उन लोगोंने भी सात सात बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया ॥ (७८–८०)

तिसके अनन्तर महारथी कृतवर्माने एक क्षुरप्र अस्त्रसे शिखण्डीका धनुष

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धश्छिन्ने धनुषि सत्वरः।
असिं जग्राह समरे शतचन्द्रं च भास्वरम् ॥ ८२ ॥
भ्रामयित्वा महच्चर्म चामीकरविभूषितम्।
तमसिं प्रेषयामास कृतवर्मरथं प्रति ॥ ८३ ॥
स तस्य सशरं चापं छित्वा राजन्महानसिः।
अभ्यगाद्धरणीं राजंश्च्युतं ज्योतिरिवाऽम्बरात्॥ ८४॥
एतस्मिन्नेव काले तु त्वरमाणं महारथाः।
विव्यधुः सायकैर्गाढं कृतवर्माणमाहवे ॥ ८५ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय त्यक्त्वा तच्च महद्धनुः।
विशीर्णं भरतश्रेष्ठ हार्दिक्यः परवीरहा ॥ ८६ ॥
विव्याध पाण्डवान्युद्धे त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
शिखण्डिनं च विव्याध त्रिभिः पञ्चभिरेव च॥ ८७ ॥
धनुरन्यत्समादाय शिखण्डी तु महायशाः।
अवारयत्कूर्मनखैराशुगैर्हृदिकात्मजम् ॥ ८८ ॥
ततः क्रुद्धो रणे राजन्हृदिकस्याऽऽत्मसम्भवः।
अभिदुद्राव वेगेन याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ८९ ॥
भीष्मस्य समरे राजन्मृत्योर्हेतुं महात्मनः।

काट दिया। धनुष कटने पर शिखण्डी ने क्रुद्ध होकर एक सौ चन्द्र प्रतिमासे युक्त सुवर्ण भूषित ढाल और तलवार ग्रहण किया; फिर उस तलवारको घुमा कर कृतवर्माके रथके ऊपर फेंक दिया; वह बडी तलवार बाणके सहित कृतवर्माके धनुषको काटकर आकाशसे गिरे हुए ज्योतिवाले पदार्थोंके समान प्रकाशित होकर पृथ्वीमें गिरी ॥(८१-८४)

तब अवसर पाकर अनेक महारथी लोग कृतवर्माको अपने बाणोंसे अत्यन्त विद्ध करने लगे ॥ अनन्तर शत्रुओंके नाश करनेवाले कृतवर्माने कटे हुए धनुषको त्यागके दूसरा धनुष ग्रहण किया; और पाण्डवोंके सम्पूर्ण महारथियोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध करके शिखण्डीको पहिले तीन फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ (८५-८७)

महायशस्वी शिखण्डी दूसरा धनुष ग्रहण कर कूर्मनखके समान मुखवाले बाणोंके समूहसे कृतवर्माको निवारण करने लगे॥ तिसके अनन्तर हृदिकपुत्र कृतवर्मा अत्यन्त क्रुद्ध होकर महात्मा भीष्मकी मृत्युके कारण महारथ शिखण्डी

विदर्शयन्बलं शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ९० ॥
तौ दिशां गजसङ्काशौ ज्वलिताविव पावकौ ।
समापेततुरन्योन्यं शरसङ्घैररिन्दमौ ॥ ९१ ॥
विधुन्वानौ धनुःश्रेष्ठे सन्दधानौ च सायकान् ।
विसृजन्तौ च शतशो गभस्तीनिव भास्करौ ॥ ९२ ॥
तापयन्तौ शरैस्तीक्ष्णैरन्योन्यं तौ महारथौ ।
युगान्तप्रतिमौ वीरौ रेजतुर्भास्कराविव ॥ ९३ ॥
कृतवर्मा च समरे याज्ञसेनिं महारथम् ।
विध्वेषुभिस्त्रिसप्तत्या पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ९४ ॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतः ॥ ९५ ॥
तं विषण्णं रणे दृष्ट्वा तावकाः पुरुषर्षभ ।
हार्दिक्यं पूजयामासुर्वासांस्याद्गुधुवुश्च ह ॥ ९६ ॥
शिखण्डिनं तथा ज्ञात्वा हार्दिक्यशरपीडितम् ।
अपोवाह रणाद्यन्ता त्वरमाणो महारथम् ॥ ९७ ॥
सादितं तु रथोपस्थे दृष्ट्वा पार्थाः शिखण्डिनम् ।

की ओर इस प्रकारसे दौडे जैसे हाथी की ओर शार्दूल दौडता है ॥ अनन्तर दिग्गजके समान तथा जलती हुई अग्निकी भांति वे दोनों पराक्रमी वीर अपने बाणोंसे एक दूसरेको विद्ध करते हुए रणभूमिमें युद्ध करने लगे ॥ ८८-९१

वे दोनों ही महारथी अपने प्रचण्ड धनुषको फेरते हुए सूर्य किरणके समान अपने सैकडों प्रकाशमान बाणोंको चलाने लगे ॥ वे दोनों वीर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे एक दूसरेको पीडित करते हुए प्रलयकालके दो सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ कृतवर्माने पहिले महारथ शिखण्डीको तिहत्तर बाणोंसे विद्ध करके फिर एक सौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ शिखण्डी कृतवर्माके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध पीडित और मूर्छित होकर धनुष बाण त्याग रथका दण्ड पकडके बैठे गये ॥ पुरुषसिंह शिखण्डीको रणभूमिमें मूर्च्छित देख तुम्हारी ओरके शूरवीर योद्धालोग हर्षित होके वस्त्रोंको फहराते हुए कृतवर्मा की अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥ (९२—९६)

शिखण्डीका सारथी उन्हें मूर्च्छित देखकर शीघ्रताके सहित रथके घोडोंको दौडा कर युद्धभूमिसे पृथक् हुआ ॥

परिवव्रू रथैस्तूर्णं कृतवर्माणमाहवे ॥ ९८ ॥
तत्राऽद्भुतं परं चक्रे कृतवर्मा महारथः ।
यदेकः समरे पार्थान्वारयामास सानुगान् ॥ ९९ ॥
पार्थाञ्जित्वाऽजयच्चेदीन्पञ्चालान्सृञ्जयानपि ।
केकयांश्च महावीर्यान्कृतवर्मा महारथः ॥ १०० ॥
ते वध्यमानाः समरे हार्दिक्येन स्म पाण्डवाः ।
इतश्चेतश्च धावन्तो नैव चक्रुर्धृतिं रणे ॥ १०१ ॥
जित्वा पाण्डुसुतान्युद्धे भीमसेनपुरोगमान् ।
हार्दिक्यः समरेऽतिष्ठद्विधूम इव पावकः ॥ १०२ ॥
ते द्राव्यमाणाः समरे हार्दिक्येन महारथाः ।
विमुखाः समपद्यन्त शरवृष्टिभिरार्दिताः ॥ १०३ ॥ [४५३०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि
सात्यकिप्रवेशे कृतवर्मपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

सञ्जय उवाच— शृणुष्वैकमना राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
द्राव्यमाणे बले तस्मिन्हार्दिक्येन महात्मना ॥ १ ॥

महाराज ! पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओं ने शिखण्डीको मूर्च्छित देख चारों ओर से अपने रथोंके समूहसे कृतवर्माको घेर लिया ॥ उस युद्धभूमिमें कृतवर्माका यह आश्चर्यमय पराक्रम दीख पडा कि उन्हों ने अकेले ही पाण्डवोंकी ओर के सम्पूर्ण योद्धाओंको निवारण किया । ९७–९९

महारथी कृतवर्माने पाण्डवोंको पराजित करके महाबलवान् पराक्रमी चेदि, पाञ्चाल, सृञ्जय और केकय देशीय शूरवीरों को पराजित किया ॥ वे सम्पूर्ण योद्धा कृतवर्माके अस्त्रोंसे पीडित होकर धीरज न धर सके; सब कोई इधर उधर दौडते हुए उनके संमुखसे भागने लगे ॥ कृतवर्मा क्रोधपूर्वक भीमसेन आदि पाण्डवोंको अनुयाइयों के सहित पराजित कर के धूएंसे रहित अग्निके समान प्रकाशित होकर युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ वे सम्पूर्ण महारथी योद्धा कृतवर्माके बाणोंकी वर्षासे इधर उधर दौडते हुए युद्धसे विमुख हुए ॥ १००-१०३

द्रोणपर्वमें एकसौ चौदह अध्याय समाप्त।४५३०

द्रोणपर्वमें एकसौ पन्दह अध्याय ।

सृञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! आप जो वृत्तान्त मुझसे पूछते थे, उसे चित्त लगा कर सुनिये । जब पाण्डवोंकी सेना महात्मा हृदिक नन्दन कृतवर्माके संमुखसे भागी और तुम्हारी सेना हर्षित

लज्जयाऽवनते चापि प्रहृष्टैश्चाऽपि तावकैः ।
द्वीपो य आसीत्पाण्डूनामगाधे गाधमिच्छताम् ॥ २ ॥
श्रुत्वा स निनदं भीमं तावकानां महाहवे ।
शैनेयस्त्वरितो राजन्कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ३ ॥
उवाच सारथिं तत्र क्रोधामर्षसमन्वितः ।
हार्दिक्याभिमुखं सूत कुरु मे रथमुत्तमम् ॥ ४ ॥
कुरुते कदनं पश्य पाण्डुसैन्ये ह्यमर्षितः ।
एनं जित्वा पुनः सूत यास्यामि विजयं प्रति ॥ ५ ॥
एवमुक्ते तु वचने सूतस्तस्य महामते ।
निमेषान्तरमात्रेण कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ६ ॥
कृतवर्मा तु हार्दिक्यः शैनेयं निशितैः शरैः ।
अवाकिरत्सुसंक्रुद्धस्ततोऽक्रुद्ध्यत्स सात्यकिः ॥ ७ ॥
अथाऽऽशु निशितं भल्लं शैनेयः कृतवर्मणः ।
प्रेषयामास समरे शरांश्च चतुरोऽपरान् ॥ ८ ॥
ते तस्य जघ्निरे वाहान्भल्लेनाऽस्याऽच्छिनद्धनुः ।

हुई; तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको हर्षित देख पाण्डवोंकी ओरके शूरवीर योद्धा लज्जित हुए; सात्यकि अगाध समुद्रके बीच डूबते हुए उन शूरवीरोंकी रक्षा करनेके वास्ते द्वीप स्वरूप होकर शीघ्रताके सहित तुम्हारी सेनाके योद्धाओंके भयङ्कर सिंहनाद सुनकर कृतवर्माकी ओर दौडे ॥ (१–३)

उस समय सात्यकि क्रोधसे भरकर अपने सारथीसे यह वचन बोले, हे सारथि ! तुम मेरे अच्छे रथको हृदीकनन्दन कृतवर्माकी ओर ले चलो ॥ हे सारथी ! यह देखो, कृतवर्मा क्रुद्ध होकर पाण्डवोंकी सेनाका कदन कर रहा है, हे सूत ! इस वास्ते इस समय प्रथम इसको जीतकर ही पश्चात् अर्जुनके पास जाना उचित है ॥ हे महामते राजन् ! इस प्रकार सात्यकि के वचन सुनते ही सात्यकि के सारथीने क्षणभरके बीच रथको कृतवर्मा के समीप उपस्थित किया । (४–६)

परन्तु कृतवर्माने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको छिपा दिया । सात्यकिने क्रोधपूर्वक एक भल्ल और चार बाण कृतवर्माकी ओर चलाया, उन चारों बाणोंसे कृतवर्माके रथके चारों घोडे मरे, भल्लसे उनका धनुष कटगया । तिसके अनन्तर सात्यकि

पृष्ठरक्षं तथा सूतमविध्यन्निशितैः शरैः ॥ ९ ॥
ततस्तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सेनामस्याऽर्दयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १० ॥
अभज्यताऽथ पृतना शैनेयशरपीडिता ।
ततः प्रायात्स त्वरितः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥११॥
शृणु राजन्यदकरोत्तव सैन्येषु वीर्यवान् ।
अतीत्य स महाराज द्रोणानीकमहार्णवम् ॥ १२ ॥
पराजित्य तु संहृष्टः कृतवर्माणमाहवे ।
यन्तारमब्रवीच्छूरः शनैर्याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा तु तव तत्सैन्यं रथाश्वद्विपसंकुलम् ।
पदातिजनसम्पूर्णमब्रवीत्सारथिं पुनः ॥ १४ ॥
यदेतन्मेघसङ्काशं द्रोणानीकस्य सव्यतः ।
सुमहत्कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम् ॥ १५ ॥
एते हि बहवः सूत दुर्निवाराश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ १६ ॥

ने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे कृतवर्मा के सारथीको भी विद्ध किया; फिर कृतवर्माको रथरहित करके अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनकी सेना के योद्धाओं को पीडित करने लगे ॥ (७–१०)

सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर कृतवर्माकी सेना भागने लगी; तब सात्यकिने शीघ्रताके सहित वहांसे प्रस्थान किया ॥ महाराज ! उस के अनन्तर पराक्रमी सात्यकिने तुम्हारी सेना के बीच जैसा कार्य किया आप उसका वृत्तान्त सुनिये, वह द्रोणाचार्यकी सेना से पार होकर युद्धभूमि में कृतवर्माको पराजित कर अपने सारथीसे प्रसन्न होकर यह वचन बोले, तुम निर्भय चित्तसे धीरे धीरे रथ आगे चलाओ। ११–१३

तुम्हारी रथ घोडे हाथी और पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धाओंसे युक्त महासेना देखकर सात्यकि फिर अपने सारथीसे बोले ॥ यह जो द्रोणाचार्य की सेनासे बांयी ओर बडे बडे हाथियोंकी सेना और उसके आगे रुक्मरथ नाम राजपुत्र स्थित हैं, ये सब ही महा धनुर्धारी महारथी और महापराक्रमी योद्धा हैं, ये सब दुःखसे भी निवारित न होंगे; और दुर्योधनके वास्ते मेरे सङ्ग युद्ध करके मरने तक युद्धसे निवृत न होंगे ॥ (१४—१६)

राजपुत्रा महेष्वासाः सर्वे विक्रान्तयोधिनः ।
त्रिगर्त्तानां रथोदाराः सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १७ ॥
मामेवाऽभिमुखा वीरा योत्स्यमाना व्यवस्थिताः ।
अत्र मां प्रापय क्षिप्रमश्वांश्चोदय सारथे ॥ १८ ॥
त्रिगर्तैः सह योत्स्यामि भारद्वाजस्य पश्यतः ।
ततः प्रायाच्छनैः सूतः सात्वतस्य मते स्थितः ॥१९॥
रथेनाऽऽदित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना ।
तमूहुः सारथेर्वश्या वल्गमाना हयोत्तमाः ॥ २० ॥
वायुवेगसमाः संख्ये कुन्देन्दुरजतप्रभाः ।
आपतन्तं रणे तं तु शङ्खवर्णैर्हयोत्तमैः ॥ २१ ॥
परिवव्रुस्ततः शूरा गजानीकेन सर्वतः ।
किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान्सायकाँल्लघुवेधिनः ॥ २२ ॥
सात्वतो निशितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत् ।
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥ २३ ॥
वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः ।

यह जो त्रिगर्त्त देशीय सुवर्णभूषित ध्वजाके सहित राजपुत्र युद्धभूमिमें स्थित हैं, वे सब भी महाधनुर्द्धर योद्धा हैं, ये सब वीर मेरे सङ्ग युद्ध करने के वास्ते तैयार हैं; तुम उसही स्थान पर मेरे रथ को शीघ्रता के सहित लेचलो ॥ वहां पहुंचके मैं त्रिगर्त्त देशीय योद्धाओं के सङ्ग द्रोणाचार्य के सम्मुखही में युद्ध करूंगा । (१७–१९)

महाराज ! तिसके अनन्तर सारथी सात्यकिकी आज्ञानुसार धीरे धीरे गमन करने लगा । वायुके समान शीघ्रगामी कुन्द इन्दु और रूपे के समान वर्णवाले, सारथी के वशमें रहने वाले उत्तम घोडे कूदते तथा सूर्यके समान प्रकाशमान् पताकाओं से युक्त सात्यकिके रथको खींचते हुए गमन करने लगे । तिसके अनन्तर शीघ्रशस्त्र चलानेवाले शूरवीर योद्धाओंने शङ्ख वर्ण घोडोंसे युक्त रथपर चढे हुए सात्यकिको आते देख अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए हाथियोंकी सेना लेकर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया ॥ (१९—२२)

जैसे ग्रीष्म ऋतुके बीतने पर बादल पहाडोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही सात्यकि भी हाथियों के ऊपर अपने तीक्ष्णबाणोंकी वर्षा करते हुए युद्ध करने लगे ॥ हाथियोंके समूह सात्यकिके

प्राद्रवन्रणमुत्सृज्य शिनिवीरसमीरितैः ॥ २४ ॥
शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः ।
विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥ २५ ॥
सम्भिन्नवर्मघण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः ।
हतारोहा दिशो राजन्भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः ॥ २६ ॥
रुवन्तो विविधान्नादाञ्जलदोपमनिःस्वनाः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २७ ॥
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च सात्वतेन विदारिताः ।
क्षरन्तोऽसृक्तथा मूत्रं पुरीषं च प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥
बभ्रमुश्चस्खलुश्चान्ये पेतुर्मम्लुस्तथाऽपरे ।
एवं तत्कुञ्जरानीकं युयुधानेन पीडितम् ॥ २९ ॥
शरैरग्न्यर्कसङ्काशैः प्रदुद्राव समन्ततः ।
तस्मिन्हते गजानीके जलसन्धो महाबलः ॥ ३० ॥
यत्तः सम्प्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति ।
रुक्मवर्मधरः शूरस्तपनीयाङ्गदः शुचिः ॥ ३१ ॥

धनुषसे छूटे हुए वज्रसमान बाणोंसे पीडित होकर रणको छोडकर चारों ओर दौडने लगे ॥ इन सम्पूर्ण दौडते हुए हाथियोंके बीच कितनों के शरीर रुधिर से परिपूरित होगये, किसी किसीके दांत टूट गये कितनोंके कान मुख और सूण्ड कट गये, किसी किसी हाथीके ऊपरसे ध्वजा कट गई और कितने हाथियोंके सवार मरके पृथ्वीमें गिर पडे॥ २३-२५

कितने ही हाथियोंके वर्म कट गयें, कितनोंके हौदेसे घण्टा टूटके गिर पडे, कितनों के सवार मरजानेसे उनके ऊपर का कम्बल भ्रष्ट हुआ और दशदिशाओंमें दौडने लगे ॥ बहुतेरे हाथी सात्यकिके धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाण वत्सदन्त भल्ल क्षुरप्र अञ्जालक और अर्धचन्द्र बाणोंसे विद्ध होकर बलपूर्वक चिंघाडते और रुधिरपूरित शरीर युक्त होकर मलमूत्र त्याग करते हुए पृथ्वीमें गिरने लगे । इसी प्रकार अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर हाथियोंकी सेना चारों ओर भागने लगी । (२६-३०)

महाराज ! जब इस प्रकार गजसेना का वध होने लगा, तब महाबलवान् पराक्रमी रुक्मरथ जलसन्धने रजत समान अश्वयुक्त रथवाले सात्यकिके रथकी ओर अपना हाथी बढाया ॥ कवच

कुण्डली मुकुटी खड्गी रक्तचन्दनरूषितः।
शिरसा धारयन्दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ॥ ३२ ॥
उरसा धारयन्निष्कं कण्ठसूत्रं च भास्वरम्।
चापं च रुक्मविकृतं विधुन्वन्गजमूर्धनि ॥ ३३ ॥
अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः।
तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
सात्यकिर्वारयामास वेलेव मकरालयम्।
नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः ॥ ३५ ॥
अक्रुध्यत रणे राजञ्जलसन्धो महाबलः।
ततः क्रुद्धो महाराज मार्गणैर्भारसाधनैः ॥ ३६ ॥
अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसन्धो महोरसि।
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ३७ ॥
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त्त शरासनम्।
सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ॥ ३८ ॥
अविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः।
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसन्धेन वीर्यवान् ॥ ३९ ॥
नाऽकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाऽभवत्।

कुण्डल किरीट और खड्गधारी; लाल चन्दनचर्चित शरीरसे युक्त सुवर्ण माला और प्रकाशमान कण्ठा पहने हुए जलसन्ध सात्यकिकी ओर बढे, वह हाथीके पीठ पर सुवर्णभूषित धनुष फेरते हुए बिजलीसे युक्त बादल के समान शोभित हुए॥ (३०–३४)

सात्यकिने मगधराज जलसन्धके हाथीको सहसा अपनी ओर आते देख उसे इस प्रकार निवारण किया जैसे तट समुद्रके वेगको रोकता है। महाबाहु महाबलवान् जलसन्धने हाथीको सात्यकिके बाणोंसे निवारित हुए देख कर अत्यन्त क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिका वक्षस्थल विद्ध किया। अनन्तर बाण चलानेके समय जलसन्धने एक भल्लसे सात्यकि का धनुष काट दिया॥ (३४—३८)

जब सात्यकि धनुषसे रहित हुए, तब मगधराज जलसन्धने हंसके पांच बाणोंसे उन्हें फिर विद्ध किया। पराक्रमी सात्यकि महारथ जलसन्धके बहुतेरे बाणोंसे विद्ध होकर भी युद्धभूमिसे विचालित न हुए; उस समय सात्यकि-

अचिन्तयन्वै स शरान्नाऽस्यर्थं सम्भ्रमाद्बली ॥ ४० ॥
धनुरन्यत्समादाय तिष्ठतिष्ठेत्युवाच ह ।
एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसन्धं महोरसि ॥ ४१ ॥
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ॥ ४२ ॥
जलसन्धस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः ।
जलसन्धस्तु तत्त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ॥ ४३ ॥
तोमरं व्यसृजत्तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष ।
स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ॥ ४४ ॥
अभ्यगाद्धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः ।
निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४५ ॥
त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसन्धमताडयत् ।
प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसन्धो महाबलः ॥ ४६ ॥
आर्षभं चर्म च महच्छतचन्द्रकसंकुलम् ।
आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥ ४७ ॥
शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा स खड्गो न्यपतन्महीम् ।
अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥ ४८ ॥

का अनोखा पराक्रम दीख पडा, कि उसने जलसन्धके बाणोंकी कुछ पर्वाह न करके दूसरा धनुष ग्रहण किया; और खडा रह, खडा रह कहके जलसन्धके विशाल वक्षस्थलमें साठ बाणोंसे प्रहार किया, फिर उत्तम पानीसे बुझे हुए एक क्षुरप्र बाणसे उनके धनुषकी मुट्ठी काट कर तीन बाणोंसे उन्हें विद्ध किया। (३८–४३)

तिसके अनन्तर महाबली जलसन्धने उस कटे हुए धनुष बाणको त्यागकर सात्यकिकी ओर एक तोमर चलाया। मगधराज जलसन्धकी भुजासे छूटा हुआ वह भयङ्कर तोमर, सात्यकिकी बायीं भुजा भेदकर पृथ्वीमें गिरा, बायीं भुजा विद्ध होने पर भी सात्यकिने तीस तीक्ष्ण बाणोंसे जलसन्धके ऊपर प्रहार किया। अनन्तर महाबलवान् जलसन्धने एक सौ चन्द्रप्रतिमा भूषित ढाल और प्रकाशमान तलवार ग्रहण किया; उन्होंने उस प्रकाशमान तलवार को घुमा कर सात्यकिकी ओर चलाया। वह तलवार सात्यकिके धनुषको काटके पृथ्वीपर गिरके अलात चक्रके समान

अथाऽन्यद्धनुरादाय सर्वकायावदारणम् ।
शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ४९ ॥
विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसन्धं शरेण ह ।
ततः साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः ॥ ५० ॥
सात्यकिर्जलसन्धस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ।
तौ बाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ॥ ५१ ॥
वसुन्धराधराद्भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।
ततः सुदंष्ट्रं सुमहच्चारुकुण्डलमण्डितम् ॥ ५२ ॥
क्षुरेणाऽस्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः ।
तत्पातितशिरोबाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ॥ ५३ ॥
द्विरदं जलसन्धस्य रुधिरेणाऽभ्यषिञ्चत ।
जलसन्धं निहत्याऽऽजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ॥ ५४ ॥
विमानं पातयामास गजस्कन्धाद्विशाम्पते ।
रुधिरेणाऽवसिक्ताङ्गो जलसन्धस्य कुञ्जरः ॥ ५५ ॥
विलम्बमानमवहत्संश्लिष्टं परमासनम् ।
शरार्दितः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम् ॥ ५६ ॥
घोरमार्त्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः ।

प्रकाशित होने लगी ॥ (४३–४८)

अनन्तर यदुकुल श्रेष्ठ सात्यकिने क्रुद्ध होकर शालस्तम्भ सदृश, और इन्द्रके वज्र समान शब्द करनेवाले एक महाभयङ्कर धनुष चढाकर एक बाणसे जलसन्धको विद्ध किया। अनन्तर हंसते हंसते दो क्षुरप्रसे जलसन्धकी दोनों भुजा काटके गिरा दिया। परिघतुल्य वे दोनों भुजा पहाडके ऊपरसे गिरनेवाले पांचसिरवाले सर्प के समान हाथीके ऊपरसे गिरती हुई दीख पडी॥ ४९–५२

अनन्तर सात्यकिने एक क्षुरप्र बाण से जलसन्धके सुन्दर मनोहर नासिका, दांत और कुण्डलोंसे शोभित सिर काट के पृथ्वीमें गिराया। राजा जलसन्धके शरीरसे दोनों भुजा और सिर कटके पृथ्वीमें गिरे; परन्तु शरीरका रुण्ड भयङ्कर कबन्धरूपी हो अपने रुधिरसे रणभूमि परिपूरित करने लगा। सात्यकिने राजा जलसन्धका युद्धभूमिमें वध करके शीघ्रताके सहित हाथी पर स्थित हौदे को काट डाला। जलसन्धका बडा हाथी सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और रुधिरसे परिपूरित होकर लटकते

हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ ५७ ॥
जलसन्धं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु ।
विमुखाश्चाभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः ॥ ५८ ॥
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ।
एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५९ ॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम् ।
तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं नरपुङ्गवाः ॥ ६० ॥
द्रोणेनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन् ।
ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च ॥
द्रोणस्य च रणे राजन्घोरं देवासुरोपमम् ॥ ६१ ॥ [४५९१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे जलसन्धवधो नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

सञ्जय उवाच— ते किरन्तः शरव्रातान्सर्वे यत्ताः प्रहारिणः ।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥ १ ॥
तं द्रोणः सप्तसप्तत्या जघान निशितैः शरैः ।

हुए उत्तम हौदेके सहित महाभयङ्कर आर्त्तनाद करके दौडता हुआ अपनी सेनाके योद्धाओंको मर्दन करते हुए गमन करने लगा ॥ (५२—५७)

राजा जलसन्धको पराक्रमी सात्यकि के अस्त्रोंसे मरते देख तुम्हारी सेनाके बीच महा भयङ्कर हाहाकार शब्द होने लगा; और तुम्हारी ओरके योद्धा लोग शत्रुके जीतनेमें उत्साह रहित होकर रणभूमिमें चारों ओर इधर उधर भागने लगे ॥ महाराज! उस ही समय शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महापराक्रमी द्रोणाचार्य अपने वेगगामी घोडोंसे युक्त उत्तम रथपर चढे हुए सात्यकिके समीप उपस्थित हुए। कौरवोंकी सेनाके मुख्य मुख्य योद्धा लोग सात्यकिको आगे बढते देख क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य के सहित दौड कर उसके सम्मुख उपस्थित हुए। तिसके अनन्तर सात्यकिके सङ्ग द्रोणाचार्य और कौरव योद्धाओंका देवासुर युद्धके समान महाघोर संग्राम होने लगा ॥ (५७—६१) [४५९१]

द्रोणपर्वमें एकसौ पन्दरह अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ सोलह अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज! शस्त्र चलानेमें निपुण कौरव योद्धा लोग सावधान होकर शीघ्रताके सहित सात्यकिके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ द्रोणाचार्यने उत्तम पानीसे

दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः ॥ २ ॥
विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः ।
विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा ॥ ३ ॥
दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा दुःशासनोऽष्टभिः ।
चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ॥ ४ ॥
दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम् ।
अपीडयद्रणे राजञ्शूराश्चाऽन्ये महारथाः ॥ ५ ॥
सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः ।
तान्प्रत्यविध्यद्वार्ष्णेयः पृथक्पृथगजिह्मगैः ॥ ६ ॥
भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः ।
विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः ॥ ७ ॥
दुर्मर्षणं द्वादशभिरष्टाभिश्च विविंशतिम् ।
सत्यव्रतं च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः ॥ ८ ॥
ततो रुक्माङ्गदं चापं विधुन्वानो महारथः ।
अभ्ययात्सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम् ॥ ९ ॥
राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम् ।
शरैरभ्याहनद्गाढं ततो युद्धमभूत्तयोः ॥ १० ॥

बुझे हुए सत्तहत्तर, दुर्मर्षणने बारह, दुःसहने दश और विकर्णने कङ्कपत्र युक्त तीस तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको बाईं ओर स्तनोंके बीच विद्ध किया। अनन्तर दुर्मुखने दश दुःशासनने आठ और चित्रसेनने दो बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया, दुर्योधन तथा दूसरे महारथी योद्धा लोग अनेक बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको पीडित करने लगे ॥ (१-५)

महारथ सात्यकिभी तुम्हारे पुत्रोंसे अत्यन्त विद्ध होकर उन हर एक महारथ वीरोंको पृथक् पृथक् अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे; द्रोणाचार्य को तीन, दुःसहको दश, विकर्णको, पच्चीस चित्रसेनको सात, दुर्मर्षणको बारह, विविंशति को आठ, सत्यव्रतको नव और विजय को दश बाणोंसे विद्ध किया ॥ (६-८)

अनन्तर महारथ सात्यकि सुवर्ण भूषित धनुष फेरते हुए शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तुम्हारे महारथ पुत्र राजा दुर्योधन के समीप शीघ्रताके सहित गमन कर के उन्हें अपने बाणोंसे अत्यन्त विद्ध करने लगे। अनन्तर उन दोनों पुरुष सिंहोंका महाघोर युद्ध होने लगा। वे

विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान्सन्दधानौ च सायकान् ।
अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महारथौ ॥ ११ ॥
सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो बह्वशोभत ।
अस्रवद्रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥ १२ ॥
सात्वतेन च बाणौघैर्निर्विद्धस्तनयस्तव ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥ १३ ॥
माधवस्तु रणे राजन्कुरुराजस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव ॥ १४ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत् ।
निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा ॥ १५ ॥
नाऽमृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम् ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ १६ ॥
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन ह ।
सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत् ।
पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ॥ १८ ॥

दोनों महारथी धनुष चढाकर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे रणभूमि के बीच एक दूसरेको अदृश्य करने लगे ॥ ९-११

जैसे चन्दनके वृक्षसे रस टपकता है, वैसेही कुरुराज दुर्योधन के बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर सात्यकिके शरीरसे रुधिर बहने लगा;जब सात्यकिके शरीर से रुधिर बहने लगा,उस समय सात्यकि रुधिर पूरित शरीरसे अत्यन्त शोभित हुए ॥ तुम्हारे पुत्र दुर्योधनभी सात्यकि के बाणोंसे विद्ध होकर सुवर्णभूषित खडे किये हुए यज्ञस्तम्भके समान युद्धभूमिमें अत्यन्त शोभायमान हुए। (१२-१३)

यदुकुलभूषण सात्यकिने हंसते हंसते एक क्षुरप्र बाणसे दुर्योधन के धनुषको काटकर उन्हें अनेक बाणोंसे विद्ध किया॥ तब कुरुराज दुर्योधनने हस्तलाघवसे शस्त्र चलानेवाले सात्यकि के बाणोंसे विद्ध होकर शत्रुविजयके लक्षणको सहन नहीं किया; उन्होंने सुवर्ण भूषित एक दृढ धनुष ग्रहण करके सात्यकिको एक· सौ बाणोंसे शीघ्रता के सहित विद्ध किया। (१४-१७)

सात्यकि महाबलवान् धनुर्द्धारी तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और क्रुद्ध होकर उन्हें अपने बाणों

सात्यकिं शरवर्षेण च्छादयामासुरोजसा।
स च्छाद्यमानो बहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः ॥ १९ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः।
दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाऽष्टभिराशुगैः ॥ २० ॥
प्रहसंश्चाऽस्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम्।
नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ॥ २१ ॥
हत्वा तु चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः।
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥ २२ ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम्।
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥
स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः।
प्राद्रवत्सहसा राजन्पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ २४ ॥
आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः।
हाहाभूतं जगच्चाऽऽसीद् दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥
ग्रस्यमानं सात्यकिना खे सोममिव राहुणा।

से पीडित करने लगे। तुम्हारी ओर के महारथियोंने राजा दुर्योधनको पीडित देख अपने बाणोंकी वर्षासे सात्यकिको छिपा दिया। महायशस्वी सात्यकिने तुम्हारे महारथ पुत्रोंके बाणोंकी जालसे छिपकर उन हर एक महारथियों को पांच पांच बाणोंसे विद्ध कर के फिर सात सात बाणोंसे विद्ध किया॥ १७-२०

अनन्तर सात्यकिने शीघ्रताके सहित दुर्योधनको आठबाणोंसे विद्ध करके उन के दृढ धनुषको काट दिया; और फिर उनके रत्नजटित सुवर्ण भूषित नाग ध्वजाको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया। तिसके अनन्तर चार बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंका वध करके एक क्षुरप्र बाणसे उनके सारथीका वध किया और इन सम्पूर्ण कार्योंके करनेके समय में ही हर्षके सहित महारथी कुरुराज दुर्योधनको भी मर्मभेदी अनेक बाणोंसे छिपा दिया॥ (२०-२३)

तुम्हारे पुत्र दुर्योधन शिनिपौत्र सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर घोडे और सारथीसे रहित अपने रथसे कूद कर चित्रसेनके रथ पर जाचढे। आकाशमें राहुसे चन्द्रमा ग्रसित होने के समान सात्यकिके अस्त्रों से कुरुराज दुर्योधनको पीडित देख तुम्हारी सेनाके बीच चारों ओरसे महा भयङ्कर हाहाकार शब्द होने

तं तु शब्दमथ श्रुत्वा कृतवर्मा महारथः ॥ २६ ॥
अभ्ययात्सहसा तत्र यत्राऽऽस्ते माधवः प्रभुः ।
विधुन्वानो धनुःश्रेष्ठं चोदयंश्चैव वाजिनः ॥ २७ ॥
भर्त्सयन्सारथिं चाऽग्रे याहि याहीति सत्वरम् ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ॥ २८ ॥
युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत् ।
कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमापतते शरी ॥ २९ ॥
प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ।
ततः प्रजविताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ॥ ३० ॥
आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम् ।
ततः परमसंक्रुद्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥ ३१ ॥
समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ।
कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ ३२ ॥
निशितैः सायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारं चाऽस्य पञ्चभिः ।
चतुरश्चतुरो वाहांश्चतुर्भिः परमेषुभिः ॥ ३३ ॥
अविध्यत्साधुदान्तान्वै सैन्धवान्सात्वतस्य हि ।

लगा। (२३-२६)

अनन्तर महारथी कृतवर्माने उस हाहाकार शब्दको सुनकर अपने सारथी की निन्दा करके उसे सात्यकिके समीप शीघ्रताके वास्ते आज्ञा दिया; कृतवर्मा का सारथी रथको बढाकर सात्यकि के समीप शीघ्रतासे गमन करने लगा। कृतवर्माको मुख पसारे हुए काल के समान अपनी ओर आते देख सात्यकि ने सारथीसे कहा, धनुर्धारियों में श्रेष्ठ महारथ कृतवर्मा वेगपूर्वक आरहे हैं तुम कृतवर्मा के संमुख मेरा रथ लेचलो ॥ (२६-३०)

तिसके अनन्तर सात्यकिका सारथी वेगवान् घोडोंसे युक्त भली भान्तिसे सज्जित उत्तम रथपर चढे हुए धनुर्द्धारियोंमें मुख्य भोजराज कृतवर्माके संमुख अपने रथको बढा कर उपस्थित हुआ। तिसके अनन्तर जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी वेगगामी दो व्याघ्रोंके समान वे दोनों पुरुषसिंह आपसमें युद्ध करने लगे। सुवर्णभूषित ध्वजा और सुवर्ण खचित वर्मसे युक्त महारथ कृतवर्माने प्रचण्ड धनुषको चलाकर उत्तम पानीसे बुझे हुए छब्बीस तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको, पांच बाणोंसे उनके सारथीको

रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद्विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ३४ ॥
रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुङ्खैरवारयत् ।
ततोऽशीतिं शिनेः पौत्रः सायकान्कृतवर्मणे ॥ ३५ ॥
प्राहिणोत्त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनञ्जयम् ।
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ ३६ ॥
समकम्पत दुर्धर्षः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।
त्रिषष्ट्या चतुरोऽस्याऽश्वान्सप्तभिः सारथिं तथा ॥३७॥
विव्याध निशितैस्तूर्णं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सुवर्णपुङ्खं विशिखं समाधाय च सात्यकिः ॥ ३८ ॥
व्यसृजत्तं महाज्वालं संक्रुद्धमिव पन्नगम् ।
सोऽविध्यत्कृतवर्माणं यमदण्डोपमः शरः ॥ ३९ ॥
जाम्बूनदविचित्रं च वर्म निर्भिद्य भानुमत् ।
अभ्यगाद्धरणीमुग्रो रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४० ॥
सञ्जातरुधिरश्चाऽऽजौ सात्वतेषुभिरर्दितः ।
सशरं धनुरुत्सृज्य न्यपतत्स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४१ ॥

और चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके रथके उत्तम शिक्षासे युक्त सिन्धुदेशीय चारों घोडोंको विद्ध किया ॥ (३०—३४)

फिर सुवर्ण भूषित ध्वजासे युक्त सुवर्णके बाहुभूषण धारण करने वाले कृतवर्माने अपने बाणोंकी वर्षासे सात्यकिको छिपा दिया ॥ तिसके अनन्तर अर्जुनके दर्शनके अभिलाषी सात्यकिने कृतवर्माके ऊपर अस्सी बाण चलाये। जैसे भूकम्प होने पर पर्वत हिलने लगता है वैसे बलवान् कृतवर्मा सात्यकि के बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर कम्पित होने लगे। सात्यकिने क्रुद्ध होकर उनके रथके घोडोंको तिरसठ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके उनके सारथी को भी सात बाणोंसे विद्ध किया। (३४–३८)

अनन्तर सुवर्ण दण्डयुक्त क्रोधी सर्पके समान दीखनेवाले भयङ्कर एक प्रकाशमान बाण धनुष पर चढा कर सात्यकिने कृतवर्माकी ओर चलाया। वह यमदण्डके समान प्रचण्ड बाण सुवर्ण भूषित कृतवर्माके प्रकाशमान वर्मको भेदकर शरीरमें घुस गया और फिर शरीरको छेद कर रुधिर लिपटे हुए पृथ्वीमें गिर पडा। महापराक्रमी कृतवर्मा सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त पीडित और रुधिर पूरित शरीरसे युक्त हो धनुष बाण त्याग कर सिंहके दांतके

स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां पतितोऽमितविक्रमः ।
शरार्दितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥ ४२ ॥
सहस्रबाहुसदृशमक्षोभ्यमिव सागरम् ।
निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ ततः ॥ ४३ ॥
खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् ।
प्रवर्त्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ४४ ॥
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां मध्येन शिनिपुङ्गवः ।
अभ्यगाद्वाहिनीं हित्वा वृत्रहेवाऽऽसुरीं चमूम् ॥४५ ॥
समाश्वस्य च हार्दिक्यो गृह्य चाऽन्यन्महद्धनुः ।
तस्थौ स तत्र बलवान्वारयन्युधि पाण्डवान् ॥४६॥ [४६३७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनकृतवर्मपराभवे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सञ्जय उवाच– काल्यमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः ।
भारद्वाजः शरव्रातैर्महद्भिः समवाकिरत् ॥ १ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत् ।

समान दांतोंको निकाल कर अपने उत्तम रथसे दोनों घुटनोंके बल पृथ्वी पर गिरे। (३८–४२)

शिनिपौत्र सात्यकि सहस्रबाहु कार्त्तवीर्यके समान पराक्रमी तथा अगाध समुद्रके समान अक्षोभ्य कृतवर्माको युद्धसे निवारण करके फिर आगे बढे॥ वह सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंके संमुख हीके तलवार शक्ति धनुष बाणसे युक्त; हाथी, घोडे और रथोंसे पूरित सैकडों शूरवीर क्षत्रिय योद्धाओं तथा सेनाके पुरुषोंको रुधिर पूरित शरीरसे युक्त करते और सेनाको भेदके उसके बीच इस प्रकार प्रवेश करने लगे, जैसे वृत्रासुरका नाश करने वाले इन्द्रने असुरोंकी सेनाके बीच प्रवेश किया था॥ उधर महाबली कृतवर्मा सावधान होकर अपना प्रचण्ड धनुष ग्रहण कर पाण्डवोंको युद्धसे निवारण करते हुए उस ही स्थान पर स्थित हुए॥ (४३–४६) [४६३७]

द्रोणपर्वमें एकसौ सोलह अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ सतरह अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! शिनिपौत्र सात्यकि जब इधर उधर तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको तितर बितर करने लगे;तब द्रोणाचार्यने वहां गमन करके उन्हें अपने बाणोंसे छिपा दिया॥ जैसे इन्द्रके सङ्गमें राजा बलिका युद्ध हुआ था;

पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव ॥ २ ॥
ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः ।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३ ॥
तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानस्त्वजिह्मगैः ।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ४ ॥
ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान् ।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ॥ ५ ॥
तान्द्रोणचापनिर्मुक्तान्दाशार्हः पततः शरान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥६॥
तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते ।
प्रहस्य सहसाऽविध्यत्त्रिंशता शिनिपुङ्गवम् ॥ ७ ॥
पुनः पञ्चाशतेषूणां शितेन च समार्पयत् ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥ ८ ॥
समुत्पतन्ति वल्मीकाद्यथा क्रुद्धा महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद्राजन्नापतन्ति तनुच्छिदः ॥ ९ ॥

वैसे ही द्रोणाचार्यके सङ्ग सात्यकिका महाघोर संग्राम होने लगा ॥ (१-२)

अनन्तर द्रोणाचार्यने लोहमय सर्पके समान रूपवाले तीन बाणोंसे सात्यकिका ललाट बिद्ध किया। मस्तकमें बिद्ध हुए उन तीनों बाणोंसे सात्यकि तीन शृङ्ग-वाले पर्वतके समान शोभित हुए ॥ छिद्र देखनेवाले पराक्रमी द्रोणाचार्यने उसके अनन्तर इन्द्रके वज्रसमान शब्दसे युक्त कितने ही बाण सात्यकीके ऊपर चलाये ॥ (३—५)

अस्त्र शस्त्रोंके मर्मको जाननेवाले सात्यकिने द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको संमुख आते देख, मनोहर पंखवाले अपने दो बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ द्रोणाचार्यने सात्यकिका ऐसा हस्तलाघव देख हंस कर शीघ्रताके सहित उसे तीस बाणोंसे बिद्ध किया; और अस्त्रोंके चला-नेमें अपना हस्त लाघव प्रकाशित करके सात्यकिके हस्तलाघवको तुच्छ करतेहुए उसे फिर पचास बाणोंसे बिद्ध किया ॥ (६-८)

जैसे महा प्रचण्ड, सर्प बिलसे निकल के क्रोधपूर्वक दौडते हुए दीख पडते हैं, वैसे ही शत्रुओंके शरीरको भेदनेवाले बाण द्रोणाचार्यके धनुषसे छूट कर सात्यकिके रथपर गिरने लगे ॥ और

तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः ।
अवाकिरन्द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥
लाघवाद् द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाऽध्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ॥ ११ ॥
सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः ॥ १२ ॥
सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ।
लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ॥ १३ ॥
सप्तत्या सारथिं विध्वा तुरङ्गांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १४ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥ १५ ॥
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः ।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाऽक्षिपत् ॥ १६ ॥
तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १७ ॥

वैसेही सात्यकिके चलाये हुए सैकडों तथा सहस्रों बाण द्रोणाचार्यके रथको छिपाने लगे। द्विज-सत्तम द्रोणाचार्य और यदुकुल भूषण सात्यकि, उस समयमें इन दोनों शूरवीरोंके बीच कोई भी हस्तलाघवमें एक दूसरेसे अधिक न होसके; वे दोनों पुरुषसिंह समान रूपसे युद्धमें अपना पराक्रम प्रकाशित कर रहे थे ॥ (९—११)

अनन्तर सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नव नतपर्व बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करके उनके नेत्रके संमुखहीमें उनके रथ ध्वजा और सारथीको भी एकसौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ द्रोणाचार्य ने सात्यकिका हस्तलाघव देख, उसे सत्तर बाणोंसे विद्ध करके फिर तीन तीक्ष्ण बाणोंसे उसके रथके चारों घोडोंको विद्ध किया। फिर महात्मा द्रोणाचार्यने सुवर्ण पुंखवाले एक भल्लसे सात्यकिका धनुष काटके उनके रथकी ध्वजाको भी एक बाणसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (१२-१५)

तिसके अनन्तर सात्यकिने कटा धनुष त्याग कर एक बहुत बडी गदा ग्रहण कर द्रोणाचार्यकी ओर चलाया। द्रोणाचार्यने उस लोहमयी गदाको

*

अथाऽन्यद्धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥ १८ ॥
स विध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत ।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १९ ॥
ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम्।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २० ॥
अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसन्निभा।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥ २१ ॥
ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन्विव्याध पत्रिणा ।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन्भरतर्षभ ॥ २२ ॥
द्रोणोऽपि समरे राजन्माधवस्य महद्धनुः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥ २३ ॥
मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः ।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत ॥ २४ ॥
चकार सात्यकी राजन्सूतकर्माऽतिमानुषम् ।
अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मीञ्जग्राह च स्वयम् ॥२५ ॥

संमुख आती देख, बहुरूपी अनेक बाणोंसे उसे निवारण किया ॥ शत्रु-नाशन सात्यकिने दूसरा धनुष ग्रहण कर अनेक बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करके सिंहनाद किया; शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने सात्यकिके सिंहनादको न सहके शीघ्रताके सहित एक स्वर्ण-दण्डवाली लोहमयी शक्ति उठा कर उसके रथपर चलाया ॥ (१९–२०)

कालके समान भयङ्कर शब्दसे युक्त वह प्रचण्ड शक्ति सात्यकिके समीप न पहुंच कर उसके रथहीको भेद करके पृथ्वीमें गिर पडी ॥ तिसके अनन्तर सात्यकि द्रोणाचार्यकी दहिनी भुजाको अपने बाणोंसे विद्ध करके उन्हें पीडित करने लगे ॥ द्रोणाचार्यने भी सात्यकिके धनुष रथ और सारथीको शक्तिके प्रहारसे अत्यन्त विद्ध किया ॥ सात्यकि का सारथी द्रोणाचार्यकी शक्तिके प्रहारसे मूर्च्छित होगया; और मुहूर्त्त भर तक रथके ऊपर व्याकुल रहा ॥ (२१—२४)

महाराज ! उसही समय सात्यकिने यह अलौकिक कर्म किया कि उन्होंने द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध भी किया, और अपने घोडोंकी बागडोर भी ग्रहण

ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः ।
अविध्यद्ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते ॥ २६ ॥
तस्य द्रोणः शरान्पञ्च प्रेषयामास भारत ।
ते घोराः कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २७ ॥
निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुद्ध्यत्सात्यकिर्भृशम् ।
सायकान्व्यसृजच्चाऽपि वीरो रुक्मरथं प्रति ॥ २८ ॥
ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि ।
अश्वान्व्यद्रावयद्बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः ॥ २९ ॥
स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः ।
चकार राजतो राजन्भ्राजमान इवांऽशुमान् ॥ ३० ॥
अभिद्रवत गृह्णीत हयान्द्रोणस्य धावत ।
इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥
ते सात्यकिमपास्याऽऽशु राजन्युधि महारथाः ।
यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥ ३२ ॥
तान्दृष्ट्वा प्रद्रुतान्संख्ये सात्वतेन शरार्दितान् ।

किया ॥ अनन्तर सात्यकिने एक सौ बाणोंसे द्विजसत्तम द्रोणाचार्यको विद्ध किया; तब द्रोणाचार्यने सात्यकिके ऊपर पांच बाण चलाये । वे बाण सात्यकिके वर्मको तोडके उनके शरीरमें घुसकर रुधिर पीते हुए पृथ्वीमें गिरे ॥ २५-२७

महारथी सात्यकि उन बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और पीडित होकर सुवर्णयुक्त रथ पर चढे हुए द्रोणाचार्यके ऊपर अपने बाणोंको चलाने लगे ॥ और एक बाणसे उनके सारथीका वध करके उसे पृथ्वीमें गिराया; फिर उनके घोडोंको अपने बाणोंसे विद्ध किया । वे घोडे सात्यकि के बाणोंसे विद्ध होके सारथीसे रहित रथको लेकर शीघ्रताके सहित रणभूमिमें दौडने लगे और सूर्यके समान उस प्रकाशमान रथको लेकर मण्डलाकार गतिसे सहस्रोंवार युद्धभूमिके बीच भ्रमण करने लगे ॥ (२८—३०)

अनन्तर वहां पर तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण राजा और राजपुत्र लोग बलपूर्वक सेनाके पुरुषोंको पुकारके कहने लगे "दौडो द्रोणाचार्यके घोडोंको रोको"। वे सम्पूर्ण योद्धालोग शीघ्रही सात्यकिको त्याग कर जहां पर द्रोणाचार्यके रथको उनके रथके घोडे खींचते हुए दौडे जाते थे उस ही ओर सहसा दौडने लगे ॥ तब तुम्हारी सेनाके दूसरे योद्धा

प्रभग्नं पुनरेवाऽऽसीत्तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३३ ॥
व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः ।
वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः ॥ ३४ ॥
पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान् ।
शैनेयेनाऽकरोद्यत्नं व्यूहमेवाऽभ्यरक्षत ॥ ३५ ॥
निवार्य पाण्डुपञ्चालान्द्रोणाग्निः प्रदहन्निव ।
तस्थौ क्रोधेध्मसन्दीप्तः कालसूर्य इवोद्गतः ॥३६॥ [४६७३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे सात्यकिपराक्रमे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११७॥

सञ्जय उवाच— द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीरस्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान् ।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्र्य ॥ १ ॥
निमित्तमात्रं वयमत्र सूत दग्धारयः केशवफाल्गुनाभ्याम् ।
हतान्निहन्मेह नरर्षभेण वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥ २ ॥

लोग अपनी ओरके उन शूरवीरोंको सात्यकिके बाणोंसे पीडित और उसके समीपसे भागते देख व्याकुल होकर फिर युद्धभूमिमें भागने लगे ॥ (३१–३३)

सात्यकिके बाणोंसे पीडित रथ पर चढे हुए द्रोणाचार्य वायुके समान गमन करनेवाले घोडोंके सहित व्यूहके दर्वाजेपर आके फिर स्थित हुए ॥ बलवान् द्रोणाचार्यने पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंके पराक्रमसे अपने व्यूहको भिन्न हुए देखकर फिर सात्यकिको निवारण करने के वास्ते यत्न नहीं किया, उस समय द्रोणाचार्य अपने व्यूह बद्ध सेनाकी रक्षा करनेमें ही प्रवृत्त हुए ॥ वह क्रुद्ध होकर अग्निके समान प्रज्वलित होगये, अनन्तर पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंको युद्धसे निवारण करके प्रलयकालके सूर्य-समान प्रकाशित होकर द्रोणाचार्य अपनी सेनाके व्यूहद्वार पर स्थित हुए ॥ (३४–३६) [४६७३]

द्रोणपर्वमें एकसौ सतरह अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ अठरह अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे कुरुश्रेष्ठ राजेन्द्र ! पुरुषसिंह शिनिपौत्र बलवान् सात्यकि द्रोणाचार्य और कृतवर्मा आदि तुम्हारी ओरके योद्धाओंको पराजित करके अपने सारथीसे बोले, हे सारथी ! हम लोग केवल निमित्त मात्र हुए हैं; क्योंकि हम लोगोंके शत्रु कृष्ण अर्जुनके पराक्रमसे पहिलेसे ही भस्म होचुके हैं । इन्द्रपुत्र पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने इन सब योद्धाओंको पहिलेसे ही मार रक्खा है । हमलोग उन

तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा ।
किरन्समन्तात्सहसा शरान्बली समापतच्छ्येन इवाऽऽमिषं यथा॥ ३॥
तं यान्तमश्वैः शशिशङ्खवर्णैर्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम् ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं समन्तादादित्यरश्मिप्रतिमं रथाग्र्यम् ॥ ४ ॥
असह्यविक्रान्तमदीनसत्त्वं सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ।
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं दिवीव सूर्यं जलदव्यपाये ॥ ५ ॥
अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।
सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं न्यवारयद्राजवरः प्रसह्य ॥ ६ ॥
तयोरभूद्भारतऽसम्प्रहारः सुदारुणस्तं समतिप्रशंसन् ।
योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवाऽमरौघाः॥ ७ ॥
शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत्सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ ।
अनागतानेव तु तान्पृषत्कांश्चिच्छेद राजञ्शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ ८ ॥

मरे हुए योद्धाओंका ही वध कर रहे हैं ॥ (१–२)

शत्रुनाशन धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी बलवान् सात्यकि सारथीसे ऐसा वचन कहकर चारों ओर बाण चलाते हुए मानों मांसकी इच्छासे भक्ष्यकी ओर दौडते हुए बाज पक्षीकी भांति सहसा तुम्हारी सेनाके योद्धाओंके सम्मुख आके उपस्थित हुए ॥ हे भारत ! सूर्य समान तेजस्वी अत्यन्त पराक्रमी निर्भयचित्तसे गमन करनेवाले इन्द्र और सूर्यके समान प्रकाशित उस पुरुषसिंह सात्यकिको चन्द्रमा वा शङ्खवर्णके समान सफेद घोडोंसे युक्त उत्तम रथ पर चढके सेनाके शूरवीरोंको तितर बितर करते देख, सम्पूर्ण सेनाके बीचसे किसी सेनाके योद्धा भी उसे निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ (३–५)

परन्तु अत्यन्त विचित्र योद्धा सुवर्ण वर्म धारण करनेवाले धनुर्धारी महारथ सुदर्शन सात्यकिको अकस्मात् सेना के बीच आये हुए देख क्रुद्ध होकर उसे निवारण करने में प्रवृत्त हुए ॥ सुदर्शन के सङ्ग सात्यकिका महाघोर संग्राम होने लगा । जैसे देवताओंने इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धकी प्रशंसा किया था वैसे ही तुम्हारी ओर के योद्धा तथा सोमक शूरवीर योद्धा उन दोनों पुरुषोंके युद्धको देख उनकी प्रशंसा करने लगे॥ सुदर्शनने अत्यन्त तीक्ष्ण सैकडों बाण सात्यकिकी ओर चलाये; परन्तु सात्यकि उनके सम्पूर्ण बाणोंको समीप न आते ही आते अपने बाणोंसे मार्गहीमें काट काट गिराने लगे । (६–८)

तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः सुदर्शने यान्क्षिपति स्म सायकान् ।
द्विधा त्रिधा तानकरोत्सुदर्शनः शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥ ९ ॥
तान्वीक्ष्य बाणान्निहतांस्तदानीं सुदर्शनः सात्यकिबाणवेगैः ।
क्रोधाद्दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः शरानमुञ्चत्तपनीयचित्रान् ॥ १० ॥
पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विभिद्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ ११ ॥
तथैव तस्याऽवनिपालपुत्रः सन्धाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान्रजतप्रकाशांश्चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥ १२ ॥
तथा तु तेनाऽभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः ।
सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णैर्हयान्निहत्याऽऽशु ननाद नादम् ॥ १३ ॥
अथाऽस्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन शक्राशनिसन्निभेन ।
सुदर्शनस्याऽपि शिनिप्रवीरः क्षुरेण कालानलसंनिभेन ॥ १४ ॥
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकर्त देहात् ।
यथा पुरा वज्रधरः प्रसह्य बलस्य संख्येऽतिबलस्य राजन् ॥ १५ ॥

वैसे ही इन्द्रके समान पराक्रमी सात्यकिने भी जितने बाण चलाये रथियोंमें श्रेष्ठ सुदर्शनने भी अपने चोखे बाणोंसे उन सम्पूर्ण बाणों को टुकडे टुकडे कर के पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ महातेजस्वी सुदर्शन उस समय अपने चलाये हुए बाणोंको कटते देख अत्यन्त क्रुद्ध हुए; और मानो रथ पर नृत्य करते हुए सुवर्ण चित्रित कितने ही बाण सात्यकि की ओर चलाये; और फिर उत्तम पानीसे बुझे हुए तीन तीक्ष्ण बाणोंको धनुष पर चढा कर सात्यकिको विद्ध किया । वे तीनों बाण सात्यकि के वर्म को भेद कर उन के शरीर में घुस गये ॥ (९–११)

तिसके अनन्तर राजपुत्र सुदर्शनने चार बाणोंसे सात्यकिके रजतवर्ण चारों घोडोंको विद्ध किया ॥ इन्द्रके समान पराक्रमी शिनिपौत्र बलवान् सात्यकिने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे सुदर्शन के रथ के घोडों का वध करके सिंहनाद किया; अनन्तर इन्द्र के वज्र समान एक बाण से उन के सारथीका सिर काट कर फिर एक तीक्ष्ण बाणसे उनका भी सिर काट कर पृथ्वी में गिरा दिया ॥ पहिले समय में जैसे इन्द्रने महा बलवान् बलासुर का सिर काटा था, वैसे ही सात्यकिने सुदर्शनके कुण्डलभूषित पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाशमान सिरको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (१२–१५)

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं रणे यदूनामृषभस्तरस्वी ।
मुदा समेतः परया महात्मा रराज राजन्सुरराजकल्पः ॥ १६ ॥
ततो ययावर्जुन एव येन निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः ।
सदश्वयुक्तेन रथेन राजँल्लोकं विसिस्मापयिषुर्नृवीरः ॥ १७ ॥
तत्तस्य विस्मापयनीयमग्र्यमपूजयन्योधवराः समेताः ।
प्रवर्त्तमानानिषुगोचरेऽरीन्ददाह बाणैर्हुतभुग्यथैव ॥ १८ ॥ [४६९१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि
सुदर्शनवधेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच— ततः स सात्यकिर्धीमान्महात्मा वृष्णिपुङ्गवः ।
सुदर्शनं निहत्याऽऽजौ यन्तारं पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥
रथाश्वनागकलिलं शरशक्त्यूर्मिमालिनम् ।
खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम् ॥ २ ॥
प्राणापहारिणं रौद्रं वादित्रोत्क्रुष्टनादितम् ।
योधानामसुखस्पर्शं दुर्धर्षमजयैषिणाम् ॥ ३ ॥
तीर्णाः स्म दुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम् ।

यदुकुल भूषण पुरुषसिंह सात्यकि राजपौत्र और राजपुत्र सुदर्शनका युद्ध-भूमि में वध कर के अत्यन्त हर्षित हो-कर देवराज इन्द्र के समान प्रकाशित होने लगे ॥ तिसके अनन्तर अर्जुनने जिस मार्गसे गमन किया था, सात्यकि भी उत्तम घोडोंसे युक्त रथ पर चढके तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको निवारित करते हुए उस ही मार्गसे गमन करने लगे ॥ बाण चलानेके मार्ग में स्थित शत्रुओं को जब वह अपने बाणोंसे अग्नि की भांति भस्म कर रहे थे तब सम्पूर्ण योद्धा लोग मिल कर उन के उस आश्चर्य रूपी श्रेष्ठ और कठिन कर्म की अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥ (१६-१८)

द्रोणपर्वमें एकसौ अठरह अध्याय समाप्त। ४६९१

द्रोणपर्वमें एकसौ उन्नीस अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज ! यदुवंशियों में श्रेष्ठ बुद्धिमान् महात्मा सात्यकि सु-दर्शनका वध कर के सारथीसे फिर बो-ले, हे प्यारे मित्र ! जलसन्ध राजाकी सेना और राक्षस समान दूसरे अनेक सैनिक योद्धाओंसे परिपूरित रथ घोडे और हाथियों के समूहसे युक्त धनुष बाण और शक्ति रूपी तरङ्ग, तलवार रूपी मछरी, गदा रूपी ग्राह, शूरवीरों-के सिंहनाद और जुझाऊ बाजे रूपी लहर के शब्दसे युक्त विजयकी इच्छा

जलसन्धबलेनाऽऽजौ पुरुषादैरिवाऽऽवृतम् ॥ ४ ॥
अतोऽन्यत्पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव ।
तर्तव्यामल्पसलिलां चोदयाऽश्वानसम्भ्रमम् ॥ ५ ॥
हस्तप्राप्तमहं मन्ये साम्प्रतं सव्यसाचिनम् ।
निर्जित्य दुर्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे ॥ ६ ॥
हार्दिक्यं योधवर्यं च मन्ये प्राप्तं धनञ्जयम् ।
न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः ॥ ७ ॥
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कतृणोलपे ।
पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना ॥ ८ ॥
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम् ।
द्रवते तद्यथा सैन्यं तेन भग्नं महात्मना ॥ ९ ॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे ।
कौशेयारुणसङ्काशमेतदुद्धूयते रजः ॥ १० ॥
अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।

करने वाले योद्धाओंसे परिपूर्ण महा भयङ्कर अगाध समुद्ररूपी द्रोणाचार्यकी सेनासे हम लोग पार होगये॥ (१–४)

हम बाकी जो सब सेनासे पार होना पडेगा; उन्हें थोडे जलसे युक्त छोटी नदियोंके समान बोध करता हूं, तुम निर्भय चित्तसे इस सम्पूर्ण सेनाकी ओर रथ बढाओ ॥ पराक्रमी द्रोणाचार्य और योद्धाओं में श्रेष्ठ कृतवर्मा को उनके अनुयाइयोंके सहित पराजित करके इस समय मैं अपनेको अर्जुनके समीप पहुंचा-हुआ ही समझ रहा हूं ॥ इस बहुतसी सेनाको देखकर मुझे तनिक भी भय नहीं होता है; बल्कि ग्रीष्म ऋतुके समय जैसे जलती हुई अग्नि सूखे तृण काष्ठ-को भस्म कर देती है वैसे ही मैं इस सेना के सम्पूर्ण योद्धाओं को अपने बाणोंसे भस्म कर दूंगा। (५–८)

हे सारथी ! यह देखो हाथी घोडे रथ और मरे हुए पैदल सेनाके पुरुषोंके शरीरसे यह रणभूमि परिपूर्ण होकर भयङ्कर रूपसे दीख पडती है। यह अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे सब योद्धा मरकर पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं। वह देखो जो सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग दौडते हुए युद्धभूमि में इधर उधर भाग रहे हैं; यह भी अर्जुनही के पराक्रमका फल है; और यह जो हाथी घोडे रथ और पदाति सेनाके योद्धाओं के दौडने से धूलि उड रही है वहीं अर्जुन के

■ एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्याऽमितौजसः॥ ११ ॥
यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै ।
अनस्तङ्गत आदित्ये हन्ता सैन्धवमर्जुनः ॥ १२ ॥
शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान्याहि यत्राऽरिवाहिनी ।
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ॥ १३ ॥
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ।
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ॥ १४ ॥
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ।
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ॥ १५ ॥
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ।
मामेवाऽभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः ॥ १६ ॥
एतान्सरथनागाश्वान्निहत्याऽऽजौ सपत्तिनः ।
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥ १७ ॥
सूत उवाच— न सम्भ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम ।
यद्यपि स्यात्तव क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः ॥१८॥
द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा ।

सङ्ग कुरुसेनाके शूरवीरोंसे संग्राम होरहा है । यह सुनो महाप्रचण्ड गाण्डीव शब्द सुन पडता है; इससे बोध होता है,कृष्ण सारथी के सहित श्वेतवाहन अर्जुन समीप ही में स्थित हैं। (८–११)

मेरे समीप सब शकुन दीख पडते हैं, कि अर्जुन सूर्य अस्त होनेके पहिले ही सिन्धुराज जयद्रथका वध करेंगे ॥ हे सारथी ! जहां पर दुर्योधनके अनुयाई कठोर कर्मों को करने वाले वर्म धारण किये हुए धनुर्धारी अस्त्र चलानेमें निपुण काम्बोज यवन शक किरात दरद बर्बर ताम्रलिप्तक और अनेक अस्त्र शस्त्रों को धारण करने वाली म्लेच्छों की सेना मेरी ओर देखती हुई युद्ध के निमित्त रणभूमिमें स्थित है; तुम सावधान होके घोडों को श्रमरहित करते हुए उस ही ओर धीरे धीरे गमन करो। यह सम्पूर्ण रथी गजारोही घुडसवार और पैदल सेनाके योद्धाओं का वध कर के मैं अपने को इस भयङ्कर दुर्ग (किला) से पार हुआ ही समझ रहा हूं॥१२-१७

सारथी बोला, हे सत्यपराक्रमी वृष्णिनन्दन सात्यकि ! मैं जब तुम्हारी भुजासे रक्षित हूं, तब अत्यन्त क्रुद्ध जमदग्निके पुत्र परशुराम रथियोंमें श्रेष्ठ

तथाऽपि संभ्रमो न स्यात्त्वामाश्रित्य महाभुज ॥ १९ ॥
त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन ।
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ॥ २० ॥
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ।
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २१ ॥
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ।
न च मे संभ्रमः कश्चिद्भूतपूर्वः कथञ्चन ॥ २२ ॥
किमुतैतत्समासाद्य धीर संयुगगोष्पदम् ।
आयुष्मन्कतरेण त्वां प्रापयामि धनञ्जयम् ॥ २३ ॥
केषां क्रुद्धोऽसि वार्ष्णेय केषां मृत्युरुपस्थितः ।
केषां संयमनीमद्य गन्तुमुत्सहते मनः ॥ २४ ॥
के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम् ।
दृष्ट्वा विक्रमसम्पन्नं विद्रविष्यन्ति संयुगे ॥ २५ ॥
केषां वैवस्वतो राजा स्मरतेऽद्य महाभुज ।
सात्यकिरुवाच— मुण्डानेतान्हनिष्यामि दानवानिव वासवः ॥ २६ ॥
प्रतिज्ञां पारयिष्यामि काम्बोजानेव मां वह ।

द्रोणाचार्य,कृपाचार्य अथवा मद्रराजशल्य भी यदि युद्धभूमि में मेरे आगे स्थित होवे तौभी मैं भयभीत नहीं हो सकूंगा॥ हे शत्रुनाशन ! तुमने पूर्वकालमें बहुतेरे क्रूर कर्म करनेवाले, कवचधारी और युद्धदुर्मद काम्बोज योद्धाओंको, धनुष्य बाण धारण करने वाले तथा तीक्ष्ण प्रहारी यवन, शक, किरात, दरद, बर्बर, ताम्रलिप्तक और अनेक प्रकारसे शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाले अन्य बहुतेरे योद्धाओंको युद्धभूमि में पराजित किया है, उस समय भी मुझे तनिक भय नहीं बोध हुआ था; इस समय जो आप के सङ्ग गोष्पद तुल्य छोटा युद्ध होगा उसमें मुझे क्यों भय लगेगा ? १८–२३

हे शत्रुनाशन ! तुम्हें किस मार्गसे अर्जुनके निकट लेचलें, तुम किसके ऊपर क्रुद्ध हुए हो ? किसका मन आज यमपुरीमें जानेके वास्ते उत्सुक होरहा है ? कौनसे योद्धा तुम्हें पराक्रमसे युक्त साक्षात् यमराजके समान देखकर युद्धभूमिसे भागने में तत्पर होंगे ! आज यमराज किसको स्मरण कर रहे हैं ! (२३–२६)

सात्यकि बोले, हे सारथी ! जैसे इन्द्र ने दानवोंका वध किया था, वैसे ही

अद्यैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम् ॥ २७॥
अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः ।
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चाऽसकृत् ॥ २८ ॥
अद्य कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य संयुगे ।
श्रुत्वा विरावं बहुधा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥ २९ ॥
अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः ।
आचार्यस्य कृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥ ३० ॥
अद्य मद्बाणनिहतान्योधमुख्यान्सहस्रशः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ३१ ॥
अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान् ।
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ॥ ३२ ॥
मत्सायकचिताङ्गानां रुधिरं स्रवतां मुहुः ।
सैनिकानां वधं दृष्ट्वा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥ ३३ ॥
अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान्वरान् ।

आज मैं मुण्डित-सिरके काम्बोजसेनाका संहार करूंगा; तुम उन योद्धाओं के समीप मेरे रथको ले चलो मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूंगा । आज मैं इस काम्बोज सेनाका नाश करके शीघ्रही अर्जुनके समीप गमन करूंगा; आज दुर्योधनके सहित सम्पूर्ण कौरव लोग मेरे बलपराक्रमको देखेंगे । आज मुण्डित सिरवाली सम्पूर्ण सेना के शूरवीरों के संहार होनेपर तथा दूसरी सेनाके पुरुषों के नाश होने पर दुर्योधन जहां तहां भागते हुए इन कुरुसेनाके पुरुषोंका आर्त्त शब्द सुनकर दुःखित होवेगा ॥ २६–२९

आज मैं संग्रामभूमिमें पाण्डवोंमें मुख्य श्वेतवाहन महात्मा आचार्य अर्जुन की सिखाई हुई सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या समस्त योद्धाओंको दिखाऊंगा । आज राजा दुर्योधन सहस्रों शूरवीरोंको मेरे अस्त्रोंसे मरते देख पश्चात्ताप करेंगे ॥ आज मैं हस्तलाघवके सहित झुण्डके झुण्ड बाण चलाऊंगा । कौरव लोग आज मेरे धनुषको मण्डलाकार गति-युक्त कुम्हारके चाकके समान चारों ओर भ्रमण करते हुए अवलोकन करेंगे ॥ आज सेनाके योद्धा लोगों को मेरे बाणोंसे रुधिरपूरित शरीरसे युक्त होकर प्राणत्याग करते देख दुर्योधन दुःखित होवेगा ॥ (३०–३३)

आज जब मैं क्रुद्ध होकर मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध करने लगूंगा, तब

द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यतेऽद्य सुयोधनः ॥ ३४ ॥
अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा सन्तप्स्यति महामृधे ॥ ३५ ॥
अद्य स्नेहं च भक्तिं च पाण्डवेषु महात्मसु ।
हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ॥ ३६ ॥
बलं वीर्यं कृतज्ञत्वं मम ज्ञास्यन्ति कौरवाः ।
सञ्जय उवाच— एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान्साधुवाहिनः ॥ ३७ ॥
शशाङ्कसन्निकाशान्वै वाजिनो व्यनुदद्भृशम् ।
तेऽपिबन्त इवाऽऽकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ॥ ३८ ॥
प्रापयन्यवनाञ्शीघ्रं मनःपवनरंहसः ।
सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्तिनम् ॥ ३९ ॥
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन् ।
तेषामिषूनथाऽस्त्राणि वेगवान्नतपर्वभिः ॥ ४० ॥
अच्छिनत्सात्यकी राजन्नैनं ते प्राप्नुवञ्शराः ।
रुक्मपुङ्खैः सुनिशितैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४१ ॥

दुर्योधन समझेगा कि, इस पृथ्वीपर दो अर्जुन उपस्थित हैं ॥ आज रणभूमिमें सहस्रों राजाओंको मेरे अस्त्रोंकी चोटसे मरते देख दुर्योधन पश्चाताप करेगा ॥ आज मैं सहस्रों राजाओंका वध करके महात्मा पाण्डवोंके ऊपर अपने प्रेम और भक्तिको सम्पूर्ण राजाओंके समीप प्रकाशित करूंगा ॥ आज कौरव लोग मेरे बलपराक्रम और पाण्डवोंके ऊपर मेरी कृतज्ञताको समझ सकेंगे । ३४-३७

सञ्जय बोले, सारथीने सात्यकिके ऐसे वचन सुनकर उत्तम शिक्षासे युक्त चन्द्रके समान सफेद वर्णवाले घोडोंको शीघ्रताके सहित आगे बढाये ; मन और वायुके समान शीघ्र गमन करनेवाले घोडोंने मानो आकाश मार्गसे गमन करते हुए शीघ्रही यवन योद्धाओंके समीप युद्धसे पीछे न हटनेवाले सात्यकि को लाकर उपस्थित किया ॥ (३७-३९)

यवन सेनाके बीच बहुतेरे योद्धाओं-ने हस्तलाघवके सहित अपने बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको छिपा दिया । सात्यकि शीघ्रताके सहित अपने नतपर्व बाणोंसे उन योद्धाओंके बाण और दूसरे अस्त्र काट काट पृथ्वीमें गिराने लगे । उन योद्धाओंके चलाये हुए बाण सात्यकिके निकट पर्यन्त भी पहुंच न सके; उस समय सात्यकि प्रचण्ड रूपसे युक्त होकर

उच्चकर्त्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि ।
शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समन्ततः ॥४२॥
भित्वा देहांस्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम् ।
ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः सात्यकिना रणे ॥ ४३ ॥
शतशोऽभ्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले ।
सुपूर्णायतमुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ॥ ४४ ॥
पञ्च षट् सप्त चाऽष्टौ च बिभेद यवनाञ्छरैः ।
काम्बोजानां सहस्रैश्च शकानां च विशाम्पते ॥ ४५ ॥
शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च ।
अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ॥ ४६ ॥
कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम् ।
दस्यूनां सशिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्धजैः ॥ ४७ ॥
दीर्घकूर्चैर्मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं बभौ ॥ ४८ ॥
कबन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवाऽऽवृतम् ।

स्वर्णपुंख तथा गिद्ध पंखसे युक्त अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन योद्धाओंकी भुजा और सिरको काट काट गिराने लगे। सात्यकिके धनुषसे छूटे हुए वे सम्पूर्ण बाण सब योद्धाओंके लोहे और कांसेके वर्मको भेद करते हुए शरीरमें घुसकर पृथ्वीमें गिरने लगे। (४०-४२)

सैकडों म्लेच्छ योद्धा सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर प्राणत्याग करते हुए पृथ्वीमें गिरने लगे। वह कान पर्यन्त धनुष खींच कर झुण्डके झुण्ड बाण चलाते हुए एकबारमें पांच छः सात तथा आठ योद्धाओंका वध करने लगे। पुरुषसिंह सात्यकिके बाणोंसे मरके पृथ्वीमें गिरे हुए यवन, काम्बोज, किरात, बर्बर और शक सेनाके योद्धाओंसे वह रणभूमि परिपूरित होगई। यदुकुल श्रेष्ठ सात्यकि इसी प्रकार यवन सेनाके योद्धाओंको पीडित करते तथा उनका वध करते तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे। सेनाके योद्धाओंके रुधिर और मांससे वह रणभूमि कीचडसे युक्त होकर भयङ्कर दीखने लगी। ४३-४७

डाकु म्लेच्छोंके शिरस्त्राण सहित उस रणभूमिमें इधर उधर गिर कर पंखरहित पक्षीके समान उनके मुण्डित सिरोंसे वह युद्धभूमि परिपूरित होगई। जैसे लाल-वर्णवाले बादलोंसे आकाश परिपूरित

वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजिह्मगैः ॥ ४९ ॥
ते सात्वतेन निहताः समावव्रुर्वसुन्धराम् ।
अल्पावशिष्टाः संभग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः ॥५० ॥
जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः ।
पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्तस्तुरङ्गमान् ॥ ५१ ॥
जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन्भयात् ।
काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत ॥ ५२ ॥
यवनानां च तत्सैन्यं शकानां च महद्बलम् ।
ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ५३ ॥
प्रविष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत् ।
तत्तस्य समरे कर्म दृष्ट्वाऽन्यैरकृतं पुरा ॥ ५४ ॥
चारणाः सहगन्धर्वाः पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ।
तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य विशाम्पते ।
चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाऽभ्यपूजयन् ॥५५॥[४७४६]

इति श्रीमहा०द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे यवनपराजये एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥११९

होकर शोभित होता है, वैसे ही रुधिर पूरित कवन्धोंके समूहसे वह प्रकाशित होने लगी। अनन्तर वह सम्पूर्ण सेना सात्यकिके पंखयुक्त वज्रके समान तीक्ष्ण बाणोंसे नष्ट होकर पृथ्वीको परिपूर्ण करने लगी। (४७-५०)

महाराज ! तुम्हारे उन वर्म धारण करनेवाले योद्धाओंके बीच थोडे बहुत मरनेसे बाकी बचे योद्धा लोग सात्यकि के सम्मुखसे पराजित हुए; उन लोगों-का प्राण सङ्कटमें पडा; इसीसे वे सब भयभीत और मोहित होकर रणभूमिमें कोडे और पावके सहारेसे घोडोंको दौडा कर वे सम्पूर्ण योद्धा चारों ओर भागने लगे। पुरुषसिंह सत्यपराक्रमी सात्यकि काम्बोज यवन और शकदेशीय दुर्जय बहुत बडी सेनाको तितर बितर करके और तुम्हारी ओरके दूसरे और बहुतेरे योद्धाओंको पराजित करके आगे बढाने के वास्ते फिर सारथीको उत्तेजित करने लगे। गन्धर्व और चारणोंने दूसरे पुरुष से न होने योग्य सात्यकिका पराक्रम देख उसकी प्रशंसा किया। सात्यकि जब अर्जुनकी पृष्ठरक्षा करनेके वास्ते गमन कर रहा था उस समय तुम्हारी सेनाके कोई भी पुरुष उसके सम्मुख खडे न होसके। (५०-५५) ४७४६

द्रोणपर्वमें एक सौ उन्नीस अध्याय समाप्त।

सञ्जय उवाच— जित्वा यवनकाम्बोजान्युयुधानस्ततोऽर्जुनम् ।
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनां वरः ॥ १ ॥
चारुदंष्ट्रो नरव्याघ्रो विचित्रकवचध्वजः ।
मृगं व्याघ्र इवाऽऽजिघ्रंस्तव सैन्यमभीषयत् ॥ २ ॥
स रथेन चरन्मार्गान्धनुरभ्रामयद्भृशम् ।
रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥ ३ ॥
रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्मवर्मसमावृतः ।
रुक्मध्वजधनुः शूरो मेरुशृङ्गमिवाऽऽबभौ ॥ ४ ॥
सधनुर्मण्डलः संख्ये तेजोभास्वररश्मिवान् ।
शरदीवोदितः सूर्यो नृसूर्यो विरराज ह ॥ ५ ॥
वृषभस्कन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः ॥ ६ ॥
मत्तद्विरदसङ्काशं मत्तद्विरदगामिनम् ।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ७ ॥

द्रोणपर्वमें एक सौ बीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज! रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि यवन और काम्बोज सेनाके योद्धाओंको पराजित कर तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश करके अर्जुनके समीप जानेके वास्ते अगाडी बढने लगा ॥ जैसे व्याघ्र हरिणोंके झुण्डकी गन्ध पाकर भयंकर रूपसे गमन करता है, वैसे ही विचित्र कवच ध्वजा और बाणरूपी भयानक दांतोंसे युक्त पुरुषसिंह सात्यकि तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको भयभीत करता हुआ आगे गमन करने लगा ॥ वह रथ पर चढके गमन करते हुए सुवर्ण चित्रित और सुवर्णमय बिन्दुओंसे युक्त महावेगशील धनुषको हाथमें लेकर फेरने लगे ॥ (१–३)

उनके वर्म शिरस्त्राण कवच धनुष और ध्वजा ये सम्पूर्ण वस्तु सुवर्णमय थीं, इससे सुमेरुशृङ्ग समान रथ सहित महारथ सात्यकि प्रकाशित होने लगे ॥ रणभूमिमें घूमता हुआ उनका मण्डलाकार धनुष शरद् ऋतुके प्रकाशमान सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा; इससे उस समय मानो दो सूर्य प्रकाशित हुए दीख पडते थे ॥ वृषभस्कन्ध बडे नेत्रवाले पराक्रमी सात्यकि तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश करते हुए इस भांति दिखाई देने लगे जैसे गौवोंके बीचमें वृषभ प्रवेश करता है ॥ (४–६)

जैसे बहुतेरे व्याघ्र क्रुद्ध होकर एक

व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाः समुपाद्रवन् ।
द्रोणानीकमतिक्रान्तं भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ ८ ॥
जलसन्धार्णवं तीर्त्वा काम्बोजानां च वाहिनीम् ।
हार्दिक्यमकरान्मुक्तं तीर्णं वै सैन्यसागरम् ॥ ९ ॥
परिवव्रुः सुसंक्रुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः ।
दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती ॥ १० ॥
शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः क्रथः ।
अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः ॥ ११ ॥
पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः ।
अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ १२ ॥
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ।
तानभिद्रवतः सर्वान्समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ॥ १३ ॥
शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत्प्रहसन्निव ।
इदमेतत्समुद्भूतं धार्तराष्ट्रस्य यद्बलम् ॥ १४ ॥
मामेवाऽभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् ।
नादयन्वै दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे ॥ १५ ॥
पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च कम्पयन्सागरानपि ।

मतवारे हाथीकी ओर दौडते हैं वैसे ही तुम्हारी ओरके योद्धा लोग मतवारे हाथीके समान गमन करनेवाले सात्यकि की ओर दौडे ॥ द्रोणाचार्य कृतवर्मा, जलसन्ध और काम्बोजोंकी समुद्रके समान अपरम्पार सेनासे जो सात्यकि पार हो गया है, वैसे पराक्रमी सात्यकिको तुम्हारी ओरके रथी लोग क्रुद्ध होकर चारों ओरसे घेर कर गमन करने लगे । (७-१०)

जब सात्यकि अगाडी गमन कर रहा था, तब दुर्योधन, चित्रसेन, दुःशासन, विविंशति, शकुनि, दुःसह, दुर्मर्षण, क्राथ और दूसरे बहुतेरे शस्त्रधारी शूरवीर रथी योद्धालोग क्रुद्ध होकर उसके पीछे पीछे दौडे। उससे तुम्हारी सेनाके बीच मानों पर्वके दिन समुद्रकी लहर समान महा भयंकर शब्द होने लगा । (१०-१३)

शिनिपौत्र सात्यकि उन सम्पूर्ण योद्धाओंको अपनी ओर आते देख हंस कर सारथीसे यह वचन बोले, हे सारथी ! धीरे धीरे रथ चलाओ, यह हाथी, घोडे, रथ और पैदल चलनेवाले शूरवीर पुरुषोंके सहित रथके शब्दसे सम्पूर्ण दिशा

एतद्बलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे ॥ १६ ॥
पौर्णमास्यामिवोद्भूतं वेलेव मकरालयम् ।
पश्य मे सूत विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे ॥ १७ ॥
एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैः शरैः ।
निहतानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ॥ १८ ॥
मच्छरैरग्निसङ्काशैर्विद्धदेहान्सहस्रशः ।
इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ॥ १९ ॥
समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः ।
जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥ २० ॥
तानेवं ब्रुवतो वीरान्सात्यकिर्निशितैः शरैः ।
जघान त्रिशतानश्वान्कुञ्जरांश्च चतुःशतान् ॥ २१ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलस्तस्य तेषां च धन्विनाम् ।
देवासुररणप्रख्यः प्रावर्त्तत जनक्षयः ॥ २२ ॥
मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष ।

और आकाशको पूरित करती तथा समुद्रके सहित पृथ्वीको कंपाती हुई दुर्योधनकी सेना मेरी ओर आरही है । हे तात ! जैसे पूर्णमासीके दिन भयङ्कर तरङ्गसे युक्त समुद्रकी लहरको तट निवारण करता है वैसे ही मैं इस समुद्रके समान महासेनाको निवारण करूंगा । (१३–१७)

इस महाघोर संग्राममें तुम मेरा इन्द्रके समान पराक्रम देखोगे मैं अपने चोखे बाणोंसे इस सम्पूर्ण शत्रुसेनाको भस्म कर दूंगा । तुम इस युद्धमें मेरे अग्नि-समान बाणों से सहस्रों पैदल चलने वाले योद्धा घुडसवार हाथी और रथियों को क्षतविक्षत शरीर से युक्त होते और अनेकोंको मरते हुए पृथ्वी में गिरते हुए देखोगे ॥ (१७–१७)

बडे तेजस्वी सात्यकि ऐसे कह रहे थे, उसही समय सेनाके सम्पूर्ण योद्धा-लोग हर्ष पूर्वक सात्यकिके समीप आ पहुंचे । वे सम्पूर्ण योद्धा लोग आपसमें कहने लगे, मारो ! दौडो ! खडा रह ! मेरी ओर देख । जब सम्पूर्ण योद्धा इस प्रकार वचन कहने लगे, उस ही समय सात्यकिने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उस सेनाके बीचसे मुख्य मुख्य तीन सौ योद्धाओं और चार सौ हाथियोंका वध किया ॥ उन सम्पूर्ण योद्धाओंके सङ्ग देवासुर युद्धके समान सात्यकिका महाघोर भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ (१९–२२)

प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः ॥ २३ ॥
प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान्।
असम्भ्रमन्महाराज तावकानवधीद्बहून् ॥ २४ ॥
आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद् दृष्टवानहम्।
न मोघः सायकः कश्चित्सात्यकेरभवत्प्रभो ॥ २५ ॥
रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः ॥ २६ ॥
सम्भ्रान्तनरनागाश्वमावर्त्तत मुहुर्मुहुः।
तत्सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः ॥ २७ ॥
बभ्राम तत्रतत्रैव गावः शीतार्दिता इव।
पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगं तथा ॥ २८ ॥
आविद्धं तत्र नाद्राक्षं युयुधानस्य सायकैः।
न तादृक्कदनं राजन्कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ॥ २९ ॥
यादृक्क्षयमनीकानामकरोत्सात्यकिर्नृप।
अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते पुरुषर्षभः ॥ ३० ॥

सात्यकि बादलकी घटा समान तुम्हारे पुत्रको उस महासेनाको अपने तीक्ष्ण बाणोंके समूहसे निवारण करने लगे॥ ऐसा क्या सात्यकिने उस समय तुम्हारी ओरके कितने ही मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध किया॥ उस समय सात्यकिका यह आश्चर्यमय पराक्रम देखा, कि उसके धनुषसे छुटा हुआ कोई भी बाण निष्फल न गया॥ रथ घोडे और हाथी रूपी जलसे युक्त पदाति तरङ्गसे पूरित वह महासेना रूपी समुद्र सात्यकि रूपी तटसे निवारित होने लगा॥ (२३—२६)

सहस्रों रथ हाथी घोडोंसे युक्त वह महासेना सात्यकिके बाणोंसे पीडित और भयभीत होके बार बार युद्धभूमिमें भ्रमण करती हुई उनके संमुख उपस्थित होने लगी। जैसे गौओंका समूह सिंहको देखकर आर्त्त होके चारों ओर भ्रमण करता है, वैसे ही रथी, घुडसवार, गजपति, पैदल सेनाके योद्धा लोग सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर इधर उधर भ्रमण करने लगे। उस रणभूमिके बीच रथी गजसवार और पैदलसेनाके बीच मैंने ऐसे किसी पुरुषको भी नहीं देखा, जो सात्यकिके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो! हे राजेन्द्र! सात्यकि जिस प्रकार सेनाका नाश करने लगा, अर्जुनने

वीतभीर्लाघवोपेतः कृतित्वं सम्प्रदर्शयन् ।
ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य त्रिभिः शरैः ॥ ३१ ॥
विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सात्यकिं च त्रिभिर्विध्वा पुनरष्टाभिरेव च ॥ ३२ ॥
दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम् ।
शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ॥ ३३ ॥
दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम् ।
उत्स्मयन्वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः ॥ ३४ ॥
तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः ।
गाढविद्धानरीन्कृत्वा मार्गणैः सोऽतितेजनैः ॥ ३५ ॥
शैनेयः श्येनवत्संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः ।
सौबलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ॥ ३६ ॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा ॥ ३७ ॥
दुःशासनं तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय स्यालस्तव विशाम्पते ॥ ३८ ॥

भी उस प्रकारसे सेनाको नष्ट नहीं किया था । शिनिपौत्र सात्यकि निर्भय चित्तसे हस्तलाघवके सहित अपनी कृतास्त्रता दिखाते हुए अर्जुनसे भी बढके युद्धमें पराक्रम प्रकाशित करने लगा । २६-३१

तिसके अनन्तर राजा, दुर्योधनने तीन बाणोंसे सात्यकिके सारथी, चार बाणोंसे उनके रथके चारों घोडों और तीन बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके फिर आठ बाणोंसे विद्ध किया । अनन्तर दुःशासनने सोलह, शकुनिने पचीस, चित्रसेनने पांच और दुःसहने पंद्रह बाणोंसे सात्यकिके वक्षस्थल में प्रहार किया । वृष्णिवंशीय पुरुषसिंह सात्यकिने इसी भांति उन महारथियों के बाणोंसे विद्ध होकर हंसते हुए उन लोगोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया । महातेजस्वी शिनि-पौत्र सात्यकिने शत्रुओंको अत्यन्त चोखे बाणोंसे विद्ध करके बाजपक्षीकी भांति रणभूमिमेंसे भ्रमण करते हुए शकुनिके धनुष और अंगुलित्राणको काट दिया ॥ (३१-३६)

अनन्तर सात्यकिने तीन बाणोंसे दुर्योधनके दोनों स्तनोंके बीच प्रहार किया । और चित्रसेनको एक सौ, दुःसहको दश और दुःशासनको बीस

अष्टाभिः सात्यकिं विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
दुःशासनश्च दशभिर्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः ॥ ३९ ॥
दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन्विव्याध सात्यकिम् ।
दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विध्वा भारत माधवम् ॥ ४० ॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम् ।
तान्सर्वान्सहिताञ्शूरान्यतमानान्महारथान् ॥ ४१ ॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः ।
ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम् ॥ ४२ ॥
आजघानाऽऽशु भल्लेन स हतो न्यपतद्भुवि ।
पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ॥ ४३ ॥
वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत सङ्गरात् ।
ततस्तव सुतो राजन्सैनिकाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोऽभवन् ।
विद्रुतं तत्र तत्सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ॥ ४५ ॥
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णै रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि सहस्रशः ॥ ४६ ॥

बाणोंसे विद्ध किया। तुम्हारे साले शकुनिने दूसरा धनुष ग्रहण कर सात्यकिको आठ बाणोंसे विद्ध करके फिर पांच बाणों से विद्ध किया। अनन्तर दुःशासनने दश, दुःसहने तीन और दुर्मुखने बारह बाणोंसे सात्यकि को विद्ध किया॥ दुर्योधनने तिहत्तर बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके फिर तीन बाणोंसे उसके सारथीको विद्ध किया॥ (३७-४१)

तिसके अनन्तर उन इकट्ठे हुए सम्पूर्ण महारथियोंको पांच बाणोंसे फिर विद्ध कर दुर्योधनके सारथीका एक भल्लसे वध करके पृथ्वीमें गिरा दिया। जब वह सारथी मारा गया तब वायुके समान गमन करने वाले घोडे उनके रथको खींचते हुए रणभूमिसे पृथक् हुए॥ (४१-४४)

तुम्हारे पुत्र लोग और सेनाके सैकडों शूरवीर पुरुषोंने राजा दुर्योधनकी वैसी दशा देख दुर्योधनके रथकी ओर दौडे। सात्यकिने उस महासेनाके शूरवीरोंको दौडे हुए जाते देखकर शिलापर घिसे रुक्म पंखवाले तीक्ष्ण बाणोंसे उन सम्पूर्ण योद्धाओंको छिपा दिया; अनन्तर सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको चारों और तितर बितर करते हुए सात्यकिने

प्रययौ सात्यकी राजञ्श्वेताश्वस्य रथं प्रति ।
तं शरानाददानं च रक्षमाणं च सारथिम् ॥
आत्मानं पालयानं च तावकाः समपूजयन् ॥४७॥ [४७९३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि
सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनपलायने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

धृतराष्ट्र उवाच- सम्प्रमृद्य महत्सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम् ।
निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥
कथं चैषां तदा युद्धे धृतिरासीन्मुमूर्षताम् ।
शैनेयचरितं दृष्ट्वा यादृशं सव्यसाचिनः ॥ २ ॥
किं नु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं सैन्यमध्ये पराजिताः ।
कथं नु सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महायशाः ॥ ३ ॥
कथं च मम पुत्राणां जीवतां तत्र सञ्जय ।
शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ४ ॥
अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्सकाशाच्छृणोम्यहम् ।
एकस्य बहुभिः सार्धं शत्रुभिस्तैर्महारथैः ॥ ५ ॥

अर्जुनके रथके समीप जानेके वास्ते वहांसे प्रस्थान किया ॥ तुम्हारी ओरके योद्धाओंने सारथीकी रक्षा, बाण ग्रहण करके शत्रुओंकी ओर चलाना और अपनेको सङ्कटसे मुक्त करना आदि कठिन कर्मोंको देखकर सात्यकिकी अत्यन्त प्रशंसा किया ॥ (४४-४७ [४७९३]

द्रोणपर्वमें एकसौ बीस अध्याय समाप्त ॥

द्रोणपर्वमें एकसौ इक्कीस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! सात्यकिको उस बडी सेनाको तितर बितर करके गमन करते देख मेरे निर्लज्ज पुत्रोंने क्या किया ? अर्जुनके समान पराक्रमी सात्यकिको युद्धभूमिमें पाकर उस समय उन लोगोंने किस प्रकारसे धीरज धारण किया ? मेरे पुत्र और दूसरे क्षत्रिय योद्धाओंने युद्धभूमिमें सात्यकिके संमुखसे पराजित होके उस समय कौनसा कार्य किया ? महायशस्वी सात्यकि भी किस भांतिसे उस युद्धभूमिमें मेरी सेनाको अतिक्रम करके आगे बढा ? यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप तुम विस्तार पूर्वक वर्णन करो ॥ (१-४)

हे तात ! मैंने तुम्हारे मुखसे अत्यन्त आश्चर्यमय वृत्तान्त सुना है, कि अनेक महारथियोंके सङ्ग एक ही पुरुषका युद्ध हुआ था, और उस युद्धमें जो

विपरीतमहं मन्ये मन्दभाग्यं सुतं प्रति ।
यत्राऽवध्यन्त समरे सात्वतेन महारथाः ॥ ६ ॥
एकस्य हि न पर्याप्तं यत्सैन्यं तस्य सञ्जय ।
क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥
निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनं चित्रयोधिनम् ।
यथा पशुगणान्सिंहस्तद्वद्धन्ता सुतान्मम ॥ ८ ॥
कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे ।
युयुधानो न शकितो हन्तुं यत्पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥
नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ।
यादृशं कृतवान्युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥ १० ॥
सञ्जय उवाच— तव दुर्मन्त्रिते राजन्दुर्योधनकृतेन च ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ ११ ॥
ते पुनः संन्यवर्तन्त कृत्वा संशप्तका मिथः ।
परां युद्धे मतिं क्रूरां तव पुत्रस्य शासनात् ॥ १२ ॥
त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः ।

सात्यकिने अकेलेही मेरे पुत्रोंको पराजित किया है; इसे मैं समयकी उलटी गति समझता हूं; हे सञ्जय ! सम्पूर्ण पाण्डवोंकी बात तो दूर रही, मेरी सम्पूर्ण सेना केवल एक सात्यकिके संमुखमें नहीं ठहर सकती है ॥ (५—७)

सात्यकि युद्ध दुर्मद सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रके जानने वाले द्रोणाचार्यको पराजित करके मेरे पुत्रों को इस प्रकार पीडित कर रहा है, जैसे पशुपालक पशुओंको पीडित करते हैं। जिसे कृतवर्मा आदि अनेक शूरवीर यत्नवान् होकर भी युद्धभूमिमें पराजित न कर सके, वह जो मेरे पुत्रों को पराजित करेगा; उस में कौनसा सन्देह है ? महायशस्वी शिनिपौत्र सात्यकिने जैसे युद्ध किया है, वैसा संग्राम अर्जुनने भी नहीं किया था ॥ (८–१०)

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! दुर्योधनकी दुष्ट नीति और तुम्हारे कुविचारसे मनुष्य, घोडे और हाथियों के नाश रूपी जैसा संग्राम हुआ था, उसे मैं वर्णन करता हूं, तुम सुनो ॥ तुम्हारी ओरकी सेना आज्ञानुसार युद्ध में दृढता और कठोर बुद्धि अवलम्बन कर तथा आपस में प्रतिज्ञा कर के तेरे पुत्रकी आज्ञासे फिर सात्यकिकी ओर लौटी (११—१२)

शककाम्बोजबाल्हीका यवनाः पारदास्तथा ॥ १३ ॥
कुलिन्दास्तङ्गणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च सबर्बराः ।
पार्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुद्धाः पाषाणपाणयः ॥ १४ ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ।
युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम् ॥ १५ ॥
शूराः पञ्चशतं राजञ्शैनेयं समुपाद्रवन् ।
ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च ॥ १६ ॥
द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः ॥ १७ ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः ।
तांश्च सञ्चोदयन्सर्वान्घ्नतैनमिति भारत ॥ १८ ॥
दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ॥ १९ ॥
यदेको बहुभिः सार्धमसम्भ्रान्तमयुध्यत ।
अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद्बलम् ॥ २० ॥
सादिनश्चैव तान्सर्वान्दस्यूनपि च सर्वशः ।
तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥ २१ ॥

तीन हजार घुडसवार, शक, काम्बोज, बाल्हीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तङ्गण, अम्बष्ठ, पैशाच, बर्बर, पत्थर ग्रहण करनेवाले पहाडी योद्धा और दूसरे पांच सौ शूरवीर योद्धा लोग दुर्योधनको आगे करके इस प्रकार सात्यकिकी ओर दौडे जैसे फतिङ्गों का समूह अग्निकी ओर दौडता है। १३-१६

एक हजार रथी, एक सौ महारथी, एक हजार हाथी और दो हजार घुडसवारोंके साथ महारथी योद्धालोग और बहुतेरे पैदल चलनेवाले योद्धाओंने अपने नाना भांति के अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करके सात्यकिको आक्रमण किया। दुःशासनने "सात्यकिका वध करो," ऐसे ही वचनोंको कहके अपनी सेनाके पुरुषोंको उत्तेजित करते हुए सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया ॥ (१६-१९)

उस स्थलमें मैंने सात्यकिका यह अद्भुत कार्य देखा, कि वह अकेलेही बहुत योद्धाओंके संग युद्ध करने लगा। ऐसा क्या, सात्यकिने रथ सेना, गजसवार, घुडसवार, सम्पूर्ण डाकुओंकी सेना और पैदल सेनाके योद्धाओंमेंसे बहुत

अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २२ ॥
चर्मभिश्च तथाऽनीकैर्व्यवकीर्णा वसुन्धरा ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष ॥ २३ ॥
संछन्ना वसुधा तत्र द्यौर्ग्रहैरिव भारत ।
गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः ॥ २४ ॥
अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत ।
सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २५ ॥
ऐरावतकुले चैव तथाऽन्येषु कुलेषु च ।
जाता दन्तिवरा राजञ्शेरते बहवो हताः ॥ २६ ॥
वनायुजान्पार्वतीयान्काम्बोजान्बाल्हिकानपि ।
तथा हयवरान्राजन्निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥ २७ ॥
नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥
तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून्दुःशासनोऽब्रवीत् ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ २९ ॥
तांश्चाऽतिभग्नान्सम्प्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव ।

पुरुषोंका वध किया ॥ टूटे हुए रथके चक्र, अस्त्र शस्त्र, बाण, रथकी धुरी, रथके दण्ड, टूटे हुए रथ, ध्वजा, वर्म, ढाल और इधर उधर टूटके गिरे हुए माला आभूषण, वस्त्र और रथके नीचेके काठ आदि वस्तुओंसे पृथ्वी मानो तारोंसे युक्त आकाशकी भांति परिपूरित होकर प्रकाशित होने लगी ॥ १९-२४

अञ्जन, वामन, सुप्रतीक, महापद्म और ऐरावत हाथियोंके वंशमें उत्पन्न हुए बहुतेरे पर्वतके समान मतवारे हाथी मर कर पृथ्वीमें शयन करने लगे॥ सात्यकिने वनायुज, पार्वतीय, काम्बोज और बाह्लीक देशीय उत्तम घोडोंका वध किया, और दूसरे देशोंसे आये हुए नाना जाति सैंकडों सहस्रों हाथियोंका संहार किया ॥ (२५—२८)

मरनेसे बचे हुए योद्धाओंको तितर बितर होके इधर उधर भागते देख, तुम्हारे पुत्र दुःशासन दस्यु डाकू योद्धाओंसे बोले, "हे अधार्मिक पुरुषो ! भागनेकी क्या आवश्यकता है, लौटकर युद्ध करो । " अनन्तर उन डाकू योद्धाओंको भागते देखके दुःशासन पाषाणों

पाषाणयोधिनः शूरान्पार्वतीयानचोदयत् ॥ ३० ॥
अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं हतैनं युद्धकामुकम् ॥ ३१ ॥
तथैव कुरवः सर्वे नाऽश्मयुद्धविशारदाः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः॥३२॥
ते पार्वतीया राजानः सर्वे पाषाणयोधिनः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं राजानमिव मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥
ततो गजशिरःप्रख्यैरुपलैः शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य पुरतस्तस्थुराहवे ॥ ३४ ॥
क्षेपणीयैस्तथाऽप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतो रुरुधुर्दिशः ॥ ३५ ॥
तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।
सात्यकिः प्रतिसन्धाय निशितान्प्राहिणोच्छरान्॥३६॥
तामश्मवृष्टिं तुमुलां पार्वतीयैः समीरिताम् ।
चिच्छेदोरगसङ्काशैर्नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥ ३७ ॥

पाषाणोंसे युद्ध करने वाले पहाडी योद्धाओंसे बोले, युद्धकी इच्छा करनेवाला सात्यकि पाषाण युद्ध नहीं जानता, सम्पूर्ण कौरव लोग भी पाषाण युद्ध नहीं जानते । इससे तुम लोग सात्यकिका वध करो, उसकी ओर दौडो, कुछ भी भय मत करो । वह तुम लोगोंको अपने बाणोंके संमुखमें ही न प्राप्त कर सकेगा ॥ (२९–३२)

महाराज ! जैसे मन्त्री लोग राजाके समीप गमन करते हैं, वैसे ही सम्पूर्ण पहाडी पाषाण योद्धाओंने हाथमें पत्थरके टुकडोंको ग्रहण कर सात्यकिके समीप गमन किया ॥ वे सम्पूर्ण योद्धा लोग तुम्हारे पुत्र दुःशासनकी आज्ञाके अनुसार हाथियोंके शिरके समान पत्थरोंके टूकडोंको उठा कर सात्यकिके संमुख रणभूमिमें खडे हुए और दूसरी अनेक प्रकारकी फेंकने योग्य वस्तु ग्रहण करके सात्यकिके वध करनेकी इच्छासे तैयार होके उन्हें चारों ओरसे घेर लिया।३३-३५

परन्तु शिलायुद्ध करनेकी इच्छासे उन लोगोंको सम्मुख उपस्थित होते देख,सात्यकिने उनकी ओर तीक्ष्ण बाण चलाये, वे योद्धा लोग भी सात्यकिके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगे । परन्तु शिनिपौत्र सात्यकि सर्पके समान अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन योद्धाओंके चलाये

तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।
प्रायः सैन्यान्यहन्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥ ३८ ॥
ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः ।
निकृत्तबाहवो राजन्निपेतुर्धरणीतले ॥ ३९ ॥
पुनर्दशशताश्चाऽन्ये शतसाहस्रिणस्तथा ।
सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम् ॥ ४० ॥
पाषाणयोधिनः शूरान्यतमानानवस्थितान् ।
न्यवधीद्बहुसाहस्रांस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४१ ॥
ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः ।
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खसाः ॥ ४२ ॥
लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः ।
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः ॥ ४३ ॥

हुए पत्थरोंकी शिलाको टुकडे टुकडे करके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ उस योद्धाओंके चलाये हुए शिलाखण्ड सात्यकिके बाणोंसे टुकडे टुकडे होकर खद्योत समूहके समान प्रकाशित होकर उन्हीं लोगोंकी सेनाके पुरुषोंका नाश करने लगे; उससे सेनाके बीच महा हाहाकार शब्द उत्पन्न हुआ ॥ (३६–३८)

उन योद्धाओंके बीच पांच सौ योद्धाओंकी भुजा पत्थरोंकी शिलाके सहित सात्यकिके बाणोंसे कटके पृथ्वीमें गिर पडीं; और वे योद्धा लोग भी मरके पृथ्वीमें गिर पडे। फिर एकलाख एक हजार पाषाणयुद्ध करनेवाले योद्धा लोग हाथमें पत्थरोंकी शिला ग्रहण करके सात्यकिकी ओर दौडे; परन्तु समीपमें न पहुंचते ही सात्यकिने पाषाण शिलाके सहित उनकी भुजाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट कर पृथ्वीमें गिरा दिया, वे सम्पूर्ण योद्धा भी पृथ्वीमें गिर पडे। इसी प्रकार सात्यकिने यत्नवान् होकर युद्धभूमिमें कई हजार पाषाणधारी योद्धाओंका वध किया, वह सात्यकिका कार्य अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ (३९-४१)

तिनमें वे सम्पूर्ण दरद, तङ्गण, खश, लम्पाक और कुलिन्द सेनाके योद्धा लोग लोह और त्रिशूल हाथमें लेकर युद्धभूमिमें फिर स्थित हुए, और चारों ओरसे सात्यकिके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगे । युद्धके सम्पूर्ण कार्योंके जानने वाले सात्यकि अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर उन योद्धाओंको विद्ध करने लगे। उन योद्धाओंके चलाये हुए पत्थरोंके टुकडे सात्यकिके बाणोंसे

अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः ।
शब्देन प्राद्रवन्संख्ये रथाश्वगजपत्तयः ॥ ४४ ॥
अश्मचूर्णैरवाकीर्णा मनुष्यगजवाजिनः ।
नाऽशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥ ४५ ॥
हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः ।
कुञ्जरा वर्जयामासुर्युयुधानरथं तदा ॥ ४६ ॥
ततः शब्दः समभवत्तव सैन्यस्य मारिष ।
माधवेनाऽर्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ ४७ ॥
तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत् ।
एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥ ४८ ॥
दारयन्बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत् ।
यत्रैष शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥ ४९ ॥
पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः ।
तथा हि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥ ५० ॥

आकाश मार्ग हीमें कट कर पृथ्वीमें गिरते हुए दिखाई देने लगे। (४२-४४

उन गिरते हुए पत्थरोंके शब्दसे हाथी, घोडे, रथ और पैदल सेनाके योद्धा लोग इधर उधर दौडने लगे और सात्यकिके बाणोंसे चूर चूर होकर वे सम्पूर्ण पत्थरके टुकडे रथी और मनुष्योंके ऊपर गिर कर उन्हें इस प्रकार पीडित करने लगे, जैसे भौरोंका झुण्ड किसीके ऊपर गिरके उसे अपने डङ्कसे पीडित करता है ॥ उससे वे लोग रणभूमिमें खडे होनेमें भी समर्थ न हुए ॥ कितने ही क्षत विक्षत शरीरसे युक्त रुधिरसे परिपूरित हाथी उस समय सात्यकिके रथके निकटसे भागने लगे॥ जैसे पूर्णमासीके दिन समुद्रकी लहरका भयङ्कर शब्द होता है, सात्यकिके बाणोंसे पीडित तुम्हारी सेनाके योद्धाओंके दौडनेके समयमें वैसाही महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ (४४-४७)

हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य उस तुमुल शब्दको सुनकर अपने सारथीसे बोले, यह यदुवंशियोंमें महारथी सात्यकि युद्धभूमिमें क्रुद्ध होकर सेनाके पुरुषोंको नाना प्रकारसे तितर बितर करते हुए कालकी भांति भ्रमण कर रहा है; जहां पर यह तुमुल शब्द होरहा है तुम उसही स्थानमें मेरे रथको लेचलो ॥ मुझे निश्चय होता है सात्यकि पाषाण योद्धाओंके सङ्ग युद्ध कर रहा है । बहुतेरे रथियों-

विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्रतत्र पतन्ति च ।
न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ५१ ॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः ।
प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ५२ ॥
सैन्यं द्रवति चाऽऽयुष्मन्कौरवेयं समन्ततः ।
पश्य योधान्रणे भग्नान्धावतो वै ततस्ततः ॥ ५३ ॥
इमे च संहताः शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः ॥ ५४ ॥
अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिन्दम ।
स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च सात्यकिः ॥ ५५ ॥
तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य सारथेः ।
प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन्बहुविधान्रथान् ॥ ५६ ॥
ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ।
युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥ ५७ ॥
यैस्तु दुःशासनः सार्धं रथैः पूर्वं न्यवर्त्तत ।

को उनके रथ के घोडे इधर उधर रथको खींचते हुए भ्रमण कर रहे हैं ॥ रथी लोग शस्त्र कवचसे रहित और सात्यकिके अस्त्रोंसे पीडित होकर इधर उधर गिर रहे हैं, इस तुमुल युद्धमें सारथी लोग रथके घोडोंको स्थिर नहीं कर सकते हैं ॥ (४८-५१)

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके वचनको सुनकर उनका सारथी उनसे बोला, हे शत्रुनाशन ! देखिये इधर कौरवोंकी सेना चारों ओर छिन्न भिन्न होकर भाग रही है। योद्धा लोग युद्धभूमि में बाणोंसे पीडित होकर इधर उधर दौड रहे हैं, और दूसरी ओर पाण्डव तथा पाञ्चाल योद्धा लोग तुम्हारे वधकी अभिलाष करके चारों ओरसे बढे आते हैं। हे शत्रुनाशन ! इससे तुम्हें इस स्थान पर रहना वा सात्यकिके निकट जाना उचित है; उसे आप अच्छी भांति विचार करके निश्चय कीजिये सात्यकि भी बहुत दूर तक सेनाके बीच चला गया है ॥ (५२-५५)

द्रोणाचार्यकी सारथीके सङ्ग जब इस प्रकार बात चीत होरही थी, उस ही समय सात्यकिने तुम्हारी ओरके अनेक रथियोंका वध किया ॥ कितने ही रथी सात्यकिके बाणोंसे क्षत विक्षत शरीर हो उसके रथको त्याग कर द्रोणाचार्यकी

ते भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ ५८ ॥ [४८५१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१॥

सञ्जय उवाच— दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
दुःशासन रथाः सर्वे कस्माच्चैते प्रविद्रुताः ।
कच्चित्क्षेमं तु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥ २ ॥
राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः ।
किमर्थं द्रवसे युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥ ३ ॥
दासी जिताऽसि द्यूते त्वं यथा कामचरी भव ।
वाससां वाहिका राज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मे भव ॥ ४ ॥
न सन्ति पतयः सर्वे तेऽद्य षण्ढतिलैः समाः ।
दुःशासनैवं कस्मात्त्वं पूर्वमुक्त्वा पलायसे ॥ ५ ॥
स्वयं वैरं महत्कृत्वा पञ्चालैः पाण्डवैः सह ।

सेनाकी ओर शीघ्रतासे गमन करने लगे; और पहिले दुःशासन जिन सम्पूर्ण रथियोंको सङ्ग लेकर सात्यकिके समीप उपस्थित हुए थे; वे सम्पूर्ण रथी लोग सात्यकिके अस्त्रोंसे भयभीत होकर द्रोणाचार्यके रथके समीप आकर उपस्थित हुए ॥ (५६-५८) [४८५१]

द्रोणपर्वमें एकसौ इकीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ बाईस अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य अपने समीपमें दुःशासनके रथको स्थित देख, उनसे यह वचन बोले, हे दुःशासन ! ये सम्पूर्ण महारथी योद्धा लोग क्यों भाग रहे हैं ? राजा दुर्योधनके विषयमें मङ्गल तो है ? सिन्धुराज जयद्रथ तो जीवित है न ? तुम राजाके भाई महारथी और युवराज होकर क्यों युद्धसे भागते हो ? (१-३)

तुमने पहिले द्रौपदीको पुकारके कहा था " तुम्हारे स्वामी तुम्हें जुएके दांव पर पण (बाजी) रखके जूएमें हार गये हैं इससे तुम हमारे जेठे भाई राजा दुर्योधनकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेवाली और वस्त्र ढोनेवाली दासी बनो। इस समय पाण्डवलोग तुम्हारे पति नहीं हैं, वे सब इस समय षण्ढतिलके समान होगये हैं । तुम उस समय ऐसा वचन कहके इस समय क्यों युद्धभूमिसे भाग रहे हो ? तुमने स्वयं पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओं के सङ्ग महा घोर

एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोऽसि संयुगे ॥ ६ ॥
न जानीषे पुरा त्वं तु गृह्णन्नक्षान्दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः ॥ ७ ॥
अप्रियाणां हि वचसां पाण्डवस्य विशेषतः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशास्त्वन्मूलो ह्यभवत्पुरा ॥ ८ ॥
क्व ते मानश्च दर्पश्च क्व ते वीर्यं क्व गर्जितम् ।
आशीविषसमान्पार्थान्कोपयित्वा क्व यास्यसि ॥ ९ ॥
शोच्येयं भारती सेना राज्यं चैव सुयोधनः ।
यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ॥ १० ॥
ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा भयार्दिता ।
स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ॥ ११ ॥
स त्वमद्य रणं हित्वा भीतो हर्षयसे परान् ।
विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदन ॥ १२ ॥
कोऽन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये ।

शत्रुता उत्पन्न किया है, इस समय अकेले सात्यकिके सङ्ग युद्ध करनेमें क्यों भयभीत हो रहे हो ? (४-६)

पहिले जूएकी खेलके समयमें पासे को ग्रहण करके तुम नहीं जान सके थे, कि ये ही पासे भविष्यमें भयङ्कर सर्पके समान बाण रूपसे दीख पड़ेंगे ? पहिले तुमहीने पाण्डवोंको अनेक अप्रिय और कठोर वचन कहे थे और तुम्हीं द्रौपदी के क्लेशके मूल हुए थे ॥ हे वीर ! इस समय तुम्हारा वह मान और घमण्ड कहां गया ? और तुम्हारा उस समयका गर्जन क्या हुआ ? तुम सर्पके समान क्रोधी पाण्डवोंको कोपित करके इस समय कहां गमन करोगे ? (७-९)

जब तुम राजा दुर्योधनके भाई होके उसके ऊपर दयारहित होकर युद्धसे भाग रहे हो, तब यह सम्पूर्ण कुरुसेना, राज्य और राजा दुर्योधन शोकके विषय हुए हैं; इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ आशा थी, कि सेनाके भयभीत और आतुर होने पर तुम उसकी रक्षा करोगे, उसे न करके तुम युद्धभूमि से भाग कर शत्रुओंके हर्षको बढा रहे हो ॥ हे शत्रु नाशन ! तुम सेनापति होकर जब युद्धभूमिमें भाग रहे हो, तब तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग भयभीत होजावेंगे, इससे कौन पुरुष तुम्हारे भागने पर युद्ध भूमिमें स्थित रह सकेगा? (१०-१३)

एकेन सात्वतेनाऽद्य युध्यमानस्य तेन वै। ॥ १३ ॥
पलायने तव मतिः संग्रामाद्धि प्रवर्त्तते।
यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनं च कौरव ॥ १४ ॥
यमौ वा युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करिष्यसि।
युधि फाल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ॥ १५ ॥
न तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे।
त्वरितो वीर गच्छ त्वं गान्धार्युदरमाविश ॥ १६ ॥
पृथिव्यां धावमानस्य नाऽन्यत्पश्यामि जीवनम्।
यदि तावत्कृता बुद्धिः पलायनपरायणा ॥ १७ ॥
पृथिवी धर्मराजाय शमेनैव प्रदीयताम्।
यावत्फाल्गुननाराचा निर्मुक्तोरगसन्निभाः ॥ १८ ॥
नाऽऽविशन्ति शरीरं ते तावत्संशाम्य पाण्डवैः।
यावत्ते पृथिवीं पार्थो हत्वा भ्रातृशतं रणे ॥ १९ ॥
नाऽऽक्षिपन्ति महात्मानस्तावत्संशाम्य पाण्डवैः।
यावन्न क्रुद्ध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २० ॥
कृष्णश्च समरश्लाघी तावत्संशाम्य पाण्डवैः।
यावद्भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीं चमूम् ॥ २१ ॥

आज अकेले सात्यकिके संमुख ही तुम्हारी बुद्धि युद्धभूमिसे भागने में तत्पर हुई है॥ परन्तु जब तुम गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेवको युद्धभूमिमें देखोगे तब उस समय क्या करोगे? उस सात्यकिके जिन सम्पूर्ण बाणोंको देखकर युद्धभूमिसे भाग रहे हो, वे सब बाण अर्जुनके बाण समान तेजस्वी नहीं हैं, अर्जुनके बाण सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं, इससे यदि भागने हीमें प्रवृत्ति हुई है, तो धर्मराज युधिष्ठिरके सङ्गमें सन्धि करके तुम उन्हें पृथ्वीका राज्य प्रदान करो। (१३-१८)

जब तक अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाण तुम्हारे लोगोंके शरीरमें प्रवेश नहीं करते हैं; उस ही समयके बीच तुम पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि कर लो, जब तक महात्मा पाण्डवलोग तुम्हारे एक सौ भाइयोंको मार कर पृथ्वी आक्रमण नहीं करते हैं, तभी तक तुम पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करो। जब तक धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर और युद्धमें प्रशंसित कृष्ण क्रुद्ध नहीं होते हैं तभी तक पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि होनी उचित है॥ जब तक

सोदरांस्ते न गृह्णाति तावत्संशाम्य पाण्डवैः ।
पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेणाऽसौ सुयोधनः ॥ २२ ॥
अजेयाः पाण्डवाः संख्ये सौम्य संशाम्य तैः सह ।
न च तत्कृतवान्मन्दस्तव भ्राता सुयोधनः ॥ २३ ॥
स युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः ।
तवापि शोणितं भीमः पास्यतीति मया श्रुतम्॥ २४॥
तथाऽप्यवितथं तस्य तत्तथैव भविष्यति ।
किं भीमस्य न जानासि विक्रमं त्वं सुबालिश ॥२५ ॥
यत्त्वया वैरमारब्धं संयुगे प्रपलायिना ।
गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र तिष्ठति सात्यकिः ॥ २६ ॥
त्वया हीनं बलं ह्येतद्विद्रविष्यति भारत ।
आत्मार्थं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ २७ ॥
एवमुक्तस्तव सुतो नाऽब्रवीत्किञ्चिदप्यसौ ।
श्रुतं चाऽश्रुतवत्कृत्वा प्रायाद्येन स सात्यकिः ॥ २८ ॥

महाबाहु भीम तुम्हारी सेनाको छिन्न भिन्न करके तुम्हारे भाइयोंको पराजित नहीं करते हैं; तभी तक तुम पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि कर लो। (१८–२२)

पहिले भीष्मने तुम्हारे भाई सुयोधन से कहा था, कि पाण्डव लोग युद्धमें अजेय हैं इससे तुम पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करो। तुम्हारे भाई नीच बुद्धि दुर्योधनने भीष्मके इन वचनोंको नहीं माना॥ इससे तुम रणभूमिके बीच धीरज धारण कर यत्न पूर्वक युद्ध करो। मैंने सुना है, कि भीमने भी जो तेरे रुधिरको पीनेका प्रण किया है, वह भी सत्य होगा, कभी अन्य था न होगा। रे मूर्ख ! तुम युद्धमें पलायन करने वाले होकर भी जो भीमसेन से वैर करते हो, इससे निश्चय से बोध होता है, कि तुम भीमके पराक्रमको नहीं जानते हो। २२-२५

जहां पर सात्यकि युद्ध कर रहा है उस ही स्थानमें रथ पर चढके शीघ्रताके सहित गमन करो। यह सम्पूर्ण सेना तुम्हें न देखकर युद्ध भूमिसे भाग जावेगी। तुम अपनी मान रक्षाके वास्ते भी सात्यकिके सङ्गमें युद्ध करो॥ २६-२७

अब द्रोणाचार्य तुम्हारे पुत्र दुःशासनसे यह वचन बोले, तब उन्होंने कुछ भी उत्तर न देकर द्रोणाचार्य की बातोंको सुनके भी न सुननेके समान दिखाकर सात्यकि जिस ओर गमन कर रहा था उसही ओर गमन करने लगे। वह युद्ध

सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्तिनाम् ।
आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥ २९ ॥
द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः पञ्चालान्पाण्डवांस्तथा ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम् ॥ ३० ॥
प्रविश्य च रणे द्रोणः पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
द्रावयामास योधान्वै शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३१ ॥
ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥ ३२ ॥
तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः ।
पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान्वीरकेतुः समभ्ययात् ॥ ३३ ॥
स द्रोणं पञ्चभिर्विध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चाऽस्य सप्तभिः ॥ ३४ ॥
तत्राऽद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे ।
यद् द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाऽभ्यवर्त्तत ॥ ३५ ॥
सन्निरुद्धं रणे द्रोणं पाञ्चाला वीक्ष्य मारिष ।
आवव्रुः सर्वतो राजन्धर्मपुत्रजयैषिणः ॥ ३६ ॥

भूमिमें पीछे न हटनेवाली म्लेच्छोंकी बडी सेना सङ्ग लेकर सात्यकिके समीप पंहुच के उनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी क्रुद्ध होकर मध्य वेगके सहित पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंकी ओर दौडे। (२८—३०)

उन्होंने पाञ्चाल सेनाके बीच प्रवेश करके सैकडों सहस्रों योद्धाओंको तितर वितर कर दिया ॥ अनन्तर द्रोणाचार्य अपना नाम सुनाकर रणभूमिके बीच पाण्डव पाञ्चाल और मत्स्य देशीय योद्धाओंका वध करने लगे। (३१-३२)

द्रोणाचार्यको इधर उधर सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको बिगाडते देख पाञ्चाल राजके पुत्र वीरकेतुने उन्हें आक्रमण किया॥ उन्होंने पांच नतपर्व बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करके एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा और सात बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध किया ॥ उस युद्धमें मैंने वीरकेतुका यह पराक्रम देखा, कि द्रोणाचार्य ऐसे वेगशील होकर भी पाञ्चाल वीरकेतुके आगे न खडे हो सके। ३१-३२

राजा युधिष्ठिरके विजयकी इच्छा करनेवाले पाञ्चाल योद्धाओंने द्रोणाचार्यको वीरकेतुके संमुखमें रुके हुए देख उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ अनन्तर

ते शरैरग्निसङ्काशैस्तोमरैश्च महाधनैः ।
शस्त्रैश्च विविधै राजन्द्रोणमेकमवाकिरन् ॥ ३७ ॥
निहत्य तान्बाणगणैर्द्रोणो राजन्समन्ततः ।
महाजलधरान्व्योम्नि मातरिश्वेव चाऽऽबभौ ॥ ३८ ॥
ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसंनिभम् ।
सन्दधे परवीरघ्नो वीरकेतो रथं प्रति ॥ ३९ ॥
स भित्त्वा तु शरो राजन्पाञ्चालकुलनन्दनम् ।
अभ्यगाद्धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रो ज्वलन्निव ॥ ४० ॥
ततोऽपतद्रथात्तूर्णं पाञ्चालकुलनन्दनः ।
पर्वताग्रादिव महांश्चम्पको वायुपीडितः ॥ ४१ ॥
तस्मिन्हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले ।
पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ४२ ॥
चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत ।
तथा चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ४३ ॥
अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः ।

उन सब योद्धाओंने अकेले द्रोणाचार्यको चारों ओरसे घेरकर अग्निके समान तेजस्वी अनेक बाण तोमर और नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्रोंसे छिपा दिया ॥ ३६-३७

अनन्तर जैसे एक ही प्रचण्ड वायु आकाशमें बादलोंको तितर बितर कर देता है, वैसे ही द्रोणाचार्य अकेले ही उन सम्पूर्ण योद्धाओं के चलाये हुए अस्त्रशस्त्रोंको अपने बाणोंसे काटकर युद्धभूमिमें प्रकाशित होने लगे॥ तिसके अनन्तर शत्रुनाशन द्रोणाचार्यने सूर्य तथा अग्निके समान तेजस्वी एक महा वेगशील बाण धनुषपर चढा कर वीरकेतुके रथकी ओर चलाया ॥ हे भारत द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटा हुआ जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान वह भयङ्कर बाण पाञ्चालराजपुत्र वीरकेतुके शरीरको शीघ्रता के सहित भेदकर रुधिर पीता हुआ पृथ्वी में घुस गया ॥ उसी बाणकी चोटसे पाञ्चालराजपुत्र वीरकेतु मरके इस प्रकार अपने रथसे पृथ्वीपर गिरे जैसे पर्वतके शृङ्गपरसे वायुके झोकसे टूटके चम्पाका वृक्ष गिर पर पडता है ॥ (३८-४१)

महाराज ! महाधनुर्द्धारी पाञ्चालराजपुत्रके मरनेपर पाञ्चालयोद्धाओंने शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यको चारों ओरसे घेर लिया ॥ चित्रकेतु,सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ ये चारों वीर भाईके शोकसे

मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव ॥ ४४ ॥
स वध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः ।
क्रोधमाहारयत्तेषामभावाय द्विजर्षभः ॥ ४५ ॥
ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत् ।
ते हन्यमाना द्रोणस्य शरैराकर्णचोदितैः ॥ ४६ ॥
कर्त्तव्यं नाऽभ्यजानन्वै कुमारा राजसत्तम ।
तान्विमूढान्रणे द्रोणः प्रहसन्निव भारत ॥ ४७ ॥
व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान्कुपितो रणे ।
अथाऽपरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः ॥ ४८ ॥
पुष्पाणीव विचिन्वन्हि सोत्तमाङ्गान्यपातयत् ।
ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन्सुवर्चसः ॥ ४९ ॥
देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः ।
तान्निहत्य रणे राजन्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५० ॥
कार्मुकं भ्रामयामास हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
पञ्चालान्निहतान्दृष्ट्वा देवकल्पान्महारथान् ॥ ५१ ॥
धृष्टद्युम्नो भृशोद्विग्नो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम् ।

कातर होकर आपसमें मिलके वर्षा कालके बादलोंकी भांति अपने बाणकी वर्षा करते हुए द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ द्विजसत्तम द्रोणाचार्य उन राजपुत्रोंके बाणोंसे जहां तहां विद्ध होकर उनके संहार करनेके वास्ते क्रुद्ध होकर उन चारोंके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे । (४२–४६)

वे राजपुत्र लोग कानपर्यन्त खींचे हुए धनुषसे छूटे द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर चेतरहित होगये। महाबल द्रोणाचार्यने हंसकर उन चेतरहित राजपुत्रोंको घोडे सारथी और रथसे रहित कर दिया। अनन्तर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन लोगों के सिरको इस प्रकारसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया जैसे माली फूले हुए वृक्षसे फूल तोड गिराता है। जैसे देवासुर युद्धमें दैत्य दानव मरके रणभूमिमें गिरे थे वैसे ही वे तेजस्वी राजपुत्र मरकर अपने रथोंके ऊपरसे पृथ्वीमें गिर पडे। ४६-५०

महाराज ! भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य रणभूमिमें उन राजपुत्रोंका वध करके अपने सुवर्ण भूषित प्रचण्ड धनुषको फेरते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे। धृष्टद्युम्न देवतों के समान पराक्रमी पाञ्चालराजपुत्र योद्धाओंको मरते देख दोनों आंखोंसे आंसूकी धारा बहाते हुए

अभ्यवर्त्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ५२ ॥
ततो हाहेति सहसा नादः समभवन्नृप ।
पाञ्चाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ॥ ५३ ॥
स च्छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना ।
न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवाऽन्वयुध्यत ॥ ५४ ॥
ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्छितः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ५५ ॥
स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ ५६ ॥
तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी ।
चापमुत्सृज्य शीघ्रं तु असिं जग्राह वीर्यवान्॥ ५७ ॥
अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ॥ ५८ ॥
हर्तुमिच्छञ्शिरः कायात्क्रोधसंरक्तलोचनः ।
प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महारवम् ॥ ५९ ॥
आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया ।
शरैर्वैतस्तिकै राजन्विव्याधाऽऽसन्नवेधिभिः ॥ ६० ॥

अत्यंत क्रुद्ध होकर शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यके समीप गमन करके उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ तिसके अनन्तर द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नके बाणोंसे छिपे हुए देख तुम्हारी सेनाके बीच महा हाहाकार शब्द उत्पन्न हुआ॥ ५०-५३

परन्तु द्रोणाचार्य महात्मा धृष्टद्युम्नके अनेक बाणोंसे छिपकर भी पीडित नहीं हुए। बल्कि हंसकर उनके सङ्ग युद्ध ही करने लगे॥ महाराज! पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नने क्रोधमें भरकर नौ बाणोंसे द्रोणाचार्यका वक्षस्थल विद्ध किया। महारथी द्रोणाचार्य उन बाणोंसे अत्यन्त पीडित और मूर्च्छित होकर रथमें बैठ गये॥ ५४-५६

महापराक्रमी बलवान् धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको मूर्च्छित देख शीघ्र ही धनुष त्याग कर ढाल तलवार ग्रहण किया और क्रोधसे लाल नेत्र कर द्रोणाचार्यके सिरको काटनेकी इच्छासे शीघ्र ही अपने रथसे कूद कर द्रोणाचार्यके रथ पर चढ गये। अनन्तर महाबलवान् द्रोणाचार्यने सावधान होकर धृष्टद्युम्नको अपने समीप आया देख जिन बाणोंसे समीपहीमें स्थित शत्रुओंके सङ्ग सदा

योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥ ६१ ॥
द्रोणस्य विहिता राजन्यैर्धृष्टद्युम्नमाक्षिणोत् ।
स वध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः ॥ ६२ ॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं भग्नवेगः पराक्रमी ।
आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद्धनुः ॥ ६३ ॥
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणश्चापि महाराज शरैर्विव्याध पार्षतम् ॥ ६४ ॥
तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तदा ।
त्रैलोक्यकांक्षिणोरासीच्छक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६५ ॥
मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ।
चरन्तौ युद्धमार्गज्ञौ ततक्षतुरथेषुभिः ॥ ६६ ॥
मोहयन्तौ मनांस्याजौ योधानां द्रोणपार्षतौ ।
सृजन्तौ शरवर्षाणि वर्षास्विव बलाहकौ ॥ ६७ ॥
छादयन्तौ महात्मानौ शरैर्व्योम दिशो महीम् ।

सर्वदा युद्ध किया जा सकता है, बारह अंगुलके परिमाणवाले उन ही बाणोंसे महारथी धृष्टद्युम्नको विद्ध करने लगे। वितास्तिक नाम निकटवेधी वे सम्पूर्ण बारह अंगुलके परिमाणवाले बाण द्रोणाचार्यको विदित थे; उन्हीं बाणोंसे वह धृष्टद्युम्नको पीडित करने लगे।५७-६१

महारथी महाबलवान् पराक्रमी धृष्टद्युम्न अनेक वितास्तिक बाणोंसे पीडित होकर शीघ्रता पूर्वक द्रोणाचार्यके रथसे कूदे और दौडके अपने रथ पर जाचढे; फिर धनुष बाण ग्रहण करके महारथ धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे। द्रोणाचार्य भी महाबली पराक्रमी महारथी धृष्टद्युम्नको अपने अनेक बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ (६१-६४)

जैसे तीनों लोकके राज्यकी अभिलाष करके इन्द्र और प्रह्लादने आपसमें युद्ध किया था, वैसे ही उन दोनों पुरुषसिंहोंका अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ युद्ध कार्यको जाननेवाले द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न विचित्र मण्डलाकार गति यमक और दूसरी अनेक भांतिकी गति विशेषसे भ्रमण कर युद्ध देखनेवाले पुरुषोंको मोहित करते हुए आपसमें एक दूसरेके ऊपर अपने बाणोंसे प्रहार करने लगे।(६५-६७)

वे दोनों महात्मा वर्षाकालके दो बादलोंकी भांति अपने बाणोंकी वर्षा

तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसङ्घा ह्यपूजयन् ॥ ६८ ॥
क्षत्रियाश्च महाराज ये चाऽन्ये तव सैनिकाः।
अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन सङ्गतः ॥ ६९ ॥
वशमेष्यति नो राजन्पञ्चाला इति चुक्रुशुः।
द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ॥ ७० ॥
शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं तरोरिव।
ततस्तु प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः ॥ ७१ ॥
तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान्सृञ्जयांस्तथा।
अयोधयद्रणे द्रोणस्तत्र तत्र पराक्रमी ॥ ७२ ॥
विजित्य पाण्डुपञ्चालान्भारद्वाजः प्रतापवान्।
स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितोऽभवदरिन्दमः।
न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सेहिरे प्रभो ॥ ७३ ॥ [४९२४]

इति श्रीमहा० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्रोणपराक्रमे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२२॥

सञ्जय उवाच— ततो दुःशासनो राजञ्शैनेयं समुपाद्रवत्।

कर के आकाश पृथ्वी और सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित करने लगे। वहां पर स्थित सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धालोग तथा युद्ध देखनेवाले सम्पूर्ण प्राणी और सेनाके पुरुष उनके अद्भुत संग्रामको देखकर उन दोनों पुरुषसिंहोंकी प्रशंसा करने लगे। पाञ्चाल योद्धा लोग आपसमें कहने लगे, जब धृष्टद्युम्नके सङ्ग द्रोणाचार्य युद्ध कर रहे हैं, तब अवश्यही हमलोगोंके वशमें हो जावेंगे।" ऐसे वचनोंको कहते हुए पाञ्चाल योद्धा ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करने लगे। ६७-७०

परन्तु द्रोणाचार्यने शीघ्रताके सहित पके फल तोडनेकी भांति धृष्टद्युम्नके सारथीका सिर काटके उसे पृथ्वीमें गिरा दिया। महाराज! तिसके अनन्तर महात्मा धृष्टद्युम्नके रथके घोडे सारथीसे रहित होकर उनके रथको लेकर वहांसे दौडे। अनन्तर महापराक्रमी द्रोणाचार्य पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धाओंको इधर उधर तितर बितर करने लगे। महाप्रतापी द्रोणाचार्य इसी प्रकार पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंको पराजित करके फिर अपने व्यूहकी रक्षा करते हुए उस व्यूहके दरवाजे पर स्थित हुए। हे प्रभो! तब उसे जीतनेमें पाण्डव लोग उत्साहित नहीं हुए॥ (७०—७३) [४९२४]

द्रोणपर्वमें एकसौ बाइस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ तेईस अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजन्! तिसके अनन्तर

किरञ्शरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १ ॥
स विध्वा सात्यकिं षष्ट्या तथा षोडशभिः शरैः ।
नाऽकम्पयत्स्थितं युद्धे मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २ ॥
तं तु दुःशासनः शूरः सायकैरावृणोद्भृशम् ।
रथव्रातेन महता नानादेशोद्भवेन च ॥ ३ ॥
सर्वतो भरतश्रेष्ठ विसृजन्सायकान्बहून् ।
पर्जन्य इव घोषेण नादयन्वै दिशो दश ॥ ४ ॥
तमापतन्तमालोक्य सात्यकिः कौरवं रणे ।
अभिद्रुत्य महाबाहुश्छादयामास सायकैः ॥ ५ ॥
ते छाद्यमाना बाणौघैर्दुःशासनपुरोगमाः ।
प्राद्रवन्समरे भीतास्तव सैन्यस्य पश्यतः ॥ ६ ॥
तेषु द्रवत्सु राजेन्द्र पुत्रो दुःशासनस्तव ।
तस्थौ व्यपेतभी राजन्सात्यकिं चाऽर्दयच्छरैः ॥ ७ ॥
चतुर्भिर्वाजिनस्तस्य सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
सात्यकिं च शतेनाऽऽजौ विध्वा नादं मुमोच सः ॥८॥

दुःशासन बरसने वाले बादलके समान सहस्रों बाणोंको चलाते हुए दुःशासनकी ओर दौडे ॥ रणभूमिमें मैनाक पर्वतके समान स्थित सात्यकिको छिहत्तर बाणों से विद्ध करके ही दुःशासन उसे तनिक भी विचलित नहीं कर सके॥ कुरुकुल श्रेष्ठ दुःशासन नाना देशीय रथियोंकी बडी सेना लेकर, बादलके शब्द समान सेनाके शूरवीर पुरुषोंके सिंहनादसे दशों दिशाको परिपूरित करते और अनेक बाणोंको सात्यकिकी ओर चलाते हुए वेगपूर्वक उनकी ओर दौडे । (१–४)

महाबाहु सात्यकिने भी कुरुश्रेष्ठ दुःशासनको अपनी ओर आते देख, उनके सम्मुख जाके उन्हें अपने बाणोंसे छिपा दिया ॥ दुःशासनके अनुयाई वे सम्पूर्ण शूरवीर योद्धा लोग सात्यकिके बाणोंसे पीडित होकर भयभीत हुए और दुःशासनके सम्मुख ही में रणभूमि से भागने लगे ॥ परन्तु तुम्हारे पुत्र दुःशासन सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंके भागने पर भी स्वयं रणभूमिमें स्थितही रहे;और सात्यकिको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ (५–७)

उन्होंने चार बाणोंसे सात्यकिके रथके चारों घोडे, तीन बाणोंसे उनके सारथी और एक बाणसे सात्यकिको विद्ध करके सिंहनाद किया ॥ महाराज ! तिसके

ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य संयुगे ।
रथं सूतं ध्वजं तं च चक्रेऽदृश्यमजिह्मगैः ॥ ९ ॥
स तु दुःशासनं शूरं सायकैरावृणोद्भृशम् ।
मशकं समनुप्राप्तमूर्णनाभिरिवोर्णया ॥ १० ॥
त्वरन्समावृणोद्बाणैर्दुःशासनममित्रजित् ।
दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम् ॥ ११ ॥
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति ।
तेऽगच्छन्युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः ॥ १२ ॥
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः ।
ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ॥ १३ ॥
स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः ।
तेषां प्रपततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम् ॥ १४ ॥
योधान्पञ्चशतान्मुख्यानग्र्यानीके व्यपोथयत् ।
तेऽपतन्निहतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ॥ १५ ॥
महामारुतवेगेन भग्ना इव नगाद्द्रुमाः ।
नागैश्च बहुधा छिन्नैर्ध्वजैश्चैव विशाम्पते ॥ १६ ॥

अनन्तर यदुकुलभूषण सात्यकिने क्रुद्ध होकर रथ, सारथी और ध्वजाके सहित दुःशासनको अपने बाणोंसे छिपा दिया॥ जैसे मकडी समीप आये हुए मच्छरको अपने जालसे छिपाता है उसी तरह पराक्रमी सात्यकिने शीघ्रताके सहित अपने बाणोंसे दुःशासनको छिपा दिया। (८-११)

राजा दुर्योधनने दुःशासनको सात्यकिके बाणोंसे पीडित देखकर त्रिगर्तदेशीय सेनाको उनके रथके निकट भेज दिया। कठिन पराक्रम प्रकाशित करने वाले तीन हजार त्रिगर्तदेशीय रथियोंने सात्यकिके रथके समीप गमन किया। उन लोगोंने युद्धमें स्थिर-बुद्धि तथा पीछे न हटनेकी आपसमें प्रतिज्ञा करके चारों ओरसे अपने रथोंके समूहसे सात्यकिको घेर लिया॥ (११-१४)

वे सम्पूर्ण योद्धा लोग सात्यकि के रथपर अपने बाणोंकी वर्षा कर रहे थे; उसही समय के बीच पराक्रमी सात्यकिने सेना के अगाडी स्थित मुख्य मुख्य पांच सौ योद्धाओंका वध किया। जैसे महा प्रचण्ड वायुके वेगसे वृक्षोंके समूह टूट टूटकर गिर पडते हैं, वैसे ही वे सम्पूर्ण योद्धा सात्यकिके बाणोंसे शीघ्रताके सहित मरकर पृथ्वीमें गिरने

हयैश्च कनकापीडैःपतितैस्तत्र मेदिनी ।
शैनेयशरसंकृत्तैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ १७ ॥
अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः ।
ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ॥ १८ ॥
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ।
ततस्ते पर्यवर्त्तन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ १९ ॥
भयात्पतगराजस्य गर्तानीव महोरगाः ।
हत्वा पञ्चशतान्योधाञ्छरैराशीविषोपमैः ॥ २० ॥
प्रायात्स शनकैर्वीरो धनञ्जयरथं प्रति ।
तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ २१ ॥
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ।
सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत ॥ २३ ॥
दुःशासनस्त्रिभिर्विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
शैनेयस्तव पुत्रं तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ २४ ॥

लगे । बहुतेरे छिन्न भिन्न हाथी, सुवर्ण भूषित घोडे, ध्वजा और मरे हुए रुधिर पूरित शरीरसे युक्त मनुष्योंके गिरनेसे वह रणभूमि फूले हुए पलाश वृक्षोंके समान शोभित होने लगी। (१४-१८)

मरनेसे बचे हुए तुम्हारी सेनाके योद्धाओंने कीचडमें फंसे हुए हाथीके समान किसीको भी अपना रक्षक नहीं पाया । जैसे सर्प गरुडके भयसे बिलके भीतर घुस जाते हैं वैसे ही वे सम्पूर्ण योद्धा द्रोणाचार्यके रथके निकट आके स्थित हुए। पराक्रमी सात्यकि विषधारी सर्पके समान अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनके बीचसे पांच सौ योद्धाओंका वध करके अर्जुनके निकट आनेकी अभिलाषासे धीरे धीरे गमन करने लगे । (१८—२२)

पुरुषसिंह सात्यकि जब इस प्रकारसे आगे बढने लगे तब तुम्हारे पुत्र दुःशासनने शीघ्रताके सहित नव तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया । महाधनुर्द्धर सात्यकिने भी गिद्धपङ्खवाले पांच बाणोंसे दुःशासनको विद्ध किया । तिस के अनन्तर दुःशासनने हंसते हंसते तीन बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया। (२२-२४)

अनन्तर सात्यकिने दुःशासनको

धनुश्चास्य रणे छित्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ ।
ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ॥ २५ ॥
सर्वपारसवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया ।
तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ॥ २६ ॥
चिच्छेद शतधा राजन्निशितैः कङ्कपत्रिभिः ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर ॥ २७ ॥
सात्यकिं च शरैर्विध्वा सिंहनादं ननर्द ह ।
सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव ॥ २८ ॥
शरैरग्निशिखाकारैराजघान स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २९ ॥
सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैः पुनर्विव्याध चाऽष्टभिः ।
दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत ॥ ३० ॥
सात्वतोऽपि महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३१ ॥
ततोऽस्य वाहान्निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः ।
सारथिं च सुसंक्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३२ ॥

पांच बाणोंसे विद्ध करके उनके धनुषको अपने तीक्ष्ण बाणसे काटके गिरा दिया; और फिर अर्जुनके समीप आनेकी इच्छासे आगे गमन करने लगे। जब सात्यकि आगे बढनेलगे उस ही समय दुःशासनने उनके बधकी इच्छा करके एक लोहमयी भयङ्कर शक्ति सात्यकिकी ओर चलायी सात्यकिने तुम्हारे पुत्र दुःशानकी भुजासे छूटी हुई उस भयङ्कर शक्तिको कङ्कपत्रयुक्त अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे एक सौ टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया। (२५-२७)

अनन्तर दुःशासनने दूसरा धनुष ग्रहण कर सात्यकिको दशबाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया। परन्तु सात्यकिने क्रुद्ध होकर अग्निके समान तेजस्वी कईएक बाणोंसे दुःशासनके दोनों स्तनोंके बीच प्रहार करके उन्हें मूर्च्छित कर दिया। फिर सात्यकिने लोह मय आठ बाणोंसे दुःशासनको विद्ध किया; परन्तु दुःशासनने सावधान होकर पचीस बाणोंसे सात्यकिको फिर विद्ध किया। तिसके अनन्तर सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होके दुःशासनके दोनों स्तनोंके बीच तीन नतपर्व बाणोंसे प्रहार किया॥ २७-३१

अनन्तर उनके रथके घोडोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारके पृथ्वीमें गिराया,

धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ।
ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित् ॥ ३३ ॥
चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥ ३४ ॥
त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनाऽपवाहितः ।
तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत ॥ ३५ ॥
न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन् ।
भीमसेनेन तु वधः सुतानां तव भारत ॥ ३६ ॥
प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे ।
ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो ।
जगाम त्वरितो राजन्येन यातो धनञ्जयः ॥ ३७ ॥ [४९६१]

इतिश्री० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुःशासनपराजये त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३

धृतराष्ट्र उवाच– किं तस्यां मम सेनायां नाऽऽसन्केचिन्महारथाः ।
ये तथा सात्यकिं यान्तं नैवाऽघ्नन्नाऽप्यवारयन् ॥ १ ॥
एको हि समरे कर्म कृतवान्सत्यविक्रमः ।
शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥ २ ॥

और फिर छः तीक्ष्ण बाणोंसे उनके सारथी, एक भल्लसे उनके रथकी ध्वजा, एकसे धनुष और पांच भल्लसे उनके अंगुलित्राणको काट दिया; फिर कई एक चोखे बाणोंसे उनके दो पृष्ठरक्षकोंका वध किया । (३२–३४)

धनुष कटने और रथके घोडे तथा सारथीके मारे जानेपर त्रिगर्त्त सेनाके सेनापतिने दुःशासनको अपने रथपर चढाकर युद्धभूमिसे पृथक् किया । शिनिपौत्र महाबाहु सात्यकिने क्षण भर दुःशासनकी ओर दौड कर फिर भीमसेनकी प्रतिज्ञाको स्मरण करके उनका वध नहीं किया; क्योंकि भीमसेनने युद्धमें तुम्हारे सम्पूर्ण पुत्रोंके वध करनेके वास्ते सभाके बीच प्रतिज्ञा किया था । सात्यकि इसी भांति दुःशासनको पराजित करके शीघ्रताके सहित अर्जुनको देखनेकी इच्छासे बढने लगे ॥ (३४–३७) [४९६१]

द्रोणपर्वमें एकसौ तेइस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ चौबीस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! मेरी सेनाके बीच क्या ऐसे कोई भी महारथी नहीं थे, जो सात्यकिके उस भांतिसे गमन करनेके समय उसका वध करते तथा उसे निवारण कर सकते ? दैत्योंके

अथवा शून्यमासीत्तयेन यातः स सात्यकिः ।
हतभूयिष्ठमथवा येन यातः स सात्यकिः ॥ ३ ॥
यत्कृतं वृष्णिवीरेण कर्म शंससि मे रणे ।
नैतदुत्सहते कर्तुं कर्म शक्रोऽपि सञ्जय ॥ ४ ॥
अश्रद्धेयमचिन्त्यं च कर्म तस्य महात्मनः ।
वृष्ण्यन्धकप्रवीरस्य श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ ५ ॥
न सन्ति तस्मात्पुत्रा मे यथा सञ्जय भाषसे ।
एको वै बहुलाः सेनाः प्रामृद्नात्सत्यविक्रमः ॥ ६ ॥
कथं च युध्यमानानामपक्रान्तो महात्मनाम् ।
एको बहूनां शैनेयस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ७ ॥
सञ्जय उवाच— राजन्सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिमान् ।
तुमुलस्तव सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥ ८ ॥
आहूतेषु समूहेषु तव सैन्यस्य मानद ।
नाऽभूल्लोके समः कश्चित्समूह इति मे मतिः ॥ ९ ॥

सङ्ग्राममें इन्द्रने जैसे संग्राम किया था, इन्द्रके समान सात्यकिने अकेले ही अपने पराक्रमको प्रकाशित करके कठिन कार्य किया है। जिस मार्गसे सात्यकिने अकेले ही बहुतेरे योद्धाओंका वध करके गमन किया है क्या उस मार्गमें कोई भी महारथी योद्धा नहीं थे, अथवा सात्यकि अनेक योद्धाओंका वध करके आगे बढे थे? हे सञ्जय! तुम जो सात्यकिका कर्म मेरे पास कहते हो ऐसा कर्म करने में साक्षात् इन्द्र भी समर्थ नहीं है॥ (१-४)

हे सञ्जय! उस महात्मा वृष्णि और अन्धकोंमें श्रेष्ठ सात्यकिके उस अश्रद्धेय के समान अचिन्त्य कर्मको सुनकर मेरा मन व्यथित होता है॥ सञ्जय! तेरे वचनको सुनकर मुझे बोध होता है, कि मेरे पुत्रोंका विनाशकाल समीप आया है, हे सञ्जय जब बहुतेरे योद्धा युद्ध कर रहे थे, तब अकेले ही सात्यकि उन योद्धाओंको अतिक्रम करके कैसे आगे बढा? वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो॥ (५-७)

सञ्जय बोले महाराज! तुम्हारी ओर हाथी घोडे रथ और पैदल सेनाके सहित शूरवीर पुरुषोंका समूह एकत्रित हुआ था। तुम्हारी ओर जैसी सेना इकठी हुई है, मैं बोध करता हूं इस पृथ्वीके बीच वैसी सेना कभी भी इकठी नहीं हुई थी॥ वहांपर युद्ध देखनेकी इच्छासे आकाशमें स्थित देवता और चारणोंने

तत्र देवास्त्वभाषन्त चारणाश्च समागताः ।
एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥ १० ॥
न च वै तादृशो व्यूह आसीत्कश्चिद्विशाम्पते ।
यादृग्जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ ११ ॥
चण्डवातविभिन्नानां समुद्राणामिव स्वनः ।
रणेऽभवद्बलौघानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ १२ ॥
पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन्नरोत्तम ।
त्वद्बले पाण्डवानां च सहस्राणि शतानि च ॥ १३ ॥
संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम् ।
तत्राऽऽसीत्सुमहाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १४ ॥
अथाऽऽक्रन्दद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ १५ ॥
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ।
प्रविष्टावरिसेनां हि वीरौ माधवपाण्डवौ ॥ १६ ॥
यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथवधं प्रति ।
तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति सैन्यान्यचोदयन् ॥ १७ ॥

कहा था पृथ्वीके बीच इस प्रकारसे एक ही स्थानपर इकट्ठी हुई यह सेना इसी स्थलपर देखी गई है फिर कभी ऐसी सेना इकट्ठी नहीं हो सकेगी॥ (८-१०)

हे प्रजानाथ ! जयद्रथको अर्जुनके हाथसे बचानेके वास्ते द्रोणाचार्यने जैसे व्यूह बनाया था, वैसा व्यूह भी कभी देखनेमें नहीं आया था ॥ उन सम्पूर्ण समूहकी समूह सेनाके पुरुषोंके दौडनेके समय अत्यन्त प्रबल वायुसे उथलते हुए समुद्रके समान महाभयङ्कर शब्द होने लगा ॥ तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनाके बीच अनेक देशोंसे आये हुए सैकडों सहस्रों राजा थे, वे सब ही युद्धमें दृढ पराक्रमी थे; वे सब ही अत्यन्त क्रुद्ध थे । युद्धके समय उन सम्पूर्ण राजाओंके भयङ्कर शब्दको सुनकर सम्पूर्ण पुरुषोंके रोएं खडे होने लगे ॥ (११-१४)

भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और धर्मराज युधिष्ठिर ऊंचे स्वरसे पुकारके अपनी सेनाके पुरुषोंसे कहने लगे। हे शूरवीर पुरुषो ! आगे बढो, शीघ्र दौडो कुरुसेनाके योद्धाओंके ऊपर प्रहार करो । कृष्ण अर्जुन दोनों पराक्रमी योद्धा जिससे जयद्रथ वधके वास्ते विना परिश्रम ही शत्रुसेनाके बीच प्रवेश

तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं जिताः ।
ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम् ॥ १८ ॥
क्षोभयध्वं महावेगाः पवनः सागरं यथा ।
भीमसेनेन ते राजन्पाञ्चाल्येन च नोदिताः ॥ १९ ॥
आजघ्नुः कौरवान्संख्ये त्यक्त्वाऽसूनात्मनः प्रियान् ।
इच्छन्तो निधनं युद्धे शस्त्रैरुत्तमतेजसः ॥ २० ॥
स्वर्गेप्सवो मित्रकार्ये नाऽभ्यनन्दन्त जीवितम् ।
तथैव तावका राजन्प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ २१ ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवाऽवतस्थिरे ।
तस्मिन्तुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ॥ २२ ॥
जित्वा सर्वाणि सैन्यानि प्रायात्सात्यकिरर्जुनम् ।
कवचानां प्रभास्तत्र सूर्यरश्मिविराजिताः ॥ २३ ॥
दृष्टीः संख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः समन्ततः ।
तथा प्रयतमानानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥
दुर्योधनो महाराज व्यगाहत महद्बलम् ।

करके गमन कर सकें तुम लोग शीघ्र वैसेही कार्योंका विधान करो। उन दोनों पुरुषसिंहोंके निमित्त यदि कोई विघ्न उपस्थित होवेगा तो हम सब कोई पराजित होवेंगे; और उससे कौरव लोग कृतकार्य होंगे। इससे तुम लोग सब कोई मिलकर शीघ्रताके सहित जैसे वायु समुद्रको उथलित करता है वैसे ही शत्रुसेनाके पुरुषोंको तितर बितर करके आगे बढो। (१५-१९)

जब भीमसेन और धृष्टद्युम्नने ऐसा वचन कहा, तब स्वर्गकी इच्छा करनेवाले तेजस्वी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग अपने प्रिय प्राणको त्याग करनेकी इच्छा करके कौरवोंकी सेनाके योद्धाओं को अपने अस्त्र शस्त्रोंसे पीडित करने लगे। तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भी अपने प्राणकी आशा त्याग कर पाण्डवों की सेनाके शूरवीरोंके सङ्ग महाघोर युद्ध करने लगे। (१९-२२)

जब इस प्रकारसे महाभयङ्कर तुमुल संग्राम होने लगा, तब सात्यकिने सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको पराजित करके अर्जुनके समीप गमन किया। सेनाके योद्धाओंके प्रकाशमान कवचोंके ऊपर सूर्य-किरण पडनेसे सेनाके पुरुषों की नजरें तिरमिरा गईं। महाराज! जब पाण्डव लोग यत्नवान् होके इस प्रकार

स सन्निपातस्तुमुलस्तेषां तस्य च भारत ॥ २५ ॥
अभवत्सर्वभूतानामभावकरणो महान् ।
धृतराष्ट्र उवाच—तथा यातेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः स्वयम् ॥ २६ ॥
कच्चिद्दुर्योधनः सूत नाऽकार्षीत्पृष्ठतो रणम् ।
एकस्य च बहूनां च सन्निपातो महाहवे ॥ २७ ॥
विशेषतो नरपतेर्विषमः प्रतिभाति मे ।
सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः ॥ २८ ॥
एको बहून्समासाद्य कच्चिन्नाऽऽसीत्पराङ्मुखः ।
सञ्जय उवाच— राजन्संग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत ॥ २९ ॥
एकस्य बहुभिः सार्धं शृणुष्व गदतो मम ।
दुर्योधनेन समरे पृतना पाण्डवी रणे ॥ ३० ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्प्रतिलोडिता ।
ततस्तां प्रहितां सेनां दृष्ट्वा पुत्रेण ते नृप ॥ ३१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तं पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।

युद्ध कर रहे थे, तब दुर्योधनने पाण्डवों की महा सेना के बीच प्रवेश किया। जब दोनों ओरकी महासेना आपसमें एक दूसरेकी ओर दौडी तब शूरवीर पुरुषोंका नाश होनेवाला महाघोर तुमुल संग्राम होने लगा। (२२-२६)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सूत ! इस प्रकारसे युद्धके निमित्त तैयार शत्रुसेना के बीच दुर्योधन अकेले ही प्रवेश करके पीडित होकर भी क्या युद्धभूमि से पराजित नहीं हुआ ! एक पुरुषके सङ्ग अनेक योद्धाओंका युद्ध हुआ? विशेषकर के दुर्योधन राजा हैं। अनेक पुरुषोंके सङ्ग राजाका युद्ध होना मेरे विचारमें उत्तम नहीं बोध होता है। अत्यन्त सुखी लक्ष्मीवान् और सम्पूर्ण पृथ्वीका स्वामी दुर्योधन अकेले ही बहुतेरे योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होकर पराजित तो नहीं हुआ? (२६-२९)

सञ्जय बोले, महाराज ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने अकेले ही बहुतेरे योद्धाओंके सङ्गमें आश्चर्यमय युद्ध किया था, उस वृत्तान्तको मैं वर्णन करता हूं; आप सुनिये ! जैसे मतवारा हाथी कमलसे युक्त तालावको मथ डालता है वैसे ही राजा दुर्योधन उस रणभूमिमें पाण्डवोंकी सेना तितर बितर करने लगे। भीमसेन आदि पाञ्चाल योद्धाओंने दुर्योधन के हाथसे पाण्डव तथा पाञ्चाल सेनाके शूरवीरोंको मरते देख उन्हें आक्रमण

स भीमसेनं दशभिः शरैर्विव्याध पाण्डवम् ॥ ३२ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्यमौ वीरौ धर्मराजं च सप्तभिः ।
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३३ ॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
शतशश्चाऽपरान्योधान्सद्विपांश्च रथान्रणे ॥ ३४ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।
न सन्दधन्विमुञ्चन्वा मण्डलीकृतकार्मुकः ॥ ३५ ॥
अदृश्यत रिपून्निघ्नञ्छिक्षयाऽस्त्रबलेन च ।
तस्य तान्निघ्नतः शत्रून्हेमपृष्ठं महद्धनुः ॥ ३६ ॥
अजस्रं मण्डलीभूतं ददृशुः समरे जनाः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा भल्लाभ्यामच्छिनद्धनुः ॥ ३७ ॥
तव पुत्रस्य कौरव्य यतमानस्य संयुगे ।
विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शरोत्तमैः ॥ ३८ ॥
वर्म चाऽऽशु समासाद्य ते भित्त्वा क्षितिमाविशन् ।

किया ॥ (२९-३१)

जैसे यमराज क्रुद्ध होकर प्रजाओंका नाश करते हैं, वैसे ही भीमको दस, नकुल और सहदेवको तीन तीन, विराट और द्रुपदको छः छः, शिखण्डीको एक सौ, धृष्टद्युम्नको बीस, धर्मपुत्र युधिष्ठिरको सात, केकय वीरोंको दश दश और द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध करके फिर अपने भयङ्कर सैकडों बाणोंसे और भी बहुतेरे योद्धाओं तथा अनेक गजपति योद्धाओंको उनके हाथियोंके सहित बाणोंसे विद्ध किया। वह अस्त्र शिक्षाकी निपुणता और अपने पराक्रमसे इस प्रकार शत्रुसेनाका नाश करने लगे, कि उन्हें धनुष पर बाण रखते अथवा चलाते हुए कोई पुरुष भी देख न सके। उस समय केवल मण्डलाकार गतिसे फिरताहुआ दुर्योधनका धनुष ही दीख पडता था ॥ उस समय सम्पूर्ण प्राणी शत्रुओंके नाश करनेके समय लगातार मण्डलाकार गतिसे भ्रमण करते हुए दुर्योधन के सुवर्ण भूषित धनुषही को देखने लगे । (३३-३७)

तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिरने युद्धभूमिमें यत्नवान् दुर्योधनके धनुष को दो बाणोंसे काटके गिरा दिया। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने शीघ्रताके सहित दश बाणोंसे राजा दुर्योधनको विद्ध किया; परन्तु वे दशों बाण दुर्योधनके वर्मपर लगते ही टूटकर पृथ्वीमें गिर पडे ।

ततः प्रमुदिताः पार्थाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३९ ॥
यथा वृत्रवधे देवाः पुरा शक्रं महर्षयः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय तव पुत्रः प्रतापवान् ॥ ४० ॥
तिष्ठतिष्ठेति राजानं ब्रुवन्पाण्डवमभ्ययात् ।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य तव पुत्रं महामृधे ॥ ४१ ॥
प्रत्युद्ययुः समुदिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ।
तान्द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन्युधि पाण्डवम् ॥ ४२ ॥
चण्डवातोद्धुतान्मेघान्गिरिरम्बुमुचो यथा ।
तत्र राजन्महानासीत्संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ४३ ॥
पाण्डवानां महाबाहो तावकानां च संयुगे ।
रुद्रस्याऽऽक्रीडसदृशः संहारः सर्वदेहिनाम् ॥ ४४ ॥
ततः शब्दो महानासीत्पुनर्येन धनञ्जयः ।
अतीव सर्वशब्देभ्यो लोमहर्षकरः प्रभो ॥ ४५ ॥
अर्जुनस्य महाबाहो तावकानां च धन्विनाम् ।
मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणे ॥ ४६ ॥

अनन्तर महर्षि और देवता लोग जैसे पहिले वृत्रासुरके वधके समयमें इन्द्रको घेर कर खडे हुए थे, वैसे ही पाण्डव लोग हर्षित होकर युधिष्ठिरको घेर कर युद्धभूमिमें स्थित हुए। (३७-४०)

तिसके अनन्तर राजा दुर्योधनने एक दृढ धनुष ग्रहण करके खडा रह ! खडा रह ! कहते हुए युधिष्ठिरकी ओर दौडे। विजयकी इच्छा करने वाले पाञ्चाल योद्धा दुर्योधनको युधिष्ठिरकी ओर आते देख, हर्ष पूर्वक उनके संमुख उपस्थित हुए। परन्तु पर्वत जैसे बादलोंकी वर्षाको ग्रहण करता है, वैसे ही महारथ द्रोणाचार्यने युद्धभूमिमें दुर्योधनकी रक्षा करने की अभिलाषसे उन सम्पूर्ण योद्धाओंको निवारण किया। (४०—४३)

महाराज ! तब वहांपर पाण्डवोंकी सेनाके सहित तुम्हारी ओरके योद्धाओं का श्मशानभूमिके समान सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाला महाभयङ्कर संग्राम होने लगा॥ उसही समय अर्जुन के निकटसे ऐसा शब्द उत्पन्न हुआ, कि वह सम्पूर्ण शब्दोंको अतिक्रम करके युद्ध भूमिमें पूरित होगया, और उस शब्दको सुनके मनुष्योंके रोएं खडे होगये। हे महाबाहो ! व्यूहके बीच जहां पर राजा जयद्रथ थे, उसी स्थान पर तुम्हारी ओर के महा धनुर्द्धर वीरों के सङ्ग

द्रोणस्याऽपि परैः सार्धं व्यूहद्वारे महारणे ।
एवमेव क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥ ४७ ॥ [५००८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि
सात्यकिप्रवेशे संकुलयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

अर्जुनका, व्यूहके बीचमें कुरुसेनाके सहित सात्यकि और व्यूहके दरवाजे पर शत्रुसेनाके सङ्गमें जो महाभयङ्कर द्रोणाचार्यका युद्ध होरहा था, उससे एकही समय महाघोर शब्द उत्पन्न होने लगा।

हे पृथ्वीनाथ ! अर्जुन, द्रोणाचार्य और सात्यकिके क्रुद्ध होकर युद्धमें प्रवृत्त होनेसे एक ही समयमें अनगिनत पुरुषों का नाश होने लगा । (४३-४७) [५००८]

द्रोणपर्वमें एकसौ चौबीस अध्याय समाप्त ।

ॐ

[वैदिकधर्मश्रद्धालूनां पण्डितकुलभूषणानां श्रीमद्राजर्षिश्रीनिवासमहाराजसूनूनां
बी. ए. इत्युपपदधारिणां प्रतिनिधिबिरुदभाजां श्रीमतां भवानीराव
इत्यथवा बालासाहेब इत्यपराभिधानां औंधाधीशानां
महनीयेनाश्रयेण]

वाजसनेयि–माध्यन्दिन–शुक्ल

यजुर्वेद संहिता ।

(काण्वशाखापाठविशेषसहिता ऋषिदेवतासूचीभिरलंकृता च)

स्वाध्यायमण्डलस्थानेकपण्डितानां साहाय्येन विविधप्राचीनहस्तलिखितपुस्तकपाठानुसारेण

सातवलेकरकुलजेन दामोदरभट्टसूनुना श्रीपादशर्मणा
संशोधिता ।

सा च

औन्धराजधान्यां

भारतमुद्रणालये मुद्रयित्वा स्वाध्यायमण्डलद्वारा प्रकाशिता ।

विक्रमीयसंवत् १९८४; शालीवाहनशकः १८४९

मूल्यं– पत्रबद्धा २); पट्टबद्धा २॥); कौशेयबद्धा ३) रु.

संस्कृत पाठ माला.

चोवीस भागोंमें सब संस्कृत की पढाई होगई है ।

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४)

चोवीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से ७)

प्रतिभाग का मूल्य ।-) पांच आने और डा. व्य. -) एक आना ।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

---

१ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग ।
इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है ।

२ चतुर्थ भाग ।
इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।

३ पंचम और षष्ठ भाग ।
इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।

४ सप्तम से दशम भाग ।
इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

५ एकादश भाग ।
इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं ।

६ द्वादश भाग ।
इस भागमें समासों का विचार किया है ।

७ तेरहसे अठारहवें भाग तक के छः भाग ।
इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।

८ उन्नीससे चौवीसवें भागतकके छः भाग ।
इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

अंक ५८ [द्रोणपर्व ८]

महाभारत ।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

छपकर तैय्यार हैं ।

(१) आदिपर्व । पृष्ठ संख्या ११२५. मूल्य म. आ. से ६) रु.
(२) सभापर्व । पृष्ठ संख्या ३५६. मूल्य म. आ. से२) रु.
(३) वनपर्व । पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य म. आ. से ८) रु.
(४) विराटपर्व। पृष्ठ संख्या ३०६ मूल्य. म. आ. से १॥)
[५] उद्योगपर्व। पृष्ठ संख्या ९५३ मूल्य. म. आ. से. ५) .
[६] भीष्मपर्व । पृष्ठ संख्या ८०० मू० म. आ.से ४) रु.
[७] द्रोणपर्व । छपरहा है ।

[५]महाभारत की समालोचना ।

१प्रथम भाग मू.॥) वी. पी. से॥=)आने।२द्वितीय भाग मू.॥)वी. पी. से॥=)आने।
महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६) रु. मूल्य होगा ।
मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

वैदिक यज्ञ संस्था।

प्रथम भाग। मूल्य १) रु. डाकव्यय ।)

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

प्राचीन संस्कृत निबंध।

१-३ पितृ-पशुमीमांसा। लघु-पुरोडाश-मीमांसा।

भाषाके लेख। (ले०-श्री०-पं० बुद्धदेवजी)

४ दर्श और पौर्णमास, ५अद्भुत कुमार संभव। (ले० -श्री० पं० चंद्रमणिजी)६बुद्धके यज्ञ विषयक विचार। (संपादकीय) ७ यज्ञका महत्व, ८ यज्ञका क्षेत्र, ९ यज्ञका गूढ तत्व, १० औषधियोंका महामख, (ले०-श्री०पं० धर्मदेवजी) ११वैदिक यज्ञ और पशु-हिंसा।(ले०- श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी) १२ क्या वेदोंमें यज्ञों में पशुओंका बलि करना लिखा है?

वैदिक यज्ञ संस्था द्वितीय भाग मूल्य १) रु. डा. व्य. ।)

इस द्वितीयभागमें निम्नलिखित विषयोंका विचार हुआ है (ले०-श्री. पं. देवशर्माजी विद्यालंकार)

भारतवर्षमें यज्ञकी कमी, यज्ञकी महिमा, यज्ञसे जो चाहे सो प्राप्त कर लो,यज्ञपुरुष का वर्णन, हवन प्रक्रिया, यज्ञशेष और उच्छेष, राजसूय, विश्वजित, अश्वमेध, गोमेध, सर्वमेध, वाजपेय, पंचमहायज्ञ, यज्ञ संसारकी नाभि है।

पं. बुद्धदेवजी लिखित=संज्ञपन और अवदान।

संपादकीय=नरमेध का वैदिक तात्पर्य।

इतने विषयोंका विचार इस पुस्तकमें हुआ है। प्रत्येक विषयके प्रतिपादनके लिये वेदके अनेक प्रमाण दिये हैं और विषयका प्रतिपादन अति सुगम है। मूल्य १) डा. व्य. ।)

वैदिक यज्ञ संस्था तृतीय भाग। गोमेध।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

योगमें गोमांस, प्रकरणानुकूल अर्थ विचार, ऋषिपंचमी, वेदका महासिद्धान्त, यज्ञकी पूर्व और उत्तरवेदी, मधुपर्क, कलिवर्ज्य प्रकरण, बृहदारण्यक का वचन, गौके वैदिक नाम,गोमेधका विचार, चरक की साक्षी, विवाहमें गोमांस, अतिथिके लिये गौ, यज्ञमें मांस, अन्य यज्ञ, वेदमें अहिंसा, अवध्य गौ और बैल, यज्ञका तत्त्व, गौको खाना।

गोमेधके दो सूक्तोंका सरल अर्थ,गौका दान, गौ दान लेने का अधिकारी, रक्षक और पालक गौका महत्व, राष्ट्ररक्षक गौ, गौके लिये सोमरस, सबकी माता गौ।

इत्यादि अनेक विषय इसमें आगये हैं। हरएक विषयका प्रतिपादन करनेके लिये अनेक वेदमंत्रोंके प्रमाण दिये हैं। जो कहते हैं कि "वैदिक समयमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी," उनके लिये यह उत्तम उत्तर है। यह पुस्तक पढनेके पश्चात् उक्त विषयमें कोई शंका नहीं रहेगी।

मूल्य १) रु. डा. व्यय ।-)

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

अंक ५८ [द्रोणपर्व ८]

महाभारत

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवलेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

सञ्जय उवाच— अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत् ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १ ॥
शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरः समाहितः ।
समरेऽभ्यद्रवत्पाण्डूञ्जवमास्थाय मध्यमम् ॥ २ ॥
तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः ।
चित्रपुङ्खैः शितैर्बाणैः कलशोत्तमसम्भवः ॥ ३ ॥
वरान्वरान्हि योधानां विचिन्वन्निव भारत ।
आक्रीडत रणे राजन्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४ ॥
तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
भ्रातॄणां नृप पञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः ॥ ५ ॥
विमुञ्चन्विशिखांस्तीक्ष्णानाचार्यं भृशमार्दयत् ।
महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन्गन्धमादने ॥ ६ ॥
तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान्दश पञ्च च ॥ ७ ॥
तांस्तु द्रोणविनिर्मुक्तान्क्रुद्धाशीविषसन्निभान् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥ ८ ॥

द्रोणपर्वमें एकसौ पचीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! अपराह्ण समयमें बादलके गर्जन समान शब्दसे युक्त फिर सोमकोंके सङ्ग द्रोणाचार्यका महाघोर संग्राम होने लगा ॥ महाधनुर्द्धारी महाबलवान् अत्यन्त प्रतापी द्रोणाचार्यने तुम्हारे प्रिय और हितके कार्यमें रत होके सावधानीके सहित लालवर्ण वाले घोडोंसे युक्त अपने रथ पर चढके मध्यम वेगके सहित पाण्डवोंको आक्रमण किया । वह पाण्डवोंकी सेनाके बीचसे मुख्य मुख्य योद्धाओंको चित्रपुंखयुक्त बाणोंसे काटते हुए, रणभूमिमें क्रीडा करने लगे ॥ (१-४)

केकय राज पाचों भाइयोंके बीच युद्धमें पराक्रमी बडे भाई बृहत्क्षत्रने द्रोणाचार्यके समीप युद्ध करनेके वास्ते गमन किया ॥ जैसे गन्धमादनपर्वत पर बादल जलकी वर्षा करते हैं, उस ही प्रकारसे वह अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके द्रोणाचार्यको पीडित करने लगे ॥ (५—६)

महाराज ! द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर शिलापर घिसे हुए स्वर्णपुङ्खवाले पन्द्रह बाण बृहत्क्षत्रकी ओर चलाये ॥ बृहत्क्षत्रने हर्षित होकर द्रोणाचार्यके धनुषसे

तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहस्य द्विजपुङ्गवः ।
प्रेषयामास विशिखानष्टौ सन्नतपर्वणः ॥ ९ ॥
तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णं द्रोणचापच्युताञ्शरान् ।
अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्मृधे ॥ १० ॥
ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः ।
बृहत्क्षत्रेण तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ११ ॥
ततो द्रोणो महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन् ।
प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १२ ॥
कैकेयोऽस्त्रं समालोक्य मुक्तं द्रोणेन संयुगे ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमशातयत् ॥ १३ ॥
ततोऽस्त्रे निहते ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत ।
विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः १४॥
तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समार्पयत् ।
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद्धरणीतलम् ॥ १५ ॥
कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम ।
तथाऽभ्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे ॥ १६ ॥

छूटे हुए एक एक बाणको अपने पांच पांच बाणोंसे काट दिया ॥ द्विजसत्तम द्रोणाचार्यने बृहत्क्षत्रका हस्तलाघव देख, फिर हंसकर आठ बाण उनकी ओर चलाये ॥ बृहत्क्षत्रने द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्णबाणोंको अपनी ओर आते देख, आठ बाणोंसे उन बाणों को निवारण किया ॥ महाराज बृहत्क्षत्र को ऐसा कठिन कर्म करते देख तुम्हारी ओरके योद्धाओंके चित्तमें विस्मय उत्पन्न हुआ ॥ (७—११)

तब महातपस्वी द्रोणाचार्य ने युद्धमें केकयराजसे अधिक पराक्रम प्रकाशित करनेकी इच्छासे ब्राह्म दिव्य अस्त्र प्रकट किया ॥ महाराज महा पराक्रमी बृहत्क्षत्रने द्रोणाचार्यके चलाये हुए ब्राह्म अस्त्रको ब्रह्मास्त्रसेही निवारण किया॥ उन्होंने ब्राह्मण द्रोणाचार्य के ब्रह्मास्त्र को निवारण करके फिर शिलापर घिसे हुए साठ तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ (१२–१४)

अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने बृहत्क्षत्रकी ओर एक तीक्ष्ण बाण चलाये; वह बाण बृहत्क्षत्रके कवचको काटके पृथ्वीमें गिरा ॥ जैसे काला सांप छूटने पर बिलके बीच प्रवेश करता है वैसेही

सोऽतिविद्धो महाराज कैकेयो द्रोणसायकैः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे ॥ १७ ॥
द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सारथिं चाऽस्य बाणेन भृशं मर्मस्वताडयत् ॥ १८ ॥
द्रोणस्तु बहुभिर्विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष ।
असृजद्विशिखांस्तीक्ष्णान्कैकेयस्य रथं प्रति ॥ १९ ॥
व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम् ।
अश्वांश्चतुर्भिर्न्यवधीच्चतुरोऽस्य पतत्रिभिः ॥ २० ॥
सूतं चैकेन बाणेन रथनीडादपातयत् ।
द्वाभ्यां ध्वजं च छत्रं च छित्वा भूमावपातयत् ॥२१॥
ततः साधुविसृष्टेन नाराचेन द्विजर्षभः ।
हृद्यविध्यद् बृहत्क्षत्रं स छिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥
बृहत्क्षत्रे हते राजन्केकयानां महारथे ।
शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥
सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः ।

वह बाण बृहत्क्षत्रके शरीरको भेदकर पृथ्वीमें घुसगया॥ महाराज! केकयराज अस्त्र-विद्या जाननेवाले द्रोणाचार्य के बाणसे अत्यन्त विद्ध होकर महाक्रुद्ध हुए और क्रोधसे दोनों नेत्र लाल करके शिलापर घिसे हुए स्वर्ण पङ्खवाले सत्तर बाणोंसे द्रोणाचार्य को विद्ध किया, फिर भल्लसे द्रोणाचार्यके सारथीकी भुजा और मर्मस्थलमें प्रहार किया ॥ (१५–१८)

द्रोणाचार्यने बृहत्क्षत्र के बाणोंसे जहाँ तहाँ विद्ध होके अत्यन्त चोखे बाणोंको बृहत्क्षत्रके रथपर चलाकर उन्हें व्याकुल कर दिया, फिर चार बाणोंसे उनके रथ के चारों घोडोंका वध करके एक बाणसे उनके सारथीका संहार करके रथसे पृथ्वीमें गिराया; अनन्तर दो बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा और छत्रको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया॥ तिसके अनन्तर एक तीक्ष्ण बाणसे द्रोणाचार्यने बृहत्क्षत्रके हृदयमें प्रहार किया; उस ही बाणकी चोटसे बृहत्क्षत्र प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिर पडे ॥ (१९–२२)

हे राजेन्द्र! जब केकयवीरोंमें महारथी बृहत्क्षत्र द्रोणाचार्यके हाथसे मारे गये; तब शिशुपालपुत्र अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने सारथीसे बोले, हे सारथी! जहाँपर पराक्रमी द्रोणाचार्य वर्म धारण

विनिघ्नन्केकयान्सर्वान्पञ्चालानां च वाहिनीम् ॥ २४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम् ।
द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः ॥ २५ ॥
धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
वधायाऽभ्यद्रवद् द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥ २६ ॥
सोऽविध्यत तदा द्रोणं षष्ट्या साश्वरथध्वजम् ।
पुनश्चाऽन्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २७ ॥
तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च ।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण यतमानस्य शुष्मिणः ॥ २८ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः ।
विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २९ ॥
तस्य द्रोणो हयान्हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः ।
सारथेश्च शिरः कायाच्चकर्त प्रहसन्निव ॥ ३० ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय सत्वरः ॥ ३१ ॥

करके पाञ्चाल और केकयदेशीय योद्धाओंका वध कर रहे हैं; तुम उस ही स्थानमें मेरे रथको ले चलो ॥ २३-२४

सारथी उनका वचन सुन काम्बोज देशीय वेगशील घोडोंसे युक्त उनके रथको द्रोणाचार्यके समीप लेगया ॥ महाबलवान रथियोंमें श्रेष्ठ चेदिराज धृष्टकेतु द्रोणाचार्यकी ओर इस प्रकार दौडे जैसे पतङ्ग अपने प्राणनाशके वास्ते अग्निकी ओर दौडते हैं ॥ अनन्तर चेदिराज धृष्टकेतुने साठ बाणोंसे द्रोणाचार्यको घोडे सारथी ध्वजा और रथके सहित विद्ध किया, तथा निद्रित-व्याघ्र को जगाने की भान्ति धृष्टकेतुने फिर द्रोणाचार्य को तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया। (२५-२७)

द्रोणाचार्यने हंसके चार बाणोंसे उनके चारों घोडोंका वध करके उनके सारथीका सिर काट डाला और फिर महाबलवान् द्रोणाचार्यने धृष्टकेतुके धनुषको बीचों बीचसे काट दिया ॥ महारथ शिशुपाल पुत्रने दूसरा धनुष ग्रहण करके द्रोणाचार्यको अपने कंक पत्र युक्त बाणोंसे विद्ध किया ॥ तब द्रोणाचार्यने चार बाणोंसे उनके चार घोडे मारकर हंसते हंसते एक बाणसे सारथिका सिर काटा और पचीस बाण धृष्टकेतुकी ओर चलाये। (२८-३१)

भारद्वाजाय चिक्षेप रुषितामिव पन्नगीम् ।
तामापतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिवोद्यताम् ॥ ३२ ॥
अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वाजोऽच्छिनच्छितैः ॥ ३३ ॥
सा छिन्ना बहुभिर्बाणैर्भारद्वाजेन मारिष ।
गदा पपात कौरव्य नादयन्ती धरातलम् ॥ ३४ ॥
गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः ।
तोमरं व्यसृजद्वीरः शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम् ॥३५ ॥
तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिं चिच्छेद पञ्चभिः ।
तौ जग्मतुर्महीं छिन्नौ सर्पाविव गरुत्मता ॥ ३६ ॥
ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधाय वधकांक्षिणः ।
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ३७ ॥
स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चाऽमितौजसः ।
अभ्यगाद्धरणीं बाणो हंसः पद्मवनं यथा ॥ ३८ ॥
पतङ्गं हि ग्रसेचाषो यथा क्षुद्रं बुभुक्षितः ।

चेदिराज धृष्टकेतु घोडे सारथीसे रहित रथसे कूद पडे और क्रुद्ध सांपिनके समान भयङ्करी एक गदा ग्रहण करके द्रोणाचार्यकी ओर चलाया। भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने उस सुवर्ण भूषित, काल रात्रीके समान आयीहुई लोहकी महा घोर गदाको संमुख आती देख सहस्रों बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ वह गदा द्रोणाचार्यके सहस्रों बाणोंसे कटके घोर शब्दके सहित पृथ्वीमें गिर पडी ॥ (३१–३४)

गदाको कटके पृथ्वीमें गिरती देख धृष्टकेतुने सुवर्णभूषित तोमर और सुवर्ण से प्रकाशमान शक्ति द्रोणाचार्यकी ओर चलाया ॥ महा बलवान् प्रतापी द्रोणाचार्यने हस्तलाघवके सहित पांच बाणोंसे उस तोमरको काटकर गिराया; और उस प्रकाशमान शक्तिको अपने तीक्ष्ण पांच बाणोंसे काट दिया । तब गरुडके द्वारा छिन्नभिन्न हुए सर्पोंके समान वह शक्ति और तोमर छिन्न भिन्न होकर पृथ्वी पर गिर पडे ॥ (३५—३६)

अनन्तर द्रोणाचार्यने मारनेके लिये आये हुए चेदिराज धृष्टकेतुके वधकी इच्छा करके एक तीक्ष्ण बाण उनकी ओर चलाया ॥ वह बाण अत्यन्त बलवान् धृष्टकेतुके कवच और हृदयको भेदकर पद्मवनमें हंसकी भांति पृथ्वीमें गिरा ॥

तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ॥ ३९ ॥
निहते चेदिराजे तु तत्खण्डं पित्र्यमाविशत्।
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥ ४० ॥
तमपि प्रहसन्द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली ॥ ४१ ॥
तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत।
जरासन्धसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥
स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे।
अदृश्यमकरोत्तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥ ४३ ॥
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः।
व्यसृजत्सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४४ ॥
छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम्।
जारासन्धिं जघानाऽऽशु मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥४५॥
यो यः स्म नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तकोपमः।

जैसे भूखा चाष पक्षी छोटे छोटे कीट पतङ्गोंको ग्रास करता है, वैसे ही पराक्रमी द्रोणाचार्यने इस महा घोर युद्धमें धृष्टकेतुका वध किया ॥ (३७-३९)

धृष्टकेतुका पुत्र अस्त्रविद्यामें अत्यन्त निपुण था वह अपने पिताके मरने पर उसकी सेनाके विभागका अधिपति बनगया और क्रोधके वशवर्ती होकर द्रोणाचार्यसे युद्ध करने लगा ॥ द्रोणाचार्यने हंसते हंसते अपने तीक्ष्ण बाणोंसे इस प्रकार उसका वध करके उसे यमपुरीमें भेज दिया जैसे भूखा व्याघ्र हरिणके बच्चेका वध करता है ॥ (४०-४१)

हे भरतर्षभ! जब पाण्डवों की सेनाके योद्धाओंका इसप्रकार नाश होने लगा तब जरासन्धपुत्र हंसकर पराक्रम प्रकाशित करते हुए द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ जैसे बादल सूर्यको छिपा देते हैं, वैसे ही उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे द्रोणाचार्यको छिपा दिया ॥ (४२-४३)

उसके वैसे हस्तलाघवको देख क्षत्रियोंके नाश करने वाले द्रोणाचार्य एक एक बार एक एक सौ और सहस्र सहस्र बाण उसके ऊपर चलाने लगे ॥ और सब धनुर्द्धारियोंके संमुखहीमें द्रोणाचार्यने जरासन्धपुत्रको अपने बाणोंसे छिपाकर उसका वध किया ॥ जो पुरुष उस समय द्रोणाचार्यके संमुख उपस्थित हुए, वे उनके अस्त्रोंसे प्राण त्यागकर इस प्रकार नष्ट हुए जैसे प्राणी यमराजके

आदत्त सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथाऽन्तकः ॥ ४६ ॥
ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान्समावृणोत् ॥ ४७ ॥
ते तु नामाङ्किता बाणा द्रोणेनाऽस्ताः शिलाशिताः ।
नरान्नागान्हयांश्चैव निजघ्नुः शतशो मृधे ॥ ४८ ॥
ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः ।
समकम्पन्त पञ्चाला गावः शीतार्दिता इव ॥ ४९ ॥
ततो निष्टानको घोरः पाण्डवानामजायत ।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ५० ॥
प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च सायकैः ।
अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा सन्त्रस्तचेतसः ॥ ५१ ॥
मोहिता बाणजालेन भारद्वाजेन संयुगे ।
ऊरुग्राहगृहीतानां पञ्चालानां महारथाः ॥ ५२ ॥
चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः काशिकोसलाः ।

कराल ग्रासमें पडके फिर नहीं निकल सकते ॥ (४४-४६)

तिसके अनन्तर महाधनुर्धर द्रोणाचार्य रणभूमिके बीच अपना नाम सुनाकर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके पाण्डवोंको मोहित करने लगे ॥ स्वर्ण-पङ्खवाले शिलापर घिसे हुए द्रोण नामसे अङ्कित अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उस समय सैकडों घोडे हाथी और मनुष्य मरके पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ जैसे महा बलवान् असुरोंकी सेना इन्द्रके अस्त्रोंसे पीडित होकर कम्पित हुई थी उसी प्रकार पाञ्चाल योद्धा द्रोणाचार्यके बाणोंसे इस प्रकारसे दुःखित हुए; जैसे शीतसे जकडे हुए गौवोंका समूह ठिठुरके कांपने लगता है ॥ (४७-४९)

हे भारत ! उस समय पाण्डवोंकी सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर महा घोर आर्त्तनाद करने लगी ॥ उस समय पाञ्चाल योद्धा लोग सूर्यकी तीक्ष्ण धूपसे तपके और द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भयभीत होगये॥ महाराज ! वे सम्पूर्ण योद्धा भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके बाणोंसे मोहित होगये; पाण्डवोंके महारथ योद्धाओंके पांव मानों मकरों से पकडे जानेके समान उनको आगे बढनेसे रोकने लगे ॥ (५०-५२)

महाराज ! तिसके बाद चेदी सृञ्जय और काशि कोसल योद्धा लोग हर्षित होकर युद्धकी इच्छासे द्रोणाचार्यकी

अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ५३ ॥
ब्रुवन्तश्च रणेऽन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः ।
हत द्रोणं हत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः ॥ ५४ ॥
यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम् ।
निनीषवो रणे द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५५ ॥
यतमानांस्तु तान्वीरान्भारद्वाजः शिलीमुखैः ।
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान्विशेषतः ॥ ५६ ॥
तेषु प्रक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु सर्वशः ।
पञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥ ५७ ॥
प्राक्रोशन्भीमसेनं ते धृष्टद्युम्नं च भारत ।
दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथारूपाणि मारिष ॥ ५८ ॥
ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् ।
तथा हि युधि संक्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥ ५९ ॥
धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परं तपः ।
तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षितेनाऽपि निर्दहेत् ॥ ६० ॥

ओर दौडे । चेदी पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धालोग "द्रोणाचार्यका वध करो, द्रोणाचार्यको मारो !" ऐसे ही वचन आपसमें कहते हुए द्रोणाचार्यके संमुख उपस्थित हुए ॥ हे राजेन्द्र ! वे सम्पूर्ण योद्धा लोग पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्य को यमलोकमें भेजनेकी इच्छासे अनेक भांतिसे यत्नवान होकर युद्ध करने लगे ॥ (५३–५५)

परन्तु भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य उन यत्नवान् योद्धाओंमें विशेष करके चेदीदेशीय सेनाके मुख्य मुख्य सूरवीरों का वध करके यमपुरीमें भेजने लगे ॥ जब चेदी देशीय सेनाके मुख्य मुख्य योद्धाओंका नाश होने लगा, तब पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर कांपने लगे ॥ वे सम्पूर्ण योद्धा द्रोणाचार्यके ऐसे कठिन कर्मको देख-कर भीमसेन और धृष्टद्युम्नको सुना कर चिल्लाते हुए यह वचन कहने लगे, इस ब्राह्मणने अवश्यही अत्यन्त कठिन तप किया था उसही तपके प्रभावसे क्रुद्ध होकर ये क्षत्रिय योद्धाओंको भस्म कर रहे हैं ॥ (५६–५९)

क्षत्रियोंका धर्म युद्ध और ब्राह्मणों-का श्रेष्ठ धर्म तपस्या है । बुद्धिमान् तपस्वी ब्राह्मण अपनी क्रोध रूपी दृष्टिसे देखकर ही भस्म कर सकते हैं ॥ उस ही

द्रोणाग्निमस्त्रसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः ।
बहवो दुस्तरं घोरं यत्राऽदह्यन्त भारत ॥ ६१ ॥
यथाबलं यथोत्साहं यथासत्वं महाद्युतिः ।
मोहयन्सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति बलानि नः ॥ ६२ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महाबलः ॥ ६३ ॥
क्रोधसंविग्नमनसो द्रोणस्य सशरं धनुः ।
स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ६४ ॥
अन्यत्कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम् ।
तत्राऽऽधाय शरं तीक्ष्णं परानीकविशातनम् ॥ ६५ ॥
आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत् ।
स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ॥ ६६ ॥
स भिन्नहृदयो वाहान्न्यपतन्मेदिनीतले ।
ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते ॥ ६७ ॥
अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महाबलः ।
स द्रोणं दशभिर्विध्वा प्रत्यविद्ध्यत्स्तनान्तरे ॥ ६८ ॥

कारणसे बहुतेरे मुख्य मुख्य क्षत्रिय योद्धा अग्निके समान स्पर्श करने वाले द्रोणाचार्यके महाघोर तीक्ष्ण अस्त्रोंसे पीडित होकर भस्म होरहे हैं ॥ द्रोणाचार्य अपने बल, पराक्रम, उत्साह और सामर्थ्यके अनुसार सम्पूर्ण प्राणियों को मोहित करके सेनाके समस्त योद्धाओं का वध कर रहे हैं॥ (६०—६२)

महाबली क्षत्रधर्मा उन योद्धाओंके ऐसे वचनको सुनकर क्षत्रिय धर्ममें निष्ठावान् हो अत्यन्त बली क्रुद्ध द्रोणाचार्यके धनुषको बाणके सहित काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ तिसके अनन्तर क्षत्रियोंके नाश करनेवाले द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर एक महावेगशील दृढ धनुष ग्रहण किया; और उस पर एक शत्रुओंके नाश करनेमें समर्थ भयङ्कर बाणको रखके क्षत्रधर्माकी ओर चलाया । वह बाण धृष्टद्युम्नपुत्र क्षत्रधर्माके बाणको नाश करके पृथ्वीमें गिरा । क्षत्रधर्मा प्राणरहित होकर अपने रथके उपरसे पृथ्वीमें गिर पडे । धृष्टद्युम्न पुत्र क्षत्रधर्माके मरने पर सम्पूर्ण योद्धा द्रोणाचार्य के भयसे कांपने लगे ॥ (६३–६७)

अनन्तर महारथ चेकितानने द्रोणाचार्यको आक्रमण करके अपने दश बाणों-

चतुर्भिः सारथिं चाऽस्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
तमाचार्यस्त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ ६९ ॥
ध्वजं सप्तभिरुन्मथ्य यन्तारमवधीत्त्रिभिः ।
तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः ॥ ७० ॥
समरे शरसंवीता भारद्वाजेन मारिष ।
चेकितानरथं दृष्ट्वा हताश्वं हतसारथिम् ॥ ७१ ॥
तान्समेतान्रणे शूरांश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ।
समन्ताद् द्रावयन्द्रोणो बह्वशोभत मारिष ॥ ७२ ॥
आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ७३ ॥
अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् ।
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम् ॥ ७४ ॥
ततो ऽब्रवीन्महाबाहुर्द्रुपदो बुद्धिमान्नृप ।
लुब्धोऽयं क्षत्रियान्हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥७५॥

से उनके दोनों स्तनोंके बीच प्रहार किया, और उनके सारथीको चार बाणोंसे विद्ध कर फिर उनके रथके चारों घोडोंको चार बाणोंसे विद्ध किया । द्रोणाचार्यने तीन बाणोंसे चेकितानकी दोनों भुजा और वक्षस्थलमें प्रहार करके सातबाणोंसे उनके रथकी ध्वजा काट दिया; और तीन बाणोंसे उनके सारथीका वध किया । सारथीके मारे जानेपर चेकितानके घोडे उनके रथको लेकर दौडते हुए दूसरी ओर भाग गये ॥ तब भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने अपने बाणोंसे उसके उन दौडने वाले घोडोंको मार डाला। (६८–७१)

चेकितानके रथको घोडे और सारथी से रहित देख वहांपर इकठे हुए चेदी पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धाओंको चारों ओर तितर बितर करके द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें अत्यन्त ही शोभित होने लगे ॥ पचासी वर्षकी अवस्थावाले वृद्ध द्रोणाचार्य उस समय सोलह वर्षवाले युवा पुरुषकी भांति युद्धभूमिमें भ्रमण करने लगे। महाराज! उस समय शत्रुनाशन द्रोणाचार्यको शत्रुओंको नाश करते हुए युद्धभूमिमें निर्भयचित्तसे घूमते देख शत्रु सेनाके योद्धा लोग उन्हें वज्रधारी इन्द्रके समान बोध करने लगे ॥ (७१—७४)

उस सयम बुद्धिमान् महाबाहु द्रुपद कहने लगे, जैसे व्याघ्र पशुओंका वध करता है वैसेही यह लुब्ध ब्राह्मण मुख्य

कृच्छ्रान्दुर्योधनो लोकान्पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः ।
यस्य लोभाद्विनिहताः समरे क्षत्रियर्षभाः ॥ ७६ ॥
शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव ।
रुधिरेण परीताङ्गाः श्वशृगालादनीकृताः ॥ ७७ ॥
एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थान्द्रोणमभ्यद्रवद् द्रुतम् ॥ ७८ ॥ [५०८६]

इति श्रीमहाभारते०द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणपराक्रमे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

सञ्जय उवाच— व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः ।
सुदूरमन्वयुः पार्थाः पञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १ ॥
वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे ।
संक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत ॥ २ ॥
द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः ।
पञ्चालेषु च क्षीणेषु वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३ ॥
नाऽपश्यच्छरणं किञ्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद्भविष्यति ॥ ४ ॥

मुख्य क्षत्रियोंका युद्धभूमिमें वधकर रहा है । नीच बुद्धिवाले पापी दुर्योधनके लोभही के कारण सैकडों सहस्रों क्षत्रिय श्रेष्ठ पुरुषोंका वध हो रहा है । कितने ही पुरुष कटे हुए और रुधिर लिपटे हुए शरीरसे युक्त हो कुत्ते और सियारोंके भक्ष्य होकर पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं; इससे इस पापी दुर्योधनको कष्ट जनक नरकमें जाना पडेगा ॥ ऐसा कहके एक अक्षौहिणी सेनाके नायक राजा द्रुपदने शीघ्रताके सहित पाण्डवोंको आगे करके द्रोणाचार्यके निकट युद्ध करनेके वास्ते गमन किया ॥ (७५–७८) [५०८६]

द्रोणपर्वमें एकसौ पचीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ छब्बीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे, भारत ! जब पाण्डवोंकी सेनाका व्यूह इसी प्रकार चारों ओरसे तितर बितर होने लगा, तब सोमकोंके सहित पाण्डव लोग द्रोणाचार्यके समीपसे दूर हट गये ॥ उस प्रलय कालके समान महाघोर संग्रामके समय पराक्रमी द्रोणाचार्य बार बार सिंहनाद कर रहे थे; और उनके बाणोंसे पाञ्चाल योद्धाओंका नाश और सोमकोंको पीडित होते देख, राजाओंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर किसीको भी अपना परित्राण करने वाला न देख कर चिन्ता करने लगे "इस समय कौनसी उपाय करी जावे।" (१–४)

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया।
युधिष्ठिरो ददर्शाऽथ नैव पार्थं न माधवम् ॥ ५ ॥
सोऽपश्यन्नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम्।
गाण्डीवस्य च निर्घोषमशृण्वन्व्यथितेन्द्रियः ॥ ६ ॥
अपश्यन्सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम्।
चिन्तयाऽभिपरीताङ्गो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥
नाऽध्यगच्छत्तदा शान्तिं तावपश्यन्नरोत्तमौ।
लोकोपक्रोशभीरुत्वाद्धर्मराजो महामनाः ॥ ८ ॥
अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति।
पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे ॥ ९ ॥
शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयङ्करः।
तदिदं ह्येकमेवाऽऽसीद् द्विधा जातं ममाऽद्य वै ॥ १० ॥
सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्च धनञ्जयः।
सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ॥ ११ ॥
सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम्।
करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि ॥ १२ ॥
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति।

वह अर्जुनके देखनेकी इच्छासे चारों ओर दृष्टि करके, अर्जुन या कृष्ण किसी को भी न देख सके॥ बन्दर चिन्हवाली ध्वजासे युक्त पुरुषसिंह अर्जुनको न देख, और अर्जुनके गाण्डीव धनुषके शब्दको न सुन कर राजा युधिष्ठिर दुःखित हुए; और वृष्णिवंशीय महारथ सात्यकिको भी न देखकर राजा युधिष्ठिर अत्यन्तही व्याकुल होगये, पुरुषसिंह अर्जुन और सात्यकिकी उपस्थिति न देखकर किसी प्रकार भी वह धीरज न धर सके, विशेष करके लोकनिन्दाकी भयसे सात्यकिके निमित्त चिन्ता करने लगे ॥ (५–८)

मैंने इस तुमुल युद्धमें मित्रोंको अभय देनेवाले सात्यकिको अर्जुनकी पृष्ठरक्षा करनेके वास्ते भेजा है; इससे पहिले मेरा मन अकेले अर्जुनही के वास्ते व्याकुल था, अब इस समयमें सात्यकिके वास्ते मेरा मन अत्यन्त ही व्याकुल होरहा है ॥ अर्जुन के वास्ते मैंने सात्यकि को भेजा है, इस समय सात्यकिकी पृष्ठरक्षा करनेके वास्ते किसे भेजूं ? (९–१२)

यदि सात्यकि की खोज न कर के

भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥
परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
लोकापवादभीरुत्वात्सोऽहं पार्थं वृकोदरम् ॥ १४ ॥
पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः ।
यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ॥ १५ ॥
तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे ।
अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ॥ १६ ॥
स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महाबलः ।
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥ १७ ॥
असौ हि श्रूयते शब्दः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
मिथः संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता ॥ १८ ॥
प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे ।
तत्रैव पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः ॥ १९ ॥
गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ ।
न चाऽप्यसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किञ्चन ॥ २० ॥

भाईकी खोज करें तो सब कोई यह कहके मेरी निन्दा करेंगे, कि "धर्मराज युधिष्ठिरने सत्य पराक्रमी सात्यकि की खोज न करके भाईकी खोज किया।" इस लोकापवादके भयसे महात्मा सात्यकिकी खोज के वास्ते अपने भाई भीमसेनको भेजूं। (१२-१५)

शत्रु नाशन अर्जुनके ऊपर मेरा जैसा प्रेम है, यदुकुल भूषण पुरुषसिंह सात्यकिके ऊपर भी मेरा वैसाही प्रेम और प्रीति है। शिनिपौत्र सात्यकिके ऊपर मैंने बहुत बडे भारको अर्पित किया है, उस पाप रहित पराक्रमी सात्यकिने मित्रकी सहायता और मेरी गौरव रक्षाके वास्ते इस प्रकारसे भारती सेनाके बीच प्रवेश किया है, जैसे मकर घडियाल समुद्रके बीच प्रवेश करते हैं॥ पराक्रमी सात्यकिके सङ्ग युद्धभूमिमें संग्राम करनेवाले तथा युद्धसे पीछे न हटने वाले शूरवीर पुरुषोंका शब्द सुनाई दे रहा है ॥ (१६-१८)

मैंने अनेक भांतिसे विचार करके देखा, इस सङ्कटमें जिस स्थानपर ऊपर कहे दो महारथी गये हैं, उस ही स्थानपर भ्राता भीमसेनका गमन करना ही उचित बोध होता है। पृथ्वीके बीच भीमसेनसे कोई कार्य असाध्य नहीं है॥ वह अपने बाहुबलके आसरेसे यत्नवान्

शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम् ।
स्वबाहुबलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा ॥ २१ ॥
यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः ।
वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः ॥ २२ ॥
इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे ।
सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफाल्गुनौ ॥ २३ ॥
कामं त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ ।
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं शस्त्रविशारदौ ॥ २४ ॥
अवश्यं तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम् ।
तस्माद्भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य पदानुगम् ॥ २५ ॥
ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति ।
एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥
यन्तारमब्रवीद्राजा भीमं प्रति नयस्व माम् ।
धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः ॥ २७ ॥
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत् ।

होकर पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके व्यूहके विरुद्ध अकेले ही शत्रुसेना के सङ्ग युद्ध कर सकते हैं ॥ इसी महात्माके बाहुबलके आसरे हम लोग वनवासके सम्पूर्ण दुःखोंसे पार हुए हैं; और किसीके सङ्ग कभी युद्धमें पराजित नहीं हुआ हूं ॥ (१९-२२)

जब मेरे भाई भीमसेन यहांसे गमन करके सात्यकिके समीप उपस्थित होवेंगे, तब सात्यकि भी अर्जुनकी सहायता करनेमें समर्थ होगा ! परन्तु अर्जुन और सात्यकि चिन्ताके विषय नहीं हैं; क्यों कि कृष्ण उनकी रक्षा कर रहे हैं, और वे दोनो स्वयं भी सब अस्त्रशस्त्रोंकी विद्याके जाननेवाले हैं ॥ तब मेरे चित्तमें जो चिन्ता उपस्थित हुई है; उसे अवश्य निवारण करना चाहिये । इससे सात्यकिकी रक्षा करनेके वास्ते भीमसेनको नियुक्त करूं, उससे बोध करता हूं, सात्यकिके वास्ते यथा उचित कार्यका विधान होगा । (२३-२६)

धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने मनही मन ऐसा निश्चय करके सारथीसे बोले, हे सारथी ! तुम मुझे भीमसेनके समीप ले चलो ! घोडोंके चलानेमें निपुण सारथी धर्मपुत्र युधिष्ठिर के वचन को सुनकर उनके सुवर्णभूषित रथको भीमसेनके पास ले गया । कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर

भीमसेनमनुज्ञाप्य प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ २८ ॥
कश्मलं प्राविशद्राजा बहु तत्र समादिशत् ।
स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः ॥ २९ ॥
अब्रवीद्वचनं राजन्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यः सदेवान्सगन्धर्वान्दैत्यांश्चैकरथोऽजयत् ॥ ३० ॥
तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनाऽनुजस्य ते ।
ततोऽब्रवीद्धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ॥ ३१ ॥
नैवाऽद्राक्षं न चाऽश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् ।
पुराऽतिदुःखदीर्णानां भवान्गतिरभूद्धि नः ॥ ३२ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते ।
नह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद ॥ ३३ ॥
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ।
तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ॥ ३४ ॥
भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः ।
यथा शङ्खस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते ॥ ३५ ॥

भीमसेन के समीप पहुंच कर उस समयके उपस्थित विषयको कहनेके वास्ते उस कार्यको फिर स्मरण करके शोकित हुए ॥ (२६—२९)

वह शोकित होके भीमसेनको बुलाकर यह वचन बोले, हे भीमसेन ! जिन्होंने अकेले ही रथपर चढके देवता, गन्धर्व और असुरोंको पराजित किया है, मैं तुम्हारे उस ही भ्राता अर्जुनका कुछ संवाद नहीं पाता हूं। (२९-३१)

अनन्तर भीमसेन धर्मराज युधिष्ठिर-को इस प्रकार मोहित देखकर उनसे यह वचन बोले, हे राजेन्द्र ! तुम्हारी ऐसी कातरता पहिले न कभी देखी और न सुना ही था; पहिले जब हम लोग दुःखित होते थे, तब तुम हमलोगोंके दुःखको दूर करके धीरज धारण कराते थे ॥ आप उठिये ! सावधान होइये; मुझे आज्ञा दीजिये, मैं तुम्हारे निमित्त कौनसा कार्य करूं ? हे मान पानेके योग्य, महाराज ! मुझसे कोई कार्य भी असाध्य नहीं है। हे कुरुश्रेष्ठ ! आप अपने चित्तसे शोक दूर कीजिये; कहिये मुझे कौनसा कार्य करना होगा ? (३१-३४)

राजा युधिष्ठिर आंखोंमें आंसू भरके अत्यन्त दुःखित होकर काले सांपके समान लम्बी सांस छोडते हुए भीमसेन से कहने लगे; हे भीमसेन ! यशस्वी

पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना ।
नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनञ्जयः ॥ ३६ ॥
तस्मिन्विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः ।
यस्य सत्त्ववतो वीर्यं ह्युपजीवन्ति पाण्डवाः ॥ ३७ ॥
यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राक्षमिवाऽमराः ।
स शूरः सैन्धवप्रेप्सुरन्वयाद्भारतीं चमूम् ॥ ३८ ॥
तस्य वै गमनं विद्मो भीम नाऽऽवर्तनं पुनः ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महारथः ॥ ३९ ॥
व्यूढोरस्को महाबाहुर्मत्तद्विरदविक्रमः ।
चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विषतां भयवर्धनः ॥ ४० ॥
तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिन्दम ।
अर्जुनार्थे महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ॥ ४१ ॥
वर्धते हविषेवाऽग्निरिध्यमानः पुनः पुनः ।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलम्॥४२॥

कृष्णके पाञ्चजन्य शंखका शब्द इस समय जिस प्रकारसे सुन पडता है, इससे बोध होता है, वह क्रुद्ध होकर अत्यन्त बल पूर्वक अपने शंखको बजा रहे हैं, मुझे बोध होता है, तुम्हारे भाई अर्जुन अवश्य ही युद्धभूमिमें मारे गये। उन के मरने से श्रीकृष्ण स्वयं युद्धकर रहे हैं। (३४—३७)

जिस महातेजस्वी पुरुषसिंह कृष्णके बल,पराक्रमका आसरा करके पाण्डवलोग जीवित हैं, जैसे कोई भय उपस्थित होनेसे देवता लोग इन्द्रकी शरणमें जाते हैं, वैसेही कुछ विपद उपस्थित होने पर पाण्डव लोग कृष्णकी शरण चाहते हैं। उस पराक्रमी अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके वधकी अभिलाष करके भारती सेनाके बीच प्रवेश किया है। परन्तु उस महाबाहू, श्यामवर्ण, युवा, जितेन्द्रिय, सुन्दर, महारथी, विशाल वक्षस्थलसे युक्त, मतवारे हाथीके समान पराक्रमी,चकोरलोचन,शत्रुओंको पीडित करनेवाले और ताम्र बदनसे युक्त अर्जुनके गमनको मैं नहीं जान सकता हूं; वह जो फिर लौट कर मेरे समीप आवेंगे वह मुझे नहीं मालुम होता है;यही मेरे शोकका मुख्य कारण है॥ ३७-४१

हे महाबाहो! अर्जुन और सात्यकिके वास्ते मेरी शोकाग्नि मानो घृतके पडने से प्रज्वलित हुई आग्निके समान बार बार बढ रही है। उस महाबाहु अर्जुनके

तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महारथम् ।
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवाऽनुजम् ॥ ४३ ॥
तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम् ।
पार्थे तस्मिन्हते चैव युध्यते नूनमग्रणीः ॥ ४४ ॥
सहायो नाऽस्य वै कश्चित्तेन विन्दामि कश्मलम् ।
तस्मिन्कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥ ४५ ॥
न हि मे शुध्यते भावस्तयोरेव परन्तप ।
स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनञ्जयः ॥ ४६ ॥
सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे ।
वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते ॥ ४७ ॥
न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा ।
चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ स यातः सव्यसाचिनः ॥ ४८ ॥
पदवीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः ।
दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ सात्वतं चैव सात्यकिम् ।
संविदं चैव कुर्यास्त्वं सिंहनादेन पाण्डव ॥ ४९ ॥ [५१३५]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरचिन्तायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

रथचिन्हको न देखकर मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूं, और पुरुषसिंह सात्यकिको तुम महारथी कहके जानते हो; वह जो तुम्हारे भाईकी पृष्ठरक्षा करनेके वास्ते गये हैं, इससे उस महाबाहु सात्यकिको भी न देखकर मैं शोकित हुआ हूं॥४१-४४

अर्जुनके मरनेसे अवश्य कृष्ण युद्ध कर रहे हैं; परन्तु उनका कोई सहायक नहीं है, इससे भी मैं व्याकुल होरहा हूं। जिसके बल-पराक्रमके आसरेसे पाण्डव लोग जीवित हैं, वह महाबलवान् पराक्रमी कृष्ण अवश्य अकेलेही शत्रुओंके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं । जो हो उन दोनो पुरुषसिंहोंके निमित्त मेरे चित्तमें शान्ति नहीं होती है। हे धर्म जाननेवाले ! मैं तुम्हारा जेठा भाई हूं; मेरे वचनोंको मानना यदि तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य होवे, तो अर्जुन और सात्यकिके पास तुम भी जाओ। (४५-४७)

सात्यकि मेरे प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे महाभयङ्कर अपरम्पार सेनाके बीच अर्जुनकी सहायताको गया है। इससे अर्जुनसे भी अधिक सात्यकिके समाचारको मालूम करना तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य है। तुम कृष्ण अर्जुन और सात्यकिका कुशल देखकर अपने सिंह-

भीमसेन उवाच—ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद्यः पुरा रथः।
तमास्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥ १ ॥
आज्ञां तु शिरसा बिभ्रदेष गच्छामि मा शुचः।
समेत्य तान्नरव्याघ्रांस्तव दास्यामि संविदम् ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच— एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम्।
धृष्टद्युम्नाय बलवान्सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ॥ ३ ॥
धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः।
विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महारथः ॥ ४ ॥
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्त्तते।
न च मे गमने कृत्यं तादृक्पार्षत विद्यते ॥ ५ ॥
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः।
एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं न चोत्सहे ॥ ६ ॥
प्रयास्ये तत्र यत्राऽसौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः।

नादके शब्दसे मुझे संवाद प्रदान करोगे ॥ (४८–४९) [५१२९]

द्रोणपर्वमें एकसौ छब्बीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ सत्ताईस अध्याय।

भीमसेन बोले, महाराज! जिस रथ पर पहिले ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और वरुण ने गमन किया था; कृष्ण-अर्जुन उसी रथ पर चढके शत्रुसेनाके बीच प्रविष्ट हुए हैं; इससे किसीसे भी उन्हें भय नहीं हो सकता ॥ तब तुम्हारी आज्ञा-को माथे पर चढा कर मैं उन लोगोंकी सहायताके वास्ते गमन करता हूं; आप शोक न कीजिये; मैं उन पुरुषसिंहोंके समीपमें पहुंचके आपको संवाद दूंगा ॥ (१–२)

सञ्जय बोले, हे राजन्! महाबली पराक्रमी भीमसेन ऐसा वचन करके धृष्टद्युम्न और दूसरे सुहृद् पुरुषोंके निकट राजा युधिष्ठिरको समर्पण करके धृष्टद्युम्नसे बार बार यह वचन बोले, हे महाबाहो! महारथ द्रोणाचार्य जिस प्रकारसे उपाय रचकर धर्मराज युधिष्ठिर को ग्रहण करने के वास्ते युद्धभूमि में स्थित है, वह तुम्हें विदित है। हे पार्षत! इससे हम लोगोंका द्रोणाचार्यके समीप से धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना जैसे प्रयोजनीय कार्य है, कृष्ण-अर्जुनके समीप गमन करना उतना आवश्यक कार्य नहीं है। (३–६)

परन्तु महाराजने मुझे अर्जुनके समीप जानेके वास्ते आज्ञा दिया है, मैं उनकी आज्ञा भङ्ग करनेका उत्साह नहीं

धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशंकया ॥ ७ ॥
यास्यामि पदवीं भ्रातुः सात्वतस्य च धीमतः ।
सोऽद्य यत्तो रणे पार्थ परिरक्ष युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे ।
तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥ ९ ॥
ईप्सितं ते करिष्यामि गच्छ पार्थाऽविचारयन् ।
नाऽहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन ॥ १० ॥
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे ।
ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पाण्डवम् ॥ ११ ॥
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः ।
परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ॥ १२ ॥
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाऽऽशिषः शुभाः ।
कृत्वा प्रदक्षिणान्विप्रानर्चितांस्तुष्टमानसान् ॥ १३ ॥
आलभ्य मङ्गलान्यष्टौ पीत्वा कैरातकं मधु ।

कर सकता; क्योंकि धर्मराजकी आज्ञा को सम्पूर्ण शङ्काओंको त्यागके पालन करना ही उचित है । इससे जहांपर आयुरहित जयद्रथ स्थित है, मैं उस ही स्थान पर अपने भाई अर्जुन और बुद्धिमान् सात्यकिकी सहायता करनेके वास्ते जाता हूं । आप युद्धभूमिमें यत्नवान् होकर सब प्रकारसे महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करना । इस युद्धमें सम्पूर्ण कार्योंके बीच राजाकी रक्षा करना ही मुख्य कार्य है । (६–९)

महाराज ! धृष्टद्युम्न भीमसेनसे बोले, हे पार्थ ! मैं तुम्हारे अभिलषित कार्य को पूर्ण करूंगा । तुम कुछभी विचार न कर के अर्जुनके समीप जाओ; तुम कुछ भी चिन्ता मत करो । द्रोणाचार्य इस महायुद्धमें धृष्टद्युम्नका विना वध किये, किसी प्रकारसे भी धर्मराज युधिष्ठिरको ग्रहण न कर सकेंगे । ९—११

तिसके अनन्तर भीमसेनने महाराज युधिष्ठिरको धृष्टद्युम्नके निकट समर्पण करके जेठे भाई धर्मराजको प्रणाम किया । धर्मराजने उन्हें आलिङ्गन कर के उनका मस्तक सूंघा और शुभ आशीर्वाद प्रदान किया । तिसके अनन्तर भीमसेनने ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें प्रसन्न कर उनको प्रदक्षिणा किया, फिर गौ अग्नि आदि आठ प्रकारकी माङ्गलिक वस्तु स्पर्श करके किरात देशीय मधुका पान करके मतवारे नेत्रसे युक्त हो-

द्विगुणद्रविणो वीरो मदरक्तान्तलोचनः ॥ १४ ॥
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनो विजयोत्पादसूचितः ।
पश्यन्नेवाऽऽत्मनो बुद्धिं विजयानन्दकारिणीम् ॥ १५ ॥
अनुलोमानिलैश्चाऽऽशु प्रदर्शितजयोदयः ।
भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ॥ १६ ॥
साङ्गदी सतलत्राणः स रथी रथिनां वरः ।
तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्धिमत् ॥ १७ ॥
विबभौ सर्वतः श्लिष्टं सविद्युदिव तोयदः ।
पीनरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ॥ १८ ॥
कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवाऽम्बुदः ।
प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया ॥ १९ ॥
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद्विशाम्पते ।
तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ॥ २० ॥
पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।
एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो भृशम् ॥ २१ ॥

कर द्विगुण उत्साही होगये ॥ ११-१४

ब्राह्मणोंने उस समय उनके विजय सूचक स्वस्त्ययन पाठ किया । उन्होंने विजयके निमित्त आत्मबुद्धि अनुभव करके वहांसे प्रस्थान किया । भीमसेन के प्रस्थान करनेके समय वायु उन के अनुकूल बहते हुए उनकी विजयकी सूचना करने लगा । महारथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेनके कानमें सुन्दर कुण्डल, भुजा में उत्तम आभूषण, हाथ में तलत्राण और शरीर में सुवर्ण भूषित महामूल्य वान् लोहमय कवच था । इससे जैसे बिजलीसे युक्त बादल पर्वतपर स्थित होके शोभित होता है, उनका वह कवच उनके शरीरमें लिपटा हुआ वैसे ही शोभित होने लगा । और इन्द्रधनुष के सहित जैसे आकाश में बादल शोभित होते हैं वैसे ही लाल पीले काले और श्वेत वर्णके वस्त्रों तथा कण्ठत्राण पहरने से भीमसेन शोभित होने लगे। १५-१९

तुम्हारी सेनाके सङ्ग युद्ध करने की अभिलाषसे जब भीमसेन प्रस्थान करनेके वास्ते तैयार हुए तब फिर पाञ्चजन्य शङ्खका शब्द सुनाई पडा । धर्मराज युधिष्ठिरने तीनो लोकको भयभीत करनेवाले उस भयङ्कर पाञ्चजन्य शङ्खके शब्दको सुनके फिर महाबाहु भीमसेनसे बोले, हे भीमसेन ! सुनते हो ! यह

पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च विनादयति शङ्खराट्।
नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत्सव्यसाचिनि ॥ २२ ॥
कुरुभिर्युध्यते सार्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः।
आह कुन्ती नूनमार्या पापमद्य निदर्शनम् ॥ २३ ॥
द्रौपदी च सुभद्रा च पश्यन्त्यौ सह बन्धुभिः।
स भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनञ्जयः ॥ २४ ॥
मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनञ्जयदिदृक्षया।
दिशश्च प्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात् ॥ २५ ॥
गच्छ गच्छेति गुरुणा सोऽनुज्ञातो वृकोदरः।
ततः पाण्डुसुतो राजन्भीमसेनः प्रतापवान् ॥ २६ ॥
बद्धगोधांगुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः।
ज्येष्ठेन प्रहितो भ्रात्रा भ्राता भ्रातुः प्रियङ्करः ॥ २७ ॥
आहत्य दुन्दुभिं भीमः शङ्खं प्रध्माप्य चाऽसकृत्।
विनद्य सिंहनादेन ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ॥ २८ ॥
तेन शब्देन वीराणां पातयित्वा मनांस्युत।
दर्शयन्घोरमात्मानममित्रान्सहसाऽभ्ययात् ॥ २९ ॥
तमूहुर्जवना दान्ता विरुवन्तो हयोत्तमाः।

यदुकुलश्रेष्ठ कृष्ण पाञ्चजन्य शङ्ख बजा रहे हैं; उस ही पाञ्चजन्य शङ्खके शब्द से पृथ्वी आकाश और सम्पूर्ण दिशा अनुनादित होरही हैं। अर्जुन बडे भारी व्यसन में पडे होंगे उसहीसे कृष्ण स्वयं चक्र ग्रहणकर के सम्पूर्ण कौरवोंके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं। (१९—२३)

आज माता कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्राके पक्ष में महा अनिष्ट दर्शन हुआ! हे भीम! तुम शीघ्र ही अर्जुनके समीप गमन करो। मैं अर्जुनके संवाद पानेकी इच्छासे और सात्यकि के निमित्त बुद्धि रहित होरहा हूं; मुझे सब दिशा सूनी बोध हो रही हैं। (२३—२५)

अनन्तर प्रतापी भीमसेनको जब उनके बडे भ्राता और गुरु धर्मराजने जाव जाव कहके आज्ञा दिया; तब जेठे भाईके प्रियके लिये उन्होंने तलत्राण धारणकर धनुषधारी हो धनुषटङ्कार करके शङ्ख और नगाडे बजवाते हुए बार बार सिंहनाद करके भयङ्कर रूपसे शत्रुओंको भयभीत करते हुए उनकी ओर सहसा गमन किया। (२६—२९)

मन और वायुके समान शीघ्रगामी

विशोकेनाऽभिसम्पन्ना मनोमारुतरंहसः ॥ ३० ॥
आरुजन्विरुजन्पार्थो ज्यां विकर्षश्च पाणिना ।
सम्प्रकर्षन्विकर्षश्च सेनाग्रं समलोडयत् ॥ ३१ ॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं पश्चालाः सहसोमकाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवाऽमराः ॥ ३२ ॥
तं समेत्य महाराज तावकाः पर्यवारयन् ।
दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविंशतिः ॥ ३३ ॥
दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा ।
विन्दानुविन्दौ सुमुखौ दीर्घबाहुः सुदर्शनः ॥ ३४ ॥
वृन्दारकः सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः ।
अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥ ३५ ॥
शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः सहसैन्यपदानुगाः ।
संयत्ताः समरे वीरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ३६ ॥
तैः समन्तावृतः शूरैः समरेषु महारथः ।
तान्समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी ।
अभ्यवर्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३७ ॥
ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन् ।

उनके रथके उत्तम घोडे विशोक सारथी के चलाने पर हर्ष पूर्वक हिनहिनाते और भीमसेन के रथको खींचते हुए गमन करने लगे॥ पृथापुत्र भीम अपने हाथसे धनुषटङ्कार करके सेनाके आगे स्थित योद्धाओं को अपने अस्त्रोंसे नाना प्रकार पीडित करके सेनाको विदारते हुए गमन करने लगे॥ तब इन्द्रके पीछे देवोंके समान सोमक और पाश्चाल वीर भीमके अनुगामी हुए॥ (२९—३२)

महाराज! दुःशासन चित्रसेन, कुंडभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, वृन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन ये सम्पूर्ण रथियों में श्रेष्ठ पराक्रमी सम्पूर्ण सहोदर भ्राता नाना प्रकारके अनुयायी सेनाके योद्धाओंके सहित दौड कर भीमसेनको घेर कर युद्धभूमिके बीच स्थित हुए। ३३—३६

कुन्तीपुत्र पराक्रमी भीमसेन उन लोगोंको अपनी ओर आते देखके इस प्रकार वेगपूर्वक उनकी ओर दौडे, जैसे सिंह छोटे हरिणोंकी ओर दौडता है॥

छादयन्तः शरैर्भीमं मेघाः सूर्यमिवोदितम् ॥ ३८ ॥
स तानतीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३९ ॥
सोऽचिरेणैव कालेन तद्गजानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत्पवनात्मजः ॥ ४० ॥
त्रासिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः ।
प्राद्रवन्द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ४१ ॥
पुनश्चाऽतीव वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
तमवारयदाचार्यो वेलोद्वृत्तमिवाऽर्णवम् ॥ ४२ ॥
ललाटेऽताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव ।
ऊर्ध्वरश्मिरिवाऽऽदित्यो विबभौ तेन पाण्डवः ॥ ४३ ॥
स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममाऽयं फाल्गुनो यथा ।
भीमः करिष्यते पूजामित्युवाच वृकोदरम् ॥ ४४ ॥
भीमसेन न ते शक्या प्रवेष्टुमरिवाहिनी ।
मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबल ॥ ४५ ॥

जैसे बादलोंका समूह उदय हुए सूर्यको छिपा देता है, वैसे ही वे सम्पूर्ण योद्धा लोग अपने बाणोंसे भीमसेनको छिपाकर दिव्य महा अस्त्रोंको प्रकाशित करने लगे ॥ परन्तु वह वेगपूर्वक उन योद्धा-ओंको अतिक्रम कर के द्रोणाचार्य की सेनाकी ओर दौडे, और सम्मुख में स्थित गज सेनाके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ (३७–३९)

वायुपुत्र भीमसेनने मुहूर्तभरके बीच उस गजसेनाको अपने बाणोंकी वर्षासे छिन्न भिन्न कर दिया। जैसे वनके बीच शरभके शब्दको सुनकर हरिणोंका समूह भाग जाता है, वैसे ही वे सम्पूर्ण हाथी भीमसेनका भयङ्कर शब्द सुन कर वहांसे भाग गये । अनन्तर भीमसेन शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौडे। जैसे समुद्रके वेगको तट रोकता है वैसे ही द्रोणाचार्यने भीमसेनको आगे बढने से रोका। और मानो हंसके द्रोणाचार्यने भीमसेनके ललाटमें बाण विद्ध किया । उससे पाण्डुपुत्र भीमसेन किरणधारी सूर्य के समान प्रकाशित होने लगे। ४०-४३

" जैसे अर्जुन मेरी मानरक्षा करके गये हैं वैसे ही भीमसेन भी करेंगे । " यही विचार कर द्रोणाचार्य उनसे यह वचन बोले, हे भीमसेन ! मैं शत्रु हूं, तुम आज युद्धभूमिमें मुझे विना पराजित

यदि ते सोऽनुजः कृष्णा प्रविष्टोऽनुमते मम ।
अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ॥ ४६ ॥
अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः ।
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन् ॥ ४७ ॥
तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् ।
प्रविष्टः स हि दुर्धर्षः शक्रस्यापि विशेद्बलम् ॥ ४८ ॥
तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि ।
नार्जुनोऽहं घृणी द्रोण भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः ॥ ४९ ॥
पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रास्तु ते वयम् ।
इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥ ५० ॥
अद्य तद्विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते ।
यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे तत्तथाऽस्त्विह ॥ ५१ ॥
एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम् ।
अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदण्डमिवान्तकः ॥ ५२ ॥
द्रोणाय व्यसृजद्राजन्स रथादवपुप्लुवे ।

किये, आगे न जासकोगे ॥ यद्यपि तुम्हारे भाईके सहित कृष्ण मेरी अनुमति के अनुसार प्रविष्ट हुए हैं, परन्तु तुम मेरे समीपसे आगे न जासकोगे । ४४-४६

निडर चित्त भीमसेन द्रोणाचार्यके वचनको सुन, क्रोधसे नेत्र लाल करके गर्म सांस छोडते हुए उनसे बोले ॥ हे अधम ब्राह्मण! पराक्रमी अर्जुन तुम्हारी अनुमतिसे सेनाके बीच प्रविष्ट हुए हैं यह सम्भव नहीं है, क्योंकि वह इन्द्रसे रक्षित सेनाके बीचमें भी प्रवेश कर सकते हैं ॥ और यदि अर्जुन तुम्हारी पूजा तथा सम्मान करके गये भी हों तो मैं वह दयालु अर्जुन नहीं हूं। मैं भीमसेन तुम्हारा शत्रु हूं॥ (४५-४९)

हम सब कोई तुम्हें पिता गुरु तथा बन्धु कहके तुम्हारा मान किया करते हैं, और तुम्हारे समीप विनीत भावसे स्थित रहते हैं, परन्तु तुमने आज जैसा वचन कहा, उससे उलटा भाव बोध होता है यदि तुम अपनेको हम लोगोंका शत्रु समझते हो, तो वही होवे, यह भीम भी तुम्हारे शत्रुके अनुरूप ही भयङ्कर कर्म करता रहेगा ॥ (५०-५१)

ऐसा कहके भीमसेनने यमराजके समान क्रुद्ध होकर कालदण्ड समान अपनी भयङ्करी गदा उठा कर द्रोणाचार्यके रथके ऊपर चलाया। द्रोणाचार्य

साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्याऽपोथयत्तदा ॥ ५३ ॥
प्रामृद्गाच्च बहून्योधान्वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
तं पुनः परिवव्रुस्ते तव पुत्रा रथोत्तमम् ॥ ५४ ॥
अन्यं तु रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः ।
व्यूहद्वारं समासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ॥ ५५ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः पराक्रमी ।
अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५६ ॥
ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः ।
भीमं भीमबला युद्धे योधयन्ति जयैषिणः ॥ ५७ ॥
ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समाक्षिपत् ।
सर्वपारसवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ५८ ॥
आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रणोदिताम् ।
द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ५९ ॥
अथाऽन्यैर्विशिखैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः कुण्डभेदिनम् ।
सुषेणं दीर्घनेत्रं च त्रिभिस्त्रीनवपीद्दली ॥ ६० ॥

उसी समय अपने रथसे कूदके पृथक् होगये, परन्तु घोडे सारथी और ध्वजाके सहित उनका रथ चूर्ण होगया और जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे वृक्ष टूट टूट गिर पडते हैं वैसे ही बहुतेरे योद्धा भी उस गदाकी चोटसे नष्ट होगये ॥ ५२–५४

अनन्तर तुम्हारे महारथी पुत्रोंने फिर भीमसेनको घेर लिया ॥ इधर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य दूसरे रथपर चढके व्यूहके दरवाजेपर युद्धके निमित्त उपस्थित हुए। महाराज! तिसके अनन्तर भीमसेन अपने संमुख स्थित रथसेनाको तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे छिपाने लगे ॥ परन्तु तुम्हारे महारथी पुत्र भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर भी विजयकी इच्छा करके युद्ध करने लगे ॥ (५४—५७)

दुःशासनने क्रुद्ध होकर भीमसेनके वधकी इच्छा करके यमदण्डके समान एक भयङ्करी शक्ति चलाया ॥ भीमने दुःशासनके हाथसे छूटी हुई उस शक्तिको अपनी ओर आती देख, उसे अपने बाणसे दो खण्ड करके गिरा दिया; वह भीमका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ (५८—५९)

अनन्तर भीमसेनने क्रोधपूर्वक अपने तीक्ष्ण बाणोंसे कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घनेत्र इन तीनों भाइयोंका तीन तीन

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत्पुनः ॥ ६१ ॥
अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च ।
त्रिभिस्त्रीनवधीद्भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥ ६२ ॥
वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ६३ ॥
ते शरैर्भीमकर्माणं ववर्षुः पाण्डवं युधि ।
मेघा इवाऽऽतपापाये धाराभिर्धरणीधरम् ॥ ६४ ॥
स तद्बाणमयं वर्षमश्मवर्षमिवाऽचलः ।
प्रतीच्छन्पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा ॥ ६५ ॥
विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणं च ते सुतम् ।
प्रहसन्नेव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६६ ॥
ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ ।
विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च ॥ ६७ ॥
सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानिकमाशुगैः ।

बाणोंसे वध किया॥ तुम्हारे पुत्र पराक्रम प्रकाश करते हुए युद्ध कर ही रहे थे उस ही समयमें भीमसेनने उन लोगोंके बीचसे कुरुकुलकी कीर्त्ति बढाने वाले वृन्दारका वध करके फिर अभय, रौद्रकर्मा, और दुर्विमोचन इन तेरे वीर तीन पुत्रोंका तीन तीन बाणोंसे वध किया॥ (६०—६२)

तुम्हारे पुत्रोंने भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर भी मृत्युका भय त्यागकर उन्हें चारों ओरसे घेर लिया॥ जैसे ग्रीष्मकालके अनन्तर बादलोंके समूह पृथ्वीपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही उन योद्धाओंने भीमपर अपने बाणोंकी वर्षा किया॥ शत्रुनाशन भीमसेनने हंसते हंसते शिलाकी वर्षा समान उन शूरवीरोंकी बाणवर्षाको अचल पर्वतके समान युद्धभूमिमें स्थित होकर ग्रहण किया॥ तुम्हारे पुत्रोंके बाणोंसे विद्ध होकर भीमसेन तानिकभी दुःखित न हुए वरन तुम्हारे पुत्र विन्द अनुविन्द और सुवर्माको हंसते हुए युद्धभूमिमें संहार किया॥ (६३–६६)

अनन्तर तुम्हारे पुत्र सुदर्शनको भीमसेनने ज्योंही अपने बाणसे विद्ध किया, त्योंही सुदर्शन प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे॥ अनन्तर पाण्डुपुत्र भीमसेनने शीघ्र ही उन सम्पूर्ण रथियों

दिशः सर्वाः समालोक्य व्यधमत्पाण्डुनन्दनः ॥ ६८ ॥
ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव ।
भज्यमानाश्च समरे तव पुत्रा विशाम्पते ॥ ६९ ॥
प्राद्रवन्सहसा सर्वे भीमसेनभयार्दिताः ।
अनुयायाच कौन्तेयः पुत्राणां ते महद्बलम् ॥ ७० ॥
विव्याध समरे राजन्कौरवेयान्समन्ततः ।
वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ॥ ७१ ॥
त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुश्चोदयन्तो हयोत्तमान् ।
तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो महाबलः ॥ ७२ ॥
सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दं च पाण्डवः ।
तलशब्दं च सुमहत्कृत्वा भीमो महाबलः ॥ ७३ ॥
भीषयित्वा रथानीकं हत्वा योधान्वरान्वरान् ।
व्यतीत्य रथिनश्चापि द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ७४ ॥ [५२०९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि
भीमसेनप्रवेशे भीमपराक्रमे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

सञ्जय उवाच— समुत्तीर्णरथानीकं पाण्डवं विहसन्रणे ।

की सेनाको चारों ओर तितर बितर कर दिया ॥ (६७—६८)

अनन्तर वहांपर बाकी बचे हुए तुम्हारे पुत्र भीमसेनके बाणोंसे पीडित हो उनके भयङ्कर रथशब्दको सुनकर भयसे व्याकुल होके सिंहके संमुखसे मृगोंके समूहकी भांति भागने लगे। महाबाहु भीमसेन तुम्हारे पुत्रोंके पीछे पीछे गमन करके कुरुसेनाके शूरवीर पुरुषोंको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे। तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भीमसेनके अस्त्रोंसे क्षतविक्षत शरीर होकर उन्हें त्याग अपने अपने घोडोंको दौडाकर उनके संमुखसे पृथक् होने लगे॥ ६८-७२

महाबली भीमसेनने उन योद्धाओंको युद्धभूमिमें पराजित कर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद बाहुशब्द और तलशब्दके भयङ्कर शब्दसे उन सम्पूर्ण रथियोंको भयभीत करके मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध किया। अनन्तर सम्पूर्ण रथियोंको अतिक्रम करके द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौडे ॥ (७२—७४) [५२०९]

द्रोणपर्वमें एकसौ सत्ताईस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ अठाईस अध्याय।

सञ्जय बोले, भीमसेनने जब रथसेनाको अतिक्रम कर द्रोणाचार्यकी ओर

विवारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १ ॥
पिबन्निव शरौघांस्तान्द्रोणचापपरिच्युतान् ।
सोऽभ्यद्रवत सोदर्यान्मोहयन्बलमायया ॥ २ ॥
तं मृधे वेगमास्थाय नृपाः परमधन्विनः ।
चोदितास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३ ॥
स तैस्तु संवृतो भीमः प्रहसन्निव भारत ।
उदयच्छत्स गदां तेभ्यः सुघोरां सिंहवन्नदन् ॥ ४ ॥
अवासृजच्च वेगेन शत्रुपक्षविनाशिनीम् ।
इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संहतात्मना ।
प्रामथ्नात्सा महाराज सैनिकांस्तव संयुगे ॥ ५ ॥
घोषेण महता राजन्पूरयन्तीव मेदिनीम् ।
ज्वलन्ती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान् ॥ ६ ॥
तां पतन्तीं महावेगां दृष्ट्वा तेजोभिसंवृताम् ।
प्राद्रवंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ७ ॥
तं च शब्दमसह्यं वै तस्याः संलक्ष्य मारिष ।
प्रापतन्मनुजास्तत्र रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ ८ ॥

गमन किया,तब द्रोणाचार्य हंसते हंसते उन्हें निवारण करनेकी इच्छासे उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ परन्तु भीमसेन द्रोणाचार्यके चलाये हुए बाणोंके प्रवाहको मानो पान करते हुए सेनाके पुरुषोंको मायासे मोहित करके तुम्हारे पुत्रोंकी ओर दौडे ॥ तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे सेनाके मुख्य मुख्य योद्धाओंने शीघ्रताके सहित उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ (१—३)

भीमसेनने इस भांतिसे उन मुख्य मुख्य धनुर्द्धारी वीरोंके बीचमें घिरकर हंसके सिंहनाद किया; और शत्रुओंके नाश करने योग्य एक भयङ्करी गदा उठाकर उन योद्धाओंकी ओर चलाया, इन्द्रके वज्रके समान भीमसेनके हाथसे छूटी हुई वह भयङ्करी गदा तुम्हारे सैनिक पुरुषोंका नाश करती हुई घोर शब्दके सहित पृथ्वीमें गिरके तुम्हारे पुत्रोंको भयभीत करने लगी ॥ ४-६

तुम्हारी ओरके दूसरे सम्पूर्ण योद्धा लोग उस प्रकाशमान गदाको वेगपूर्वक अपनी ओर आती देख महाघोर शब्द करते हुए वहांसे भाग गये ॥ कितनेही मनुष्य उस गदाके असह्य शब्दको सुनकर पृथ्वीमें गिर पडे और बहुतेरे रथी

ते हन्यमाना भीमेन गदाहस्तेन तावकाः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता व्याघ्रघ्राता मृगा इव ॥ ९ ॥
स तान्विद्राव्य कौन्तेयः संख्येऽमित्रान्दुरासदान् ।
सुपर्ण इव वेगेन पक्षिराडत्यगाच्चमूम् ॥ १० ॥
तथा तु विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम् ।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ११ ॥
भीमं तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्मिभिः ।
अकरोत्सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत् ॥ १२ ॥
तद्युद्धमासीत्सुमहद्घोरं देवासुरोपमम् ।
द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः ॥ १३ ॥
यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिःसृतैः ।
वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥
ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः ।
निमील्य नयने राजन्पदातिर्द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥
अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि स्थिरौ ।
वेगमास्थाय बलवान्मनोनिलगरुत्मताम् ॥ १६ ॥

भी अपने रथसे पृथ्वीमें गिरे ॥ अनन्तर भीमसेन हाथमें गदा लेकर तुम्हारे ओरके योद्धाओंको इस प्रकार नष्ट करने लगे, कि वे सम्पूर्ण योद्धा लोग सिंहके समान पराक्रमी भीमसेनको देखकर हरिणोंकी भांति भयभीत होकर युद्ध भूमिसे भागने लगे ॥ (७–९)

कुन्तीपुत्र भीमसेन उन सम्पूर्ण योद्धाओंको तितर बितर करके इस प्रकार सेनाके बीच वेग पूर्वक गमन करने लगे; जैसे पक्षिराज गरुड अत्यन्त वेगसे गमन करते हैं ॥ महाराज ! तब रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको पुरुषोंका नाश करता देख भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य उनके संमुख उपस्थित हुए ॥ उन्होंने वेग पूर्वक भीमसेनको युद्धसे निवारण करके अपने भयङ्कर सिंहनादसे पाण्डवोंको भयभीत किया ॥ (१०–१२)

महात्मा भीमसेनके सङ्ग उस समय द्रोणाचार्यका देवासुर संग्रामके समान महा घोर युद्ध होने लगा ॥ जब भीमसेन द्रोणाचार्य के धनुष से छूटे हुए सैकडों सहस्रों बाणोंसे पीडित होने लगे, तब रथसे कूदकर क्रोधसे दोनों नेत्र मीलित करके शिरको कंधेपर और दोनों हाथोंको हृदयपर स्थिर करके मन, वायु

यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया।
तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत् ॥ १७ ॥
स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः ॥ १८ ॥
द्रोणस्तु सत्वरो राजन्क्षिप्तो भीमेन संयुगे।
रथमन्यं समारुह्य व्यूहद्वारं ययौ पुनः ॥ १९ ॥
तमायान्तं तथा दृष्ट्वा भग्नोत्साहं गुरुं तदा।
गत्वा वेगात्पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु ॥ २० ॥
तमप्यतिरथं भीमश्चिक्षेप भृशरोषितः।
एवमष्टौ रथाः क्षिप्ता भीमसेनेन लीलया ॥ २१ ॥
व्यदृश्यत निमेषेण पुनः स्वरथमास्थितः।
दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः ॥ २२ ॥
तस्मिन्क्षणे तस्य यन्ता तूर्णमश्वानचोदयत्।
भीमसेनस्य कौरव्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २३ ॥
ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः।

और गरुडके समान वेगको अवलंबन कर द्रोणाचार्यकी ओर चले॥ (१३-१६)

जैसे वृषभ लीलाके अनुसार जलवर्षा-की धारा ग्रहण करता है वैसे ही पुरुष श्रेष्ठ भीमसेनने द्रोणाचार्यकी बाणवर्षा-को अनायासही सहन किया॥ महाबली भीमसेन युद्धभूमि में द्रोणाचार्य के बाणोंसे छिप कर भी उनके रथके समीप उपस्थित हुए और रथको उठा कर दूर फेंक दिया॥ (१७—१८)

हे कुरुराज! द्रोणाचार्यका रथ जब भीमसेनके फेंकनेसे दूर गिरा; तब द्रोणाचार्य शीघ्रताके सहित दूसरे रथ पर चढके फिर व्यूहके दरवाजे पर स्थित हुए॥भीमने जब उत्साहरहित आचार्यको रथमें बैठकर पुनः रणभूमिमें आते हुए देखा तब वेगसे उनकी ओर दौडकर रथकी धुरीको पकडके फिर दूसरी बार रथको फेंक दिया॥ इस प्रकार लीलासे द्रोणाचार्यके आठ रथोंको फेंककर फिर क्षण भरके बीच अपने रथ पर बैठे हुए भीमसेन को तेरे पक्षके योद्धाओंने आश्चर्य युक्त नेत्रोंसे अवलोकन किया॥ (१९—२२)

भीमसेनके सारथीने भी शीघ्रताके सहित उनके रथको आगे बढाया। वह अद्भुतके समान हुआ॥ अनन्तर भीम-सेनने अपने रथपर चढके शीघ्रताके

अभ्यद्रवत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २४ ॥
स मृद्नन्क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः।
आगच्छद्दारयन्सेनां सिन्धुवेगो नगानिव ॥ २५ ॥
भोगानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाऽभिरक्षितम्।
प्रमथ्य तरसा वीरस्तदप्यतिबलोऽभ्ययात् ॥ २६ ॥
सन्त्रासयन्ननीकानि तलशब्देन पाण्डवः।
अजयत्सर्वसैन्यानि शार्दूल इव गोवृषान् ॥ २७ ॥
भोजानीकमतिक्रम्य दरदानां च वाहिनीम्।
तथा म्लेच्छगणानन्यान्बहून्युद्धविशारदान् ॥ २८ ॥
सात्यकिं चैव सम्प्रेक्ष्य युध्यमानं महारथम्।
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा ॥ २९ ॥
भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनञ्जयम्।
अतीत्य समरे योधांस्तावकान्पाण्डुनन्दनः ॥ ३० ॥
सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम्।
सैन्धवस्य वधार्थं हि पराक्रान्तं पराक्रमी ॥ ३१ ॥
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुक्रोश महतो रवान्।

सहित तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाके बीच प्रवेश किया॥ जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षोंको उखाडके दूर फेंकता है, वैसे ही भीमसेन क्षत्रिय योद्धाओंको मर्दन करते हुए तथा नदियों का वेग जैसे पर्वतों को विदीर्ण करता हुआ आगे बढता है, उसीतरह आप की सेनाको विदीर्ण करते हुए वेगपूर्वक गमन करने लगे॥ २३-२५

अनन्तर महा बलवान् भीमसेन हृदिकपुत्र कृतवर्माकी सेनाके बीच प्रवेश करके उन योद्धाओंको पीडित करते हुए आगे बढे॥ शार्दूल जैसे गांवोंके और बैलोंके समूहको पीडित करता है वैसे ही भीमसेन अपने तलत्राण शब्दसे सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंको भयभीत करते हुए गमन करने लगे। इसी प्रकार भोजसेना, दरदसेना, म्लेच्छसेना और दूसरी युद्धविद्यामें निपुण बहुतेरी सेनाको अतिक्रम करके भीमसेनने महारथ सात्यकिको देखा। अनन्तर वह यत्नवान होकर अर्जुनके देखनेकी अभिलाषसे तुम्हारे योद्धाओंको अतिक्रम करके वेग पूर्वक रथको चलाकर आगे बढे। २६-३०

अनन्तर कुछ दूर जाके जयद्रथ वधकी इच्छासे युद्ध करनेवाले पराक्रमी अर्जुनको भीमसेनने अवलोकन किया॥

प्रावृट्काले महाराज नर्दन्निव बलाहकः ॥ ३२ ॥
तं तस्य निनदं घोरं पार्थः शुश्राव नर्दतः ।
वासुदेवश्च कौरव्य भीमसेनस्य संयुगे ॥ ३३ ॥
तौ श्रुत्वा युगपद्वीरौ निनदं तस्य शुष्मिणः ।
पुनः पुनः प्रणदतां दिदृक्षन्तौ वृकोदरम् ॥ ३४ ॥
ततः पार्थो महानादं मुञ्चन्वै माधवश्च ह ।
अभ्ययातां महाराज नर्दन्तौ गोवृषाविव ॥ ३५ ॥
भीमसेनरवं श्रुत्वा फाल्गुनस्य च धन्विनः ।
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥
विशोकश्चाऽभवद्राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः ।
धनञ्जयस्य समरे जयमाशास्तवान्विभुः ॥ ३७ ॥
तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने मदोत्कटे ।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः ।
दत्ता भीम त्वया संवित्कृतं गुरुवचस्तथा ॥ ३९ ॥
नहि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टाऽसि पाण्डव ।

जैसे वर्षाकालके समय बादल गर्जनसे शब्द होता है वैसे ही पुरुषसिंह भीमसेनने अर्जुनको देखकर महाभयङ्कर शब्दके सहित सिंहनाद किया ॥ कृष्ण और अर्जुनने भीमसेनके उस भयङ्कर सिंहनादको सुना । (३०—३३)

वे दोनों तेजस्वी वीर भीमसेनके शब्द को सुनकर उसको देखनेकी इच्छा से बार बार शब्द करने लगे ॥ तिसके अनन्तर भीमसेन और सात्यकि भयङ्कर शब्द करनेवाले दो वृषभोंके समान महा घोर शब्द करते हुए उनके समीप जानेकी इच्छासे गमन करने लगे ॥ महाराज ! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने भीमसेन, अर्जुन, सात्यकि और कृष्णके शब्दको सुनकर अर्जुनके विजयकी आशा किया ॥ (३४–३७)

मतवारे हाथीके समान जब भीमसेन उस प्रकारसे सिंहनाद कर रहे थे, तब धर्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी धर्मपुत्र महाबाहु युधिष्ठिर उस शब्दको सुनकर हंसे और अपने हृदयके भावको विचार कर मन ही मन चिन्ता करने लगे । हे भीमसेन ! तुमने अर्जुन आदिके संवाद को प्रदान करके गुरुकी आज्ञा पालन किया है ॥ इससे तुम युद्धमें जिनके

दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनञ्जयः ॥ ४० ॥
दिष्ट्या च कुशली वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
दिष्ट्या शृणोमि गर्जन्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ४१ ॥
येन शक्रं रणे जित्वा तर्पितो हव्यवाहनः ।
स हन्ता द्विषतां संख्ये दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ४२ ॥
यस्य बाहुबलं सर्वे वयमाश्रित्य जीविताः ।
स हन्ता रिपुसैन्यानां दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥४३ ॥
निवातकवचा येन देवैरपि सुदुर्जयाः ।
निर्जिता धनुषैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४४ ॥
कौरवान्सहितान्सर्वान्गोग्रहार्थे समागतान् ।
योऽजयन्मत्स्यनगरे दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४५ ॥
कालकेयसहस्राणि चतुर्दश महारणे ।
योऽवधीद्भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४६ ॥
गन्धर्वराजं बलिनं दुर्योधनकृते च वै ।
जितवान्योऽस्त्रवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४७ ॥
किरीटमाली बलवाञ्श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।

द्वेषी होंगे, उनकी विजय न हो सकेगी। युद्धभूमिमें प्रारब्धहीसे सव्यसाची अर्जुन जीवित हैं ॥ प्रारब्धहीसे सत्य पराक्रमी सात्यकि कुशलपूर्वक युद्धभूमिमें स्थित है। भाग्यहीसे मैंने कृष्ण अर्जुनके सिंह-नाद शब्दको सुना है ॥ (३८-४१)

जिन्होंने संग्राममें इन्द्रको पराजित करके अग्निको तृप्त किया है वह शत्रुना-शन अर्जुन प्रारब्धहीसे जीवित हैं ॥ जिसके बाहुबलके सहारे हम लोग जीते हैं वह शत्रुओंके नाश करनेवाले अर्जुन प्रारब्धसे जीवित हैं॥ जिन्होंने देवताओंसे भी अपराजित निवातकवच दानवोंको एक धनुष ग्रहण करके ही पराजित किया, वह अर्जुन प्रारब्धहीसे जीवित हैं ॥ जिन्होंने मत्स्यदेशमें इकट्ठे हुए गौवोंके हरण करनेवाले सम्पूर्ण कौरवोंको पराजित किया था, वह अर्जुन प्रारब्ध-हीसे जीवित है ॥ (४२-४५)

जिन्होंने अपने बाहुबलसे चौदह हजार कालकेय असुरोंका महासंग्राममें वध किया वह अर्जुन प्रारब्धहीसे जीवित है ॥ जिन्होंने दुर्योधनके वास्ते गन्धर्व-राजको स्वयं पराजित किया; वह अर्जुन प्रारब्धहीसे जीवित है ॥ वह किरीटधारी पराक्रमी मेरा प्यारा भाई अर्जुन कृष्ण

मम प्रियश्च सततं दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४८ ॥
पुत्रशोकाभिसन्तप्तश्चिकीर्षन्कर्म दुष्करम् ।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवान्हि यः ॥ ४९ ॥
कच्चित्स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनञ्जयः ।
कच्चित्तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम् ॥ ५० ॥
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम् ।
कच्चित्सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ॥ ५१ ॥
नन्दयिष्यत्यमित्रान्हि फाल्गुनेन निपातितः ।
कच्चिद्दुर्योधनो राजा फाल्गुनेन निपातितम् ॥ ५२ ॥
दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शममस्मासु धास्यति ।
दृष्ट्वा विनिहतान्भ्रातॄन्भीमसेनेन संयुगे ।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः शममस्मासु धास्यति ॥ ५३ ॥
दृष्ट्वा चाऽन्यान्महायोधान्पातितान्धरणीतले ।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ५४ ॥
कच्चिद्भीष्मेण नो वैरं शममेकेन यास्यति ।
शेषस्य रक्षणार्थं च सन्धास्यति सुयोधनः ॥ ५५ ॥

सारथीके सहित प्रारब्धहीसे जीवित है ॥ (४६–४८)

पुत्रशोकसे कातर होके अत्यन्त कठिन कर्मको करनेकी इच्छासे जयद्रथ वधकी प्रतिज्ञा किया है; परन्तु क्या वह युद्धमें जयद्रथका वध कर सकेंगे ? कृष्णसे रक्षित अर्जुन क्या सूर्य अस्तके पहिले अपनी प्रतिज्ञासे पार होके मेरे समीप आवेंगे ? क्या मैं उन्हें प्रतिज्ञासे पार हुए देखकर उनके सङ्ग मिल सकूंगा ? दुर्योधनके हितकी अभिलाष करने वाला सिन्धुराज जयद्रथ क्या अर्जुनके बाणोंसे मरकर अपने शत्रुओंको आनन्दित करेगा ? राजा दुर्योधन क्या सिन्धुराज जयद्रथको अर्जुनके बाणोंसे मरा हुआ देखकर हम लोगोंके संग सन्धि स्थापित करेगा ? (४९–५३)

युद्धभूमिमें अपने भाइयोंको मरते देख क्या वह मन्द बुद्धिवाला दुर्योधन हम लोगों के सङ्ग सन्धि करेगा ? नीचबुद्धिवाला दुर्योधन क्या दूसरे अनेक योद्धाओंको मरके पृथ्वीमें गिरे देख, पश्चाताप करेगा ? अकेले भीष्मके वधसे ही क्या वह शत्रुता रूपी अग्नि शान्त होवेगी ? बाकी बचे हुए पुरुषोंके जीवन रक्षाके वास्ते क्या दुर्योधन हम

एवं बहुविधं तस्य राज्ञश्चिन्तयतस्तदा ।
कृपयाऽभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्तत ॥ ५६ ॥ [५२६५]

इति श्रीमहाभारते०द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे युधिष्ठिरहर्षेऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२८

धृतराष्ट्र उवाच– निनदन्तं तथा तं तु भीमसेनं महाबलम् ।
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन् ॥ १ ॥
न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु कञ्चन ।
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे ॥ २ ॥
गदां युयुत्समानस्य कालस्येवेह सञ्जय ।
न हि पश्याम्यहं युद्धे यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ॥ ३ ॥
रथं रथेन यो हन्यात्कुञ्जरं कुञ्जरेण च ।
कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि पुरन्दरः ॥ ४ ॥
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्राञ्जिघांसतः ।
दुर्योधनहिते युक्ताः समातिष्ठन्त केऽग्रतः ॥ ५ ॥
भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रांस्तृणोपमान् ।

लोगोंके सङ्ग सन्धि स्थापित करेगा? हे राजेन्द्र! उस महाघोर संग्रामके समय दयालु राजा युधिष्ठिर इसी भांति अनेक चिन्ता करने लगे॥ (५३–५६) ५२६५

द्रोणपर्वमें एकसौ अट्ठाइस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ उनतीस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! बादलके गर्जन समान, सिंहनाद करनेवाला भीमसेन जब उस प्रकार भयङ्कर शब्द कर रहा था, तब किन किन योद्धाओंने उसे युद्धमें निवारण किया? मैं तीनों लोकके बीच ऐसे किसी पुरुषको भी नहीं देखता हूं, जो क्रोधी भीमसेनके सम्मुख युद्धभूमिमें खडा हो सके॥ भीमसेनको महायुद्धमें कालकी भांति गदा लेकर खडे होनेपर मैं ऐसे किसी वीर पुरुषको नहीं देखता हूं जो युद्धभूमिमें उस के सम्मुख खडा हो सके॥ (१–३)

जो रथसे रथ और हाथियोंसे हाथी नष्ट करता है इन्द्रके समान होकर भी कौन पुरुष उसके सम्मुख खडा होगा? भीमसेन क्रुद्ध होकर जब मेरे पुत्रोंका वध कर रहा था, तब दुर्योधनके हितकी इच्छा करनेवाले कौन कौन शूरवीर योद्धा उसके सम्मुख युद्ध करनेके वास्ते उपस्थित हुए थे? जब भीमसेन दावाग्निरूपी होकर तृणकाष्ठरूपी मेरे पुत्रोंको भस्म करनेके निमित्त उद्यत हुआ, तब कौन कौन क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी

प्रधक्षतो रणमुखे केऽतिष्ठन्नग्रतो नराः ॥ ६ ॥
काल्यमानांस्तु पुत्रान्मे दृष्ट्वा भीमेन संयुगे ।
कालेनेव प्रजाः सर्वाः के भीमं पर्यवारयन् ॥ ७ ॥
न मेऽर्जुनाद्भयं तादृक्कृष्णान्नापि च सात्वतात् ।
हुतभुग्जन्मनो नैव यादृग्भीमाद्भयं मम ॥ ८ ॥
भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान्दिधक्षतः ।
के शूराः पर्यवर्तन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ९ ॥
सञ्जय उवाच— तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम् ।
तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्बली ॥ १० ॥
व्याक्षिपन्सुमहच्चापमतिमात्रममर्षणः ।
कर्णः सुयुद्धमाकांक्षन्दर्शयिष्यन्बलं मृधे ॥ ११ ॥
रुरोध मार्गं भीमस्य वातस्येव महीरुहः ।
भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्तनं स्थितम् ॥ १२ ॥
चुकोप बलवद्वीरश्चिक्षेपाऽस्य शिलाशितान् ।
तान्प्रत्यगृह्णात्कर्णोऽपि प्रतीपं प्रापयच्छरान् ॥ १३ ॥

पुरुष युद्ध करनेके वास्ते उसके सम्मुख खडे हुए थे ॥ (४–६)

यमराज जैसे सम्पूर्ण प्राणियोंके संहार करनेके वास्ते उद्यत होते हैं वैसे ही भीमसेनको भी कुरुसेनाको पीडित करते देख कौन कौन योद्धा उसे निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए थे ? भीमसेनसे मुझे जैसा भय लगता है, वैसा भय अर्जुन कृष्ण और धृष्टद्युम्न आदिसे नहीं होता है ॥ जब भीमसेनने अग्निके समान प्रज्वलित होकर मेरे पुत्रोंको भस्म करनेकी इच्छा किया,तब कौन कौन योद्धा युद्ध करनेके वास्ते उसके आगे खडे हुए थे;यह वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो॥ ७–९

सञ्जय बोले,महाराज ! जब महाबली पराक्रमी भीमसेन उस प्रकार शब्द कर रहे थे, तब कर्ण उस शब्दको सुनकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए॥ महाबली कर्णने अत्यन्त क्रोधित होके अपना प्रचण्ड धनुष चढाकर निज पराक्रम प्रकाशित करते हुए धर्मयुद्ध करके भीमसेनके गमन करनेके मार्गको इस भांति रोका जैसे पर्वत वायुके मार्गको रोकता है ॥ (१०–१२)

भीमसेन महाबली कर्णको यत्नपूर्वक सम्मुख खडे देख अत्यन्त क्रुद्ध हुए और शिलापर घिसे हुए बाणोंके समूह कर्णके ऊपर चलाने लगे । कर्णने भीम

ततस्तु सर्वयोधानां यततां प्रेक्षतां तदा ।
प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे ॥ १४ ॥
रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम् ।
भीमसेनस्य निनदं श्रुत्वा घोरं रणाजिरे ॥ १५ ॥
खं च भूमिं च संरुद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः ।
पुनर्घोरेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः ॥ १६ ॥
समरे सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन्क्षितौ ।
शस्त्राणि न्यपतन्दोर्भ्यः केषांचिच्चाऽसवोऽद्रवन् ॥१७॥
वित्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
वाहनानि च सर्वाणि बभूवुर्विमनांसि च ॥ १८ ॥
प्रादुरासन्निमित्तानि घोराणि सुबहून्युत ।
गृध्रकङ्कबलैश्चाऽऽसीदन्तरिक्षं समावृतम् ॥ १९ ॥
तस्मिन्सुतुमुले राजन्कर्णभीमसमागमे ।
ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत् ॥ २० ॥
विव्याध चाऽस्य त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः ।
प्रहस्य भीमसेनोऽपि कर्णं प्रत्याद्रवद्रणे ॥ २१ ॥

सेनके चलाये हुए बाणोंके वेगको सहके उनके ऊपर अनेक बाण चलाये ॥ युद्धमें भीमसेनके सङ्ग कर्णका समागम देख और उन दोनोंके तलत्राण शब्द सुनकर रथी घुडसवार और दूसरे सम्पूर्ण योद्धा लोग भयसे कांपने लगे । भीमसेनके भयङ्कर शब्दको सुनकर क्षत्रियोंने आकाश और पृथ्वीको अवरुद्ध हुई समझा ॥ (१२–१६)

महात्मा भीमसेनके वार बार गर्जन शब्दको सुनकर कितने ही योद्धाओंके हाथसे धनुष तथा शस्त्रास्त्र छूटकर पृथ्वीमें गिर पडे; और कितनोंके आखोंसे आंसू द्रवने लगे ॥ तथा घोडे हाथी आदि वाहन भयभीत होकर मलमूत्र त्याग करने लगे । उस समय सम्पूर्ण वाहन खिन्न होगये ॥ भीमसेनके सङ्ग जब कर्णका महा घोर तुमुल संग्राम होने लगा, तब उस समय महा भयङ्कर उत्पात और अशकुन प्रकट हुए । गिद्ध कौवे और बगुले आदि मांस भक्षण करनेवाले पक्षियोंसे आकाश परिपूरित होगया ॥ (१६–२०)

तिसके अनन्तर कर्णने बीस बाणोंसे भीमसेनको पीडित करके शीघ्रताके सहित पांच बाणोंसे उनके सारथीको-

सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महायशाः ।
तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत् ॥ २२ ॥
असम्प्राप्तांश्च तान्भीमः सायकैर्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद बहुधा राजन्दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ २३ ॥
तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः ।
सञ्छाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ॥ २४ ॥
चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः ।
विव्याध चैनं बहुभिः सायकैर्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः ।
विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥ २६ ॥
तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रीञ्शरान्नतपर्वणः ।
निचखानोरसि क्रुद्धः सूतपुत्रस्य वेगतः ॥ २७ ॥
तैः कर्णोऽराजत शरैरुरोमध्यगतैस्तदा ।
महीधर इवोदग्रस्त्रिशृङ्गो भरतर्षभ ॥ २८ ॥
सुस्राव चाऽस्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः ।
धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद्यथा गैरिकधातवः ॥ २९ ॥
किञ्चिद्विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः ।

विद्ध किया। प्रहार करनेवाले महाबलवान् भीमसेनने हंसकर चौसठ बाणोंसे कर्णको विद्ध किया। अनन्तर महाबली कर्णने भीमकी ओर चार बाण चलाये॥ भीमसेनने अपना हस्तलाघव दिखाते हुए कर्णके चलाये उन बाणोंको समीप न आते आते ही नतपर्व बाणोंसे मार्ग ही में काटके गिरा दिया। (२१–२३)

अनन्तर कर्णने अनगिनत बाण चलाकर भीमसेनको छिपा दिया। भीमसेनने कर्णके बाण जालसे छिपकर उनके धनुषकी मुट्ठी काट दिया; और बहुतसे नतपर्व बाणोंसे कर्णको विद्ध किया॥ भयङ्कर कर्मोंके करनेवाले महारथी सूतपुत्र कर्णने दूसरा धनुष ग्रहण करके भीमसेनको विद्ध किया॥ (२४–२६)

भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेगशील कर्णके वक्षस्थलमें तीन नतपर्व बाणोंसे प्रहार किया ॥ उन तीनों बाणोंसे विद्ध होकर महात्मा कर्ण उस समय तीन ऊंचे शृङ्गवाले पर्वतके समान शोभित होने लगे॥ जैसे पर्वतके ऊपरसे गेरूकी धारा बहती है, वैसेही भीमसेन के बाणोंसे विद्ध होकर कर्णके शरीरसे

आकर्णपूर्णमाकृष्य भीमं विव्याध सायकैः ॥ ३० ॥
चिक्षेप च पुनर्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।
स शरैरर्दितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना ।
धनुर्ज्यामच्छिनत्तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह ॥ ३१ ॥
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ।
वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः ॥ ३२ ॥
हताश्वात्तु रथात्कर्णः समप्लुत्य विशाम्पते ।
स्यन्दनं वृषसेनस्य तूर्णमापुप्लुवे भयात् ॥ ३३ ॥
निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ।
ननाद बलवन्नादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३४ ॥
तस्य तं निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूद्युधिष्ठिरः ।
कर्णं पराजितं मत्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ३५ ॥
समन्ताच्छङ्खनिनदं पाण्डुसेनाऽकरोत्तदा ।
शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका ह्यनदन्भृशम् ॥ ३६ ॥
स शङ्खबाणनिनदैर्हर्षाद्राजा स्ववाहिनीम् ।
चक्रे युधिष्ठिरः संख्ये हर्षनादैश्च संकुलाम् ॥ ३७ ॥

रुधिर धारा बहने लगी ॥ कर्ण भीमके बाणोंसे किंचित् पीडित होकर तनिक भी विचलित न हुए और धनुषपर बाण चढाकर भीमसेनको विद्ध करने लगे ॥ (२७–३०)

कर्णने फिर सौ सौ हजार बाण भीमसेनकी ओर चलाये। दृढ धनुर्द्धारी कर्णके बाणोंसे छिपकर भीमने गर्व प्रकाश करते कर्णके धनुषको एक क्षुर बाणसे काट दिया; और एक भल्लसे उनके सारथीका वध करके उसे यमपुरीमें भेज दिया, तिसके अनन्तर भीमसेनने कर्णके रथके चारों घोडोंको मार डाला ॥ महारथी कर्ण घोडोंसे रहित रथसे कूदके भयसे वृषसेनके रथपर जा चढे ॥ (३१–३३)

महा प्रतापी भीमसेनने इसी प्रकार कर्णको पराजित करके बादल गर्जनके समान महाभयङ्कर सिंहनाद किया; उस सिंहनादको सुनकर राजा युधिष्ठिर अत्यन्त ही आनन्दित हुए ॥ पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंने कर्णको भीमसेनसे पराजित हुए देखकर चारों ओरसे अपने शंख बजाये। तुम्हारी ओरके योद्धाओंने शत्रुओंके शब्दको सुनकर महाघोर शब्द किया ॥ (३४—३६)

उस शंख और बाणोंके शब्दको सुन-

गाण्डीवं व्याक्षिपत्पार्थः कृष्णोऽप्यब्जमवादयत् ।
तमन्तर्धाय निनदं भीमस्य नदतो ध्वनिः
अश्रूयत तदा राजन्सर्वसैन्येषु दारुणः ॥ ३८ ॥
ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक्पृथगजिह्मगैः ।
मृदुपूर्वं तु राधेयो दृढपूर्वं तु पाण्डवः ॥ ३९ ॥ [५३०४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे कर्णपराजये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

सञ्जय उवाच— तस्मिन्विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते ।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ १ ॥
त्वरन्नेकरथेनैव बहु कृत्यं विचिन्तयन् ।
स रथस्तव पुत्रस्य त्वरया परयाऽयुतः ॥ २ ॥
तूर्णमभ्यद्रवद् द्रोणं मनोमारुतवेगवान् ।
उवाच चैनं पुत्रस्ते संरम्भाद्रक्तलोचनः ॥ ३ ॥
ससम्भ्रममिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुनन्दनः ।
अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चाऽपराजितः ॥ ४ ॥

कर राजा युधिष्ठिर हर्षसे पूर्ण हुए और अपने हर्षयुक्त शब्दोंसे सेनाको पूर्ण करने लगे। अर्जुनने गाण्डीव धनुष चढाके धनुष टङ्कार किया और कृष्णने पाञ्चजन्य शंख बजाये। परन्तु भीमसेनके गर्जनका शब्द सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंको अतिक्रम करके युद्धभूमिमें सुनाई देने लगा। तिसके अनन्तर कर्ण और भीमसेन पृथक् रूपसे युद्ध करते हुए रणभूमिमें घूमने लगे। महारथी कर्ण कोमल रीतिसे और भीमसेन पूर्ण पराक्रमके सहित रणभूमि में घूमते हुए युद्ध करने लगे। ३७-३९

द्रोणपर्वमें एकसौ उनतीस अध्याय समाप्त । ५३०४

द्रोणपर्वमें एकसौ तीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! सिन्धुराज जयद्रथके वधके निमित्त अर्जुन सात्यकि और भीमसेनने जब तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश किया, तब तुम्हारी सम्पूर्ण सेना व्याकुल होके तितर बितर होने लगी॥ तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने विशेष प्रयोजनीय कार्यकी चिन्ता करके शीघ्रताके सहित रथपर चढकर द्रोणाचार्यके निकट जानेकी इच्छासे प्रस्थान किया। वायु तथा मनके समान वेगशील दुर्योधनका रथ शीघ्र ही द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित हुआ॥ (१-३)

दुर्योधन क्रोधसे नेत्र लाल करके

विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः।
सम्प्राप्ताः सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः ॥ ५ ॥
व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्वं एवाऽपराजिताः ।
यदि तावद्रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥ ६ ॥
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद ।
आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्समुद्रस्येव शोषणम् ॥ ७ ॥
निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनाऽर्जुनेन च ।
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥ ८ ॥
कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः ।
इत्येवं ब्रुवते योधा अश्रद्धेयमिदं तव ॥ ९ ॥
नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे ।
यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रं व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ १० ॥
एवङ्गते तु कृत्येऽस्मिन्ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ।
यद्गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद ॥ ११ ॥
यत्कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम् ।
तत्संविधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज ॥१२ ॥

द्रोणाचार्यसे बोले, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अर्जुन सात्यकि और भीमसेन इन तीनों महारथियोंने सम्पूर्ण सेनाको पराजित करके सिन्धुराज जयद्रथके समीप तक गमन किया है। और ये तीनों ही महारथी युद्ध करते हुए रणभूमिमें भ्रमण कर रहे हैं । यदि मानलें, कि महाबली पराक्रमी अर्जुनने युद्धमें तुम्हें अतिक्रम करके गमन किया है; परन्तु सात्यकि और भीमसेनने किस प्रकार तुम्हें अतिक्रम करके मेरी सेना के बीच प्रवेश किया है ॥ (३-७)

हे विप्रश्रेष्ठ ! इस लोकमें आपको जीतना तो समुद्रके सूखानेके समान अद्भुत हुआ है ॥ सम्पूर्ण योद्धा तुम्हारे विषयमें यह वचन कह रहे हैं, कि धनुर्वेद जानने वाले द्रोणाचार्य किस प्रकार युद्धभूमिमें पराजित हुए हैं ? आप पुरुषसिंह हैं; जो आपको इन तीनों महारथियोंने अतिक्रम करके गमन किया है, तब मेरी प्रारब्ध ही खोटी हुई है; मैं ऐसा ही समझ रहा हूं । इससे युद्धभूमिमें अवश्य ही मेरी मृत्यु होगी । इस समय आप मेरे कल्याणके वास्ते विचार कीजिये । इस उपस्थित कार्यके विषयमें जो कुछ कहना हो, वह मुझसे कहिये और सिन्धुराज जयद्रथके विषयमें जो कुछ

द्रोण उवाच— चिन्त्यं बहुविधं तात यत्कृत्यं तच्छृणुष्व मे ।
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥१३॥
यावत्तेषां भयं पश्चात्तावदेषां पुरःसरम् ।
तद्गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनञ्जयौ ॥ १४ ॥
सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः ।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याऽभिरक्षणम् ॥ १५ ॥
स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद्भीतो धनञ्जयात् ।
गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ ॥ १६ ॥
सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ।
न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥ १७ ॥
इह नो ग्लहमानानामद्य तावज्जयाजयौ ।
यान्स्म तान्ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि ॥ १८ ॥
अक्षान्स मन्यमानः प्राक्शरास्ते हि दुरासदाः ।

कर्त्तव्य कार्य करना हो आप उसका विधान कीजिये ॥ (८—१२)

द्रोणाचार्य बोले, हे राजन्! चिन्ताके बहुतसे विषय हुए हैं परन्तु इस समय जो कुछ कर्त्तव्य कार्य करना होगा, उसे सुनिये। जब पाण्डवोंकी ओरके तीन महारथियोंने व्यूहके बीच प्रवेश किया है तब व्यूहसे पीछे और बीचमें दोनों स्थलों पर भयकी संभावना हुई है, परन्तु इन दोनों स्थानोंके बीच जहां पर कृष्ण अर्जुन हैं; उन ही स्थानोंको दृढ रखनेका विचार उत्तम बोध होता है॥ यद्यपि कुरुसेनाके आगे और पीछेका हिस्सा शत्रुओंसे आक्रान्त हुआ है, तौ भी सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करना ही मुख्य कार्य बोध होता है; क्योंकि सिन्धु राज जयद्रथ अकेले क्रोधी अर्जुनसे ही भयभीत हुए हैं; उस पर भी सात्यकि और भीमसेनने अर्जुनके समीप गमन किया है, इससे सबसे पहिले सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करना ही हम लोगोंका कर्त्तव्य कार्य है॥ (१३—१६)

हे तात! शकुनिके बुद्धिसे जो सभामें जूएका खेल हुआ था उसका फल इस समय उपस्थित हुआ है उस जूएकी खेलमें जो जीत और हार होती है वह प्रकृत जीत हार नहीं कही जाती। आज हम लोग पण (बाजी) रखके जूएकी खेलमें प्रवृत्त हुए हैं इसी जूएकी खेलमें जीत हार होनी ही प्रकृत जीतहार समझी जावेगी। शकुनिने कुरुसभामें पणकर जिन भयङ्कर पासों-

यत्र ते बहवस्तात कौरवेया व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥
सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान्विशाम्पते ।
ग्लहं च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः ॥ २० ॥
सैन्धवे तु महद्द्यूतं समासक्तं परैः सह ।
अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ २१ ॥
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत्कर्तुमर्हथ ।
तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ २२ ॥
यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम् ।
तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः ॥ २३ ॥
इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चाऽपरान् ।
निरोत्स्यामि च पञ्चालान्सहितान्पाण्डुसृञ्जयैः ॥ २४ ॥
ततो दुर्योधनोऽगच्छत्तूर्णमाचार्यशासनात् ।
उद्यम्याऽऽत्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः ॥ २५ ॥
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।

को ग्रहण करके जूआ खेला था वे सब पासे नहीं हैं वे हम लोगोंके शरीरको भेदनेवाले चोखे बाण हैं । महाराज ! आज इस युद्धको तुम जूएका खेल ही समझो यह जो सम्पूर्ण कौरवोंकी सेना है उसे कोठे और बाणोंको ही अक्ष (पासे) समझो । इस जूएकी खेलमें तुम जयद्रथको पण (बाजी) रूपी जानो क्योंकि उस ही को लेकर आज महाघोर युद्ध होरहा है ॥ (१७-२१)

उनकी प्राणरक्षा वा प्राणनाशसे ही इस युद्धरूपी जुएकी खेलमें जीत हार समझी जावेगी । इससे इस समय सब कोई अपने प्राणकी आशा त्याग कर सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा करनेके वास्ते युद्ध करनेको युद्धभूमिमें तत्पर होजाओ। हे वीर ! जहां पर सम्पूर्ण महाधनुर्धर योद्धा लोग यत्नवान् होकर सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा कर रहे हैं, तुम उस ही स्थानमें जाकर अपनी ओरके महारथ वीरोंकी रक्षा करो ॥ और मैं यहांपर तुम्हारी सहायताके वास्ते बहुतेरे शूरवीर पुरुषोंको यहांसे भेजूंगा । मैं यहां स्थित होकर पाण्डवोंके सहित पाञ्चाल योद्धाओं को निवारण करूंगा ॥ (२१-२४)

हे राजन् ! अनन्तर राजा दुर्योधनने द्रोणाचार्यकी आज्ञा अनुसार अत्यन्त कठिन कर्म करनेके वास्ते तयार होकर अपने अनुयायी योद्धाओंके सहित युद्ध करनेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ पहिले

महाभारत । [५ जयद्रथवधपर्व

बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम् ॥ २६ ॥
यौ तु पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा ।
प्रविष्टे त्वर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया ॥ २७ ॥
पार्श्वे भित्त्वा चमूं वीरौ प्रविष्टौ तव वाहिनीम् ।
पार्श्वेन सैन्यमायान्तौ कुरुराजो ददर्श ह ॥ २८ ॥
ताभ्यां दुर्योधनः सार्धमकरोत्संख्यमुत्तमम् ।
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली ॥ २९ ॥
तावेनमभ्यद्रवतामुभावुद्यतकार्मुकौ ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि ॥ ३० ॥
तमविध्यद्युधामन्युस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ।
विंशत्या सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३१ ॥
दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणाच्छिनत् ।
एकेन कार्मुकं चास्य चकर्त तनयस्तव ॥ ३२ ॥
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ।
ततोऽविध्यच्छरैस्तीक्ष्णैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३३ ॥
युधामन्युश्च संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमाहवे ।

जिस समय अर्जुनने युद्ध करनेकी इच्छासे तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश किया था, उस समय उनके दोनों चक्ररक्षक शीघ्र अस्त्र चलानेवाले युधामन्यु और उत्तमौजा कृतवर्मासे निवारित हुए थे; इस समय वे दोनों सेनाके बाहरसे अर्जुनके समीप जानेकी इच्छासे गमन कर रहे थे। बलवान् राजा दुर्योधन उन दोनोंको सेनाके बगलसे व्यूहबद्ध अपनी सेनामें घुसते देख शीघ्रताके सहित उन लोगोंके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। २५–२९

युद्धमें वेगवान् वे दोनों भाई भी धनुष चढाकर दुर्योधनकी ओर दौडे। युधामन्युने कङ्कपत्रयुक्त तीस बाणोंसे कुरुराज दुर्योधनको विद्ध करके बीस बाणोंसे उनके सारथी और चार बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको विद्ध किया॥ दुर्योधनने भी एक बाणसे युधामन्युकी ध्वजा एक बाणसे धनुष और एक भल्लसे उनके सारथीको काटके पृथ्वीमें गिराया; तिसके अनन्तर दुर्योधनने चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको विद्ध किया॥ (३०–३३)

अनन्तर युधामन्युने अत्यन्त कुपित होकर अत्यन्त तीक्ष्ण तीस बाणोंको ग्रहण करके दुर्योधनके हृदयमें प्रहार

व्यसृजत्तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनान्तरे ॥ ३४ ॥
तथोत्तमौजाः संक्रुद्धः शरैर्हेमविभूषितैः ।
अविध्यत्सारथिं चास्य प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ३५ ॥
दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः ।
जघान चतुरोऽस्याऽश्वानुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥ ३६ ॥
उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे ।
आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन् ॥ ३७ ॥
स रथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयाञ्शरैः ।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन्भुवि ॥ ३८ ॥
हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा ।
युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरावापं च संयुगे ॥ ३९ ॥
हताश्वसूतात्स रथादवतीर्य नराधिपः ।
गदामादाय ते पुत्रः पाञ्चाल्यावभ्यधावत ॥ ४० ॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य क्रुद्धं कुरुपतिं तदा ।
अवप्लुतौ रथोपस्थाद्युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४१ ॥
ततः स हेमचित्रं तं गदया स्यन्दनं गदी ।

किया; और उत्तमौजाने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे राजा दुर्योधनके सारथी का वध किया ॥ हे राजेन्द्र ! दुर्योधन ने उत्तमौजाके चारों घोडे और दो पृष्ठ रक्षक योद्धाओंका वध किया। ३४–३६

रणभूमिमें जब उत्तमौजाके रथके घोडे और सारथी मारे गये; तब वह घोडोंसे रहित रथको त्यागके अपने भाईके रथपर चढ गये ॥ उन्होंने अपने भाईके रथपर चढके अनेक बाणोंसे राजा दुर्योधनके रथके घोडोंके ऊपर प्रहार किया, अनेक बाणोंकी चोटसे दुर्योधनके घोडे प्राणरहित होकर उस ही समय पृथ्वीमें गिर पडे ॥ दुर्योधनके रथके घोडोंको मरते देखकर युधामन्युने अपने अस्त्रोंके बलसे शीघ्र ही दुर्योधनके धनुष और बाणोंके भातेको काट दिया ॥ (३७–३९)

पुरुषश्रेष्ठ दुर्योधन घोडे सारथीसे रहित रथको त्यागके गदा उठाकर दोनों पाञ्चालराजपुत्रोंकी ओर दौडे,युद्धामन्यु और उत्तमौजा शत्रुनाशन दुर्योधनको गदा लिये अपनी ओर आते देख रथसे कूदकर पृथ्वीपर स्थित हुए ॥ तिसके अनन्तर कुरुराज दुर्योधनने सुवर्ण चित्रित उस रथको घोडे, सारथी और

संक्रुद्धः पोथयामास साश्वसूतध्वजं नृप ॥ ४२ ॥
भंक्त्वा रथं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः ।
मद्रराजरथं तूर्णमारुरोह परन्तपः ॥ ४३ ॥
पञ्चालानां ततो मुख्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
रथावन्यौ समारुह्य बीभत्सुमभिजग्मतुः ॥ ४४ ॥ [५३४८]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनयुद्धे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

सञ्जय उवाच— वर्तमाने महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
व्याकुलेषु च सर्वेषु पीड्यमानेषु सर्वशः ॥ १ ॥
राधेयो भीममानर्च्छद्युद्धाय भरतर्षभ ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन् ॥ २ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—यौ तौ कर्णश्च भीमश्च संप्रयुद्धौ महाबलौ ।
अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद्रणः ॥ ३ ॥
पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे ।
कथं भूयः स राधेयो भीममागान्महारथः ॥ ४ ॥
भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे ।

ध्वजाके सहित अपनी गदाके प्रहारसे चूरचूर कर दिया। तुम्हारे पुत्र दुर्योधन स्वयं रथहीन होकर भी पाञ्चाल राजपुत्रके रथको गदाके प्रहारसे चूर चूर करके शीघ्रताके सहित मद्रराज शल्यके रथपर जाचढे और उन दोनों पाञ्चाल राजपुत्रोंने भी दूसरे रथपर चढके अर्जुनके समीप गमन किया ॥ (४०-४४)

द्रोणपर्वमें एकसौ तीस अध्याय समाप्त । ५३४८

द्रोणपर्वमें एकसौ इकतीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! इस प्रकार रोएं को खडा करनेवाले भयङ्कर संग्रामके उपस्थित होनेपर सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग शत्रुओंके बाणोंसे पीडित होकर व्याकुल होने लगे ॥ तब जैसे वनके बीच एक मतवारे हाथी दूसरे मतवारे हाथीकी ओर दौडता है, वैसे ही राधापुत्र कर्ण युद्ध करनेकी इच्छासे भीमसेनकी ओर दौडे ॥ (१-२)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! युद्ध करनेके वास्ते एक दूसरेके सम्मुख होनेवाले कर्ण और भीमसेन दोनों ही बलवान् हैं; इससे अर्जुनके रथके निकट उन दोनोंका किस प्रकार युद्ध हुआ, उसे मेरे समीप तुम विस्तार पूर्वक वर्णन करो ॥ कर्ण पहिले भीमसेनके निकट पराजित हुए थे तब उन्होंने फिर किस प्रकारसे उनके समीप युद्ध करनेके वास्ते

महारथं समाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ५ ॥
भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
नाऽन्यतो भयमादत्त विना कर्णान्महारथात् ॥ ६ ॥
भयाद्यस्य महाबाहो न शेते बहुलाः समाः ।
चिन्तयन्नित्यशो वीर्यं राधेयस्य महात्मनः ।
तं कथं सूतपुत्रं तु भीमोऽयोधयताऽऽहवे ॥ ७ ॥
ब्रह्मण्यं वीर्यसम्पन्नं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं योधयामास पाण्डवः ॥ ८ ॥
यौ तौ समीयतुर्वीरौ वैकर्तनवृकोदरौ ।
कथं तावत्र युध्येतां महाबलपराक्रमौ ॥ ९ ॥
भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं घृणी चापि स सूतजः ।
कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन् ॥ १० ॥
भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन्वैरं पुराकृतम् ।
अयुध्यत कथं शूरः कर्णेन सह संयुगे ॥ ११ ॥
आशास्ते च सदा सूत पुत्रो दुर्योधनो मम ।

गमन किया ? और जो महारथी सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच रथियोंमें श्रेष्ठ कहके विख्यात है भीमसेन भी किस प्रकार उस सूतपुत्र कर्णके सम्मुख हुए ? (३–५)

धर्मपुत्र युधिष्ठिरके चित्तमें धनुर्धर भीष्म द्रोणाचार्य और कर्णके अतिरिक्त जगत्के बीच चौथे किसी पुरुषसे भय नहीं हुआ विशेष करके वह सदा सर्वदा जिसकी चिन्ता करके सुखकी नींद नहीं सोते थे वैसे महारथी सूतपुत्र कर्णके सङ्ग भीमसेनका कैसा संग्राम हुआ ? हे सञ्जय ! जो कर्ण ब्राह्मणोंमें निष्ठावान् अत्यन्त पराक्रमी युद्धमें पीछे न हटनेवाला और सम्पूर्ण योद्धाओंके बीच श्रेष्ठ है उसके सङ्ग भीमने किस प्रकारसे युद्ध किया ? (६–८)

जो हो उन दोनों वीरों--कर्ण तथा भीमसेन--का अर्जुनके रथके निकट जैसा युद्ध हुआ था वह तुम मेरे समीप वर्णन करो। कर्णने कुन्तीके समीप पहिले पाण्डवोंके ऊपर अपना भ्रातृभाव मालूम किया था, और कर्ण स्वयं भी दयालु हैं; उन्होंने कुन्तीके वचनको स्मरण करके किसप्रकार भीमसेनके सङ्ग युद्ध किया ? भीमसेनने पहिलेकी शत्रुता स्मरण करके कर्णके साथ कैसा युद्ध किया ? (९–११)

हे सूत ! बुद्धिहीन दुर्योधन सदा यह

कर्णो जेष्यति संग्रामे समस्तान्पाण्डवानिति ॥ १२ ॥
जयाशा यत्र पुत्रस्य मम मन्दस्य संयुगे ।
स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयोधयत् ॥ १३ ॥
यं समासाद्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः ।
तं सूततनयं तात कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १४ ॥
अनेकान्विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् ।
स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना ॥ १५ ॥
योऽजयत्पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् ।
तं सूततनयं युद्धे कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १६ ॥
यो जातः कुण्डलाभ्यां च कवचेन सहैव च ।
तं सूतपुत्रं समरे भीमः कथमयोधयत् ॥ १७ ॥
यथा तयोर्युद्धमभूद्यश्चाऽऽसीद्विजयी तयोः ।
तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ १८ ॥
सञ्जय उवाच— भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनां वरम् ।
इयेष गन्तुं यत्राऽऽस्तां वीरौ कृष्णधनञ्जयौ ॥ १९ ॥
तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः ।

आशा करता था, कि कर्ण युद्धमें एकत्रित हुए सम्पूर्ण पाण्डवोंको पराजित करेंगे ॥ मेरे मूर्ख पुत्रोंकी विजयकी आशा जिस कर्ण पर निर्भर है भीमसेनने उस पराक्रमी कर्णके साथ कैसा संग्राम किया ? हे तात! जिस कर्णके आसरेसे मेरे पुत्र लोग महारथ पाण्डवोंके साथ शत्रुता किये हैं और भीमसेन भी जिस सूतपुत्र कर्णकी सलाहसे दुर्योधनके किये हुए नाना प्रकारके अनिष्टोंको सदा स्मरण करता रहता है ऐसे स्थलमें भीमने कर्णके साथ किस प्रकार युद्ध किया ? (१२–१५)

जिस महाबली पुरुषने एक ही रथ पर चढके अकेले ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया था, जो इस पृथ्वीके बीच कवच और कुण्डलके सहित उत्पन्न हुआ है ऐसे पराक्रमी सूत पुत्र कर्णके सहित भीमसेनका कैसा संग्राम हुआ ? हे सञ्जय! उन दोनों वीरोंका जैसा संग्राम हुआ था उसे तुम मेरे समीप विस्तारपूर्वक वर्णन करो; क्योंकि तुम बोलनेवालोंमें निपुण हो । (१६–१८)

सञ्जय बोले, महाराज ! भीमसेनने रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णको त्यागके जहां पर कृष्ण अर्जुन थे उस ही स्थान

अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ २० ॥
फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेण विहसन्बली ।
आजुहाव रणे यान्तं भीममाधिरथिस्तदा ॥ २१ ॥
कर्ण उवाच— भीमाऽहितैस्तव रणः स्वप्नेऽपि न विभावितः ।
तद्दर्शयसि कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्षया ॥ २२ ॥
कुन्त्याः पुत्रस्य सदृशं नेदं पाण्डवनन्दन ।
तेन मामभितः स्थित्वा शरवर्षैरवाकिर ॥ २३ ॥
भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णान्नामर्षयद्युधि ।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥ २४ ॥
अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्यवर्षन्महायशाः ।
दंशितं द्वैरथे यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २५ ॥
विभित्सुः कलहस्याऽन्तं जिघांसुः कर्णमक्षिणोत् ।
हत्वा तस्याऽनुगास्तं च हन्तुकामो महाबलः ॥ २६ ॥
तस्मै व्यसृजदुग्राणि विविधानि परन्तपः ।
अमर्षात्पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि मारिष ॥ २७ ॥

पर जानेकी इच्छा करी ॥ जब वह कृष्ण-अर्जुनकी ओर जाने लगे, त्योंही राधा-पुत्र कर्णने दौडकर उनके ऊपर कङ्कपत्र युक्त अपने तीक्ष्ण बाणोंकी ऐसी वर्षा करी जैसे बादल पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं। और विकसित कमलके समान वदनसे हंसकर भीमसेनको आवा-हन करके यह वचन बोले ॥ (१९-२१)

हे भीमसेन ! तुम रणभूमिमें पीठ दिखाओगे यह तुम्हारे शत्रुओंने स्वप्नमें भी नहीं अनुभव किया था, परन्तु आज अर्जुनके देखनेकी इच्छासे मुझे पीठ दिखा रहे हो ॥ हे पाण्डुनन्दन ! तुम कुन्तीके पुत्र हो, पीठ दिखाना तुम्हें उचित नहीं है, इससे संमुख खडे होकर अपने बाणों-की वर्षासे मुझे प्रच्छन्न करो ॥ (२२-२३)

भीमसेन कर्णके आवाहनको न सहकर लौटके उनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। महायशस्वी भीमसेन सब शस्त्रधा-रियोंमें श्रेष्ठ कर्णको द्वैरथ युद्धके वास्ते संमुख आया देख उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ महाबली भीमसेन कर्णको संहार करके शत्रुता शेष करनेकी इच्छासे उन्हें अपने बाणोंसे पीडित करने लगे। शत्रु नाशन भीम-सेन महारथ कर्ण और सेनाके दूसरे योद्धाओंके नाशकी इच्छा करके कुपित होकर कर्णके ऊपर भयङ्कर अस्त्रशस्त्रोंकी

तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत्परमास्त्रवित् ॥ २८ ॥
स यथावन्महाबाहुर्विद्यया वै सुपूजितः।
आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद्बली ॥ २९ ॥
युध्यमानं तु संरम्भाद्भीमसेनं हसन्निव।
अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन्वृकोदरम् ॥ ३० ॥
तन्नाऽमृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे।
युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ॥ ३१ ॥
तं भीमसेनः सम्प्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे।
विव्याध बलवान्क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३२ ॥
पुनश्च सूतपुत्रं तु स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः ॥ ३३ ॥
कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः सञ्छन्नान्वातरंहसः।
हयान्विव्याध भीमस्य पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः॥३४॥
ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति।

वर्षा करने लगे ॥ (२४-२७)

महायशस्वी परम अस्त्रज्ञ कर्णने भीमसेनकी बाण वर्षाको अपनी अस्त्रमायाके प्रभावसे संहार किया ॥ महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्णने धनुर्वेदमें अत्यन्त प्रतिष्ठा पाया था; इसीसे वह युद्धभूमिमें भीमके संग इस प्रकार संग्राम करने लगे, जैसे आचार्य शिष्यके संग युद्ध करता है ॥ क्रुद्ध स्वभाववाले राधा पुत्र कर्ण भीमसेनको अभिमानके सहित अपनी ओर आते देख हंसकर उनके संमुख होकर युद्ध करने लगे ॥ (२८—३०)

उस रणभूमिमें चारों ओर खडे हुए सेनाके पुरुषोंके बीच कर्णने जो भीमसेनकी ऐसी अवज्ञा करी वह भीमसेनसे नहीं सही गई । बलवान् भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सब युद्ध करनेवाले योद्धाओंके आगेही वत्सदन्त अस्त्रसे कर्णके हृदयमें इस प्रकार प्रहार किया जैसे मतवारे हाथीको अंकुशसे पीडित करते हैं ॥ तिसके अनन्तर उत्तम पानीसे बुझे हुए इक्कीस बाण चलाकर कर्णके वर्ममें प्रहार किया ॥ (३१-३३)

कर्णने भी पांच बाणोंसे सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित वायुके समान वेगगामी भीमके रथके घोडोंको विद्ध किया॥ तिसके अनन्तर कर्णने इतने बाण चलाये, कि अर्द्धनिमेष भरके बीच भीमसेनका

कर्णेन विहितं राजन्निमेषार्धाद्दृश्यत ॥ ३५ ॥
सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा ।
प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ३६ ॥
तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत्कवचं दृढम् ।
क्रुद्धश्चाऽप्यहनत्पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३७ ॥
ततोऽचिन्त्य महाबाहुः कर्णकार्मुकनिःसृतान् ।
समाश्लिष्यदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ३८ ॥
स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान् ।
बिभ्रद्भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे ॥ ३९ ॥
ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४० ॥
अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत् ।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम् ॥ ४१ ॥
मृदुपूर्वं तु राधेयो भीममाजावयोधयत् ।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४२ ॥
तं भीमसेनो नाऽमृष्यदवमानममर्षणः ।

रथ कर्णके बाणजालसे छिपकर केवल बाणमय दिखाई देने लगा। कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे सारथी घोडे ध्वजा और रथसे सहित भीमसेन अदृश्य होगये ॥ (३४-३६)

सूतपुत्र कर्णने क्रुद्ध होकर चौंसठ बाणोंसे भीमसेनके दृढ कवचको भेद किया और भीमसेनको भी मर्म भेदी बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ अनन्तर भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी कुछ भी पर्वाह न करके उनके सङ्ग निर्भयचित्तसे युद्ध करने लगे। महाराज! भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पके समान बाणोंकी चोटसे पीडित होकर भी दुःखित नहीं हुए; और पराक्रमके सहित बत्तीस तीक्ष्ण भल्लसे उन्होंने कर्णको विद्ध किया ॥(३७-४०)

कर्णने मानो खेलवाडकी भांति सिन्धुराज जयद्रथके वधकी इच्छा करने वाले भीमसेनको अपने बाणोंके जालसे बिलकुल ही छिपा दिया ॥ परन्तु राजपुत्र कर्ण कोमल युद्ध करते थे और भीमसेन पहिलेकी शत्रुता स्मरण करके क्रोधपूर्वक महा युद्ध करने लगे। शत्रुओं के जीतनेवाले भीमने कर्णके अनादरको सहन नहीं किया; और क्रुद्ध होकर

स तस्मै व्यसृजत्तूर्णं शरवर्षममित्रहा ॥ ४३ ॥
ते शराः प्रेषितास्तेन भीमसेनेन संयुगे ।
निपेतुः सर्वतो वीरे कूजन्त इव पक्षिणः ॥ ४४ ॥
हेमपुङ्खाः प्रसन्नाग्रा भीमसेनधनुश्च्युताः ।
प्राच्छादयंस्ते राधेयं शलभा इव पावकम् ॥ ४५ ॥
कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः ।
राजन्व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि भारत ॥ ४६ ॥
तस्य तानशनिप्रख्यानिषून्समरशोभिनः ।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसम्प्राप्तान्वृकोदरः ॥ ४७ ॥
पुनश्च शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनमरिन्दमः ॥ ४८ ॥
तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः ।
समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव ॥ ४९ ॥
हेमपुङ्खाञ्छिलाधौतान्कर्णचापच्युताञ्छरान् ।
दधार समरे वीरः स्वरश्मीनिव रश्मिमान् ॥ ५० ॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत ।

शीघ्रताके सहित उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ वे सम्पूर्ण बाण भीमसेनके धनुषसे छूटकर शब्द करनेवाले पक्षीके समान रणभूमिमें चारों ओर गिरते हुए दिखाई देने लगे ॥ (४१-४४)

हे महाराज ! वे सब सुवर्ण भूषित बाण इस प्रकार कर्णके ऊपर गिरने लगे जैसे शलभ अग्निकी ओर वेगपूर्वक दौडते हैं ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण रणभूमिमें चारों ओरसे भीमसेनके बाणजालसे छिप कर फिर उनके ऊपर अपने भयङ्कर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ भीमसेनने कर्णके वज्र समान बाणोंको निकट आते ही आते अनेक भल्लोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया, परन्तु सूर्यपुत्र शत्रुओंको जीतनेवाले कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे फिर भीमसेनको छिपा दिया ॥ (४५-४८)

हे भारत ! उस समय भीमसेन कर्णके बाणोंसे ऐसे छिप गये, कि उनका सम्पूर्ण शरीर बाणमय दिखाई देने लगा ! महावीर भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए प्रकाशमान बाणोंसे विद्ध होकर पंखोंसे वेधने वाले श्वाविध तथा किरणधारी सूर्यके समान संग्रामभूमिमें शोभित होने

समृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत् ॥ ५१ ॥
तत्तु भीमो महाबाहो! कर्णस्य चरितं रणे ।
नाऽमृष्यत महाबाहुः क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ॥ ५२ ॥
स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥ ५३ ॥
पुनरेव च विव्याध षड्भिरष्टाभिरेव च ।
मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ५४ ॥
पुनरन्येन बाणेन भीमसेनः प्रतापवान् ।
चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं कर्णस्य प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥
जघान चतुरश्चाऽश्वान्सूतं च त्वरितः शरैः ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि ॥ ५६ ॥
ते जग्मुर्धरणीमाशु कर्णं निर्भिद्य पत्रिणः ।
यथा जलधरं भित्त्वा दिवाकरमरीचयः ॥ ५७ ॥
स वैक्लव्यं महत्प्राप्य छिन्नधन्वा शराहतः ।
तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥ ५८ ॥ [५४०६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णपराजये एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३१ ॥

लगे ॥ उस समय जो भीमसेनके सम्पूर्ण शरीरसे रुधिर झर रहा था उससे वसन्त ऋतुमें फूले हुए अशोक वृक्षके समान उनकी शोभा हुई ॥ परन्तु महाधनुर्द्धर भीमसेनने युद्धभूमिमें सूतपुत्र कर्णके वैसे पराक्रमको सहन नहीं किया ॥ ४९-५२

उन्होंने क्रोधसे दोनों नेत्र लाल करके इस प्रकार पांच बाणोंसे कर्णको विद्ध किया, जैसे अत्यन्त विषधर सर्प श्वेतगिरिको काटते हैं ॥ इन्द्रके समान पराक्रमी भीमसेनने उस रणभूमिमें चौदह बाणोंसे कर्ण के मर्मस्थलों में प्रहार किया ॥ तिसके अनन्तर शीघ्रताके सहित हंसके एक बाणसे कर्णका धनुष काट दिया, और अनेक बाणोंसे उनके रथके घोडे और सारथी का वध करके सूर्य-किरण समान प्रकाशमान बाणोंसे कर्णके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ (५३—५६)

जैसे सूर्यकी किरण बादलोंके समूह को भेदकर पृथ्वीमें प्रवेश करती हैं, वैसे ही भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए वे सम्पूर्ण बाण कर्णके शरीरको भेद कर पृथ्वीमें गिरे ॥ महाराज ! आधिरथ पुत्र कर्णने ऐसे पराक्रमी होकर भी धनुषके कटने पर भीमके बाणोंसे पीडित होकर दूसरे

धृतराष्ट्र उवाच— स्वयं शिष्यो महेशस्य भृगूत्तमधनुर्धरः ।
शिष्यत्वं प्राप्तवान्कर्णस्तस्य तुल्योऽस्त्रविद्यया ॥ १ ॥
तद्विशिष्टोऽपि वा कर्णः शिष्यः शिष्यगुणैर्युतः ।
कुन्तीपुत्रेण भीमेन निर्जितः स तु लीलया ॥ २ ॥
यस्मिञ्जयाशा महती पुत्राणां मम सञ्जय ।
तं भीमाद्विमुखं दृष्ट्वा किन्नु दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥
कथं च युयुधे भीमो वीर्यश्लाघी महाबलः ।
कर्णो वा समरे तात किमकार्षीत्ततः परम् ।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच— रथमन्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात्पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ॥ ५ ॥
क्रुद्धमाधिरथिं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशाम्पते ।
भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ६ ॥
चापशब्दं ततः कृत्वा तलशब्दं च भैरवम् ।

रथ पर चढ के युद्धभूमि में प्रस्थान किया ॥ (५७—५८) [५४०६]

द्रोणपर्वमें एकसौ इकतीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ बत्तीस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! कर्णने स्वतः भगवान् महेशके शिष्य भृगुओंमें श्रेष्ठ धनुर्धारी परशुरामजीके पास सब विद्या सीखी है। सब शिष्यगुणोंसे युक्त वह कर्ण अस्त्रविद्या में परशुरामजी के समान वा उनसे भी थोडा अधिक ही है। तथापि कुन्तीपुत्र भीमसेनने तो ऐसे कर्ण को भी सहज लीलासे जीत लिया है ॥ जिस के पराक्रमसे मेरे पुत्रोंने विजयकी अत्यन्त ही आशा कियी थी, उस ही सूतपुत्र कर्णको दुर्योधनने भीम के निकटसे पराजित देखकर क्या कहा था ? और कर्णने उस समय जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी भीमसेन को देखकर किस कार्यका अनुष्ठान किया वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १-४

सञ्जय बोले, महाराज! कर्ण भली भांतिसे सज्जित हुए दूसरे उत्तम रथ पर चढके वायुके वेगसे उछलते समुद्रके समान गमन करके शीघ्रताके सहित भीमसेनके संमुख उपस्थित हुए ॥ तुम्हारे पुत्रलोग कर्णको क्रुद्ध हुए देखकर भीमसेनको मानो अग्निके कराल मुखमें पडे हुएके समान ही बोध करने लगे ॥ हे नरनाथ! जब राधापुत्र कर्ण भयङ्कर

अभ्यद्रवत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ॥ ७ ॥
पुनरेव तयो राजन्घोर आसीत्समागमः ।
वैकर्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ८ ॥
संरब्धौ हि महाबाहू परस्परवधैषिणौ ।
अन्योन्यमीक्षाञ्चक्राते दहन्ताविव लोचनैः ॥ ९ ॥
क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
शूरावन्योन्यमासाद्य ततक्षतुररिन्दमौ ॥ १० ॥
व्याघ्राविव सुसंरब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ ।
शरभाविव संक्रुद्धौ युयुधाते परस्परम् ॥ ११ ॥
ततो भीमः स्मरन्क्लेशानक्षद्यूते वनेऽपि च ।
विराटनगरे चैव दुःखं प्राप्तमरिन्दमः ॥ १२ ॥
राष्ट्राणां स्फीतरत्नानां हरणं च तवाऽऽत्मजैः ।
सततं च परिक्लेशान्सपुत्रेण त्वया कृतान् ॥ १३ ॥
दग्धुमैच्छश्च यः कुन्तीं सपुत्रां त्वमनागसम् ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः ॥ १४ ॥
केशपक्षग्रहं चैव दुःशासनकृतं तथा ।

धनुष टङ्कार और तलत्राणके शब्दके सहित भीमसेनके रथके समीप उपस्थित हुए तब फिर भीमसेन और कर्णका महा घोर संग्राम होने लगा ॥ (५-८)

वे दोनों ही क्रोधसे लाल नेत्र करके क्रोधी सर्पके समान सांस छोडते हुए आपसमें एक दूसरेकी ओर इसप्रकार देखने लगे मानों नेत्रसे देखकर ही एक दुसरेको भस्म कर देंगे ॥ उन दोनों शत्रु नाशन वीरोंने युद्धभूमिमें अपने वाणोंकी वर्षासे एक दूसरेको क्षत विक्षत कर दिया ॥ वे दोनों शीघ्रतासे गमन करनेमें बाजपक्षी और क्रोधमें व्याघ्र और शरभके समान क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगे ॥ (९-११)

हे शत्रुनाशन महाराज ! भीमसेनने जूएके खेल वनवास और विराट नगरमें छिपकर निवास करनेमें जो कुछ क्लेश पाया था, और तुम्हारे पुत्रोंने जो उनका विशाल राज्य हर लिया था, तुमने जो अपने पुत्रोंके सहित उन लोगोंको नाना प्रकारके दुःख दिये थे, विशेष करके तुमने जो निरपराधिनी कुन्तिको पुत्रोंके सहित भस्म करनेकी इच्छा करी थी, सभामें जो तुम्हारे पुत्रोंने द्रौपदीकी अनेक प्रकार अवज्ञा करी और दुःशासन

परुषाणि च वाक्यानि कर्णेनोक्तानि भारत ॥ १५ ॥
पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव ।
पतिता नरके पार्थाः सर्वे षण्ढतिलोपमाः ॥ १६ ॥
समक्षं तव कौरव्य यदूचुः कौरवास्तदा ।
दासीभावेन कृष्णां च भोक्तुकामाः सुतास्तव ॥ १७ ॥
यच्चापि तान्प्रव्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः ।
परुषाण्युक्तवान्कर्णः सभायां सन्निधौ तव ॥ १८ ॥
तृणीकृत्य यथा पार्थांस्तव पुत्रो ववल्ग ह ।
विषमस्थान्समस्थो हि संरब्धो गतचेतनः ॥ १९ ॥
बाल्यात्प्रभृति चाऽरिघ्नः स्वानि दुःखानि चिन्तयन् ।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन वृकोदरः ॥ २० ॥
ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् ।
चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥ २१ ॥
स सायकमयैर्जालैर्भीमः कर्णरथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत्प्रभाम् २२॥
ततः प्रहस्याऽधिरथिस्तूर्णमस्य शिलाशितैः ।

ने द्रौपदीके केशग्रहण किये थे; कर्णने कहा था, कि हे द्रौपदी ! " तुम्हारे पति अब जीवित नहीं हैं, षण्ढतिलके समान इस समय कुन्तीके पुत्र नरकमें पतित हुए हैं, इससे तुम और किसीको अपना पति बना लो ॥ " और तुम्हारे पुत्रोंने जो दासी भावसे द्रौपदीको भोग करने वास्ते तुम्हारे संमुख ही इच्छा करी थीं; पाण्डव लोग जिस समय काले हरिनके चमडे पहरके वनको जाने लगे; उस समय कर्णने तुम्हारे संमुखमें ही सभाके बीच उन लोगोंको जो सब कठोर वचन कहे थे; तुम्हारे पुत्रोंने जो उस समय अज्ञानताके कारणसे पाण्डवोंकी अवमानना करके अभिमानमें फूल कर नृत्य करने लगे थे, तथा पाण्डवलोग बालक अवस्थासे तुम्हारे कारण जो कुछ क्लेश पाये थे धर्मात्मा भरतर्षभ भीमसेन उन सम्पूर्ण दुखोंको स्मरण करके अपने प्राणकी आशा त्याग सुवर्ण चित्रित महाधनुष चढाकर महारथ कर्णकी ओर दौडे ॥ (१२–२१)

भीमसेनने सूतपुत्र कर्णके रथ पर इस प्रकार अपने अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा की, कि उनके शिला पर घिसे हुए प्रकाशमान बाणोंसे कर्णका रथ छिप गया और

व्यधमद्भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥ २३ ॥
महारथो महाबाहुर्महाबाणैर्महाबलः ।
विव्याधाऽऽधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैस्तदा ॥ २४ ॥
स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः ।
अभ्यधावदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २५ ॥
तमापतन्तं वेगेन रभसं पाण्डवर्षभम् ।
कर्णः प्रत्युद्ययौ युद्धे मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २६ ॥
ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतसमस्वनम् ।
अक्षुभ्यत बलं हर्षादुद्धूत इव सागरः ॥ २७ ॥
तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा नागाश्वरथपत्तिमत् ।
भीमः कर्णं समासाद्य च्छादयामास सायकैः ॥ २८ ॥
अश्वानृक्षसवर्णांश्च हंसवर्णैर्हयोत्तमैः ।
व्यामिश्रयद्रणे कर्णः पाण्डवं छादयञ्छरैः ॥ २९ ॥
ऋक्षवर्णान्हयान्कर्कैर्मिश्रान्मारुतरंहसः ।
निरीक्ष्य तव पुत्राणां हाहाकृतमभूद्बलम् ॥ ३० ॥

वहां पर सूर्यका प्रकाश मन्द होगया ॥ महाराज ! महाबाहु अधिरथ पुत्र कर्ण बलशाली पुरुषोंके बीच महा बलवान् पराक्रमी अत्यन्त वेगशील और रथियों के बीच महारथी कहके विख्यात हैं, उन्होंने भीमके चलाये हुए उन सम्पूर्ण बाणोंको शीघ्र ही अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटके गिरा दिया; और भीमको नौ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ (२२-२४)

भीमसेनने कर्णके तीक्ष्ण बाणोंसे निवारित होकर मानो अंकुशसे पीडित मतवारे हाथी तुल्य क्रुद्ध होकर कर्णकी ओर दौडे ॥ पाण्डुपुत्र भीमको अत्यन्त वेगके सहित अपनी ओर आते देख; कर्ण इस प्रकार वेगपूर्वक उनकी ओर दौडे, जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीकी ओर दौडता है ॥ अनन्तर कर्णने सौ नगारोंके समान शब्द वाले अपने शंखको बजाकर उछलित समुद्रके समान अपनी सेनाको हर्षित किया॥ भीमसेनने हाथी घोडे और पैदल सेनाके योद्धाओंको हर्षित देख बाणोंकी वर्षासे कर्णको छिपा दिया ॥ (२५-२८)

कर्णने भीमसेनको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपाकर उनके भालू वर्णवाले घोडोंको निज हंसवर्णके घोडोंसे मिला दिया ॥ महाराज ! उन हंस वर्णवाले घोडोंके सङ्ग वायुके समान वेगशील

ते हया बहुशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
सितासिता महाराज यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥ ३१ ॥
संरब्धौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ ।
सन्त्रस्ताः समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः ॥ ३२ ॥
यमराष्ट्रोपमं घोरमासीदायोधनं तयोः ।
दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा ॥ ३३ ॥
समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा महारथाः ।
नाऽलक्षयञ्जयं व्यक्तमेकस्यैव महारणे ॥ ३४ ॥
तयोः प्रैक्षन्त संमर्दं सन्निकृष्टं महास्त्रयोः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्सपुत्रस्य विशांपते ॥ ३५ ॥
छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः शितैः ।
शरजालावृतं व्योम चक्रातेऽद्भुतविक्रमौ ॥ ३६ ॥
तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ॥ ३७ ॥

भालूवर्णवाले घोड़ोंका मिलन देखकर तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाके बीच अत्यन्त ही हाहाकार शब्द होने लगा॥ परन्तु वे हंसवर्ण और भालूवर्णवाले वायुके समान वेगवाले घोड़े आपस में मिलकर इस प्रकार शोभित हुए, जैसे आकाश में बादल शोभित होते हैं ॥ (२९–३१)

महाराज ! क्रोधसे लालनेत्र किये हुए कर्ण और भीमसेनको अत्यन्त क्रुद्ध हुए देख तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा भी भयसे कांपने लगे॥ परन्तु उन दोनों का संग्राम यमपुरीके समान भयंकर और स्मशान भूमिके समान महाघोर दीख पडने लगा ॥ महारथियोंकी मण्डलीने उन पुरुषसिंहोंके अद्भुत संग्रामको देख कर उन दोनोंमेंसे किसकी विजय होगी उसका निश्चय न कर सकी॥ ३२–३४

हे पृथ्वीनाथ ! वे सम्पूर्ण महारथी तुम्हारी अनीतिसे उन महाअस्त्र चलाने वाले दोनों पुरुषसिंहोंके भयंकर संग्रामको देखने लगे ॥ वे दोनों अद्भुत पराक्रमी शत्रुनाशन कर्ण और भीमसेन आपसमें एक दूसरेको अपने बाणों के जालसे छिपाते हुए आकाशमण्डलको भरने लगे ॥ वे दोनों ही महारथी थे इनसे आपस में एक दूसरेके वधकी इच्छासे अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करते हुए इस प्रकार दिखाई देने लगे, जैसे जल-की वर्षा करने वाले दो बादल आकाशमें दीख पडते हैं ॥ (३५—३७)

सुवर्णविकृतान्बाणान्विमुञ्चन्तावरिन्दमौ ।
भास्वरं व्योम चक्राते महोल्काभिरिव प्रभो ॥ ३८ ॥
ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्गार्ध्रपत्राश्चकाशिरे ।
श्रेण्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाऽम्बरे ॥ ३९ ॥
संसक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिन्दमम् ।
अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनञ्जयौ ॥ ४० ॥
तत्राऽऽधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दृढं हताः ।
इषुपातमतिक्रम्य पेतुरश्वनरद्विपाः ॥ ४१ ॥
पतद्भिः पतितैश्चाऽन्यैर्गतासुभिरनेकशः ।
कृतो राजन्महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥ ४२ ॥
मनुष्याश्वगजानां च शरीरैर्गतजीवितैः ।
क्षणेन भूमिः सञ्जज्ञे संवृता भरतर्षभ ॥ ४३ ॥ [५४४९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३२॥

धृतराष्ट्र उवाच- अत्यद्भुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम् ।
यत्कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥ १ ॥

हे राजेन्द्र ! उन दोनों शत्रुनाशन वीरोंने लुकके समान अपने प्रकाशमान् बाणोंको चलाकर आकाशको प्रकाशमय कर दिया ॥ उन दोनोंके धनुषसे छूटे हुए बाण आकाशमें इस प्रकार श्रेणी बद्ध दिखाई देने लगे, जैसे शरत् ऋतुमें सारसोंकी पांति आकाशमें दीख पडती है ॥ (३८-३९)

महाराज ! कृष्ण-अर्जुनने भीमसेनको आधिरथपुत्र कर्णके सङ्ग युद्ध करते हुए देख उनके ऊपर अत्यन्त कठिन भार समझने लगे ॥ परन्तु घोडे सारथी और मनुष्य कर्ण तथा भीमसेनके छूटे हुए बाणोंसे इधर उधर मरके गिरने लगे ॥ कितने ही सेनाके पुरुष हाथियोंके मरकर गिरनेसे उनके धक्केमें गिरके मर गये, कितने ही दूसरी भांतिसे नष्ट हुए; इसी प्रकार तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाके योद्धाओंका नाश होने लगा ॥ मनुष्य घोडे और हाथियों के मृत शरीरसे रणभूमि मुहूर्त भरके बीच में परिपूरित होगई ॥ (४०—४३) [५४४९]

द्रोणपर्वमें एकसौ बत्तीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ तेंतीस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! भीमसेनके पराक्रमको मैं आश्चर्यमय समझता हूं; क्योंकि उसने अत्यन्त पराक्रमी कर्णके सङ्ग युद्ध किया ॥

त्रिदशानपि वा युक्तान्सर्वशस्त्रधरान्युधि ।
वारयेद्यो रणे कर्णः सयक्षासुरमानुषान् ॥ २ ॥
स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया ।
नाऽतरत्संयुगे पार्थं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ३ ॥
कथं च युद्धं सम्भूतं तयोः प्राणदुरोदरे ।
अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाऽजय एव च ॥ ४ ॥
कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रः सुयोधनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान्सगोविन्दान्ससात्वतान् ॥ ५ ॥
श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णमसकृद्भीमकर्मणा ।
भीमसेनेन समरे मोह आविशतीव माम् ॥ ६ ॥
विनष्टान्कौरवान्मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः ।
नहि कर्णो महेष्वासान्पार्थाञ्जेष्यति सञ्जय ॥ ७ ॥
कृतवान्यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह ।
सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणाजिरे ॥ ८ ॥
अजेयाः पाण्डवास्तात देवैरपि स वासवैः ।
न च तद्बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९ ॥

शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण युद्धके वास्ते तैयार हुए यक्ष असुर और मनुष्योंके सहित सम्पूर्ण देवतोंको भी युद्धभूमिमें निवारण कर सकते हैं ॥ तब वह किस कारणसे तेजस्वी पाण्डुपुत्रके समीप युद्धमें कृतकार्य न होसके ? (१-३)

हे तात ! मैं इस प्राणपण युद्ध क्रीडामें जय और पराजय उन दोनोंके अधिकारमें ही बोधकर रहा हूं, जो हो फिर उन दोनोंका जैसा संग्राम हुआ; वह वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ हे सूत ! मेरा पुत्र दुर्योधन कर्णको पाकर ही युद्धभूमिमें कृष्णसात्यकीके सहित कुन्तीपुत्रोंके पराजित करनेका उत्साह किया करता था; परन्तु भयङ्कर कर्म करनेवाले भीमसेनके समीप कर्णके बार बार पराजित होनेका वृत्तान्त सुन कर मैं मोहित हो रहा हूं; और अपने पुत्रोंकी दुष्टनीतिसे सम्पूर्ण कौरवोंको ही मरे हुए समझ रहा हूं, क्योंकि कर्ण कभी महाधनुर्द्धर कुन्तीपुत्रोंको पराजित नहीं कर सकेंगे ॥ कर्णने पाण्डवोंके सङ्ग जितनी वार युद्ध किया है, उतनी वार पाण्डवोंके संमुखसे पराजित हुए हैं ॥ (४-८)

हे तात ! मनुष्योंकी बात तो दूर है पाण्डव लोग इन्द्रके सहित सम्पूर्ण

धनं धनेश्वरस्येव हृत्वा पार्थस्य मे सुतः ।
मधुप्रेप्सुरिवाऽबुद्धिः प्रपातं नाऽवबुध्यते ॥ १० ॥
निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम् ।
जितमित्येव मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥ ११ ॥
पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाऽप्यकृतात्मना ।
धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः ॥ १२ ॥
शमकामः ससोदर्यो दीर्घप्रेक्षी युधिष्ठिरः ।
अशक्त इति मत्वा तु मम पुत्रैर्निराकृतः ॥ १३ ॥
तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च सर्वशः ।
हृदि कृत्वा महाबाहुर्भीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥ १४ ॥
तस्मान्मे सञ्जय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे ।
अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ ॥ १५ ॥
सञ्जय उवाच— शृणु राजन्यथा वृत्तं संग्रामं कर्णभीमयोः ।
परस्परवधप्रेप्स्वोर्वनकुञ्जरयोरिव ॥ १६ ॥

देवताओं से भी अजेय हैं, परन्तु इस बातको मेरा मूर्ख पुत्र दुर्योधन नहीं जानता है ॥ जैसे मधुका लोभी मूर्ख पुरुष पहाड पर चढके अपने गिरनेका विषय मालूम नहीं कर सकता वैसे ही मेरे पुत्र कुबेरके समान कुन्तीके पुत्रोंके धन सम्पत्तिको हरण करके मूर्खताके कारण अपनी मृत्युका विषय नहीं समझ सकते हैं ॥ वह छली दुर्योधन शठतासे महात्मा पाण्डवोंका राज्य हरण कर उन्हें पराजित समझके उनका अनादर किया करता है। मैंने भी पुत्र स्नेहके वशमें होकर धर्मात्मा पाण्डुपुत्रोंको उनके ऐश्वर्यसे वञ्चित किया है ॥ (९-१२)

दीर्घदर्शी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने अपने भाईयोंके सहित शान्तिकी इच्छा की थी, परन्तु मेरे पुत्रोंने उन्हें असमर्थ समझके उनका तिरस्कार किया है ॥ सञ्जय ! मुझे बोध होता है महाबाहु भीमसेन दुर्योधनके दिये हुए नाना प्रकारके क्लेश और उसकी सम्पूर्ण ठगहारी स्मरण करके सूतपुत्र कर्णके सङ्ग युद्ध करता होगा ॥ जो हो योद्धाओंमें श्रेष्ठ उन दोनों पुरुषसिंह कर्ण और भीमने एक दूसरेके वधकी इच्छासे जिस प्रकार युद्ध किया, वह वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ (१३—१५)

सञ्जय बोले, महाराज ! कर्ण और भीमसेनका एक दूसरेके वधकी इच्छासे जो दो मतवारे हाथियोंके समान महा-

राजन्वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिन्दमम् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ १७ ॥
महावेगैः प्रसन्नाग्रैः शातकुम्भपरिष्कृतैः ।
अहनद्भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्तनः शरैः ॥ १८ ॥
तस्याऽस्यतो धनुर्भीमश्चकर्त निशितैस्त्रिभिः ।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनाऽपातयत्क्षितौ ॥ १९ ॥
स कांक्षन्भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो भृशम् ।
शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां परामृशत् ॥ २० ॥
प्रगृह्य च महाशक्तिं कालशक्तिमिवाऽपराम् ।
समुत्क्षिप्य च राधेयः सन्धाय च महाबलः ॥ २१ ॥
चिक्षेप भीमसेनाय जीवितान्तकरीमिव ।
शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरन्दर इवाऽशनिम् ॥ २२ ॥
ननाद सुमहानादं बलवान्सूतनन्दनः ।
तं च नादं ततः श्रुत्वा पुत्रास्ते हर्षिताऽभवन् ॥२३ ॥
तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् ।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः ॥ २४ ॥
छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसन्निभाम् ।

घोर संग्राम हुआ था, उसे तुम चित्त लगा कर सुनो ॥ पराक्रमी कर्णने क्रुद्ध होकर शत्रुनाशन क्रोधी पराक्रम करने वाले भीमसेनको तीस बाणोंसे विद्ध किया ॥ कर्णके धनुषसे छूटे हुए वे सम्पूर्ण बाण अत्यन्त वेगवान और उसके अग्रभाग अत्यन्त चोखे थे; परन्तु भीमसेनने बाण चलानेके समय कर्णका धनुष काट दिया और एक भल्लसे उनके सारथी-का वध करके रथसे पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (१६—१९)

अनन्तर महाबलवान् राधापुत्र कर्णने भीमसेनके वधकी इच्छा करके एक महा भयङ्कर दूसरी कालकी शक्तिके समान दीखनेवाली जीवितका नाश करनेवाली कनक वैदूर्य चित्रित एक शक्ति ग्रहण कर भीमसेनकी ओर चला कर सिंहनाद किया; तुम्हारे पुत्र कर्णके सिंहनादको सुन कर आनन्दित हुए ॥ (२०—२३)

भीमसेनने कर्णके हाथसे छूटी हुई सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान उस शक्तिको सात बाणोंसे काटके गिरा दिया ॥ वह उस समय केंचुलीसे रहित सर्पके समान भयङ्करी उस शक्तिको

मार्गमाण इव प्राणान्सूतपुत्रस्य मारिष ॥ २५ ॥
प्राहिणोत्कृतसंरम्भः शरान्बर्हिणवाससः ।
स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाधौतान्यमदण्डोपमान्मृधे ॥ २६ ॥
कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
विकृष्य तन्महच्चापं व्यसृजत्सायकांस्तदा ॥ २७ ॥
तान्पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः ।
वसुषेणेन निर्मुक्तान्नव राजन्महाशरान् ॥ २८ ॥
छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवाऽनदत् ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ॥ २९ ॥
शार्दूलाविव चाऽन्योन्यमामिषार्थेऽभ्यगर्जताम् ।
अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्याऽन्तरैषिणौ ॥ ३० ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ ।
महागजाविवाऽऽसाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥ ३१ ॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
निर्दहन्तौ महाराज शस्त्रवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३२ ॥

काट कर कर्णके नाश करनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक सुवर्ण चित्रित मोरपंखवाले शिलापर घिसे हुए यमदण्डके समान अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ (२४—२६)

महाधनुर्द्धर कर्ण दूसरा धनुष ग्रहण करके भीमसेनके ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ पाण्डुपुत्र भीमसेनने कर्णके चलाये हुए तीक्ष्ण बाणोंको सुवर्णभूषित नौ बाणोंसे काटके गिरा दिया॥ महाराज ! वह कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंको अपने बाणोंसे काटकर सिंहकी भांति गर्जने लगे । २७—२९

जैसे ऋतुमती गौके वास्ते दो वृषभ और मांसके वास्ते दो शार्दूल गर्जते हैं वैसे ही वे दोनों पुरुष युद्धभूमिमें गर्जने लगे । जैसे गौओंके समूहमें दो वृषभ आपसमें प्रहार करनेकी इच्छासे एक दूसरेकी ओर देखते हैं वैसे ही दूसरेके छिद्रको अवलोकन करनेकी इच्छासे एक दूसरेकी ओर देखने लगे। और जैसे दो मतवारे हाथी आपसमें दूसरेको दांतोंके अग्रभागसे पीडित करते हैं, वैसे ही वे दोनों कानपर्यन्त धनुष खींचकर बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे । महाराज ! वे दोनों क्रोधसे नेत्र लाल करके अपने बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेको पीडित करने लगे ।

अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद्विवृतलोचनौ ।
प्रहसन्तौ तथाऽन्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥
शङ्खशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम् ।
तस्य भीमः पुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ॥ ३४ ॥
शङ्खवर्णांश्च तानश्वान्बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ।
सारथिं च तथाऽप्यस्य रथनीडादपातयत् ॥ ३५ ॥
ततो वैकर्तनः कर्णश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् ।
स च्छाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ३६ ॥
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाऽभ्यपद्यत ।
तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ॥ ३७ ॥
वेपमान इव क्रोधाद्व्यादिदेशाऽथ दुर्जयम् ।
गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः ॥ ३८ ॥
जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् ।
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवाऽऽत्मजः ॥ ३९ ॥
अभ्यद्रवद्भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ्छरैः ।
स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरार्पयत् ॥ ४० ॥

उस समय वे दोनों कभी ऊंचे स्वरसे हंसते कभी एक दूसरेकी निन्दा करते और बार बार शंख बजाते हुए युद्ध करने लगे ॥ (२९-३४)

महाराज ! भीमसेनने फिर सूतपुत्र कर्णके धनुषकी मूठ काट दिया और फिर उनके शंख वर्ण सफेद घोडोंको अपने बाणोंसे पीडित करके यमपुरीमें भेज दिया । तथा उसके सारथीको भी मार कर रथ परसे गिराया ॥ विकर्तन पुत्र कर्ण सारथी और घोडोंके मारे जानेसे बडी चिन्तासे आकुल हुआ और भीमसेनकी बाणोंकी वर्षासे छिपे जानेसे मोहित होकर रणभूमिमें स्वकर्तव्यको भी भूल गया ॥ (३४-३७)

तब राजा दुर्योधन कर्ण को इस प्रकार आपद्ग्रस्त देखकर क्रोधसे कम्पित होकर दुर्जयसे बोले, हे दुर्जय ! शीघ्र ही गमन करो, यह देखो संमुखमें पाण्डुपुत्र भीम कर्णके नाश करनेकी इच्छा करता है, इससे तुम कर्णके सहायक होकर उस थोडी मूछवाले भीमसेनका संहार करो । तुम्हारे पुत्र दुर्जय बडे भाईकी आज्ञा मान अपने बाणोंको चलाते हुए कर्णके सङ्ग युद्ध करनेवाले भीमसेनकी ओर दौडे । उन्होंने

षड्भिः सूतं त्रिभिः केतुं पुनस्तं चापि सप्तभिः ।
भीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ॥ ४१ ॥
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद्यमसादनम् ।
स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम् ॥ ४२ ॥
रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।
स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्यन्तवैरिणम् ॥ ४३ ॥
समाचिनोद्बाणगणैः शतघ्नीभिश्च शंकुभिः ।
तथाऽप्यतिरथः कर्णो भिद्यमानोऽस्य सायकैः॥ ४४ ॥
न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परन्तपः ॥ ४५ ॥ [५४९४]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णभीमयुद्धे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३॥

सञ्जय उवाच— सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः ।
रथमन्यं समास्थाय पुनर्विव्याध पाण्डवम् ॥ १ ॥
महागजाविवाऽऽसाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २ ॥

नौ बाणोंसे भीमसेन आठ बाणोंसे उनके रथके घोडे, छः बाणोंसे सारथी और तीन बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा विद्ध करके फिर सात बाणोंसे भीमसेन को प्रहार किया । (३७-४१)

अनन्तर भीमसेनने शीघ्रताके सहित अपने बाणोंसे दुर्जयको सारथीके सहित मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया । कर्णने सुन्दर आभूषणोंसे शोभित तुम्हारे पुत्रको चेष्टा युक्त सर्पके समान पृथ्वीमें गिरते देख रुदन करते हुए उनकी प्रदक्षिण करी, परन्तु भीमसेन पहिलेसेही अत्यन्त वैर करने वाले कर्णको रथरहित करके हंसकर उन्हें अपने बाण शतघ्नी और शंकुओंसे विद्ध करने लगे । महाराज ! अतिरथी कर्ण युद्धभूमिमें भीमसेनके बाणोंसे इस प्रकार विद्ध होकर भी उस क्रोधमूर्त्तिवाले भीमसेनके संमुखसे न हटे ॥ (४० —४५) [५४९४]

द्रोणपर्वमें एकसौ तैंतीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ चौंतीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे महाराज ! कर्ण भीमसेनके अस्त्रोंसे रथरहित और पराजित होकर फिर दूसरे रथपर चढकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए और भीमसेनको विद्ध करने लगे ॥ जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीके समीप जाकर अपने दांतसे उसके शरीरमें प्रहार करता है, वैसे ही वे दोनों रणभूमिमें घूमते हुए एक दूसरेके ऊपर

अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमसेनं समार्पयत् ।
ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥ ३ ॥
तं भीमो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४ ॥
कर्णं तु नवभिर्भीमो भित्त्वा राजंस्तनान्तरे ।
ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह ॥ ५ ॥
सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत ।
तोत्त्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥ ६ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सृक्किणी लेलिहन्वीरः क्रोधरक्तान्तलोचनः ॥ ७ ॥
ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाऽशनिम् ॥ ८ ॥
स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः ।
अगच्छद्दारयन्भूमिं चित्रपुङ्खः शिलीमुखः ॥ ९ ॥
ततो भीमो महाबाहुः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
वज्रकल्पां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ॥ १० ॥

अपने बाणोंको चलाने लगे ॥ अनन्तर कर्णने भीमसेनको अपने बाणोंसे पीडित करके बलपूर्वक सिंहनाद किया और फिर उनके वक्षस्थलमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार किया ॥ (१–३)

भीमसेनने भी दश बाणोंसे कर्णके हृदयमें प्रहार करके फिर उन्हें सत्तर बाणोंसे विद्ध किया; पीछे भीमसेनने नव बाणोंसे कर्णके वक्षस्थलमें प्रहार करके एक तीक्ष्ण बाणसे उनकी ध्वजाको विद्ध किया ॥ तिसके अनन्तर भीमसेन ने तिरसठ बाणोंसे कर्णको इस प्रकार विद्ध किया जैसे अंकुश देकर हाथीको उत्तेजित करते हैं ॥ (४–६)

महावीर कर्ण यशस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर क्रोधसे नेत्र लालकर ओंठ काटते हुए भीमसेनकी ओर दौडके जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके ऊपर वज्र चलाया था, वैसे ही सम्पूर्ण शरीरको विदारनेमें समर्थ एक भयङ्कर बाण ग्रहण करके उनकी ओर चलाया॥ कर्णके धनुषसे छूटा हुआ वह भयंकर बाण भीमसेनके शरीरको भेद कर पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए पृथ्वीमें घुस गया ॥ (७–९)

तिसके अनन्तर महाबाहु भीमसेनने

प्राहिणोत्सूतपुत्राय षडस्रामविचारयन् ।
तया जघानाऽऽधिरथेः सदश्वान्साधुवाहिनः ॥ ११ ॥
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवाऽसुरान् ।
ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ ॥ १२ ॥
ध्वजमाधिरथेश्छित्वा सूतमभ्यहनच्छरैः ।
हताश्वसूतमुत्सृज्य स रथं पतितध्वजम् ॥ १३ ॥
विस्फारयन्धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ॥ १४ ॥
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद्रिपुम् ।
विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाऽऽधिरथिमाहवे ॥ १५ ॥
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम् ।
एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः ॥ १६ ॥
तं रथेन नरश्रेष्ठं सम्पादय महारथम् ।
ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः ॥ १७ ॥
त्वरमाणोऽभ्ययात्कर्णं भीमं चाऽऽवारयच्छरैः ।

क्रोधसे नेत्र लाल कर चार हाथके परिणामवाली लोहमय छःशिर सुवर्णभूषित एक भयंकरी गदा उठा कर कुछ भी विचार न करके कर्णके रथ पर चलायी॥ जैसे इन्द्रने क्रुद्ध होकर वज्रसे असुरोंका नाश किया था वैसेही भीमसेनने सूतपुत्र कर्णके रथमें जुते उत्तम घोडोंको गदाके प्रहारसे मार डाला । (१०-१२)

तिसके अनन्तर दो तेज अस्त्रोंसे राधापुत्र कर्णके रथकी ध्वजा काट कर अनेक बाणोंसे सारथीका वध किया ॥ कर्ण खिन्न होकर घोडे सारथी और ध्वजासे रहित उस रथको त्यागके पृथ्वी पर स्थित हुए । परन्तु उस स्थल पर हम लोगोंने पराक्रमी कर्णका अद्भुत पराक्रम देखा कि रथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण रथरहित होकर भी भीमसेनको निवारण करने लगे । (१२—१५)

अनन्तर राजा दुर्योधन रथिश्रेष्ठ कर्णको रथरहित देखकर अपने भाई दुर्मुखसे बोले, हे दुर्मुख ! देखो महारथी कर्ण भीमके अस्त्रोंसे रथ रहित हुए हैं; इससे तुम महारथी कर्णको शीघ्र ही रथपर चढाओ। दुर्मुख दुर्योधनके वचन को सुन कर शीघ्रताके सहित रथ लेकर कर्णके समीप उपस्थित हुए और भीमसेनको भी अपने बाणोंसे निवारण करने लगे । (१५-१८)

दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् ॥ १८ ॥
वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत्सृक्किणी परिसंलिहन् ।
ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ॥ १९ ॥
दुर्मुखाय रथं तूर्णं प्रेषयामास पाण्डवः ।
तस्मिन्क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
सुमुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
ततस्तमेवाऽऽधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते ॥ २१ ॥
आस्थितः प्रबभौ राजन्दीप्यमान इवांऽशुमान् ।
शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम् ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाऽभ्यवर्तत ।
तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम् ॥ २३ ॥
दीर्घमुष्णं श्वसन्वीरो न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ।
तस्मिंस्तु विवरे राजन्नाराचान्गार्ध्रवाससः ॥ २४ ॥
प्राहिणोत्सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा स्वर्णचित्रं महौजसः ॥ २५ ॥
हेमपुङ्खा महाराज व्यशोभन्त दिशो दश ।
अपिबन्सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः ॥ २६ ॥
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचोदिताः ।

वायुपुत्र भीमसेन युद्धभूमिमें दुर्मुख को कर्णका अनुगामी होते देख निर्भय चित्तसे कर्णको निवारण करके अपना रथ बढा कर दुर्मुखके सम्मुख उपस्थित हुए, और उसही समय नौ सन्नत पर्व वाणोंसे प्रहार करके दुर्मुखको यमलोकमें भेज दिया। (१८-२१)

दुर्मुखके मरने पर कर्ण उसही रथपर चढके प्रकाशमान सूर्यकी भांति शोभित होने लगे, परन्तु वह भीमसेनके वाणोंसे दुर्मुखको मरके पृथ्वीमें शयन करते देख आंखोंमें आंसू भरके मुहूर्त भर चिन्तित रहे। अनन्तर पराक्रमी कर्णने दुर्मुखके मृत शरीरके समीप जाकर उनकी प्रदक्षिणा कियी; उस समय उन्होंने किसी से कुछ वचन नहीं कहा, केवल लम्बी और गर्म सांस छोडने लगे। (२१-२४)

महाराज! भीमसेनने अच्छा अवसर पाकर कर्णकी ओर चौदह वाण चलाये। भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए वे चौदह वाण कर्णके सुवर्ण चित्रित वर्म और शरीरको भेद रुधिर पीते हुए पृथ्वीमें

प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः ॥ २७ ॥
अर्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः ।
तं प्रत्याविध्यद्राधेयो जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २८ ॥
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् ।
ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ २९ ॥
प्राविशन्मेदिनीं भीमाः क्रौञ्चं पत्ररथा इव ।
ते व्यरोचन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुन्धराम् ॥ ३० ॥
गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवांऽशवः ।
स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३१ ॥
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा ।
स भीमस्त्रिभिरायत्तः सूतपुत्रं पतत्त्रिभिः ॥ ३२ ॥
सुपर्णवेगैर्विव्याध सारथिं चाऽस्य सप्तभिः ।
स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः ॥ ३३ ॥
प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महाभयात् ।
भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम् ॥ ३४ ॥

प्रविष्ट हुए ऐसे दीखने लगे जैसे काल प्रेरित बिलमें अर्ध प्रविष्ट क्रोधी घडे सर्प दीखते हैं। (२४—२८)

राधापुत्र कर्णने कुछ भी विचार न कर सुवर्ण चित्रित अत्यन्त भयङ्कर चौदह बाणोंसे भीमसेनको विद्ध किया; वे सब महा भयङ्कर बाण भीमसेनके बांये हाथको भेद कर इस प्रकार पृथ्वीमें घुस गये जैसे पक्षी क्रौञ्च पर्वतमें प्रवेश करते हैं। महाराज! जैसे सूर्यके अस्ताचल पर्वत पर गमन करनेके समय उनकी किरण प्रकाशित होती हैं वैसे ही कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाण पृथ्वी में प्रवेश करनेके समय शोभित होने लगे। (२८—३१)

जैसे पर्वतसे जल बहता है, वैसे ही कर्णके मर्मभेदी बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर भीमसेन के शरीरसे रुधिर बहने लगा॥ तिस के अनन्तर भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर गरुडके समान वेगशील तीन बाणोंसे कर्णको और सात बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध किया। महाराज! महा यशस्वी कर्ण भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर विह्वल होगये और युद्ध त्यागके वेगगामी घोडोंसे युक्त रथपर चढ कर वहांसे पृथक् हुए; परन्तु अतिरथी भीमसेन सुवर्ण खचित अपना धनुष फेरते हुए जलती हुई अग्नि

आहवेऽतिरथोऽतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ३५ ॥ [५५२९]

इति श्रीमहाभारते०द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णापयाने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ।
यत्राऽऽधिरथिरायत्तो नाऽतरत्पाण्डवं रणे ॥ १ ॥
कर्णः पार्थान्सगोविन्दाञ्जेतुमुत्सहते रणे ।
न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कञ्चन ॥ २ ॥
इति दुर्योधनस्याऽहमश्रौषं जल्पतो मुहुः ।
कर्णो हि बलवाञ्छूरो दृढधन्वा जितक्लमः ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ।
वसुषेणसहायं मां नाऽलं देवाऽपि संयुगे ॥ ४ ॥
किं नु पाण्डुसुता राजन्गतसत्त्वा विचेतसः ।
तत्र तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम् ॥ ५ ॥
युद्धात्कर्णमपक्रान्तं किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम् ॥ ६ ॥
प्रावेशयद्धुतवहं पतङ्गमिव मोहितः ।
अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च सङ्गताः ॥ ७ ॥

समान प्रकाशित हुए ॥ (३१—३५)

द्रोणपर्वमें एकसौ चौतीस अध्याय समाप्त। ५५२९

द्रोणपर्वमें एकसौ पैंतीस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! जब अधिरथ नन्दन कर्ण भी भीमसेन को पराजित न कर सके वरन स्वयं भीम के संमुखसे पराजित हुए तब पुरुषार्थ को धिक्कार है, पुरुषार्थ अत्यन्त तुच्छ बोध होता है। दैव ही मेरे विचारमें श्रेष्ठ है॥ दुर्योधनके मुखसे मैंने सुना है कि कर्ण अकेले ही कृष्णके सहित पाण्डवोंको पराजित करनेका उत्साह कर सकते हैं, इस पृथ्वीके बीच मैं कर्णके समान योद्धा किसीको भी नहीं समझता हूं॥ उस मूढने मुझसे यह भी कहा था कि कर्ण दृढ धनुषधारी,परिश्रम रहित, पराक्रमसे युक्त और बलवान् है! हे राजन्! इससे कर्ण यदि युद्धभूमिमें मेरी सहायता करेंगे तो अल्प पराक्रमी बुद्धि-हीन पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है, देवता लोग भी मुझे पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं।(१–५)

इस समय कर्णको पराजित और विषरहित सर्पके समान भीमके संमुखसे पृथक् हुए देख दुर्योधनने क्या कहा था? हाय! अश्वत्थामा, कृपाचार्य,

न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं भीमस्य सञ्जय ।
तेऽपि चास्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम् ॥ ८ ॥
जानन्तो व्यवसायं च क्रूरं मारुततेजसः ।
किमर्थं क्रूरकर्माणं यमकालान्तकोपमम् ॥ ९ ॥
बलसंरम्भवीर्यज्ञाः कोपयिष्यन्ति संयुगे ।
कर्णस्त्वेको महाबाहुः स्वबाहुबलदर्पितम् ॥ १० ॥
भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः ।
योऽजयत्समरे कर्णं पुरन्दर इवाऽसुरम् ॥ ११ ॥
न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचिदाहवे ।
द्रोणं यः सम्प्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम्॥ १२ ॥
भीमो धनञ्जयान्वेषी कस्तमार्च्छेज्जिजीविषुः ।
को हि सञ्जय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १३ ॥
उद्यताशनिहस्तस्य महेन्द्रस्येव दानवः ।

मद्रराज शल्य और कर्ण ये सब कोई मिल करभी जिसके संमुख खडे नहीं हो सकते उस जलती हुई अग्निके समान भीमसेनके निकट पतङ्गरूपी दुर्मुखको अकेले ही मोहके वशमें होकर दुर्योधनने भेजा था ! और अश्वत्थामा, शल्य, कृप और कर्ण ये एकत्र हुए महारथी लोग भी वायुके समान तेजस्वी भीमसेनके बल क्रोध और पराक्रमके विषय में अज्ञान नहीं हैं । उन सब लोगोंने उसको निठुर स्वभाव, दशहजार हाथीके समान बल, कठोर कर्मोंको करनेवाला और साक्षात् कालके समान जानकर तथा उसके सम्मुख ठहरनेमें असमर्थ होकर भी उसे युद्धभूमिमें क्यों कोपित किया ? (५-१०)

यद्यपि महाबाहु कर्णने अपने बल पराक्रमके आसरेसे भीमसेनका अनादर करके उसके सङ्ग युद्ध किया था; परन्तु इन्द्रने जैसे असुरोंको जीत लिया था भीमने उसी भांति कर्णको पराजित किया है । कोई पुरुष भी ऐसा नहीं है जो रणभूमिमें भीमसेनको पराजित कर सके। विशेष करके उसने जब अर्जुनकी खोजके वास्ते द्रोणाचार्यकी सेना भेदकर मेरी सेनाके बीच प्रवेश किया है तब प्राणकी आशा करके कौन पुरुष उसे पीडित कर सकता है ? (१०-१३)

हे सञ्जय ! जैसे हाथमें वज्र ग्रहण करके युद्धभूमिमें खडे हुए इन्द्रके संमुख ठहरनेमें दानव लोग उत्साह नहीं कर सकते, वैसे ही गदा लेकर युद्धभूमिमें

प्रेतराजपुरं प्राप्य निवर्तेताऽपि मानवः ॥ १४ ॥
न भीमसेनं सम्प्राप्य निवर्तेत कदाचन ।
पतङ्गा इव वह्निं ते प्राविशन्नल्पचेतसः ॥ १५ ॥
ये भीमसेनं संक्रुद्धमन्वधावन्विमोहिताः ।
यत्तत्सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ॥ १६ ॥
उक्तं संरम्भिणोऽग्रेण कुरूणां शृण्वतां तदा ।
तन्नूनमभिसञ्चिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ॥ १७ ॥
दुःशासनः सह भ्रात्रा भयाद्भीमादुपारमत् ।
यश्च सञ्जय दुर्बुद्धिरब्रवीत्समितौ मुहुः ॥ १८ ॥
कर्णो दुःशासनोऽहं च जेष्यामो युधि पाण्डवान् ।
स नूनं विरथं दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ॥ १९ ॥
प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य भृशं तप्यति पुत्रकः ।
दृष्ट्वा भ्रातॄन्हतान्संख्ये भीमसेनेन दंशितान् ॥ २० ॥
आत्मापराधे सुमहन्नूनं तप्यति पुत्रकः ।

खडे हुए भीमसेनके संमुख भी कोई पुरुष नहीं ठहर सकता; वरन कोई पुरुष प्रेतोंके स्वामी यमराजके नगरमें जा कर भी जीता लौट सकता है परन्तु युद्धभूमिमें भीमसेनके संमुखसे कभी भी नहीं लौट सकता ! जो थोडी बुद्धिवाले पुरुष अज्ञानके वशमें होकर क्रोधी भीमसेनके सम्मुख युद्धके निमित्त उपस्थित होते हैं वे मानों जलती हुई अग्निमें प्रवेश करनेवाले पतङ्गकी भांति भीमसेन रूपी अग्निमें प्रवेश करते हैं । (१३–१६)

पहिले क्रोधी और कठोर स्वभाववाले भीमसेनने जूएके खेलके समय सभाके बीचमें मेरे पुत्रोंके वधके वास्ते प्रतिज्ञा किया था, उस ही की चिन्ता करके तथा कर्णको भी भीमसेनके निकटमें पराजित देख दुःशासन अवश्य ही दुर्योधनके सहित युद्धमें उत्साह रहित हुआ होगा। नीचबुद्धिवाले दुर्योधनने पहिले बार बार कहा था, कि मैं कर्ण और दुःशासन यही तीन पुरुष मिल कर युद्धभूमि में पाण्डवोंको पराजित करेंगे। परन्तु इस समय वह कर्णको रथ-भ्रष्ट और पराजित देखकर कृष्णके वचनकी विरुद्धता के वास्ते अवश्य ही दुःख करता होगा; इसमें सन्देह नहीं है । (१५—२०)

मेरे कवचधारी पुत्रोंको भीमसेनके हाथसे मरते देख अवश्य ही अपने अपराधके विषयमें दुर्योधन अत्यन्त ही

को हि जीवितमन्विच्छन्प्रतीपं पाण्डवं व्रजेत्॥ २१ ॥
भीमं भीमायुधं क्रुद्धं साक्षात्कालमिव स्थितम् ।
वडवामुखमध्यस्थो मुच्येतापि हि मानवः ॥ २२ ॥
न भीममुखसम्प्राप्तो मुच्येदिति मतिर्मम ।
न पार्था न च पञ्चाला न च केशवसात्यकी ॥ २३ ॥
जानते युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् ।
अहो मम सुतानां हि विपन्नं सूत जीवितम् ॥ २४ ॥
सञ्जय उवाच— यस्त्वं शोचसि कौरव्य वर्तमाने महाभये ।
त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥ २५ ॥
स्वयं वैरं महत्कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।
उच्यमानो न गृह्णीषे मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ॥ २६ ॥
स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् ।
तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि नरोत्तम ॥ २७ ॥

शोक कर रहा है। किसी पुरुषके जीनेकी आशा नहीं है, जो साक्षात् कालके समान युद्धभूमिमें स्थित भयङ्कर अस्त्रोंके ग्रहण करनेवाले क्रोधी भीमसेनके निकट युद्धके निमित्त गमन करेगा। मेरे विचारसे कोई कदापि वडवानलकी अग्निके बीच प्रवेश करके बच सकता है परन्तु युद्धभूमिमें भीमसेनके हाथमें पडके कभी नहीं बच सकता। केवल भीमसेन ही क्यों ? युद्धमें क्रुद्ध होनेसे सब ही पृथापुत्र पाञ्चालयोद्धा, कृष्ण, सात्यकि,—ये कोई भी अपने प्राणरक्षाकी अभिलाष नहीं करते ! हे सूत ! इससे मेरे पुत्रोंका जीवन अत्यन्त सङ्कट में पडा हुआ है। (२०–२४)

सञ्जय बोले, हे कुरुश्रेष्ठ महाराज ! इस समय इस उपस्थित महा भयके निमित्त आप शोक कर रहे हैं परन्तु निःसन्देह इन सम्पूर्ण योद्धाओंके नाश करानेके मूल आप ही हैं॥ क्योंकि उस समय आप पुत्रोंके मतमें सहमत होकर जैसे मृत्युके समीप पहुंचा हुआ पुरुष औषधी और पथ्यकी इच्छा नहीं करता वैसे ही हितैषी पुरुषोंके बार बार निवारण करने पर भी आपने किसीके वचनको न मानकर स्वयं ही इस महाघोर शत्रुताको उत्पन्न किया है॥ हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज ! तुमने स्वयं ही कालकूट विष पी लिया है वह विष तो सहजहीमें जीर्ण होनेवाला नहीं है, इससे इस समय उसका सम्पूर्ण फल आप हीभोग कीजिये॥ (२५—२७)

यत्तु कुत्सयसे योधान्युध्यमानान्महाबलान् ।
तत्र ते वर्तयिष्यामि यथा युद्धमवर्तत ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् ।
नाऽमृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पञ्च भारत ॥ २९ ॥
दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः ।
पाण्डवं चित्रसन्नाहास्तं प्रतीपमुपाद्रवन् ॥ ३० ॥
ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम् ।
दिशः शरैः समावृण्वञ्शलभानामिव व्रजैः ॥ ३१ ॥
आगच्छतस्तान्सहसा कुमारान्देवरूपिणः ।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥ ३२ ॥
तव दृष्ट्वा तु तनयान्भीमसेनपुरोगमान् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥ ३३ ॥
विसृजन्विशिखांस्तीक्ष्णान्स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
तं तु भीमोऽभ्ययात्तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तव ॥ ३४ ॥
कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः ।
अवाकिरन्भीमसेनं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३५ ॥

शूरवीर योद्धा लोग अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध कर रहे हैं तौभी आप उनकी निन्दा कर रहे हैं । जो हो जिस प्रकारसे युद्ध हुआ था वह समस्त वृत्तान्त मैं वर्णन करता हूं; आप सुनिये ॥ तुम्हारे महाधनुर्द्धारी पुत्र दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर और जयने कर्णको भीमसेनके समीपसे पराजित हुए देखकर सहन नहीं किया; बल्कि वे पांचों भाई क्रुद्ध होकर भीमसेनकी ओर दौड़े ॥ उन्होंने चारों ओरसे भीमसेनको घेर लिया और शलभ समूहकी भांति अपने बाणोंकी वर्षासे सब दिशाओंको परिपूरित कर दिया ॥ (२८-३१)

भीमसेनने उन देवतोंके समान पराक्रमी तुम्हारे पुत्रोंको सहसा आपकी ओर आते देख हंसकर उन लोगोंको निवारण किया ॥ राधापुत्र कर्ण तुम्हारे पुत्रोंको भीमसेनके सम्मुख युद्धके निमित्त स्थित देखकर वहांपर उपस्थित हुए; परन्तु भीमसेन तुम्हारे पुत्रोंसे निवारित होकर भी शिलापर घिसे हुए सोनेके पङ्खवाले बाणोंको चलाते हुए शीघ्रताके सहित कर्णकी ओर दौड़े ॥ (३२-३४)

अनन्तर वे राजपुत्र लोग कर्णको सङ्ग लेकर भीमसेनके ऊपर चारों ओर

तान्बाणैः पञ्चविंशत्या साश्वान्राजन्नरर्षभान् ।
ससूतान्भीमधनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३६ ॥
प्रापतन्स्यन्दनेभ्यस्ते सार्धं सूतैर्गतासवः ।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ॥ ३७ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
संवार्याऽऽधिरथिं बाणैर्यज्जघान तवाऽऽत्मजान् ॥ ३८ ॥
स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैः समन्ततः ।
सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३९ ॥
तं भीमसेनः संरम्भात्क्रोधसंरक्तलोचनः ।
विस्फार्य सुमहच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥ ४० ॥ [५५६९]

इति श्रीमहाभारते॰ द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनपराक्रमे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५॥

सञ्जय उवाच— तवाऽऽत्मजांस्तु पतितान्दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निर्विण्णोऽभूत्स जीवितात् ॥ १ ॥
आगस्कृतमिवाऽऽत्मानं मेने चाऽऽधिरथिस्तदा ।
यत्प्रत्यक्षं तव सुता भीमेन निहता रणे ॥ २ ॥

से अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ महाराज ! भीमसेनने भयङ्कर धनुष ग्रहण करनेवाले तुम्हारे उन पांचों पुत्रों को पच्चीस बाणोंसे घोडे सारथीके सहित यमपुरीमें भेज दिया ॥ जैसे नाना-वर्णके फूलोंसे युक्त वृक्ष वायुके वेगसे टूटकर गिरते हैं वे लोग उसी भांति भीमसेनके बाणोंसे प्राणरहित होकर सारथीके सहित रथसे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ (३५–३७)

उस स्थानमें मैंने भीमसेनका यह आश्चर्यमय पराक्रम देखा, कि उन्होंने अपने बाणोंसे कर्णको निवारण करनेके सङ्ग ही तुम्हारे पुत्रोंका वध किया ॥ सूतपुत्र कर्ण चारों ओरसे भीमसेनके बाणोंसे निवारित होकर उनकी ओर क्रोधपूर्वक देखने लगे और भीमसेन भी अभिमानके सहित क्रोधसे नेत्र लालकर अपना प्रचण्ड धनुष फेरते हुए बार बार कर्णकी ओर देखने लगे । (३८–४०)

द्रोणपर्वमें एकसौ पैंतीस अध्याय समाप्त। ५५६९

द्रोणपर्वमें एकसौ छत्तीस अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! प्रतापी कर्ण-ने तुम्हारे पुत्रोंको मरे हुए पृथ्वीपर पडे देख अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर अपने प्राणकी आशाको त्याग दिया, विशेष करके उन्होंने सम्मुखमें तुम्हारे पुत्रोंको भीमसेनके अस्त्रोंसे मरकर गिरता हुआ

*

भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशिताञ्शरान् ।
निचखान ससम्भ्रान्तः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३ ॥
स भीमं पञ्चभिर्विध्वा राधेयः प्रहसन्निव ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥
अविचिन्त्याऽथ तान्बाणान्कर्णेनाऽस्तान्वृकोदरः ।
रणे विव्याध राधेयं शतेनाऽऽनतपर्वणाम् ॥ ५ ॥
पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विध्वा मर्मसु पञ्चभिः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं परन्तपः ॥ ७ ॥
तस्य भीमो हयान्हत्वा विनिहत्य च सारथिम् ।
प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृते पुनः ॥ ८ ॥
इषुभिः कार्मुकं चाऽस्य चकर्त पुरुषर्षभः ।
तत्पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥ ९ ॥
अवारोहद्रथात्तस्मादथ कर्णो महारथः ।

देखकर अपनेको अपराधी समझा ॥१-२

उसके अनन्तर भीमसेन क्रुद्ध होकर निर्भयचित्तसे कर्णकी ओर दौडे और पूर्व वैरको स्मरण कर उन्हें तीक्ष्ण बाणों से विद्ध करने लगे ॥ कर्णने भीमसेन का तिरस्कार कर पांच बाणोंसे उन्हें विद्ध किया, फिर शिलापर घिसे हुए सत्तर बाणोंसे भीमसेनको पुनर्वार विद्ध किया; परन्तु भीमसेनने कर्णके चलाये हुए बाणोंकी कुछ भी पर्वाह न की बल्कि अपने सौ तीक्ष्ण बाणोंसे राधानन्दन कर्णको विद्ध किया ॥ और पांच चोखे बाणोंसे कर्णका मर्मस्थल विद्ध करके फिर एक बाणसे उनका धनुष काट दिया ॥ (३-६)

धनुष कटनेपर परन्तप कर्णने खिन्न होकर दूसरा धनुष ग्रहण करके शत्रुनाशन भीमसेनको अपने बाणोंसे छिपा दिया ॥ परन्तु भीमसेन उनके घोडे और सारथीको मारकर शत्रुता शेष करनेकी इच्छासे बलपूर्वक सिंहनाद करके हंसने लगे ॥ अनन्तर उस ही समय पराक्रमी भीमसेनने कर्णके धनुषको फिर काट दिया । महाराज ! वह सुवर्ण भूषित कर्णका धनुष भीमके बाणोंसे कटकर घोर टङ्कार सहित पृथ्वीमें गिर पडा ॥ (७-९)

तब महारथ कर्णने रथसे नीचे उतर

गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहिणोद्रुषा ॥ १० ॥
तामापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदाम्।
शरैरवारयद्राजन्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ११ ॥
ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः।
सूतपुत्रवधाकांक्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १२ ॥
तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महामृधे।
कवचं भीमसेनस्य पातयामास सायकैः ॥ १३ ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत्।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १४ ॥
ततो भीमो महाबाहुर्नवभिर्नतपर्वभिः।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष ॥ १५ ॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुं च दक्षिणम्।
अभ्ययुर्धरणीं तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६ ॥
स च्छाद्यमानो बाणौघैर्भीमसेनधनुश्च्युतैः।
पुनरेवाऽभवत्कर्णो भीमसेनात्पराङ्मुखः ॥ १७ ॥
तं पराङ्मुखमालोक्य पदातिं सूतनन्दनम्।

कर गदा ग्रहण करी। अनन्तर उस भयङ्कर गदाको कर्णने भीमकी ओर चलाया। उस महाघोर गदाको संमुख आती देख भीमसेनने सम्पूर्ण योद्धाओंके संमुख हीमें उसे निवारण किया॥ तिसके अनन्तर महा पराक्रमी भीमसेन कर्णके वधकी इच्छा करके शीघ्रताके सहित सहस्र सहस्र बाण उनकी ओर चलाने लगे॥ (१०-१२)

कर्णने भीमसेनके चलाये हुए बाणोंको अपने बाणोंसे मार्गहीमें काटकर गिरा दिया। तिसके अनन्तर सम्पूर्ण सेनाके संमुखमेंही अपने बाणोंसे भीमसेनका कवच काटकर पृथ्वीमें गिराया; फिर पचीस नाराच बाणोंसे उन्हें अत्यन्त ही पीडित किया, वह कर्णका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा॥ (१३-१४)

अनन्तर महाबाहु भीमसेनने क्रुद्ध होकर कर्णकी ओर नौ बाण चलाये। हे राजेन्द्र! जैसे सर्प बिलमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही भीमसेनकी धनुषसे छूटे हुए सम्पूर्ण बाण कर्णके कवच और दक्षिण भुजाको भेदकर पृथ्वीमें घुस गये॥ कर्ण भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे छिपकर फिर उनके समीपसे विमुख हुए॥ (१५-१७)

कौन्तेयशरसंछन्नं राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥
त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति ।
ततस्तव सुता राजञ्श्रुत्वा भ्रातुर्वचो द्रुतम् ॥ १९ ॥
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिलीमुखान् ।
चित्रोपचित्रश्चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥ २० ॥
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः ।
तानापतत एवाऽऽशु भीमसेनो महारथः ॥२१ ॥
एकैकेन शरेणाऽऽजौ पातयामास ते सुतान् ।
ते हता न्यपतन्भूमौ वातरुग्णा इव द्रुमाः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा विनिहतान्पुत्रांस्तव राजन्महारथान् ।
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥२३ ॥
रथं चाऽन्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात्पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥ २४ ॥
तावन्योन्यं शरैर्भित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
व्यभ्राजेतां यथा मेघौ संस्यूतौ सूर्यरश्मिभिः॥ २५ ॥

राजा दुर्योधन सूतपुत्र कर्णको भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर पैदल ही भागते देख अपने सहोदर भाइयोंसे बोले—हे पुरुषसिंहो ! तुम लोग सब भांतिसे यत्नवान् होकर शीघ्रताके सहित कर्णकी रक्षा करो। अनन्तर चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा तुम्हारे ये कईएक बलवान् पुत्र अपने जेठे भाईकी आज्ञा सुन शीघ्रताके सहित बाणोंको चलाते हुए भीमसेनकी ओर दौडे। (१८–२१)

भीमसेनने तुम्हारे पुत्रोंको शीघ्रताके सहित रणभूमिमें संमुख आये देख उन मे एकको एक एक बाणसे मार डाला। वे सब प्रचण्ड वायुके वेगसे टूटे हुए वृक्षकी भांति भीमसेनके बाणोंसे मरकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ हे राजन् ! महा पराक्रमी कर्ण तुम्हारे उन महारथी पुत्रोंको भीमसेनके बाणोंसे मरा हुआ देख आंखों में आंसू भर कर विदुर के वचनोंको स्मरण करने लगे॥ अनन्तर शीघ्रताके सहित दूसरे रथको भली भांति सजाकर उसपर चढ और पराक्रम प्रकाशित करते हुए भीमसेनकी ओर दौडे ॥ (२२–२४)

वे दोनों आपसमें एक दूसरेको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके मानो सूर्य किरणसे युक्त दो बादलके टुकडेके समान

षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
व्यधमत्कवचं क्रुद्धः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ २६ ॥
सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभम् ॥ २७ ॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ ।
शोणिताक्तौ व्यराजेतां चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥ २८ ॥
तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥ २९ ॥
व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् ॥
शरधारासृजौ वीरौ मेघाविव ववर्षतुः ॥ ३० ॥
वारणाविव चाऽन्योन्यं विषाणाभ्यामरिन्दमौ ।
निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चारु रेजतुः ॥ ३१ ॥
नादयन्तौ प्रहर्षन्तौ विक्रीडन्तौ परस्परम् ।
मण्डलानि विकुर्वाणौ रथाभ्यां रथिपुङ्गवौ ॥ ३२ ॥

शोभित होने लगे ॥ पाण्डुपुत्र भीमसेनने क्रुद्ध होकर शिलापर घिसे हुए छत्तीस बाणोंसे कर्णका कवच काट दिया ॥ महाबाहु कर्णने पचास तीक्ष्ण बाणोंसे भीमसेनको अत्यन्तही विद्ध किया ॥ (२५-२७)

शरीरमें लाल चन्दन लगाये हुए वे दोनों बाणोंके प्रहारसे क्षत विक्षत शरीर होकर चन्द्र सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ बाणोंसे कवच कट जानेसे दोनों ही उस युद्ध भूमिमें ऐसे शोभित होते थे, जैसे केंचुलीके त्यागनेसे सर्प शोभायमान लगता है ॥ जैसे दो सिंह अपने तीक्ष्ण दांतरूपी अस्त्रोंसे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते हैं वैसे ही वे दोनों पुरुषसिंह कर्ण और भीम आपसमें एक दूसरेके ऊपर बाणोंसे प्रहार करके, क्षत विक्षत शरीर होकर अत्यन्त ही पीडित हुए । जैसे बादल आकाशसे पानीकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वे दोनों एक दूसरेके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ (२८-३०)

तथा जैसे दो मतवारे हाथी अपने दांत और सुण्डोंसे आपसमें युद्ध करते हैं, वैसे ही दोनों पराक्रमी वीर अपने बाणोंसे एक दूसरे को विद्ध करके रुधिर पूरित शरीरसे अत्यन्त ही शोभित हुए ॥ वे दोनों रथियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी योद्धा सिंह-नाद करते उछलते और मण्डलाकार गतिसे रथको घुमाते हुए रणभूमिमें

वृषाविवाऽथ नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे।
सिंहाविव पराक्रान्तौ नरसिंहौ महाबलौ ॥ ३३ ॥
परस्परं वीक्षमाणौ क्रोधसंरक्तलोचनौ।
युयुधाते महावीर्यौ शक्रवैरोचनी यथा ॥ ३४ ॥
ततो भीमो महाबाहुर्बाहुभ्यां विक्षिपन्धनुः।
व्यराजत रणे राजन्सविद्युदिव तोयदः ॥ ३५ ॥
स नेमिघोषस्तनितश्चापविद्युच्छराम्बुभिः।
भीमसेनमहामेघः कर्णपर्वतमावृणोत् ॥ ३६ ॥
ततः शरसहस्रेण सम्यगस्तेन भारत।
पाण्डवो व्यकिरत्कर्णं भीमो भीमपराक्रमः ॥ ३७ ॥
तत्राऽपश्यंस्तव सुता भीमसेनस्य विक्रमम्।
सुपुङ्खैः कङ्कवासोभिर्यत्कर्णं छादयच्छरैः ॥ ३८ ॥
स नन्दयन्रणे पार्थं केशवं च यशस्विनम्।
सात्यकिं चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥ ३९ ॥
विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यं च विदितात्मनः।

क्रीडा करने लगे ॥ उस समय गौके लिये युद्ध करने वाले दोन बलवान् बैलोंके समान गर्जना करने वाले और सिंहके समान पराक्रमी वे दोनों पुरुष सिंह आपसमें क्रोधसे लालनेत्र करके देखते हुए इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे पहले समयमें इन्द्र और राजा बलिका संग्राम हुआ था ॥ (३१–३४)

महाराज ! अनन्तर महाबाहु भीमसेन अपना धनुष चढा कर मानो बिजलीसे युक्त बादलकी भांति रणभूमिमें विराजमान हुए ॥ उनके रथकी घरघराहट बादल गर्जनेके समान सुनाई देने लगी और उनका प्रचण्ड धनुष बिजलीके समान दीख पडता था। वह मेघरूपी होकर अपने बाणोंकी वर्षा से कर्ण रूपी पर्वत को छिपाने लगे ॥ (३५–३६)

हे भारत ! महापराक्रमी भीमसेन इसी प्रकारके सहस्रों बाणोंसे कर्णको छिपाने लगे ॥ भीमने तेरे पुत्रोंके संमुखही कर्णको इसी प्रकार अनेक बाणों से छिपा दिया ॥ भीमसेन यशस्वी कृष्ण अर्जुन सात्यकि और अर्जुनके चक्ररक्षक पाञ्चाल देशीय दो राजकुमारोंको आनन्दित करते हुए युद्धिभूमिमें कर्णको निवारण करने लगे ॥ महाराज ! तुम्हारे सम्पूर्ण पुत्र भीमसेनके पराक्रम धीरज

पुत्रास्तव महाराज दृष्ट्वा विमनसोऽभवन् ॥ ४० ॥ [५६०९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३६ ॥

सञ्जय उवाच— भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम् ।
नाऽमृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ १ ॥
सोऽपक्रम्य मुहूर्तं तु भीमसेनस्य गोचरात् ।
पुत्रांस्तव ददर्शाऽथ भीमसेनेन पातितान् ॥ २ ॥
तानवेक्ष्य नरश्रेष्ठ विमना दुःखितस्तदा ।
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च पुनः पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३ ॥
स ताम्रनयनः क्रोधाच्छ्वसन्निव महोरगः ।
बभौ कर्णः शरानस्यन्रश्मीनिव दिवाकरः ॥ ४ ॥
किरणैरिव सूर्यस्य महीध्रो भरतर्षभ ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥ ५ ॥
ते कर्णचापप्रभवाः शरा बर्हिणवाससः ।
विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाऽण्डजा द्रुमम् ॥ ६॥
कर्णचापच्युता बाणाः सम्पतन्तस्ततस्ततः ।

और बाहुबलको देखकर उत्साह रहित होगये ॥ (३७-४०) [५६०९]

द्रोणपर्वमें एकसौ छत्तीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ सैंतीस अध्याय !

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीकी गर्जना नहीं सह सकता; कर्णने भी उसी प्रकार भीमसेनके धनुष टंकार और तलत्राण शब्दको सहन नहीं किया ॥ यद्यपि वह उस समय थोडी देर तक युद्धभूमिसे पृथक् हुए थे तथापि भीम के बाणोंसे तुम्हारे पुत्रोंको मरते हुए देख शोकित दुःखित होकर लम्बी सांस छोडते हुए भीमसेन की ओर फिर दौडे ॥ (१-३)

वह क्रोधसे लालनेत्र करके बडे सर्प के समान श्वास छोडते और सूर्यकिरण-की भांति अपने प्रकाशमान बाणों को चलाते हुए अत्यन्त शोभित हुए ॥ हे भारत ! भीमसेन सूर्यकिरण के समान कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी जाल-में एकबारगी छिप गए ॥ जैसे पक्षियों-का समूह बसतिके लिये इकबारगी वृक्ष-के ऊपर आके गिरता है, वैसे ही कर्ण के धनुषसे छूटे हुए बाण भीमसेनके सम्पूर्ण शरीरमें घुस गये ॥ और कितने ही मोर पंखवाले तीक्ष्ण बाण आकाशमें समूहसे चलते हुए इस प्रकार शोभित

रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ ७ ॥
चापध्वजोपस्करेभ्यश्छत्रादीषामुखाद्युगात् ।
प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नाधिरथेः शराः ॥ ८ ॥
खं पूरयन्महावेगात्खगमान्गृध्रवाससः ।
सुवर्णविकृतांश्चित्रान्मुमोचाऽऽधिरथिः शरान् ॥ ९ ॥
तमन्तकमिवाऽऽयस्तमापतन्तं वृकोदरम् ।
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥
तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः ।
महतश्च शरौघांस्तान्न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥
ततो विधम्याऽऽधिरथेः शरजालानि पाण्डवः ।
विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शिलाशितैः ॥ १२ ॥
यथैव हि स कर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः ।
तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत ।
अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च सम्प्रहृष्टाश्च चारणाः ॥ १४ ॥

होने लगे; जैसे उड़ता हुआ हंसोंका समूह शोभित होता है। (४–७)

महाराज उस समय कर्णके धनुष, उनके रथकी ध्वजा, रथके चक्के, रथके ऊपर तथा नीचे के हिस्से और छत्र, इन सम्पूर्ण स्थलों में बाण छूटते हुए दिखाई देने लगे ॥ कर्णने आकाशचारी पक्षियों की भांति सुवर्ण-दण्डभूषित अनेक वेगवान् विचित्र बाणोंको चलाकर आकाशमण्डल को परिपूर्ण कर दिया ॥ (८–९)

भीमसेन कर्णको साक्षात् काल के समान सम्मुख आते देखकर अपने प्राण-की आशा छोडके तीक्ष्ण बाणों को चलाते हुए उन्हें विद्ध करने लगे ॥ कर्ण-का महाघोर पराक्रम देख और उनके चलाये हुए भयङ्कर बाणजालसे विद्ध होकर भी भीमसेन अपने बल तथा पराक्रमके प्रभावसे तनिक भी पीडित न हुए ॥ वरन उनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंको निवारण करके शिलापर घिसे हुए बीस तीक्ष्ण बाणोंसे कर्णको विद्ध किया ॥ (१०—१२)

भीमसेन जिस प्रकार कर्ण के बाण जाल में छिप गये थे, वैसे ही उन्होंने भी अपने बाणोंकी वर्षासे कर्णको छिपा दिया ॥ महाराज! रणभूमि में भीमसेन का ऐसा पराक्रम देखकर चारण और

भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर्मद्रराजो जयद्रथः ।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥
कुरुपाण्डवप्रवरा दश राजन्महारथाः ।
साधुसाध्विति वेगेन सिंहनादमथाऽनदन् ॥ १६ ॥
तस्मिन्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजन्दुर्योधनस्त्वरन् ॥ १७ ॥
राज्ञः स राजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः ।
कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात् ॥ १८ ॥
पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः ।
ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९ ॥
दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त भारत ।
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् ॥ २० ॥
ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्शरवृष्टिभिः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २१ ॥
ते पीडयन्भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ।

तुम्हारी ओरके योद्धाओंने आनन्दित होके उन्हें धन्यवाद दिया ॥ भूरिश्रवा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु,सात्यकि, कृष्ण और अर्जुन आदि कौरव तथा पाण्डवोंकी ओरके मुख्य मुख्य ये दस महारथी योद्धा धन्य धन्य करके सिंह-नाद करने लगे ॥ (१३-१६)

उस रोएंको खडा करनेवाले तुमुल शब्दको सुनकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन शीघ्रताके सहित बहुतेरे राजा राजपुत्र और विशेषतः अपने सहोदर भाइयोंसे यह वचन बोले, हे शूरवीर पुरुषो ! आप लोगोंका मङ्गल होवे तुम लोग कर्णकी रक्षाके निमित्त भीमसेनके समीप शीघ्र गमन करो ॥ हे महा धनुर्द्धर वीर पुरुषो! जब तक भीमसेन के धनुषसे छूटे हुए बाण कर्णका नाश नहीं करते हैं उससे पहले ही तुम लोग सूत पुत्र कर्णकी रक्षाके निमित्त यत्नवान् होके भीमसेनसे युद्ध करो ॥ (१७-१९)

तुम्हारे सात पुत्रोंने अपने जेठे भाई दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार क्रुद्ध हो भीमसेनके निकट जाकर उन्हें चारों ओरसे घेरलिया॥ जैसे वर्षा ऋतुमें बादलोंके समूह पर्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं उसी प्रकार तुम्हारे पुत्रोंने भीमसेनको चारों ओरसे घेर कर अपने बाणोंको उनके

प्रजासंहरणे राजन्सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२ ॥
ततो वेगेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम् ।
मुष्टिना पाण्डवो राजन्दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥
मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त सन्धाय सायकान् ।
तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान्प्रभुः ॥ २४ ॥
निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसूंस्तव ।
भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥
ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान् ।
विदार्य खं समुत्पेतुः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ २६ ॥
तेषां विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः ।
व्यराजन्त महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥ २७ ॥
शोणितादिग्धवाजाग्राः सप्त हेमपरिष्कृताः ।
पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्गताः ॥ २८ ॥
ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन्क्षितौ ।
गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः ॥ २९ ॥

ऊपर बर्साना आरंभ किया॥ जैसे प्रलय कालमें सात ग्रह एक चन्द्रमाको पीडित करते हैं वेसेही वे तुम्हारे सातों पुत्र भीमसेनको पीडित करने लगे॥ २०-२२

अनन्तर भीमसेनने अपना प्रचण्ड धनुष बलपूर्वक खींच कर मनुष्यों के नाश करने योग्य तीक्ष्ण बाणोंको चलाने लगे ॥ उस समय उन्होंने पहिले वैरको स्मरण करके अत्यन्त क्रुद्ध होकर मानो तुम्हारे पुत्रोंके प्राणनाश करनेकी इच्छा से ही सूर्य किरणके समान प्रकाश मान सात बाणोंको धनुष पर चढाकर उन सातों वीरोंकी ओर चलाया॥ २३-२५

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए स्वर्ण दण्डसे युक्त वे सातों भयङ्कर बाण भरत वंशी राजकुमारोंके शरीरको विदारण करके आकाश मण्डल में चलते हुए दिखाई देने लगे ॥ महाराज ! सुवर्ण दण्डभूषित वे सम्पूर्ण बाण तुम्हारे पुत्रोंके हृदयको विदीर्ण करके उनके शरीरसे रुधिरको पीकर मानो आकाशचारी गरुड पक्षियोंके समूहकी भांति शोभित होने लगे ॥ जैसे पर्वत पर उत्पन्न हुए बडे बडे वृक्ष मतवारे हाथियोंके सूण्डसे टूटकर पृथ्वी पर गिर पडते हैं, वैसे ही तुम्हारे सातों पुत्र भीमसेनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ (२६-२९)

शत्रुञ्जयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः।
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥ ३० ॥
पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः।
शोचत्यतिभृशं दुःखाद्विकर्णं पाण्डवः प्रियम् ॥ ३१ ॥
प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे।
विकर्ण तेनाऽसि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया ॥ ३२ ॥
त्वमागाः समरं वीर क्षात्रधर्ममनुस्मरन्।
ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः ॥ ३३ ॥
विशेषतो हि नृपतेस्तथाऽस्माकं हिते रतः।
न्यायतोऽन्यायतो वाऽपि हतः शेते महाद्युतिः॥ ३४॥
अगाधबुद्धिर्गाङ्गेयः क्षितौ सुरगुरोः समः।
त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद्युद्धं हि निष्ठुरम् ॥ ३५ ॥
सञ्जय उवाच— तान्निहत्य महाबाहू राधेयस्यैव पश्यतः।
सिंहनादरवं घोरमसृजत्पाण्डुनन्दनः ॥ ३६ ॥
स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य भारत।
आचख्याविव तद्युद्धं विजयं चाऽऽत्मनो महत् ॥३७॥

हे राजन्! शत्रुञ्जय, शत्रुसह, चित्रायुध, चित्र, दृढ, चित्रसेन और विकर्ण तुम्हारे ये सात पुत्र भीमसेनके अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरपडे॥ हे महाराज! जब भीमसेनने अपने हाथसे मारे गये हुए तेरे पुत्रोंमें विकर्णको मरा हुआ देखा, तब वह बहुत दुःखी होकर शोक करने लगे, क्योंकि विकर्णके ऊपर भीमसेन बहुत ही प्रेम करते थे, तब भीमसेन बोले, हाय! रे विकर्ण! मैं ने जो रणभूमिमें तुम सौ भाईयोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसी प्रतिज्ञा की पूर्तिके लिये तुम्हें मारा है॥ विशेषतः राजा युधिष्ठिर और हमलोगोंके तुम हित कारी होकर भी क्षत्रियधर्मको स्मरण करके युद्धके वास्ते मेरे सामने खडे होनेसे मेरे हाथसे मारे गये हैं, इससे निश्चय से यह युद्धधर्म बडा घोर है॥ देखो महा तेजस्वी, सुरगुरु बृहस्पतिके समान बडे बुद्धिमान् साक्षात् पितामह भीष्म भी एक दृष्टिसे न्यायसे और दूसरी दृष्टिसे अन्यायसे मारे जानेसे युद्ध भूमि में पडेरहे हैं अतः युद्ध बडा निष्ठुर है। (३०-३५)

संजय बोले, पराक्रमसे युक्त महाबाहु भीमसेन राधानन्दन कर्णके संमुख ही तुम्हारे पुत्रोंका वध करके मानो धर्मराज

तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः ।
बभूव परमा प्रीतिर्धर्मराजस्य धीमतः ॥ ३८ ॥
ततो हृष्टमना राजन्वादित्राणां महास्वनैः ।
सिंहनादरवं भ्रातुः प्रतिजग्राह पाण्डवः ॥ ३९ ॥
हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञो वृकोदरे ।
अभ्ययात्समरे द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ४० ॥
एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव निपातितान् ।
हतान्दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥ ४१ ॥
तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्निःश्रेयसं वचः ।
इति सञ्चिन्त्य ते पुत्रो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ४२ ॥
यद् द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत्तनयस्तव ।
सभामानाय्य पाञ्चालीं कर्णेन सहितोऽल्पधीः ॥४३॥
यच्च कर्णोऽब्रवीत्कृष्णां सभायां परुषं वचः ।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव विशाम्पते ॥ ४४ ॥
शृण्वतस्तव राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ।

युधिष्ठिर को उस युद्धका संवाद देनेके लिये भयङ्कर सिंहनाद करने लगे ॥ धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर धनुर्द्धारी भीमसेनके भयानक सिंहनादको सुनकर प्रसन्न हुए ॥ उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक नाना प्रकारके युद्धके बाजोंको बजवाकर भीमसेनके सिंहनादको प्रतिग्रहण किया और उनके सिंहनादसे जयसूचक संवाद पाकर अत्यन्त ही हर्षके सहित सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके संग युद्ध करनेके निमित्त आगे बढ़े ॥ (३६—४०)

इधर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने धीरे धीरे अपने इकतीस भाइयों को भीमसेनके हाथसे मरता हुआ देखकर विदुरके पहिले कहे हुए सम्पूर्ण वचनोंको स्मरण किया ॥ इस समय बुद्धिमान् विदुरके वे अमोघ वचन सत्यही बोध हुए । दुर्योधनने इसी प्रकार चिन्ता करके कुछ उत्तर न दिया ॥ (४१-४२)

उस अल्पबुद्धि नीच दुर्योधनने जुए की खेलके समय द्रौपदीको सभामें बुलाकर जो कुछ वचन कर्णके सङ्ग मिलकर कहा था और कर्णने कहा "हे द्रौपदी तुम्हारे पति पाण्डव लोग जीते ही नष्ट होकर नरकगामी हुए इस समय तुम दूसरे किसी पुरुषको अपना पति बना लो।" इसी प्रकार कठोर वचनोंसे

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥ ४५ ॥
पतिमन्यं वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम् ।
यच्च षण्ढतिलादीनि परुषाणि तवाऽऽत्मजैः ।
श्राविताः ते महात्मानः पाण्डवाः कोपयिष्णुभिः ॥४६॥
तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदश समाः स्थितम् ।
उद्गिरंस्तव पुत्राणामन्तं गच्छति पाण्डवः ॥ ४७ ॥
विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नाऽलभत त्वयि ।
सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य भुंक्ष्व फलोदयम् ॥ ४८ ॥
त्वया वृद्धेन धीरेण कार्यतत्त्वार्थदर्शिना ।
न कृतं सुहृदां वाक्यं दैवमत्र परायणम् ॥ ४९ ॥
तन्मा शुचो नरव्याघ्र तवैवाऽपनयो महान् ।
विनाशहेतुः पुत्राणां भवानेव मतो मम ॥ ५० ॥
हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
प्रवराश्चाऽऽत्मजानां ते सुताश्चाऽन्ये महारथाः ॥ ५१ ॥

पाण्डवोंके सम्मुखहीमें द्रौपदीको दुःखित किया था, उसको तुम और सभाके सम्पूर्ण कौरवोंने ही सुना था । उसहीका फल इस समय उपस्थित हुआ है । (४३-४६)

तुम्हारे पुत्रोंने उस समय महात्मा पाण्डवोंको कोपित करके उन्हें षण्ढतिल आदि कहके जो नाना प्रकारकी कडवी वचनोंको सुनाया था उसहीसे भीमसेन तेरह वर्ष पर्यन्त उस दबी हुई क्रोधाग्निको इस समय प्रकाशित करके तुम्हारे पुत्रोंका वध कर रहे हैं ॥ महाराज ! पहिले विदुरने शान्तिकी अभिलाष करके तुम्हारे समीप अनेक प्रकारसे विलाप किया था, परन्तु आपने उनके वचनोंको तनिक भी न सुना, इस ही कारणसे इस उपस्थित विपद्-रूपी फलको आप पुत्रोंके सहित भोग कीजिये । (४६—४८)

जब आप बुद्धिमान् पण्डित और समस्त कार्योंके तत्त्वको जाननेवाले होकर भी सुहृद् पुरुषोंके वचनोंको नहीं सुना, तब प्रारब्धहीको ऐसे अवसरपर बलवान् कहना पडेगा ॥ हे पुरुषर्षभ ! आप शोक न कीजिये, क्योंकि शूरवीरोंके नाश होनेका यह भयङ्कर कार्य तुम्हारे अनीतिहीके कारण उपस्थित हुआ है, इससे मेरे विचारमें तुम ही अपने पुत्रोंके नाश करनेके मूल कारण हो ॥ देखिये पराक्रमी विकर्ण और चित्रसेन आदि तुम्हारे

यानन्यान्ददृशे भीमश्चक्षुर्विषयमागतान्।
पुत्रांस्तव महाराज त्वरया ताञ्जघान ह ॥ ५२ ॥
त्वत्कृते ह्यहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम्।
सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥ ५३ ॥ [५६६२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– महानपनयः सूत ममैवाऽत्र विशेषतः।
स इदानीमनुप्राप्तो मन्ये सञ्जय शोचतः ॥ १ ॥
यद्गतं तद्गतमिति ममाऽऽसीन्मनसि स्थितम्।
इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि सञ्जय ॥ २ ॥
यथा ह्येष क्षयो वृत्तो ममाऽपनयसम्भवः।
वीराणां तन्ममाऽऽचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि सञ्जय॥ ३॥
सञ्जय उवाच— कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महाबलौ।
बाणवर्षाण्यसृजतां वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ॥ ४॥
भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः।

मुख्य मुख्य महारथी पुत्र मारे गये और तुम्हारे दूसरे जो भीमसेनके संमुख हुए उन्होंने उस ही समय तुम्हारे पुत्रोंका वध किया; जो हो तुम्हारे ही कारणसे व्यूहबद्ध सेनाके योद्धा लोग भीमसेन और कर्णके लगातार सहस्रों बाणरूपी अग्निसे भस्म होते दिखाई देने लगे ॥ (४९—५३) [५६६२]

द्रोणपर्वमें एकसौ सैंतीस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ अठतीस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सूत ! बोध होता है, मेरे ही विशेष शोकके निमित्त यह महाघोर योद्धाओंके नाशका समय उपस्थित हुआ है, मैंने पहिले इसी प्रकार विचार किया था; कि जो होनहार था सो हुआ है इस समय उसका प्रतिकार किस भांति करूंगा; इस ही वास्ते मैं अत्यन्त व्याकुल हो रहा हूं ॥ जो हो मैंने इस समय धीरज धारण किया है तुम मेरी अनीतिसे उत्पन्न हुए सेनाके शूरवीरोंके नाश होने का सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करो ॥ (१—३)

सञ्जय बोले, महाराज ! महाबली पराक्रमी भीमसेन और कर्ण दोनों ही दो जलभरे बादलोंकी भांति लगातार बाण वर्षा करते युद्ध करने लगे ॥ भीमनामसे अङ्कित शिलापर घिसे हुए स्वर्ण

विविशुः कर्णमासाद्य च्छिन्दन्त इव जीवितम् ॥ ५ ॥
तथैव कर्णनिर्मुक्ताः शरा बर्हिणवाससः ।
छादयाञ्चक्रिरे वीरं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥
तयोः शरैर्महाराज सम्पतद्भिः समन्ततः ।
बभूव तत्र सैन्यानां संक्षोभः सागरोत्तरः ॥ ७ ॥
भीमचापच्युतैर्बाणैस्तव सैन्यमरिन्दम ।
अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥ ८ ॥
वारणैः पतितै राजन्वाजिभिश्च नरैः सह ।
अदृश्यत मही कीर्णा वातभग्नैरिव द्रुमैः ॥ ९ ॥
ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाऽब्रुवन् ॥ १० ॥
ततो व्युदस्तं तत्सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम् ।
प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोः शरैः ॥ ११ ॥
ते शूरा हतभूयिष्ठा हताश्वरथवारणाः ।
उत्सृज्य भीमकर्णौ च सर्वतो व्यद्रवन्दिशः ॥ १२ ॥

पङ्खवाले चोखे बाण मानो कर्णके प्राण हरण करनेकी इच्छासे उनके शरीरमें प्रवेश करने लगे॥ उस ही प्रकार कर्णके धनुषसे छूटे हुए सैकडों और सहस्रों बाणोंने भीमसेनको छिपादिया॥ ४-६

महाराज! उन दोनोंके चलाये हुए सम्पूर्ण बाण सेनाके बीच चारों ओर गिरने लगे; उससे सेनाके पुरुष इस प्रकार इधर उधरको भागने लगे जैसे वायुके झोंकसे समुद्रका जल उथलते दीख पडता है॥ भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए भयङ्कर विषधारी सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारी व्यूहबद्ध सेनाके योद्धा लोग भी प्राणरहित होके पृथ्वीपर गिरने लगे। वह रणभूमि उस समय मरे हुए मनुष्य और हाथी घोडोंके मृत शरीरसे इस प्रकार परिपूर्ण होगई जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे वनके वृक्ष टूटकर पृथ्वीको परिपूरित कर देते हैं॥ (७—९)

तिसके अनन्तर तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर यह क्या है! यह क्या है! ऐसा वचन कहते हुए रणभूमिसे भागने लगे॥ सिन्धु सौवीर और कुरुसेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग कर्ण और भीमसेनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उनके समीपसे दूर हट गये॥ बहुतेरे शूरवीरोंके नष्ट

नूनं पार्थार्थमेवाऽस्मान्मोहयन्ति दिवौकसः ।
यत्कर्णभीमप्रभवैर्वध्यते नो बलं शरैः ॥ १३ ॥
एवं ब्रुवाणा योधास्ते तावका भयपीडिताः ।
शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षवः ॥ १४ ॥
ततः प्रावर्तत नदी घोररूपा रणाजिरे ।
शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धिनी ॥ १५ ॥
वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा ।
संवृता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १६ ॥
सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्वरथभूषणैः ।
स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूबरैः ॥ १७ ॥
जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहास्वनैः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥
कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
प्रासतोमरसङ्घातैः खड्गैश्च सपरश्वधैः ॥ १९ ॥
सुवर्णविकृतैश्चाऽपि गदामुसलपट्टिशैः ।
ध्वजैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परिघैरपि ॥ २० ॥

होनेसे कोई घोडे और कोई रथसे रहित होकर युद्धभूमिमें भीमसेन और कर्णको त्यागकर भागते हुए यह वचन कहने लगे, कि निश्चय ही अर्जुनके निमित्त देवता लोग हम लोगोंको मोहित कर रहे हैं,क्योंकि भीमसेन और कर्णके बाणोंसे केवल हमारे ही सेनाके शूरवीर योद्धाओंका प्राण नाश होरहा है ॥ (१०-१३)

महाराज ! तुम्हारे ओरके योद्धा लोग भयभीत होकर भीमसेन और कर्णको बाण गिरने तकके स्थानको छोडकर दूर खडे होके उन दोनों पुरुषसिंहोंका युद्ध देखने लगे ॥ हे प्रजानाथ ! उस रणभूमिमें शूरवीरोंके हर्ष और कादरोंके भयको बढानेवाले हाथी घोडे और मनुष्योंके रुधिरसे एक भयङ्करी नदी उत्पन्न हुई ॥ (१४–१६)

उस समय टूटे हुए रथ, ध्वजा, पताका, रथकी धूरी, टूटे हुए रथोंके ऊपर और नीचेके हिस्से, मनुष्य हाथी घोडोंके मृत शरीर तथा भीमसेन और कर्णके सुवर्ण भूषित महाप्रचण्ड शब्दवाले धनुषसे छूटे हुए केचुलीसे रहित सर्प समान सहस्रों सोनेके पंखवाले बाण, नाराच, प्रास, तोमर, तलवार, फरसे, सुवर्ण, खचित गदा, मूसल,पट्टिश, वज्रके समान

शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्बभौ भारत मेदिनी ।
कनकाङ्गदहारैश्च कुण्डलैर्मुकुटैस्तथा ॥ २१ ॥
वलयैरपविद्धैश्च तत्रैवाङ्गुलिवेष्टकैः ।
चूडामणिभिरुष्णीषैः स्वर्णसूत्रैश्च मारिष ॥ २२ ॥
तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत ।
वस्त्रैश्छत्रैश्च विध्वस्तैश्चामरव्यजनैरपि ॥ २३ ॥
गजाश्वमनुजैर्भिन्नैः शोणिताक्तैश्च पत्रिभिः ।
तैस्तैश्च विविधैर्भिन्नैस्तत्र तत्र वसुन्धरा ॥ २४ ॥
पतितैरपविद्धैश्च विबभौ द्यौरिव ग्रहैः ।
अचिन्त्यमद्भुतं चैव तयोः कर्मातिमानुषम् ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः समजायत ।
अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाऽऽहवे ॥ २६ ॥
आसीद्भीमसहायस्य रौद्रमाधिरथेर्गतम् ।
निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ॥ २७ ॥
गजाभ्यां सम्प्रयुक्ताभ्यामासीन्नलवनं यथा ।

नाना प्रकारकी बरछी, परिघ और विचित्ररूप वाली शतघ्नी, आदि सम्पूर्ण अस्त्रोंसे वह रणभूमि परिपूरित होकर अत्यन्त शोभित होने लगी। (१७-२१)

इसके अतिरिक्त शूरवीरोंके शरीरसे कटे हुए वर्म (सनाह), कुण्डल, मुकुट, माला, अङ्गूठी, उत्तम वस्त्र, सुवर्णकी माला, तलत्राण, अंगुलीत्राण, गलेके आभूपण, वस्त्र, कटे हुए छत्र, चँवर और नाना प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंसे कटे तथा इधर उधर पडे हुए रुधिरयुक्त मनुष्योंके मृत शरीरसे वह रणभूमि तारोंसे युक्त आकाशमण्डलकी भांति प्रकाशित होने लगी ॥ (२१-२५)

उन दोनों पुरुषसिंहोंके अद्भुत और अलौकिक कर्मको देखकर सिद्ध और चारण आदि प्राणी विस्मित होने लगे। महाराज! जैसे वायुकी सहायताके सूखे तृण काष्ठोंको जलाती हुई अग्नि अत्यन्त ही प्रज्वलित होजाती है उसी प्रकार अधिरथपुत्र कर्ण युद्धभूमिमें भीमसेनको पाकर भयङ्कर तेजस्वी होगये। उन दोनों पुरुषसिंहोंका इस प्रकार महाघोर संग्राम होने लगा जैसे दो मतवारे हाथियोंके आपसमें युद्ध करते समय कमल वन नष्ट होजाता है। कितने ही रथोंकी ध्वजा टुकडे टुकडे होगई, कितने ही रथ शस्त्रों की चोटसे टूट गये, कितने हाथी घोडे

मेघजालनिभं सैन्यमासीत्तव नराधिप ॥ २८ ॥
विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमो रणे ॥ २९ ॥ [५६९१]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

सञ्जय उवाच— ततः कर्णो महाराज भीमं विध्वा त्रिभिः शरैः ।
मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च ॥ १ ॥
बध्यमानो महाबाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाऽचलः ॥ २ ॥
स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च ।
विव्याध सुभृशं संख्ये तैलधौतेन मारिष ॥ ३ ॥
स कुण्डलं महच्चारु कर्णस्याऽपातयद्भुवि ।
तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥ ४ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे ।
आजघान भृशं क्रुद्धो हसन्निव वृकोदरः ॥ ५ ॥
पुनरस्य त्वरन्भीमो नाराचान्दश भारत ।
रणे प्रैषीन्महाबाहुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ ६ ॥

और मनुष्योंका नाश होगया । जैसे वायुसे बादल तितर बितर होजाते हैं वैसे ही तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा कर्ण और भीमसेनके बाणोंसे छिन्न भिन्न होगये ॥ (२५–२९) [५६९१]

द्रोणपर्वमें एकसौ अडतीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ उनतालिस अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! इसके अनन्तर कर्ण भीमसेनको तीन बाणोंसे विद्ध करके फिर उनके ऊपर अनेक विचित्र बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ परन्तु महाबाहु भीमसेन सूतपुत्र कर्णके वैसे कठोर बाणोंसे भी विद्ध होकर दुःखित न हुए ! वरन अचल पर्वतके समान स्थिरताके सहित युद्धसे विचलित न हुए ॥ १–२

उन्होंने कर्णको उत्तम पानीसे बुझे हुए एक तीक्ष्ण तैलधौत कर्णिक बाणसे अत्यन्त विद्ध किया ॥ तिसके अनन्तर कर्णके रत्नमय मनोहर कुण्डलको काट दिया । वह कुण्डल मानो आकाशसे गिरे हुए ज्योतिवाले पदार्थोंकी भांति पृथ्वीमें गिर कर प्रकाशित होने लगा ॥ फिर उन्होंने क्रुद्ध होकर हंसते हुए एक भल्लसे कर्णके हृदयमें प्रहार किया ॥ उसके बाद महाबाहु भीमने शीघ्रताके सहित विषधारी सर्पके समान दश बाणोंको ग्रहण करके सूतपुत्र कर्णकी ओर चलाया ॥ (३–६)

ते ललाटं विनिर्भिद्य सूतपुत्रस्य भारत ।
विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ७ ॥
ललाटस्थैस्ततो बाणैः सूतपुत्रो व्यरोचत ।
नीलोत्पलमयीं मालां धारयन्वै यथा पुरा ॥ ८ ॥
सोऽतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना ।
रथकूबरमालम्ब्य न्यमीलयत लोचने ॥ ९ ॥
स मुहूर्तात्पुनः संज्ञां लेभे कर्णः परन्तपः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः क्रोधमाहारयत्परम् ॥ १० ॥
ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना ।
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति ॥ ११ ॥
तस्मै कर्णः शतं राजन्निषूणां गार्ध्रवाससाम् ।
अमर्षी बलवान्क्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ १२ ॥
ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥ १३ ॥
कर्णस्ततो महाराज पाण्डवं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परन्तप ॥ १४ ॥

महाराज ! जैसे साँप बिलमें प्रवेश करते हैं वैसे ही भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए वे सम्पूर्ण वाण कर्णके ललाटको भेद कर मस्तकके भीतर प्रविष्ट हुए । जैसे पहले नीलकमलकी माला पहरनेपर कर्णकी शोभा हुई थी वैसे ही ललाटसे विद्ध हुए उन बाणोंसे महाबाहु कर्ण उस समय शोभित होने लगे ॥ वह बलवान् भीमसेनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर दोनों आंखोंको मूंद रथका दण्ड पकड़ कर रथ पर स्थित हुए ॥ (७–९)

शत्रु नाशन महापराक्रमी कर्ण मुहूर्त भरके बीच सावधान होकर अपने सम्पूर्ण शरीरको रुधिर पूरित देखकर क्रोधसे प्रज्वलित होगये । और दृढ धनुर्धारी भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर भी क्रोध और वेगके सहित उनके रथके समीप उपस्थित हुए ॥ फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर कर्णने गिद्धपंख युक्त एकसौ बाण भीमसेनके ऊपर चलाये ॥ (१०–१२)

परन्तु पाण्डुपुत्र भीमसेन कर्णका वैसा पराक्रम देखकर भी दुःखित न हुए । वरन उनका अनादर करते हुए उनके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ शत्रुनाशन कर्णने अत्यन्त क्रोध

तावुभौ नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ ।
जीमूताविव चाऽन्योन्यं प्रववर्षतुराहवे ॥ १५ ॥
तलशब्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम् ।
शरजालैश्च विविधैस्त्रासयामासतुर्मृधे ॥ १६ ॥
अन्योन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत ॥ १७ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ननाद परवीरहा ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः ॥ १८ ॥
अन्यत्कार्मुकमादत्त भारघ्नं वेगवत्तरम् ।
तदप्यथ निमेषार्धाच्चिच्छेदाऽस्य वृकोदरः ॥ १९ ॥
तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं षष्ठमेव हि ।
सप्तमं चाऽष्टमं चैव नवमं दशमं तथा ॥ २० ॥
एकादशं द्वादशं च त्रयोदशमथाऽपि च ।
चतुर्दशं पञ्चदशं षोडशं च वृकोदरः ॥ २१ ॥
तथा सप्तदशं वेगादष्टादशमथाऽपि वा ।
बहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैवं धनूंषि हि ॥ २२ ॥
निमेषार्धात्ततः कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ।

करके नौ बाणोंसे क्रोधी भीमसेनके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ महाराज ! जैसे दो व्याघ्र आपसमें एक दूसरेके ऊपर दांत और नखोंसे प्रहार करते हैं, वैसे ही वे दोनों पुरुषसिंह एक दूसरेके ऊपर अपने शस्त्रोंको इस प्रकार वर्षाने लगे,जैसे बादल आकाशसे जल की वर्षा करते हैं ॥ (१३-१५)

वे दोनों ही अत्यन्त क्रुद्ध हुए दूसरेके वधके अभिलाषी थे, वे दोनों तलत्राणके शब्द सहित अपने बाणोंके जालसे एक दूसरेको छिपाने लगे । इसके अनन्तर शत्रु विनाशक महाबाहु भीमसेनने एक तेज अस्त्रसे कर्णके धनुषको काटकर सिंहनाद किया । (१६-१८)

महारथी कर्णने उस कटे हुए धनुषको त्याग कर एक महा प्रचण्ड अत्यन्त दृढ धनुष ग्रहण किया। उस धनुषको भी भीमसेनने निमेषार्धमें काटा। अनन्तर तीसरा, चौथा,पाचवां,छठवां, सातवां, आठवां, नौवां, दसवां,ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां चौदहवां,पन्द्रहवां,सोलहवां, सतारहवां, अठरहवां, इस प्रकार भीमसेनके द्वारा कर्णके बहुत धनुष्य काटे गये ॥ १८-२२

दृष्ट्वा स कुरुसौवीरसिन्धुवीरबलक्षयम् ॥ २३ ॥
सवर्मध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृतां महीम् ।
हस्त्यश्वरथदेहांश्च गतासून्प्रेक्ष्य सर्वशः ॥ २४ ॥
सूतपुत्रस्य संरम्भाद्दीप्तं वपुरजायत ।
स विस्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ २५ ॥
भीमं प्रैक्षत राधेयो घोरं घोरेण चक्षुषा ।
ततः क्रुद्धः शरानस्यन्सूतपुत्रो व्यरोचत ॥ २६ ॥
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः ।
मरीचिविकचस्येव राजन्भानुमतो वपुः ॥ २७ ॥
आसीदाधिरथेर्घोरं वपुः शरशताचितम् ।
कराभ्यामाददानस्य सन्दधानस्य चाऽऽशुगान् ॥ २८॥
कर्षतो मुञ्चतो बाणान्नाऽन्तरं ददृशे रणे ।
अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम् ॥ २९ ॥
कर्णस्याऽऽसीन्महीपाल सव्यदक्षिणमस्यतः ।
स्वर्णपुङ्खाः सुनिशिताः कर्णचापच्युताः शराः ॥३० ॥

फिर निमेपार्धमें कर्ण हाथमें दूसरा धनुष्य धारण कर खडा हुआ । और सिन्धु तथा सौवीर सेनाके सहित कौरवोंकी सेनाका नाश, मरे हुए हाथी घोडे और मनुष्योंको ध्वज कवच और शस्त्रोंके सहित इधर उधर पडे देख उसके शरीरमें अत्यन्त क्रोध हुआ ! वह सुवर्ण भूपित बडे धनुपको चढाकर भयंकर नेत्रोंसे भीमसेनकी ओर देखने लगे । और क्रुद्ध होकर भीमसेन के ऊपर लगातार बाणोंकी वर्षा करने लगे, उस समय कर्ण बहुत शोभित हुए ॥ (२३-२६)

वह शरत्कालके प्रचण्ड किरणधारी दोपहरके सूर्य समान शोभित हुए ॥ उनके शरीरमें भीमसेनके सैकडों बाण विद्ध हुए थे, उससे वह किरणोंसे शोभित भगवान् सूर्यकी भांति प्रकाशित हुए । वह किस समय तरकससे बाणोंको निकालते साधते कब धनुप पर खींचते और किस समय उन बाणोंको छोडते थे, उस विषयमें कोई भी पुरुष युद्धभूमिके बीच उनको देखनेमें समर्थ न हुए। महाराज ! उस समय महावीर कर्णके बाई और दहिनी ओर मण्डलाकार चक्रके भयंकर धनुपसे छूटे स्वर्ण पंखवाले अत्यन्त चोखे सम्पूर्ण बाण चारों ओर चलते हुए दिखाई देने लगे ॥ (२७-३०)

प्राच्छादयन्महाराज दिशः सूर्यस्य च प्रभाः ।
ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३१ ॥
धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः ।
बाणासनादाधिरथेः प्रभवन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥
श्रेणीकृता व्यरोचन्त राजन्क्रौञ्चा इवाऽम्बरे ।
गार्ध्रपत्राञ्छिलाधौतान्कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ३३ ॥
महावेगान्प्रदीप्ताग्रान्मुमोचाऽऽधिरथिः शरान् ।
ते तु चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः ॥ ३४ ॥
अजस्रमपतन्बाणा भीमसेनरथं प्रति ।
ते व्योम्नि रुक्मविकृता व्यकाशन्त सहस्रशः ॥ ३५ ॥
शलभानामिव व्राताः शराः कर्णसमीरिताः ।
चापादाधिरथेर्बाणाः प्रपतन्तश्चकाशिरे ॥ ३६ ॥
एको दीर्घ इवाऽत्यर्थमाकाशे संस्थितः शरः ।
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ ३७ ॥
कर्णः प्राच्छादयत्क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः ।
तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ।

कर्णके बाणोंसे सम्पूर्ण दिशा छिप गईं, और सूर्यभी बाणोंसे छिपकर तेज रहित होगया। कर्णके धनुष्यसे छूटे हुए स्वर्ण पुंख युक्त तीक्ष्ण बाणोंके जाल आकाशमण्डलमें नाना भांतिसे दिखाई देने लगे। कर्णके धनुषसे छूटे बाण लगातार क्रौंच पक्षियोंके समूहकी भांति शोभित होने लगे। अधिरथपुत्र कर्ण गिद्धपंखयुक्त शिला पर घिसे हुए सुवर्ण भूषित अत्यन्त चोखे महावेगवान् बाणोंको अपने धनुषपर चढाकर भीमसेनकी ओर छोडने लगे। (३१-३४)

सुवर्ण भूषित वे सम्पूर्ण बाण अत्यन्त वेगके सहित कर्णके धनुषसे छूटकर लगातार भीमसेनके रथपर गिरने लगे। महाराज! कर्णके चलाये हुए वे सम्पूर्ण बाण आकाश मण्डलमें झुण्डके झुण्ड टीडीदलकी भांति शोभित होने लगे। वे सम्पूर्ण बाण कर्णके धनुषसे छूटकर आकाशमण्डलमें मिलकर ऐसे शोभित हुए कि मानो बहुत बडा एक ही बाण दिखाई दे रहा है। अधिक क्या कहा जावे जैसे जल वर्षाने वाले बादल जल वर्षा कर पर्वतको छिपा देते हैं, वैसे ही कर्णने क्रुद्ध होकर भीमसेनको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया। ३४-३८

व्यवसायं च पुत्रास्ते ददृशुः सहसैनिकाः ॥ ३८ ॥
तां समुद्रमिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ॥ ३९ ॥
रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्याऽऽसीद्विशाम्पते ।
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवाऽपरम् ॥ ४० ॥
तस्माच्छराः प्रादुरासन्पूरयन्त इवाऽम्बरम् ॥ ४१ ॥
सुवर्णपुङ्खैर्भीमेन सायकैर्नतपर्वभिः ।
गगने रचिता माला काञ्चनीव व्यरोचत ॥ ४२ ॥
ततो व्योम्नि विषक्तानि शरजालानि भागशः ।
आहतानि व्यशीर्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ४३ ॥
कर्णस्य शरजालौघैर्भीमसेनस्य चोभयोः ।
अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे ॥ ४४ ॥
तैस्तैः कनकपुङ्खानां द्यौरासीत्संवृता व्रजैः ।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न स्म वाति समीरणः ॥४५॥
शरजालावृते व्योम्नि न प्राज्ञायत किञ्चन ।
स भीमं छादयन्बाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥

उस स्थानपर तुम्हारे पुत्रलोग सेना के योद्धाओं के सहित भीमसेनके बल पराक्रम और युद्धकार्यको देखकर चकित होगये ॥ उन्होंने कर्णके धनुपसे छूटे हुए समुद्रके समान उछलित उस बाणवर्षाकी तनिक भी पर्वाह नहीं किया,बल्कि क्रोधपूर्वक कर्णकी ओर दौडे ॥ भीमसेनका सुवर्णभूपित बडा धनुप खींचनेसे मण्डलाकार इन्द्रधनुषके समान जान पडने लगा ॥ और उससे सन्नतपर्व स्वर्णपुंख वाले बाणोंका जाल प्रगट होकर आकाशको परिपूरित करने लगा। उस समय भीमसेनके सुवर्णपुंख बाणोंसे आकाशमें सुवर्णकी मालासी बन गयी॥ (३९-४२)

इसके अनन्तर सूतपुत्र कर्णके चलाये हुए आकाशमें स्थित वे सम्पूर्ण बाण प्रारब्धके अनुसार भीमसेनके बाणोंसे कटकर पृथ्वीमें गिर पडे॥ उन दोनोंके अग्नि समान स्पर्श करनेवाले महावेगशील स्वर्णपंखयुक्त बाणोंसे आकाश परिपूरित होगया; सूर्यका तेज छिपा; और वायुकी गति रुक गई । बल्कि उस समय उनके बाणोंके जालसे चारों ओर अन्धकार होगया; वहां पर कुछ भी वस्तु दिखाई नहीं देती थी। (४३-४६)

अनन्तर सूतपुत्र कर्ण भीमसेनके

उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः ।
तयोर्विसृजतोस्तत्र शरजालानि मारिष ॥ ४७ ॥
वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम् ।
अन्योन्यशरसंस्पर्शात्तयोर्मनुजसिंहयोः ॥ ४८ ॥
आकाशे भरतश्रेष्ठ पावकः समजायत ।
तथा कर्णः शितान्बाणान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ४९ ॥
सुवर्णविकृतान्क्रुद्धः प्राहिणोद्वधकांक्षया ।
तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ॥ ५० ॥
विशेषयन्सूतपुत्रं भीमस्तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
पुनश्चाऽसृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ॥ ५१ ॥
अमर्षी बलवान्क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ।
ततश्चटचटाशब्दो गोधाघातादभूत्तयोः ॥ ५२ ॥
तलशब्दश्च सुमहान्सिंहनादश्च भैरवः ।
रथनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव दारुणः ॥ ५३ ॥
योधा व्युपारमन्युद्धाद्दिदृक्षन्तः पराक्रमम् ।

पराक्रमका अपमान करके उन्हें अनगिनत बाणोंसे छिपाते हुए युद्धभूमिमें भीमसेनसे प्रबल होगये । महाराज ! जैसे दो दिशासे दोनों ओरकी वायु चलने पर अग्नि उत्पन्न होती दीखपडती है, वैसेही पुरुषसिंह भीमसेन और कर्णके बाणोंके आपसमें रगड खानेपर आकाशमें भयङ्कर अग्नि उत्पन्न हुई । कर्णने क्रुद्ध हो भीमसेनके वधकी इच्छासे उत्तम पानीसे बुझे हुए सुवर्णभूषित अनेक तीक्ष्ण बाण उनकी ओर चलाए । परन्तु महाबली क्रोधी भीमसेनने कर्णसे भी अधिक पराक्रम प्रकाशित करनेकी इच्छा कर उनके चलाये बाणोंको निज बाणोंसे तीन तीन टुकडे करके पृथ्वीमें गिराया । (४७-५०)

फिर कर्णको खडा रह ! खडा रह ! कहके क्रोधसे अग्नि समान प्रज्वलित हो उनके वध करनेकी इच्छासे अपने भयंकर बाणोंको उनके ऊपर बर्षाने लगे ॥ तिसके अनन्तर आघात निवारणके लिये हाथमें वेष्टित चर्मके ऊपर उन दोनोंके धनुषकी डोरीके आघातसे चट चट ऐसा शब्द होने लगा । तथा उन दोनोंका महाभयंकर धनुषटंकार तलत्राण सिंहनाद रथनेमिशब्दके सङ्ग मिल जानेसे युद्धभूमिके बीच दारुण शब्द उत्पन्न हुआ ॥ (५१-५३)

कर्णपाण्डवयो राजन्परस्परवधैषिणोः ॥ ५४ ॥
देवर्षिसिद्धगन्धर्वाः साधुसाध्वित्यपूजयन् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षं च विद्याधरगणास्तथा ॥ ५५ ॥
ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम् ॥ ५६ ॥
कर्णोऽपि भीमसेनस्य निवार्येषून्महाबलः ।
प्राहिणोन्नव नाराचानाशीविषसमान्रणे ॥ ५७ ॥
तावद्भिरथ तान्भीमो व्योम्नि चिच्छेद पत्रिभिः ।
नाराचान्सूतपुत्रस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ५८ ॥
ततो भीमो महाबाहुः शरं क्रुद्धान्तकोपमम् ।
मुमोचाऽऽधिरथेर्वीरो यमदण्डमिवाऽपरम् ॥ ५९ ॥
तमापतन्तं चिच्छेद राधेयः प्रहसन्निव ।
त्रिभिः शरैः शरं राजन्पाण्डवस्य प्रतापवान् ॥६० ॥
पुनश्चाऽसृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत् ॥ ६१ ॥

उस समय योद्धा लोग एक दूसरेके वधकी इच्छा करनेवाले भीम और कर्णके युद्धको देखनेकी इच्छासे युद्धभूमिमें खडे हुए। और देवऋषि गन्धर्व तथा विद्याधर उन दोनों पुरुषसिंहोंके ऊपर बार बार फूलोंकी वर्षा करके धन्य धन्य कहके उनकी प्रशंसा करने लगे॥ उसके अनन्तर पराक्रमी महाबाहु भीमसेनने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे कर्णके बाणजालको निवारण करके फिर क्रोधपूर्वक उन्हें अपने बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५४-५६

महाबलवान् कर्णने भी युद्धभूमिमें भीमके बाणोंको निवारण कर विषधारी सर्पके समान नौ बाण उनकी ओर चलाये परन्तु महा बाहु भीमसेनने कर्णके चलाये उन बाणोंको अपने नौ चोखे बाणोंसे मार्गहीमें काटकर गिरा दिया। फिर खडा रह! खडा रह! कहके भीमसेनने यमदण्डके समान एक भयङ्कर बाण कर्णकी ओर चलाया ॥ ५७-५९

महाप्रतापी कर्णने भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए उस बाणको अपनी ओर आते देख निर्भयचित्तसे अपने तीन बाणोंसे काटकर गिरा दिया। पाण्डुपुत्र भीमने फिर उनके ऊपर अनेक तीक्ष्णबाणोंकी वर्षा की परन्तु कर्णने निर्भय चित्तसे उनके सम्पूर्ण बाणोंको काट कर पृथ्वी में गिराया ॥ (६०-६१)

※

युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ।
तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६२ ॥
रश्मीन्योक्त्राणि चाऽश्वानां क्रुद्धः कर्णोऽच्छिनन्मृधे ।
तस्याऽश्वांश्च पुनर्हत्वा सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ ६३ ॥
सोऽपसृत्य द्रुतं सूतो युधामन्यो रथं ययौ ।
विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलद्युतिः ॥ ६४ ॥
ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकां च न्यपातयत् ।
स विधन्वा महाबाहू रथशक्तिं परामृशत् ॥ ६५ ॥
तां व्यवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति ।
तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं काञ्चनभूषणाम् ॥ ६६ ॥
आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ।
साऽपतद्दशधा छिन्ना कर्णस्य निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥
अस्यतः सूतपुत्रस्य मित्रार्थे चित्रयोधिनः ।
स चर्माऽऽदत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६८ ॥

महाराज ! जब भीमसेन इस प्रकार कर्णके सङ्ग युद्ध करने लगे, तब सूतपुत्र कर्णने अत्यन्त क्रुद्ध होके अस्त्रमायाका अत्यन्त विचित्र कौशल प्रकाशित किया । कर्णने सन्नतपर्व बाणोंसे भीमसेनके तरकस, धनुषका रोदा, घोडोंकी बागडोर और सारथीके हाथके कोडेको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया । तिसके अनन्तर उनके रथके चारों घोडोंको मार कर उनके सारथीको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ भीमसेनका सारथी कर्णके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भीमके रथको त्यागकर युधामन्युके रथमें चला गया । तब आधिरथपुत्र कर्णने क्रोधसे प्रलयकालकी अग्नि समान प्रज्वलित होकर खेलवाडकी तरह भीमसेनके रथकी ध्वजा और पताका काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया । (६२—६५)

महाबाहु भीमसेनने रोदारहित धनुषको त्याग करके शक्ति उठा कर क्रोध पूर्वक कर्णकी ओर चलाया । कर्णने भयङ्कर लुकके समान उस सुवर्ण भूषित शक्तिको अपनी ओर आती देख, क्रोधके सहित दश बाणोंसे उस शक्तीको काट कर पृथ्वीमें गिरा दिया ! कर्णने अपने मित्र दुर्योधनके प्रयोजन-सिद्धिके वास्ते अद्भुत पराक्रम प्रकाशित करके निज बाणोंसे भीमसेनकी चलाई शक्तिको दश टुकडे करके पृथ्वीमें गिराया । (६५-६८)

खड्गं चाऽन्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा।
तदस्य तरसा क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम् ॥ ६९ ॥
शरैर्बहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत।
स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० ॥
असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन्कर्णरथं प्रति।
स धनुः सूतपुत्रस्य सज्यं छित्त्वा महानसिः ॥ ७१ ॥
पपात भुवि राजेन्द्र क्रुद्धः सर्प इवाऽम्बरात्।
ततः प्रहस्याऽऽधिरथिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ७२ ॥
शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम्।
व्यायच्छत्स शरान्कर्णः कुन्तीपुत्रजिघांसया॥ ७३ ॥
सहस्रशो महाराज रुक्मपुङ्खान्सुतेजनान्।
स वध्यमानो बलवान्कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ७४ ॥
वैहायसं प्राक्रमद्वै कर्णस्य व्यथयन्मनः।
स तस्य चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ॥ ७५ ॥
लयमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत्।

तब भीमसेनने मरनेकी वा युद्धमें विजयकी इच्छा कर स्वर्णभूषित ढाल तलवार ग्रहण किया। परन्तु सूतपुत्र कर्णने निर्भय चित्तसे उनके उत्तम ढालको अपने भयङ्कर बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया। भीमसेन ढालके कटने और रथसे रहित होने पर क्रोधसे मूर्च्छित होगये। फिर शीघ्रताके सहित भीमसेनने उस बहुत बडी तलवारको घुमाकर कर्णके रथकी ओर चलायी। वह तलवार रोदेसे युक्त कर्णके धनुषको काट कर मानो क्रुद्ध सर्पके समान आकाशमण्डलसे पृथ्वीपर गिरी॥ (६८-७२)

तिसके अनन्तर कर्णने क्रुद्ध होकर शत्रुओंके नाश करने वाले अत्यन्त वेगशील दूसरे धनुषपर रोदा चढा लिया, और भीमसेनके वध करनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक उस धनुष पर स्वर्ण पुंखवाले अत्यन्त चोखे एक एक हजार बाण चढा कर एक ही बार उनके ऊपर छोडने लगे। तब बलवान् भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए उन अनेक बाणोंसे पीडित होकर कर्णको अपना पराक्रम दिखाते हुए रथपरसे आकाशकी ओर कूदे। ७२-७५

सूतपुत्र कर्णने विजयकी अभिलाषा करनेवाले भीमसेनके उस अद्भुत कार्यको देख रथ में लीन होकर भीमसेनकी अभिलाषाको निष्फल किया। भीमसेन

तं च दृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम् ॥ ७६ ॥
ध्वजमस्य समासाद्य तस्थौ भीमो महीतले।
तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाऽभ्यपूजयन् ॥ ७७ ॥
यदियेष रथात्कर्णं हर्तुं तार्क्ष्य इवोरगम् ।
स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ७८ ॥
स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ।
तद्विहत्याऽस्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात् ॥ ७९ ॥
संरम्भात्पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम् ।
तौ समेतौ महाराज स्पर्धमानौ महाबलौ ॥ ८० ॥
जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभौ ।
तयोरासीत्सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ८१ ॥
अमृष्यमाणयोः संख्ये देवदानवयोरिव ।
क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ॥ ८२ ॥
दृष्ट्वाऽर्जुनहतान्नागान्पतितान्पर्वतोपमान् ।
रथमार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥ ८३ ॥

कर्णको रथमें लीन होकर बैठे देखकर उनके रथकी ध्वजाका दण्ड पकड पृथ्वी पर खडे हुए। महाराज ! जैसे पक्षिराज गरुड आकाशसे पृथ्वी पर सर्पको आक्रमण करते हैं, वैसे ही भीमसेनको कर्णके वधकी अभिलाषासे आकाशकी ओर उछलते देख, कौरवोंकी ओरके योद्धा और चारण आदि आकाशवासी प्राणी भीमसेनके कार्यकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे॥ भीमसेन अपने रथको पीछे छोड क्षत्रिय धर्मके अनुसार अस्त्र-रहित होकर भी कर्णके संग युद्ध करनेके वास्ते पृथ्वी पर खडे हुए। (७५-७९)

सूतपुत्र कर्ण इस प्रकारसे भीमसेनके आक्रमणको निष्फल कर उन्हें युद्ध करनेके वास्ते खडा देख क्रोधपूर्वक उनकी ओर दौडे। महाबलवान पुरुषोंमें श्रेष्ठ कर्ण और भीमसेन आपसमें युद्ध करनेकी इच्छाकर वर्षाकालके बादलोंके समान गर्जने लगे। तिसके अनन्तर वे दोनों पुरुषसिंह क्रोधसे मतवारे होकर देवासुर युद्धके समान महाघोर संग्राम करने लगे। (७९-८२)

परन्तु भीमसेन अस्त्र रहित थे इसीसे कर्णके अस्त्रोंसे अत्यन्त पीडित हुए, और पहिले अर्जुन के बाणोंसे जो सब मरे हुए पर्वतके समान हाथियोंके समूह पडे हुए थे उसे देख, इस स्थानपर

हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च ।
पाण्डवो जीविताकांक्षी राधेयं नाऽभ्यहारयत् ॥८४॥
व्यवस्थानमथाऽऽकांक्षन्धनञ्जयशरैर्हतम् ।
उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरञ्जयः ॥ ८५ ॥
महौषधिसमायुक्तं हनूमानिव पर्वतम् ।
तमस्य विशिखैः कर्णो व्यधमत्कुञ्जरं पुनः ॥ ८६ ॥
हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय प्राहिणोत्पाण्डुनन्दनः ।
चक्राण्यश्वांस्तथा चाऽन्यद्यद्यत्पश्यति भूतले ॥ ८७ ॥
तत्तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः ।
तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः ॥ ८८ ॥
भीमोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वज्रगर्भां सुदारुणाम् ।
हन्तुमैच्छत्सूतपुत्रं संस्मरन्नर्जुनं क्षणात् ॥ ८९ ॥
शक्तोऽपि नाऽवधीत्कर्णं समर्थः पाण्डुनन्दनः ।

अवश्य ही कर्णके रथकी गति न होसकेगी यही विचार कर अस्त्र रहित होकर उस ही मरे हुए हाथियोंके समूहमें घुस गये । वह अपने प्राणरक्षाकी अभिलाष करके कर्णके रथकी गति रोकनेवाले उन मरे हुए हाथियोंके समूहमें घुस गये; और फिर कर्णके ऊपर प्रहार करनेका साहस न किया ॥ (८२-८४)

महाराज ! शत्रुनाशन भीम अपने शरीरको छिपानेकी इच्छा कर अर्जुनके बाणसे मरे हुए एक बडे हाथीको उठा कर इस भांति स्थित हुए; जैसे महाबलवान् हनुमानने अनेक औषधियोंसे युक्त गन्धमादन पर्वतको उठाया था ॥ सूतपुत्र कर्णने भीमसेनके हाथमें मरे हुए हाथीको देख, उसे अपने बाणोंसे काट कर टुकडे टुकडे कर दिया ॥ तब भीमसेन उस हाथीके कटे हुए अङ्गोंको उठा उठा कर कर्णकी ओर फेंकने लगे। यही नहीं वरन उस समय भीमने रणभूमिमें कटे हुए रथके चक्के अथवा कटे हुए घोडे आदि जिन जिन वस्तुओंको देखा उन सम्पूर्ण वस्तुओंको क्रोधपूर्वक उठाकर कर्णकी ओर फेंकने लगे ॥ (८५-८८)

परन्तु राधापुत्र कर्णने बार बार चलायी हुई भीमसेनकी सम्पूर्ण वस्तुओंको टुकडे टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया। तब भीमसेनने अत्यन्त भयङ्कर वज्र समान अपनी मुट्ठी बांध कर कर्णके नाश करनेकी इच्छा करी । परन्तु मुहूर्त भरके बीच अर्जुनकी प्रतिज्ञाको स्मरण करके कर्ण के

रक्षमाणः प्रतिज्ञां तां या कृता सव्यसाचिना ॥९० ॥
तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शरैः ।
मूर्च्छयाऽभिपरीताङ्गमकरोत्सूतनन्दनः ॥ ९१ ॥
व्यायुधं नाऽवधीचैनं कर्णः कुन्त्या वचः स्मरन् ।
धनुषोऽग्रेण तं कर्णः सोऽभिद्रुत्य परामृशत् ॥ ९२ ॥
धनुषा स्पृष्टमात्रेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
आच्छिद्य स धनुस्तस्य कर्णं मूर्धन्यताडयत् ॥ ९३ ॥
ताडितो भीमसेनेन क्रोधादारक्तलोचनः ।
विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९४ ॥
पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ९५ ॥
यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयं च पाण्डव ।
तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन ॥ ९६ ॥
मूलपुष्पफलाहारो व्रतेषु नियमेषु च ।
उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥ ९७ ॥

ऊपर मुक्का नहीं चलाया। (८८–९०)

तिसके अनन्तर कर्ण भीमसेनको वार वार तीक्ष्ण बाणोंसे विकल कर उन्हें मूर्च्छित करने लगे॥ परन्तु कर्णने पहिले समय कुन्तीको जो वर दिया था, उसे स्मरण करके भीमसेनका नाश नहीं किया। परन्तु उनके निकट जाकर उनके गलेमें अपना धनुष डाल दिया। धनुषके लगते ही भीमसेन क्रोधी सर्पके समान श्वास छोडते हुए कर्णके हाथसे वही धनुष्य लेकर कर्णके मस्तकपर ताडन किया। कर्ण भीमसेनसे ताडित होनेसे क्रोधसे लाल नेत्र कर उनकी हंसी करते हुए बार बार इन कठोर वचनोंको कहने लगे ॥ (९१–९४)

अरे पेटू अल्प मूछवाले मूर्ख! तू केवल पेट पालने ही में वीर है अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या तू कुछ भी नहीं जानता, अरे कादर! तू बालक है कभी भी मेरे समान पुरुषसे युद्धमें प्रवृत्त न होना ॥ रे मूर्ख बालक! जहांपर नानाप्रकारकी खाने चाटने और पीनेकी वस्तुएँ हों तू उसी स्थान पर रहनेके योग्य है, तू कदापि युद्धभूमिमें खडे होने योग्य नहीं है ॥ रे भीम! तेरा फल-मूल आहार करके नियम पूर्वक व्रत करते हुए वनवास करना ही उत्तम है, क्योंकि तू युद्धके कार्योंमें महा मूर्ख है ॥ (९५–९७)

छूत और अछूत।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ !! अत्यन्त उपयोगी

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
११ वैदिक कालकी उदारता,
१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

प्रथम भाग। मू. १)

द्वितीय भाग। मू. ॥)

अतिशीघ्र मंगवाइये।

स्वाध्याय मंडल. औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

[द्रोणपर्व १]

महाभारत ।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

तैय्यार हैं ।

(१) आदिपर्व । पृष्ठ संख्या ११२५. मूल्य म. आ. से ६) रु.
(२) सभापर्व । पृष्ठ संख्या ३५६. मूल्य म. आ. से २) रु.
(३) वनपर्व । पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य म. आ. से ८) रु.
[४] विराटपर्व । पृष्ठ संख्या ३०६ मूल्य. म. आ. से १॥)
[५] उद्योगपर्व । पृष्ठ संख्या ९५३ मूल्य. म. आ. से. ५) रु.
[६] भीष्मपर्व । पृष्ठ संख्या ८०० मूल्य म० आ० से ४) रु.

[५]महाभारत की समालोचना ।

१ प्रथम भाग मू.॥)वी. पी. से॥≈)आने।२द्वितीय भाग मू.॥)वी. पी. से॥≈)आने
महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६) रु. मूल्य होगा।
मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

क युद्धं क मुनित्वं च वनं गच्छ वृकोदर ।
न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भवान् ॥ ९८ ॥
सूदान्भृत्यजनान्दासांस्त्वं गृहे त्वरयन्भृशम् ।
योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद्भोजनार्थं वृकोदर ॥ ९९ ॥
मुनिर्भूत्वाऽथवा भीम फलान्यादत्स्व दुर्मते ।
वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥ १००॥
फलमूलाशने शक्तस्त्वं तथाऽतिथिपूजने ।
न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥ १०१
कौमारे यानि वृत्तानि विप्रियाणि विशाम्पते ।
तानि सर्वाणि चाप्येव रूक्षाण्यश्रावयद्भृशम् ॥ १०२
अथैनं तत्र संलीनमस्पृशद्धनुषा पुनः ।
प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृषस्तदा ॥ १०३
योद्धव्यं मारिषाऽन्यत्र न योद्धव्यं च मादृशैः ।
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चाऽन्यच्च विद्यते ॥ १०४ ॥

हे तात ! युद्ध और मुनियोंके व्रतमें बहुत अन्तर है । इससे तुम जङ्गल में चले जाओ; विशेष करके जङ्गलमें रहने हीकी तुम्हारी रुचि अधिक देखी जाती है । युद्ध करना तुहारे वास्ते किसी प्रकार भी अच्छा नहीं है ॥ हे बुद्धि-हीन भीमसेन ! तू केवल भोजनके वास्ते शीघ्रता करके भोजन पाक करनेवाले और सेवकोंके ऊपर क्रोध करने अथवा वनवासी मुनियोंके व्रतके अनुसार फल मूल भोजन करनेके योग्य है । जंगलमें निवास करना ही तुम्हारे वास्ते उत्तम है, युद्धमें तुम्हारी कुछ भी निपुणता नहीं है । हे भीम ! मैंने जान लिया कि तू फल मूलके भोजन करने और अति-थिसेवा करने योग्य है । तू अस्त्र शस्त्रोंके चलानेमें अत्यन्त ही मूर्ख है ॥ ९८-१०१

महाराज ! कर्ण भीमसेनको इसी प्रकार और बालक अवस्थाके किये हुए अनेक अप्रिय कार्योंके विषय तथा दूसरे नाना प्रकारके वचन सुनाने लगे ॥ अनन्तर ऐसी बुरी अवस्थामें पड़े हुए पाण्डुपुत्र भीमको फिर कर्णने धनुषसे हिला कर कहा । रे राजपुत्र ! तू अब कभी भी मेरे समान पुरुषके साथ युद्ध मत करना । तू अपने बराबर वालेके सङ्ग युद्ध किया कर; मेरे समान पुरुषके सङ्ग युद्ध करनेसे इसी प्रकारकी दशा होती है तथा इससे बढ़कर भी दूसरी दशा हो सकती है ॥ इससे जहांपर

गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे।
गृहं वा गच्छ कौन्तेय किं ते युद्धेन बालक ॥ १०५ ॥
कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारुणम्।
उवाच कर्णं प्रहसन्सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥ १०६ ॥
जितस्त्वमसकृद्दुष्ट कत्थसे किं वृथाऽऽत्मना।
जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः ॥ १०७ ॥
मल्लयुद्धं मया सार्धं कुरु दुष्कुलसम्भव।
महाबलो महाभोगी कीचको निहतो यथा ॥ १०८ ॥
तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु।
भीमस्य मतमाज्ञाय कर्णो बुद्धिमतां वरः ॥ १०९ ॥
विरराम रणात्तस्मात्पश्यतां सर्वधन्विनाम्।
एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन्व्यकत्थयत् ॥ ११० ॥
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः।
ततो राजञ्छिलाधौताञ्शराञ्शाखामृगध्वजः ॥१११॥
प्राहिणोत्सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः।

कृष्ण अर्जुन रणभूमिमें स्थित हैं; तू उसी स्थानपर चला जा; क्योंकि वे लोग युद्धभूमिमें तुम्हारी रक्षा करेंगे अथवा तुम्हें घर लौट जाना उत्तम है तुम बालक हो, युद्धभूमिमें तुम्हारा कुछ भी प्रयोजन नहीं है। (१०१—१०५)

कर्णका यह अति दारुण वचन सुन कर सब लोगोंके सम्मुख ही भीमसेन कर्णसे यह वचन बोले, रे दुष्ट कर्ण! तुम मुझसे अनेक बार जीते जानेपर भी क्यों वृथा बढाई करते हो। साक्षात् महेन्द्रके भी जयापजय पूर्व कालके लोगोंने देखे हैं, तो अन्योंकी बात क्या है? रे हीन कुलोत्पन्न कर्ण! तौ भी तुम युद्धकी इच्छा करते हो तो मुझसे मल्ल युद्ध कर मैंने जैसे महाबलवान् बडे भोगासक्त कीचकको मारा था वैसेही इन सब राजाओंके सामने तुझेही मार डालूंगा। (१०६-१०९)

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कर्णने भीमसेनका अभिप्राय जानकर सब धनुर्द्धारियोंके सामने युद्धको छोड दिया॥ महाराज! सूतपुत्र कर्णने भीमसेनको इसी प्रकार वचन कहते हुए उन्हें रथभ्रष्ट करके यदुकुलभूषण कृष्ण और महात्मा अर्जुनके सम्मुख ही बार बार अपनी बडाई कर के भीमसेन को छोड दिया॥ (१०९-१११)

तब कपिध्वजावाले महावीर अर्जुन

ततः पार्थभुजोत्सृष्टाः शराः कनकभूषणाः ॥ ११२ ॥
गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाऽऽविशन् ।
स भुजङ्गैरिवाऽऽविष्टैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥ ११३ ॥
भीमसेनादपासेधत्सूतपुत्रं धनञ्जयः ।
स च्छिन्नधन्वा भीमेन धनञ्जयशराहतः ॥ ११४ ॥
कर्णो भीमादपायासीद्रथेन महता द्रुतम् ।
भीमोऽपि सात्यकेर्वाहं समारुह्य नरर्षभः ॥ ११५ ॥
अन्वयाद्भ्रातरं संख्ये पाण्डवं सव्यसाचिनम् ।
ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ११६ ॥
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवाऽन्तकः ।
स गरुत्मानिवाऽऽकाशे प्रार्थयन्भुजगोत्तमम् ॥ ११७ ॥
नाराचोऽभ्यपतत्कर्णं तूर्णं गाण्डीवचोदितः ।
तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ॥ ११८ ॥
धनञ्जयभयात्कर्णमुज्जिहीर्षन्महारथः ।

कृष्णकी आज्ञाके अनुसार सूतपुत्र कर्णके ऊपर अनगिनत तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे । वे सब सुवर्णभूषित बाण अर्जुनके भुजबल तथा गाण्डीव धनुषसे छूटकर इस प्रकार कर्णके शरीरमें घुस गये जैसे हंस पक्षी पर्वतके बीच प्रवेश करते हैं । अपने गाण्डीवधनुष से छूटे हुए सर्पों के समान बाणोंके प्रभावसे भीमके समीपसे अर्जुनने कर्णको पृथक् किया, फिर अपने भाईकी पराजयसे अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध हुए; और जिसका धनुष भीमने काटा है उस कर्णको अपने बाणोंसे विद्ध किया । कर्ण उस ही समय भीमको छोडकर अपने रथपर चढके अपनी सेनाके बीच स्थित हुए; और भीमसेन भी अपने भाई अर्जुनके समीप जानेकी इच्छासे सात्यकिके रथकी ओर गमन करने लगे । (१११-११६)

तिसके अनन्तर पराक्रमी अर्जुन यमराजके समान क्रुद्ध हुए और लाल-नेत्र करके कर्णकी ओर मृत्युके समान भयङ्कर एक बाण चलाया । जैसे पक्षि-राज गरुड सर्प ग्रहण करनेकी इच्छासे वेगपूर्वक आकाशसे पृथ्वीपर उतरते हैं; वैसे ही अर्जुनके धनुषसे छूटा हुआ वह बाण वेग पूर्वक कर्णकी ओर गमन कर-ने लगा । परन्तु द्रोणाचार्य पुत्र महारथ अश्वत्थामाने अर्जुनके भयसे कर्णको मुक्त करनेकी इच्छासे उस बाणको आ-काश मार्गहीमें अपने बाणसे काट कर

ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्जुनः ॥११९॥
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसंकुलम् ॥ १२० ॥
तूर्णमभ्याविशद् द्रौणिर्धनञ्जयशरार्दितः ।
ततः सुवर्णपृष्ठानां चापानां कूजतां रणे ॥ १२१ ॥
शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद्बली ।
धनञ्जयस्तथा यान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्यगात् ॥ १२२ ॥
नाऽतिदीर्घमिवाऽध्वानं शरैः सन्त्रासयन्बलम् ।
विदार्य देहान्नाराचैर्नरवारणवाजिनाम् ॥ १२३ ॥
कङ्कबर्हिणवासोभिर्बलं व्यधमदर्जुनः ।
तद्बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ॥ १२४ ॥
पाकशासनिरायस्तः पार्थः स निजघान ह ॥१२५॥ [५८१६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति सञ्जय ।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ १ ॥

गिरा दिया ॥ (११६–११९)

बाणको निष्फल होते देख अश्वत्थामाके ऊपर अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध हुए। 'भागना मत, खड़े होके युद्ध करो,' ऐसा कहके अर्जुनने अश्वत्थामाको चौसठ बाणोंसे विद्ध किया। द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर शीघ्रताके सहित मतवारे हाथियोंसे युक्त रथसेनाके बीच प्रवेश किया।।११९-१२१

तिसके अनन्तर कुन्तीपुत्र महावीर अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुषके शब्दसे रणभूमिमें स्थित सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके सुवर्ण पृष्ठ धनुषको तुच्छ कर दिया। अनन्तर अश्वत्थामाको बहुत दूर न पहुंचते पहुंचते अपने बाणोंके प्रभावसे उन्हें भयभीत करने लगे। और कङ्कपत्र शोभित बाणोंसे हाथी घोड़े और मनुष्योंके शरीरको भेद करते हुए तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे। महाराज! उस समय इन्द्रपुत्र अर्जुन क्रोध पूर्वक हाथी घोड़े और पैदल चलने वाले योद्धाओंसे युक्त तुम्हारी सेनाका इसी प्रकार नाश करने लगे ॥ (१२१–१२५) [५८१६]

द्रोणपर्वमें एकसौ उनतालिस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ चालीस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! नित्य ही हमारी ओरके बहुतेर योद्धा शत्रुओं के हाथसे मारे जाते हैं;

धनञ्जयः सुसंक्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम् ।
रक्षितं द्रौणिकर्णाभ्यामप्रवेश्यं सुरैरपि ॥ २ ॥
ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाप्यायितपराक्रमः ।
सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च ॥ ३ ॥
तदा प्रभृति मां शोको दहत्यग्निरिवाऽऽशयम् ।
ग्रस्तानिव प्रपश्यामि भूमिपालान्ससैन्धवान् ॥ ४ ॥
अप्रियं सुमहत्कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः ।
चक्षुर्विषयमापन्नः कथं जीवितमाप्नुयात् ॥ ५ ॥
अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति सञ्जय सैन्धवः ।
युद्धं तु तद्यथा वृत्तं तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वतः ॥ ६ ॥
यच्च विक्षोभ्य महतीं सेनामालोड्य चाऽसकृत् ।
एकः प्रविष्टः संक्रुद्धो नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ ७ ॥
तस्य मे वृष्णिवीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम् ।

इससे बोध होता है, कि कालके प्रभावसे ही ऐसी घटना हो रही है ॥ नहीं तो जिस स्थानमें अश्वत्थामा और कर्णसे रक्षित सेनाके बीच देवता लोग भी प्रवेश करनेमें समर्थ नहीं हैं; उस स्थलमें अकेले ही अर्जुनने मेरी वैसी सेनाके बीच प्रवेश किया है; उस पर भी अत्यन्त बलवान् कृष्ण भीमसेन और सात्यकिकी सहायतासे उनके पराक्रम की और भी बढती हुई है ॥ (१-३)

हे सञ्जय ! मैं क्या कहूं उस ही समयसे मेरी शोकाग्नि हर घडी मेरे हृदयको भस्म किये डालती है; और इन सम्पूर्ण राजाओं तथा सिन्धुराज जयद्रथ को मैं मरा हुआ ही समझ रहा हूं ॥ विशेष करके सिन्धुराज जयद्रथने अर्जुनका अत्यन्त अप्रिय कार्य किया है, इससे इस समय अर्जुनकी आंखके सामने स्थित रह कर कैसे जीवित रह सकते हैं ? हे सञ्जय ! मैंने अनुमानसे ही जान लिया, सिन्धुराज युद्धसे परित्राण नहीं पासकेंगे । (४–६)

जो हो वह संग्राम जिस प्रकारसे हुआ था तुम उसका यथार्थ वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करो और जिसने अकेले ही कमल वनके नाश करनेवाले क्रुद्ध हाथीके समान अर्जुनकी सहायता के वास्ते वार वार मेरी सेनाके योद्धाओंको तितर बितर करके महासेनाके बीच प्रवेश किया था उस यदुकुल वीर सात्यकिके युद्धका वृत्तान्त भी मेरे समीप विस्तार पूर्वक वर्णन करो । हे सञ्जय !

धनञ्जयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच— तथा तु वैकर्तनपीडितं तं भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम्।
समीक्ष्य राजन्नरवीरमध्ये शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन ॥ ९ ॥
नदन्यथा वज्रधरस्तपान्ते ज्वलन्यथा जलदान्ते च सूर्यः।
निघ्नन्नमित्रान्धनुषा दृढेन स कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ १० ॥
तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैरायोधने वीरतरं नदन्तम्।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं त्वदीयाः सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम् ॥ ११ ॥
अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी।
अलम्बुषः सात्यकिं माधवाग्र्यमवारयद्राजवरोऽभिपत्य ॥ १२ ॥
तयोरभूद्भारत सम्प्रहारो यथाविधो नैव बभूव कश्चित्।
प्रेक्षन्त एवाऽऽहवशोभिनौ तौ योधास्त्वदीयाश्च परे च सर्वे ॥ १३ ॥
आविध्यद्देनं दशभिः पृषत्कैरलम्बुषो राजवरः प्रसह्य।
अनागतानेव तु तान्पृषत्कांश्चिच्छेद बाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ १४ ॥

तुम वक्तृता करनेमें अत्यन्त ही निपुण हो। (६-८)

सञ्जय बोले, महाराज ! शिनिपौत्र सात्यकि राजाओंके सम्मुखमें पुरुषसिंह भीमसेनको कर्णके अस्त्रोंसे पीडित होकर उस भांतिसे गमन करते देख क्रोधसे शरत्कालके तीक्ष्ण किरणवाले सूर्यके समान प्रज्वलित होगये; और वर्षाकाल के बादल समान गर्जकर अपने दृढ धनुषके प्रभावसे तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाको कंपाते और शत्रुओंका संहार करते हुए रथ बढाकर भीमसेनके अनुगामी हुए। रणभूमिमें जब यदुवंशीय श्रेष्ठ महावीर सात्यकि शङ्ख वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथ पर चढके गर्जते हुए गमन करने लगे तब तुम्हारी ओरके कोई भी पुरुष उन्हें निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ (९-११)

युद्धसे पीछे न हटनेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुष सुवर्णमय वर्म धारणकर अपने प्रचण्डधनुषको घुमाके सात्यकिको युद्धभूमिमें निवारण करने लगे ॥ उन दोनोंका जैसा संग्राम हुआ वैसा युद्ध कभी भी देखनेमें नहीं आया था। ऐसा क्या ! उस समय तुम्हारी ओर तथा शत्रुओंकी ओरके सम्पूर्ण पुरुष उन दोनों पराक्रमी वीरोंका युद्ध देखने लगे राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषने सात्यकिको दश बाणोंसे विद्ध किया; शिनिकुल में श्रेष्ठ सात्यकिने भी अलम्बुष के बाणोंको अपने बाणोंसे मार्गहीमें काटके गिरा दिया ॥ (१२-१४)

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विदार्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ १५ ॥
तैः कायमस्याऽन्यनिलप्रभावैर्विदार्य बाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान्रजतप्रकाशानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥ १६ ॥
तथा तु तेनाऽभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः ।
अलम्बुषस्योत्तमवेगवद्भिरश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः ॥ १७ ॥
अथाऽस्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन कालानलसन्निभेन ।
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ॥ १८ ॥
निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं संख्ये यदूनामृषभः प्रमाथी ।
ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः सैन्यानि राजंस्तव संनिवार्य ॥ १९ ॥
अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य तथाऽरिमध्ये परिवर्तमानम् ।
घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि पुनः पुनर्वायुमिवाऽभ्रपूगान् ॥ २० ॥
ततोऽवहन्सैन्धवाः साधुदान्ता गोक्षीरकुन्देन्दुहिमप्रकाशाः ।

उन बाणोंको निष्फल होते देख, राजा अलम्बुषने अग्निके समान तेजस्वी तीन तीक्ष्ण कर्ण पर्यंत खींचे हुए बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया, वे तीनों बाण सात्यकिके वर्मको भेद कर उनके शरीरमें घुस गये ॥ राजा अलम्बुषने उन वेगशील बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके फिर उनके सुवर्णभूषित चारों घोडोंको चार बाणोंसे पीडित किया ॥ कृष्णके समान पराक्रमी सात्यकिने अलम्बुषके बाणोंसे इस प्रकार विद्ध होकर चार तीक्ष्ण बाणोंसे उनके चारों घोडोंका वध किया; सारथीके शिर काटा और कालदण्ड समान भयङ्कर एक भल्लास्त्रसे उनका कुण्डल शोभित चन्द्रमाके समान प्रकाशमान सिर काट के पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (१५-१८)

महाराज ! तब शत्रुओंके नाश करनेवाले महारथ सात्यकि राज पुत्र और राजपौत्र अलम्बुषका वध करके तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको निवारण करते हुए अर्जुनके समीप आनेकी इच्छासे गमन करने लगे ॥ जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंके समूहको तितर बितर करता है वैसे ही सात्यकि शत्रुसेनाके योद्धाओंको पीडित करते हुए गमन करने लगे । उस समय गौके दूध, चन्द्रमा वा बर्फके समान सिन्धु देशीय अत्यन्त शिक्षित घोडे इस प्रकार सारथीके वशमें होकर चलने लगे, कि पुरुषसिंह सात्यकिने जिस स्थानपर जाने की इच्छा करी, उस ही स्थानपर उनका रथ उपस्थित होने लगा ॥ (१९-२१)

हे अजमीढ कुलभूषण ! इस प्रकार

सुवर्णजालावतताः सदश्वा यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥ २१ ॥
अथाऽऽत्मजास्ते सहिताऽभिपेतुरन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः ।
कृत्वा मुखं भारत योधमुख्यं दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥२२ ॥
ते सर्वतः सम्परिवार्य संख्ये शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः ।
स चापि तान्प्रवरः सात्वतानां न्यवारयद्बाणजालेन वीरः ॥ २३ ॥
निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः ।
दुःशासनस्याऽभिजघान वाहानुद्यम्य बाणासनमाजमीढ ॥ २४ ॥
ततोऽर्जुनो हर्षमवाप संख्ये कृष्णश्च दृष्ट्वा पुरुषप्रवीरम् ॥ २५ ॥ [५८४१]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलंबुषवधे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

सञ्जय उवाच— तमुद्यतं महाबाहुं दुःशासनरथं प्रति ।
त्वरितं त्वरणीयेषु धनञ्जयजयैषिणम् ॥ १ ॥
त्रिगर्तानां महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
सेनासमुद्रमाविष्टमनन्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥
अथैनं रथवंशेन सर्वतः सन्निवार्य ते ।
अवाकिरञ्छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ॥ ३ ॥
अजयद्राजपुत्रांस्तान्भ्राजमानान्महारणे ।

सात्यकिको आगे बढे आते देख तुम्हारे पुत्र लोग अपनी सेनाके योद्धाओंमें श्रेष्ठ दुःशासनको आगेकर सात्यकिको चारों ओरसे घेरकर अस्त्रशस्त्रोंसे उनके ऊपर प्रहार करने लगे। शत्रुनाशन सात्यकिने अपने बाणोंको चलाकर उन सम्पूर्ण योद्धाओंके बाणजालको निवारण किया और अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे दुःशासनके चारों घोडोंका वध किया॥ महाराज ! कृष्ण और अर्जुन पुरुषसिंह सात्यकिके कार्यको देखकर अत्यन्त ही हर्षित हुए॥ (२२–२५) [५८४१]

द्रोणपर्वमें एकसौ चालीस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ इकतालिस अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! त्रिगर्तसेनाके महारथी लोग अर्जुनके हितकी इच्छा करनेवाले सात्यकिको अगाध समुद्रके समान महासेनाके बीच प्रवेश करते और शीघ्रताके सहित दुःशासनके रथके समीप उपस्थित देखकर क्रोधपूर्वक चारों ओरसे उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ परन्तु सत्यपराक्रमी सात्यकिने गदा, प्रास, तलवार और धनुषोंके बीचमें घिरकरभी उन बलवान् शूरवीर योद्धाओंमेंसे पचास राजकुमारोंको पराजित किया ॥ (१–४)

एकः पञ्चाशतं शत्रून्सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥
सम्प्राप्य भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् ।
असिशक्तिगदापूर्णमप्लवं सलिलं यथा ॥ ५ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे ।
प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्यामि लाघवात् ॥ ६ ॥
उदीचीं दक्षिणां प्राचीं प्रतीचीं विदिशस्तथा ।
नृत्यन्निवाऽऽचरच्छूरो यथा रथशतं तथा ॥ ७ ॥
तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
त्रिगर्ताः संन्यवर्तन्त सन्तप्ताः स्वजनं प्रति ॥ ८ ॥
तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन् ।
नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवाऽङ्कुशैः ॥ ९ ॥
तैर्व्यवाहरदार्यात्मा मुहूर्तादेव सात्यकिः ।
ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः ॥ १० ॥
तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम् ।
अथ पार्थं महाबाहुर्धनञ्जयमुपासदत् ॥ ११ ॥
तरन्निव जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् ।

महाराज! उस समय मैंने सात्यकिका यह अद्भुत कार्य देखा, कि उसे पश्चिम ओर देखकर पूर्वदिशामें दृष्टि किया तो उसही समय उसको पूर्वदिशामेंभी देखा; तथा पूर्व से उत्तर और उत्तर से दक्षिण दिशामें, उसी प्रकार सब ओर घूमते हुए अकेले ही पराक्रमी सात्यकिको सैकडों रथियोंके समान देखने लगा। त्रिगर्त्त-देशीय योद्धा लोग सिंहके समान पराक्रमी सात्यकिके ऐसे अद्भुत कार्यको देख दुःखित होकर युद्धमे निवृत्त हुए ॥ ५-८

महाराज! जैसे मतवारे हाथीको वशमें करनेके निमित्त अंकुशसे पीडित करते हैं वैसे ही शूरसेनदेशीय कितने ही पराक्रमी योद्धालोग सात्यकिको अपने वशमें करनेके वास्ते उसे तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ अत्यन्त पराक्रमी सात्यकिने क्षणभरके बीच उन सम्पूर्ण योद्धाओंको निवारण किया फिर कलिङ्गसेनाके बीच प्रवेश करके युद्ध करने लगे॥ अनन्तर महाबाहु सात्यकिने उस दुर्जय कलिङ्गसेनाको अतिक्रम करके अर्जुनको देखा। हे भारत! जैसे कोई पुरुष जलमें तैरते हुए थककर किनारा पाके आनन्दित होता है, वैसे ही सात्यकि पुरुषव्याघ्र अर्जुनको देखकर

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत् ॥ १२ ॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत् ।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः ॥ १३ ॥
एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः ।
सर्वान्योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥
एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपद्रवम् ।
तव प्राणैः प्रियतमः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥ १५ ॥
एष द्रोणं तथा भोजं कृतवर्माणमेव च ।
कदर्थीकृत्य विशिखैः फाल्गुनाऽभ्येति सात्यकिः॥१६॥
धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान्वरान्वरान् ।
शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फाल्गुनाऽभ्येति सात्यकिः ॥ १७ ॥
कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महाबलः ।
तव दर्शनमन्विच्छन्पाण्डवाऽभ्येति सात्यकिः॥ १८ ॥
बहूनेकरथेनाऽऽजौ योधयित्वा महारथान् ।
आचार्यप्रमुखान्पार्थ प्रयात्येष स सात्यकिः ॥ १९ ॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम् ।
प्रेषितो धर्मराजेन पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः ॥ २० ॥

प्रसन्न हुए ॥ (९-१२)

श्रीकृष्ण सात्यकिको आते हुए देख, अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! यह देखो शिनिपौत्र सात्यकि तुम्हारे समीप आ-रहा है वह तुम्हारा मित्र और शिष्य है और वह महा पराक्रमी है । इस पुरुष-सिंहने सम्पूर्ण योद्धाओंको तृणके समान समझकर उन्हें पराजित किया है॥ वह तुम्हें प्राणसेभी अधिक प्रिय है वही सात्य कि कौरवी सेनामें भयङ्कर उपद्रव मचा-कर तुम्हारी ओर चला आता है॥ १३-१५

उसने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे द्रोणाचार्य और भोजराज कृतवर्माको तुच्छ समझा है, और अस्त्र शस्त्रोंकी विद्यामें निपुण इस महावीर सात्यकिने धर्मराज युधिष्ठिरकी प्रिय कामनासे मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध किया है । उसने तुम्हें देखनेकी इच्छासे कुरुसेनाके बीच प्रवेश किया है, सात्यकिने एक रथपर चढकर ही द्रोणाचार्य आदि महारथियोंके सङ्ग युद्ध किया है। देखो धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे अपने बलके आसरेसे शत्रु सेना के योद्धाओंको तितर बितर करके सात्यकि इधर आरहा है । (१६-२०)

यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु कथञ्चन ।
सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ २१ ॥
कुरुसैन्याद्विमुक्तो वै सिंहो मध्याद्गवामिव ।
निहत्य बहुलाः सेनाः पार्थपोऽभ्येति सात्यकिः॥ २२ ॥
एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पङ्कजसन्निभैः ।
आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः॥ २३ ॥
एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं रणे ।
निहत्य जलसन्धं च क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ २४ ॥
रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्दमाम् ।
तृणवन्न्यस्य कौरव्यानेष आयाति सात्यकिः ॥ २५ ॥
ततः प्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत् ।
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः॥ २६ ॥
नहि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव ।
सात्वतेन विहीनः स यदि जीवति वा न वा ॥ २७ ॥
एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः स पार्थिवः ।

इस समय सम्पूर्ण कौरवी सेनाके बीच भी जिसके समान कोई योद्धा नहीं मिल सकता देखो यह युद्धदुर्मद सात्यकि आ रहा है ॥ जैसे गौवोंके झुण्डसे सिंह अनायास ही मुक्त होता है वैसे ही सात्यकि अनेक योद्धाओंका वध करके कुरुसेनासे पार होकर इधर आरहा है ॥ वह अपने शस्त्रबलसे सहस्रों राजाओंके सुन्दर सिरको कमलपुष्पकी भांति काटके उनके शरीरसे रणभूमिको परिपूर्ण करते हुए तुम्हारे समीप आरहा है ॥ (२१-२३)

आज सात्यकिने सौ भाइयोंके सहित कुरुराज दुर्योधनको पराजित करके राजा जलसंधका वध किया है । अधिक क्या कहें आज सात्यकिने अपने शस्त्रके प्रभावसे कुरुसेनाके योद्धाओंको तृण समान समझकर उनके रुधिर मांस और कीचडसे युक्त रुधिरकी नदी रणभूमिके बीच उत्पन्न किया ॥ (२४—२५)

तिसके अनन्तर अर्जुन हर्षित होकर कृष्णसे बोले, हे महाबाहो केशव ! सात्यकिके आगमनसे मैं सन्तुष्ट नहीं होता हूं ॥ धर्मराजकी कैसी दशा हुई है उसे मैं कुछ भी नहीं समझ सकता हूं; वह सात्यकिके विना जीवित हैं या नहीं मुझे इस विषयमें सन्देह है ॥ हे कृष्ण ! धर्मराज की रक्षा करना ही उसका कर्तव्य कार्य

तमेव कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः ॥ २८ ॥
राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चाऽनिपातितः।
प्रत्युद्याति च शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे ॥ २९ ॥
सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्धवार्थे समाहितः।
ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः॥ ३० ॥
जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः।
श्रान्तश्चैष महाबाहुरल्पप्राणश्च साम्प्रतम् ॥ ३१ ॥
परिश्रान्ता हयाश्चाऽस्य हययन्ता च माधव।
न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव ॥ ३२ ॥
अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन्समागमे।
कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ३३ ॥
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुङ्गवः।
अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ॥ ३४ ॥
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान्सात्यकिर्भवेत्।
व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव ॥ ३५ ॥

था। उसे न करके वह मेरे समीप क्यों आरहा है? (२६-२८)

धर्मराजको द्रोणाचार्यके हाथमें समर्पण किया गया है; जयद्रथ भी अभी तक नहीं मारा गया; और भूरिश्रवा इस समय सात्यकिकी ओर बढ रहे हैं॥ इससे जयद्रथके वधके वास्ते मुझे अत्यन्त कठिन भारको उठाना पडा। क्योंकि इस समय धर्मराजका संवाद, सात्यकि की रक्षा और सिन्धुराज जयद्रथका वध यह तीन अवश्य ही करने योग्य कार्य उपस्थित हुए हैं, परन्तु सूर्य अस्त हुआ चाहता है, इधर महारथ सात्यकि भी थके हुए हैं, उनके अस्त्र शस्त्र भी प्रायः निःशेषित हुए हैं; तथा उनके रथके घोडे और सारथी सब ही थक गये हैं, परन्तु भूरिश्रवा श्रमहीन और सहायतासे युक्त है॥ (२९-३२)

हे कृष्ण! इस समय भूरिश्रवाके सङ्ग युद्ध करनेसे क्या सात्यकिका मङ्गल होवेगा? महाबलवान् सात्यकि समुद्रके समान महासेनासे पार होकर इस समय में क्या गोपद प्राप्त होकर उसके पार न हो सकेंगे? अस्त्रविद्याके जाननेवाले कौरवोंमें मुख्य भूरिश्रवाके सङ्ग युद्ध करके क्या सात्यकि कुशलपूर्वक इस युद्धसे पार हो सकेंगे? हे कृष्ण! मेरे विचारसें धर्मराजने सात्यकिको मेरे

आचार्याद्भयमुत्सृज्य यः प्रैषयत सात्यकिम् ।
ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवाऽऽमिषम् ॥ ३६ ॥
नित्यमाशंसते द्रोणः कच्चित्स्यात्कुशली नृपः॥३७॥ [५८७८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिभुजच्छेदने एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

सञ्जय उवाच— तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
क्रोधाद्भूरिश्रवा राजन्सहसा समुपाद्रवत् ॥ १ ॥
तमब्रवीन्महाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम् ।
अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्विषयमित्युत ॥ २ ॥
चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे ।
नहि मे मोक्ष्यसे जीवन्यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥
अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम् ।
नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥ ४ ॥
अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले ।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ५ ॥
अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया ।

समीप भेजकर बहुत ही अन्याय कार्य किया है । जैसे आकाशचारी बाजपक्षी मांस ग्रहण करनेके वास्ते चेष्टा करता है वैसे ही द्रोणाचार्य सदा ही युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी इच्छा कर रहे हैं, इससे धर्मराज कुशलसे हैं या नहीं इसमें मुझे सन्देह है ॥ (३३–३७) [५८७८]

द्रोणपर्वमें एकसौ इकतालिस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ बियालिस अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! भूरिश्रवा युद्धदुर्मद सात्यकिको इस प्रकार आते हुए देख क्रोध पूर्वक सहसा उनकी ओर दौडके यह वचन बोले,हे दाशार्ह ! आज तुम प्रारब्धसे ही मेरी दृष्टिके सं-म्मुख उपस्थित हो, आज मैं युद्धभूमिमें अपनी सब दिनकी मनोकामना पूर्ण करूंगा, यदि तुम युद्ध त्याग कर भाग न जाओगे, तो जीते जी मेरे निकटसे मुक्त न होसकोगे ॥ तुम सदा ही अपने बलका अभिमान करते हो परन्तु आज मैं तुम्हारा वध करके कुरुराज दुर्योधनको आनन्दित करूंगा ॥ (१–४)

आज तुम मेरे बाण रूपी अग्निसे भस्म होकर पृथ्वीमें गिरोगे तब महा-वीर कृष्ण अर्जुन तुम्हे देखते ही रह जायेंगे ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर आज तुमको

सव्रीडो भविता मत्तो येनाऽसीह निवेशितः ॥ ६ ॥
अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनञ्जयः ।
त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥ ७ ॥
चिराभिलषितो ह्येष त्वया सह समागमः ।
पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा ॥ ८ ॥
अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत ।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम् ॥ ९ ॥
अद्य संयमनीं याता मया त्वं निहतो रणे ।
यथा रामानुजेनाऽऽजौ रावणिर्लक्ष्मणेन ह ॥ १० ॥
अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव ।
हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥ ११ ॥
अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः ।
तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि ये त्वया निहता रणे ॥१२ ॥
मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे ।
सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥ १३ ॥

मेरे हाथसे मरेहुए सुन कर अत्यन्त लज्जित होंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ क्योंकि उनकी आज्ञासे ही तुमने इस व्यूहके बीच प्रवेश किया है ॥ तुम मेरे हाथसे मर कर रुधिर पूरित शरीरसे युक्त होकर पृथ्वीमें शयन करोगे, तो पृथापुत्र अर्जुन भी आज मेरे पराक्रमको मालूम करेंगे ॥ पहिले राजा बलिके सङ्ग जैसे इन्द्रका युद्ध हुआ था मेरी सदासे ही इच्छा थी, कि तुम्हारे सङ्ग मेरा वैसा ही संग्राम उपस्थित होवे ॥ (५-८)

हे सात्यकि ! इससे मैं आज तुम्हारे सङ्ग महा घोर युद्धमें प्रवृत्त होऊंगा आज तुम मेरे बलवीर्य तथा पराक्रमके विषयको विशेषरूपसे मालूम करोगे ॥ हे सात्यकि ! जैसे लङ्कापति रावणका पुत्र लक्ष्मणके बाणसे मारा गया था आज तुम भी मेरे बाणोंके प्रहारसे मरकर यमलोकमें गमन करोगे ॥ तुम्हारे मरनेसे धर्मराज युधिष्ठिर और कृष्ण अर्जुन उत्साहरहित होकर आज युद्ध त्यागके गमन करेंगे ॥ हे सात्यकि ! आज मैं अपने चोखे बाणोंसे तुम्हारा वध करके तुम्हारे अस्त्रोंसे मरे हुए शूरवीर पुरुषोंकी विधवा स्त्रियोंको आनन्दित करूंगा ॥ जब तुम मेरी दृष्टिके संमुख दिखाई पडे हो तो मेरे संमुखसे आज इस भांति छुटकारा न पासकोगे, जैसे छोटे हरिण सिंहके

युयुधानस्तु तं राजन्प्रत्युवाच हसन्निव।
कौरवेय न सन्त्रासो विद्यते मम संयुगे ॥ १४ ॥
नाऽहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण तु केवलम्।
स मां निहन्यात्संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधम् ॥१५॥
समास्तु शाश्वतीर्हन्याद्यो मां हन्याद्धि संयुगे।
किं वृथोक्तेन बहुना कर्मणा तत्समाचर ॥ १६ ॥
शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते।
श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते ॥ १७ ॥
चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्याऽस्तु कौरव।
त्वरते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकांक्षिणी ॥ १८ ॥
नाऽहत्वाऽहं निवर्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम।
अन्योन्यं तौ तथा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ ॥ १९ ॥
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे।
समेतौ तौ महेष्वासौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ २० ॥

संमुखसे छुटकारा नहीं पाते ॥ ९-१३

भूरिश्रवाका वचन सुन कर सात्यकिने हंसकर उन्हें यह उत्तर दिया, हे कौरव्य! युद्धमें मुझे कभी भय नहीं होता, जो पुरुष रणभूमिमें मुझे अस्त्र रहित कर सकेगा वह मेरा वध करनेमें समर्थ हो सकेगा। नहीं तो केवल वचनसे मुझे भयभीत करनेको किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है॥ युद्धभूमिमें जो पुरुष मेरा वध करेगा, वह बहुत दिनों तक संसारमें विघ्न रहित होके अपने अनेक शत्रुओंको मार सकेगा! जो हो, बहुत बात कहनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, तुमने जैसा वचन कहा है उसे सत्य करनेमें तत्पर हो जाओ ॥ (१४-१६)

हे वीर! शरत् कालके बादलके निष्फल गर्जनके समान तुम्हारे व्यर्थ गर्जनको सुनकर मुझे हंसी आती है। और तुम्हारे सङ्ग युद्ध करनेकी मुझे भी अत्यन्त इच्छा हो रही है। तुम्हारी जो मेरे सङ्ग युद्ध करनेकी सदासे इच्छा है सो आज सिद्ध होवेगी। हे अधम पुरुष! आज मैं विना तुम्हारा वध किये कदापि युद्धसे निवृत्त न होऊंगा। (१७-१९)

महाराज! महाधनुर्द्धारी तेजस्वी पुरुषसिंह सात्यकि और भूरिश्रवा आपसमें एक दूसरेको वचनोंसे विद्ध करते हुए हथिनीके लिये झगडनेवाले दो मतवारे हाथियोंके समान क्रुद्ध होकर एक दूसरेके ऊपर अस्त्रशस्त्रोंका प्रहार करने लगे; तथा

द्विरदाविव संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ ।
भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुररिन्दमौ ॥ २१ ॥
शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम् ।
सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ॥ २२ ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः ।
दशभिः सात्यकिं विध्वा सौमदत्तिरथाऽपरान् ॥ २३॥
मुमोच निशितान्बाणाञ्जिघांसुः शिनिपुङ्गवम् ।
तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशाम्पते ॥ २४॥
अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत्सात्यकिः प्रभो ।
तौ पृथक्शस्त्रवर्षाभ्यामवर्षेतां परस्परम् ॥ २५ ॥
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २६ ॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यऽकृन्तताम् ।
निर्भिन्दन्तौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम् ॥२७॥
व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ ।

जलकी वर्षा करनेवाले दो बादलोंकी भांति एक दूसरेके ऊपर अपने भयङ्कर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ (१९–२२)

महाराज ! सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाने सात्यकिके वध करनेकी अभिलाष करके अपने शीघ्रगामी बाणोंसे उन्हें छिपा कर फिर दश तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया, तिसके अनन्तर पुरुषसिंह भूरिश्रवा सात्यकिके नाश करनेकी इच्छा करके उनके ऊपर अगणित बाणोंकी वर्षा करने लगे। उन बाणोंको समीप न आते ही आते सात्यकिने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे मार्गहीमें काटके गिरा दिया। इसी प्रकारसे कुरुकुल श्रेष्ठ भूरिश्रवा और यदुकुलकी कीर्त्ति बढाने वाले सात्यकि लगातर बाणोंकी वर्षा करने लगे। (२२–२६)

जैसे नखसे दो शार्दूल और दांतसे दो मतवारे हाथी आपसमें एक दूसरेके शरीर पर प्रहार करते हैं वैसेही वे दोनों वीर शक्ति और अनेक बाणोंको चला कर आपसमें एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे। बाणोंकी चोटसे दोनोंके शरीर क्षत विक्षत होगये और उनके शरीरसे लगातार रुधिरकी धारा बहने लगी ॥ महाराज ! कुरुकुलकी कीर्ति बढानेवाले वे दोनों महात्मा इसी प्रकार प्राणपणसे युद्ध करते हुए एक दूसरेको

एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥ २८ ॥
परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ ।
तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ ॥ २९ ॥
यियासन्तौ परं स्थानमन्योन्यं सञ्जगर्जतुः ।
सात्यकिः सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३० ॥
हृष्टवद्धार्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम् ।
सम्प्रैक्षन्त जनास्तौ तु युध्यमानौ युधां पती ॥ ३१ ॥
यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव कुञ्जरौ ।
अन्योन्यस्य हयान्हत्वा धनुषी विनिकृत्य च ॥ ३२ ॥
विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे ।
आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ॥ ३३ ॥
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ विचेरतुः ।
चरन्तौ विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भागशः ॥३४॥
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ ।
सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ॥ ३५ ॥

पीडित करके दो मतवारे यूथपति गजराजके समान युद्ध करने लगे ॥ (२७–२९)

ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाने योग्य वे दोनों वीर शीघ्रतासे पुण्यलोकमें गमन करनेकी इच्छासे प्रसन्न होके सेनाके योद्धाओंके सम्मुख ही में एक दूसरेके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करके सिंहनाद करने लगे ॥ महाराज! वे दोनों वीर मानो हथिनीको ग्रहण करनेकी इच्छा वाले दो मतवारे यूथपति गजराजके समान युद्ध करने लगे। उस समय सम्पूर्ण सेनाके योद्धा उन दोनों वीरोंका युद्ध देखने लगे। (२९–३२)

तिसके अनन्तर वे दोनों पुरुषसिंह एक दूसरेके रथके घोडोंका वध करके तथा आपसमें एक दूसरेके धनुषको काट कर दोनों रथरहित होगये, तब वे दोनों वीर तलवारकी युद्ध करनेके वास्ते भली भांतिसे चित्रित मनोहर ढाल और उत्तम तलवार ग्रहण करके युद्धभूमिमें भ्रमण करने लगे। शत्रुनाशन भूरिश्रवा और सात्यकि यथारीतिसे मण्डलाकार गतिसे पैंतराके सहित युद्ध विषयक नाना प्रकारके कौशल दिखाते हुए दोनोंही वार वार एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे। (३२-३५)

वे दोनों यशस्वी वीर सुवर्णचित्रित सनाह तनुत्राण सुन्दर आभूषण पहने

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम् ।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयन्तौ यशस्विनौ ॥ ३६ ॥
असिभ्यां सम्प्रजह्राते परस्परमरिन्दमौ ।
उभौ छिद्रैषिणौ वीरावुभौ चित्रं ववल्गतुः ॥ ३७ ॥
दर्शयन्तावुभौ शिक्षां लाघवं सौष्ठवं तथा ।
रणे रणकृतां श्रेष्ठावन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥ ३८ ॥
मुहूर्तमिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥ ३९ ॥
असिभ्यां चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप ।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ ४० ॥
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ ४१ ॥
तयो राजन्भुजाघातनिग्रहप्रग्रहास्तथा ।
शिक्षाबलसमुद्भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥ ४२ ॥
तयोर्नृवरयो राजन्समरे युध्यमानयोः ।
भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥ ४३ ॥

हुए हाथमें तलवार लेकर इधर उधर घूमते एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते साधते कूदते शीघ्रताके सहित तलवारको चलाते और नानाप्रकारकी गति दिखाते हुए अद्भुतरूपसे तलवार युद्ध करने लगे। वे दोनों युद्ध-विद्या जाननेवाले पराक्रमी वीर अपनी फुर्ती सावधानता और अस्त्र विद्याका बल दिखाते हुए दूसरेको पीडित करने लगे। और सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओं के सम्मुख ही में दोनों वीर आपसमें तलवारकी चोटसे अत्यन्त पीडित होकर मुहूर्त भर विश्राम करने लगे ॥ (३५–३९)

तिसके अनन्तर पुरुषसिंह सात्यकि और भूरिश्रवा अपने तलवारोंसे चन्द्र प्रतिमाभूषित एक दूसरेके ढालको काट कर बाहु युद्ध करने लगे ॥ चौडी छाती और लम्बी भुजावाले वे दोनों पुरुष अपनी लोहमयी परिघके समान भुजाओंसे आपसमें युद्ध करने लगे ॥ महाराज ! उन दोनों वीरोंकी युद्धनिपुणता भुजाका बन्धन और फिर छुडाकर युद्ध करना देखकर सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग हर्षित होने लगे ॥ (४०–४२)

जिस समय वे दोनों पुरुष उस प्रकार युद्ध करते थे उस समय ऐसा भयङ्कर

द्विपाविव विषाणाग्रैः शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
भुजयोक्त्रावबन्धैश्च शिरोभ्यां चाऽवघातनैः ॥ ४४ ॥
पादाकर्षसन्धानैस्तोमरांकुशलासनैः ।
पादोदरविबन्धैश्च भूमावुद्भ्रमणैस्तथा ॥ ४५ ॥
गतप्रत्यागताक्षेपैः पातनोत्थानसम्प्लुतैः ।
युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुङ्गवौ ॥ ४६ ॥
द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत ।
तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ ॥ ४७ ॥
क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः।
पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं रणे वरं सर्वधनुर्धराणाम्॥ ४८ ॥
प्रविष्टो भारतीं भित्त्वा तव पाण्डव पृष्ठतः ।
योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः ॥ ४९ ॥

शब्द उत्पन्न होने लगा, जैसे वज्रकी चोटसे पर्वत टूटनेपर महाघोर शब्द प्रकट होता है ॥ जैसे दांतसे दो मतवारे हाथी और सींगसे दो बलवान् बैल युद्ध करते हैं वैसेही कुरुवंशकी कीर्त्ति बढाने- वाले भूरिश्रवा और यदुवंशियोंमें मुख्य सात्यकि भुजाओंसे भुजाका बन्धन, सिरसे सिरकी टक्कर, चरणसे चरण और घुटनेसे प्रहार करते हुए आपसमें संग्राम करने लगे, उससे ऐसा बोध होने लगा मानों अंकुशसे तोमर संयुक्त होरहा है। इसी प्रकार कभी चरणसे बांधते कभी शरीर ग्रहण करते कभी पृथ्वी पर घुमाके फेंकते कभी दूर हट आते फिर घूम कर युद्ध करने लगते; एक दूसरेकी निन्दा करते हुए ताल ठोकके युद्ध करके पृथ्वीमें गिरते, उठ खडे होते, कूदते और नानाप्रकारके युद्ध कौशल दिखाते हुए आपसमें मल्लयुद्ध करने लगे ॥ ऐसा क्या; बाहुयुद्धकी जो बत्तीस प्रकारकी क्रिया शास्त्रमें कही गयी हैं, युद्ध में प्रवृत्त हुए वे दोनों महाबली पुरुष रण- भूमिमें सम्पूर्ण कौशल प्रकाशित करने लगे ॥ (४३—४७)

तिसके अनन्तर अस्त्र रहित सात्यकि को इस प्रकार युद्ध करते देख श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन ! यह देखो सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ सात्यकि रथ रहित होकर युद्ध कर रहे हैं। उन्होंने तुम्हारा अनुगमन करके महाबली कौरवी सेनाको भेदकर सम्पूर्ण योद्धाओंके संग युद्ध किया है। इस समय बहुतसी दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवाने अनेक योद्धाओं के सङ्ग

परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं सम्प्राप्तो भूरिदक्षिणः ।
युद्धाकांक्षी समायान्तं नैतत्सममिवाऽर्जुन ॥ ५० ॥
ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदः ।
उद्यम्याऽभ्याहनद्राजन्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५१ ॥
रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः ।
केशवार्जुनयो राजन्समरे प्रेक्षमाणयोः ॥ ५२ ॥
अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ।
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशङ्गतम् ॥ ५३ ॥
परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तवाऽन्तेवासिनं वीरं पालयाऽर्जुन सात्यकिम् ॥ ५४ ॥
न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरोऽर्जुन ।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥ ५५ ॥
अथाऽब्रवीद्धृष्टमना वासुदेवं धनञ्जयः ।
पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुङ्गवम् ॥ ५६ ॥

युद्ध करके थके हुए सात्यकिको आगे बढे आते देख युद्धकी अभिलाषा करके उन्हें आक्रमण किया है यह बहुत ही अनुचित मालूम होता है॥ (४८–५०)

महाराज! श्रीकृष्ण इसी प्रकारसे कह रहे थे, उसी समय युद्ध दुर्मद भूरिश्रवा अत्यन्त क्रुद्ध हुए और जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीके शरीर पर प्रहार करता है वैसे ही सम्पूर्ण योद्धाओंमें अग्रणी रथमें बैठे हुए कृष्ण अर्जुन के संमुख ही में भूरिश्रवाने सात्यकिको उठा कर दे मारा और लातसे उनके शरीरमें प्रहार करने लगे ॥ महाबाहु कृष्ण सात्यकिकी ऐसी दशा देखकर फिर अर्जुनसे बोले, हे पापरहित अर्जुन! देखो जो पुरुष युद्धभूमिमें अनगिनत योद्धाओंमें अजेय था; आज यदुवंशी और अन्धकवंशियोंमें अग्रणी वही सात्यकि भूरिश्रवाके हाथमें पडकर उनके वशमें होगया है। हे अर्जुन! इससे तुम सात्यकिकी रक्षा करो ॥ (५१–५४)

वह तुम्हारे शिष्य और अत्यन्त पराक्रमी योद्धा हैं और विशेष करके तुम शत्रुओंके नाश करनेमें समर्थ हो। हे पुरुषश्रेष्ठ! जिससे तुम्हारी सहायता करनेके वास्ते आकर सात्यकि भूरिश्रवा के हाथसे न मारे जावें, तुम सावधान होकर शीघ्रताके सहित वही उपाय करो॥ श्रीकृष्णके वचनको सुनकर अर्जुन प्रसन्न चित्तसे कहने लगे, हे महाबाहो! यह

महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूथपम् ।
सञ्जय उवाच— इत्येवं भाषमाणे तु पाण्डवे वै धनञ्जये ॥ ५७ ॥
हाहाकारो महानासीत्सैन्यानां भरतर्षभ ।
तदुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद्भुवि ॥ ५८ ॥
स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन्भूरिदक्षिणः ।
व्यरोचत कुरुश्रेष्ठ सात्वतप्रवरं युधि ॥ ५९ ॥
अथ कोशाद्विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे ।
मूर्द्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यताडयत् ॥ ६० ॥
ततोऽस्य च्छेत्तुमारब्धः शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
तावत्क्षणात्सात्वतोऽपि शिरः सम्भ्रमयंस्त्वरन् ॥६१॥
यथा चक्रं तु कौलालो दण्डविद्धं तु भारत ।
सहैव भूरिश्रवसो बाहुना केशधारिणा ॥ ६२ ॥
तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे ।
वासुदेवस्ततो राजन्भूयोऽर्जुनमभाषत ॥ ६३ ॥
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशङ्गतम् ।

देखो, जैसे वनके बीच यूथपति सिंह महामतवारे हाथीको संग लेकर गमन करता है वैसे ही कौरवोंमें श्रेष्ठ भूरिश्रवा सात्यकिको ग्रहण करके क्रीडा कर रहे हैं ॥ (५५–५७)

सञ्जय बोले, महाराज! अर्जुन श्रीकृष्णसे इसी प्रकार कह रहे थे उसी समय महाबाहु भूरिश्रवाने सात्यकिको उठाकर पृथ्वीपर पटका और उनकी छातीमें लात मारी। उसे देख सम्पूर्ण सेनाके बीच हाहाकार शब्दके सहित अत्यन्त कोलाहल होने लगा। जैसे सिंह हाथीको ग्रहण करके शोभित होता है वैसेही बहुतसी दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवा युद्धभूमिमें सात्यकिको पटकके शोभित होने लगे। तिसके अनन्तर भूरिश्रवाने मियानसे तलवार निकाल कर एक हाथसे सात्यकिका केश पकडा और उसकी छातीमें लात मारी फिर उनके कुण्डल भूषित सिरको काटनेकी इच्छा करने लगे। (५७–६१)

परन्तु जैसे कुम्हार दण्डसे अपने चाकको घुमाते हैं, वैसे ही सात्यकि भी भूरिश्रवाने जिस हाथसे उनका केश पकडा था उस केशके सहित अपने मस्तकको घुमाने लगे। महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकिको भूरिश्रवाके वशमें पडे देख फिर अर्जुनसे बोले, हे महाबाहो

तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवरं त्वया ॥ ६४ ॥
असत्यो विक्रमः पार्थ यत्र भूरिश्रवा रणे ।
विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ६५ ॥
एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः ।
मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६६ ॥
विकर्षन्सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमान इवाऽऽहवे ।
संहर्षयति मां भूयः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ६७ ॥
प्रवरं वृष्णिवीराणां यन्न हन्याद्धि सात्यकिम् ।
महाद्विपमिवाऽरण्ये मृगेन्द्र इव कर्षति ॥ ६८ ॥
एवं तु मनसा राजन्पार्थः सम्पूज्य कौरवम् ।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥ ६९ ॥
सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम् ।
एतत्त्वसुकरं कर्म यादवार्थे करोम्यहम् ॥ ७० ॥
इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन्वासुदेवस्य पाण्डवः ।
ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत् ॥ ७१ ॥
पार्थबाहुविसृष्टः स महोल्केव नभश्च्युता ।

अर्जुन ! वृष्णि और अन्धकवंशियोंमें मुख्य सात्यकि इस समय सब भांतिसे भूरिश्रवाके वशमें पडे हैं वह तुम्हारे शिष्य हैं और धनुर्विद्यामें भी तुमसे कम नहीं हैं परन्तु भूरिश्रवा उन्हें थका हुआ पाके उनसे अधिक पराक्रम प्रकाशित करके सात्यकिके सत्यपराक्रमी नामको व्यर्थ करनेका उपाय कर रहे हैं ॥ (६१–६५)

अर्जुन श्रीकृष्णके वचनको सुनकर मनहीमन इस प्रकार भूरिश्रवाकी प्रशंसा करने लगे॥ कौरवोंकी कीर्त्ति बढानेवाले भूरिश्रवा जो यदुवंशियों में श्रेष्ठ सात्यकिको खेलवाडकी भांति ग्रहण करके क्रीडा कर रहे हैं उससे मैं अत्यन्त आनन्दित हो रहा हूं ॥ कुन्तीपुत्र महाबाहु अर्जुन इसी प्रकार भूरिश्रवाकी प्रशंसा करके श्रीकृष्णसे बोले, हे कृष्ण ! मेरी दृष्टि सिन्धुराज जयद्रथकी ओर थी इसीसे मैंने सात्यकिको नहीं देखा । जो हो, इस समय मैं यदुकुलभूषण सात्यकिके वास्ते अत्यन्त कठिन कर्म करनेके लिये प्रवृत्त होऊंगा ॥ (६६–७०)

महाराज ! उस समय अर्जुनने ऐसा वचन कहकर श्रीकृष्णकी अनुमतिसे अत्यन्त तीक्ष्ण क्षुरास्त्र गाण्डीव धनुषपर

सखड्गं यज्ञशीलस्य साङ्गदं बाहुमच्छिनत् ॥७२॥ [५९५०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोबाहुच्छेदे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

सञ्जय उवाच— स बाहुर्न्यपतद्भूमौ सखड्गः सशुभाङ्गदः ।
आदधज्जीवलोकस्य दुःखमद्भुतमुत्तमः ॥ १ ॥
प्रहरिष्यन्हृतो बाहुरदृश्येन किरीटिना ।
वेगेन न्यपतद्भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः ॥ २ ॥
स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः ।
उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद्गर्हयामास पाण्डवम् ॥ ३ ॥
भूरिश्रवा उवाच—नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि ।
अपश्यतो विषक्तस्य यन्मे बाहुमचिच्छिदः ॥ ४ ॥
किं नु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे ॥ ५ ॥
इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना ।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाऽथ कृपेण वा ॥ ६ ॥

चढाया। अर्जुनकी भुजासे वह छूटा हुआ बाण आकाशसे टूटेहुए लुकके समान जाकर भूरिश्रवाके हस्तत्राण भूषित तलवारके सहित उनकी भुजाको काटकर पृथ्वीमें गिरा ॥ (७१-७२)[५९५०]

द्रोणपर्वमें एकसौ बियालिस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ तेंतालिस अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज! भूरिश्रवाकी सुन्दर कवचभूषित तलवारके सहित दहिनी भुजा अर्जुनके क्षुरास्त्रसे असावधानीमें कटनेसे सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदय में दुःख पैदा करके पांच सिरवाले सर्पके समान पृथ्वीमें गिर पडी ॥ जब भूरिश्रवाकी भुजा अर्जुनके अस्त्रसे कट गई, तब वह सात्यकिको परित्यागकर अर्जुन की निन्दा करने लगे ॥ (१-३)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! तुम्हारा यह कार्य निन्दनीय हुआ है,क्योंकि मैं दूसरे के सङ्ग युद्ध कर रहा था,उस ही समय तुमने विना जनाये मेरी भुजा काटी है ॥ जब धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुमसे यह वृत्तान्त पूछेंगे,तब तुम उनको यही उत्तर दोगे, कि भूरिश्रवा सात्यकिके नाश करनेके निमित्त तैयार होकर उनका वध किया चाहते थे; इसी कारणसे मैंने भूरिश्रवाका वध किया है। जो हो, भला कहो तो सही, इस प्रकारसे अस्त्र चलानेका उपदेश तुमने महात्मा इन्द्र, रुद्र वा

ननु नामाऽस्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः ।
सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि ॥ ७ ॥
न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते ।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः ॥ ८ ॥
इदं तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम् ।
कथमाचरितं पार्थ पापकर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥
आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनञ्जय ।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतमं भुवि ॥ १० ॥
येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्तते ।
आशु तच्छीलतामेति तादिदं त्वयि दृश्यते ॥ ११ ॥
कथं हि राजवंश्यस्त्वं कौरवेयो विशेषतः ।
क्षत्रधर्मादपक्रान्तः सुवृत्तश्चरितव्रतः ॥ १२ ॥
इदं तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया ।
वासुदेवमतं नूनं नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ १३ ॥

द्रोणाचार्य अथवा कृपाचार्यके निकट कहां सीखा था? तुमने इस पृथ्वीके बीच अस्त्र-शस्त्रोंके युद्धमें समान अथवा अधिक धर्मात्मा होकर रणभूमिके बीच अपने साथ युद्ध न करनेवाले पुरुषके ऊपर कैसे शस्त्र चलाया? (४–७)

महात्मा लोग डरा हुआ, रथरहित, पागल, शरणागत और व्यसनमें फंसे हुए पुरुषोंके ऊपर कभी अस्त्र नहीं चलाते॥ पण्डित लोग कहा करते हैं, कि साधु लोग सदा सत्कार्योंका अनुष्ठान करते हैं कभी असत्कार्योंके करनेमें प्रवृत्त नहीं होते, परन्तु तुमने किस प्रकार नीच प्रकृतिवाले लोगोंकी भांति तथा असज्जनोंसे सेवित अत्यन्त पापी पुरुषकी भांति कार्य किया है। जो हो मैंने जान लिया कि मनुष्य जैसी सङ्गतमें रहता है थोडे ही समयके बीच उसके शरीरमें वैसे ही गुण उत्पन्न होजाते हैं॥ (८–११)

तुम्हारे इस कार्यको देखने हीसे यह वचन बोध हो रहा है, नहीं तो तुमने राजवंश विशेष करके कुरुकुलमें जन्म लेकर और स्वयं भी उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले होकर किस प्रकार क्षत्रिय धर्मके विरुद्ध आचरण किया? मुझे मालूम होता है, कि कृष्णकी सम्मति से सात्यकिकी रक्षा करनेके वास्ते तुमने ऐसे निन्दित कर्मका अनुष्ठान किया है, क्योंकि यह संभव नहीं होता कि तुम ऐसे निन्दित कर्मको करोगे॥ (१२–१३)

को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युद्ध्यते।
ईदृशं व्यसनं दद्याद्यो न कृष्णसखा भवेत् ॥ १४ ॥
व्रात्याः संक्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव च गर्हिताः।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः ॥ १५ ॥
एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत्।
अर्जुन उवाच— व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः ॥ १६ ॥
अनर्थकमिदं सर्वं यत्त्वया व्याहृतं प्रभो।
जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे मां च पाण्डवम् ॥ १७ ॥
संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः।
न चाऽधर्ममहं कुर्यां जानंश्चैव हि मुह्यसे ॥ १८ ॥
युद्ध्यन्ति क्षत्रियाः शत्रून्स्वैः स्वैः परिवृता नराः।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः॥१९॥
वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं समाश्रिताः।

कहो तो सही कृष्णके वशमें चलने वाले पुरुषको छोडकर और कौन पुरुष असावधान और दूसरेके सङ्ग युद्ध करने वाले मनुष्यको इस प्रकार व्यसन में फंसाता है ? वृष्णी और अन्धकवंशी सम्पूर्ण क्षत्री धर्मध्वजी तथा बिडालव्रतिवाले हैं; वे वचन और प्रकारकी कहते हैं परन्तु कार्य दूसरी भांतिसे करते हैं। वे लोग स्वभाव हीसे निन्दनीय हैं, परन्तु तुम किस कारणसे ऐसे निन्दित वंशमें उत्पन्न हुए कृष्णकी आज्ञा पालन करनेमें तैयार हुए ?(१४–१५)

रणभूमिमें अर्जुनने भूरिश्रवाके ऐसे वचनको सुनकर उसे कहा, कि, ' मनुष्यके शरीर जीर्ण होनेसे उसकी बुद्धिमें भी जीर्णता आती है' यह कहावत तेरे विषयमें सत्यही प्रतीत होती है हे प्रभो ! इस समय आपने जो कुछ कहा है उसमें थोडा भी तथ्य नहीं है, देखो,आप संग्रामके सब धर्मों के जानने वाले हैं,तथा सर्व शास्त्रोंमें पारंगत ही हैं तथापि जानबूझ कर मेरे और हृषीकेश श्रीकृष्णके ऊपर वृथा दोषारोप कर रहे हैं। 'मैं किसी प्रकारसेभी अधर्मकार्य करनेवाला नहीं हूं,' यह आप जानते हो, तथापि इस समय कैसे मोहसे व्याप्त हुए हो ? बाहुबलके आसरेसे रहने वाले क्षत्रिय लोग जब शत्रुओंके साथ युद्धका समय आता है तब पिता, पुत्र, भाई, संबंधी, बांधव, मित्र, वयस्य आदि अपने परिवारकी सहायता लेकर ही युद्धमें प्रवृत्त होते हैं।(१६–२०)

स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धिमेव च ॥ २० ॥
अस्मदर्थे च युद्ध्यन्तं त्यक्त्वा प्राणान्सुदुस्त्यजान् ।
मम बाहुं रणे राजन्दक्षिणं युद्धदुर्मदम् ॥ २१ ॥
न चाऽऽत्मा रक्षितव्यो वै राजन्रणगतेन हि ।
यो यस्य युज्यतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप ॥ २२ ॥
तै रक्ष्यमाणैः स नृपो रक्षितव्यो महामृधे ।
यद्यहं सात्यकिं पश्ये वध्यमानं महारणे ॥ २३ ॥
ततस्तस्य वियोगेन पापं मेऽनर्थतो भवेत् ।
रक्षितश्च मया यस्मात्तस्मात्क्रुध्यसि किं मयि॥ २४ ॥
यच्च मे गर्हसे राजन्नन्येन सह सङ्गतम् ।
अहं त्वया विनिकृतस्तत्र मे बुद्धिविभ्रमः ॥ २५ ॥
कवचं धुन्वतस्तुभ्यं रथं चाऽऽरोहतः स्वयम् ।
धनुर्ज्यां कर्षतश्चैव युद्ध्यतः सह शत्रुभिः ॥ २६ ॥
एवं रथगजाकीर्णे हयपत्तिसमाकुले ।

हमलोगोंके लिये अपने अत्यन्त प्यारे प्राणोंकी भी पर्वाह न करके युद्धमें प्रवृत्त हुआ यह सात्यकि मेरा प्रिय सम्बधी और शिष्य है, मैं तो उसे अपना दहिना हाथही मानता हूं। हे राजन्! जब अपने लिये कार्यकरने वाले पुरुष प्राण सङ्कट में पडते हैं, तब अपनी रक्षा न करके उन पुरुषोंकी ही रक्षा करनी चाहिये, यह रण गत पुरुषका कर्तव्य ही है, क्योंकि ऐसे रक्षित पुरुषोंसे ही राजाकी रक्षा हो सकती है। उस समय आप तो सात्यकि के वधके लिये उद्युक्त थे और सात्यकि भी चेतरहित अवस्थामें था, ऐसी स्थितिमें मैं समीप रहकर भी उसकी रक्षा न करके केवल देखता ही रहता तो क्या उसका वियोग होनेमें कोई देर लगता? और ऐसे होनेसे मुझे उससे बडे अनर्थावह दोषका भागी होना पडता॥ इस लिये मैंनें सात्यकिकी रक्षा की है इसमें मेरा कोई दोष नहीं है तौभी आप मुझपर क्रोध ही करते हैं॥ (२१-२४)

आप और भी एक दोष मुझपर लगाते हो, कि "मैं दूसरेके साथ अकेला ही युद्ध करता था उस समय तैंने अन्याय से मुझे विद्ध किया है" यह भी मूढताका ही परिणाम है ऐसा मैं मानता हूं। देखो आप कवचधारी होकर रथमें बैठे थे और धनुष्यको सज्ज करके खींचते हुए शत्रुओं के साथ युद्धभी कररहे थे, मैंने तो ऐसीही अवस्थामें आपको विद्ध किया है। तथा

सिंहनादोद्धतरवे गम्भीरे सैन्यसागरे ॥ २७ ॥
स्वैः परैश्च समेतेभ्यः सात्वतेन च सङ्गमे ।
एकस्यैकेन हि कथं संग्रामः संभविष्यति ॥ २८ ॥
बहुभिः सह सङ्गम्य निर्जित्य च महारथान् ।
श्रान्तश्च श्रान्तवाहश्च विमनाः शस्त्रपीडितः ॥ २९ ॥
ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम् ।
अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम् ॥ ३० ॥
यदिच्छसि शिरश्चाऽस्य असिना हन्तुमाहवे ।
तथा कृच्छ्रगतं चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति ॥ ३१ ॥
त्वं वै विगर्हयाऽऽत्मानमात्मानं यो न रक्षसि ।
कथं करिष्यसे वीर यो वा त्वां संश्रयेज्जनः ॥ ३२ ॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्तो महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः ।
युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ३३ ॥
शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः ।

और भी देखो, पैदल, रथ, हाथी, और घोडोंसे भरी हुई, सिंहनादके शब्दसे व्याप्त, उछलित समुद्रके समान दीखने वाली इस सेनाके योद्धा लोग एक दूसरेके साथ संगत होकर जोरसे युद्धकर रहे थे आपका भी सात्यकिके साथ युद्ध होरहा था तो ऐसे ही संग्रामको 'एकका एकके साथ संग्राम' ऐसा कैसा कहा जा सकता है? (२५-२८)

उस समय यह सात्यकि भी अनेक महारथियोंके साथ युद्धकर और युद्धमें उनको जीतकर थक गया था, तथा उसके घोडे भी थके थे, और अनेक शस्त्रोंके घावसे पीडित होनेसे उसका मन भी त्रस्त हुआ था, आप तो ऐसे सात्यकिको ही जीतकर अपनेको इससे अधिक पराक्रमी समझते हो और चेतरहित हुए उसके शिरको खड्गसे काटनेमें उद्यत हो रहे थे, तो आपके ऐसे कर्मको कौन सहेगा? इस समय तुम दूसरेकी निंदा करनेकी अपेक्षा स्वरक्षणमें असमर्थ हुए अपनी ही निन्दा करनेमें योग्य हो क्योंकि स्वरक्षामें असमर्थ पुरुष अपने आश्रितोंकी रक्षा कैसी करेगा? (२९—३२)

सञ्जय बोले, महायशस्वी महाबाहु यूपध्वज भूरिश्रवा अर्जुनके ऐसे वचन सुनकर सात्यकिको छोडकर प्रायोपवेशन के लिये बैठगये। उन पुण्यात्मा राजा भूरिश्रवाने ब्रह्मलोकमें जानेकी अभिलाष करके बायें हाथसे दर्भोंको बिछाकर

यियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान्प्राणेष्वथाऽऽजुहोत्॥ ३४ ॥
सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः ।
ध्यायन्महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ ३५ ॥
ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनञ्जयौ ।
गर्हयामास तं चापि शशंस पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥
निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किञ्चिदप्रियम् ।
ततः प्रशस्यमानश्च नाऽहृष्यद्यूपकेतनः ॥ ३७ ॥
तांस्तथावादिनो राजन्पुत्रांस्तव धनञ्जयः ।
अमृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम् ॥ ३८ ॥
असंक्रुद्धमना वाचः स्मारयन्निव भारत ।
उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फाल्गुनः ॥ ३९ ॥
मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम् ।
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद्बाणगोचरे॥ ४० ॥
यूपकेतो निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम् ।
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम् ॥ ४१ ॥

वायुमें प्राणोंका हवन करने लगा और सूर्यकी ओर दृष्टि करके प्रसन्नता के सहित अपना चित्त चन्द्रमामें लगाया और मौनव्रत धारणकर योगकी क्रिया से उपनिषदमें कहे हुए ब्रह्मका ध्यान करने लगे ॥ (३३-३५)

तिसके अनन्तर उस व्यूहबद्ध सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग कृष्ण अर्जुनकी निन्दा और पुरुषश्रेष्ठ भूरिश्रवाकी प्रशंसा करने लगे; परन्तु कृष्ण और अर्जुनने अपनी निन्दा सुनकर कुछ अप्रिय वचन नहीं कहा और भूरिश्रवा भी अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न नहीं हुए॥ ३६-३७

महाराज ! तुम्हारे पुत्र उसी भांति निन्दा करने लगे, तब उन लोगोंके और भूरिश्रवाके कहे हुए वचन अर्जुन से न सहे गये। वह उन लोगोंको पहिले सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको स्मरण कराकर आक्षेप करने लगे--इस बातको सम्पूर्ण राजा लोग जानते हैं, कि युद्धिभूमिमें मेरा यह एक विशेष नियम है, कि संग्राम करते हुए मेरी ओरका कोई पुरुष मेरे बाण पहुंचनेके मार्गमें स्थित रहेगा तो उसका कोई भी पुरुष वध न कर सकेगा। (३८—४०)

हे भूरिश्रवा ! इस नियमको अच्छी भांति समझ कर मेरा तिरस्कार करना तुम्हें योग्य नहीं है, क्योंकि यथार्थ

आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः ।
यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ॥ ४२ ॥
न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः ।
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को नु पूजयेत् ॥ ४३ ॥
एवमुक्तः स पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् ।
पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोदस्य दक्षिणम् ॥ ४४ ॥
एतत्पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः ।
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥ ४५ ॥
अर्जुन उवाच— या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च बलिनां वरे ।
नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ॥ ४६ ॥
मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना ।
गच्छ पुण्यकृतांल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा ॥ ४७ ॥
वासुदेव०-ये लोका मम विमलाः सकृद्विभाता ब्रह्माद्यैः सुरवृषभैरपीष्यमाणाः

धर्मको विना जाने कभी किसीकी निन्दा न करनी चाहिये ॥ तुम शस्त्रधारी होकर सात्यकिके नाश करनेको तय्यार हुए थे, उस समय जो मैंने तुम्हारी भुजा काट डाली उसमें मेरा कौनका धर्म—विरुद्ध कर्म हुआ है ? परन्तु कहो तो सही शस्त्र, रथ और वर्मसे रहित बालक अभिमन्युके वधके विषयमें कौन धर्मात्मा पुरुष प्रशंसा करेगा ? (४१–४३)

भूरिश्रवाने अर्जुनके वचनको सुन कर अपने मस्तकसे पृथ्वीको स्पर्श करके कडवी वचनोंके निमित्त अर्जुनसे क्षमा मांगी और बांई भुजासे उस कटी हुई अपनी दहिनी भुजाको उठाकर अर्जुनकी ओर फेंक कर संकेतसे यह जनाया कि अर्जुनने अन्यायपूर्वक मेरी दहनी भुजा नहीं काटी है यह कार्य धर्म युक्त हुआ है । तिसके अनन्तर महातेजस्वी भूरिश्रवाने अर्जुनके वचन समाप्त होने पर संकेतसे उन्हें ऐसाही बताकर मौन व्रत धारण कर सिर नीचा कर लिया।।४४-४५

तब महात्मा अर्जुन यह वचन बोले, हे भूरिश्रवा ! धर्मराज युधिष्ठिर और बलवानोंमें अग्रणी भीमसेन नकुल तथा सहदेवके ऊपर मेरी जैसी प्रीति है तुम्हारे ऊपर भी वैसा ही स्नेह है इससे उशीनर तनय शिविराज जिस लोकमें गये हैं तुम भी मेरी और महात्मा कृष्णकी अनुमतिसे उसी लोकमें गमन करो ॥ (४६–४७)

जब अर्जुनने ऐसा वचन कहा तब श्रीकृष्ण भी कहने लगे । हे भूरिश्रवा !

तान्क्षिप्रं व्रज सततानिहोत्रयाजिन्मत्तुल्यो भव गरुडोत्तमाङ्गयानः ॥ ४८ ॥
सञ्जय उवाच— उत्थितः स तु शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना।
खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः॥ ४९ ॥
निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम्।
इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥ ५० ॥
निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम्।
क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानः सुदुर्मनाः ॥ ५१ ॥
वार्यमाणः स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना।
भीमेन चक्ररक्षाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च ॥ ५२ ॥
कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च।
विक्रोशतां च सैन्यानामवधीत्तं धृतव्रतम् ॥ ५३ ॥
प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन छिन्नबाहवे।
सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनाऽपाहरच्छिरः ॥ ५४ ॥
नाऽभ्यनन्दन्त सैन्यानि सात्यकिं तेन कर्मणा।

तुमने अग्निमें आहुति देकर सदा ही देवताओंको तृप्त किया है, इससे तुम चतुर्भुजी मूर्ति होकर गरुडके ऊपर चढके ब्रह्माआदि श्रेष्ठ देवताओंके पाने योग्य मेरे पवित्र धाममें गमन करो। (४८)

सञ्जय बोले, महाराज! उस समय शिनिपौत्र सात्यकि भूरिश्रवाके हाथसे छूट गये और उठ कर उनके सिर काटनेकी इच्छासे तलवार ग्रहण किया। बहुतसी दक्षिणा देनेवाले अर्जुनके बाणसे मरे हुएके समान योगमें आसक्त भूरिश्रवा भुजा कटनेसे सूण्ड कटे हुए हाथी की भांति बैठे थे, तौभी सात्यकिने उस निरपराधी पुरुषके प्राण नाश करनेकी इच्छा किया। (४९-५१)

सेनाके सम्पूर्ण पुरुष सात्यकिको ऐसे कार्यमें प्रवृत्त होते देख ऊंचे स्वरसे पुकार कर उसकी निन्दा करने लगे और महात्मा कृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, युधामन्यु, उत्तमौजा, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन और सिन्धुराज जयद्रथ ये सब कोई सात्यकिको निवारण करने लगे, परन्तु सात्यकिने किसीका भी वचन न सुनकर उस योगमें आसक्त भूरिश्रवाका सिर काट लिया। (५१-५३)

महाराज! जब उस समय सात्यकि ने अर्जुनके बाणोंसे भुजा कटे और योगयुक्त चित्तसे पृथ्वीपर बैठे हुए भूरिश्रवाके सिरपर तलवारके प्रहार किया, तब उस समय सेनाके बीच

अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥ ५५ ॥
सहस्राक्षसमं चैव सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥ ५६ ॥
अपूजयन्त तं देवा विस्मितास्तेऽस्य कर्मभिः ।
पक्षवादांश्च सुबहून्प्रावदंस्तव सैनिकाः ॥ ५७ ॥
न वार्ष्णेयस्याऽपराधो भवितव्यं हि तत्तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखतरो नृणाम्॥५८॥
हन्तव्यश्चैव वीरेण नाऽत्र कार्या विचारणा ।
विहितो ह्यस्य धात्रैव मृत्युः सात्यकिराहवे ॥ ५९ ॥
सात्यकिरुवाच— न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषत ।
धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकंचुकमास्थिताः ॥ ६० ॥
यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविनाकृतः ।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः ॥ ६१ ॥
मया त्वेतत्प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि ।

किसी पुरुषने भी सात्यकिके इस निन्दित कर्मकी प्रशंसा नहीं किया, क्योंकि उन्होंने अर्जुनके बाणोंसे मरे हुएके समान भूरिश्रवाका वध किया । देवता सिद्ध चारण और मनुष्योंने इन्द्रके समान भूरिश्रवाको युद्धभूमिमें योग-युक्त चित्तसे बैठे और मरे हुए देखकर उनके कार्यसे विस्मित होकर प्रशंसा करने लगे । (५४—५७)

अनन्तर तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भी आपसमें ऐसे वचन कहने लगे, जो होनेवाला था सो हुआ है इसमें सात्यकि-का कुछ अपराध नहीं है; इस विषयमें हम लोगोंको क्रोध करनेकी कोई आव-श्यकता नहीं है, क्योंकि क्रोध ही मनु-ष्यके दुःखका मूल है। विधाताने सात्य-किकोही भूरिश्रवाकी मृत्युरूपी किया था इससे उसीके हाथसे उनकी जरूर मृत्यु हुई;अब इस विषयमें कुछभी शोक विचारकी जरूरत नहीं है। (५७–५९)

इन सम्पूर्ण वचनोंको सुन कर उस समय सात्यकि बोले, हे अधार्मिक कौरव लोगो ! जो धर्मका नाम लेकर "भूरिश्रवा का नाश मत करो, भूरिश्रवा का नाश मत करो" ऐसा वचन कहकर मुझे धर्मका उपदेश कर रहे हो; परन्तु कहो तो सही जब तुम सब लोगोंने मिलकर शस्त्ररहित सुभद्रापुत्र अभिमन्युको युद्धभूमिमें मारा था, उस समय तुम्हारा धर्म कहां था । परन्तु

यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन्हन्यात्पदा रुषा॥६२॥
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः।
चेष्टमानं प्रतीघाते सभुजं मां सचक्षुषः ॥ ६३ ॥
मान्यध्वं मृत इत्येवमेतद्वो बुद्धिलाघवम्।
युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुङ्गवाः ॥ ६४ ॥
यत्तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षता।
सखड्गोऽस्य हृतो बाहुरेतेनैवाऽस्मि वञ्चितः ॥ ६५ ॥
भवितव्यं हि यद्भावि दैवं चेष्टयतीव च।
सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन्किमत्राऽधर्मचेष्टितम् ॥ ६६ ॥
अपि चाऽयं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥ ६७ ॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत् ॥ ६८ ॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरवपुङ्गवाः।

मैंने किसी समय प्रतिज्ञा किया कि जो कोई मुझे पटक कर लातसे मारेगा वह शत्रु यदि मुनियोंका व्रत अवलम्बन करे तौ भी मैं उसका वध करूंगा।५९-६३

तुम लोगोंने जो मुझे घावरहित और भूरिश्रवाको चोटसे बचानेमें बलवान् देखकर भी मरा हुआ समझा था वह तुम्हारी बुद्धिकी लघुताही बोध हो रही है। हे कुरुसेनाके योद्धा लोगो! भूरिश्रवाका वध करना मेरा उचित कार्य हुआ है और महावीर अर्जुनने जो मुझे वैसी अवस्थामें देखकर भूरिश्रवाकी भुजा काट डाली उससे मैं ही ठगा गया हूं; जो हो कोई होनहारका खण्डन करनेमें समर्थ नहीं हो सकता; उसे पूर्ण करनेके निमित्त दैव ही यत्न [illegible] सात्यकिने [illegible] भूरिश्रवाका वध [illegible] ऊंचे स्वरसे पुकार[illegible] प्रकारसी अधर्म [illegible] करने लगे।९-६६

इस विषयमें [illegible]हिले समय महर्षि वाल्मीकिकी बनाई हुई रामायण इतिहासमें यह वर्णन है कि जिस समय लङ्कापति रावण माया सीता काटनेको तैयार हुआ उस समय महावीर हनुमानने स्त्री-हत्या करनेसे उसे निषेध किया, तब रावणने यह उत्तर दिया था; अरे बन्दर! तू स्त्री हत्या करनेसे मुझे निषेध करता है परन्तु जिस प्रकार हो सके व्यवसायी पुरुषने सब काल शत्रुको पीडा पहुंचाना योग्य है॥ (६७-६८)

सञ्जय बोले, महाराज! जब सात्यकि

न स्म किञ्चिद्भाषन्त मनसा समपूजयन् ॥ ६९ ॥
मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य च ।
मुनेरिवाऽरण्यगतस्य तस्य न तत्र कश्चिद्वधमभ्यनन्दत् ॥ ७० ॥
सुनीलकेशं वरदस्य तस्य शूरस्य पारावतलोहिताक्षम् ।
अश्वस्य मेध्यस्य शिरो निकृत्तं न्यस्तं हविर्धानमिवाऽन्तरेण ॥ ७१ ॥
स तेजसा शस्त्रकृतेन पूतो महाहवे देहवरं विसृज्य ।
आक्रामदूर्ध्वं वरदो वरार्हो व्यावृत्य धर्मेण परेण रोदसी ॥७२॥ [६०२२]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोवधे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः ।
तीर्णः सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ॥ १ ॥
स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवारितः ।
निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद्भुवि निपातितः ॥ २ ॥

ने ऐसा वचन कहा, तब कौरवोंकी ओरके मुख्य मुख्य योद्धाओंने कुछ भी उत्तर न दिया, केवल मन ही मन सब भूरिश्रवाकी प्रशंसा करने लगे॥ वनवासी मुनियोंकी भांति यज्ञ करनेवाले तथा सहस्रों स्वर्ण मुद्रा दान करनेवाले महा-यशस्वी भूरिश्रवाके वधके विषयमें किसीने सात्यकिकी बड़ाई नहीं किया; क्योंकि वह पराक्रमी भूरिश्रवा याचकों की सम्पूर्ण कामना पूरी करते थे॥ उस समय सुन्दर और काले केशोंसे युक्त पारावतके समान लालनेत्रके सहित उनका सिर युद्धभूमिमें गिरकर इस प्रकार शोभित होने लगा, जैसे आहुति देनेके निमित्त यज्ञमें कटे हुए घोड़ेका सिर शोभित होता है॥ महाराज! इसी प्रकार सम्पूर्ण याचकोंकी कामना पूरी करनेवाले सब पुरुषोंमें माननीय भूरि-श्रवा युद्धभूमिमें शस्त्रकी चोटसे मरकर पवित्र हुए, और शरीर त्याग कर अपने तेजसे पृथ्वी आकाशको अतिक्रम करते हुए पुण्य और परम धर्मसे उपार्जित स्वर्गलोकमें गमन किया॥ (६९–७२)

द्रोणपर्वमें एकसौ तैतालिस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ चौवालिस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! जिस महावीर सात्यकिने युधिष्ठिरके निकट प्रतिज्ञा कर युद्धभूमिमें द्रोणाचार्य कर्ण विकर्ण और कृतवर्मा आदि महारथि-योंको पराजित करके समुद्रके समान कुरुसेनासे पार हुआ और जो युद्धमें सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंसे अजेय है उसे भूरिश्रवा किस कारणसे बलपूर्वक पकड़-कर पृथ्वीमें गिरानेमें समर्थ हुए? १–२

सञ्जय उवाच— शृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा।
यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप ॥ ३ ॥
अत्रेः पुत्रोऽभवत्सोमः सोमस्य तु बुधः स्मृतः।
बुधस्यैको महेन्द्राभः पुत्र आसीत्पुरूरवाः ॥ ४ ॥
पुरूरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः सुतः।
नहुषस्य ययातिस्तु राजा देवर्षिसम्मतः ॥ ५ ॥
ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्येष्ठोऽभवत्सुतः।
यदोरभूदन्वयाये देवमीढ इति स्मृतः ॥ ६ ॥
यादवस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसंमतः।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥ ७ ॥
धनुष्यनवरः शूरः कार्तवीर्यसमो युधि।
तद्वीर्यश्चापि तत्रैव कुले शिनिरभून्नृप ॥ ८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः।
दुहितुः स्वयंवरे राजन्सर्वक्षत्रसमागमे ॥ ९ ॥
तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाशु वै।
निर्जित्य पार्थिवान्सर्वान्रथमारोपयच्छिनिः ॥ १० ॥

सञ्जय बोले, महाराज ! शिनिपौत्र सात्यकि और भूरिश्रवाकी जिस भांतिसे उत्पत्ति हुई है और आपको जो सन्देह हुआ है वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं वर्णन करता हूं आप सुनिये ॥ अत्रि महर्षिके पुत्र सोम हुए उनके पुत्र बुध, बुधके पुत्र इन्द्रके समान राजा पुरूरवा उत्पन्न हुए; पुरूरवाके पुत्र आयु, आयुके पुत्र नहुष, नहुषके पुत्र देवतोंके समान राजर्षि ययाति हुए और ययातिके जेठे पुत्र देवयानीके गर्भसे यदु उत्पन्न हुए। उस ही यदुके वंशमें प्रसिद्ध देवमीढकी उत्पत्ति हुई ॥ देवमीढके पुत्र तीनों लोकमें सम्मान पाने योग्य शूरसेन हुए उनके पुत्र पुरुषश्रेष्ठ महायशस्वी वसुदेव हुए ॥ (३—७)

महात्मा शूरसेन युद्धमें कार्तवीर्य अर्जुनके समान धनुर्विद्याके जाननेवाले थे। उस ही वंशमें उन्हींके समान पराक्रमी शिनि नाम एक महात्मा पुरुष उत्पन्न हुआ॥ उसी समयमें महात्मा राजा देवककी कन्याका स्वयंवर था, उस स्वयंवरमें पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा इकट्ठे हुए थे, उन सम्पूर्ण राजाओंके बीच जाकर महात्मा शिनिने वसुदेवके वास्ते देवकीको हरके अपने रथमें बैठा लिया

तां दृष्ट्वा देवकीं शूरो रथस्थां पुरुषर्षभ ।
नाऽमृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप ॥ ११ ॥
तयोर्युद्धमभूद्राजन्दिनार्धं चित्रमद्भुतम् ।
बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं पुरुषर्षभः ॥ १२ ॥
शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः ।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदा हतः ॥ १३ ॥
मध्ये राजसहस्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः ।
कृपया च पुनस्तेन स जीवेति विसर्जितः ॥ १४ ॥
तदवस्थः कृतस्तेन सोमदत्तोऽथ मारिष ।
प्रासादयन्महादेवममर्षवशमास्थितः ॥ १५ ॥
तस्य तुष्टो महादेवो वराणां वरदः प्रभुः ।
वरेण च्छन्दयामास स तु वव्रे वरं नृपः ॥ १६ ॥
पुत्रमिच्छामि भगवन्यो निपात्य शिनेः सुतम् ।
मध्ये राजसहस्राणां पदा हन्याच्च संयुगे ॥ १७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सोमदत्तस्य पार्थिव ।

और वहांपर सम्पूर्ण राजाओंको पराजित किया ॥ (८—१०)

महाराज ! महातेजस्वी राजा सोमदत्तने देवकीको शिनिके रथपर देख सहन नहीं किया, उन दोनों महाबलवान् वीरोंका दोपहर दिनके समय अत्यन्त आश्चर्यमय युद्ध हुआ; परन्तु शिनिने चारों ओर युद्धभूमिमें स्थित राजाओंके संमुखमें ही सोमदत्तको उठाकर पृथ्वीपर पटक दिया और एक हाथसे उनका केश पकड दूसरे हाथमें तलवार लिए हुए उनके छातीमें लात मारा ॥ तिसके अनन्तर तुम जीते रहो ऐसा कहके उन्हें छोड दिया ॥ (११—१४)

महाराज ! सोमदत्त राजाओंके सम्मुख इस प्रकार अवमानित होकर क्रोधपूर्वक वहांसे आकर तपस्या करने लगे; और अपनी तपस्यासे महादेवको प्रसन्न किया। भक्तोंको वरदान देनेवाले देवोंके देव महादेवने उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उन्हें वर देना चाहा, तब सोमदत्तने यह व दान मांगा, हे भगवन् ! मैं एक ऐसे पुत्रकी इच्छा करता हूं जो युद्ध भूमि में सहस्रों राजाओं के सम्मुख में शिनिके सन्तानको पृथ्वीपर पटकके लात मारे ॥ (१५-१७)

महादेव सोमदत्तके इस वचनको सुनकर ऐसा ही होगा, यह वचन कहके

एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत ॥ १८ ॥
स तेन वरदानेन लब्धवान्भूरिदक्षिणम्।
अपातयच्च समरे सौमदत्तिः शिनेः सुतम् ॥ १९ ॥
पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताडयत्।
एतत्ते कथितं राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २० ॥
नहि शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभैः।
लब्धलक्ष्याश्च संग्रामे बहुशश्चित्रयोधिनः ॥ २१ ॥
देवदानवगन्धर्वान्विजेतारो ह्यविस्मिताः।
स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः ॥ २२ ॥
न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते किञ्चन प्रभो।
भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ ॥ २३ ॥
न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः।
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ २४ ॥
जेतारो वृष्णिवीराणां किं पुनर्मानवा रणे।

वहां ही अन्तर्द्धान होगये। महाराज! सोमदत्तने महादेवके वरप्रभावसे अनेक दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवा ऐसा पुत्र पाया था; और इस ही कारणसे भूरिश्रवाने अनेक राजाओंके सम्मुखहीमें सात्यकिको पृथ्वीमें पटककर उनकी छातीमें लात मारा था; नहीं तो पृथ्वी के बीच ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो सात्यकिको पराजित करे। महाराज! तुमने जो विषय पूछा था, मैंने उस वृत्तान्त को तुम्हारे समीप में वर्णन किया। (१८–२१)

संग्राममें सम्पूर्ण वृष्णिवंशी लक्ष्य-वेधनेवाले और चित्रयोधी हैं, युद्धभूमिमें वे लोग भयभीत नहीं होते, वे सब संग्राममें देवता दानव और गन्धर्वोंको भी जीत सकते हैं; युद्धभूमिमें वे किसीकी सहायता नहीं चाहते, वे सब कोई अपने पराक्रमके अनुसार विजयकी इच्छा करते हैं। हे नरनाथ! वृष्णिवंशियोंके सङ्ग दूसरे पुरुषकी उपमा दीजावे ऐसा मैं पृथ्वीके बीच किसीको नहीं देखता। उन लोगोंके समान पराक्रमी पहले भी कोई नहीं था न भविष्यहीमें होगा और न इस ही समय कोई उपस्थित है॥ (२१-२३)

वे सब कोई वृद्ध पुरुषोंकी आज्ञामें चलनेवाले हैं वे लोग कदापि अपने जातिके पुरुषोंका अपमान नहीं करते। युद्धभूमिमें मनुष्योंकी बात तो दूर रहे उन लोगोंके देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष,

ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिस्वे चाप्यहिंसकाः ॥ २५ ॥
एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्यांश्चिदापदि ।
अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ २६॥
समार्थान्नाऽवमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च ।
नित्यं देवपरा दान्तास्त्रातारश्चाऽविकत्थनाः ॥ २७ ॥
तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते ।
अपि मेरुं वहेत्कश्चित्तरेद्वा मकरालयम् ॥ २८ ॥
न तु वृष्णीप्रवीराणां समेत्याऽन्तं व्रजेन्नृप ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयः प्रभो ।
कुरुराज नरश्रेष्ठ तव व्यपनयो महान् ॥ २९ ॥ [६०५१]

इति श्रीमहा० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रशंसायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तदवस्थे हते तस्मिन्भूरिश्रवसि कौरवे ।
यथा भूयोऽभवद्युद्धं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

सर्प और राक्षस आदि कोई भी पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ उन लोगोंके विषयमें ब्राह्मणोंका धन और गुरुधनकी बात तो दूर रहे, वे लोग अपने जातिवालोंकेभी धनपर इर्षा प्रकाश नहीं करते। और ब्राह्मण तथा जातिके पुरुष जब किसी प्रकारकी विपतमें फंसते हैं तब वे लोग सब भांतिसे उनकी रक्षा किया करते हैं। वे लोग ऐश्वर्यवान होकर भी गर्व नहीं करते वे सबही ब्राह्मणोंमें निष्ठा करनेवाले और सत्यवादी हैं ॥ (२४–२६)

वे लोग समर्थ होकरभी किसी पुरुषका अवमान नहीं करते और दीन दुःखियोंको सदा विपतसे बचाते रहते हैं। वे सदा देवतोंमें निष्ठावान् जितेन्द्रिय हैं। वे लोग अपने मुहसे अपनी बडाई नहीं करते, इस ही निमित्त पृथ्वीके बीच वृष्णिवंशियोंका प्रभाव कहीं निष्फल नहीं होता। यदि कोई पुरुष कभी सुमेरु पर्वतके उठाने और अपार समुद्रको तरनेमें समर्थ हो सके तौभी युद्धभूमिमें वृष्णिवंशियोंको पराजित नहींकर सकेगा, हे राजेन्द्र ! आपने जिस विषयमें सन्देह किया था वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने वर्णन किया। परन्तु इन पुरुषोंके नाशके मूल आप ही हैं। (२७-२९) [६०५१]

द्रोणपर्वमें एकसौ चौवालिस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ पैंतालिस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! कुरुवंशीय भूरिश्रवा जब इस प्रकारसे मारे गये तब किस किस प्रकार युद्ध हुआ था, वह मेरे समीप वर्णन करो ॥ (१)

सञ्जय उवाच— भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत ।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत् ॥ २ ॥
चोदयाऽश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः ।
श्रूयते पुण्डरीकाक्ष त्रिषु धर्मेषु वर्तते ॥ ३ ॥
प्रतिज्ञां सफलां चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ ।
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ॥ ४ ॥
एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया ।
कार्यं संरक्ष्यते चैव कुरुसेनामहारथैः ॥ ५ ॥
यथा नाऽभ्येति सूर्योऽस्तं यथा सत्यं भवेद्वचः ।
चोदयाऽश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम् ॥ ६ ॥
ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान्हयान् ।
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥ ७ ॥
तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाऽऽशुगैः ।
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन् ॥ ८ ॥

सञ्जय बोले, महाराज ! जब भूरिश्रवाने परलोकमें गमन किया तब महाबाहु अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, हे कृष्ण ! मैंने सुना है, कि जयद्रथ रणभूमिमें संमुख मरण, पराङ्मुख मरण वा पलायनसे यशःशरीरका नाश, इन तीन धर्मोंका अवलंबन करनेवाला है, इस लिये युद्धकी इच्छासे वह सिन्धुराज जयद्रथ जिस स्थानपर स्थित है, तुम शीघ्रताके सहित मेरे रथको उसी स्थानपर ले चलो । जिससे मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो तुम वैसा ही यत्न करो । हे महाबाहो ! यह देखो सूर्य जल्दी जल्दी अस्ताचल पर्वतपर गमन कर रहा है ॥ मुझे जयद्रथवधरूपी बहुत बडा कार्य करना होगा; परन्तु कौरवोंकी ओरके महारथी योद्धा लोग जयद्रथकी रक्षा कर रहे हैं ॥ हे पुरुषसिंह कृष्ण ! इससे तुम इस प्रकार घोडोंको चलाओ, जिससे मैं आज सूर्य अस्त होनेके पहिले ही जयद्रथका वध करके सत्यप्रतिज्ञ हो सकूं ॥ २–६

तिसके अनन्तर घोडेके हांकनेकी विद्या जाननेवाले श्रीकृष्ण अर्जुनके रथके सुवर्ण भूषित घोडोंको जयद्रथके रथकी ओर चलाने लगे ॥ महाराज ! वे शीघ्र गमन करनेवाले सम्पूर्ण घोडे अमोघ अस्त्र धारण करनेवाले अर्जुनके रथको खींचते हुए वेगपूर्वक गमन करने लगे, उस समय ऐसा बोध होता था मानो वे घोडे उस समय आकाशमार्गसे उडते

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ९ ॥
समासाद्य च बीभत्सुः सैन्धवं समुपस्थितम् ।
नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां सम्प्रैक्षन्निर्दहन्निव ॥ १० ॥
ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत् ।
अर्जुनं प्रेक्ष्य संयातं जयद्रथवधं प्रति ॥ ११ ॥
अयं स वैकर्तन युद्धकालो विदर्शयस्वाऽऽत्मबलं महात्मन् ।
यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥ १२ ॥
अल्पावशेषो दिवसो नृवीर विघातयस्वाऽद्य रिपुं शरौघैः ।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति ॥ १३ ॥
सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्याऽस्तमनं प्रति ।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ १४॥
अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद ।
जीवितुं नोत्सहेरन्वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः ॥ १५ ॥
विनष्टैः पाण्डवेयैश्च सशैलवनकाननाम् ।

हुए गमन कर रहे हैं, राजा दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, कृपाचार्य और राजा जयद्रथ-ये सम्पूर्ण महारथी लोग अर्जुनको आते देख, शीघ्रताके सहित उनकी ओर दौडे ॥ अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथको सम्मुख खडे देख इस प्रकार क्रोधपूर्वक उनकी ओर देखने लगे मानो दृष्टिसे देखकर ही उन्हें भस्म कर देंगे ॥ (७—१०)

अनन्तर राजा दुर्योधन अर्जुनको जयद्रथके वधके लिये गमन करते देख शीघ्रताके सहित कर्णसे बोले॥ हे महात्मा कर्ण ! यही अब तुम्हारे युद्धका समय उपस्थित हुआ है, इससे ऐसे समयमें सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंको तुम अपना पराक्रम और प्रभाव दिखाओ, जिससे अर्जुन जयद्रथका वध न कर सके तुम वैसा ही यत्न करो ॥ हे पुरुषसिंह ! दिन बीतनेमें अब थोडाही समय बाकी है इसी ही समय तुम अपने बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनके कार्यमें विघ्न करो; क्योंकि सूर्य अस्त होने तक जयद्रथकी रक्षा करनेसेही कुन्तीपुत्र अर्जुन मिथ्याप्रतिज्ञा करनेवाला होकर अवश्य ही अग्नि में प्रवेश करेगा ॥ (११—१४)

अर्जुनके न रहने पर उसके भ्राता और उनके अनुयायी योद्धा लोग भी पृथ्वीपर जीवित रहनेकी इच्छा नहीं

वसुन्धरामिमां कर्ण मोक्ष्यामो हतकण्टकाम् ॥ १६ ॥
दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद ।
कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवान्रणे ॥ १७ ॥
नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना ।
प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति ॥ १८ ॥
कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुनः ।
अनस्तङ्गत आदित्ये हन्यात्सैन्धवकं नृपम् ॥ १९ ॥
रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना ।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद्धनञ्जयः ॥ २० ॥
द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुःशासनेन च ।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः ॥ २१ ॥
युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः ।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद ॥ २२ ॥
स त्वं कर्ण मया सार्धं शूरैश्चान्यैर्महारथैः ।
द्रौणिना त्वं हि सहितो मद्रेशेन कृपेण च ॥ २३ ॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे ।

करेंगे; इसी प्रकार जब सम्पूर्ण पाण्डव नष्ट हो जावेंगे; तब हम लोग समुद्रके सहित इस सम्पूर्ण पृथ्वीको निष्कण्टक भोग करेंगे। हे मानी कर्ण! अर्जुनने अभाग्यहीसे उलटी बुद्धि अवलम्बन कर कार्य अकार्यके ज्ञानसे रहित हो अपने ही नाशके लिये जयद्रथ वधकी प्रतिज्ञा किया है। (१५—१८)

हे राधापुत्र! इस पृथ्वीके बीच ऐसा कोई पुरुष भी नहीं दीख पडता, जो युद्धभूमिमें तुम्हें जीत सके; इससे तुम्हारे रहतेही अर्जुन किस प्रकार सूर्यके रहते ही जयद्रथका वध कर सकेगा? विशेष करके मद्रराज शल्य, महात्मा कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दुःशासन और मैं,— हम सब कोई मिलके रक्षा करेंगे, तब वह रण-भूमिमें जयद्रथके समीप कैसे पहुंच सकेगा? इससे आज उसकी आयु पूरी होगई है॥ (१९—२१)

इधर बहुतसे योद्धा लोग उसके सङ्ग युद्ध करेंगे और उधर सूर्य भी अस्त हुआ चाहता है; मेरे विचारमें अर्जुन किसी प्रकार भी जयद्रथका वध न कर सकेगा॥ हे कर्ण! इससे तुम इस समय मेरे तथा मद्रराज शल्य अश्वत्थामा और दूसरे अनेक पराक्रमी योद्धाओंके संग मिलकर

एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष ॥ २४ ॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूत्तमम् ।
दृढलक्ष्येण वीरेण भीमसेनेन धन्विना ॥ २५ ॥
भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालैरनेकशः ।
स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे सम्प्रति मानद ॥ २६ ॥
नाऽङ्गमिङ्गति किञ्चिन्मे सन्तप्तस्य महेषुभिः ।
योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम ॥२७॥
यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैन्धवम् ।
नहि मे युद्ध्यमानस्य सायकानस्यतः शितान् ॥ २८ ॥
सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनञ्जयः ।
यत्तु भक्तिमता कार्यं सततं हितकांक्षिणा ॥ २९ ॥
तत्कारिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः ।
सैन्धवार्थे परं यत्नं करिष्याम्यद्य संयुगे ॥ ३० ॥
त्वत्प्रियार्थं महाराज जयो दैवे प्रतिष्ठितः ।
अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः ॥ ३१ ॥

युद्धभूमिमें विशेष यत्नपूर्वक अर्जुनके सङ्ग युद्ध करो। (२२—२४)

सञ्जय बोले, महाराज! कर्णने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके वचनको सुन कर यह उत्तर दिया, हे राजन्! दृढताके सहित लक्ष्य भेद करनेवाले धनुर्धारी महावीर भीमसेनके वाणोंकी चोटसे मेरा शरीर क्षत विक्षत हो गया है, इस समय युद्ध-भूमिमें ही रहना उचित है, इसही निमित्त मैं संग्रामभूमिमें स्थित हूं। मेरा शरीर भीमके वाणोंकी चोटसे ऐसा क्षत विक्षत हो रहा है कि हिलनेसे भी पीडा होती है तौ भी वह पाण्डवोंमें मुख्य अर्जुन जिसमें सिन्धुराज जयद्रथका वध न कर सके; तुम्हारे प्रयोजनको सिद्ध करनेके निमित्त जब तक मेरे शरीरमें प्राण रहेगा, तबतक मैं अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करूंगा। युद्धभूमिमें यदि मैं अपने चोखे वाणोंको वर्षाता रहूंगा तो अर्जुन किसी प्रकारसे भी जयद्रथके समीप न पहुंच सकेगा। (२५—२९)

हे कुरुश्रेष्ठ! हितैषी और भक्तिमान पुरुषोंको जैसा कर्त्तव्य कार्य करना उचित है मैं अवश्य ही वैसा कार्य करूंगा परन्तु जीत हार दैवके आधीन है। हे पुरुषसिंह! आज मैं तुम्हारे वास्ते अपने पराक्रमके आसरेसे अर्जुनके संग युद्ध करूंगा आज मैं तुम्हारे प्रिय कार्य

त्वदर्थे पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः।
अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ३२ ॥
पश्यन्तु सर्वसैन्यानि दारुणं लोमहर्षणम्।
कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः ॥ ३३ ॥
अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम्।
चिच्छेद निशितैर्बाणैः शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ३४ ॥
भुजान्परिघसङ्काशान्हस्तिहस्तोपमान्रणे।
शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥
हस्तिहस्तान्हयग्रीवान्रथाक्षांश्च समन्ततः।
शोणिताक्तान्हयारोहान्गृहीतप्रासतोमरान् ॥ ३६ ॥
क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर्द्विधैकैकं त्रिधैव च।
हयान्वारणमुख्यांश्च प्रापतन्त समन्ततः ॥ ३७ ॥
ध्वजाश्छत्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च।
कक्षमग्निरिवोद्धूतः प्रदहंस्तव वाहिनीम् ॥ ३८ ॥

करनेकी इच्छासे सिन्धुराज जयद्रथके निमित्त युद्धभूमिमें विशेष यत्न करूंगा; तब जीतना और हारना दैवके आधीन है। आज ये सम्पूर्ण सेनाके पुरुष रोएंको खडा करनेवाला हम दोनोंका भयङ्कर युद्ध देखें। (२९—३३)

सञ्जय बोले, महाराज ! कर्ण और दुर्योधन इसी प्रकार आपसमें बात चीत कर रहे थे और इधर अर्जुन अपने चोखे बाणोंसे तुम्हारी सेनाका नाश करते जाते थे। वह अपने तीक्ष्णबाणोंसे युद्धमें पीछे न हटनेवाले शूरवीरोंकी परिघ और हाथीके सूण्ड समान भुजा और शिरोंको काट काट गिराने लगे ॥ महाराज ! वह महाबाहु अर्जुन लगातार बाणोंकी वर्षा करके कहीं हाथियोंकी सूण्ड, घोडोंके गर्दन, रथोंकी धुरी और किसी स्थानमें तोमर ग्रहण करनेवाले घुडसवार और गजपति योद्धाओंके सिर अपने तीक्ष्ण क्षुरास्त्रसे दो दो तथा तीन तीन टुकडे करके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ (३३-३७)

इसी प्रकार युद्धभूमिमें सहस्रों बडे बडे हाथी घोडे मनुष्य ध्वजा छत्र और सफेद चंवर अर्जुनके बाणोंसे टुकडे होकर पृथ्वीमें गिरने लगे। अधिक क्या कहें जैसे जलती हुई अग्नि शीघ्र ही तृणफूसको भस्म करती है वैसे ही महावीर अर्जुनने तुम्हारी सेनाके लोगोंको तितर बितर करके मरे हुए हाथी घोडे

अचिरेण महीं पार्थश्चकार रुधिरोत्तराम् ।
हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥ ३९ ॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।
बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्वतेन च रक्षितः ॥ ४० ॥
प्रबभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ।
तं तथाऽवस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसम्पदा ॥ ४१ ॥
नाऽमृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवं पुरुषर्षभाः ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ॥ ४२ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ।
सन्नद्धाः सैन्धवस्यार्थे समावृण्वन्किरीटिनम् ॥ ४३ ॥
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिःस्वनैः ।
संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४४ ॥
अभीताः पर्यवर्तन्त व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽच्युतार्जुनौ ॥ ४५ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे ।
ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यानम्य सायकान् ॥ ४६ ॥
मुमुचुः सूर्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति ।

और मनुष्योंके रुधिरसे पृथ्वीको परिपूरित कर दिया । महा तेजस्वी अत्यन्त पराक्रमी अर्जुन तुम्हारी सेनाके बीच अनेक योद्धाओंका वध करके जयद्रथके समीप उपस्थित हुए । वह सात्यकि और भीमसेनसे रक्षित होकर अग्निके समान प्रकाशित होने लगे । (३७—४१)

परन्तु तुम्हारी ओरके मुख्य मुख्य पराक्रमी महारथियोंने युद्धभूमिके बीच अर्जुनको इस भांति युद्ध करते देख सहन नहीं किया । दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज, शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और राजा जयद्रथ इन सम्पूर्ण युद्ध विशारद महारथियोंने संग्राम प्रवीण अर्जुनको धनुषटङ्कार और तलत्राण शब्दके सहित रथके ऊपर नृत्य करते देख सावधान होकर चारों ओरसे उन्हें घेर लिया ॥ (४१—४४)

वे सम्पूर्ण महारथ योद्धा लोग कृष्ण अर्जुनके वधकी इच्छा करके सूर्य अस्त होनेकी प्रतीक्षा करते हुए जयद्रथको पीछे करके निर्भयचित्तसे अर्जुनके सम्मुख स्थित हुए और सर्पके समान अपनी भुजाओंसे प्रचण्ड धनुष खींचकर सूर्य-

ततस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ॥ ४७ ॥
द्विधा त्रिधाऽष्टधैकैकं छित्वा विव्याध तान्रथान् ।
सिंहलांगूलकेतुस्तु दर्शयन्वीर्यमात्मनः ॥ ४८ ॥
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् ।
स विध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः॥ ४९ ॥
अतिष्ठद्रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन् ।
अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्व एव महारथाः ॥ ५० ॥
महता रथवंशेन सर्वतः प्रत्यवारयन् ।
विस्फारयन्तश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ५१ ॥
सैन्धवं पर्यरक्षन्त शासनात्तनयस्य ते ।
ततः पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ॥ ५२ ॥
इषूणामक्षयत्वं च धनुषो गाण्डिवस्य च ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ॥ ५३ ॥
एकैकं दशभिर्बाणैः सर्वानेव समार्पयत् ।
तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ॥ ५४ ॥

किरणके समान प्रकाशमान सैकडों बाण कृष्ण अर्जुनके ऊपर चलाने लगे । युद्धमें पराक्रम प्रकाशित करनेवाले अर्जुनने उन महारथियोंके बाणों को अपने बाणोंसे दोन दोन, तीन तीन और आठ आठ खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया और उन हरएक महारथियोंको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे । (४५–४८)

सिंह लांगूलवाली ध्वजासे शोभित रथपर चढे हुए शारद्वती पुत्र अश्वत्थामा अपना पराक्रम प्रकाशित करके अर्जुनको निवारण करने लगे ! उन्होंने सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षाके वास्ते अपने रथमें स्थित होके अर्जुनको दश और कृष्णको सात बाणोंसे विद्ध किया । तिसके अनन्तर तेरे पुत्रकी आज्ञासे कुरुसेनाके सम्पूर्ण महारथी लोग अर्जुनको अपने रथोंके समूहसे घेरकर धनुष चढाकर उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते हुए जयद्रथकी रक्षा करने लगे; परन्तु महावीर अर्जुनके भुजाका बल उनके दोनों तूणीरोंका अमोघपन और प्रचण्ड गाण्डीव धनुषकी दृढता आश्चर्य रूपसे दिखाई देने लगी ॥ (४८—५३)

उन्होंने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे अश्वत्थामाके बाणोंको निवारण करके तुम्हारी ओरके महारथियोंको दश दश बाणोंसे पीडित किया । अनन्तर अर्जुन

दुर्योधनस्तु विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः ।
त एनमभिगर्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः पुनः ॥ ५५ ॥
विधुन्वन्तश्च चापानि सर्वतः प्रत्यवारयन् ।
श्लिष्टं च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते ॥ ५६ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः ।
त एनमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च ॥ ५७ ॥
सिषिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेघा इवाम्बुभिः ।
ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र राजन्व्यदर्शयन् ॥ ५८ ॥
धनञ्जयस्य गात्रे तु शूराः परिघबाहवः ।
हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥ ५९ ॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।
तं कर्णः संयुगे राजन्प्रत्यवारयदाशुगैः ॥ ६० ॥
मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत ।
तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद्रणाजिरे ॥ ६१ ॥
सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
सात्वतश्च त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष ॥ ६२ ॥

को अश्वत्थामाने पच्चीस, दुर्योधनने बीस, वृषसेनने सात, तथा कर्ण और शल्यने तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया। इसी भांति वे सम्पूर्ण महारथी योद्धा लोग बार बार सिंहनाद करके धनुष फेरते हुए अर्जुनको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे; और सूर्य अस्त होनेकी प्रतीक्षा करके अर्जुनको चारों ओरसे अपने रथों के समूहसे इस भांति घेर लिया कि अर्जुनको निकलनेके निमित्त इधर उधर तनिक भी मार्ग न रहा॥ (५२—५७)

महाराज! परिघ समान भुजावाले महारथ योद्धा लोग सिंहनादके सहित धनुष चढाकर अपने अस्त्र शस्त्र और दिव्य अस्त्रोंको प्रकाशित करके अर्जुनके ऊपर ऐसी बाण वर्षा करने लगे जैसे बादलोंका समूह पर्वतके ऊपर जलवर्षा करता है, परन्तु अत्यन्त पराक्रमी अर्जुन तुम्हारी सेनाके अनगिनत योद्धाओंको यमपुरीमें भेजकर जयद्रथके रथके निकट जाने लगे॥ (५७—६०)

तब उस समय सूतपुत्र कर्ण सात्यकि और भीमसेन के सम्मुखही में अपने बाणोंसे अर्जुनको निवारण करने लगे। महाबाहु अर्जुनने भी सम्पूर्ण सेनाके सम्मुखमें ही कर्णको दश बाणोंसे विद्ध

भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः ।
तान्कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः ॥६३॥
तद्युद्धमभवद्राजन्कर्णस्य बहुभिः सह ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६४ ॥
यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीन्रथान्पर्यवारयत् ।
फाल्गुनस्तु महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ ६५ ॥
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत् ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ६६ ॥
शरैः पञ्चाशता वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत ।
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नाऽमृष्यत रणेऽर्जुनः ॥ ६७ ॥
ततः पार्थो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं स्तनान्तरे ।
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ६८ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्डवम् ॥ ६९ ॥
तां बाणवृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम् ।
व्यधमत्सायकैः पार्थः शलभानिव मारुतः ॥ ७० ॥

किया; फिर सात्यकिने तीन भीमसेनने भी तीन और अर्जुनने सात बाणोंसे उन्हें विद्ध किया। महारथी कर्णने उन हर एक वीरोंको साठ साठ बाणोंसे विद्ध किया। इसी भांति उन तीनों महारथियोंके साथ कर्णका अकेले युद्ध होने लगा। (६०—६४)

महाराज! उस समय सूर्यपुत्र कर्णका यह आश्चर्यमय पराक्रम दीख पडा कि, वह युद्धभूमिमें अकेलेही उन तीनों महारथियोंको क्रुद्ध होकर निवारित करने लगे। महाबाहु अर्जुनने एकसौ बाणोंसे कर्णके सम्पूर्ण मर्मस्थानों को पीडित किया। उस महा प्रतापी कर्णने रुधिर पूरित शरीरसे युक्त हो पचास बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया। कर्णका ऐसा अस्त्रलाघव अर्जुनसे न सहा गया; उन्होंने शीघ्र ही कर्णके धनुषको काट कर नव बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार किया॥ (६४—६८)

उस ही समय महा प्रतापी कर्णने दूसरा धनुष ग्रहण कर इकबारगी आठ सहस्र बाण चलाकर अर्जुनको छिपा दिया। महाराज! जैसे वायु शलभ समूहको पृथक् करता है वैसे ही बलवान् अर्जुनने छूटे हुए बाणोंकी वृष्टिको

छादयामास च तदा सायकैरर्जुनो रणे।
पश्यतां सर्वयोधानां दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ ७१ ॥
वधार्थं चाऽस्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम्।
चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनञ्जयः ॥ ७२ ॥
तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम्।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स च्छिन्नः प्रापतद्भुवि ॥ ७३ ॥
कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामास फाल्गुनम्।
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया ॥ ७४ ॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ।
सायकैस्तु प्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्मगैः ॥ ७५ ॥
अदृश्यौ च शरौघैस्तौ निघ्नन्तावितरेतरम्।
कर्ण पार्थोऽस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं तिष्ठ फाल्गुन ॥७६॥
इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तुदतां तदा।
युध्यतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ७७ ॥

निवारण किया, फिर अपना हस्तलाघव दिखाते हुए सम्पूर्ण सेनाके सम्मुखहींमें अपने बाणजालसे कर्णको छिपा दिया ॥ (६७—७१)

फिर अर्जुनने जयद्रथवधके वास्ते आतुर हो कर्णके वधके निमित्त सूर्यकिरण समान एक प्रकाशमान बाण चलाया। महाराज द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने वेगपूर्वक उस बाणको कर्णकी ओर आते देख अपने तीक्ष्ण अर्धचन्द्र अस्त्रसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ शत्रुनाशन कर्ण भी अर्जुनके बाणोंको निवारण कर अनगिनत बाणोंसे उन्हें छिपाने लगे ॥ (७२—७४)

पुरुषसिंह महारथी अर्जुन और कर्णने दो मतवारे बैलकी भांति गर्जते हुए अपने बाणोंकी जालसे मुहूर्त भरके बीच आकाशमण्डलको छिपा दिया और दोनों ही एक दूसरेके बाणके जालसे ऐसे अदृश्य होगये कि किसीको देख भी न पडते थे; परन्तु वे दोनों पुरुषसिंह एक दूसरेके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते ही जाते थे। उस समय वे दोनों पराक्रमी वीर 'हे कर्ण! खडे रहो! मैं अर्जुन हूं, हे अर्जुन! खडा रह! मैं कर्ण हूं;' इसी प्रकार सिंहनाद शब्दके सहित गर्जते हुए वे दोनों पुरुषसिंह अपने वचनरूपी शलाकासे एक दूसरेको दुःखित करते हुए आपसमें युद्ध करने लगे। वे दोनों पराक्रमी वीर अस्त्र लाघवके

प्रेक्षणीयौ चाऽभवतां सर्वयोधसमागमे ।
प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ७८ ॥
अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ ।
ततो दुर्योधनो राजंस्तावकानभ्यभाषत ॥ ७९ ॥
यत्नाद्रक्षत राधेयं नाऽहत्वा समरेऽर्जुनम् ।
निवर्तिष्यति राधेय इति मामुक्तवान्नृपः ॥ ८० ॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन्दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ॥ ८१ ॥
अनयत्प्रेतलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ८२ ॥
छादयामास स शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ।
संछाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ८३ ॥
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाऽभ्यपद्यत ।

सहित अस्त्र चलाते और नाना प्रकारके युद्ध कौशल दिखाते हुए रणभूमिमें इस प्रकार युद्ध करने लगे कि सब कोई इकटक नेत्रसे पराक्रम देखते ही रह गये। महाराज! इसी भांति जब वे दोनों वीर एक दूसरेके वधकी इच्छा करके युद्ध कर रहे थे उस समय सिद्ध चारण और पन्नग लोग उन दोनों ही पुरुष सिंहोंकी प्रशंसा करने लगे। (७५—७९)

तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन अपनी सेनाके पुरुषोंसे यह वचन बोले, हे वीरपुरुषो! आज महावीर कर्णने मेरे समीप इस प्रकार प्रतिज्ञा किया है, कि अर्जुनको विना मारे मैं युद्धसे निवृत्त न होऊंगा; इससे तुम सब कोई यत्नवान् होकर कर्णकी रक्षा करो॥ (७९-८०)

राजा दुर्योधन अपनी सेनाके वीरोंसे ऐसा वचन कह रहे थे और उधर श्वेतवाहन अर्जुनने कर्णका पराक्रम देख कान पर्यन्त खींचकर चार बाणोंसे कर्णके चारो घोडोंका वध किया, फिर एक भल्लास्त्रसे उनके सारथीको मार कर पृथ्वीमें गिराया और अनेक बाणोंको चलाकर दुर्योधनके संमुखमें ही कर्णको छिपा दिया॥ (८१-८३)

महाराज! इसी प्रकार कर्ण युद्ध-भूमिके बीच घोडे सारथीसे रहित हुए और अर्जुनके बाणजालमें छिपकर मोहित होगये; तब वह अपने मनमें विचारने लगे, कि इस समय कौनसा कार्य करूं, परन्तु कुछ भी निश्चय न कर सके॥ (८३—८४)

तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा ॥ ८४ ॥
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत् ।
मद्रराजश्च कौन्तेयमविध्यत्त्रिंशता शरैः ॥ ८५ ॥
शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत् ।
धनञ्जयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः ॥ ८६ ॥
चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च सप्तभिः ।
पृथक्पृथङ् महाराज विव्यधुः कृष्णपाण्डवौ ॥ ८७ ॥
तथैव तान्प्रत्यविध्यत्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥ ८८ ॥
सैन्धवं दशभिर्बाणैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
शारद्वतं च विंशत्या विध्वा पार्थो ननाद ह ॥ ८९ ॥
ते प्रतिज्ञाप्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः ।
सहितास्तावकास्तूर्णमभिपेतुर्धनञ्जयम् ॥ ९० ॥
अथाऽर्जुनः सर्वतो वारुणास्त्रं प्रादुश्चक्रे त्रासयन्धार्तराष्ट्रान् ।
तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुपुत्रं रथैर्महार्हैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥ ९१ ॥
ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते सुदारुणे भारत मोहनीये ।

उस ही समय द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने कर्णको रथ-रहित देख उन्हें अपने रथमें चढा लिया, तब वह फिर अर्जुनके सङ्ग युद्ध करने लगे। उस समय मद्रराज शल्यने अर्जुनको तीस बाणोंसे विद्ध किया और कृपाचार्यने वीस बाणोंसे कृष्ण और बारह बाणोंसे अर्जुनके शरीरमें प्रहार किया॥ तिसके अनन्तर जयद्रथने चार और वृषसेनने सात बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया। इसी भांति तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण महारथी योद्धा लोग कृष्ण अर्जुनको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे॥ (८४—८७)

अर्जुनने भी उन सम्पूर्ण महारथियों को अपने बाणोंसे विद्ध किया, उन्होंने अश्वत्थामाको चौसठ, मद्रराज शल्यको एक सौ, जयद्रथको दश, वृषसेनको तीन और कृपाचार्यको वीस बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया, तब तुम्हारी ओर के महारथी योद्धा लोग अर्जुनकी प्रतिज्ञा भङ्ग करनेकी इच्छासे सब कोई मिलकर शीघ्रतासे उनकी ओर दौडे॥ (८८–९०)

अर्जुनने तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको त्रस्त करके महा वारुण अस्त्र प्रकट किया, परन्तु कौरव लोग भी अपने उत्तम रथोंपर चढके अर्जुनके ऊपर

नोऽमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः किरीटमाली व्यसृजच्छरौघान् ॥ ९२ ॥
राज्यप्रेप्सुः सव्यसाची कुरूणां स्मरन्क्लेशान्द्वादशवर्षवृत्तान् ।
गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयः ॥ ९३ ॥
प्रदीप्तोल्कमभवच्चान्तरिक्षं मृतेषु देहेष्वपतन्वयांसि ।
यत्पिङ्गलज्येन किरीटमाली क्रुद्धो रिपूनाजगवेन हन्ति ॥ ९४ ॥
ततः किरीटी महता महायशाः शरासनेनास्य शराननीकजित् ।
हयप्रवेकोत्तमनागधूर्णितान्कुरुप्रवीरानिषुभिर्व्यपातयत् ॥ ९५ ॥
गदाश्च गुर्वीः परिघानयस्मयानसींश्च शक्तीश्च रणे नराधिपाः ।
महान्ति शस्त्राणि च भीमदर्शनाः प्रगृह्य पार्थं सहसाऽभिदुद्रुवुः ॥९६॥
ततो युगान्ताभ्रसमस्वनं महन्महेन्द्रचापप्रतिमं च गाण्डिवम् ।
चकर्ष दोर्भ्यां विहसन्भृशं यशो वहंस्त्वदीयान्यमराष्ट्रवर्धनः ॥ ९७ ॥

बाण वर्षा करते हुए उनकी ओर दौडे ॥ महाराज उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंको विस्मित करनेवाले अत्यन्त भयङ्कर तुमुल संग्राम उपस्थित होने पर भी किरीटधारी अर्जुन मोहित न हुए वरन जयद्रथको देखके लगातार वह अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ अत्यन्त पराक्रमी महात्मा अर्जुनने राज्यकी अभिलाष कर और कौरवोंके दिये हुए वनवासके क्लेशको स्मरण करके अपने गाण्डीव धनुषको चढाकर बाणवर्षासे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूर्ण कर दिया ॥ (९१–९३)

एक बाणके ऊपर दूसरा बाण रगड खाने से अग्नि उत्पन्न हो कर आकाश मण्डलमें जलते हुए लुकके समान प्रकाशित होने लगा । तब मांस खाने वाले पक्षियोंके झूण्डके झूण्ड मनुष्योंके मृत शरीर पर गिरने लगे । उस समय अर्जुन महादेवके पिनाक धनुष समान अपना प्रचण्ड धनुष चढाके तीक्ष्ण बाणोंसे योद्धाओंका वध करने लगे ॥ शत्रुसेनाको जीतने वाले यशस्वी अर्जुन घुडसवार और गजपति योद्धाओंके चलाये हुए अस्त्रोंको अपनी अस्त्रमायासे निवारण कर तीक्ष्ण बाणोंसे सेनाके पुरुषोंका वध करने लगे ॥ (९४–९५)

तब शूरवीर क्षत्रिय योद्धा अत्यन्त क्रुद्ध हुए और शक्ति आदि अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण कर अर्जुनकी ओर दौडे ॥ महाराज ! उस समय महाधनुर्द्धारी अर्जुन प्रलय कालके बादल तथा इन्द्र धनुष समान शब्द करनेवाले गाण्डीव धनुषको कान पर्यन्त खींच कर अपने बाणोंसे तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका वध करके परलोकमें भेजने लगे ॥ इसी

स तानुदीर्णान्सरथान्सवारणान्पदातिसङ्घांश्च महाधनुर्धरः ।
विपन्नसर्वायुधजीवितान्रणे चकार वीरो यमराष्ट्रवर्धनान् ॥९८॥ [६१४९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

सञ्जय उवाच– श्रुत्वा निनादं धनुषश्च तस्य विस्पष्टमुत्कुष्टमिवाऽन्तकस्य ।
शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरं विकृष्यमाणस्य धनञ्जयेन ॥ १ ॥
त्रासोद्विग्नं तथोद्भ्रान्तं त्वदीयं तद्बलं नृप ।
युगान्तवातसंक्षुब्धं चलद्वीचितरङ्गितम् ॥ २ ॥
प्रलीनमीनमकरं सागराम्भ इवाऽभवत् ।
स रणे व्यचरत्पार्थः प्रेक्षमाणो धनञ्जयः ॥ ३ ॥
युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन् ।
आददानं महाराज सन्दधानं च पाण्डवम् ॥ ४ ॥
उत्कर्षन्तं सृजन्तं च न स्म पश्याम लाघवात् ।
ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥ ५ ॥
प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन्सर्वभारतान् ।
ततः शराः प्रादुरासन्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रिताः ॥ ६ ॥

प्रकार अर्जुन घुडसवार रथी गजपति और पैदल चलने वाले शूरवीरोंसे युक्त तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको प्राणरहित करके यमपुरीमें भेजने लगे ॥ ९६-९८

द्रोणपर्वमें एकसौ पैंतालिस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ छियालिस अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! जिस समय महावीर अर्जुन गाण्डीव धनुष चढाकर तीक्ष्णबाण चलाने लगे, उस समय इन्द्रके वज्रसमान उनके धनुषका शब्द सुनकर तुम्हारी सेना भयसे व्याकुल होगयी, जैसे प्रलयकालके समय प्रचण्ड वेगसे मकर मच्छसे युक्त समुद्रका जल उथलित होता है, वैसे ही तुम्हारी सेनाके पुरुषोंका चित्त युद्धसे विचलित होने लगा ॥ उस समय बाण चलाते हुए अर्जुन युद्धभूमिके बीच इस प्रकार भ्रमण करने लगे ॥ कि एक ही समय चारों ओर दीख पडते थे । (१–४)

महाराज ! उस समय अर्जुन हस्तलाघवके सहित कब तूणीरसे बाण ग्रहण करते, कब साधते, कब धनुष पर चढाते और किस समय शत्रुओंकी ओर चलाते थे, वह किसीको दिखाई नहीं पडता था । महाबाहु अर्जुनने सम्पूर्ण कौरवी सेनाको भयभीत करके ऐन्द्र-अस्त्र प्रकट

प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
आकर्णपूर्णनिर्मुक्तैरग्न्यर्कांशुनिभैः शरैः ॥ ७ ॥
नभोऽभवत्तदुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम् ।
ततः शस्त्रान्धकारं तत्कौरवैः समुदीरितम् ॥ ८ ॥
अशक्यं मनसाऽप्यन्यैः पाण्डवः सम्भ्रमन्निव ।
नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ॥ ९ ॥
नैशं तमोंऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः ।
ततस्तु तावकं सैन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ॥ १० ॥
आक्षिपत्पल्वलाम्बूनि निदाघार्क इव प्रभुः ।
ततो दिव्यास्त्रविदुषा प्रहिताः सायकांशवः ॥ ११ ॥
समाप्लवन्द्विषत्सैन्यं लोकं भानोरिवांऽशवः ।
अथाऽपरे समुत्सृष्टा विशिखास्तिग्मतेजसः ॥ १२ ॥
हृदयान्याशु वीराणां विविशुः प्रियबन्धुवत् ।
य एनमीयुः समरे त्वद्योधाः शूरमानिनः ॥ १३ ॥

किया, उस ऐन्द्रास्त्रसे अग्निके समान प्रकाश मान सैकड़ों सहस्रों बाण उत्पन्न हुए। गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए अग्नि और सूर्य किरणके समान प्रकाशमान बाणोंसे आकाश-मण्डल लुक समूहकी भांति आश्चर्य रूपसे दिखाई देने लगा॥ इसी प्रकार सब दिशाएं अंधकारसे व्याप्त होगयीं ॥ (४—८)

पहिले कुरुसेनाके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रोंसे जो अन्धकार हो रहा था, जिसे कोई मनसे भी दूर नहीं कर सक्ता था, उसे अर्जुनने अपने दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे ऐसे नष्ट कर दिया, जैसे भोरके समय सूर्य उदय होकर रात्रिसे उत्पन्न हुए अन्धकारको दूर कर देता है, और जैसे ग्रीष्म ऋतुके समयमें प्रचण्ड तेजवाले सूर्य, छोटे तलाइयोंके जलको सुखा देता है, वैसे ही अर्जुन अपने प्रकाशमान बाणोंसे कुरुसेनाका नाश करने लगे। जैसे सूर्यकी किरण सम्पूर्ण पृथ्वी पर प्रकाशित होती है, वैसे ही अस्त्रविद्या जाननेवाले अर्जुनके बाण क्षण भरके बीच उस स्थानमें सम्पूर्ण सेनाके पुरुषों को छिपाने लगे ॥ (९-१२)

महाराज ! गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए वे तीक्ष्ण बाण प्रियबन्धुओंके समान शूरवीरोंके हृदयमें प्रविष्ट होने लगे ॥ अधिक क्या कहूं उस समय तुम्हारी सेनाके जितने योद्धा मतवारे होकर अर्जुनके समीप उपस्थित हुए वे सम्पूर्ण

शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम् ।
एवं स मृद्नञ्शत्रूणां जीवितानि यशांसि च ॥ १४ ॥
पार्थश्चचार संग्रामे मृत्युर्विग्रहवानिव ।
सकिरीटानि वक्त्राणि साङ्गदान्विपुलान्भुजान् ॥१५॥
सकुण्डलयुगान्कर्णान्केषांचिदहरच्छरैः ।
सतोमरान्गजस्थानां सप्रासान्हयसादिनाम् ॥ १६ ॥
सचर्मणः पदातीनां रथिनां च सधन्वनः ।
सप्रतोदान्नियन्तृणां बाहूंश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ १७ ॥
प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान्बभौ तत्र धनञ्जयः ।
स विस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ १८ ॥
तं देवराजप्रतिमं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
युगपद्दिक्षु सर्वासु रथस्थं पुरुषर्षभम् ॥ १९ ॥
निक्षिपन्तं महास्त्राणि प्रेक्षणीयं धनञ्जयम् ।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनादिनम् ॥ २० ॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते यत्नवन्तोऽपि पार्थिवाः ।
मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाऽम्बरे ॥ २१ ॥

योद्धा अर्जुनके समीप पहुंचके इस प्रकार नष्ट होगये जैसे जलती हुई अग्नि में पतिङ्गोंके समूह प्रवेश करके भस्म होजाते हैं । इसी भांति अर्जुन शूरवीर योद्धाओंके प्राण और यशोंको नष्ट करते हुए देहधारी मृत्युकी भांति रणभूमिमें घूमने लगे ॥ (१३–१५)

वह अपने बाणोंसे किसीके मुकुट भूषित सिर, किसीके हस्तभूषणयुक्त विशाल भुजा, किसी किसीके कुण्डल शोभित दोनों कान, गजसवारोंके तोमर भूषित, घुडसवारोंकी प्रास युक्त, पैदल सेनाके शूरवीरोंकी तलवार ढाल, रथियोंके धनुष बाण और सारथियोंके कोडेके सहित भुजाओंको काट पृथ्वीमें गिराते हुए रणभूमिके बीच इस प्रकार शोभित होने लगे, जैसे प्रचण्ड शिखासे युक्त जलती हुई अग्नि प्रकाशित होती है॥ १५–१८

महाराज ! शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ इन्द्रके समान पराक्रमी कपिध्वजावाले महावीर अर्जुन युद्धभूमिमें महा अस्त्र शस्त्रोंको चलाकर धनुष टंकार और तलत्राण शब्दके सहित मानो रथपर नृत्य करते हुए एक ही समय चारों ओर दिखाई देने लगे ॥ तुम्हारी ओरके योद्धा लोग अत्यन्त यत्नवान् होकर भी अर्जुनको

दीप्तोग्रसम्भृतशरः किरीटी विरराज ह।
वर्षास्विवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वाऽम्बुदो महान् ॥२२॥
महास्त्रसम्प्लवे तस्मिञ्जिष्णुना सम्प्रवर्तिते।
सुदुस्तरे महाघोरे ममज्जुर्योधपुङ्गवाः ॥ २३ ॥
उत्कृत्तवदनैर्देहैः शरीरैः कृत्तबाहुभिः।
भुजैश्च पाणिनिर्मुक्तैः पाणिभिर्व्यङ्गुलीकृतैः ॥ २४ ॥
कृत्ताग्रहस्तैः करिभिः कृत्तदन्तैर्मदोत्कटैः।
हयैश्च विधुरग्रीवै रथैश्च शकलीकृतैः ॥ २५ ॥
निकृत्तान्त्रैः कृत्तपादैस्तथाऽन्यैः कृत्तसन्धिभिः।
निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥
मृत्योराघातललितं तत्पार्थायोधनं महत्।
अपश्याम महीपाल भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २७ ॥
आक्रीडमिव रुद्रस्य पुराऽभ्यर्दयतः पशून्।

दोपहर के सूर्य समान देखनेमें भी समर्थ न हुए॥ जैसे वर्षाऋतुमें जल वर्षते हुए बादलोंके बीच इन्द्रधनुष प्रगट होकर शोभित होता है, वैसे ही प्रकाशमान बाणोंके सहित गाण्डीव धनुषसे किरीटधारी अर्जुन शोभित होने लगा॥ (१९–२२)

महाराज! इस भांति अर्जुनके धनुष से छूटे हुए भयङ्कर बाणरूपी लहरमें डूबते हुए योद्धाओंके बीच किसीके सिर, किसीकी भुजा,किसीकी हथेली, किसीकी अंगुली कटके पृथ्वीपर गिरने लगीं। मतवारे हाथियोंके बीच कितने ही हाथियोंके दांत कट गये; कितने ही हाथियोंके सुण्डके सहित सुन्दर दांत खण्ड खण्ड होकर पृथ्वीमें गिरने लगे। किसी किसी स्थानपर मस्तक हीन घोडे और छिन्न भिन्न हुए रथ गिरे हुए दिखाई देने लगे॥ (२३–२५)

कितने ही वीरोंके पेटसे आंत बाहर आये दीखने लगीं। किसीके चरण किसीकी भुजा कट गयीं; कितने ही शूरवीरोंके सन्धिस्थल (जोडके स्थान) कटनेसे वे लोग चेष्टा रहित होकर भयङ्कर शब्द करने लगे; महाराज! इसी भांति तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेनाके सैकडों सहस्रों योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीमें गिरने लगे, उस समय वह रणभूमि मृत्यु के निवासस्थान वा सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाले महाकाल रुद्रके क्रीडास्थान समान भयंकर दिखाई देने लगी॥ उस रणभूमिके बीच

गजानां क्षुरनिर्मुक्तैः करैः ससुजगेव भूः ॥ २८ ॥
क्वचिद्भौ स्रग्विणीव वक्त्रपद्मैः समाचिता ।
विचित्रोष्णीषमुकुटैः केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥ २९ ॥
स्वर्णचित्रतनुत्रैश्च भाण्डैश्च गजवाजिनाम् ।
किरीटशतसङ्कीर्णा तत्र तत्र समाचिता ॥ ३० ॥
विरराज भृशं चित्रा मही नववधूरिव ।
मज्जामेदःकर्दमिनीं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ३१ ॥
मर्मास्थिभिरगाधां च केशशैवलशाद्वलाम् ।
शिरोबाहूपलतटां रुग्णक्रोडास्थिसङ्कटाम् ॥ ३२ ॥
चित्रध्वजपताकाढ्यां छत्रचापोर्मिमालिनीम् ।
विगतासुमहाकायां गजदेहाभिसंकुलाम् ॥ ३३ ॥
रथोडुपशताकीर्णां हयसङ्घातरोधसम् ।
रथचक्रयुगेषाक्षकूबरैरतिदुर्गमाम् ॥ ३४ ॥
प्रासासिशक्तिपरशुविशिखाहिदुरासदाम् ।
बलकङ्कमहानक्रां गोमायुमकरोत्कटाम् ॥ ३५ ॥

कटे हुए हाथियोंके सूण्ड सर्पके समान दिखाई देते थे ॥ (२६—२८)

कहीं कहीं शूरवीरोंके मुखकमलोंसे रणभूमि माला पहिनी हुई की समान दीख पडती थी, कहीं कहीं कवच कुण्डल सुवर्ण भूषित तलत्राण मुकुट वस्त्र घोडे और हाथियोंके मर्म और सैकडों किरीट इधर उधर पडे रहनेसे वह रणभूमि गौनहाई नवीन स्त्रीके समान शोभित होने लगी । (२९—३१)

तिसके अनन्तर रणभूमिके बीच कादर और साधारण पुरुषोंके भयको बढानेवाली वैतरणी नदीकी भांति भयंकर रुधिररूपी तरङ्गसे युक्त एक भयंकर नदी उत्पन्न हुई ॥ मज्जा और मेद उसके कीचड, रक्तका प्रवाह तरङ्ग, केश उसमें सिवार, कटे हुए सिर और भुजा उसमें पत्थरोंके टुकडे और सैकडों रथ उसमें नौकारूपी, कौवे कङ्क आदि पक्षी उसमें जल जन्तु, सियार उसमें मकर मच्छ तथा बडे बडे गिद्ध उसमें घडियाल रूपी ग्राह होने लगे । वह नदी शूरवीरों के चर्म और हड्डियोंसे युक्त होकर दुःख से तरने योग्य बोध होने लगी । योद्धाओंकी फसलियां और हड्डियोंसे वह नदी दुर्गम बोध होने लगे । धनुष्य और छत्र तरङ्गमाला तथा विचित्र ध्वजा पताका और मरे हुए मनुष्य हाथी घोडों के

गृध्रोदग्रमहाग्राहां शिवाविरुतभैरवाम् ।
नृत्यत्प्रेतपिशाचाद्यैर्भूताकीर्णां सहस्रशः ॥ ३६ ॥
गतासुयोधनिश्रेष्ठशरीरशतवाहिनीम् ।
महाप्रतिभयां रौद्रां घोरां वैतरणीमिव ॥ ३७ ॥
नदीं प्रवर्तयामास भीरूणां भयवर्धिनीम् ।
तं दृष्ट्वा तस्य विक्रान्तमन्तकस्येव रूपिणः ॥ ३८ ॥
अभूतपूर्वं कुरुषु भयमागाद्रणाजिरे ।
तत आदाय वीराणामस्त्रैरस्त्राणि पाण्डवः ॥ ३९ ॥
आत्मानं रौद्रमाचष्ट रौद्रकर्मण्यधिष्ठितः ।
ततो रथवरान्राजन्नत्यतिक्रामदर्जुनः ॥ ४० ॥
मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाऽम्बरे ।
न शेकुः सर्वभूतानि पाण्डवं प्रति वीक्षितुम् ॥ ४१ ॥
प्रसृतांस्तस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान्महात्मनः ।
संग्रामे सम्प्रपश्यामो हंसपंक्तिमिवाऽम्बरे ॥ ४२ ॥
विनिवार्य स वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः ।

शरीर उस नदीके तट रूपी मालूम होते थे। रथके चक्र धुरी और टूटे हुए रथों के इधर उधर पड़े रहनेसे गमन करनेका मार्ग नहीं दीख पड़ता था। प्रास तरवार फरसे आदि अस्त्रशस्त्र उसमें सर्पके समान दिखाई देने लगे। सियारोंके भयङ्कर शब्दके सहित सहस्रों भूत प्रेत पिशाच हर्षित होकर नाच रहे थे उससे रणभूमिके बीच वह नदी अत्यन्त भयङ्करी मालूम होने लगी, शूरवीर पुरुषोंके मृत शरीर उस नदीमें बहे जाते थे। यमराज रूपी अर्जुनका ऐसा पराक्रम देख कुरुसेनाके योद्धाओंके चित्तमें जो कभी पूर्वकालमें नहीं हुआ था ऐसा भय उत्पन्न हुआ। (३१—३९)

अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे शत्रुपक्षीय वीरोंके सब अस्त्रोंको निवारण किया और भयानक कर्म करने में प्रवृत्त होकर अपने उग्र रूपको प्रगट किया। और बड़े बड़े रथोंको अतिक्रम कर मध्यन्दिन के सूर्य समान प्रकाशित होने लगे; तब उसकी ओर कोई भी नहीं देख सके॥ उस महात्मा अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाण जब आकाशमें फैलने लगे तब हंस पांतिकी समान शोभित होने लगे ॥ (३९-४२)

कृष्ण सारथीके सहित अर्जुन उस समय अपने अस्त्रोंके प्रभावसे तुम्हारी

दर्शयन्रौद्रमात्मानमुग्रे कर्मणि धिष्ठितः　॥ ४३ ॥
स तान्रथवरान्राजञ्शल्याक्रामत्तदाऽर्जुनः ।
मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथवधेप्सया ॥
विसृजन्दिक्षु सर्वासु शरानसितसारथिः　॥ ४४ ॥
सरथो व्यचरत्तूर्णं प्रेक्षणीयो धनञ्जयः ।
भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः　॥ ४५ ॥
अदृश्यन्ताऽन्तरिक्षस्थाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
आददानं महेष्वासं सन्दधानं च सायकम्　॥ ४६ ॥
विसृजन्तं च कौन्तेयं नाऽनुपश्याम वै तदा ।
तथा सर्वा दिशो राजन्सर्वांश्च रथिनो रणे　॥ ४७ ॥
कदर्थीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ।
विव्याध च चतुःषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४८ ॥
सैन्धवाभिमुखं यान्तं योधाः सम्प्रेक्ष्य पाण्डवम् ।
न्यवर्तन्त रणाद्वीरा निराशास्तस्य जीविते　॥ ४९ ॥
यो योऽभ्यधावदाक्रन्दे तावकः पाण्डवं रणे ।
तस्य तस्याऽन्तगा बाणाः शरीरे न्यपतन्प्रभो ॥ ५० ॥

ओरके योद्धाओंके अस्त्रजालको निवारण कर उग्र रूप धारण करके अपना भयङ्कर पराक्रम प्रकाशित करने लगे ॥ हे राजन् ! उस समय अर्जुनने बडे बडे रथोंको अतिक्रमण करके जयद्रथ वधकी इच्छा से अपने बाणोंसे उन सम्पूर्ण रथियोंको मोहित कर दिया; और चारों ओर अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर शीघ्रताके सहित रणभूमिमें घूमने लगे ॥ उस समय हम लोग केवल अर्जुनके धनुपसे छूटे हुए सैकडों सहस्रों बाण आकाशमण्डलमें भ्रमण करते हुए देखने लगे। वह किस समय तूणीरसे बाण निकलते धनुषपर चढाते और किस समय चलाते थे वह किसीको दिखाई नहीं देता था। ४३-४७

उन्होंने अपनी बाण-वर्षासे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित तथा तुम्हारी ओरके रथियोंको पीडित करके जयद्रथ की ओर दौडकर चौसठ तीक्ष्णबाणोंसे राजा जयद्रथको विद्ध किया ॥ महाराज ! तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण योद्धालोग कुन्तीपुत्र अर्जुनको सिन्धुराज जयद्रथकी ओर गमन करते देख उनके जीवनसे निराश होकर संग्रामसे निवृत्त होने लगे ॥ उस समय जो वीर युद्ध-भूमिमें अर्जुनके संमुख हुए उन्हींके

कबन्धसंकुलं चक्रे तव सैन्यं महारथः ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः शरैरग्न्यंशुसंनिभैः ॥ ५१ ॥
एवं तत्तव राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा ।
व्याकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ५२ ॥
द्रौणिं पञ्चाशताऽविध्यद्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
कृपायमाणः कौन्तेयः कृपं नवभिरार्दयत् ॥ ५३ ॥
शल्यं षोडशभिर्बाणैः कर्णं द्वात्रिंशता शरैः ।
सैन्धवं तु चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवाऽनदत् ॥५४॥
सैन्धवस्तु तथा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
न चक्षमे सुसंक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ५५ ॥
स वराहध्वजस्तूर्णं गार्ध्रपत्रानजिह्मगान् ।
क्रुद्धाशीविषसङ्काशान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ५६ ॥
आकर्णपूर्णान्चिक्षेप फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
त्रिभिस्तु विध्वा गोविन्दं नाराचैः षड्भिरर्जुनम् ॥५७॥

शरीरोंपर अर्जुनके चलाये हुए बाण पडने लगे ॥ विजय करने वालोंमें श्रेष्ठ महारथी अर्जुनने सूर्यकिरणके समान प्रकाशमान बाणोंसे तुम्हारी सेनाके सिर काट काट कर पृथ्वीमें गिरा दिया; उससे सेनाके बीच अनगिनत कबन्ध दौडने लगे ॥ (४७–५१)

महाराज ! इसी भांति महावीर अर्जुन तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेनाके पुरुषोंको व्याकुल कर जयद्रथकी ओर दौडके अश्वत्थामाको पचास और वृषसेनको तीन बाणोंसे विद्ध करके कृपाचार्यको कृपापूर्वक नव बाणोंसे विद्ध किया ॥ तिसके अनन्तर शल्यको सोलह कर्णको बत्तीस और सिन्धुराज जयद्रथको पैंसठ बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया ॥ ५२–५४

सिन्धुराज जयद्रथने गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनके बाणोंसे विद्ध होकर उनके पराक्रमको सहन नहीं किया, वरन अंकुशसे विद्ध हुए मतवारे हाथीकी भांति क्रुद्ध होगये ॥ उन्होंने वराहध्वजासे युक्त अपने सुन्दर रथपर चढे हुए शीघ्रतासे उत्तम पानीमें बुझे और क्रोधी सर्पके समान तेजस्वी गिद्धपक्ष युक्त बहुतसे तीक्ष्ण बाण अर्जुनकी ओर चलाये। फिर राजा जयद्रथने तीन बाणोंसे कृष्ण, छः नाराच बाणोंसे अर्जुन, आठ बाणोंसे उनके रथके चारों घोडे और एक बाणसे उनकी ध्वजाको विद्ध किया। (५५–५८)

अष्टभिर्वाजिनोऽविध्यद् ध्वजं चैकेन पत्रिणा ।
स विक्षिप्याऽर्जुनस्तूर्णं सैन्धवप्रहिताञ्शरान् ॥ ५८ ॥
युगपत्तस्य चिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह ।
सारथेश्च शिरः कायाद् ध्वजं च समलंकृतम् ॥ ५९ ॥
स च्छिन्नयष्टिः सुमहान्धनञ्जयशराहतः ।
वराहः सिन्धुराजस्य पपाताऽग्निशिखोपमः ॥ ६० ॥
एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे ।
अब्रवीत्पाण्डवं राजंस्त्वरमाणो जनार्दनः ॥ ६१ ॥
एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थ वीरैर्महारथैः ।
जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥ ६२ ॥
एतानानिर्जित्य रणे षड्रथान्पुरुषर्षभ ।
न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन ॥ ६३ ॥
योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्याऽऽवरणं प्रति ।
अस्तङ्गत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट् ॥ ६४ ॥
हर्षेण जीविताकांक्षी विनाशार्थं तव प्रभो ।

उस समय अर्जुनने जयद्रथके चलाये हुए बाणोंको अपने बाणोंसे काट कर एकही समय दो बाणोंसे उनके सारथीका सिर और जयद्रथकी सुन्दर ध्वजाको काटकर गिरा दिया ॥ अग्निशिखाके समान प्रकाशमान वराहचिन्हयुक्त जयद्रथकी ध्वजा अर्जुनके बाणसे कटके पृथ्वीमें गिर पडी ॥ (५७-६०)

उस ही समय श्रीकृष्णजी सूर्यको शीघ्रताके सहित अस्ताचल पर्वतपर गमन करते देख व्याकुल होकर अर्जुनसे बोले, हे महाभुज अर्जुन ! यह देखो सिन्धुराज जयद्रथ अपने जीवनकी अभिलाषा करके तुम्हारे भयसे छः महारथ वीरोंके बीच स्थित है; तुम बिना इन छः महारथियोंको पराजित किये किसी भांतिसे भी सिन्धुराज जयद्रथका वध न कर सकोगे ॥ (६१-६३)

इससे यत्नवान् होकर युद्ध करो और मैं भी इस विषयमें सूर्यको छिपानेके वास्ते योगमाया प्रगट करूं; ऐसा करनेसे ही सिन्धुराज जयद्रथ इस सेनाके बीचसे पृथक् होकर प्रकाश्य-रूपसे अकेला ही सूर्यकी ओर देखने लगेगा। वह पापी जयद्रथ समझेगा,-सूर्य अस्त होनेसे ही अर्जुन प्राणत्याग करेंगे; यही विचारकर हर्षके सहित अपने प्राणरक्षाके निमित्त उन छः महारथियोंके

न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथञ्चन ॥ ६५ ॥
तत्र च्छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयाऽस्य कुरुसत्तम ।
व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६६ ॥
एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत ।
ततोऽसृजत्तमः कृष्णः सूर्यस्याऽऽवरणं प्रति ॥ ६७ ॥
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः ।
सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६८ ॥
त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप ।
ते प्रहृष्टा रणे राजन्नापश्यन्सैनिका रविम् ॥ ६९ ॥
उन्नाम्य वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः ।
वीक्षमाणे ततस्तस्मिन्सिन्धुराजे दिवाकरम् ॥ ७० ॥
पुनरेवाऽब्रवीत्कृष्णो धनञ्जयमिदं वचः ।
पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम् ॥ ७१ ॥
भयं हि विप्रमुच्यैतत्त्वत्तो भरतसत्तम ।
अयं कालो महाबाहो वधायाऽस्य दुरात्मनः ॥ ७२ ॥

बीच कदापि स्थित न रहेगा ॥ तुम उस ही समय वैसा औसर पाकर उसके ऊपर अपने अस्त्रसे प्रहार करना। सूर्य अस्त होगये हैं ऐसा समझकर उसके वध करनेमें तुम तनिक भी विलम्ब न करना। (६४-६६)

अर्जुनने श्रीकृष्णके वचनोंको सुनकर ऐसा ही होगा कहके उनके वचनको स्वीकार किया। तिसके अनन्तर परम योगेश्वर महायोगी तीनों तापके हरनेवाले श्रीकृष्ण भगवानने सूर्यको छिपानेके वास्ते अपनी योगमायासे अन्धकार उत्पन्न किया। महाराज! जब कृष्णने इस प्रकार अन्धकार उत्पन्न किया तब कौरवोंने समझा कि सूर्य अस्त हो गया। अब अर्जुन स्वयं प्राण त्याग करेंगे; यही विचारके तुम्हारी ओरके योद्धा लोग महा हर्षके सहित प्रसन्न हुए॥ (६७—६९)

वे सम्पूर्ण योद्धा और राजा जयद्रथ प्रसन्न होकर सिर ऊंचा करके सूर्यकी ओर देखने लगे। जब सिंधुराज जयद्रथ इस प्रकार सूर्यकी ओर देखने लगे, तब श्रीकृष्ण फिर अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन! यह देखो जयद्रथ तुम्हारे निकटमें ही निर्भय होकर सूर्यकी ओर देख रहा है॥ हे महाबाहो! इस पापीके वधके निमित्त यही ठीक समय उपस्थित हुआ है।

छिन्धि मूर्धानमस्याऽऽशु कुरु साफल्यमात्मनः ।
इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ७३ ॥
न्यवधीत्तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसंनिभैः ।
कृपं विव्याध विंशत्या कर्णं पञ्चाशता शरैः ॥ ७४ ॥
शल्यं दुर्योधनं चैव षड्भिः षड्भिरताडयत् ।
वृषसेनं तथाऽष्टाभिः षष्ट्या सैन्धवमेव च ॥ ७५ ॥
तथैव च महाबाहुस्त्वदीयान्पाण्डुनन्दनः ।
गाढं विध्वा शरै राजञ्जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ७६ ॥
तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिवाऽनलम् ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ७७ ॥
ततः सर्वे महाराज तव योधा जयैषिणः ।
सिषिचुः शरधाराभिः पाकशासनिराहवे ॥ ७८ ॥
संछाद्यमानः कौन्तेयः शरजालैरनेकशः ।
अक्रुध्यत्स महाबाहुरजितः कुरुनन्दनः ॥ ७९ ॥
ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः ।
व्यसृजत्पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥ ८० ॥
ते हन्यमाना वीरेण योधा राजन्रणे तव ।

इससे तुम शीघ्र ही उसका सिर काटके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो। (७०-७२)

पाण्डुपुत्र पराक्रमी अर्जुन श्रीकृष्णकी आज्ञा सुन सूर्यकिरणके समान अपने प्रकाशमान बाणोंसे तुम्हारी ओरके योद्धाओंका नाश करने लगे। उन्होंने कृपाचार्यको बीस और कर्णको पचास बाणोंसे विद्ध करके शल्य और दुर्योधनको छः छः बाणोंसे विद्ध किया। तिसके अनन्तर वृषसेनको आठ, जयद्रथको साठ और तुम्हारी ओरके योद्धाओंको अनगिनत बाणोंसे विद्ध करके राजा जयद्रथकी ओर दौडे ॥ (७३—७६)

महाराज! तुम्हारी सेनाके जो संपूर्ण योद्धा लोग जयद्रथकी रक्षाके निमित्त वहां पर उपस्थित थे, वे सब अर्जुनको जलती हुई अग्निके समान अपने सम्मुख आये देख अत्यन्त ही शङ्कित हुए और विजयकी अभिलाष करके लगातार अर्जुनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। युद्धमें अपराजित कुन्तीपुत्र अर्जुनने कुरुसेनाके पुरुषोंके नाश की इच्छा कर सम्पूर्ण युद्धभूमिमें बाण ही बाण कर दिये॥ (७७–८०)

प्रजह्रुः सैन्धवं भीता द्वौ समं नाऽप्यधावताम् ॥ ८१ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य विक्रमम् ।
तादृङ् न भावी भूतो वा यच्चकार महायशाः॥ ८२ ॥
द्विपान्द्विपगतांश्चैव हयान्हयगतानपि ।
तथा स रथिनश्चैव न्यहन्रुद्रः पशूनिव ॥ ८३ ॥
न तत्र समरे कश्चिन्मया दृष्टो नराधिप ।
गजो वाजी नरो वाऽपि यो न पार्थशराहतः ॥ ८४ ॥
रजसा तमसा चैव योधाः संछन्नचक्षुषः ।
कश्मलं प्राविशन्घोरं नाऽन्वजानन्परस्परम् ॥ ८५ ॥
ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थचोदितैः ।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुः सेदुर्मम्लुश्च भारत ॥ ८६ ॥
तस्मिन्महाभीषणके प्रजानामिव संक्षये ।

उस समय तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर जयद्रथको त्यागकर युद्धभूमिसे हटने लगे ॥ उस समय वे सम्पूर्ण योद्धा ऐसे भयभीत हो गये कि दो पुरुष मिलकर भी एक सङ्ग गमन न कर सके ॥ उस समय मैंने यशस्वी अर्जुनका ऐसा पराक्रम देखा, कि वैसा पराक्रम न कभी दीख पडा और न भविष्यहीमें दिखाई देगा ॥ वह हाथीके सहित गजपति योद्धा, घोडेके सहित घुडसवार और सारथीयोंके सहित रथियोंका इस प्रकार वध करने लगे, जैसे भगवान् रुद्र सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश करते हैं। (८१-८३)

महाराज ! उस रणभूमि में घोडे, हाथी और मनुष्योंके बीच ऐसे कोईभी न दीख पडे, जो अर्जुनके बाणोंके पीडित न हुए होते ॥ एक तो श्रीकृष्णने योगमायासे पहले ही अन्धकार कर दिया था, उसपर फिर बाणोंके गिरनेसे महाभयङ्कर अन्धकार उत्पन्न हुआ और शूरवीरोंके पावके धकेसे ऐसी धूलि उडी कि सम्पूर्ण पुरुषोंकी आंखोंके सामने अन्धेरा छा गया। उन योद्धाओंकी आंखोंमें इतनी धूल भर गई, कि उस समय वे लोग आंख भी न खोल सकते थे, सब चेत-रहित होगये; इससे कोई एक दूसरेको जान भी नहीं सकते थे ॥ अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर कोई घूमने लगे, कोई लडखडाने लगे। कितने ही गिर गये, कितने ही थक गये और कितने ही दुःखित होके पृथ्वीपर बैठे गये ॥ (८४—८६)

उस समय प्रलयकालके समान महा-

रणे महति दुष्पारे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ८७ ॥
शोणितस्य प्रसेकेन शीघ्रत्वादनिलस्य च ।
अशाम्यत्तद्रजो भौममसृक्सिक्ते धरातले ॥ ८८ ॥
आनाभि निरमज्जंश्च रथचक्राणि शोणिते ।
मत्ता वेगवता राजंस्तावकानां रणाङ्गणे ॥ ८९ ॥
हस्तिनश्च हतारोहा दारिताङ्गाः सहस्रशः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्त आर्तनादाः प्रदुद्रुवुः ॥ ९० ॥
हयाश्च पतितारोहाः पत्तयश्च नराधिप ।
प्रदुद्रुवुर्भयाद्राजन्धनञ्जयशराहताः ॥ ९१ ॥
मुक्तकेशा विकवचाः क्षरन्तः क्षतजं क्षतैः ।
प्रापलायन्त सन्त्रस्तास्त्यक्त्वा रणशिरो जनाः॥ ९२ ॥
ऊरुग्राहगृहीताश्च केचित्तत्राऽभवन्भुवि ।
हतानां चाऽपरे मध्ये द्विरदानां निलिल्यिरे ॥ ९३ ॥
एवं तव बलं राजन्द्रावयित्वा धनञ्जयः ।
न्यवधीत्सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥ ९४ ॥
द्रौणिं कृपं कर्णशल्यौ वृषसेनं सुयोधनम् ।

भयङ्कर दारुण संग्राम उपस्थित होने-पर वायुके वेगसे रुधिर बहके इधर उधर गिरनेसे धूलिका उडना बन्द होगया, कितने रथके चक्र रुधिरमें डूब गये । सवारोंके मरने से सहस्रों हाथी बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर अपनी सेना के पुरुषोंको पांवसे मलते हुए आर्त्त नादके सहित रणभूमि में चारों ओर दौडने लगे ॥ (८७-९०)

वैसे ही सवारों सहित सुन्दर घोडे पैदल सेनाके शूरवीरोंके अस्त्रोंसे विकल होकर युद्धभूमिमें दौडने लगे ! सेनाके सम्पूर्ण पुरुष कोई रुधिर बहते शरीरसे कोई खुले हुए केशके सहित और कोई वर्म-रहित होकर भयपूर्वक चारों ओर दौडने लगे । कोई अपना पांव ग्राहसे पकडा जाने के समान उसी स्थानपर गिरपडे; कितने ही योद्धा मरे हुए हाथियोंके समूहमें छिप गये ॥ ९१-९३

महाराज ! महावीर अर्जुन इस ही भांति तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेनाके योद्धा-ओंको तितर बितर करके अपने महाघोर बाणोंसे सिन्धुराज जयद्रथके रक्षकोंके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ उन्होंने कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, वृषसेन, शल्य और सुयोधनको अपने तीक्ष्ण बाणोंके

छादयामास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥ ९५ ॥
न गृह्णन् क्षिपन्राजन्मुञ्चन्नापि च सन्दधत् ।
अदृश्यतार्ऽजुनः संख्ये शीघ्रास्त्रत्वात्कथञ्चन ॥ ९६ ॥
धनुर्मण्डलमेवाऽस्य दृश्यते स्माऽस्यतः सदा ।
सायकाश्च व्यदृश्यन्त निश्चरन्तः समन्ततः ॥ ९७ ॥
कर्णस्य तु धनुश्छित्त्वा वृषसेनस्य चैव ह ।
शल्यस्य सूतं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ९८ ॥
गाढविद्धावुभौ कृत्वा शरैः स्वस्रीयमातुलौ ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो द्रौणिशारद्वतौ रणे ॥ ९९ ॥
एवं तान्व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महारथान् ।
उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसन्निभम् ॥ १०० ॥
इन्द्राशनिसमप्रख्यं दिव्यमस्त्राभिमन्त्रितम् ।
सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं महत् ॥ १०१ ॥
वज्रेणाऽस्त्रेण संयोज्य विधिवत्कुरुनन्दनः ।
समादधन्महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥ १०२ ॥
तस्मिन्सन्धीयमाने तु शरे ज्वलनतेजसि ।

जालसे छिपा दिया ॥ उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुन किस समय धनुष फेरते साधते और कब छोडते थे, यह उनके हाथोंकी फुर्तीके कारण कुछ भी नहीं दीखता था। वह पराक्रमी अर्जुन जिस समय लगातार अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे, उस समय चारों ओर समूहके समूह बाण चलते हुए दिखाई देते थे, और हाथमें फिरता हुआ उनका गाण्डीव धनुष भी दिखाई देने लगा ॥ (९४–९७)

उन्होंने कर्ण और वृषसेनके धनुषको काट कर एक भल्लास्त्रसे शल्यके सारथी का वध करके उसे रथसे पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ तिसके अनन्तर अर्जुनने कृपाचार्य और अश्वत्थामाको भी अपने बाणोंसे अत्यन्त विद्ध किया। महाराज! विजय करनेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने इसी भांति तुम्हारी ओरके महारथियोंको व्याकुल कर इन्द्रके वज्र-समान अत्यन्त कठोर दिव्य मन्त्रसे अभिमन्त्रित सदा फूल मालासे पूजित अग्निके समान तेजस्वी महा भयङ्कर एक बाण अपने तूणीरसे निकाला ॥ उस बाणको विधिपूर्वक वज्र अस्त्रके सहित संयुक्त करके शीघ्रताके सहित गाण्डीव धनुष पर चढाया ॥ (९८–१०२)

अन्तरिक्षे महानादो भूतानामभवन्नृप ॥ १०३ ॥
अब्रवीच्च पुनस्तत्र त्वरमाणो जनार्दनः ।
धनञ्जय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ॥ १०४ ॥
अस्तं महीधरश्रेष्ठं यियासति दिवाकरः ।
शृणुष्वैतच्च वाक्यं मे जयद्रथवधं प्रति ॥ १०५ ॥
वृद्धक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः ।
स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान्सुतम् ॥ १०६ ॥
जयद्रथममित्रघ्नं वाचुवाचाऽशरीरिणी ।
नृपमन्तर्हिता वाणी मेघदुन्दुभिनिःस्वना ॥ १०७ ॥
तवाऽऽत्मजो मनुष्येन्द्र कुलशीलदमादिभिः ।
गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥ १०८ ॥
क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः ।
किं त्वस्य युध्यमानस्य संग्रामे क्षत्रियर्षभः ॥ १०९ ॥
शिरश्छेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुश्चाऽलक्षितो भुवि ।
एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिन्दम॥॥११०॥

हे भारत ! जब अर्जुनने अग्निके समान उस तेजस्वी बाणको अपने धनुष पर चढाया तब आकाशवासी प्राणी मारे डरके हाहाकार करने लगे ॥ इधर श्रीकृष्ण शीघ्रताके सहित अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! यह देखो, सूर्य अस्त हुआ चाहता है, तुम इसी समय पापी जयद्रथके सिरको काट डालो, परन्तु जैसे जयद्रथका वध हो सकेगा उसकी युक्ति मैं तुमसे कहता हूं ॥ (१०३–१०५)

जयद्रथके पिता पृथ्वीके बीचमें विख्यात वृद्धक्षत्रनाम सिन्धुदेसके प्रसिद्ध राजा थे जब उन्होंने इस शत्रुनाशन जयद्रथको बहुत काल बीतनेपर पुत्र रूपसे पाया उस समय बादलके गर्जने तथा नगाडेके शब्द समान गम्भीरस्वरसे यह आकाशवाणी हुई, हे मनुष्योंके राजा सिन्धुराज वृद्धक्षत्र ! इन्द्रिय निग्रह आदि गुणोंसे यह पुत्र सूर्य और चन्द्रवंशीय राजपुरुषोंके अनुसार ही प्रतापी होगा ॥ शूरवीर पुरुष सदा इस का आदर करेंगे और क्षत्रियोंके बीच यह एक मुख्य महारथ योद्धा करके गिना जावेगा; परन्तु अनन्तर जब यह शत्रुओंके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त होवेगा, उस समय एक प्रसिद्ध क्षत्रिय योद्धा क्रुद्ध होके युद्धभूमिके बीच इसका सिर काटेगा । (१०६—११०)

ज्ञातीन्सर्वाननुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः ।
संग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ॥ १११ ॥
धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः ।
तस्याऽपि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ ११२ ॥
एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चोग्रं समास्थितः ॥ ११३ ॥
सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरासदम् ।
समन्तपञ्चकादस्माद्बहिर्वानरकेतन ॥ ११४ ॥
तस्माज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधे ।
दिव्येनाऽस्त्रेण रिपुहन्घोरेणाऽद्भुतकर्मणा ॥ ११५ ॥
सकुण्डलं सिन्धुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज ।
उत्सङ्गे पातयस्वाऽस्य वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥ ११६ ॥
अथ त्वमस्य मूर्धानं पातयिष्यसि भूतले ।
तवापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ ११७ ॥
यथा चेदं न जानीयात्स राजा तपसि स्थितः ।

शत्रुओंके नाश करनेवाले वृद्धक्षत्रने इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर बहुत देरतक चिन्ता किया फिर पुत्रके ऊपर प्रीति करके अपनी जातिके पुरुषोंके बीच यह वचन बोले, "युद्धभूमिके बीच जो पुरुष मेरे इस वीर धुरीण पुत्रका सिर काटके पृथ्वीमें गिरावेगा उसका सिर एक सौ टुकडे होकर पृथ्वी में गिर पडेगा ॥" (११०–११२)

ऐसा कहकर राजा वृद्धक्षत्र जयद्रथ को राज्य समर्पण कर वनके बीच जाकर कठिन तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए । वह तेजस्वी राजा इसी समन्तपञ्चकके बाहरी हिस्सेमें अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहे हैं । हे शत्रुनाशन कपिध्वजावाले अर्जुन ! तुम वायुपुत्र भीमसेनके भाई हो, इससे आज युद्धभूमिके बीच यह अद्भुत कार्य दिखाओ, सिन्धुराज जयद्रथके कुण्डलभूषित सिरको काटके तपस्या करनेवाले उनके पिताके गोदीमें गिरा दो ॥ (११३–११६)

यदि तुम मेरे वचनको न मानकर जयद्रथके सिरको काटके पृथ्वीमें गिराओगे तो तुम्हारा सिर भी निःसन्देह एक सौ टुकडे होके पृथ्वीमें गिर पडेगा। इससे तुम दिव्य अस्त्रके प्रभावसे ऐसी गुप्तरीतिसे जयद्रथका सिर उनके पिताके क्रोडमें रखदो जिसमें वह तपस्वी राजा

तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥ ११८ ॥
नह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते तव किञ्चन ।
समस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ॥ ११९ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सृक्किणी परिसंलिहन् ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥१२० ॥
सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं शरम् ।
विससर्जाऽर्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे धृतम् ॥ १२१ ॥
स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाऽऽशुगः ।
छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसम्॥ १२२ ॥
तच्छिरः सिन्धुराजस्य शरैरूर्ध्वमवाहयत् ।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥ १२३ ॥
शरैः कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः ।
योधयामास तांश्चैव पाण्डवः षण्महारथान्॥ १२४ ॥
ततः सुमहदाश्चर्यं तत्राऽपश्याम भारत ।
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिरो यद्ध्यहरत्ततः ॥ १२५ ॥

वृद्धक्षत्र यह न जान सके, कि मेरे ही पुत्रका सिर है। हे कुरुकुल भूषण अर्जुन! मैं तीनों लोकके बीच कोई भी ऐसा कार्य नहीं देखता हूं, जो तुमसे असाध्य होवे; क्योंकि तुम इन्द्रके पुत्र हो ॥ (११७-११९)

अर्जुनने श्रीकृष्णके उपदेशको सुनकर महात्मा जयद्रथके सिरको काटनेके निमित्त सूर्यके समान तेजस्वी, वज्रके समान कठोर, सदा फूल-मालासे पूजित और दिव्य-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके एक वेगगामी प्रचण्ड बाण ग्रहण करके जयद्रथकी ओर चलाया ॥ अर्जुनकी भुजासे छूटा हुआ वह बाण वेगगामी बाजपक्षीकी भांति जयद्रथके सिर को काटकर आकाशमार्गसे चलने लगा। शत्रुओंके शोक और सुहृदोंके हर्षको बढाता हुआ उस कटे हुए सिरको लेकर आकाशकी ओर उडा ॥ (१२०-१२३)

उस ही समयके बीच महावीर अर्जुन बहुतसे बाणोंकी वर्षा कर कर्ण आदि छः महारथियोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ तिसके अनन्तर हम लोगोंने उस स्थानपर अर्जुनका महा आश्चर्य पराक्रम देखा, कि अर्जुनका चलाया हुआ वह दिव्य अस्त्र कटे हुए जयद्रथके सिरको लेकर समन्त पंचकके बाहरी हिस्सेमें उपस्थित हुआ ॥ (१२४—१२५)

एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः ।
सन्ध्यामुपास्ते तेजस्वी सम्बन्धी तव मारिष ॥१२६॥
उपासीनस्य तस्याऽथ कृष्णकेशं सकुण्डलम् ।
सिन्धुराजस्य मूर्धानमुत्सङ्गे समपातयत् ॥ १२७ ॥
तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तच्चारुकुण्डलम् ।
वृद्धक्षत्रस्य नृपतेरलक्षितमरिन्दम ॥ १२८ ॥
कृतजप्यस्य तस्याऽथ वृद्धक्षत्रस्य भारत ।
प्रोत्तिष्ठतस्तस्सहसा शिरोऽगच्छद्धरातलम् ॥ १२९ ॥
ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्धनि भूतले ।
गते तस्याऽपि शतधा मूर्धाऽगच्छदरिन्दम ॥ १३० ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ।
वासुदेवं च बीभत्सुं प्रशशंसुर्महारथम् ॥ १३१ ॥
ततो विनिहते राजन्सिन्धुराजे किरीटिना ।
तमस्तद्वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥ १३२ ॥
पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः ।
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥ १३३ ॥
एवं स निहतो राजन्पार्थेनाऽमिततेजसा ।

महाराज ! महातेजस्वी तेरे सम्बन्धी राजा वृद्धक्षत्र उसी स्थान पर संध्या उपासना कर रहे थे, उस ही समय काले केशसे युक्त सुन्दर कुण्डलोंसे शोभित जयद्रथका कटा हुआ सिर अर्जुनके दिव्य अस्त्र प्रभावसे अलक्षित रूपसे उनकी गोदीमें गिरा ॥ ज्योंही वह भयभीत हो उठके खडे होने लगे, त्योंही उनकी गोदीमेंसे जयद्रथका सिर पृथ्वीमें गिरा । जब जयद्रथका सिर पृथ्वीमें गिरा तब राजा वृद्धक्षत्रका सिर भी एक सौ टुकडे होकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ (१२६—१३०)

तिसके अनन्तर सेनाके योद्धा लोग विस्मित होकर अर्जुन और श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥ जब सिन्धुराज जयद्रथ अर्जुनके अस्त्रोंसे मारे गये तब श्रीकृष्णने अपनी योगमायाके अन्धकारको दूर किया ॥ उस समय अनुयाइयोंके सहित तुम्हारे पुत्रलोग भली भांति जान गये, कि यह केवल श्रीकृष्णकी मायासे अन्धकार हुआ था ॥ महाराज ! तुम्हारे दामाद सिन्धुराज जयद्रथ आठ अक्षौहिणी सेनाका नाश

अक्षौहिणीरष्ट हत्वा जामाता तव सैन्धवः ॥ १३४ ॥
हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप ।
दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाऽभवञ्जये ॥ १३५ ॥
ततो जयद्रथे राजन्हते पार्थेन केशवः ।
दध्मौ शङ्खं महाबाहुरर्जुनश्च परन्तपः ॥ १३६ ॥
भीमश्च वृष्णिसिंहश्च युधामन्युश्च भारत ।
उत्तमौजाश्च विक्रान्तः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक्॥१३७॥
श्रुत्वा महान्तं तं शब्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
सैन्धवं निहतं मेने फाल्गुनेन महात्मना ॥ १३८ ॥
ततो वादित्रघोषेण स्वान्योधानभ्यहर्षयत् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥ १३९ ॥
ततः प्रववृते राजन्नस्तं गच्छति भास्करे ।
द्रोणस्य सोमकैः सार्धं संग्रामो लोमहर्षणः ॥ १४० ॥
ते तु सर्वे प्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
सैन्धवे निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥ १४१ ॥
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च ।

कराके अन्तमें अत्यंत तेजस्वी अर्जुनके बाणसे मारे गये ॥ (१३१—१३४)

तुम्हारे पुत्र लोग जयद्रथको मरा हुआ देख दुःखित होकर आंसूको बहाने लगे और विजयकी इच्छासे निराश होगये । उधर श्रीकृष्ण जयद्रथ को अर्जुनके बाणोंसे मरा हुआ देख आनन्दित होके पाञ्चजन्य शंख बजाने लगे । अनन्तर शत्रुनाशन महाबाहु अर्जुन, भीमसेन, पुरुषसिंह सात्यकि, पराक्रमी युधामन्यु और उत्तमौजाने भी अपने शङ्ख बजाए ॥ (१३५–१३७)

उन महाघोर शङ्खोंके शब्दको सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने जाना, कि महात्मा अर्जुनके हाथसे जयद्रथ मारे गये ॥ ऐसा समझ कर अपनी सेनाके पुरुषोंको हर्षित करने लगे, और युद्धकी इच्छासे भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यके संमुख उपस्थित हुए ॥ सूर्य अस्त होनेके समय उन सम्पूर्ण योद्धाओंके सङ्ग द्रोणाचार्यका महाघोर रोएंको खडा करनेवाला संग्राम होने लगा ॥ सिन्धुराज जयद्रथ के मारे जाने पर वे सम्पूर्ण महारथी लोग द्रोणाचार्यके वध करनेकी इच्छासे यत्न पूर्वक उनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ (१३८–१४१)

अयोधयंस्तु ते द्रोणं जयोन्मत्तास्ततस्ततः ॥ १४२ ॥
अर्जुनोऽपि ततो योधांस्तावकान्रथसत्तमान् ।
अयोधयन्महाबाहुर्हत्वा सैन्धवकं नृपम् ॥ १४३ ॥
स देवशत्रूनिव देवराजः किरीटमाली व्यधमत्समन्तात् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः पूर्वप्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥१४४॥ [६२९३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि जयद्रथवधे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना ।
मामका यदकुर्वन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच— सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत ।
अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्ततः ॥ २ ॥
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ।
द्रौणिश्चाऽभ्यद्रवद्राजन्रथमास्थाय फाल्गुनम् ॥ ३ ॥
तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैरभ्यवर्षताम् ॥ ४ ॥

उस समय पाण्डव लोग जयद्रथके मरनेसे विजय हर्षके सहित आनन्दित हुए और द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ महाराज ! जैसे सूर्य उदय हो कर अन्धकारको दूर कर देता है, और जैसे देवराज इन्द्रने देवोंके शत्रु दानवों का नाश किया था, वैसे ही किरीटधारी महावीर अर्जुनने जयद्रथ वधके विषय में अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको अपने बाणोंसे छिन्न भिन्न कर दिया, फिर महात्मा अर्जुन मुख्य मुख्य रथियोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ (१४२–१४४) [६२९३]

द्रोणपर्वमें एकसौ छियालिस अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ सैंतालिस अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! जब महावीर सिन्धुराज जयद्रथ अर्जुन के बाणोंसे मारे गये; उस समय कौरवोंने किस कार्यका अनुष्ठान किया, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ (१)

सञ्जय बोले, हे महाराज ! सिन्धुराज जयद्रथके मरने पर शरद्वतपुत्र कृपाचार्य और उनके भानजे अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर अपने रथ पर चढके अर्जुनको निज बाणोंसे छिपा दिया। रथियोंमें श्रेष्ठ वे दोनों पराक्रमी वीर दोनों ओर से अपने रथोंपर चढकर अर्जुनके ऊपर तीक्ष्णबाणोंकी वर्षा करने लगे।(२–४)

स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः ।
पीड्यमानः परामार्तिमगमद्रथिनां वरः ॥ ५ ॥
सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च ।
चकाराऽऽचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ६ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरवासृजत् ॥ ७ ॥
ते चापि भृशमभ्यघ्नन्विशिखाः पार्थचोदिताः ।
बहुत्वात्तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम् ॥ ८ ॥
अथ शारद्वतो राजन्कौन्तेयशरपीडितः ।
अवासीदद्रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ ९ ॥
विह्वलं तमभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम् ।
हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत् ॥ १० ॥
तस्मिन्भग्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि ।
अश्वत्थामाऽप्यपायासीत्पाण्डवेयाद्रथान्तरम् ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम् ।
रथ एव महेष्वासः सकृपं पर्यदेवयत् ॥ १२ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन उन दोनों महारथियोंके बाणोंसे पीडित होकर अत्यन्त कातर हुए और आचार्य पुत्र अश्वत्थामा और कृपाचार्य के वध की इच्छा कर के गुरु की भांति पराक्रम प्रकाशित करने लगे ॥ अनन्तर अर्जुनने अपने अस्त्रों के प्रभाव से कृपाचार्य और अश्वत्थामा के बाणोंको निवारण कर उनके वधकी अभिलाष नहीं किया; केवल धीरे धीरे उन के ऊपर अपने बाण चलाने लगे । परन्तु वे मन्दगतिसे चलनेवाले बाण भी क्रम से झुण्डके झुंड चलकर उन दोनों महारथियोंको अत्यन्त पीडित करने लगे, उससे शरद्वत पुत्र कृपाचार्य अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर चेष्टा रहित होकर मूर्च्छित होगये ॥ (५–९)

उनका सारथी अपने स्वामी कृपाचार्य को मूर्च्छित देख समझा कि "ये प्राण रहित होगये" ऐसा विचार कर शीघ्रताके सहित रथ लेकर वहांसे प्रस्थान किया॥ महाराज ! कृपाचार्यको रणभूमि से पृथक् होते देख, अश्वत्थामा भी अर्जुन के समीपसे भाग गये ॥ (१०–११)

इधर कुन्तीपुत्र धनुर्द्धारी अर्जुन शरद्वतपुत्र कृपाचार्यको अपने बाणोंसे

अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनं चेदमब्रवीत् ।
पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान् ॥ १३ ॥
कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने ।
नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ॥ १४ ॥
अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम् ।
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ १५ ॥
तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शरतल्पगतं गुरुम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ॥ १६ ॥
को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः ।
ऋषिपुत्रो ममाऽऽचार्यो द्रोणस्य परमः सखा ॥ १७ ॥
एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्बाणपीडितः ।
अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम् ॥ १८ ॥
अवसीदन्रथोपस्थे प्राणान्पीडयतीव मे ।
पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्यर्दितेन च ॥ १९ ॥

पीडित और मूर्च्छित देख कपिध्वजासे युक्त रथमें बैठकर विलाप करने लगे ॥ और आंखोंमें आंसू भरकर दीनताके सहित यह वचन बोले, कुल नाश करने वाले, महापापी, दुष्टात्मा दुर्योधन जब प्रसन्न हुआ था तभी महाबुद्धिमान् विदुरने सम्पूर्ण भविष्य घटनाओंको जानकर धृतराष्ट्रसे यह वचन कहा था। " हे महाराज धृतराष्ट्र ! इस कुलघाती पुत्रको इसी समय त्याग दीजिये, ऐसा करनेसे आपका कल्याण होवेगा और यदि इसे त्याग नहीं करोगे तो इसके जरिये कुरुवंशका नाश करनेवाला महा भय उपस्थित होगा। " (१२-१५)

परन्तु अन्धे राजा धृतराष्ट्रने विदुर के वचनोंको न माना। इस समय सत्यवादी विदुरके वचन सफल हुए; और मैंने अपने गुरु कृपाचार्यको दुर्योधनके कारणसेही शरशय्यापर शयन कराया है। क्षत्रियोंके आचार बल और पुरुषार्थको धिकार है ! क्योंकि संसारके बीच मेरे समान कौन पुरुष ब्राह्मण-द्रोही हो सकता है ? ओहो ! ये ऋषि-पुत्र गुरु और द्रोणाचार्यके परम मित्र होकर भी मेरे बाणोंसे पीडित होकर रथपर शयन कर रहे हैं। उन्हें पीडित करनेकी मुझे अभिलाष नहीं थी तौभी वह मेरे बाणोंसे पीडित होकर रथ में मूर्च्छित होगये हैं उससे मेरा चित्त अत्यन्त दुःखित हो रहा है। १५-१९

अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मगतेन वै ।
शोचयत्येष नियतं भूयः पुत्रवधाद्धि माम् ॥ २० ॥
कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथागतम् ।
उपाकृत्य तु वै विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः ॥ २१ ॥
प्रयच्छन्तीह ये कामान्देवत्वमुपयान्ति ते ।
ये च विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ॥ २२ ॥
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरयगामिनः ।
तदिदं नरकायाऽद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम् ॥ २३ ॥
आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपम् ।
यत्तत्पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत्कृपः ॥ २४ ॥
न कथञ्चन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति ।
तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः ॥ २५ ॥
नाऽनुष्ठितं तमेवाऽऽजौ विशिखैरभिवर्षता ।
नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायाऽपलायिने ॥ २६ ॥

मैं पुत्रशोकसे अत्यन्त ही कातर और उनके चलाये हुए बाणोंसे पीडित होकर उन्मत्तके समान विचाररहित होगया हूं । मैंने लगातार अपने बाणोंसे उनके ऊपर प्रहार किया है। हे कृष्ण ! यह अपने रथपर पीडित होकर कातरता सहित बैठे हैं; तुम उनकी दशाको देखो उन्हें इस प्रकारसे देख अभिमन्यु के वधसे मुझे जो शोक उत्पन्न हुआ था उससे भी बढके कृपाचार्यको चेतरहित देखकर मैं दुःखित हो रहा हूं । (१९-२१)

इस संसारके बीच जो उत्तम पुरुष गुरुके समीप विद्या सीखकर उन्हें उनकी इच्छानुसार दक्षिणा देते हैं वे देवलोकमें जाते हैं; परन्तु जो नीच पुरुष गुरुसे विद्या सीखकर उनके नाश करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वे गुरुघाती, अधम-पुरुष महा घोर नरकमें पतित होते हैं । इससे मैंने आज गुरुको प्रसन्न करनेके बदले उन्हें रथमें चेतरहित करके नरकमें जानेका अनुष्ठान किया है । (२१-२४)

पहिले अस्त्रविद्या सिखानेके समय कृपाचार्यने मुझसे कहा था, हे तात ! तुम कभी गुरुके ऊपर प्रहार मत करना, परन्तु मैंने उस साधु महात्मा गुरुके ऊपर अपने बाणोंसे प्रहार करके उनकी आज्ञा उल्लङ्घन किया है । अत्यन्त पूजनीय युद्धमें पीछे न हटनेवाले महात्मा कृपाचार्यको मैं नमस्कार करता हूं । हे

धिगस्तु मम वार्ष्णेय यदस्मै प्रहराम्यहम्।
तथा विलपमाने तु सव्यसाचिनि तं प्रति ॥ २७ ॥
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा राधेयः समुपाद्रवत्।
तमापतन्तं राधेयमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ २८ ॥
पाञ्चाल्यौ सात्यकिश्चैव सहसा समुपाद्रवन्।
उपायान्तं तु राधेयं दृष्ट्वा पार्थो महारथः ॥ २९ ॥
प्रहसन्देवकीपुत्रमिदं वचनमब्रवीत्।
एष प्रयात्याधिरथिः सात्यकेः स्यन्दनं प्रति ॥ ३० ॥
न मृष्यति हतं नूनं भूरिश्रवसमाहवे।
यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाऽश्वाञ्जनार्दन ॥ ३१ ॥
न सौमदत्तिपदवीं गमयेत्सात्यकिं वृषः।
एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ॥ ३२ ॥
प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्तमिदं वचः।
अलमेष महाबाहुः कर्णायैकोऽपि पाण्डव ॥ ३३ ॥
किं पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः।

कृष्ण! मुझे धिक्कार है, क्योंकि मैंने गुरुके ऊपर प्रहार किया! (२४–२७)

महाराज! सव्यसाची अर्जुन कृपाचार्यके वास्ते इसी भांति विलाप कर रहे थे, उस ही समय कर्ण जयद्रथके वधसे कोपित होकर अर्जुनकी ओर दौडे; कर्णको अर्जुनके रथपर आते हुए देखकर युद्धामन्यु उत्तमौजा और सात्यकी उसकी ओर बढे। (२७—२९)

तब अर्जुन राधापुत्र कर्णको अपने रथके समीप उपस्थित देख हंसते हुए श्रीकृष्णसे यह वचन बोले, हे कृष्ण! कर्णको मेरी ओर आते देख, युधामन्यु उत्तमौजा और सात्यकि उनके सम्मुख उपस्थित हुए हैं। देखो, अधिरथ पुत्र कर्ण भूरिश्रवाका मरना न सहके सात्यकिकी ओर दौड रहे हैं, वह जिस स्थान पर जारहे हैं, उसी स्थलपर मेरा रथ ले चलो; जिससे कर्ण क्रुद्ध होकर भूरिश्रवाके समीप सात्यकिको न भेज सकें॥ (२९–३२)

महातेजस्वी महाभुज श्रीकृष्ण अर्जुनके वचनको सुनकर बोले, हे अर्जुन! यह महाबाहु वृष्णिवंशीय सात्यकि अकेले ही कर्णके संग युद्ध करनेमें समर्थ हैं॥ उस पर भी युद्धामन्यु और उत्तमौजा जब उनकी सहायता कर रहे हैं, तब सात्यकिके निमित्त कौनसी चिन्ता

न च तावत्क्षमः पार्थ तव कर्णेन सङ्गरः ॥ ३४ ॥
प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥ ३५ ॥
अतः कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथा तथा ।
अहं ज्ञास्यामि कौन्तेय कालमस्य दुरात्मनः ।
यत्रैनं विशिखैस्तीक्ष्णैः पातयिष्यसि भूतले ॥ ३६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—योऽसौ कर्णेन वीरस्य वार्ष्णेयस्य समागमः ।
हते तु भूरिश्रवसि सैन्धवे च निपातिते ॥ ३७ ॥
सात्यकिश्चापि विरथः कं समारूढवान्रथम् ।
चक्ररक्षौ च पाञ्चाल्यौ तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच— हन्त ते वर्तयिष्यामि यथा वृत्तं महारणे ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा दुराचरितमात्मनः ॥ ३९ ॥
पूर्वमेव हि कृष्णस्य मनोगतमिदं प्रभो ।
विजेतव्यो यथा वीरः सात्यकिः सौमदत्तिना ॥ ४० ॥
अतीतानागते राजन्स हि वेत्ति जनार्दनः ।

है? विशेष करके कर्णके समीप जब तक जलते हुए महोल्का समान इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्ति वर्त्तमान है, तब तक कर्णके सङ्ग द्वैरथ युद्धमें तुम्हें प्रवृत्त होना उचित नहीं है। क्योंकि कर्ण उस अमोघशक्तिकी सदा पूजा अर्चा करके तुम्हारे ही वास्ते रक्खे हुआ है। हे शत्रुनाशन! इससे कर्ण सात्यकिकी ओर जिस भांतिसे गमन कर रहा है उसे वैसे ही गमन करने दो। इस दुष्टात्माके वधका समय मैं अच्छी प्रकार जानता हूं। जिस समय उसे तीक्ष्ण वाणोंसे विद्ध करके पृथ्वीमें गिराना होगा, वह समय मैं तुम से बतला दूंगा॥ (३२-३६)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय भूरिश्रवा और जयद्रथके मरनेपर वृष्णिवंशीय सात्यकिका कैसा संग्राम हुआ? और रथ-रहित सात्यकि, युधामन्यु और उत्तमौजा किसके रथ पर चढे? यह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो॥ (३७-३८)

सञ्जय बोले, महाराज! मैं उस महासंग्रामका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, आप चित्त लगा कर अपने दुराचार को सुनिये॥ हे राजन्! श्रीकृष्ण भगवान् भूत भविष्य सम्पूर्ण विषयोंको जानते हैं, सात्यकि भूरिश्रवाके निकट

ततः सूतं समाहूय दारुकं सन्दिदेश ह ॥ ४१ ॥
रथो मे युज्यतां कल्यमिति राजन्महाबलः ।
नहि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ ४२ ॥
मानवा वाऽपि जेतारः कृष्णयोः सन्ति केचन ।
पितामहपुरोगाश्च देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ॥ ४३ ॥
तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं तु तत्तथा ।
सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाऽभ्युद्यतं रणे ॥ ४४ ॥
दध्मौ शङ्खं महानादमार्षभेणाऽथ माधवः ।
दारुकोऽवेत्य सन्देशं श्रुत्वा शङ्खस्य च स्वनम् ॥ ४५ ॥
रथमन्वानयत्तस्मै सुपर्णोच्छ्रितकेतनम् ।
स केशवस्याऽनुमते रथं दारुकसंयुतम् ॥ ४६ ॥
आरुरोह शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसन्निभम् ।
कामगैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ ४७ ॥
हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः ।
युक्तं समारुह्य च तं विमानप्रतिमं रथम् ॥ ४८ ॥

पराजित होगे; इसे श्रीकृष्णने पहिले ही जान लिया था ॥ इस ही कारण उन्होंने ' कल्ह तुम मेरे रथको सज्जित करके तैयार रखना, और जब मेरे पाञ्चजन्य शङ्खका शब्द सुनना, उस ही समय रथ लेकर मेरे समीप उपस्थित होना ' ऐसी ही आज्ञा किया । (३९-४२)

हे राजन् ! इससे मनुष्य, देवता, गन्धर्व, सर्प वा राक्षस आदि कोई भी इस संसारके बीच ऐसे नहीं है, जो कृष्ण अर्जुनको जीत सकें; अधिक क्या कहूं, पितामह ब्रह्मा, देवता और सिद्ध लोग भी उन दोनोंके महाप्रभावके विषयको जानते हैं ॥ जो हो उनका अतुल प्रभाव और जिस प्रकार युद्ध हुआ था, वह मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं । श्रीकृष्ण सात्यकिको रथ रहित और कर्णको युद्धके निमित्त उनकी ओर दौडते देख भयङ्कर शब्दवाला अपना पाञ्चजन्य शङ्ख ऋषभ स्वरसे बजाने लगे ॥ (४२—४५)

दारुक सारथी कृष्णके शङ्खका शब्द सुन गरुड ध्वजावाले उनके रथको लेकर वहां उपस्थित हुआ । तब शिनिपौत्र सात्यकि कृष्णकी आज्ञासे सुवर्ण भूषित शीघ्रगामी शैब्य सुग्रीव मेघपुष्प और बलाहक नाम चारों घोडोंसे युक्त दारुक सारथीके चलानेसे चलते हुए अग्निके

अभ्यद्रवत राधेयं प्रवपन्सायकान्बहून् ।
चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४९ ॥
धनञ्जयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीयतुः ।
राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन् ॥ ५० ॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो रणे शैनेयमच्युतम् ।
नैव दैवं न गान्धर्वं नाऽऽसुरं न च राक्षसम् ॥ ५१ ॥
तादृशं भुवि नो युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत ।
उपारमत तत्सैन्यं सरथाश्वनरद्विपम् ॥ ५२ ॥
तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म संमूढचेतसः ।
सर्वे च समपश्यन्त तद्युद्धमतिमानुषम् ॥ ५३ ॥
तयोर्नृवरयो राजन्सारथ्यं दारुकस्य च ।
गतप्रत्यागताावृत्तैर्मण्डलैः सन्निवर्तनैः ॥ ५४ ॥
सारथेस्तु रथस्थस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः ।
नभस्तलगताश्चैव देवगन्धर्वदानवाः ॥ ५५ ॥

समान उस प्रकाशमान रथ पर चढे । वह उस विमान तुल्य रथ पर चढके अपने बाणोंको चलाते हुए राधापुत्र कर्णकी ओर दौडे । (४५—४९)

अर्जुनके चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा भी अर्जुनके रथको छोड कर कर्णकी ओर दौडे । तब कर्ण भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए महा पराक्रमी सात्यकिकी ओर दौडे ॥ उन दोनों पुरुषसिंहोंका जैसा युद्ध हुआ, वैसा संग्राम पृथ्वी स्वर्ग देवलोक गन्धर्व असुर और राक्षसोंके बीच भी न कभी देखा गया, न सुनाही गया था । अधिक क्या कहूं, उन दोनोंके युद्ध कार्यको देखकर गजसवार, घुडसवार, रथी और पैदल सेनाके योद्धा लोग तथा तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेनाके योद्धा लोग चित्र लिखेके समान युद्धभूमिमें खडे हुए और युद्धसे निवृत्त होकर उन दोनों पुरुषसिंहोंका अलौकिक संग्राम और दारुकके रथ चलानेकी निपुणताई देखने लगे ॥ (४९ —५४)

विशेष कर कश्यपकुलनन्दन दारुक सारथीके रथ चलानेकी नाना भांतिकी गतिसे आगे बढना, पीछे लौटना, मण्डलाकार रथ घुमाना समीपमें रथको उपस्थित करना, इत्यादि रथ चलानेकी गतिसे कर्णके सङ्ग सात्यकिका युद्ध देखकर आकाशमें स्थित देवता, दानव, और गन्धर्व आदि सम्पूर्ण प्राणी विस्मित

अतीवाऽऽह्विता द्रष्टुं कर्णशैनेययो रणम् ।
मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ ५६॥
कर्णश्चाऽमरसङ्काशो युयुधानश्च सात्यकिः ।
अन्योन्यं तौ महाराज शरवर्षैरवर्षताम् ॥ ५७ ॥
प्रममाथ शिनेः पौत्रं कर्णः सायकवृष्टिभिः ।
असृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसन्धयोः ॥ ५८ ॥
कर्णः शोकसमाविष्टो महोरग इव श्वसन् ।
स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ॥ ५९ ॥
अभ्यधावत वेगेन पुनः पुनररिन्दम ।
तं तु सक्रोधमालोक्य सात्यकिः प्रत्ययुद्ध्यत ॥ ६० ॥
महता शरवर्षेण गजं प्रतिगजो यथा ।
तौ समेतौ नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ॥ ६१ ॥
अन्योन्यं सन्ततक्षाते रणेऽनुपमविक्रमौ ।
ततः कर्णं शिनेः पौत्रः सर्वपारसवैः शरैः ॥ ६२ ॥
बिभेद सर्वगात्रेषु पुनः पुनररिन्दम ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ६३ ॥

हुए । महाराज ! महातेजस्वी और देवताओंके समान पराक्रमी सात्यकि और कर्णने यत्नवान् होकर अपने मित्रोंके कार्य-सिद्धि के वास्ते आपस में बाणों की वर्षा से युद्ध करना आरम्भ किया ॥ (५४-५७)

शत्रुनाशन कर्ण कुरुवंशी भूरिश्रवा और जलसन्धके वधसे अत्यन्त क्रुद्ध और शोकित हुए थे, इससे वह विषधर सर्पके समान लम्बी सांस छोडते हुए सात्यकिकी ओर इस प्रकार वेगपूर्वक दौडने लगे, मानो दृष्टिसे देखकर ही उसे भस्म कर देंगे ॥ (५८-६०)

सात्यकिने कर्णको अत्यन्त कोपित देख जैसे एक हाथी दूसरे हाथीसे युद्ध करता है, वैसे ही अनेक बाणोंकी वर्षा कर कर्णके सङ्ग युद्ध करने लगे । महा पराक्रमी वे दोनों पुरुषसिंह आपसमें युद्ध करते हुए अपने बाणोंसे एक दूसरेकी शरीरको इस प्रकार छिन्न भिन्न करने लगे; जैसे दो व्याघ्र आपसमें युद्ध करते हैं । (६०-६२)

तिसके अनन्तर शिनि-पौत्र सात्यकि सर्वपारसव बाणोंसे बार बार कर्णके शरीरको क्षत-विक्षत करने लगे । फिर सात्यकिने एक भल्लास्त्रसे उनके सारथी

अश्वांश्च चतुरः श्वेतान्निजघान शितैः शरैः ।
छित्त्वा ध्वजं रथं चैव शतधा पुरुषर्षभ ॥ ६४ ॥
चकार विरथं कर्णं तव पुत्रस्य पश्यतः ।
ततो विमनसो राजंस्तावकास्ते महारथाः ॥ ६५ ॥
वृषसेनः कर्णसुतः शल्यो मद्राधिपस्तथा ।
द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६६ ॥
ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
तथा सात्यकिना वीरे विरथे सूतजे कृते ॥ ६७ ॥
हाहाकारस्ततो राजन्सर्वसैन्येष्वभून्महान् ।
कर्णोऽपि विरथो राजन्सात्वतेन कृतः शरैः ॥ ६८ ॥
दुर्योधनरथं तूर्णमारुरोह विनिःश्वसन् ।
मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात्प्रभृति सौहृदम् ॥ ६९ ॥
कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन् ।
तथा तु विरथं कर्णं पुत्रांश्च तव पार्थिव ॥ ७० ॥
दुःशासनमुखान्वीरान्नाऽवधीत्सात्यकिर्वशी ।

का वध करके पृथ्वीमें गिराया, और चोखे बाणोंसे उनके चारों घोडोंको मारडाला । अनन्तर कर्णके रथ और ध्वजाको एक सौ टुकडे करके तुम्हारे पुत्रोंके सम्मुख ही में उन्हें रथरहित कर दिया । (६२–६५)

उससे तुम्हारी ओरके महारथ योद्धा, कर्णपुत्र वृषसेन, मद्रराज शल्य और द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पहिले शोकित हुए फिर सबने मिल कर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया ॥ उस समय सम्पूर्ण रणभूमिमें ऐसा अन्धकार होगया, कि कुछ भी नहीं दीख पडता था । जब कर्ण सात्यकिके अस्त्रोंसे रथरहित हुए तब तुम्हारी सेनाके बीच महाघोर हाहाकार शब्द होने लगा । (६५–६८)

परन्तु कर्णने सात्यकिके अस्त्रोंसे रथ रहित होकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके सङ्ग बालक अवस्थासे जो मित्रता हुई थी, उसको स्मरण किया और दुर्योधनके समीप राज्य पानेके कारण जो पाण्डवोंको पराजित करनेके वास्ते प्रतिज्ञा किया था, उसे पूर्ण करनेके निमित्त लम्बी सांस छोडते हुए दुर्योधनके रथपर जा चढे । महाराज ! जितेन्द्रिय सात्यकिने इस ही भांति रथरहित कर्ण और दुःशासन आदि तुम्हारे शूरवीर पुत्रोंका नाश नहीं किया । उन्होंने भीम अर्जुनकी

रक्षन्प्रतिज्ञां भीमेन पार्थेन च पुरा कृताम् ॥ ७१ ॥
विरथान्विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत्।
भीमसेनेन तु वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ॥ ७२ ॥
अनुद्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः।
वधे त्वकुर्वन्यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा ॥ ७३ ॥
नाऽशक्नुवंस्ततो हन्तुं सात्यकिं प्रवरा रथाः।
द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवाऽन्ये महारथाः ॥ ७४ ॥
निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः।
कांक्षता परलोकं च धर्मराजस्य च प्रियम् ॥ ७५ ॥
कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः।
जितवान्सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव ॥ ७६ ॥
कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः।
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते ॥ ७७ ॥
धृतराष्ट्र उवाच— अजय्यं वासुदेवस्य रथमास्थाय सात्यकिः।
विरथं कृतवान्कर्णं वासुदेवसमो युधि ॥ ७८ ॥
दारुकेण समायुक्तः स्वबाहुबलदर्पितः।

करी हुई पहली प्रतिज्ञा स्मरण कर कर्ण और तुम्हारे पुत्रोंका नाश न करके उन्हें केवल रथ रहित करके अपने चोखे बाणोंके प्रहारसे विकल कर दिया। क्योंकि जुआ खेलनेके समय भीमसेनने तुम्हारे पुत्रों और अर्जुनने कर्णके वधके वास्ते प्रतिज्ञा किया था ॥ (६८–७२)

जो हो कर्ण आदि महारथी योद्धा लोग यत्नवान् होकर भी सात्यकिका वध न कर सके, सात्यकिने स्वर्ग लोकमें गमन करनेकी अभिलाष और धर्मराज युधिष्ठिरके प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे अश्वत्थामा कृतवर्मा तथा दूसरे सैकडों महारथी क्षत्रियोंको एक धनुषसे ही पराजित किया ॥ महाराज ! कृष्ण अर्जुनके समान पराक्रमी सात्यकिने खेलवाडकी तरह तुम्हारे सम्पूर्ण सेनाको पराजित किया ॥ ऐसे कार्य करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् धनुर्द्धारी अर्जुन और पुरुषसिंह सात्यकिको छोडकर पृथ्वीके बीच चौथा कोई भी पुरुष विद्यमान नहीं है ॥ (७३–७७)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! कृष्णके समान युद्ध विद्या जाननेवाले सात्यकिने कृष्णके अजेय रथपर चढकर कर्णको रथ रहित किया, परन्तु दारुककी सहायता

कच्चिदन्यं समारूढः सात्यकिः शत्रुतापनः ॥ ७९ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलो ह्यसि भाषितुम् ।
असह्यं तमहं मन्ये तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ८० ॥

सञ्जय उवाच— शृणु राजन्यथा वृत्तं रथमन्यं महामतिः ।
दारुकस्याऽनुजस्तूर्णं कल्पनाविधिकल्पितम् ॥ ८१ ॥
आयसैः काञ्चनैश्चापि पट्टैः सन्नद्धकूबरम् ।
तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम् ॥ ८२ ॥
अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः ।
सैन्धवैरिन्दुसङ्काशैः सर्वशब्दातिगैर्दृढैः ॥ ८३ ॥
चित्रकाञ्चनसन्नाहैर्वाजिमुख्यैर्विशाम्पते ।
घण्टाजालाकुलरवं शक्तितोमरविद्युतम् ॥ ८४ ॥
युक्तं सांग्रामिकैर्द्रव्यैर्बहुशस्त्रपरिच्छदैः ।
रथं सम्पादयामास मेघगम्भीरनिःस्वनम् ॥ ८५ ॥
तं समारुह्य शैनेयस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।

से युक्त और अपने बाहुबल से मतवारे सात्यकि कृष्ण ही के रथ पर स्थित रहे ? वा दूसरे रथ पर चढे ? मैं इस वृत्तान्तको सुननेकी इच्छा करता हूं, तुम समस्त वृत्तान्त मेरे समीप विस्तार पूर्वक वर्णन करो । क्योंकि मैं अकेले सात्यकि को ही सम्पूर्ण सेना के पुरुषों से अजेय समझता हूं ॥ (७८–८०)

सञ्जय बोले, महाराज ! तुमने जो वृत्तान्त मुझसे पूछा है, मैं उसे विस्तार पूर्वक कहता हूं; चित्त लगाकर सुनो । थोडे ही समयके अनन्तर महा बुद्धिमान दारुकका छोटा भाई भली भांति सज्जित लोहा और सुवर्णसे भूषित वर्म और अस्त्रोंसे युक्त सहस्रों तारा चिह्नसे खचित सिंहचिन्हवाली पताकाके सहित एक रथ लेकर सात्यकिके समीप उपस्थित हुआ । उस रथमें वायुके समान गमन करनेवाले सुवर्ण भूषित वर्मसे युक्त बडे शरीरवाले चन्द्रमाके समान सफेद सिन्धुदेशीय उत्तम घोडे जुते हुए थे और उस रथमें इतनी घण्टियां लगी थीं, कि उनके ठनाठन बजनेका शब्द सम्पूर्ण शब्दको अतिक्रम करके सुनाई देने लगा ॥ वह रथ शक्ति तोमर और अनेक भांतिके शस्त्र तथा युद्धके योग्य वस्तुओंसे शोभित होकर बिजलीके समान प्रकाशित होने लगा ॥ शिनिपौत्र सात्यकि बादलकी भांति गम्भीर शब्दसे घडघडाते हुए उस सुन्दर रथ

दारुकोऽपि यथाकामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥ ८६ ॥
कर्णस्यापि रथं राजञ्शङ्खगोक्षीरपाण्डुरैः ।
चित्रकाञ्चनसन्नाहैः सदश्वैर्वेगवत्तरैः ॥ ८७ ॥
हेमकक्ष्याध्वजोपेतं क्लृप्तयन्त्रपताकिनम् ।
अग्र्यं रथं सुयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ॥ ८८ ॥
उपाजह्रुस्तमास्थाय कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्रिपून् ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८९ ॥
भूयश्चापि निबोधेमं तवाऽपनयजं क्षयम् ।
एकत्रिंशत्तव सुता भीमसेनेन पातिताः ॥ ९० ॥
दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम्
शतशो निहताः शूराः सात्वतेनाऽर्जुनेन च ॥ ९१ ॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा भगदत्तं च भारत ।
एवमेष क्षयो वृत्तो राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ९२ ॥ [६३८५]

इति श्रीमहाभारते॰द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णसात्यकियुद्धे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४७॥

धृतराष्ट्र उवाच– तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च सञ्जय ।

पर चढ कर तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे और दारुकने अपनी इच्छानुसार श्रीकृष्ण के समीप गमन किया ॥ (८१–८६)

महाराज ! तब शङ्ख और गायके दूधके समान सफेद वर्ण विचित्र सुवर्ण-के वर्मसे शोभित, अत्यन्त वेगगामी भली भांतिसे शिक्षित घोडोंके सहित, नाना भांतिके यन्त्र और अस्त्रशस्त्र आदि वस्तुओंसे पूरित सुवर्णभूषित ध्वजा पताकासे शोभित निपुण सारथीसे चलता हुआ एक उत्तम रथ कर्णके वास्ते उप-स्थित हुआ । कर्ण उस रथ पर चढके शत्रुओंको नाश करनेके वास्ते उनकी ओर दौडे । (८७–८९)

महाराज ! तुमने जो कुछ पूछा था उसे मैंने वर्णन किया । इस समय तु-म्हारी अनीतिसे जो प्राणियोंका नाश हुआ उसे सुनिये । महाराज ! तुम्हारे दुर्मुख आदि इकतीस पराक्रमी पुत्र भीमसेनके हाथसे और भीष्म, भगदत्त आदि सैकडों बलवान् योद्धा अर्जुन और सात्यकिके हाथसे मारे गये; इससे सम्पूर्ण शूरवीर पुरुषोंका नाश तुम्हारे अविचार और दुष्टनीतिसे ही होरहा है ॥(८९-९२)

एकसौ सैंतालिस अध्याय समाप्त । [६३८५]

द्रोणपर्वमें एकसौ अडतालिस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! पाण्डव और कौरवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धा

किं वै भीमस्तदाऽकार्षीत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच— विरथो भीमसेनो वै कर्णवाक्शल्यपीडितः ।
अमर्षवशमापन्नः फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
पुनः पुनस्तूवरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत्कर्णः पश्यतस्ते धनञ्जय ।
एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽस्मि भारत ॥ ४ ॥
एतद्व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया ।
तथैतन्मम कौन्तेय यथा तव न संशयः ॥ ५ ॥
तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरैतद्वचनं मम ।
यथा भवति तत्सत्यं तथा कुरु धनञ्जय ॥ ६ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्याऽमितविक्रमः ।
ततोऽर्जुनोऽब्रवीत्कर्णं किञ्चिदभ्येत्य संयुगे ॥ ७ ॥

लोग जब इस प्रकार युद्धमें स्थित हुए उस समय भीम, अर्जुन और सात्यकिने किस कार्यका अनुष्ठान किया ? (१)

सञ्जय बोले, महाराज ! जिस समय भीमसेन रणभूमिमें कर्णके अस्त्रोंसे रथ रहित हुए थे, उस समय कर्णने भीमसेन को बहुतसी कडवी बातें कही थीं । इस समय भीमसेनने क्रुद्ध होकर कर्णके कहे हुए सम्पूर्ण कठोर वचनोंको अर्जुनके समीप वर्णन किया ॥ हे अर्जुन ! कर्णने तुम्हारे सम्मुख हीमें मुझे कहा है, तू पेटू और थोडे मूछवाला है, तू अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या नहीं जानता, तुम युद्ध मत करो, तू बालक है और तू युद्ध करने योग्य नहीं है। इसी प्रकार नाना भांतिके कठोर वचन कर्णने मुझे कहे हैं । (२–४)

हे महाबाहु अर्जुन ! पहिले जब तुमने प्रतिज्ञा किया था, उस समय मैंने भी यह प्रण किया था, कि जो पुरुष मेरे विषयमें ऊपर कहे कठोर वचनोंका प्रयोग करेगा, वह अवश्य ही मेरा वध्य होगा; इस समय कर्णने मुझे वैसे ही कठोर वचन कहा है । देखिये प्रतिज्ञा रक्षा करनेके विषयमें जैसे तुम्हारा प्रण है, वैसे ही मेरा भी है इसमें कुछ सन्देह नहीं । हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय मेरे वचनको स्मरण कर जिससे सत्य रक्षित होवे उसे पूर्ण करनेके निमित्त यत्नवान् होइये । (४–६)

तब अत्यन्त पराक्रमी अर्जुन भीमसेनकी बात सुनकर कर्णके समीप जाकर यह वचन बोले, हे सूतपुत्र कर्ण ! तुम्हारी

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्राऽऽत्मसंस्तुत ।
अधर्मबुद्धे शृणु मे यत्त्वां वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ८ ॥
द्विविधं कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ ।
तौ चाऽप्यनित्यौ राधेय वासवस्याऽपि युध्यतः ॥ ९ ॥
मुमूर्षुर्युयुधानेन विरथो विकलेन्द्रियः ।
मद्वध्यस्त्वमिति ज्ञात्वा जित्वा जीवन्विसर्जितः ॥१०॥
यदृच्छया रणे भीमं युध्यमानं महाबलम् ।
कथञ्चिद्विरथं कृत्वा यत्त्वं रूक्षमभाषथाः ॥ ११ ॥
अधर्मस्त्वेष सुमहाननार्यचरितं च तत् ।
नाऽरिं जित्वाऽतिकत्थन्ते न च जल्पन्ति दुर्वचः॥१२॥
न च कञ्चन निन्दन्ति सन्तः शूरा नरर्षभाः ।
त्वं तु प्राकृतविज्ञानस्तत्तद्वदसि सूतज ॥ १३ ॥
बह्वबद्धमकर्ण्यं च चापलादपरीक्षितम् ।
युध्यमानं पराक्रान्तं शूरमार्यव्रते रतम् ॥ १४ ॥
यदवोचोऽप्रियं भीमं नैतत्सत्यं वचस्तव ।

बुद्धि सदा अधर्ममें रत है इस ही कारण तुम सदा सर्वदा अपनी बडाई करते हो ॥ जो हो इस समय मेरे वचनोंको सुनो; युद्धभूमिमें शूरवीर पुरुषोंकी जीत या हार होती है, वह जीतना और हारना अनिश्चित है अर्थात् युद्धभूमिमें कौन पुरुष जीतेगा; इसकी कुछ स्थिरता नहीं है, क्योंकि अनेक बार देवराज इन्द्रकी भी पराजय होती देखी गई है ॥ (७—९)

अभी क्षण भर समय व्यतीत हुआ कि सात्यकिने तुम्हें रथरहित करके मूर्च्छित कर दिया था। उन्होंने तुम्हें मेरा वध्य जानकर केवल युद्धभूमिमें पराजित किया है; परन्तु तुम्हारा प्राण नाश नहीं किया ॥ और तुमने दैवी इच्छासे भीमसेनको रथरहित करके जो कडवी बातें कहीं उससे अत्यन्त ही अधर्मकी बढती हुई है। क्योंकि उत्तम स्वभाववाले शूरवीर पुरुष शत्रुको पराजित करके अपनी बडाई नहीं करते, न शत्रुको कडवे वचन सुनाते तथा न उसकी निन्दा ही करते हैं। (१०–१३)

परन्तु तुम थोडी बुद्धिवाले और सूत कुलमें उत्पन्न हुए हो, इस ही कारण अपनी चपलतासे कुछ विचार न करके तुमने भीमसेनको कडवे और अप्रियवचन सुनाकर असम्बद्ध प्रलाप किया है। हे राधापुत्र ! तुमने, श्रेष्ठ पुरुषोंके व्रतमें

पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च ॥ १५ ॥
विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे ।
न च त्वां परुषं किञ्चिदुक्तवान्पाण्डुनन्दनः ॥ १६ ॥
यस्मात्तु बहुरूक्षं च श्रावितस्ते वृकोदरः ।
परोक्षं यच्च सौभद्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥ १७ ॥
तस्मादस्याऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।
त्वया तस्य धनुश्छिन्नमात्मनाशाय दुर्मते ॥ १८ ॥
तस्माद्वध्योऽसि मे मूढ सभृत्यसुतबान्धवः ।
कुरु त्वं सर्वकृत्यानि महत्ते भयमागतम् ॥ १९ ॥
हन्ताऽस्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे ।
ये चाऽन्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ॥२०॥
तांश्च सर्वान्हनिष्यामि सत्येनाऽऽयुधमालभे ।
त्वां च मूढाऽकृतप्रज्ञमतिमानिनमाहवे ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दो भृशं तप्स्यति पातितम् ।
अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य तु ॥ २२ ॥

स्थित महाबली पराक्रमी महावीर भीमसेनको युद्ध करनेके समय जो कुछ अप्रिय वचन कहा है वह कुछ भी ठीक नहीं है । पाण्डुपुत्र भीमसेनने सम्पूर्ण सेनाके पुरुषों, कृष्ण तथा मेरे सम्मुख हीमें तुम्हें कई बार रथ रहित किया है; परन्तु उन्होंने कुछ भी कठोर वचन तुम्हारे विषयमें नहीं कहा॥ (१३–१६)

जो हो तुमने जब भीमसेनको अनेक कडवी बातें कहा और मेरे न रहते सब कोई मिलकर अभिमन्युका वध किया; उस अपराधका फल तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा ॥ रे नीच बुद्धिवाले कर्ण ! तूने अपने नाशहीके वास्ते अभिमन्युका धनुष काटा था; इस ही कारण मैं तुम्हारे पुत्र सेवक और बन्धु बान्धवोंके सहित तुम्हारा वध करूंगा । तुम इस ही समय अपने कर्तव्य कार्यको पूरा करो; क्योंकि तुम्हें इस समय महाभय उपस्थित हुआ है ॥ (१७–१९)

इसके अतिरिक्त मैं अस्त्र स्पर्श करके प्रतिज्ञा करता हूं, कि तुम्हारे सम्मुख हीमें तुम्हारे पुत्र वृषसेन, और दूसरे राजा लोग जो युद्धभूमिमें मेरे सम्मुख होवेंगे ; उन सबका वध करूंगा । रे मूढ ! तुझे तनिक भी बुद्धि नहीं है, तू केवल आत्माभिमानी ही है, इससे वह पापी दुर्योधन रणभूमिमें तुझे मरा हुआ

महान्सुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा।
तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ॥ २३ ॥
मन्दरश्मिः सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत्।
ततो राजन्हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थितम् ॥ २४ ॥
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्यैनमब्रवीत्।
दिष्ट्या सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया॥ २५॥
दिष्ट्या विनिहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः।
धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनाऽपि भारत ॥ २६ ॥
सीदेत समरे जिष्णो नाऽत्र कार्या विचारणा।
न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन्पुरुषं क्वचित् ॥ २७ ॥
त्वदृते पुरुषव्याघ्र य एतद्योधयेद्बलम्।
महाप्रभावा बहवस्त्वया तुल्याधिकाऽपि वा ॥ २८ ॥
समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात्।
ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धा नाऽभ्यवर्तन्त दंशिताः॥ २९ ॥
तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम्।

देखकर पश्चात्ताप करेगा। (२०-२२)

महाराज! जब अर्जुनने कर्णके पुत्र वृषसेनके वधके वास्ते प्रतिज्ञा किया। तब रथियोंकी सेनामें महाघोर तुमुल शब्द होने लगा। उस महा भयङ्कर संग्रामके समय भगवान् सूर्यने तेजरहित होकर अस्ताचल पर्वत पर गमन किया। (२२-२४)

तिसके अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र प्रतिज्ञासे पार हुए रणभूमिमें स्थित अर्जुनको आलिङ्गन करके यह वचन कहने लगे। हे अर्जुन! प्रारब्धहीसे तुमने इस बडी प्रतिज्ञाको पूर्ण किया; प्रारब्धही से सिन्धुराज वृद्धक्षत्र पुत्रजयद्रथके सहित नष्ट हुए हैं; नहीं तो कुरुसेनाके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त होनेसे देवता भी कौरवोंकी महासेनाको जीतनेमें समर्थ नहीं हो सकते इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे पुरुषसिंह! मैं भली भांति विचार कर दोनों लोकमें तुम्हें छोडके ऐसा किसी पुरुषको नहीं देखता जो इस कुरुसेनाके सङ्ग युद्ध करनेमें समर्थ हो सके। २४-२७

देखो, इस रणभूमिमें तुम्हारे समान अथवा तुमसे भी अधिक प्रतापी अनेक राजा धृतराष्ट्रके निमित्त इकट्ठे हुए हैं, परन्तु ये सम्पूर्ण कवचधारी योद्धा लोग क्रोध पूर्वक तुम्हारे समीपमें आके युद्धभूमिमें कोई भी तुम्हारे सम्मुख खडे न

नेदृशं शक्नुयात्कश्चिद्रणे कर्तुं पराक्रमम् ॥ ३० ॥
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापन ।
एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ॥ ३१ ॥
वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विषम् ।
तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात्तव माधव ॥ ३२ ॥
प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा ।
अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव ॥ ३३ ॥
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः ।
तव प्रभावो वार्ष्णेय तवैव विजयः प्रभो ॥ ३४ ॥
वर्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन ।
एवमुक्तस्ततः कृष्णः शनकैर्वाहयन्हयान् ।
दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत् ॥ ३५ ॥
श्रीकृष्ण उवाच—प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद्यशः ।
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः ॥ ३६ ॥
विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः ।

हो सके, इससे तुम्हारा बल—पराक्रम यम, इन्द्र वा रुद्रके समान है। आज तुमने युद्धभूमिके बीच शत्रुओंको पराजित करके जैसा पराक्रम प्रकाशित किया है; इस संसारके बीच कोई भी पुरुष ऐसा कार्य नहीं कर सकता। इसी भांति पराक्रम प्रकाशित करके जब तुम पापी कर्णका अनुयाइयोंके सहित नाश करोगे; तब तुम्हारी विजय और वैरीकी हार देखकर मैं तुम्हें फिर आनन्दित करूंगा ॥ (२८–३२)

अर्जुन श्रीकृष्णके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनके बोले, हे कृष्ण! मैं केवल तुम्हारी कृपासे ही देवतोंसे भी न पूर्ण होने योग्य प्रतिज्ञासे पार हुआ हूं। हे कृष्ण! तुम जिसकी सहायता कर रहे हो; उसकी विजय होगी,—इसमें कौनसा आश्चर्य है॥ राजा युधिष्ठिर अवश्य ही तुम्हारी कृपासे इस सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य फिर पावैंगे, हे कृष्ण! इस युद्धका समस्त भार तुम्हारे ऊपर अर्पित है; इससे आजकी जीत तुम्हारी हुई है, हम लोग तुम्हारी आज्ञामें चलनेवाले हैं इससे हम लोगोंको उत्साहित करना तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य ही है। (३२–३५)

इसी भांति बात चीत करते हुए श्रीकृष्ण धीरे धीरे रथ चलाकर अर्जुनको भयङ्कर रणभूमि दिखाने लगे॥ श्रीकृष्ण

सञ्छिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः ॥ ३७ ॥
ससत्वा गतसत्वाश्च प्रभया परया युताः ।
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्वा नराधिपाः ॥ ३८ ॥
तेषां शरैः स्वर्णपुङ्खैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः ।
वाहनैरायुधैश्चैव सम्पूर्णां पश्य मेदिनीम् ॥ ३९ ॥
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
उष्णीषैर्मुकुटैः स्रग्भिश्चूडामणिभिरम्बरैः ॥ ४० ॥
कण्ठसूत्रैरङ्गदैश्च निष्कैरपि च सप्रभैः ।
अन्यैश्चाऽभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ४१ ॥
अनुकर्षैरुपासङ्गैः पताकाभिर्ध्वजैस्तथा ।
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ॥ ४२ ॥
चक्रैः प्रमथितैश्चित्रैरक्षैश्च बहुधा रणे ।
युगैर्योक्त्रैः कलापैश्च धनुर्भिः सायकैस्तथा ॥ ४३ ॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च परिघैरङ्कुशैस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तूणैः शूलैः परश्वधैः ॥ ४४ ॥

बोले, हे अर्जुन ! देखो राजा लोग महा कीर्ति और विषयकी अभिलाष करके युद्धमें प्रवृत्त हुए थे ! वे तुम्हारे बाणोंके प्रतापसे अपना प्रिय प्राण गंवा कर पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं ॥ उनके अस्त्र शस्त्र और आभूषण चारों ओर गिरे पडे दिखाई दे रहे हैं । हाथी घोडे और रथ आदि वाहनोंके मरने और मर्म स्थल कटके छिन्न भिन्न होनेसे वे लोग अत्यन्त शोचनीय दशामें पडे हुए हैं ॥ उन लोगोंके बीच कितने ही प्राण रहित और कोई इस समय तक जीवित हैं परन्तु जो प्राण रहित हो गये हैं वह भी अपने तेजसे जीते हुएके समान बोध होते हैं ॥ (३५-३८)

देखो सम्पूर्ण राजाओंके स्वर्णपंखवाले बाण अनेक भांतिके शस्त्र, आयुध और चढनेके वाहनोंसे पृथ्वी परिपूरित हो गई है; और इधर उधर पडे हुए ढाल तलवार, वर्म, कुण्डलभूषित सिर, उष्णीष, मुकुट, माला, चूडामणि, वस्त्र, कण्ठा, प्रकाशमान बाहुभूषण और दूसरे विचित्र सुवर्णके आभूषणोंसे इस रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ (३९-४१)

और अनगिनत टूटे हुए रथ, ध्वजा, पताका, धुरी, छतरी, दंड, टूटेहुए रथके चक्र, विचित्र अक्ष, कोडे, नाना भांतिके रथभूषण, बाण, परदे, चांदनी, विचित्र

प्रासैश्च तोमरैश्चैव कुन्तैर्यष्टिभिरेव च।
शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैः परशुभिस्तथा ॥ ४५ ॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चैव गदाभिः कुणपैस्तथा।
सुवर्णविकृताभिश्च कशाभिर्भरतर्षभ ॥ ४६ ॥
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां भाण्डैश्च विविधैरपि।
स्रग्भिश्च नानाभरणैर्वस्त्रैश्चैव महाधनैः ॥ ४७ ॥
अपविद्धैर्बभौ भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव शारदी।
पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो हताः ॥ ४८ ॥
पृथिवीमुपगुह्याङ्गैः सुप्ताः कान्तामिव प्रियाम्।
इमांश्च गिरिकूटाभान्नागानैरावतोपमान् ॥ ४९ ॥
क्षरतः शोणितं भूरि शस्त्रच्छेददरीमुखैः।
दरीमुखैरिव गिरीन्गैरिकाम्बुपरिस्रवान् ॥ ५० ॥
तांश्च बाणहतान्वीर पश्य निष्टनतः क्षितौ।
हयांश्च पतितान्पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान् ॥ ५१ ॥
गन्धर्वनगराकारान्रथांश्च निहतेश्वरान्।

कम्बल, परिघ, अंकुश, भिन्दिपाल, शक्ति, शूल, परशु, प्रास, तोमर, घडे, ऋष्टि, शतघ्नि, भूशुण्डी, खड्ग, कुठार, मूषल, मुद्गर, गदा, तूणीर, सुवर्ण भूषित हाथियोंके हौदे, नाना भांतिके झालर पर्दे और घण्टा तथा माला भूषित नाना भांतिके आभूषण और महा मूल्यवान् वस्त्रोंके इधर उधर पडे रहनेसे यह रणभूमि इस प्रकार शोभायमान होने लगी; जैसा नक्षत्र आदि ग्रहोंसे युक्त शरद ऋतुमें आकाश मण्डल शोभित होता है ॥ (४२-४८)

देखो, सम्पूर्ण राजा लोग दुर्योधनके वास्ते राज्यके अभिलाषी हुए थे; वह लोग अपना प्रिय प्राण गंवा कर प्यारी स्त्रीकी भांति पृथ्वीको आलिङ्गन करके भूमिशय्यापर शयन कर रहे हैं, यह देखो जैसे वर्षा ऋतुमें पर्वतकी गुफासे जलके संग मिले हुए गेरुके पनारे चलते हैं, वैसे ही पर्वतके शृङ्ग और ऐरावतके समान अनेक हाथियोंके शरीर तुम्हारे अस्त्र शस्त्रोंसे कटके पर्वतकी गहरी गुफा समान देख पडते हैं और उनके शरीरसे रुधिरकी धारा बह रही हैं। सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित ये सम्पूर्ण घोडे तुम्हारे बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर इधर उधर रणभूमिमें पडे महाघोर विकट शब्द कर रहे हैं ॥ (४८-५१)

छिन्नध्वजपताकाक्षान्विचक्रान्हतसारथीन् ॥ ५२ ॥
निकृत्तकूबरयुगान्भग्नेषान्बन्धुरान्प्रभो ।
पश्य पार्थ हयान्भूमौ विमानोपमदर्शनान् ॥ ५३ ॥
पत्तींश्च निहतान्वीर शतशोऽथ सहस्रशः ।
धनुर्भृतश्चर्मभृतः शयानान्रुधिरोक्षितान् ॥ ५४ ॥
महीमालिङ्ग्य सर्वाङ्गैः पांसुध्वस्तशिरोरुहान् ।
पश्य योधान्महाबाहो त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान् ॥ ५५ ॥
निपातितद्विपरथवाजिसंकुलमसृग्वसापिशितसमृद्धकर्दमम् ।
निशाचरश्ववृकपिशाचमोदनं महीतलं नरवर पश्य दुर्दशम् ॥ ५६ ॥
इदं महत्त्वय्युपपद्यते प्रभो रणाजिरे कर्म यशोभिवर्धनम् ।
शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे महाहवे जघ्नुषि दैत्यदानवान् ॥ ५७ ॥
सञ्जय उवाच— एवं सन्दर्शयन्कृष्णो रणभूमिं किरीटिने ।
स्वैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ५८ ॥
स दर्शयन्नेव किरीटिनेऽरिहा जनार्दनस्तामरिभूमिमञ्जसा ।

यह देखो सारथी और रथियोंसे रहित गन्धर्व नगर तथा विमानके समान कितने ही रथ, ध्वजा, पताका, चक्र, अक्ष, धुरी, रथके नीचे और ऊपरके काष्ठ आदिके कट कर इधर उधर गिरनेसे जहां तहां दिखाई देते हैं और सैकड़ों सहस्रों धनुष तथा ढाल तलवार ग्रहण करनेवाले पैदल सेनाके योद्धा रुधिर-पूरित शरीर और खुले हुए केशसे पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं। यह देखो मरे हुए योद्धाओंके शरीर तुम्हारे बाणोंसे छिन्न भिन्न होगये हैं॥ (५२—५५)

हे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन! देखो रणभूमिमें इधर उधर मरे हुए हाथी घोडे और रथोंके पडे रहने तथा मांस चर्बी और रुधिरके बहनेसे यह रणभूमि कीचडसे युक्त होगई है। इससे यह रणभूमि राक्षस प्रेत और भेडिये आदि मांसभक्षी पशुओंके हर्षको बढानेवाली होकर अत्यन्त भयङ्कर दिखाई देती है॥ हे महाबाहो! यश बढानेवाला आजके रणभूमिका बृहत्कार्य तुमसे और दानवोंके नाश करनेवाले देवराज इन्द्र हीसे होना सम्भव था॥ (५६–५७)

संजय बोले, महाराज! शत्रुनाशन कृष्ण इसी भांति अर्जुनको रणभूमि दिखाकर पाञ्चजन्य शंख बजाने लगे और शीघ्रताके सहित रथ चलाके अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके समीप उपस्थित हुए और जयद्रथ वधका वृत्तान्त उन्हें

अजातशत्रुं समुपेत्य पाण्डवं निवेदयामास हतं जयद्रथम् ॥ ५९ ॥ [६४४४]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वण्यष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

सञ्जय उवाच—ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
ववन्दे स प्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैन्धवे ॥ १ ॥
दिष्ट्या वर्धसि राजेन्द्र हतशत्रुर्नरोत्तम ।
दिष्ट्या निस्तीर्णवांश्चैव प्रतिज्ञामनुजस्तव ॥ २ ॥
स त्वेवमुक्तः कृष्णेन हृष्टः परपुरञ्जयः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत ॥ ३ ॥
पर्यष्वजत्तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।
प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ॥ ४ ॥
अब्रवीद्वासुदेवं च पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
प्रियमेतदुपश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन ॥ ५ ॥
नाऽन्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षुरुदधेरिव ।
अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता ॥ ६ ॥
दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ ।

सुनाने लगे ॥ (५८-५९) [६४४४]

द्रोणपर्वमें एकसौ अडतालिस अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ उनचास अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! तिसके अनन्तर श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरके समीप जाकर प्रसन्न चित्तसे जयद्रथ वधका वृत्तान्त इस भांतिसे वर्णन करने लगे ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ राजेन्द्र ! प्रारब्ध हीसे तुम्हारे शत्रुका नाश हुआ और तुम्हारे छोटे भाई अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई ॥ (१-२)

शत्रुनाशन राजा युधिष्ठिरने कृष्णके मुंहसे मङ्गलदायक संवाद सुनकर अत्यन्त हर्षके सहित रथसे उतरके कृष्ण-को आलिङ्गन किया ॥ महाराज ! उस समय राजा युधिष्ठिर ऐसे आनन्द में मग्न हुए कि हर्षके वश में होकर उस समय कुछ भी वचन न कह सके; बल्कि मुहूर्त भरतक चुपचाप खडे रहे । फिर वह अत्यन्त हर्षके सहित आनन्दसे आंसू बहाते हुए गद्गद होकर प्रीति के सहित श्रीकृष्णसे यह वचन बोले, हे कमलनयन कृष्ण ! जैसे समुद्रको तैरके पार होनेकी इच्छा करनेवाला पुरुष समुद्रके पार नहीं जाता है, किंतु समुद्रमें ही मग्न रहता है, वैसे ही तुम्हारे मुखसे जयद्रथ वधकी वाणी सुनकर मेरे आनन्दकी सीमा नहीं है ॥ (३—६)

दिष्ट्या विनिहतः पापः सैन्धवः पुरुषाधमः ॥ ७ ॥
कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता ।
त्वया गुप्तेन गोविन्द घ्नता पापं जयद्रथम् ॥ ८ ॥
किं तु नाऽत्यद्भुतं तेषां येषां नस्त्वं समाश्रयः ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ९ ॥
सर्वलोकगुरुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदन ।
त्वत्प्रसादाद्धि गोविन्द वयं जेष्यामहे रिपून् ॥ १० ॥
स्थितः सर्वात्मना नित्यं प्रियेषु च हितेषु च ।
त्वां चैवाऽस्माभिराश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ॥ ११ ॥
सुरैरिवाऽसुरवधे शक्रं शक्रानुजाऽऽहवे ।
असम्भाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन ॥ १२ ॥
त्वद्बुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः ।
बाल्यात्प्रभृति ते कृष्ण कर्माणि श्रुतवानहम् ॥ १३ ॥
अमानुषाणि दिव्यानि महान्ति च बहूनि च ।

हे कृष्ण बुद्धिमान् अर्जुनने तुम्हारी सहायतासे जयद्रथका वध करके अत्यन्त अद्भुत कार्य किया है, मैं तुम दोनोंको दैवहीसे इस बडे कार्यभारसे उत्तीर्ण हुए देखता हूं। पुरुषाधम पापी सैन्धव जयद्रथ दैवहीसे मारागया है। हे कृष्ण! तुम जिसकी रक्षा करते हो, ऐसे अर्जुनने जयद्रथको मारकर जो मेरी बडी प्रीति सम्पादन की है यह भी दैवहीसे ही हुआ है। हे कृष्ण! सब लोकोंके गुरु तुम जिसके अवलम्ब स्वरूप तथा सब यत्नोंके सहित प्रिय और हित कार्य में रत हो उसके विषय में जयद्रथ वध विशेष आश्चर्यका कार्य नहीं है। तथा उसको त्रैलोक्यमें भी कोई कठिन कार्य नहीं है। (६—११)

हे कृष्ण! जैसे देवासुर संग्राम के समय देवता लोग असुरों के नाश करनेवाले इन्द्रका आसरा करके युद्धभूमिमें स्थित हुए थे वैसे ही हम लोग भी तुम्हारे आसरेसे इस महाघोर संग्राम में प्रवृत्त हुए हैं। हे जनार्दन कृष्ण! आज अर्जुनने तुम्हारे बल पराक्रम और बुद्धिप्रभावसे जिस कार्यको पूर्ण किया है वह देवतोंसे भी पूर्ण नहीं हो सकता। मैंने तुम्हारे बालक अवस्थासे बहुतसे दिव्य और अलौकिक कार्योंकी कथा सुनी है, इससे तुमने जब प्रेमपूर्वक हम लोगों के ऊपर कृपा किया है; तबहीसे मैंने यह जान लिया है कि शत्रुओं का

तदैवाऽज्ञासिषं शत्रून्हतान्प्राप्तां च मेदिनीम् ॥ १४ ॥
त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणाऽरिसूदन ।
सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान्सहस्रशः ॥ १५ ॥
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
स्ववर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्तते ॥ १६ ॥
एकार्णवमिदं पूर्वं सर्वमासीत्तमोमयम् ।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत्प्राप्तं नरोत्तम ॥ १७ ॥
स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमव्ययम् ।
ये पश्यन्ति हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित्॥ १८ ॥
पुराणं परमं देवं देवदेवं सनातनम् ।
ये प्रपन्नाः सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १९ ॥
अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् ।
ये भक्तास्त्वां हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २० ॥
परं पुराणं पुरुषं पराणां परमं च यत् ।

नाश हुआ और पृथ्वी मेरे अधिकार में हुई है इस में कुछ सन्देह नहीं है ॥ (११-१४)

हे शत्रुनाशन कृष्ण ! इन्द्रने जिस पराक्रमके आसरेसे सहस्रावधि दैत्योंका नाश कर देवोंका आधिपत्य पाया है, वह तेरी कृपाका ही महिमा है ॥ हे हृषीकेश ! तेरे प्रसादसे यह सब स्थावर जङ्गम जगत् अपनी मर्यादामें रहता है और जप होम आदि कर्मोंमें रत रहता है ॥ हे महाबाहो ! पुरुषोत्तम ! यह दृश्यमान प्रपंच पूर्वकालमें एकसमुद्रमय और अंधकारसे व्याप्त था, पीछे तेरी कृपासे वह इस जगत्के रूपमें प्रगट हुआ है ॥ (१५-१७)

जो कोई सब लोकोंके उत्पादक, अविनाशी, इन्द्रियोंके ईश ऐसे आपको ज्ञानदृष्टिसे देखते हैं वे कभी मोहमें नहीं पडते॥ तथा पुराण, परम पुरुष, देवोंके भी देव, और गुरु ऐसे सनातन देव आपकी शरणमें जानेवाले पुरुष भी मोहसे बद्ध नहीं होते ॥ हे हृषीकेश ! आदि अन्तरहित, लोककर्ता, अविनाशी, प्रकाशमान् आपको भजनेवाले भक्त लोग सब दुःखोंसे मुक्त होते हैं ॥ मायासे पर इसलिये नित्य सिद्ध, हिरण्यगर्भादि सरीखोंके बुद्धिको भी अगम्य, ऐसे परम उत्कृष्ट आत्माको प्राप्त होने वाले ज्ञानी पुरुष " एषाऽस्य परमा सम्पत् " इस श्रुतिवाक्यमें प्रसिद्ध परम ऐश्वर्य अर्थात्

प्रपद्यतस्तत्परमं परा भूतिर्विधीयते ॥ २१ ॥
गायन्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते।
तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमश्नाम्यनुत्तमाम् ॥ २२ ॥
परमेश परेशेश तिर्यगीश नरेश्वर।
सर्वेश्वरेश्वरेशेश नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥
त्वमीशेशेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व माधव।
प्रभवाप्यय सर्वस्य सर्वात्मन्पृथुलोचन ॥ २४ ॥
धनञ्जयसखा यश्च धनञ्जयहितश्च यः।
धनञ्जयस्य गोप्ता तं प्रपद्य सुखमेधते ॥ २५ ॥
मार्कण्डेयः पुराणर्षिश्चरितज्ञस्तवाऽनघ।
माहात्म्यमनुभावं च पुरा कीर्तितवान्मुनिः ॥ २६ ॥
असितो देवलश्चैव नारदश्च महातपाः।
पितामहश्च मे व्यासस्त्वामाहुर्विधिमुत्तमम् ॥
त्वं तेजस्त्वं परं ब्रह्म त्वं सत्यं त्वं महत्तपः ॥ २७ ॥

परमानन्दको पाते हैं ॥ (१८-२१)

चार वेद जिसका गान करते हैं तथा वेदोंमें सब जगह जिसकी स्तुति ही गायी गई है, मैं उस महात्माकी शरणमें जाकर परम ऐश्वर्य अर्थात् परमानन्दको प्राप्त करूंगा॥ हे देव! यह सकल भोग्य पदार्थ आपका ही रूप है, आप मायासे संयुक्त है और बार बार मनुष्य और तिर्यक् योनिमें जन्म लेनेवाले भी हैं, तथापि आप में कोई भी विकार नहीं दीखता है॥ आप जड, जीव और ईश्वरको भी सत्ता और स्फूर्ति देते हैं इस लिये आपको पुरुषोत्तम कहते हैं। मैं ऐसे आपको वंदन करता हूं॥ आप रुद्र आदि देवोंके आराध्य, राजाओंके ईश, धर्मके प्रभु अच्युत हैं; यह सब प्रपंच आपसे उत्पन्न होकर आपमें ही लीन होता है, इसलिये सबका आपही आत्मा है। हे विशाललोचन माधव! तुम मुझे बढाइये॥ जो भगवान् अर्जुनका मित्र और नित्य अर्जुन का हित करने वाला तथा अर्जुनका रक्षक है उस भगवानकी शरणमें जानेवाला पुरुष नित्य सुखको प्राप्त होता है॥ (२२-२५)

हे पाप रहित कृष्ण! तुम्हारे चरित्र के जानने वाले पुराने ऋषि मार्कण्डेय मुनिने तुम्हारे प्रभाव और महात्मको मेरे समीप में वर्णन किया था। और असित, देवल, महातपस्वी नारद और हमारे पितामह वेदव्यास मुनिने तुम्हें

त्वं श्रेयस्त्वं यशश्चाऽग्र्यं कारणं जगतस्तथा ।
त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २८ ॥
प्रलये समनुप्राप्ते त्वां वै निविशते पुनः ।
अनादिनिधनं देवं विश्वस्येशं जगत्पते ॥ २९ ॥
धातारमजमव्यक्तमाहुर्वेदविदो जनाः ।
भूतात्मानं महात्मानमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ३० ॥
अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम् ।
नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ३१ ॥
ज्ञानयोनिं हरिं विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम् ।
परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परं च यत् ॥ ३२ ॥
एवमादिगुणानां ते कर्मणां दिवि चेह च ।
अतीतभूतभव्यानां संख्याताऽत्र न विद्यते ॥ ३३ ॥
सर्वतो रक्षणीयाः स्म शक्रेणेव दिवौकसः ।

तेजस्वरूप परब्रह्म सत्य और महा तपस्याके स्वरूप कहे हैं; तुम ही तीनों लोकके बीच श्रेष्ठ और यशकी मूर्ति हो तुम्हीं जगत् के कारण और कल्याण स्वरूप हो । यह स्थावर जङ्गम आदि सम्पूर्ण प्राणियोंसे युक्त समस्त संसार तुम्हींसे उत्पन्न होता है और प्रलय के समय तुम्हींमें लीन हो जाता है।२६-२९

हे जगत्पते! वेद जाननेवाले ब्राह्मण लोग तुम्हें जन्म मरणसे रहित विश्व-आत्मा सृष्टिकर्ता प्रजापति धाता अज और अव्यक्त कहके वर्णन करते हैं। तुम सब प्राणियोंकी आत्मा अनन्त और विश्वनाथ महात्मा हो! तुम इस जगत् के पालन करनेवाले और आदि कारण हो ॥ तुम अव्यक्त हो इससे देवता लोग भी तुम्हें नहीं जानसकते । तुम सब प्राणियोंके आश्रय स्वरूप देवोंके देव परमात्मा, सबके ईश्वर ज्ञानके मूल, तीनों ताप के हरनेवाले, सर्वव्यापी और मुमुक्षु पुरुष तथा योगियों की गति हो। (२९--३२)

तुम परम पुरुष तथा सनातन हो, सम्पूर्ण पुरानी वस्तुओंमें तुम मुख्य हो। तुम्हीं इस जगत् के परम पद तथा परम गति हो; हे प्रभु! तुम्हारे गुण तथा भूत, वर्तमान और भविष्य कर्मोंकी गिनती किसी भांति मनुष्य तथा देवताओं से भी नहीं हो सकती परन्तु जब हम लोगोंने तुम्हें इस भांतिसे अपना मित्र स्वरूप पाया है तब इन्द्र से देवताओंके समान हमभी आपसे सब भांतिसे रक्षित

यस्त्वं सर्वगुणोपेतः सुहृन्न उपपादितः　　॥ ३४ ॥
इत्येवं धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः ।
अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः　　॥ ३५ ॥
भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च ।
साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः　　॥ ३६ ॥
अयं च पुरुषव्याघ्र त्वदनुध्यानसंवृतः ।
हत्वा योधसहस्राणि न्यहञ्जिष्णुर्जयद्रथम्　　॥ ३७ ॥
कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवाऽसम्भ्रमेऽपि च ।
शीघ्रतामोघबुद्धित्वे नाऽस्ति पार्थसमः क्वचित् ॥३८ ॥
तदयं भरतश्रेष्ठ भ्राता तेऽद्य यदर्जुनः ।
सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिन्धुराजशिरोऽहरत्　　॥ ३९ ॥
ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशाम्पते ।
प्रमृज्य वदनं तस्य पर्याश्वासयत प्रभुः　　॥ ४० ॥
अतीव सुमहत्कर्म कृतवानसि फाल्गुन ।
असह्यं चाऽविषह्यं च देवैरपि सवासवैः　　॥ ४१ ॥
दिष्ट्या निस्तीर्णभारोऽसि हतारिश्चाऽसि शत्रुहन् ।

होने योग्य हैं ॥ (३२—३४)

महायशस्वी, श्री कृष्णचन्द्र धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसे स्तुतियुक्त वचनों को सुनकर कहने लगे,—महाराज ! इस प्रकारके वचन तुम्हारे ही योग्य हुए हैं ॥ परन्तु तुम्हारी साधुता, सीधापन, कठोर तपस्या और धर्मके प्रभावसे ही पापी जयद्रथ मारा गया है ॥ महाराज! पुरुषसिंह अर्जुनने केवल तुम्हारे धर्म प्रभावसे ही अत्यन्त तेजस्वी होकर सहस्रों योद्धाओंका नाश करके जयद्रथ का वध किया है । इस जगत्के बीच कृतास्त्रता, बाहुवीर्य, निर्भयता, शीघ्रता, और अमोघ बुद्धि में अर्जुनके समान दूसरा कोई भी पुरुष विद्यमान नहीं है, इससे इन कारणोंसे ही तुम्हारे भाई अर्जुन कुरुसेनाका नाश करके जयद्रथ का सिर काटनेमें समर्थ हुए॥ ३५—३९

अनन्तर नीति निपुण धर्मपुत्र युधिष्ठिरने अर्जुनको आलिङ्गन किया, और उन्हें प्रसन्न तथा उत्साहित करते हुए यह वचन बोले, हे फाल्गुन ! आज तुमने युद्धभूमिमें बहुत बडा कार्य किया है अधिक क्या कहा जावे यह कार्य इन्द्र आदि देवताओंसे भी न होने योग्य है। हे शत्रुनाशन ! प्रारब्ध हीसे तुम शत्रु

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

REGISTERED NO. B. 1819

अंक ६० [द्रोणपर्व १०]

महाभारत।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

दिष्ट्या सत्या प्रतिज्ञेयं कृता हत्वा जयद्रथम् ॥ ४२ ॥
एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्मराजो महायशाः ।
पस्पर्श पुण्यगन्धेन पृष्ठे हस्तेन पार्थिवः ॥ ४३ ॥
एवमुक्तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ ।
तावब्रूतां तदा कृष्णौ राजानं पृथिवीपतिम् ॥ ४४ ॥
तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः ।
उत्तीर्णं चापि सुमहद्धार्तराष्ट्रबलं रणे ॥ ४५ ॥
हन्यन्ते निहताश्चैव विनंक्ष्यन्ति च भारत ।
तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः शत्रुसूदन ॥ ४६ ॥
त्वां हि चक्षुर्हणं वीरं कोपयित्वा सुयोधनः ।
समित्रबन्धुः समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥ ४७ ॥
तव क्रोधहतः पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः ।
शरतल्पगतः शेते भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ४८ ॥
दुर्लभो विजयस्तेषां संग्रामे रिपुघातिनाम् ।
याता मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव ॥ ४९ ॥

का वध करके कठिन भारसे पार हुए । प्रारब्ध हीसे जयद्रथका वध करके तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करी । महायशस्वी धर्मराज युधिष्ठिरने गुडाकेश अर्जुनसे ऐसा वचन कह अपने सुगन्धित हाथसे उनकी पीठ ठोंकी । (४०–४३)

महात्मा कृष्ण और अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिरके वचनको सुनकर कहने लगे, महाराज ! सिन्धुराज पापी जयद्रथ तुम्हारी कोपरूपी अग्निसे भस्म हुआ है और धृतराष्ट्र पुत्रोंकी इस महा सेनाके बीच जो पुरुष मारे गये, मरते हैं और मरेंगे उन सबका नाश तुम्हारे क्रोधाग्निसे ही हो रहा है । महाराज ! ये सम्पूर्ण कौरव तुम्हारे कोप ही से मर रहे हैं; ऐसा ही आप समझ लीजिये, क्योंकि आप जिस की ओर अपनी कोपदृष्टिसे एक बार देखें वह उसी समय नष्ट हो सकता है, आप वीर पुरुष हैं, इससे दुष्टबुद्धि दुर्योधनने जब आपको कोपित किया तब अवश्य ही बन्धु बान्धवोंके सहित उस का नाश होवेगा ॥ (४४–४७)

देखिये, कौरवोंमें बूढे भीष्म पितामह देवतोंसे भी अजेय थे; परन्तु वह तुम्हारे क्रोधसे ही हत होकर शरशय्या पर शयन कर रहे हैं ॥ हे शत्रुनाशन महाराज ! इससे तुम जिसके ऊपर क्रोध करो उस की युद्धमें जीत होनी अत्यन्त ही कठिन

राज्यं प्राणाः श्रियः पुत्राः सौख्यानि विविधानि च।
अचिरात्तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि मानद ॥ ५० ॥
विनष्टान्कौरवान्मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान्।
राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे परन्तप ॥ ५१ ॥
ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः।
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ ॥ ५२ ॥
स्थितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चाल्यपरिवारितौ।
तौ दृष्ट्वा मुदितौ वीरौ प्राञ्जली चाऽग्रतः स्थितौ ॥ ५३ ॥
अभ्यनन्दत कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यकी।
दिष्ट्या पश्यामि वां शूरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात् ॥५४॥
द्रोणग्राहदुराधर्षाद्धार्दिक्यमकरालयात्।
दिष्ट्या विनिर्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥५५॥
युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे।
दिष्ट्या द्रोणो जितः संख्ये हार्दिक्यश्च महाबलः ॥ ५६ ॥

है, विशेष करके निश्चय ही उसे मृत्युके कराल-ग्रास में पडा हुआ ही समझ लीजिये ॥ हे मानप्रद ! आप जिसके ऊपर क्रोध करें अवश्यही थोडे समयके बीच उसका राज्य प्राण पुत्र और संपूर्ण सुखका नाश होजावे। हे शत्रु नाशन महाराज ! कौरवोंके ऊपर जब आप अत्यन्त ही कोपित होरहे हैं तब मैं कौरवोंको पुत्र पौत्र बन्धु बान्धवोंके सहित मरा हुआ ही समझ रहा हूं॥ ४८-५१

तिसके अनन्तर अस्त्रशस्त्रोंसे क्षत विक्षत शरीरसे युक्त भीमसेन और सात्यकिने गुरुके समान धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया और पाञ्चाल सेनाके बीचमें घिरकर पृथ्वी पर खडे हुए। (५२—५३)

कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर सात्यकि और भीमसेनको प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोडके सम्मुख खडे देख उन दोनोंको आनन्दित करते हुए यह वचन कहने लगे। हे रथियोंमें श्रेष्ठ दोनों वीर ! प्रारब्ध हीसे मैंने आज तुम लोगोंको द्रोणाचार्य रूपी ग्राह, हृदिक पुत्र कृतवर्मा रूपी मकरसे युक्त समुद्र समान कौरवोंकी महासेनासे मुक्त हुए देखा है। प्रारब्धसे ही तुम दोनोंने पृथ्वीके सम्पूर्ण राजाओंको पराजित किया है ॥ प्रारब्धसे ही मैंने तुम दोनोंको युद्धमें जययुक्त होकर यहां पर आये हुए देखा है। प्रारब्धसे ही तुम दोनोंने अनेक

दिष्ट्या विकर्णिभिः कर्णो रणे नीतः पराभवम् ।
विमुखश्च कृतः शल्यो युवाभ्यां पुरुषर्षभौ ॥ ५७ ॥
दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात्पुनरागतौ ।
पश्यामि रथिनां श्रेष्ठावुभौ युद्धविशारदौ ॥ ५८ ॥
मम वाक्यकरौ वीरौ मम गौरवयन्त्रितौ ।
सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ५९ ॥
समरश्लाघिनौ वीरौ समरेष्वपराजितौ ।
मम वाक्यसमौ चैव दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥६०॥
इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन्युयुधानवृकोदरौ ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद्बाष्पं मुमोच ह ॥ ६१ ॥
ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद्विशाम्पते ।
पाण्डवानां रणे हृष्टं युद्धाय तु मनो दधे ॥ ६२ ॥ [६५०६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

सञ्जय उवाच— सैन्धवे निहते राजन्पुत्रस्तव सुयोधनः ।

भाँतिके अस्त्रशस्त्रोंसे महाबली द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, पुरुषश्रेष्ठ कर्ण और शल्य को पराजित किया है ॥ (५४-५७)

मैंने प्रारब्धहीसे अपने दोनों भाइयों को घाव-रहित शरीरसे अपने समीपमें आये हुए देखा है ॥ तुम दोनों वीर सदा मेरी आज्ञा पालन और मेरी गौरव रक्षाके वास्ते युद्ध करनेमें तत्पर रहते हो इससे प्रारब्धसे ही मैंने तुम लोगोंको युद्धरूपी महाघोर समुद्रसे पार होते देखा है; तुम दोनों ही मुझे प्राणसमान प्रिय युद्धमें अपराजित और रणभूमि के बीच प्रशंसा पानेके योग्य हो; इससे प्रारब्धसे ही मैं तुम दोनोंको फिर युद्ध भूमिसे कुशलपूर्वक लौटे हुए देख रहा हूं ॥ (५८—६०)

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर पुरुषसिंह भीमसेन और सात्यकिको आलिङ्गन करके आनन्दके सहित आंसूकी धारा बहाने लगे। तिसके अनन्तर पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग प्रफुल्लित चित्तसे हर्ष पूर्वक युद्धके वास्ते फिर उद्योग करने लगे ॥ ६१-६२ [६५०६]

द्रोणपर्वमें एकसौ उनचास अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ पचास अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज ! जयद्रथके मारे जानेपर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन दीन और आंसुओंसे व्याप्तमुख होकर शत्रुओं

अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये ॥ १ ॥
दुर्मना निःश्वसन्दुष्टो भग्नदंष्ट्र इवोरगः।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रस्तेऽऽर्तिं परामगात् ॥ २ ॥
दृष्ट्वा तत्कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत्।
जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे ॥ ३ ॥
स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः।
अमन्यताऽर्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते ॥ ४ ॥
न द्रोणो न च राधेयो नाऽश्वत्थामा कृपो न च।
क्रुद्धस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ॥ ५ ॥
निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान्मम महारथान्।
अवधीत्सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत् ॥ ६ ॥
सर्वथा हतमेवेदं कौरवाणां महद्बलम्।
न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरन्दरः ॥ ७ ॥
यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः।
स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः ॥ ८ ॥

के जीतनेमें उत्साह रहित होगये॥ उस समय वह तेरा पुत्र सब लोगोंके अपराधी होनेसे अत्यन्त दुःखित होके दांत टूटे हुए सर्पके समान गर्म सांस छोडने लगे॥ युद्धमें जययुक्त अर्जुन भीमसेन और सात्यकिके अस्त्रोंसे अपनी सेनाके योद्धाओंका नाश देखकर राजा दुर्योधन दुःखित हुए उनके शरीरका वर्ण फीका पड गया; और सम्पूर्ण शूर वीर पुरुषोंके नाशके सम्बन्धमें अपनेको अपराधी समझके अत्यन्त दुःखित हुए। अनन्तर दीनताके सहित रुदन करते हुए अपने मनमें यह समझने लगे, कि इस पृथ्वीके बीच अर्जुनके समान कोई भी योद्धा विद्यमान नहीं है॥ (१-४)

द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा, ये कोई भी युद्धभूमिमें क्रोधी अर्जुनके संमुख खडे होनेमें समर्थ नहीं हैं॥ जब अर्जुन ने मेरी ओरके सम्पूर्ण महारथियोंको पराजित करके सिन्धुराज जयद्रथ का वध किया है और कोई भी उसे निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ तब साक्षात् इन्द्र भी आकर मरी हुईके समान मेरी इस कुरुसेनाकी रक्षा नहीं कर सकेंगे॥ (५-७)

जिसके आसरेसे युद्ध करनेका उद्योग किया गया था, वही कर्ण इस समय पराजित हुए और जयद्रथ अर्जुनके अस्त्रसे

यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम् ।
तृणवत्तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ॥ ९ ॥
एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद् द्रोणमीक्षितुम् ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ १० ॥
ततस्तत्सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत् ।
परान्विजयतश्चापि धार्तराष्ट्रान्निमज्जतः ॥ ११ ॥
दुर्योधन उवाच– पश्य मूर्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत् ।
कृत्वा प्रमुखतः शूरं भीष्मं मम पितामहम् ॥ १२ ॥
तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः ।
पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिवर्तते ॥ १३ ॥
अपरश्चापि दुर्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना ।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ १४ ॥
अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम् ।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम् ॥ १५ ॥

मारे गये। श्रीकृष्णने जब शान्ति स्थापित करनेके वास्ते प्रार्थना किया था, उस समय मैंने जिसके बल पराक्रमके आसरेमें उन्हें तृणके समान समझ कर उनका निरादर किया था; इस समय वैसे पराक्रमी कर्ण भी युद्धभूमिमें पराजित हुए ॥ (८–९)

महाराज ! सम्पूर्ण राजाओंमें अपराधी तुम्हारे पुत्र दुर्योधन इसी प्रकारसे दुःखित होकर द्रोणाचार्यसे भेट करनेकी इच्छामें उनके समीप उपस्थित हुए ॥ तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन द्रोणाचार्यके निकट शत्रुओंकी विजय अपनी पराजय तथा कुरुसेनाके शूरवीरोंके नाशका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करने लगे। (१०—११)

दुर्योधन बोले, हे आचार्य ! महापराक्रमी भीष्म पितामह और युद्ध करने वाले बहुतेरे राजा लोग जो युद्धभूमिमें मरे हुए पडे हैं, उन्हें देखिये, चपल स्वभाववाले शिखण्डीने भीष्म पितामहका वध करके अपना मनोरथ पूरा किया है; इस समय वही शिखण्डी पांचाल योद्धाओंके सहित सेनाके अगाडी स्थित हैं ॥ और भी देखिये सव्यसाची अर्जुनने सात अक्षौहिणी सेनाको भेद करके तेरे शिष्य दुर्धर्ष सिन्धुराज जयद्रथका वध किया है ॥ जो हो इस समय जो सब उपकारी सुहृद-मित्र हम लोगोंके विजयकी अभिलाषा करके यमपुरीमें गये हैं मैं किस भांतिसे उन

ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः।
ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ १६ ॥
सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम्।
अश्वमेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥ १७ ॥
मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः।
व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ॥ १८ ॥
कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः।
विवरं नाऽशकद्दातुं मम पार्थिवसंसदि ॥ १९ ॥
योऽहं रुधिरसिक्ताङ्गं राज्ञां मध्ये पितामहम्।
शयानं नाऽशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥ २० ॥
तं मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम्।
किं वक्ष्यति हि दुर्धर्षः समेत्य परलोकजित् ॥ २१ ॥
जलसन्धं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम्।
मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् ॥ २२ ॥
काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथाऽलम्बुषमेव च।

लोगोंके ऋणसे मुक्त होऊंगा? १३--१५

हाय! जिन सम्पूर्ण राजाओंने मेरे वास्ते इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यकी अभिलाष किया था; इस समय वे सब कोई पृथ्वीके सम्पूर्ण ऐश्वर्य त्यागकर वीरशय्यापर शयन कर रहे हैं॥ मैं अत्यन्त ही कापुरुष हूं, मैं अपने मित्रोंका नाश कराके सहस्र अश्वमेधसे भी आत्माको पवित्र नहीं कर सकूंगा॥ मुझ. अधर्मी पापी तथा लोभीके वास्ते ही विजयकी इच्छा करके सम्पूर्ण राजा लोग इस महाघोर संग्राममें मरकर स्वर्गलोकमें गये हैं॥ राजाओंके बीच मुझ मित्रद्रोहीके वास्ते पृथ्वी भी क्यों नहीं स्थान प्रदान करती है? (१६--१९)

जब सम्पूर्ण राजाओंके बीच रहकर भी भीष्म पितामहने रुधिरपूरित शरीरसे शरशय्यापर शयन किया है और हम लोग किसी भांति उनकी रक्षा नहीं कर सके, तब मेरे समान अधर्मी मित्रद्रोही अनार्य और नीच पुरुष दूसरा कौन है? विशेषकर पराये देशको जीतनेवाले भीष्म पितामह इन्द्र-लोकमें जाके मुझे क्या कहेंगे? और भी देखो, महाबली पराक्रमी राजा जलसन्ध युद्ध-भूमिमें मेरे वास्ते प्राणकी आशा त्याग के सात्यकिके सङ्ग युद्ध करके उसके हाथसे मारे गये हैं॥ काम्बोजराज

अन्यान्बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को मम ॥ २३ ॥
न्यायच्छन्तो हताः शूरा मदर्थे येऽपराङ्मुखाः ।
यतमानाः परं शक्त्या विजेतुमहितान्मम ॥ २४ ॥
तेषां गत्वाऽहमानृण्यमद्य शक्त्या परन्तप ।
तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥ २५ ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर ।
इष्टापूर्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि ॥ २६ ॥
निहत्य तान्रणे सर्वान्पञ्चालान्पाण्डवैः सह ।
शान्तिं लब्धास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम् ॥२७॥
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ २८ ॥
नहीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनुपस्कृताः ।
श्रेयो हि पाण्डून्मन्यन्ते न तथाऽस्मान्महाभुज ॥२९॥

सुदक्षिण, अलम्बुष और दूसरे बहुतेरे सुहृद् मित्र राजाओंको मरे हुए देखकर अब मुझे जीवित रहनेकी कौनसी आवश्यकता है ? (२०-२३)

ये सम्पूर्ण युद्धमें पीछे न हटनेवाले राजा और शूरवीर योद्धा लोग शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करके रणभूमिमें मारे गये हैं ॥ हे शत्रुनाशन आचार्य ! इससे मैं भी अपनी शक्ति प्रकाशित करके इन सम्पूर्ण मरे हुए राजाओंके ऋणसे मुक्त होकर पीछे यमुना जलसे उन लोगोंका तर्पण करूंगा ॥ हे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य ! मैं इष्टापूर्त, बल, पराक्रम और पुत्रकी शपथ करके तुम्हारे समीप सत्यप्रतिज्ञा करता हूं, कि पाण्डवोंके सहित सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धाओंका वध करके शान्त होऊंगा; अथवा उन लोगोंके हाथसे मर कर राजाओंके पाने योग्य श्रेष्ठ लोकमें गमन करूंगा ॥ २४-२७

विशेष करके वे सम्पूर्ण पुरुषश्रेष्ठ राजा लोग मेरे वास्ते युद्ध करके इस महासंग्राममें अर्जुनके अस्त्रोंसे मर कर जिस लोकमें गये हैं, मुझे भी उस ही स्थानमें गमन करना उचित है ॥ हे महाबाहु आचार्य ! इस समय बचे हुए जो पुरुष मेरी सहायता करनेवाले हैं उनके बीच में ऐसा किसीको भी नहीं देखता जो शत्रुओंसे अनिरुद्ध नहीं हैं क्योंकि वह लोग जिस प्रकार पाण्डवोंके कल्याणकी अभिलाषा करते हैं,वैसी मेरे कल्याणकी मङ्गलकामना नहीं करते ॥

स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसन्धेन संयुगे ।
भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य हि ॥ ३० ॥
अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः ।
कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥ ३१ ॥
यो हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः ।
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति ॥ ३२ ॥
तादृग्रूपं कृतमिदं मम कार्यं सुहृत्तमैः ।
मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्मस्य धनमीहतः ॥ ३३ ॥
हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३४ ॥
सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ ३५ ॥
नहि मे जीवितेनाऽर्थस्तानृते पुरुषर्षभान् ।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजानातु नो भवान् ॥३६॥[६५४२]

इति श्रीमहाभारतेऽद्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनानुतापे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५० ॥

देखिये सत्यसन्ध भीष्म पितामहने स्वयं ही अपनी मृत्युका वृतान्त युधिष्ठिरसे कह दिया; और आप भी अर्जुन के ऊपर प्रेम करके युद्धमें उपेक्षा करते रहते हैं ॥ इससे मेरी ओरके विजयकी अभिलाषा करनेवाले सब लोग युद्धमें मारे गये हैं ॥ इस समय केवल महारथ कर्ण ही मेरे विजयके निमित्त अभिलाष करते हुए दीख पडते हैं ॥ (२८-३१)

जो बुद्धिहीन पुरुष मित्रको यथार्थ रूपमें न जानकर उसे मित्र समझके मित्रके करने योग्य अपने कार्योंमें नियुक्त करता है, अवश्य ही उसे राज्य अर्थ तथा कार्यसिद्धिसे निष्फल मनोरथ होना पडता है ॥ मैं भी बुद्धिहीन लोभी और पापी हूं, इसीसे कुटिल आचरण करने वाले पुरुषों को मित्र समझके विश्वास कर रहा हूं । भीतरी शत्रु और ऊपरसे मित्रता जताकर कुटिल पुरुषोंने सब भांतिसे मेरे कार्यकी हानि करी है, इस ही कारणसे पराक्रमी राजा जयद्रथ भूरिश्रवा, अभिषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति देशीय शूरवीर पुरुष युद्धभूमिमें मारे गये ॥ इससे हे पाण्डवोंके आचार्य ! इन सम्पूर्ण पुरुष श्रेष्ठ शूरवीरोंने मेरे निमित्त युद्ध करके जिस स्थानमें गमन किया है, मैं भी उसही स्थानमें गमन करूंगा, इस समय

धृतराष्ट्र उवाच— सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना ।
तथैव भूरिश्रवसि किमासीद्वो मनस्तदा ॥ १ ॥
दुर्योधनेन च द्रोणस्तथोक्तः कुरुसंसदि ।
किमुक्तवान्परं तस्मै तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच— निष्टानको महानासीत्सैन्यानां तव भारत ।
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३ ॥
मन्त्रितं तव पुत्रस्य ते सर्वमवमेनिरे ।
येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥ ४ ॥
द्रोणस्तु तद्वचः श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः ।
मुहूर्तमिव तद्ध्यात्वा भृशमार्तोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥
द्रोण उवाच— दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपिकृन्तसि ।
अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥ ६ ॥
एतेनैवाऽर्जुनं ज्ञातुमलं कौरव संयुगे ।
यच्छिखण्ड्यवधीद्भीष्मं पाल्यमानः किरीटिना ॥७ ॥

मुझे अनुमति दीजिये ॥ (३२–३६)

एकसौ पचास अध्याय समाप्त। [६५४२]

द्रोणपर्वमें एकसौ एकावन अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, जब सिन्धुराज जयद्रथ अर्जुनके हाथसे और भूरिश्रवा सात्यकिके हाथसे मारे गये तब तुम लोगोंका मन कैसा हुआ था ? दुर्योधनने जब कौरवोंके बीच द्रोणाचार्यके निकट इस भांतिसे दुःख प्रकाशित किया, तब उन्होंने उसे कैसा उत्तर दिया था; यह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ (१–२)

सञ्जय बोले, महाराज ! सिन्धुराज जयद्रथ और कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवाको मरे हुए देख तुम्हारी सेनाके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा ॥ उन सम्पूर्ण योद्धाओंने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी मन्त्रणा (राय) पर श्रद्धा नहीं किया क्योंकि दुर्योधनके अविचारहीके कारणसे सैकडों सहस्रों क्षत्रिय श्रेष्ठ वीरोंका नाश हुआ ॥ (३–४)

परन्तु द्रोणाचार्य तुम्हारे पुत्रके वचनको सुनके दुःखित होके मुहूर्त भरतक चिन्ता करके फिर दुर्योधन से यह वचन बोले, हे दुर्योधन ! मैं तुमसे सदा ही यह वचन कहता चला आता हूं, कि सव्यसाची अर्जुन इस संसारके बीच अजेय हैं तब तुम किस कारणसे मुझे वचनरूपी बाणसे दुःखित कर रहे हो ! अर्जुनसे रक्षित होकर शिखण्डीने

अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवदानवैः ।
तदैवाऽज्ञासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ८ ॥
यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्म हि ।
तस्मिन्निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ ९ ॥
यान्स्म तान्ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि ।
अक्षान्स तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥ १० ॥
त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः ।
तांस्तदाऽऽख्यायमानस्त्वं विदुरेण न बुद्धवान् ॥ ११ ॥
यास्ता विलपतश्चाऽपि विदुरस्य महात्मनः ।
धीरस्य वाचो नाऽश्रौषीः क्षेमाय वदतः शिवाः ॥ १२ ॥
तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत् ।
तस्याऽवमानाद्वाक्यस्य दुर्योधनकृते तव ॥ १३ ॥
योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम् ।

जब युद्धभूमिमें भीष्मका वध किया उस ही समयसे अर्जुनके पराक्रमका पूरा प्रमाण मिल चुका है ॥ देवता और दानवोंसे भी अवध्य कुरुकुल शिरोमणि भीष्मदेवको मरते देख मैंने उस ही समयसे जान लिया है कि यह भारती सेनाके शूरवीरोंकी अब रक्षा नहीं हो सकती ॥ (५–८)

जिसे हम लोग इस संसारके बीच सबसे श्रेष्ठ शूरवीर समझते थे; उस वीर-वर भीष्मके मारे जानेपर अब कौन ऐसा पुरुष है कि हमलोग जिसके आसरे से युद्धभूमिमें स्थित रह सकेंगे ? हे तात दुर्योधन ! पहिले कुरुसभाके बीच शकुनिने जिन पासोंको ग्रहण करके जूआ खेला था वे सब पासे नहीं थे वे ही इस समय शत्रुओंको पीडित करने वाले चोखे बाण हुए हैं ॥ पहिले विदुर ने बार बार निवारण किया था तौ भी तुम्हें कुछ नहीं मालूम हुआ था वे ही सम्पूर्ण पासे इस समय बाण रूपी होकर अर्जुनके धनुषसे छूटकर हम लोगोंका नाश कर रहे हैं ॥ (९–११)

हे दुर्योधन महात्मा विदुरने बार बार विलाप करके तुमसे बहुतसे हितकर वचन कहे थे, तौ भी तुमने उनके वचन नहीं सुने; उनहीं वचनोंकी अवमानना करनेके कारणसे तुम्हारे निमित्त ही सम्पूर्ण शूर वीरोंका नाश हो रहा है ॥ जो मूढ आत्मीय और सुहृद मित्रोंके हितकारी वचनोंकी अवमानना करके इच्छानुसार कार्य करनेमें प्रवृत्त होते हैं वे शीघ्र ही

खमतं कुरुते मूढः स शोच्यो न चिरादिव ॥ १४ ॥
यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाय्य तत्सभाम् ।
अनर्हन्तीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम् ॥ १५ ॥
तस्याऽधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत् ।
नो चेत्पापं परे लोके त्वमर्च्छेथास्ततोऽधिकम् ॥ १६ ॥
यच्च तान्पाण्डवान्द्यूते विषमेण विजित्य ह ।
प्राव्राजयस्तदाऽरण्ये रौरवाजिनवाससः ॥ १७ ॥
पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा ।
द्रुह्येत्को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥ १८ ॥
पाण्डवानामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह ।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य सम्मते कुरुसंसदि ॥ १९ ॥
दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्धितः ।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाऽभ्यस्तः पुनः पुनः ॥ २० ॥
यत्ताः सर्वे पराभूताः पर्यवारयताऽर्जुनम् ।
सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥ २१ ॥

सोचनेके योग्य होजाते हैं ॥ (१२-१४)

हे गान्धारीपुत्र ! तुम जो पुरुषोंकी सभाके बीच न लाने योग्य सब लक्षणों से युक्त उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई द्रौपदीको हम लोगोंके सम्मुखमें ही सभाके बीच ले आये; और अन्याय पूर्वक पाण्डवोंको जूएके खेलमें पराजित करके उन्हें काले हरिनके चमडे पहनाके वनवासी बनाया था, उस ही अधर्मका फल तुम्हें इस समय मिल रहा है। परन्तु यदि इस लोकमें तुम्हारी ऐसी दशा न होती तो परलोकमें इससे बढके तुम्हें अपने पापोंके फल भोगने पडते ।१५-१७

इस समय मुझे छोडके और दूसरा कौन ब्राह्मण नाम धारण करनेवाला पुरुष सदा सर्वदा धर्मके कार्य करनेवाले पुत्रके समान प्रिय पाण्डुपुत्रोंसे द्वेष करनेमें प्रवृत्त हो सकता है ? उस समय तुमने कुरुसभाके बीच शकुनिके सङ्ग मिल कर धृतराष्ट्रकी सम्मतिसे जो पाण्डवोंके कोपको बढाया था, दुःशासनने उसकी जड दृढ करी, कर्णने उसे बढाया और तुमने विदुरके वचन को न मान कर वार वार पाण्डवोंके क्रोधकी वृद्धि करी है । (१८-२०)

जयद्रथकी रक्षा करनेके वास्ते तो तुम लोग सब कोई यत्नवान् हुए थे; तुम लोग अर्जुनके संमुखसे क्यों पराजित

कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति ।
अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत् ॥ २२ ॥
युध्यन्तः सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते ।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥ २३ ॥
मय्येव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि ।
आशंसत परित्राणमर्जुनात्स महीपतिः ॥ २४ ॥
ततस्तस्मिन्परित्राणमलब्धवति फाल्गुनात् ।
न किञ्चिदनुपश्यामि जीवितस्थानमात्मनः ॥ २५ ॥
मज्जन्तमिव चाऽऽत्मानं धृष्टद्युम्नस्य किल्बिषे ।
पश्याम्यहत्वा पञ्चालान्सह तेन शिखण्डिना॥ २६ ॥
तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि ।
अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥ २७ ॥
सौवर्णं सत्यसन्धस्य ध्वजमक्लिष्टकर्मणः ।
अपश्यन्युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥ २८ ॥

हुए ! और तुम लोगोंके बीचमें रहते भी सिन्धुराज किस प्रकार मारे गये ? हे कुरुराज दुर्योधन ! तुम, कर्ण, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा जीवित रहते सिन्धुराज जयद्रथ किस कारणसे मारे गये ? जयद्रथकी रक्षा करनेके वास्ते सम्पूर्ण राजाओंने भी तो प्राणपणसे अपने पराक्रमको प्रकाशित करके युद्ध किया था, तौ भी सिन्धुराज जयद्रथ तुम लोगोंके बीचमें रह कर किस प्रकारसे मारे गये ? विशेष करके सिन्धुराज जयद्रथने तुम्हारे और मेरे ही आससेरे अर्जुनके हाथसे बचनेकी आशा किया था परन्तु वह अर्जुनके हाथसे परित्राण न पासके ॥ (२१–२४)

इससे मैं अब इस समय अपने प्राणरक्षाका कोई उपाय नहीं देखसकता हूं, मैं जबतक शिखण्डी और सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धाओंका संहार नहीं कर सकता हूं तब तक धृष्टद्युम्नकी कुटिलता-रूपी कीचडमें अपनी आत्माको निमग्न हुआ ही बोध कर रहा हूं । हे भारत ! इससे जब मैं सिन्धुराज जयद्रथ को अर्जुन के हाथसे बचाने में स्वयं असमर्थ होके दुःखित होरहा हूं तब तुम क्यों मुझे वचन रूपी बाणसे विद्ध कर रहे हो ? और युद्धभूमिके बीच कठिन कर्मके करनेवाले सत्य पराक्रमी भीष्मकी सुवर्णमयी ध्वजाको भी न देखकर तुम किस प्रकारसे अपने विजय

मध्ये महारथानां च यत्राऽहन्यत सैन्धवः ।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥ २९ ॥
कृप एव च दुर्धर्षो यदि जीवति पार्थिव ।
यो नाऽगात्सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहम् ॥ ३० ॥
यत्राऽपश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै ।
दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ॥ ३१ ॥
अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः ।
न ते वसुन्धराऽस्तीति तदाऽहं चिन्तये नृप ॥ ३२ ॥
इमानि पाण्डवानां च सृञ्जयानां च भारत ।
अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य भारत ॥ ३३ ॥
नाऽहत्वा सर्वपञ्चालान्कवचस्य विमोक्षणम् ।
कर्ताऽस्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥ ३४ ॥
राजन्ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे ।
न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता ॥ ३५ ॥
यच्च पित्राऽनुशिष्टोऽसि तद्वचः परिपालय ।

की इच्छा कर रहे हो ॥ (२५-२८)

जिस स्थान पर कौरवोंमें मुख्य भूरिश्रवा और सिन्धुराज जयद्रथ सम्पूर्ण महारथियोंके बीचमें रहकर भी मारे गये हैं उस स्थानपर अब तुम किसे जीवित समझ रहे हो ? पराक्रमी कृपाचार्य यदि सिन्धुराजके अनुगामी न होकर जीवित होंगे; तो मैं उनकी विशेष प्रशंसा करता हूं। जबसे मैंने इन्द्र आदि देवतोंसे भी अवध्य महाबली अत्यन्त पराक्रमी भीष्मको दुःशासनके संमुख ही में मरते हुए देखा तभीसे मेरे हृदयमें यह विचार हुआ है, कि यह वसुन्धरा पृथ्वी तुमसे विमुख हुई है ॥ (२९—३२)

यह देखो पाण्डव और सृञ्जय योद्धा इकट्ठे होकर मेरी ओर दौडे हुए चले आरहे हैं, इससे आज मैं युद्धभूमिमें तुम्हारे हितके वास्ते अच्छी प्रकारसे अनुष्ठान करूंगा मैं सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धाओंका बिना वध किये अपना कवच नहीं उतारूंगा ॥ हे राजन्! तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामासे कहना कि वह जीतेजी सोमकवंशी तथा पाञ्चाल योद्धाओंको न छोडे ॥ यह भी कहना कि हे अश्वत्थामन्! तुमने अपने पिताके समीप जो सम्पूर्ण विद्या सीखी है, उसे पूर्णरीतिसे पालन करो, अर्थात् सरलता दम सत्य

आनृशंस्ये दमे सत्ये चाऽऽर्जवे च स्थिरो भव ॥ ३६ ॥
धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन् ।
धर्मप्रधानकार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः ॥ ३७ ॥
चक्षुर्मनोभ्यां सन्तोष्या विप्राः पूज्याश्च शक्तितः ।
न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः ॥ ३८ ॥
एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन ।
रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शरपीडितः ॥ ३९ ॥
त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि पालय ।
रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः ॥ ४० ॥
एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
मुष्णन्क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांऽशुमान् ॥४१ ॥ ६५८३

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणवाक्ये एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

सञ्जय उवाच — ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः ।

और अनृशंसतामें निष्ठा करो ॥ धर्म अर्थ और काममें निर्भयता पूर्वक तत्पर रहके धर्म अर्थके अविरोधी कार्योंका अनुष्ठान करना ॥ (३३–३७)

ब्राह्मणोंको नेत्र और वचनसे सम्मानित और सन्तोषित करके अपनी शक्ति के अनुसार उनकी पूजा तथा सत्कार करना । कभी ब्राह्मणोंके अप्रिय कार्यके करनेमें प्रवृत्त न होना, क्योंकि ब्राह्मण अग्निशिखाके समान तेजस्वी हैं ॥ हे दुर्योधन ! और अधिक तुमसे क्या कहूं, इस समय मैं तुम्हारे वचनसे पीडित हुआ हूं आज मैं महाघोर युद्ध करनेके वास्ते शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करूंगा ॥ तुमभी यदि समर्थ हो तो इस सेनाके योद्धाओंकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त होजाओ क्योंकि आज अत्यन्त क्रुद्ध हुए कौरव और सृञ्जय लोग रात्रिके समयमें युद्ध करेंगे ॥ महाराज ! जैसे सूर्य नक्षत्रोंके तेजको हरण करते हैं, वैसे ही क्षत्रियोंके तेजको हरनेवाले द्रोणाचार्यने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कह कर पाण्डव और सृञ्जयोंकी सेनाके बीच प्रवेश किया ॥ (३८–४१) [६५८३]

द्रोणपर्वमें एकसौ एकावन अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ बावन अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! तिसके अनन्तर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने द्रोणाचार्यके समीप इसी भांतिसे तिरस्कृत होकर क्रोधपूर्वक युद्धके निमित्त

अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥ १ ॥
अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना ॥ २ ॥
आचार्यविहितं व्यूहं भित्त्वा देवैः सुदुर्भिदम् ।
तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः ।
पश्य राधेय पृथ्वीशाः पृथिव्यां प्रवरा युधि ॥ ४ ॥
पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरे मृगाः ।
मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ५ ॥
अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह ।
कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः ॥ ६ ॥
भिन्द्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे ।
प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा सैन्धवमर्जुनः ॥ ७ ॥
पश्य राधेय पृथ्वीशान्पृथिव्यां पातितान्बहून् ।
पार्थेन निहतान्संख्ये महेन्द्रोपमविक्रमान् ॥ ८ ॥

दृढ सङ्कल्प किया; और उस ही समय कर्णको अपने समीप देख कर कहने लगे, हे कर्ण ! देखो कृष्णकी सहायता से युक्त अर्जुनने देवतोंसे भी न भेद होने योग्य द्रोणाचार्यके बनाये ऐसे कठिन व्यूहको खेलवाड़की भांति भेद किया और द्रोणाचार्य तुम तथा मुख्य मुख्य महारथी योद्धा लोग युद्ध करते भी थे तौ भी सिन्धुराज जयद्रथ अर्जुनके अस्त्रसे मारे गये ॥ (१-४)

देखो जैसे सिंह छोटे पशुओंका वध करता है, वैसे ही अर्जुनने अकेले ही इस पृथ्वीके बीच युद्धकी सम्पूर्ण विद्या जाननेवाले सिन्धुराज जयद्रथका वध किया है। हे शत्रुनाशन कर्ण ! रणभूमिके बीच मैं स्वयं युद्ध करनेमें प्रवृत्त था तौ भी अर्जुनने मेरी सेनाके पुरुषोंका नाश करके अब थोडीसी सेना बाकी रक्खी है। परन्तु यदि द्रोणाचार्य स्थिरचित्तसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त रहते तो अर्जुन किस प्रकार इस दुर्भेद व्यूहको भेद कर सकता ? (४-७)

हे कर्ण ! इससे देखो, ये सब इन्द्रके समान पराक्रमी राजा लोग केवल द्रोणाचार्यकी उपेक्षासेही अर्जुनके बाणों से मर कर रणभूमिमें शयन कर रहे हैं और आचार्यने उपेक्षा किया इस ही कारणसे अर्जुनने जयद्रथका वध करके

अनिच्छतः कथं वीर द्रोणस्य युधि पाण्डवः ।
भिन्द्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानस्य शुष्मिणः ॥ ९ ॥
दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः ।
ततोऽस्य दत्तवान्द्वारमयुद्धेनैव शत्रुहन् ॥ १० ॥
अभयं सिन्धुराजाय दत्त्वा द्रोणः परन्तपः ।
प्रादात्किरीटिने द्वारं पश्य निर्गुणतां मयि ॥ ११ ॥
यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान्प्रति ।
प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाऽभविष्यज्जनक्षयः ॥ १२ ॥
जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान्प्रति ।
मयाऽनार्येण संरुद्धो द्रोणात्प्राप्याऽभयं सखे ॥ १३ ॥
अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो रणे ।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम् ॥ १४ ॥
कर्ण उवाच— आचार्यं मा विगर्हस्व शक्त्याऽसौ युद्ध्यते द्विजः ।
यथाबलं यथोत्साहं त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १५ ॥

अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है। हे वीर! रणभूमिमें बलवान् तेजस्वी द्रोणाचार्य की यदि इच्छा न रहती तो पाण्डुपुत्र अर्जुन किस प्रकारसे इस दुर्भेद व्यूहको भेद करनेमें समर्थ होता? (७–९)

अर्जुन महात्मा द्रोणाचार्यको अत्यन्त ही प्रिय है इस ही कारणसे उन्होंने विना युद्धके ही उसे व्यूहके बीच प्रवेश करनेका मार्ग प्रदान किया था॥ देखो मेरी भाग्यहीनतासे ही द्रोणाचार्यने जयद्रथको अभयदान करके भी अर्जुनको व्यूहके बीच प्रवेश करनेका मार्ग प्रदान किया॥ जब यदि पहिले ही सिन्धुराज जयद्रथको घर जानेके वास्ते अनुमति देते तो इस प्रकार मेरी सेनाके पुरुषों और राजा जयद्रथका नाश न होता॥ (१०–१२)

ओहो! जब सिन्धुराज राजा जयद्रथ अपने प्राणकी अभिलाषासे घर जानेके वास्ते उद्यत हुए थे उस समय मैंने द्रोणाचार्यके समीप अभय पाकर अपनी मूर्खताके कारण उन्हें घर जानेके वास्ते निवारण किया था॥ हाय! मैं कैसा निठुर तथा दुष्टात्मा पुरुष हूं। देखो आज युद्धभूमिमें मेरे चित्रसेन आदि सहोदर भाई हमलोगोंके सम्मुख ही में भीमसेनके हाथसे मारे गये॥ (१३-१४)

राजा दुर्योधनके ऐसे आक्षेप युक्त वचन सुनकर कर्ण बोले, महाराज! द्रोणाचार्य अपने बल उत्साह और शक्ति

यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ।
नाऽत्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथञ्चन ॥१६॥
कृती दक्षो युवा शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानरलक्षणम् ॥ १७ ॥
कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः ।
गाण्डीवमजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १८ ॥
प्रवर्षन्निशितान्बाणान्बाहुद्रविणदर्पितः ।
यदर्जुनोऽभ्ययाद् द्रोणमुपपन्नं हि तस्य तत् ॥ १९ ॥
आचार्यः स्थविरो राजञ्शीघ्रयाने तथाऽक्षमः ।
बाहुव्यायामचेष्टायामशक्तस्तु नराधिप ॥ २० ॥
तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
तस्य दोषं न पश्यामि द्रोणस्याऽनेन हेतुना ॥ २१ ॥
अजय्यान्पाण्डवान्मन्ये द्रोणेनाऽस्त्रविदा मृधे ।
तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ॥ २२ ॥

के अनुसार ही युद्ध कर रहे हैं इससे आप उनकी निन्दा न कीजिये। यद्यपि श्वेतवाहन अर्जुनने उन्हें अतिक्रम करके व्यूहके बीच प्रवेश किया है तथापि उस विषयमें द्रोणाचार्यका तनिक भी कुछ दोष नहीं दीख पडता है ॥ क्योंकि अर्जुन युवा अवस्थावाला बलवान् युद्धमें निपुण कृतास्त्र और शीघ्रताके सहित पराक्रम प्रकाशित करनेवाला है। विशेष करके कृष्ण जिस रथ पर बैठकर घोडोंकी बागडोर ग्रहण करके रथ हांकते हैं, उस दिव्य रथ पर बैठा हूआ बलवान् अर्जुन बन्दर ध्वजावाले रथसे युक्त दिव्य अस्त्रोंके सहित अभेद कवच पहने हुए अपने भुजबलसे मतवाला होकर चोखे बाणोंकी वर्षा करते हुए जो द्रोणाचार्यको अतिक्रम करके तुम्हारी व्यूहबद्ध सेनाके बीच प्रवेश करेगा यह अर्जुनके विषयमें कुछ असम्भव वार्त्ता नहीं है ॥ (१५-१९)

महाराज! द्रोणाचार्य बूढे शीघ्र गमन करनेमें असमर्थ और भुजबलसे शीघ्रतासे अस्त्र चलानेमें अर्जुनके समान सामर्थ्यवान् नहीं हैं ॥ इसही कारणसे श्रीकृष्ण सारथीसे युक्त श्वेतवाहन अर्जुनने द्रोणाचार्यको अतिक्रमण किया है; इससे द्रोणाचार्यका इस विषयमें कुछ भी दोष नहीं मालूम होता है ॥ महाराज! युद्धभूमिमें पाण्डवोंको द्रोणाचार्य अजेय समझते हैं, इस ही कारण अर्जुनने उन्हें

दैवादिष्टोऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित्।
यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन ॥ २३ ॥
सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम्।
परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सार्धं रणाजिरे ॥ २४ ॥
हत्वाऽस्माकं पौरुषं वै दैवं पश्चात्करोति नः।
सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ॥ २५ ॥
दैवोपसृष्टः पुरुषो यत्कर्म कुरुते क्वचित्।
कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन विनिपात्यते ॥ २६ ॥
यत्कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
तत्कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥
निकृत्या वञ्चिताः पार्था विषयोगैश्च भारत।
दग्धा जतुगृहे चापि द्यूतेन च पराजिताः ॥ २८ ॥
राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम्।

अतिक्रम करके तुम्हारी व्यूहबद्ध सेनाके बीच प्रवेश किया ॥ (२०-२२)

हे राजन् ! मेरे विचारमें अवश्य ही यह निश्चय होरहा है,कि दैव जिस विषयके अनुकूल रहता है कोई भी पुरुष किसी प्रकारसे उस विषयके अन्यथा कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि हम लोग अपनी पूरी शक्तिके अनुसार युद्ध कर रहे थे। तौभी सिन्धुराज जयद्रथ मारे गये इससे दैवको इस स्थलमें प्रबल कहना पडेगा। और भी देखिये रणभूमिके बीच हम लोग तुम्हारे सङ्ग मिलकर सदाही कपटता और अपने पराक्रमसे तुम्हारे विजयकी अभिलाषा करते रहते हैं तौभी दैव हम लोगोंके पुरुषार्थको नष्ट करके हमारे उपायको निष्फल कर रहा है। (२३-२५)

महाराज ! भाग्यहीन पुरुष किसी समय चाहे कितने ही यत्नसे कोई कार्य करे परन्तु दैव यदि उससे विमुख रहता है तो उसके सम्पूर्ण अनुष्ठान बार बार नष्ट हो जाते हैं ॥ परन्तु कर्मोंके अनुष्ठान करनेवाले पुरुषोंको शङ्कारहित होकर अवश्य करने योग्य कर्मोंको सदासर्वदा करना योग्य है; कभी कर्तव्य कर्मोंके अनुष्ठानसे पीछे हटना उचित नहीं है; तब कार्यका होना और न होना दैवके आधीन है ॥ (२५-२७)

देखिये हम लोगोंने कुन्तीपुत्रोंको विष पिलाया; जतुगृहमें जलाया; और जूवेके खेलमें कपटताके सहित उन्हें ठगके नाना भांतिके क्लेश दिये और

यत्नेन च कृतं तत्तद्दैवेन विनिपातितम् ॥ २९ ॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय दैवं कृत्वा निरर्थकम् ।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति ॥ ३० ॥
न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् ।
दुष्कृतं तव वा वीर बुद्ध्या हीनं कुरूद्वह ॥ ३१ ॥
दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥ ३२ ॥
बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तव ।
न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्तत ॥ ३३ ॥
तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः ।
शङ्के दैवस्य तत्कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥ ३४ ॥
सञ्जय उवाच— एवं सम्भाषमाणानां बहु तत्तज्जनाधिप ।
पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥ ३५ ॥

राजनीतिके अवलम्बसे उन्हें वनवासी बनाया। इस प्रकारसे जिन जिन कर्मोंके अनुष्ठान हम लोगोंने यत्नपूर्वक किये थे दैवकी इच्छासे वे सम्पूर्ण कर्म निष्फल हुए॥ जो हो इस समय आप यत्नवान् होकर प्राणपणसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त होइये। हम लोगोंके दोनों सेनामें दैव यत्नवान् सेनाका पक्ष ही अवलम्बन करेगा, क्योंकि पाण्डवोंने बुद्धिपूर्वक किसी सत्कार्यका अनुष्ठान किया है और आपने बुद्धिहीनताके कारण किसी असत् कार्यका अनुष्ठान किया है ऐसा निश्चय नहीं होता है, तब जो उन लोगोंके किये हुए सम्पूर्ण कार्य सद्रूपसे और तुम्हारे अनुष्ठित कार्य असद्रूपसे परिणत हुए हैं भाग्य ही उस विषयमें प्रमाण स्वरूप है। क्योंकि भाग्य प्राणियोंके निद्राकालमें भी जागता रहता है॥ (२८–३२)

जिस समय यह युद्ध उपस्थित हुआ, उस समय तुम्हारी ओर ही बहुतसी सेना तथा अनगिनत योद्धा थे; पाण्डुपुत्रोंकी उतनी सेना नहीं थी, परन्तु क्या ही आश्चर्यका विषय है, कि उनकी सेनाके पुरुषोंके थोडे होने पर भी तुम्हारे अनगिनत योद्धाओंका वध होता है, हम लोगोंका बल पुरुषार्थ जो नष्ट हो रहा है; वह सब दैवकी इच्छा ही समझनी चाहिये॥ (३३–३४)

सञ्जय बोले, महाराज! राजा दुर्योधन और कर्ण आपसमें इसी प्रकार अनेक भांतिकी बात चीत कर रहे थे; उस

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम्।
तावकानां परैः सार्धं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३६ ॥ [६६१९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि पुनर्युद्धारंभे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥ समाप्तं जयद्रथवधपर्व।

६ घटोत्कचवधपर्व।

सञ्जय उवाच— तदुदीर्णं गजानीकं बलं तव जनाधिप।
पाण्डुसेनामतिक्रम्य योधयामास सर्वतः ॥ १ ॥
पञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम्।
यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥ २ ॥
शूराः शूरैः समागम्य शरतोमरशक्तिभिः।
विव्यधुः समरेऽन्योन्यं निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥ ३ ॥
रथिनां रथिभिः सार्धं रुधिरस्रावदारुणम्।
प्रावर्त्तत महद्युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४ ॥
वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम्।
विषाणैर्दारयामासुः सुसंक्रुद्धा मदोत्कटाः ॥ ५ ॥

समय युद्धभूमिमें पाण्डवोंकी सेना दिखाई देने लगी। तिसके अनन्तर तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके रथी रथीसे, गजपति गजपतिसे और पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धा लोग पदाति सेनाके शूरवीरोंके सम्मुख होकर अपने समान पुरुषोंके सङ्ग युद्ध करने लगे। महाराज! तुम्हारा अविचारही इस महाघोर संग्राम का मूल है॥ (३५-३६) [६६१९]

द्रोणपर्वमें एकसौ बावन अध्याय और जयद्रथवधपर्व समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ तिरपन अध्याय और घटोत्कचवधपर्व।

सञ्जय बोले, महाराज! तुम्हारी हाथीयोंकी तैयार सेना पाण्डवोंकी सेनाको अतिक्रम कर चारों ओरसे युद्ध करने लगी॥ कौरव और पाञ्चाल योद्धालोग यमराजके समान क्रुद्ध होकर स्वर्ग लोकमें गमन करनेकी इच्छासे एक दूसरेके सम्मुख होकर धनुष बाण तोमर आदि अस्त्रोंसे विस्तीर्ण यमराष्ट्रमें जानेके लिये लड़ने लगे। एक दूसरेके ऊपर शस्त्रोंसे प्रहार करने वाले रथियोंका आपसमें रुधिरस्रावसे महाघोर दारुण युद्ध होने लगा॥ (१—४)

उस समय युद्धमें मतवारे हाथी क्रुद्ध होकर दूसरे मतवारे हाथियोंके हृदयमें अपने दांतोंसे प्रहार करने लगे॥ उस

हयारोहान्हयारोहाः प्रासशक्तिपरश्वधैः ।
बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६ ॥
पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः ।
अन्योन्यमार्दयन्राजन्नित्यं यत्ताः पराक्रमे ॥ ७ ॥
गोत्राणां नामधेयानां कुलानां चैव मारिष ।
श्रवणाद्धि विजानीमः पञ्चालान्कुरुभिः सह ॥ ८ ॥
तेऽन्योन्यं समरे योधाः शरशक्तिपरश्वधैः ।
प्रैषयन्परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥ ९ ॥
शरा दश दिशो राजंस्तेषां मुक्ताः सहस्रशः ।
न भ्राजन्ते यथातत्त्वं भास्करेऽस्तं गतेऽपि च ॥ १० ॥
तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
दुर्योधनो महाराज व्यवागाहत तद्बलम् ॥ ११ ॥
सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः ।

महाघोर संग्रामभूमिमें घुडसवार योद्धा लोग घुडसवारोंके संमुख उपस्थित होकर बडे यशकी इच्छासे अपने परश्वध, शक्ति और प्रास आदि अस्त्रोंसे एक दूसरेके शरीरको क्षत-विक्षत करने लगे ॥ उस ही प्रकार सैकडों सहस्रों पैदल सेनाके योद्धा लोग नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके यत्नपूर्वक अपना पराक्रम प्रकाशित करते हुए एक दूसरे का नाश करने लगे ॥ (५-७)

महाराज ! जब पांचाल लोग कुरुसेना के संमुख स्थित होकर युद्ध करने लगे उस समय यह नहीं मालूम हो सकता था, कि कौनसे कुरुसेनाके योद्धा हैं; और कौनसे पाञ्चाल सेनाके वीर हैं; केवल उन लोगोंके मुहसे उनके नाम गोत्र और कुलका वृत्तान्त सुनकर हम लोग कुरुसेनाके और पाञ्चाल सेनाके पुरुषोंको मालूम करने लगे । इसी भांतिसे दोनों ओरके योद्धा लोग निर्भय चित्तसे रणभूमिके बीच घूमते हुए बाण शक्ति और फरसे आदि अस्त्रोंसे शत्रुसेनाके पुरुषोंका वध करके एक दूसरेको यम-पुरीमें भेजने लगे ॥ (८-९)

महाराज ! सूर्यके अस्त होने पर भी उन लोगोंके धनुषसे छूटे तथा हाथसे चलाये हुए बाण आदि अस्त्र-शस्त्र चारों ओरसे इकबारगी इतनी अधिकतासे चलने लगे, कि सन्ध्याके समय कुछ भी सूझ न पडता था, परन्तु पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष इस प्रकारसे युद्ध कर रहे थे, उसही समय कुरुराज

मर्तव्यमिति सञ्चिन्त्य प्राविशच्च द्विषद्बलम् ॥ १२ ॥
नादयन्रथघोषेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
अभ्यवर्त्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १३ ॥
स सन्निपातस्तुमुलस्तस्य तेषां च भारत ।
अभवत्सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥ १४ ॥
यथा मध्यन्दिने सूर्यं प्रतपन्तं गभस्तिभिः ।
तथा तव सुतं मध्ये प्रतपन्तं शरार्चिभिः ॥ १५ ॥
न शेकुर्भारतं युद्धे पाण्डवाः समुदीक्षितुम् ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ १६ ॥
पर्यधावन्त पञ्चाला वध्यमाना महात्मना ।
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन्पाण्डुसैनिकाः ।
न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः ॥ १८ ॥
यादृशं कृतवान्राजा पुत्रस्तव विशाम्पते ।

दुर्योधनने शत्रुसेनाके बीच प्रवेश किया॥ उस समय राजा दुर्योधनने सिन्धुराज जयद्रथके मरनेसे अत्यन्त दुःखित होकर अपने प्राणकी आशा छोडके पाण्डवोंकी सेनाके बीच प्रवेश किया ॥ १०-१२

तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने शत्रुसेनाके वीरोंके संमुख जानेके समय रथकी घरघराहटसे पृथ्वीको कंपाते और दशों दिशाको अनुनादित करते हुए पाण्डवों की सेनाके बीच गमन किया ॥ उस समय पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंके सङ्ग राजा दुर्योधनका महावीर संग्राम होने लगा। जब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन अपने बाणरूपी अग्निसे शत्रुसेनाके पुरुषोंको पीडित करने लगे उस समय ऐसा मालूम होने लगा, मानो दोपहर के सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणोंसे जगत के प्राणियोंको भस्म किये डालते हैं। उस समय पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष भरत कुल भूषण दुर्योधनकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हुए॥ वे सम्पूर्ण योद्धा लोग शत्रुओंके जीतनेमें उत्साह रहित होकर रणभूमिमें दुर्योधनके संमुखसे भागनेमें तत्पर हुए ॥ (१३—१६)

महाराज! पाञ्चाल योद्धा लोग धनुर्द्धारीयोंमें अग्रणी महात्मा दुर्योधनके चोखे बाणोंसे पीडित होके इधर उधर भागने लगे और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा लोगभी राजा दुर्योधनके तीक्ष्ण बाणोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे। उस समय

पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे ॥ १९ ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्फुल्लपङ्कजा।
क्षीणतोयाऽनिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी ॥ २० ॥
बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा।
पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत ॥ २१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन्।
स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः॥ २२ ॥
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम्।
धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥ २३ ॥
केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः।
सात्वतं पञ्चभिर्विध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः॥ २४ ॥
घटोत्कचं च समरे विध्वा सिंह इवाऽनदत्।
शतशश्चाऽपरान्योधान्सद्विपांश्च महारणे ॥ २५ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने युद्धमें जैसा कर्म किया, तुम्हारी ओरके कोई पुरुष भी वैसे कर्मको करनेमें समर्थ नहीं हुए। जैसे मतवारा हाथी तालावमें फूले हुए कमलपुष्पोंके समूहको तोडके नष्ट कर देता है, वैसे ही राजा दुर्योधन पाण्डवी सेनाके योद्धाओंको अपने बाणोंसे छिन्न भिन्न करके उनका नाश करने लगे। कमलके फूलोंसे युक्त तालाव जैसे वायुके प्रभावसे सूख कर शोभा रहित होजाता है, वैसे ही पाण्डवोंकी सेना भी तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके तेज तथा पराक्रमके प्रभावसे तेज रहित होगई। (१७–२१)

भीमसेन और पाञ्चाल सेनाके मुख्य मुख्य योद्धा लोग तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके अस्त्रोंसे अपनी सेनाके पुरुषोंका नाश होते देख, सब कोई मिलकर उनकी ओर दौडे। कुरुराज! दुर्योधनने भीमसेन आदि पाण्डवोंको अपनी ओर आते देखकर भीमसेनको दस, नकुल सहदेवको तीन तीन, विराट और द्रुपदको छः छः, शिखण्डीको एक सौ, धृष्टद्युम्नको सत्तर, राजा युधिष्ठिरको सात और केकय तथा चेदी देशीय योद्धाओं को अनगिनत तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया। तिसके अनन्तर सात्यकिको पांच, द्रौपदीके पुत्रों और घटोत्कचको तीन तीन बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया। उस महाघोर संग्रामके समय वह प्रजा समूहके नाश करनेवाले यमराज के समान क्रुद्ध होकर घोडे, हाथी, रथी और पैदल-सेनाके सैकडों योद्धा-

शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।
सा तेन पाण्डवी सेना वध्यमाना शिलीमुखैः ॥२६ ॥
तव पुत्रेण संग्रामे विदुद्राव नराधिप ।
तं तपन्तमिवाऽऽदित्यं कुरुराजं महाहवे ॥ २७ ॥
नाऽशकन्वीक्षितुं राजन्पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राजसत्तम ॥ २८ ॥
अभ्यधावत्कुरुपतिं तव पुत्रं जिघांसया ।
तावुभौ युधि कौरव्यौ समीयतुररिन्दमौ ॥ २९ ॥
स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ दुर्योधनयुधिष्ठिरौ ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३० ॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं ध्वजं चिच्छेद चेषुणा ।
इन्द्रसेनं त्रिभिश्चैव ललाटे जघ्निवान्नृप ॥ ३१ ॥
सारथिं दयितं राज्ञः पाण्डवस्य महात्मनः ॥
धनुश्च पुनरन्येन चकर्ताऽस्य महारथः ॥ ३२ ॥
चतुर्भिश्चतुरश्चैव बाणैर्विव्याध वाजिनः ।
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेषादिव कार्मुकम् ॥ ३३ ॥

ओंको अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे खण्ड खण्ड करके पृथ्वीमें गिराने लगे। (२१—२६)

महाराज ! पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके बाणोंसे पीडित होकर रणभूमिमें चारों ओर भागने लगे। अधिक क्या कहा जावे उस समय पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा लोग प्रचण्ड तेजस्वी सूर्यकी भांति कुरुराज दुर्योधनको अपनी सेनाके पुरुषोंको तीक्ष्ण बाणोंसे भस्म करते देख उनकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुए ॥ (२६-२८)

तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर क्रुद्ध होकर विजयकी इच्छासे कुरुराज दुर्योधनकी ओर दौडे। उस समय शत्रुनाशन पराक्रमी कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिर और दुर्योधन राज्यके निमित्त युद्धभूमिमें एक दूसरेके सम्मुख उपस्थित हुए। पहिले राजा दुर्योधनने क्रुद्ध होकर दश तीक्ष्ण बाणोंसे युधिष्ठिरको विद्ध करके फिर एक बाणसे उनके रथकी ध्वजाका दण्ड काट दिया। अनन्तर तीन बाणोंसे दुर्योधनने युधिष्ठिरके प्रिय सारथी इन्द्रसेनके ललाटमें प्रहार किया। फिर एक बाणसे उनके धनुषको काटकर चार बाणसे उनके रथके चारों घोडोंको विद्ध

अन्यदादाय वेगेन कौरवं प्रत्यवारयत् ।
तस्य तान्निघ्नतः शत्रून्रुक्मपृष्ठं महद्धनुः ॥ ३४ ॥
भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद मारिष ।
विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः ॥३५॥
मर्म भित्त्वा तु ते सर्वे सँल्लग्नाः क्षितिमाविशन् ।
ततः परिवृता योधाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३६ ॥
वृत्रहत्यै यथा देवाः परिवव्रुः पुरन्दरम् ।
ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष ।
शरं च सूर्यरश्म्याभमत्युग्रमनिवारणम् ॥ ३७ ॥
हा हतोऽसीति राजानमुक्त्वाऽमुञ्चद्युधिष्ठिरः ।
स तेनाऽऽकर्णमुक्तेन विद्धो बाणेन कौरवः ॥ ३८ ॥
निषसाद रथोपस्थे भृशं सम्मूढचेतनः ।
ततः पाञ्चाल्यसेनानां भृशमासीद्रवो महान् ॥ ३९ ॥
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः ।
बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र मारिष ॥ ४० ॥

किया । (२८—३३)

तब धर्म पुत्र युधिष्ठिर क्षणभरके बीच दूसरा धनुप ग्रहण करके वेगपूर्वक दुर्योधनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ हे महाराज ! उस समय पाण्डवोंमें ज्येष्ठ राजा युधिष्ठिरने दोन भल्ल बाणोंसे शत्रु-ओंको विद्ध करनेवाले दुर्योधनका सुवर्ण पृष्ठ धनुष तीन भागोंमें काट दिया और अत्यन्त तीक्ष्ण दस बाणोंसे दुर्योधनको विद्ध किया। वे बाण दुर्योधनके मर्मोंको भेदकर पृथ्वीमें घुसगये । तब वृत्रहत्या के समय देवोंसे वेष्टित इन्द्रके समान राजा युधिष्ठिर भी अपने योद्धाओंसे चारों ओरसे वेष्टित हुआ । (३३—३७)

उन्होंने सूर्यकिरणके समान प्रकाश-मान एक प्रचण्ड बाण धनुषपर चढाकर ' अरे तू अब मरा चाहता है ' ऐसा कहके दुर्योधनकी ओर चलाया। कुरुराज दुर्योधन राजा युधिष्ठिरके चलाये हुए उस बाणसे अत्यन्त विद्ध और मूर्च्छित होकर रथमें बैठ गये । महाराज ! उस समय युद्धभूमिमें चारों ओरसे पाञ्चाल योद्धा लोग प्रसन्न होकर कहने लगे " कुरुराज दुर्योधन मारे गये ! राजा दुर्योधन मारे गये।" इसी भांति चारों ओरसे तुमुल शब्द होने लगा और बाणोंके शब्दके सहित मिलकर महाघोर शब्द उत्पन्न हुआ । (३७-४०)

अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे।
हृष्टो दुर्योधनश्चाऽपि दृढमादाय कार्मुकम् ॥ ४१ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन्पाण्डवमभ्ययात्।
प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ॥ ४२ ॥
तान्द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन्कुरुसत्तमम्।
चण्डवातोद्धुतान्मेघान्निघ्नन्रश्मिमुचो यथा ॥ ४३ ॥
ततो राजन्महानासीत्संग्रामो भूरिवर्धनः।
तावकानां परेषां च समेतानां युयुत्सया ॥ ४४ ॥ [६६६१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनपराभवे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— यत्तदा प्राविशत्पाण्डूनाचार्यः कुपितो बली।
उक्त्वा दुर्योधनं मन्दं मम शास्त्रातिगं सुतम् ॥ १ ॥
प्रविश्य विचरन्तं च रथे शूरमवस्थितम्।
कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः पर्यवारयन् ॥ २ ॥

उस ही समय द्रोणाचार्य शीघ्रताके सहित युद्धभूमिमें वहांपर उपस्थित हुए और दुर्योधन भी सावधान होकर एक दृढ धनुष्य ग्रहण करके हर्ष पूर्वक युधिष्ठिरको " खडा रह, खडा रह,! " कहके उनकी ओर दौडे ॥ तब पाञ्चाल योद्धालोग विजयकी इच्छा से शीघ्रताके सहित दुर्योधनकी ओर दौडे। महाराज! जैसे प्रचण्ड वायुसे हिले हुए बादलोंको किरणधारी सूर्य वेगपूर्वक छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही द्रोणाचार्य कुरुराज दुर्योधनकी रक्षाके वास्ते यत्नवान् होकर दुर्योधनकी ओर आये हुए पाञ्चाल योद्धाओंको रोकके उनका वध करने लगे॥ तिसके अनन्तर युद्धभूमिमें विजयकी इच्छा करनेवाले कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका महाघोर तुमुल युद्ध होने लगा ॥ (४१—४४) [६६६१]

द्रोणपर्वमें एकसौ तिरपन अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ चौवन अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! उस समय जब पराक्रमी द्रोणाचार्यने शासन को अतिक्रम करनेवाले तथा नीच बुद्धि वाले मेरे पुत्र दुर्योधनको तिरस्कृत करके पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश किया; और जब अत्यन्त पराक्रमी महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करके रथमें बैठकर रणभूमिमें घूमने लगे, तब पाण्डवोंने किस भांतिसे उन्हें निवारण किया? उस महा घोर संग्रामके

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रमाचार्यस्य महाहवे।
के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शात्रवान्बहून् ॥ ३ ॥
के चास्य पृष्ठतोऽन्वासन्वीरा वीरस्य योधिनः।
के पुरस्तादवर्तन्त रथिनस्तस्य शत्रवः ॥ ४ ॥
मन्ये तानस्पृशच्छीतमतिवेलमनार्तवम्।
मन्ये ते समवेपन्त गावो वै शिशिरे यथा ॥ ५ ॥
यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः।
नृत्यन्स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ६ ॥
निर्दहन्सर्वसैन्यानि पञ्चालानां रथर्षभः।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ ७ ॥
सञ्जय उवाच— सायाह्ने सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थः समेत्य च।
सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाऽभ्यधावताम् ॥ ८ ॥
तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः।
पृथक्चमूभ्यां संयत्तौ द्रोणमेवाऽभ्यधावताम् ॥ ९ ॥

समय जब द्रोणाचार्य अनगिनत शत्रु सेनाके पुरुषोंके नाश करनेमें प्रवृत्त हुए तब मेरी सेनाके किन किन योद्धाओंने दहिने चक्र और कौनसे योद्धाओंने उन के बायें चक्रकी रक्षा करी थी और वह महा धनुर्द्धर द्रोणाचार्य जब युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए तब मेरी ओरके कौनसे योद्धा लोग उनकी पृष्ठरक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए थे और कौनसे योद्धा उनके आगे थे ? (१—४)

हे सञ्जय ! मुझे बोध होता है, कि जिस समय सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य पाञ्चाल सेनाके बीच प्रविष्ट हुए होंगे,उस समय वे सम्पूर्ण योद्धालोग शीत ऋतुके न होते ही भययुक्त होनेके कारण शीत और कम्पसे व्याप्त होगये होंगे, जैसे शीतकालमें अत्यन्त शीतसे गौओंके समूह कांपते हुए दीख पडते हैं। मुझे निश्चय हो रहा है कि रथिश्रेष्ठ द्रोणाचार्य अग्निके समान क्रुद्ध होकर पाञ्चालोंकी सेना को दग्ध करते होंगे तौभी उनकी मृत्यु कैसी हुई? (५–७)

सञ्जय बोले, महाराज ! पृथापुत्र महाधनुर्द्धर अर्जुन और सात्यकि संध्याके समयमें जयद्रथका वध करनेके अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरसे भेट करके फिर युद्ध करनेके वास्ते द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर और भीमसेन अलग अलग सेना लेकर द्रोणाचार्यकी ओर बढे ॥

तत्रैव नकुलो धीमान्सहदेवश्च दुर्जयः ।
धृष्टद्युम्नः सहानीको विराटश्च सकेकयः ॥ १० ॥
मत्स्याः शाल्वाः ससेनाश्च द्रोणमेव ययुर्युधि ।
द्रुपदश्च तथा राजा पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ११ ॥
धृष्टद्युम्नपिता राजन्द्रोणमेवाऽभ्यवर्तत ।
द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ १२ ॥
ससैन्यास्ते न्यवर्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम् ।
प्रभद्रकाश्च पञ्चालाः षट्सहस्राः प्रहारिणः ॥ १३ ॥
द्रोणमेवाऽभ्यवर्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः ॥ १४ ॥
सहिताः संन्यवर्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम् ।
तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु भरतर्षभ ॥ १५ ॥
बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्धिनी ।
योधानामशिवा रौद्रा राजन्नन्तकगामिनी ॥ १६ ॥
कुञ्जराश्वमनुष्याणां प्राणान्तकरणी तदा ।

महाराज ! इसी प्रकारसे द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्धकी इच्छा करके पराक्रमी सहदेव बुद्धिमान नकुल और विराट भी केकय मत्स्य और शाल्व देशीय शूर वीरोंके सहित द्रोणाचार्य की ओर दौडे ॥ (८—११)

इसके अतिरिक्त पाञ्चाल सेनासे रक्षित धृष्टद्युम्नके पिता पाञ्चालराज द्रुपद द्रौपदीके पांचों पुत्र और राक्षस घटोत्कच ये सब कोई अपनी अपनी सेनाके सहित तेजस्वी द्रोणाचार्यकी ओर दौडे । युद्धविद्यामें निपुण छः हजार पाञ्चाल और प्रभद्रक योद्धा लोग शिखण्डीको अगाडी करके द्रोणाचार्यकी ओर दौडे । इसके अतिरिक्त पाण्डवोंकी सेनाके और भी दूसरे बहुतेरे महारथ योद्धा लोग पुरुष शार्दूल ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्य के संमुख उपस्थित हुए । (११–१५)

महाराज ! जब वे सम्पूर्ण योद्धा इस प्रकारसे युद्धभूमिमें इकट्ठे होकर संग्राम करनेमें प्रवृत्त हुए तब प्राणियोंके अकल्याणकारी शूरवीरोंके नाश करनेवाली और कादरोंको भयभीत करनेवाली अत्यन्त भयङ्करी रात्रिका समय उपस्थित हुआ । क्योंकि उस महाघोर रात्रिके समय अनगिनत हाथी घोडे और मनुष्योंका प्राणनाश हुआ था । उस

तस्यां रजन्यां घोरायां नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ॥१७॥
न्यवेदयन्भयं घोरं सज्वालकवलैर्मुखैः ।
उलूकाश्चाऽप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम् ॥ १८ ॥
विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्यामतिदारुणाः ।
ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान् ॥ १९ ॥
भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च ।
गजानां बृंहितैश्चाऽपि तुरङ्गाणां च हेषितैः ॥ २० ॥
खुरशब्दनिपातैश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।
ततः समभवद्युद्धं सन्ध्यायामतिदारुणम् ॥ २१ ॥
द्रोणस्य च महाराज सृञ्जयानां च सर्वशः ।
तमसा चाऽऽवृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ २२ ॥
सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन ह ।
नरस्याऽश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २३ ॥
नाऽपश्याम रजो भौमं कश्मलेनाऽभिसंवृताः ।
रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ २४ ॥

महा भयङ्करी रात्रिके समय सियार अपने विकट मुखोंको बाये हुए चारों ओरसे डरावनी बोली बोलते हुए महाभयका विषय सूचित कराने लगे। विशेष करके कौरवोंकी सेनाके बीच नाना प्रकारके अशकुन तथा मांस भक्षण करनेवाले जीव और उल्लु आदि पक्षी आनेवाली महाभयकी सूचना देने लगे। (१५-१९)

महाराज ! तिसके अनन्तर सैकडों ढोल मृदङ्ग और नगाडे आदि बाजोंके शब्द, हाथियोंकी चिंघाड, घोडोंकी हिनहिनाहट और टापका शब्द भेरी आदि युद्धके जुझाऊ बाजोंके सङ्ग मिलकर महाघोर तुमुल शब्द उत्पन्न हुआ। उस ही रात्रिके समय पाञ्चाल और सृञ्जयोंके सङ्ग द्रोणाचार्यका महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा। (१९-२२)

उस समय महाघोर अन्धकारसे सम्पूर्ण दिशा छिप गयीं और वीरोंके पांवके ठोकरोंसे इतनी धूलि उडके आकाश मण्डलमें पूरित होगयी कि उस समय कुछ भी न सूझ पडता था; परन्तु क्षण भरके अनन्तर हाथी घोडे और मनुष्योंके रुधिर बहनेसे हम लोग मोहित होकर उस रणभूमिको धूलिरहित ही समझने लगे। महाराज ! रात्रिके समय पर्वत तथा बांसके जङ्गलोंके बीच अग्निके लगनेसे जैसा शब्द उत्पन्न होता है वैसे

घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पततामभूत्।
मृदङ्गानकनिर्ह्रादैर्झर्झरैः पटहैस्तथा ॥ २५ ॥
फेत्कारैर्हेषितैः शब्दैः सर्वमेवाऽऽकुलं बभौ।
नैव स्वे न परे राजन्प्राज्ञायन्त तमोवृते ॥ २६ ॥
उन्मत्तमिव तत्सर्वं बभूव रजनीमुखे।
भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन प्रणाशितम् ॥ २७ ॥
शातकौम्भैश्च कवचैर्भूषणैश्च तमोऽभ्यगात्।
ततः सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता ॥ २८ ॥
द्यौरिवाऽऽसीत्सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ।
गोमायुबलसंघुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला ॥ २९ ॥
वारणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनादिता।
तत्राऽभवन्महाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ ३० ॥
समावृण्वन्दिशः सर्वा महेन्द्राशनिनिःस्वनः।

ही सेनाके शूरवीरों के अस्त्रशस्त्रों की बार बार खटपटाहटसे रणभूमिके बीच महाघोर शब्द सुनाई देने लगा॥ २२-२५

मृदङ्ग, बांसुरी, शंख, ढोल और नगाडे आदि जुझाऊ बाजोंके सहित घोडे, हाथी मनुष्य और अस्त्र शस्त्रोंका शब्द मिलकर वह शब्द सम्पूर्ण दिशा और आकाशमण्डलमें गूंज उठा। उस रात्रिके समय चारों ओर अन्धेरा छा रहा था इससे दोनों सेनाके पुरुष उन्मत्तके समान दिखाई देने लगे। अधिक क्या कहा जावे उस समय अपनी सेना और शत्रुसेनाके कोई पुरुष भी नहीं चीन्ह पडते थे। उसके अनन्तर जैसे रुधिर बहनेसे धूलिका उडना बन्द होगया वैसे ही शूरवीर पुरुषोंके सुवर्णभूषित वर्म और नाना प्रकारके आभूषणोंकी चमक दमकसे कुछ अन्धकार दूर होगया; और उस समय मणिरत्नोंसे भूषित वह भारती सेना इस प्रकार शोभित होने लगी जैसे तारोंके समूहसे आकाश शोभायमान लगता है। (२५-२९)

शक्ति आदि अस्त्र शस्त्र और ध्वजा पताकासे युक्त वह सेना कौवे कङ्क गिद्ध तथा सियारोंकी डरावनी बोली और हाथी घोडे शूरवीरोंके सिंहनाद और अस्त्र शस्त्रोंकी खटपटाहटके शब्दसे अत्यन्त ही भयानक मालूम होने लगी। उस समय रोएंको खडा करने वाला इस प्रकार महाघोर कोलाहल होने लगा मानो सम्पूर्ण दिशाओंको स्तम्भित करके इन्द्रके वज्रका शब्द सुनाई देरहा

सा निशीथे महाराज सेनाऽदृश्यत भारती ॥ ३१ ॥
अङ्गदैः कुण्डलैर्निष्कैः शस्त्रैश्चैवाऽवभासिता ।
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ॥ ३२ ॥
निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ।
ऋष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टिशाः ॥ ३३ ॥
सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाऽग्नयः ।
दुर्योधनपुरोवातां रथनागबलाहकाम् ॥ ३४ ॥
वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजैर्वृताम् ।
द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ॥ ३५ ॥
शरधाराऽस्त्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् ।
घोरां विस्मापनीमुग्रां जीवितच्छिदमप्लवाम् ॥ ३६ ॥
तां प्राविशन्नतिभयां सेनां युद्धचिकीर्षवः ।
तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिते ॥ ३७ ॥

है। (२९-३१)

मध्य रात्रिके समयमें वह भारती सेना कवच, कुण्डल, स्वर्णमुद्रा तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रकाशित होकर अत्यन्त शोभित हुई और उस सेनाके बीच सुवर्णभूषित हाथियोंके समूह और रथ इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे बिजलीसे युक्त बादल शोभायमान लगता है। शक्ति ऋष्टि गदा बाण मूशल फरसे और पट्टिश आदि अस्त्र शस्त्रोंके चलनेसे उस समय ऐसा मालूम होने लगा, मानो चारों ओरसे अग्निकी वर्षा होरही है। (३१-३४)

महाराज! तिसके अनन्तर सेनाके बीच द्रोणाचार्य और पाण्डवरूपी बादलोंका उदय हुआ, कुरुराज दुर्योधन उन बादलोंको अगाडी बढानेवाले वायु रूपी हुए; रथ हाथी और घोडे ही उस समय बकपांति रूपी बोध हुए, जुझाऊ बाजोंका शब्द ही उसमें बादल गर्जनके समान मालूम होने लगा, धनुष और ध्वजा बिजलीके समान दीख पडते थे। तलवार शक्ति और गदा आदि अस्त्र उसमें वज्र समान मालूम होते थे और लगातार बाणोंका चलाना ही उसमें जलवर्षाके समान बोध होने लगा। युद्धकी अभिलाष करनेवाले शूरवीर पुरुषोंने उस महाघोर भयङ्कर दुःखसे तरने योग्य भारती सेनाके बीच प्रवेश किया। (३४-३७)

महाराज! शूरवीरों के हर्ष और कादरोंके भयको बढानेवाली महाघोर

भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।
रात्रियुद्धे महाघोरे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ३८ ॥
द्रोणमभ्यद्रवन्क्रुद्धाः सहिताः पाण्डुसृञ्जयाः ।
ये ये प्रमुखतो राजन्न्यावर्तन्त महारथाः ॥ ३९ ॥
तान्सर्वान्विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् ।
तानि नागसहस्राणि रथानामयुतानि च ॥ ४० ॥
पदातिहयसङ्घानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
द्रोणेनैकेन नाराचैर्निर्भिन्नानि निशामुखे ॥ ४१ ॥ [६७०४]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– तस्मिन्प्रविष्टे दुर्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि ।
अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद्वै मतिस्तदा ॥ १ ॥
दुर्योधनं तथा पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम ।
यत्प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥
निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव ह ।

कोलाहल युक्त भयङ्कर रात्रिके समय दोनों सेनाके पुरुषोंका दारुण युद्ध होने लगा; पाण्डव और सृञ्जय योद्धा लोग मिलकर क्रोधपूर्वक द्रोणाचार्यकी ओर दौडे । परन्तु जो वीरपुरुष उस समय महात्मा द्रोणाचार्यके सम्मुख उपस्थित हुए द्रोणाचार्यने उन सम्पूर्ण योद्धाओं-को युद्धभूमिसे विमुख कर दिया और कितने ही शूरवीरों का वध करके पृथ्वीमें गिरा दिया । तिसके अनन्तर द्रोणाचार्यने उस रात्रिके समय अपने तीक्ष्ण बाणोंसे एक हजार हाथी दस हजार रथी पचास हजार पैदल सेनाके योद्धाओं और एक अर्बुद घोडोंको छिन्न भिन्न कर तथा उनका वध करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (३७–४१) [६७०४]

द्रोणपर्वमें एकसौ चौवन अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ पचपन अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! युद्धभूमिमें महापराक्रमी अत्यन्त बलवान धनुर्धारी द्रोणाचार्यने जब क्रोधपूर्वक सृञ्जयोंकी सेनामें प्रवेश किया उस समय तुम लोगोंका चित्त कैसा हुआ था ? और उन्होंने शासन अतिक्रम करनेवाले तेरे पुत्र दुर्योधनका तिरस्कार करके जब पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश किया उस समय पृथापुत्रोंने किस कार्यका अनुष्ठान किया ? क्योंकि युद्धमें अपराजित महातेजस्वी द्रोणाचार्य महावीर जयद्रथ और भूरिश्रवाके वधसे

यदाऽभ्यगान्महातेजाः पञ्चालानपराजितः ॥ ३ ॥
किममन्यत दुर्धर्षे प्रविष्टे शत्रुतापने ।
दुर्योधनस्तु किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ ४ ॥
के च तं वरदं वीरमन्वयुर्द्विजसत्तमम्
के चाऽस्य पृष्ठतोऽगच्छन्वीराः शूरस्य युध्यतः ॥ ५ ॥
के पुरस्तादवर्तन्त निघ्नन्तः शात्रवान्रणे ।
मन्येऽहं पाण्डवान्सर्वान्भारद्वाजशरार्दितान् ॥ ६ ॥
शिशिरे कम्पमाना वै कृशा गाव इव प्रभो ।
प्रविश्य स महेष्वासः पञ्चालानरिमर्दनः ।
कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ॥ ७ ॥
सर्वेषु योधेषु च सङ्गतेषु रात्रौ समेतेषु महारथेषु ।
संलोड्यमानेषु पृथग्बलेषु के वस्तदानीं मतिमन्त आसन् ॥ ८ ॥

क्रुद्ध होकर पाञ्चाल सेनाकी ओर दौडे थे ॥ इससे जब वह पराक्रमी धनुर्द्धारी शत्रुनाशन द्रोणाचार्यने शत्रुसेनाके बीच प्रवेश किया उस समय तुम लोगोंके चित्तमें कैसा विचार उत्पन्न हुआ था और दुर्योधनने भी उस समयके अनुसार किस कर्त्तव्य कार्यका अनुष्ठान किया था ? (१-४)

हे सञ्जय दुर्योधनकी अभिलाषाको पूरी करनेके वास्ते जब द्रोणाचार्यने शत्रुसेनाकी ओर गमन किया था तब मेरी ओरके कौन कौन योद्धा उनके अनुगामी हुए थे ? और युद्ध करनेके समय कौनसे योद्धा उनके पृष्ठरक्षामें नियुक्त हुए थे ? फिर रणभूमिके बीच जब वह शत्रुओंके संहार करनेमें प्रवृत्त हुए तब पाण्डवोंकी सेनाके कौन कौन वीर उनके संमुख उपस्थित हुए ? हे सञ्जय ! मुझे बोध होता है जैसे शिशिर ऋतुमें शीतसे कांपते हुए गौवोंका समूह कम्पित होता है वैसे ही भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर पाण्डव लोग भी कांपने लगे होंगे। ओहो ! वह शत्रुओंके नाश करनेवाले पुरुष शार्दूल महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य पाञ्चाल सेनाके बीच प्रवेश करके किस प्रकार मारे गये ? (५-७)

उस रात्रिके समय जब युद्धके निमित्त रणभूमिमें अपनी सेना सहित इकट्ठे हुए महा रथ योद्धा लोग इधर उधर अपने समान वीरोंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होकर चारों ओर शत्रुसेनाको तितर बितर करने लगे, उस समय तुम लोगोंके चित्तमें कैसा विचार उत्पन्न

हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च शंससि।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान्युद्धेषु मामकान् ॥ ९ ॥
तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्हतचेतसाम्।
अन्धे तमसि मग्नानामभवत्का मतिस्तदा ॥ १० ॥
प्रहृष्टांश्चाप्युदग्रांश्च सन्तुष्टांश्चैव पाण्डवान्।
शंससीहाऽप्रहृष्टांश्च विप्रष्टांश्चैव मामकान् ॥ ११ ॥
कथमेषां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम्।
प्रकाशमभवद्रात्रौ कथं कुरुषु सञ्जय ॥ १२ ॥
सञ्जय उवाच— रात्रियुद्धे तदा राजन्वर्तमाने सुदारुणे।
द्रोणमभ्यद्रवन्सर्वे पाण्डवाः सह सोमकैः ॥ १३ ॥
ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चाऽऽत्मजान्।
समप्रैषयत्प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥ १४ ॥
तस्य प्रमुखतो राजन्येऽवर्तन्त महारथाः।
तान्सर्वान्प्रेषयामास पितृलोकं स भारत ॥ १५ ॥
प्रमथ्नन्तं तदा वीरान्भारद्वाजं महारथम्।

हुआ था? तुम कहते हो कि मेरी ओरके योद्धा लोग उस रात्रिके समय बहुतेरे मारे गये, कितने ही युद्ध भूमिसे भागे, कितने ही पराजित हुए और रथियोंकी सेनाके बीच कितने ही रथभ्रष्ट होगये थे। भला कहो तो सही, उस महाघोर अन्धकारके समय जब तुम लोग पाण्डवोंकी सेनाके संमुखसे तितर बितर होकर रणभूमिके बीच मोहित होगये थे तब तुम लोगोंकी बुद्धि कैसे स्थिर रह सकती थी? (८-१०)

तुम यह भी कहते हो, कि पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष जययुक्त हर्षित उत्साही और आनन्दित थे; और मेरी सेनाके पुरुष भयभीत तथा शत्रुओंके जीतनेमें उत्साहरहित होगये थे, जो हो उस रात्रिके समय पीछे न हटनेवाले कौरव और पाण्डवोंका जैसा युद्ध दीख पडा था, वह तुम मेरे समीप वर्णन करो॥ (११-१२)

संजय बोले, महाराज! जब उस रात्रिके समय भयङ्कर संग्राम होने लगा तब पाण्डव लोग सोमकवंशियोंके सहित मिलकर द्रोणाचार्यकी ओर दौडे। परन्तु द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके पुत्रों और केकय देशीय वीरोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मार कर उन्हें यमपुरी में भेजदिया। महाराज! जब महारथी भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंका नाश करने

अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिवी राजा प्रतापवान् ॥ १६ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपारसवैः शितैः ॥ १७ ॥
तं शिविः प्रतिविव्याध त्रिंशता निशितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥ १८ ॥
तस्य द्रोणो हयान्हत्वा सारथिं च महात्मनः ।
अथाऽस्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥ १९ ॥
ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽदिशत् ।
स तेन संगृहीताश्वः पुनरभ्यद्रवद्रिपून् ॥ २० ॥
कलिङ्गानामनीकेन कालिङ्गस्य सुतो रणे ।
पूर्वं पितृवधात्क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विशोकं त्रिभिराजघ्ने ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ २२ ॥
कलिङ्गानां तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः ।

लगे, तब प्रतापवान् शिविराज उनके संमुख उपस्थित हुए ॥ (१३–१६)

द्रोणाचार्यने पाण्डवोंकी ओरके महारथ योद्धा शिविराजको अपने संमुख आते देख, लोहमय दस बाणोंसे उन्हें विद्ध किया, शिविराजनेभी तीस बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध करके फिर गर्व पूर्वक उनके सारथीको भल्लास्त्रसे मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया । तब द्रोणाचार्यने महात्मा शिविराजके सारथी और घोडों का वध करके एक बाणसे उनके शिरस्त्राण भूषित सिरको काटके पृथ्वी में गिरा दिया । अनन्तर दुर्योधनने द्रोणाचार्यके रथ हांकनेके वास्ते एक दूसरा सारथी भेज दिया, उसने आके द्रोणाचार्यके घोडों की बागडोर ग्रहण करी, तब पराक्रमी द्रोणाचार्य फिर शत्रुओंकी ओर दौडे ॥ (१७—२०)

महाराज ! पहिले भीमसेनने कलिङ्गराजका वध किया था, इसही कारण इस समय कलिङ्गराजके पुत्र अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी सेनाके सहित भीमसेनकी ओर दौडे, कलिङ्गराजपुत्रने भीमसेनको पहिले पांच बाणोंसे विद्ध करके फिर सात बाणोंसे विद्ध किया । तिसके अनन्तर फिर उन्होंने तीन बाणोंसे भीमसेनके सारथी विशोकको और एक बाणसे उनके रथकी ध्वजाको विद्ध किया ॥ (२१–२२)

तब भीमसेन क्रुद्ध होके अपने रथसे

रथाद्रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाऽभिजघान ह ॥ २३ ॥
तस्य मुष्टिहतस्याऽऽजौ पाण्डवेन बलीयसा।
सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन्वै पृथक्पृथक् ॥ २४ ॥
तं कर्णो भ्रातरश्चाऽस्य नाऽमृष्यन्त परन्तप।
ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः ॥ २५ ॥
ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः।
ध्रुवं चाऽस्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ॥ २६ ॥
स तथा पाण्डुपुत्रेण बलिनाऽभिहतोऽपतत्।
तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः ॥ २७ ॥
जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवाऽनदत्।
जयरातमथाऽऽक्षिप्य नदन्सव्येन पाणिना ॥ २८ ॥
तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाऽग्रतः स्थितः।
कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत ॥ २९ ॥
ततस्तामेव जग्राह प्रहसन्पाण्डुनन्दनः।
कर्णायैव च दुर्धर्षश्चिक्षेपाऽऽजौ वृकोदरः ॥ ३० ॥

कूदके क्रोधी कलिङ्गराज पुत्रके रथ पर जा चढे और उस क्रोधी वीर राजपुत्रके शरीरमें मुष्टिकासे प्रहार किया॥ भीमकी मुष्टिकाप्रहारसे कलिङ्गराजपुत्रकी हाड्डियां छितरा गयीं और वह प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिर पडे॥ महाराज! भीमसेनका वैसा कर्म देखकर कर्ण और कर्णके भाइयोंसे न सहा गया, वे सब कोई मिलकर विषधर सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंसे भीमसेनके ऊपर प्रहार करने लगे॥ (२३–२५)

तिसके अनन्तर भीमसेन अपने शत्रु कलिङ्ग राजपुत्रके रथसे उतरकर ध्रुवके समीप उपस्थित हुए। ध्रुव लगातार भीमके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, परन्तु भीमसेनने एक मुष्टिकाके प्रहारसे उन्हें भी चेत रहित करके पृथ्वीमें गिराया; महाबली भीमसेन ध्रुवका वध करके जयरातके रथपर जा चढे और बार बार सिंहनाद शब्दके सहित गर्जने लगे। अनन्तर भीमसेनने जयरातको बायें हाथसे उठाकर एक ही थप्पडसे कर्णके संमुखहीमें उन्हें प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिराया॥ (२६—२९)

तब कर्णने एक सुवर्णभूषित शक्ति ग्रहण करके भीमसेनकी ओर चलायी; पाण्डपुत्र भीमसेनने कर्णके हाथसे छूटी हुई उस शक्तिको निर्भयचित्तसे ग्रहण

तामापतन्तीं चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना ।
एतत्कृत्वा महत्कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ ३१ ॥
पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम् ।
तमायान्तं जिघांसन्तं भीमं क्रुद्धमिवाऽन्तकम्॥ ३२ ॥
न्यवारयन्महाबाहुं तव पुत्रा विशाम्पते ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ ३३ ॥
दुर्मदस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे ।
सारथिं च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ३४ ॥
दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्याऽवचक्रमे ।
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ परतापनौ ॥ ३५ ॥
संग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वावप्यधावताम् ।
यथाऽम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ॥ ३६ ॥
ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवाऽऽत्मजौ ।
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम् ॥ ३७ ॥
ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च ।

करके उसे फिर कर्ण हीकी ओर चलाया। शकुनिने उस शक्तिको सहसा कर्णकी ओर आती देख उत्तम पानीसे बुझे हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मार्गही में काट के गिरा दिया॥ महाराज अद्भुत पराक्रम प्रकाशित करनेवाले भीमसेन रणभूमिके बीच इसी प्रकार के असाधारण कार्य करके फिर अपने रथपर चढकर तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे। (२९-३२)

तब तुम्हारे पुत्र लोग भीमसेनको क्रोधी यमराजके समान आगे बढे आते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपाने लगे॥ तिसके अनन्तर भीमसेनने बाणोंसे युद्धकी भूमिमें स्थित दुर्मदके घोडे और सारथीका वध करके यमलोकमें भेजा॥ दुर्मद घोडे और सारथीसे रहित रथसे कूदकर अपने भाई दुष्कर्णके रथपर चढ गये। (३२--३५)

महाराज! जैसे देवासुर संग्राममें मित्रावरुण दैत्यसत्तम तारककी ओर दौडे थे वैसे ही शत्रुनाशन वे दोनों भाई युद्ध भूमिमें एक ही रथपर चढके भीमसेनकी ओर दौडे॥ इसी भांतिसे एक ही रथपर चढे हुए दुर्मद और दुष्कर्ण अपने बाणोंके समूहसे भीमसेनको विद्ध करने लगे। महाराज! शत्रुओंके नाश करनेवाले पाण्डुपुत्र भीमसेनने

कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च पाण्डवः ॥ ३८ ॥
दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम्।
पादप्रहारेण धरां प्रावेशयदरिन्दमः ॥ ३९ ॥
ततः सुतौ ते वलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ।
मुष्टिनाऽऽहत्य संक्रुद्धो ममर्द च ननर्द च ॥ ४० ॥
ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपाऽब्रुवन्।
रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु युध्यति ॥ ४१ ॥
एवमुक्त्वा पलायन्ते सर्वे भारत पार्थिवाः।
विसंज्ञा वाहयन्वाहान्न च द्वौ सह धावतः ॥ ४२ ॥
ततो बले भृशलुलिते निशामुखे सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः।
महाबलः कमलविबुद्धलोचनो युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद्बली॥ ४३ ॥
ततो यमौ द्रुपदविराटकेकया युधिष्ठिरश्चाऽपि परां मुदं ययुः।
वृकोदरं भृशमनुपूजयंश्च ते यथाऽन्धके प्रतिनिहते हरं सुराः ॥ ४४ ॥

कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य सोमदत्त और बाह्लीकके सम्मुखहीमें दुष्कर्णके उस रथको अपने चरण प्रहार से खण्ड खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ अनन्तर भीमसेनने बलवान् पराक्रमी दुर्मद और दुष्कर्णको मुष्टिका-के प्रहारसे चेतरहित करके सिंहनाद किया ॥ (३९—४०)

महाराज सेनाके पुरुष भीमसेनके ऐसे कठिन कार्यको देखकर हाहाकार शब्दके सहित महाघोर कोलाहल करने लगे। राजा लोग कहने लगे, ये निश्चय ही रुद्र हैं भीमरूप धारण करके कौरवों की सेनाके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं॥ राजा लोग ऐसे ही वचन कहते हुए कातर होके अपने हाथी और घोडोंको चलाकर युद्धभूमिसे भागने लगे। अधिक क्या कहा जावे उस समय तुम्हारी सेनाके पुरुष ऐसे भयभीत हो गये कि दो पुरुष एक सङ्ग मिलके गमन न कर सके ॥ (४१—४२)

महाराज ! उस रात्रिके समय जब तुम्हारी सेना इस प्रकारसे छिन्न भिन्न होगई। तब कमलके समान प्रफुल्लित नेत्रवाले महाबलवान् भीमसेनने मुख्य मुख्य राजाओंसे प्रशंसित होकर अपनी सेनाके सहित धर्मराज युधिष्ठिरके समीप उपस्थित होके उन्हें प्रणाम किया ॥ धर्म पुत्र युधिष्ठिर नकुल सहदेव द्रुपद विराट और केकय आदि देशोंके सम्पूर्ण राजा लोग भीमसेनका वैसा कठिन कार्य देखकर अत्यन्त हर्षित हुए। जैसे

ततः सुतास्ते वरुणात्मजोपमा रुषान्विताः सह गुरुणा महात्मना।
वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा युयुत्सवो भृशमभिपर्यवारयन् ॥ ४५ ॥
ततोऽभवत्तिमिरघनैरिवाऽऽवृते महाभये भयदमतीव दारुणम्।
निशामुखे वृकबलगृध्रमोदनं महात्मनां नृपवर युद्धमद्भुतम्॥४६॥६७५०

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे भीमपराक्रमे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

सञ्जय उवाच— प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा।
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः।
तं त्वं सात्वत सन्त्यज्य दस्युधर्मे कथं रतः ॥ २ ॥
पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद्रणे ॥ ३ ॥
द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ।

अन्धकासुरके नाश करनेवाले महादेवकी पूजा किया था वैसे ही उन सम्पूर्ण राजाओंने भीमसेनका अत्यन्तही सम्मान किया ॥ (३३—४४)

महाराज! वरुणपुत्रोंके समान पराक्रमी तुम्हारे पुत्र लोग पाण्डवोंको हर्षित देखकर बहुत ही क्रोधित हुए और हाथी घोडे रथ तथा पैदल चलनेवाले योद्धाओंकी चतुरङ्गिणी सेनाके सहित महात्मा द्रोणाचार्यको अगाडी करके युद्धके वास्ते दृढताके साथ चारों ओरसे भीमसेनको घेर लिया ॥ तिसके अनन्तर उस महाघोर अन्धकारसे युक्त रात्रिके समय कौवे गिद्ध और भेडिये आदि मांसभक्षी जीवोंके हर्षको बढानेवाले महात्मा क्षत्रियोंका आपसमें महाघोर भयङ्कर अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ (४५—४६) [६७५०]

द्रोणपर्वमें एकसौ पचपन अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ छप्पन अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! जयद्रथवधके समय प्रायोपवेशन करके युद्धभूमिके बीच पृथ्वीपर बैठे हुए सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा सात्यकिके हाथसे मारे गये थे;इस समय भूरिश्रवाके पिता सोमदत्त सात्यकिके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह वचन कहने लगे। हे सात्यकि! पहिले महात्मा देवताओंसे जिस प्रकार क्षत्रियोंका धर्म निश्चित किया गया है; तुम उस धर्मको छोडके क्यों डाकुओंके धर्ममें रत हुए? हे सात्यकि! क्षत्रियधर्ममें निष्ठावान् बुद्धिमान् पुरुष रणभूमिसे भागनेवाले कातर और अस्त्ररहित पुरुष

प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं चैव युधि सात्वत ॥ ४ ॥
कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन च्छिन्नबाहवे ।
नृशंसं पतनीयं च तादृशं कृतवानसि ॥ ५ ॥
कर्मणस्तस्य दुर्वृत्त फलं प्राप्नुहि संयुगे ।
अद्य छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा ॥ ६ ॥
शपे सात्वत पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च ।
अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीरमानिनम् ॥ ७ ॥
अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम् ।
न हन्यां नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन ॥ ८ ॥
एवमुक्त्वा सुसंक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः ।
दध्मौ शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च ॥ ९ ॥
ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो दुरासदः ।
सात्यकिर्भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाऽब्रवीत् ॥ १० ॥
कौरवेय न मे त्रासः कथञ्चिदपि विद्यते ।

के ऊपर कैसे शस्त्रसे प्रहार कर सकते हैं ? (१—४)

विशेष करके वृष्णिवंशियोंके बीच तुम और प्रद्युम्न दोनों ही महारथी कहके विख्यात हो, तब तुमने किस भांति अर्जुनके बाणोंसे भुजा कटनेपर रणभूमिके बीच बैठे हुए मेरे पुत्र भूरिश्रवाके ऊपर नीच पुरुषोंकी भांति प्रहार करके नरकमें गमन करनेका कार्य किया है ? अरे नीच पुरुष दुष्टात्मा ! चाहे जो हो इस समय तूं अपने किये हुए कर्मोंका फल भोग करेगा । अरे मूढ ! मैं सुकृत धर्म और पुत्रोंकी शपथ करके कहता हूं,कि आज मैं अपने पराक्रमको प्रकाशित करके अवश्य ही अपने बाणोंसे तुम्हारा सिर काटूंगा ॥ (४–६)

अरे वृष्णिकुल कलङ्क ! तू अपनी वीरताका अत्यन्त ही अभिमान करता है परन्तु यदि पृथापुत्र अर्जुन आज रात्रिके समय तेरी रक्षा न करेंगे तो मैं इस ही रात्रिके बीच तेरे भाई और पुत्रोंके सहित तेरा वध करूंगा; यदि तुम्हारा वध न कर सकूं तो मैं अवश्य ही महाघोर नरकमें पतित होऊंगा ॥ महाबली सोमदत्तने ऐसा वचन कहके क्रोधपूर्वक शंख बजा कर सिंहनाद किया॥ (७–९)

तिसके अनन्तर कमल नेत्रवाले सिंहके समान पराक्रमी बलवान् सात्यकि अत्यन्त क्रुद्ध होकर सोमदत्तसे बोले, हे कौरव्य ! तुमसे अथवा दूसरे चाहे

त्वया सार्धमथाऽन्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन ॥ ११ ॥
यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि ।
तथापि न व्यथा काचित्त्वयि स्यान्मम कौरव ॥ १२ ॥
युद्धसारेण वाक्येन असतां सम्मतेन च ।
नाऽहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया॥ १३ ॥
यदि तेऽस्ति युयुत्साऽद्य मया सह नराधिप ।
निर्दयो निशितैर्बाणैः प्रहर प्रहरामि ते ॥ १४ ॥
हतो भूरिश्रवा वीरस्तव पुत्रो महारथः ।
शलश्चैव महाराज भ्रातृव्यसनकर्षितः ॥ १५ ॥
त्वां चाऽप्यद्य वधिष्यामि सहपुत्रं सबान्धवम् ।
तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि महारथः ॥ १६ ॥
यस्मिन्दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा ।
अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे ॥ १७ ॥
मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा ।
सकर्णसौबलः संख्ये विनाशमुपयास्यसि ॥ १८ ॥

जिस पुरुषके सङ्गमें युद्ध क्यों न होवे मेरे चित्तमें युद्ध करनेके समय तनिक भी भय नहीं होता ॥ अधिक क्या कहूं, यदि तुम सम्पूर्ण सेनासे रक्षित होकर भी मेरे सङ्ग युद्ध करो तौ भी मेरे चित्तमें किञ्चित् मात्र भी भय नहीं हो सकता ॥ (१०-१२)

हे कौरव ! मैं क्षत्रिय धर्ममें स्थित हूं, इससे तुम साधुपुरुषोंसे असम्भव केवल वाक्युद्धके प्रभावसे मुझे भयभीत न कर सकोगे ॥ यदि मेरे सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते तुम्हें अभिलाषा हुई है तो तुम पहिले दयारहित होकर मेरे शरीर पर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार करो ॥ जैसे तुम्हारे वीर पुत्र भूरिश्रवा के मरनेसे उनके भाई शलने भी भ्रातृ-शोकसे पीडित होकर यमलोकमें गमन किया है; आज मैं तुम्हें भी बन्धुबान्धव और पुत्रोंके सहित यमलोकमें पहुंचा-ऊंगा । तुम कुरुकुलमें उत्पन्न हुए हो विशेष करके महारथ योद्धा कहके विख्यात हो; इस समय यत्नवान् होकर युद्धभूमिमें स्थित रहो ॥ (१३-१६)

जिसमें दान,इन्द्रियनिग्रह,सदाचार, अहिंसा, लज्जा, धैर्य और क्षमा आदि सम्पूर्ण गुण निवास करते हैं; जिसके रथकी ध्वजा पर मृदङ्ग लगे हैं; उस धर्मराज युधिष्ठिरके तेजसे ही शकुनि

शपेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्तेन चैव ह।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ॥ १९ ॥
अपयास्यसि चेत्युक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि।
एवमाभाष्य चाऽन्योन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ २० ॥
प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ।
ततो रथसहस्रेण नागानामयुतेन च ॥ २१ ॥
दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य समन्ततः।
शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २२ ॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः।
स्यालस्तव महाबाहुर्वज्रसंहननो युवा ॥ २३ ॥
साग्रं शतसहस्रं तु हयानां तस्य धीमतः।
सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात्पर्यरक्षत ॥ २४ ॥
रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिम्।
तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा सन्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥

और कर्ण आदि तुम सब कोई पहिलेसेही मृत-प्राय होगये हो; इस समय संग्रामभूमिमें केवल मृत्युके मुखमें गमन करोगे। अरे पापी! यदि तू युद्धसे हटके रणभूमिसे भाग जावे तभी मेरे हाथसे बच सकेगा, नहीं तो मैं युद्ध-भूमिमें क्रुद्ध होकर यदि पुत्रोंके सहित तुम्हारा नाश न करूं तो मैं कृष्णके चरण और अपने सुकृत आदि कर्मोंकी शपथ करके कहता हूं कि, ऐसा न करनेसे मुझे नरकमें जाना पडेगा। पुरुष-श्रेष्ठ सोमदत्त और सात्यकि आपसमें ऐसे ही वचन कहके शस्त्र चलानेमें प्रवृत्त हुए। (१७-२१)

तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन एक हजार रथी और दश हजार हाथी लेकर सोमदत्तको घेर युद्धभूमिमें स्थित हुए। महाराज! सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें मुख्य तुम्हारे शाले वज्र के समान शरीरवाले महाबाहु युवा शकुनि भी इन्द्रके समान पराक्रमी पुत्र पौत्र और भाइयोंके सहित उस ही स्थानपर स्थित हुए। अनन्तर बुद्धिमान् शकुनिकी ओरसे एक लाख महाधनुर्द्धर घुडसवार सोमदत्तको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगे॥ (२१—२४)

इस प्रकार राजा सोमदत्त अनेक मुख्य मुख्य शूरवीरोंसे रक्षित होकर अपने बाणोंकी वर्षासे सात्यकिको छिपाने लगे। तब धृष्टद्युम्न सात्यकिको सोमदत्तके

धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात्क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम् ।
चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः ॥ २६ ॥
आसीद्राजन्बलौघानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ।
विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत्कुरुपुङ्गवम् ।
सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना ॥ २८ ॥
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः ।
तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरया युतः ॥ २९ ॥
अपोवाह रणाद्वीरं सोमदत्तं महारथम् ।
तं विसंज्ञं समालक्ष्य युयुधानशरार्दितम् ॥ ३० ॥
अभ्यद्रवत्ततो द्रोणो यदुवीरजिघांसया ।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ३१ ॥
परिवव्रुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम् ।
ततः प्रववृते युद्धं द्रोणस्य सह पाण्डवैः ॥ ३२ ॥
बलेरिव सुरैः पूर्वं त्रैलोक्यजयकाङ्क्षया ।

तीक्ष्ण बाणोंके जालमें छिपे देख कर क्रोधपूर्वक अपनी बडी सेनाके सहित वहां पर उपस्थित हुए। महाराज! उस समय जब दोनों सेनाके योद्धा लोग आपसमें एक दूसरेके ऊपर अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे; उस समय उन शूरवीरोंके संग्रामके समय ऐसा शब्द सुनाई देने लगा; जैसे प्रचण्ड वायुके चलनेसे समुद्रकी प्रबल लहरका शब्द सुन पडता है। (२५-२७)

तिसके अनन्तर सोमदत्तने नव बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया; सात्यकिने भी कौरवोंमें मुख्य सोमदत्तको नव बाणोंसे विद्ध किया। सोमदत्त दृढ धनुर्धारी बलवान् सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध हुए और मूर्च्छित होकर रथका दण्ड पकडके रथमें बैठ गये। उनके रथका सारथी अपने स्वामी महा वीर सोमदत्त को मूर्च्छित देखकर शीघ्रताके सहित रथ हांकके रणभूमिसे पृथक् हुआ। (२७-३०)

द्रोणाचार्य सोमदत्तको सात्यकिके बाणोंसे पीडित तथा मूर्च्छित देखकर उसके वध करनेकी इच्छासे वहांपर उपस्थित हुए। राजा युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यको सात्यकिके समीप आया हुआ देखकर उसकी रक्षा करनेके वास्ते अपनी सम्पूर्ण सेना सङ्ग लेकर महात्मा द्रोणा-

ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत् ॥ ३३ ॥
भारद्वाजो महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम् ।
सात्यकिं दशभिर्बाणैर्विंशत्या पार्षतं शरैः ॥ ३४ ॥
भीमसेनं च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा ।
सहदेवं तथाऽष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३५ ॥
द्रौपदेयान्महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
विराटं मत्स्यमष्टाभिर्द्रुपदं दशभिः शरैः ॥ ३६ ॥
युधामन्युं त्रिभिः षड्भिरुत्तमौजसमाहवे ।
अन्यांश्च सैनिकान्विद्ध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥
ते वध्यमाना द्रोणेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
प्राद्रवन्वै भयाद्राजन्सार्तनादा दिशो दश ॥ ३८ ॥
काल्यमानं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा द्रोणेन फाल्गुनः ।
किञ्चिदागतसंरम्भो गुरुं पार्थोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वा द्रोणस्तु बीभत्सुमभिधावन्तमाहवे ।
संन्यवर्तत तत्सैन्यं पुनर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ४० ॥

चार्यको चारों ओरसे घेर लिया। तिसके अनन्तर जैसे तीनों लोकके विजयकी इच्छासे देवता और बलिका युद्ध हुआ था, वैसे ही द्रोणाचार्यके सङ्ग महात्मा पाण्डवों का महा घोर संग्राम होने लगा। (३०-३३)

महातेजस्वी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाको परिपूरित करके राजा युधिष्ठिरको विद्ध करने लगे। तिसके अनन्तर द्रोणाचार्य सात्यकिको दश, धृष्टद्युम्नको बीस, भीमसेनको नव, नकुलको पांच, सहदेवको आठ, शिखण्डीको एक सौ, द्रौपदीके पाचों पुत्रोंको पांच पांच, मत्स्यराज विराटको आठ, राजा द्रुपदको दश, युधामन्युको तीन, उत्तमौजाको छः और सेनाके दूसरे सम्पूर्ण पुरुषोंको अनगिनत बाणोंसे विद्ध करके युधिष्ठिरकी ओर दौडे॥ (३३-३७)

महाराज! पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा द्रोणाचार्य के बाणोंसे अत्यन्त पीडित होके भयपूर्वक आर्त्तनाद करते हुए चारों ओर भागने लगे॥ कुन्तीपुत्र अर्जुन अपनी सेनाके पुरुषोंको द्रोणाचार्यके सम्मुखसे भागते देख, किंचित् क्रुद्ध होकर शीघ्र ही गुरुकी ओर दौडे, युधिष्ठिरकी सेनाके पुरुष अर्जुनको द्रोणाचार्यके समीप उपस्थित होते देख-

ततो युद्धमभूद्भूयो भारद्वाजस्य पाण्डवैः ।
द्रोणस्तव सुतै राजन्सर्वतः परिवारितः ॥ ४१ ॥
व्यधमत्पाण्डुसैन्यानि तूलराशिमिवाऽनलः ।
तं ज्वलन्तमिवाऽऽदित्यं दीप्तानलसमद्युतिम् ॥ ४२ ॥
राजन्ननिशमत्यन्तं दृष्ट्वा द्रोणं शरार्चिषम् ।
मण्डलीकृतधन्वानं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ४३ ॥
दहन्तमहितान्सैन्ये नैनं कश्चिदवारयत् ।
यो यो हि प्रमुखे तस्य तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः ॥ ४४ ॥
तस्य तस्य शिरश्छित्वा ययुर्द्रोणशराः क्षितिम् ।
एवं सा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मना ॥ ४५ ॥
प्रदुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः ।
सम्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेन निशि भारत ॥ ४६ ॥
गोविन्दमब्रवीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं प्रति ।
ततो रजतगोक्षीरकुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥ ४७ ॥
चोदयामास दाशार्हो हयान्द्रोणरथं प्रति ।

कर फिर लौटे और उनके सङ्ग महाघोर संग्राम करने लगे । (३८–४१)

महाराज ! द्रोणाचार्य तुम्हारे पुत्रोंके सङ्ग मिलकर अपने तेज बाणोंसे इस प्रकार पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंको भस्म करने लगे, जैसे अग्नि रूईके समूहको भस्म करती है । प्रचण्ड सूर्य और जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी द्रोणाचार्यके मण्डलाकार धनुषसे अग्निशिखाके समान लगातार अनेक बाण छूटकर शत्रुसेनाके पुरुषोंको भस्म करने लगे । उस समय शत्रुसेनाके योद्धा लोग उन्हें जगत्को तपानेवाले सूर्यके समान सम्पूर्ण योद्धाओंका नाश करते देख कोई भी निवारण करनेमें समर्थ न हुए, अधिक क्या कहा जावे उस समय जो पुरुष द्रोणाचार्यके सम्मुख उपस्थित हुए उन सम्पूर्ण वीरोंके सिर द्रोणाचार्यके बाणोंसे कटके पृथ्वीमें गिर पडे । (४१–४५)

इसी भांतिसे पाण्डवोंकी सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित और भयभीत होकर अर्जुनके सम्मुखमें ही फिर युद्धभूमिमेंसे भागने लगी । हे राजेन्द्र ! उस रात्रिके समय सव्यसाची अर्जुनने अपनी सेनाके पुरुषोंको भयसे भागते हुए देख श्रीकृष्णसे द्रोणाचार्यके समीप गमन करनेके वास्ते अनुरोध किया ॥ श्रीकृष्ण अर्जुनके वचनोंको सुनकर गाय

भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं द्रोणाय फाल्गुनम् ॥ ४८ ॥
स्वसारथिमुवाचेदं द्रोणानीकाय मां वह ।
सोऽपि तस्य वचः श्रुत्वा विशोको वाहयद्धयान् ॥४९॥
पृष्ठतः सत्यसन्धस्य जिष्णोर्भरतसत्तम ।
तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ यत्तौ द्रोणानीकमभिद्रुतौ ॥ ५० ॥
पञ्चालाः सृञ्जया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः ।
अन्वगच्छन्महाराज केकयाश्च महारथाः ॥ ५१ ॥
ततो राजन्नभूद्धोरः संग्रामो लोमहर्षणः ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ॥ ५२ ॥
महद्भ्यां रथवृन्दाभ्यां बलं जगृहतुस्तव ।
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ५३ ॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययाद्राजन्सात्यकिश्च महाबलः ।
चण्डवाताभिपन्नानामुदधीनामिव स्वनः ॥ ५४ ॥
आसीद्राजन्बलौघानां तदाऽन्योन्यमभिघ्नताम् ।

का दूध, कुन्द या चन्द्रमाके समान सफेद घोडोंसे युक्त रथको द्रोणाचार्य की ओर चलाने लगे। (४५—४८)

उस समय भीमसेन अर्जुनको द्रोणाचार्यकी ओर जाते देख अपने सारथीसे बोले,हे सारथी! मुझे द्रोणाचार्यके समीप ले चलो। भीमसेनके सारथी विशोकने अपने स्वामीकी आज्ञा सुनकर अर्जुनके पीछे पीछे अपने रथको चलाता हुआ द्रोणाचार्यके समीप जानेकी इच्छासे गमन करने लगा। पाञ्चाल, सृञ्जय, महारथी केकयदेशीय शूरवीर योद्धा मत्स्य चेदी करुष और कौशल देशीय सेनाके पुरुष भी अर्जुन और भीमसेनको द्रोणाचार्यकी ओर जाते देख उनके अनुगामी हुए॥ (४८—५१)

महाराज! तिसके अनन्तर रोएंको खडा करनेवाला महाघोर दारुण संग्राम होने लगा। उस समय भीमसेन और अर्जुनने बहुतेरे रथियोंके समूहके सहित तुम्हारी सेनाका उत्तर और दक्षिणका हिस्सा आक्रमण किया। महाबलवान् धृष्टद्युम्न और सात्यकि भी पुरुषसिंह भीमसेन और अर्जुनको द्रोणाचार्यकी ओर गमन करते देखकर वहां पर उपस्थित हुए। तिसके अनन्तर दोनों सेनाके योद्धालोग आपसमें संग्राम करने लगे, उससे ऐसा कोलाहल होने लगा। जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे समुद्रका जल उथलित होनेसे शब्द होता है। ५२—५५

सौमदत्तिवधात्क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ॥ ५५ ॥
द्रौणिरभ्यद्रवद्राजन्वधाय कृतनिश्चयः ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ॥ ५६ ॥
भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत् ।
कार्ष्णायसं महाघोरमृक्षचर्मपरिच्छदम् ॥ ५७ ॥
महान्तं रथमास्थाय त्रिंशन्नल्वान्तरान्तरम् ।
विक्षिप्तयन्त्रसन्नाहं महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ५८ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैर्न हयैर्नाऽपि वारणैः ।
विक्षिप्तपक्षचरणविवृताक्षेण कूजता ॥ ५९ ॥
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजितम् ।
लोहिताद्रपताकं तु अन्त्रमालाविभूषितम् ॥ ६० ॥
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम् ।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ६१ ॥
रक्षसां घोररूपाणामक्षौहिण्या समावृतः ।
तमुद्यतमहाचापं निशम्य व्यथिता नृपाः ॥ ६२ ॥

उस ही समय द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा सात्यकिको रणभूमिमें देख भूरिश्रवाके वधसे अत्यन्त क्रुद्ध होके उनके नाश करनेकी अभिलाषासे शीघ्रताके सहित सात्यकिकी ओर दौडे। भीमसेन पुत्र घटोत्कच अश्वत्थामाको सात्यकिकी ओर गमन करते देखकर लोहमय काले चर्मसे युक्त काले ऋक्षके चमडेसे घिरे हुए तीस नल्व परिमाण वाले तथा अनेक भांतिके यन्त्रोंसे परिपूरित आठ चक्रेसे युक्त और बादलके समान गम्भीर स्वरसे पूरित एक बडे रथ पर चढा। उसके उस बडे रथमें हाथीके आकार वाले विचित्र वाहन जुते हुए थे; परन्तु न वे वाहन हाथी थे और न घोडे ही थे। (५५-५९)

उस रथकी ऊंची ध्वजा पर विशाल शरीरवाला एक बडा गिद्ध बैठ कर चरण और पंखोंको फटकारता हुआ भयानक स्वरसे डरावनी बोली बोल रहा था। हिडिम्बापुत्र घटोत्कच रुधिरमें भींगी हुई पताकासे युक्त और आंतोंकी मालासे वेष्टित उस ही बडे आठ चक्रोंसे युक्त रथपर चढके पत्थर, वृक्ष, त्रिशूल और मुद्गर ग्रहण करनेवाले भयानक स्वरूपसे युक्त एक अक्षौहिणी राक्षसी सेनाको सङ्ग लेकर द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाको युद्धभूमिमें निवारण करने

युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।
ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भयावहम् ॥ ६३ ॥
दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शंकुकर्णं महाहनुम् ।
ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीप्तास्यं निम्नितोदरम् ॥ ६४ ॥
महाश्वभ्रगलद्वारं किरीटच्छन्नमूर्धजम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥ ६५ ॥
वीक्ष्य दीप्तमिवाऽऽयान्तं रिपुविक्षोभकारिणम् ।
तमुद्यतमहाचापं राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ ६६ ॥
भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी ।
वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ॥ ६७ ॥
घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥ ६८ ॥
ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत्तत्र समन्ततः ।
सन्ध्याकालाधिकबलैः प्रयुक्ता राक्षसैः क्षितौ ॥ ६९ ॥
आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः प्रासतोमराः ।
पतन्त्यविरताः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ७० ॥

लगा। (५९—६२)

तुम्हारी ओरके राजा लोग घटोत्कचको हाथमें प्रचण्ड धनुष ग्रहण किये हुए प्रलयकालके दण्डधारी यमराजकी भांति देखकर भयभीत होगये। तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाके सब योद्धा लोग पर्वतके शृङ्ग समान मूर्त्ति भयङ्कर दांत और विकट शरीर बडे बडे कान नेत्र मुख किरीटसे युक्त बडे सिरके सहित सम्पूर्ण प्राणियोंके भयको बढानेवाले जलती हुई अग्नि और यमराजके समान शत्रुओंको क्षोभित करनेवाले राक्षसराज घटोत्कचको हाथमें प्रचण्ड धनुष ग्रहण करके सम्मुख आते देख इस प्रकार विचालित होने लगे जैसे वायुके वेगसे गङ्गाका जल उथलित होता है। अधिक क्या कहा जावे उस समय घटोत्कचके सिंहनादसे हाथी घोडे आदि सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होकर मलमूत्र त्याग करने लगे और मनुष्यलोग अत्यन्त ही पीडित हुए॥ (६२-६८)

रात्रिके कारण राक्षस लोग अधिक बलवान् होकर पराक्रम प्रकाशित करके चारों ओरसे पत्थरकी शिला वर्षाने लगे। और लौहमय चक्र भुशुण्डि प्रास तोमर शूल शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र शस्त्र

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन्दिशः ॥ ७१ ॥
तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे ।
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥ ७२ ॥
विहतायां तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः ।
विससर्ज शरान्घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥ ७३ ॥
भुजङ्गा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्छिताः ।
ते शरा रुधिराक्ताङ्गा भित्त्वा शारद्वतीसुतम् ॥ ७४ ॥
विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ७५ ॥
घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः ।
घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ॥ ७६ ॥
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ॥ ७७ ॥

लगातार चारों ओरसे तुम्हारी सेनाके ऊपर पडने लगे ॥ महाराज ! उन अत्यन्त निष्ठुर राक्षसोंका भयङ्कर संग्राम देख कर सम्पूर्ण राजा तुम्हारे पुत्र लोग और कर्ण आदि सम्पूर्ण वीर कातर होकर चारों ओर दौडने लगे ॥ (६९-७१)

उस रणभूमिके बीच अस्त्र बलमें अत्यन्त प्रशंसित और अभिमानी अश्वत्थामा ने निर्भय चित्तसे स्थित होकर घटोत्कच की सम्पूर्ण मायाको अपने दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे भस्म किया ॥ माया नष्ट होनेसे घटोत्कच क्रुद्ध होकर महाघोर वाणोंकी वर्षा करने लगा। वे सम्पूर्ण बाण अश्वत्थामाके शरीरमें घुस गये ॥ महाराज ! जैसे सर्प क्रोधसे मूर्च्छित होकर बिलके भीतर प्रवेश करते हैं वैसे ही घटोत्कचके चलाये स्वर्ण पुंखवाले चोखे बाण अश्वत्थामाके शरीरको भेदकर रुधिर लिपटे हुए पृथ्वीमें घुस गये । (७२—७५)

तब प्रतापी अश्वत्थामाने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हस्तलाघवके सहित दश बाणोंसे घटोत्कचके शरीरको भेद किया। घटोत्कच द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे पीडित होकर अत्यन्त कातर हुआ; अनन्तर घटोत्कचने सौ सहस्र क्षुर धारवाला एक चक्र ग्रहण किया । भीमसेनपुत्र घटोत्कचने क्रोधके वशमें होकर बालसूर्यके समान प्रकाशमान वज्रके समान कठोर क्षुरधारवाले उस चक्रको

अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया ।
वेगेन महताऽगच्छद्विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ॥ ७८ ॥
अभाग्यस्येव सङ्कल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि ।
घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ७९ ॥
द्रौणिं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ।
घटोत्कचसुतः श्रीमान्भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ ८० ॥
रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाऽद्रिराट् ।
पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनपर्वणा ॥ ८१ ॥
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिर्मेरुरिवाऽऽवृतः ।
अश्वत्थामा त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ८२ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाऽञ्जनपर्वणः ।
द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चाऽस्य त्रिवेणुकम् ॥ ८३ ॥
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।

उठाकर अश्वत्थामाकी ओर चलाया। महाराज ! जैसे भाग्यहीन मनुष्यका सङ्कल्प निष्फल होजाता है वैसे ही महावेग पूर्वक घटोत्कचके हाथसे छूटा हुआ वह चक्र द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंके प्रभावसे उलटके पृथ्वीमें गिर पडा ॥ (७५-७९)

जब वह दारुण चक्र पृथ्वीमें गिर पडा तब घटोत्कचने अत्यंत क्रुद्ध होकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको अपने बाणोंसे छिपा दिया। तब घटोत्कच-पुत्र अञ्जनपर्वाने अपने बाणोंसे अश्व-त्थामाको इस प्रकार छिपा दिया जैसे राहु सूर्यको आच्छादित करता है। जैसे बडा पर्वत वायुकी गतिको रोक देता है वैसे ही कज्जल-गिरि पर्वतके समान रूप-वाले घटोत्कचपुत्र पराक्रमी अञ्जनपर्वाने अश्वत्थामाको संमुख आते देख निवारण किया। अश्वत्थामा भीमसेनके पौत्र अञ्जनपर्वाके बाणोंकी वर्षासे इस प्रकार शोभित हुए जैसे जलकी वर्षासे सुमेरु-गिरि शोभित होता है ॥ (७९-८२)

तिसके अनन्तर रुद्र विष्णु और इन्द्रके समान पराक्रमी महावीर अश्वत्थामाने निर्भय चित्तसे एक तीक्ष्ण बाण छोडकर अञ्जन पर्वाके रथकी ध्वजाको काट दिया। फिर अश्वत्थामाने दो बाणोंसे उसके सारथी, चार बाणोंसे उसके चारों घोडोंका वध करके, तीन बाणोंसे उसके रथकी त्रिवेणु और एक बाणसे उसके हाथमें स्थित धनुषको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया। अञ्जनपर्वाने रथभ्रष्ट और

विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम् ॥ ८४ ॥
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाऽकरोत् ।
गदां हेमाङ्गदां राजंस्तूर्णं हैडिम्बिसूनुना ॥ ८५ ॥
भ्राम्योत्क्षिप्तां शरैः साऽपि द्रौणिनाऽभ्याहताऽपतत् ।
ततोऽन्तरिक्षमुत्प्लुत्य कालमेघ इवोन्नदत् ॥ ८६ ॥
ववर्षाऽञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।
ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि ॥ ८७ ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांऽशुभिः ।
सोऽवतीर्य पुरस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ॥ ८८ ॥
महीगत इवाऽत्युग्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः ।
तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ॥ ८९ ॥
जघानाऽञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवाऽन्धकम् ।
अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम् ॥ ९० ॥
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात्प्रज्वलिताङ्गदः ।

धनुषरहित होकर सुवर्णभूषित एक भयंकर तलवार ग्रहण किया। अश्वत्थामाने एक तेज बाणसे उस तलवारको दो टुकडे करके पृथ्वीमें गिराया। तलवार कटनेपर अञ्जनपर्वाने शीघ्रताके सहित सुवर्णतार खचित एक गदा उठाकर अश्वत्थामाकी ओर चलाया। वह गदा अञ्जनपर्वाके हाथसे छूटते ही अश्वत्थामाके बाणोंसे निवारित होकर पृथ्वीमें गिर पडी। (८२-८६)

तिसके अनन्तर अञ्जनपर्वा आकाशमें चला गया और वहांसे वर्षाकालके बादल समान गर्जता हुआ अश्वत्थामाके ऊपर वृक्ष वर्षाने लगा। महाराज ! जैसे सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे बादलोंके समूहको भेद करता है वैसे ही पराक्रमी अश्वत्थामा उस आकाश स्थित घटोत्कच पुत्र अंजनपर्वाको अपने तेज बाणोंसे विद्ध करने लगे। महाराज कज्जलगिरिके समान भयंकर मूर्त्तिवाला तेजस्वी अञ्जनपर्वा आकाशसे उतरके फिर सुवर्ण भूषित रथमें स्थित हुआ; तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने लौहमयी वर्म धारण करनेवाले उस भीमपौत्र अञ्जनपर्वाको इस भांतिसे प्राण रहित कर दिया, जैसे महादेवने अन्धकासुरका नाश किया था। (८६-९०)

उस समय शारद्वतीपुत्र अश्वत्थामाको अस्त्रोंसे पाण्डवी सेनाके शूरवीरोंको भस्म करते और उसके हाथसे अपने पुत्र

प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ॥ ९१ ॥
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम् ।
घटोत्कच उवाच— तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ॥ ९२ ॥
त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा ।
अश्वत्थामोवाच— गच्छ वत्स सहाऽन्यैस्त्वं युध्यस्वाऽमरविक्रम ॥ ९३ ॥
नाहि पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः प्रबाधितुम् ।
कामं खलु न रोषो मे हैडिम्बे विद्यते त्वयि ॥ ९४ ॥
किं तु रोषान्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत ।
सञ्जय उवाच— श्रुत्वैतत्क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ९५ ॥
अश्वत्थामानमायस्तो भैमसेनिरभाषत ।
किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवाऽऽहवे ॥ ९६ ॥
यन्मां भीषयसे वाग्भिरसदेतद्वचस्तव ।
भीमात्खलु समुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ॥ ९७ ॥

अञ्जनपर्वाको मरते देख तेजस्वी बाहुभूषण धारण करनेवाला घटोत्कच निर्भय चित्तसे अश्वत्थामाके समीप आकर यह वचन कहने लगा, हे द्रोणपुत्र ! खडे रहो तुम मेरे सम्मुखसे जीते जी किसी प्रकारसे भी मुक्त न होसकोगे । जैसे अग्निपुत्र स्वामिकार्त्तिकने क्रौञ्चपर्वतको विदीर्ण किया था, आज मैं भी उस ही भांतिसे तुम्हारे शरीरको विदीर्ण करूंगा । (९०–९२)

घटोत्कचके ऐसे वचन सुनकर अश्वत्थामा बोले । हे तात ! हे हिडम्बापुत्र ! जाओ दूसरे पुरुषके सङ्ग युद्ध करो; क्योंकि मैं तुम्हारे पिताके समान हूं, इससे पिताके सङ्ग पुत्रको युद्धमें प्रवृत्त होना उचित नहीं है । मैं अपने अन्तःकरणसे निश्चय करके यह वचन कहता हूं, कि तुम्हारे ऊपर मुझे तनिक भी क्रोध नहीं है, परन्तु जब प्राणी क्रोधके वशमें होते हैं तब अपने आत्मीय पुरुषोंके नाश करनेमें भी मुंह नहीं मोडते । (९३–९५)

सञ्जय बोले, पुत्र शोकसे कातर घटोत्कचने अश्वत्थामाके ऐसे वचनोंको सुनकर क्रोधसे नेत्र लाल करके उत्तर दिया । हे द्रोणपुत्र ! तुमने जो कुछ वचन कहे वे सम्पूर्ण वचन साधु पुरुषोंसे सम्मत नहीं हैं । क्या मैं साधारण पुरुषोंकी भांति युद्धसे कातर हुआ हूं ! जो तुम वचनसे मुझे भयभीत कर रहे हो ? तुम इस बातको जानते हो, कि मैं इस विशाल कौरवकुलमें भीमसेनके

पाण्डवानामहं पुत्रः समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
रक्षसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बले ॥ ९८ ॥
तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ९९ ॥
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः सुमहाबलः ।
द्रौणिमभ्यद्रवत्क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥ १०० ॥
रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥ १०१ ॥
शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिरप्राप्तां तां व्यशातयत् ।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाऽभवत्॥१०२॥
अथाऽस्त्रसंमर्दकृतैर्विस्फुलिङ्गैस्तदाबभौ ।
विभावरीमुखे व्योम खद्योतैरिव चित्रितम् ॥ १०३ ॥
निशाम्य निहतां मायां द्रौणिना रणमानिना ।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जाऽन्तर्हितः पुनः ॥ १०४ ॥

वीर्यसे उत्पन्न हुआ हूं; विशेष करके मैं युद्धमें पीछे न हटनेवाले पाण्डवोंका पुत्र रावणके समान बलवान् और राक्षसोंका राजा हूं ॥ जो इस समय तुम क्षण भरतक युद्धभूमिके बीच खडे रहोगे तो मेरे हाथसे जीते जी किसी प्रकारसे भी न बच सकोगे । आज मैं रणभूमिके बीच तुम्हारी युद्धकी अभिलाषा पूरी कर दूंगा ॥ (९५-९९)

महाराज ! क्रुद्ध सिंह जैसे गजराजकी ओर दौडता है, वैसे ही बलवान् राक्षस घटोत्कच ऐसा वचन कहके क्रोधपूर्वक अश्वत्थामाकी ओर दौडा; और अश्वत्थामाके ऊपर इस प्रकार रथके अक्षके समान अपने भयङ्कर बाणोंकी वर्षा करने लगा जैसे बादल आकाशसे पृथ्वीके ऊपर जलकी वर्षा करता है ॥ १००-१०१

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने घटोत्कच के धनुषसे छूटी हुई बाण-वर्षाको समीप न पहुंचते ही पहुंचते मार्गमें ही अपने बाणों के प्रभावसे निवारण किया। तब आकाश में दूसरा बाणोंका युद्ध होता हुआ दीखने लगा ॥ और उन दोनोंके धनुषसे छूटे हुए बाणोंके आपसमें रगड खानेसे अग्नि उत्पन्न होने लगी; तथा उससे आकाशमण्डल खद्योतसमूहकी भांति प्रकाशित होने लगा । जब युद्धविद्या जानने वाले अश्वत्थामाके अस्त्रोंके प्रभावसे घटोत्कचके सम्पूर्ण अस्त्र निष्फल हुए। तब उसने अन्तर्द्धान होकर राक्षसी माया

सोऽभवद्गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसङ्कटैः ।
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥ १०५ ॥
तमञ्जनगिरिप्रख्यं द्रौणिर्दृष्ट्वा महीधरम् ।
प्रपतद्भिश्च बहुभिः शस्त्रसङ्घैर्न विव्यथे ॥ १०६ ॥
ततो हसन्निव द्रौणिर्वज्रमस्त्रमुदैरयत् ।
स तेनाऽस्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्तः क्षिप्रं व्यनश्यत ॥१०७॥
ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ।
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रो द्रौणिमाच्छादयद्रणे ॥ १०८ ॥
अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
व्यधमद् द्रोणतनयो नीलमेघं समुत्थितम् ॥ १०९ ॥
स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ।
शतं रथसहस्राणां जघान द्विपदां वरः ॥ ११० ॥
स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनाऽऽयतकार्मुकम् ।
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ १११ ॥
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तद्विरदविक्रमैः ।

प्रकट करी ॥ (१०२—१०४)

उससे त्रिशूल,तलवार फरसा, मूसल, रूपी जलके झरने और वृक्षोंसे युक्त शिखरसे शोभित अत्यन्त ऊंचे एक बडे पर्वतका रूप धारण किया,द्रोणपुत्र अश्वत्थामा घटोत्कचको कज्जलगिरिके समान पर्वत का स्वरूप धारण करते और उससे अनेक भांतिके शस्त्रकी वर्षा होते देख तनिक भी कातर न हुए और निर्भय चित्तसे अपने दिव्य अस्त्रोंको प्रकट किया ॥ अश्वत्थामाके दिव्य अस्त्रके प्रभावसे वह मायामय पर्वत उसही समय नष्ट होगया ॥ (१०५-१०७)

जब मायाका पर्वत नष्ट हुआ तब घटोत्कच आकाशमें आकर इन्द्रधनुष शोभित अत्यन्त भयङ्कर बादलका रूप धारण करके पत्थरोंकी वर्षासे अश्वत्थामाको छिपाने लगा ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महावीर अश्वत्थामाने वायव्य अस्त्र चलाकर उस मायामय नील बादलका नाश किया, फिर लगातार अपने तेज बाणोंको चलाकर दशों दिशाको परिपूरित करके एक लाख रथियोंका वध किया ॥ (१०८—११०)

तिसके अनन्तर घटोत्कच फिर रथ पर चढके धनुष फेरता हुआ राक्षसी सेना सङ्ग लेकर रणभूमिमें उपस्थित हुआ । उसकी सेनाके राक्षसोंके बीच

गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैरपि ॥ ११२ ॥
विकृतास्थिशिरोग्रीवैर्हिडिम्बानुचरैः सह ।
पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ ११३ ॥
नानाशस्त्रधरैर्वीरैर्नानाकवचभूषणैः ।
महाबलैर्भीमरवैः संरम्भोद्वृत्तलोचनैः ॥ ११४ ॥
उपस्थितैस्ततो युद्धे राक्षसैर्युद्धदुर्मदैः ।
विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिरब्रवीत् ॥ ११५ ॥
तिष्ठ दुर्योधनाऽद्य त्वं न कार्यः संभ्रमस्त्वया ।
सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ ११६ ॥
निहनिष्याम्यमित्रांस्ते न तवाऽस्ति पराजयः ।
सत्यं ते प्रतिजानामि पर्याश्वासय वाहिनीम् ॥ ११७ ॥
दुर्योधन उवाच—न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत्ते महदिदं मनः ।

कितने ही सिंह और शार्दूलके समान रूपवाले थे; वे सम्पूर्ण राक्षस मतवारे हाथीके समान पराक्रमी थे; उन सम्पूर्ण राक्षसोंके बीच कितने ही हाथी घोड़े और कितनेही राक्षस रथोंपर चढ़े हुए थे। परन्तु वे सब ही भयङ्कर शरीर, सिर, कान, आंख और भयानक गर्दन वाले थे। उन सम्पूर्ण तामसी प्रकृतिवाले राक्षसोंके बीच कितनेही हिडम्ब और कितने ही पुलस्त्य वंशीय राक्षसोंके वंशमें उत्पन्न हुए थे। वे सब ही राक्षस इन्द्रके समान पराक्रमी क्रोधसे लाल नेत्र किये हुए नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको धारण किये और अनेक प्रकार के कवच पहने हुए रणभूमिके बीच उपस्थित हुए। महाराज! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन भयङ्कर शब्द करनेवाले उन सम्पूर्ण युद्धदुर्मद राक्षसोंके सहित रणभूमिमें घटोत्कचको आया हुआ देख कर अत्यन्त ही दुःखित हुए। १११-११५

राजा दुर्योधनको दुःखित देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उन्हें इस भांतिसे धीरज धारण कराने लगे। हे महाराज दुर्योधन! तुम्हें भयभीत होना उचित नहीं है, इस समय तुम इन्द्रके समान पराक्रमी राजाओं और महावीर भाइयोंके सहित रणभूमिमें स्थित होकर सेनाके पुरुषोंको धीरज धारण कराओ। तुम्हारी कदापि पराजय न होसकेगी, मैं तुम्हारे समीप सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि युद्धभूमिमें अवश्य तुम्हारे शत्रुओंका वध करूंगा। (११५-११७)

महाराज! दुर्योधनने अश्वत्थामा के इस प्रकार धैर्यपूरित वचनको सुनकर

अस्मासु च परा भक्तिस्तव गौतमिनन्दन ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच— अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततः सौबलमब्रवीत् ।
वृतं रथसहस्रेण हयानां रणशोभिनाम् ॥ ११९ ॥
षष्ट्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनञ्जयम् ।
कर्णश्च वृषसेनश्च कृपो नीलस्तथैव च ॥ १२० ॥
उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्रः सुतापनः ।
दुःशासनो निकुम्भश्च कुण्डभेदी पराक्रमः ॥ १२१ ॥
पुरञ्जयो दृढरथः पताकी हेमकम्पनः ।
शल्यारुणीन्द्रसेनाश्च सञ्जयो विजयो जयः ॥ १२२ ॥
कमलाक्षः परक्राथी जयवर्मा सुदर्शनः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तीनामयुतानि षट् ॥ १२३ ॥
जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मराजं च मातुल ।
असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा मे त्वयि स्थिता॥ १२४॥
दारितान्द्रौणिना बाणैर्भृशं विक्षतविग्रहान् ।

उन्हें यह उत्तर दिया। हे शारद्वतीपुत्र! जब तुम्हारा चित्त ऐसा ऊंचा और हम लोगोंके ऊपर अनुरक्त है तब मुझे इस विषयमें कुछ आश्चर्य नहीं मालुम होता है। (११८)

सञ्जय बोले, महाराज! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन अश्वत्थामासे ऐसा वचन कहकर सौ हजार घुडसवारोंकी सेनासे घिरे हुए सुबल पुत्र शकुनिसे यह वचन बोले, हे मामा! तुम साठ हजार रथियोंकी सेना लेकर अर्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेके वास्ते गमन करो। कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, नील, कृतवर्मा, पुरुमित्र, सुतापन, दुःशासन, निकुम्भ, कुम्भभेदी, पराक्रम, पुरञ्जय, पताकी, हेमकम्पन, शल्य, अरुणि, इन्द्रसेन, सञ्जय, विजय, जय, कमलाक्ष, परक्राथी, जयवर्मा और सुदर्शन आदि महारथी योद्धाओंके सहित उदीच्य देशीय शूरवीर और साठ हजार पैदल गमन करने वाले योद्धालोग तुम्हारे अनुगामी होंगे॥ (११९-१२३)

हे मामा! मेरी सम्पूर्ण विजयकी आशा तुम्हारे ऊपर निर्भर है, इससे जैसे देवराज इन्द्रने असुरोंका संहार किया था वैसे ही तुम भी भीमसेन, नकुल, सहदेव और युधिष्ठिरका नाश करो॥ विशेष करके कुन्तीपुत्र आचार्य पुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर क्षतविक्षत शरीरसे युक्त हो रहे हैं, इस समयमें तुम उन लोगोंको इस

जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥ १२५ ॥
एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव सौवलः ।
पिप्रीषुस्ते सुतान्राजन्दिधक्षुश्चैव पाण्डवान् ॥ १२६ ॥
अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ।
विभावर्यां सुतुमुलं शक्रप्रल्हादयोरिव ॥ १२७ ॥
ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥ १२८ ॥
स तैरभ्याहतो गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः ।
चचाल रथमध्यस्थो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ १२९ ॥
भूयश्चाऽञ्जलिकेनाऽथ मार्गणेन महाप्रभम् ।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाऽऽशु घटोत्कचः ॥१३०॥
ततोऽन्यद् द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं महत् ।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान्वारिधारा इवाऽम्बुदः ॥१३१॥
ततः शारद्वतीपुत्रः प्रेषयामास भारत ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान्खचरान्खचरं प्रति ॥ १३२ ॥

भाँतिसे नष्ट करो जैसे अग्निपुत्र स्कन्दने दानवोंका नाश किया था ॥ महाराज ! सुबलपुत्र शकुनिने राजा दुर्योधनके इस प्रकारके वचन सुनकर तुम्हारे पुत्रों की इच्छा पूरी करनेके वास्ते पाण्डवोंके वधकी अभिलाषा कर शीघ्रताके सहित युद्ध करनेके वास्ते उनकी ओर गमन किया ॥ (१२४-१२६)

इधर उस महाघोर रात्रिके समय इन्द्र और प्रह्लादके समान द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और राक्षस घटोत्कचका आपसमें अत्यन्त भयङ्कर दारुण संग्राम होने लगा ॥ घटोत्कचने अत्यन्त क्रुद्ध होके विष और अग्निमें बुझाये हुए दश तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ शारद्वतीपुत्र अश्वत्थामा घटोत्कचके दृढ बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर इस प्रकार रथमें विचलित हुए, जैसे वायुके चलनेसे वृक्ष विचलित होने लगते हैं ॥ (१२७-१२९)

घटोत्कचने फिर एक अञ्जलिक अस्त्रसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके हाथमें स्थित अत्यन्त दृढ धनुषको काट दिया ॥ तब पराक्रमी अश्वत्थामा एक दूसरा दृढ धनुष ग्रहण करके जलकी वर्षा करनेवाले बादलकी भाँति तेज बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ तिसके अनन्तर अश्वत्थामा आकाशचारी राक्षसोंके ऊपर सुवर्ण दण्ड-

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ १३३ ॥
विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ददाह भगवान्वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥ १३४ ॥
स दग्ध्वाऽक्षौहिणीं बाणैर्नैर्ऋतीं रुरुचे नृप ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ १३५ ॥
युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्वणः ।
रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवाऽहितान् ॥ १३६ ॥
ततो घटोत्कचः क्रुद्धो रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
द्रौणिं हतेति महतीं चोदयामास तां चमूम् ॥१३७॥
घटोत्कचस्य तामाज्ञां प्रतिगृह्याऽथ राक्षसाः ।
दंष्ट्रोज्ज्वला महावक्त्रा घोररूपा भयानकाः ॥१३८॥
व्यात्तानना घोरजिह्वाः क्रोधताम्रेक्षणा भृशम् ।
सिंहनादेन महता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ १३९ ॥

भूषित शत्रुओंके नाश करनेवाले आकाश गामी बाण चलाने लगे ॥ (१३०–१३२)

महाराज ! तिसके अनन्तर अश्वत्थामाके बाणोंसे पीडित होके चौडी छातीवाले राक्षसोंके समूह इस प्रकार विकल होगये, जैसे सिंहके आक्रमणसे मतवारे हाथियोंका समूह व्याकुल होजाता है ॥ जैसे प्रलय कालके समय प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म कर देती है वैसे ही अश्वत्थामा अपने तेज बाणरूपी अग्निसे राक्षसोंको जलाकर घोडे, हाथी और सारथियोंके सहित रथियोंको भस्म करने लगे ॥ महाराज ! पहिले समयमें जैसे देवोंके देव महादेव आकाशमें स्थित त्रिपुरको जलाकर शोभित हुए थे वैसे ही द्रोणपुत्र अश्वत्थामा एक अक्षौहिणी राक्षसी सेना भस्म करके रणभूमिके बीच शोभित होने लगे ॥ विजय करनेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुम्हारे शत्रुओंका नाश करके प्रलयकालकी प्रचण्ड अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे ॥ १३३-१३६

तिसके अनन्तर घटोत्कचने क्रोध पूर्वक भयङ्कर मूर्तिवाली अपनी राक्षसी सेनाके पुरुषोंको आज्ञा दिया, कि "तुम लोग अश्वत्थामाका वध करो।" महाराज ! विकट रूप, जीभ निकले हुए, भयानक मुखसे युक्त, सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करनेवाले राक्षस लोग घटोत्कचकी आज्ञा सुनकर अत्यन्त

हन्तुमभ्यद्रवन्द्रौणिं नानाप्रहरणायुधाः ।
शक्तीः शतघ्नीः परिघानशनीः शूलपट्टिशान् ॥१४०॥
खड्गान्गदाभिन्दिपालान्मुसलानि परश्वधान् ।
प्रासानसींस्तोमरांश्च कणपान्कम्पनाञ्छितान्॥१४१ ॥
स्थूलान्भुशुण्ड्यश्मगदास्थूणान्कार्ष्णायसांस्तथा ।
मुद्गरांश्च महाघोरान्समरे शत्रुदारणान् ॥ १४२ ॥
द्रौणिमूर्धन्यसंत्रस्ता राक्षसा भीमविक्रमाः ।
चिक्षिपुः क्रोधताम्राक्षाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१४३॥
तच्छस्त्रवर्षं सुमहद् द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि ।
पतमानं समीक्ष्याऽथ योधास्ते व्यथिताऽभवन्॥१४४॥
द्रोणपुत्रस्तु विक्रान्तस्तद्वर्षं घोरमुच्छ्रितम् ।
शरैर्विध्वंसयामास वज्रकल्पैः शिलाशितैः ॥ १४५ ॥
ततोऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खैर्महामनाः ।
निजघ्ने राक्षसान्द्रौणिर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ १४६ ॥
तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।

क्रुद्ध हुए और लाल नेत्र करके नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण कर अपने सिंहनादके शब्दसे पृथ्वीको परिपूरित करते हुए अश्वत्थामाके वधके वास्ते शीघ्रता के सहित उन की ओर दौडे ॥ (१३७—१४०)

अनन्तर वे महाघोर पराक्रमशाली राक्षस लोग शक्ति, शतघ्नी, परिघ, अशनि, शूल, पट्टिश, तलवार, गदा, भिन्दिपाल, मूशल, परश्वध, प्रास, तोमर, पत्थर, तेजधार, कम्पन, स्थूल, भुशुण्डी, काले रूपवाले लोहमय स्थूणा, शत्रुओंके शरीरको विदीर्ण करनेवाले भयङ्कर मुद्गर इत्यादि अनेक भांतिके सैकडों सहस्रों अस्त्र शस्त्रोंको इकबारगी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके ऊपर चलाने लगे ॥ (१४१—१४३)

महाराज ! तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण पुरुष अश्वत्थामाके ऊपर इस प्रकार अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा होती देखकर अत्यन्त ही भयभीत हुए ॥ परन्तु महातेजस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने निर्भयचित्तसे शिलापर घिसे हुए अपने वज्रसमान बाणोंसे उन सम्पूर्ण राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्रशस्त्रोंको निवारण किया ॥ और शीघ्र ही दिव्य अस्त्र प्रकट करके सुवर्ण पङ्खवाले बाणोंसे राक्षसीसेनाके शूरवीरोंके ऊपर प्रहार करने लगे । चौडी

सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ १४७ ॥
ते राक्षसाः सुसंक्रुद्धा द्रोणपुत्रेण ताडिताः ।
क्रुद्धाः स्म प्राद्रवन्द्रौणिं जिघांसन्तो महाबलाः॥ १४८ ॥
तत्राद्भुतमिमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ १४९ ॥
यदेको राक्षसीं सेनां क्षणाद् द्रौणिर्महास्त्रवित् ।
ददाह ज्वलितैर्बाणै राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥ १५० ॥
स हत्वा राक्षसानीकं रराज द्रौणिराहवे ।
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्त्तक इवाऽनलः ॥ १५१ ॥
तं दहन्तमनीकानि शरैराशीविषोपमैः ।
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ॥ १५२ ॥
नैनं निरीक्षितुं कश्चिदशक्नोद् द्रौणिमाहवे ।
ऋते घटोत्कचाद्वीराद्राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ॥ १५३ ॥
स पुनर्भरतश्रेष्ठ क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनः ।

छातीवाले राक्षस लोग अश्वत्थामाके बाणोंसे पीडित होकर इस भांति विकल होगये जैसे सिंहके आक्रमणसे मतवारे हाथियोंका समूह व्याकुल होजाता है । परन्तु अत्यन्त क्रोधी महाबलवान राक्षस लोग अश्वत्थामाके बाणोंसे इस प्रकार पीडित होकर भी उनके वधकी अभिलाष करके फिर उनकी ओर दौडे ॥ (१४४—१४८)

महाराज ! उस स्थलमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने ऐसा आश्चर्यमय पराक्रम प्रकाशित किया कि वैसा कर्म सम्पूर्ण प्राणियोंसे भी असाध्य बोध हुआ,क्योंकि महा अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले अश्वत्थामाने मुहूर्त भरके बीच में अकेलेही जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान बाणोंसे राक्षसराज घटोत्कचके सम्मुखमें ही सम्पूर्ण राक्षसी सेनाको भस्म कर दिया ॥ संग्रामभूमिके बीच पराक्रमी अश्वत्थामा राक्षसी सेनाका नाश करके प्रलयकालकी अग्निसमान प्रकाशित हुए ॥ (१४९–१५१)

अधिक क्या कहूं जिस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा विषधर सर्पके समान अपने तेज बाणोंसे राक्षसोंका वध कर रहे थे उस समय महाबली राक्षसेन्द्र घटोत्कचको छोडके पाण्डवोंकी ओरके सहस्रों राजाओंके बीच कोई भी अश्वत्थामाकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुए॥ तब घटोत्कच क्रोधसे दोनों नेत्र लाल

तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ॥ १५४ ॥
रथं सूतमब्रवीत्क्रुद्धो द्रोणपुत्राय मां वह।
स ययौ घोररूपेण सुपताकेन भास्वता ॥ १५५ ॥
द्वैरथं द्रोणपुत्रेण पुनरप्यरिसूदनः।
स विनद्य महानादं सिंहवद्भीमविक्रमः ॥ १५६ ॥
चिक्षेपाऽऽविध्य संग्रामे द्रोणपुत्राय राक्षसः।
अष्टघण्टां महाघोरामशनिं देवनिर्मिताम् ॥ १५७ ॥
तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे ॥ १५८ ॥
साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा।
विवेश वसुधां भित्त्वा साऽशनिर्भृशदारुणा॥ १५९ ॥
द्रौणेस्तत्कर्म दृष्ट्वा तु सर्वभूतान्यपूजयन्।
यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शङ्करनिर्मिताम् ॥ १६० ॥
धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप।
धनुर्घोरं समादाय महदिन्द्रायुधोपमम्।

करके ओंठ काटता हुआ अपने सारथीसे बोला,हे सारथी! तुम मुझे अश्वत्थामाके समीप ले चलो॥ १५२–१५५

ऐसा कह कर घटोत्कच अपने उस भयानक रथ पर चढके द्वैरथ युद्ध करनेके वास्ते अश्वत्थामाके समीप उपस्थित हुआ। अनन्तर शत्रु नाशन अत्यन्त पराक्रमी भीमसेन पुत्र घटोत्कचने भयङ्कर शब्दके सहित सिंहनाद करके आठ घण्टियोंसे युक्त देवताओंकी बनाई एक महाघोर शक्ति घुमाकर अश्वत्थामाकी ओर चलायी। द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अपना धनुष रखके रथसे कूद कर उस शक्तिको ग्रहण करके घटोत्कचकी ओर चलाया। उस भयङ्कर शक्तिको सम्मुख आती देख घटोत्कच रथसे कूद कर पृथ्वी पर स्थित हुआ॥ (१५५–१५८)

अनन्तर वह प्रकाशमान महाघोर शक्ति घटोत्कचके घोडे सारथी और ध्वजाके सहित रथको भस्म करके पृथ्वी में घुस गई॥ परन्तु द्रोणपुत्र पराक्रमी अश्वत्थामाने जो उस भयङ्करी शक्तिको कूदके ग्रहण किया, उसे देखकर सम्पूर्ण प्राणी उनके इस कार्यकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे॥ घटोत्कच धृष्टद्युम्नके रथ पर चढके इन्द्रधनुषके समान अपना प्रचण्ड धनुष फेरते हुए अपने चोखे

मुमोच निशितान्बाणान्पुनर्द्रौणेर्महोरसि ॥ १६१ ॥
धृष्टद्युम्नस्त्वसंभ्रान्तो मुमोचाऽऽशीविषोपमान्।
सुवर्णपुङ्खान्विशिखान्द्रोणपुत्रस्य वक्षसि ॥ १६२ ॥
ततो मुमोच नाराचान्द्रौणिस्तांश्च सहस्रशः।
तावप्यग्निशिखप्रख्यैर्जघ्नतुस्तस्य मार्गणान् ॥ १६३ ॥
अतितीव्रं महद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः।
योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥ १६४ ॥
ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः।
षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमागमत् ॥ १६५ ॥
ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नं च सानुगम्।
अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टविक्रमः ॥ १६६ ॥
तत्राऽद्भुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम्।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ १६७ ॥
निमेषान्तरमात्रेण साश्वसूतरथद्विपाम्।
अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ॥ १६८ ॥

बाणोंसे अश्वत्थामाके वक्षस्थलमें प्रहार करने लगा ॥ (१५९-१६१)

उस ही समय धृष्टद्युम्न भी विषधर सर्पके समान तेजस्वी बहुतसे तेज बाणोंसे अश्वत्थामाके वक्षस्थलमें प्रहार करने लगे ॥ उस समय अश्वत्थामा उन दोनोंके ऊपर एकबारही एक एक हजार बाण चलाने लगे; अश्वत्थामाके चलाये बाणोंको सम्मुख न आतेही उन दोनों वीरोंने अग्निके समान तेजस्वी अपने तेज बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ महाराज ! इसी भांति धृष्टद्युम्न और घटोत्कचके सङ्ग द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका शूरवीरोंके हर्षको बढानेवाला महाघोर संग्राम होने लगा॥ १६२-१६४

उस ही समय भीमसेन एक हजार रथ तीन सौ हाथी और छः हजार घुडसवारोंकी सेना लेकर वहां उपस्थित हुए ॥ भीमसेनके उस स्थान पर उपस्थित होने पर भी धर्मात्मा अश्वत्थामा निर्भय चित्तसे सम्पूर्ण योद्धाओंसे युक्त धृष्टद्युम्न और घटोत्कचके संग युद्ध करने लगे ॥ महाराज ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उस समय जैसा पराक्रम प्रकाशित किया वैसा कर्म सम्पूर्ण प्राणियोंसे भी असाध्य है ॥ (१६५-१६७)

उन्होंने क्षण भरके बीच अपने अत्यन्त चोखे बाणोंके प्रभावसे भीमसेन

मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥ १६९ ॥
प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ सशृङ्गा इव पर्वताः ॥ १७० ॥
निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचलद्भिरितस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥ १७१ ॥
क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवोदितचंद्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥ १७२ ॥
प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् ।
छत्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥ १७३ ॥
कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् ।
विस्तीर्णगजपाषाणां हताश्वमकराकुलाम् ॥ १७४ ॥
रथक्षिप्तमहावप्रां पताकारुचिरद्रुमाम् ।

घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव धर्मपुत्र युधिष्ठिर, श्वेतवाहन अर्जुन और श्रीकृष्णके सम्मुखमें ही घोडे सारथी और हाथियोंसे युक्त एक अक्षौहिणी राक्षसी सेनाका नाश किया ॥ उस समय हाथियोंके समूह अश्वत्थामाके वेगगामी बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर मानों भृङ्ग-से युक्त पर्वतके समान मर कर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ बाणोंकी चोटसे कितने ही हाथियोंके सूण्ड कटकर रणभूमिमें चलते हुए सर्पके समान पडे हुए दिखाई देने लगे ॥ (१६८—१७१)

राजाओंके सुवर्ण दण्डयुक्त सफेद छत्र रणभूमिमें गिर कर ऐसे प्रकाशित हो रहे थे जैसे चन्द्र सूर्य आदि ग्रहोंसे युक्त प्रलयकालके समय आकाशमण्डल शोभित होता है ॥ इसी प्रकार द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उस युद्धभूमिके बीच बडे बडे हाथी घोडे और शूरवीर मनुष्योंके मृतशरीरसे युक्त उनके रुधिरसे भयङ्करी नदी उत्पन्न कर दी । कटी हुई ध्वजा उस नदीमें मेढक भेरी उसमें बडे शरी-रवाले कछुवे और छत्र उसमें हंसोंकी पांतकी भांति बहते हुए दिखाई देते थे । चवंर उसमें फेनके समान दीख पडते थे ॥ (१७२–१७३)

कौवे गिद्ध आदि पक्षी उसमें ग्राह-रूपी बोध होते थे । इधर उधर गिरे पडे बहुतेरे अस्त्र-शस्त्र उसमें मछरी, मांस-मज्जा उस नदीके कीचड मरे हुए हाथि योंके समूह उसमें पत्थरोंकी चट्टान समान दीख पडते थे, मरे हुए घोडोंके

शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्यृष्टिडुण्डुभाम् ॥ १७५ ॥
मज्जामांसमहापङ्कां कबन्धावर्जितोडुपाम् ।
केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ॥ १७६ ॥
नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसंभवाम् ।
शोणितौघमहाघोरां द्रौणिः प्रावर्तयन्नदीम् ॥ १७७ ॥
योधार्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् ।
श्वापदात्तिमहाघोरां यमराष्ट्रमहोदधिम् ॥ १७८ ॥
निहत्य राक्षसान्बाणैर्द्रौणिर्हैडिंबिमार्दयत् ।
पुनरप्यतिसंक्रुद्धः सवृकोदरपार्षतान् ॥ १७९ ॥
सनाराचगणैः पार्थान्द्रौणिर्विद्धो महाबलः ।
जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः ॥ १८० ॥
पुनः शत्रुञ्जयं नाम द्रुपदस्यात्मजं रणे ।
बलानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान् ॥ १८१ ॥
श्रुताहृयं च राजानं द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् ।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खैर्हेममालिनम् ॥ १८२ ॥

शरीर उसमें मकर रूपी मालूम होते थे, टूटे हुए रथ उसमें तीरके समान बहे जाते थे, उत्तम दण्डके सहित पताका मानो नदीके किनारे वाले वृक्षकी भांति दिखाई देती थीं केश उसमें काले रङ्ग-वाली सिवारकी भांति दिखाई देते थे; योद्धाओंका आर्त नाद ही उस नदीके हरहराहट शब्द के समान बोध होता था और योद्धाओंके कटे हुए शरीरसे जो रुधिर बह रहाथा वही उसमें जल के समान मालूम हो रहा था। वह रुधिर की नदी यमराज रूपी महा सागरसे मिलकर तथा मांसभक्षी पशु पक्षी और राक्षसोंसे सेवित होकर अत्यन्त ही भयङ्करी होकर कादर पुरुषोंके भयको बढाने लगी ॥ (१७४—१७८)

महाराज ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर भीमसेन, धृष्टद्युम्न और बहुतेरे राक्षसोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करके हिडम्बापुत्र घटोत्कचको अपने तेज बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ इसी प्रकार महाबल युद्धविद्या ज्ञाता अश्वत्थामाने भीमसेन आदि वीरोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके पाञ्चालराज द्रुपदके पुत्र सुरथका वध किया ॥ तिसके अनन्तर उन्होंने सुरथके भ्राता शत्रुञ्जय, बलानीक, जयानीक और जयाश्वको यमपुरीमें भेज दिया,

जघान स वृषध्रं च चन्द्रसेनं च मारिष।
कुन्तिभोजसुतांश्चाऽसौ दशभिर्दश जघ्निवान्॥१८३॥
अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः सन्धायोग्रमजिह्मगम्।
मुमोचाऽऽकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ॥ १८४ ॥
यमदंडोपमं घोरमुद्दिश्याऽऽशु घटोत्कचम्।
स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः ॥ १८५ ॥
विवेश वसुधां शीघ्रं सपुङ्खः पृथिवीपते।
तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ १८६ ॥
द्रौणेः सकाशाद्राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम्।
ततः पराङ्मुखनृपं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ॥ १८७ ॥
पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह।
पूजितः सर्वभूतेषु तव पुत्रैश्च भारत ॥ १८८ ॥
अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहैर्हतपतितैः क्षणदाचरैः समन्तात्।
निधनमुपगतैर्मही कृताऽभूद्गिरिशिखरैरिव दुर्गमाऽतिरौद्रा ॥ १८९ ॥

उस ही समय उन्होंने सुवर्ण पुंखवाले अत्यन्त चोखे तीन बाणोंसे राजाओंमें श्रेष्ठ श्रुताह्वय और महाबली हेममाली का वध करके पृथ्वीमें गिराया॥ फिर सिंहनाद करके अपने तेज बाणोंसे वृषध्र और महामानी चन्द्रका शिर काट कर दश बाणोंसे कुन्तिभोज राजाके दस पुत्रोंका वध किया॥ (१७९–१८३)

तिसके अनन्तर अश्वत्थामा अत्यन्त क्रुद्ध हुए और एक यमदण्डके समान भयङ्कर बाण धनुष पर चढा कर धनुषको कर्ण पर्यंत खींचकर घटोत्कचकी ओर चलाया॥ वह भयङ्कर बाण अश्वत्थामाके धनुषसे छूटकर घटोत्कचके हृदयको भेद करके वेगपूर्वक पृथ्वीमें घुस गया। उस भयङ्कर बाणकी चोटसे घटोत्कच पृथ्वीमें गिर पडा; महारथी धृष्टद्युम्न घटोत्कच को मरा हुआ समझके शीघ्रताके सहित रथ हांक कर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके समीपसे भाग गये। (१८४–१८७)

इसी भांति जब सम्पूर्ण महारथी योद्धा युद्धभूमिसे भाग गये तब महावीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा सेनापतिसे रहित युधिष्ठिरकी सम्पूर्ण सेनाको पराजित करके सिंहनाद करने लगे। उस समय तुम्हारे पुत्रोंके सहित सम्पूर्ण प्राणी अश्वत्थामाकी प्रशंसा करने लगे॥ महाराज! उस समय पर्वतके शिखर समान रूपवाले बहुतेरे राक्षस लोग जो अश्वत्थामाके सैकडों बाणोंसे मरे अध-

तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसङ्घा नागाः सुपर्णाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणिमपूजयन्नप्सरसः सुराश्च ॥ १९० ॥ [६९४०]

इति श्रीमहाभारते०द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

सञ्जय उवाच— द्रुपदस्याऽऽत्मजान्दृष्ट्वा कुन्तिभोजसुतांस्तथा ।
द्रोणपुत्रेण निहतान्राक्षसांश्च सहस्रशः ॥ १ ॥
युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥ २ ॥
सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ।
महता शरवर्षेण च्छादयामास भारत ॥ ३ ॥
ततः समभवद्युद्धमतीव भयवर्धनम् ।
त्वदीयानां परेषां च घोरं विजयकांक्षिणाम् ॥ ४ ॥
तं दृष्ट्वा समुपायान्तं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
दशभिः सात्वतस्याऽर्थे भीमो विव्याध सायकैः॥ ५॥
सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत ।
सात्वतस्त्वभिसंक्रुद्धः पुत्राधिभिराभिप्लुतम् ॥ ६ ॥

मरे और कटेहुए शरीरसे रणभूमिके बीच चारों ओर पडे थे उससे वह रणभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर बोध होती थी ॥ इस अद्भुत कर्मको देखकर देवता, पितर, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, भूत, पिशाच, पक्षी और सर्प आदि सम्पूर्ण प्राणी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी प्रशंसा करने लगे ॥ (१८७—१९०)

द्रोणपर्वमें एकसौ छप्पन अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ सतावन अध्याय ।

सञ्जय बोले महाराज ! धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और धृष्टद्युम्न, इन कई वीरोंने द्रुपद और कुन्तिभोज राजाके पुत्रों और अनगिनत राक्षसोंको द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे मरते देख सावधान होकर युद्ध करना आरम्भ किया ॥ परन्तु सोमदत्त सात्यकिको युद्धभूमि में देखकर फिर क्रोधपूर्वक अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपाने लगे ॥ अनन्तर तुम्हारी और पाण्डवों की सेनाके शूरवीरोंका आपसमें अत्यन्त भयङ्कर संग्राम होने लगा । (१-४)

उसी समय भीमसेनने सोमदत्त को सात्यकिकी ओर आते देख सात्यकि की सहायता की इच्छासे शिलापर घिसे हुए दश बाणोंसे सोमदत्तको विद्ध किया ॥ सोमदत्तनेभी पराक्रमी भीमसेनको एक सौ बाणोंसे विद्ध किया । अनन्तर

वृद्धं वृद्धगुणैर्युक्तं ययातिमिव नाहुषम् ।
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातनैः ॥ ७ ॥
शक्त्या चैनं विनिर्भिद्य पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ॥ ८ ॥
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि ।
सात्वतोऽप्यग्निसङ्काशं मुमोच शरमुत्तमम् ॥ ९ ॥
सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि ।
युगपत्पेततुर्वीर घोरौ परिघमार्गणौ ॥ १० ॥
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः ।
व्यामोहिते तु तनये बाह्लीकस्तमुपाद्रवत् ॥ ११ ॥
विसृजच्छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः ।
भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे बाह्लीकं नवभिः शरैः ॥१२॥
प्रपीडयन्महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि ।
प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि ॥ १३ ॥
निचखान महाबाहुः पुरन्दर इवाऽशनिम् ।

सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नहुषपुत्र ययातिके समान गुणयुक्त, पुत्र शोकसे दुःखी बूढे सोमदत्तको अत्यन्त चोखे दश तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया॥ ५-७

तिसके अनन्तर सात्यकिने एक शक्तिसे सोमदत्तके शरीरको भेद करके फिर उन्हें सात बाणोंसे विद्ध किया। उस ही समय भीमसेनने सात्यकिकी सहायता करनेकी अभिलाषासे एक भयङ्कर परिघ चला कर सोमदत्तके सिरमें प्रहार किया ॥ तब सात्यकिने भी अग्नितुल्य एक तीक्ष्ण बाण सोमदत्तकी छाती पर छोड दिया॥ महाराज ! उन दोनों वीरोंके चलाये हुए परिघ और बाण एक ही समय सोमदत्तके शरीरपर गिरनेसे वह उसी समय मूर्च्छित होकर रथमें बैठ गये। (८-११)

अपने पुत्र सोमदत्तको मूर्च्छित देख कर राजा बाह्लिक लगातार अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए सात्यकिकी ओर ऐसे दौडे जैसे बादल आकाशसे इकबारगी जलकी वर्षा करते हैं॥ भीमसेनने सात्यकिकी रक्षाके वास्ते रणभूमि में स्थित बाह्लिकको दृढताके सहित नव बाणोंसे विद्ध किया। तब महाबाहु प्रतीपनन्दन बाह्लिक अत्यन्त क्रुद्ध हुए और इन्द्र जैसे वज्र चलाते हैं, वैसे ही एक शक्ति ग्रहण करके भीमसेनके वक्षस्थलमें

स तथाऽभिहतो भीमश्चकम्पे च मुमोह च ॥ १४ ॥
प्राप्य चेतश्च बलवान्गदामस्मै ससर्ज ह।
सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्लीकस्य शिरोऽहरत् ॥ १५ ॥
स पपात हतः पृथ्व्यां वज्राहत इवाऽद्रिराट्।
तस्मिन्विनिहते वीरे बाह्लीके पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥
पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन्भीमं दश दाशरथेः समाः।
नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः ॥ १७ ॥
दृढः सुहस्तो विरजाः प्रमाथ्युग्रोऽनुयाय्यपि।
तान्दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृहे भारसाधनान् ॥ १८ ॥
एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु।
ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः ॥१९ ॥
चण्डवातप्रभग्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः।
नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान्निहत्य तथाऽऽत्मजान् ॥ २० ॥
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत्।
ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ॥ २१ ॥

प्रहार किया। (११-१४)

महाबली भीमसेन उस शक्तिके लगनेसे अत्यन्त पीडित होकर मूर्च्छित होगये; परन्तु फिर सावधान होकर भीमसेनने एक गदा ग्रहण करके बाह्लिककी ओर चलाया ॥ वह भयानक गदा भीमसेनके हाथसे छूटकर बाह्लिकके सिरपर गिरी और उस ही गदाकी चोटसे बाह्लिकका सिर टुकडे टुकडे होगया। राजा बाह्लिक उस ही समय प्राणरहित होकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिर पडे जैसे वज्रकी चोटसे पर्वत टुकडे टुकडे होके पृथ्वीपर गिर पडता है ॥ (१४-१६)

महाराज! जब पुरुषश्रेष्ठ महावीर बाह्लिक मारे गये तब दशरथपुत्रके समान पराक्रमी नागदत्त, दृढरथ, महाबाहु, अयोभुज, दृढ, सुहस्त, विरजा, प्रमाथी, उग्र और अनुयायी ये तुम्हारे दश पुत्र भीमसेनकी ओर दौडे, सम्मुख आते ही भीमसेनने तीन बाणोंसे एक एकके मर्मस्थलको विद्ध कर उन दशों वीरोंका वध किया ॥ तब तेरे दस पुत्र बडे वायुसे टूटकर पर्वतके ऊपरसे गिरने वाले वृक्षोंके समान अपने रथपरसे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ (१६—२०)

महाराज! इस प्रकार तेरे पुत्रोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर पराक्रमी भीमसेन अपने बाणोंसे कर्णके प्रिय पुत्र वृषसेनको

जघान भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद्बली ।
ततः सप्त रथान्वीरः स्यालानां तव भारत ॥ २२ ॥
निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत् ।
अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ॥ २३ ॥
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गवाक्षः शरभो विभुः ।
सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महारथाः ॥ २४ ॥
अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन् ।
स ताड्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवाऽचलः ॥ २५ ॥
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवाऽतिरथान्बली ।
तान्दृष्ट्वा निहतान्वीरान्विचेलुर्नृपसत्तमाः ॥ २६ ॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवाऽनीकमशातयत् ।
मिषतः कुम्भयोनेस्तु पुत्राणां तव चाऽनघ ॥ २७ ॥
अम्बष्ठान्मालवाञ्छूरांस्त्रिगर्तान्सशिबीनपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥
अभीषाहाञ्छूरसेनान्वाह्लीकान्सवसातिकान् ।

छिपाने लगे। उस ही समय कर्णके भाई वृकरथने अपने तीक्ष्ण नाराच बाणोंसे भीमसेनके शरीरमें प्रहार किया; महाबली भीमसेनने उसी समय उसे मार डाला। तिसके अनन्तर पाण्डुपुत्र भीमसेनने तुम्हारे सालोंके बीच सात रथियोंका वध करके शतचन्द्रको भी मार डाला ॥ (२०–२३)

गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त ये युद्धविद्यामें निपुण शकुनिके पराक्रमी महारथी पांच भ्राता शतचन्द्रका मरना न सहके क्रोधपूर्वक भीमसेनकी ओर दौडे; और अपने तीक्ष्ण बाणोंके समूहसे भीमसेनको पीडित करने लगे। जैसे बलवान् वृषभ जलकी वर्षासे पीडित होता है वैसे ही पराक्रमी भीमसेनने उन शूरवीर योद्धाओंके बाणोंकी चोटसे पीडित होकर पांच बाणोंसे उन पांच महारथियोंका वध किया। महाराज ! सम्पूर्ण राजा लोग उन शूरवीरोंको मरते देख भयभीत होगये ॥ (२३–२६)

उसी समय राजा युधिष्ठिर क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य और दुर्योधनके सम्मुखमें ही तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका नाश करने लगे। वह क्रुद्ध होकर अम्बष्ठ, मालव, त्रिगर्त्त और शिबिदेशीय योद्धाओंका वध करके उन्हें यमपुरीमें

निकृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २९ ॥
यौधेयान्मालवान्राजन्मद्रकाणां गणान्युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान्बाणैर्युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥
हताऽऽहरत गृह्णीत विध्यत व्यवकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ३१ ॥
सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत ॥ ३२ ॥
द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम् ।
विव्याध सोऽपि तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान् ॥ ३३ ॥
तस्मिन्विनिहते चाऽस्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे ।
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ॥ ३४ ॥
चिक्षेप परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ।
क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि तानि चाऽस्त्राणि धर्मजः ॥ ३५ ॥
जघानाऽस्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन् ।
सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः ॥ ३६ ॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत ।

भेजने लगे ॥ उस समय राजा युधिष्ठिरने अभीषाह, शूरसेन बाह्लिक और वसातिदेशीय वीरोंको अपने अस्त्रोंसे खण्ड खण्ड करके उनके रुधिरसे रणभूमिको पूरित कर दिया ॥ और यौधेय मालव और मद्रदेशीय शूरवीरोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे प्राण रहित करके यमलोकमें भेजा ॥ (२७-३०)

महाराज ! उस समय युधिष्ठिरके रथके निकट'पकडो, मारो, काटो !' इसी प्रकार महाघोर तुमुल शब्द सुनाई देने लगा ॥ परन्तु द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरको सेनाको तितर बितर करते देख दुर्योधनकी आज्ञासे अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें छिपाने लगे ॥ तिसके अनन्तर द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वायव्यास्त्र चलाया, युधिष्ठिरने उसे दिव्यास्त्रसे निवारण किया ॥ (३१-३३)

वायव्यास्त्रको निष्फल होते देख द्रोणाचार्यने कुपित होकर युधिष्ठिरके वधकी अभिलाषा करके वारुणास्त्र, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र और सावित्र इत्यादि बहुतसे दिव्य अस्त्रोंको प्रकट किया । महाराज ! भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके चलाये हुए दिव्य अस्त्रोंको महाबाहु धर्मपुत्र युधिष्ठिर निर्भयताके सहित अपने दिव्य

जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः ॥ ३७ ॥
पतिः कुरूणां गजसिंहगामी विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः ।
प्रादुश्चकाराऽस्त्रमहीनतेजा माहेन्द्रमन्यत्स जघान तेन ॥ ३८ ॥
विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः ।
युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥
ततो नाऽज्ञासिषं किञ्चिद्घोरेण तमसाऽऽवृते ।
सर्वभूतानि च परं त्रासं जग्मुर्महीपते ॥ ४० ॥
ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ४१ ॥
ततः सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ ।
द्रोणपार्थौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ॥ ४२ ॥
ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् ।
व्यधमत्क्रोधताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत ॥ ४३ ॥
ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन्भयात् ।

अस्त्रोंसे निवारण करने लगे । ३४-३६

तब तुम्हारे पुत्रके हितकी इच्छा करनेवाले द्रोणाचार्यने धर्मपुत्र युधिष्ठिर के वधकी इच्छा तथा अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेकी अभिलाषासे प्राजापत्य और ऐन्द्र अस्त्र प्रकट किया । मतवारे हाथी और सिंहके समान पराक्रमी, लाल नेत्रसे युक्त, महातेजस्वी युधिष्ठिर ने अत्यन्त प्रचण्ड माहेन्द्रास्त्र प्रकट करके द्रोणाचार्यके चलाये हुए उन दोनों दिव्य अस्त्रोंको निवारण किया ॥ इसी भांति जब बार बार सम्पूर्ण अस्त्र निष्फल होने लगे तब द्रोणाचार्यने महाकोप करके युधिष्ठिरके वधकी अभिलाषसे ब्रह्मास्त्र चलाया ॥ (३६–३९)

महाराज ! ब्रह्मास्त्र छूटने पर सम्पूर्ण दिशाओंमें इस प्रकार महाघोर अन्धकार हो गया, कि उस समयमें हमलोगोंको कुछ भी मालूम नहीं होता था और उस अस्त्रके तेजसे सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगये ॥ परन्तु कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्र चलाकर ही द्रोणाचार्यके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रको निवारण किया ॥ उससे सेनाके योद्धालोग सम्पूर्ण युद्धविद्या जाननेवाले धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी पुरुष श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरकी प्रशंसा करने लगे ॥ (४०–४२)

तिसके अनन्तर द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को त्याग के क्रोधपूर्वक वायव्यास्त्र चलाकर पाञ्चाल सेनाके योद्धाओंको

पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ४४ ॥
ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ।
महद्भ्यां रथवंशाभ्यां परिगृह्य बलं तदा ॥ ४५ ॥
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥ ४६ ॥
केकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ।
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः ॥ ४७ ॥
ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ।
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ॥ ४८ ॥
द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
नाऽशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा॥ ४९ ॥ ६९८९

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्रोणयुधिष्ठिरयुद्धे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

सञ्जय उवाच— उदीर्यमाणं तद् दृष्ट्वा पाण्डवानां महद्बलम् ।
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

विद्ध करने लगे ॥ पाञ्चाल योद्धा द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित होकर महात्मा भीमसेन और अर्जुनके सम्मुखमें ही रणभूमिसे भागने लगे ॥ अपनी ओरके योद्धाओंको भागते देख, पराक्रमी भीमसेन और किरीटमाली अर्जुन तुम्हारी सेनाके उत्तर और दक्षिण भागसे आक्रमण करके द्रोणाचार्यकी ओर दौडे और उनके ऊपर लगातार अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ (४३—४६)

उस ही समय महातेजस्वी पाञ्चाल, सृञ्जय और मत्स्यदेशीय सेनाके योद्धा लोग सात्यकिकी सेनाके योद्धाओंके सङ्ग मिलकर भीमसेन और अर्जुनके अनुगामी हुए ॥ कुरुसेनाके योद्धा लोग पहिलेसे ही निद्रा और अन्धकारसे व्याकुल थे, उसपर फिर अर्जुनके बाणोंसे पीडित होने लगे, अनन्तर कुरुसेनाके योद्धा छिन्न भिन्न होकर रणभूमिसे भागने लगे। उस समय उन योद्धाओंको द्रोणाचार्य और राजा दुर्योधन स्वयं भागनेसे निषेध करने लगे परन्तु किसी भांतिसे भी उन योद्धाओंको लौटानेमें समर्थ न हुए ॥ (४७—४९) [६९८९]

द्रोणपर्वमें एकसौ सतावन अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ अठावन अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! कुरुराज दुर्योधन पाण्डवोंकी महासेनाको वेगपूर्वक

अयं स काल सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान्योधान्महारथान् ॥ २ ॥
पञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृतान्समन्तात्संक्रुद्धैर्निःश्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ३ ॥
एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां रथव्रजाः ॥ ४ ॥

कर्ण उवाच— परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरन्दरः ।
तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥ ५ ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत ।
हन्तास्मि पाण्डुतनयान्पञ्चालांश्च समागतान् ॥ ६ ॥
जयं ते प्रतिदास्यामि वासवस्येव पावकिः ।
प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव ॥ ७ ॥
सर्वेषामेव पार्थानां फाल्गुनो बलवत्तरः ।

बढी आती देख तथा पाण्डवोंकी सेना-के पुरुषोंको निवारण करनेमें असमर्थ होकर कर्णसे बोले,हे मित्रवत्सल कर्ण ! मनुष्य जिस कार्यके वास्ते मित्रकी इच्छा करते हैं इस समय मित्रोंके मित्रता दि-खानेका यही समय उपस्थित हुआ है । यह देखो मेरी ओरके महारथी योद्धा लोग बार बार लम्बी सांस छोडनेवाले क्रोधी सर्पके समान पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और पाण्डवोंकी सेनाके महारथ योद्धाओंके बीचमें घिर गये हैं इससे तुम उन लोगोंको इस विपतसे उबारो ॥ ये सम्पूर्ण इन्द्रके समान पराक्रमी बहुतेरे पाञ्चालदेशीय रथी योद्धा और जयकी अभिलाष करनेवाले पाण्डव लोग अत्यन्त ही हर्षपूर्वक सिंहनाद कर रहे हैं॥ १-४

दुर्योधनके वचनको सुनकर कर्ण बोले, महाराज ! पृथापुत्र अर्जुनकी स-हायता करनेके वास्ते यदि इन्द्र स्वयं आके युद्धभूमिमें उपस्थित होंगे, तो मैं उन्हें भी पराजित करके अर्जुनका वध करूंगा । हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हारे निकट सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि इस रणभूमि में इकट्ठे हुए पाण्डव और पञ्चालसेनाके योद्धाओंका नाश करूंगा, इससे तुम धीरज धरो ॥ हे राजन् ! जैसे अग्निसे उत्पन्न हुए स्वामिकार्तिकने इन्द्रकी विजयके वास्ते प्रतिज्ञा किया था, वैसे ही मैं भी तुम्हारी विजयके निमित्त प्र-तिज्ञा करता हूं । अधिक क्या कहूं, मैं तुम्हारे प्रिय कार्यको पूर्ण करनेहीके वास्ते अब तक जीवित हूं ॥ (५-७)

तस्याऽमोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम् ॥ ८ ॥
तस्मिन्हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद ।
तव वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः ॥ ९ ॥
मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथाः क्वचित् ।
अहं जेष्यामि समरे सहितान्सर्वपाण्डवान् ॥ १० ॥
पञ्चालान्केकयांश्चैव वृष्णींश्चाऽपि समागतान् ।
बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ११ ॥
सञ्जय उवाच— एवं ब्रुवाणं कर्णं तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥ १२ ॥
शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः ।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति ॥ १३ ॥
बहुशः कत्थसे कर्ण कौरवस्य समीपतः ।
न तु ते विक्रमः कश्चिद् दृश्यते फलमेव वा ॥ १४ ॥
समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि ।

हे मानप्रद ! देखिये कुन्तीपुत्रोंके बीच अर्जुन ही सबसे अधिक पराक्रमी है । इससे मैं इन्द्रकी अमोघशक्ति उसी के ऊपर छोड़ूंगा । क्योंकि धनुर्धारियों में अग्रणी अर्जुनके मारे जाने पर उसके भ्राता लोग या तो तुम्हारे वशमें ही जावेंगे अथवा फिर वनवासी होंगे । मेरे जीवित रहते आप दुखी न होइये मैं अवश्य ही युद्धभूमिमें सम्पूर्ण सेना के सहित इकट्ठे हुए पाण्डवोंको पराजित करूंगा; और पाञ्चाल, केकय तथा वृष्णिवंशियोंको अपने बाणोंसे खण्ड खण्ड करके यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हें प्रदान करूंगा ॥ (८—११)

सञ्जय बोले महाराज ! सूतपुत्र कर्णने जब ऐसे वचन कहे तब शरद्वत-पुत्र महाबाहु कृपाचार्य मानों कर्णकी अवज्ञा करते हुए यह वचन बोले, हे कर्ण ! वाह वाः क्या कहना है यदि वचनसे ही कार्य सिद्ध होजावे तो अकेले तुम्हारी सहायतासे ही कुरुराज दुर्योधन सहाय सम्पन्न हुए हैं इस में सन्देह नहीं है । तुम सदा ही कुरुराज दुर्योधनके समीप इसी भांति अपनी बढाई किया करते हो; परन्तु किसी समय भी तुम्हारा वैसा पराक्रम या वचन के अनुसार कोई फल नहीं दीख पडते ॥ (१२—१४)

हे सूतपुत्र ! रणभूमिमें पाण्डुपुत्रोंके सङ्ग तुम्हारा कई वार युद्ध हुआ है परन्तु

सर्वत्र निर्जितश्चाऽसि पाण्डवैः सूतनन्दन ॥ १५ ॥
ह्रियमाणे तदा कर्ण गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे ।
तदाऽयुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकोऽग्रेऽपलायिथाः ॥१६॥
विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः ।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः ॥ १७ ॥
एकस्याऽप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य रणाजिरे ।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान्सर्वपाण्डवान् ॥ १८ ॥
अब्रुवन्कर्ण युध्यस्व कत्थसे बहु सूतज ।
अनुक्त्वा विक्रमेद्यस्तु तद्वै सत्पुरुषव्रतम् ॥ १९ ॥
गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाऽजलम् ।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते ॥ २० ॥
तावद्गर्जस्व राधेय यावत्पार्थं न पश्यसि ।
आरात्पार्थं हि ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं पुनः ॥ २१ ॥
त्वमनासाद्य तान्बाणान्फाल्गुनस्य विगर्जसि ।
पार्थसायकविद्धस्य दुर्लभं गर्जितं तव ॥ २२ ॥

तुम ही हर एक युद्ध में पराजित हुए हो ॥ हे कर्ण! जिस समय धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनको गन्धर्वोंने हरण किया था उस समय सम्पूर्ण सेनाके पुरुष युद्ध कर रहे थे तौभी तुम सबसे पहिले ही रणभूमिसे भागे थे ॥ इसके अतिरिक्त विराटनगरमें सम्पूर्ण सेनाके सहित इकट्ठे हुए कौरव लोग और अपने भाईयोंके सहित तुम भी अर्जुनके सम्मुखसे पराजित हुए थे ॥ युद्धभूमि में जब तुम अकेले अर्जुनसे ही युद्ध करनेमें असमर्थ हो तब कृष्णके सहित इकट्ठे हुए सम्पूर्ण सेनासमेत पाण्डवोंको पराजित करने के निमित्त कैसे उत्साह कर रहे हो ? (१५—१८)

हे सूतपुत्र ! तुम बार बार अपनी बढाई करते हो परन्तु, जो मनुष्य कुछ भी न कहके केवल समय पर पराक्रम प्रकाशित करते हैं उनके वही कार्य सत्पुरुषोंके योग्य व्रत कहके गिने जाते हैं इससे तुम वागाडम्बर त्यागके युद्ध करो ॥ हे सूतपुत्र! तुम जलरहित शरद् कालके बादलकी भांति वृथा गर्जन करके जनसमाज के बीच हास्यास्पद हो रहे हो, परन्तु राजा दुर्योधन इस बातको नहीं समझते हैं ॥ हे कर्ण! जो हो, तुम जबतक अर्जुनको नहीं देखते हो तभीतक गर्जना कर लो; क्योंकि

बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः।
धनुषा फाल्गुनः शूरः कर्णः शूरो मनोरथैः ॥ २३ ॥
तोषितो येन रुद्रोऽपि कः पार्थं प्रतिघातयेत्।
एवं संरुषितस्तेन तदा शारद्वतेन ह ॥ २४ ॥
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाऽब्रवीत्।
शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २५ ॥
फलं चाऽऽशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृताविव।
दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि ॥ २६ ॥
तत्तद्विकत्थमानानां भारं चोद्वहतां मृधे।
यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ॥ २७ ॥
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते।
व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ॥ २८ ॥
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सकृष्णान्सहसात्वतान्।
गर्जामि यद्यहं विप्र तव किं तत्र नश्यति ॥ २९ ॥

अर्जुनको समीपमें देखकर ऐसा गर्जना दुर्लभ हो जावेगा ॥ (१९—२१)

जबतक तुम्हारा अर्जुन के बाणोंके संग सामना नहीं होता है तभीतक ऐसा गर्जना सुन पडता है अर्जुन के बाणोंसे विद्ध होने पर ऐसा गर्जना दुर्लभ हो जावेगा ॥ क्षत्रिय पुरुष अपने भुजाके बल, ब्राह्मण वाक्यबल और अर्जुन अपने धनुषके बलसे शूरवीर कहके विख्यात हैं, परन्तु कर्ण केवल एक मात्र मनोरथसे ही शूरवीर बनते हैं ॥ अरे! जिस अर्जुनने साक्षात् भगवान् रुद्रको अपने पराक्रमसे संतुष्ट किया था, उस अर्जुनको मारनेमें कौन समर्थ है? (२२—२४)

महाराज! योद्धाओं में श्रेष्ठ कर्णने शरद्वत पुत्र कृपाचार्यके ऐसे अवज्ञासूचक वचनोंको सुनके अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें यह उत्तर दिया ॥ शूरवीर पुरुष जैसे वर्षाकालके जलयुक्त बादलों की भांति गर्जते हैं, वैसे ही यथा उचित समय में रोपित हुए बीजकी भांति शीघ्र ही फल भी प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त युद्धभूमिके बीच शूरवीर पुरुष वचनसे पराक्रम प्रकाशित कर जैसा भार उठानेका उत्साह करते हैं, अवश्य ही दैव उस विषयमें उनकी सहायता करता है। (२४-२८)

हे विप्र! मैं भी यदि इस युद्धका भार उठाकर युद्धभूमि के बीच कृष्ण

वृथा शूरा न गर्जन्ति शारदा इव तोयदाः ।
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः ॥३०॥
सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्णपाण्डवौ ।
उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम ॥ ३१ ॥
पश्य त्वं गर्जितस्यास्य फलं मे विप्र सानुगान् ।
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सहकृष्णान्ससात्वतान् ॥३२॥
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम् ।
कृप उवाच— मनोरथप्रलापा मे न ग्राह्यास्तव सूतज ॥ ३३ ॥
सदा क्षिपासि वै कृष्णौ धर्मराजं च पाण्डवम् ।
ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥ ३४ ॥
देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगरक्षसाम् ।
दंशितानामपि रणे अजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३५ ॥
ब्रह्मण्यः सत्यवाग्दान्तो गुरुदैवतपूजकः ।

और सम्पूर्ण सेनाके सहित पाण्डवों को पराजित करने तथा उनके नाश करनेके वास्ते उत्साही होकर गर्जन करता हूं, तो उसमें तुम्हारी कौनसी नुकसानी है ? और तुम यह भी समझ रक्खो कि बुद्धिमान् शूरवीर पुरुष कभी भी शरद्कालके बादलकी भांति वृथा गर्जन नहीं करते; वह अपनी सामर्थ का विचार कर के ही गर्जना किया करते हैं ॥ (२८–३०)

हे कृपाचार्य ! इससे मैं आज यत्नपरायण कृष्णकी सहायतासे युक्त अर्जुन को पराजित करूंगा, ऐसा ही निश्चय करके उत्साह पूर्वक गर्ज रहा हूं ॥ हे विप्र ! इस समय तुम मेरे गर्जने का फल प्रत्यक्ष देखो; आज मैं युद्धभूमिमें अनुयाइयोंके सहित तथा कृष्णकी सहायतासे युक्त पाण्डु पुत्रोंको मारकर राजा दुर्योधनको निष्कण्टक पृथ्वीका राज्य प्रदान करूंगा । (३१–३२)

महाराज ! कर्णके ऐसे अभिमानयुक्त वचनोंको सुनकर कृपाचार्य बोले, हे सूतपुत्र ! तुम जो धर्मराज युधिष्ठिर और कृष्ण अर्जुनको पराजित करनेकी इच्छा करते हो, उस तुम्हारे व्यर्थ मनोरथ तथा प्रलापयुक्त वचनों को मैं नहीं मान सकता । तुम इस बातको अपने चित्तमें भली भांतिसे जान रक्खो कि युद्धभूमिमें इकठ्ठे हुए देवता यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, सर्प और राक्षसोंसे भी अजेय सम्पूर्ण युद्धविद्या जाननेवाले कृष्ण अर्जुन जिस सेनामें स्थित हैं उसी ओरकी जय होगी । (३३—३५)

नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ॥ ३६ ॥
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भ्रातरश्चास्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ॥ ३७ ॥
गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः ।
सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ॥ ३८ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः ।
चन्द्रसेनो रुद्रसेनो कीर्तिधर्मा ध्रुवोऽधरः ॥ ३९ ॥
वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः ।
द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ॥ ४० ॥
येषामर्थाय संयत्तो मत्स्यराजः सहानुजः ।
शतानीकः सूर्यदत्तः श्रुतानीकः श्रुतध्वजः ॥ ४१ ॥
बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः ।
चन्द्रोदयः समरथो विराटभ्रातरः शुभाः ॥ ४२ ॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥ ४३ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो गणाः पाण्डुसुतस्य वै ।

विशेष करके धर्मपुत्र युधिष्ठिर ब्राह्मणोंमें निष्ठावान्, सत्यवादी, जितेन्द्रिय गुरु और देवताओंकी पूजा करनेवाला, सदा ही धर्मके कार्योंमें रत, कृतास्त्र, बुद्धिमान् और कृतज्ञ है, उसके सहोदर भाई भी कृतास्त्र, बलवान्, यशस्वी, गुरुकी आज्ञामें चलने वाले, बुद्धिमान् और धर्मात्मा हैं। (३६—३८)

इसके अतिरिक्त उन लोगोंके सम्बन्धी महा अस्त्रोंके जाननेवाले राजा द्रुपद तथा उनके पुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डि, द्रौर्मुखि, जनमेजय, चन्द्रसेन, भद्रसेन, कीर्तिवर्मा, ध्रुव, अधर, वसुचन्द्र, दामचन्द्र, सिंहचन्द्र और सुतेजन, ये सम्पूर्ण वीर इन्द्रके समान पराक्रमी शस्त्र चलानेमें निपुण और युधिष्ठिर के अनुरक्त हैं। (३८—४०)

इसके अतिरिक्त शतानीक, सूर्यदत्त, श्रुतानीक, श्रुतध्वज, बलानीक, जयानीक, जयाश्व, रथवाहन, चन्द्रोदय, और समरथ, इन सम्पूर्ण कृतविद्य भाईयोंकी सहायतासे युक्त मत्स्यराज विराट जिसकी प्रयोजनसिद्धिके वास्ते यत्नवान् होकर रणभूमिमें स्थित हैं; और पराक्रमी नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पांचों पुत्र, घटोत्कच तथा इनके अतिरिक्त और

कामं खलु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४४ ॥
सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगद्विपम् ।
निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वाते भीमफाल्गुनौ ॥ ४५ ॥
युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद्घोरचक्षुषा ।
अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ॥ ४६ ॥
कथं तान्संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान् ।
महानपनयस्त्वेष नित्यं हि तव सूतज ॥ ४७ ॥
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह ।
सञ्जय उवाच— एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन्भरतर्षभ ॥ ४८ ॥
अब्रवीच तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम् ।
सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन्पाण्डवान्प्रति यद्वचः ॥ ४९ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै ।
अजय्याश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ॥ ५० ॥
स दैत्ययक्षगन्धर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः ।

भी बहुतेरे आत्मीय सुहृद् पुरुष जिसके वास्ते युद्ध कर रहे हैं उनका किसी प्रकार से भी नाश नहीं हो सकता । ४१-४४

अधिक क्या कहूं; देवता, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, भूत, हाथी और सर्प आदि प्राणियोंसे युक्त इस सम्पूर्ण संसारको अकेले भीमसेन और अर्जुन अपने भुजबलके प्रभावसे नष्ट कर सकते हैं ॥ और राजा युधिष्ठिर भी अपनी कोप दृष्टिसे इस सम्पूर्ण जगत्को जलाने में समर्थ हैं । हे कर्ण ! चाहे जो हो, अत्यन्त बली यदुकुल शिरोमणि कृष्ण जिस अर्जुनकी रक्षाके वास्ते सज्जित होकर रणभूमिमें स्थित हैं तुम वैसे पराक्रमी शत्रुको युद्धभूमिमें पराजित करने के वास्ते कैसे उत्साह कर रहे हो ? हे कर्ण ! तुम जो सदा सर्वदा कृष्ण और अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेका उत्साह किया करते हो वह तुम्हारे वास्ते महा अनर्थ का विषय मालूम होरहा है । ४४-४८

सञ्जय बोले, महाराज ! राधापुत्र कर्णने गुरु शारद्वत कृपाचार्यके ऐसे वचनोंको सुन हंसकर उत्तर दिया । हे ब्राह्मण ! पाण्डवोंके विषयमें तुमने जो कुछ वचन कहे, वह सम्पूर्ण सत्य हैं; ऐसा क्या, वे लोग तुम्हारे कहे हुए वचनोंके अतिरिक्त और अनेक गुणोंसे युक्त हैं । यद्यपि पृथापुत्र यक्ष गन्धर्व पिशाच सर्प राक्षस असुर और देवतोंके सहित इन्द्रसे भी अजेय हैं; तो भी मैं

तथापि पार्थञ्जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया ॥ ५१ ॥
मम ह्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज ।
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥ ५२ ॥
हते तु पाण्डवे कृष्णे भ्रातरश्चाऽस्य सोदराः ।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन ॥ ५३ ॥
तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयं ससागरा ।
अयत्नात्कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥ ५४ ॥
सुनीतैरिह सर्वार्थाः सिध्यन्ते नाऽत्र संशयः ।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥ ५५ ॥
त्वं तु विप्रश्च वृद्धश्च अशक्तश्चाऽपि संयुगे ।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ५६ ॥
यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाऽप्रियमिह द्विज ।
ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥ ५७ ॥
यच्चापि पाण्डवान्विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे ।
भीषयन्सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥ ५८ ॥

उन लोगोंको इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिसे रणभूमिमें पराजित करूंगा, हे विप्र ! मैं इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिसे अवश्य ही रणभूमिके बीच अर्जुनका वध करूंगा ॥ (४८—५२)

पाण्डुपुत्र अर्जुनके मरने पर उसके सहोदर भाई और श्रीकृष्ण किसी प्रकार से भी अर्जुन रहित पृथ्वी को भोगने में समर्थ न होसकेंगे ॥ हे गोतमपुत्र ! यदि कृष्ण और पाण्डवलोग इसी भांतिसे नष्ट होजावें तो बिना यत्नके ही यह सम्पूर्ण पृथ्वी कुरुराज दुर्योधनके वशमें होजावेगी ॥ देखो इस संसारमें सुनीतिके अवलम्बसे समस्त कार्योंकी सिद्धि होती है इसमें कुछ सन्देह नहीं है, मैं [illegible] विषयको जान कर ही गर्ज रहा हूं ॥ (५३–५५)

परन्तु तुम एक तो ब्राह्मण, उस पर भी बूढे, युद्ध करनेमें असमर्थ हो और पाण्डवोंके ऊपर प्रीति भी करते हो । इससे उस ही अज्ञानताके कारण तुम मुझे इस भांतिसे अवमानित कर रहे हो ॥ हे दुष्टबुद्धिवाले ब्राह्मण ! यदि फिर कभी मेरे समीप ऐसे अप्रिय वचनोंका प्रयोग करोगे, तो मैं अपनी इस तलवारसे तुम्हारी जीभ काट लूंगा ॥ हे नीच बुद्धिवाले ब्राह्मण ! तुम जो इस सम्पूर्ण कुरुसेनाको भय भीत करके

अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद् ब्रुवतो द्विज ।
दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ॥ ५९ ॥
दुःशासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च ।
सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः ॥ ६० ॥
तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः ।
जयेदेतान्नरः को नु शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः ॥ ६१ ॥
शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः ।
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि ॥ ६२ ॥
एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः ।
जयमाकांक्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः ॥ ६३ ॥
दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि ।
यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः ॥ ६४ ॥
विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लिकोऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसन्धः सुदक्षिणः ॥ ६५ ॥

पाण्डवोंकी स्तुति कर रहे हो, उस विषयमें भी मैं जो कुछ वचन कहता हूं उसे सुनो । (५६–५९)

तुम, कुरुराज दुर्योधन, द्रोणाचार्य, शकुनि, दुर्मुख, जय, दुःशासन, वृषसेन, मद्रराज शल्य, सोमदत्त, भूरि, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और विविंशति; ये सब युद्धविद्या जाननेवाले शूरवीर जिस स्थान पर इकट्ठे होकर व्यूहबद्ध सेनाके सहित रणभूमिमें स्थित रहें; उस स्थल पर शत्रुओंकी ओर इन्द्रके समान पराक्रमी पुरुष भी आवे तो क्या उसकी विजय हो सकेगी ? ये सब कोई शूर कृतास्त्र बलवान् धर्मात्मा और युद्ध करनेमें अत्यन्त निपुण हैं; ऐसा क्या यदि ये सबकोई मिल कर स्वर्गलोकके राज्य लेनेकी अभिलाषासे युद्ध करें तो सम्पूर्ण देवतोंके सहित इन्द्रको भी पराजित कर सकते हैं ॥ (५९–६२)

इससे ये सम्पूर्ण शूरवीर पुरुष व्यूहबद्ध कुरुसेनाके सहित दुर्योधनके विजय और पाण्डवोंके वधकी इच्छासे रणभूमिके बीच स्थित रहेंगे । परन्तु जिस स्थलमें महाबाहु भीष्म पितामह सौ सौ बाणोंके छिदे हुए शरीरसे युक्त होकर शरशय्या पर शयन कर रहे हैं, उस स्थान पर महाबलवान् होने पर भी मेरे विचारमें उनका विजय लाभ दैवके आधीन है ॥ हे अधम पुरुष ! युद्ध भूमिमें विकर्ण, चित्रसेन, बाह्लिक, जयद्रथ, भूरिश्रवा,

शल्यश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
एते चाऽन्ये च राजानो देवैरपि सुदुर्जयाः ॥ ६६ ॥
निहताः समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम ॥ ६७ ॥
यांश्च तांस्तौषि सततं दुर्योधनरिपून्द्विज ।
तेषामपि हताः शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६८ ॥
क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह ।
प्रभावं नाऽत्र पश्यामि पाण्डवानां कथञ्चन ॥ ६९ ॥
यस्तान्बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम ।
यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैः सह संयुगे ।
दुर्योधनहितार्थाय जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ ७० ॥ [७०५९]

इति श्रीमहाभारते० घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृपकर्णवाक्येऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

सञ्जय उवाच— तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम् ।
खङ्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद् द्रुतम् ॥ १ ॥
ततः परमसंक्रुद्धः सिंहो मत्तमिव द्विपम् ।

जय, जलसन्ध, सुदक्षिण, रथियोंमें मुख्य शल और पराक्रमी भगदत्त आदि महारथी और दूसरे भी बहुतसे महाबलवान् देवतोंसे भी अपराजित अनगिनत शूरवीर राजा लोग जब पाण्डवोंके हाथसे मारे गये तब दैवकी प्रतिकूलताके अतिरिक्त और तुम क्या समझ रहे हो? (६३–६७)

हे विप्र! तुम जो दुर्योधनके शत्रुओंकी सदा स्तुति करते रहते हो, इस समय देखो उन लोगोंके भी सैकडों तथा सहस्रों महाबलवान् शूरवीर मारे गये हैं॥ इससे पाण्डवोंकी ओरके शूरवीरोंके द्वारा जो अनगिनत कुरुसेनाके वीरोंका नाश हो रहा है उसमें मुझे पाण्डुपुत्रोंका कुछ भी प्रभाव नहीं दीख पडता है॥ चाहे जो हो, हे अधम ब्राह्मण! तुम जिन लोगोंको सदा सर्वदा बलवान् समझते रहते हो, मैं दुर्योधनके हितकी अभिलाषसे रणभूमिके बीच उन्हीं पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करनेमें अपनी शक्तिके अनुसार यत्न करूंगा; तब विजय होनी दैवके आधीन है॥ (६८–७०) [७०५९]

द्रोणपर्वमें एकसौ अठावन अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ उनसठ अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने मामा कृपाचार्यको कर्णके वचनोंसे अवमानित होते देख मियानसे

प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्ययात् ॥ २ ॥
अश्वत्थामोवाच- यदर्जुनगुणांस्तथ्यान्कीर्तयानं नराधम ।
शूरं द्वेषात्सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम् ॥ ३ ॥
विकत्थमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम् ।
दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कश्चिद्गणयन्मृधे ॥ ४ ॥
क्व ते वीर्यं क्व चाऽस्त्राणि यं त्वां निर्जित्य संयुगे ।
गाण्डीवधन्वा हतवान्प्रेक्षतस्ते जयद्रथम् ॥ ५ ॥
येन साक्षान्महादेवो योधितः समरे पुरा ।
तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः ॥ ६ ॥
यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥ ७ ॥
लोकैकवीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे ।
किं पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ ८ ॥

तलवार खींचकर कुरुराज दुर्योधनके सम्मुखमें ही इस प्रकार वेगपूर्वक कर्णकी ओर दौडे जैसे क्रोधी सिंह मतवारे हाथीकी ओर दौडता है ॥ (१-२)

अनन्तर सम्पूर्ण राजाओंके सम्मुखमें ही अश्वत्थामा इस प्रकारके वचन कहने लगे । अरे नीचबुद्धिवाले अधम पुरुष ! मेरे शूर मामाने अर्जुनके यथार्थ गुणोंका वर्णन किया है, तौ भी तू द्वेषसे युक्त होकर उनकी निन्दा कर रहा है ॥ तुम इस शूरता और अभिमानसे मतवारे होकर किसी की कुछ भी पर्वाह न करके इन सम्पूर्ण धनुर्धारियोंके सम्मुखमें ही अपनी बडाई कर रहे हो; परन्तु गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्जुनने जब तुम्हें पराजित करके रणभूमिमें तुम्हारे सम्मुखमें ही जयद्रथका वध किया था उस समय तुम्हारा पराक्रम और अस्त्रोंका बल कहां गया था ? (३-५)

अरे सूतकुलकलङ्क ! पहिले जिस अर्जुनने महादेवके संग युद्ध किया था; उस अर्जुनको जो तुम जीतनेकी अभिलाषा करते हो वह तुम्हारे मनकी व्यर्थ कल्पना मात्र है ॥ रे नीचबुद्धि सूत ! जब कि सम्पूर्ण असुर और इन्द्र आदि देवता लोग भी इकट्ठे होकर सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृष्णकी सहायतासे युक्त अर्जुनको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं तब तुम क्या जगत्के सम्पूर्ण प्राणियोंसे अजेय अद्वितीय वीर अर्जुनको इन सम्पूर्ण राजाओंके सङ्ग मिलकर जीत सकते हो ? अरे नीचबुद्धिवाले कर्ण !

कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम ।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते ॥ ९ ॥

सञ्जय उवाच— तमुद्यतं तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
न्यवारयन्महातेजाः कृपश्च द्विपदां वरः ॥ १० ॥

कर्ण उवाच— शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः ।
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम ॥ ११ ॥

अश्वत्थामोवाच— तवैतत्क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥ १२ ॥

दुर्योधन उवाच— अश्वत्थामन्प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद ।
कोपः खलु न कर्तव्यः सूतपुत्रं कथञ्चन ॥ १३ ॥
त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजेऽथ सौबले ।
महत्कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसत्तम ॥ १४ ॥
एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः ।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥

इस समय खड़ा रह, यह देखो मैं तुम्हारा सिर इसी क्षण शरीरसे पृथक् किये देता हूं ॥ (६–९)

सञ्जय बोले, महाराज ! अश्वत्थामा ऐसा कहकर वेगपूर्वक कर्णकी ओर दौड़े । अश्वत्थामाको कर्णकी ओर दौड़ते देख, बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य और राजा दुर्योधनने उन्हें निवारण किया ॥ उसे देखकर कर्ण कुरुराज दुर्योधनसे बोले, हे कुरुसत्तम ! शूर और युद्धमें प्रशंसित यह अधम ब्राह्मण आके मेरे पराक्रमको मालूम करे, आप उसे न रोकिये । तब अश्वत्थामा बोले, रे नीचबुद्धिवाले सूतपुत्र ! मैंने तेरा यह अपराध क्षमा किया परन्तु अर्जुन तुम्हारे इस बढ़े हुए अभिमानका नाश करेंगे ॥ (१०–१२)

महाराज ! राजा दुर्योधन उन दोनों को इसी प्रकार आपसमें विवाद करते देख अश्वत्थामासे बोले, हे माननीय अश्वत्थामा ! आप शान्त होइये, सूत-पुत्रके ऊपर क्रोध करना तुम्हें उचित नहीं है; इससे आप प्रसन्न होइये । देखिये आप, कर्ण, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य और सुबलपुत्र शकुनि इन कई एक वीरोंके ऊपर मेरे बहुत बड़े कार्य का भार अर्पित है, हे द्विजसत्तम ! इससे आप प्रसन्न होइये ॥ हे ब्राह्मण ! यह देखो पाण्डव लोग चारों ओरसे कर्णको आवाहन करते हुए युद्ध करनेके वास्ते उनके

सञ्जय उवाच– प्रसाद्यमानस्तु ततो राज्ञा द्रौणिर्महामनाः ।
प्रससाद महाराज क्रोधवेगसमन्वितः ॥ १६ ॥
ततः कृपोऽप्युवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः ।
सौम्यस्वभावाद्राजेन्द्र क्षिप्रमागतमार्दवः ॥ १७ ॥
कृप उवाच— तवैतत्क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥ १८ ॥
सञ्जय उवाच— ततस्ते पाण्डवा राजन्पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
आजग्मुः सहिताः कर्णं तर्जयन्तः समन्ततः ॥ १९ ॥
कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान् ।
कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव ॥ २० ॥
पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः ।
ततः प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ॥ २१ ॥
भीषणं सुमहाराज सिंहनादविराजितम् ।
ततस्ते पाण्डवा राजन्पञ्चालाश्च यशस्विनः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथाऽनदन् ।
अयं कर्णः कुतः कर्णस्तिष्ठ कर्ण महारणे ॥ २३ ॥

संमुख आरहे हैं ॥ (१३–१५)

सञ्जय बोले, महाराज ! क्रोध और मानसे युक्त महात्मा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा दुर्योधनकी प्रार्थनासे कर्णके ऊपर प्रसन्न हुए। तिसके अनन्तर महात्मा कृपाचार्य अपने सुन्दर स्वभाव धीरता और मृदुताके सहित कर्णसे बोले, हे दुष्ट बुद्धिवाले सूतपुत्र ! मैंने तुम्हारे इस अपराधको क्षमा किया, परन्तु अर्जुन तुम्हारे इस बढे हुए अभिमानका नाश करेंगे ॥ (१६—१८)

संजय बोले,महाराज ! इधर यशस्वी पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा लोग इकठे होकर चारों ओरसे सिंहनाद करते हुए युद्ध करनेकी इच्छासे कर्णके संमुख आके उपस्थित हुए॥ उन योद्धाओंको संमुख आते देखकर महापराक्रमी अत्यन्त तेजस्वी रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णभी अपने बाहु बलके आसरे और देवतोंसे घिरे हुए इन्द्रकी भांति मुख्य मुख्य कौरवोंके बीचमें स्थित होकर अपना धनुष चढाके युद्ध भूमिमें स्थित हुए॥ (१९–२१)

महाराज ! तिसके अनन्तर पाण्डवों के सङ्ग क्रोधी कर्णका सिंहनाद शब्दके सहित महाघोर युद्ध होने लगा। पाण्डव लोग और यशस्वी पाञ्चाल योद्धा उस

युध्यस्व सहितोऽस्माभिर्दुरात्मन्पुरुषाधम ।
अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधरक्तेक्षणाऽब्रुवन् ॥ २४ ॥
हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः ।
सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर्नानेनाऽर्थोऽस्ति जीवता ॥ २५ ॥
अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः ।
एष मूलमनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः ॥ २६ ॥
घ्नतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रियाः समुपाद्रवन् ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ २७ ॥
वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्डवेयेन चोदिताः ।
तांस्तु सर्वांस्तथा दृष्ट्वा धावमानान्महारथान् ॥ २८ ॥
न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत ।
दृष्ट्वा संहारकल्पं तमुद्धूतं सैन्यसागरम् ॥ २९ ॥
पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः ।
सायकौघेन बलवान्क्षिप्रकारी महाबलः ॥ ३० ॥
वारयामास तत्सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ ।

रणभूमिके बीच कर्णको देखकर यही कर्ण है कहां है कर्ण ! अरे नीच ! रे दुष्ट ! मेरे सङ्गमें आके युद्ध कर ! इसी प्रकार महाघोर शब्दके सहित कोलाहल मचाने लगे । (२१–२४)

दूसरे कोई पुरुष राधापुत्र कर्णको देखते ही क्रोधसे दोनों नेत्र लाल करके यह वचन कहने लगे । हे राज शार्दूल पुरुषो ! आप लोग सब कोई मिलकर इस नीच तथा अभिमानी सूतपुत्रका शीघ्र ही नाश करो; इसे जीवित रखनेकी कौनसी आवश्यकता है क्योंकि यह पापी सदा ही दुर्योधनके मत पर चलता है, यही कुन्ती पुत्रोंका वैरी और उनके दुःखकी जड है, इससे इसका ही इस समय वध करना उचित है । यह वचन कहके महारथ क्षत्रिय योद्धा लोग राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे अपने अनेक बाणोंकी वर्षासे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित करते हुए कर्णके वधके निमित्त उनकी ओर दौडे । (२४—२८)

महाराज ! युद्धमें अपराजित महाबली सूतपुत्र कर्ण उन सम्पूर्ण महारथियोंको अपनी ओर आते देख तनिक भी भयभीत नहीं हुए । वह तुम्हारे पुत्रोंके हितकी इच्छा करके उथलते हुए समुद्रके समान युधिष्ठिरकी सेनाके पुरुषोंको सैकडों अस्त्र शस्त्रोंसे निवारण

ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन् ॥ ३१ ॥
धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव ॥ ३२ ॥
शरवर्षं तु तत्कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम् ।
शरवर्षेण महता समन्ताद्व्यकिरत्प्रभो ॥ ३३ ॥
तद्युद्धमभवत्तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥ ३४ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम् ।
यदेनं सर्वतो यत्ता नाऽऽप्नुवन्ति परे युधि ॥ ३५ ॥
निवार्य च शरौघांस्तान्पार्थिवानां महारथः ।
युगेष्वीषासु छत्रेषु ध्वजेषु च हयेषु च ॥ ३६ ॥
आत्मनामाङ्कितान्घोरान्राधेयः प्राहिणोच्छरान् ।
ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ॥ ३७ ॥

करने लगे । (२८–३१)

हे राजेन्द्र ! वे सम्पूर्ण राजा लोग अपने धनुषको फेरते हुए अपनी बाणोंकी वर्षासे कर्णको निवारण करतेहुए राधापुत्र कर्णके संग इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे दानवोंके राजाने इन्द्रके संग युद्ध किया था ॥ राजाओंके धनुषसे उस समय जब चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा होने लगी, तब पराक्रमी कर्णने अपने अनेक बाणोंको चला कर उन लोगोंके चलाये हुए बाणोंको निवारण किया ॥ जैसे देवासुर युद्धके समय दानवोंके सहित देवराज इन्द्रका युद्ध हुआ था वैसे ही आपसमें एक दूसरेके वधकी अभिलाष करनेवाले उन शूरवीरोंका आपसमें महाघोर संग्राम होने लगा ॥ (३१–३४)

महाराज ! उस समय हम लोगोंने सूतपुत्र कर्णका अत्यन्त आश्चर्यमय हस्तलाघव और अस्त्र चलानेकी फुर्तीको अवलोकन किया कि उस समय सम्पूर्ण शत्रुसेनाके योद्धा लोग अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रम प्रकाशित करके भी कर्णको अपने वशमें न कर सके ॥ महारथ राधापुत्र कर्णने क्षण भरके बीच उन सम्पूर्ण राजाओंके चलाये हुए बाणजालको निवारण करके कर्ण नामसे अङ्कित सुवर्ण भूषित अनेक बाणोंको किसीके रथ किसीकी ध्वजा किसीके हाथी किसीके घोडे और किसीके सारथीके ऊपर चलाया ॥ (३५–३७)

वे सम्पूर्ण राजालोग इसी प्रकार कर्णके बाणोंसे पीडित होकर उनके संमुख

बभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव ।
हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा ॥ ३८ ॥
तत्रतत्राऽभ्यवेक्षाम सङ्घान्कर्णेन ताडितान् ।
शिरोभिः पतितै राजन्बाहुभिश्च समन्ततः ॥ ३९ ॥
आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम् ।
हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः ॥ ४० ॥
बभूवाऽऽयोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम् ।
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ४१ ॥
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ।
युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः ॥ ४२ ॥
पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम् ।
कार्त्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥ ४३ ॥
दृष्ट्वैतां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता ।
अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया ॥ ४४ ॥
तद्यथा प्रेक्षमाणानां सूतपुत्रं महारथम् ।

खडे होनेमें समर्थ नहीं हुए वे लोग शीतसे पीडित गौवोंकी भांति इधर उधर दौडने लगे। उस समय में हाथी घोडे और मनुष्योंको केवल कर्णके बाणोंसे पीडित होकर इधर उधर भागते हुए देखने लगा। महाराज! युद्धमें पीछे न हटनेवाले उन शूरवीरोंके कटे हुए अनगिनत सिरों और भुजाओंसे वह रणभूमि एकबारगी परिपूर्ण होगई। कहीं कहीं मरे हुए हाथी घोडे और किसी किसी स्थानमें मृत पुरुषोंके शरीरसे वह रणभूमि ऐसी भयङ्कर दिखाई देने लगी कि साक्षात् यमपुरीके समान बोध होने लगी। ३७-४१

महाराज! तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन कर्णका ऐसा पराक्रम देखकर अश्वत्थामासे यह वचन बोले, हे आचार्यपुत्र! कर्ण अकेले ही युद्धभूमिमें स्थित होकर पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण राजाओंके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं, यह देखो जैसे असुरोंकी सेना पार्वतीपुत्र स्वामिकार्त्तिकके अस्त्रोंसे पीडित होकर इधर उधर भाग गई थी वैसेही कर्णके तेज बाणोंसे पीडित होकर पश्चाल योद्धा लोग चारों ओर भाग रहे हैं; परन्तु अर्जुन बुद्धिमान कर्णके बाणोंसे अपनी सेनाके पुरुषोंको पराजित होते देखकर क्रोधपूर्वक कर्णकी ओर आ रहे हैं ॥ इससे पाण्डुपुत्र अर्जुन जिससे तुम्हारे

न हन्यात्पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥४५॥
ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः ।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥ ४६ ॥
आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूमिव ।
बीभत्सुरपि राजेन्द्र पञ्चालैरभिसंवृतः ॥ ४७ ॥
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णं यथा वृत्रं शतक्रतुः ।
धृतराष्ट्र उवाच- संरब्धं फाल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ॥ ४८ ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत प्रत्यपद्यत्किमुत्तरम् ।
यो ह्यस्पर्धत पार्थेन नित्यमेव महारथः ॥ ४९ ॥
आशंसते च बीभत्सुं युद्धे जेतुं सुदारुणम् ।
स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ॥ ५० ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत किमुत्तरमपद्यत ।
सञ्जय उवाच— आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजं प्रतिगजो यथा ॥ ५१ ॥
असम्भ्रान्तो रणे कर्णः प्रत्युदीयाद्धनञ्जयम् ।
तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः ॥ ५२ ॥

संमुखमें ही महारथ सूतपुत्र कर्णका वध न कर सके, आप वैसेही उपायका विधान कीजिये ॥ (४२–४५)

तिसके अनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और हृदिकपुत्र कृतवर्माने सूतपुत्र कर्णकी रक्षाके वास्ते अर्जुनके संमुख गमन किया ॥ हे महाराज ! जैसे देवराज इन्द्र वृत्रासुर की ओर दौड़ा था, वैसे ही अर्जुन भी पांचाल सेनाके साथ कर्णकी ओर दौड़े ॥ (४६–४८)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! सूर्यपुत्र कर्णने क्रोधी यमराजके समान अर्जुनको संमुख आते देख उस समयके अनुसार किस कार्यका अनुष्ठान किया ? क्योंकि वह महारथी सूतपुत्र कर्ण सदा ही अर्जुनसे द्वेष किया करता है ॥ और महायुद्धमें अर्जुनके जीतनेकी आशा भी करता है; इससे सदासे शत्रुभावयुक्त अर्जुनको संमुख आया देख, अपने कर्त्तव्य-कर्मके विषयमें क्या निश्चय किया ? (४८–५१)

सञ्जय बोले, महाराज ! जैसे एक मतवारे हाथीको देखकर दूसरा मतवारा हाथी उसकी ओर दौड़ता है, वैसे ही राधापुत्र कर्ण अर्जुनको अपनी ओर आते देख निर्भयचित्तसे उनकी ओर दौड़े । महातेजस्वी शत्रुनाशन अर्जुन भी सूतपुत्र कर्णको वेगपूर्वक अपनी ओर

छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं शरैः ।
स कर्णं शरजालेन च्छादयामास पाण्डवः ॥ ५३ ॥
ततः कर्णः सुसंरब्धः शरैस्त्रिभिरविध्यत ।
तस्य तल्लाघवं पार्थो नाऽमृष्यत महाबलः ॥ ५४ ॥
तस्मै बाणाञ्शिलाधौतान्प्रसन्नाग्रानजिह्मगान् ।
प्राहिणोत्सूतपुत्राय त्रिशतं शत्रुतापनः ॥ ५५ ॥
विव्याध चैनं संरब्धो बाणेनैकेन वीर्यवान् ।
सव्ये भुजाग्रे बलवान्नाराचेन हसन्निव ॥ ५६ ॥
तस्य विद्धस्य बाणेन कराच्चापं पपात ह ।
पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः ॥ ५७ ॥
छादयामास बाणौघैः फाल्गुनं कृतहस्तवत् ।
शरवृष्टिं तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत ॥ ५८ ॥
व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनञ्जयः ।
तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव ॥ ५९ ॥
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
तदद्भुतं महद्युद्धं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ६० ॥

आते देख अपने तेज बाणोंकी वर्षासे उन्हें निवारण करने लगे ॥ (५१-५३)

हे भारत ! तब राधा पुत्र कर्ण अपने बाणोंके जालसे अर्जुनको छिपा कर फिर तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध करने लगे, परन्तु महाबली शत्रुनाशन पृथापुत्र अर्जुनसे कर्णका हस्तलाघव न सहा गया, उन्होंने कर्णके ऊपर शिलापर घिसे हुए तीन सौ तेज बाणोंको चलाया। महाबली प्रतापी अर्जुनने क्रुद्ध होकर एक बाणसे कर्णके बायें हाथकी हथेली को विद्ध किया। महाराज ! हथेली विद्ध होते ही कर्णके हाथसे धनुष छूटकर गिर पडा; परन्तु उस महाबलवान् कर्णने अर्धनिमेषमें फिर धनुष ग्रहण करके उत्तम पानी चढे हुए तेज बाणोंसे फिर अर्जुनको छिपा दिया। (५४-५८)

परन्तु अर्जुनने निर्भयचित्तसे कर्णके चलाये हुए बाणोंको अपने बाणोंसे निवारण किया। महाराज ! इसी प्रकार धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी महारथ पृथापुत्र अर्जुन और कर्ण एक दूसरेके वधकी इच्छा करके अपने बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेको छिपाने लगे । ऐसा क्या जैसे ऋतुमती हथिनीके वास्ते दो क्रोधी मतवारे हाथियोंका आपसमें युद्ध होता है

क्रुद्धयोर्वासिताहेतोर्वन्ययोर्गजयोरिव ।
ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ६१ ॥
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयाऽन्वितः ।
अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद्यमसादनम् ॥ ६२ ॥
सारथेश्च शिरः कायादहरच्छत्रुतापनः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम् ॥ ६३ ॥
विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः ।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः ॥ ६४ ॥
आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ।
स नुन्नोऽर्जुनबाणौघैराचितः शल्यको यथा ॥ ६५ ॥
जीवितार्थमभिप्रेप्सुः कृपस्य रथमारुहत् ।
राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ॥ ६६ ॥
धनञ्जयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दश ।
द्रवतस्तान्समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप ॥ ६७ ॥
निवर्तयामास तदा वाक्यमेतदुवाच ह ।
अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥
एष पार्थवधायाऽहं स्वयं गच्छामि संयुगे ।

वैसे ही उन दोनों वीरोंका आपसमें महाघोर युद्ध होने लगा । (५८-६१)

अनन्तर महाधनुर्द्धर शत्रुनाशन अर्जुनने कर्णका पराक्रम देख शीघ्रताके सहित उनके धनुषकी मुट्ठी काट दिया। अनन्तर भल्लास्त्रसे उनके रथके चारों घोडोंका [illegible] करके फिर एक बाणसे उनके सारथीका सिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिया । तिसके अनन्तर अर्जुनने धनुष घोडे और सारथीसे रहित कर्णको चार बाणोंसे विद्ध किया । तब पुरुषश्रेष्ठ कर्ण अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर घोडोंसे रहित रथसे कूदकर अपने जीवित की रक्षाके लिये कृपाचार्यके रथपर जा चढे । (६१-६६)

हे राजेन्द्र ! तुम्हारी ओरके शूरवीर अर्जुनके बाणोंसे क्षतविक्षत शरीरसे युक्त थे उसपर भी कर्णको पराजित देख-कर चारों ओर भागने लगे । कुरुराज दुर्योधन अपनी सेनाके योद्धाओंको भागते देख उन्हें निवृत्त करतेहुए कहने लगे। हे क्षत्रिय श्रेष्ठ शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग क्यों भागते हो लौटके युद्ध करो, मैं अर्जुनका वध करनेके निमित्त स्वयं

अहं पार्थान्हनिष्यामि सपञ्चालान्ससोमकान् ॥ ६९ ॥
अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना।
द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ॥ ७० ॥
अद्य मद्बाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः।
द्रक्ष्यन्ति समरे योधाः शलभानामिवाऽऽयतीः ॥७१॥
अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति युधि सैनिकाः॥ ७२ ॥
जेष्यास्म्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः।
तिष्ठध्वं समरे शूरा भयं त्यजत फाल्गुनात् ॥ ७३ ॥
न हि मद्वीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ॥ ७४ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः।
फाल्गुनं प्रति दुर्धर्षः क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ ७५ ॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७६ ॥

युद्धभूमिमें उसके संमुख गमन करता हूं। मैं पाञ्चाल और सोमकों के सहित पाण्डवोंका नाश करूंगा। (६६–६९)

आज मैं गाण्डीवधनुष धारण करनेवाले अर्जुनके संग युद्धमें प्रवृत्त होऊंगा; आज कुन्तीके पुत्र प्रलयकालके यमराज समान मेरा पराक्रम देखेंगे ॥ आज शूरवीर योद्धा लोग मेरे धनुषसे छूटे हुए शलभसमूहकी भांति अनगिनत बाणोंको अर्जुनकी ओर चलते हुए देखेंगे ॥ आज जब मैं युद्धभूमिके बीच अपना धनुष चढा कर लगातार बाणोंको वर्षाने लगूंगा, तब सेनाके पुरुष मुझे जलकी वर्षा करनेवाले बादलकी भांति मालूम करेंगे ॥ हे शूरवीर पुरुषो ! आज मैं अपने तीक्ष्णबाणोंसे अवश्य ही अर्जुनको पराजित करूंगा, इससे तुम लोग भय त्यागके निर्भयताके सहित रणभूमिमें स्थित रहो ॥ जैसे समुद्रके वेगको तट रोकता है, वैसे ही अर्जुन भी मेरा पराक्रम देखकर आगे बढनेमें असमर्थ होजावेगा ॥ (७०–७४)

महाराज ! पराक्रमी राजा दुर्योधन ऐसा वचन कह कर क्रोधसे नेत्र लाल करके अपनी महासेनाके बीच घिर कर अर्जुनकी ओर दौडे ॥ तब शरद्वतपुत्र कृपाचार्य राजा दुर्योधनको अर्जुनकी ओर गमन करते देख अपने भानजे

एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्छितः ।
पतङ्गवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्धुमिच्छति ॥ ७७ ॥
यावन्नः पश्यमानानां प्राणान्पार्थेन सङ्गतः ।
न जह्यात्पुरुषव्याघ्रस्तावद्वारय कौरवम् ॥ ७८ ॥
यावत्फाल्गुनबाणानां गोचरं नाऽद्य गच्छति ।
कौरवः पार्थिवो वीरस्तावद्वारय संयुगे ॥ ७९ ॥
यावत्पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसन्निभैः ।
न भस्मीक्रियते राजा तावद्युद्धान्निवार्यताम् ॥ ८० ॥
अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद ।
स्वयं युद्धाय यद्राजा पार्थं यात्यसहायवान् ॥ ८१ ॥
दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना ।
युद्ध्यमानस्य पार्थेन शार्दूलेनेव हस्तिनः ॥ ८२ ॥
मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत ॥ ८३ ॥

अश्वत्थामासे यह वचन बोले ॥ देखो क्रोधके वशमें होकर कुरुराज दुर्योधन अर्जुनकी ओर इस प्रकार गमन कर रहे हैं, जैसे पतङ्ग अग्निकी ओर दौडते हैं; इससे जबतक राजा दुर्योधन अर्जुनके समीप पहुंच कर प्राण त्याग नहीं करते हैं उससे पहिले ही तुम उन्हें अर्जुनकी ओर जानेसे निवृत्त करो ॥ (७५-७८)

जब तक पराक्रमी दुर्योधन अर्जुनके बाणके सम्मुख नहीं उपस्थित होते हैं उससे पहिले ही तुम उन्हें युद्धभूमिमें निवृत्त करो ॥ जब तक अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए केंचुलीसे रहित सर्पके समान तेजस्वी बाण कुरुराज दुर्योधनको भस्म नहीं करते हैं उससे पहिले ही तुम उन्हें अर्जुनके समीप जानेसे निवृत्त करो॥ हे प्यारे अश्वत्थामा ! मैं इस कार्यको अत्यन्त ही अनुचित समझ रहा हूं, कि हम सब लोगोंके रहते ही राजा दुर्योधन सहायकोंसे रहित पुरुषकी भांति स्वयं ही अर्जुनकी ओर युद्धके वास्ते गमन कर रहे हैं ॥ विशेष करके कुरुराज दुर्योधन यदि अर्जुनके सङ्ग आज युद्ध करने में प्रवृत्त होंगे, तो शार्दूलके सङ्ग युद्ध करते हुए हाथीकी भांति उनका प्राण बचनेमें अत्यन्तही कठिनता होवेगी॥(७९-८२)

महाराज ! शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा अपने मामाकी आज्ञा सुनकर शीघ्रताके सहित दुर्योधनके समीप जाकर यह वचन बोले, हे

मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम् ॥ ८४ ॥
न हि ते संभ्रमः कार्यः पार्थस्य विजयं प्रति।
अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन ॥ ८५ ॥

दुर्योधन उवाच— आचार्यः पाण्डुपुत्रान्वै पुत्रवत्परिरक्षति।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥
मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत् ॥ ८७ ॥
धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥ ८८ ॥
को हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि।
शत्रुं न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद्गौतमीसुतः ॥ ८९ ॥
अश्वत्थामन्प्रसीदस्व नाशयैतान्ममाऽहितान्।
तवाऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः॥ ९० ॥

गान्धारीपुत्र! देखो, तुम्हारे हितकी सदा अभिलाष करनेवाला मैं जीवित हूं, मेरा अनादर करके स्वयं युद्ध करनेके वास्ते अर्जुनके समीप जाना तुम्हें उचित नहीं है॥ अर्जुनको पराजित करनेके वास्ते तुम कुछ भी चिन्ता मत करो। तुम यहां ही स्थित रहो, मैं अर्जुनको युद्धसे निवारण करूंगा॥ (८३-८५)

महाराज! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन गुरुपुत्र अश्वत्थामाके वचनोंको सुनकर बोले, हे द्विजसत्तम! देखिये आचार्य रणभूमिमें पाण्डुपुत्रोंको अपने पुत्रकी भांति रक्षा करते रहते हैं, और तुम भी सदा उन लोगोंको युद्धभूमि में देखकर उपेक्षा करते हो॥ इसके अतिरिक्त मेरे अभाग्यसे होवे अथवा धर्मराज युधिष्ठिर और द्रौपदीके प्रियकार्य को करनेके निमित्त ही होवे, युद्धभूमिमें जो आप लोगोंका पराक्रम पूर्णरूपसे प्रकाशित नहीं होता इसका कारण मुझे मालूम नहीं होता है॥ मुझे धिक्कार है! मुझ लोभीके वास्ते ही ये सम्पूर्ण बन्धु बान्धव लोग सदा सुख भोग करनेके योग्य होकर भी दुःख पारहे हैं॥ (८६-८८)

सब शस्त्रधारियोंमें अग्रणी और युद्धमें महादेवके समान पराक्रमी होकर भी तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष शत्रुओंके विषयमें उपेक्षा कर सकता है? हे पापरहित अश्वत्थामा! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। देखिये, तुम्हारे

पञ्चालान्सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान्।
वयं शेषान्हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ९१ ॥
एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः।
मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥ ९२ ॥
तान्वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ९३ ॥
अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिन्दम।
आदौ वा यदि वा पश्चात्तवेदं कर्म मारिष ॥ ९४ ॥
त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां वधं प्रति।
करिष्यसि जगत्सर्वमपञ्चालं किलोद्यतः ॥ ९५ ॥
एवं सिद्धाऽब्रुवन्वाचो भविष्यति च तत्तथा।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र पञ्चालाञ्जहि सानुगान् ॥ ९६ ॥
न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः।

बाणोंके संमुखमें देवता लोग भी नहीं ठहर सकते। इससे आप मेरे शत्रुओंका नाश कीजिये ॥ हे द्रोणपुत्र ! आप अनुयायियोंके सहित सोमकवंशी और पाञ्चाल योद्धाओंका नाश कीजिये; फिर हम लोग तुमसे रक्षित होकर बाकी बचे हुए शत्रुओंका वध करेंगे ॥ (८९-९१)

यह देखिये यशस्वी पाञ्चाल और सोमकवंशीय योद्धा लोग क्रुद्ध होकर दावाग्निकी भांति मेरी सेनारूपी वनमें भ्रमण कर रहे हैं ॥ हे महाबाहो द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ! इससे जब तक पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष अर्जुनसे रक्षित होकर मेरी सेनाके योद्धाओंका नाश नहीं करते हैं, उससे पहिले ही आप केकय और पाञ्चालसेनाके वीरोंका नाश कीजिये। हे शत्रुनाशन अश्वत्थामा ! आगे हो चाहे पीछे हो; आप शीघ्र ही शत्रुओंके विरुद्ध युद्धके निमित्त रणभूमिमें गमन कीजिये; यह तुम्हारा ही कर्त्तव्य कर्म है ॥ (९२-९४)

हे पापरहित अश्वत्थामा ! देखो पाञ्चाल वीरोंके नाश करनेहीके वास्ते तुम उत्पन्न हुए हो; इससे तुम अवश्य ही इस जगत्को पाञ्चाल योद्धालोगोंसे रहित करोगे। विशेष करके सिद्ध लोग भी जब तुम्हारे विषयमें ऐसा वचन कहा करते हैं तब यह कार्य अवश्य ही पूर्ण होवेगा। हे पुरुषशार्दूल ! इससे आप अनुयायियोंके सहित पाञ्चाल वीरोंका नाश कीजिये ॥ मैं तुमसे यह वचन कहता हूं, कि पाञ्चाल और

किन्तु पार्थाः सपञ्चालाः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ९७ ॥
न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सोमकैः ।
बलाद्योधयितुं वीर सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ९८ ॥
गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ।
इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ॥ ९९ ॥
शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा ।
निग्रहे पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च मानद ॥१००॥ [७१५९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनवाक्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

सञ्जय उवाच— दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः ।
चकाराऽरिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा ॥
प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः ॥ १ ॥
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव ।
प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चाऽपि पितुश्च मे ॥२ ॥
तथैवाऽऽवां प्रियौ तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह ।

पाण्डवोंकी तो कुछ बातही नहीं है, इन्द्र के सहित सम्पूर्ण देवताभी तुम्हारे अस्त्रों के सम्मुख नहीं ठहर सकते ॥ (९५–९७)

हे वीर ! मुझे पूरा निश्चय है, कि सोमकवंशियोंके सहित पाण्डव लोग कभी भी रणभूमिमें पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हारे सङ्ग युद्ध करनेमें समर्थ न हो सकेंगे ॥ यह देख, सेनाके योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर चारों ओर भाग रहे हैं। इससे अब हम लोगोंको वृथा समय बितानेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है; आप शीघ्रताके सहित शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते गमन कीजिये। हे महाबाहो! आप अपने दिव्य तेज तथा पराक्रमके प्रभावसे पाञ्चाल योद्धाओं और पाण्डुपुत्रोंको पराजित करनेमें समर्थ हैं ॥ (९८–१००)

द्रोणपर्वमें एकसौ उनसठ अध्याय। [७१५९]

द्रोणपर्वमें एकसौ साठ अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनके ऐसे वचनोंको सुनकर युद्धदुर्मद महाबाहु द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उनसे यह वचन बोले, हे महाबाहो कुरुराज दुर्योधन ! तुमने जो कुछ वचन कहे, वह सब सत्य हैं, अर्थात् पाण्डव लोग जैसे मुझे और मेरे पिताको प्रिय हैं; वैसे ही हम दोनों भी उन लोगोंके प्रीतिके पात्र हैं; परन्तु युद्धके समय

शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत् ॥३॥
अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च।
निमेषात्पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम ॥ ४ ॥
ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात्कुरूद्वह।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे ॥ ५ ॥
युध्यतां पाण्डवाञ्छक्त्या तेषां चाऽस्मान्युयुत्सताम्।
तेजस्तेजः समासाद्य प्रशमं याति भारत ॥ ६ ॥
अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥
आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः।
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥ ८ ॥
त्वं तु लुब्धतमो राजन्निकृतिज्ञश्च कौरव।
सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे ॥ ९ ॥
मन्ये त्वं कुत्सितो राजन्पापात्मा पापपूरुषः।

यह बात नहीं रहती। हे भ्राता! युद्धके समय हम लोग निर्भयचित्तसे प्राणकी आशा छोडके शक्तिके अनुसार युद्ध किया करते हैं ॥ (१—३)

हे राजेन्द्र! रणभूमिमें यदि पाण्डव लोग उपस्थित न रहें; तो मैं, कर्ण, शल्य, मेरे मामा कृपाचार्य और हृदीकपुत्र कृतवर्मा इत्यादि हम लोग निमेष भरमें पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश कर सकते हैं; और हम लोग यदि युद्धभूमि में स्थित न रहें; तो पाण्डव लोग भी अर्धनिमेष भरमें तुम्हारी सेनाके पुरुषों का नाश कर सकते हैं। परन्तु पाण्डव लोग और हम लोग अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करनेमें प्रवृत्त हैं इसहीसे आपसमें एकके तेजका प्रभाव दूसरेके संमुखमें शान्त होजाता है। इससे मैं तुमसे यह निश्चित वचन कहता हूं, कि पाण्डुपुत्रोंके जीवित रहते यत्न पूर्वक उनकी सेनाको पराजित करना असाध्य कर्म समझियेगा ॥ (४-७)

हे भारत! पाण्डवलोग सब कोई सामर्थ्यवान् हैं, इससे वह लोग अपने प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त युद्ध कर रहे हैं; तब वे तुम्हारी सेनाके पुरुषोंका नाश क्यों न करेंगे? आप अत्यन्त ही लोभी, अभिमानी, कपटबुद्धिसे युक्त और सम्पूर्ण विषयोंमें शाङ्कित हैं, इस ही निमित्तसे आप हम लोगोंके विषयमें शङ्का किया करते हैं ॥ हे क्षुद्रबुद्धिवाले

अन्यानपि स नः क्षुद्र शङ्कसे पापभावितः ॥ १० ॥
अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः ।
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन ॥ ११ ॥
योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धं जेष्यामि च वरान्वरान् ।
पश्चालैः सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा ॥ १२ ॥
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिन्दम ।
अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पश्चालाः सोमकास्तथा ॥ १३ ॥
सिंहेनेवाऽर्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः ।
अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ॥ १४ ॥
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह सोमकैः ।
आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतान्संख्ये पश्चालान्सोमकैः सह ।
ये मां युद्धेऽभियोत्स्यन्ति तान्हनिष्यामि भारत॥१६॥
न हि ते वीर मोक्ष्यन्ते मद्बाहन्तरमागताः ।

राजन् ! तुम पापी और पापमूर्त्ति होकर अत्यन्त कुत्सित हो तथा पाप विचारोंसे भरा हुआ है इस वास्ते दूसरे और हमलोगोंके विषय में सदा शंका किया करते हो ॥ (८–१०)

हे कुरुनन्दन महाराज दुर्योधन ! चाहे जैसा ही होवे तुम्हारे निमित्त मैं अपने प्राणकी आशा छोडके यत्नवान् होकर रणभूमिमें गमन करता हूं। आज मैं तुम्हारे प्रिय कार्यको सिद्ध करनेके वास्ते सोमकवंशी आदि पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंके सङ्ग युद्ध करके मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध करूंगा। आज मेरे तीक्ष्ण बाणोंकी चोटसे पाञ्चाल तथा सोमक वंशी शूरवीर योद्धा इस प्रकार रणभूमिके बीचसे चारों ओर भाग जावेंगे जैसे सिंहके संमुखसे भय-भीत होकर गौओंका समूह इधर उधर भाग जाता है।(११–१४)

आज सोमकों के सङ्ग मुझे युद्ध करते देखकर राजा युधिष्ठिर इस संसार को अश्वत्थाममय समझेंगे। आज राजा युधिष्ठिर पाञ्चाल और सोमक वीरोंको मेरे अस्त्रोंसे मरे हुए देखकर अत्यन्त ही दुःखित होवेंगे। हे वीर कुरुराज दुर्योधन! मैं तुमसे अधिक क्या कहूं आज जो पुरुष मेरे संमुख आके युद्ध करेंगे मैं अवश्यही उन्हें अपने अस्त्रोंके प्रभाव से प्राणरहित करके यमपुरीमें भेज दूंगा क्योंकि मेरी भुजाके भीतर आके वे

एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव ॥ १७ ॥
अभ्यवर्तत युद्धाय त्रासयन्सर्वधन्विनः ।
चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः ॥ १८ ॥
ततोऽब्रवीत्स कैकेयान्पञ्चालान्गौतमीसुतः ।
प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः ॥ १९ ॥
स्थिरीभूताश्च युद्ध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम् ।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन् ॥ २० ॥
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव ।
तान्निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत् ॥ २१ ॥
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो ।
ते हन्यमानाः समरे पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ २२ ॥
परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश ।
तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरान्पञ्चालान्सहसोमकान् ॥ २३ ॥
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद्रणे ।

लोग किसी प्रकारसे भी जीते हुए न लौट सकेंगे । (१४—१७)

हे राजेन्द्र ! महाबाहु प्राणियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहकर तेरे पुत्रके प्रियसाधन के लिये योद्धाओं को त्रस्त करते हुए पाण्डव तथा पाञ्चाल योद्धाओं के सङ्ग युद्ध करने के वास्ते प्रस्थान किया ॥ अनन्तर अपने संमुखमें पाञ्चाल और केकय योद्धाओंको स्थित देखकर पराक्रमी अश्वत्थामा उनसे यह वचन बोले, हे महारथी शूरवीरो ! तुम लोग सब कोई मिलकर अपने अस्त्रशस्त्रोंसे मेरे ऊपर प्रहार करो;और अपना हस्तलाघव दिखाते हुए स्थित होके मेरे सङ्ग युद्ध करो। अश्वत्थामाके ऐसे वचन सुनकर पाञ्चाल और सोमक योद्धा लोग उनके ऊपर इस प्रकार अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करने लगे,जैसे बादल आकाशसे जलकी वर्षा करते हैं ।(१७—२१)

महाराज ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पाण्डवों और धृष्टद्युम्नके संमुखमें ही उन लोगोंके बीचसे दश पराक्रमी वीरोंका वध किया। पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग अश्वत्थामाके बाणोंसे पीडित होकर युद्धभूमिसे हटके चारों ओर भागने लगे। (२१—२३)

पाञ्चालराजपुत्र महारथी धृष्टद्युम्न उन योद्धाओंको भागते देख युद्धसे पीछे न हटने वाले सजल बादलकी भांति

ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम् ॥ २४ ॥
वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम् ।
पुत्रः पञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २५ ॥
द्रौणिमित्यब्रवीद्वाक्यं दृष्ट्वा योधान्निपातितान् ।
आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहतैस्तव ॥ २६ ॥
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे ।
अहं त्वां निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाऽग्रतः॥ २७ ॥
ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
मर्मभिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ ॥ २८ ॥
ते तु पंक्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः ।
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्राः सर्वकायावदारणाः ॥ २९ ॥
मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमराः पुष्पितं द्रुमम् ।
सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाऽऽक्रान्त इवोरगः॥३० ॥
मानी द्रौणिरसम्भ्रान्तो बाणपाणिरभाषत ।
धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ ३१ ॥
यावत्त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।

गंभीर शब्दसे गर्जनेवाले एक सौ शूर वीरोंके सङ्गमें घिरकर अश्वत्थामाकी ओर दौडे; और अपनी सेनाके योद्धाओंका नाश होते देख अश्वत्थामासे बोले, हे द्रोणपुत्र ! सेनाके साधारण पुरुषोंका वध करके तुम कौनसा प्रशंसित पराक्रम प्रकाशित कर रहे हो, आके मेरे सङ्ग युद्ध करो, यदि तुम शूरवीर पुरुष हो, तो मेरे संमुख खडे होकर युद्ध करो, मैं अवश्य ही तुम्हें यमपुरीमें भेज दूंगा ॥ (२३--२७)

प्रतापी धृष्टद्युम्न ऐसा वचन कहके अश्वत्थामाके ऊपर अत्यन्त तीक्ष्ण मर्मभेदी बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ महाराज ! जैसे मधुके लोभी भौरोंके समूह चारों ओरसे घूमकर फूले हुए वृक्षके ऊपर वेगपूर्वक गिरते हैं वैसे ही धृष्टद्युम्नके चलाये हुए शरीरको भेद करनेवाले चोखे बाणोंके समूह अश्वत्थामाके ऊपर पडने लगे ॥ २८--३०

महामानी अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर इस प्रकार क्रुद्ध हुए जैसे पांवसे पूछ दबनेपर सर्प क्रुद्ध होता है ॥ अनन्तर अश्वत्थामा हाथमें एक बाण ग्रहण करके बोले, हे धृष्टद्युम्न ! तुम क्षण भर मेरे संमुख

द्रौणिरेवमथाऽऽभाष्य पार्षतं परवीरहा ॥ ३२ ॥
छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत् ।
स बाध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ॥ ३३ ॥
द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत्तदा ।
न जानीषे प्रतिज्ञां मे विप्रोत्पत्तिं तथैव च ॥ ३४ ॥
द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते ।
ततस्त्वाऽहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे ॥ ३५ ॥
इमां तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते ।
निहत्य पितरं तेऽद्य ततस्त्वामपि संयुगे ॥ ३६ ॥
नेष्यामि प्रेतलोकाय ह्येतन्मे मनसि स्थितम् ।
यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ॥ ३७ ॥
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ।
यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ॥ ३८ ॥
स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधमः ।

युद्धभूमिमें रहो तो सही, मैं इस ही समय अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारा वध करके तुम्हें यमपुरीमें भेजता हूं। शत्रु-नाशन अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नसे ऐसा वचन कहके अपना हस्तलाघव प्रकाशित करते हुए लगातार अपने बाणोंको वर्षाकर चारों ओरसे धृष्टद्युम्नको छिपा दिया॥ (३०-३३)

तिसके अनन्तर पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाके बाणजालसे छिपकर उन्हें निवारण करते हुए यह वचन कहने लगे, हे विप्र ! तुम मेरी उत्पत्ति और प्रतिज्ञाके विषयसे अजान नहीं हो॥ अरे दुष्टबुद्धिवाले ! मैं पहिले द्रोणाचार्यका वध करके पीछे तेरा भी प्राण नाश करूंगा; द्रोणाचार्यके जीवित रहते आज तुम्हारा वध नहीं करूंगा॥ हे नीचबुद्धिवाले ब्राह्मण ! आज इस ही रात्रिके समय सबेरा होनेसे पहिले ही युद्धभूमिमें तुम्हारे पिताका वध करके पीछे तुम्हें भी यमपुरीमें भेजूंगा, मैंने अपने मनमें ऐसा ही निश्चय किया है। (३३-३७)

कुन्तीपुत्रों के ऊपर तुम्हारा जैसा द्वेष और कौरवोंके ऊपर तुम्हारी जैसी भक्ति है, युद्धभूमिमें स्थित होके आज तुम उसका फल पूर्ण रीतिसे देखोगे, परन्तु जीते जी तुम मेरे सम्मुखसे मुक्त न हो सकोगे। हे ब्राह्मणाधम ! जो ब्राह्मण तेरी भांति ब्राह्मणका कर्म

इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ॥ ३९ ॥
क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ॥ ४० ॥
छादयामास च शरैर्निःश्वसन्पन्नगो यथा ।
स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ॥ ४१ ॥
सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः ।
नाऽकम्पत महाबाहुः स्ववीर्यं समुपाश्रितः ॥ ४२ ॥
सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह ।
तौ पुनः संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपणे रणे ॥ ४३ ॥
निपीडयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ ।
उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः ॥ ४४ ॥
द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
दृष्ट्वा सम्पूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥ ४५ ॥
शरौघैः पूरयन्तौ तावाकाशं च दिशस्तथा ।

छोडके क्षत्रिय धर्ममें रत होता है वह सम्पूर्ण पुरुषोंका ही वध्य होजाता है। (३७-३९)

महाराज ! द्विजसत्तम अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके ऐसे कडवे वचनोंको सुनकर अत्यन्तही क्रुद्ध होकर इस प्रकार उनकी ओर देखने लगे मानो दृष्टिसे देखकर ही उसे भस्म कर देंगे। अनन्तर अश्वत्थामा सर्पके समान बार बार लम्बी और गर्म सांस छोडके खडा रह। खडा रह ! कहके अपने अनेक बाणोंकी वर्षासे धृष्टद्युम्नको छिपाने लगे। (३९-४१)

हे महाराज ! पाञ्चाल सेनाके बीच घिरे हुए रथियोंमें मुख्य धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाके बाणोंसे छिपे जानेपर थोडा भी विचलित नहीं हुए और वीर्य बलके आसरेसे अश्वत्थामाकी ओर अनेक तीक्ष्ण बाण चलाने लगे। इसी भांति वे दोनो महाधनुर्द्धारी वीर प्राणपणसे रणभूमिके बीच स्थित होके एक दूसरेके वधकी इच्छा करके अपने बाणोंसे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करके दोनों ही पीडित हुए फिर जलधाराकी भांति चारों ओर लगातार अपने बाणोंको वर्षाने लगे। पृषत वंशीय धृष्टद्युम्न और द्रोण पुत्र अश्वत्थामाके महाघोर भयङ्कर युद्धको देखकर सिद्ध चारण और वायुमें गमन करनेवाले प्राणी उन दोनों वीरों की अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगे॥ (४१-४५)

अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत्कृत्वा शरैस्तमः ॥ ४६ ॥
नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ ।
परस्परवधे यत्तौ सर्वभूतभयङ्करौ ॥ ४७ ॥
अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
सम्पूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः सहस्रशः ॥ ४८ ॥
तौ प्रवृद्धौ रणे दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव ।
उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥ ४९ ॥
सिंहनादरवाश्चाऽऽसन्दध्मुः शङ्खांश्च सैनिकाः ।
वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५० ॥
तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने ।
मुहूर्तमपि तद्युद्धं समरूपं तदाऽभवत् ॥ ५१ ॥
ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः ।
ध्वजं धनुस्तथा छत्रमुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ५२ ॥
सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याऽभ्यद्रवद्रणे ।
पञ्चालांश्चैव तान्सर्वान्बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५३ ॥

उन दोनों वीरोंने अपने बाणोंको चलाकर सब दिशा और आकाशमण्डल को परिपूरित कर के ऐसा अन्धकार उत्पन्न किया, कि दोनों ही अदृश्य हो कर युद्ध करने लगे ॥ आपस में एक दूसरेके वधकी इच्छा करनेवाले यत्नवान् और महाबलवान् वे दोंनो वीर मण्डलाकार गतिसे धनुष फेरते तथा एक दूसरेको जीतनेकी अभिलाषासे नाना भांतिके युद्ध कौशल दिखाते हुए सहस्रों सेनाध्यक्ष पुरुषोंसे प्रशंसित होकर युद्ध करने लगे ॥ (४६–४८)

महाराज ! सेनाके लोग दोनोंको वन के दो मतवारे हाथीकी भांति रणभूमिमें युद्ध करते देख हर्षपूर्वक बार बार शंख और युद्धके सैकडों सहस्रों जुझाऊ बाजे बजाकर सिंहनाद करने लगे। कादरोंके भयको बढानेवाले उस महाघोर तुमुल संग्रामके समय मुहूर्त भरतक उन दोनों का समभावसे युद्ध होता रहा॥ ४९-५१

तिसके अनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने महात्मा धृष्टद्युम्नके रथकी ध्वजा, दण्ड, छत्र, चारों घोडे, सारथी, दो पृष्ठरक्षक योद्धाओं और उनके धनुषको काट दिया। अनन्तर पराक्रमी अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नकी ओर दौडे। उस समय अत्यन्त तेजस्वी अश्वत्थामा सैकडों सहस्रों पाञ्चाल योद्धाओंको अपने

व्यद्रावयद्द्रसेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः।
ततस्तु विव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत्कर्म वासवस्येव संयुगे।
शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां महारथः ॥ ५५ ॥
त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन्वै महारथान्।
द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च पश्यतः ॥ ५६ ॥
नाशयामास पञ्चालान्भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः।
ते वध्यमानाः पञ्चालाः समरे सह सृञ्जयैः ॥ ५७ ॥
अगच्छन्द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथध्वजाः।
स जित्वा समरे शत्रून्द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ५८ ॥
ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा।
स निहत्य बहूञ्छूरानश्वत्थामा व्यरोचत।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ॥ ५९ ॥

बाणोंके प्रहारसे पीडित करके उन्हें छिन्न भिन्न कर के युद्धभूमिसे भगाने लगे। (५२—५४)

हे राजन् ! रणभूमिके बीच द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका इन्द्रके समान पराक्रम देखकर पाण्डव और पाञ्चाल सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भयभीत होगये; क्योंकि महा रथी अश्वत्थामाने एक सौ बाणोंसे एक सौ और तीन चोखे बाणोंसे तीन महारथियोंका वध किया। अधिक क्या कहा जावे, उस समय पाञ्चाल सेनाके जितने योद्धा अश्वत्थामाके संमुख उपस्थित हुए, पराक्रमी अश्वत्थामाने अर्जुन और धृष्टद्युम्नके संमुखमेंही उन शूरवीरों के बीचसे अनेक योद्धाओंका वध करके उन्हें यमपुरीमें भेज दिया ॥ ५४-५७

इसी भांति पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग अश्वत्थामाके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर ध्वजा दण्ड आदि टूटे हुए रथोंपर चढके उनके संमुखसे भागने लगे। उस समय महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रणभूमिके बीच अनगिनत शत्रुओंको पराजित करके वर्षाकाल के बादलकी भांति सिंहनाद करके गर्जने लगे। और जैसे प्रलयकालकी अग्नि सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म करके प्रकाशित होती है, वैसे ही पराक्रमी अश्वत्थामा भी शत्रुओंका नाश करके युद्धभूमिके बीच शोभित हुए ॥ जैसे देवराज इन्द्र दानवोंकी सेनाका नाश करके शोभित हुए थे वैसेही प्रतापी अश्वत्थामा भी युद्धभूमि के बीच सहस्रों शत्रुओं का नाश

छूत और अछूत।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! ! अत्यन्त उपयोगी !

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्यों का मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
११ वैदिक कालकी उदारता,
१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

प्रथम भाग। मू. १)

द्वितीय भाग। मू. ॥)

अतिशीघ्र मंगवाइये।

स्वाध्याय मंडल. औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

REGISTERED NO. B. 1819

अंक ६१ [द्रोणपर्व ११]

महाभारत।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

सम्पूज्यमानो युधि कौरवेयैर्निर्जित्य संख्येऽरिगणान्सहस्रशः ।
व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान्यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान्निहत्य वै ॥६०॥७२१९

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अश्वत्थामपराक्रमे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः१६०

सञ्जय उवाच— ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १ ॥
ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः ।
अभ्ययात्पाण्डवान्संख्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥
घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम् ।
अम्बष्ठान्मालवान्वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्तकानपि ॥ ३ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान्क्रुद्धो वृकोदरः ।
अभीषाहाञ्छूरसेनान्क्षत्रियान्युद्धदुर्मदान् ॥ ४ ॥
निकृत्य पृथिवीं चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम् ।
यौधेयानद्रिजान्राजन्मद्रकान्मालवानपि ॥ ५ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः ।
प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ॥ ६ ॥
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विश्रृङ्गा इव पर्वताः ।

करके कौरवोंसे सम्मानित तथा प्रशंसित होकर शोभित होने लगे ॥ (५७-६०)

द्रोणपर्वमें एकसौ साठ अध्याय समाप्त । ७२१९

द्रोणपर्वमें एकसौ इकसठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! तिसके अनन्तर भीमसेन और धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने चारों ओरसे अश्वत्थामाको घेर लिया ॥ वैसे ही कुरुराज दुर्योधन भी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके सहित पाण्डवोंकी ओर दौडे॥ अनन्तर डरपोक पुरुषोंके भयको बढानेवाला उन शूरवीरोंका आपसमें महाघोर दारुण संग्राम होने लगा ॥ (१-३)

उस समय धर्मपुत्र युधिष्ठिर अम्बष्ठ, मालव, वङ्ग, शिवि और त्रिगर्त देशीय योद्धाओंका वध करके उन्हें यमपुरीमें भेजने लगे । भीमसेनने भी युद्ध दुर्मद अभीषाह और शूरसेन देशीय क्षत्रियोंको खंड खंड करके उनके रुधिरसे पृथ्वीको कीचडमयी कर दिया । उस ही समय किरीटमाली अर्जुन भी यौधेय, अद्रिज, मालव और मद्र देशीय वीरोंको अपने चोखे बाणोंसे प्राण विहीन करके यमपुरीमें भेजने लगे । सेनाके बीच बहुतेरे मतवारे हाथी अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर दोशृङ्गवाले पर्वतकी भांति

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च चेष्टमानैरितस्ततः ॥ ७ ॥
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः।
क्षिप्तैः कनकचित्रैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ॥ ८ ॥
द्यौरिवाऽऽदित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षये।
हत प्रहरताऽभीता विध्यत व्यवकृन्तत ॥ ९ ॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं प्रति।
द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ॥ १० ॥
व्यधमत्तान्महावायुर्मेघानिव दुरत्ययः।
ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन्भयात् ॥ ११ ॥
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः।
ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ॥ १२ ॥
महता रथवंशेन परिगृह्य बलं महत्।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं तु वृकोदरः ॥ १३ ॥
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम्।
तौ तथा सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ॥ १४ ॥
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्यैश्च सह सोमकैः।

मरकर रणभूमिमें गिरने लगे। (३-७)

रणभूमिमें गिरे हुए तथा कटे हुए कितने ही हाथियोंके सूण्ड रणभूमिमें गिर कर सर्पके समान दिखाई देते थे; और सुवर्णचित्रित राजाओंके छत्र जो इधर उधर कटके पृथ्वीमें पडे थे उनसे वह रणभूमि इस प्रकार प्रकाशित होरही थी जैसे प्रलयकालके समय सूर्य चन्द्रमा और तारोंसे युक्त आकाशमण्डल शोभित होता है। महाराज! उस समय "मारो, शस्त्र चलाओ, निर्भय होके विद्ध करो! काटो" लाल घोडोंसे युक्त द्रोणाचार्यके रथके निकट इसी प्रकार शब्द सुनाई देने लगे। (७-१०)

जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंके समूहको छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही क्रुद्ध द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित होकर पाञ्चाल योद्धालोग महात्मा भीमसेन और अर्जुनके सम्मुखमें ही रणभूमिमें भागने लगे। (१०-१२)

तिसके अनन्तर भीमसेन और अर्जुनने बहुतसी रथियोंकी सेना सङ्ग लेकर क्रमसे उत्तर और दक्षिणसे द्रोणाचार्यको आक्रमण करके उनके ऊपर अनेक तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब मत्स्य और सोमकवंशीय वीरोंके सहित

तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ॥ १५ ॥
महत्या सेनया राजञ्जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ।
ततः सा भारती सेना हन्यमाना किरीटिना ॥ १६ ॥
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ।
द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ॥ १७ ॥
नाऽशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ।
सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दार्यमाणा महाचमूः ॥ १८ ॥
तमसा संवृते लोके व्यद्रवत्सर्वतोमुखी ।
उत्सृज्य शतशो वाहांस्तत्र केचिन्नराधिपाः ।
प्राद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः ॥ १९ ॥ [७२१८]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकषष्टयधिकशततमोऽध्यायः॥१६१॥

सञ्जय उवाच— सोमदत्तं तु सम्प्रेक्ष्य विधुन्वानं महद्धनुः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह ॥ १ ॥
नह्यहत्वा रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलम् ।
निवर्तिष्ये रणात्सूत सत्यमेतद्वचो मम ॥ २ ॥

पाञ्चाल योद्धा उनके अनुगामी हुए। वैसे ही तुम्हारी सेनाके भी मुख्य मुख्य योद्धा लोग सेनाके अनेक पुरुषोंके सहित द्रोणाचार्यकी सहायतामें उपस्थित हुए; परन्तु अन्धकार और निद्रासे दुःखित हुए कुरुसेनाके योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर फिर छिन्न भिन्न होगये। (१२–१७)

उस समय उन योद्धाओंको भागते देख पराक्रमी द्रोणाचार्य और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने स्वयं निवारण किया; परन्तु तौ भी वे लोग भागनेसे निवृत्त नहीं हुए। महाराज! उस महाघोर अन्धकारके समय तुम्हारे पुत्रोंकी सेना पाण्डुपुत्रोंके अस्त्रोंकी चोटसे व्याकुल होके चारों ओर दौडने लगी॥ सेनापति योद्धा तथा पराक्रमी राजा लोग अपने वाहनोंको त्याग करके भयभीत होकर चारों ओर भागने लगे॥ (१७-१९)

द्रोणपर्वमें एकसौ इकसठ अध्याय समाप्त। ७२१८

द्रोणपर्वमें एकसौ बासठ अध्याय।

सञ्जय बोले महाराज! उस ही समय सात्यकि सोमदत्तको धनुष फेरते देख, अपने सारथीसे बोले, हे सूत! तुम मुझे सोमदत्तके समीप लेचलो॥ मैं सत्य वचन कहता हूं, कि आज मैं बिना इस कुरुकुलाधम सोमदत्तको मारे युद्धसे निवृत्त न होऊंगा॥ (१–२)

ततः सम्प्रेषयद्यन्ता सैन्धवांस्तान्मनोजवान् ।
तुरङ्गमाञ्छङ्खवर्णान्सर्वशब्दातिगान्रणे ॥ ३ ॥
तेऽवहन्युयुधानं तु मनोमारुतरंहसः ।
यथेन्द्रं हरयो राजन्पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥ ४ ॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे ।
सोमदत्तो महाबाहुरसम्भ्रान्तो न्यवर्तत ॥ ५ ॥
विमुञ्चञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा ॥ ६ ॥
असम्भ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् ।
छादयामास बाणौघैः समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ७ ॥
सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् ।
सात्यकिश्चाऽपि तं राजन्नविध्यत्सायकैः शितैः॥ ८ ॥
तावन्योन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ।
सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।

सारथीने सात्यकिका वचन सुनकर मनके समान शीघ्र गमन करनेवाले शङ्खके समान सफेद कान वाले सिन्धु देशीय सुन्दर घोडोंको वेगपूर्वक सोमदत्तकी ओर चलाया ॥ महाराज ! जैसे असुरोंके नाश करनेवाले देवराज इन्द्रके रथके घोडे उनके रथको खींचते हुए रणभूमिमें गमन करते हैं, वैसेही मन और वायुके समान शीघ्र गमन करनेवाले घोडे सात्यकिके रथको खींचते हुए रणभूमिके बीच गमन करने लगे ॥ (३-४)

महाबाहु सोमदत्तने सात्यकिको वेगपूर्वक अपनी ओर आते देख जैसे जलयुक्त बादल सूर्यको छिपाता है, वैसेही सात्यकिको अपने बाणोंसे छिपाते हुए निर्भयचित्तसे उनकी ओर दौडे ॥ सात्यकि भी निर्भयचित्तसे अपने बाणोंकी वर्षा करके चारों ओरसे कौरवोंमें मुख्य सोमदत्तको छिपाने लगे ॥ (५—७)

तिसके अनन्तर सोमदत्तने आठ बाणोंसे यदुवंशी सात्यकिके वक्षस्थलमें प्रहार किया और सात्यकिने भी आठ तीक्ष्ण बाणोंसे सोमदत्तको विद्ध किया ॥ महाराज ! इसी भांति कौरव और वृष्णिवंशके यशको बढानेवाले पुरुषश्रेष्ठ सोमदत्त और सात्यकि आपसमें एक दूसरेके बाणकी चोटसे रुधिरपूरित तथा क्षतविक्षत शरीरसे युक्त होकर फूले हुए

परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ १० ॥
रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ ।
घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ॥ ११ ॥
शरसम्भिन्नगात्रौ तु सर्वतः शकलीकृतौ ।
श्वाविधाविव राजेन्द्र दृश्येतां शरविक्षतौ ॥ १२ ॥
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिराचितौ तौ व्यराजताम् ।
खद्योतैरावृतौ राजन्प्रावृषीव वनस्पती ॥ १३ ॥
संप्रदीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तैर्महारथौ ।
अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥ १४ ॥
ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद्धनुः ॥ १५ ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिः शरैः ॥ १६ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम् ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत ॥ १७ ॥

पलाश वृक्षकी भांति रणभूमिमें शोभित हुए; और इस भांति वे दोनों आपसमें एक दूसरेको देखने लगे, मानो देखकर ही एक दूसरेको भस्म कर देंगे ॥ (८-१०)

दोनों शत्रुनाशन वीर मण्डलाकार गतिसे रथपर घूमते हुए इस प्रकार अपने बाणोंको वर्षाने लगे जैसे बादल जलकी वर्षा करते हैं ॥ उस समय वे दोनों वीर आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे इस प्रकार विद्ध हुए कि उन दोनोंके शरीर बाणमय दिखाई देने लगे । और वे दोनों वीर सुवर्ण पुंखवाले बाणोंसे परिपूरित शरीर होकर मानो वर्षाकालके खद्योतसमूहसे युक्त दो वृक्षकी भांति मालूम होने लगे ॥ (११-१३)

इसी प्रकार महारथी सोमदत्त और सात्यकि आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे पीडित होकर मानो रणभूमिमें लुकसे युक्त दो हाथियोंकी भांति युद्धभूमिमें विराजमान हुए ॥ तिसके अनन्तर महारथी सोमदत्तने अर्धचंद्र बाणसे यदुवीर सात्यकिके बडे धनुषको काट दिया और पचीस बाणोंसे उन्हें विद्ध करके शीघ्रताके सहित फिर दश बाणोंसे विद्ध किया ॥ (१४-१६)

तब सात्यकिने एक दृढ धनुष ग्रहण करके पांच बाणोंसे सोमदत्तको विद्ध किया ॥ तिसके अनन्तर सात्यकिने फिर

ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद् काञ्चनम् ।
वाह्लीकस्य रणे राजन्सात्यकिः प्रहसन्निव ॥ १८ ॥
सोमदत्तस्त्वसम्भ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम् ।
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ १९ ॥
सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण शितेन ह ॥ २० ॥
अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम् ।
आचिनोद्बहुधा राजन्भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ २१ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सोमदत्तो महारथः ।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः ॥ २२ ॥
सोमदत्तं तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः ।
सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत् ॥ २३ ॥
दशभिः सात्वतस्याऽर्थे भीमोऽहन्बाह्लिकात्मजम् ।
सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तो भीममार्च्छच्छितैः शरैः॥२४॥
ततस्तु सात्वतस्याऽर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि ॥ २५ ॥

एक बाण चलाकर बाह्लिकपुत्र सोमदत्तके रथकी सुवर्णदण्डभूषित ध्वजा काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ सोमदत्तने अपने रथकी ध्वजाको सात्यकिके बाणसे कटती देख निर्भयचित्तसे शिनिपौत्र सात्यकिके शरीरमें बीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ (१७-१९)

अनन्तर सात्यकिने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक तेज क्षुरप्र अस्त्रसे सोमदत्तका धनुष काट दिया । और दांत टूटे हुए हाथीकी भांति सोमदत्तको सुवर्णदण्डवाले अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे छिपाने लगे ॥ अनन्तर महाबली सोमदत्त दूसरा धनुष ग्रहण करके अपने बाणोंको वर्षाकर सात्यकिको छिपाने लगे ॥ (२०-२२)

इसी प्रकार वे दोनों वीर क्रुद्ध होकर अपने अनगिनत बाणोंसे एक दूसरेको पीडित करने लगे। इस ही समय भीमसेनने सात्यकिकी सहायता करनेके वास्ते दश बाणोंसे सोमदत्तके शरीरमें प्रहार किया; परन्तु सोमदत्त निर्भय चित्तसे केवल भीमसेनकोही अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ तिसके अनन्तर भीमसेनने सात्यकिकी सहायता करनेकी इच्छासे अत्यन्त दृढ एक परिघ उठाकर सोमदत्तकी ओर चलाया ॥ (२३-२५)

तमापतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम् ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः ॥ २६ ॥
स पपात द्विधा च्छिन्न आयसः परिघो महान् ।
महीधरस्येव महच्छिखरं वज्रदारितम् ॥ २७ ॥
ततस्तु सात्यकी राजन्सोमदत्तस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ २८ ॥
ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्णं तांस्तुरगोत्तमान् ।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ २९ ॥
सारथेश्च शिरः कायाद्भल्लेन नतपर्वणा ।
जहार नरशार्दूलः प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ॥ ३० ॥
ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मुमोच सात्वतो राजन्स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम् ॥ ३१ ॥
स विमुक्तो बलवता शैनेयेन शरोत्तमः ।
घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताऽऽशु भारत ॥ ३२ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज सात्वतेन महारथः ।
सोमदत्तो महाबाहुर्निपपात ममार च ॥ ३३ ॥
तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः ।

महाराज! कौरवोंमें मुख्य सोमदत्तने उस भयानक परिघको अपनी ओर आते देख निर्भयताके सहित तीक्ष्ण बाणोंसे काटके दो खण्ड कर दिया॥ महाराज! वह लोहमय परिघ सोमदत्तके बाणसे दो टुकडे होकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा जैसे वज्रकी चोटसे पर्वत टुकडे टुकडे हो गिर पडता है॥ (२६-२७)

उसे देखकर शिनिपौत्र सात्यकिने शीघ्रताके सहित भल्लास्त्रसे उनका धनुष काट कर पांच बाणोंसे उनके हस्तत्राण और चार बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको मार डाला॥ फिर हंसते हंसते एक तीक्ष्ण भल्लास्त्र से उन के सारथी का सिर काट के धड से अलग कर दिया॥ (२८-३०)

तिसके अनन्तर सात्यकिने शिलापर घिसे हुए महाभयङ्कर बाण ग्रहण करके सोमदत्तकी ओर चलाये। महाराज! अत्यन्त भयङ्कर वह बाण शिनिपौत्र बलवान् सात्यकिके धनुषसे छूटकर शीघ्रही सोमदत्तके वक्षस्थल पर गिरा॥ रथियोंमें मुख्य महाबाहु सोमदत्त उस बाणसे अत्यन्त विद्ध होके उसही समय

महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३४ ॥
छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः ।
पाण्डवाश्च महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः ॥
महत्या सेनया सार्धं द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ ३५ ॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम् ।
शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥
सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३७ ॥
ततः सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध सप्तभिः ।
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः ॥ ३८ ॥
सोऽतिविद्धो महाबाहुः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ३९ ॥
स छिन्नधन्वा त्वरितस्त्वराकाले नृपोत्तमः ।
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥ ४० ॥
ततः शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः ।

मर कर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ (३१-३३)

कुरुसेनाके योद्धा लोग महारथी सोमदत्तको मरते देख महाघोर बाणोंकी वर्षा करते हुए सात्यकिकी ओर दौड़े ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर सात्यकिको तुम्हारी सेनाके वीरोंके बाणजालमें छिपे देख अपनी बड़ी सेनाके सहित द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौड़े ॥ उस समय राजा युधिष्ठिर क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यके सम्मुखमें ही तुम्हारी महासेनाके योद्धाओंको रणभूमिमें तितर बितर करने लगे ॥ (३४–३६)

तब द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरको अपनी ओरके योद्धाओंको छिन्न भिन्न करते देख क्रोधसे लाल नेत्र करके उनकी ओर दौड़े और सात तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया। राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पांच बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ महाबाहु द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध हो दांत पीसते हुए उनका धनुष और उनके रथकी ध्वजाको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया ॥ (३७-३९)

धनुष कटने पर राजा युधिष्ठिरने शीघ्रताके सहित फिर एक दृढ धनुष ग्रहण करके घोड़े सारथी और रथके सहित द्रोणाचार्यको अनगिनत बाणोंसे विद्ध किया, उस समय युधिष्ठिरका

साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४१ ॥
ततो मुहूर्तं व्यथितः शरपातप्रपीडितः ।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम ॥ ४२ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मुहूर्ताद् द्विजसत्तमः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत् ॥ ४३ ॥
असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो धनुराकृष्य वीर्यवान् ।
ततस्तदस्त्रमस्त्रेण स्तम्भयामास भारत ॥ ४४ ॥
चिच्छेद च धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः ।
ततोऽब्रवीद्वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४६ ॥
युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ।
उपारमस्व युद्धे त्वं द्रोणाद्भरतसत्तम ॥ ४७ ॥
यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे ।
नाऽनुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह ॥ ४८ ॥
योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एवैनं हनिष्यति ।

पराक्रम अद्भुतरूपसे दीख पड़ा॥४०-४१

द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरके बाणोंसे पीडित होकर ऐसे कातर हुए कि मुहूर्त भर तक रथ पर मूर्च्छित रहे ॥ थोड़ी देरके बाद द्रोणाचार्यने सावधान होकर क्रोध पूर्वक वायव्य अस्त्र चलाया ॥ महाराज! पराक्रमी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने निर्भयचित्तसे अपने अस्त्रोंके प्रभावसे वायव्य अस्त्रको निवारण करके द्रोणाचार्यका धनुष काट दिया । क्षत्रियोंका नाश करनेवाले द्रोणाचार्यने फिर दूसरा धनुष्य ग्रहण किया, कुरुकुल श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने उस धनुष्यकोभी अपने तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे काटडाला । (४२—४६)

उस ही समय श्रीकृष्णजी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको पुकारके यह वचन बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूं उसे सुनो; आप द्रोणाचार्यसे युद्ध न कीजिये ॥ क्योंकि वह युद्धभूमि में तुम्हें पकडने के वास्ते हर समय आशा कर रहे हैं; विशेष करके द्रोणाचार्य के सङ्ग तुम्हारा संग्राम उचित नहीं मालूम होता है, जिन्होंने द्रोणाचार्यके वध करनेके वास्ते इस पृथ्वीपर जन्म लिया है, वही धृष्टद्युम्न कलह मोरके समय द्रोणाचार्यका वध करेंगे । आप द्रोणा-

परित्यज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥ ४९ ॥
राजा राज्ञा हि योद्धव्यो नाऽराज्ञा युद्धमिष्यते ।
तत्र त्वं गच्छ कौन्तेय हस्त्यश्वरथसंवृतः ॥ ५० ॥
यावन्मात्रेण च मया सहायेन धनञ्जयः ।
भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ॥ ५१ ॥
वासुदेववचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ॥ ५२ ॥
प्रायाद् द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः ।
विनिघ्नंस्तावकान्योधान्व्यादितास्य इवाऽन्तकः ॥५३॥
रथघोषेण महता नादयन्वसुधातलम् ।
पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन्वै दिशो दश ॥ ५४ ॥
भीमस्याऽनिघ्नतः शत्रून्पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः ।
द्रोणोऽपि पाण्डुपञ्चालान्व्यधमद्रजनीमुखे ॥ ५५ ॥ [७२९३]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

सञ्जय उवाच— वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयावहे ।

चार्यको त्यागके जहांपर राजा सुयोधन स्थित है उस ही स्थानमें गमन कीजिये क्योंकि राजा लोगोंको राजाके सङ्ग ही युद्ध करना उचित है । हे राजेन्द्र ! इस स्थलमें पुरुषसिंह भीमसेन और अर्जुन केवल अकेले मेरी सहायतासे ही शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हैं। आप हाथी घोड़े और रथियोंकी सेनाके सहित दुर्योधनके समीप गमन कीजिये ॥ (४७—५१)

धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णके वचनको सुनकर क्षण भर तक उस महाघोर संग्रामके विषयको विचारते रहे, फिर जिस स्थान पर शत्रुनाशन भीमसेन दृढताके सहित रणभूमिमें स्थित होके वर्षाकालके बादल गर्जनेकी भांति अपने रथके गम्भीर घरघराहटके शब्दसे दशों दिशा तथा पृथ्वीको अनुनादित करते हुए तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका वध कर रहे थे, उस ही स्थान पर जाकर धर्मराज युधिष्ठिर शत्रुनाशन भीमसेनकी पृष्ठरक्षा करने लगे। उस महाघोर रात्रिके समय द्रोणाचार्य पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंको अपने अस्त्ररूपी अग्निसे भस्म करने लगे ॥ (५२—५५) [७२९३]

द्रोणपर्वमें एकसौ बासठ अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ तिरसठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! अन्धकार

तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ॥ १ ॥
नाऽपश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद्ववृधे महत् ॥ २ ॥
नरनागाश्वमथनं परमं लोमहर्षणम् ।
द्रोणकर्णकृपा वीरा भीमपार्षतसात्यकाः ॥ ३ ॥
अन्योन्यं क्षोभयामासुः सैन्यानि नृपसत्तम ।
वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात्तैर्महारथैः ॥ ४ ॥
तमसा संवृते चैव समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ।
ते सर्वतो विद्रवन्तो योधा विध्वस्तचेतनाः ॥ ५ ॥
अहन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे ।
महारथसहस्राणि जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ६ ॥
अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य तव मन्त्रिते ।
ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागोपाश्च भारत ॥
व्यमुह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥ ७ ॥

और धूलिसे सम्पूर्ण रणभूमि और आकाशमण्डल परिपूर्ण होगया, उस ही समय दोनों ओरकी सेनाके वीरोंका महाभयङ्कर संग्राम होने लगा। रणभूमिमें स्थित योद्धा लोग उस समय एक दूसरेको नहीं देख सकते थे, उस समय वे सम्पूर्ण योद्धा लोग केवल अपने नामको सुनाते हुए अनुमानसे ही हाथी, घोडे और मनुष्योंका नाश करते हुए महाघोर युद्ध करने लगे। (१–२)

उस ही समय हमलोगोंकी ओरसे द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और शत्रुओंकी ओरसे भीमसेन और सात्यकि, ये महारथी योद्धा लोग युद्धमें प्रवृत्त होकर आपसमें एक दूसरेकी सेनाको छिन्न भिन्न करके रणभूमिसे भगाने लगे। महाराज! सेनाके योद्धा लोग पहिलेसे ही अन्धकार और धूलिके उडनेसे व्याकुल होरहे थे; उस पर फिर भी महारथियोंके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर चारों ओर भागने लगे। वे शूरवीर योद्धा लोग जब भयभीत होकर इधर उधर दौड रहे थे; उस समय दौडते हुए भी महारथियोंके बाणोंसे कितने ही योद्धा मर कर पृथ्वीमें गिर पडे। ऐसा क्या! उस महाघोर अन्धकारके समयमें तुम्हारे पुत्रकी अनीतिसे ही सहस्रों महारथियोंने अपनी ओरके ही सहस्रों योद्धाओंका वध किया। जब चारों ओर अन्धेरा छा गया, तब सम्पूर्ण सेनाके

धृतराष्ट्र उवाच— तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्विहतौजसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामासीत्किं वो मनस्तदा ॥ ८ ॥
कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्यस्य वा पुनः ।
बभूव लोके तमसा तथा सञ्जय संवृतः ॥ ९ ॥

सञ्जय उवाच— ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै ।
सेनागोप्तृनथाऽऽदिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥ १० ॥

द्रोणः पुरस्ताज्जघने तु शल्यस्तथा द्रौणिः कृतवर्मा सौबलश्च ।
स्वयं तु सर्वाणि बलानि राजन्राजाऽभ्ययाद्गोपयन्वै निशायाम् ॥११॥
उवाच सर्वांश्च पदातिसङ्घान्दुर्योधनः पार्थिव सान्त्वपूर्वम् ।
उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान्प्रदीपान् ॥ १२ ॥
ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् ।
देवर्षिगन्धर्वसुरर्षिसङ्घा विद्याधराश्चाऽप्सरसां गणाश्च ॥ १३ ॥
नागाः सयक्षोरगकिन्नराश्च हृष्टा दिविस्था जगृहुः प्रदीपान् ।

योद्धा तथा सेनापति लोग भी मोहित होगये ॥ (३–७)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! उस समय जब तुम लोग पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंके अस्त्र शस्त्रोंसे पीडित और अन्धकारसे व्याकुल हुए थे, उस समयमें तुम लोगोंकी बुद्धि किस प्रकार युद्धभूमिमें स्थिर हुई; और मेरी सेना तथा पाण्डवोंकी सेनामें किस भांति प्रकाश हुआ ? (८–९)

सञ्जय बोले, महाराज ! तिसके अनन्तर मरनेसे बची हुई सेना सेनापतियोंकी आज्ञासे फिर व्यूहबद्ध होकर युद्धभूमिमें स्थित हुई, उस रात्रिके समय तुम्हारी व्यूहबद्ध सेनाके आगाडी द्रोणाचार्य और पांवके स्थानमें राजा शल्य स्थित हुए। उस व्यूहके दहिने पार्श्वमें अश्वत्थामा और बायें पार्श्वमें सुबलपुत्र शकुनि स्थित हुए। राजा दुर्योधन अपनी सम्पूर्ण सेनाकी रक्षा करते हुए स्वयं शत्रुओंकी ओर गमन करने लगे; और पैदल योद्धाओंसे यह वचन बोले, कि तुम लोग उत्तम शस्त्रोंको त्यागके जलते हुए मशाल ग्रहण करो ॥ (१०-१२)

पैदल चलनेवाले वीरोंने राजाकी आज्ञा सुनकर प्रसन्न चित्तसे शीघ्र ही जलते हुए लुक, दीपक तथा मशाल ग्रहण किये। उस समय (युद्ध देखनेके लिये आये हुए) आकाश चारी देव, ऋषि, गंधर्व और देवर्षियोंके संघ, विद्याधर और अप्सराओंके गण तथा नाग, यक्ष,उरग और किन्नर ये सब दीपकोंको

दिग्दैवतेभ्यश्च समापतन्तोऽदृश्यन्त दीपाः ससुगन्धितैलाः ॥ १४ ॥
विशेषतो नारदपर्वताभ्यां सम्बोध्यमानाः कुरुपाण्डवार्थम् ।
सा भूय एव ध्वजिनी विभक्ता व्यरोचताऽग्निप्रभया निशायाम्॥१५॥
महाधनैराभरणैश्च दिव्यैः शस्त्रैश्च दीप्तैरपि सम्पतद्भिः ।
रथे रथे पञ्च विदीपकास्तु प्रदीपकास्तत्र गजे त्रयश्च ॥ १६ ॥
प्रत्यश्वमेकश्च महाप्रदीपः कृतास्तु तैः पाण्डवैः कौरवेयैः ।
क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा व्यादीपयन्तो ध्वजिनीं तवाऽऽशु ॥१७॥
सर्वास्तु सेना व्यतिसेव्यमानाः पदातिभिः पावकतैलहस्तैः ।
प्रकाश्यमाना ददृशुर्निशायां यथाऽन्तरिक्षे जलदास्तडिद्भिः ॥ १८ ॥
प्रकाशितायां तु ततो ध्वजिन्यां द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन्समन्तात् ।
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा मध्यङ्गतः सूर्य इवांऽशुमाली ॥ १९ ॥
जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव निष्केषु शुद्धेषु शरासनेषु ।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः ॥ २० ॥
गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा रथेषु शक्त्यश्च विवर्तमानाः ।

लेकर स्थित हुए। तब सुगन्ध तैलसे युक्त अनेक दीप दिग्देवताओंसे गिरते हुए दिखाई देने लगे ॥ विशेष करके पर्वत और नारदने कौरव पाण्डवोंके लिये अनेक दीप जलाये थे। वह विभक्त कौरवोंकी सेना उस रात्रिके समय अग्नि के प्रकाशसे और बहुमूल्य दिव्य आभूषण तथा प्रकाशमान गिरनेवाले शस्त्रास्त्रोंसे अत्यंत शोभने लगी। तब प्रत्येक रथमें पांच दीप, प्रति हाथीमें तीन दीप और प्रत्येक घोडेके ऊपर एक एक महा दीप लगाया था। महाराज ! इस भांति क्षणभरके बीच उन जलते हुए लुक तथा दीपकोंसे तुम्हारी सेना प्रकाशित होने लगी ॥ (१३-१७)

उस रात्रिके समय सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग हाथमें दीपक ग्रहण करनेवाले पैदल सेनाके पुरुषोंसे युक्त होकर ऐसे प्रकाशित हुए, जैसे आकाशमें बिजलीसे युक्त बादल शोभित होते हैं ॥ उस ही समयमें सुवर्ण वर्मधारी पराक्रमी द्रोणाचार्य अग्निके समान शत्रुसेनाके पुरुषोंको चारों ओरसे तपाते हुए प्रचण्ड किरणवाले दोपहर के सूर्य समान रणभूमिमें विराजमान हुए॥ हे अजमीढकुलभूषण ! उस समय सुवर्णके रत्नजटित आभरण, मुहर, सुवर्णभूषित धनुष और शिलापर घिसे हुए अस्त्रशस्त्रोंके ऊपर अग्निकी प्रभा प्रतिबिंबित होने लगी ॥ (१८-२०)

शिकल करी हुई लोहमयी गदा,

प्रतिप्रभा रश्मिभिराजमीढ पुनः पुनः सञ्जनयन्ति दीपान् ॥ २१ ॥
छत्राणि वालव्यजनानि खड्गा दीप्ता महोल्काश्च तथैव राजन् ।
व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला व्यायच्छतां तत्र तदा विरेजुः ॥ २२ ॥
शस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं दीपप्रभाभिश्च तदा बलं तत् ।
प्रकाशितं चाऽभरणप्रभाभिर्भृशं प्रकाशं नृपते बभूव ॥ २३ ॥
पीतानि शस्त्राण्यसृगुक्षितानि वीरावधूतानि तनुच्छदानि ।
दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र तपात्यये विद्युदिवाऽन्तरिक्षे ॥ २४ ॥
प्रकम्पितानामभिघातवेगैरभिघ्नतां चाऽऽपततां जवेन ।
वक्त्राण्यकाशन्त तदा नराणां वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥२५॥
महावने दारुमये प्रदीप्ते यथा प्रभा भास्करस्याऽपि नश्येत् ।
तथा तदाऽऽसीद् ध्वजिनी प्रदीप्ता महाभया भारत भीमरूपा ॥ २६ ॥
तत्सम्प्रदीप्तं बलमस्मदीयं निशम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव ।

फेद परिघ और रथके ऊपर विराजमान शक्तियोंमेंसे परिवर्तित दीपोंके किरणोंसे ऐसा मालूम हुआ, कि उन गदाआदिकोंसे मानो नवीन दीप उत्पन्न हो रहे हैं । इस ही प्रकारसे युद्धमें प्रवृत्त हुए क्षत्रियोंके इधर उधर घुमनेसे उनके छत्र चंवर, मणिजटित माला और प्रकाशमान खड्ग लुककी भांति प्रकाशित होने लगे ॥ उस समय पहले अस्त्रोंकी प्रभासे प्रकाशित फिर दीपकों से प्रकाशित हुआ वह सैन्य आभूषणोंकी प्रभासे से बहुत ही शोभित होने लगा ॥ (२१-२३)

शूरवीरोंके रत्नजटित कवच और रुधिर लिपटे हुए प्रकाशमान अस्त्रशस्त्र इस भांतिसे प्रकाशित होने लगे जैसे ग्रीष्म ऋतुके समाप्त होनेपर बादलोंके समूहमें बिजली प्रकाशित होती हैं ॥ आपसमें शस्त्र चलानेमें प्रवृत्त दूसरी सेनाके ऊपर वेगसे प्रहार करनेसे कंपित शूरवीरोंके शिर इस प्रकार शोभित होने लगे, जैसे वायुसे हिलते हुए कमलोंके वन शोभित होते हैं ॥ अधिक क्या कहा जावे, उस समय ऐसा बोध होने लगा, जैसे लकडीका महावन प्रचण्ड दावाग्निके लगनेसे ऐसा प्रकाशित होता है, कि जिससे सूर्यकी प्रभा भी छिप जाती है, वैसे ही वे सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोग दीपक और अस्त्रशस्त्रोंके सहित अत्यन्त ही शोभित होने लगे ॥ (२४-२६)

तब पाण्डवोंने हम लोकोंकी सेनाके बीच प्रकाश देखकर शीघ्र ही अपनी सेनाके पैदल गमन करनेवाले योद्धाओंको भी हाथमें जलते हुए दीपक

सर्वेषु सैन्येषु पदातिसङ्घानचोदयंस्तेऽपि चक्रुः प्रदीपान् ॥ २७ ॥
गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा रथे रथे चैव दश प्रदीपाः ।
द्वावश्वपृष्ठे परिपार्श्वतोऽन्ये ध्वजेषु चाऽन्ये जघनेषु चाऽन्ये ॥ २८ ॥
सेनासु सर्वासु च पार्श्वतोऽन्ये पश्चात्पुरस्ताच्च समन्ततश्च ।
मध्ये तथाऽन्ये ज्वलिताग्निहस्ता व्यदीपयन्पाण्डुसुतस्य सेनाम्॥२९॥
मध्ये तथाऽन्ये ज्वलिताग्निहस्ताः सेनाद्वयेऽपि स्म नरा विचेरुः ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसङ्घा विमिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ॥ ३० ॥
व्यदीपयंस्ते ध्वजिनीं प्रदीप्तास्तथा बलं पाण्डवेयाभिगुप्तम् ।
तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं बलं तवाऽऽसीद्बलवद्बलेन ॥ ३१ ॥
भाः कुर्वता भानुमता शतेन दिवाकरेणाऽग्निरिवाऽभिगुप्तः ।
तयोः प्रभाः पृथिवीमन्तरिक्षं सर्वा व्यतिक्रम्य दिशश्च वृद्धाः ॥३२॥
तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं बभूव तेषां तव चैव सैन्यम् ।
तेन प्रकाशेन दिवं गतेन सम्बोधिता देवगणाश्च राजन् ॥ ३३ ॥

ग्रहण करनेके वास्ते आज्ञा दिया; उन लोगोंने उस ही समय जलते हुए लुक और मशाल ग्रहण किये ॥ उसी भांति हर एक हाथियोंपर सात सात, रथोंपर दश दश, घोडोंपर दो दो और रथकी ध्वजा सेनाके दहिने बायें और पीछे बहुतसे दीपक जलाये गये॥ इसी भांति सम्पूर्ण सेनाके बीच आगे पीछे दहिने बायें तथा सम्पूर्ण स्थलोंमें पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धाओंने चारों ओर दीपक जलाकर पाण्डवोंकी सेनाको प्रकाशित किया ॥ (२७–२९)

इसके अतिरिक्त और भी बहुतेरे मनुष्य हाथमें जलते हुए लुक ग्रहण करके दोनों सेनाके बीच भ्रमण करने लगे। महाराज! इसी भांति दोनों ओरकी सेनामें पैदल चलनेवाले पुरुषोंने हाथमें दीपक ग्रहण करके हाथी घोडे और रथोंको प्रकाशित किया, तिसके बीच शत्रुओंकी सेना पाण्डवोंसे रक्षित होकर प्रकाशित हुई। जैसे प्रचण्ड किरणवाले भगवान् सूर्यके तेजसे अग्नि अत्यन्त ही उत्तापित होती है वैसे ही तुम्हारी सेनाके पुरुष शत्रुसेनाके पुरुषोंको देखकर और भी प्रकाशित होने लगे। (३०–३२)

उस समय आकाश पृथ्वी तथा सम्पूर्ण दिशाको अतिक्रम करके दोनों सेनाके दीपज्योतिका प्रकाश शोभित होने लगा; दीपकके प्रकाशसे दोनों ओर की सेना अत्यन्त प्रकाशित होने लगीं। उस समय दीपकोंके प्रकाशसे आकाश-

गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घाः समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः ।
तद्देवगन्धर्वसमाकुलं च यक्षासुरेन्द्राप्सरसां गणैश्च ॥ ३४ ॥
हतैश्च शूरैर्दिवमारुहद्भिरायोधनं दिव्यकल्पं बभूव ।
रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं संरब्धयोधं हतविद्रुताश्वम् ॥ ३५ ॥
महद्बलं व्यूढरथाश्वनागं सुरासुरव्यूहसमं बभूव ।
तच्छक्तिसङ्घाकुलचण्डवातं महारथाभ्रं गजवाजिघोषम् ॥ ३६ ॥
शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं निशि प्रवृत्तं रथदुर्दिनं तत् ।
तस्मिन्महाग्निप्रतिमो महात्मा सन्तापयन्पाण्डवान्विप्रमुख्यः ॥ ३७ ॥
गभस्तिभिर्मध्यगतो यथाऽर्को वर्षात्यये तद्वदभून्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥ [७३३१]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दीपोद्योतने त्रिषष्टयधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३

सञ्जय उवाच— प्रकाशिते तथा लोके रजसा तमसाऽऽवृते ।
समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥ १ ॥

मण्डल प्रकाशित होगया तब आकाशचारी देवता, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा और सिद्ध लोग फिर युद्ध देखनेके वास्ते आकाशमें इकट्ठे हुए। उसही समय शूर वीर योद्धा रणभूमिमें मरकर स्वर्ग लोकमें जाने लगे। देवता, गन्धर्व, यक्ष आदि आकाशमें स्थित होकर कुरुपाण्डवोंके महाघोर युद्धको देखने लगे॥ ३२–३५

उस रात्रिके समय हाथी घोडे और रथोंके सहित दीपकसे युक्त वह सम्पूर्ण सेना क्रुद्ध हुए योद्धाओंके अस्त्रोंके प्रहारसे पीडित होकर इधर उधर दौडती हुई व्यूहबद्ध दानव और देवताकी सेनाकी भांति बोध होने लगी। महाराज! वह रात्रिका संग्राम प्रलय कालके समयके समान मालूम होने लगा। शक्ति आदि अस्त्रशस्त्र ही उसमें प्रचण्ड वायु, घोडे और रथोंके समूह उसमें भयानक बादलोंके समूह, अस्त्र-शस्त्रोंका चलना ही उसमें जलकी वर्षा और रुधिरका झरना ही उसमें जलधारा बहनेके समान मालूम होता था॥ उस रणभूमिमें अग्निके समान तेजस्वी ब्राह्मण-श्रेष्ठ प्रतापी द्रोणाचार्य शरद् ऋतुके प्रचण्ड किरण धारण करनेवाले दोपहरके सूर्यकी भांति प्रकाशित होकर पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विकल करते हुए रणभूमिके बीच घूमने लगे॥ (३५–३८) [७३३१]

द्रोणपर्वमें एकसौ तिरसठ अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ चौसठ अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! अन्धकार और धूलि उडनेसे जो सम्पूर्ण दिशा छिप गई थीं, वे फिर प्रकाशित हुई।

ते समेत्य रणे राजञ्शस्त्रप्रासासिधारिणः ।
परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥ २ ॥
प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समन्ततः ।
रत्नाचितैः स्वर्णदण्डैर्गन्धतैलावसिञ्चितैः ॥ ३ ॥
देवगन्धर्वदीपाद्यैः प्रभाभिरधिकोज्ज्वलैः ।
विरराज तदा भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥ ४ ॥
उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत ।
दह्यमानेव लोकानामभावे च वसुन्धरा ॥ ५ ॥
व्यदीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षा इवाऽऽबभुः ॥ ६ ॥
असज्जन्त ततो वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक् ।
नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः ॥ ७ ॥
रथा रथवरैरेव समाजग्मुर्मुदा युताः ।
तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ८ ॥
चतुरङ्गस्य सैन्यस्य सम्पातश्च महानभूत् ।
ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम् ॥ ९ ॥

शूरवीर योद्धा लोग इकट्ठे होकर प्रास तलवार आदि नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके एक दूसरेके वधकी इच्छासे छिद्र खोजते हुए आपसमें एक दूसरेकी ओर क्रोधपूर्वक देखने लगे, चारों ओर सेनाके बीच सहस्रों दीपक जल रहे थे उनसे तथा आकाशमें रत्नखचित सुवर्णके दंडवाले सुगंधतैलयुक्त अधिक प्रभावाले देवगंधर्वोंके दीपोंसे वह रणभूमि तारोंसे युक्त आकाशमण्डलकी भांति शोभित होने लगी। और सैकडों लुकोंके इधर उधर जलनेसे वह रणभूमि मानो प्राणियोंसे रहित अग्निसे जलती हुई पृथ्वीकी भांति मालूम होने लगी॥ (१–५)

उसी समय दीपक लुक तथा मशालोंके जलनेसे सम्पूर्ण दिशा इस भांति प्रकाशमय होगईं, जैसे वर्षा ऋतुमें खद्योत समूहसे युक्त वृक्ष शोभित होते हैं॥ महाराज! उस महाघोर भयङ्करी रात्रिके समय तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे तुम्हारी ओरके शूरवीर योद्धा लोग पृथक् पृथक् रथी रथीसे, गजपति गजपतिसे और घुडसवार घुडसवारोंके सम्मुख होकर अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करने लगे। इस ही समय महावीर

व्यधमत्त्वरया युक्तः क्षपयन्सर्वपार्थिवान्।
धृतराष्ट्र उवाच- तस्मिन्प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ १० ॥
अमृष्यमाणे दुर्धर्षे कथमासीन्मनो हि वः।
किमकुर्वत सैन्यानि प्रविष्टे परपीडने ॥ ११ ॥
दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत।
के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्ययुररिन्दमाः ॥ १२ ॥
द्रोणं च के व्यरक्षन्त प्रविष्टे श्वेतवाहने।
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः ॥ १३ ॥
के पृष्ठतश्चाऽप्यभवन्वीरा वीरान्विनिघ्नतः।
के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नन्तः शात्रवान्रणे ॥ १४ ॥
यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः।
नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान् ॥ १५ ॥
यो ददाह शरैर्द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजान्।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ १६ ॥

अर्जुन सम्पूर्ण राजाओंको अपने बाणोंसे पीडित करके कुरुसेनाको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे भस्म करने लगे ॥ (९-१०)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! युद्धमें अत्यन्त पराक्रमी श्वेतवाहन अर्जुनने जब क्रोधपूर्वक मेरी सेनाके बीच प्रवेश किया, उस समय तुम लोगोंके चित्तमें कैसा विकार उत्पन्न हुआ था? उस परपीडक अर्जुनने जब मेरी सेनाके बीच प्रवेश किया, तब हमारे सैनिक पुरुषोंने किस कार्यका अनुष्ठान किया और दुर्योधनने ही उस समयके अनुसार किस कार्यका विधान किया था? और मेरी ओरके कौन कौन शत्रुनाशन पराक्रमी योद्धा अर्जुनके सम्मुख उपस्थित हुए? (१०-१२)

कौन कौनसे योद्धाओंने युद्धके समय द्रोणाचार्यके दहिने और बायें चक्रकी रक्षा किया; तथा कौनसे शूरवीर योद्धा उनकी पृष्ठरक्षामें नियुक्त हुए थे ॥ और जब वहां धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ युद्धमें अपराजित पराक्रमी पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपने रथपर चढकर रणभूमिके बीच घूमते हुए पाञ्चालसेनाके बीच प्रवेश करके शत्रुओंका नाश करने लगे, तब शत्रुओंकी सेनासे कौन कौन योद्धा लोग युद्ध करनेके वास्ते उनके सम्मुख उपस्थित हुए थे? (१३-१५)

ओहो! जो द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर धूएंसे रहित अग्निकी भांति अपने शस्त्रों

अव्यग्रानेव हि परान्कथयस्यपराजितान् ।
हृष्टानुदीर्णान्संग्रामे न तथा सूत मामकान् ॥ १७ ॥
हतांश्चैव विदीर्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान्युद्धेषु मामकान् ॥ १८ ॥
सञ्जय उवाच । द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम् ।
दुर्योधनो महाराज वश्यान्भ्रातॄनुवाच ह ॥ १९ ॥
कर्णं च वृषसेनं च मद्रराजं च कौरव ।
दुर्धर्षं दीर्घबाहुं च ये च तेषां पदानुगाः ॥ २० ॥
द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्षन्तु पृष्ठतः ।
हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ॥ २१ ॥
त्रिगर्तानां च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः ।
तांश्चैव पुरतः सर्वान्पुत्रस्ते समचोदयत् ॥ २२ ॥
आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः ।

से पाञ्चालसेनाको भस्म करते थे वह किस प्रकार युद्धभूमिमें मारे गये ? हे सञ्जय ! जो हो तुम शत्रुओंकी ओरके पुरुषोंको युद्धमें स्थित सावधान अपराजित प्रसन्न और मेरी सेनाकी ओर दौडते हुए कहके वर्णन करते हो, और मेरी सेनाके योद्धाओंको इससे विपरीत तथा उत्साह रहित कहके वर्णन कर रहे हो । मेरी सेनाके पुरुषोंको हत, घावसे युक्त, पीडित, तथा रथियोंको रथभ्रष्ट और नाना भांतिसे विपदसे युक्त सुना रहे हो ! (१६—१८)

सञ्जय बोले, महाराज ! राजा दुर्योधन उस रात्रिके समय युद्धके अभिलाषी द्रोणाचार्यके अभिप्रायको जानकर अपने आज्ञाकारी भ्राताओं तथा कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, दीर्घबाहु और दुर्द्धर्ष तथा उनके अनुयायी सेनाके पुरुषोंसे यह वचन बोले,—हे पराक्रमशाली शूरवीर पुरुषो ! तुम सब कोई यत्नवान् होकर द्रोणाचार्य की पृष्ठरक्षा करो, हृदीकपुत्र कृतवर्मा और मद्रराज शल्य द्रोणाचार्यके दहिने और बायें चक्रकी रक्षा करें ॥ (१९—२१)

हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने ऐसा वचन कहकर फिर अगाडी स्थित मरनेसे बचे हुए त्रिगर्त्तदेशीय शूरवीर और महारथियोंसे यह वचन बोले,—इस समय द्रोणाचार्य अत्यन्त ही सावधानताके सहित युद्ध करनेमें तत्पर हुए हैं और पाण्डव लोग भी यत्नवान् होकर रणभूमिमें स्थित हैं; इससे तुम सब

तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ॥ २३ ॥
द्रोणो हि बलवान्युद्धे क्षिप्रहस्तः प्रतापवान् ।
निर्जयेत्त्रिदशान्युद्धे किमु पार्थान्ससोमकान् ॥ २४ ॥
ते यूयं सहिताः सर्वे भृशं यत्ता महारथाः ।
द्रोणं रक्षत पाञ्चाल्या धृष्टद्युम्नान्महारथान् ॥ २५ ॥
पाण्डवीयेषु सैन्येषु न तं पश्याम कञ्चन ।
यो योधयेद्रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते नृपः ॥ २६ ॥
तस्मात्सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम् ।
सुगुप्तः पाण्डवान्हन्यात्सृञ्जयांश्च ससोमकान् ॥ २७ ॥
सृञ्जयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे ।
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर्हनिष्यति न संशयः ॥ २८ ॥
तथाऽर्जुनं च राधेयो हनिष्यति महारथः ।
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः ॥ २९ ॥
शेषांश्च पाण्डवान्योधाः प्रसभं हीनतेजसः ।

कोई मिलकर अत्यन्त ही यत्नवान् होके सावधानीके साथ शत्रुओंको मारनेवाले द्रोणाचार्यकी रक्षा करो॥ महाबली प्रतापी द्रोणाचार्य अत्यन्त ही हस्तलाघवके सहित अस्त्र शस्त्रोंको चला सकते हैं। द्रोणाचार्यके क्रुद्ध होनेपर सोमकवंशियोंके सहित पाण्डुपुत्रोंकी तो बात ही क्या है, पराक्रमी आचार्य अपने अस्त्रशस्त्रोंके बलसे देवताओंको भी जीत सकते हैं॥ (२२—२४)

हे महारथी शूरवीर पुरुषो! इससे तुम लोग सब कोई इकट्ठे होकर सब भांतिसे यत्नपूर्वक महाबलवान् धृष्टद्युम्नसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करो॥ हे राजा लोगो! पाण्डवोंकी सेनाके बीच में धृष्टद्युम्नको छोडके और ऐसे दूसरे किसी पुरुषको भी नहीं देखता हूं कि जो द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध कर सके॥ इससे सब प्रकार यत्नपूर्वक भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यकी रक्षा करना मैं बहुत ही उत्तम कार्य समझता हूं। वह रक्षित होनेसे ही सोमकवंशी क्षत्रियों तथा सृञ्जयोंका नाश कर सकेंगे। (२५—२७)

व्यूहके दरवाजेपर सम्पूर्ण सृञ्जय योद्धाओंके मरे जानेपर अश्वत्थामा अवश्य ही धृष्टद्युम्नका वध करेंगे॥ महावीर कर्ण अर्जुनका नाश करेंगे और मैं स्वयं युद्धभूमिमें भीमसेनको पराजित करूंगा, तिसके अनन्तर तेजरहित शेष पाण्डवोंको हमारी सेनाके योद्धा लोग

सोऽयं मम जयो व्यक्तो दीर्घकालं भविष्यति ॥३०॥
तस्माद्रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथम् ।
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ३१ ॥
व्यादिदेश तथा सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे ।
ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम ॥ ३२ ॥
उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया ।
अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनं चापि कौरवाः ॥ ३३ ॥
नानाशस्त्रसमावापैरन्योन्यं समपीडयन् ।
द्रौणिः पञ्चालराजं च भारद्वाजश्च सृञ्जयान् ॥ ३४ ॥
छादयाञ्चक्रिरे संख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणां च भारत ॥ ३५ ॥
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम् ।
नैवाऽस्माभिस्तथा पूर्वैर्दृष्टपूर्वं तथाविधम् ॥ ३६ ॥
श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद्रौद्रं भयानकम् ॥ ३७ ॥ [७३६८]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४

ही नाश कर देंगे। ऐसा होनेसे ही बहुत दिनोंके वास्ते स्पष्टरूपसे मेरी जय होवेगी। इससे युद्धभूमिमें तुम लोग सबसे पहिले द्रोणाचार्यकी ही रक्षा करो। (२८–३१)

हे भरतर्षभ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने ऐसा वचन कहके जब उस महाघोर रात्रिके समय सेनाके पुरुषोंको युद्ध करनेके वास्ते आज्ञा दिया; तब उस भयानक रात्रिके समय विजयकी इच्छासे दोनों सेनाके योद्धाओंका आपसमें महाघोर युद्ध होने लगा॥ अर्जुन कौरवोंकी सेनाको और कुरुसेनाके योद्धा लोग अर्जुनको अपने अस्त्रशस्त्रोंसे पीडित करने लगे। (३१—३४)

इस ही समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पाञ्चालराजको और पराक्रमी द्रोणाचार्य सृञ्जयों को अपने अनगिनत तीक्ष्ण बाणोंसे छिपाने लगे। महाराज! इसी भांति जब पाण्डव पाञ्चाल और कुरु-सेनाके योद्धा लोग आपसमें युद्ध करने लगे, तब उस समय महाघोर कोलाहल होने लगा। उस रात्रि के समय उन दोनों ओरके योद्धाओंका जैसा भयङ्कर युद्ध हुआ वैसा संग्राम पूर्वपुरुष लोग और हम लोगोंने न कभी देखा और न सुना ही था॥ (३४—३७)[७३६८]

द्रोणपर्वमें एकसौ चौसठ अध्याय समाप्त।

सञ्जय उवाच— वर्तमाने तदा रौद्रे रात्रियुद्धे विशाम्पते ।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
अब्रवीत्पाण्डवांश्चैव पञ्चालांश्चैव सोमकान् ।
अभिद्रवत संयात द्रोणमेव जिघांसया ॥ २ ॥
राज्ञस्ते वचनाद्राजन्पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
द्रोणमेवाऽभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ३ ॥
तं तु ते प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्त्वमर्षिताः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं च संयुगे ॥ ४ ॥
कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ।
द्रोणं प्रति समायान्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५ ॥
शैनेयं शरवर्षाणि विकिरन्तं समन्ततः ।
अभ्ययात्कौरवो राजन्भूरिः संग्राममूर्धनि ॥ ६ ॥
सहदेवमथाऽऽयान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
कर्णो वैकर्तनो राजन्वारयामास पाण्डवम् ॥ ७ ॥
भीमसेनमथाऽऽयान्तं व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।

द्रोणपर्वमें एकसौ पैंसठ अध्याय ।

सञ्जय बोले ! महाराज ! जब सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाले रात्रिके समय महाघोर संग्राम होने लगा, तब धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पाण्डव पाञ्चाल और सोमकवंशीय योद्धाओंको आज्ञा दिया, हे शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग सावधानीके सहित शीघ्रही द्रोणाचार्यकी ओर दौडो ॥ हे राजेन्द्र ! पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग राजा युधिष्ठिरकी आज्ञाको सुनके भयङ्कर शब्दके सहित सिंहनाद करते हुए द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ (१–३)

उन योद्धाओंको अपनी ओर बढे आते देख हम लोग भी पराक्रम उत्साह और शक्तिके अनुसार गर्जते हुए उन लोगोंके सम्मुख उपस्थित हुए । महाराज ! उस ही समय राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छासे उनकी ओर गमन करने लगे । अनन्तर जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीकी ओर दौडता है वैसेही हृदीकपुत्र कृपवर्मा राजा युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ इसी भांति रणभूमिमें स्थित शिनिपौत्र सात्यकिको चारों ओर बाण वर्षाते देख कुरुवंशीय पराक्रमी भूरि उनके संमुख उपस्थित हुए ॥ (४–६)

अनन्तर महारथ सात्यकिको द्रोणाचार्यकी ओर आते देख विकर्तन पुत्र

स्वयं दुर्योधनो राजा प्रतीपं मृत्युमाव्रजत् ॥ ८ ॥
नकुलं च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् ।
शकुनिः सौबलो राजन्वारयामास सत्वरः ॥ ९ ॥
शिखण्डिनमथाऽऽयान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
कृपः शारद्वतो राजन्वारयामास संयुगे ॥ १० ॥
प्रतिविन्ध्यमथाऽऽयान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत् ॥ ११ ॥
भैमसेनिमथाऽऽयान्तं मायाशतविशारदम् ।
अश्वत्थामा महाराज राक्षसं प्रत्यषेधयत् ॥ १२ ॥
द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम् ।
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ॥ १३ ॥
विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति ।
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १४ ॥
शतानीकमथाऽऽयान्तं नाकुलिं रभसं रणे ।
चित्रसेनो रुरोधाऽऽशु शरैर्द्रोणपरीप्सया ॥ १५ ॥

कर्णने उसे निवारण किया तथा मुख बाये हुए यमराज और साक्षात् मृत्युकी भाँति सम्मुख आये हुए भीमसेनको राजा दुर्योधन स्वयं निवारण करने लगे। सम्पूर्ण युद्धविद्या जाननेवाले योद्धाओंमें मुख्य नकुलको सुबलपुत्र शकुनि युद्धभूमिमें सत्वर निवारण करने लगे ॥ (७-९)

द्रोणाचार्यके वधकी अभिलाषासे उनके सम्मुख उपस्थित हुए महारथी शिखण्डीको शरद्वतपुत्र कृपाचार्य निवारण करने लगे ॥ मयूरवर्णवाले घोडोंसे युक्त प्रतिविन्ध्यको संमुख आया देख महारथ दुःशासन उन्हें निवारण करने में प्रवृत्त हुए ॥ सैकडों राक्षसी माया जानने वाले भीमसेनपुत्र घटोत्कचको द्रोणाचार्यकी ओर आते देख, पराक्रमी अश्वत्थामा उसे युद्धभूमिमें निवारण करने लगे ॥ (१०-१२)

अनुयायी और सेनाके सहित महारथ द्रुपदको द्रोणाचार्यके संमुख आते देख महारथ वृषसेन उन्हें निवारण करने लगे॥ महाराज ! द्रोणाचार्यके वधके लिये राजा विराटको उनकी ओर आते देख मद्रराज शल्य क्रुद्ध होकर विराटकी ओर दौडे ॥ नकुलपुत्र शतानीकको वेगपूर्वक द्रोणाचार्यकी ओर आते देख पराक्रमी चित्रसेनने शीघ्रताके सहित

अर्जुनं च युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम्।
अलम्बुषो महाराज राक्षसेन्द्रो न्यवारयत् ॥ १६ ॥
तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं शात्रवान्रणे।
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत् ॥ १७ ॥
तथाऽन्यान्पाण्डुपुत्राणां समायातान्महारथान्।
तावका रथिनो राजन्वारयामासुरोजसा ॥ १८ ॥
गजारोहा गजैस्तूर्णं सन्निपत्य महामृधे।
योधयन्तश्च मृद्नन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥
निशीथे तुरगा राजन्द्रावयन्तः परस्परम्।
समदृश्यन्त वेगेन पक्षवन्तो यथाऽद्रयः ॥ २० ॥
सादिनः सादिभिः सार्धं प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः।
समागच्छन्महाराज विनदन्तः पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥
नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम्।
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ २२ ॥

उन्हें निवारण किया ॥ (१३-१५)

शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यकी ओर आते हुए योद्धाओंमें मुख्य महारथी अर्जुनको राक्षसराज अलम्बुष निवारण करने लगे ॥ उसही समय धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी पराक्रमी द्रोणाचार्य जब शत्रुओंके नाश करनेमें प्रवृत्त हुए तब उन्हें पाञ्चालराजके पुत्र पराक्रमी धृष्टद्युम्न निवारण करने लगे ॥ १६-१७

महाराज ! इसी भांति पाण्डवोंकी ओरके जिन महारथी योद्धाओंने द्रोणाचार्यके समीप गमन किया, उन्हें तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा पराक्रम के सहित यत्नवान् होकर युद्धभूमिमें निवारण करने लगे । उस महाभयङ्करी रात्रिके समय सैकडों सहस्रों गजसवार योद्धालोग गजपतियोंकी ओर दौड कर युद्ध करते हुए दीख पडते थे, घुडसवार योद्धा लोग अपने घोडों पर चढे हुए एक दूसरी सेनाकी ओर दौडते और युद्ध करते हुए इस प्रकार युद्धभूमिमें शोभित होते थे जैसे दोनों ओर पङ्खवाले दो पर्वत दीख पडते हैं ॥ (१८-२०)

प्रास, शक्ति और ऋष्टि ग्रहण करने वाले घुडसवार योद्धालोग भयंकर सिंहनाद करते हुए युद्ध करनेके वास्ते घुडसवारोंके संमुख उपस्थित हुए। उस ही भांति पैदल चलनेवाले योद्धालोग भी गदा और मूषल आदि नाना भांतिके शस्त्रोंको ग्रहण करके आपसमें एक दूसरे

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्धृत्तमर्णवम् ॥ २३ ॥
युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २४ ॥
कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ २५ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः ।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ २६ ॥
माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष ।
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चाऽर्दयच्छरैः ॥ २७ ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा हस्तावापं निकृत्य च ।
प्राहिणोन्निशितान्बाणान्पञ्च राजञ्छिलाशितान् ॥ २८ ॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम् ।
प्राविशन्धरणीं भित्त्वा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ २९ ॥
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।

के संमुख उपस्थित होकर युद्ध करने लगे ॥ (२१–२२)

उस समय हृदीकपुत्र कृतवर्माने राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार निवारण किया जैसे तट समुद्रके वेगको रोकता है ॥ युधिष्ठिरने भी पांच बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध करके फिर खडा रह ! खडा रह ! कहके वीस बाणोंसे विद्ध किया ॥ तब कृतवर्माने अत्यन्त क्रुद्ध होकर भल्लास्त्रसे राजा युधिष्ठिरका धनुष काट दिया, और शीघ्रताके सहित उन्हें सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ (२३–२५)

राजा युधिष्ठिरने दूसरा धनुष ग्रहण करके दश बाणोंसे कृतवर्माके भुजा और वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ महाराज ! यदुवंशीय कृतवर्मा युधिष्ठिरके बाणोंसे विद्ध होकर क्रोधसे कांपने लगे और सात तीक्ष्ण बाणोंसे धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पीडित किया ॥ पृथापुत्र युधिष्ठिरने अपने तेज बाणोंसे कृतवर्माके धनुष और हस्तत्राणको काट दिया; फिर शिला पर घिसे हुए पांच तीक्ष्ण बाणोंसे कृतवर्माके शरीरमें प्रहार किया ॥ जैसे सर्प बिलके भीतर प्रवेश करते हैं वैसे ही युधिष्ठिरके धनुषसे छूटे हुए वे चोखे बाण कृतवर्माके सुवर्ण चित्रित महामूल्यवान कवचको काटके पृथ्वीमें घुस गये ॥ (२६–२९)

कृतवर्माने निमेष भरमें दूसरा धनुष

विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ३० ॥
तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोपमाम् ।
चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद्धनुः ॥ ३१ ॥
सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद्धरणीतलम् ॥ ३२ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः ।
हार्दिक्यं छादयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३३ ॥
ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद्युधिष्ठिरम् ॥ ३४ ॥
ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गचर्म समाददे ।
तदस्य निशितैर्बाणैर्व्यधमन्माधवो रणे ॥ ३५ ॥
तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् ।
अप्रैषीत्समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥
तमापतन्तं सहसा धर्मराजभुजच्युतम् ।
द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव ॥ ३७ ॥

चढाकर राजा युधिष्ठिरको साठ और उनके सारथीको नौ बाणोंसे विद्ध किया॥ तब पराक्रमी महात्मा युधिष्ठिरने अपना बडा धनुष रथमें रख कर सर्पके समान रूपवाली एक शक्ति ग्रहण करके कृत-वर्माकी ओर चलायी ॥ युधिष्ठिरके हाथसे छूटी हुई वह सुवर्णभूषित भय-ङ्करी शक्ति कृतवर्माकी दहिनी भुजाको छेद करके पृथ्वीमें गिर पडी॥(३०-३२

उस ही समय धर्मराज युधिष्ठिर फिर अपना धनुष ग्रहण करके तीक्ष्ण बाणों-से कृतवर्माको छिपाने लगे ॥ तिसके अनन्तर रथियोंमें मुख्य वृष्णिवंशीय महाबलवान् कृतवर्माने निमेष भर में राजा युधिष्ठिरके रथके घोडे और सार-थीको प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ घोडे और सारथीको मरते देख धर्मराज युधिष्ठिरने ढाल तलवार ग्रहण किया; यदुवंशियोंमें मुख्य कृत-वर्माने उस ही समय उनके ढाल तल-वारको अपने तेज बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (३३—३५)

ढाल तलवारको कटते देख राजा युधिष्ठिरने शीघ्रताके सहित एक भयङ्कर तोमर ग्रहण करके कृतवर्माकी ओर चलाया ॥ युधिष्ठिरके हाथसे छूटे हुए तोमरको अपनी ओर आते देख हृदीक पुत्र कृतवर्माने हस्तलाघवके सहित निर्भ-

ततः शरशतेनाऽऽजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् ।
कवचं चाऽस्य संक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरदारयत् ॥ ३८ ॥
हार्दिक्यशरसंछन्नं कवचं तन्महाधनम् ।
व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवाऽम्बरात् ॥ ३९ ॥
स च्छिन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरार्दितः ।
अपायासीद्रणात्तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४० ॥
कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महात्मनः ॥ ४१ ॥ [७४०९]

इति श्रीमहा० द्रोण० घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे युधिष्ठिरापयाने नाम पंचषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६५

सञ्जय उवाच— भूरिस्तु समरे राजञ्शैनेयं रथिनां वरम् ।
आपतन्तमपासेधत्प्रपाणादिव कुञ्जरम् ॥ १ ॥
अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तस्य प्रास्रवत्तस्य शोणितम् ॥ २ ॥
तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् ।

यचित्तसे अपने बाणोंसे उसे दो टुकडे कर के पृथ्वीमें गिरा दिया॥ अनन्तर कृतवर्माने अत्यन्तही क्रुद्ध होकर रण भूमिमें स्थित धर्मपुत्रराजा युधिष्ठिर को सैकडों बाणोंसे छिपाकर अपने तेज बाणोंसे उनका कवच काट दिया॥ (३६–३८)

महाराज ! राजा युधिष्ठिर का मूल्यवान् कवच हृदीकपुत्र कृतवर्माके अनगिनत बाणोंसे कटके इस प्रकार रणभूमिमें गिरके प्रकाशित होने लगा, जैसे आकाशसे गिरते हुए तारोंके समूह शोभित होते हैं ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर कृतवर्माके अस्त्रोंसे रथभ्रष्ट धनुषरहित तथा कवचसे हीन होकर उनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित हुए और शीघ्रताके सहित वहांसे भाग गये ॥ महाबलवान् कृतवर्मा इसी भांति धर्मराज युधिष्ठिर को पराजित करके फिर द्रोणाचार्यकी चक्ररक्षा करने में प्रवृत्त हुए॥ ३९-४१

द्रोणपर्वमें एकसौ पैंसठ अध्याय समाप्त। ७४०९

द्रोणपर्वमें एकसौ छासठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! कुरुवंशीय भूरि द्रोणाचार्यकी ओर सात्यकि को आते देख उन्हें इस प्रकार निवारण करने लगे जैसे मतवारा हाथी ऊंची भूमिसे धीरे धीरे नीचे उतरता है ॥ शिनिपौत्र सात्यकिने क्रुद्ध होकर पांच तेज बाणोंसे भूरिके हृदयमें प्रहार किया, उससे भूरिके वक्षस्थलसे उसही समय रुधिर बहने लगा ॥ तिसके अनन्तर

दशभिर्निशितैस्तीक्ष्णैरविध्यत भुजान्तरे ॥ ३ ॥
तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम् ।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद्विस्फार्य कार्मुके ॥ ४ ॥
तयोरासीन्महाराज शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ।
क्रुद्धयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥ ५ ॥
तावन्योन्यं शरै राजन्संछाद्य समवस्थितौ ।
मुहूर्तं चैव तद्युद्धं समरूपमिवाऽभवत् ॥ ६ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव ।
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ८ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।
धनुरन्यत्समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ॥ ९ ॥
स विध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशाम्पते ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १० ॥

पराक्रमी भूरिने भी दशबाणोंसे युद्धदुर्मद सात्यकिके वक्षस्थल में प्रहार किया । (१—३)

महाराज ! इसी भांति वे दोनों पराक्रमी वीर क्रोधसे नेत्र लाल करके धनुष फेरते हुए दूसरेके शरीरको अपने तेज बाणोंके प्रहारसे क्षत-विक्षत करने लगे ॥ उस समय लगातार बाण चलानेवाले यमराज तथा मृत्युकी भांति क्रोधी भूरि और सात्यकि के भयङ्कर बाणोंकी वर्षा होती हुई दीख पडने लगी ॥ जब युद्धभूमिमें स्थित वे दोनों वीर एक दूसरेको अपने बाणोंसे छिपाने लगे, उस समय मुहूर्त भर तक उन दोनों वीरोंका संग्राम समभावसे ही होता रहा ॥ (४—६)

तिसके अनन्तर शिनिपौत्र सात्यकिने क्रुद्ध होकर मानो हंसके ही महात्मा कुरुवंशीय भूरिके धनुषको काट दिया फिर खडा रह ! खडा रह ! कहके अपने नौ तेज बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार किया ॥ शत्रुनाशन भूरि बलवान् सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध होकर कटा हुआ धनुष त्याग कर दूसरा धनुष ग्रहण करके फिर सात्यकिको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ७–९

हे राजेन्द्र ! कुरुवंशीय भूरिने अपने तीन बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके

छिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ।
प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११ ॥
स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् ।
लोहिताङ्ग इवाऽऽकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ १२ ॥
तं तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः ।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥ १३ ॥
तिष्ठतिष्ठेति चाऽऽभाष्य शैनेयं स नराधिप ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाऽम्बुदः ॥ १४ ॥
तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति ।
घटोत्कचोऽब्रवीद्राजन्नादं मुक्त्वा महारथः ॥ १५ ॥
तिष्ठतिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
एष त्वां निहनिष्यामि महिषं षण्मुखो यथा ॥ १६ ॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा ॥ १७ ॥
द्रौणिमभ्यद्रवत्क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ।

एक तेज भल्लास्त्रसे उनका धनुष काट दिया ॥ धनुष कटने पर सात्यकिने क्रोधसे मूर्छित होकर एक शक्ति चला कर भूरिके हृदयमें प्रहार किया ॥ महाराज ! पराक्रमी भूरि सात्यकीके हाथसे छूटी हुई उस ही शक्तिकी चोट से प्राणरहित होकर अपने उत्तम रथसे इस प्रकार पृथ्वी पर गिरके प्रकाशित हुए मानो आकाशमण्डलसे प्रकाशमान मङ्गल ग्रह पृथ्वी पर गिरे हुए प्रकाशित होरहे हैं ॥ (१०—१२)

महारथी अश्वत्थामा युद्धभूमिमें पराक्रमी भूरिको मरते देख शीघ्रताके सहित सात्यकिकी ओर दौडे और खडा रह ! खडा रह ! कहके सात्यकिके ऊपर इस प्रकार अपने बाणोंको वर्षाने लगे जैसे बादल आकाशसे मेरुपर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं ॥ रथियोंमें मुख्य पराक्रमी घटोत्कच अश्वत्थामाको क्रोधपूर्वक सात्यकिकी ओर गमन करते देख ऊंचे स्वरसे उनसे यह वचन कहने लगा,–हे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ! आज तुम जीते हुए मेरे समीपसे गमन नहीं कर सकोगे । जैसे स्कन्दराजने महिषासुरका वध किया था, वैसे ही मैं भी युद्धभूमिमें तुम्हारी युद्धकी अभिलाषाको पूरी करके आज ही तुम्हारा वध करूंगा। १३–१७

शत्रुनाशन राक्षस घटोत्कच ऐसा

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ॥ १८ ॥
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ।
शरवृष्टिं तु तां प्राप्तां शरैराशीविषोपमैः ॥ १९ ॥
शातयामास समरे तरसा द्रौणिरुत्स्मयन् ।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ॥ २० ॥
समाचिनोद्राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिन्दमम् ।
स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्धनि ॥ २१ ॥
व्यकाशत महाराज श्वाविच्छललतो यथा ।
ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान् ॥ २२ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिप्रभैः ।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैः सशिलीमुखैः ॥ २३ ॥
वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चाऽभ्यवीवृषत् ।
तां शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ॥ २४ ॥
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः ।

वचन कहके क्रोधसे नेत्र लाल करके इस प्रकार अश्वत्थामाकी ओर दौडा, जैसे क्रुद्ध सिंह मतवारे हाथीकी ओर दौडता है। अनन्तर राक्षस घटोत्कच अश्वत्थामाके ऊपर अपने मोटे मोटे तेज बाणोंको इस प्रकार चलाने लगा, जैसे बादल आकाशसे पृथ्वीके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं। (१७—१९)

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने घटोत्कचके चलाये हुए बाणोंको खेलवाडकी भांति अपने तेज बाणोंसे निवारित किया। तिसके अनन्तर पराक्रमी अश्वत्थामा शत्रुओंके नाश करनेवाले राक्षसराज घटोत्कचको सैकडों बाणोंसे पीडित करने लगे। भीमसेनपुत्र प्रतापी घटोत्कचका शरीर अश्वत्थामाके बाणोंसे परिपूरित होकर इस प्रकार शोभित होने लगा, जैसे कांटोंसे युक्त शल्यकी शोभित होती है। (१९—२२)

फिर घटोत्कच अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर क्षुरप्र, अर्द्धचन्द्र, नाराच, वराहकर्ण, नालिक, सुतीक्ष्ण और विकर्ण इत्यादि वज्रके समान अनेक शस्त्रों और अनगिनत बाणोंको चलाकर अश्वत्थामाके शरीरको क्षत विक्षत करने लगा; वे वज्रके समान शब्दसे युक्त अत्यन्त भयङ्कर बाण लगातार अश्वत्थामाके ऊपर पडने लगे। अनन्तर जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंके समूहको छिन्नभिन्न कर देता है, वैसे ही पराक्रमी अश्वत्थामाने

स दुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ २५ ॥
व्यधमत्सुमहातेजा महाभ्राणीव मारुतः ।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाऽभवत् ॥२६॥
घोररूपो महाराज योधानां हर्षवर्धनः ।
ततोऽस्त्रसङ्घर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समन्ततः ॥ २७ ॥
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ।
स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः ॥ २८ ॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवाकिरत् ।
ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ॥ २९ ॥
विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रह्लादयोरिव ।
ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे ॥ ३० ॥
जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसन्निभैः ।
स तैरभ्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः ॥ ३१ ॥
चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः ।
स मोहमनुसम्प्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ३२ ॥

अपने अनेक भयङ्कर बाणोंको चलाकर घटोत्कचके चलाये हुए बाणोंको निवारण किया। (२२—२६)

उससे ऐसा मालूम हुआ, कि मानो आकाशमण्डलमें शूरवीर योद्धाओंके हर्षको बढानेवाला बाणयुद्ध हो रहा है। उन बाणोंके आपसमें रगड खानेसे उनसे अग्निकी चिनगारी प्रकट होके इधर उधर गिरती हुई इस प्रकार दिखाई देने लगीं;—जैसे रात्रिके समय उडते हुए खद्योतोंके समूह शोभित होते हैं॥ महाराज! उस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्रोंके प्रियकार्यको पूर्ण करनेकी इच्छा करके अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाको परिपूरित करके घटोत्कचको तेज बाणोंसे पीडित करने लगे। इसी प्रकार उस महाघोर रात्रिके समय इन्द्र और प्रह्लादकी भांति पराक्रमी अश्वत्थामा और राक्षसराज घटोत्कचका महाघोर संग्राम होने लगा। (२६-३०)

अनन्तर घटोत्कचने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मृत्युके समान भयङ्कर दश बाणोंसे अश्वत्थामाके वक्षस्थलमें प्रहार किया। महाराज! द्रोणपुत्र पराक्रमी अश्वत्थामा घटोत्कचके अत्यन्त चोखे बाणोंसे विद्ध होकर वायुके वेगसे कम्पित होते हुए वृक्षकी भांति विचलित हुए। उस समय अश्वत्थामा घटोत्कचके बाणोंकी

ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप।
हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशाम्पते ॥ ३३ ॥
तं तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ ३४ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महाबलः।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणाऽमित्रकर्शनः ॥ ३५ ॥
मुमोचाऽऽकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम्।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याऽऽशु घटोत्कचम् ॥ ३६ ॥
स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः।
विवेश वसुधामुग्रः सपुङ्खः पृथिवीपते ॥ ३७ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत्।
राक्षसेन्द्रः सुबलवान्द्रौणिना रणशालिना ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं सारथिस्तु रणाजिरात्।
द्रौणेः सकाशात्सम्भ्रान्तस्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः ॥ ३९ ॥
तथा तु समरे विध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम्।
ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ४० ॥

चोटसे मोहित होके रथदण्ड पकडके रथपर स्थित हुए ॥ (३०–३२)

उस समय तुम्हारी ओरके योद्धा लोग हाहाकार शब्दके सहित महाघोर कोलाहल करने लगे और सेनापतियोंने समझा कि अश्वत्थामा मारे गये॥ उस ही समय पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग अश्वत्थामाको मूर्च्छित देख, हर्षित होके सिंहनाद करने लगे। इतने ही समयमें शत्रुनाशन अश्वत्थामाने सावधान होकर बायें हाथसे अपने प्रचण्ड धनुषकी मूठीको दृढताके सहित ग्रहण किया और शीघ्र ही यमदण्डके समान भयङ्कर एक बाण धनुषपर रखके कान पर्यन्त धनुष खींचके घटोत्कचकी ओर चलाया। वह भयङ्कर बाण राक्षसराज घटोत्कचके हृदयको भेदकर शीघ्रताके सहित पृथ्वीमें घुस गया ॥ ३३-३७

महाबली राक्षसेन्द्र घटोत्कच अश्वत्थामाके बाणकी चोटसे अत्यन्त विकल होके रथमें बैठ गया॥ उसके सारथीने उसे मूर्च्छित देख भयभीत होकर शीघ्रताके सहित रथ हांकके अश्वत्थामाके समीपसे प्रस्थान किया॥ महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा राक्षसेन्द्र घटोत्कचको इसी भांति मूर्च्छित करके ऊंचे स्वरसे सिंह-

पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत ।
वपुषाऽतिप्रजज्वाल मध्याह्न इव भास्करः ॥ ४१ ॥
भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ ४२ ॥
तं भीमसेनो दशभिः शरैर्विव्याध मारिष ।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत ॥ ४३ ॥
तौ सायकैरवच्छिन्नावदृश्येतां रणाजिरे ।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ ॥ ४४ ॥
अथ दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ४५ ॥
तस्य भीमो धनुश्छित्वा ध्वजं च दशभिः शरैः ।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४६ ॥
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो धनुरन्यन्महत्तरम् ।
गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शितैः शरैः ।
अपीडयद्रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४७ ॥
तान्निहत्य शरान्भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् ।

नाद करने लगे ॥ महाराज ! उस समय पराक्रमी अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्र और सम्पूर्ण योद्धाओंसे प्रशंसित होकर अपने शरीरसे इस प्रकार प्रकाशित होने लगे जैसे दोपहरके सूर्य अपने तेजसे प्रकाशित होते हैं ॥ (३८—४१)

इधर द्रोणाचार्यके समीप भीमसेन को युद्ध में प्रवृत्त देखकर राजा दुर्योधन स्वयं उन्हें अपने चोखे बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ भीमसेनने भी उन्हें दश बाणोंसे विद्ध किया, तब दुर्योधनने फिर बीस बाणोंसे भीमसेनके शरीरमें प्रहार किया ॥ रणभूमिमें वे दोनों वीर एक दूसरेके बाणजाल में इस प्रकार छिप गये, जैसे बादलोंके समूह में घिरे हुए सूर्य और चन्द्रमा दीख पडते हैं ॥ (४२-४४)

तिसके अनन्तर राजा दुर्योधनने भीमसेनको खडा रह ! खडा रह! कहके उन्हें पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ तब भीमसेनने दश बाणोंसे उनका धनुष और रथदण्ड काटके नव्वे बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ अनन्तर राजा दुर्योधनने क्रुद्ध होकर एक दृढ-धनुष ग्रहण किया और सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके संमुखमेंही भीमसेनको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ४५-४७

कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४८ ॥
दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा दशभिः प्रत्यविध्यत ॥ ४९ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो महाबलः।
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः ॥ ५० ॥
तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघुहस्तवत्।
द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा ॥ ५१ ॥
आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत्।
तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः ॥ ५२ ॥
स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः।
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारसवीं शुभाम् ॥ ५३ ॥
मृत्योरिव स्वसारं हि दीप्तां वह्निशिखामिव।
सीमन्तमिव कुर्वन्तीं नभसोऽग्निसमप्रभाम् ॥ ५४ ॥
अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः।
पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ५५ ॥

भीमसेनने दुर्योधनके धनुषसे छूटे हुए वाणोंको निवारण करके उन्हें पचीस क्षुद्रकाक्षसे पीडित किया॥ महाराज! दुर्योधनने अत्यन्त क्रुद्ध होके क्षुरप्रअस्त्र-से भीमसेनका धनुष काटकर उन्हें दश वाणोंसे विद्ध किया॥ महाबली भीम-सेनने शीघ्रही दूसरे धनुष पर रोंदा चढाया और शीघ्रताके सहित सात चोखे वाणोंसे कुरुराज दुर्योधनको विद्ध किया। महाराज! तुम्हारे पुत्र विजयी श्रेष्ठ परा-क्रमी दुर्योधनने उस ही समय हस्तला-घवके सहित वाण चलाकर भीमसेनके सउ धनुषको भी काटके गिरा दिया; इसी भांति दूसरे, तीसरे, चौथे पांचवें तथा जितनी वार भीमसेनने कटे धनुष को त्यागके अन्य धनुष ग्रहण किया, दुर्योधनने वार वार उनके धनुषको काट काटके पृथ्वीमें गिराया॥ (४८-५२)

उस समय वार वार दुर्योधनके वाणोंसे अपने धनुषोंको कटते देख, भीमसेनने लोहमयी एक दृढ शक्ति ग्रहण करके दुर्योधनकी ओर चलायी॥ महाराज! आकाशमण्डलमें जलते हुए लुककी भांति उस महाभयङ्करी शक्तिको समीप न पहुंचते ही पहुंचते दुर्योधनने महात्मा भीमसेन और सम्पूर्ण योद्धाओंके संमुख में ही उसे अपने वाणोंसे दो टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया॥ (५३-५५)

ततो भीमो महाराज गदां गुर्वी महाप्रभाम् ।
चिक्षेपाऽऽविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति ॥ ५६ ॥
ततः सा सहसा वाहांस्तव पुत्रस्य संयुगे ।
सारथिं च गदा गुर्वी ममर्दाऽस्य रथं पुनः ॥ ५७ ॥
पुत्रस्तु तव राजेन्द्र भीमाद्भीतः प्रणश्य च ।
आरुरोह रथं चाऽन्यं नन्दकस्य महात्मनः ॥ ५८ ॥
ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् ।
सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन्निति कौरवान् ॥ ५९ ॥
तावकाः सैनिकाश्चाऽपि मेनिरे निहतं नृपम् ।
ततोऽतिचुक्रुशुः सर्वे ते हाहेति समन्ततः ॥ ६० ॥
तेषां तु निनदं श्रुत्वा त्रस्तानां सर्वयोधिनाम् ।
भीमसेनस्य नादं च श्रुत्वा राजन्महात्मनः ॥ ६१ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् ।
अभ्यवर्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥ ६२ ॥
पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्च विशाम्पते ।

उसे देखकर भीमसेनने एक प्रकाशमान लोहमयी भारी गदाको घुमाके दुर्योधनके रथ पर फेंक दिया। महाराज! वह अत्यन्त ही भारी गदा भीमसेनके हाथसे छूट कर कुरुराज दुर्योधनके रथपर गिरी और उस गदाकी चोटसे दुर्योधनका सारथी और उनके रथके घोडे प्राणरहित होकर गिर पडे; तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन उस सुवर्णभूषित रथसे कूद कर नन्दकके रथपर चढ गये॥ (५६-५८)

परन्तु भीमसेन दुर्योधनको मरा हुआ समझके कौरवोंके बीच बार बार गर्जतेहुए सिंहनाद करने लगे, भीमसेन का गर्जना तथा उनके सिंहनादको सुनकर तुम्हारी ओरके भी बहुतेरे वीरोंने समझा, कि कुरुराज दुर्योधन मारेगये; ऐसा समझके तुम्हारी सेनाके पुरुष हाहाकार शब्दके सहित चारों ओरसे महाघोर कोलाहल मचाने लगे॥ (५९-६०)

राजायुधिष्ठिरने भयसे व्याकुल कौरवी सेनाके योद्धाओंके हाहाकार शब्द और महात्मा भीमसेनके सिंहनादको सुन कर दुर्योधनको मरा हुआ जाना और जिस स्थलपर भीमसेन रणभूमिमें स्थित थे राजा युधिष्ठिर शीघ्रताके सहित उस ही स्थान पर उपस्थित हुए॥ (६१-६२)

अनन्तर पाञ्चाल केकय सृञ्जय और मत्स्यदेशीय योद्धालोग सब भांतिसे

सर्वोद्योगेनाऽभिजग्मुर्द्रोणमेव युयुत्सया ॥ ६३ ॥
तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं द्रोणस्याऽथ परैः सह ।
घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ ६४ ॥ [७४७३]

इति श्रीमहाभारते०द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनापयाने षट्षष्टयधिकशततमोऽध्यायः१६६

सञ्जय उवाच— सहदेवमथाऽऽयान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १ ॥
सहदेवस्तु राधेयं विध्वा नवभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥
तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् ।
सज्यं चाऽस्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ३ ॥
ततोऽन्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४ ॥
तस्य कर्णो हयान्हत्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ॥ ५ ॥
विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे ।

बलवान् होकर द्रोणाचार्यकी ओर गमन करने लगे ॥ अनन्तर उस भयङ्करी रात्रिके समय जब दोनों सेनाके पुरुष आपसमें युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, तब शत्रुओंके सङ्ग द्रोणाचार्यका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ (६३–६४)[७४७३]

द्रोणपर्वमें एकसौ छासठ अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ सँसठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! युद्धभूमिमें स्थित विकर्त्तन पुत्र कर्ण सहदेवको द्रोणाचार्यकी ओर गमन करते देख उन्हें निवारण करने लगे ॥ सहदेवने राधानन्दन कर्णको नौ बाणोंसे विद्ध करके फिर शीघ्रताके सहित दश बाणोंसे विद्ध किया !! कर्णने भी एक सौ बाणोंसे सहदेवको विद्ध करके शीघ्रतापूर्वक रोदेके सहित उनका धनुष काट दिया ॥ १–३

धनुष कटनेपर माद्रीपुत्र सहदेवने दूसरा धनुष ग्रहण करके बीस बाणोंसे कर्णको विद्ध किया उस समय सहदेवका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ तब कर्णने क्रुद्ध होकर अपने तेज बाणोंसे सहदेवके रथके घोडोंको प्राणरहित करके उनके सारथीको भी एक भल्लास्त्रसे मारकर यमपुरीमें भेज दिया । महाराज ! रथसे रहित होनेपर माद्रीपुत्र सहदेवने ढाल तलवार ग्रहण किया; कर्णने उनके ढाल तलवारको भी खेलवाडकी

तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत्प्रहसन्निव ॥ ६ ॥
अथ गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्तनरथं प्रति ॥ ७ ॥
तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रचोदिताम् ।
व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ॥ ८ ॥
गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याऽच्छिनच्छरैः ॥ ९ ॥
ससंभ्रमं ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम् ॥ १० ॥
रथचक्रं प्रगृह्याऽऽजौ मुमोचाऽऽधिरथं प्रति ।
तदापतद्वै सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ॥ ११ ॥
शरैरनेकसाहस्रैराच्छिनत्सूतनन्दनः ।
तस्मिंस्तु निहते चक्रे सूतजेन महात्मना ॥ १२ ॥
ईषादण्डकयोक्त्रांश्च युगानि विविधानि च ।
हस्त्यङ्गानि तथाऽश्वांश्च मृतांश्च पुरुषान्बहून् ॥ १३ ॥
चिक्षेप कर्णमुद्दिश्य कर्णस्तान्व्यधमच्छरैः ।

भाँति अपने तेज बाणोंसे काटके गिरा दिया ॥ (४—६)

अनन्तर सहदेवने सोनेके तारोंसे खचित एक भयङ्करी और भारी गदाको कर्णकी ओर चलाया, सहदेवकी भुजासे छूटी हुई उस गदाको अपनी ओर आती देख कर्णने बाणोंको चलाकर उसे मार्गही में रोकके पृथ्वीमें गिरा दिया॥ गदाको निष्फल होती देख सहदेवने शीघ्रताके सहित कर्णकी ओर एक शक्ति चलाई। कर्णने उस शक्तिको भी अपने बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया॥ (७-९)

महाराज! इसी भाँति सम्पूर्ण अस्त्रों के निष्फल होनेपर माद्रीपुत्र सहदेव ने शीघ्रता के सहित रथ से कूदकर एक रथचक्र उठा कर कर्णकी ओर चलाया। साक्षात् कालचक्रकी भाँति उस रथचक्रको सम्मुख आते देख कर्णने कई हजार बाणोंसे उसे काटके पृथ्वीमें गिराया। महात्मा कर्णके बाणोंसे रथचक्रको कटते देख सहदेव रथके दण्ड, धुरी, काष्ठ, रणभूमिमें पडे हुए हाथी, घोडे और मृत पुरुषोंके शरीरको उठा उठाकर कर्णकी ओर फेंकने लगे। कर्णने अपने बाणोंके प्रभावसे उन सम्पूर्ण सामग्रियोंको काट काटके पृथ्वीमें गिरा

स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः ॥ १४ ॥
वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं जहौ।
तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद्भरतर्षभ ॥ १५ ॥
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सहदेवं विशाम्पते।
मा युध्यस्व रणेऽधीर विशिष्टै रथिभिः सह ॥ १६ ॥
सदृशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशङ्किथाः।
अथैनं धनुषोऽग्रेण तुदन्भूयोऽब्रवीद्वचः ॥ १७ ॥
एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह।
तत्र गच्छस्व माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥ १८ ॥
एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः।
प्रायात्पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रदहन्निव ॥ १९ ॥
वधं प्राप्तं तु माद्रेयं नाऽवधीत्समरेऽरिहा।
कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन्सत्यसन्धो महायशाः॥२०॥
सहदेवस्ततो राजन्विमनाः शरपीडितः।
कर्णवाक्शरतप्तश्च जीवितान्निरविद्यत ॥ २१ ॥

दिया। (१०—१४)

इसी भांतिसे माद्रीपुत्र सहदेव कर्णके बाणोंसे निवारित होकर रणभूमि छोड़कर उनके सम्मुखसे भागे; परन्तु कर्णने उसी समय दौड़के उन्हें पकड़ लिया। और हंसते हंसते यह वचन कहने लगे। हे माद्रीपुत्र! तुम मेरी बातोंको मत टालो जो मैं कहता हूं उसे सुनो। तुम अपने समान पुरुषके सङ्ग युद्ध करो; कभी अपनेसे अधिक बलवान् रथीके सङ्ग युद्ध मत करना। (१४-१७)

तिसके अनन्तर कर्ण सहदेवको धनुषके अग्रभागसे पीडित करके यह वचन बोले,—रे माद्रीपुत्र! यह देख! अर्जुन बलवान् होकर कौरवोंके सङ्ग युद्ध कर रहा है, तुम उसी स्थानपर चले जाओ अथवा यदि इच्छा होवे तो घर भी जासकते हो। कर्णने हंसते हंसते सहदेवसे ऐसा वचन कहकर उन्हें छोडके पाण्डव और पाञ्चालसेनाके बीच प्रवेश किया॥ महाराज! शत्रुनाशन महारथी सत्यपराक्रमी कर्णने युद्धभूमिके बीच सहदेवको अपने वशमें करके भी कुन्तीको जो वरदान दिया था, उसे स्मरण करके सहदेवका वध नहीं किया॥ १७-२०

परन्तु सहदेव कर्ण के बाणों से पीडित और उनके वचनरूपी शलाकासे विद्ध होकर ऐसे दुःखित हुए कि उस

आरुरोह रथं चापि पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥ २२ ॥
विराटं सहसेनं तु द्रोणं वै द्रुतमागतम् ।
मद्रराजः शरौघेण च्छादयामास धन्विनम् ॥ २३ ॥
तयोः समभवद्युद्धं समरे दृढधन्विनोः ।
यादृशं ह्यभवद्राजञ्जम्भवासवयोः पुरा ॥ २४ ॥
मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम् ।
आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम् ॥ २५ ॥
प्रतिविव्याध तं राजन्नवभिर्निशितैः शरैः ।
पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन तु ॥ २६ ॥
तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः ।
सूतं ध्वजं च समरे शराभ्यां संन्यपातयत् ॥ २७ ॥
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं विमुञ्चंश्च शिताञ्शरान् ॥ २८ ॥
शतानीकस्ततो दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम् ।

समय उन्हें जीवन धारण करना भी भारी मालूम होने लगा ॥ तिसके अनन्तर वह पाञ्चालराजपुत्र रथियोंमें मुख्य जनमेजयके रथपर जा चढे ॥ २१–२२

इस ही समय मद्रराज शल्य सेनाके सहित महारथ विराटको द्रोणाचार्यकी ओर गमन करते देख अपने बाणोंसे उन्हें छिपाने लगे ॥ महाराज ! जैसे पहिले समयमें इन्द्र और जम्भासुरका संग्राम हुआ था, वैसे ही रणभूमिके बीच स्थित दृढ धनुर्द्धारी दोनों वीरोंका युद्ध होने लगा ॥ महाराज ! मद्रराज शल्यने शीघ्रताके सहित अपने चोखे सौ बाणोंसे सेनापति विराटके शरीरमें प्रहार किया ॥ तब मत्स्यराज विराटने नव चोखे बाणोंसे शल्यको विद्ध करके फिर तिहत्तर और उसके अनन्तर एक सौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ (२३–२६)

अनन्तर मद्रराज शल्यने चार बाणोंसे राजा विराटके रथमें जुते हुए चारों घोडे और दो बाणोंसे उनके सारथी और रथकी ध्वजाको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ मत्स्यराज विराट घोडे और सारथी से रहित रथ से कूद कर पृथ्वीपर स्थित हुए और अपना धनुष फेरते हुए शल्यके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ राजा विराटको रथ-रहित देखकर उनके भाई शतानीक

रथेनाऽभ्यपतत्तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २९ ॥
शतानीकमथाऽऽयान्तं मद्रराजो महामृधे ।
विशिखैर्बहुभिर्विद्ध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३० ॥
तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ॥ ३१ ॥
ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः ।
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ॥ ३२ ॥
ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम् ॥ ३३ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
कश्मलं चाऽऽविशत्तीव्रं विराटो भरतर्षभः ॥ ३४ ॥
सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम् ।
ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत ॥ ३५ ॥
वध्यमाना शरशतैः शल्येनाऽऽहवशोभिना ।
तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेनां वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ३६ ॥
प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः ।

सम्पूर्ण पुरुषोंके सम्मुखमें ही अपने रथको बढा कर वहां पर उपस्थित हुए ॥ मद्रराज शल्यने शतानीकको अपने सन्मुख आते देख उन्हें अनेक बाणोंसे विद्ध करके उसी समय यमपुरीमें भेज दिया ॥ (२७–३०)

महावीर शतानीकके मरनेपर रथियोंमें मुख्य राजा विराट ध्वजा पताकासे शोभित अपने भाईके रथ पर शीघ्रताके सहित चढ गये । अनन्तर राजा विराट क्रोधसे नेत्र लाल करके दूना पराक्रम प्रकाशित करते हुए, मद्रराज शल्यके रथको अपने बाणोंके समूहसे छिपाने लगे ॥ तब मद्रराज शल्यने एकसौ चोखे बाणोंसे सेनापति विराटके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ (३१–३३)

हे राजेन्द्र ! राजा विराट शल्यके बाणोंकी चोटसे अत्यन्त विद्ध होकर मूर्च्छित होके रथमें बैठ गये ॥ सारथीने राजा विराटके शरीरको क्षत विक्षत और उन्हें मूर्च्छित देखकर वहांसे प्रस्थान किया । तिसके अनन्तर उस रात्रिके समय मत्स्यदेशीय बडी सेना शल्यके सैकडों बाणोंसे पीडित होकर चारों ओर भागने लगी । महाराज ! कृष्ण अर्जुनने सेनाके उन सम्पूर्ण पुरुषोंको भागते

तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन्राक्षसेन्द्रो ह्यलम्बुषः ॥ ३७ ॥
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय प्रवरं रथम् ।
तुरङ्गममुखैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ॥ ३८ ॥
लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमाल्यविभूषितम् ।
कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मसमावृतम् ॥ ३९ ॥
रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता ।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥ ४० ॥
स बभौ राक्षसो राजन्भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रुरोधाऽर्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाऽद्रिराट् ॥ ४१ ॥
किरन्बाणगणान्राजञ्शतशोऽर्जुनमूर्धनि ।
अतितीव्रं महद्युद्धं नरराक्षसयोस्तदा ॥ ४२ ॥
द्रष्टॄणां प्रीतिजननं सर्वेषां तत्र भारत ।
गृध्रकाकबलोलूककङ्कगोमायुहर्षणम् ॥ ४३ ॥
तमर्जुनः शतेनैव पत्रिणां समताडयत् ।
नवभिश्च शितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद भारत ॥ ४४ ॥
सारथिं च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवेणुकम् ।

देख, जिस स्थानमें मद्रराज शल्य स्थित थे उस ही स्थलमें गमन किया ।(३४-३७)

उसी समय राक्षसराज अलम्बुष घोडेके रूप समान आकृतिवाले भयंकर पिशाच जूते हुए रक्तवर्णकी पताकासे युक्त लाल मालासे भूषित ऋक्षके चमडेसे घिरे हुए, आठ चक्रेसे युक्त काले रङ्गवाले एक बहुत बडे रथ पर चढके कृष्ण अर्जुनके सम्मुख उपस्थित हुआ । उसके रथकी ऊंची ध्वजा पर बैठा हुआ विचित्र पंखोंसे शोभित एक भयङ्कर गिद्ध डरावनी बोली बोल रहा था ॥ महाराज ! कज्जलगिरिके समान रूपवाले उस राक्षसने अपने रथपर चढके सैकडों बाणोंको चलाते हुए कृष्ण अर्जुनको इस भांति आगे बढनेसे रोक दिया जैसे सुमेरु पर्वत वायुकी गतिको रोक देता है ॥ ३७-४१)

उस समय मनुष्य और राक्षसका ऐसा कठिन युद्ध होने लगा, कि देखने वाले अत्यन्त ही आनन्दित हुए और कौवे गिद्ध कङ्क उल्लू और सियार आदि मांसभक्षी जीव हर्षित होके मांस खाते और रुधिर पीते जाते थे । तिसके अनन्तर अर्जुनने एक सौ बाणोंसे उसे पीडित करके फिर नौ चोखे बाणोंसे उसके

धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४५ ॥
पुनः सज्यं कृतं चापं तदप्यस्य द्विधाऽच्छिनत् ।
विरथस्योद्यतं खड्गं शरेणाऽस्य द्विधाऽकरोत् ॥ ४६ ॥
अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरतर्षभ ।
पार्थोऽविध्यद्राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्रवद्भयात् ॥ ४७ ॥
तं विजित्याऽर्जुनस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ ।
किरञ्शरगणान्राजन्नरवारणवाजिषु ॥ ४८ ॥
वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४९ ॥
तेषु तूत्साद्यमानेषु फाल्गुनेन महात्मना ।
सम्प्राद्रवद्बलं सर्वं पुत्राणां ते विशाम्पते ॥ ५० ॥ [७५२३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलंबुषपराभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

सञ्जय उवाच— शतानीकं शरैस्तूर्णं निर्दहन्तं चमूं तव ।

रथकी ध्वजा, तीन बाणोंसे सारथी, तीनसे त्रिवेणु, एक बाणसे धनुष और चार बाणोंसे उसके रथके चारों घोडों-को तथा पुनः सज्ज किये हुए उनके धनुष्यको काट डाला ॥ (४२-४६)

उस राक्षसने रथरहित होकर तलवार को ग्रहण किया, अर्जुनने उस तलवारको भी एक तेज बाणसे दोटुकडे करके पृथ्वी में गिरा दिया, और शिला पर घिसे हुए चार चोखे बाणोंसे उसे पीडित किया। वह राक्षस अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर अपना प्राण बचा कर उनके संमुखसे भाग गया। उस समय अर्जुन उस राक्षसको पराजित करके हाथी, घोडे और मनुष्योंके ऊपर अनगिनत बाण चलाते हुए शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यकी ओर गमन करने लगे॥ (४६—४८)

महाराज ! तुम्हारी सेनाके योद्धा पाण्डुपुत्र यशस्वी अर्जुनके बाणोंसे पीडित होके इस प्रकार पृथ्वी में गिरने लगे जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे बहुतेरे वृक्ष टूटके पृथ्वीमें गिर पडते हैं॥ इसी भांति जब बहुतसे शूरवीर योद्धाओंका अर्जुनके बाणोंसे नाश होने लगा, तब उस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी सम्पूर्ण सेना चारों ओर भागने लगी॥ (४९—५०) [७५२३]

द्रोणपर्वमें एक सौ सैंसठ अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ अडसठ अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज ! नकुलपुत्र

चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १ ॥
नाकुलिश्चित्रसेनं तु विध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
स तु तं प्रतिविव्याध दशभिर्निशितैः शरैः ॥ २ ॥
चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि ।
नवभिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ३ ॥
नाकुलिस्तस्य विशिखैर्वर्म संनतपर्वभिः ।
गात्रात्संच्यावयामास तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४ ॥
सोऽपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप ।
उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः ॥ ५ ॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः ।
धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे ॥ ६ ॥
स च्छिन्नधन्वा समरे विवर्मा च महारथः ।
धनुरन्यन्महाराज जग्राहाऽरिविदारणम् ॥ ७ ॥
ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नवभिः शरैः ।
विव्याध समरे क्रुद्धो भरतानां महारथः ॥ ८ ॥
शतानीकोऽथ संक्रुद्धश्चित्रसेनस्य मारिष ।

शतानीक वेगपूर्वक अपने बाणरूपी अग्नि से कौरवोंकी सेनाको भस्म करने लगे; सेनाको नष्ट होती देख तुम्हारे पुत्र चित्रसेन शतानीकको निवारण करने लगे ॥ तब शतानीकने पांच तीक्ष्ण बाणोंसे चित्रसेनको पीडित किया; चित्रसेनने भी अपने दस चोखे बाणोंसे शतानीकको विद्ध करके फिर उत्तम पानी चढे हुए नव बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार किया ॥ (१—३)

अनन्तर शतानीकने अनेक बाणोंको चला कर चित्रसेनका कवच काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ महाराज ! तुम्हारे पुत्र चित्रसेन कवचसे हीन होकर केंचुली रहित सर्पके समान शोभित हुए ॥ तिसके अनन्तर नकुलपुत्र शतानीकने अपने चोखे बाणोंसे युद्धभूमिमें यत्नवान् चित्रसेनकी ध्वजा और धनुषको काटके पृथ्वीमें गिराया ॥ (४—६)

भरतोंमें महारथ चित्रसेनने युद्धभूमिमें वर्मसे रहित हो तथा धनुष कटने पर क्रोधपूर्वक दूसरा धनुष ग्रहण करके नव बाणोंसे शतानीकको विद्ध किया ॥ उससे पुरुषश्रेष्ठ शतानीकने अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर चित्रसेनके रथके चारों घोडे और उन के सारथी का वध

जघान चतुरो वाहान्सारथिं च नरोत्तमः ॥ ९ ॥
अवप्लुत्य रथात्तस्माच्चित्रसेनो महारथः ।
नाकुलिं पञ्चविंशत्या शराणामार्दयद्बली ॥ १० ॥
तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो रणे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
वृषसेनोऽभ्ययात्तूर्णं किरञ्शरशतैस्तदा ॥ १३ ॥
यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम् ।
षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चाऽनघ ॥ १४ ॥
वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम् ।
बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनान्तरे ॥ १५ ॥
तावुभौ शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकितौ रणे ।
व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥ १६ ॥
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।

किया ॥ (७-९)

बलवान् चित्रसेन घोड़े सारथीसे रहित रथसे कूदकर पृथ्वीपर स्थित हुए और पृथ्वीपर खड़े होकरही पचीस बाणोंसे शतानीकको पीड़ित किया; जब चित्रसेन पृथ्वीपर खड़े होकर युद्ध करने लगे, तब नकुलपुत्र शतानीकने शीघ्रता-के सहित उनके रत्नभूषित धनुषको अर्द्ध-चन्द्र बाणसे काट दिया। चित्रसेन घोड़े रथ सारथी और धनुषरहित होकर शीघ्रताके सहित महात्मा हृदीकपुत्र कृतवर्माके रथपर चढ गये॥ (१०-१२)

कर्णपुत्र वृषसेन राजा द्रुपदको द्रोणाचार्यकी ओर सेनाके सहित युद्धके निमित्त गमन करते देख सैकड़ों सहस्रों बाणोंसे महारथी द्रुपदको छिपाते हुए वेगपूर्वक उनकी ओर दौड़े॥ महाराज! पाञ्चालराज यज्ञसेनने साठ बाणोंसे महारथी वृषसेनकी भुजा और वक्षस्थलमें प्रहार किया॥ उससे कर्णपुत्र वृषसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे राजा द्रुपदके हृदयमें प्रहार किया॥ (१३-१५)

उस समय वे दोनों वीर एक दूसरेके बाणोंसे पीड़ित और विद्ध होकर काँटोंसे युक्त शल्यकीके समान शोभित हुए॥

रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ १७ ॥
तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाऽद्भुतौ ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ व्यकाशेतां रणाजिरे ॥ १८ ॥
वृषसेनस्ततो राजन्द्रुपदं नवभिः शरैः ।
विध्वा विव्याध समत्या पुनरन्यैस्त्रिभिस्त्रिभिः॥१९ ॥
ततः शरसहस्राणि विमुञ्चन्विबभौ तदा ।
कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवाऽम्बुदः ॥ २० ॥
द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ २१ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय रुक्मबद्धं नवं दृढम् ।
तूणादाकृष्य विमलं भल्लं पीतशितं दृढम् ॥ २२ ॥
कार्मुके योजयित्वा तं द्रुपदं सन्निरीक्ष्य च ।
आकर्णपूर्णं मुमुचे त्रासयन्सर्वसोमकान् ॥ २३ ॥
हृदयं तस्य भित्त्वा च जगाम वसुधातलम् ।
कश्मलं प्राविशद्राजा वृषसेनशराहतः ॥ २४ ॥

तपाये हुए सोनेके समान रूपवाले वे दोनों पराक्रमी वीर एक दूसरेके चलाये हुए चोखे बाणोंके प्रहारसे कवचरहित और रुधिरपूरित शरीरसे युक्त होकर कल्पवृक्ष वा पलाश वृक्षके फूलकी भांति युद्धभूमिमें शोभित हुए ॥ (१६-१८)

तिसके अनन्तर पराक्रमी वृषसेनने द्रुपदको नव बाणोंसे विद्ध करके फिर तिहत्तर बाणोंसे विद्ध किया ॥ महाराज! इसी भांति कर्णपुत्र महारथ वृषसेन सहस्रों बाणोंको एक ही बार चलाते हुए जलकी वर्षा करनेवाले बादलकी भांति युद्धभूमिमें शोभित हुए॥ अनन्तर द्रुपदने अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक चोखे भल्ल बाणसे वृषसेनका धनुष्य बीचोंबीच काट डाला ॥ (१९-२१)

वृषसेनने भी फिर सुवर्णभूषित एक दृढ नवीन धनुष्य हाथमें लिया और तूणीरसे अत्यन्त प्रकाशमान एक चोखे भल्ल बाणको निकालके उसे धनुषके ऊपर चढाया। धनुष्यको कानपर्यन्त खींचकर द्रुपदकी ओर देखा और वह बाण उसकी ओर चलाया। तब सम्पूर्ण सोमक योद्धा त्रस्त हुए। वृषसेनसे चलाया हुआ वह बाण द्रुपदके हृदयको विदीर्ण करके पृथ्वीमें प्रविष्ट हुआ। वृषसेनके बाणसे अत्यन्त विद्ध होकर द्रुपद मूर्छित हुए तब सारथीके कर्तव्यको जाननेवाले उसके

सारथिस्तमपोवाह स्मरन्सारथिचेष्टितम् ।
तस्मिन्प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे ॥ २५ ॥
ततस्तु द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
सम्प्राद्रवत्तदा राजन्निशीथे भैरवे सति ॥ २६ ॥
प्रदीपैरपरित्यक्तैर्ज्वलद्भिस्तैः समन्ततः ।
व्यराजत मही राजन्वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः ॥ २७ ॥
तथाऽङ्गदैर्निपतितैर्व्यराजत वसुन्धरा ।
प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २८ ॥
ततः कर्णसुतात्त्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रुवुः ।
यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवास्तारकामये ॥ २९ ॥
तेनाऽर्द्यमानाः समरे द्रवमाणाश्च सोमकाः ।
व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरवभासिताः ॥ ३० ॥
तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रोऽप्यरोचत ।
मध्यन्दिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत ॥ ३१ ॥
तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च ।

सारथिने उसको ऐसी अवस्थामें देख वहां से दूसरी ओर प्रस्थान किया। (२२-२५)

उस रात्रिके समय राजा द्रुपदकी सम्पूर्ण सेना द्रुपदको भग्न हुए देख और वृषसेनके बाणोंसे कवचरहित होके युद्धभूमिसे भागने लगी। भागनेके समय सेनाके पुरुषोंके हाथसे जलते हुए दीपक नहीं छूटे वे हाथमें ही रहे। उससे वह रणभूमि इस प्रकार शोभित होने लगी जैसे बादलसे रहित होनेपर तारोंसे युक्त आकाश शोभित होता है। शरीरसे अंगद कटके पृथ्वीपर इस प्रकार शोभित होरहे थे जैसी वर्षाकालके बादलके बीच बिजली॥ जैसे देवासुर युद्धमें दानव लोग भयभीत होकर इन्द्रके सम्मुखसे भाग गये थे वैसे ही सोमकवंशीय योद्धा लोग वृषसेनके भयसे चारों ओर भागने लगे॥ (२६-२९)

युद्धभूमिमें सोमकवंशीय योद्धा लोग यद्यपि वृषसेनसे भयभीत होकर चारों ओर भाग रहे थे तौभी उस महाघोर अन्धकारसे युक्त रात्रिके समय हाथमें धारण किये हुए दीपकके प्रकाशसे दिखाई देते थे॥ कर्णपुत्र वृषसेन सोमकवंशी योद्धाओंको पराजित करके सहस्र किरण धारी दोपहरके सूर्यकी भांति युद्धभूमिके बीच शोभित हुए॥ महाराज! उस समय तुम्हारी सेना और शत्रुओंकी

एक एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥
स विजित्य रणे शूरान्सोमकानां महारथान् ।
जगाम त्वरितस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३३ ॥
प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून् ।
दुःशासनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः ॥ ३४ ॥
तयोः समागमो राजंश्चित्ररूपो बभूव ह ।
व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव ॥ ३५ ॥
प्रतिविन्ध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
दुःशासनस्त्रिभिर्बाणैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३६ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना ।
विरराज महाबाहुः सशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ३७ ॥
दुःशासनं तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः ।
नवभिः सायकैर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३८ ॥
तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान्कर्म दुष्करम् ।

ओरके सहस्रों राजाओंकी मण्डलीके बीच अकेले वृषसेन ही जलती हुई अग्निकी भांति रणभूमिमें स्थित रहे ॥ इसी भांति कर्णपुत्र वृषसेनने सोमकोंको तथा महारथी शूरवीर योद्धाओं को पराजित करके जिस स्थान पर राजा युधिष्ठिर युद्धभूमिमें स्थित थे उस ही स्थल पर शीघ्रता के सहित गमन किया ॥ (३०-३३)

सञ्जय बोले, महाराज ! उसी समय युधिष्ठिरपुत्र प्रतिविन्ध्य क्रुद्ध होकर कुरुसेनाके पुरुषोंको अपने बाणोंसे भस्म करने लगे, तब तुम्हारे पुत्र दुःशासन पराक्रमी प्रतिविन्ध्यको निवारण करने लगे । हे राजेन्द्र ! जैसे बादलसे रहित आकाशमण्डलमें बुध और सूर्य ग्रहका समागम होता है वैसे ही उन दोनों वीरोंको अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ अनन्तर दुःशासनने युद्धभूमिमें कठिन कर्म करनेवाले प्रतिविन्ध्यके ललाटमें तीन बाणोंसे प्रहार किया ॥ महाराज ! महाबाहु प्रतिविन्ध्य बलवान् दुःशासन के बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर शृङ्ग-युक्त पर्वतकी भांति शोभित हुए ॥ (३४—३७)

अनन्तर महारथी प्रतिविन्ध्यने दुःशासनको नव बाणोंसे विद्ध करके फिर सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ उसी समय तुम्हारे पुत्र दुःशासनने युद्धभूमि के बीच अत्यन्त कठिन कर्म किया;

प्रतिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास सायकैः ॥ ३९ ॥
सारथिं चास्य भल्लेन ध्वजं च समपातयत् ।
रथं च तिलशो राजन्व्यधमत्तस्य धन्विनः ॥ ४० ॥
पताकाश्च सतूणीरा रश्मीन्योक्त्राणि च प्रभो ।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४१ ॥
विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः ।
अयोधयत्तव सुतं किरञ्शरशतान्बहून् ॥ ४२ ॥
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव ।
अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्नधन्वानमार्दयत् ॥ ४३ ॥
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः ।
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह ॥ ४४ ॥
आप्लुतः स ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम् ।
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव ॥ ४५ ॥
ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव ।
अभ्यवर्तन्त संग्रामे महत्या सेनया वृताः ॥ ४६ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।

क्योंकि उन्होंने अपने तेज बाणोंसे प्रतिविन्ध्यके घोडे, भल्लास्त्रसे उनके सारथी और ध्वजाको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया । फिर दुःशासनने अपने चोखे बाणोंसे प्रतिविन्ध्यके रथ घोडोंकी बागडोर, रथकी धुरी, और तूणीरके सहित उनके उत्तम रथको टुकडे टुकडे कर दिया । (३८-४१)

तब धर्मात्मा प्रतिविन्ध्य रथसे रहित होकर हाथमें धनुष लेकर पृथ्वीपर स्थित हुए और सैकडों बाणोंको चलाते हुए तुम्हारे पुत्र दुःशासनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ प्रतिविन्ध्यका पराक्रम देख तुम्हारे पुत्र दुःशासनने एक क्षुरप्र अस्त्रसे उनका धनुष काटा और दश बाणोंसे फिर उन्हें पीडित किया ॥ प्रतिविन्ध्यके भ्राता लोग उन्हें रथसे रहित देख अपनी सेनाके सहित उनके समीप उपस्थित हुए ॥ (४२-४४)

तब प्रतिविन्ध्य अपने भाई सुतसोमके रथपर चढके धनुष फेरते हुए दुःशासनको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ अनन्तर तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भी बडी सेनाके सहित दुःशासनको घेरकर युद्धभूमिमें स्थित हुए । महाराज ! तिसके अनन्तर उस महाघोर रात्रिके समय

निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४७ ॥ [७५७०]

इति श्रीमहा० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे शतानीकादियुद्धे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६८॥

सञ्जय उवाच- नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव ।
अभ्ययात्सौबलः क्रुद्धस्तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
कृतवैरौ तु तौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २ ॥
यथैव नकुलो राजञ्शरवर्षाण्यमुञ्चत ।
तथैव सौबलश्चापि शिक्षां सन्दर्शयन्युधि ॥ ३ ॥
तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा ।
व्यराजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥ ४ ॥
रुक्मपुङ्खैरजिह्माग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ ५ ॥
तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविव द्रुमौ ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ प्रकाशेते रणाजिरे ॥ ६ ॥
तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा ।

दोनों ओरके शूरवीरोंका यमपुरीकी वृद्धि करनेवाला महाघोर दारुण संग्राम होने लगा ॥ (४५–४७) [७५७०]

द्रोणपर्वमें एकसौ अडसठ अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ उनहत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! पाण्डुपुत्र नकुल वेगपूर्वक तुम्हारी सेनाके पुरुषों-का नाश करने लगे; उसे देख सुबलपुत्र शकुनि खडा रह ! खडा रह ! कहके नकुलकी ओर दौडे ॥ पहिलेकी शत्रुताको स्मरण करके वे दोनों वीर कान पर्यन्त धनुष खींचकर अपने बाणोंसे एक दूसरे के शरीरमें प्रहार करने लगे ॥ महाराज ! युद्धभूमिके बीच नकुल जिस भांतिसे अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे, वैसे ही युद्धविद्या जाननेवाले शकुनि भी लगातार अपने बाणोंको वर्षाने लगे ॥ (१–३)

उस समय उन दोनोंका शरीर एक दूसरेके बाणोंसे इसप्रकार पूरित होगया जैसे कांटोंसे युक्त शल्लकीका वृक्ष शोभित होता है ॥ तपाये हुए सुवर्णकी भांति प्रकाशमान विचित्र शरीर वाले वे दोनों वीर एक दूसरेके स्वर्णपङ्खवाले तेज बाणों के प्रहारसे कवच रहित होकर रुधिर पूरित शरीरसे इस प्रकार शोभित हुए जैसे कल्पवृक्ष वा फूले हुए पलाशके वृक्ष शोभित होते हैं ॥ (४—६)

उस समय उन दोनोंका शरीर

व्यराजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली ॥ ७ ॥
सुजिह्मं प्रेक्षमाणौ च राजन्विवृतलोचनौ ।
क्रोधसंरक्तनयनौ निर्दहन्तौ परस्परम् ॥ ८ ॥
स्यालस्तु तव संक्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव ।
कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ह ॥ ९ ॥
नकुलस्तु भृशं विद्धः स्यालेन तव धन्विना ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाऽऽविशन्महत् ॥ १० ॥
अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथाऽऽगतम् ।
ननाद शकुनी राजंस्तपान्ते जलदो यथा ॥ ११ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः ।
अभ्ययात्सौबलं भूयो व्यात्तानन इवाऽन्तकः ॥ १२ ॥
संक्रुद्धः शकुनिं षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ ।
पुनश्चैनं शतेनैव नाराचानां स्तनान्तरे ॥ १३ ॥
अथाऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशेऽच्छिनत्तदा ।
ध्वजं च त्वरितं छित्त्वा रथाद्भूमावपातयत् ॥ १४ ॥
विशिखेन च तीक्ष्णेन पीतेन निशितेन च ।

बाणोंसे परिपूर्ण होकर इस प्रकार शोभित हुआ जैसे काँटोंसे युक्त सेमलका वृक्ष शोभित होता है ॥ महाराज ! वे दोनों वीर क्रोधसे नेत्र लाल करके इस प्रकार एक दूसरेकी ओर टेढी दृष्टि से देखने लगे, मानो दृष्टिसे देखकर ही एक दूसरेको भस्म किये डालते हैं ॥ तिसके अनन्तर तुम्हारे शाले शकुनिने अत्यन्त क्रुद्ध होके एक तीक्ष्ण कर्णिक अस्त्रसे खेलवाडकी भाँति माद्रीपुत्र नकुलके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ (७–९)

पाण्डुपुत्र नकुल तुम्हारे शाले धनुर्द्धारी शकुनिके अस्त्रसे अत्यन्त विद्ध होकर चेतरहितकी भाँति मूर्च्छित होकर रथमें बैठ गये ॥ शकुनि अत्यन्त वैर-भावसे युक्त तेजस्वी शत्रु नकुलको मूर्च्छित देख, वर्षाकालके बादलकी भाँति गंभीर स्वरसे गर्जते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ थोडी देरके बाद नकुल सावधान होकर मुख बाये हुए यमराजकी भाँति शकुनिकी ओर दौडे और क्रोधपूर्वक उन्हें साठ बाणोंसे विद्ध करके फिर एक सौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ (१०–१३)

तिसके अनन्तर पराक्रमी नकुलने बाणके सहित शकुनिके धनुषकी मुट्ठी और रथकी ध्वजाको काटके पृथ्वीमें

ऊरू निर्भिद्य चैकेन नकुलः पाण्डुनन्दनः ॥ १५ ॥
श्येनं सपक्षं व्याधेन पातयामास तं तदा ।
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १६ ॥
ध्वजयष्टिं परिक्लिश्य कामुकः कामिनीं यथा ।
तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा स्यालं तवाऽनघ ॥ १७ ॥
अपोवाह रथेनाऽऽशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात् ।
ततः संचुक्रुशुः पार्था ये च येषां पदानुगाः ॥ १८ ॥
निर्जित्य च रणे शत्रुं नकुलः शत्रुतापनः।
अब्रवीत्सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वह ॥ १९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य सारथिः ।
प्रायात्तेन तदा राजन्यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ॥ २० ॥
शिखण्डिनं तु समरे द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्यगच्छत्स वेगितः ॥ २१ ॥
गौतमं द्रुतमायान्तं द्रोणानीकमरिन्दमम् ।
विव्याध नवभिर्भल्लैः शिखण्डी प्रहसन्निव ॥ २२ ॥

गिरा दिया और एक बाणसे उसकी दोनों जंघाओंको विद्ध किया । महाराज ! तुम्हारे शाले शकुनि नकुलके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होके मूर्च्छित हुए, और जैसे कामी पुरुष कामिनीके कन्धेको ग्रहण करते हैं, वैसे ही रथ दण्ड पकड़के रथमें बैठ गये । हे पापरहित राजेन्द्र ! तुम्हारे शाले शकुनिको मूर्च्छित होकर रथमें बैठे हुए देख, उनके सारथीने शीघ्रताके सहित रथ हांकके वहांसे प्रस्थान किया ॥ शकुनिको पराजित होते देख सेनाके सहित पाण्डव लोग ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करने लगे॥ १४-१८

शत्रु नाशन नकुल इसी भांति शकुनिको पराजित करके क्रोधपूर्वक अपने सारथीसे यह वचन बोले, मेरे रथको द्रोणाचार्यकी सेनाके बीच लेचलो ॥ सारथी बुद्धिमान नकुलके वचनको सुनकर जहां पर द्रोणाचार्य युद्ध कर रहे थे उस ही स्थल पर नकुलके रथको लेकर उपस्थित हुआ ॥ (१९-२०)

इस ही समय शरद्वतपुत्र कृपाचार्य शिखण्डीको द्रोणाचार्यकी ओर आते देख यत्नवान् होकर वेगपूर्वक उसकी ओर दौड़े॥ शिखण्डीने द्रोणाचार्यकी सहायता के वास्ते शत्रुनाशन कृपाचार्य को शीघ्रता पूर्वक सम्मुख आये देखकर हंसकर नव बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥

तमाचार्यो महाराज विध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या पुत्राणां प्रियकृत्तव ॥ २३ ॥
महद्युद्धं तयोरासीद्घोररूपं भयानकम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ २४ ॥
शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ ।
मेघाविव तपापाये वीरौ समरदुर्मदौ ॥ २५ ॥
प्रकृत्या घोररूपं तदासीद्घोरतरं पुनः ।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधानां युद्धशालिनाम् ॥ २६ ॥
कालरात्रिनिभा ह्यासीद्घोररूपा भयानका ।
शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद्धनुः ॥ २७ ॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सविशिखं तदा ।
तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्शक्तिं चिक्षेप दारुणाम् ॥ २८ ॥
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिताम् ।
तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिः शरैः ॥ २९ ॥
साऽपतन्मेदिनीं दीप्ता भासयन्ती महाप्रभा ।

महाराज ! तुम्हारे पुत्रोंके प्रियकार्य करने वाले कृपाचार्यने पहिले शिखण्डीको पांच बाणोंसे बिद्ध करके फिर बीस बाणोंसे बिद्ध किया ॥ देवासुर संग्राम में जैसे इन्द्रके सङ्ग शम्बरासुरका युद्ध हुआ था, वैसे ही कृपाचार्यके सङ्ग शिखण्डीका महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ (२१–२४)

महाराज ! अन्धकारमय रात्रिके समय आकाशमण्डल स्वभाविक ही घोररूपसे दिखाई देरहा था, उस पर भी वर्षा कालके बादलकी भांति युद्धदुर्मद महारथी कृपाचार्य और शिखण्डीके बाणोंसे परिपूरित होकर अत्यन्त ही भयानक दिखाई देने लगा । अधिक क्या कहूं, वह भयङ्करी रात्रि युद्ध करने वाले शूरवीर योद्धाओंके निमित्त कालरात्रि स्वरूप होगई । (२५–२७)

तिसके अनन्तर शिखण्डीने गोतम पुत्र कृपाचार्यके धनुषको रोदे और बाणसमेत अपने अर्धचन्द्र बाणसे काटके गिरा दिया । धनुष कटनेपर कृपाचार्यने क्रुद्ध होकर सुवर्णदण्डयुक्त अत्यन्त ही तेजधारवाली एक भयानक शक्ति ग्रहण करके शिखण्डीकी ओर चलायी ! शिखण्डीने उस प्रकाशमान भयङ्कर शक्तिको अनेक बाणोंसे काट डाला, तब वह कटी हुई भयङ्करी शक्ति पृथ्वी में गिर के

अथाऽन्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥ ३० ॥
प्राच्छादयच्छितैर्बाणैर्महाराज शिखण्डिनम् ।
स च्छाद्यमानः समरे गौतमेन यशस्विना ॥ ३१ ॥
न्यषीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनां वरः
सीदन्तं चैनमालोक्य कृपः शारद्वतो युधि ॥ ३२ ॥
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत ।
विमुखं तु रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ३३ ॥
पञ्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ।
तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमवर्तत ।
रथानां च रणे राजन्नन्योन्यमभिधावताम् ॥ ३५ ॥
बभूव तुमुलः शब्दो मेघानां गर्जतामिव ।
द्रवतां सादिनां चैव गजानां च विशाम्पते ॥ ३६ ॥
अन्योन्यमभितो राजन्क्रूरमायोधनं बभौ ।
पत्तीनां द्रवतां चैव पादशब्देन मेदिनी ॥ ३७ ॥

प्रकाशित होने लगी । (२७–३०)

इतने ही समयमें कृपाचार्य दूसरा धनुष ग्रहण करके अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शिखण्डीको छिपाने लगे। रथियोंमें मुख्य शिखण्डी कृपाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर मूर्च्छित होगये; और चेतरहितके समान रथमें बैठ गये । महाराज ! शरद्वतपुत्र कृपाचार्य शिखण्डीको मूर्च्छित देख अनेक बाणोंको चलाकर उसके शरीरमें प्रहार करने लगे । पाञ्चाल और सोमकवंशी वीर योद्धालोग शिखण्डीको मूर्च्छित और युद्धसे विमुख देखकर उन्हें चारों ओरसे घेरकर युद्धभूमिमें स्थित हुए । वैसे ही तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग और तुम्हारे पराक्रमी पुत्र बडी सेनाको सङ्ग लेकर द्रोणाचार्यको घेर कर रणभूमिके बीच स्थित हुए ॥ (३०–३४)

फिर दोनों ओरके शूरवीरोंका महाघोर युद्ध होने लगा । इस ही समय रथी योद्धा लोग एक दूसरेकी ओर दौडे। उस समय रणभूमिमें गर्जते हुए बादलकी भाँति शूरवीरोंका महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ अनन्तर घुडसवार योद्धा लोग दोनों सेनाके बीचमें पृथक् होके आपसमें एक दूसरेकी ओर दौडने लगे । उस समय वह रणभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर दिखाई देने लगी ॥

अकम्पत महाराज भयत्रस्तेव चाङ्गना ।
रथिनो रथमारुह्य प्रद्रुता वेगवत्तरम् ॥ ३८ ॥
अगृह्णन्बहवो राजञ्शलभान्वायसा इव ।
तथा गजान्प्रभिन्नांश्च सम्प्रभिन्ना महागजाः ॥ ३९ ॥
तस्मिन्नेव पदे यत्ता निगृह्णन्ति स्म भारत ।
सादी सादिनमासाद्य पत्तयश्च पदातिनम् ॥ ४० ॥
समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नातिचक्रमुः ।
धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्ततामपि ॥ ४१ ॥
बभूव तत्र सैन्यानां शब्दः सुविपुलो निशि ।
दीप्यमानाः प्रदीपाश्च रथवारणवाजिषु ॥ ४२ ॥
अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः ।
सा निशा भरतश्रेष्ठ प्रदीपैरवभासिता ॥ ४३ ॥
दिवसप्रतिमा राजन्बभूव रणमूर्धनि ।
आदित्येन यथा व्याप्तं तमो लोके प्रणश्यति ॥ ४४ ॥
तथा नष्टं तमो घोरं दीपैर्दीप्तैरितस्ततः ।

इस भांति एक दूसरेकी ओर दौडते हुए पैदल सेनाके वीरोंके पांवकी ठोकरसे पृथ्वी भयभीत हुई स्त्री की भांति कांपने लगी । (३४-३८)

महाराज ! अनगिनत रथी योद्धा लोग भी वेगपूर्वक शत्रुसेनाके रथियोंकी ओर गमन करके जैसे कौवें शलभोंको पकडते हैं उसी भांति एक दूसरेको पकडने लगे । इसी समय मदचूते हाथी शत्रुसेनाके मतवारे हाथियोंके समीप गमन करके आपसमें दांत और सूण्डोंसे युद्ध करने लगे ॥ इसी भांति घुडसवार और पैदल सेनाके योद्धा लोग क्रोधपूर्वक आपसमें एक दूसरी सेनाके वीरोंको आक्रमण करके कोई दूसरी सेनाके वीरोंको पीछे न हटा सके । परन्तु उस रात्रिके समय दोनों सेनाके वीरोंके वार वार दौडने भागने फिर युद्धके निमित्त लौटनेसे रणभूमिके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा । (३८-४२)

महाराज ! हाथी घोडे और रथोंसे गिरते हुए दीपक आकाशसे गिरते हुए लुककी भांति दिखाई देने लगे। अधिक क्या कहूं वह रणभूमि चारों ओर दीपकके प्रकाशसे युक्त होकर दिनकी भांति शोभित होने लगी । जैसे सूर्य उदय होने पर जगत्का सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट होजाता है वैसे ही दीपकोंके प्रकाशसे

दिवं च पृथिवीं चैव दिशश्च प्रदिशस्तथा ॥ ४५ ॥
रजसा तमसा व्याप्ता द्योतिताः प्रभया पुनः ।
अस्त्राणां कवचानां च मणीनां च महात्मनाम् ॥४६॥
अन्तर्दधुः प्रभाः सर्वा दीपैस्तैरवभासिताः ।
तस्मिन्कोलाहले युद्धे वर्तमाने निशामुखे ॥ ४७ ॥
न किञ्चिद्विदुरात्मानमयमस्मीति भारत ।
अवधीत्समरे पुत्रं पिता भरतसत्तम ॥ ४८ ॥
पुत्रश्च पितरं मोहात्सखायं च सखा तथा ।
स्वस्रीयं मातुलश्चापि स्वस्रीयश्चापि मातुलम् ॥ ४९ ॥
स्वे स्वान्परे परांश्चापि निजघ्नुरितरेतरम् ।
निर्मर्यादमभूद्युद्धं रात्रौ भीरुभयानकम् ॥ ५० ॥ [७६२०]

इति श्रीमहाभारते॰ द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

सञ्जय उवाच— तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाऽभ्यवर्तत ॥ १ ॥
सन्दधानो धनुःश्रेष्ठं ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ।
अभ्यद्रवत द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् ॥ २ ॥

उस रणभूमिमें इधर उधर अन्धकार नष्ट होगया। परन्तु जब चारों ओर दीपक के प्रकाश फैल गये तब शूरवीर पुरुषों के अस्त्र शस्त्र कवच और मणिजटित आभूषणोंका प्रकाश इकबारगी छिप गया। (४२–४७)

महाघोर रात्रिके समय जब भयङ्कर कोलाहलके सहित शूरवीरोंका युद्ध होने लगा तब योद्धाओंको मैं अमुक पुरुष हूं यह ज्ञान भी न रहा। उस समय मोहके वशमें होकर पिता पुत्रका, पुत्र पिताका, मित्र मित्रका, मामा भानजेका और भानजे मामाका वध करने लगे। इसी भांति आत्मीय पुरुष अपने आत्मीय लोगोंके ऊपर और शत्रु शत्रुओंके ऊपर अपने अस्त्र शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। उस भयङ्करी रात्रिके समय कायरोंके भयको बढानेवाला मर्यादारहित युद्ध होने लगा॥ (४७–५०) [७६०२]

द्रोणपर्वमें एकसौ उनत्तर अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ सत्तर अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! जब महा भयङ्कर तुमुल युद्ध होने लगा तब धृष्टद्युम्न अपने बडे धनुषको ग्रहण करके बार बार धनुष टङ्कार करते हुए द्रोणाचार्यके सुवर्णभूषित रथकी ओर दौडे॥

धृष्टद्युम्नमथाऽऽयान्तं द्रोणस्याऽन्तचिकीर्षया ।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥
तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम् ।
पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे ॥ ४ ॥
बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे ।
वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्वौ भैरवौ सागराविव ॥ ५ ॥
ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पञ्चभिः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च ॥ ६ ॥
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या विध्वा भारत संयुगे ।
चिच्छेदाऽन्येन भल्लेन धनुरस्य महास्वनम् ॥ ७ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो द्रोणेन भरतर्षभ ।
उत्ससर्ज धनुस्तूर्णं सन्दश्य दशनच्छदम् ॥ ८ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
आददेऽन्यद्धनुः श्रेष्ठं द्रोणस्याऽन्तचिकीर्षया ॥ ९ ॥

जब धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे उनकी ओर गमन किया, तब धृष्टद्युम्नके अनुयायी पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंने चारों ओरसे द्रोणाचार्यको घेर लिया ॥ (१–३)

तुम्हारे पुत्र उस महाघोर संग्रामके समय द्रोणाचार्यको शत्रुओंके बीच घिरे देख कर सब भांतिसे यत्नपूर्वक उनकी रक्षा करने लगे ॥ प्रचण्ड वायुके वेगसे उथलते हुए जैसे दो समुद्र बढके आपसमें मिलकर भयङ्कर रूपसे दीखपडते हैं वैसे ही रात्रिके समय समुद्र समान दोनों ओरकी महासेना आपसमें एक ही स्थान पर मिल गईं ॥ (३–५)

तिसके अनन्तर पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने शीघ्रताके सहित पांच बाणोंसे द्रोणाचार्यके हृदयमें प्रहार करके सिंहनाद किया । तब द्रोणाचार्यने पचीस बाणोंसे धृष्टद्युम्नको विद्ध करके एक भल्लास्त्रसे उनका धनुष काट दिया ॥ महाराज ! प्रतापी धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होके क्रोधपूर्वक ओंठ काटते और दांत कटकटाते हुए कटे धनुषको त्यागकर द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करके दूसरा दृढ धनुष ग्रहण किया ॥ (६–८)

अनन्तर शत्रु नाशन धृष्टद्युम्न अपने विचित्र धनुषको कान पर्यन्त खींच कर द्रोणाचार्यके नाश करनेमें समर्थ एक महाभयङ्कर बाण उनकी ओर चलाया ।

विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात्परवीरहा ।
द्रोणस्याऽन्तकरं घोरं व्यसृजत्सायकं ततः ॥ १० ॥
स विसृष्टो बलवता शरो घोरो महामृधे ।
भासयामास तत्सैन्यं दिवाकर इवोदितः ॥ ११ ॥
तं तु दृष्ट्वा शरं घोरं देवगन्धर्वमानवाः ।
स्वस्त्यस्तु समरे राजन्द्रोणायेत्यब्रुवन्वचः ॥ १२ ॥
तं तु सायकमायान्तमाचार्यस्य रथं प्रति ।
कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १३ ॥
स च्छिन्नो बहुधा राजन्सूतपुत्रेण धन्विना ।
निपपात शरस्तूर्णं निर्विषो भुजगो यथा ॥ १४ ॥
धृष्टद्युम्नं ततः कर्णो विव्याध दशभिः शरैः ।
पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणस्तु सप्तभिः ॥ १५ ॥
शल्यश्च दशभिर्बाणैस्त्रिभिर्दुःशासनस्तथा ।
दुर्योधनस्तु विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥ १६ ॥
पाञ्चाल्यं त्वरयाऽविध्यन्सर्व एव महारथाः ।
स विद्धः सप्तभिर्वीरैर्द्रोणस्याऽर्थे महाहवे ॥ १७ ॥

महाराज ! उस महाघोर संग्रामके समय वह भयङ्कर बाण धृष्टद्युम्नके धनुषसे छूटकर तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको उस भांति सन्तापित करने लगा जैसे सूर्य उदय होके अपने तेजसे सम्पूर्ण प्राणियों-को तपाके विकल कर देते हैं। अधिक क्या कहूं उस समय उस भयङ्कर बाणको देख कर देवता गन्धर्व और मनुष्य द्रोणाचार्यके मङ्गलकामनाकी इच्छासे स्वस्तिवाचन करने लगे ॥ (९-१२)

परन्तु कर्णने उस भयंकर बाणको द्रोणाचार्यके रथकी ओर आते देख अपना हस्तलाघव प्रकाशित करते हुए अपने तेज बाणोंसे बारह टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया॥ वह बाण धनुर्द्धर क-र्णके बाणोंसे टुकडे टुकडे होकर विषरहित सर्पकी भांति शीघ्र ही पृथ्वीमें गिर पडा॥ उस बाणको काटकर कर्णने दश तीक्ष्ण बाणोंसे धृष्टद्युम्नको विद्ध किया। तिसके अनन्तर अश्वत्थामाने पांच,द्रोणाचार्यने सात,शल्यने दस, दुःशासनने तीन,दुर्यो-धनने बीस और शकुनिने पांच बाणोंसे पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नको विद्ध किया ॥ (१३-१६)

पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने द्रोणाचा-र्यकी रक्षा करनेवाले छः महारथी और

सर्वानसम्भ्रमाद्राजन्प्रत्यविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ।
द्रोणं द्रौणिं च कर्णं च विव्याध च तवाऽऽत्मजम् ॥१८॥
ते भिन्ना धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे ।
विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्णमेकैको रथिनां वरः ॥ १९ ॥
द्रुमसेनस्तु संक्रुद्धो राजन्विव्याध पत्रिणा ।
त्रिभिश्चाऽन्यैः शरैस्तूर्णं तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥२०॥
स तु तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि ॥ २१ ॥
भल्लेनाऽन्येन तु पुनः सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम् ।
निचकर्त शिरः कायाद् द्रुमसेनस्य वीर्यवान् ॥ २२ ॥
तच्छिरो न्यपतद्भूमौ सन्दष्टौष्ठपुटं रणे ।
महावातसमुद्धूतं पक्वं तालफलं यथा ॥ २३ ॥
तान्स विद्ध्वा पुनर्योधान्वीरः सुनिशितैः शरैः ।
राधेयस्याऽच्छिनद्भल्लैः कार्मुकं चित्रयोधिनः ॥ २४ ॥
न तु तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तथा ।

स्वयं द्रोणाचार्यके सहित सात महारथियोंके बाणोंसे विद्ध होकर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण और तुम्हारे पुत्र आदि सबको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ रथियोंमें मुख्य उन सम्पूर्ण वीरोंसे युद्ध भूमिके बीच धनुर्द्धर धृष्टद्युम्नके बाणोंसे विद्ध होकर उन लोगोंने फिर वेगपूर्वक धृष्टद्युम्नको अपने पांच पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ (१६–१९)

महाराज ! उस ही समय द्रुमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर धृष्टद्युम्नको एक बाणसे विद्ध करके फिर खडा रह ! खडा रह ! कहके तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ तब पराक्रमी धृष्टद्युम्नने शिलापर घिसे हुए अत्यन्त चोखे स्वर्णपुंखवाले प्राणघातक तीन बाणोंसे द्रुमसेनको विद्ध किया॥ अनन्तर धृष्टद्युम्नने एक भल्लास्त्रसे सुवर्ण कुण्डल भूषित द्रुमसेनके प्रकाशमान सिरको इस भांति काटके शरीरसे पृथक् करके गिरा दिया जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे पके हुए तालके फल वृक्षसे टूटके पृथ्वीमें गिर पडते हैं ॥ (२०–२३)

अनन्तर पाञ्चालराजपुत्र महावीर धृष्टद्युम्न अपने तेज बाणोंसे फिर तुम्हारी ओरके महारथियोंको विद्ध करने लगे और भल्लास्त्रसे महावीर कर्णका धनुष काट दिया ॥ महाराज ! सिंह जैसे

निकर्तनमिवात्युग्रं लांगूलस्य महाहरिः ॥ २५ ॥
सोऽन्यद्धनुः समादाय क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ।
अभ्यद्रवच्छरौघैस्तं धृष्टद्युम्नं महाबलम् ॥ २६ ॥
दृष्ट्वा कर्णं तु संरब्धं ते वीराः षड्रथर्षभाः ।
पाञ्चाल्यपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया ॥ २७ ॥
षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम् ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममंस्महि ॥ २८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विकिरञ्छरान् ।
धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत ॥ २९ ॥
तमायान्तं महेष्वासं सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ।
राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ॥ ३० ॥
तं सात्यकिर्महाराज विव्याध दशभिः शरैः ।
पश्यतां सर्ववीराणां मा गास्तिष्ठेति चाऽब्रवीत्॥ ३१ ॥
स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः ।
आसीत्समागमो राजन्बलिवासवयोरिव ॥ ३२ ॥

अपनी पूंछको कटती देख नहीं सह सकता; वैसे ही राधापुत्र कर्णने भी धृष्टद्युम्नके अस्त्रसे अपना धनुष कटता हुआ देखकर सहन नहीं किया ॥ वह क्रोधसे लाल नेत्र करके दूसरा धनुष ग्रहण कर बाणोंको वर्षाते हुए महाबलवान् धृष्टद्युम्नकी ओर दौडे ॥ कर्ण और अश्वत्थामा आदि छः महारथियोंने क्रुद्ध होकर धृष्टद्युम्नके वधकी अभिलाषा करके शीघ्रताके सहित उन्हे चारों ओरसे घेर लिया ॥ (२४-२७)

महाराज ! उस समय हम लोग धृष्टद्युम्नको कर्ण और ऊपर कहे हुए छः महारथियोंके संमुखमें स्थित देखकर उसे मृत्युके मुखमें पडा हुआ ही समझने लगे ॥ उस ही समय यदुवंशीय सात्यकि धृष्टद्युम्नको बचानेके वास्ते अपने बाणों को चलाते हुए वहांपर उपस्थित हुए; इसी भांति जब महाधनुर्द्धर युद्धदुर्मद सात्यकि आके वहांपर उपस्थित हुए तब कर्णने दश तेज बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ (२८-३०)

महाराज ! अनन्तर सात्यकि सम्पूर्ण योद्धाओंके संमुखमें ही कर्णको 'भागना मत, खडे रहो' ऐसा वचन कहके दश बाणोंसे उन्हें विद्ध किया। तब कर्ण और सात्यकिका इन्द्र और बलिकी भांति युद्ध होने लगा ॥ क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने

त्रासयन्रथघोषेण क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः।
राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ३३ ॥
कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधां बली।
सूतपुत्रो महाराज सात्यकिं प्रत्ययोधयत् ॥ ३४ ॥
विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः क्षुरैरपि।
कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविद्धयत ॥ ३५ ॥
तथैव युद्धयमानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो युधि।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णं तद्युद्धमभवत्समम् ॥ ३६ ॥
तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः॥ ३७ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य वा विभो।
अविध्यत्सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे ॥ ३८ ॥
तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो विशाम्पते।
न्यपतत्स रथे मूढो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान् ॥ ३९ ॥
ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम्।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तः सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥ ४० ॥

अपने रथघोषके शब्दसे सम्पूर्ण क्षत्रियों को भयभीत करके राजीवलोचन कर्णको अपने बाणोंसे विद्ध किया। वैसे ही महा धनुर्द्धर कर्ण भी धनुषटङ्कारके शब्दसे पृथ्वीको कंपाते हुए सात्यकिके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ (३१–३४)

कर्णने विपाट कर्णिक नाराच वत्स-दन्त क्षुरप्र आदि सैकडों अस्त्रोंसे शिनि पौत्र सात्यकिको विद्ध किया॥ रथियों में मुख्य वृष्णिवंशीय सात्यकि भी उसी भांति अस्त्रोंको चला कर कर्णको विद्ध करने लगे। कुछ समय तक उन दोनों वीरोंका युद्ध समभावसे ही होता रहा॥

तिसके अनन्तर तुम्हारी ओरके रथी योद्धा और कर्णके पुत्र लोग इकट्ठे होकर अपने बाणोंको चलाकर चारों ओरसे सात्यकिको विद्ध करने लगे॥ उसे देखके यदुवंशी सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कर्ण और उनके पुत्रोंके चलाये हुए बाणों को निवारण करके वृषसेनके हृदयमें अपने बाणसे प्रहार किया॥ (३५–३८)

पराक्रमी वृषसेन सात्यकिके बाणकी चोटसे अत्यन्त पीडित होकर धनुष त्यागके मूर्च्छित होकर रथमें गिरपडे॥ उससे कर्ण अपने पुत्र महारथी वृषसेन को मरा हुआ समझ कर पुत्र शोकसे

पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः ।
विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः ॥ ४१ ॥
स कर्णं दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं च सप्तभिः ।
सहस्तावापधनुषी तयोश्छिच्छेद सात्वतः ॥ ४२ ॥
तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रुभयङ्करे ।
युयुधानमविध्येतां समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ४३ ॥
वर्तमाने तु संग्रामे तस्मिन्वीरवरक्षये ।
अतीव शुश्रुवे राजन्गाण्डीवस्य महास्वनः ॥ ४४ ॥
श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् ।
सूतपुत्रोऽब्रवीद्राजन्दुर्योधनमिदं वचः ॥ ४५ ॥
एष सर्वां चमूं हत्वा मुख्यांश्चैव नरर्षभान् ।
पौरवांश्च महेष्वासो विक्षिपन्नुत्तमं धनुः ॥ ४६ ॥
पार्थो विजयते तत्र गाण्डीवनिनदो महान् ।
श्रूयते रथघोषश्च वासवस्येव नर्दतः ॥ ४७ ॥
करोति पाण्डवो व्यक्तं कर्मौपयिकमात्मनः ।

अत्यन्त ही दुःखित हुए और अपने बाणोंसे सात्यकिको पीडित करने लगे॥ महारथी सात्यकी कर्णके बाणोंसे पीडित हो शीघ्रताके सहित अनेक बाणोंको चला कर कर्णको बार बार विद्ध करने लगे॥ (३९-४१)

तिसके अनन्तर सात्यकिने कर्णको दश और सावधान हुए वृषसेन को सात बाणों से विद्ध करके फिर उन दोनोंके अंगुलित्राण और धनुषको काट दिया॥ तब कर्ण और वृषसेन दूसरे धनुष पर रोंदा चढाकर सात्यकिको अनगिनत बाणोंसे विद्ध करने लगे॥ महाराज ! उस समय वीरोंके नाश करनेवाले उस महाघोर संग्रामके समय हम लोगोंको महाभयङ्कर गाण्डीव धनुषका शब्द सुनाई देने लगा॥ ४२-४४

सूतपुत्र कर्ण गाण्डीव धनुष और अर्जुनके रथका शब्द सुन कर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे यह वचन बोले, महाराज! जिस स्थलमें इन्द्रके धनुषके समान लगातार अर्जुनके गाण्डीव धनुष और उसके रथका शब्द सुन पडता है अवश्य ही उस स्थान पर महा धनुर्द्धारी पृथा-पुत्र अर्जुन मुख्य मुख्य सम्पूर्ण शिवि और पुरुष श्रेष्ठ पौरवोंका वध करके धनुषटङ्कार कर रहा है मुझे यह स्पष्ट हीं मालूम हो रहा है कि अर्जुन अपने

एषा विदार्यते राजन्बहुधा भारती चमूः ॥ ४८ ॥
विप्रकीर्णान्यनेकानि नहि तिष्ठन्ति कर्हिचित्।
वातेनेव समुद्भूतमभ्रजालं विदीर्यते ॥ ४९ ॥
सव्यसाचिनमासाद्य भिन्ना नौरिव सागरे।
द्रवतां योधमुख्यानां गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥ ५० ॥
विद्धानां शतशो राजञ्श्रूयते निःस्वनो महान्।
शृणु दुन्दुभिनिर्घोषमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ ५१ ॥
निशीथे राजशार्दूल स्तनयित्नोरिवाऽम्बरे।
हाहाकाररवांश्चैव सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ ५२ ॥
शृणु शब्दान्बहुविधानर्जुनस्य रथं प्रति।
अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिः सात्वतां वरः॥५३॥
इह चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नाञ्जेष्यामहे परान्।
एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन सङ्गतः ॥ ५४ ॥
सर्वतः संवृतो योधैः शूरैश्च रथसत्तमैः।
सात्यकिं यदि हन्याम धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ५५ ॥

पराक्रमके अनुसार ही कर्म कर रहा है। यह देखो, यह व्यूहबद्ध भारती सेना इधर उधर भाग रही है ॥ ४५-४८

जैसे प्रबल वायुके वेगसे बादलोंके समूह छिन्न भिन्न होजाते हैं वैसे ही अर्जुनके बाणोंसे पीडित होके सेनाके पुरुष किसी प्रकारसे भी युद्धभूमिमें खडे नहीं होसकते हैं ॥ अधिक क्या कहें, जैसे छोटी नौका समुद्रके लहरसे उलट जाती है, वैसे ही यह भारती सेना अर्जुनके बाणोंसे तितर बितर होके भाग रही है। हे राजेन्द्र! यह देखो गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे पीडित होके भागते हुए मुख्य मुख्य सैकडों योद्धाओंके महाघोर कोलाहल सुनाई देरहे हैं। रात्रिके समय आकाशमें स्थित बादल गर्जनेकी भांति अर्जुनके रथके समीपमें नगाडोंके शब्द शूरवीरोंके हाहाकार और सिंहनाद आदि अनेक भांति के शब्द सुनाई देरहे हैं। (४९-५२)

परन्तु इस स्थानमें हम सब लोगोंके बीचमें स्थित यदुवंशियोंमें मुख्य सात्यकिको यदि लक्ष्य रूपसे प्राप्त कर सकें तो अवश्य ही सम्पूर्ण शत्रुओंको पराजित कर सकेंगे। यह देखिये द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त हुए पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न तुम्हारे शूरवीर सहोदर भाइयोंके बीच चारों ओरसे घिर गये हैं। इस

असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत्।
सौभद्रवदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ ॥ ५६ ॥
प्रयतामो महाराज निहन्तुं वृष्णिपार्षतौ ।
सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत ॥ ५७ ॥
संसक्तं सात्यकिं ज्ञात्वा बहुभिः कुरुपुङ्गवैः ।
तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवरा रथसत्तमाः ॥ ५८ ॥
यावत्पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्वृतम् ।
ते त्वरध्वं तथा शूराः शराणां मोक्षणे भृशम् ॥ ५९ ॥
यथा त्विह व्रजत्येष परलोकाय माधवः ।
तथा कुरु महाराज सुनीत्या सुप्रयुक्तया ॥ ६० ॥
कर्णस्य मतमास्थाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम् ।
यथेन्द्रः समरे राजन्प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥ ६१ ॥
वृतः सहस्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्तिनाम् ।
रथैश्च दशसाहस्रैस्तूर्णं याहि धनञ्जयम् ॥ ६२ ॥

समय यदि हम लोग सात्यकि और पृषत् कुलभूषण धृष्टद्युम्नका नाश कर सकें तो अवश्य ही हम लोगोंकी जीत होवेगी। (५३–५६)

सुभद्रापुत्र अभिमन्युकी भांति हम लोग वृष्णि और पृषतवंशीय महारथी सात्यकि तथा धृष्टद्युम्नको चारों ओरसे घेर कर उनके नाश करनेका यत्न करेंगे। यह देखिये संमुखमें सव्यसाची अर्जुन सात्यकिको अनेक कुरुसेनाके वीरोंके सङ्ग युद्ध करते हुए देखकर द्रोणाचार्य की सेनाकी ओर आरहा है; इससे जब तक अर्जुन विशेषरूपसे यह न जान सके कि सात्यकि अनेक योद्धाओंके बीचमें घिर गया है उससे पहिले ही हम लोगोंकी ओरसे बहुतसे मुख्य मुख्य रथी लोग उसको इधर आनेमें बाधा देनेके वास्ते शीघ्रताके सहित उसके समीप गमन करें। और यहां पर जितने योद्धा लोग स्थित हैं वे लोग शीघ्रताके सहित लगातार इस प्रकार सात्यकिके ऊपर अपने बाणोंको बर्षावें जिसमें यदुवंशीय सात्यकि शीघ्र ही यम-लोकमें गमन करे ॥ (५७–६०)

महाराज ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने कर्णके अभिप्रायको समझके जैसे देव-राज इन्द्र यशस्वी विष्णुकी आज्ञाको पूर्ण करते हैं वैसे ही राजा दुर्योधन कर्णकी आज्ञा सुनके शकुनिसे बोले, हे मामा ! आप युद्धमें पीछे न हटनेवाले

दुःशासनो दुर्विषहः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥ ६३ ॥
जहि कृष्णौ महाबाहो धर्मराजं च मातुल ।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं तथैव च ॥ ६४ ॥
देवानामिव देवेन्द्रे जयाशा त्वयि मे स्थिता ।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥ ६५ ॥
एवमुक्तो ययौ पार्थान्पुत्रेण तव सौबलः ।
महत्या सेनया सार्धं सह पुत्रैश्च ते विभो ॥ ६६ ॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां दिधक्षुः पाण्डुनन्दनान् ।
ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ६७ ॥
प्रयाते सौबले राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।
बलेन महता युक्तः सूतपुत्रस्तु सात्वतम् ॥ ६८ ॥
अभ्ययात्त्वरितो युद्धे किरञ्शरशतान्बहून् ।
तथैव पार्थिवाः सर्वे सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ६९ ॥

दश हजार हाथी और दश सहस्र रथियोंके सहित अर्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेके वास्ते गमन करो, और दुःशासन, दुर्विषह, सुबाहु और दुष्प्रधर्षण आदि मेरे सहोदर भ्राता भी अनेक पैदल चलनेवाले शूरवीरोंके सहित तुम्हारे अनुगामी होंगे ॥ हे महाभुज मातुल ! तुम युद्धभूमिमें जाकर कृष्ण अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और भीमसेन का वध करो ॥ देखिये जैसे देवताओंकी विजय देवराज इन्द्र पर निर्भर रहती है वैसे ही मेरी भी विजयकी आशा तुम्हारी ऊपर निर्भर है। जैसे स्वामिकार्त्तिकने असुरोंकी सेनाको नाश किया था; वैसे ही आप भी कुन्तीपुत्रों का नाश कीजिये ॥ (६१–६५)

सञ्जय बोले, महाराज ! सुबलपुत्र शकुनिने कुरुराज दुर्योधनकी ऐसी आज्ञा सुनकर दुःशासन आदि राजपुत्रों और बडी सेनाके सहित कौरवोंके प्रिय कार्य को करनेकी इच्छासे कुन्तीपुत्रोंके वधके वास्ते उनकी ओर गमन किया। इसी भांति जब शकुनिने पाण्डवोंकी सेनाके बीच प्रवेश किया तब शत्रुओंके सङ्ग तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ (६६–६७)

इधर सूतपुत्र कर्ण बडी सेनाके बीच घिरकर अनगिनत बाणोंकी वर्षा करते हुए शीघ्रताके सहित सात्यकिकी ओर दौडे। तिसके अनन्तर सम्पूर्ण राजाओंने

भारद्वाजस्ततो गत्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
महद्युद्धं तदासीत्तु द्रोणस्य निशि भारत ।
धृष्टद्युम्नेन वीरेण पञ्चालैश्च सहाऽद्भुतम् ॥ ७० ॥ [७६९०]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

सञ्जय उवाच— ततस्ते प्राद्रवन्सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः ।
अमृष्यमाणाः संरब्धा युयुधानरथं प्रति ॥ १ ॥
ते रथैः कल्पितै राजन्हेमरूप्यविभूषितैः ।
सादिभिश्च गजैश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ॥ २ ॥
अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः ।
सिंहनादांस्ततश्चक्रुस्तर्जयन्ति स्म सात्यकिम् ॥ ३ ॥
तेऽभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
त्वरमाणा महावीरा माधवस्य वधैषिणः ॥ ४ ॥
तान्दृष्ट्वाऽऽपततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा ।
प्रत्यगृह्णान्महाबाहुः प्रमुञ्चन्विशिखान्बहून् ॥ ५ ॥
तत्र वीरो महेष्वासः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।

चारों ओरसे सात्यकिको घेर लिया। उस रात्रिके समय महावीर धृष्टद्युम्न और पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग द्रोणाचार्यका अत्यन्त ही अद्भुत महाघोर संग्राम होने लगा॥ (६८-७०) [७६९०]

द्रोणपर्वमें एकसौ सत्तर अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ इकहत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज! तिसके अनन्तर कुरुसेनाके शूरवीर योद्धा लोग निर्भय चित्तसे क्रोधपूर्वक शीघ्रताके सहित सात्यकिके रथकी ओर दौडे॥ उन लोगोंने सोने और चांदीसे भूषित रथोंपर चढके घुडसवार और गजपतियोंके समूहसे चारों ओरसे सात्यकिको घेर लिया॥ इसी भांति तुम्हारी सेनाके महारथी योद्धा लोग चारों ओरसे सात्यकिको घेर कर सिंहनाद शब्दके सहित बार बार गर्जने लगे और सात्यकिको निन्दने लगे॥ महाबलवान् कौरव लोग यदुवंशीय मुख्य सत्य पराक्रमी सात्यकिके वधकी अभिलाष करके लगातार उसके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ (१-४)

शिनिपौत्र सात्यकि उन सम्पूर्ण योद्धाओंको वेगपूर्वक अपनी ओर आये हुए देखकर असंख्य बाणोंसे उनको निवारण करने लगे॥ महाराज! उस ही समय धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी युद्धदुर्मद सात्यकि

निचकर्त शिरांस्युग्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६ ॥
हस्तिहस्तान्हयग्रीवा बाहूनपि च सायुधान् ।
क्षुरप्रैः शातयामास तावकानां स माधवः ॥ ७ ॥
पतितैश्चामरैश्चैव श्वेतच्छत्रैश्च भारत ।
बभूव धरणी पूर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिव प्रभो ॥ ८ ॥
एतेषां युयुधानेन युध्यतां युधि भारत ।
बभूव तुमुलः शब्दः प्रेतानां क्रन्दतामिव ॥ ९ ॥
तेन शब्देन महता पूरिताऽभूद्वसुन्धरा ।
रात्रिः समभवच्चैव तीव्ररूपा भयावहा ॥ १० ॥
दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा युयुधानशराहतम् ।
श्रुत्वा च विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणे ॥ ११ ॥
सुतस्तवाऽब्रवीद्राजन्सारथिं रथिनां वरः ।
यत्रैष शब्दस्तत्राऽश्वांश्चोदयेति पुनः पुनः ॥ १२ ॥
तेन सञ्चोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्तमान् ।
सूतः सञ्चोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ १३ ॥
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः ।

अपने तेज बाणोंसे और क्षुरप्र अस्त्रसे तुम्हारी सेनाके बहुतेरे योद्धाओंके सिर भुजा हाथियोंके सूण्ड और घोडोंकी गर्दन काट काट कर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ (५-७)

उस समय वह रणभूमि इधर उधर पडे हुए चंवर, सफेद छत्र आदि वस्तुओंसे युक्त होकर इस प्रकार शोभित हुई जैसे तारोंसे युक्त आकाशमण्डल शोभित होता है ॥ और सात्यकिके सङ्ग युद्ध करते हुए योद्धाओंके ऐसे महाघोर तुमुल शब्द सुनाई देने लगे मानो प्रेत रुदन कर रहे हैं ॥ उस महाघोर शब्दसे पृथ्वी परिपूरित होगई और रात्रि भी अत्यन्त ही भयङ्कर होकर प्राणियोंको डरावनी बोध होने लगी ॥ (८—१०)

उस भयङ्करी रात्रिके समय अपनी सेनाके पुरुषोंको भागते देख तथा उन लोगोंके महाघोर आर्तशब्दको सुनकर राजा दुर्योधन बार बार अपने सारथीसे बोले, कि जिधर यह महाघोर शब्द सुन पडता है, उसी ओर घोडोंको ले चलो ॥ सारथी राजा दुर्योधनकी आज्ञा सुनकर उत्तम घोडोंसे युक्त उनके रथको सात्यकिके रथकी ओर चलाने लगा ॥ (११—१३)

शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवत् ॥ १४ ॥
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः शोणितभोजनैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत ॥ १५ ॥
दुर्योधनस्तेन तथा पूर्वमेवाऽर्दितः शरैः ।
शैनेयं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः ॥ १६ ॥
ततः समभवद्युद्धं तुमुलं भरतर्षभ ।
पञ्चालानां च सर्वेषां भरतानां च दारुणम् ॥ १७ ॥
शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं महारथम् ।
सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत ॥ १८ ॥
ततोऽस्य वाहान्समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
सारथिं च रथात्तूर्णं पातयामास पत्रिणा ॥ १९ ॥
हताश्वे तु रथे तिष्ठन्पुत्रस्तव विशाम्पते ।
मुमोच निशितान्बाणाञ्शैनेयस्य रथं प्रति ॥ २० ॥
शरान्पञ्चशतांस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत् ।
चिच्छेद समरे राजन्प्रेषितांस्तनयेन ते ॥ २१ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ।
चिच्छेद तरसा युद्धे तव पुत्रस्य माधवः ॥ २२ ॥

अनन्तर युद्धमें श्रमरहित महाबलवान् शीघ्र अस्त्र चलानेवाले दृढ धनुर्द्धारी कुरुराज दुर्योधन सात्यकिके समीप प्राप्त हुआ। तब सात्यकिने कान पर्यन्त धनुषको खींचके रुधिर पीनेवाले बारह बाणोंको चलाकर उसके हृदयमें प्रहार किया। ॥ शिनिपौत्र सात्यकिके बाणोंसे पहले पीडित हुए दुर्योधनने फिर क्रोध पूर्वक दश बाणों से सात्यकि को विद्ध किया ॥ उस समय कौरव और पाञ्चाल योद्धाओंका महाघोर भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ (१४–१७)

तिसके अनन्तर सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अस्सी बाणोंसे तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके हृदयमें प्रहार किया ॥ फिर अनेक बाणोंसे उनके रथके घोडोंका वध करके एक बाणसे सारथिको भी मारकर रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ महाराज! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने घोडोंसे रहित रथ पर ही स्थित होकर सात्यकिके रथ की ओर पचास बाण चलाये, सात्यकि ने हस्तलाघवके सहित दुर्योधनके चलाये हुए बाणोंको टुकडे टुकडे करके पृथ्वी में गिराया और एक भल्लास्त्रसे तुम्हारे

विरथो विधनुष्कश्च सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ २३ ॥
दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम् ।
द्रावयामास विशिखैर्निशामध्ये विशाम्पते ॥ २४ ॥
शकुनिश्चाऽर्जुनं राजन्परिवार्य समन्ततः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्गजैश्चाऽपि सहस्रशः ॥ २५ ॥
तथा हयसहस्रैश्च नानाशस्त्रैरवाकिरत् ।
ते महास्त्राणि सर्वाणि विकिरन्तोऽर्जुनं प्रति ॥ २६ ॥
अर्जुनं योधयन्ति स्म क्षत्रियाः कालचोदिताः ।
तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ॥ २७ ॥
प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन्विपुलं क्षयम् ।
ततस्तु समरे शूरः शकुनिः सौबलस्तदा ॥ २८ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं प्रहसन्निव ।
पुनश्चैव शतेनाऽस्य संरुरोध महारथम् ॥ २९ ॥

पुत्र दुर्योधनके धनुषकी मूंठी काट दिया ॥ (१८—२२)

उस समय राजा दुर्योधन धनुषके कटने पर घोडोंसे सहित रथसे उतरके कृतवर्माके प्रकाशमान रथ पर जाचढे ॥ हे प्रजानाथ ! उस रात्रिके समय जब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन सात्यकिके संमुखसे पराजित हुए तब पराक्रमी सात्यकि अपने बाणोंकी वर्षा कर तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको छिन्न भिन्न करने लगे ॥ (२३–२४)

इस ही समय शकुनि सहस्रों रथी हाथी और घुडसवारोंकी सेना लेकर चारों ओरसे अर्जुनको घेरकर उनके ऊपर लगातार अनेक प्रकारके बाणोंको वर्षाने लगे ॥ महाराज वे सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा लोग कालके वशमें होकर महा अस्त्रोंको चलाते हुए अर्जुनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ (२५–२७)

तब अर्जुन क्रोधपूर्वक तुम्हारी महासेनाके योद्धाओंके नाश करनेमें प्रवृत्त हुए और सहस्रों गजसवार घुडसवार और रथियोंको युद्धभूमिसे निवारण करने लगे ॥ जब अर्जुन इसी भांति शत्रुसेनाके पुरुषोंका नाश करने लगे तब शकुनिने क्रोधसे नेत्र लाल करके उन्हें बीस बाणोंसे दृढताके सहित विद्ध किया। तिसके अनन्तर शकुनि सैकडों बाणोंको चलाकर कपिध्वजासे युक्त अर्जुनके रथको छिपाने लगे ॥ (२७–२९)

तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत ।
अथेतरान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ॥ ३० ॥
निवार्य तान्बाणगणैर्युधि राजन्धनञ्जयः ।
जघान तावकान्योधान्वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥ ३१ ॥
भुजैश्छिन्नैर्महीपाल हस्तिहस्तोपमैर्मृधे ।
समाकीर्णा मही भाति पञ्चास्यैरिव पन्नगैः ॥ ३२ ॥
शिरोभिः सकिरीटैश्च सुनसैश्चारुकुण्डलैः ।
सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैस्तथैवोद्वृत्तलोचनैः ॥ ३३ ॥
निष्कचूडामणिधरैः क्षत्रियाणां प्रियंवदैः ।
पङ्कजैरिव विन्यस्तैः पर्वतैर्विबभौ मही ॥ ३४ ॥
कृत्वा तत्कर्म बीभत्सुरुग्रमुग्रपराक्रमः ।
विव्याध शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३५ ॥
अताडयदुलूकं च त्रिभिरेव तथा शरैः ।
उलूकस्तु तथा विद्धो वासुदेवमताडयत् ॥ ३६ ॥

अनन्तर अर्जुनने बीस बाणोंसे शकुनि और अन्य महारथियोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ महाराज ! इतने ही समयके बीच महावीर अर्जुन शत्रुओं के चलाये हुए बाणोंका निवारण करके फिर असुरोंको मारनेवाले इन्द्रके समान तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका प्राण नाश कर उन लोगोंको यमपुरीमें भेजने लगे । उस समय हाथीके सूण्डसमान शूरवीर पुरुषोंकी भुजा अर्जुनके बाणोंसे कटके पृथ्वीमें गिरने लगीं उससे वह रणभूमि मानो पांच सिरवाले सर्पोंकी भांति उन कटी हुई भुजाओंसे पूरित होगई ॥ (३०–३२)

इसी भांति स्वर्णमुद्रा चूडामणि किरीट और कुण्डलोंसे शोभित मनोहर नासिकाके सहित शूरवीर पुरुषोंके बहुतेरे सिर शरीरसे कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ओहो ! जिन क्षत्रियोंके शरीरसे सदा सर्वदा प्रिय वचन सुनाई देते थे इस समय वे क्रोधके वशमें होकर ओंठ काटते हुए युद्धमें प्रवृत्त हुए और उस ही भांति अर्जुनके बाणोंसे उनके सिर कटके पृथ्वीमें गिरे तब वह रणभूमि कमलोंसे से युक्त पर्वतोंकी भांति शोभित होने लगी ॥ (३३—३४)

महापराक्रमी अर्जुनने युद्धभूमिके बीच ऐसा भयङ्कर कर्म करके फिर पांच तीक्ष्ण बाणोंसे शकुनि और तीन बाणोंसे उनके पुत्र उलूकको पीडित किया ।

ननाद च महानादं पूरयन्निव मेदिनीम्।
अर्जुनः शकुनेश्चापं सायकैरच्छिनद्रणे ॥ ३७ ॥
निन्ये च चतुरो वाहान्यमस्य सदनं प्रति।
ततो रथादवप्लुत्य सौबलो भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशाम्पते।
तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ ॥ ३९ ॥
पार्थं सिषिचतुर्बाणैर्गिरिं मेघाविवाऽम्बुभिः।
तौ तु विध्वा महाराज पाण्डवो निशितैः शरैः ॥ ४० ॥
विद्रावयंस्तव चमूं शतशो व्यधमच्छरैः।
अनिलेन यथाऽभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ॥ ४१ ॥
विच्छिन्नानि तथा राजन्बलान्यासान्विशाम्पते।
तद्बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं तदा निशि ॥ ४२ ॥
प्रदुद्राव दिशः सर्वा वीक्षमाणं भयार्दितम्।
उत्सृज्य वाहान्समरे चोदयन्तस्तथाऽपरे ॥ ४३ ॥
सम्भ्रान्ताः पर्यधावन्त तस्मिंस्तमसि दारुणे।

उलूकने अर्जुनके बाणोंसे विद्ध होकर अपने बाणोंसे श्रीकृष्णको परिपूरित किया और अनेक बाणोंसे पृथ्वीको परिपूरित करके सिंहनाद किया। ३५-३७

अनन्तर अर्जुनने अनेक बाण चलाकर शकुनिका धनुष काटा और उनके चारों घोडोंका वध करके पृथ्वीमें गिराया। शकुनि घोडोंसे रहित रथसे कूदके उलूकके रथपर जा चढे। महाराज! जैसे दो बादल पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं वैसे ही एक रथपर चढेहुए पिता पुत्र शकुनि और उलूक अर्जुनके ऊपर लगातार अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। (३७-४०)

अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्जुन अपने तेज बाणोंसे उन दोनोंको विद्ध करके फिर तुम्हारी व्यूहबद्ध सेनाके अनगिनत योद्धाओंको अपने बाणरूपी अग्निसे भस्म करने लगे। जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे बादलोंके समूह छिन्न भिन्न हो जाते हैं वैसे ही कुरुसेनाके योद्धा लोग अर्जुनके बाणोंसे चारों ओर तितर बितर होगये। महाराज! उस महाघोर रात्रिके समय तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग भयभीत और अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर चारों ओर देखते हुए वेगपूर्वक भागने लगे। उस महाघोर अन्धकारके समय भागते हुए योद्धाओंके बीच कितने ही

विजित्य समरे योधांस्तावकान्भरतर्षभ ॥ ४४ ॥
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं विध्वा त्रिभिः शरैः॥ ४५ ॥
चिच्छेद धनुषस्तूर्णं ज्यां शरेण शितेन ह ।
तन्निधाय धनुर्भूमौ द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४६ ॥
आददेऽन्यद्धनुः शूरो वेगवत्सारवत्तरम् ।
धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो विध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ४७ ॥
सारथिं पञ्चभिर्बाणै राजन्विव्याध संयुगे ।
तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ४८ ॥
व्यधमत्कौरवीं सेनामासुरीं मघवानिव ।
वध्यमाने बले तस्मिंस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ ४९ ॥
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।
उभयोः सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ॥ ५० ॥
यथा वैतरणी राजन्यमराजपुरं प्रति ।
द्रावयित्वा तु तत्सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥

योद्धा हाथी, घोडे आदि अपने वाहनोंको त्यागकर पैदलही छिपकर भागने लगे । हे भारत ! श्रीकृष्ण और अर्जुन इसी भांति शत्रुओंको पराजित करके हर्षपूर्वक अपने शङ्ख बजाने लगे। (४०—४५)

उस ही समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्य को तीन बाणोंसे विद्ध करके शीघ्रताके सहित एक तेज बाणसे उनके धनुषका रोदा काट दिया । तब क्षत्रियोंके नाश करनेवाले महावीर द्रोणाचार्यने रोदेसे रहित धनुषको रथमें रखकर महावेगशील दूसरा धनुष ग्रहण किया; अनन्तर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको सात बाणोंसे विद्ध करके पांच बाणोंसे उनके सारथी को विद्ध किया ॥ (४५–४८)

महाराज ! महारथी धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंकी वर्षासे मुहूर्तभरके बीच द्रोणाचार्यको निवारण किया; और जैसे देवराज इन्द्रने दानवोंकी सेनाका नाश किया था; वैसे ही कौरवी सेनाका नाश करने लगे । महाराज ! इसही भांति जब तुम्हारे पुत्रकी सेनाके पुरुष मरने लगे, तब दोनों सेनाके बीच यमलोकमें स्थित वैतरणी नदीकी भांति भयङ्करी एक रुधिरका प्रवाह और रुधिरके तरंग वाली नदी बह निकली उसमें मनुष्य हाथी और घोडे बहने लगे। (४७–५१)

महाराज ! उस समय प्रतापी धृष्टद्युम्न

अभ्यराजत तेजस्वी शक्रो देवगणेष्विव ।
अथ दध्मुर्महाशङ्खान्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ५२ ॥
यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
जित्वा रथसहस्राणि तावकानां महारथाः ॥ ५३ ॥
सिंहनादरवांश्चक्रुः पाण्डवा जितकाशिनः ।
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च रणोत्कटाः ।
तथा द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशाम्पते ॥ ५४ ॥ [७७४४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

सञ्जय उवाच— विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टः पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ १ ॥
अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरम् ।
अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
भवद्भ्यामिह संग्रामः क्रुद्धाभ्यां सम्प्रवर्तितः ।
आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना ॥ ३ ॥
निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम् ।

कुरुसेना के योद्धाओं को छिन्न भिन्न करके अपनी सेनाके बीचमें घिरकर इस प्रकार रणभूमिमें स्थित हुए जैसे देवताओंके बीचमें इन्द्र विराजमान होते हैं ॥ अनन्तर पाण्डुपुत्र भीमसेन, नकुल, सहदेव भी शिखण्डी और धृष्टद्युम्नके सङ्ग मिलकर अपने अपने शङ्ख बजाने लगे, इसी भांति युद्धमें पराक्रमी महारथी पाण्डव लोग तुम्हारे पुत्र दुर्योधन, राधापुत्र कर्ण, महावीर द्रोणाचार्य और अश्वत्थामाके सम्मुखमें ही कुरुसेनाके सहस्रों रथियोंको पराजित करके सिंहकी भांति भयङ्कर शब्दके सहित सिंहनाद करने लगे ॥ (५१–५४) [७७४४]

द्रोणपर्वमें एकसौ इकहत्तर अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ बाहत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन पाण्डवोंकी ओरके कई एक महारथियोंके अस्त्रोंसे अपनी सेनाके पुरुषोंको पीडित होकर भागते देख अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए, और विजयी श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और कर्णके समीप जाकर यह वचन बोले, रणभूमिमें अर्जुनके बाणोंसे सिन्धुराज जयद्रथको मरते देख कर आप लोगोंने ही यह संग्राम आरम्भ किया है; इस समय आप लोग, पाण्डवों

भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः ॥ ४ ॥
यद्यहं भवतोस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि ।
आवां पाण्डुसुतान्संख्ये जेष्याव इति मानदौ ॥ ५ ॥
तदैवाऽहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनुसम्मतम् ।
नाऽकरिष्यमिदं पार्थैर्वैरं योधविनाशनम् ॥ ६ ॥
यदि नाऽहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ ।
युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ ॥ ७ ॥
वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते ।
प्रावर्तयेतां संग्रामं घट्टिताविव पन्नगौ ॥ ८ ॥
ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
शैनेयप्रमुखान्पार्थानभिदुद्रुवतू रणे ॥ ९ ॥
तथैव सहिताः पार्थाः सर्वसैन्येन संवृताः ।
अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः ॥ १० ॥
अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनिपुङ्गवम् ।
अविध्यत्त्वरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ११ ॥

को जीतनेमें समर्थ होकर भी असमर्थ की भांति हमारी सेनाको नष्ट होती हुई देख रहे हैं ॥ (१–४)

मुझे यदि आप लोगोंको त्याग करनेकी ही इच्छा थी, तो पहिले "हम युद्धभूमिमें पाण्डुपुत्रोंको पराजित करेंगे" ऐसा वचन बोलना उचित नहीं था। क्योंकि आप लोगोंका यदि मैं वैसा अभिप्राय जानता, तो कभी पाण्डुपुत्रोंके सङ्ग शत्रुता करके अपनी सेनाके पुरुषों का नाश न कराता॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यदि मैं आप दोनोंके त्याग किये जानेके योग्य न होऊं, तो आप दोनों लोग जैसे बल पराक्रमसे युक्त हैं, उसके अनुसार ही युद्ध करनेमें प्रवृत्त होइये ॥ (५-७)

महाराज ! महावीर द्रोणाचार्य और कर्ण दुर्योधनके वचनरूपी कोडेसे विद्ध होकर क्रुद्ध हुए सर्पकी भांति युद्ध करने में प्रवृत्त हुए। इसी भांति सम्पूर्ण लोकोंके बीच धनुर्द्धर रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और कर्ण सात्यकि आदि पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे॥ पाण्डव लोग भी उसी भांति अपनी सेनाके बीच घिरकर बार बार सिंहनाद करनेवाले द्रोणाचार्य और कर्ण की ओर दौडे॥ (८–१०)

तिसके अनन्तर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी द्रोणाचार्यने

कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः ।
दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चापि सप्तभिः ॥ १२ ॥
एते कौरवसंक्रन्दे शैनेयं पर्यवाकिरन् ।
दृष्ट्वा च समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम् ॥ १३ ॥
विव्यधुः सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः ।
तत्र द्रोणोऽहरत्प्राणान्क्षत्रियाणां विशाम्पते ॥ १४ ॥
रश्मिभिर्भास्करो राजंस्तमांसीव समन्ततः ।
द्रोणेन वध्यमानानां पञ्चालानां विशाम्पते ॥ १५ ॥
शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम् ।
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये च मातुलान् ॥ १६ ॥
भागिनेयान्वयस्यांश्च तथा सम्बन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितेप्सवः ॥१७॥
अपरे मोहिता मोहात्तमेवाऽभिमुखा ययुः ।
पाण्डवानां रणे योधाः परलोकं गताः परे ॥ १८ ॥
सा तथा पाण्डवी सेना पीड्यमाना महात्मना ।
निशि सम्प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १९ ॥

क्रुद्ध होकर दश बाणोंसे शिनिपौत्र सात्यकिको विद्ध किया ॥ फिर कर्णने दश, दुर्योधनने सात, वृषसेनने दश और सुबलपुत्र शकुनिने सात बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया । अधिक क्या कहूं उस समय उन सम्पूर्ण योद्धाओंने शिनिपौत्र सात्यकिको अपने बाणजालसे छिपा दिया ॥ (११–१३)

सोमकवंशी योद्धा लोग द्रोणाचार्यको इस भांति पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका नाश करते देखकर शीघ्रताके सहित उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे । उस ही समय द्रोणाचार्य चारों ओर अपने बाणोंको चलाकर इस प्रकार क्षत्रियोंका वध करने लगे जैसे सूर्य चारों ओर अपनी किरणोंके प्रकाशसे अन्धकारको नष्ट कर देते हैं । उस समय द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित हुए पाञ्चाल योद्धाओंका महाघोर तुमुल शब्द सुनाई देनेलगा । उससमय वे सम्पूर्ण योद्धा लोग कोई पुत्र, कोई पिता, कोई भ्राता, कोई मामा और कोई भानजे, कोई मित्र और कोई अपने सम्बन्धी तथा बन्धु बान्धवोंको रणभूमिमें त्यागके वेगपूर्वक भागने लगे । कोई कोई योद्धा मोहित होकर द्रोणाचार्यहीकी ओर दौडे ॥ (१३–१८)

पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याऽच्युतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ २० ॥
तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन ।
कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते विद्रुताः परे ॥ २१ ॥
द्रवमाणं तु तत्सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ ।
जघ्नतुः पृष्ठतो राजन्किरन्तौ सायकान्बहून् ॥ २२ ॥
पञ्चालेषु प्रभग्नेषु क्षीयमाणेषु सर्वतः ।
जनार्दनो दीनमनाः प्रत्यभाषत फाल्गुनम् ॥ २३ ॥
द्रोणकर्णौ महेष्वासावेतौ पार्षतसात्यकी ।
पञ्चालांश्चैव सहितौ जघ्नतुः सायकैर्भृशम् ॥ २४ ॥
एतयोः शरवर्षेण प्रभग्ना नो महारथाः ।
वार्यमाणाऽपि कौन्तेय पृतना नाऽवतिष्ठते ॥ २५ ॥

उस रात्रिके समय पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा लोग महात्मा द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित होकर भीमसेन अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्नके संमुखमें स्थित सहस्रों लुक इधर उधर फेंकके युद्धभूमिसे भागने लगे। जिस समय वे सम्पूर्ण योद्धा लोग लुक फेंकके भागने लगे, यद्यपि उस समय लुकोंके फेंक देनेसे अन्धकारके कारण कुछ भी मालूम होनेकी संभावना नहीं थी; परन्तु तुम्हारी ओरकी सेनाके बीच जो दीपकोंका प्रकाश होरहा था, उससे भागते हुए शत्रु सेनाके योद्धा लोग स्पष्टरूपसे दिखाई देने लगे ॥ महाराज ! महारथी द्रोणाचार्य और कर्ण उन भागते हुए सेनाके पुरुषोंके पीछे अनगिनत बाणोंको चला कर उनके शरीरमें प्रहार करने लगे ॥ (१९-२२)

इसी भांति जब पाञ्चाल योद्धा चारों ओर भागते हुए द्रोणाचार्य और कर्णके बाणोंसे नष्ट होने लगे, तब जनार्दन कृष्ण दुःखित होकर अर्जुनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन ! यह देखो धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी द्रोणाचार्य और कर्ण पाञ्चाल योद्धाओंके सहित धृष्टद्युम्न और सात्यकी के ऊपर अपने बाणोंसे अत्यन्त ही प्रहार कर रहे हैं। अधिक क्या कहा जावे, उन दोनोंकी बाणवर्षासे हम लोगोंकी सेनाके महारथ योद्धा लोग बार बार युद्धभूमिसे विमुख होरहे हैं; उससे सेनाके पुरुष बार बार निवारित किये जाने पर भी युद्धभूमिमें स्थित नहीं हो सकते हैं ॥ (२३-२५)

तब भागती हुई अपनी सेनाको

तां तु विद्रवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवार्जुनौ ।
मा विद्रवत वित्रस्ता भयं त्यजत पाण्डवाः ॥ २६ ॥
तावावां सर्वसैन्यैश्च व्यूहैः सम्यगुदायुधैः ।
द्रोणं च सूतपुत्रं च प्रयतावः प्रबाधितुम् ॥ २७ ॥
एतौ हि बलिनौ शूरौ कृतास्त्रौ जितकाशिनौ ।
उपेक्षितौ तव बलं नाशयेतां निशामिमाम् ॥ २८ ॥
तयोः संवदतोरेवं भीमकर्मा महाबलः ।
आयाद्वृकोदरः शीघ्रं पुनरावर्त्य वाहिनीम् ॥ २९ ॥
वृकोदरमथाऽऽयान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः ।
पुनरेवाऽब्रवीद्राजन्हर्षयन्निव पाण्डवम् ॥ ३० ॥
एष भीमो रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः ।
अभ्यवर्त्तत वेगेन द्रोणकर्णौ महारथौ ॥ ३१ ॥
एतेन सहितौ युध्य पञ्चालैश्च महारथैः ।
आश्वासनार्थं सैन्यानां सर्वेषां पाण्डुनन्दन ॥ ३२ ॥

देखकर कृष्ण और अर्जुन उस सेनाको निवृत्त करने के लिये यह वचन बोले, हे पाण्डवोंकी ओर के योद्धाओ ! आप त्रस्त होकर मत भागो; आप भयको छोड कर यहां आओ । चलो हम लोग शस्त्र ग्रहण किये हुए सेनाके योद्धाओं के सङ्ग मिल कर सूतपुत्र कर्ण और द्रोणाचार्यको रोकनेके वास्ते विशेषरूपसे यत्न करें ॥ इस समय श्रीकृष्ण अर्जुनसे बोले, कृतास्त्र बलवान् और जय प्रभाव से युक्त इन दोनों वीरोंके विषयमें यदि हम लोग उपेक्षा करेंगे तो इसी रात्रिके बीच ये लोग तुम्हारी सेनाके पुरुषोंका नाश कर देंगे ॥ (२६-२८)

श्रीकृष्ण और अर्जुन इसी भांति विचार कर रहे थे उसी समय महाबलवान् पराक्रमी भीमसेन शीघ्र ही भागती हुई सेनाको लौटा कर रणभूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर गमन करने लगे ॥ भीमसेनको सेना सहित रणभूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर आते देख श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले, हे पाण्डुपुत्र अर्जुन ! युद्धमें प्रशंसित भीमसेन क्रुद्ध होकर सोमक और पाण्डवोंकी सेनाके बहुतेरे योद्धाओं के सहित वेगपूर्वक महारथी द्रोणाचार्य और कर्णकी ओर गमन कर रहे हैं । तुम अपनी सेनाके पुरुषोंको धीरज देते हुए महारथी पाञ्चाल योद्धाओं और भीमसेनके सङ्ग मिलकर शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करो ॥ (२९-३२)

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ।
द्रोणकर्णौ समासाद्य धिष्ठितौ रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥

सञ्जय उवाच— ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान्ममृदतुर्युधि ॥ ३४ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान् ।
यथा सागरयो राजंश्चन्द्रोदयविवृद्धयोः ॥ ३५ ॥
तत उत्सृज्य पाणिभ्यां प्रदीपांस्तव वाहिनी ।
युयुधे पाण्डवैः सार्धमुन्मत्तवदसंकुला ॥ ३६ ॥
रजसा तमसा चैव संवृते भृशदारुणे ।
केवलं नामगोत्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ॥ ३७ ॥
अश्रूयन्त हि नामानि श्राव्यमाणानि पार्थिवैः ।
प्रहरद्भिर्महाराज स्वयंवर इवाऽऽहवे ॥ ३८ ॥
निःशब्दमासीत्सहसा पुनः शब्दो महानभूत् ।
क्रुद्धानां युध्यमानानां जीयतां जयतामपि ॥ ३९ ॥

महाराज ! पुरुषसिंह कृष्ण और अर्जुन इसी भांति आपस में बातचीत करके द्रोणाचार्य और कर्णकी ओर देखते हुए युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ सञ्जय बोले, इधर युधिष्ठिरकी महासेना जिस स्थानमें द्रोणाचार्य और कर्ण शत्रुओंका नाश कर रहे थे उसी स्थानमें फिर लौटके उपस्थित हुई ॥ उस समय पूर्णमासी के दिन चंद्रोदयके समय उछलित हुए दो समुद्रके समान कौरव और पाण्डवों की सेनाका आपसमें महाघोर संग्राम होने लगा ॥ (३३–३५)

अनन्तर तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग उन्मत्तकी भांति हाथमें स्थित दीपकोंको फेंक कर निर्भय चित्तसे पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ परन्तु उस समय अन्धकार और धूलि उडनेसे कुछ भी नहीं सूझ पडता था, तब विजयकी इच्छासे वीर लोग केवल अपना नाम और गोत्र सुना कर युद्ध करने लगे ॥ महाराज ! जैसे स्वयंवरके बीच राजाओंके नाम और गोत्र सुन पडते हैं, वैसे ही युद्धभूमिके बीच युद्ध करते हुए योद्धाओंके नाम और गोत्र सुनाई देनेलगे ॥ (३६–३८)

महाराज ! उस समय रणभूमिके बीच थोडे समय तक सन्नाटा छागया, पर फिर जब सेनाके पुरुष क्रुद्ध होकर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए; तब युद्ध में पराजित और जययुक्त दोनों ओरकी

यत्र यत्र स्म दृश्यन्ते प्रदीपाः कुरुसत्तम।
तत्र तत्र स्म शूरास्ते निपतन्ति पतङ्गवत् ॥ ४० ॥
तथा संयुध्यमानानां विगाढाऽऽसीन्महानिशा।
पाण्डवानां च राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ॥४१॥ [७७८५]

इति श्रीमहाभारते०द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७२॥

सञ्जय उवाच— ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा।
आजघानोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥ १ ॥
प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष।
दशभिः सायकैर्हृष्टस्तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २ ॥
तावन्योन्यं शरैः संख्ये सञ्छाद्य सुमहारथौ।
पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विव्यधाते परस्परम् ॥ ३ ॥
ततः पञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
सारथिं चतुरश्चाऽश्वान्कर्णो विव्याध सायकैः ॥ ४ ॥
कार्मुकप्रवरं चापि प्रचिच्छेद शितैः शरैः।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥

सेनाके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा॥ हे राजेन्द्र! उस समय जिस स्थान पर दीपकका प्रकाश दिखाई देता था शूरवीर पुरुष पतङ्गकी भांति उसी ओर दौडके युद्ध करने लगते थे॥ इसी भांति जब कौरव और पाण्डव लोग रण भूमिके बीच युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए,तब क्रमसे वह महाघोर रात्रि अत्यन्त ही भयङ्कर मालूम होने लगी॥(३९-४१)

एकसौ बाहत्तर अध्याय समाप्त। [७७८५]

द्रोणपर्वमें एकसौ तिहत्तर अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! तिसके अनन्तर शत्रुनाशन कर्णने पृषत्कुल-भूषण धृष्टद्युम्नके वक्षस्थलमें दश मर्मभेदी बाणोंसे प्रहार किया॥ धृष्टद्युम्नने कर्णके बाणोंसे विद्ध होकर निर्भयताके सहित खडा रह! खडा रह कहके दश बाणोंसे कर्णको विद्ध किया॥ इसी भांति वे दोनों महारथी योद्धा कान पर्यन्त धनुष खींचके अपने बाणोंको वर्षा कर एक दूसरेको छिपाने लगे॥(१-३)

अनन्तर सूतपुत्र कर्णने रणभूमिके बीच पाञ्चाल योद्धाओंमें मुख्य धृष्टद्युम्नके चारों घोडोंको मारके गिरा दिया और अनेक बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध करके एक तेज बाणसे धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया; अनन्तर कर्णने भल्ला-स्त्रसे धृष्टद्युम्नके सारथीका वध करके

धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याऽश्वानपीपिषत् ॥ ६ ॥
विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवाऽन्वपद्यत ॥ ७ ॥
आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष ।
प्रयातुकामः कर्णाय वारितो धर्मसूनुना ॥ ८ ॥
कर्णस्तु सुमहातेजाः सिंहनादविमिश्रितम् ।
धनुःशब्दं महच्चक्रे दध्मौ तारेण चाऽम्बुजम् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा विनिर्जितं युद्धे पार्षतं ते महारथाः ।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चालाः सहसोमकाः ॥ १० ॥
सूतपुत्रवधार्थाय शस्त्राण्यादाय सर्वशः ।
प्रययुः कर्णमुद्दिश्य मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ११ ॥
कर्णस्याऽपि रथे वाहानन्यान्सूतोऽभ्ययोजयत् ।
शङ्खवर्णान्महावेगान्सैन्धवान्साधुवाहिनः ॥ १२ ॥
लब्धलक्षस्तु राधेयः पञ्चालानां महारथान् ।

उसे रथसे पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ तब धृष्टद्युम्नने घोडे और सारथीसे रहित रथसे उतरके एक परिघ चलाकर कर्णके रथके चारों घोडोंको मारके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (४-६)

परन्तु धृष्टद्युम्न कर्णके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्प समान बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध हुए थे, इससे पैदल ही दौडके युधिष्ठिरकी सेनाके बीच प्रवेश करके सहदेवके रथपर आ चढे और फिर कर्णकी ओर जानेकी इच्छा की परन्तु धर्मपुत्र युधिष्ठिरने उसे उस कार्यसे निवृत्त किया ॥ (७-८)

इधर महातेजस्वी कर्णने सिंहनाद करके धनुषटंकार किया और जोरसे अपना शंख बजाया ॥ इस प्रकार कर्णसे धृष्टद्युम्नको पराजित हुए देख कर महारथी सोमक और पांचाल योद्धा अत्यंत क्रुद्ध हुए और मृत्युका भय छोडकर कर्णको मारनेके लिये शस्त्रास्त्र लेकर चारों ओर से कर्णकी ओर दौडे ॥९-११

इधर कर्णके सारथीने भी अत्यन्त वेगवान् सिन्धुदेशीय सफेद रङ्गके उत्तम घोडोंको लेकर कर्णके रथमें जोत दिया। महाराज ! जैसे जलसे युक्त बादल पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही लक्ष्य वेधनेवालोंमें श्रेष्ठ महावीर कर्ण पाञ्चाल सेनाके महारथियोंको अपने

अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाऽचलम् ॥ १३ ॥
सा पीड्यमाना कर्णेन पञ्चालानां महाचमूः ।
सम्प्राद्रवत्सुसन्त्रस्ता सिंहेनेवाऽर्दिता मृगी ॥ १४ ॥
पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले ।
रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः ॥ १५ ॥
धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैः स महामृधे ।
बाहू चिच्छेद वै कर्णः शिरश्चैव सकुण्डलम् ॥ १६ ॥
ऊरू चिच्छेद चाऽन्यस्य गजस्थस्य विशाम्पते ।
वाजिपृष्ठगतस्याऽपि भूमिष्ठस्य च मारिष ॥ १७ ॥
नाऽज्ञासिषुर्धावमाना बहवश्च महारथाः ।
सञ्छिन्नान्यात्मगात्राणि वाहनानि च संयुगे ॥ १८ ॥
ते वध्यमानाः समरे पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ।
तृणप्रस्पन्दनाच्चाऽपि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥ १९ ॥
अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचेतसम् ।

बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ पाञ्चाल योद्धा कर्णके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकार रणभूमिमें चारों ओर भागने लगे, जैसे सिंहसे भयभीत होके हरिणी चारों ओर भागने लगती है ॥ (१२-१४)

उस समय मैंने देखा, कि सेनाके पुरुष कर्णके बाणोंकी चोटसे मरकर हाथी, घोडे और रथोंके ऊपरसे लगातार पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ उस महाघोर संग्रामके समय जो सब घुडसवार गजपति पैदल गमन करनेवाले योद्धा लोग युद्धभूमिसे भाग रहे थे, कर्णने क्षुरप्र अस्त्रसे उन लोगोंके बीचसे कितने ही योद्धाओंके कुण्डल भूषित सिर भुजा और चरणोंको काट काटके पृथ्वी में गिरा दिया॥ उस समय कर्णने कितनेही गजसवारों की तथा घुडसवारोंकी दोनों जघाएं काट डालीं॥ अधिक क्या कहूं, उस समय बहुतेरे महारथी योद्धा भी युद्धभूमिके बीच कर्णके संमुखसे भागने लगे ॥ परन्तु भागनेके समय कब उनके वाहन और शरीर कटके गिर पडे वह उन लोगोंको मालूम भी नहीं हुआ ॥ (१५-१८)

महाराज ! कर्णके बाणोंसे पीडित हो कर पांचाल और सृंजय योद्धालोग इस भांति मोहित होगये थे, कि तृण हिलने परभी कर्णको आया हुआ समझने लगे ॥ और अपनी ओरके चेतरहित योद्धा को भी भागते देख कर्ण आता

कर्णमेवाऽभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥ २० ॥
तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत ।
अभ्यद्रवद् द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ २१ ॥
अवेक्ष्यमाणास्त्वन्योन्यं सुसम्मूढा विचेतसः ।
नाऽशक्नुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना ॥ २२ ॥
कर्णेनाऽभ्याहता राजन्पञ्चालाः परमेषुभिः ।
द्रोणेन च दिशः सर्वा वीक्षमाणाः प्रदुद्रुवुः ॥ २३ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य विद्रुतम् ।
अपयाने मनः कृत्वा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥
पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम् ॥ २५ ॥
कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निःस्वनः ।
अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामनाथवत् ॥ २६ ॥
यथा विसृजतश्चाऽस्य सन्दधानस्य चाऽऽशुगान् ।
पश्यामि नाऽन्तरं पार्थ क्षपयिष्यति नो ध्रुवम् ॥ २७ ॥

है ऐसा जानके भयभीत होकर वेग पूर्वक भागने लगे ॥ परन्तु कर्ण उन भागते हुए योद्धाओंके ऊपर बाण चलाते हुए उनके पीछे दौडे ॥ १९-२१

महात्मा कर्णके बाणोंसे पीडित और मोहित होकर शत्रुसेनाके योद्धा लोग अपने कर्तव्य कर्मके विषयमें कुछ भी निश्चय न कर सके बल्कि आपसमें एक दूसरेकी ओर देखने लगे और युद्धभूमि में किसी भांति भी खडे होनेमें समर्थ न हुए । इसी प्रकार पाञ्चाल योद्धालोग कर्ण और द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित होकर चारों ओर देखते हुए वेगपूर्वक भागने लगे ॥ (२२-२३)

तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर अपनी सेनाके योद्धाओंको भागते देख स्वयं भी रणभूमिसे भागनेकी इच्छा करके अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! यह देखो धनुर्धारियोंमें अग्रणी पराक्रमी कर्ण हाथमें धनुष ग्रहण करके अपने बाणोंसे इस महाघोर रात्रिके समय मेरी सेनाके पुरुषोंको दूसरे सूर्यकी भांति भस्म कर रहे हैं ॥ तुम्हारे आत्मीय बन्धु बान्धव कर्णके बाणोंसे क्षतविक्षत शरीरसे युक्त होकर अनाथकी भांति आर्त्तनादके सहित महाघोर कोलाहल मचा रहे हैं । और यह सूतपुत्र कर्ण जिस प्रकार बाण साधता धनुषपर रखता और चलाता है,

यदत्राऽनन्तरं कार्यं प्राप्तकालं च पश्यसि ।
कर्णस्य वधसंयुक्तं तत्कुरुष्व धनञ्जय ॥ २८ ॥
एवमुक्तो महाराज पार्थः कृष्णमथाऽब्रवीत् ।
भीतः कुन्तीसुतो राजा राधेयस्याऽद्य विक्रमात् ॥२९॥
एवङ्गते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः ।
भवान्व्यवस्यतु क्षिप्रं द्रवते हि वरूथिनी ॥ ३० ॥
द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन ।
कर्णेन त्रास्यमानानामवस्थानं न विद्यते ॥ ३१ ॥
पश्यामि च तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
द्रवमाणान्रथोदारान्किरन्तं निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥
नैनं शक्ष्यामि संसोढुं चरन्तं रणमूर्धनि ।
प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः ॥ ३३ ॥
स भवांस्तत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः ।
अहमेनं हनिष्यामि मां वैष मधुसूदन ॥ ३४ ॥

उससे उसका तनिक भी छिद्र नहीं दीख पडता है; इससे कर्ण अवश्यही हम लोगोंका नाश कर देगा ॥ इस उपस्थित समयमें कर्ण वधके विषयमें जिस कर्त्तव्य कर्मको करना उचित होवे उसे विचारके शीघ्र ही करो ॥ (२४-२८)

महाराज ! अर्जुन राजा युधिष्ठिरके वचनको सुनकर कृष्णसे बोले, हे कृष्ण ! आज धर्मपुत्र युधिष्ठिर कर्णके पराक्रम का प्रभाव देखकर भयभीत हुए हैं; विशेष करके जब कर्णकी सेनाके पुरुष धीरे धीरे महाप्रचण्ड होके पराक्रम प्रकाशित कर रहे हैं, तब उन लोगोंके विषयमें जो कुछ कार्य करना होवे शीघ्र ही उसका अनुष्ठान करो। क्यों कि हमारी सेनाके योद्धा लोग रणभूमिमें पीठ दिखाके भाग रहे हैं ॥ (२९-३०)

यह देखो सेनाके पुरुष अकेले द्रोणाचार्यके बाणोंसे ही क्षतविक्षत शरीर से युक्त होकर युद्धभूमिसे विचलित होरहे हैं; उस पर कर्णके अस्त्रोंसे भयभीत होकर किसी प्रकार भी रणभूमिके बीच नहीं ठहर सकते हैं ॥ हे वृष्णिकुलभूषण कृष्ण ! जैसे सर्प किसीके पांवकी चोटको नहीं सह सकता वैसे ही हम लोगोंके सम्मुखमें ही कर्णके ऐसे व्यवहारको मैं नहीं सह सकता हूं ॥ हे कृष्ण ! इस लिये अब तुम मेरे रथको जहां कर्ण है उस स्थानोंमें लेचलो। आज मैं उसको मारूंगा अथवा वह मुझे मारेंगे॥ (३१-३४)

श्रीवासुदेव उवाच-पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाऽऽहवे ।
विचरन्तं नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥ ३५ ॥
नैतस्याऽन्योऽस्ति संग्रामे प्रत्युद्याता धनञ्जय ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद्वा घटोत्कचात् ॥ ३६ ॥
न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवाऽनघ ।
समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३७ ॥
दीप्यमाना महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
त्वदर्थं हि महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३८ ॥
रक्ष्यते शक्तिरेषा हि रौद्रं रूपं बिभर्ति च ।
घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः ॥ ३९ ॥
स हि भीमेन बलिना जातः सुरपराक्रमः ।
तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यासुराणि च ॥ ४० ॥
सततं चाऽनुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः ।
विजेष्यति रणे कर्णमिति मे नाऽत्र संशयः ॥ ४१ ॥

अर्जुनके ऐसे वचनोंको सुनके श्रीकृष्ण बोले, हे कुन्तीपुत्र ! आज मैं मनुष्योंसे अधिक पराक्रमशाली पुरुषसिंह कर्णको देवराज इन्द्रकी भांति युद्धभूमिके बीच घूमते हुए देख रहा हूं ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम और राक्षस घटोत्कच इन दो पुरुषोंको छोडके और कोई भी ऐसा पुरुष वर्त्तमान नहीं है जो इस समय युद्ध करनेके वास्ते रणभूमिके बीच सूतपुत्र कर्णके विरुद्ध गमन कर सके ॥ परन्तु जबतक कर्णके समीप महालुककी भांति प्रकाशमान इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्ति विद्यमान है तबतक मैं तुम्हें कर्णके सङ्ग द्वैरथ युद्धमें प्रवृत्त होना उत्तम नहीं समझता हूं; क्योंकि कर्ण उस अमोघ शक्तिको तुम्हारे वधके ही वास्ते रक्खे हुआ है और उस ही शक्तिके प्रभावसे उसने अत्यन्त ही भयङ्कर मूर्त्ति धारण की है। (३५-३९)

इससे महाबलवान् राक्षस घटोत्कच ही इस समय राधापुत्र कर्णके सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते उसके समीप गमन करे, घटोत्कच महाबली भीमसेनके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है और स्वयं भी महापराक्रमी है; और दिव्य आसुरी तथा राक्षसी नाना प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंकी विद्यामें भी राक्षस घटोत्कच निपुण है विशेष करके घटोत्कच तुम लोगोंके ऊपर अनुरक्त है, और तुम्हारे हितकी इच्छा भी करता है इससे वह जो युद्धभूमिमें कर्णको

एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः पुष्करलोचनः ।
आजुहावाऽथ तद्रक्षस्तचाऽऽसीत्प्रादुरग्रतः ॥ ४२ ॥
कवची सशरः खड्गी सधन्वा च विशाम्पते ।
अभिवाद्य ततः कृष्णं पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥
अब्रवीच्च तदा कृष्णमयमस्म्यनुशाधि माम् ॥ ४३ ॥
ततस्तं मेघसङ्काशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम् ।
अभ्यभाषत हैडिम्बिं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ ४४ ॥
वासुदेव उवाच—घटोत्कच विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।
प्राप्तो विक्रमकालोऽयं तव नाऽन्यस्य कस्यचित्॥४५ ॥
स भवान्मज्जमानानां बन्धूनां त्वं प्लवो भव ।
विविधानि तवाऽस्त्राणि सन्ति माया च राक्षसी॥४६॥
पश्य कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी ।
काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्धनि ॥ ४७ ॥
एष कर्णो महेष्वासो मतिमान्दृढविक्रमः ।

पराजित करेगा उसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं मालूम होता है ॥ (२९-४१)

सञ्जय बोले, महाराज! कमलनेत्रवाले महाबाहु अर्जुनने श्रीकृष्णके ऐसे वचन को सुनके घटोत्कचको आह्वान किया। आवाहन करते ही राक्षस घटोत्कच धनुष बाण और तलवार ग्रहण करके कृष्ण अर्जुनके समीप जाके उन दोनों महात्माओंको प्रणाम करके बोला, यही मैं उपस्थित हूं, कहिये क्या आज्ञा है ॥ (४२-४३)

तिसके अनन्तर दाशार्ह कृष्ण उज्ज्वल कुण्डलोंसे प्रकाशमान मेघवर्ण शरीरवाले राक्षस घटोत्कचसे हंसके यह वचन बोले, हे पुत्र घटोत्कच! मैं जो कुछ वचन कहता हूं उसे तुम भली भांतिसे सुनो। इस समय किसीके बल पराक्रमसे कार्य सिद्ध न होवेगा; इससे अब तुम्हारे पराक्रमको प्रकाशित करनेका समय उपस्थित हुआ है ॥ तुममें अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र और नाना भांतिकी राक्षसी माया प्रतिष्ठित हैं; इससे तुम डूबते हुए बन्धु बान्धवोंके निमित्त नौकारूपी होकर सबका उद्धार करो ॥ (४४-४६)

यह देखो, युद्धभूमिके बीच कर्णके अस्त्रोंसे पीडित होकर पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष इस प्रकार भयभीत होगये हैं जैसे गोपालककी लाठीके प्रहारके भयसे गौवोंका समूह भयभीत होकर चारों ओर से दौडते हुए एक स्थानमें सिमिटके स्थित होजाता है ॥ यह महाधनुर्द्धारी

पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥ ४८ ॥
किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः ।
न शक्नुवन्त्यवस्थातुं पीड्यमानाः शरार्चिषा ॥ ४९ ॥
निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः सिंहेनेवाऽर्दिता मृगाः ॥ ५० ॥
एतस्यैवं प्रवृद्धस्य सूतपुत्रस्य संयुगे ।
निषेद्धा विद्यते नाऽन्यस्त्वामृते भीमविक्रम ॥ ५१ ॥
स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहाऽऽत्मनः ।
मातुलानां पितॄणां च तेजसोऽस्त्रबलस्य च ॥ ५२ ॥
एतदर्थं हि हैडिम्बे पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ।
कथं नस्तारयेद्दुःखात्स त्वं तारय बान्धवान् ॥ ५३ ॥
इच्छन्ति पितरः पुत्रान्स्वार्थहेतोर्घटोत्कच ।
इह लोकात्परे लोके तारयिष्यन्ति ये हिताः ॥ ५४ ॥

दृढ पराक्रमी बुद्धिमान् कर्ण पाण्डवोंकी सेनाके मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध कर रहा है॥ दृढ धनुर्धारी क्षत्रिय योद्धा लोग लगातार बाणोंकी वर्षा रहे हैं तौ भी कर्णके बाणरूपी अग्निसे पीडित होकर किसी प्रकारसे भी युद्धभूमिमें नहीं ठहर सकते हैं ॥ (४७–४९)

यह देखो इस मध्यरात्रिके समय पाञ्चाल सेनाके सम्पूर्ण पुरुष कर्णके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकार युद्धभूमिसे भाग रहे हैं, जैसे सिंहके भयसे हरिनोंके समूह चारों ओर भाग जाते हैं ॥ हे भयङ्कर पराक्रम प्रकाशित करनेवाले भीमपुत्र महाबाहु घटोत्कच ! इस समय सूतपुत्र कर्ण जिस प्रकार हम लोगोंकी सेनाकी ओर दौड रहा है उससे तुम्हें छोडके और कोई पुरुष भी ऐसा विद्यमान नहीं है जो सूतपुत्र कर्णको रणभूमिमें निवारण कर सके ॥ इससे तुम पितृकुल और अपने अस्त्र बल तथा पराक्रमके अनुसार कार्य करनेमें प्रवृत्त हो जाओ ॥ (५०–५२)

हे हिडम्बापुत्र घटोत्कच ! जिस प्रकार हो सके तुम हम लोगोंको इस विपदसे रक्षा करो, इसी समयके वास्ते मनुष्य लोग पुत्रकी इच्छा करते हैं, इससे तुम अपने बन्धु बान्धवोंको इस विपदसे उबारो॥हे घटोत्कच ! पितरलोक अपने स्वार्थके लिये ही पुत्रकी इच्छा करते हैं, क्योंकि पुत्रलोग इस लोकमें रहकर ही पितरोंके हितकी इच्छासे जो कर्म करते रहते हैं इससे परलोकमें पितर दुःखसे

तव ह्यत्र बलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः ।
संग्रामे युध्यमानस्य सततं भीमनन्दन ॥ ५५ ॥
पाण्डवानां प्रभग्नानां कर्णेन निशि सायकैः ।
मज्जतां धार्तराष्ट्रेषु भव पारं परन्तप ॥ ५६ ॥
रात्रौ हि राक्षसा भूयो भवन्त्यमितविक्रमाः ।
बलवन्तः सुदुर्धर्षाः शूरा विक्रान्तचारिणः ॥ ५७ ॥
जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे ।
पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ५८ ॥
सञ्जय उवाच— केशवस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसम् ।
अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिन्दमम् ॥ ५९ ॥
घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः ।
मतौ मे सर्वसैन्येषु भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ६० ॥
तद्भवान्यातु कर्णेन द्वैरथं युध्यतां निशि ।
सात्यकिः पृष्ठगोपस्ते भविष्यति महारथः ॥ ६१ ॥
जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहायवान् ।

युक्त होते हैं ॥ हे भीमपुत्र ! यदि तुम युद्ध करते रहो तो कोई पुरुष भी तुम्हारी माया और तुम्हारे भयङ्कर अस्त्रशस्त्रोंसे परित्राण नहीं पा सकेगा ॥ (५३–५५)

हे शत्रुनाशन! तुम इस रात्रिके समय धार्तराष्ट्र सेनारूपी समुद्रमें डूबते हुए पाण्डवी सेनाके वास्ते तटस्वरूप होके अपने आत्मीय पुरुषोंकी रक्षा करो ॥ क्योंकि रात्रिके समय बलवान् राक्षस लोग ही अत्यन्त पराक्रमी शूर और प्रतापी हुआ करते हैं ॥ इससे तुम इस समय अपनी मायाके प्रभावसे युद्धभूमिमें स्थित राधापुत्र कर्णका नाश करो । ऐसा होनेसे ही धृष्टद्युम्नको आगे करके पाण्डव लोग द्रोणाचार्यका वध कर सकेंगे ॥ (५६–५८)

सञ्जय बोले महाराज ! श्रीकृष्णके वचनोंको सुनकर अर्जुन भी उस समय राक्षस घटोत्कचसे बोले, हे घटोत्कच ! हम लोगोंकी इस सेनाके बीच भीमसेन महाबाहु सात्यकि और तुम–ये ही तीन वीर मेरे मनमें श्रेष्ठ हो, इससे तुम इस रात्रिके समय कर्णके सङ्ग द्वैरथयुद्धमें प्रवृत्त हो जाओ; इस युद्धमें महारथी सात्यकि तुम्हारे पृष्ठरक्षक बनेंगे ॥ पहिले जैसे देवराज इन्द्रने स्वामीकार्त्तिककी सहायतासे तारकासुरका वध किया था, वैसे ही तुम भी सात्यकिकी सहायतासे

यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जग्निवान् ॥ ६२ ॥
घटोत्कच उवाच—अलमेवाऽस्ति कर्णाय द्रोणायाऽलं च भारत ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणां महात्मनाम् ॥६३॥
अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि ।
यं जनाः सम्प्रवक्ष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ६४ ॥
न चाऽत्र शूरान्मोक्ष्यामि न भीतान्न कृताञ्जलीन् ।
सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥ ६५ ॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बिर्वरवीरहा ।
अभ्ययात्तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन् ॥ ६६ ॥
तमापतन्तं संक्रुद्धं दीप्तास्यं दीप्तमूर्धजम् ।
प्रहसन्पुरुषव्याघ्रः प्रतिजग्राह सूतजः ॥ ६७ ॥
तयोः समभवद्युद्धं कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
गर्जतो राजशार्दूल शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६८ ॥ [७८५३]

इति श्रीमहा० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचप्रोत्साहने त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७३॥

युद्धमें शूर कर्णका वध करो॥ (५९-६२)

कृष्ण अर्जुनके वचनोंको सुनके घटोत्कच कहने लगा, हे पुरुषश्रेष्ठ ! महात्मा पुरुषो ! युद्धभूमिके बीच द्रोणाचार्य कर्ण अथवा चाहे और कोई कृतास्त्र महात्मा क्षत्रिय पुरुषही क्यों न होवें मैं उन सम्पूर्ण योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेमें समर्थ हूं ॥ आज इस रात्रिके समय मैं सुतपुत्र कर्णके सङ्ग ऐसा युद्ध करूंगा, कि मनुष्य लोग पृथ्वीके बीच उस संग्रामको बहुत दिनोंतक गाया करेंगे॥ इस युद्धमें मैं भयभीत वा हाथ जोडके शरणमें आये हुए किसी पुरुषको भी नहीं छोडूंगा, वरन राक्षसधर्मके अनुसार उन सम्पूर्ण पुरुषोंका वध करूंगा। ६३-६५

सञ्जय बोले, महाराज ! शत्रुओंको नाश करनेवाला हिडम्बापुत्र घटोत्कच ऐसा वचन कहके तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको भयभीत करके महाघोर तुमुल संग्राम करते हुए युद्धभूमिके बीच स्थित कर्णकी ओर दौडा ॥ धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी सूतपुत्र कर्णने प्रकाशमान क्रोधी सर्पकी भांति घटोत्कचको क्रोधपूर्वक अपनी ओर आते देख अपने बाणजाल से उसे आगे बढनेसे रोक दिया ॥ हे राजेन्द्र ! तिसके अनन्तर सिंहनाद शब्द के सहित गर्जते हुए कर्ण और राक्षस घटोत्कचका इन्द्र और प्रह्लादकी भांति महाघोर संग्राम होने लगा॥ (६६-६८)

एकसौ तिहत्तर अध्याय समाप्त । [७८५३]

सञ्जय उवाच— दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन्सूतपुत्ररथं प्रति ।
आयान्तं तु तथा युक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥ १ ॥
अब्रवीत्तत्र पुत्रस्ते दुःशासनमिदं वचः ।
एतद्रक्षो रणे तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २ ॥
अभियाति द्रुतं कर्णं तद्वारय महारथम् ।
वृतः सैन्येन महता याहि यत्र महाबलः ॥ ३ ॥
कर्णो वैकर्तनो युद्धे राक्षसेन युयुत्सति ।
रक्ष कर्णं रणे यत्तो वृतः सैन्येन मानद ॥ ४ ॥
मा कर्णं राक्षसो घोरः प्रमादान्नाशयिष्यति ।
एतस्मिन्नन्तरे राजञ्जटासुरसुतो बली ॥ ५ ॥
दुर्योधनमुपागम्य प्राह प्रहरतां वरः ।
दुर्योधन तवाऽमित्रान्प्रख्यातान्युद्धदुर्मदान् ॥ ६ ॥
पाण्डवान्हन्तुमिच्छामि त्वयाऽऽज्ञप्तः सहानुगान् ।
जटासुरो मम पिता रक्षसां ग्रामणीः पुरा ॥ ७ ॥
प्रयुज्य कर्म रक्षोघ्नं क्षुद्रैः पार्थैर्निपातितः ।

द्रोणपर्वमें एकसौ चौहत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज तुम्हारे पुत्र दुर्योधन युद्धभूमिके बीच क्रोधपूर्वक शीघ्रताके सहित घटोत्कचको सूतपुत्र कर्णकी ओर आते देख अपने भाई दुःशासनसे बोले,–हे भ्राता! वह राक्षस कर्णके वेग और पराक्रमको देखकर शीघ्रताके सहित उनकी ओर दौड रहा है; इससे तुम इस महारथी घटोत्कचको निवारण करो। महारथ सूतपुत्र कर्ण इस राक्षसके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छासे रणभूमिके बीच जिस स्थलपर गमन कर रहे हैं; तुम उस ही स्थानपर अपनी बडी सेनाके सहित गमन करो। हे वीर! तुम सेनाके सहित बलवान् होकर कर्णकी रक्षा करो, जिससे यह भयानक शरीर वाला राक्षस असावधानीमें कर्णका वध न कर सके, तुम युद्धभूमिमें वैसा ही यत्न करना। (१–५)

महाराज! जब दुर्योधनने इस प्रकार दुःशासनको आज्ञा दी, उस ही समय महाबलवान् जटासुरका पुत्र अलम्बुष उनके निकट आके यह वचन बोला, महाराज! मैं तुम्हारी आज्ञासे तुम्हारे शत्रु युद्धदुर्मद पाण्डवोंको अनुयायियोंके सहित नाश करनेकी इच्छा करता हूं। क्योंकि इन नीच स्वभाववाले पाण्डवोंने पहिले मेरे पिता जटासुरका वध किया

तस्याऽपचितिमिच्छामि शत्रुशोणितपूजया ॥
शत्रुमांसैश्च राजेन्द्र मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥
तमब्रवीत्ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
द्रोणकर्णादिभिः सार्धं पर्याप्तोऽहं द्विषद्वधे ॥ ९ ॥
त्वं तु गच्छ मयाऽऽज्ञप्तो जहि युद्धे घटोत्कचम् ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं रक्षोमानुषसम्भवम् ॥ १० ॥
पाण्डवानां हितं नित्यं हस्त्यश्वरथघातिनम् ।
वैहायसगतं युद्धे प्रेषयेर्यमसादनम् ॥ ११ ॥
तथेत्युक्त्वा महाकायः समाहूय घटोत्कचम् ।
जाटासुरिर्भैमसेनिं नानाशस्त्रैरवाकिरत् ॥ १२ ॥
अलम्बुषं च कर्णं च कुरुसैन्यं च दुस्तरम् ।
हैडिम्बिः प्रममाथैको महावातोऽम्बुदानिव ॥ १३ ॥
ततो मायाबलं दृष्ट्वा रक्षस्तूर्णमलम्बुषः ।
घटोत्कचं शरव्रातैर्नानालिङ्गैः समार्पयत् ॥ १४ ॥

है; इससे मैं भी तुम्हारी आज्ञासे उन लोगोंका नाश करके शत्रुओंके रक्त और मांससे पिताके ऋणसे मुक्त होनेकी इच्छा करता हूं तुम मुझे आज्ञा दो। (५-८)

कुरुराज दुर्योधन वार वार उस राक्षसकी प्रार्थना सुन कर यह वचन बोले, मैं द्रोणाचार्य और कर्णके सङ्ग मिलकर अपने शत्रुओंको नाश करनेमें समर्थ होऊंगा; परन्तु तुम मनुष्यके वीर्य और राक्षसीके गर्भसे उत्पन्न हुए कठिन कर्म करनेवाले राक्षस घटोत्कचका वध करो। यह दुष्टात्मा युद्धभूमिके बीच सदा पाण्डवोंके हितके लिये मेरी सेनाके हाथी घोडे और रथियोंका नाश कर रहा है; इससे तुम पहिले आकाश चारी घटोत्कच राक्षसका वध करो ॥ (९—११)

कुरुराज दुर्योधनके ऐसे वचनको सुनकर विशाल शरीर वाला जटासुर पुत्र अलम्बुषने कहा "ऐसा ही होगा।" ऐसा कहके वह राक्षस भीमसेन-पुत्र घटोत्कचको आवाहन करके उसके ऊपर नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ महाराज ! जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंके समूहको छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही घटोत्कच राक्षस अकेले ही राक्षस अलम्बुष, कर्ण और कुरुसेनाके पुरुषोंको अपने अस्त्रोंसे पीडित करने लगा ॥ (१२-१३)

अनन्तर महाबलवान् अलम्बुष घटोत्कचको मायाबलसे युक्त देख नाना

विद्ध्वा च बहुभिर्बाणैर्भैमसेनिं महाबलः ।
व्यद्रावयच्छरव्रातैः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १५ ॥
तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि भारत ।
निशीथे विप्रकीर्यन्ते वातनुन्ना घना इव ॥ १६ ॥
घटोत्कचशरैर्नुन्ना तथैव तव वाहिनी ।
निशीथे प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १७ ॥
अलम्बुषस्ततः क्रुद्धो भैमसेनिं महामृधे ।
आजघ्ने दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १८ ॥
तिलशस्तस्य संवाहं सूतं सर्वायुधानि च ।
घटोत्कचः प्रचिच्छेद प्रणदंश्चाऽतिदारुणम् ॥ १९ ॥
ततः कर्णं शरव्रातैः कुरूनन्यान्सहस्रशः ।
अलम्बुषं चाऽभ्यवर्षन्मेघो मेरुमिवाऽचलम् ॥ २० ॥
ततः संचुक्षुभे सैन्यं कुरूणां राक्षसार्दितम् ।
उपर्युपरि चाऽन्योन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥ २१ ॥

प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे उसे पीडित करने लगा ॥ इसी प्रकार घटोत्कचको अनेक बाणोंसे विद्ध करके फिर अनेक बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंको तितर बितर करने लगा । उस रात्रिके समय पाण्डवों की सेनाके पुरुष अलम्बुषके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकार चारों ओर तितर बितर होने लगे, जैसे वायुके वेगसे बादल छिन्न भिन्न होजाते हैं। इसी समय कुरुसेनाके योद्धा लोग भी घटोत्कचके बाणोंसे पीडित होकर हाथमें स्थित सहस्रों लुकोंको इधर उधर फेंक कर रणभूमिसे भागने लगे।१४-१७

उस महाघोर संग्रामके समय अलम्बुष ने दश तीक्ष्ण बाणोंसे घटोत्कचके शरीरमें इस प्रकारसे प्रहार किया जैसे अंकुशसे हाथीको पीडित करते हैं। अनन्तर अलम्बुषके पराक्रमको देखकर घटोत्कच राक्षस उसके रथ, सारथी और अस्त्रोंको तिलके परिमाणके अनुसार काटके भयानक शब्दसे सिंहनाद करने लगा॥ तिसके अनन्तर घटोत्कच राक्षस ने अलम्बुष कर्ण और दूसरे कुरुसेनाके सहस्रों योद्धाओंके ऊपर इस प्रकार अपने अस्त्र-शस्त्रोंको वर्षाया, जैसे बादल सुमेरु पर्वत के ऊपर जल की वर्षा करते हैं ॥ (१८–२०)

महाराज ! उस समय तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेना उस राक्षसके बाणोंसे ऐसी पीडित हुई कि बहुतेरे पुरुष अपनी

जाटासुरिर्महाराज विरथो हतसारथिः ।
घटोत्कचं रणे क्रुद्धो मुष्टिनाऽभ्याहनद् दृढम् ॥ २२ ॥
मुष्टिनाऽभ्याहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः ।
क्षितिकम्पे यथा शैलः सवृक्षस्तृणगुल्मवान् ॥ २३ ॥
ततः सपरिघाभेन द्विट्सङ्घघ्नेन बाहुना ।
जाटासुरिं भैमसेनिरवधीन्मुष्टिना भृशम् ॥ २४ ॥
तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस्तूर्णं हैडिम्बिराक्षिपत् ।
दोर्भ्यामिन्द्रध्वजाभाभ्यां निष्पिपेष च भूतले ॥२५॥
जाटासुरिर्मोक्षयित्वा आत्मानं च घटोत्कचात् ।
पुनरुत्थाय वेगेन घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ २६ ॥
अलम्बुषोऽपि विक्षिप्य समुत्क्षिप्य च राक्षसम् ।
घटोत्कचं रणे रोषान्निष्पिपेष च भूतले ॥ २७ ॥
तयोः समभवद्युद्धं गर्जतोरतिकाययोः ।
घटोत्कचालम्बुषयोस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २८ ॥
विशेषयन्तावन्योन्यं मायाभिरतिमायिनौ ।

सेनाके पुरुषोंका ही मर्दन करते हुए अपने वाहनोंको दौडा कर युद्धभूमिसे भागने लगे । तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको भागते देख रथ सारथी और घोडोंसे रहित जटासुरपुत्र अलम्बुषने घटोत्कच-के शरीरमें मुष्टिकासे प्रहार किया । भूकम्प होनेसे जैसे वृक्ष और लताके सहित पर्वत हिलने लगता है वैसे ही घटोत्कच अलम्बुषके मुक्केसे विचलित हुआ ॥ (२१-२३)

अनन्तर घटोत्कचने परिघके समान अपनी विशालभुजा उठाकर एक भयङ्कर मुक्केसे अलम्बुषके शरीरमें प्रहार किया; और फिर क्रोध पूर्वक उसे पीडित करके इन्द्रध्वजाकी भांति अपनी लम्बी भुजा-ओंसे उसे उठा कर पृथ्वी पर दे मारा ॥ (२४-२५)

अनन्तर बलवान् अलम्बुष किसी प्रकार घटोत्कचके हाथसे छूटकर वेग-पूर्वक उसकी ओर दौडा और क्रोधपूर्वक उसे उठाके पृथ्वीपर पटक दिया; फिर उसके शरीरमें प्रहार करनेलगा; महाराज! इसी भांति बडे शरीर वाले राक्षस घटो-त्कच और अलम्बुषका रोएं को खडा करनेवाला महाभयङ्कर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ बलि और इन्द्रके समान महाबलवान् राक्षसी मायामें निपुण वे दोनों वीर क्षण क्षणके बीच एक दूसरेके

युयुधाते महावीर्याविन्द्रवैरोचनाविव ॥ २९ ॥
पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गरुडतक्षकौ ।
पुनर्मेघमहावातौ पुनर्वज्रमहाचलौ ॥ ३० ॥
पुनः कुञ्जरशार्दूलौ पुनः स्वर्भानुभास्करौ ।
एवं मायाशतसृजावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ ३१ ॥
भृशं चित्रमयुध्येतामलम्बुषघटोत्कचौ ।
परिघैश्च गदाभिश्च प्रासमुद्गरपट्टिशैः ॥ ३२ ॥
मुसलैः पर्वताग्रैश्च तावन्योन्यं विजघ्नतुः ।
हयाभ्यां च गजाभ्यां च रथाभ्यां च पदातिभिः ३३॥
युयुधाते महामायौ राक्षसप्रवरौ युधि ।
ततो घटोत्कचो राजन्नलम्बुषवधेप्सया ॥ ३४ ॥
उत्पपात भृशं क्रुद्धः श्येनवन्निपपात च ।
गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बुषम् ॥ ३५ ॥
उद्यम्य न्यवधीद्भूमौ मयं विष्णुरिवाऽऽहवे ।
ततो घटोत्कचः खड्गमुद्यम्याऽद्भुतदर्शनम् ॥ ३६ ॥
रौद्रस्य कायाद्धि शिरो भीमं विकृतदर्शनम् ।

अधिक पराक्रम प्रकाशित करते हुए महाघोर युद्ध करने लगे ॥ (२६–२९)

उस समय वे दोनों एक दूसरेके वध की इच्छा करते हुए सैकडों भांतिकी माया उत्पन्न करके कभी अग्नि, कभी समुद्र, गरुड सर्प, बादल वायु, वज्र पर्वत, हाथी शार्दूल और कभी राहु और सूर्यकी मूर्ति धारण करके गदा परिघ प्रास मुद्गर पर्वतके शिखर समान मूषल आदि अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्रोंसे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते हुए अद्भुत रूपसे युद्ध करने लगे। महाराज ! इसी भांति वे दोनों राक्षसोंमें मुख्य मायावी घटोत्कच और अलम्बुष कभी हाथी कभी घोडे और कभी रथोंपर चढके लडते और कभी पैदल ही युद्ध भूमिमें स्थित होके युद्ध करने लगते थे ॥ (३०–३४)

तिसके अनन्तर घटोत्कच अत्यन्त क्रुद्ध होकर अलम्बुषके वधकी इच्छा करके बाजपक्षीकी भांति कूदके वेगपूर्वक उसको ग्रहण करके उठाकर इस प्रकार पृथ्वीमें फेंक दिया जैसे विष्णुने मय-दानवको पृथ्वीमें गिराया था ॥ इससे भयङ्कर रूपवाला राक्षस अलम्बुष इधर उधर छटपटाते हुए भयानक शब्दसे

स्फुरतस्तस्य समरे नदतश्चाऽतिभैरवम् ॥ ३७ ॥
निचकर्त महाराज शत्रोरमितविक्रमः ।
शिरस्तचाऽपि संगृह्य केशेषु रुधिरोक्षितम् ॥ ३८ ॥
ययौ घटोत्कचस्तूर्णं दुर्योधनरथं प्रति ।
अभ्येत्य च महाबाहुः स्मयमानः स राक्षसः ॥ ३९ ॥
शिरो रथेऽस्य निक्षिप्य विकृताननमूर्धजम् ।
प्राणदद्भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४० ॥
अब्रवीच ततो राजन्दुर्योधनमिदं वचः ।
एष ते निहतो बन्धुस्त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः ॥ ४१ ॥
पुनर्द्रष्टासि कर्णस्य निष्ठामेतां तथाऽऽत्मनः ।
स्वधर्ममर्थं कामं च त्रितयं योऽभिवाञ्छति ॥ ४२ ॥
रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं ब्राह्मणं स्त्रियम् ।
तिष्ठस्व तावत्सुप्रीतो यावत्कर्णं वधाम्यहम् ॥ ४३ ॥
एवमुक्त्वा ततः प्रायात्कर्णं प्रति नरेश्वर ।
किरञ्छरगणांस्तीक्ष्णान्हृषितो रणमूर्धनि ॥ ४४ ॥
ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।

चिल्लाने लगा। उस समय अत्यन्त पराक्रमी घटोत्कचने अद्भुत रूपवाली अपनी तलवारको मियानसे खींचकर उसके भयङ्कर सिरको शरीरसे अलगकर दिया। फिर रुधिर बहते हुए उस अलम्बुष राक्षसके सिरके केशको पकड़के घटोत्कच दुर्योधनके रथकी ओर दौड़ा ॥ (३४—३९)

महाराज! तिसके अनन्तर महाबाहु घटोत्कच अलम्बुषके उस कटे हुए भयङ्कर सिरको दुर्योधनके रथपर फेंककर वर्षाकालके बादलकी भांति भयानक शब्दके सहित गर्जने लगा और अभिमानपूर्वक उनसे कहने लगा। हे दुर्योधन! तुमने इतने समयतक जिसके पराक्रमको देखा था यह वही तुम्हारा बन्धु अलम्बुष मारा गया; अब उसी भांति पराक्रमसे युक्त कर्णकी भी तुम ऐसी ही दशा देखोगे ॥ धर्म अर्थ और कामकी इच्छा करनेवाला पुरुष रिक्त हाथसे राजा, ब्राह्मण और स्त्रीको न देखे। हे राजन्! तुम तब तक इस अलम्बुषके शिरसे ही संतुष्ट रहो जब तक मैं कर्णको मारूं ॥ (३९–४३)

महाराज! घटोत्कच ऐसा वचन कहके कर्णके ऊपर सैकडों तीक्ष्ण बाणोंको

विस्मापनं महाराज नरराक्षसयोर्मृधे ॥ ४५ ॥ [७८९८]

इति श्रीमहाभारते० घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलंबुषपराभवे सप्तपष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—यत्तद्वैकर्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः।
निशीथे समसज्जेतां तद्युद्धमभवत्कथम् ॥ १ ॥
कीदृशं चाऽभवद्रूपं तस्य घोरस्य रक्षसः।
रथश्च कीदृशस्तस्य हयाः सर्वायुधानि च ॥ २ ॥
किंप्रमाणा हयास्तस्य रथकेतुर्धनुस्तथा।
कीदृशं वर्म चैवाऽस्य शिरस्त्राणं च कीदृशम् ॥ ३ ॥
पृष्टस्त्वमेतदाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय।
सञ्जय उवाच— लोहिताक्षो महाकायस्ताम्रास्यो निम्नितोदरः ॥ ४ ॥
ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुः शंकुकर्णो महाहनुः।
आकर्णदारितास्यश्च तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान् ॥ ५ ॥
सुदीर्घताम्रजिह्वोष्ठो लम्बभ्रूः स्थूलनासिकः।

वर्षाता हुआ उनकी ओर दौडा ॥ अनन्तर कर्ण और राक्षस घटोत्कचका सम्पूर्ण प्राणियोंको विस्मित करनेवाला अत्यन्त भयङ्कर महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ (४४–४५) [७८९८]

द्रोणपर्वमें एकसौ चौहत्तर अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ पचत्तर अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! सूर्यपुत्र कर्ण और राक्षस घटोत्कच जब उस रात्रिके समय रणभूमिमें युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए; तब उन दोनों वीरोंका किस प्रकार संग्राम हुआ था ? युद्धके समय उस भयङ्कर रूप वाले राक्षसने कैसा स्वरूप धारण किया और उसके घोडे रथ तथा अस्त्र शस्त्र किस भांतिके थे ? और उसके धनुष रथकी ध्वजा रथ और घोडोंके लम्बाई चौडाईका कितना परिमाण था ? और उसका वर्म तथा शिरस्त्राण कैसा था ? हे सञ्जय ! तुम वचन बोलनेमें अत्यन्त निपुण हो इससे मैं जो कुछ पूंछता हूं वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करो। (१–४)

सञ्जय बोले, महाराज ! उस बडे शरीरवाले राक्षसका उदर निम्न, नेत्र और मुख लाल तथा रोएं खडे थे; उसकी कमर मोटी, कान हाथीके कानके समान, केश सिंहके केशरकी भांति दीख पडते थे; उसके कपोल जीभ ओंठ और मुख लालवर्णके थे; मुखमें बडे बडे लम्बे चौडे मोटे और चोखे भयङ्कर दांत दीख पडते थे उससे वह राक्षस मानो रौद्ररसका स्वरूप ही मालूम होता था।

नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्ष्मा भयङ्करः ॥ ६ ॥
महाकायो महाबाहुर्महाशीर्षो महाबलः ।
विकृतः परुषस्पर्शो विकचोद्वृद्धपिण्डकः ॥ ७ ॥
स्थूलस्फिग्गूढनाभिश्च शिथिलोपचयो महान् ।
तथैव हस्ताभरणी महामायोऽङ्गदी तथा ॥ ८ ॥
उरसा धारयन्निष्कमग्निमालां यथाऽचलः ।
तस्य हेममयं चित्रं बहुरूपाङ्गशोभितम् ॥ ९ ॥
तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्ध्न्यशोभत ।
कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम् ॥ १० ॥
धारयन्विपुलं कांस्यं कवचं च महाप्रभम् ।
किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ॥ ११ ॥
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गं नल्वमात्रं महारथम् ।
सर्वायुधवरोपेतमास्थितं ध्वजमालिनम् ॥ १२ ॥
अष्टचक्रसमायुक्तं मेघगम्भीरनिःस्वनम् ।

उसकी नासिका स्थूल और सम्पूर्ण अङ्ग काले थे । इसके अतिरिक्त उसका शरीर पर्वतके समान भयङ्कर दीख पडता था, उस बडे शरीरवाले महाबली महाबाहु भयंकर राक्षसका सिर बहुत बडा था उसके शरीरका चमडा अत्यन्त कडा था, जानुके ऊपरका हिस्सा मांससे अत्यन्त पुष्ट था और बिकट रूपसे दीख पडता था ॥ (४-७)

कटिके पीछेका भाग अत्यन्त ही स्थूल और नाभिस्थान गभीर (गहिरा) था । वह अनेक राक्षसी माया जाननेवाला राक्षस बहुतसी अपने खाने पीने की अभिलषित अन्न आदि वस्तु सहज हीमें खाने पीनेमें समर्थ था। महाराज! जैसे पर्वत अग्निकी लपट रूपी मालासे शोभित होते हैं वैसे ही वह राक्षस सुवर्णके कवच मुहर और हाथमें पहिरने योग्य आभूषणोंको पहरके शोभित हो रहा था। उसके सिरके ऊपर सफेद् वर्ण तोरण आकृतिसे युक्त अनेक भांतिके रत्नोंसे जटित सुवर्णमय एक किरीट शोभित होता था । उस राक्षसने बालसूर्यकी प्रभाके समान प्रकाशमान दोनों कुण्डल और रत्नमयी मालासे अलंकृत होके प्रकाशमान कांसेके कवचको धारण किया, और सैकडों किङ्किणि शब्दसे युक्त लालवर्णकी ध्वजासे शोभित ऋक्षके चमडेसे घिरा हुआ उत्तम अस्त्र शस्त्रोंसे परिपूरित अनेक पताकाओंके सहित

मत्तमातङ्गसङ्काशा लोहिताक्षा विभीषणाः ॥ १३ ॥
कामवर्णजवा युक्ता बलवन्तः शतं हयाः ।
वहन्तो राक्षसं घोरं बालवन्तो जितश्रमाः ॥ १४ ॥
विपुलाभिः सटाभिस्ते हेषमाणा मुहुर्मुहुः ।
राक्षसोऽस्य विरूपाक्षः सूतो दीप्तास्यकुण्डलः॥ १५ ॥
रश्मिभिः सूर्यरश्म्याभैः सञ्जग्राह हयान्रणे ।
स तेन सहितस्तस्थावरुणेन यथा रविः ॥ १६ ॥
संसक्त इव चाभ्रेण यथाऽद्रिर्महता महान् ।
दिवःस्पृक् सुमहान्केतुः स्यन्दनेऽस्य समुच्छ्रितः॥१७ ॥
रक्तोत्तमाङ्गः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः ।
वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमतिविक्षिपन् ॥ १८ ॥
व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ।
रथाक्षमात्रैरिषुभिः सर्वाः प्रच्छादयन्दिशः ॥ १९ ॥
तस्यां वीरापहारिण्यां निशायां कर्णमभ्ययात् ।

आठ चक्केसे युक्त बादलकी भांति गम्भीर शब्दसे परिपूर्ण चार सौ हाथके परिमाणवाले एक बडे रथ पर चढा था। (८-१३)

उस रथमें मतवारे हाथीके समान रूपवाले लाल नेत्रसे युक्त इच्छानुसार वर्ण और वेग धारण किये हुए महाबली भयङ्कर मूर्तिवाले एकसौ घोडे जुते हुए थे। वे परिश्रमसे न थकनेवाले अनेक केशरोंसे शोभित बार बार हिनहिनाते और उस भयंकर रूपवाले राक्षसके रथको खींचते हुए रणभूमिके बीच गमन करने लगे। महाराज! उसका सारथी भी प्रकाशमान सफेद कुण्डलोंसे शोभित एक भयंकर मूर्त्तिवाला राक्षस था, वह सूर्य किरणके समान प्रकाशमान घोडोंकी रासको ग्रहण करके उन घोडोंको हांकता था। महाराज! राक्षस घटोत्कच ऐसे रथ और सारथीसे युक्त होकर बादलोंसे युक्त बडे पर्वत तथा अरुणसे युक्त सूर्यकी भांति शोभित हुआ। (१३-१७)

उसके रथकी ऊंची ध्वजा आकाशमें लहरा रही थी; उसके ऊपर लालनेत्रसे युक्त मांसभक्षी एक भयंकर गिद्ध विराजमान था। घटोत्कच इस प्रकार रथ पर चढके इन्द्रधनुषके समान अपने प्रचण्ड धनुष पर रोदा चढाके मोटे मोटे बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाको परिपूरित करके उस भयङ्करी रात्रिके समय कर्णकी ओर दौडा। महाराज! जब वह राक्षस अपने

वैदिक यज्ञ संस्था।

प्रथम भाग। मूल्य १) रु. डा. व्य. ।)

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है।

प्राचीन संस्कृत निबंध।

१-३ पिष्ट-पशुमीमांसा। लघु-पुरोडाश-मीमांसा।

भाषाके लेख (ले०-श्री० पं० बुद्धदेवजी)

४ दर्श और पौर्णमास, ५ अद्भुत कुमार संभव। (ले० -श्री० पं० मंङ्गलमणिजी) ६ बुद्धके यज्ञ विषयक विचार। (संपादकीय) ७ यज्ञका महत्व, ८ यज्ञका क्षेत्र, ९ यज्ञका गूढ तत्त्व, १० औषधियोंका महामख, (ले० श्री० पं० धर्मदेवजी) ११ वैदिक यज्ञ और पशु-हिंसा। (ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी) १२ क्या वेदोंमें यज्ञों में पशुओंका बलि करना लिखा है ?

वैदिक यज्ञ संस्था द्वितीय भाग। मूल्य १) रु. डा. व्य।)

इस द्वितीय भागमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है- (ले०-श्री. पं. देवशर्माजी विद्यालंकार)

भारतवर्षमें यज्ञकी कमी, यज्ञकी महिमा, यज्ञसे जो चाहे सो प्राप्त कर लो, यज्ञपुरुष का वर्णन, हवन प्रक्रिया, यज्ञशेष और उच्छेष, राजसूय, विश्वजित्, अश्वमेध, गोमेध, सर्वमेध, वाजपेय, पंचमहायज्ञ, यज्ञ संसारकी नाभि है।

पं. बुद्धदेवजी लिखित-संशपन और अवदान।

संपादकीय-नरमेध का वैदिक तात्पर्य।

इतने विषयोंका विचार इस पुस्तक में हुआ है। प्रत्येक विषयके प्रतिपादनके लिये वेदके अनेक प्रमाण दिये हैं और विषयका प्रतिपादन अति सुगम है। मूल्य १) डा. व्य. ।)

वैदिक यज्ञ संस्था तृतीय भाग गोमेध।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

गोमेधमें गोमांस, प्रकरणानुकूल अर्थ विचार, ऋषिपंचमी, वेदका महासिद्धान्त, यज्ञकी पूर्व और उत्तरवेदी, मधुपर्क, कलिवर्ज्यप्रकरण, बृहदारण्यक का वचन, गौका वैदिक नाम, गोमेधका विचार, चरक की साक्षी, विवाहमें गोमांस, अतिथिके लिये गौ, यज्ञमें मांस, अन्य यज्ञ, वेदमें अहिंसा, अवध्य गौ और बैल, यज्ञका तत्त्व, गौको खाना। गौ दान लेने का अधिकारी, रक्षक और घातक गौका महत्त्व, राष्ट्ररक्षक गौ, गौके लिये सोमरस, सबकी माता गौ।

इत्यादि अनेक विषय इसमें आगये हैं। हरएक विषयका प्रतिपादन करनेके लिये अनेक वेदमंत्रोंके प्रमाण दिये हैं। जो कहते हैं कि 'वैदिक समयमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी," उनके लिये यह उत्तम उत्तर है। यह पुस्तक पढनेके पश्चात् उक्त विषयमें कोई शंका नहीं रहेगी।

मूल्य१) रु. डा व्य०।)

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्री० दा० सातवलेकर, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा)

REGISTERED NO. B. 1819

अंक ६२ [द्रोणपर्व १२]

महाभारत।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्च ततक्षतुः ।
सञ्छिन्दन्तौ च गात्राणि सन्दधानौ च सायकान्॥२८॥
दहन्तौ च शरोल्काभिर्दुष्प्रेक्ष्यौ च बभूवतुः ।
तौ तु विक्षतसर्वाङ्गौ रुधिरौघपरिप्लुतौ ॥ २९ ॥
विभ्राजेतां यथा वारि स्रवन्तौ गैरिकाचलौ ।
तौ शराग्रविनुन्नाङ्गौ निर्भिन्दन्तौ परस्परम् ॥ ३० ॥
नाऽकम्पयेतामन्योन्यं यतमानौ महाद्युती ।
तत्प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाऽभवत् ॥ ३१ ॥
प्राणयोर्दीव्यतो राजन्कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
तस्य सन्दधतस्तीक्ष्णाञ्छरांश्चाऽऽसक्तमस्यतः॥ ३२ ॥
धनुर्घोषेण वित्रस्ताः स्वे परे च तदाऽभवन् ।
घटोत्कचं यदा कर्णो विशेषयति नो नृप ॥ ३३ ॥
ततः प्रादुष्करोद्दिव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।

हाथी अपने दांतोंसे युद्ध करते हैं वैसे ही वे दोनों शक्ति आदि अस्त्र और अनेक बाणोंको वर्षा कर बाणोंकी चोटसे क्षतविक्षत शरीरसे युक्त होगये । इसी भांति वे दोनों कभी बाण साधते कभी अस्त्रोंको चलाके एक दूसरेके शरीरमें प्रहार करते और कभी अपने अस्त्ररूपी अग्निसे एक दूसरेको भस्म करनेकी इच्छासे अस्त्र शस्त्रोंको चलाते हुए इस प्रकार युद्ध करते थे कि सेनाके बहुतेरे पुरुष उन दोनोंके युद्धको देखनेमें भी समर्थ न हुए । (२४-२९)

अधिक क्या कहा जावे उस समय उन दोनों वीरोंका शरीर बाणोंसे परिपूरित होगया, और उनके शरीरसे इस प्रकार रुधिर बहने लगा जैसे पर्वतोंके ऊपरसे गेरुकी धारा बहती है । आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे पीडित होके उन दोनों वीरोंने एक दूसरेके शरीरको अपने बाणोंसे क्षतविक्षत कर दिया यह ठीक है; परन्तु यत्नवान् होकर भी कोई किसीको युद्धभूमिसे विचलित न कर सका । महाराज ! प्राणपणसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए कर्ण और राक्षस घटोत्कचका संग्राम बहुत समय तक समभावसे ही होता रहा। परन्तु घटोत्कचको निर्भय चित्तसे बाण साधते और चलाते देख तुम्हारी सेनाके और पर सेनाके सम्पूर्ण पुरुष उसके धनुष टङ्कारके शब्दसे भयभीत हो गये । (२९-३३)

महाराज ! सब अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले महावीर कर्ण जब किसी

कर्णेन सन्धितं दृष्ट्वा दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः ॥ ३४ ॥
प्रादुश्चक्रे महामायां राक्षसीं पाण्डुनन्दनः ।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ३५ ॥
रक्षसां घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः ।
तमुद्यतमहाचापं दृष्ट्वा ते व्यथिता नृपाः ॥ ३६ ॥
भूतान्तकमिवाऽऽयान्तं कालदण्डोग्रधारिणम् ।
घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ॥ ३७ ॥
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ।
ततोऽश्मवृष्टिरत्युग्रा महत्यासीत्समन्ततः ॥ ३८ ॥
अर्धरात्रेऽधिकबलैर्विमुक्ता रक्षसां बलैः ।
आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः शक्तितोमराः ॥३९॥
पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ।
तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिप ॥ ४० ॥
पुत्राश्च तव योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः ।
तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी कर्णो मानी न विव्यथे ॥ ४१ ॥

प्रकारसे भी घटोत्कचसे अधिक न हो सके, तब वह दिव्य अस्त्रोंको प्रकट करने लगे। भीमसेन पुत्र घटोत्कचने कर्णको दिव्य अस्त्र प्रकट करते देख, राक्षसी मायाको उत्पन्न किया। उससे वह क्षण भरके बीच शूल मुद्गर वृक्ष और पत्थर ग्रहण करनेवाली और भयङ्कर रूपवाली राक्षसी सेनासे युक्त होगया, राजा लोग सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाले दण्ड-धारी यमराजके समान हाथमें धनुष ग्रहण किये और राक्षसोंकी महासेनासे युक्त घटोत्कचको संमुख आते देख अत्यन्त ही शोकित हुए। (३३–३७)

ऐसा क्या उस समय उसके सिंह-नाद शब्दसे भयभीत होकर हाथी घोडे मलमूत्र त्याग करने लगे और सेनाके पुरुष अत्यन्त ही कातर हुए। अनन्तर उस समय रात्रिके प्रभावसे स्वाभाविक ही अधिक बलवान् राक्षसोंकी सेनाके पुरुषोंके हाथसे रणभूमिमें चारों ओर शिलाकी वर्षा होने लगी। लोहमय चक्र, भुशुण्डी, शक्ति, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्र चारों ओरसे तुम्हारी सेनाके ऊपर पडने लगे। (३७–४०)

महाराज! तुम्हारे पुत्र और तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग उस भयङ्कर युद्धको देखकर भयभीत होकर चारों ओर

व्यधमच्च शरैर्मायां तां घटोत्कचनिर्मिताम् ।
मायायां तु प्रहीणायाममर्षाच्च घटोत्कचः ॥ ४२ ॥
विससर्ज शरान्घोरान्सूतपुत्रं त आविशन् ।
ततस्ते रुधिराभ्यक्ता भित्त्वा कर्णं महाहवे ॥ ४३ ॥
विविशुर्धरणीं बाणाः संक्रुद्धा इव पन्नगाः ।
सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिः शरैः ।
घटोत्कचो विनिर्भिन्नः सूतपुत्रेण मर्मसु ॥ ४५ ॥
चक्रं दिव्यं सहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम् ॥ ४६ ॥
चिक्षेपाऽऽधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया ।
प्रविद्धमतिवेगेन विक्षिप्तं कर्णसायकैः ॥ ४७ ॥
अभाग्यस्येव सङ्कल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि ।
घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ४८ ॥
कर्णं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ।

भागने लगे । उस समय केवल अस्त्रबलमें प्रशंसित अकेले कर्ण ही युद्धसे कातर नहीं हुए वरन अपने दिव्य अस्त्रके प्रभावसे घटोत्कचकी सम्पूर्ण मायाको भस्म कर दिया । माया नष्ट होने पर घटोत्कच क्रुद्ध होके सूतपुत्र कर्णके ऊपर महाघोर बाणोंकी वर्षा करने लगा; वे सम्पूर्ण बाण कर्णके शरीरमें घुस गये । महाराज ! कर्णके शरीरको छेद कर रुधिरसे लिपटे हुए वे सम्पूर्ण बाण क्रोधी सर्पोंके समान पृथ्वीमें गिरे । (४०–४४)

तब प्रतापी कर्णने क्रुद्ध होकर हस्तलाघवके सहित दश बाणोंसे घटोत्कचके शरीरको भेद किया । महापराक्रमी सूतपुत्र कर्णके बाणोंसे घटोत्कचके मर्मस्थल अत्यन्त ही पीडित हुए, तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक सहस्र क्षुरधारसे युक्त देवताओंके बनाये हुए चक्रको ग्रहण करके कर्णकी ओर चलाया । महाराज ! जैसे भाग्यहीन पुरुषके मनोरथ निष्फल होजाते हैं, वैसे ही अत्यन्त वेगसे घुमाके चलाया हुआ वह चक्र कर्णके बाणोंके प्रभावसे उलटके पृथ्वीमें गिर पडा । (४४–४८)

चक्रको निष्फल होते देख, घटोत्कचने अपने बाणजालसे इस प्रकार कर्णको छिपा दिया, जैसे राहु सूर्यको छिपादेता है । वैसे ही रुद्र विष्णु और इन्द्र

सूतपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ४९ ॥
घटोत्कचरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ।
घटोत्कचेन क्रुद्धेन गदा हेमाङ्गदा तदा ॥ ५० ॥
क्षिप्ता भ्राम्य शरैः साऽपि कर्णेनाऽभ्याहताऽपतत् ।
ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ५१ ॥
प्रववर्ष महाकायो द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।
ततो मायाविनं कर्णो भीमसेनसुतं दिवि ॥ ५२ ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांऽशुभिः ।
तस्य सर्वान्हयान्हत्वा सञ्छिद्य शतधा रथम् ॥ ५३ ॥
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
न चाऽस्याऽऽसीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ॥ ५४ ॥
सोऽदृश्यत मुहूर्तेन श्वाविच्छललतो यथा ।
न हयान्न रथं तस्य न ध्वजं न घटोत्कचम् ॥ ५५ ॥

के समान पराक्रमी सूतपुत्र कर्णने भी निर्भयचित्तसे अपने बाणजालसे घटोत्कचके रथको शीघ्रताके सहित छिपा दिया। तब घटोत्कचने क्रुद्ध होकर सुवर्णतारसे खचित एक भारी गदाको घुमाकर कर्णकी ओर फेंक दिया; वह गदा भी कर्णके बाणोंसे निवारित होकर पृथ्वीमें गिर पडी । अनन्तर बडे शरीर वाला वह राक्षस घटोत्कच आकाशमें चला गया और आकाशसे कर्णके ऊपर वृक्षोंकी वर्षा करने लगा । (४८-५२)

उसे देख सूतपुत्र कर्ण अपने प्रकाशमान बाणोंको चलाकर उसके रथके घोडे और सारथीका नाश करके इस प्रकार घटोत्कचके शरीरको छेदने लगे, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारको नष्ट कर देता है । कर्ण जब राक्षसी मायामें निपुण भीमसेनपुत्र घटोत्कचके रथ और घोडोंको टुकडे टुकडे करके गिरा कर जलकी वर्षा करनेवाले बादलकी भांति उसके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे, तब उस समय घटोत्कचके शरीरमें ऐसा दो अंगुल स्थान भी बाकी न रहा जो कर्णके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो । अधिक क्या कहा जावे उस समय घटोत्कचका शरीर मुहूर्त्त भरके बीच कर्णके बाणोंसे इस प्रकार परिपूरित होगया, जैसे कांटोंसे युक्त शल्यकीका वृक्ष शोभित होता है । महाराज ! उस समय राक्षस घटोत्कच कर्णके बाणोंसे इस प्रकार छिप गया, कि कोई पुरुष उसका रथ, घोडे और उसे देख भी न

दृष्टवन्तः स्म समरे शरौघैरभिसंवृतम् ।
स तु कर्णस्य तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण शातयन् ॥ ५६ ॥
मायायुद्धेन मायावी सूतपुत्रमयोधयत् ।
सोऽयोधयत्तदा कर्णं मायया लाघवेन च ॥ ५७ ॥
अलक्ष्यमाणानि दिवि शरजालानि चाऽपतन् ।
भैमसेनिर्महामायो मायया कुरुसत्तम ॥ ५८ ॥
विचचार महाकायो मोहयन्निव भारत ।
स तु कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभानि च ॥ ५९ ॥
अग्रसत्सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया ।
पुनश्चापि महाकायः सञ्छिन्नः शतधा रणे ॥ ६० ॥
गतसत्त्वो निरुत्साहः पतितः खाद्व्यदृश्यत ।
तं हतं मन्यमानाः स्म प्राणदन्कुरुपुङ्गवाः ॥ ६१ ॥
अथ देहैर्नवैरन्यैर्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ।
पुनश्चापि महाकायः शतशीर्षः शतोदरः ॥ ६२ ॥

सके। (५२–५६)

परन्तु मायाविद्या जाननेवाला घटोत्कच कर्णके चलाये हुए दिव्य अस्त्रोंको अपने दिव्य अस्त्रोंसे निवारण करता हुआ मायामय युद्ध करने लगा। जब वह मायासे शीघ्रताके सहित कर्णके सङ्ग युद्ध करने लगा, उस समय आकाशमण्डलसे अनगिनत बाणोंकी वर्षा होती हुई दिखाई देने लगी। हे राजेन्द्र! मायाविद्यामें निपुण बडे शरीरवाला वह राक्षस इसी भांति अपनी मायासे तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाके पुरुषों को मोहित कर रणभूमिमें घूमने लगा। उसका मुख स्वाभाविक ही भयङ्कर था, उसपर भी उसने मायाबलसे विरूप और अशुभ अनेक मुख बनाकर कर्णके चलाये हुए दिव्य अस्त्रोंको ग्रास किया। (५६–६०)

तिसके अनन्तर वह बडे शरीरवाला युद्धसे उत्साहहीन और प्राण रहितके समान होकर कटके सैकडों टुकडे होके आकाशसे गिरते हुए दीख पडा। तब उस के शरीरको कटके गिरते देख कुरुसेनाके योद्धाओंने समझा, कि घटोत्कच मारा गया, ऐसा समझके तुम्हारी सेनाके लोग सिंहनाद करने लगे। वह उस ही समय मायाके प्रभावसे अनेक शरीर धारण करके एकही समय चारों ओर दिखाई देने लगा। वह मायाके प्रभाव से कभी एकसौ सिर एक सौ उदरवाला बडा शरीर धारण करके मैनाक पर्वतकी

व्यदृश्यत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ।
अंगुष्ठमात्रो भूत्वा च पुनरेव स राक्षसः ॥ ६३ ॥
सागरोर्मिरिवोद्धूतस्तिर्यगूर्ध्वमवर्तत ।
वसुधां दारयित्वा च पुनरप्सु न्यमज्जत ॥ ६४ ॥
अदृश्यत तदा तत्र पुनरुन्मज्जितोऽन्यतः ।
सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमपरिष्कृते ॥ ६५ ॥
क्षितिं खं च दिशश्चैव माययाऽभ्येत्य दंशितः ।
गत्वा कर्णरथाभ्याशं व्यचरत्कुण्डलाननः ॥ ६६ ॥
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं विशाम्पते ।
तिष्ठेदानीं क्व मे जीवन्सूतपुत्र गमिष्यसि ॥ ६७ ॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षं रक्षः क्रूरपराक्रमम् ॥ ६८ ॥
उत्पपाताऽन्तरिक्षं च जहास च सुविस्तरम् ।
कर्णमभ्यहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ६९ ॥
रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयदः ॥ ७० ॥

भांति दिखाई देने लगी ॥ कभी अंगुष्ठ मात्र होकर फिर उठती हुई समुद्रकी तरङ्गकी भांति वक्र गतिसे ऊपरको बढने लगा । (६०-६४)

कभी पृथ्वीको विदारण करके जलके बीच छिप जाता था, क्षण भरके बीच दूसरे स्थानपर प्रकट होके फिर उसी स्थलपर दीख पडता था । इसी भांति वह राक्षस मायाके प्रभावसे पृथ्वी आकाश और सम्पूर्ण दिशार्मे घूमकर फिर कवच और कुण्डल पहने हुए सुवर्णमय रथपर चढके सूतपुत्र कर्णके रथके समीप उपस्थित हुआ। और निर्भयताके सहित उनसे कहने लगा, हे सूतपुत्र ! खडारह ! अब तू जीते हुए मेरे संमुखसे कहां जासकता है ? आज रणभूमिके बीच मैं तुम्हारी युद्धकी अभिलाषा पूर्ण कर दूंगा ॥ (६४-६८)

महाराज ! अत्यन्त पराक्रमी घटोत्कच ऐसा वचन कहके क्रोधपूर्वक आकाशमें गया और भयानक स्वरसे हंसता हुआ कर्णके शरीरमें इस प्रकार अपने वाणोंसे प्रहार करने लगा; जैसे सिंह गजराजके ऊपर प्रहार करता है। उस समय घटोत्कच रथियोंमें मुख्य कर्ण के ऊपर अपने मोटे मोटे वाणों को

शरवृष्टिं च तां कर्णो दूरात्प्राप्तामशातयत्।
दृष्ट्वा च विहतां मायां कर्णेन भरतर्षभ ॥ ७१ ॥
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः।
सोऽभवद्गिरिरत्युचः शिखरैस्तरुसङ्कटैः ॥ ७२ ॥
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान्।
तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो दृष्ट्वा महीधरम् ॥ ७३ ॥
प्रपातैरायुधान्युग्राण्युद्वहन्तं न चुक्षुभे।
स्मयन्निव ततः कर्णो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ७४ ॥
ततः सोऽस्त्रेण शैलेन्द्रो विक्षिप्तो वै व्यनश्यत।
ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ॥७५॥
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रः सूतपुत्रमवाकिरत्।
अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ७६ ॥
व्यधमत्कालमेघं तं कर्णो वैकर्तनो वृषः।
स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः॥ ७७ ॥
जघानाऽस्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम्।

आकाशसे इस प्रकार बर्षाने लगा; जैसे बादल पृथ्वीके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं, पर कर्ण उसके चलाये हुए बाणोंको समीप न पहुंचते ही अपने बाणोंके प्रभावसे मार्गहीमें काट काटके गिराने लगे। महाराज! कर्णके अस्त्रोंसे माया निष्फल होती देख, घटोत्कचने फिर अन्तर्द्धान होके राक्षसी माया उपजायी। (६९-७२)

उस समय वह मायाके प्रभावसे शूल प्रास, मूशल आदि अस्त्ररूपी जलके झरनेसे युक्त, अनेक शिखरोंसे शोभित वृक्षलतासे परिपूर्ण एक बहुत ऊंचे बडे पर्वतका रूप धारण किया। महाराज! कर्ण अञ्जनगिरिके समान जल झरनेके स्थलमें अनेक अस्त्र शस्त्रोंको निकलते हुए उस पर्वतको देखकर तनिक भी भयभीत नहीं हुए; वरन उत्साह पूर्वक दिव्य अस्त्रोंको प्रकाशित किया। कर्णके दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे वह पर्वत क्षणभरमें टुकडे टुकडे होकर नष्ट होगया। उसे देखकर घटोत्कच आकाशमें इन्द्रधनुषसे शोभित काले बादलका रूप धारण करके वहांसे ही सूतपुत्र कर्णके ऊपर शिला वर्षाने लगा॥ (७२-७६)

तब अस्त्रधारियोंमें मुख्य कर्णने वायव्य अस्त्र चलाकर उस काले मेघमण्डलको आकाशमें छिन्न भिन्न करके नष्ट

ततः प्रहस्य समरे भैमसेनिर्महाबलः ॥ ७८ ॥
प्रादुश्चक्रे महामायां कर्णं प्रति महारथम्।
स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेन रथिनां वरम् ॥ ७९ ॥
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम्।
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तमातङ्गविक्रमैः ॥ ८० ॥
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा।
नानाशस्त्रधरैर्घोरैर्नानाकवचभूषणैः ॥ ८१ ॥
वृतं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्भिरिव वासवम्।
दृष्ट्वा कर्णो महेष्वासो योधयामास राक्षसम् ॥ ८२ ॥
घटोत्कचस्ततः कर्णं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः।
ननाद भैरवं नादं भीषयन्सर्वपार्थिवान् ॥ ८३ ॥
भूयश्चाऽञ्जलिकेनाऽथ समार्गणगणं महत्।
कर्णहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाऽऽशु घटोत्कचः ॥८४ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय दृढं भारसहं महत्।
विचकर्ष बलात्कर्ण इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम् ॥ ८५ ॥

कर दिया। तब कर्णने अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूर्ण करके घटोत्कचके चलाये हुए अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे निवारण किया। अनन्तर महाबलवान् भीमसेनपुत्र घटोत्कच ऊंचे स्वरसे हंसके महारथी कर्ण के समीप महाघोर माया प्रकाशित करने लगा। (७६-७९)

उस समय रथियोंमें मुख्य घटोत्कच घोडे हाथी और रथों पर चढे हुए नाना भांतिके कवचोंसे भूषित, मतवारे हाथीके समान पराक्रमी सिंह और शार्दूलकी आकृतिवाले अनगिनत क्रूर स्वभाववाले राक्षसोंकी सेनासे युक्त होकर इस प्रकार युद्ध भूमिमें आगमन करने लगा, जैसे मरुत् गणोंसे घिरे हुए इन्द्र आगमन करते हैं। (७९-८२)

घटोत्कचको रथ पर चढे हुए निर्भय चित्तसे फिर अपनी ओर आते देख महा धनुर्धर कर्ण बलवान् होकर उसके सङ्ग युद्ध करने लगे। घटोत्कचने पहिले कर्णको पांच बाणोंसे विद्ध किया, फिर सम्पूर्ण राजाओंको भयभीत करते हुए भयानक शब्दसे सिंहनाद करने लगा॥ तिसके अनन्तर घटोत्कचने अञ्जलिक अस्त्रसे कर्णके हाथमें स्थित उनके दृढ धनुषको बाण और रोदेके सहित काटके गिरा दिया॥ तब कर्ण इन्द्रधनुषके समान एक महावेगवान्

ततः कर्णो महाराज प्रेषयामास सायकान् ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान्खेचरान्राक्षसान्प्रति ॥ ८६ ॥
तद्वाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहेनेवाऽर्दितं वन्यं गजानामाकुलं कुलम् ॥ ८७ ॥
विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतगजान्विभुः ।
ददाह भगवान्वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥ ८८ ॥
स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे सूतनन्दनः ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ ८९ ॥
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु मारिष ।
नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिवः ॥ ९० ॥
ऋते घटोत्कचाद्राजन्राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ।
भीमवीर्यबलोपेतात्क्रुद्धाद्वैवस्वतादिव ॥ ९१ ॥
तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां पावकः समजायत ।
महोल्काभ्यां यथा राजन्सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥ ९२ ॥
तलं तलेन संहत्य सन्दश्य दशनच्छदम् ।

प्रचण्ड धनुष ग्रहण करके बलपूर्वक धनुष खींच कर आकाशचारी राक्षसोंके ऊपर स्वर्ण दण्डवाले तीक्ष्ण बाणोंको चलाने लगे ॥ (८२-८६)

महाराज ! ऊंची छातीवाले वे सम्पूर्ण राक्षस कर्णके बाणोंसे पीडित होकर इस प्रकार विकल होगये जैसे सिंहसे पीडित होकर हाथियोंका समूह व्याकुल होजाता है ॥ जैसे प्रलय कालके समय अग्नि सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म कर देती है वैसे ही युद्धविद्याके जाननेवाले सुतपुत्र कर्ण हाथी घोडे रथ और सारथियोंके सहित उन सम्पूर्ण राक्षसोंको बलपूर्वक अपने बाणरूपी अग्निसे भस्म करने लगे। हे राजेन्द्र ! जैसे पहिले समयमें देवोंके देव महादेव त्रिपुरको जलाकर शोभित हुए थे वैसे ही सूतपुत्र कर्ण भी सम्पूर्ण राक्षसी सेनाका नाश करके युद्धभूमिके बीच शोभित हुए ॥ (८७-८९)

अधिक क्या कहा जावे उस समय पाण्डवोंकी ओरके सहस्रों राजाओंके बीच भयानक बल और पराक्रमसे भीमसेनके समान महाबलवान् क्रुद्ध हुए यमराजके समान दीखनेवाले राक्षसराज घटोत्कचको छोडके और दूसरे कोई पुरुष कर्णकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुए। उस समय वह राक्षस ऐसा क्रुद्ध हुआ कि जैसे जलते हुए महाल्लुकके ऊपर तेल

रथमास्थाय च पुनर्मायया निर्मितं तदा ॥ ९३ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैः पिशाचवदनैः खरैः
स सूतमब्रवीत्क्रुद्धः सूतपुत्राय मां वह ॥ ९४ ॥
स ययौ घोररूपेण रथेन रथिनां वरः ।
द्वैरथं सूतपुत्रेण पुनरेव विशाम्पते ॥ ९५ ॥
स चिक्षेप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः ।
अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम् ॥ ९६ ॥
द्वियोजनसमुत्सेधां योजनायामविस्तराम् ।
आयसीं निशितां शूलैः कदम्बमिव केसरैः ॥ ९७ ॥
तामवप्लुत्य जग्राह कर्णो न्यस्य महद्धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे ॥ ९८ ॥
साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्वा सुरास्तत्र विसिस्मियुः ॥९९ ॥
कर्णं तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा ।

पडता है । अनन्तर उसके दोनों नेत्रोंसे लगातार अग्निके कण निकलते हुए दिखाई देने लगे । अनन्तर घटोत्कच पिशाच वदनके समान रूप और विशाल शरीरवाले खर जुते और मायासे बने हुए रथपर चढके क्रोधसे ओंठ काटता हुआ सारथीसे बोला, हे सारथी ! तुम मुझे सूतपुत्र कर्णके समीप ले चलो॥ (९०–९४)

हे राजेन्द्र ! वह रथियोंमें मुख्य राक्षस घटोत्कच इसी भांति भयङ्कर मूर्ति धारण करके फिर सुतपुत्र कर्णसे युद्ध करनेकी इच्छासे उनकी ओर गमन करने लगा, और अत्यन्त क्रुद्ध होकर दो योजन लम्बी एक योजन चौडी आठ चक्रसे युक्त अनेक शूलोंसे परिपूरित लोहमयी महा भयंकरी महादेवकी बनाई हुई एक तलवार ग्रहण करके सूतपुत्र कर्ण की ओर चलायी । उसे देखकर कर्णने अपने बडे धनुषको रथमें रखके उस समय रथसे कूदकर उस भयङ्करी तलवारको ग्रहण करके फिर उसे घटोत्कचहीकी ओर चलाई । घटोत्कच उसी समय रथसे कूदकर पृथ्वीपर स्थित हुआ ॥ (९५–९८)

पर कर्णकी भुजासे छूटी हुई वह प्रकाशमान तलवार घटोत्कचके घोडे सारथी और रथको भस्म करके पृथ्वीमें प्रविष्ट हुई । कर्णके ऐसे कठिन कर्मको देखकर देवता लोग अत्यन्त ही विस्मित हुए ॥ अधिक क्या कहूं, उस समय

यद्वप्लुत्य जग्राह देवसृष्टां महाशनिम् ॥ १०० ॥
एवं कृत्वा रणे कर्ण आरुरोह रथं पुनः ।
ततो मुमोच नाराचान्सूतपुत्रः परन्तप ॥ १०१ ॥
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद ।
यदकार्षीत्तदा कर्णः संग्रामे भीमदर्शने ॥ १०२ ॥
स हन्यमानो नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतः ।
गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥ १०३ ॥
एवं स वै महाकायो मायया लाघवेन च ।
अस्त्राणि तानि दिव्यानि जघान रिपुसूदनः ॥ १०४॥
निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन रक्षसा ।
असम्भ्रान्तस्तदा कर्णस्तद्रक्षः प्रत्ययुध्यत ॥ १०५ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज भैमसेनिर्महाबलः ।
चकार बहुधाऽऽत्मानं भीषयाणो महारथान् ॥ १०६॥
ततो दिग्भ्यः समापेतुः सिंहव्याघ्रतरक्षवः ।
अग्निजिह्वाश्च भुजगा विहगाश्चाऽप्ययोमुखाः ॥१०७॥

कर्णने जो सहसा कूदके महादेवकी बनाई उस प्रचण्ड तलवारको ग्रहण किया उसे देख सम्पूर्ण प्राणियोंने सूत-पुत्र कर्णकी अत्यन्त ही प्रशंसा किया॥ अनन्तर शत्रुनाशन कर्ण रणभूमिके बीच ऐसा कठिन कर्म करके फिर अपने रथपर चढके घटोत्कचकी ओर अनेक तेज नाराच बाण चलाने लगे ॥९९-१०१

हे प्रजानाथ ! उस भयङ्कर संग्रामके समय कर्णने जैसा कर्म किया; वैसे कर्मको करनेमें सम्पूर्ण प्राणियोंके बीच कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है । जो हो; जैसे पर्वतके ऊपर लगातार जलकी वर्षा होती है वैसेही घटोत्कच लगातार कर्ण के बाणोंसे पीडित होकर गन्धर्व नगर की भांति फिर अन्तर्द्धान हुआ ॥ महाराज ! महाघोर राक्षसी मायासे युक्त शत्रुओंको नाश करनेवाले उस बडे शरीरवाले राक्षसने मायाबल और हस्त-लाघवके सहित अपने अस्त्रोंसे कर्णके चलाये हुए सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रोंको निवारण किया ॥ (१०२-१०४)

परन्तु मायाके प्रभावसे बार बार सम्पूर्ण अस्त्रोंके निष्फल होने पर भी कर्ण निर्भयचित्तसे उस राक्षसके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ कर्णका पराक्रम देख भीमसेन पुत्र घटोत्कचने अनेक रूप धारण किये; उससे सिंह बाघ तेंदुए

स कीर्यमाणो विशिखैः कर्णचापच्युतैः शरैः ।
नागराडिव दुष्प्रेक्ष्यस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ १०८ ॥
राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधानास्तथैव च ।
शालावृकाश्च बहवो वृकाश्च विकृताननाः ॥ १०९ ॥
ते कर्णं क्षपयिष्यन्तः सर्वतः समुपाद्रवन् ।
अथैनं वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयाञ्चक्रिरे तदा ॥ ११० ॥
उद्यतैर्बहुभिर्घोरैरायुधैः शोणितोक्षितैः ।
तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध सायकैः ॥ १११ ॥
प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनाऽस्त्रेण राक्षसीम् ।
आजघान हयानस्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ११२ ॥
ते भग्ना विक्षताङ्गाश्च भिन्नपृष्ठाश्च सायकैः ।
वसुधामन्वपद्यन्त पश्यतस्तस्य रक्षसः ॥ १०३ ॥
स भग्नमायो हैडिम्बिः कर्णं वैकर्तनं तदा ।
एष ते विदधे मृत्युमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥११४॥ [८०१२]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि रात्रियुद्धे कर्णघटोत्कचयुद्धे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

अग्निजिह्व सर्प और लोहमुख वाले पक्षियोंका रूप धारण करके चारों ओरसे अनेक राक्षस रणभूमिके बीच उपस्थित हुए ॥ (१०५-१०७)

महाराज! वह इस प्रकार युद्धभूमिमें उपस्थित होने पर भी कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे छिप जानेसे नागराजके समान दुष्प्रेक्ष्य होकर वहाँ ही अन्तर्धान होगया ॥ तिसके अनन्तर भयङ्कर मुखवाले अनगिनत राक्षस और पिशाच अपनी सेनाके सहित भेडिये और शियार रूपसे कर्णको भक्षण करनेके वास्ते चारों ओरसे दौडने लगे। और वे सब राक्षस तथा पिशाच लोग रुधिर लिपटे हुए अनेक भांतिके भयंकर अस्त्रशस्त्रोंको ग्रहण करके कठोर वचन कहते हुए कर्णको भयभीत करने लगे ॥ (१०८-१११)

कर्ण उन हर एक राक्षसोंको अनगिनत बाणोंसे विद्ध करने लगे। अनन्तर दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे कर्णने राक्षसी मायाका नाश किया ॥ फिर अनेक चोखे बाणोंसे घटोत्कचके रथके घोडोंके शरीरमें प्रहार किया, उन घोडोंका कर्णके बाणोंसे सम्पूर्ण शरीर क्षतविक्षत हो गया, और वे सम्पूर्ण घोडे घटोत्कचके सम्मुखहीमें प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ महाराज! इस प्रकार जब सम्पूर्ण माया नष्ट हुई तब हिडिम्बापुत्र घटोत्कच

सञ्जय उवाच— तस्मिंस्तथा वर्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्तत ॥ १ ॥
महत्या सेनया युक्तो दुर्योधनमुपागमत् ।
राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवारितः ॥ २ ॥
नानारूपधरैर्वीरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः ॥ ३ ॥
किर्मीरश्च महातेजा हिडिम्बश्च सखा तदा ।
स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४ ॥
विज्ञायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीममाहवे ।
स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्ध इव चोरगः ॥ ५ ॥
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद्युद्धलालसः ।
विदितं ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः ॥ ६ ॥
हिडिम्बबककिर्मीरा निहता मम बान्धवाः ।
परामर्शश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः पुरा ॥ ७ ॥
किमन्यद्राक्षसानन्यानस्मांश्च परिभूय ह ।

ने कर्णसे कहा "अब मैं तुम्हारी मृत्युका उपाय करता हूं" ऐसा कहके फिर अन्त र्द्धान हुआ ॥ (१११–११४) [८०१२]

द्रोणपर्वमें एकसौ पचत्तर अध्याय समाप्त

द्रोणपर्वमें एकसौ छिहत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! जब कर्ण और घटोत्कचका ऐसा युद्ध होने लगा, उसी समय पराक्रमी राक्षसराज अलायुध पुरानी शत्रुताके स्मरण करके नाना-वर्णवाले सहस्रों पराक्रमी और भयंकर राक्षसोंकी सेनाके सहित दुर्योधनके समीप उपस्थित हुआ। पहिले भीमसेन ने उसकी जातिके पराक्रमी विप्रघाती बक किर्मीर और उसके मित्र हिडिम्बका वध किया था। (१–४)

इस समय उससे रात्रिके युद्धके विषयको जानके अपने जाति-वधरूपी बहुत दिनोंकी शत्रुताको स्मरण करके भीमसेनके वधकी अभिलाषा किया। तब मतवारे हाथीकी भांति वह राक्षस क्रुद्ध होकर दुर्योधनके निकट उपस्थित होके इस प्रकार प्रार्थना करने लगा, हे राजेन्द्र ! पहिले भीमसेनने मेरे बन्धु बक किर्मीर और हिडिम्बको जिस प्रकारसे मारा था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम्हें विदित है । विशेष करके उसने दूसरे राक्षस और मेरी अवमानना करके कन्या अवस्थामें हिडम्बा का धर्म नष्ट

तमहं सगणं राजन्सवाजिरथकुञ्जरम् ॥ ८ ॥
हैडिम्बिं च सहामात्यं हन्तुमभ्यागतः स्वयम् ।
अथ कुन्तीसुतान्सर्वान्वासुदेवपुरोगमान् ॥ ९ ॥
हत्वा सम्भक्षयिष्यामि सर्वैरनुचरैः सह ।
निवारय बलं सर्वं वयं योत्स्याम पाण्डवान् ॥ १० ॥
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदा ।
प्रतिगृह्याऽब्रवीद्वाक्यं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ११ ॥
त्वां पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान् ।
नहि वैरान्तमनसः स्थास्यन्ति मम सैनिकाः ॥ १२ ॥
एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा राक्षसपुङ्गवः ।
अभ्ययात्त्वरितो भैमिं सहितः पुरुषादकैः ॥ १३ ॥
दीप्यमानेन वपुषा रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ।
तादृशेनैव राजेन्द्र यादृशेन घटोत्कचः ॥ १४ ॥
तस्याऽप्यतुलनिर्घोषो बहुतोरणचित्रितः ।

किया था। (४-८)

इससे आज मैं हाथी घोडे रथ और पैदल सेनाके सहित पाण्डवोंके और अनुयाइयोंके सहित हिडम्बापुत्र घटोत्कचके वधकी इच्छा करके स्वयं तुम्हारे समीप आके उपस्थित हुआ हूं। आज मैं कृष्ण के सहित कुन्ती पुत्रोंको मारके अपने अनुयायी राक्षसोंके सहित उनका मांस भक्षण करूंगा। इससे तुम अपनी सेनाके पुरुषोंको युद्धभूमिसे निवृत्त करो; हम लोग पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करेंगे।८-१०

भाइयोंके बीचमें घिरे हुए महाराजा दुर्योधन अलायुधराक्षसके वचनको सुनकर प्रसन्नताके सहित सत्कार करके यह वचन बोले, हे वीर! मेरी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा शत्रुताको शेष करनेके वास्ते उत्सुक होकर पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं इससे वे लोग किसी प्रकारसे भी युद्धसे निवृत्त न होंगे पर हम लोग उन्हे और सेनाके योद्धाओंको अगाडी करके शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होंगे। (११-१२)

सञ्जय बोले, महाराज! राक्षसराज अलायुध दुर्योधनके वचनको सुनकर ऐसा ही होवे कहके घटोत्कचका जैसा शरीर था, वैसा ही प्रकाशमान शरीर धारण करके सूर्यके समान प्रकाशमान रथपर चढा और मनुष्योंको भक्षण करनेवाले राक्षसोंकी सेनाको सङ्ग लेकर शीघ्रताके सहित घटोत्कचकी ओर दौडा।

ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गो नल्वमात्रो महारथः ॥ १५ ॥
तस्यापि तुरगाः शीघ्रा हस्तिकायाः खरस्वनाः ।
शतं युक्ता महाकाया मांसशोणितभोजनाः ॥ १६ ॥
तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः ।
तस्यापि सुमहच्चापं दृढज्यं कनकोज्ज्वलम् ॥ १७ ॥
तस्याऽप्यक्षसमा बाणा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
सोऽपि वीरो महाबाहुर्यथैव स घटोत्कचः ॥ १८ ॥
तस्यापि गोमायुबलाभिगुप्तो बभूव केतुर्ज्वलनार्कतुल्यः ।
स चापि रूपेण घटोत्कचस्य श्रीमत्तमो व्याकुलदीपितास्यः ॥ १९ ॥
दीप्ताङ्गदो दीप्तकिरीटमाली बद्धस्रगुष्णीषनिबद्धखङ्गः ।
गदी भुशुण्डी मुसली हली च शरासनी वारणतुल्यवर्ष्मा ॥ २० ॥
रथेन तेनाऽनलवर्चसा तदा विद्रावयन्पाण्डववाहिनीं ताम् ।
रराज संख्ये परिवर्तमानो विद्युन्माली मेघ इवाऽन्तरिक्षे ॥ २१ ॥

अलायुधका रथ भी बहुत बडा सुन्दर गंभीर घरघराहट शब्दसे युक्त भालूके चमडेसे घिरा हुआ और तोरण पताकासे शोभित था। उसके रथके घोडे भी घटोत्कचके घोडोंकी भांति शीघ्रगामी हाथीके समान शरीरवाले गधेकी भांति शब्द करनेवाले और मांसभोजी थे, उनकी संख्या भी एकसौसे कम नहीं थी। उसका धनुष भी घटोत्कचकी भांति दृढ रोदेसे युक्त और सुवर्णके तारोंसे प्रकाशित होरहा था॥ (१२–१७)

शिलापर घिसे हुए सोनेके पंखवाले उसके बाण भी शोभित होरहे थे। इसी भांति उसके रथके ऊपर ऊंची ध्वजा अग्नि और सूर्यकी भांति प्रकाशित हो रही थीं, वह ध्वजा गीदडोंके समूहसे रक्षित थी। वह स्वयं भी घटोत्कचकी भांति भुजबलमें समान था; उसके भयङ्कर रूपको देख सम्पूर्ण प्राणी व्याकुल हुए। महाराज! उस समय वह हाथीके समान रूप धारण करके सफेद किरीट कवच आभूषण माला आदि वस्तुओंसे शोभित हुआ और धनुष तलवार गदा भुशुण्डी मूसल और हल आदि अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके अग्निके समान अपने प्रकाशमान रथपर चढके चारों ओर पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंको छिन्न भिन्न करता हुआ इस प्रकार युद्धभूमिके बीच घूमने लगा, जैसे बिजलीसे युक्त जलकी वर्षा करनेवाले बादल चारों ओर आकाशमण्डलमें भ्रमण करते हैं॥ (१८–२१)

ते चापि सर्वप्रवरा नरेन्द्र महाबला वर्मिणश्चर्मिणश्च ।
हर्षान्विता युयुधुस्तस्य राजन्समन्ततः पाण्डवयोधवीराः॥२२॥ [८०३४]

इति श्रीमहा० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

सञ्जय उवाच— तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्माणमाहवे ।
हर्षमाहारयाञ्चक्रुः कुरवः सर्व एव ते　　॥ १ ॥
तथैव तव पुत्रास्ते दुर्योधनपुरोगमाः ।
अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुकामा इवाऽर्णवम् ।　　॥ २ ॥
पुनर्जातमिवाऽऽत्मानं मन्वानाः पुरुषर्षभाः ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं स्वागतेनाऽभ्यपूजयन्　　॥ ३ ॥
तस्मिंस्त्वमानुषे युद्धे वर्तमाने महाभये ।
कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणप्रतिदर्शने　　॥ ४ ॥
उपप्रैक्षन्त पञ्चालाः स्मयमानाः सराजकाः ।
तथैव तावका राजन्वीक्षमाणास्ततस्ततः　　॥ ५ ॥
चुक्रुशुर्नेदमस्तीति द्रोणद्रौणिकृपादयः ।

उसे इसप्रकार युद्धभूमिके बीच घूमते देख पाण्डवोंकी सेनाके महाबलवान् मुख्य मुख्य राजा लोग भी कवच धारण कियेहुए तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे सजित होकर प्रसन्न चित्तसे उसके चारों ओर युद्ध करने में प्रवृत्त हुए ॥ (२२) [८०३४]

द्रोणपर्वमें एकसौ छिहत्तर अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ सतत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! उस समय कौरव लोग उस भयङ्कर रूपवाले उस राक्षसराजको युद्धमें प्रवृत्त देख कर अत्यन्त ही हर्षित हुए, और अपनेको पुनः जन्मलेते हुए के समान माननेवाले दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्रोंने अलायुधको देखकर इस प्रकार स्वागत प्रश्न करके उसका आदर किया, जैसे समुद्रसे पार होनेकी इच्छावाले पुरुष नौका रहित होकर फिर नौकाको पाकर प्रसन्न होते हैं ॥ (१—३)

हे भारत ! कर्ण और घटोत्कचका उस रात्रिके समय जब महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा; उस समय हिडिम्बापुत्र घटोत्कच और महावीर कर्णके पराक्रमको देखते हुए शत्रुसेनाके सम्पूर्ण राजा और पाञ्चाल सेनाके योद्धा लोग विस्मित होकर केवल मध्यस्थ पुरुषोंकी भांति उन दोनों वीरोंका युद्ध देखने लगे और अश्वत्थामा द्रोणाचार्य कृपाचार्य आदि तुम्हारी ओरके महारथी योद्धा लोग घटोत्कचका पराक्रम देखकर भयभीत

तत्कर्म दृष्ट्वा सम्भ्रान्ता हैडिम्बस्य रणाजिरे ॥ ६ ॥
सर्वमाविग्नमभवद्धाहाभूतमचेतनम् ।
तव सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते ॥ ७ ॥
दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य कर्णमार्तिं परां गतम् ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
एष वैकर्तनः कर्णो हैडिम्बेन समागतः ।
कुरुते कर्म सुमहद्यदस्यौपयिकं मृधे ॥ ९ ॥
पश्यैतान्पार्थिवाञ्शूरान्निहतान्भैमसेनिना ।
नानाशस्त्रैरभिहतान्पादपानिव दन्तिना ॥ १० ॥
तवैष भागः समरे राजमध्ये मया कृतः ।
तवैवाऽनुमते वीर तं विक्रम्य निबर्हय ॥ ११ ॥
पुरा वैकर्तनं कर्णमेष पापो घटोत्कचः ।
मायाबलं समाश्रित्य कर्षयत्यरिकर्शन ॥ १२ ॥
एवमुक्तः स राज्ञा तु राक्षसो भीमविक्रमः ।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुर्घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ १३ ॥

होकर ऊंचे स्वरसे पुकारके कहने लगे, सम्पूर्ण योद्धाओंका नाश हुआ चाहता है ॥ (४-६)

विशेष करके तुम्हारी सेनाके पुरुष कर्णके जीवनसे निराश होकर हाहाकार शब्दके सहित कोलाहल मचाने लगे। उस ही समय कुरुराज दुर्योधन कर्णको घटोत्कचके अस्त्रोंसे अत्यन्त पीडित देख राक्षसराज अलायुधको आवाहन करके उससे यह वचन बोले, हे वीर ! यह देखो वैकर्त्तन कर्ण रणभूमिके बीच घटोत्कचके सङ्ग अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध कर रहे हैं; तौ भी मेरी सेनाके बहुतेरे योद्धा और राजा लोग घटोत्कचके नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे पीडित होकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिर रहे हैं; जैसे हाथीके सूण्डसे टूटके बहुतेरे वृक्ष पृथ्वी पर गिर पडते हैं ॥ (७-१०)

हे वीर ! इससे जब तक यह पापी राक्षस मायाबलके आसरेसे शत्रुनाशन कर्णका वध नहीं करता है, उससे पहिले ही तुम पराक्रम प्रकाशित करके घटोत्कचका वध करो; क्योंकि तुम्हारी अनुमतिसे ही इस राक्षसको मैंने तुम्हारा भाग निश्चित किया है ॥ (११-१२)

जब राजा दुर्योधनने ऐसा वचन कहा, तब महा पराक्रमी महाबाहु अलायुध राक्षस उनके वचनको स्वीकार करके

ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो ।
प्रत्यमित्रमुपायान्तमर्दयामास मार्गणैः ॥ १४ ॥
तयोः समभवद्युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः ।
मत्तयोर्वासिताहेतोर्द्विपयोरिव कानने ॥ १५ ॥
रक्षसा विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनां वरः ।
अभ्यद्रवद्भीमसेनं रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ॥ १६ ॥
तमायान्तमनाहत्य दृष्ट्वा ग्रस्तं घटोत्कचम् ।
अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवां पतिम् ॥ १७ ॥
रथेनाऽऽदित्यवपुषा भीमः प्रहरतां वरः ।
किरञ्छरौघान्प्रययावलायुधरथं प्रति ॥ १८ ॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदाऽलायुधः प्रभो ।
घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत् ॥ १९ ॥
तं भीमः सहसाऽभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो ।
सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २० ॥
तथैवाऽलायुधो राजञ्शिलाधौतैरजिह्मगैः ।

घटोत्कचकी ओर दौडा ॥ भीमपुत्र घटोत्कच भी युद्धभूमिमें कर्णको त्यागके संमुख आये हुए निज शत्रु अलायुधको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करने लगा ॥ महाराज ! उस समय उन दोनों क्रोधी राक्षसराज घटोत्कच और अलायुधका इस प्रकार महाघोर युद्ध होने लगा जैसे वनके बीच हाथिनीके वास्ते दो मतवारे हाथियोंका युद्ध होता है ॥ (१३--१५)

इधर महारथियोंमें मुख्य कर्ण घटोत्कचसे मुक्त होकर उस समय सूर्यके समान अपने प्रकाशमान रथ पर चढके भीमसेनकी ओर दौडे ! परन्तु कर्ण इस प्रकार भीमसेनकी ओर गमन कर रहे थे तो भी भीमसेन सिंहसे पकडे गये वृषभकी भांति अपने पुत्र घटोत्कचको अलायुध राक्षसके अस्त्रोंसे पीडित देखकर कर्णसे युद्ध न करके सूर्य किरणके समान प्रकाशमान रथपर चढके अपने बाणोंको चलाते हुए अलायुधके रथकी ओर गमन करने लगे ॥ (१६-१८)

अलायुधने भीमसेनको अपनी ओर आते देख घटोत्कचको त्यागके युद्धभूमिमें भीमसेन ही को आवाहन किया ॥ राक्षसोंके नाश करनेवाले भीमसेन राक्षसी सेनाके सहित राक्षसराज अलायुधको आक्रमण करके उसे अपने बाणोंसे

अभ्यवर्षत कौन्तेयं पुनः पुनररिन्दम ॥ २१ ॥
तथा ते राक्षसाः सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन्।
नानाप्रहरणा भीमास्त्वत्सुतानां जयैषिणः ॥ २२ ॥
स ताड्यमानो बहुभिर्भीमसेनो महाबलः।
पञ्चभिः पञ्चभिः सर्वांस्तानविध्यच्छितैः शरैः ॥२३॥
ते वध्यमाना भीमेन राक्षसाः क्रूरबुद्धयः।
विनेदुस्तुमुलान्नादान्दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ २४ ॥
तांस्त्रास्यमानान्भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम्।
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत् ॥ २५ ॥
तं भीमसेनः समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः।
अलायुधस्तु तानस्तान्भीमेन विशिखान्रणे ॥ २६ ॥
चिच्छेद कांश्चित्समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत्।
स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ॥ २७ ॥
गदां चिक्षेप वेगेन वज्रपातोपमां तदा।
तामापतन्तीं वेगेन गदां ज्वालाकुलां ततः ॥ २८ ॥

पीडित करने लगे॥ उसी भांति अलायुध भी भीमसेनके ऊपर शिलापर घिसे हुए तीक्ष्ण बाणोंको चलाने लगा॥ और उसकी सेनाके भयङ्कर रूपवाले राक्षस लोग भी नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके कौरवोंके विजयकी इच्छा करतेहुए भीमसेनकी ओर दौडे॥१९-२२

महाबलवान् भीमसेनने इसी भांति राक्षसोंके अस्त्रोंसे पीडित होकर उन हर एक राक्षसोंको पांच पांच बाणोंसे विद्ध किया॥ क्रूर बुद्धिवाले राक्षस लोग भीमसेनके बाणोंसे पीडित होकर महाघोर कोलाहल मचाते हुए चारों ओर भागने लगे। (२३-२४)

महाबलवान् अलायुध राक्षस अपनी सेनाके राक्षसोंको भयभीत देख, वेग पूर्वक भीमसेनकी ओर दौडके उन्हें अपने बाणोंसे छिपाने लगा॥ वैसे ही भीमसेन भी अपने तीक्ष्ण-बाणोंको अलायुधके ऊपर वर्षाने लगे, अलायुधने भीमसेन के चलाये हुए कितने ही बाणों को अपने तेज बाणोंसे काटके गिराया और कितनेही बाणोंको शीघ्रता के सहित ग्रहण किया। उसे देखकर भीमसेनने वज्रके समान गदा उठाके अलायुधकी ओर चलायी। (२५-२८)

महाराज! अग्निके समान प्रकाशमान् उस गदाको सम्मुख आती देख अलायुध

गदया ताडयामास सा गदा भीममाव्रजत् ।
स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २९ ॥
तानप्यस्याऽकरोन्मोघान्राक्षसो निशितैः शरैः ।
ते चाऽपि राक्षसाः सर्वे रजन्यां भीमरूपिणः ॥ ३० ॥
शासनाद्राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नू रथकुञ्जरान् ।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः ॥ ३१ ॥
न शान्तिं लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः ।
तं तु दृष्ट्वा महाघोरं वर्तमानं महाहवम् ॥ ३२ ॥
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमिदं वचः ।
पश्य भीमं महाबाहुं राक्षसेन्द्रवशङ्गतम् ॥ ३३ ॥
पदमस्याऽनुगच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ३४ ॥
सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः ।
नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
इतरान्राक्षसान्घ्नन्तु शासनात्तव पाण्डव ।

ने अपनी गदाको चलाकर भीमसेनकी गदाको निवारण किया । अलायुधकी गदासे निवारित होकर वह गदा भीमसेनकी ही ओर चली। अनन्तर कुन्तीपुत्र भीमसेन अलायुधको अनगिनत बाणोंसे छिपाने लगे ॥ परन्तु उसने अपने तीक्ष्ण बाणोंके प्रभावसे भीमसेनके सम्पूर्ण बाणोंको निष्फल किया॥ (२८-३०)

उस रात्रिके समय अलायुधकी आज्ञासे महापराक्रमी भयङ्कर रूपवाले राक्षस लोग पाण्डवोंके रथ और गजसेनाका नाश करने लगे । उस समय बडे बडे हाथी घोडे और पाञ्चाल सृञ्जय आदि योद्धा लोग राक्षसोंके अस्त्रोंसे पीडित होकर युद्धभूमिमें विचलित होने लगे । पुण्डरीकाक्ष कृष्ण उस महाभयंकर संग्रामके उपस्थित होने पर अर्जुनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन ! यह देखो, महाबाहु भीमसेन अलायुध के वशमें होगये हैं इससे कुछभी विचार न करके भीमसेनकी सहायताके वास्ते गमन करो॥ ३०-३४

हे पुरुषशार्दूल ! तुम्हारी आज्ञाके अनुसार महारथी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, युधामन्यु, उत्तमौजा और द्रौपदीके पांच पुत्र मिलकर कर्णके विरुद्ध युद्धके वास्ते उनके समीप गमन करें; पराक्रमी सात्यकि नकुल और सहदेव अलायुध की सेनाके राक्षसोंका नाश करें । और

त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम् ॥ ३६ ॥
वारयस्व नरव्याघ्र महद्धि भयमागतम्।
एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोद्दिष्टा महारथाः ॥ ३७ ॥
जग्मुर्वैकर्तनं कर्णं राक्षसांश्चैव तान्रणे।
अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३८ ॥
धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
हयांश्चाऽस्य शितैर्बाणैः सारथिं च महाबलः ॥ ३९ ॥
जघान मिषतः संख्ये भीमसेनस्य राक्षसः।
सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः ॥ ४० ॥
तस्मै गुर्वीं गदां घोरां विनदन्नुत्ससर्ज ह।
ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम् ॥ ४१ ॥
गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च।
तद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भयावहम् ॥ ४२ ॥
भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामाशु परामृशत्।
तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं नरराक्षसोः ॥ ४३ ॥
गदानिपातसंह्रादैर्भुवं कम्पयतोर्भृशम्।

द्रोणाचार्यसे रक्षित इस व्यूहबद्ध सेनाके योद्धाओंका तुम स्वयं निवारण करो; क्यों कि इस समय महाभय उपस्थित हुआ है। श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुनकर वे महारथी योद्धा लोग वैकर्तन कर्ण और अलायुधकी सेनाकी ओर दौडे। (३४—३८)

महाराज ! इतने ही समयके बीच महाबली प्रतापी राक्षसराज अलायुधने विषधर सर्पके समान तेजस्वी बाणोंसे भीमसेनके धनुष घोडे और सारथीको काट डाला ॥ घोडे सारथीके मरने और धनुष कटने पर भीमसेनने रथमेंसे एक भारी गदा उठाके गर्जते हुए अलायुध राक्षसकी ओर चलायी। उस महाघोर गदाको भयङ्कर शब्दके सहित अपनी ओर आती देख भयङ्कर रूपवाला अलायुध राक्षस अपनी गदाको चला कर भीमसेनकी गदाको निवारण करके सिंहनाद करने लगा। (३८–४२)

महाराज ! भीमसेनने उस राक्षस श्रेष्ठ अलायुधके ऐसे महाघोर भयङ्कर कर्मको देख फिर हर्षित होकर गदा ग्रहण किया। जब इसी भाँति उन दोनों वीरोंका युद्ध होने लगा तब गदाके खटखट शब्दसे पृथ्वी कांपने लगी। तिसके अनन्तर वे दोनों वीर गदा फेंक एक दूसरेको ग्रहण

गदाविमुक्तौ तौ भूयः समासाद्येतरेतरम् ॥ ४४ ॥
मुष्टिभिर्वज्रसंह्रादैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
रथचक्रैर्युगैरक्षैरधिष्ठानैरुपस्करैः ॥ ४५ ॥
यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुरमर्षणौ ।
तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम् ॥ ४६ ॥
मत्ताविव महानागौ चकृषाते पुनः पुनः ।
तदपश्यद्धृषीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ॥ ४७ ॥
स भीमसेनरक्षार्थं हैडिम्बिं पर्यचोदयत् ॥ ४८ ॥ [८०८२]

इति श्रीमहा० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७७॥

सञ्जय उवाच— सन्दृश्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात् ।
वासुदेवोऽब्रवीद्राजन्घटोत्कचमिदं वचः ॥ १ ॥
पश्य भीमं महाबाहो रक्षसा ग्रस्तमाहवे ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते ॥ २ ॥
स कर्णं त्वं समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम् ।
जहि क्षिप्रं महाबाहो पश्चात्कर्णं वधिष्यसि ॥ ३ ॥
स वार्ष्णेयवचः श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान् ।

करके अपने मुकेसे प्रहार करने लगे और रथके चक्के, धुरी, काष्ठ, तथा और जो कुछ वस्तु उन दोनोंने अपने समीप में पाया वह सब वस्तु उठा उठाके एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे॥ ४२-४५

तिसके अनन्तर एक दूसरेको ग्रहण करके मल्लयुद्ध करते हुए मतवारे हाथीकी भांति एक दूसरेको अपनी ओर आकर्षण करने लगे। उस समय उन दोनों वीरोंके शरीरसे लगातार रुधिरकी धारा बहने लगी। पाण्डवोंके हितैषी श्रीकृष्ण उन दोनों वीरोंका ऐसा युद्ध देखकर भीमसेनकी रक्षाके वास्ते घटोत्कचसे यह वचन बोले ॥ (४६-४८) [८०८२]

द्रोणपर्वमें एकसौ सतत्तर अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ अठत्तर अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र युद्धभूमिके बीच भीमसेनको राक्षसके वशमें होते देख घटोत्कचसे बोले ॥ हे तेजस्वी श्रेष्ठ महाबाहु घटोत्कच! यह देखो यह भीमसेन तुम्हारे और सम्पूर्ण सेनाके संमुखमें ही राक्षसके वशमें होगये हैं; इससे तुम इस समय कर्णको त्यागके अलायुध राक्षसका वध करो पीछे कर्ण- का नाश करना ॥ (१-३)

पराक्रमी घटोत्कच वृष्णिनन्दन

युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः ॥ ४ ॥
तयोः सुतुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः ।
अलायुधस्य चैवोग्रं हैडिम्बेश्चाऽपि भारत ॥ ५ ॥
अलायुधस्य योधांश्च राक्षसान्भीमदर्शनान् ।
वेगेनाऽऽपततः शूरान्प्रगृहीतशरासनान् ॥ ६ ॥
आत्तायुधः सुसंक्रुद्धो युयुधानो महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च चिच्छिदुर्निशितैः शरैः ॥ ७ ॥
सर्वांश्च समरे राजन्किरीटी क्षत्रियर्षभान् ।
परिचिक्षेप बीभत्सुः सर्वतः प्रकिरञ्छरान् ॥ ८ ॥
कर्णश्च समरे राजन्व्यद्रावयत पार्थिवान् ।
धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन्पञ्चालानां महारथान् ॥ ९ ॥
तान्वध्यमानान्दृष्ट्वाऽथ भीमो भीमपराक्रमः ।
अभ्ययात्त्वरितः कर्णं विशिखान्प्रकिरन्रणे ॥ १० ॥
ततस्तेऽप्याययुर्हत्वा राक्षसान्यत्र सूतजः ।
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ११ ॥
ते कर्णं योधयामासुः पञ्चाला द्रोणमेव तु ।

कृष्णके ऐसे वचनको सुनकर बकके भाई अलायुध राक्षसके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ, अनन्तर उस रात्रिके समय उन दोनों राक्षसोंका महाघोर तुमुल संग्राम होने लगा। इसी समय जब अलायुधकी सेनाके भयानक रूपवाले राक्षस लोग धनुष चढाकर पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे तब शस्त्रधारियोंमें मुख्य सात्यकि नकुल और सहदेव अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन सम्पूर्ण राक्षसोंके शरीरको खण्ड खण्ड करके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ४-७

इधर किरीटमाली अर्जुन अपने बाणोंको चलाकर मुख्य मुख्य क्षत्रियोंको पीडित करने लगे। वैसे ही सूतपुत्र कर्ण धृष्टद्युम्न शिखण्डी आदि पाञ्चाल सेनाके महारथी राजाओंको छिन्न भिन्न करके युद्धभूमिमें भगाने लगे। महापराक्रमी भीमसेन उन महारथी वीरोंको कर्णके बाणोंसे पीडित देखकर अपने बाणोंको वर्षाते हुए शीघ्रताके सहित कर्णकी ओर दौडे ॥ (८-१०)

महाराज! इस ही समय सात्यकि नकुल और सहदेव क्षणभरके बीच राक्षसोंका वध करके जिस स्थानपर सूतपुत्र कर्ण युद्ध कर रहे थे उस ही स्थलपर

अलायुधस्तु संक्रुद्धो घटोत्कचमरिन्दमम् ॥
परिघेणाऽतिकायेन ताडयामास मूर्धनि ॥ १२ ॥
स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः ।
ईषन्मूर्छितमात्मानमस्तम्भयत वीर्यवान् ॥ १३ ॥
ततो दीप्ताग्निसंकाशां शतघण्टामलंकृताम् ।
चिक्षेप तस्मै समरे गदां काञ्चनभूषिताम् ॥ १४ ॥
सा हयांश्च रथं चाऽस्य सारथिं च महास्वना ।
चूर्णयामास वेगेन विसृष्टा भीमकर्मणा ॥ १५ ॥
स भग्नहयचक्राक्षाद्विशीर्णध्वजकूबरात् ।
उत्पपात रथात्तूर्णं मायामास्थाय राक्षसीम् ॥ १६ ॥
स समास्थाय मायां तु ववर्ष रुधिरं बहु ।
विद्युद्विभ्राजितं चाऽऽसीत्तुमुलाभ्राकुलं नभः ॥ १७ ॥
ततो वज्रनिपाताश्च साशनिस्तनयित्नवः ।
महांश्चटचटाशब्दस्तत्राऽऽसीच्च महाहवे ॥ १८ ॥
तां प्रेक्ष्य महतीं मायां राक्षसो राक्षसस्य च ।

आके उपस्थित हुए ॥ अनन्तर जब वे लोग कर्णके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए तब पाञ्चाल सेनाके योद्धा लोग द्रोणाचार्य की ओर दौडे । इधर शत्रुनाशन अलायुधने एक बडा परिघ उठाके घटोत्कचके ऊपर प्रहार किया ॥ घटोत्कच अलायुधके परिघकी चोटसे मूर्छितप्राय होगया ॥ (११—१३)

तिसके अनन्तर घटोत्कचने सावधान होकर एक सौ घण्टियोंसे युक्त एक भयंकर गदाको ग्रहण करके अलायुधकी ओर चलायी ॥ महाराज ! वह भयंकरी गदा पराक्रमी घटोत्कचके हाथसे छूट-कर महाघोर शब्दके सहित अलायुधके रथपर गिरी, उस गदाकी चोटसे अला-युधके घोडे सारथी और रथ टुकडे टुकडे होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ तब अलायुध ध्वजा, धुरी, चक्र, घोडे और सारथीसे रहित रथसे उतरके राक्षसी माया प्रगट करके रुधिरकी वर्षा करने लगा। उस समय आकाशमण्डल बादलोंसे परिपूरित होकर अन्धकारसे युक्त होगया उस समय आकाशमें बादल गर्जने लगे बिजली चमकने लगी और वज्रका शब्द सुनाई देने लगा । उस समय उस महा-घोर संग्रामभूमिमें अस्त्रशस्त्रोंके चलनेसे चटचट शब्द होने लगा ॥ (१४-१८)

तब हिडिम्बापुत्र घटोत्कच अलायुध-

ऊर्ध्वमुत्पत्य हैडिम्बिस्तां मायां माययाऽवधीत् ॥ १९ ॥
सोऽभिवीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि ।
अश्मवर्षं सुतुमुलं विससर्ज घटोत्कचे ॥ २० ॥
अश्मवर्षं स तं घोरं शरवर्षेण वीर्यवान् ।
दिक्षु विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २१ ॥
ततो नानाप्रहरणैरन्योन्यमभिवर्षताम् ।
आयसैः परिघैः शूलैर्गदामुसलमुद्गरैः ॥ २२ ॥
पिनाकैः करवालैश्च तोमरप्रासकम्पनैः ।
नाराचैर्निशितैर्भल्लैः शरैश्चक्रैः परश्वधैः ।
अयोगुडैर्भिन्दिपालैर्गोशीर्षोलूखलैरपि ॥ २३ ॥
उत्पाटितैर्महाशाखैर्विविधैर्जगतीरुहैः ।
शमीपीलुकदम्बैश्च चम्पकैश्चैव भारत ॥ २४ ॥
इंगुदैर्बदरीभिश्च कोविदारैश्च पुष्पितैः ।
पलाशैश्चाऽरिमेदैश्च प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलैः ॥ २५ ॥
महद्भिः समरे तस्मिन्नन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
विपुलैः पर्वताग्रैश्च नानाधातुभिराचितैः ॥ २६ ॥

राक्षसकी ऐसी महाघोर मायाको देखकर आकाशमें गया और मुहूर्त भरके बीच अपनी मायासे उसकी मायाको नष्ट कर दिया ॥ मायावी अलायुध राक्षस अपनी मायाको नष्ट होती देख घटोत्कचके ऊपर शिलाकी वर्षा करने लगा; शिलाकी वर्षाको देखकर पराक्रमी घटोत्कच राक्षस सम्पूर्ण दिशाओंको अपने बाणोंसे परिपूरित करके इस प्रकार अपने बाणोंको वर्षाने लगा, कि उससे क्षण भरके बीच शिलाकी वर्षा नष्ट होगई, उस समय घटोत्कचका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ (१९–२१)

तिसके अनन्तर वे दोनो वीर लोहमय परिघ, शूल, गदा, मूषल, मुद्गर, पिनाक, करवाल, तोमर, प्रास, कम्पन, नाराच, तेजधारवाले भाले, बाण, चक्र, फरशे, भिन्दिपाल आदि अनेक भांतिके अस्त्रोंको चलाते हुए एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे। फिर बडे बडे शाखाओंसे युक्त शमी, चम्पा, इंगुद, बदरी, फूले हुए काञ्चन, पलाश, अरिमेद, प्लक्ष और पीपल आदि अनेक प्रकारके बडे वृक्ष और नाना भांतिकी धातुओंसे युक्त पर्वतके शिखरोंको उखाडके एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ २२-२६

तेषां शब्दो महानासीद्द्रुमाणां भिद्यतामिव ।
युद्धं समभवद्घोरं भैम्यलायुधयोर्नृप ॥ २७ ॥
हरीन्द्रयोर्यथा राजन्वालिसुग्रीवयोः पुरा ।
तौ युद्ध्वा विविधैर्घोरैरायुधैर्विशिखैस्तथा ।
प्रगृह्य च शितौ खड्गावन्योन्यमभिपेततुः ॥ २८ ॥
तावन्योन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहाबलौ ।
भुजाभ्यां पर्यगृह्णीतां महाकायौ महाबलौ ॥ २९ ॥
तौ भिन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप ।
रुधिरं च महाकायावतिवृष्टाविवाऽम्बुदौ ॥ ३० ॥
अथाऽभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम् ।
बलेनाऽऽक्षिप्य हैडिम्बिश्चकर्ताऽस्य शिरो महत् ॥३१॥
सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ।
तदा सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः ॥ ३२ ॥
हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिन्दमम् ।
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान्विनेदिरे ॥ ३३ ॥

उस समय जब वे दोनों वीर युद्ध करने लगे तब पर्वतोंके शिखरोंके भेदन होनेका बडाभारी वज्रके महाघोर शब्दकी भांति नाद सुनाई देने लगा। महाराज उस समय अलायुध और घटोत्कचका ऐसा महाभयङ्कर संग्राम होने लगा जैसे पहिले समयमें वानरराज बालि और सुग्रीवका युद्ध हुआ था। इसी भांति वे दोनों बडे शरीरवाले महाबलवान् राक्षस बहुत समयतक नाना भांतिके अस्त्रशस्त्रोंसे युद्ध करके फिर दोनों उत्तम पानी चढे हुए तलवारको ग्रहण करके तलवारयुद्ध करने लगे॥ अनन्तर उन दोनोंने दौडके एक दूसरेके केशको ग्रहण किया। महाराज! उस समय उन दोनोंके शरीरसे इस प्रकार पसीना और रुधिर बाहर होने लगा, जैसे पर्वतके ऊपरसे जलकी धारा बहती है ॥ (२७-३०)

अनन्तर हिडिम्बापुत्र घटोत्कचने शीघ्रताके सहित अलायुधको घुमाकर पृथ्वीमें पटका और तलवारसे उसका सिर काट डाला॥ उस समय घटोत्कच अलायुधके कुण्डल शोभित सिरको काटके गंभीर स्वरसे गर्जने लगा॥ पाञ्चाल योद्धा और पाण्डव लोग बक राक्षसके भाई अलायुध राक्षसको मरते देख आनन्दित होके महाघोर सिंहनाद करने

ततो भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च।
अवादयन्पाण्डवेया राक्षसे निहते युधि ॥ ३४ ॥
अतीव सा निशा तेषां बभूव विजयावहा।
विद्योतमाना विबभौ समन्ताद्दीपमालिनी ॥ ३५ ॥
अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः।
दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतसः ॥ ३६ ॥
अथ दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा हतमलायुधम्।
बभूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत ॥ ३७ ॥
तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं भीमसेनमहं युधि।
हन्तेति स्वयमागम्य स्मरता वैरमुत्तमम् ॥ ३८ ॥
ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः।
जीवितं चिरकालं हि भ्रातृणां चाऽप्यमन्यत ॥ ३९ ॥
स तं दृष्ट्वा विनिहतं भीमसेनात्मजेन वै।
प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवाऽभ्यमन्यत ॥ ४० ॥ [८१२२]

इति श्रीमहा० द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधवधे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

लगे, और सहस्रों भेरी, शंख, ढोल, मृदङ्ग, आदि युद्धके जुझाऊ बाजोंको बजाने लगे ॥ (३१-३४)

महाराज ! जब युद्धभूमिमें अलायुध राक्षस मारा गया, तब चारों ओरसे दीपकके प्रकाशसे शोभित पाण्डवोंकी सेना उस रात्रिके समय जययुक्त होकर अत्यन्त ही प्रकाशित होने लगी ॥ उसी समय महाबलवान् घटोत्कचने प्राणरहित अलायुध राक्षसके कटे हुए सिरको उठाकर विह्वलचित्तसे युक्त दुर्योधनके संमुख फेंक दिया ॥ (३५-३६)

हे महाराज ! राजा दुर्योधन अलायुधको मरा हुआ देखकर अपनी सेनाके पुरुषोंके सहित अत्यन्त ही व्याकुल हुए ॥ क्योंकि अलायुधने पाण्डवोंकी पुरानी शत्रुताको स्मरण करके तुम्हारी सेनाके बीच स्वयं आके दुर्योधनके समीप "मैं भीमसेनका वध करूंगा," ऐसा कहके प्रतिज्ञा कियी थी; उससे दुर्योधनने यह समझा था, कि इसके हाथसे भीमसेन अवश्य ही मारा जावेगा, और भीमसेनके मरनेसे भाइयोंके सहित मेरा जीवन बहुत दिनों तक निर्विघ्नताके सहित बीतेगा ॥ परन्तु उस समय भीमसेनपुत्र घटोत्कचके हाथसे अलायुधको ही मरते देखकर दुर्योधनने समझा, कि अब अवश्य ही भीमसेनकी प्रतिज्ञा पूर्ण

सञ्जय उवाच— निहत्याऽलायुधं रक्षः प्रहृष्टात्मा घटोत्कचः ।
ननाद विविधान्नादान्वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १ ॥
तस्य तं तुमुलं शब्दं श्रुत्वा कुञ्जरकम्पनम् ।
तावकानां महाराज भयमासीत्सुदारुणम् ॥ २ ॥
अलायुधविषक्तं तु भैमसेनिं महाबलम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पञ्चालान्समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥
दशभिर्दशभिर्बाणैर्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्बिभेद नतपर्वभिः ॥ ४ ॥
ततः परमनाराचैर्युधामन्यूत्तमौजसौ ।
सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः ॥ ५ ॥
तेषामप्यस्यतां संख्ये सर्वेषां सव्यदक्षिणम् ।
मण्डलान्येव चापानि व्यदृश्यन्त जनाधिप ॥ ६ ॥
तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह ।
मेघानामिव घर्मान्ते बभूव तुमलो निशि ॥ ७ ॥

होवेगी ॥ (३७-४०) [८१२२]

द्रोणपर्वमें एकसौ अठत्तर अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ उनासी अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! घटोत्कच अलायुध राक्षसका वध करके अपने सेनाके अगाडी स्थित होकर भयानक शब्दसे सिंहनाद करने लगा ॥ उस समय हाथियोंके यूथको भी कम्पित करनेवाले उसके भयङ्कर शब्दको सुनकर तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग अत्यन्त ही भयभीत हुए ॥ हे भारत ! इसके पहिले महाबाहु कर्णने भीमसेनपुत्र घटोत्कचको अलायुधके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त देखकर पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग जैसा संग्राम किया था; इस समय उस युद्धके वृत्तान्तको भी सुनिये ॥ (१-३)

उस समय कर्णने कान पर्यन्त धनुष खींचके दश तीक्ष्ण बाणोंसे दृढताके सहित धृष्टद्युम्न और शिखण्डीको विद्ध करके फिर अपने तेज नाराच बाणोंके प्रहारसे युधामन्यु उत्तमौजा और सात्यकिको पीडित किया । वैसे ही जब वे पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण महारथी योद्धा लगातार कर्णके ऊपर अपने दांयी बायीं ओरसे बाणोंको वर्षाने लगे तब उस समय केवल मण्डलाकार गतिसे घूमते हुए उन महारथियोंके धनुष ही दीख पडते थे ॥ (४-६)

उस रात्रिके समय उन महारथियोंके धनुषटङ्कार, तलत्राण और रथकी घर-

ज्यानेमिघोषस्तनयित्नुमान्वै धनुस्तडिन्मण्डलकेतुशृङ्गः।
शरौघवर्षाकुलवृष्टिमांश्च संग्राममेघः स बभूव राजन् ॥ ८ ॥
तदद्भुतं शैल इवाऽप्रकम्पो वर्षं महाशैलसमानसारः।
विध्वंसयामास रणे नरेन्द्र वैकर्तनः शत्रुगणावमर्दी ॥ ९ ॥
ततोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैः शितैः शरैः काञ्चनचित्रपुङ्खैः।
शत्रून्व्यपोहत्समरे महात्मा वैकर्तनः पुत्रहिते रतस्ते ॥ १० ॥
सञ्छिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचित्केचिच्छरैरर्दितभिन्नदेहाः।
केचिद्विसूता विहयाश्च केचिद्वैकर्तनेनाऽऽशु कृता बभूवुः ॥ ११ ॥
अविन्दमानास्त्वथ शर्म संख्ये यौधिष्ठिरं ते बलमभ्यपद्यन्।
तान्प्रेक्ष्य भग्नान्विमुखीकृतांश्च घटोत्कचो रोषमतीव चक्रे॥ १२ ॥
आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं रथोत्तमं सिंहवत्संननाद।
वैकर्तनं कर्णमुपेत्य चापि विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः ॥ १३ ॥
तौ कर्णिनाराचशिलीमुखैश्च नालीकदण्डासनवत्सदन्तैः।

घराहटके शब्द वर्षाकालके बादल गर्जनेकी भांति सुनाई देते थे॥इसी भांति धनुषटंकारका शब्द बादलका गर्जन, ध्वजा पताका और शूरवीरोंके धनुष बिजली, बाणोंका चलना ही जलकी वर्षा और वह युद्ध ही मेघमण्डलरूपी बोध होने लगा॥ परन्तु महापर्वतके समान निर्भय स्वभाववाले शत्रुनाशन कर्णने उन सम्पूर्ण महारथियोंकी बाणवर्षाको क्षण भरके बीच अपने अस्त्रोंके प्रभावसे भस्म कर दिया॥ (७-९)

तिसके अनन्तर महात्मा कर्ण तुम्हारे पुत्रके हितकी अभिलाष करके वज्रके समान वेगगामी सुवर्ण चित्रित पङ्ख युक्त चोखे बाणोंसे शत्रुओंका नाश करने लगे॥ उस समय सात्यकि आदि पाण्डवोंकी ओरके महारथी योद्धा लोग मुहूर्त्त भरके बीच कर्णके बाणोंके प्रहारसे कोई पीडित, कोई क्षत विक्षत शरीरसे युक्त, कोई कटीहुई ध्वजा, कोई सारथीसे तथा कोई घोडोंसे रहित होगये और कितने ही योद्धा कर्णके सम्मुख युद्धभूमिमें खडे भी न होसके, वे सब कोई अन्तमें वहांसे भागकर युधिष्ठिरकी सेनामें जाघुसे॥ (१०-१२)

घटोत्कच अपनी ओरके सम्पूर्ण योद्धाओंको भागते देख अत्यन्त ही क्रुद्ध हुआ; और सुवर्ण रत्न चित्रित अपने उत्तम रथ पर चढके महाघोर सिंहनाद करते हुए कर्णके समीप जाके उन्हें वज्रके समान तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगा॥ अनन्तर उन दोनों वीरोंने

वराहकर्णैः सविपाठशृङ्गैः क्षुरप्रवर्षैश्च विनेदतुः खम् ॥ १४ ॥
तद्बाणधारावृतमन्तरिक्षं तिर्यग्गताभिः समरे रराज ।
सुवर्णपुङ्खज्वलितप्रभाभिर्विचित्रपुष्पाभिरिव प्रजाभिः ॥ १५ ॥
समाहितावप्रतिमप्रभावावन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः ।
तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्ददर्श तस्मिन्समरे विशेषम् ॥ १६ ॥
अतीव तच्चित्रमतुल्यरूपं बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः ।
समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं दिवीव राहंशुमतोः प्रमत्तम् ॥ १७ ॥
सञ्जय उवाच— घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप ।
ततः प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ १८ ॥
तेनाऽस्त्रेणाऽवधीत्तस्य रथं सहयसारथिम् ।
विरथश्चापि हैडिम्बिः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १९ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्नन्तर्हिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ।

कर्णी, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दण्डासन, वत्सदन्त, वराहकर्ण, विपाठशृंग, क्षुरप्र आदि अस्त्र तथा बाणोंको चलाके आकाशमण्डलको परिपूरित कर दिया॥ वे सम्पूर्ण स्वर्ण पङ्खवाले बाण जब टीडीदलकी भांति आकाशमें परिपूरित होगये, उस समय आकाशमण्डल विचित्र पुष्पमालासे युक्त हुएकी भांति शोभित होने लगा ॥ (१२–१५)

अत्यन्त बल और पराक्रमसे युक्त जब वे दोनों वीर युद्धभूमिमें स्थित होकर अपने उत्तम शस्त्रोंसे युद्ध करने लगे, उस समय कोई पुरुष उन दोनों वीरोंके बीच किसीको भी विशिष्ट होते न देख सके ॥ महाराज ! उस समय आकाशस्थित राहु और सूर्यके समागमकी भांति सूर्यपुत्र कर्ण और भीमसेनपुत्र घटोत्कच राक्षसके शस्त्रोंकी खटपटाहटसे परिपूरित सम्पूर्ण प्राणियोंको दुःखित करनेवाला अत्यन्त भयङ्कर अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ (१६–१७)

सञ्जय बोले, हे महाराज ! परन्तु अस्त्र शस्त्रोंकी विद्यामें अत्यन्त निपुण सूतपुत्र कर्ण जब किसी प्रकार भी घटोत्कचसे अधिक न हो सके तब उन्होंने भयंकर दिव्य अस्त्रोंको प्रकट किया, उससे घटोत्कचका रथ सारथी और घोडोंके सहित उस ही समय भस्म हो गया; परन्तु घटोत्कच रथसे भ्रष्ट होकर अन्तर्द्धान होगया ॥ (१८–१९)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! जब वह कूटयुद्ध करनेवाला मायावी राक्षस चकित होकर अन्तर्द्धान हुआ, उस समय मेरी ओरके योद्धाओंने जिस कार्यका

मामकैः प्रतिपन्नं यत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २० ॥
सञ्जय उवाच— अन्तर्हितं राक्षसेन्द्रं विदित्वा सम्प्राक्रोशन्कुरवः सर्व एव ।
कथं नाऽयं राक्षसः कूटयोधी हन्यात्कर्णं समरे दृश्यमानः ॥ २१ ॥
ततः कर्णो लघुचित्रास्त्रयोधी सर्वा दिशः प्रावृणोद्बाणजालैः ।
न वै किञ्चित्प्रापतत्तत्र भूतं तमोभूते सायकैरन्तरिक्षे ॥ २२ ॥
नैवाऽऽददानो न च सन्दधानो न चेषुधी स्पृश्यमानः कराग्रैः ।
अदृश्यद्वै लाघवात्सूतपुत्रः सर्वं बाणैश्छादयानोऽन्तरिक्षम् ॥ २३ ॥
ततो मायां दारुणामन्तरिक्षे घोरां भीमां विहितां राक्षसेन ।
अपश्याम लोहिताभ्रप्रकाशां देदीप्यन्तीमग्निशिखामिवोग्राम् ॥ २४ ॥
ततस्तस्यां विद्युतः प्रादुरासन्नुल्काश्चापि ज्वलिताः कौरवेन्द्र ।
घोषश्चाऽस्याः प्रादुरासीत्सुघोरः सहस्रशो नदतां दुन्दुभीनाम् ॥२५॥
ततः शराः प्रापतन्रुक्मपुङ्खाः शक्त्यृष्टिप्रासमुसलान्यायुधानि ।
परश्वधास्तैलधौताश्च खड्गाः प्रदीप्ताग्रास्तोमराः पट्टिशाश्च ॥ २६ ॥

अनुष्ठान किया था, वह वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ (२०)

सञ्जय बोले, महाराज ! कौरव लोग घटोत्कचको अन्तर्द्धान होते देख, आपसमें कहने लगे, यह कूटयोधी राक्षस छिपके किसी प्रकारसे असावधानीमें सूतपुत्र कर्णका वध न करे; ऐसे ही वचन कहते हुए महाघोर कोलाहल मचाने लगे ॥ अनन्तर अत्यन्त हस्तलाघवके सहित महावीर कर्णने अपने अनगिनत बाणोंको चलाकर सम्पूर्ण दिशा और आकाशमण्डलको इस प्रकार परिपूरित करके अन्धकारमय कर किया; कि उस समय वहां पर प्राणीमात्र इधर उधर चलने फिरनेमें असमर्थ होगये ॥ महाराज ! इसी प्रकार जब सूर्यपुत्र कर्ण हस्तलाघवके सहित लगातार बाणोंको चारों ओर वर्षाने लगे तब उन्हें बाण ग्रहण करते साधते छोडते और अपने तूणीरसे निकालते हुए कोई पुरुष भी न देख सके ॥ (२१–२३)

तिसके अनन्तर घटोत्कचने आकाशमें अत्यन्त भयंकर महाघोर माया उत्पन्न किया, उस समय हम लोग अग्निशिखाके समान प्रकाशमान लालवर्णवाले बादलके समान दीखनेवाली उस मायाको देखने लगे ॥ उस मायाके बीचसे बार बार सैकडों लुक और बिजली प्रकट होके जलती हुई प्रकाशित होने लगीं फिर सहस्रों नगाडोंके शब्दके समान उससे महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ तिसके अनन्तर स्वर्णपंखवाले अनगिनत बाण

मयूखिनः परिघा लोहबद्धा गदाश्चित्राः शितधाराश्च शूलाः ।
गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाः शतघ्न्यश्च प्रादुरासन्समन्तात् ॥ २७ ॥
महाशिलाश्चाऽपतंस्तत्र तत्र सहस्रशः साशनयश्च वज्राः ।
चक्राणि चाऽनेकशतक्षुराणि प्रादुर्बभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥ २८ ॥
तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां प्रासासिवज्राशनिमुद्गराणाम् ।
वृष्टिं विशालां ज्वलितां पतन्तीं कर्णः शरौघैर्न शशाक हन्तुम् ॥२९॥
शराहतानां पततां हयानां वज्राहतानां च तथा गजानाम् ।
शिलाहतानां च महारथानां महान्निनादः पततां बभूव ॥ ३० ॥
सुभीमनानाविधशस्त्रपातैर्घटोत्कचेनाऽभिहतं समन्तात् ।
दौर्योधनं वै बलमार्तरूपमावर्तमानं ददृशे भ्रमत्तत् ॥ ३१ ॥
हाहाकृतं सम्परिवर्तमानं संलीयमानं च विषण्णरूपम् ।
ते त्वार्यभावात्पुरुषप्रवीराः पराङ्मुखा नो बभूवुस्तदानीम् ॥ ३२ ॥
तां राक्षसीं भीमरूपां सुघोरां वृष्टिं महाशस्त्रमयीं पतन्तीम् ।

शक्ति, ऋष्टि, प्रास, मूषल, शिकल किये हुए फरशे, प्रकाशमान तलवार, तेज धार वाले तोमर, पट्टिश, प्रकाशमान परिघ, अत्यन्त सुन्दर सैकडों पुरुषोंको नाश करनेवाली विचित्र गदा, तीक्ष्ण-धारवाले सहस्रों शस्त्र, शतघ्नी, अग्नियुक्त वज्र, चक्र और जलते हुए अनगिनत क्षुरप्र आदि अस्त्र शस्त्र चारों ओरसे रणभूमिके बीच गिरने लगे ॥ (२४–२८)

अग्निशिखाकी भांति जब प्रकाशमान भयानक बरछी, पत्थर, फरसे, प्रास और मुद्गर आदि अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी, तब कर्ण उसे अपने बाणोंसे निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ उस समय बाणोंसे घोडे, वज्रास्त्रसे हाथी और पत्थरोंकी शिला वर्षानेसे शूरवीर महारथ योद्धालोग मरके पृथ्वीमें गिरने लगे; उस समय रणभूमिके बीच तुम्हारी सेनाके वीरोंका महाघोर आर्त्तनाद शब्द सुनाई देने लगा ॥ महाराज ! घटोत्कचके अस्त्रोंसे पीडित होकर कुरुसेनाके योद्धा लोग जब इधर उधर भ्रमण करने लगे, उस समय बोध होने लगा, जैसे वायुके वेगसे समुद्रका जल उथलित होने लगता है । उस समय तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग चारों ओर दौडते और हाहाकार करते हुए जगह जगह घटोत्कचके अस्त्रोंसे पीडित होकर रणभूमिमें गिरने लगे । परन्तु पुरुषसिंह महारथी योद्धा लोग वीर-धर्मको स्मरण करके युद्धभूमिमें किसी प्रकार भी पीछे न हटे ॥ (२९–३२)

दृष्ट्वा बलौघांश्च निपात्यमानान्महद्भयं तव पुत्रान्विवेश ॥ ३३ ॥
शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वाः सुभीमनादाः शतशो नन्दतीः ।
रक्षोगणान्नर्दतश्चापि वीक्ष्य नरेन्द्रयोधा व्यथिता बभूवुः ॥ ३४ ॥
ते दीप्तजिह्वानलतीक्ष्णदंष्ट्रा विभीषणाः शैलनिकाशकायाः ।
नभोगताः शक्तिविषक्तहस्ता मेघा व्यसृजन्निव वृष्टिमुग्राम् ॥ ३५ ॥
तैराहतास्ते शरशक्तिशूलैर्गदाभिरुग्रैः परिघैश्च दीप्तैः ।
वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैः शतघ्निचक्रैर्मथिताश्च पेतुः ॥ ३६ ॥
शूला भुशुण्ड्योऽश्मगुडाः शतघ्न्यः स्थूलाश्च कार्ष्णायसपट्टनद्धाः ।
तेऽवाकिरंस्तव पुत्रस्य सैन्यं ततो रौद्रं कश्मलं प्रादुरासीत् ॥ ३७ ॥
विकीर्णान्त्रा विहतैरुत्तमाङ्गैः सभग्नाङ्गाः शिश्यिरे तत्र शूराः ।
छिन्ना हयाः कुञ्जराश्चापि भग्नाः संचूर्णिताश्चैव रथाः शिलाभिः ॥ ३८ ॥
एवं महच्छस्त्रवर्षं सृजन्तस्ते यातुधाना भुवि घोररूपाः ।

तुम्हारे पुत्र लोग घटोत्कचके महाघोर भयङ्कर अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षासे अपनी सेनाके पुरुषोंका नाश होते देख अत्यंत ही भयभीत हुए ॥ अनन्तर जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान जीभ निकाले हुए सैकडों सियार भयङ्कर डरावनी बोली बोलने लगे। राक्षस लोग गर्जने लगे; उसे देखके तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग अत्यन्तही कातर हुए॥ महाराज! वे प्रकाशमान जीभ दांत और शरीरसे युक्त पर्वतके समान शरीर धारण किये हुए राक्षस लोग आकाशमण्डलसे जलवर्षा करनेवाले बादलों की भांति तुम्हारी सेनाके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे वर्षा करने लगे ॥ (३३–३५)

उस समय बाण बरछी गदा प्रकाशमान परिध तलवार पिनाक वज्र और सैकडों पुरुषोंके नाश करनेमें समर्थ भुशुण्डी चक्र आदि अस्त्र शस्त्रोंकी चोटसे मर कर बहुतसे शूरवीर योद्धा लोग पृथ्वीमें गिर पडे; और शूल, भुशुण्डी, दण्ड, शतघ्नी और स्थूणा आदि अस्त्र शस्त्र तुम्हारे पुत्रकी सेनाके ऊपर पडने लगे; उस समय सेनाके पुरुषोंका अत्यन्त ही नाश होने लगा ॥ उस समय किसीके अन्त्र इधर ऊधर गिर पडे, किसीके सिर टुकडे टुकडे हो गये; कितने ही पुरुषोंके हाथ पांव टुट गये और कितने ही पुरुष मरकर पृथ्वीमें गिर पडे । इसी प्रकार हाथी घोडे और मनुष्योंके शरीर राक्षसोंके अस्त्रोंसे कटने लगे और रथ पत्थरोंकी शिलाके वर्षनेसे चूर चूर होके पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ (३६–३८)

महाराज! घटोत्कचकी मायासे

मायाः सृष्टास्तत्र घटोत्कचेन नाऽमुञ्चन्वै याचमानं न भीतम् ॥ ३९ ॥
तस्मिन्घोरे कुरुवीरावमर्दे कालोत्सृष्टे क्षत्रियाणामभावे ।
ते वै भग्नाः सहसा व्यद्रवन्त प्राक्रोशन्तः कौरवाः सर्व एव ॥ ४० ॥
पलायध्वं कुरवो नैतदस्ति सेन्द्रा देवा घ्नन्ति नः पाण्डवार्थे ।
तथा तेषां मज्जतां भारतानां तस्मिन्द्वीपः सूतपुत्रो बभूव ॥ ४१ ॥
तस्मिन्संक्रन्दे तुमुले वर्तमाने सैन्ये भग्ने लीयमाने कुरूणाम् ।
अनीकानां प्रविभागे प्रकाशे नाऽज्ञायन्ते कुरवो नेतरे च ॥ ४२ ॥
निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपे सर्वा दिशः प्रेक्षमाणाः स्म शून्याः ।
तां शस्त्रवृष्टिमुरसा गाहमानं कर्णं स्मैकं तत्र राजन्नपश्यन् ॥ ४३ ॥
ततो बाणैराघृणोदन्तरिक्षं दिव्यां मायां योधयन्राक्षसस्य ।
ह्रीमान्कुर्वन्दुष्करं चाऽऽर्यकर्म नैवाऽमुह्यत्संयुगे सूतपुत्रः ॥ ४४ ॥

उत्पन्न हुए सम्पूर्ण लोगोंको भयभीत करनेवाले राक्षसोंने इसी प्रकार अनेक अस्त्र-शस्त्रोंको वर्षा कर प्रार्थना करनेवाले और भयभीत आदि किसी पुरुषको भी न छोडा ॥ कालके प्रभावसे जब उन राक्षसोंके अस्त्रोंसे क्षत्रियोंका नाश होने लगा, उस समय युद्धभूमिसे भागते हुए योद्धा लोग चिल्लाते हुए यह वचन कहने लगे,—हे कौरव लोगो ! आज पाण्डवोंकी सहायता करनेकी इच्छासे इन्द्र आदिक देवता लोग अवश्य ही हम लोगोंकी सेनाके पुरुषोंका नाश कर रहे हैं, आज कोई भी जीता न बचेगा इससे तुम लोग युद्धभूमिसे भाग कर पृथक् हो जाओ । ऐसे ही वचन कहके तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग महाघोर शब्दसे कोलाहल मचाते हुए वेगपूर्वक भागने लगे । महाराज ! इस प्रकार विपद् सागरमें डूबते हुए कौरवोंके वास्ते उस समय केवल सूर्यपुत्र कर्ण ही द्वीपस्वरूप हुए ॥ (३९–४१)

उस भयङ्कर तुमुल संग्रामके समय कुरुसेनाके पुरुषोंके मरने तथा इधर उधर भागनेसे व्यूह भङ्ग हो गया; तब कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष चीन्ह नहीं पडते थे । उस अमर्याद भयङ्कर उपद्रव के समय हम लोगोंने सब दिशाओंको सूनी देखा तथा अकेले सूर्यपुत्र कर्णको ही उन सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र और बाणोंकी वर्षाको निर्भयचित्तसे अपने वक्षस्थल पर धारण करते देखा ॥ ऐसे अवसरमें तेजस्वी कर्ण तनिक भी मोहित नहीं हुए; बल्कि वीर-धर्मको स्मरण करके कठिन कार्य करनेकी इच्छासे राक्षसी मायाको नष्ट करनेके वास्ते आकाशको अपने दिव्य अस्त्रोंसे परिपूर्ण कर दिया ॥ (४२–४४)

ततो भीताः समुदैक्षन्त कर्णं राजन्सर्वे सैन्धवा बाल्हिकाश्च ।
असंमोहं पूजयन्तोऽस्य संख्ये सम्पश्यन्तो विजयं राक्षसस्य ॥ ४५ ॥
तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान ।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन्गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः ॥ ४६ ॥
ततो हताश्वादवरुह्य यानादन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्रवत्सु ।
दिव्ये चास्त्रे मायया वध्यमाने नैवाऽमुह्यच्चिन्तयन्प्राप्तकालम् ॥४७॥
ततोऽब्रुवन्कुरवः सर्व एव कर्णं दृष्ट्वा घोररूपां च मायाम् ।
शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्णं नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः ॥४८॥
करिष्यतः किञ्च नो भीमपार्थौ तपन्तमेनं जहि पापं निशीथे ।
यो नः संग्रामाद्घोररूपाद्विमुच्येत्स नः पार्थान्सबलान्योधयेत ॥ ४९ ॥
तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं शक्त्या जहि त्वं दत्तया वासवेन ।

उस समय भीत सिन्धु और बाह्लीक देशीय योद्धा लोग एकटक नेत्रसे कर्ण और घटोत्कचके युद्धको देखने लगे; और घटोत्कचको विजय लाभमें समर्थ और कर्णका अत्यन्त पराक्रम देख सब कोई घटोत्कचकी प्रशंसा करने लगे ॥ उस ही समय घटोत्कचकी चलायी हुई चक्रयुक्त एक शतघ्नी अकस्मात् सूतपुत्र कर्णके घोडोंके ऊपर गिरी और उसके प्रहारसे कर्णके रथके घोडे प्राणरहित होकर दांत आंख और जीभ निकालके पृथ्वीमें गिर पडे ॥ अनन्तर घटोत्कच मायाके प्रभावसे बार बार कर्णके दिव्य अस्त्रोंको निष्फल करने लगा; और उसके अस्त्रोंके प्रभावसे कुरुसेनाके योद्धालोग भागने लगे ! तब कर्ण शीघ्रताके सहित घोडोंसे रहित रथसे उतरे; पर घटोत्कचकी माया तथा अस्त्रोंसे कर्ण तनिक भी मोहित न होकर उस समयके अनुसार कर्त्तव्य कार्यके विषयमें विचार करने लगे ॥ (४५–४७)

इसी समय दुर्योधन आदि कौरव लोग घटोत्कचकी भयङ्कर माया देखकर कर्णसे बोले, हे कर्ण ! आज कौरवोंकी सेनाके सम्पूर्ण पुरुषोंका नाश हुआ चाहता है, इससे अब तुम इन्द्रकी दी हुई उसी अमोघ शक्तिसे इस राक्षसका वध करो, भीमसेन अर्जुन हम लोगोंका क्या कर सकेंगे ? तुम इस रात्रिके समय मेरी सम्पूर्ण सेनाको पीडित करनेवाले इस पापी राक्षसका नाश करो। हम लोगोंके बीचसे जो पुरुष इस भयङ्कर महासंग्रामसे जीवित बचेगा वह अवश्य ही पृथापुत्रोंके सङ्ग युद्ध करनेमें समर्थ होगा। हे कर्ण ! इन्द्रके समान पराक्रमी कौरव लोगोंका सम्पूर्ण योद्धाओंके सहित

मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा रात्रियुद्धे कर्ण नेशुः सयोधाः ॥ ५० ॥
स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे दृष्ट्वा राजंस्त्रास्यमानं बलं च ।
महच्चश्रुत्वा निनदं कौरवाणां मतिं दध्रे शक्तिमोक्षाय कर्णः॥ ५१ ॥
स वै क्रुद्धः सिंह इवाऽत्यमर्षी नाऽमर्षयन्प्रतिघातं रणेऽसौ ।
शक्तिं श्रेष्ठां वैजयन्तीमसह्यां समाददे तस्य वधं चिकीर्षन् ॥ ५२ ॥
याऽसौ राजन्निहिता वर्षपूगान्वधायाऽऽजौ सत्कृता फाल्गुनस्य ।
यां वै प्रादात्सूतपुत्राय शक्रः शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निमाय ॥५३॥
तां वै शक्तिं लेलिहानां प्रदीप्तां पाशैर्युक्तामन्तकस्येव जिह्वाम् ।
मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कां वैकर्तनः प्राहिणोद्राक्षसाय ॥ ५४ ॥
तामुत्तमां परकायावहन्त्रीं दृष्ट्वा शक्तिं बाहुसंस्थां ज्वलन्तीम् ।
भीतं रक्षो विप्रदुद्राव राजन्कृत्वाऽऽत्मानं विन्ध्यतुल्यप्रमाणम् ॥ ५५ ॥

जिसमें नाश न होजावे, इस वास्ते तुम इसी समय इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्तिसे इस भयङ्कर मूर्तिवाले राक्षसका वध करो ॥ (४८-५०)

कर्णने उस रात्रिके समय कुरुसेनाके सम्पूर्ण पुरुषोंको भयभीत देख कौरवोंके आर्त्तनादको सुनकर तथा स्वयं भी घटोत्कचके अस्त्रोंसे पीडित होके इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिको चलानेकी इच्छा किया ॥ क्रुद्धस्वभाववाले सूर्यपुत्र कर्णने सिंहकी भांति क्रुद्ध होकर घटोत्कचके अस्त्र लाघवको सहन नहीं किया। उन्हों ने घटोत्कच राक्षसके वधकी अभिलाषा करके सम्पूर्ण प्राणियोंसे भी असह्य उस उत्तम वैजयन्ती महा अमोघशक्तिको ग्रहण किया ॥ महाराज ! सूतपुत्र कर्णने जिस शक्तिको कई वर्ष पर्यन्त आदर पूर्वक अर्जुनके वधके वास्ते रक्खा था जिस अमोघशक्तिको पहिले देवराज इन्द्रने कर्णको प्रदान किया था; और उन्होंने जिस प्रकाशमान अमोघशक्तिको गर्भसे ही उत्पन्न हुए अपने अभेद्य कवच कुण्डलके पलटेमें इन्द्रसे पाया था। मृत्युके समान भयङ्करी तथा जलते हुए लुककी भांति प्रकाशमान यमराजके पाशसे युक्त कालरात्रि स्वरूपिणी और अग्निके समान तेजस्विनी उस महाघोर अमोघशक्तिको कर्णने इस समय बल-पूर्वक घटोत्कचके वधके निमित्त उसकी ओर चलाया ॥ (५१-५४)

महाराज ! घटोत्कचने सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरको विदारण करनेवाली इन्द्र-की दी हुई अग्निकी भांति उस अमोघ शक्तिको कर्णके हाथमें देखते ही विन्ध्या-चल पर्वतके समान शरीर धारण करके भागनेकी इच्छा किया । अधिक क्या

दृष्ट्वा शक्तिं कर्णबाह्वन्तरस्थां नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र ।
ववुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्सनिर्घाता चाऽशनिर्गां जगाम ॥ ५६ ॥
सा तां मायां भस्म कृत्वा ज्वलन्ती भित्त्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य ।
ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना निशायां नक्षत्राणामन्तराण्याविवेश ॥ ५७ ॥
स निर्भिन्नो विविधैरस्त्रपूगैर्दिव्यैर्नागैर्मानुषै राक्षसैश्च ।
नदन्नादान्विविधान्भैरवांश्च प्राणानिष्टांस्त्याजितः शक्रशक्त्या॥ ५८ ॥
इदं चाऽन्यच्चित्रमाश्चर्यरूपं चकाराऽसौ कर्म शत्रुक्षयाय ।
तस्मिन्काले शक्तिनिर्भिन्नमर्मा बभौ राजञ्शैलमेघप्रकाशः ॥ ५९ ॥
ततोऽन्तरिक्षादपतद्गतासुः स राक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः ।
अवाक्शिराः स्तब्धगात्रो विजिह्वो घटोत्कचो महदास्थाय रूपम्॥ ६० ॥
स तद्रूपं भैरवं भीमकर्मा भीमं कृत्वा भैमसेनिः पपात ।
हतोऽप्येवं तव सैन्यैकदेशमपोथयत्स्वेन देहेन राजन् ॥ ६१ ॥
पतद्रक्षः स्वेन कायेन तूर्णमतिप्रमाणेन विवर्धता च ।

कर्ण्के हाथमें स्थित उस अमोघ-शक्तिको देखते ही आकाशवासी सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होकर हाहाकार शब्दके सहित चिल्लाते हुए कांपने लगे। उस समय प्रचण्ड वायु अत्यन्त ही वेगपूर्वक बहने लगी, वज्र तलवार आदि अस्त्र पृथ्वीको विदारण करके भूगर्भमें प्रविष्ट होने लगे। इतने ही समयमें कर्णकी चलाई हुई जलती अग्निकी भांति वह अमोघशक्ति सम्पूर्ण राक्षसी मायाको भस्म करके घटोत्कचके हृदयको विदारण करती हुई प्रकाशित होके आकाशमार्गसे नक्षत्र मण्डलमें प्रविष्ट हुई ॥ (५५–५७)

महाराज! महावीर घटोत्कच राक्षसने अनेक भांतिके विचित्र अस्त्रशस्त्र तथा मायासे मनुष्य और राक्षसोंके सङ्ग वीरनाद शब्दके सहित युद्ध करके अन्तमें इन्द्रकी दी हुई कर्णके भुजासे छूटी हुई अमोघशक्तिसे अपने प्रिय प्राणको परित्याग किया ॥ उस समय वह अमोघशक्तिसे सम्पूर्ण मर्मस्थल विदारित होने पर भी शत्रुओंके नाश करनेके वास्ते अत्यन्त आश्चर्यमय रूप धारण करके पर्वत और बादलकी भांति प्रकाशित होने लगा। महाराज! अमोघशक्तिसे शरीर विदारित होने पर भी महापराक्रमी भीमसेनपुत्र राक्षसराज घटोत्कचने प्राण त्यागनेके समयमें ऐसी भयङ्कर मूर्त्ति धारण करी, कि उस बडे शरीरको धारणकर वेगपूर्वक आकाशसे गिरके तुम्हारी सेनाके एक भागको अपने शरीरके नीचे दबाके एक अक्षौहिणी

प्रियं कुर्वन्पाण्डवानां गतासुरक्षौहिणीं तव तूर्णं जघान ॥ ६२ ॥
ततो मिश्राः प्राणदन्सिंहनादैर्भेर्यः शङ्खा मुरजाश्चाऽनकाश्च ।
दग्धां मायां निहतं राक्षसं च दृष्ट्वा हृष्टाः प्राणदन्कौरवेयाः ॥६३॥
ततः कर्णः कुरुभिः पूज्यमानो यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः ।
अन्वारूढस्तव पुत्रस्य यानं हृष्टश्चापि प्राविशत्तत्स्वसैन्यम् ॥६४॥ [८१८६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

सञ्जय उवाच— हैडिम्बिं निहतं दृष्ट्वा विशीर्णमिव पर्वतम् ।
बभूवुः पाण्डवाः सर्वे शोकबाष्पाकुलेक्षणाः ॥ १ ॥
वासुदेवस्तु हर्षेण महताऽभिपरिप्लुतः ।
ननाद सिंहनादं वै पर्यष्वजत फाल्गुनम् ॥ २ ॥
स विनद्य महानादमभीषून्संनियम्य च ।
ननर्त्त हर्षसंवीतो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ ३ ॥
ततः परिष्वज्य पुनः पार्थमास्फोट्य चाऽसकृत् ।

योद्धाओंका नाश किया ॥ (५८-६२)

अनन्तर कौरव लोग राक्षसी मायाको भस्म हुई और घटोत्कचको मरते देख, आनन्दित होके सिंहनाद करने लगे ॥ अनन्तर तुम्हारी सेनाके पुरुषोंके सिंहनादके सङ्ग मिलकर बहुतसे शंख, भेरी, ढोल, झांझ और नगाडे आदि युद्धके जुझाऊ बाजोंके शब्द सुनाई देने लगे॥ जैसे वृत्रासुरवधके समयमें देवराज इन्द्र देवताओंसे पूजित हुएथे;इससमय कर्णभी उसीभांति कौरवोंसे पूजित और सत्कृत होकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके रथमें बैठ कर अपनी सेनाके बीच जाकर विराजमान हुए ॥ (६३-६४) [८१८६]

द्रोणपर्वमें एकसौ उनासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ अस्सी अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! जैसे पर्वत वज्रकी चोटसे टुकडे टुकडे होकर गिर पडता है, वैसे ही हिडिम्बापुत्र घटोत्कचको अमोघशक्तिसे मरते देख, पाण्डव लोग तथा उनकी सेनाके पुरुषोंको शोकसे आंखोंमें आंसू भर आये ॥ परन्तु श्रीकृष्ण अत्यन्त हर्षके सहित आनन्दित होकर अर्जुनको आलिङ्गन करने लगे । उस समय श्रीकृष्ण घोडोंकी रास खींच के सिंहनाद करते हुए आनन्दित होके इस प्रकार नाचने लगे, जैसे वायुके चलनेसे वृक्षके पत्ते हिलते हुए नृत्य करने लगते हैं ॥ रथपर स्थित बुद्धिमान् कृष्ण अर्जुनको अपनी ओर स्थित

रथोपस्थगतो धीमान्प्राणदत्पुनरच्युतः ॥ ४ ॥
प्रहृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलः ।
अर्जुनोऽथाऽब्रवीद्राजन्नाऽतिहृष्टमना इव ॥ ५ ॥
अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाऽद्य मधुसूदन ।
शोकस्थाने तु सम्प्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन तु ॥ ६ ॥
विमुखानीह सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम् ।
वयं च भृशमुद्विग्ना हैडिम्बेस्तु निपातनात् ॥ ७ ॥
नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति जनार्दन ।
तदद्य शंस मे पृष्टः सत्यं सत्यवतां वर ॥ ८ ॥
यद्येतन्न रहस्यं ते वक्तुमर्हस्यरिन्दम ।
धैर्यस्य वैकृतं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ ९ ॥
समुद्रस्येव संक्षोभं मेरोरिव विसर्पणम् ।
तथैतदद्य मन्येऽहं तव कर्म जनार्दन ॥ १० ॥
वासुदेव उवाच—अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मे त्वं धनञ्जय ।
अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ ११ ॥

करके फिर बार बार ताली बजाके अत्यन्त गम्भीर स्वरसे सिंहनाद करने लगे ॥ (१-४)

महाबली अर्जुन श्रीकृष्णको अत्यन्त ही आनन्दित देख, दुःखितचित्तसे यह वचन बोले, हे मधुसूदन कृष्ण! हिडिम्बा पुत्र घटोत्कचके मरनेसे हमारी सेनाके पुरुषोंको शोक हुआ है; परन्तु तुम्हें इस अनुचित समयमें भी हर्ष उत्पन्न होरहा है ॥ देखिये, घटोत्कचको मरा हुआ देखकर मेरी सम्पूर्ण सेनाके पुरुष युद्ध-भूमिसे भाग रहे हैं; अधिक क्या कहूं उसके मरनेसे मैंभी अत्यन्त ही व्याकुल होरहा हूं ॥ (५-७)

हे शत्रुनाशन जनार्दन कृष्ण! मुझे मालूम होता है, कि इस विषयमें कोई विशेष कारण होगा। जो हो, तुम सत्य वादियोंमें अग्रगण्य हो इससे मैं पूंछता हूं,-तुम इस विषयको यथार्थरूपसे वर्णन करो ॥ आज तुम्हारा यह कार्य समुद्र खलने और सुमेरु पर्वतके कांपनेकी भांति मुझे असम्भव मालूम होता है। इससे यदि यह विषय छिपाने योग्य न होवे, तो तुम अपने इस धैर्यच्युतिके कारणको प्रकट करके वर्णन करो ॥ ८-१०

अर्जुनके ऐसे वचनोंको सुनकर श्री-कृष्ण बोले, हे महाबुद्धिमान् अर्जुन! मेरे एकबारगी चित्त प्रसन्न होनेके

शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते ।
कर्णं निहतमेवाऽऽजौ विद्धि सद्यो धनञ्जय ॥ १२ ॥
शक्तिहस्तं पुनः कर्णं को लोकेऽस्ति पुमानिह ।
य एनमभितस्तिष्ठेत्कार्तिकेयमिवाऽऽहवे ॥ १३ ॥
दिष्ट्याऽपनीतकवचो दिष्ट्याऽपहृतकुण्डलः ।
दिष्ट्या सा व्यंसिता शक्तिरमोघाऽस्य घटोत्कचे ॥१४॥
यदि हि स्यात्सकवचस्तथैव स्यात्सकुण्डलः ।
सामरानपि लोकांस्त्रीनेकः कर्णो जयेद्रणे ॥ १५ ॥
वासवो वा कुबेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः ।
यमो वा नोत्सहेत्कर्णं रणे प्रतिसमासितुम् ॥ १६ ॥
गाण्डीवमुद्यम्य भवांश्चक्रं चाऽहं सुदर्शनम् ।
न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथा युक्तं नरर्षभम् ॥ १७ ॥
त्वद्धितार्थं तु शक्रेण मायापहृतकुण्डलः ।
विहीनकवचश्चाऽयं कृतः परपुरञ्जयः ॥ १८ ॥

कारण और इस हर्षके विषयको सुनो ॥ आज घटोत्कचके मरनेसे कर्ण इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिसे रहित होगया; इससे अब तुम कर्णको मरा हुआ ही समझ रक्खो ॥ दूसरे स्वामी कार्त्तिककी भांति कर्ण यदि युद्धभूमिके बीच हाथमें इन्द्रकी अमोघशक्ति लेकर खड़ा होवे, तो इस पृथ्वीके बीच ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है; जो कर्णके सम्मुख खड़े होनेमें समर्थ होसके ॥ (११-१३)

हे अर्जुन ! तुम्हारी प्रारब्धसे वह पहिले अपने शरीरके सङ्गसे ही उत्पन्न हुए कवच और कुण्डलोंसे रहित होगया है; और इस समय भी तुम्हारी प्रारब्धसे ही उसने अमोघशक्तिको घटोत्कचके ऊपर चलाया है ॥ यदि यह बलवान् कर्ण उस अभेद कवचकुण्डलको पहरके युद्धभूमिके बीच उपस्थित होता, तो देवताओंके सहित तीनों लोकको पराजित कर सकता ॥ इन्द्र, कुबेर, वरुण और यमराज ये कोई भी रणभूमिके बीच कर्णके विरुद्ध गमन करनेमें समर्थ न होसकते ॥ अधिक क्या कहूं; तुम गाण्डीव धनुष और मैं सुदर्शनचक्र ग्रहण करके भी इस पुरुष श्रेष्ठ कर्णको पराजित न कर सकता ॥ (१४-१७)

हे अर्जुन ! पहिले देवराज इन्द्रने तुम्हारे हितकी अभिलाषासे शत्रुनाशन कर्णको मायाके प्रभावसे मोहित करके उसे कवच कुण्डलोंसे रहित किया था ॥

उत्कृत्य कवचं यस्मात्कुण्डले विमले च ते ।
प्रादाच्छक्राय कर्णो वै तेन वैकर्तनः स्मृतः ॥ १९ ॥
आशीविष इव क्रुद्धो जृम्भितो मन्त्रतेजसा ।
तथाऽद्य भाति कर्णो मे शान्तज्वाल इवाऽनलः॥ २० ॥
यदाप्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना ।
वासवेन महाबाहो क्षिप्ता याऽसौ घटोत्कचे ॥ २१ ॥
कुण्डलाभ्यां निमायाऽथ दिव्येन कवचेन च ।
तां प्राप्याऽमन्यत वृषः सततं त्वां हतं रणे ॥ २२ ॥
एवङ्गतोऽपि शक्योऽयं हन्तुं नाऽन्येन केनचित् ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन चाऽनघ ॥ २३ ॥
ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः ।
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात्कर्णो वृषः स्मृतः ॥ २४ ॥
युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः ।
केसरीव वने नर्दन्मातङ्ग इव यूथपान् ॥ २५ ॥

कर्णने देवराज इन्द्रको कवच कुण्डल प्रदान किया, इसीसे वह पृथ्वीके बीच वैकर्तन नामसे विख्यात हुआ है। परन्तु इस समय वह मन्त्रके प्रभावसे स्तम्भित पराक्रमसे युक्त क्रोधी विषधर सर्प और शिखारहित अग्निकी भांति मालूम होरहा है ॥ (१८-२०)

हे अर्जुन! जबसे इन्द्रने सूतपुत्र कर्णको अमोघशक्ति प्रदान किया था, आज जो शक्ति घटोत्कचके ऊपर छूटके उसका प्राण नाश करके शान्त हुई है, उस अमोघशक्तिको कर्णने अपने दिव्य कुण्डलके पलटेमें इन्द्रसे ग्रहण किया था॥ और उस शक्तिको पाकर युद्धभूमिमें तुम्हें मरा हुआ ही समझता था॥ हे पुरुष शार्दूल! मैं सत्यके द्वारा शपथ करके कहता हूं कि यद्यपि कर्ण कवच कुण्डल और अमोघ शक्तिसे रहित होगया है; तौ भी तुम्हें छोड कर और दूसरे किसी पुरुषको भी सामर्थ्य नहीं है, जो युद्धभूमि में कर्णका वध कर सके॥ (२१-२३)

यह सूतपुत्र कर्ण सदा व्रताचरण करनेवाला, सत्यवादी, तपस्वी, ब्राह्मणोंमें निष्ठावान् और शत्रुओंके ऊपर सदा दया करता रहता है; इस ही कारण वह इस लोकके बीच वृष नामसे विख्यात हुआ है॥ यह युद्धदुर्मद महाबाहु कर्ण हाथमें धनुष लेकर युद्धभूमिमें विपक्षी सेनाके रथियोंके अभिमानको इस प्रकार नाश

विमदान्रथशार्दूलान्कुरुते रणमूर्धनि ।
मध्यङ्गत इवाऽऽदित्यो यो न शक्यो निरीक्षितुम् ॥ २६ ॥
त्वदीयैः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यैर्महात्मभिः ।
शरजालसहस्रांशुः शरदीव दिवाकरः ॥ २७ ॥
तपान्ते जलदो यद्वच्छरधाराः क्षरन्मुहुः ।
दिव्यास्त्रजलदः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २८ ॥
त्रिदशैरपि चाऽस्याद्भिः शरवर्षं समन्ततः ।
अशक्यस्तद्रयं जेतुं स्रवद्भिर्मांसशोणितम् ॥ २९ ॥
कवचेन विहीनश्च कुण्डलाभ्यां च पाण्डव ।
सोऽद्य मानुषतां प्राप्तो विमुक्तः शक्रदत्तया ॥ ३० ॥
एको हि योगोऽस्य भवेद्वधाय च्छिद्रे ह्येनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम् ।
कृच्छ्रप्राप्तं रथचक्रे विमग्ने हन्याः पूर्वं त्वं तु संज्ञां विचार्य ॥ ३१ ॥
न ह्युद्यतास्त्रं युधि हन्यादजय्यमप्येकवीरो बलभित्सवज्रः ।

करता रहता है, जैसे वनके बीच पराक्रमी सिंह हाथियोंके गर्वको नष्ट किया करता है। (२४–२६)

हे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ! तुम्हारी ओरसे मुख्य मुख्य महात्मा क्षत्रिय योद्धा लोग बाण वर्षा करते हुए जिस कर्णको सहस्रकिरण धारण करनेवाले दोपहरके सूर्यकी भांति युद्धभूमिमें देखनेमें भी समर्थ नहीं हैं, यह कर्ण जलकी वर्षा करनेवाले बादलोंकी भांति यदि लगातार अपने दिव्य अस्त्ररूपी जलकी वर्षा करता रहे; तो और पुरुषोंकी तो कुछ बात ही नहीं है; देवता लोग भी चारों ओरसे अपने अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करके इस महारथी कर्णको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं; वरन उन्हीं लोगोंके शरीरसे मांसके सहित रुधिरकी धारा बहती रहेगी ॥ आज वही कर्ण कवच कुण्डल और इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्तिसे रहित होके सामान्य मनुष्य भावको प्राप्त हुआ है॥ (२६–३०)

परन्तु उसके विषयमें एक विशेष उपाय है, जब तुमसे कर्णका द्वैरथ युद्ध होगा तब उसके रथके चक्र पृथ्वीमें घुस जावेंगे, उस समय जब वह दुःखित होके विपद्ग्रस्त होगा, उसी समय तुम सावधानताके सहित मेरे सङ्केतके अनुसार उसका नाश करना ॥ क्योंकि यह अपराजित कर्ण जो अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके युद्धभूमिमें खडा रहे तो वीरोंमें अग्रणी पुरुषोंके पराक्रमको नाश करनेवाले इन्द्र भी यदि हाथमें वज्र लेकर

जरासन्धश्चेदिराजो महात्मा महाबाहुश्चैकलव्यो निषादः ॥ ३२ ॥
एकैकशो निहताः सर्व एते योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव ।
अथाऽपरे निहता राक्षसेन्द्रा हिडिम्बकिर्मीरबकप्रधानाः ।
अलायुधः परचक्रावमर्दी घटोत्कचश्चोग्रकर्मा तरस्वी ॥ ३३ ॥ [८२१९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे श्रीकृष्णहर्षेऽशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

अर्जुन उवाच— कथमस्मद्धितार्थं ते कैश्च योगैर्जनार्दन ।
जरासन्धप्रभृतयो घातिताः पृथिवीश्वराः ॥ १ ॥
वासुदेव उवाच— जरासन्धश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः ।
यदि स्युर्न हताः पूर्वमिदानीं स्युर्भयङ्कराः ॥ २ ॥
दुर्योधनस्तानवश्यं वृणुयाद्रथसत्तमान् ।
तेऽस्मासु नित्यविद्विष्टाः संश्रयेयुश्च कौरवान् ॥ ३ ॥
ते हि वीरा महेष्वासाः कृतास्त्रा दृढयोधिनः ।

युद्धभूमिके बीच आगमन करें; तो भी कर्णका वध न कर सकेंगे॥ (३१-३२)

हे अर्जुन ! पहिले मैंने तुम्हारे हितके निमित्त ही महाबाहु महात्मा जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल,निषादराज एकलव्य, आदि वीरोंका पृथक् पृथक् नाना उपाय रचके उनका नाश किया है। इसी प्रकार राक्षसराज हिडिम्ब, किर्मीर, बक, शत्रु नाशन अलायुध और कठिन कर्म करने वाले पराक्रमी घटोत्कच आदि राक्षस और तामसी प्रकृतिवाले बहुतेरे क्षत्रिय योद्धा भी अनेक उपायोंसे मारे गये हैं॥ (३२-३३) [८२१९]

द्रोणपर्वमें एकसौ अस्सी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ एकासी अध्याय।

श्रीकृष्णके वचनोंको सुनकर अर्जुन बोले, हे जनार्दन कृष्ण ! आपने किस प्रकार हमलोगोंके हितके वास्ते किन किन उपायोंसे जरासन्ध आदि राजाओं का नाश किया है ? (१)

श्रीकृष्ण बोले, हे अर्जुन ! मगध राज जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल और महाबलवान् निषादराज एकलव्य आदि दुष्ट राजा लोग यदि पहिले न मारे गये होते, तो इस समय वे लोग अत्यन्त ही भयङ्कर हो जाते ॥ क्योंकि इस युद्धमें दुर्योधन उन रथियोंमें मुख्य राजाओंको अवश्य ही वरन करता और वे लोग भी हम लोगोंके ऊपर पहिलेसे ही शत्रुता रखते थे इससे वे लोग कौरवों के ही पक्षको अवलम्बन करते, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ऐसा होने पर वे सब धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी दृढ पराक्रमी कृतास्त्र वीर लोग युद्धभूमिमें देवताओंकी

धार्तराष्ट्रचमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥ ४ ॥
सूतपुत्रो जरासन्धश्चेदिराजो निषादजः ।
सुयोधनं समाश्रित्य जयेयुः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥
योगैरपि हता यैस्ते तन्मे शृणु धनञ्जय ।
अजय्या हि विना योगैर्मृधे ते दैवतैरपि ॥ ६ ॥
एकैको हि पृथक्तेषां समस्तां सुरवाहिनीम् ।
योधयेत्समरे पार्थ लोकपालाभिरक्षिताम् ॥ ७ ॥
जरासन्धो हि रुषितो रौहिणेयप्रधर्षितः ।
अस्मद्वधार्थं चिक्षेप गदां वै सर्वघातिनीम् ॥ ८ ॥
सीमन्तमिव कुर्वाणां नभसः पावकप्रभाम् ।
अदृश्यताऽऽपतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाऽशनिः ॥ ९ ॥
तामापतन्तीं दृष्ट्वैव गदां रोहिणिनन्दनः ।
प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवासृजत् ॥ १० ॥

भांति कुरुसेनाके योद्धाओंकी रक्षा करते ॥ (२-४)

अधिक क्या कहूं सूतपुत्र कर्ण, मगधराज जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल और निषादराज एकलव्य यदि दुर्योधन के पक्षको अवलम्बन करके युद्धभूमिमें स्थित होते, तो सम्पूर्ण पृथ्वीके योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे पीडित कर सकते। हे अर्जुन ! उन राजाओंके वधसे तुम्हारा कैसा हित हुआ है, वह तुमने जाना; अब वे पराक्रमी राजा लोग जिन जिन उपायोंसे मारे गये उस वृत्तान्तको भी सुनो। उपायके विना वे अपराजित वीर राजा लोग युद्धभूमिमें देवताओंसे भी अवध्य थे ॥ हे अर्जुन ! उन सब राजाओंकी बात तो दूर रही उनके बीच एक एक वीरमें इतनी सामर्थ्य थी, कि लोकपालोंसे रक्षित सम्पूर्ण देवताओंकी सेनाके सङ्गमें भी वह लोग युद्ध कर सकते ॥ (५-७)

पहिले जरासन्धने रोहिणीपुत्र बलदेवके निकटसे पराजित होके क्रोध पूर्वक हम लोगोंके वधके वास्ते एक सर्वघातक गदा उठाकर हमारी ओर चलायी ॥ अग्निके समान प्रकाशमान उस गदाके गिरनेके समय ऐसा मालूम होने लगा, मानो इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र आकाशमण्डलको सीमन्तयुक्त करता हुआ पृथ्वीपर गिर रहा है ॥ रोहिणी पुत्र बलदेवने उस गदाको सम्मुख आती देख उसे निवारण करनेके वास्ते स्थूणाकर्ण नाम अस्त्र चलाया। उस अस्त्रके

अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा प्रापतद्भुवि ।
दारयन्ती धरां देवीं कम्पयन्तीव पर्वतान् ॥ ११ ॥
तत्र सा राक्षसी घोरा जरा नाम्नी सुविक्रमा ।
सन्दधे सा हि सञ्जातं जरासन्धमरिन्दमम् ॥ १२ ॥
द्वाभ्यां जातो हि मातृभ्यामर्धदेहः पृथक्पृथक् ।
जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्धस्ततोऽभवत् ॥ १३ ॥
सा तु भूमिं गता पार्थ हता ससुतबान्धवा ।
गदया तेन चाऽस्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी ॥ १४ ॥
विनाभूतः स गदया जरासन्धो महामृधे ।
निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनञ्जय ॥ १५ ॥
यदि हि स्याद्गदापाणिर्जरासन्धः प्रतापवान् ।
सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥ १६ ॥
त्वद्धितार्थं च नैषादिरंगुष्ठेन वियोजितः ।
द्रोणेनाऽऽचार्यकं कृत्वा छद्मना सत्यविक्रमः ॥ १७ ॥

वेगसे गदा निवारित होने पर ऐसा हुआ मानो वह गदा पर्वतोंको कंपाती और पृथ्वीको विदारण करती हुई आकाशसे गिरी ॥ (८-११)

उस ही स्थलपर महा पराक्रमसे युक्त जरा नामकी भयङ्करी राक्षसी वास करती थी; जिसने पहिले जन्मके समयमें शत्रु-नाशन जरासन्धकी दोनों फांकोंको जोडा था; क्योंकि वह राजकुमार जन्मके समयमें दो माताके गर्भसे दो फांक होके उत्पन्न हुआ था और जरा राक्षसीने उन दोनों फांकोंको एकमें जोड दिया था इस ही कारण वह राजकुमार जरासन्ध नामसे विख्यात हुआ था ॥ वह जरा राक्षसी स्थूणाकर्ण अस्त्र और गदाके गिरनेसे उसके नीचे दबके पुत्र और बन्धु बान्धवोंके सहित मर गई; और जरासन्ध उस गदासे रहित होनेसे ही तुम्हारे सम्मुखमें भीमसेनके हाथसे मारा गया ॥ यदि वह प्रतापी जरासन्ध हाथमें उस गदाको लेकर युद्धभूमिमें स्थित होता, तो इन्द्र आदिक देवता लोग भी युद्धभूमिके बीच उसका नाश न कर सकते ॥ (१२-१६)

हे अर्जुन ! देखो पहिले तुम्हारे हितकी अभिलाषा करके द्रोणाचार्यने कपट वेषसे निषादराजके समीप जाकर आचार्यपना जनाकर गुरुदक्षिणामें सत्यपराक्रमी निषादराजको अंगूठेसे रहित किया था। क्योंकि वह दृढ पराक्रमी निषाद-

स तु बद्धांगुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः ।
अतिमानी वनचरो बभौ राम इवाऽपरः ॥ १८ ॥
एकलव्यं हि सांगुष्ठमशक्ता देवदानवाः ।
सराक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि कर्हिचित् ॥ १९ ॥
किमु मानुषमात्रेण शक्यः स्यात्प्रतिवीक्षितुम् ।
दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम् ॥ २० ॥
त्वद्धितार्थं तु स मया हतः संग्राममूर्धनि ।
चेदिराजश्च विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहतस्तव ॥ २१ ॥
स चाप्यशक्यः संग्रामे जेतुं सर्वसुरासुरैः ।
वधार्थं तस्य जातोऽहमन्येषां च सुरद्विषाम् ॥ २२ ॥
त्वत्सहायो नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया ।
हिडिम्बबककिर्मीरा भीमसेनेन पातिताः ॥ २३ ॥
रावणेन समप्राणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः ।
हतस्तथैव मायावी हैडिम्बेनाऽप्यलायुधः ॥ २४ ॥
हैडिम्बश्चाऽप्युपायेन शक्त्या कर्णेन घातितः ।

राज अंगुलित्राण धारण करके वनके बीच सदा अस्त्रशस्त्रोंका अभ्यास करके परशुरामके समान अस्त्रोंका ज्ञाता हुआ था ॥ अधिक क्या कहूं यदि वह अंगूठेसे युक्त होता तो देवता दानव राक्षस और सर्प आदि कोई भी उसे युद्धभूमिमें पराजित न कर सकते और मनुष्य लोग तो युद्धभूमिमें उसकी ओर देख भी न सकते ॥ मैंने उस दृढ पराक्रमी कृतास्त्र सदा अस्त्र चलानेमें समर्थ निषादराज एकलव्यको तुम्हारे हितके निमित्त ही युद्धभूमिमें मारा है । (१७–२१)

इसके अतिरिक्त देवता और असुरोंसे अजेय चेदिराज शिशुपालको भी मैंने तुम्हारे सम्मुखमें ही मारा है । हे पुरुषसिंह अर्जुन ! तुम यह निश्चय समझ रक्खो कि मैंने इस जगत्के हितकामनासे शिशुपाल और दूसरे देवद्रोही दुष्ट पुरुषोंके नाश करनेके ही वास्ते तुम्हारे सहित अवतार लिया है । इससे ब्राह्मण और यज्ञके नाशक रावणके समान पराक्रमी हिडिम्ब बक और किर्मीर आदि राक्षसोंको भीमसेन मेरे ही प्रभावसे मारनेमें समर्थ हुए । इसी भांति अलायुध राक्षसको हिडम्बापुत्र घटोत्कचके हाथसे नष्ट कराया और घटोत्कचको भी उपाय रचके कर्णके हाथसे मरवाया है । (२१–२५)

यदि ह्येनं नाऽहनिष्यत्कर्णः शक्त्या महामृधे ॥ २५ ॥
मया वध्यो भविष्यत्स भैमसेनिर्घटोत्कचः ।
मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया ॥ २६ ॥
एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः ।
धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेष निपातितः ॥ २७ ॥
व्यंसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयाऽनघ ।
ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव ॥ २८ ॥
धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाऽव्यया ।
ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीर्धृतिः क्षमा॥ २९ ॥
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे ।
न विषादस्त्वया कार्यः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥ ३० ॥
उपदेक्ष्याम्युपायं ते येन तं प्रसहिष्यसि ।
सुयोधनं चापि रणे हनिष्यति वृकोदरः ॥ ३१ ॥
तस्याऽपि च वधोपायं वक्ष्यामि तव पाण्डव ।

परन्तु कर्ण यदि आज इन्द्रकी अमोघ शक्तिसे घटोत्कचको न मारता तो मैं भविष्यमें अपने हाथसे घटोत्कचका वध करता, तब पहिले जो मैंने घटोत्कचका वध नहीं किया वह तुम लोगोंके प्रियकामनाकी इच्छा ही समझनी चाहिये। क्योंकि यह राक्षस सदा ब्रह्म और ब्राह्मणोंका द्वेषी धर्मनाश करनेवाला और पापी था इस ही कारण युद्धभूमिमें मारा गया॥ और कौशलके प्रभावसे इन्द्रकी दी हुई कर्णके हाथमें स्थित अमोघ शक्तिको भी मैंने कर्णके समीपसे पृथक् किया है। (२५–२८)

हे अर्जुन! मैंने धर्म स्थापन करनेके वास्ते पहिले इस प्रकारसे दृढ प्रतिज्ञा करी है कि जो धर्मकी लोप करेगा मैं अवश्य ही उसका वध करूंगा। मैं तुम्हारे समीप सत्य ही शपथ करके कहता हूं कि जिस स्थानपर वेद, सत्य, इन्द्रियसंयम, पवित्रता, धर्म, लज्जा, सौभाग्य, धृति और क्षमा निवास करती है मैं सदासर्वदा उस ही स्थानमें वास करता हूं। इससे कर्णवधके वास्ते तुम दुःखित न होना, उस विषयमें मैं ऐसी उपाय बताऊंगा जिससे तुम कर्णका अनायास ही वध कर सकोगे। (२८-३१)

इसके अतिरिक्त पाण्डुपुत्र भीमसेन भी युद्धभूमिके बीच जिस प्रकारसे सुयोधनका वध करनेमें समर्थ होंगे मैं उस विषयमें भी उत्तम उपायको तुम्हारे

वर्धते तुमुलस्त्वेष शब्दः परचमूं प्रति ॥ ३२ ॥
विद्रवन्ति च सैन्यानि त्वदीयानि दिशो दश ।
लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमूं तव ।
दहत्येष च वः सैन्यं द्रोणः प्रहरतां वरः ॥ ३३ ॥[८२५२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—एकवीरवधे मोघा शक्तिः सूतात्मजे यदा ।
कस्मात्सर्वान्समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान् ॥ १ ॥
तस्मिन्हते हता हि स्युः सर्वे पाण्डवसृञ्जयाः ।
एकवीरवधे कस्माद्युद्धे न जयमादधे ॥ २ ॥
आहूतो न निवर्त्तेयमिति तस्य महाव्रतम् ।
स्वयं मार्गयितव्यः स सूतपुत्रेण फाल्गुनः ॥ ३ ॥
ततो द्वैरथमानीय फाल्गुनं शक्रदत्तया ।

समीप वर्णन करूंगा ॥ इस समय सेनाके पुरुषोंके परित्राण करनेके वास्ते तुम यत्नवान् होकर युद्ध करो; क्योंकि शत्रुसेनाके बीच महाघोर हर्ष नाद हो रहा है। देखो तुम्हारी सेनाके योद्धालोग भयसे दशदिशामें भागरहे हैं, तथा लक्ष्य-वेधनेवाले कुरुसेनाके योद्धा लोग तुम्हारी सेनाके व्यूहको भङ्ग करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं; और योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी तुम्हारी सेनाको अपने अस्त्रोंसे भस्म कर रहे हैं ॥ (३१-३३) [८२५२]

द्रोणपर्वमें एकसौ एकासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ बियासी अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! यदि इन्द्रकी दीहुई कर्णके हाथमें स्थित शक्ति एक ही पुरुषको मारके निष्फल होकर कर्णके समीपसे पृथक् होजावेगी,—ऐसे गुणसे युक्त थी तो कर्णने किस निमित्त सम्पूर्ण पुरुषोंको त्यागके उसे अर्जुनके ऊपर नहीं चलाया ? अर्जुनके मारे जानेसे ही पाण्डव और सृञ्जय आदि सम्पूर्ण योद्धा विनष्ट होते । जिस स्थानमें एक ही वीरके नाश होनेसे ही विजय लाभ होना संभव था वैसे विजय लाभको किस कारणसे हम लोग नहीं प्राप्त कर सके ? विशेष करके जब अर्जुनको मैं युद्धभूमिमें आवाहन करनेसे कदापि निवृत्त न होऊंगा, ऐसी प्रतिज्ञा है तब सूतपुत्र कर्णका अर्जुनको युद्धभूमिमें आवाहन करना ही कर्त्तव्य कार्य था ॥ हे सृञ्जय ! ऐसी उपायके उपस्थित रहते भी कर्णने किस कारणसे द्वैरथ युद्धमें

जघान न वृषः कस्मात्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ४ ॥
नूनं बुद्धिविहीनश्चाऽप्यसहायश्च मे सुतः।
शत्रुभिर्व्यंसितः पापः कथं नु स जयेदरीन् ॥ ५ ॥
याह्यस्य परमा शक्तिर्जयस्य च परायणम्।
सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यंसिता च घटोत्कचे ॥ ६ ॥
कुणेर्यथा हस्तगतं ह्रियेत्फलं बलीयसा।
तथा शक्तिरमोघा सा मोघीभूता घटोत्कचे ॥ ७ ॥
यथा वराहस्य शुनश्च युध्यतोस्तयोरभावे श्वपचस्य लाभः।
मन्ये विद्वन्वासुदेवस्य तद्वद्युद्धे लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥ ८ ॥
घटोत्कचो यदि हन्याद्धि कर्णं परो लाभः स भवेत्पाण्डवानाम्।
वैकर्तनो वा यदि तं निहन्यात्तथाऽपि कृत्यं शक्तिनाशात्कृतं स्यात् ॥९॥
इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद्विचिन्त्य घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे।

अर्जुनको आवाहन करके उसका वध नहीं किया ? तुम यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करो ॥ (१–४)

इस समय मेरा पुत्र एकबारगी सहायकोंसे रहित और बुद्धिहीन हुआ है इसमें सन्देह नहीं है ॥ जब शत्रुओंने उसे इस प्रकारसे उपाय रहित किया है तब वह अब किस प्रकारसे उन लोगोंको पराजित कर सकेगा ? ओहो ! जो इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्ति मेरे पुत्रके वास्ते परमशक्ति और विजय प्राप्त करनेके विषयमें परम आश्रय स्वरूप थी, श्रीकृष्णने वैसी शक्तिको भी घटोत्कच राक्षसके ऊपर छुडवाके उसे निष्फल कर दिया। हे सञ्जय ! जैसे रोगादि कारणसे बलरहित हाथवाले किसी पुरुषके हाथमें स्थित फल कोई बलवान् पुरुष हर लेता है वैसेही कर्णके हाथमें स्थित अमोघ शक्ति घटोत्कचके ऊपर छोडी जाने पर कर्णके समीपसे पृथक् होगई; वह श्रीकृष्णके उपायके बलसे कर्णके समीपसे पृथक् करी गयी ही मालूम होरही है ॥ (५–७)

हे बुद्धिमान् सञ्जय ! जैसे युद्धमें प्रवृत्त हुए सूकर और कुत्तेके बीचसे एकके नाश होनेसे चाण्डालको अवश्य ही लाभ होता है, मेरे विचारमें कर्ण और घटोत्कचके युद्धमें श्रीकृष्णको भी उसी भांतिसे लाभ हुआ है ॥ युद्धभूमिके बीच यदि घटोत्कच कर्णका वध कर सके तो पाण्डवोंका परम उपकार होगा और यदि सूतपुत्र कर्ण घटोत्कचका वध करेगा तो भी अमोघ शक्तिके निष्फल होनेसे बहुत बडा कार्य सिद्ध होवेगा;

अघातयद्वासुदेवो नृसिंहः प्रियं कुर्वन्पाण्डवानां हितं च ॥ १० ॥

सञ्जय उवाच— एतच्चिकीर्षितं ज्ञात्वा कर्णस्य मधुसूदनः ।
नियोजयामास तदा द्वैरथे राक्षसेश्वरम् ॥ ११ ॥
घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
अमोघाया विघातार्थं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ १२ ॥
तदैव कृतकार्या हि वयं स्याम कुरूद्वह ।
न रक्षेद्यदि कृष्णस्तं पार्थं कर्णान्महारथात् ॥ १३ ॥
साश्वध्वजरथः संख्ये धृतराष्ट्र पतेद्भुवि ।
विना जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १४ ॥
तैस्तैरुपायैर्बहुभी रक्ष्यमाणः स पार्थिव ।
जयत्यभिमुखः शत्रून्पार्थः कृष्णेन पालितः ॥ १५ ॥
स विशेषात्त्वमोघायाः कृष्णोऽरक्षत पाण्डवम् ।
हन्यात्क्षिप्रं हि कौन्तेयं शक्तिर्वृक्षमिवाऽशनिः॥१६॥

बुद्धिमान् कृष्णने ऐसा ही विचारके पाण्डवोंके प्रिय कार्य करनेकी अभिलाषासे सूतपुत्र कर्णके हाथसे घटोत्कचका वध कराया ॥ (८-१०)

सञ्जय बोले, महाराज! मधुदैत्यको नाश करनेवाले महा बुद्धिमान जनार्दन कृष्णने कर्णके ऐसे अभिप्रायको जानकेही इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिको निष्फल करनेकी इच्छासे कर्णके सङ्ग घटोत्कचको द्वैरथ युद्धमें प्रवृत्त किया था॥ परन्तु यह सब घटना तुम्हारी दुष्ट नीतिसे ही होती हुई समझनी उचित है ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! श्रीकृष्ण यदि रणभूमिके बीच अर्जुनको महारथी कर्णके हाथसे न बचाते तो हम लोग उस ही समय कृतकार्य हो सकते थे ॥ (११-१३)

सर्वशक्तिमान् परम योगेश्वर जनार्दन कृष्ण रणभूमिके बीच यदि अर्जुनकी रक्षा न करते होते तो अवश्य ही घोडे रथ और ध्वजाके सहित अर्जुन प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिर पडते इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ अर्जुन कृष्णसे अनेक उपायोंसे रक्षित रहते हैं उस ही कारण युद्धभूमिमें संमुख उपस्थित हुए महारथी शत्रुओं को पराजित करनेमें समर्थ होते हैं॥ जो हो कृष्णने अमोघ शक्तिसे अर्जुनकी विशेष रूपसे रक्षा करी है नहीं तो कर्णकी भुजासे छूटी वह अमोघ शक्ति कुन्तीपुत्र अर्जुनके शरीरको इस प्रकार विदारण कर देती जैसे वज्रकी चोटसे पर्वत विदीर्ण होजाते हैं॥ (१४-१६)

धृतराष्ट्र उवाच—विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममाऽऽत्मजः।
यस्यैष समतिक्रान्तो वधोपायो जयं प्रति ॥ १७ ॥
स वा कर्णो महाबुद्धिः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
न मुक्तवान्कथं सूतताममोघां धनञ्जये ॥ १८ ॥
तवापि समतिक्रान्तमेतद्गावल्गणे कथम्।
एतमर्थं महाबुद्धे यत्त्वया नाऽवबोधितः ॥ १९ ॥
सञ्जय उवाच— दुर्योधनस्य शकुनेर्मम दुःशासनस्य च।
रात्रौ रात्रौ भवत्येषा नित्यमेव समर्थना ॥ २० ॥
श्वः सर्वसैन्यानुत्सृज्य जहि कर्ण धनञ्जयम्।
प्रेष्यवत्पाण्डुपञ्चालानुपभोक्ष्यामहे ततः ॥ २१ ॥
अथवा निहते पार्थे पाण्डवान्यतमं ततः।
स्थापयेद्यदि वार्ष्णेयस्तस्मात्कृष्णो हि हन्यताम् ॥२२॥
कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्गतः।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! मेरा पुत्र दुर्योधन अपनेको बुद्धिमान् माननेवाला, अच्छे लोगोंसे विरोध करनेवाला और बुरे विचारमें निपुण है, नहीं तो अर्जुनके वधके विषयमें क्या ऐसी उपाय भी निष्फल होती! और सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान कर्णने ही किस कारणसे अर्जुनके ऊपर उस अमोघ शक्तिको नहीं चलाया? हे गवल्गणपुत्र! उस समय क्या तुम्हारी भी बुद्धि भ्रमयुक्त होगई थी? यदि तुम्हारी बुद्धि भ्रमित नहीं थी तो तुमने क्यों नहीं अमोघ शक्ति चलानेका विषय कर्णको स्मरण कराया? (१७-१९)

सञ्जय बोले, महाराज! दुर्योधन शकुनि दुःशासन और मैं—हम सब कोई प्रति दिन रात्रिके समय अपनी बुद्धिसे स्थिर करके कर्णसे यह वचन कहते थे, ॥ हे कर्ण! कल्ह सवेरे तुम सबको छोडके अर्जुनको ही मारो! अर्जुनके मरनेसे ही हम लोग दूसरे सम्पूर्ण पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंको सहजमें पराजित करेंगे तथा उन्हें अपने वशमें करके इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको भोग करेंगे; अथवा अर्जुनके मारे जानेपर यदि वृष्णिनन्दन कृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे दूसरे वीरको युद्धके कार्यमें नियुक्त करें इससे कृष्णहीको मारो, क्योंकि कृष्ण ही पाण्डवोंके सब कार्योंके सिद्ध करनेके मूल हैं॥ २०-२२

अर्जुन कृष्णरूपी वृक्षकी बडी शाखा दूसरे पाण्डव लोग छोटी शाखा और

शाखा इवेतरे पार्थाः पञ्चालाः पत्रसंज्ञिताः ॥ २३ ॥
कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः ।
कृष्णः परायणं चैषां ज्योतिषामिव चन्द्रमाः ॥ २४ ॥
तस्मात्पर्णानि शाखाश्च स्कन्धं चोत्सृज्य सूतज ।
कृष्णं हि विद्धि पाण्डूनां मूलं सर्वत्र सर्वदा ॥ २५ ॥
हन्याद्यदि हि दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम् ।
कृत्स्ना वसुमती राजन्वशे तस्य न संशयः ॥ २६ ॥
यदि हि स निहतः शयीत भूमौ यदुकुलपाण्डवनन्दनो महात्मा ।
ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा सगिरिसमुद्रवना वशं व्रजेत ॥ २७ ॥
सा तु बुद्धिः कृताऽप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे ।
अप्रमेये हृषीकेशे युद्धकालेऽप्यमुह्यत ॥ २८ ॥
अर्जुनं चापि राधेयात्सदा रक्षति केशवः ।
न ह्येनमैच्छत्प्रमुखे सौतेः स्थापयितुं रणे ॥ २९ ॥

पाञ्चालयोद्धा लोग उसके पत्रस्वरूप हैं॥ अधिक क्या कहा जावे, कृष्ण ही पाण्डवोंके आश्रय, बल और सहायक हैं। जैसे चंद्रमा सम्पूर्ण ज्योतिवाले पदार्थोंके आश्रय हैं वैसे ही कृष्ण भी पाण्डवोंके परम आश्रयस्वरूप हैं; हे कर्ण ! इससे तुम शाखा और पत्र आदि सबको छोडके पाण्डववृक्षके मूल स्वरूप कृष्णहीका सबसे पहिले नाश करो। हे राजेन्द्र ! हम लोग कर्णसे ऐसे ही वचन कहके फिर दुर्योधनसे कहते थे,—हे राजन् ! सूतनन्दन कर्ण यदि यदुकुलभूषण दाशार्ह कृष्णका वध कर सके तो यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हारे वशमें हो जावेगी; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ (२३–२६)

हे राजेन्द्र ! यदुवंशियों और पाण्डवोंके आनन्दको बढानेवाले कृष्ण मरके पृथ्वीपर शयन करें तो निश्चय ही वन पर्वत और समुद्रके सहित यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हारे अधिकारमें होजावेगी॥ महाराज ! इसी भांति सदा सर्वान्तर्यामी तीनों लोकके ईश्वर श्रीकृष्णके वधके विषयमें नित्य रात्रिके समय हम लोग अपनी बुद्धिसे ऐसा ही निश्चय करते थे तो भी सबेरे युद्धके समय हम लोगोंकी बुद्धि मोहित होजाती थी॥ जबतक कर्णके निकट इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्ति उपस्थित थी तब तक श्रीकृष्ण नित्य ही कर्णसे अर्जुनकी रक्षा करते थे अर्थात् श्रीकृष्ण कभी भी कर्णके सम्मुख अर्जुनके रथको खडा नहीं करते थे॥ (२७–२९)

अन्यांश्चाऽस्मै रथोदारानुपास्थापयदच्युतः।
अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां कुर्यामिति प्रभो ॥३०॥
यश्चैवं रक्षते पार्थं कर्णात्कृष्णो महामनाः।
आत्मानं स कथं राजन्न रक्षेत्पुरुषोत्तमः ॥ ३१ ॥
परिचिन्त्य तु पश्यामि चक्रायुधमरिन्दमम्।
न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यो जयेत जनार्दनम् ॥ ३२ ॥
सञ्जय उवाच— ततः कृष्णं महाबाहुं सात्यकिः सत्यविक्रमः।
पप्रच्छ रथशार्दूलः कर्णं प्रति महारथः ॥ ३३ ॥
अयं च प्रत्ययः कर्णे शक्तिश्चाऽमितविक्रमा।
किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फाल्गुने तु सा ॥ ३४ ॥
वासुदेव उवाच—दुःशासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च ससैन्धवः।
सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः ॥ ३५ ॥
कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम।
नाऽन्यस्य शक्तिरेषा ते मोक्तव्या जयतां वर ॥ ३६ ॥

किस प्रकारसे राधापुत्र कर्णके निकटसे अमोघ शक्तिको निष्फल कराऊं, इसी भांति चिन्ता करके श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरके अन्य महारथियोंको कर्णके सम्मुख युद्धके निमित्त भेजते थे॥ महाराज! जब पुरुषोत्तम महाबुद्धिमान् कृष्णने अर्जुनको इस प्रकार कर्णके हाथसे बचाया है तब अपनी रक्षा वह क्यों नहीं कर सकेंगे? इससे मैं भली भांति विशेष रूपसे विचार करके देखता हूं, कि तीनों लोकके बीच ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो सुदर्शन चक्रधारी शत्रु नाशन जनार्दन कृष्णको पराजित कर सके॥ (३०-३२)

संजय बोले, तब रथियोंमें मुख्य सत्य पराक्रमी सात्यकिनेभी कर्णके विषयमें महाबाहु कृष्णसे पूंछा था, हे कृष्ण! इन्द्रकी दी हुई शक्ति अत्यन्त पराक्रमशालिनी और अमोघ है, उस विषयमें कर्णको दृढरूपसे विश्वास था, तब उसने किस कारणसे उस अमोघ शक्तिको अर्जुनके ऊपर नहीं चलाया? (३३-३४)

सात्यकिके वचनको सुन कर श्रीकृष्ण बोले, हे शिनिकुल भूषण सात्यकि! दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और सिन्धुराज जयद्रथ; ये सब कोई प्रति दिन रात्रिके समय आपसमें यही विचार करके स्थिर करते थे, हे अत्यन्त पराक्रमी कर्ण! हे महाधनुर्द्धर विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कर्ण! कुन्तीपुत्र अर्जुनके अतिरिक्त

ऋते महारथात्कर्ण कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ।
स हि तेषामतियशा देवानामिव वासवः ॥ ३७ ॥
तस्मिन्विनिहते पार्थे पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
भविष्यन्ति गतात्मानः सुरा इव निरग्नयः ॥ ३८ ॥
तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन शिनिपुङ्गव ।
हृदि नित्यं च कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः ॥ ३९ ॥
अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधां वर ।
ततो नाऽवसृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवाहने ॥ ४० ॥
फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिन्तयतोऽनिशम् ।
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधां वर ॥ ४१ ॥
घटोत्कचे व्यंसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुङ्गव ।
मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्याम्यद्य धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥
न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा ।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४३ ॥

और किसी पुरुषके ऊपर तुम इस अमोघ शक्तिको मत चलाना ! क्योंकि जैसे देवतोंके बीचमें इन्द्र है, वैसे ही पाण्डवोंके बीचमें अर्जुन ही मुख्य वीर और यशस्वी है; इससे अर्जुनके मारे जानेसे ही अग्निहीन देवतोंकी भांति सृञ्जय और पाण्डलोग सब कोई सहजमें ही नष्ट हो सकेंगे ॥ (३५–३८)

हे सात्यकि ! कर्णने उन लोगोंके वचनको सुनके ऐसाही होगा यह वचन कहके प्रतिज्ञा की थी; और उस ही समयसे गाण्डीवधारी अर्जुनके वधका विषय उसके अन्तःकरणमें नित्य ही स्थित रहता था; केवल मैं ही योद्धाओंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णको मोहित करता था, इस ही कारणसे उसने श्वेतवाहन अर्जुनके ऊपर अमोघ शक्ति नहीं चलायी ॥ हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ सात्यकि ! मैंने उस इन्द्रकी अमोघ शक्तिको अर्जुनसे निवारित न होनेवाली तथा अर्जुनकी मृत्यु स्वरूप जानके अपने चित्तसे हर्ष सुख त्याग किया था, मुझे इस ही चिन्तामें रात्रिको नींद नहीं लगती थी ॥ ३९–४१

आज घटोत्कचके ऊपर वह शक्ति छूटकर कर्णके निकटसे पृथक् हुई है। उसे देखकर अब मैं अर्जुनको मृत्युके मुखसे छूटा हुआ ही समझ रहा हूं ॥ अधिक क्या कहूं, युद्धभूमिमें अर्जुन मुझे जैसे रक्षणीय हैं; पिता माता, तुम लोग तथा भाई बन्धु आदि कोई भी

त्रैलोक्यराज्याद्यत्किञ्चिद्भवेदन्यत्सुदुर्लभम् ।
नेच्छेयं सात्वताऽहं तद्विना पार्थं धनञ्जयम् ॥ ४४ ॥
अतः प्रहर्षः सुमहान्युयुधानाऽद्य मेऽभवत् ।
मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनञ्जयम् ॥ ४५ ॥
अतश्च प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः ।
न ह्यन्यः समरे रात्रौ शक्तः कर्णं प्रबाधितुम् ॥ ४६ ॥
सञ्जय उवाच— इति सात्यकये प्राह तदा देवकिनन्दनः ।
धनञ्जयहिते युक्तस्तत्प्रिये सततं रतः ॥ ४७ ॥ [८२९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८२॥

धृतराष्ट्र उवाच—कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेः सौबलस्य च ।
अपनीतं महत्तात तव चैव विशेषतः ॥ १ ॥
यदि जानीथ तां शक्तिमेकघ्नीं सततं रणे ।
अनिवार्यामसह्यां च देवैरपि सवासवैः ॥ २ ॥

वैसा रक्षणीय नहीं है, अधिक क्या कहूं मुझे अपना प्राण भी वैसा प्रिय नहीं है ॥ हे सात्यकि! यदि! तीनों लोककी राज्यसे भी दुर्लभ कोई दूसरी वस्तु होवे तो भी मैं अर्जुनको त्यागके उस पदार्थको भी ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता ॥ (४२–४४)

इससे मैं आज मृत्युके मुखमें पडे हुएके समान अर्जुनको कर्णके हाथसे मुक्त हुआ देखकर इस प्रकारसे हर्षित और आनन्दित होरहा हूं ॥ इसके अतिरिक्त मैंने जो आज घटोत्कचको युद्ध करनेके वास्ते कर्णके सम्मुख भेजा था उसका कारण अपनी बुद्धिसे मैंने यही विचारके देखा था, कि आज रात्रिके समय कर्णको कोई भी वीर निवारण करनेमें समर्थ न होगा ॥ (४५–४६)

सञ्जय बोले, महाराज! अर्जुनको अत्यन्त ही प्रिय और सदा ही उसके हितकार्यमें रत कृष्णने उस समय सात्यकिसे ऐसेही वचन कहे थे ॥ (४७) [८२९९]

द्रोणपर्वमें एकसौ बियासी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ तिरासी अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे तात! हे सञ्जय! कर्ण, दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि और विशेष करके तुमने अत्यन्त ही अन्याय कार्य किया है ॥ क्योंकि जब तुम लोगोंने निश्चय करके जाना था, कि कर्णके हाथकी अनिवार्य शक्ति इन्द्र आदि देवतोंसे भी असह्य है और

सा किमर्थं तु कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा ।
न देवकीसुते मुक्ता फाल्गुने वाऽपि सञ्जय ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच— संग्रामाद्विनिवृत्तानां सर्वेषां नो विशाम्पते ॥ ४ ॥
रात्रौ कुरुकुलश्रेष्ठ मन्त्रोऽयं समजायत ।
प्रभातमात्रे श्वोभूते केशवायाऽर्जुनाय वा ।
शक्तिरेषा हि मोक्तव्या कर्ण कर्णेति नित्यशः ॥ ५ ॥
ततः प्रभातसमये राजन्कर्णस्य दैवतैः ।
अन्येषां चैव योधानां सा बुद्धिर्नाश्यते पुनः ॥ ६ ॥
दैवमेव परं मन्ये यत्कर्णो हस्तसंस्थया ।
न जघान रणे पार्थं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥ ७ ॥
तस्य हस्तस्थिता शक्तिः कालरात्रिरिवोद्यता ।
दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान् ॥ ८ ॥
कृष्णे वा देवकीपुत्रे मोहितो देवमायया ।
पार्थे वा शक्रकल्पे वै वधार्थं वासवीं प्रभो ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— दैवेनोपहता यूयं स्वबुद्धया केशवस्य च ।

रणभूमिके बीच एक महावीरका नाश करनेवाली है, तब कर्णने पहिले युद्धमें प्रवृत्त हुए अर्जुन अथवा देवकीपुत्र कृष्णके ऊपर उस अमोघ शक्तिको क्यों नहीं चलाया ? (१–३)

सञ्जय बोले, हे कुरुकुलश्रेष्ठ महाराज ! हम लोग प्रतिदिन युद्धसे निवृत्त होने पर शिविरमें आके रात्रिके समय इसी प्रकार मन्त्रणा करके कर्णसे कहते थे, हे कर्ण ! तुम कल्ह सवेरा होतेही श्रीकृष्ण वा अर्जुनके ऊपर अवश्य इस अमोघ शक्तिको छोडना ॥ परन्तु भोर होते ही दैवके प्रभावसे कर्ण तथा दूसरे सम्पूर्ण योद्धाओंकी बुद्धि भ्रष्ट होजाती थी ॥ (४–६)

अधिक क्या कहा जावे, जब कर्णके हाथमें वैसी अमोघ शक्तिके रहते भी देवकीपुत्र कृष्ण वा अर्जुन नहीं मारे गये; तब मेरे विचारमें प्रारब्ध ही बलवान् मालूम होती है ॥ हे राजेन्द्र ! कर्णने निश्चय ही देवमायाके प्रभावसे बुद्धि भ्रष्ट और मोहित होके देवकीपुत्र कृष्ण और महावीर इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनके ऊपर इन्द्रकी दी हुई अमोघशक्ति नहीं चलायी ॥ (७–९)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! तुम लोग अवश्य ही देवमाया, कृष्णकी युक्ति और अपनी बुद्धिके दोषसे पराजित

गता हि वासवी हत्वा तृणभूतं घटोत्कचम् ॥ १० ॥
कर्णश्च मम पुत्राश्च सर्वे चाऽन्ये च पार्थिवाः ।
तेन वै दुष्प्रणीतेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥
भूय एव तु मे शंस यथा युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च हैडिम्बौ निहते तदा ॥ १२ ॥
ये च तेऽभ्यद्रवन्द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
सृञ्जयाः सह पञ्चालैस्तेऽप्यकुर्वन्कथं रणम् ॥ १३ ॥
सौमदत्तेर्वधाद् द्रोणमायान्तं सैन्धवस्य च ।
अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथिनीम्॥ १४ ॥
जृम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणमस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः ॥ १५ ॥
आचार्यं ये च तेऽरक्षन्दुर्योधनपुरोगमाः ।
द्रौणिकर्णकृपास्तात ते वा कुर्वन्किमाहवे ॥ १६ ॥
भारद्वाजं जिघांसन्तौ सव्यसाचिवृकोदरौ ।

होके नष्ट हुए, क्योंकि इन्द्रकी दी हुई वैसी अमोघ शक्ति कर्णके हाथसे छूटकर तृणके समान घटोत्कचको नाश करके निष्फल होगई॥ इस ही दुर्नीतिके दोषसे मैं अपने पुत्रोंको कर्ण तथा अपनी सेनाके सम्पूर्ण राजाओंको मृत्युके मुखमें पडे ही समझ रहा हूं ॥ जो हो हिडिम्बापुत्र घटोत्कचके मारे जानेपर कौरव और पाण्डवोंका कैसा संग्राम हुआ वह सब वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो; और उस समय पाण्डवोंकी ओरके कौन कौन योद्धा व्यूहबद्ध सेनाके साहित द्रोणाचार्यकी ओर दौडे । और सृञ्जय तथा पाञ्चाल योद्धाओंने भी द्रोणाचार्यके सङ्ग किस भांतिसे युद्ध किया? (१०-१३)

हे सञ्जय! द्रोणाचार्य सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा और सिन्धुराज जयद्रथके मारे जानेसे अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए थे; उन्होंने अपने प्राणकी आशाको छोडके क्रोधी सिंह तथा दण्डधारी यमराजकी भांति जब पाण्डवोंकी सेनाके बीच प्रवेश करके अपने प्रचण्ड धनुषको फेरते हुए लगातार बाणोंको वर्षाने लगे उस समय पाण्डव और सृञ्जय लोग किस प्रकार द्रोणाचार्यके सम्मुख स्थित हुए? १४-१५

हे तात सञ्जय! उस महाघोर युद्धके समय मेरी सेनाके किन किन योद्धाओंने द्रोणाचार्यकी रक्षा करी थी? और कृपाचार्य अश्वत्थामा कर्ण तथा दुर्योधन आदि मेरी सेनाके महारथी योद्धाओंने

समाच्छेन्मामका युद्धे कथं सञ्जय शंस मे ॥ १७ ॥
सिन्धुराजवधेनेमे घटोत्कचवधेन ते।
अमर्षिताः सुसंक्रुद्धा रणं चक्रुः कथं निशि ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच— हते घटोत्कचे राजन्कर्णेन निशि राक्षसे।
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥ १९ ॥
आपतत्सु च वेगेन वध्यमाने बलेऽपि च।
विगाढायां रजन्यां च राजा दैन्यं परं गतः ॥ २० ॥
अब्रवीच्च महाबाहुर्भीमसेनमिदं वचः।
आवारय महाबाहो धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥ २१ ॥
हैडिम्बेश्चैव घातेन मोहो मामाविशन्महान्।
एवं भीमं समादिश्य स्वरथे समुपाविशत् ॥ २२ ॥
अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः।
कश्मलं प्राविशद्घोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २३ ॥
तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत्।

उस समय किस कार्यका अनुष्ठान किया? द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करनेवाले भीमसेन और अर्जुनको मेरी सेनाके वीरोंने किस प्रकार निवारण किया? उस समय जयद्रथ वधके कारण कौरवों और घटोत्कचके मारे जानेसे पाण्डवोंने अत्यन्त दुःखित और क्रुद्ध होके उस रात्रिके समय किस प्रकार युद्ध किया वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो॥ (१६-१८)

संजय बोले, महाराज! उस महाघोर रात्रिके समय जब कर्णके हाथसे घटोत्कच राक्षस मारा गया, तब तुम्हारी ओरके योद्धा लोग युद्धकी अभिलाषासे हर्षित होकर सिंहनाद करते हुए महा वेगपूर्वक पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे। अनन्तर समूहके समूह अपनी सेनाके पुरुषोंका नाश होते देख राजा युधिष्ठिर अत्यन्तही दुःखित होके भीमसेनसे बोले, हे महाबाहु भीमसेन! मैं हिडिम्बापुत्र घटोत्कचके मारे जानेसे दुःखित और मोहित होरहा हूं इससे तुम इस समय अकेले ही कौरवोंकी सेनाको निवारण करो। राजा युधिष्ठिर भीमसेनको ऐसी आज्ञा देकर रथमें बैठकर आंसू बहाते हुए बार बार लम्बी सांस छोडने लगे; और कर्णके भयानक पराक्रमको देखकर विह्वल होगये॥ (१९-२३)

श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार विकल देखकर उनसे यह वचन

मा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ २४ ॥
वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे।
उत्तिष्ठ राजन्युध्यस्व वह गुर्वीं धुरं विभो ॥ २५ ॥
त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये भवेत्।
श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत्।
विदिता मे महाबाहो धर्माणां परमा गतिः ॥ २७ ॥
ब्रह्महत्याफलं तस्य यः कृतं नाऽवबुध्यते।
अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना ॥ २८ ॥
बालेनाऽपि सता तेन कृतं साह्यं जनार्दन।
अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम् ॥ २९ ॥
असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः।
उषितश्च सहाऽस्माभिर्यावन्नाऽऽसीद्धनञ्जयः ॥ ३० ॥
गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स्म तारिताः।
पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना ॥ ३१ ॥

बोले, महाराज! तुम ऐसी कातरता परित्याग करो क्योंकि साधारण पुरुषों-की भांति तुम्हें इस प्रकार शोकित होना उचित नहीं है। आप उठके खडे हो-जाइये और इस बहुत भारी युद्धके भारको उठाइये॥ इस समयमें यदि तुम इस प्रकार विह्वल होके शोक करते हुए रुदन करोगे तो तुम्हारी विजय होनेमें संशय उत्पन्न होगा। (२४-२६)

धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णके वचनको सुनकर हाथसे आंसू पोंछकर उनसे यह वचन बोले, हे महाबाहु जनार्दन कृष्ण! धर्मकी परम गति मुझे मालूम है, जो पुरुष दूसरेके किये हुए उपकारको स्मरण नहीं करता उसे अवश्य ही ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है, मैं इसे जानकर भी कैसे स्थिर रह सकता हूं? हम लोगोंको वनवासके समय हिडिम्बापुत्र घटोत्कचने बालक होके भी बहुत ही सहायता किया था। जिस समय श्वेत-वाहन अर्जुन अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या सीख-नेके वास्ते स्वर्गमें गये थे उस समय इस महाधनुर्द्धर घटोत्कचने हम लोगोंके समी-प उपस्थित होकर जबतक अर्जुन स्वर्गसे नहीं आये तब तक हम लोगोंके सङ्ग काम्यक वनमें वास किया था॥२६-३०

गन्धमादन पर्वतकी यात्रामें महात्मा घटोत्कचने हम लोगोंको बहुतसे दुर्गम

आरम्भाचैव युद्धानां यदेष कृतवान्प्रभो।
मदर्थं दुष्करं कर्म कृतं तेन महाहवे ॥ ३२ ॥
स्वभावाद्या च मे प्रीतिः सहदेवे जनार्दन।
सैव मे परमा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥ ३३ ॥
भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याऽहं प्रियश्च मे।
तेन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः ॥ ३४ ॥
पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमाणानि कौरवैः।
द्रोणकर्णौ तु संयत्तौ पश्य युद्धे महारथौ ॥ ३५ ॥
निशीथे पाण्डवं सैन्यमेतत्सैन्यप्रमर्दितम्।
गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा नलवनं महत् ॥ ३६ ॥
अनादृत्य बलं बाह्वोर्भीमसेनस्य माधव।
चित्रास्त्रतां च पार्थस्य विक्रमन्ति स्म कौरवाः ॥ ३७ ॥
एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः।

तथा कठिन मार्गोंसे पार किया था; विशेष करके थकी हुई द्रौपदीको पीठ पर उठाके मार्गमें हम लोगोंके सङ्ग गमन करता था॥ इसके अतिरिक्त इस युद्धके आरम्भ होनेके समयमें महात्मा घटोत्कचने इस महासंग्राममें मेरे वास्ते जिन सम्पूर्ण कठिन कर्मोंको किया है उन सम्पूर्ण कर्मोंको मैं दूसरे पुरुषसे असाध्य समझता हूं॥ हे जनार्दन कृष्ण! अधिक कहनेसे क्या होगा, सहदेवके ऊपर मेरी जैसी प्रीति है वैसी ही राक्षसराज घटोत्कचके ऊपर भी मेरी परम प्रीति थी॥ वह महाबाहु घटोत्कच मेरा अत्यन्त भक्त और परम प्रिय था तथा हम लोग भी उसके अत्यन्त ही प्रिय पात्र थे। इस ही कारण मैं शोकसे व्याकुल और मोहित होरहा हूं॥ (३१--३४)

हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! यह देखो मेरी सेनाके पुरुष कौरवोंकी सेनाके योद्धाओंके अस्त्रोंसे पीडित होकर चारों ओर युद्धभूमिमें भाग रहे हैं; द्रोणाचार्य और कर्ण अत्यन्त ही यत्न परायण होकर मेरी सेनाके योद्धाओंका नाश कर रहे हैं। जैसे मतवारा हाथी वेणुवनको मर्दन करता है वैसे ही ये दोनों वीर हमारी सेना के पुरुषों का नाश कर रहे हैं॥ हे कृष्ण! यह देखो राजा दुर्योधन द्रोणाचार्य और कर्ण आदि योद्धा अर्जुनके अस्त्रकौशल और भीमसेन के बाहुबलका अनादर करके युद्धभूमि में घटोत्कच को मार कर आनन्द-

निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टा नर्दन्ति संयुगे ॥ ३८ ॥
कथं वाऽस्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन ।
हैडिम्बिः प्राप्तवान्मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः ॥ ३९ ॥
कदर्थीकृत्य नः सर्वान्पश्यतः सव्यसाचिनः ।
निहतो राक्षसः कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः ॥ ४० ॥
यदाऽभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः ।
नाऽऽसीत्तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥ ४१ ॥
निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना ।
निमित्तमभवद् द्रोणः सपुत्रस्तत्र कर्मणि ॥ ४२ ॥
उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम् ।
व्यायच्छतश्च खड्गेन द्विधा खड्गं चकार ह ॥ ४३ ॥
व्यसने वर्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत् ।
अश्वाञ्जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ४४ ॥
तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं युध्यपातयन् ।

पूर्वक सिंहनाद कर रहे हैं ॥ ३५-३८

हे कृष्ण ! तुम तथा हम लोगोंके जीवित रहते सूतपुत्र कर्ण किस प्रकार घटोत्कचका वध करनेमें समर्थ हुआ ? हाय ! कर्णने हम लोगोंको अस्त्र-रहित करके सव्यसाची अर्जुनके संमुख ही महाबलवान् घटोत्कचका संहार किया है ॥ (३९-४०)

हे जनार्दन कृष्ण ! जिस समय दुष्टात्मा कौरवोंने अभिमन्युका वध किया था, उस समय अर्जुन युद्धभूमिके बीच वहां पर उपस्थित नहीं थे और हम सब लोग दुष्टात्मा जयद्रथसे निवारित होकर चक्रव्यूहके भीतर न जासके; उस समय अश्वत्थामाके सहित द्रोणाचार्य ही अभिमन्युकी मृत्युके कारण हुए थे क्योंकि द्रोणाचार्यने स्वयं अभिमन्युके वधके उपायको कर्णके समीप वर्णन किया था, विशेष करके जब वह केवल एक मात्र तलवारको ग्रहण करके ही युद्ध करता था, उस समय आचार्यने ही अपने बाणोंसे उसके तलवारको काटके दो टुकडे किया था ॥ (४१-४३)

कृतवर्माने नीच पुरुषोंकी भांति कार्य करके विपदमें पडे हुए उस बालक के रथके घोडे और दोनों पृष्ठ रक्षक वीरोंका वध किया ॥ फिर अन्तमें दूसरे कई एक महाधनुर्द्धर योद्धाओंने एकत्रित होके इसी प्रकार नाना भांतिसे सुभद्रापुत्र अभिमन्युको अस्त्र रहित करके

अल्पे च कारणे कृष्ण ततो गाण्डीवधन्वना ॥ ४५ ॥
सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तच्च नाऽतिप्रियं मम ।
यदि शत्रुवधो न्याय्यो भवेत्कर्तुं हि पाण्डवैः ॥ ४६ ॥
कर्णद्रोणौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः ।
एतौ हि मूलं दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ ॥ ४७ ॥
एतौ रणे समासाद्य समाश्वस्तः सुयोधनः ।
यत्र वध्यो भवेद् द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः ॥ ४८ ॥
तत्राऽवधीन्महाबाहुः सैन्धवं दूरवासिनम् ।
अवश्यं तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः ॥ ४९ ॥
ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णजिघांसया ।
भीमसेनो महाबाहुर्द्रोणानीकेन सङ्गतः ॥ ५० ॥
एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो युधिष्ठिरः ।
स विस्फार्य महच्चापं शङ्खं प्राध्माप्य भैरवम् ॥ ५१ ॥
ततो रथसहस्रेण गजानां च शतैस्त्रिभिः ।

युद्धभूमिमें मारा था। हे कृष्ण! गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्जुनने बहुत थोडे अपराधसे सिन्धुराज जयद्रथका वध किया है। इससे जयद्रथके वधसे मेरा विशेष प्रिय कार्य नहीं हुआ है। (४४–४६)

हे यादव श्रेष्ठ कृष्ण! पाण्डवोंको यदि शत्रुओंका नाश करना ही कर्त्तव्य कार्य होवे तो मेरे विचारमें सबसे पहिले द्रोणाचार्य और कर्णका नाश करना ही उचित है। ये दोनों वीर ही मेरे समस्त दुःखोंके मूल हैं ॥ इन्हीं दोनों वीरोंके आसरेसे दुर्योधन अपनेको बलवान् समझता है। ओहो! कैसे आक्षेपका विषय है कि हम लोगोंने समझा था कि, महाबाहु अर्जुन अनुयाइयोंके सहित द्रोणाचार्य और कर्णका नाश करेंगे। उसे न करके अर्जुनने दूर देशवासी सिन्धुराज जयद्रथका वध किया। ४६–४९

जो हो हम लोगोंको अवश्य ही सूतपुत्र कर्णको पराजित करना पडेगा॥ इस समय महाबाहु भीमसेन द्रोणाचार्यकी सेनाके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं इससे मैं स्वयं ही कर्णके वधके निमित्त उसके समीप गमन करूंगा॥ राजा युधिष्ठिर ऐसा वचन कहके अत्यन्त वेगपूर्वक अपने बडे धनुषको फेरते और भयङ्कर शंख बजाते हुए कर्णकी ओर गमन करने लगे॥ (४९–५१)

तिसके अनन्तर पाञ्चाल राजपुत्र शिखण्डी एक हजार रथी, तीनसौ हाथी,

वाजिभिः पञ्चसाहस्रैः पञ्चालैः सप्रभद्रकैः ॥ ५२ ॥
वृतः शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्वयात्।
ततो भेरीः समाजघ्नुः शङ्खान्दध्मुश्च दंशिताः॥ ५३ ॥
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः।
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्वासुदेवो धनञ्जयम् ॥ ५४ ॥
एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः।
जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते ॥ ५५ ॥
एवमुक्त्वा हृषीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत्।
दूरं प्रयान्तं राजानमन्वगच्छज्जनार्दनः ॥ ५६ ॥
तं दृष्ट्वा सहसाऽऽयान्तं सूतपुत्रजिघांसया।
शोकोपहतसङ्कल्पं दह्यमानमिवाऽग्निना ॥ ५७ ॥
अभिगम्याऽब्रवीद्व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
व्यास उवाच— कर्णमासाद्य संग्रामे दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥५८॥
सव्यसाचिवधाकांक्षी शक्तिं रक्षितवान्हि सः।
न चाऽगाद् द्वैरथं जिष्णुर्दिष्ट्या तेन महारणे॥ ५९ ॥

पांच हजार पाञ्चाल और प्रभद्रक सेनाके योद्धाओंको सङ्ग लेकर शीघ्रताके सहित युधिष्ठिरके अनुगामी हुए। उसी समय राजा युधिष्ठिरके सहित पाण्डव और पाञ्चालसेनाके योद्धा लोग सैकडों शङ्ख और भेरी आदि बाजोंको बजाते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ (५२–५४)

श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरको स्वयं कर्णकी ओर गमन करते देखकर अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! वह देखो धर्मराज युधिष्ठिर सूतपुत्र कर्णको नाश करनेके वास्ते स्वयं उनकी ओर गमन कर रहे हैं इससे इस विषयमें अब उपेक्षा करना उचित नहीं है ॥ श्रीकृष्णचन्द्र ऐसा वचन कहके शीघ्रगामी अर्जुनके रथके घोडोंको दौडाकर दूर गये हुए युधिष्ठिर के पीछे पीछे गमन करने लगे ॥ ५४-५६

उस ही समय भगवान् वेदव्यास अग्निसे जलते हुए वज्रकी भांति राजा युधिष्ठिरको दुःखित और शोकित चित्तसे सहसा कर्णके वधकी अभिलाषासे उसकी ओर गमन करते देख उनके संमुख उपस्थित होकर यह वचन बोले, हे तात युधिष्ठिर ! भाग्यसे ही अर्जुन कई बार कर्णके संमुख उपस्थित होकर भी जीवित हैं क्योंकि कर्ण अर्जुनके वधके ही वास्ते इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिको यत्न पूर्वक रक्खे हुआ था ! भाग्यसे ही

सृजेतां स्पर्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ।
वध्यमानेषु चाऽस्त्रेषु पीडितः सूतनन्दनः ॥ ६० ॥
वासवीं समरे शक्तिं ध्रुवं मुञ्चेद्युधिष्ठिर ।
ततो भवेत्ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम ॥ ६१ ॥
दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद ।
वासवीं कारणं कृत्वा कालेनोपहतो ह्यसौ ॥ ६२ ॥
तवैव कारणाद्रक्षो निहतं तात संयुगे ।
मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥ ६३ ॥
प्राणिनामिह सर्वेषामेषा निष्ठा युधिष्ठिर ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ॥ ६४ ॥
कौरवान्समरे राजन्प्रतियुध्यस्व भारत ।
पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति ॥ ६५ ॥
नित्यं च पुरुषव्याघ्र धर्ममेवाऽनुचिन्तय ।
आनृशंस्यं तपो दानं क्षमां सत्यं च पाण्डव ॥ ६६ ॥

अर्जुन आजतक कर्णके सङ्ग द्वैरथ युद्ध में प्रवृत्त नहीं हुए; यदि दोनोंका द्वैरथ युद्ध होता, तो दोनों ही क्रुद्ध होकर दिव्य अस्त्रोंको चलाना आरम्भ करते इसमें कुछ सन्देह नहीं है । (५७-६०)

तिसके अनन्तर अर्जुनके अस्त्रोंके प्रभावसे जब बार बार सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र निष्फल होते और वह स्वयं भी अर्जुनके अस्त्रोंसे पीडित होता तो कर्ण इन्द्रकी अमोघ शक्तिको अवश्यही अर्जुनके ऊपर चलाता; तो अर्जुनके मरनेसे तुम्हें महा घोर विपदमें फंसना पडता॥ हे युधिष्ठिर ! तुम्हारी प्रारब्धसे ही सूतपुत्र कर्णने अमोघशक्तिसे घटोत्कच राक्षसका नाश किया है, इन्द्रकी शक्ति घटोत्कचकी मृत्युके विषयमें केवल निमित्त मात्र है यथार्थमें कालने ही उसका संहार किया है॥ हे तात ! तुम्हारे कल्याणके ही वास्ते घटोत्कच मारा गया है, इससे तुम अपने मानसिक शोक और क्रोधको दूर करो; क्योंकि प्राणिमात्रकी यही गति है अर्थात् मृत्यु सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश करती है । (६०-६४)

इस समय तुम महात्मा भ्राताओंके और सम्पूर्ण राजाओंके सहित एकत्रित होके कौरवोंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होजाओ । हे पुरुषश्रेष्ठ ! आजसे पांचवें दिन अवश्य ही यह पृथ्वी तुम्हारे हाथमें होजावेगी। तुम सदा धर्मके कार्योंमें रत रहते हो, और अनृशंसता, तपस्या,

सेवेथाः परमप्रीतो यतो धर्मस्ततो जयः।
इत्युक्त्वा पाण्डवं व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥६७॥ [८३६६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे व्यासवाक्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥ समाप्तं च घटोत्कचवधपर्व।

अथ द्रोणवधपर्व।

सञ्जय उवाच— व्यासेनैवमथोक्तस्तु धर्मराजो युधिष्ठिरः।
स्वयं कर्णवधाद्वीरो निवृत्तो भरतर्षभ ॥ १ ॥
घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशाम्।
दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमूं तव।
धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भयोनिं निवारय ॥ ३ ॥
त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात्।
सशरः कवची खड्गी धन्वी च परतापनः ॥ ४ ॥
अभिद्रव रणे हृष्टो मा च ते भीः कथञ्चन।
जनमेजयः शिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधरः ॥ ५ ॥

दान और क्षमा गुण तुममें सदा विराजमान रहते हैं। जहां धर्म है, वहीं विजय होती है॥ (६४-६७)

सञ्जय बोले, महाराज! सत्यवती पुत्र भगवान् व्यासदेव राजा युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहके उसी समय वहां ही अन्तर्द्धान होगये। (६७) [८३६६]

द्रोणपर्वमें एकसौ तिरासी अध्याय और घटोत्कच वधपर्व समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ चौरासी अध्याय और द्रोणवधपर्व।

सञ्जय बोले, हे भरतश्रेष्ठ महाराज! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर वेदव्यासके वचनोंको सुनकर कर्णके वधकी इच्छा त्यागकर शान्त होकर उसकी ओर गमन करनेसे निवृत्त हुए॥ परन्तु उस रात्रिके समय सूतपुत्रके हाथसे घटोत्कचके मारे जानेसे वह दुःख राजा युधिष्ठिरसे नहीं सहा गया॥ (१-२)

उस समय वह भीमसेनको अकेले ही कुरुसेनाके योद्धाओंको निवारण करते देख धृष्टद्युम्नसे बोले, हे वीर! तुम द्रोणाचार्यको निवारण करो। हे शत्रुनाशन! तुम द्रोणाचार्यके वध करनेके निमित्त ही धनुष बाण तलवार और कवचके सहित अग्निसे उत्पन्न हुए हो; इससे द्रोणाचार्यसे तुम्हें कुछ भी भय नहीं है; तुम प्रसन्नताके सहित उत्साह

अभिद्रवन्तु संहृष्टाः कुम्भयोनिं समन्ततः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ६ ॥
द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ ।
सात्यकिः केकयाश्चैव पाण्डवश्च धनञ्जयः ॥ ७ ॥
अभिद्रवन्तु वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।
तथैव रथिनः सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किञ्चन ॥ ८ ॥
पदाताश्च रणे द्रोणं पातयन्तु महारथम् ।
तथाऽऽज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना ॥ ९ ॥
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।
आगच्छतस्तान्सहसा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ १० ॥
प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ ११ ॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्ध इच्छन्द्रोणस्य जीवितम् ।
ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकम् ॥ १२ ॥

पूर्वक द्रोणाचार्यकी ओर दौडो, और जनमेजय शिखण्डी तथा दौर्मुखि आदि शूरवीर योद्धा लोग यशकी अभिलाषा करके द्रोणाचार्यके विरुद्ध युद्ध करनेके वास्ते उनके समीप गमन करें। (३-६)

तिसके अनन्तर नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पांचों पुत्र, प्रभद्रक योद्धा लोग और भाई तथा पुत्रोंके सहित राजा विराट, द्रुपद सात्यकि और पाण्डुपुत्र अर्जुन द्रोणाचार्यके वधके निमित्त उनके सम्मुख गमन करें ॥ अधिक क्या कहूं, मेरी सेनाके जितने रथी, गजपति, घुडसवार और पैदल सेनाके योद्धा हैं, वे सब कोई इकठे होकर युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यका वध करें। (६–९)

महाराज! जब महात्मा राजा युधिष्ठिरने ऐसी आज्ञा दी, तब सम्पूर्ण सेनाके योद्धा लोगों ने सेनापतियोंके सहित अत्यन्त वेगपूर्वक द्रोणाचार्यके वधके निमित्त उनकी ओर गमन किया ॥ पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग यत्नपूर्वक सहसा द्रोणाचार्यकी ओर गमन करने लगे, तब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने उस ही समय अपने अस्त्र प्रभावसे उन लोगोंको आगे बढनेसे रोक दिया; और राजा दुर्योधन भी सब भांतिके उद्योगके सहित द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेकी अभिलाषासे क्रुद्ध होकर पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे। (९–१२)

अनन्तर थके हुए वाहन और थके

पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ।
निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे ॥ १३ ॥
नाऽभ्यपद्यन्त समरे काञ्चिच्चेष्टां महारथाः ।
त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयानका ॥ १४ ॥
सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ।
वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः ॥ १५ ॥
अर्धरात्रिः समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः ।
सर्वे ह्यासन्निरुत्साहाः क्षत्रिया दीनचेतसः ॥ १६ ॥
तव चैव परेषां च गतास्त्रा विगतेषवः ।
ते तदा पारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः ॥ १७ ॥
स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीम् ।
अस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रान्धाः शेरते जनाः ॥ १८ ॥
रथेष्वन्ये गजेष्वन्ये हयेष्वन्ये च भारत ।
निद्रान्धा नो बुबुधिरे काञ्चिच्चेष्टां नराधिप ॥ १९ ॥

हुए दोनों सेनाके पुरुषोंका आपसमें गर्जते हुए सिंहनाद शब्दके सहित महा-घोर युद्ध आरंभ हुआ। महाराज! दोनों सेनाके महारथी योद्धा लोग पहिले तो दिन रात थके हुए थे; उस पर अब रात्रिके समय निद्राके वशमें होके चेत-रहितके समान नींदसे युक्त होगये; उस समय वह महाभयङ्करी शूरवीरोंके प्राणको हरण करनेवाली त्रियामा रात्रि उन योद्धा ओंके वास्ते सहस्र रात्रिके समान बोध होने लगी। (१२–१५)

जो हो, इसी प्रकार निद्रासे झुमते हुए योद्धाओंको युद्ध करते करते आधी रात बीत गई। परन्तु उस समय क्या कौरवोंकी सेनाके योद्धा और क्या पाण्ड-वोंकी ओरके वीर लोग इस प्रकार निद्राके वशमें होगये, कि उन लोगोंके हाथसे अस्त्र शस्त्र छूट छूट कर पृथ्वीमें गिरने लगे और कितने ही पुरुष चेतरहितके समान नींदसे मतवारे होकर इधर ऊधर सेनाके बीच गिर पडे। तो भी पराक्रमी मुख्य मुख्य शूरवीर योद्धाओंने वीर धर्मको स्मरण करके अपनी सेनाके व्यूहको परित्याग नहीं किया। परन्तु और सम्पूर्ण योद्धा लोग निद्राके वशमें होके अस्त्र शस्त्रोंको त्याग कर कोई रथ, कोई हाथी और कोई घोडोंके ऊपर शयन करने लगे। (१५–१९)

उस समय बहुतसे राजा लोग भी ऐसे निद्रित होगये, कि दूसरे योद्धाओंने

तानन्ये समरे योधाः प्रेषयन्तो यमक्षयम् ।
स्वप्नायमानास्त्वपरे परानतिविचेतसः ॥ २० ॥
आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परानपि ।
नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रान्धास्ते महारणे ॥ २१ ॥
अस्माकं च महाराज परेभ्यो बहवो जनाः।
योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो निद्रासंरक्तलोचनाः ॥ २२ ॥
संसर्पन्तो रणे केचिन्निद्रान्धास्ते तथाऽपरान् ।
जघ्नुः शूरा रणे शूरांस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ २३ ॥
हन्यमानमथाऽऽत्मानं परेभ्यो बहवो जनाः ।
नाऽभ्यजानन्त समरे निद्रया मोहिता भृशम् ॥ २४ ॥
तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः ।
उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः संनादयन्दिशः ॥ २५ ॥
श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्वे एव सवाहनाः ।
तमसा चाऽऽवृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥ २६ ॥

उनका प्राण नाश किया, तौ भी वे लोग कुछ न जान सके। उस महा संग्राममें और कितने ही योद्धा नींदमें पडे हुए स्वप्न देखकर शत्रुओंको सम्मुख उपस्थित हुए समझके अज्ञानताके कारण कोई अपनेको कोई अपनी ओरके ही पुरुषोंको और कोई कोई शत्रु सेनाके योद्धाओंका वध करने लगे और नींदसे अंध होकर अनेक प्रकारके वचनोंको कहने लगे ॥ (१९-२१)

महाराज! उस समय शत्रुओंकी अपेक्षा तुम्हारी सेनाके अनगिनत योद्धा लोग निद्रित होकर भी युद्ध करनेकी इच्छासे रणभूमिके बीच स्थिर थे। उस महाघोर रात्रिके समय नींदमें पडे हुए बहुतेरे शूरवीर योद्धा रणभूमिमें घूमते हुए शत्रुओंके अनेक शूरवीरोंको मारने लगे ॥ बहुतेरे योद्धा ऐसे नीदमें पडके चेत रहितके समान होगये थे, कि शत्रुओंके हाथसे मारे जाने पर भी कुछ न मालूम कर सके ॥ (२२-२४)

महाराज! उस ही समय पराक्रमी अर्जुन दोनों सेनाके योद्धाओंका इस प्रकार नाश होते देख ऊंचे स्वर से सम्पूर्ण दिशाओंको अनुनादित करते हुए यह वचन बोले, हे कौरव और पाण्डवोंकी ओरके शूरवीर पुरुषो! तुम लोग अपने वाहनोंके सहित बहुतही थके तथा निद्रासे युक्त होगये हो और सेनाके सम्पूर्ण पुरुष धूलिके उडने और अन्धकार

ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः।
निमीलयत चाऽत्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम् ॥ २७ ॥
ततो विनिद्रा विश्रान्ताश्चन्द्रमस्युदिते पुनः।
संसाधयिष्यथाऽन्योन्यं संग्रामं कुरुपाण्डवाः ॥ २८ ॥
तद्वचः सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य विशाम्पते।
अरोचयन्त सैन्यानि तथा चाऽन्योन्यमब्रुवन् ॥ २९ ॥
चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तथा दुर्योधनेति च।
उपारमत पाण्डूनां विरता हि वरूथिनी ॥ ३० ॥
तथा विक्रोशमानस्य फाल्गुनस्य ततस्ततः।
उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत ॥ ३१ ॥
तामस्य वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः।
सर्वसैन्यानि चाऽक्षुद्रां प्रहृष्टाः प्रत्यपूजयन् ॥ ३२ ॥
तत्सम्पूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत।
मुहूर्तमस्वपन्राजञ्श्रान्तानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥
सा तु सम्प्राप्य विश्रामं ध्वजिनी तव भारत।

से छिप गये हैं, इस से यदि इच्छा होवे तो थोडी देरके वास्ते युद्धसे निवृत्त होके इसी रणभूमिके बीच सो सकते हो और चन्द्रमाके उदय होने पर तुम लोग निद्रासे सावधान होकर स्वर्ग प्राप्त होनेकी अभिलाषासे फिर युद्ध करना ॥ (२५-२८)

हे प्रजानाथ! धर्मात्मा सेनापति और सेनाके शूरवीर योद्धा लोग दयालु अर्जुनका वचन सुनकर सब कोई इस विषयमें संमत हुए; और सब कोई ऊंचे स्वरसे पुकारके कहने लगे, हे कर्ण! हे महाराज दुर्योधन! यह देखो पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेना युद्धसे निवृत्त होरही है, इससे आप लोग युद्ध करनेसे शान्त होइये ॥ (२९-३०)

सञ्जय बोले, महाराज! इसी भांति अर्जुनके वचनके अनुसार कौरव और पाण्डवोंकी सेना युद्धभूमिसे निवृत्त हुई॥ उस समय देवता महात्मा ऋषि लोग और सेनाके सम्पूर्ण पुरुष आनन्दित होके अर्जुनके वचनकी अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगे॥ विशेष करके थके हुए योद्धाओंने अर्जुनके दयायुक्त वचनोंकी अत्यन्त ही प्रशंसा करी और थोडे समयके वास्ते सो गये॥ (३१-३३)

महाराज! तुम्हारी सेनाके पुरुष सुख पूर्वक विश्राम करके इस प्रकार अर्जुनकी

सुखमासवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ॥ ३४ ॥
त्वयि वेदास्तथाऽस्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ ।
धर्मस्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चाऽनघ ॥ ३५ ॥
यच्चाऽऽश्वस्तास्तवेच्छामः शर्म पार्थ तदस्तु ते ।
मनसश्च प्रियानर्थान्वीर क्षिप्रमवाप्नुहि ॥ ३६ ॥
इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः ।
निद्रया समवाक्षिप्तास्तूष्णीमासन्विशाम्पते ॥ ३७ ॥
अश्वपृष्ठेषु चाऽप्यन्ये रथनीडेषु चाऽपरे ।
गजस्कन्धगताश्चाऽन्ये शेरते चाऽपरे क्षितौ ॥ ३८ ॥
सायुधाः सगदाश्चैव सखड्गाः सपरश्वधाः ।
सप्रासकवचाश्चाऽन्ये नराः सुप्ताः पृथक्पृथक् ॥ ३९ ॥
गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूरेणुगुण्ठितैः ।
निद्रान्धा वसुधां चक्रुर्घ्राणनिःश्वासशीतलाम् ॥ ४० ॥
सुप्ताः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो महीतले ।
विकीर्णा गिरयो यद्वन्निःश्वसद्भिर्महोरगैः ॥ ४१ ॥

प्रशंसा और मङ्गलकामना करने लगे ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! हे वीर ! तुममें ही सम्पूर्ण वेद, बुद्धि, पराक्रम, धर्म और समस्त अस्त्रशस्त्र भली भांतिसे विराजमान हैं; और सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर तुम्हारे शरीरमें दया है; हे पृथापुत्र अर्जुन ! हम लोग विश्राम करके सुखी होकर जिस भांति तुम्हारे मङ्गल कामनाकी अभिलाषा करते हैं, वह अवश्य ही सिद्ध होवेगी; अधिक क्या कहा जावे तुम्हारी शीघ्रही अभीष्ट-कामना पूर्ण होवेगी ॥ (३४-३६)

इसी भांति वे महारथी योद्धा लोग अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए निद्रित होगये । अनन्तर कोई हाथी, कोई घोडे, कोई रथोंमें और कितने ही योद्धा पृथ्वीपर शयन करने लगे । उस समय वे सम्पूर्ण योद्धा लोग कवच, आभूषण और अस्त्रशस्त्रोंको धारण किये हुए ही पृथक् पृथक् रणभूमिके बीच शयन करने लगे ॥ (३७-३९)

निद्रासे मतवारे होकर कितने ही हाथी सर्पसमान अपने सूण्डोंसे सांस लेते तथा सांस छोडते हुए पृथ्वीको शीतल करने लगे ॥ जब वे सम्पूर्ण हाथी निद्रित होकर रणभूमिके बीच बार बार सांस छोडने लगे उस समय सूण्डोंके सहित उनके शरीर मानो सर्पोंसे युक्त पर्वतकी भांति दिखाई देने लगे ॥ और

समां च विषमां चक्रुः खुराग्रैर्विकृतां महीम् ।
हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते केसरालम्बिभिर्युगैः ॥ ४२ ॥
सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु सर्वशः ।
एवं हयाश्च नागाश्च योधाश्च भरतर्षभ ।
युद्धाद्विरम्य सुषुपुः श्रमेण महताऽन्विताः ॥ ४३ ॥
तत्तथा निद्रया मग्नमबोधं प्रास्वपद्बलम् ।
कुशलैः शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवाऽद्भुतम्॥ ४४ ॥
ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः परस्परं सायकविक्षताङ्गाः ।
कुम्भेषु लीनाः सुषुपुर्गजानां कुचेषु लग्ना इव कामिनीनाम्॥ ४५ ॥
ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता ॥ ४६ ॥
दशशताक्षककुब्दारिनिःसृतः किरणकेसरभासुरपिञ्जरः ।
तिमिरवारणयूथविदारणः समुदियादुदयाचलकेसरी ॥ ४७ ॥
हरवृषोत्तमगात्रसमद्युतिः स्मरशरासनपूर्णसमप्रभः ।

सुवर्णभूषित कवचोंसे युक्त घोडे अपने पांवसे पृथ्वीको खोदते और लोटते हुए श्रमरहित हुए और वे सम्पूर्ण घोडे रथोंमें जुते हुए ही निद्रित होगये । इसी प्रकार अत्यन्त ही थके हुए हाथी घोडे और सेनाके योद्धा लोग युद्धसे निवृत्त होकर रणभूमिके बीच शयन करने लगे ॥ (४०—४३)

महाराज ! उस समय जब वे सम्पूर्ण योद्धा वाहनोंके सहित इस प्रकार शयन करने लगे, उस समय ऐसा बोध होता था, मानो उत्तम शिल्पी पुरुषोंने हाथी घोडे और मनुष्योंके सहित चित्रपटमें चित्र खींच रक्खा है ॥ आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे क्षत-विक्षत शरीरसे युक्त और सुन्दर कुण्डलोंसे शोभित क्षत्रिय योद्धा लोग हाथियोंके ऊपर शयन करते हुए इस प्रकार दीख पडते थे मानो कामिनियोंके कुचोंके ऊपर शयन कर रहे हैं ॥ (४४—४५)

तिसके अनन्तर नेत्रोंको आनन्द देनेवाले कामिनी गल्लके समान पाण्डुर वर्ण चन्द्रमा पूर्वदिशाकी ओरसे उदय होते दीख पडे ॥ उससे पूर्व दिशा शोभा युक्त हुई। वह उदयाचलवासी केशरीकी भांति पूर्व दिशारूपी गुफासे बाहर होकर किरण केशरसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करके हस्ति यूथरूपी अन्धकारको नष्ट करते हुए उदय हुए ॥ महाराज ! हर–वृषाङ्क समान श्वेतवर्णवाले नवीन

नववधूस्मितचारुमनोहरः प्रविसृतः कुमुदाकरबान्धवः ॥ ४८ ॥
ततो मुहूर्ताद्भगवान्पुरस्ताच्छशलक्षणः ।
अरुणं दर्शयामास ग्रसञ्ज्योतिःप्रभां प्रभुः ॥ ४९ ॥
अरुणस्य तु तस्याऽनु जातरूपसमप्रभम् ।
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमवासृजत् ॥ ५० ॥
उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः ।
पर्यगच्छञ्छनैः सर्वा दिशः खं च क्षितिं तथा॥ ५१ ॥
ततो मुहूर्ताद्भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाऽभवत् ।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाऽऽशु तमस्तथा ॥ ५२ ॥
प्रतिप्रकाशिते लोके दिवाभूते निशाकरे ।
विचेरुर्न विचेरुश्च राजन्नक्तञ्चरास्ततः ॥ ५३ ॥
बोध्यमानं तु तत्सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य रश्मिभिः ।
बुबुधे शतपत्राणां वनं सूर्यांशुभिर्यथा ॥ ५४ ॥
यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितः सागरोऽभवत् ।
तथा चन्द्रोदयोद्धूतः स बभूव बलार्णवः ॥ ५५ ॥

वधूके हांसीकी भांति प्रकाशित अत्यन्त मनोहर कामदेवके कान पर्यन्त खिंचे हुए धनुषकी भांति मण्डलाकार रूपसे उदय होकर भगवान कुमुदबन्धु चन्द्रमा मुहूर्त भरके बीच सम्पूर्ण ज्योति वाले पदार्थोंके प्रकाशको हरण करके शशचिन्हके अग्रभागको लालवर्णसे प्रदर्शित करने लगे। तिसके अनन्तर सुवर्णवर्णवाली अपनी किरणोंको धीरे धीरे चारों ओर फैलाने लगे ॥ (४६– ५०)

इसी भांति चन्द्रमाका प्रकाश अन्धकारको नष्ट करता हुआ धीरे धीरे सम्पूर्ण दिशा और पृथ्वीमें व्याप्त होगया ॥ चन्द्रमाके उदय होनेसे सम्पूर्ण दिशा प्रकाशमय होगई और अन्धकार उस समय एकबारगी दूर हो गया ॥ इसी भांति जब चन्द्रमाके उदय होनेपर जगत् प्रकाशमय होगया तब रात्रिचारी जीवजन्तुओंमेंसे कितने ही इधर उधर भ्रमण करनेसे निवृत्त होगये और कितनेही जीवजन्तु रणभूमिमें घूमते हुए भी दीख पडते थे ॥ (५१-५३)

जैसे सूर्यकी किरण पडनेसे कमलका वन प्रफुल्लित होता है वैसे ही निद्रित हुए सेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग चन्द्रमाके प्रकाशसे निद्रासे जागके सावधान होगये ॥ जैसे पूर्णमासीके दिन चन्द्रमा के उदय होनेसे समुद्रकी भयङ्कर तरङ्ग

ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशाम्पते ।
लोके लोकविनाशाय परं लोकमभीप्सताम् ॥५६॥ [८४२२]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि रात्रियुद्धे सैन्यनिद्रायां चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८४॥

सञ्जय उवाच— ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्याऽब्रवीदिदम् ।
अमर्षवशमापन्नो जनयन्हर्षतेजसी ॥ १ ॥

दुर्योधन उवाच—न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः ।
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्षा विशेषतः ॥ २ ॥
यत्तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया ।
त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥ ३ ॥
सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च ।
भवता पाल्यमानास्ते विवर्धन्ते पुनः पुनः ॥ ४ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि ब्राह्मादीनि च यानि ह ।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः ॥ ५ ॥
न पाण्डवेया न वयं नाऽन्ये लोके धनुर्धराः ।

बहुत ऊंची उठती हुई दीख पडती है, वैसे ही वह सेनारूपी समुद्र चन्द्रमाके उदयसे वेगपूर्वक बढने लगा॥ अनन्तर स्वर्ग लोकके गमन करनेकी इच्छासे योद्धाओंका आपसमें फिर महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ (५४—५६)८४२२

द्रोणपर्वमें एकसौ चौरासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ पचासी अध्याय ।

सञ्जय बोले,महाराज ! राजा दुर्योधन इसही समय क्रोधपूर्वक द्रोणाचार्यके समीप जाकर उनके तेज और हर्षको बढाते हुए यह वचन बोले, हे आचार्य ! युद्धभूमिके बीच यदि शत्रुलोग मन मलिन होकर तथा आन्तरिक थकके विश्राम करनेके वास्ते प्रार्थना करें तो-लब्धलक्ष्य पुरुषोंको उस समय किसी प्रकारसे भी क्षमा करनी उचित नहीं है; परन्तु बलवान् पाण्डव लोग युद्धभूमिमें थक गये थे तौभी हम लोगोंने तुम्हारे प्रिय कामनाकी इच्छासे ही उन लोगोंके विषयमें क्षमा किया है ॥ देखिये तुमसे रक्षित होकर पाण्डव लोगोंके पराक्रमकी वार वार वृद्धि होरही है और हम लोग क्रमसे तेज तथा बलसे सब भांति हीन हुए जाते हैं ॥ (१–४)

मुझे यह निश्चय है, कि इस जगत्के बीच ब्राह्म और दिव्य जितने अस्त्र शस्त्र हैं वे सम्पूर्ण तुममें विराजमान हैं ॥ इससे मैं तुम्हारे समीप शपथ करके यह वचन कहता हूं कि आप यदि दृढरूपसे

युध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥
ससुरासुरगन्धर्वानिमाँल्लोकान्द्विजोत्तम ।
सर्वास्त्रविद्भवान्हन्यादिव्यैरस्त्रैर्न संशयः ॥ ७ ॥
स भवान्मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान्विशेषतः ।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम्॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच— एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्च सुतेन ते ।
समन्युरब्रवीद्राजन्दुर्योधनमिदं वचः ॥ ९ ॥
स्थविरः सन्परं शक्त्या घटे दुर्योधनाऽऽहवे ।
अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयगृद्धिना ॥ १० ॥
अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः ।
यद्भवान्मन्यते चापि शुभं वा यदि वाऽशुभम्॥ ११ ॥
तद्वै कर्ताऽस्मि कौरव्य वचनात्तव नाऽन्यथा ।
निहत्य सर्वपञ्चालान्युद्धे कृत्वा पराक्रमम् ॥ १२ ॥

युद्धमें प्रवृत्त होवें तो क्या पाण्डव और क्या हम लोग तथा पृथ्वीके बीच और भी जो धनुर्द्धारियों में अग्रणी वीर हैं, वे कोई भी तुम्हारे समान नहीं हो सकते ॥ हे द्विजसत्तम ! अधिक मैं क्या कहूं आप जिस भांति सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रोंको जानते हैं; उससे निश्चय ही देवता असुर और गन्धर्वोंके सहित सम्पूर्ण लोकको अपने दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे नष्ट करनेमें समर्थ हैं ॥ पाण्डव लोग आपसे विशेष रूपसे हीन हैं तौभी उन्हें अपना शिष्य समझके वा मेरे अभाग्यके कारणसे ही आप सदा सर्वदा पाण्डवोंके विषयमें क्षमा किया करते हैं ॥ (५-८)

सञ्जय बोले, महाराज ! द्रोणाचार्य तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके इसी प्रकार बहुत से वचनोंको सुनके कोपित और उत्तेजित होकर क्रोधपूर्वक उनसे ऐसे वचन बोले, हे दुर्योधन ! मैं वृद्ध होकर भी परम शक्तिके अनुसार युद्ध करता हूं तौभी तुम मेरे विषयमें शङ्का कर रहे हो ॥ जो हो इसके अनन्तर अब मैं तुम्हारे विजयकी अभिलाषासे नीच कर्म करनेमें प्रवृत्त होऊंगा । ये सब सेनाके पुरुष विशेष रूपसे अस्त्र शस्त्रोंकी विद्याको नहीं जानते, मैं अस्त्रज्ञ होकर भी इन लोगोंका नाश करूंगा ॥ जब तुम मुझे आज्ञा देते हो तो चाहे शुभ हो अथवा अशुभ ही होवे मैं अवश्य ही उस कार्यको करनेमें तत्पर होऊंगा । (९-१२)

हे राजन् ! मैं इन अस्त्रोंको स्पर्श

विमोक्ष्ये कवचं राजन्सत्येनाऽऽयुधमालभे ।
मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं श्रान्तमाहवे ॥ १३ ॥
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव ।
तं न देवा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ॥ १४ ॥
उत्सहन्ते रणे जेतुं कुपितं सव्यसाचिनम् ।
खाण्डवे येन भगवान्प्रत्युद्यातः सुरेश्वरः ॥ १५ ॥
सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना ।
यक्षा नागास्तथा दैत्या ये चाऽन्ये बलगर्विताः ॥ १६ ॥
निहताः पुरुषेन्द्रेण तच्चाऽपि विदितं तव ।
गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः ॥ १७ ॥
यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोक्षिता दृढधन्वना ।
निवातकवचाश्चापि देवानां शत्रवस्तथा ॥ १८ ॥
सुरैरवध्याः संग्रामे तेन वीरेण निर्जिताः ।

करके शपथ करता हूं कि आज मैं पराक्रम प्रकाशित करके युद्धभूमिके बीच समस्त पाञ्चाल योद्धाओंका नाश करके तब पीछे अपना कवच उतारूंगा। हे कुरुराज दुर्योधन! तुम जो कुन्तीपुत्र अर्जुनको थका हुआ समझ रहे हो वह तुम्हारा केवल भ्रम मात्र है, मैं यथार्थ रूपसे उसके बल और पराक्रमके विषयको वर्णन करता हूं चित्त लगा कर सुनो ॥ (१२–१४)

उस सव्यसाची अर्जुनके क्रुद्ध होने पर देवता गन्धर्व यक्ष वा राक्षस कोई भी उसे पराजित करनेका उत्साह नहीं कर सकते। खाण्डव वन जलानेके समय जब भगवान् इन्द्र जलकी वर्षा करने लगे उस समय जिस महात्मा अर्जुनने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे उन्हें निवारण किया था और उस समय यक्ष सर्प तथा दैत्य आदि जो कोई अपने बलसे मतवारे होकर उसके संमुख उपस्थित हुए, पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने उस समय संमुख उपस्थित हुए उन सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश किया था वह सब वृत्तान्त तुम्हें भी विदित है। (१४–१७)

देखिये घोषयात्राके समय जब चित्रसेन आदि गन्धर्व तुम लोगोंको हरण करना चाहते थे तब दृढ धनुर्द्धारी अर्जुनने ही उनको पराजित करके तुम्हे छुडाया था। निवातकवच दैत्य सदासे देवतोंके शत्रु थे, देवता लोग किसी प्रकारसे भी उन दैत्योंका नाश नहीं कर सके परन्तु पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने उन

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥ १९ ॥
विजिग्ये पुरुषव्याघ्रः स शक्यो मानुषैः कथम् ।
प्रत्यक्षं चैव ते सर्वं यथा बलमिदं तव ॥ २० ॥
क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टतां नो विशाम्पते ।

सञ्जय उवाच— तं तदाऽभिप्रशंसन्तमर्जुनं कुपितस्तदा ॥ २१ ॥
द्रोणं तव सुतो राजन्पुनरेवेदमब्रवीत् ।
अहं दुःशासनः कर्णः शकुनिर्मातुलश्च मे ॥ २२ ॥
हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये द्विधा कृत्वाऽद्य भारतीम् ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव ॥ २३ ॥
अन्ववर्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाऽब्रवीत् ।
को हि गाण्डीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २४ ॥
अक्षयं क्षपयेत्कश्चित्क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम् ।
तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः ॥ २५ ॥
नाऽसुरोरगरक्षांसि क्षपयेयुः सहायुधम् ।

निवातकवच दैत्योंका तथा हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवोंका वध किया था; इससे ऐसे पराक्रमी अर्जुनको मनुष्य किस भांति पराजित करनेमें समर्थ हो सकेगा! हे प्रजानाथ दुर्योधन! हमलोग विशेष रूपसे यत्नपूर्वक युद्ध कर रहे हैं तो भी अर्जुन जिस प्रकार तुम्हारी सेनाका नाश कर रहा है उसे तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो ॥ (१७-२१)

सञ्जय बोले, महाराज! द्रोणाचार्य जब इसी भांति अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे; तब दुर्योधन क्रुद्ध होकर फिर उनसे यह वचन बोले, आज मैं दुःशासन कर्ण और मेरे मामा शकुनि, हम लोग एकत्रित होकर सेनाको दो हिस्सेमें विभक्त करके युद्धभूमिमें अर्जुनका नाश करेंगे ॥ (२१-२३)

महाराज! भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य दुर्योधनके वचनको सुन कर कुछ भी प्रतिवाद न करके हंसते हंसते उनसे यह बोले, महाराज! तुम्हारा मङ्गल होवे, परन्तु प्रभावमें जलती हुई अग्निके समान युद्धमें अक्षय स्वरूप क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनका वध कर सके पृथ्वीके बीच ऐसा क्षत्रिय योद्धा कौन है? कोई भी तो नहीं दीख पडता है। मनुष्योंकी तो कुछ बात ही नहीं है, यदि अर्जुन अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके युद्धभूमिके बीच स्थित रहे तो यक्षोंके स्वामी कुबेर, इन्द्र,

मूढास्त्वेतानि भाषन्ते यानीमान्यात्थ भारत॥ २६ ॥
युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान्को व्रजेद्गृहान्।
त्वं तु सर्वाभिशङ्कित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः ॥ २७ ॥
श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद्वक्तुमिहेच्छसि।
गच्छ त्वमपि कौन्तेयमात्मार्थे जहि मा चिरम्॥२८॥
त्वमप्याशंससे योद्धुं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि।
इमान्किं क्षत्रियान्सर्वान्घातयिष्यस्यनागसः॥ २९ ॥
त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयाऽर्जुनम्।
एष ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ३० ॥
दुर्द्यूतदेवी गान्धारे प्रयात्वर्जुनमाहवे।
एषोऽक्षकुशलो जिह्मो द्यूतकृत्कितवः शठः ॥ ३१ ॥
देविता निकृतिप्रज्ञो युधि जेष्यति पाण्डवान्।
त्वया कथितमत्यर्थं कर्णेन सह हृष्टवत् ॥ ३२ ॥

यमराज, वरुण, असुर, सर्प और राक्षस आदि कोई भी अर्जुनका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं। (२३-२६)

हे राजन्! तुमने जो कुछ कहे मूढ पुरुष ही ऐसे वचनोंको कहा करते हैं। कौन पुरुष अर्जुनके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त होकर कुशलपूर्वक लौट कर घर जा सकता है? परन्तु तुम अत्यन्त ही पाप-बुद्धिसे युक्त क्रूर और सबके ऊपर शङ्का करते रहते हो; इस ही कारण जो पुरुष तुम्हारे हितके कार्योंमें रत हैं, उनके विषयमें इसी प्रकार कटूक्ति किया करते हो। हे राजेन्द्र! तुम भी तो श्रेष्ठ क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए हो; और उस कुन्ती-पुत्र अर्जुनके सङ्ग सदा युद्ध करनेकी इच्छा करते रहते हो; इससे तुम रणभूमिमें उसके सम्मुख जाकर शीघ्रही उसका नाश करो, विशेष करके तुम ही इस शत्रुताके मूल स्वरूप हो; तब इन निर-पराधी राजाओंके नाशकी क्या आवश्य-कता है? तुम स्वयं युद्धभूमिके बीच अर्जुन के सङ्ग युद्ध करने में प्रवृत्त हो जाओ। (२६—३०)

हे गान्धारी पुत्र! सम्पूर्ण अनिष्टके मूल स्वरूप जुआडी बुद्धिमान् और क्षत्रिय धर्ममें रत तुम्हारा मामा शकुनि अर्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेको गमन करे। वह कुटिल, कपटी, शठ, दुष्टोंमें अग्रणी है; उसीने बाजी लगाके जूआ खेला था; इस समय युद्धमें भी शकुनि पाण्डवोंको पराजित करेगा इसमें सन्देह नहीं है! और तुमने हर्ष पूर्वक कर्णके सङ्ग अज्ञा-

असकृच्छून्यवचन्मोहाद्धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः।
अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ॥ ३३ ॥
पाण्डुपुत्रान्हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः।
इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि ॥ ३४ ॥
अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग्भव तैः सह।
एष ते पाण्डवः शत्रुरविशङ्कोऽग्रतः स्थितः ॥ ३५ ॥
क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात्।
दत्तं भुक्तमधीतं च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सितम् ॥ ३६ ॥
कृतकृत्योऽनृणश्चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम्।
इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परे।
द्वैधीकृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत्तदा ॥ ३७ ॥ [८४५९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणदुर्योधनभाषणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

सञ्जय उवाच— त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत।

नताके कारण बार बार राजा धृतराष्ट्रके समीप जैसे व्यर्थ बडाई की थी, कि "हे पिता! मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन, हम तीन पुरुष युद्धभूमिमें पाण्डुपुत्रोंका नाश करेंगे।" पहिले प्रायः प्रति सभामें ही तुम इसी भांति अपनी बडाई किया करते थे; इस समय कर्ण आदि वीरोंके सङ्ग मिलके उस प्रतिज्ञाको पूर्ण करके अपना वचन सत्य करो। (३१—३५)

यह देखो अजेय शत्रु पाण्डुपुत्र अर्जुन तुम्हारे अगाडी स्थित है। यदि तुम क्षत्रिय धर्मकी रक्षा करो, तो इस युद्धमें विजयलाभकी अपेक्षा तुम्हारी मृत्यु भी प्रशंसनीय गिनी जावेगी। हे दुर्योधन! इस पृथ्वी पर तुमने दान; अध्ययन और भोग आदि बहुत कुछ किया है, अधिक क्या कहा जावे, तुमने इच्छानुसार सम्पूर्ण ऐश्वर्य लाभ किया है, तुम देवता और पितरोंके ऋणसे मुक्त होकर एक प्रकार कृतकार्य भी होगये हो। इससे अब भय मत करो, स्वयं अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हो जाओ।३५-३७

द्रोणाचार्य ऐसा वचन कहके जिस स्थान पर शत्रु लोग युद्धके वास्ते तैयार थे, वहां पर उपस्थित हुए; और राजा दुर्योधन भी सेनाके दोभाग बनाकर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए॥ (३७) [८४५९]

द्रोणपर्वमें एकसौ पचासी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ छियासी अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! रात्रिके तीन भाग व्यतीत हुए और एक भाग बाकी

कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशाम्पते ॥ १ ॥
अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरःसरः ।
अरुणोऽभ्युदयाञ्चक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाऽम्बरम् ॥ २ ॥
प्राच्यां दिशि सहस्रांशोररुणेनाऽरुणीकृतम् ।
तापनीयं यथा चक्रं भ्राजते रविमण्डलात् ॥ ३ ॥
ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययानान्युत्सृज्य सर्वे कुरुपाण्डुयोधाः ।
दिवाकरस्याऽभिमुखं जपन्तः सन्ध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः ॥४॥
ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान् ।
अभ्यद्रवत्सपञ्चालान्दुर्योधनपुरोगमः ॥ ५ ॥
द्वैधीकृतान्कुरून्दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
सपत्नान्सव्यतः कृत्वा अपसव्यमिमं कुरु ॥ ६ ॥
स माधवमनुज्ञाय कुरुष्वेति धनञ्जयः ।
द्रोणकर्णौ महेष्वासौ सव्यतः पर्यवर्तत ॥ ७ ॥
अभिप्रायं तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरञ्जयः ।
आजिशीर्षगतं पार्थं भीमसेनोऽभ्युवाच ह ॥ ८ ॥

था; उस समयमें फिर हर्षित होके कौरव और पाण्डवलोग महाघोर संग्राम करने लगे ॥ तिसके अनन्तर सूर्यके अगाड़ी स्थित अरुण चन्द्रमाका सम्पूर्ण प्रकाश हरण करते हुए सूर्यको लाल वर्ण करके उदय हुए, उस समय आकाशमें अरुणाई छागई ॥ इसी समय पूर्वदिशामें सहस्रांशु भगवान् सूर्यका मण्डल दीखने लगा। अरुणसे अरुणवर्णवाला वह सूर्य मण्डल तपे हुए सोनेके चक्रके समान शोभित होने लगा ॥ तब वहांके कौरव और पाण्डवोंकी ओर के सब योद्धा लोग रथ, अश्व,पालकी आदि अपने अपने वाहनोंको छोड़कर भगवान् सूर्यके संमुख मुंह करके सन्ध्योपासना पूर्वक हाथ जोड़कर जप जपने लगे ॥ जब कौरवोंकी सेना दो हिस्सोंमें विभक्त हुई, तब द्रोणाचार्य दुर्योधनको अगाड़ी करके सोमक पाण्डव और पाञ्चाल योद्धाओंकी ओर दौड़े ॥ (१–५)

श्रीकृष्णचन्द्र कौरवोंकी सेनाको दो हिस्सोंमें विभक्त हुई देखकर अर्जुनसे बोले, हे सव्यसाची अर्जुन! तुम इन शत्रुओंको बायीं ओर कर दो ॥ अर्जुन श्रीकृष्णसे "ऐसा ही होवे" यह वचन कहके धनुर्द्धारियोंमें अग्रगण्य द्रोणाचार्य और कर्णको बायीं ओरकी सेनामें किया ॥ (६–७)

युद्धभूमिके बीच स्थित शत्रुनाशन

भीमसेन उवाच— अर्जुनाऽर्जुन वीभत्सो शृणुष्वैतद्वचो मम ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥
अस्मिंश्चेदागते काले श्रेयो न प्रतिपत्स्यसे ।
असम्भावितरूपस्त्वं सुनृशंसं करिष्यसि ॥ १० ॥
सत्यश्रीधर्मयशसां वीर्येणाऽऽनृण्यमाप्नुहि ।
भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ अपसव्यमिमान्कुरु ॥ ११ ॥
सञ्जय उवाच— स सव्यसाची भीमेन चोदितः केशवेन च ।
कर्णद्रोणावतिक्रम्य समन्तात्पर्यवारयत् ॥ १२ ॥
तमाजिशीर्षमायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षभान् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ १३ ॥
नाऽशक्नुवन्वारयितुं वर्धमानमिवाऽनलम् ।
अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चाऽपि सौबलः ॥ १४ ॥
अभ्यवर्षञ्छरव्रातैः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ।
तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रविदां वरः ॥ १५ ॥

भीमसेन श्रीकृष्णके अभिप्रायको समझ कर अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! मैं जो कुछ कहता हूं, उसे सुनो । क्षत्रियोंकी माता जिस कार्यके वास्ते पुत्र उत्पन्न करती है उसका समय अब उपस्थित हुआ है । हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! ऐसा समय प्राप्त होने पर भी यदि तुम अपने कल्याणके वास्ते उपाय नहीं करोगे; तो अत्यन्त नृशंसताका कार्य कहा जावेगा; और पृथ्वीके बीच तुम्हारी अकीर्ति होवेगी, इससे वामभागमें स्थित कौरवोंकी सेनाको भेद करके अपने पराक्रमके अनुसार सत्य धर्म यश और लक्ष्मीके समीप अऋणी होजाओ॥८-११

संजय बोले, महाराज ! श्रीकृष्ण और भीमसेनकी आज्ञासे अर्जुनने द्रोणाचार्य और कर्णको अतिक्रम करके सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओं को आक्रमण किया ॥ तब वह पराक्रमी वीर अपने अस्त्ररूपी अग्निसे तुम्हारी सेनाके शूरवीर क्षत्रिय योद्धाओंको भस्म करते हुए तुम्हारी सेनाके बीच प्रविष्ट हुए, उस समय तुम्हारी सेनाके मुख्य मुख्य योद्धा लोग अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रमको प्रकाशित करके भी बढे हुए अग्निके समान उसे निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ (१२–१४)

तब दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि कुन्तीपुत्र अर्जुनके ऊपर अनगिनत बाणोंकी वर्षा करने लगे । अस्त्र-

कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत्।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो जितेन्द्रियः ॥ १६ ॥
सर्वानविध्यन्निशितैर्दशभिर्दशभिः शरैः।
उद्धूता रजसो वृष्टिः शरवृष्टिस्तथैव च ॥ १७ ॥
तमश्च घोरं शब्दश्च तदा समभवन्महान्।
न द्यौर्न भूमिर्न दिशः प्राज्ञायन्त तथागते ॥ १८ ॥
सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवाऽभवत्।
नैव ते न वयं राजन्प्राज्ञासिष्म परस्परम् ॥ १९ ॥
उद्देशेन हि तेन स्म समयुध्यन्त पार्थिवाः।
विरथा रथिनो राजन्समासाद्य परस्परम् ॥ २० ॥
केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु च।
हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनो हताः ॥ २१ ॥
जीवन्त इव तत्र स्म व्यदृश्यन्त भयार्दिताः।
हतान्गजान्समाश्लिष्य पर्वतानिव वाजिनः ॥ २२ ॥

शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले अर्जुन उन लोगोंके चलाये हुए बाणोंको अपने बाणजालसे निवारण करके लगातार उन लोगोंके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। इसी प्रकार हस्तलाघवके सहित अर्जुनने उन लोगोंके चलाये हुए अस्त्रशस्त्रोंको निवारण करके उन हर एक योद्धाओंको दश दश बाणोंसे विद्ध किया। (१४-१७)

उस समय धूलिके उडने बाणोंके चलने और शूरवीरोंके सिंहनादसे वह रणभूमि अन्धकारमय होकर भयङ्कर बोध होने लगी। उस समय सम्पूर्ण दिशा, आकाश तथा पृथ्वी कुछ भी नहीं दीख पडते थे॥ विशेष करके सेनाके पुरुषोंके पांवके धकेसे जो धूलि उडी उससे सब कोई रणभूमिके बीच अन्धेकी भांति आंखोंको मूंद के युद्धभूमिमें स्थित हुए। उससमय क्या शत्रुसेनाके पुरुष और क्या अपनी सेनाके पुरुष कोई भी नहीं दीख पडते थे; उस समय राजा लोग केवल अनुमानसे ही युद्ध करने लगे। (१७-२०)

रथी योद्धा रथ-रहित होके आपसमें बाहु वर्म और केशोंको आकर्षण करते हुए युद्ध करने लगे। कितने ही रथी घोडे सारथीसे रहित होनेपर भयभीत होकर पृथ्वीपर गिरके चेष्टारहित हुएकी भांति मालूम होते थे। इसी भांति घुडसवार योद्धा लोग भी घोडोंके सहित

गतसत्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः ।
ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामादुत्तरां दिशम् ॥ २३ ॥
आतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
तमाजिशीर्षादेकान्तमपक्रान्तं निशम्य तु ॥ २४ ॥
समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते ।
भ्राजमानं श्रिया युक्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २५ ॥
द्रोणं दृष्ट्वा परे त्रेसुश्चेलुर्मम्लुश्च भारत ।
आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ २६ ॥
नैनमाशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा ।
केचिदासन्निरुत्साहाः केचित्क्रुद्धा मनस्विनः ॥ २७ ॥
विस्मिताश्चाऽभवन्केचित्केचिदासन्नमर्षिताः ।
हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन्नराधिपाः ॥ २८ ॥
अपरे दशनैरोष्ठानदशन्क्रोधमूर्च्छिताः ।
व्याक्षिपन्नायुधान्यन्ये ममृदुश्चाऽपरे भुजान् ॥ २९ ॥
अन्ये चाऽन्वपतन्द्रोणं त्यक्तात्मानो महौजसः ।

पर्वतके समान मरेहुए हाथियोंके समूह में छिपकर मरे हुए की भांति दिखाई देते थे। (२०-२३)

इस ही समय द्रोणाचार्य संग्रामभूमि में उत्तर ओर गमन करके धूएंसे रहित जलती अग्निकी भांति मालूम होने लगे; पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष द्रोणाचार्यको युद्धभूमिसे पृथक् देखकर उनसे भयभीत होकर कांपने लगे। महाराज! उस समय शत्रु लोग द्रोणाचार्यको दिव्यश्रीसे युक्त जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी देखकर भयभीत उत्साह रहित होकर युद्धभूमिसे विचलित होने लगे। जैसे दानव लोग देवराज इन्द्रको पराजित करनेमें उत्साह रहित होगये थे, वैसे ही पाण्डवोंने शत्रुसेनाको आवाहन करने-वाले मदचूते हाथीकी भांति द्रोणाचार्यको पराजित करनेकी आशा नहीं किया। (२३-२७)

राजाओंके बीच कितने ही योद्धा उत्साह रहित और भयभीत होगये थे; परन्तु कोई कोई निर्भयचित्तवाले शूरवीर पुरुष अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर ओंठ काटते दांत कटकटाते और अस्त्रोंको चलाते हुए उनकी ओर गमन करने लगे। कितने ही महाबलवान् शूरवीर योद्धा लोग अपने प्राणकी आशा त्यागके वेगपूर्वक द्रोणाचार्यकी ओर दौडे।

पाञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः ॥ ३० ॥
समसज्जन्त राजेन्द्र समरे भृशवेदनाः ।
ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रति ययू रणे ॥ ३१ ॥
तथा चरन्तं संग्रामे भृशं समरदुर्जयम् ।
द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशाम्पते ॥ ३२ ॥
चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाऽभ्ययुर्युधि ।
तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥
त्रिभिर्द्रोणोऽहरत्प्राणांस्ते हता न्यपतन्भुवि ।
ततो द्रोणोऽजयद्युद्धे चेदिकैकेयसृञ्जयान् ॥ ३४ ॥
मत्स्यांश्चैवाऽजयत्कृत्स्नान्भारद्वाजो महारथान् ।
ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवासृजत् ॥ ३५ ॥
द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे ।
तन्निहत्येषुवर्षं तु द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३६ ॥
तौ शरैश्छादयामास विराटद्रुपदावुभौ ।
द्रोणेन च्छाद्यमानौ तु क्रुद्धौ संग्राममूर्धनि ॥ ३७ ॥

विशेष करके पाञ्चालयोद्धा द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित तथा भयभीत होकर भी महाघोर संग्राम करने लगे। २७-३१

इसी समय युद्धदुर्मद द्रोणाचार्य जब इस प्रकार प्रबल वेगके सहित युद्धभूमिमें घूमने लगे, तब पाञ्चालराज द्रुपद और मत्स्यराज विराट युद्ध करनेके वास्ते उनके संमुख उपस्थित हुए। महाराज! तिसके अनन्तर राजा द्रुपदके तीन पौत्र और महाधनुर्द्धर चेदिदेशीय योद्धा लोग द्रोणाचार्यकी ओर दौडे। उन लोगोंको संमुख आते देख द्रोणाचार्यने अपने तेजबाणोंसे राजा द्रुपदके तीनों पौत्रोंको प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिरा-दिया। (३१-३४)

तिसके अनन्तर भरद्वाजपुत्र महारथी द्रोणाचार्यने युद्धभूमिमें स्थित चेदी, केकय, सृञ्जय और सम्पूर्ण मत्स्यदेशीय योद्धाओंको पराजित किया। सेनाके पुरुषोंको भागते देख राजा द्रुपद और विराट क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। अनन्तर क्षत्रियोंके नाश करनेवाले द्रोणाचार्यने उन लोगोंकी बाण वर्षाको निवारण करके राजा द्रुपद और विराटको अपने बाणजालसे छिपा दिया। तब क्रुद्ध स्वभाववाले वे दोनों राजा अत्यन्त क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यको अन-

द्रोणं शरैर्विव्यधतुः परमं क्रोधमास्थितौ ।
ततो द्रोणो महाराज क्रोधामर्षसमन्वितः ॥ ३८ ॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां चिच्छेद धनुषी तयोः ।
ततो विराटः कुपितः समरे तोमरान्दश ॥ ३९ ॥
दश चिक्षेप च शरान्द्रोणस्य वधकांक्षया ।
शक्तिं च द्रुपदो घोरामायसीं स्वर्णभूषिताम् ॥ ४० ॥
चिक्षेप भुजगेन्द्राभां क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ।
ततो भल्लैः सुनिशितैश्छित्त्वा तांस्तोमरान्दश ॥४१॥
शक्तिं कनकवैदूर्यां द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।
ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः ॥ ४२ ॥
द्रुपदं च विराटं च प्रेषयामास मृत्यवे ।
हते विराटे द्रुपदे केकयेषु तथैव च ॥ ४३ ॥
तथैव चेदिमत्स्येषु पञ्चालेषु तथैव च ।
हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु ॥ ४४ ॥
द्रोणस्य कर्म तद् दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः ।
शशाप रथिनां मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ४५ ॥

गिनत बाणोंसे विद्ध करने लगे।३४-३८

महाराज ! उस समय द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण धारवाले भालेसे उन दोनों राजाओंके धनुषको काट दिया। धनुष कटनेपर वे दोनों पराक्रमी राजा बहुत ही क्रुद्ध हुए। अनन्तर विराटने दश तोमर और दश बाण चलाये; राजा द्रुपदने सर्पके समान सुवर्णभूषित लौहमयी एक शक्ति लेकर द्रोणाचार्यकी ओर चलाई। (३८-४१)

उसे देखकर द्रोणाचार्यने तेज धार-वाले भालोंसे राजा विराटके बाण और तोमरोंको काटके फिर अनगिनत बाणों से राजा द्रुपदकी भुजासे छूटी हुई सुवर्णभूषित उस प्रकाशमान शक्तिको निवारण किया। तिसके अनन्तर शत्रु-नाशन द्रोणाचार्यने तेज धारवाले दो भल्लोंसे राजा विराट और द्रुपदका वध करके उन दोनों वीरोंको यमपुरीमें भेज दिया ॥ (४१-४३)

महाराज ! जब राजा द्रुपद और विराट, अनगिनत केकय, चेदी, मत्स्य, पाञ्चालदेशीय बहुतेरे शूरवीर योद्धा तथा राजा द्रुपदके तीन पौत्र मारे गये, तब महाबली धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके इस भयङ्कर कर्मको देखकर दुःख और

इष्टापूर्तात्तथा क्षात्राद्ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु ।
द्रोणो यस्याऽद्य मुच्येत यं वा द्रोणः पराभवेत् ॥ ४६ ॥
इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्मताम् ।
आयाद् द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा ॥ ४७ ॥
पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्पाण्डवैः सह ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चाऽपि सौबलः ॥ ४८ ॥
सोदर्याश्च यथामुख्यास्तेऽरक्षन्द्रोणमाहवे ।
रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं सर्वैस्तैस्तु महारथैः ॥ ४९ ॥
यतमानास्तु पञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ।
तत्राऽक्रुध्यद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ५० ॥
स एनं वाग्भिरुग्राभिस्ततक्ष पुरुषर्षभः ।
भीमसेन उवाच- द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः ॥ ५१ ॥
कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेताऽरिमवस्थितम् ।
पितृपुत्रवधं प्राप्य पुमान्कः परिपालयेत् ॥ ५२ ॥

क्रोधसे परिपूर्ण होके सम्पूर्ण महारथियोंके बीच इस प्रकार प्रतिज्ञा की, "आज यदि मैं युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके निकटसे पराजित होऊं, अथवा यदि आज द्रोणाचार्य मेरे हाथसे मुक्त होसकें; तो मैं इष्ट, आपूर्त, तथा ब्राह्मण्य और क्षात्र धर्मसे भ्रष्ट होऊंगा।" इसी भांति जब पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने सम्पूर्ण धनुर्धारियोंके सम्मुख ऐसी प्रतिज्ञा करके द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते रणभूमिमें गमन किया ॥(४३-४७)

उस ही समय पाण्डव और पाञ्चाल सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग इकट्ठे होकर द्रोणाचार्यके ऊपर प्रहार करने लगे। उसे देखकर अपने मुख्य मुख्य बलवान् भाइयोंके सहित राजा दुर्योधन कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए, जब द्रोणाचार्य रणभूमिमें तुम्हारी ओरके महारथी योद्धाओंसे रक्षित हुए उस समय पाञ्चाल योद्धा लोग यत्नवान् होकर भी द्रोणाचार्यकी ओर देखनेमें समर्थ न हुए। (४८-५०)

तब भीमसेन अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वचनोंसे मानो धृष्टद्युम्नको उत्तेजित करते हुए कहने लगे, महाराज द्रुपदके कुलमें उत्पन्न होकर और सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या जानके तथा क्षत्रिय धर्म अवलम्बन करनेवाला कौन पुरुष सम्मुख स्थित शत्रुओंके विषयमें उपेक्षा कर सकता है ? विशेष करके पिता

विशेषतस्तु शपथं शापित्वा राजसंसदि ।
एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा ॥ ५३ ॥
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा ।
पुरा करोति निःशेषां पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ५४ ॥
स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम् ।
इत्युक्त्वा प्राविशत्क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः ॥ ५५ ॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्द्रावयंस्तव वाहिनीम् ।
धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः प्रविश्य महतीं चमूम् ॥ ५६ ॥
आससाद रणे द्रोणं तदासीत्तुमुलं महत् ।
नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ५७ ॥
यथा सूर्योदये राजन्समुत्पिञ्जोऽभवन्महान् ।
संसक्तान्येव चाऽदृश्यन्रथवृन्दानि मारिष ॥ ५८ ॥
हतानि च विकीर्णानि शरीराणि शरीरिणाम् ।
केचिदन्यत्र गच्छन्तः पथि चाऽन्यैरुपद्रुताः ॥ ५९ ॥

और पुत्रोंके वधको देखकर राजाओंके बीच प्रतिज्ञा करके भी कौन शत्रुको युद्धभूमिके बीच परित्याग कर सकता है ? (५०—५३)

इस समय द्रोणाचार्य धनुष बाणरूपी काष्ठोंसे अग्निके समान प्रज्वलित होकर जलती हुई अग्निकी भांति क्षत्रियोंको भस्म कर रहे हैं । इससे तुम लोग इस ही स्थानपर स्थित होके मेरा पराक्रम देखो । पाण्डवोंकी सेनाको निःशेषित करनेके पहिले ही मैं स्वयं द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते उनके समीप गमन करूंगा, ऐसा वचन कहके भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने बाणजालसे कुरुसेनाके योद्धाओंको तितर बितर करके व्यूह के बीच प्रवेश किया । (५३—५६)

इस ही समय पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न भी उस महाव्यूहके बीच प्रवेश करनेमें प्रवृत्त हुए; उस समय दोनों ओरके वीरोंका महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा । महाराज ! उस सूर्य उदय होनेके समय जैसा युद्ध आरम्भ हुआ मैंने पहिले वैसा युद्ध न कभी देखा और न सुना ही था । उस समय बहुतेरे रथी और पैदल योद्धाओंके मरनेसे लोथके ऊपर लोथ गिरने लगी; कितने ही पुरुषोंके शरीरकी हड्डियें छितरा गयीं; कितने ही योद्धा युद्धभूमिमें भागते हुए दूसरे वीरोंके अस्त्रोंकी चोटसे मरकर

विमुखाः पृष्ठतश्चाऽन्ये ताड्यन्ते पार्श्वतः परे ।
तथा संसक्तयुद्धं तदभवद् भृशदारुणम् ।
अथ सन्ध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत ॥ ६० ॥ [८५१९]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

सञ्जय उवाच— ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ।
सन्ध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ १ ॥
उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे ।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २ ॥
द्वन्द्वानि तत्र यान्यासन्संसक्तानि पुरोदयात् ।
तान्येवाऽभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत ॥ ३ ॥
रथैर्हया हयैर्नागाः पादातैश्चाऽपि कुञ्जराः ।
हयैर्हयाः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः ॥ ४ ॥
रथा रथैरिभैर्नागास्तथैव भरतर्षभ ।
संसक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः संन्यपतन्रणे ॥ ५ ॥
ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा ।

पृथ्वीमें गिरने लगे । कितने ही पुरुष पीछे और दाहिने बायें स्थित शत्रुसेनाके योद्धाओंके अस्त्रोंसे पीडित होने लगे । इसी भाँति उस समय महाघोर संग्राम होने लगा, तब क्षण भरके बीच सूर्यदेव प्रकाशित हुए ॥ (५६-६०) [८५१९]

द्रोणपर्वमें एकसौ छियासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ सतासी अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! सहस्र किरण-धारी भगवान सूर्यको उदय होते देख, युद्धभूमिमें स्थित कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा व्यूहबद्ध होकर ही सूर्य देवकी उपासना करने लगे ॥ उस समय तपाये हुए सुवर्णके समान प्रकाशसे युक्त सूर्यके उदय होने पर सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हुआ; और दोनों सेनाके वीरोंका आपसमें फिर महाघोर संग्राम होने लगा ॥ सूर्यके उदय होनेके पहिले जो पुरुष जिसके सङ्ग द्वैरथ युद्धमें प्रवृत्त थे फिर वह लोग उस ही पुरुषके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ (१-३)

घुडसवार रथियोंके सङ्ग, गजसवार घुडसवारोंके सङ्ग, कितने ही पैदल सेनाके योद्धा लोग गजसवारोंके सङ्ग और कितने ही पैदल सेनाके पुरुष पैदल सेनाके योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, उस समय महाघोर संग्राम होने लगा ॥ महाराज ! सम्पूर्ण योद्धा लोग रातके

क्षुत्पिपासापरीताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽभवन् ॥ ६ ॥
शङ्खभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणां च गर्जताम् ।
विस्फारितविकृष्टानां कार्मुकाणां च कूजताम् ॥ ७ ॥
शब्दः समभवद्राजन्दिविस्पृग्भरतर्षभ ।
द्रवतां च पदातीनां शस्त्राणां पततामपि ॥ ८ ॥
हयानां ह्रेषतां चापि रथानां च निवर्तताम् ।
क्रोशतां गर्जतां चैव तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ९ ॥
विवृद्धस्तुमुलः शब्दो द्यामगच्छन्महांस्तदा ।
नानायुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः ॥ १० ॥
भूमावश्रूयत महांस्तदासीत्कृपणं महत् ।
पततां पात्यमानानां पत्त्यश्वरथदन्तिनाम् ॥ ११ ॥
तेषु सर्वेष्वनीकेषु व्यतिषक्तेष्वनेकशः ।

समय अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करके थक गये थे इस समय सूर्यकी धूपसे अत्यन्त ही उत्तापित होके भूख प्यास-से विकल हो कर एकवारगी विह्वल होगये ॥ (४–६)

उस समय लगातार शङ्ख मृदङ्ग भेरी आदि बाजे बजने लगे, हाथी चिंग्घा-डने लगे, शूरवीरोंके सिंहनाद और धनुषटङ्कार सुनाई देने लगे। पैदल चलनेवाले योद्धा सिंहनाद करके अस्त्र चलाते हुए शत्रुओंकी ओर दौडने लगे; उस समय चलते हुए अस्त्र शस्त्रोंके खटपटाहटका महाघोर शब्द सुन पडता था। घोडे हिनहिनाते हुए इधर उधर दौडने लगे और रथोंकी घरघराहटका शब्द इन सम्पूर्ण शब्दोंके सङ्ग मिलकर आकाश मण्डल और सम्पूर्ण दिशामें परिपूरित होगया। (७–१०)

महाराज! उस समय अनेक भांतिके अस्त्रोंकी चोटसे कितने ही पुरुषोंके शरीर क्षतविक्षत होनेसे वे भूमिपर गिरकर चेष्टा पूर्वक आर्त नाद कर रहे थे तथा पैदल, घुडसवार, रथी, और गजसवार घायल होके गिरते थे और दूसरेसे गिराये जाते थे तब वे सब के सब लोग और घायल हुए हाथी घोडे आदि चिल्ला रहे थे; उस समय रणभूमिमें चारों ओर आर्त्तनाद सुनाई पडता था; उससे वह रणभूमि अत्यन्त ही भयङ्कर दीख पडती थी। इसी भांति जब दोनों सेनाके सम्पूर्ण योद्धा युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, तब दोनों ओरके शूरवीर पुरुष इस भांति मोहित होगये, कि उस समय किसीको अपनी और शत्रुसेनाके पुरुषों

स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे स्वांश्च स्वान्परेषां परे परान् ॥ १२ ॥
वीरबाहुविसृष्टाश्च योधेषु च गजेषु च ।
राशयः प्रत्यदृश्यन्त वाससां नेजनेष्विव ॥ १३ ॥
उद्यतप्रतिपिष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः ।
स एव शब्दस्तद्रूपो वाससां निज्यतामिव ॥ १४ ॥
अर्धासिभिस्तथा खड्गैस्तोमरैः सपरश्वधैः ।
निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत्सुदारुणम् ॥ १५ ॥
गजाश्वकायप्रभवां नरदेहप्रवाहिनीम् ।
शस्त्रमत्स्यसुसम्पूर्णां मांसशोणितकर्दमाम् ॥ १६ ॥
आर्तनादस्वनवतीं पताकाशस्त्रफेनिलाम् ।
नदीं प्रावर्तयन्वीराः परलोकौघगामिनीम् ॥ १७ ॥
शरशक्त्यर्दिताः क्लान्ता रात्रिमूढाल्पचेतसः ।
विष्टभ्य सर्वगात्राणि व्यतिष्ठन्गजवाजिनः ॥ १८ ॥

का विचार भी न रहा; जिसने उस समयमें जिसको अपने सम्मुख पाया उसीके ऊपर अस्त्र शस्त्रोंसे प्रहार करने लगा ॥ (१०–१२)

हाथियोंके और योद्धाओंके शरीर पर शूरवीर योद्धा लोग तलवारसे प्रहार करने लगे। उससे धोनेके स्थान पर वस्त्रोंके ढेरके समान उस स्थानपर खड्गोंका ढेर होगया। जब दोनों सेनाके शूरवीर हाथसे तलवार आदि अस्त्र चलाने लगे,तब उन अस्त्र शस्त्रोंका वस्त्रोंके धोनेके समय जैसा शब्द सुनाई देता है वैसा ही खटपटाहट शब्द सुनाई देने लगा; क्रमसे दोनों सेनाके वीर लडते लडते एकधारवाली तलवार तोमर परशु आदि अस्त्रोंको चलाते हुए महाघोर युद्ध करने लगे ॥ (१३–१५)

अनन्तर हाथी, घोडे और मनुष्यके रुधिरसे प्रकट होकर अस्त्र शस्त्ररूपी मछलियोंसे युक्त मांस मज्जारूपी कीचडसे परिपूरित एक नदी उत्पन्न हुई। शूरवीरोंका आर्त्तनाद ही नदीके प्रवाहका शब्दरूपी बोध होता था, शस्त्र और पताका उसमें फेन रूपी दीख पडते थे, यमलोक रूपी समुद्र पर्यन्त इस नदीकी सीमा थी; उसमें मृत पुरुषोंके शरीर बहते हुए दिखाई दे रहे थे ॥ (१६–१७)

महाराज ! हाथी घोडे आदि सम्पूर्ण वाहन रात्रिके युद्धमें बाण शक्ति आदि अस्त्रोंसे पीडित होकर विकल हो गये थे; इससे सवेरेके समय वे सम्पूर्ण वाहन थकावटके कारण चलने फिरनेसे रहित

बाहुभिः कवचैश्छिन्नैः शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।
युद्धोपकरणैश्चाऽन्यैस्तत्र तत्र चकाशिरे ॥ १९ ॥
क्रव्यादसङ्घैराकीर्णं मृतैरर्धमृतैरपि ।
नाऽऽसीद्रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं प्रति ॥ २० ॥
मज्जत्सु चक्रेषु रथान्सत्वमास्थाय वाजिनः ।
कथञ्चिदवहञ्श्रान्ता वेपमानाः शरार्दिताः ॥ २१ ॥
कुलसत्वबलोपेता वाजिनो वारणोपमाः ।
विह्वलं तूर्णमुद्भ्रान्तं सभयं भारताऽऽतुरम् ॥ २२ ॥
बलमासीत्तदा सर्वमृते द्रोणार्जुनावुभौ ।
तावेवाऽऽस्तां निलयनं तावार्तायनमेव च ॥ २३ ॥
तावेवाऽन्ये समासाद्य जग्मुर्वैवस्वतक्षयम् ।
आविग्नमभवत्सर्वं कौरवाणां महद्बलम् ॥ २४ ॥
पञ्चालानां च संसक्तं न प्राज्ञायत किञ्चन ।

होकर जहां तहां खडे होकर स्थित हुए। उस समय कटी हुई भुजा कवच और कुण्डलोंसे भूषित बहुतेरे शूरवीरोंके सिर अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र मरे और अधमरे पुरुषोंका शरीर तथा अनेक मांसभक्षी जीव जंतुओंसे वह रणभूमि एकबारगी इस प्रकार परिपूरित होगई कि उस समय रथके चक्र भी नहीं दीख पडते थे और उस समय रुधिर तथा मांसमय कीचडोंमें रथके चक्र इधर ऊधर फंसने लगे तब महाबलवान हाथीके समान पराक्रमी उत्तम घोडे बाणोंसे पीडित तथा इधर उधर दौडनेसे थक गये थे; तौ भी यथा शक्ति अपने पराक्रमके अनुसार अत्यन्त कष्टके सहित उन रथोंको खींचते हुए गमन करने लगे। (१८-२२)

महाराज! उस समय केवल द्रोणाचार्य और अर्जुनको छोडके दोनों सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग थकके तथा अस्त्रोंकी चोटसे पीडित होकर भयभीत होगये। उस समय ऊपर कहे हुए वे दोनों वीर सम्पूर्ण प्राणियोंके संहार करनेवाले और भयभीत पुरुषोंके आश्रय स्वरूप हुए; और उन दोनों वीरोंके अस्त्र शस्त्रोंसे मरके दोनों सेनाके योद्धा लोग यमपुरी में गमन करने लगे। हे राजेन्द्र! कौरव और पाञ्चाल योद्धाओंकी वह बडी सेना उन दोनों महावीर पुरुषोंके अस्त्र प्रहारसे व्याकुल होकर भी महाघोर संग्राम करनेमें प्रवृत्त हुई। उस समय अंधेरेके कारण किसीको कुछभी दीखता नहीं था। (२२-२५)

अन्तकाक्रीडसदृशं भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २५ ॥
पृथिव्यां राजवंश्यानामुत्थिते महति क्षये ।
न तत्र कर्णं द्रोणं वा नाऽर्जुनं न युधिष्ठिरम् ॥ २६ ॥
न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिम् ।
न च दुःशासनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ॥ २७ ॥
न कृपं मद्रराजं च कृतवर्माणमेव च ।
न चाऽन्यांश्चैव चाऽऽत्मानं न क्षितिं न दिशस्तथा॥२८॥
पश्याम राजन्संसक्तान्सैन्येन रजसाऽऽवृतान् ।
सम्भ्रान्ते तुमुले घोरे रजोमेघे समुत्थिते ॥ २९ ॥
द्वितीयामिव सम्प्राप्तामन्यन्त निशां तदा ।
न ज्ञायन्ते कौरवेया न पाञ्चाला न पाण्डवाः ॥ ३० ॥
न दिशो द्यौर्न चोर्वी च न समं विषमं तथा ।
हस्तसंस्पर्शमापन्नान्परानप्यथवा स्वकान् ॥ ३१ ॥
न्यपातयंस्तदा युद्धे नराः स्म विजयैषिणः ।
उद्धूतत्वात्तु रजसः प्रसेकाच्छोणितस्य च ॥ ३२ ॥

यमराजके क्रीडास्थलके समान तथा कादरोंके भयको बढानेवाले दोनों सेनाके शूरवीरोंके भयङ्कर संग्रामके समय वीर पुरुषोंके पांवके धक्केसे जो धूलि उडी उससे वह रणभूमि परिपूरित होगई। उस समय कर्ण, द्रोणाचार्य,अर्जुन,युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, पांचालराजपुत्र शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, दुःशासन, अश्वत्थामा, दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य, कृतवर्मा, सम्पूर्ण दिशा, पृथ्वी, अपना शरीर तथा दूसरे पुरुषोंका शरीर इत्यादि कुछभी नहीं दीख पडते थे। (२५–२९)

उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंको विस्मित करनेवाले अत्यन्त भयङ्कर धूलिके बादल प्रकट हुए तब फिर सब कोई निशा कालका समय ही बोध करने लगे। उससे वहां कौरव पाण्डव पाञ्चाल सम्पूर्ण दिशा आकाश पृथ्वी समानभूमि तथा ऊंची नीची भूमि इत्यादि उस समय कुछ भी नहीं मालूम होते थे। उस समय विजयकी इच्छा करनेवाले योद्धा लोग अपनी ओरके पुरुषों तथा शत्रुसेनाके योद्धाओंने अपने हाथसे टटोलके जिसको पाया उसहीका प्राणनाश किया। (२९–३२)

अनन्तर वायु वेगपूर्वक बहने लगा, और धूलिसे आकाशमण्डल परिपूरित होगया था; परन्तु शूरवीर पुरुषोंके रुधिर

प्राशाम्यत रजो भौमं शीघ्रत्वादनिलस्य च ।
तत्र नागा हया योधा रथिनोऽथ पदातयः ॥ ३३ ॥
पारिजातवनानीव व्यरोचन्रुधिरोक्षिताः ।
ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा ॥ ३४ ॥
पाण्डवैः समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः ।
दुर्योधनः सह भ्रात्रा यमाभ्यां समसज्जत ॥ ३५ ॥
वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चाऽर्जुनः ।
तद्घोरं महदाश्चर्यं सर्वे प्रैक्षन्त सर्वतः ॥ ३६ ॥
रथर्षभाणामुग्राणां सन्निपातममानुषम् ।
रथमार्गैर्विचित्रैस्तैर्विचित्ररथसंकुलम् ॥ ३७ ॥
अपश्यन्रथिनो युद्धं विचित्रं चित्रयोधिनाम् ।
यतमानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः ॥ ३८ ॥
जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन् ।
ते रथान्सूर्यसङ्काशानास्थिताः पुरुषर्षभाः ॥ ३९ ॥
अशोभन्त यथा मेघाः शारदाश्चलविद्युतः ।

बहनेसे रणभूमिमें धूलिका उडना बन्द हुआ। उस समय हाथी, घोडे, रथी और पैदल सेनाके योद्धा लोग रुधिर पूरित शरीरसे युक्त होकर फूले हुए पारिजात वृक्षोंके वनकी भांति शोभित होने लगे। (३२-३४)

महाराज ! दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और द्रोणाचार्य, तुम्हारी सेनाके ये चारों महारथी योद्धा पाण्डवोंकी ओरके चार महारथियोंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। अपने भाई दुःशासनके सहित राजा दुर्योधन नकुलसहदेवके सङ्ग, कर्ण भीमसेनके साथ और द्रोणाचार्य अर्जुनके सङ्ग युद्धको करनेमें प्रवृत्त हुए। उस समय सम्पूर्ण सेनाके शूरवीर योद्धा लोग उन महारथियोंके समीप स्थित होकर उन लोगोंके महाभयङ्कर अलौकिक युद्धको देखने लगे॥ (३४-३७)

सम्पूर्ण रथी लोग विस्मित होकर महापराक्रमी महारथ योद्धाओंके अस्त्र कौशल और रथ चलानेकी गतिके सहित महाघोर विचित्र युद्धको देखने लगे। ऊपर कहे हुए द्रोणाचार्य आदि महारथी योद्धा लोग यत्नवान् होकर वर्षाकालके बादलोंकी भांति अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। वे सब पुरुषश्रेष्ठ महाबल-वान महात्मा योद्धा लोग सूर्यकिरणके समान प्रकाशमान रथोंपर चढके बिजली

योधास्ते तु महाराज क्रोधामर्षसमन्विताः ॥ ४० ॥
स्पर्धिनश्च महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्धराः ।
अभ्यगच्छंस्तथाऽन्योन्यं मत्ता गजवृषा इव ॥ ४१ ॥
न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजन्ननागते ।
यत्र सर्वे न युगपद्व्यशीर्यन्त महारथाः ॥ ४२ ॥
बाहुभिश्चरणैश्छिन्नैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
कार्मुकैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ ४३ ॥
नालीकैः क्षुद्रनाराचैर्नखरैः शक्तितोमरैः ।
अन्यैश्च विविधाकारैर्धौतैः प्रहरणोत्तमैः ॥ ४४ ॥
विचित्रैर्विविधाकारैः शरीरावरणैरपि ।
विचित्रैश्च रथैर्भग्नैर्हतैश्च गजवाजिभिः ॥ ४५ ॥
शून्यैश्चैव नगाकारैर्हतयोधध्वजै रथैः ।
अमनुष्यैर्हयैस्त्रस्तैः कृष्यमाणैस्ततस्ततः ॥ ४६ ॥
वातायमानैरसकृद्धतवीरैरलंकृतैः ।
व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ४७ ॥
छत्रैराभरणैर्वस्त्रैर्माल्यैश्च ससुगन्धिभिः ।
हारैः किरीटैर्मुकुटैरुष्णीषैः किङ्किणीगणैः ॥ ४८ ॥

से युक्त शरत्कालके मेघोंकी भांति शोभित होने लगे। (३७—४०)

महाराज ! उस समय और भी बहुतेरे महाधनुर्द्धारी योद्धा क्रुद्ध होकर धनुष चढाके यत्नपूर्वक मतवारे हाथीकी भांति एक दूसरेकी ओर दौडे ॥ परन्तु विना समयके पहुंचे किसी पुरुषकी मृत्यु नहीं होती इस कारण एकवारगी सबका नाश नहीं हुआ ॥ (४१-४२)

उस समय कहीं कटी हुई भुजा, कुण्डलभूषित बहुतेरे सिर, धनुष बाण, प्रास, तलवार, फरशे, पट्टिश, क्षुर, नाराच शक्ति, तोमर तथा और भी बहुतसे भांति भांतिके अस्त्र शस्त्र, मृत पुरुषोंके शरीर, टूटे हुए रथ, और मरे हुए हाथी घोडोंके शरीर इधर उधर पडे थे ॥ कहींपर नाना भांतिके आभूषणोंसे भूषित शूरवीर योद्धा और सारथीके मारे जानेसे उनके रथके घोडे वायुतुल्य वेगसे छूटे रथको लेकर रणभूमिके बीच इधर उधर दौडते हुए दीख पडते थे। (४३-४७)

कहीं कहीं चंवर, कवच, ध्वजा, छत्र, अनेक भांतिके आभूषण, अस्त्र, सुगन्धित माला, किरीट, मुकुट, किङ्किणि, मणि-

उरःस्थैर्मणिभिर्निष्कैश्चूडामणिभिरेव च।
आसीदायोधनं तत्र नभस्तारागणैरिव ॥ ४९ ॥
ततो दुर्योधनस्याऽऽसीन्नकुलेन समागमः।
अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनाऽमर्षितस्य च ॥ ५० ॥
अपसव्यं चकाराऽथ माद्रीपुत्रस्तवाऽऽत्मजम्।
किरञ्छरशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत् ॥ ५१ ॥
अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृव्यं नाऽत्यमर्षिणा।
नाऽमृष्यत तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः ॥ ५२ ॥
पुत्रस्तव महाराज राजा दुर्योधनो द्रुतम्।
ततः प्रतिचिकीर्षन्तमपसव्यं तु ते सुतम् ॥ ५३ ॥
न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्गवित्।
स सर्वतो निवार्यैनं शरजालेन पीडयन् ॥ ५४ ॥
विमुखं नकुलश्चक्रे तत्सैन्याः समपूजयन्।
तिष्ठतिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव।
संस्मृत्य सर्वदुःखानि तव दुर्मन्त्रितं च तत् ॥५५॥ [८५७४]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि नकुलयुद्धे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

जटित कण्ठा, मुहर और चूडामणि आदि नाना भांतिकी वस्तुओंके पडे रहनेसे वह रणभूमि तारासमूहसे आकाशमण्डलकी भांति शोभित होने लगी॥ ४७-४९

अनन्तर अभिमानी राजा दुर्योधन क्रुद्ध होकर क्रोधी नकुलके सङ्ग युद्ध करने लगे॥ महाराज! माद्रीपुत्रने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको बाईं ओर करके उन्हें एक सौ बाणोंसे विद्ध किया; उस समय वहांपर महाघोर तुमुल कोलाहल होने लगा॥ तिसके अनन्तर क्रुद्धस्वभाववाले दुर्योधनने नकुलके बाईं ओर होकर उनके पराक्रमको सहन नहीं किया; बल्कि उन्होंने शीघ्र ही नकुलको बाईं ओर करनेकी चेष्टा करी॥ (४९-५३)

उस समय युद्धविद्या जाननेवाले पराक्रमी नकुल दुर्योधनको निवारण करने लगे॥ अनन्तर नकुलने कुरुराज दुर्योधनको सब भांतिसे निवारित और अपने बाणजालसे पीडित करके उन्हें युद्धभूमिसे पराजित किया; और तुम्हारी दुष्टनीतिके कारण उन्होंने पहिले जो कुछ क्लेश सहन किया था, उसे स्मरण करके दुर्योधनको खडा रह! खडा रह! कहके आवाहन करने लगे; उससे सम्पूर्ण योद्धा लोग नकुल की प्रशंसा करने

सञ्जय उवाच— ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत ।
रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १ ॥
तस्याऽऽपतत एवाऽऽशु भल्लेनाऽमित्रकर्शनः ।
माद्रीपुत्रः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमच्छिनत् ॥ २ ॥
नैनं दुःशासनः सूतं नाऽपि कश्चन सैनिकः ।
कृत्तोत्तमाङ्गमाशुत्वात्सहदेवेन बुद्धवान् ॥ ३ ॥
यदा त्वसंगृहीतत्वात्प्रयान्त्यश्वा यथासुखम् ।
ततो दुःशासनः सूतं बुबुधे गतचेतसम् ॥ ४ ॥
स हयान्सन्निगृह्याऽऽजौ स्वयं हयविशारदः ।
युयुधे रथिनां श्रेष्ठो लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥ ५ ॥
तदस्याऽपूजयन्कर्म स्वे परे चापि संयुगे ।
हतसूतरथेनाऽऽजौ व्यचरद्यदभीतवत् ॥ ६ ॥
सहदेवस्तु तानश्वांस्तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत् ।
पीड्यमानाः शरैश्चाऽऽशु प्राद्रवंस्ते ततस्ततः ॥ ७ ॥

लगे ॥ (५३—५५) [८५७४]

द्रोणपर्वमें एकसौ सतासी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ अठासी अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! तिसके अनन्तर दुःशासन क्रुद्ध होकर अपने रथके वेगसे पृथ्वीको कंपाते हुए नकुलकी ओर दौडे ॥ पराक्रमी दुःशासनको वेगपूर्वक अपनी ओर आते देख, माद्रीपुत्र नकुलने शीघ्रताके सहित एक भल्लास्त्रसे शिरस्त्राण सहित उनके सारथीका सिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ महाराज दुःशासनके सारथीका शिर नकुलके अस्त्रसे किस समय कटके पृथ्वीमें गिर पडा, उसे दुःशासन तथा सेनाके कोई पुरुष भी न जान सके ॥ जब सारथीसे रहित होकर घोडे इधर उधर दौडने लगे, तब दुःशासनने समझा, कि मेरा सारथी मारा गया ॥ (१-४)

उस समय घोडोंकी विद्या जाननेवाले दुःशासन हस्तलाघवके सहित स्वयं घोडोंको चलाते हुए युद्ध करने लगे। उस समय जब दुःशासन सारथीसे रहित होनेपर भी स्वयं घोडोंको चलाते हुए रणभूमिमें निर्भयचित्तसे भ्रमण करते हुए युद्ध करने लगे, तो तुम्हारी सेना तथा शत्रुसेनाके सम्पूर्ण योद्धालोग उनके [illegible] कठिन कर्मकी प्रशंसा करने लगे ॥ उस समय सहदेवने शीघ्रताके सहित अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनके घोडोंके शरीरमें प्रहार किया; तब दुःशासन

स रश्मिषु विषक्तत्वादुत्ससर्ज शरासनम् ।
धनुषा कर्म कुर्वंस्तु रश्मींश्च पुनरुत्सृजत् ॥ ८ ॥
छिद्रेष्वेतेषु तं बाणैर्माद्रीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ।
परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्तरमवापतत् ॥ ९ ॥
वृकोदरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितः ।
आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नन्बाह्वोरुरसि चाऽनदत् ॥ १० ॥
स निवृत्तस्ततः कर्णः सङ्घट्टित इवोरगः ।
भीममावारयामास विकिरन्निशिताञ्छरान् ॥ ११ ॥
ततोऽभूत्तुमुलं युद्धं भीमराधेययोस्तदा ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ विवृत्तनयनावुभौ ॥ १२ ॥
वेगेन महताऽन्योन्यं संरब्धावभिपेततुः ।
अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः ॥ १३ ॥
विच्छिन्नशरपातत्वाद्गदायुद्धमवर्तत ।
गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम् ॥ १४ ॥
बिभेद शतधा राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

के रथके घोडे सहदेवके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर वेगपूर्वक चारों ओर दौडने लगे ॥ (५–७)

उस समय दुःशासनको घोडोंकी रास ग्रहण करनेके समय धनुष त्यागना पडा और धनुष ग्रहण करनेके समय घोडोंकी बागडोर छोडनी पडी; इतने ही समयके बीच माद्रीपुत्र सहदेवने दुःशासनके ऊपर अनेक बाण चलाये; तब कर्ण दुःशासनकी रक्षाके वास्ते सहदेवके समीप स्थित हुए ॥ कर्णको सहदेवकी ओर गमन करते देख भीमसेनने तीन भल्लोंसे कर्णके बाहु और वक्षस्थलमें प्रहार करके सिंहनाद किया ॥ (८–१०)

अनन्तर कर्ण विद्ध सर्पके समान अत्यन्त क्रुद्ध होकर सहदेवके समीपसे लौटके सैकडों बाणोंसे भीमसेन को विद्ध करके उन्हें निवारण करने लगे; उस समय उन दोनों वीरों का महाघोर तुमुल संग्राम होने लगा । वे दोनों क्रोधसे नेत्र लाल कर के सिंहनाद करते हुए एक दूसरेकी ओर दौडे । उस समय उन दोनों वीरोंके रथ इस भांति एक ही स्थान पर मिल गये कि उन लोगोंको बाण चलानेका बीचमें स्थान भी न रहा । इससे उन दोनोंको गदायुद्धमें प्रवृत्त होना पडा, अनन्तर भीमसेनने अपनी गदासे कर्णके रथको

ततो भीमस्य राधेयो गदामाविध्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥
अवासृजद्रथे तां तु बिभेद गदया गदाम् ।
ततो भीमः पुनर्गुर्वीं चिक्षेपाऽऽधिरथेर्गदाम् ॥ १६ ॥
तां गदां बहुभिः कर्णः सुपुङ्खैः सुप्रवेजितैः ।
प्रत्यविध्यत्पुनश्चाऽन्यैः सा भीमं पुनराव्रजत् ॥ १७ ॥
व्यालीव मन्त्राभिहता कर्णबाणैरभिद्रुता ।
तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः ॥ १८ ॥
पपात सारथिश्चाऽस्य मुमोह च गदाहतः ।
स कर्णे सायकानष्टौ व्यसृजत्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥
तैस्तस्य निशितैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनो महाबलः ।
चिच्छेद परवीरघ्नः प्रहसन्निव भारत ॥ २० ॥
ध्वजं शरासनं चैव शरावापं च भारत ।
कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ २१ ॥
ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः ।
ऋक्षवर्णाञ्जघानाऽऽशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २२ ॥

खण्ड खण्ड कर दिया वह भीमसेनका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा। ११-१५

तब महाबलवान् राधापुत्र कर्णने एक भयङ्करी गदाको घुमाके भीमसेनकी ओर चलायी; भीमसेनने गदासे कर्ण की चलायी हुई गदा को निवारण किया और एक भारी गदा उठाके अधिरथपुत्र कर्णकी ओर चलाई। उसे देखकर कर्णने पंखयुक्त महावेगशील दश बाणोंसे और उसके अनन्तर अनगिनत बाणोंसे भीमसेनकी चलाई हुई गदामें प्रहार किया; मन्त्रसे प्रभावित सांपिनीके समान कर्णके बाणोंके प्रहारसे वह गदा फिर वेगपूर्वक भीमसेनकी ओर चली। महाराज! जब वह गदा कर्णकी ओरसे घूमकर भीमसेनके रथपर गिरी; तब उस गदाकी चोटसे भीमसेनका सारथी मूर्च्छित हुआ और उनके रथकी ध्वजा टूटकर पृथ्वीमें गिर पडी॥ (१५-१९)

तब शत्रुनाशन भीमसेनने क्रुद्ध होकर आठ बाण ग्रहण कर कर्णके धनुष बाण और ध्वजाको लक्ष्य करके चलाये, और उन चोखे बाणोंसे सूतपुत्र कर्णके बाण सहित धनुष और रथकी ध्वजाको काटके गिरा दिया। अनन्तर पराक्रमी कर्णने दूसरा धनुष ग्रहण करके रथशक्ति चलाकर भीमसेनके भालू वर्णवाले चारों

स विपन्नरथो भीमो नकुलस्याऽऽप्लुतो रथम् ।
हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिन्दमः ॥ २३ ॥
तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमयुध्येतां महारथौ ।
आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रहरणौ युधि ॥ २४ ॥
लघुसन्धानयोगाभ्यां रथयोश्चरणेन च ।
मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ २५ ॥
उपारमन्त ते सर्वे योधा भरतसत्तम ।
अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद्युद्धं गुरुशिष्ययोः ॥ २६ ॥
विचित्रान्पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्य तौ ।
अन्योन्यमपसव्यं च कर्तुं वीरौ तदेषतुः ॥ २७ ॥
पराक्रमं तयोर्योधा ददृशुस्ते सुविस्मिताः ।
तयोः समभवद्युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत् । ॥ २८ ॥
आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव ।
यद्यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया ॥ २९ ॥

घोडे और दोनों पृष्ठ रक्षक योद्धाओंका वध किया ॥ घोडोंके मरने और पृष्ठरक्षकोंसे रहित होने पर शत्रुनाशन भीमसेन इस प्रकार अपने रथसे कूदके नकुलके रथपर चढ गये जैसे सिंह एक स्थानसे उछलके दूसरे स्थानपर चला जाता है ॥ (१९-२३)

महाराज ! इधर सब अस्त्रशस्त्रोंके जाननेवाले महाबलवान् गुरु शिष्य द्रोणाचार्य और अर्जुन शीघ्रताके सहित अस्त्र साधते, धनुषपर रखते, एक दूसरेकी ओर चलाते और रथकी विचित्र गतिसे युद्धभूमिके बीच घूमते तथा इन्द्रजालकी भांति अपने युद्ध कौशलसे सबके चित्तको मोहित करते हुए आश्चर्यमय युद्ध करने लगे । उस समय सम्पूर्ण योद्धा लोग द्रोणाचार्यके उस अद्भुत तथा आश्चर्यमय संग्रामको देखने लगे; परन्तु महावीर द्रोणाचार्य और अर्जुन अपने रथकी विचित्र गतिसे भ्रमण करते हुए एक दूसरेको बाईं ओर करनेकी इच्छा करने लगे ॥ (२४-२७)

उस समय दोनों सेनाके योद्धा लोग विस्मित होकर उन दोनों वीरोंके पराक्रमको देखने लगे । मांसकी इच्छा करनेवाले आकाशमें स्थित दो बाज पक्षियोंकी भांति द्रोणाचार्य और अर्जुनका महाघोर संग्राम होने लगा ॥ उस समय द्रोणाचार्यने अर्जुनकी पराजयके निमित्त जिन जिन अस्त्रोंको प्रकट किया अर्जुनने

तत्तत्प्रतिजघानाऽऽशु प्रहसंस्तस्य पाण्डवः।
यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवं स विशेषितुम् ॥३०॥
ततः प्रादुश्चकाराऽस्त्रमस्त्रमार्गविशारदः।
ऐन्द्रं पाशुपतं त्वाष्ट्रं वायव्यमथ वारुणम् ॥ ३१ ॥
मुक्तं मुक्तं द्रोणचापात्तज्जघान धनञ्जयः।
अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः ॥ ३२ ॥
ततोऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर्द्रोणः पार्थमवाकिरत्।
यद्यदस्त्रं स पार्थाय प्रयुङ्क्ते विजिगीषया ॥ ३३ ॥
तस्य तस्य विघाताय तत्तद्धि कुरुतेऽर्जुनः।
स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि ॥ ३४ ॥
अर्जुनेनाऽर्जुनं द्रोणो मनसैवाऽभ्यपूजयत्।
मेने चाऽऽत्मानमधिकं पृथिव्यामपि भारत ॥ ३५ ॥
तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविद्भ्यः परन्तपः।
वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम् ॥ ३६ ॥

अपने अस्त्रोंके प्रभावसे उनके सम्पूर्ण अस्त्रोंको निवारण किया। (२८–३०)

महाराज! जब द्रोणाचार्य किसी भांति भी पाण्डुपुत्र अर्जुनसे अधिक न हो सके, तब उन्होंने दिव्य अस्त्रोंको चलाना आरम्भ किया। उस समय ऐन्द्र, वायव्य, पाशुपत, त्वाष्ट्र और वारुणास्त्र आदि जितने अस्त्र द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटकर अर्जुनकी ओर चले, पराक्रमी अर्जुनने उन सम्पूर्ण अस्त्रोंको अपने दिव्य अस्त्रोंसे निवारण किया। इसी भांति पाण्डुपुत्र अर्जुनने जब अपने अस्त्रोंके प्रभावसे द्रोणाचार्यके दिव्य अस्त्रोंको निवारण किया, तब द्रोणाचार्यने परम दिव्यास्त्रोंको चला कर अर्जुनको छिपा दिया, अधिक क्या कहा जावे, उस समय द्रोणाचार्यने अर्जुनको पराजित करनेकी इच्छासे जिन जिन अस्त्रोंको अर्जुनकी ओर चलाया, अर्जुनने उन अस्त्रोंके निवारण करने योग्य अपने दिव्य अस्त्रोंको प्रकट करके आचार्यके चलाये हुए सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रोंको निष्फल कर दिया। (३०–३४)

अर्जुनके अस्त्रोंसे अपने अस्त्रोंको निष्फल होते देख द्रोणाचार्यने मनही मन अपने शिष्य अर्जुनकी प्रशंसा किया और अपने शिष्य अर्जुनको युद्धविद्यामें अत्यन्त ही निपुण देखकर पृथ्वीके सम्पूर्ण अस्त्रज्ञ पुरुषोंसे अपनेको अधिक समझने लगे; और द्रोणाचार्य युद्धभूमि

यतमानोऽर्जुनं प्रीत्या प्रत्यवारयदुत्स्मयन् ।
ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ॥ ३७ ॥
ऋषयः सिद्धसङ्घाश्च व्यतिष्ठन्त दिदृक्षया ।
तदप्सरोभिराकीर्णं यक्षगन्धर्वसंकुलम् ॥ ३८ ॥
श्रीमदाकाशमभवद्भूयो मेघाकुलं यथा ।
तत्र स्माऽन्तर्हिता वाचो व्यचरन्त पुनः पुनः ॥ ३९ ॥
द्रोणपार्थस्तवोपेता व्यश्रूयन्त नराधिप ।
विसृज्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वालयत्सु दिशो दश ॥ ४० ॥
अब्रुवंस्तत्र सिद्धाश्च ऋषयश्च समागताः ।
नैवेदं मानुषं युद्धं नाऽऽसुरं न च राक्षसम् ॥ ४१ ॥
न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम् ।
विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ॥ ४२ ॥
अति पाण्डवमाचार्यो द्रोणं चाऽप्यति पाण्डवः ।
नाऽनयोरन्तरं शक्यं द्रष्टुमन्येन केनचित् ॥ ४३ ॥
यदि रुद्रो द्विधाकृत्य युध्येताऽऽत्मानमात्मना ।

में स्थित थे तौभी महात्मा राजाओंके बीच अर्जुनसे निवारित होकर प्रसन्न हुए और विस्मित होकर प्रेमसे उसे निवारण करनेका यत्न करने लगे॥ (३४-३६)

तिसके अनन्तर देवता,गन्धर्व,सहस्रों ऋषि और सिद्ध लोग युद्ध देखनेकी अभिलाषासे आकाशमें विमानों पर स्थित हुए। उस समय आकाशमण्डल धीरे धीरे अप्सरा यक्ष और राक्षसोंसे परिपूर्ण होकर अत्यन्त ही शोभित होने लगा; उस समय आकाशमण्डलसे वार वार महात्मा द्रोणाचार्य और अर्जुनके स्तुतिसूचक आकाश वाणी सुनाई देने लगी। (३७-४०)

जब उन दोनों महात्माओंके धनुषसे छूटे अस्त्र सम्पूर्ण दिशामें प्रकाशित होने लगे, तब उस समय आकाशमें इकट्ठे हुए ऋषि और सिद्ध लोग आपसमें कहने लगे, "इस युद्धको न मानुष न आसुर न राक्षस और न गान्धर्व युद्ध ही कहा जा सकता है, यह निश्चय परम ब्राह्म युद्ध है। ऐसा विचित्र और विसय उत्पन्न करनेवाला संग्राम न कभी देखा गया और न सुना ही गया था। (४०-४२

कभी द्रोणाचार्य अर्जुनको और कभी अर्जुन द्रोणाचार्यको अतिक्रम करते थे; उस समय रणभूमिके बीच कोई पुरुष उन दोनों महाबलवान् महात्मा पुरुषोंके

तत्र शक्योपमा कर्तुमन्यत्र तु न विद्यते ॥ ४४ ॥
ज्ञानमेकस्थमाचार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे ।
शौर्यमेकस्थमाचार्ये बलं शौर्यं च पाण्डवे ॥ ४५ ॥
नेमौ शक्यौ महेष्वासौ युद्धे क्षपयितुं परैः ।
इच्छमानौ पुनरिमौ हन्येतां सामरं जगत् ॥ ४६ ॥
इत्यब्रुवन्महाराज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ ।
अन्तर्हितानि भूतानि प्रकाशानि च सर्वशः ॥ ४७ ॥
ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं प्रादुश्चक्रे महामतिः ।
सन्तापयन्रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥ ४८ ॥
ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा ।
ववौ च विषमो वायुः सागराश्चाऽपि चुक्षुभुः ॥ ४९ ॥
ततस्त्रासो महानासीत्कुरुपाण्डवसेनयोः ।

छिद्रको देखनेमें समर्थ नहीं हुए। यदि भगवान् रुद्र अपनेको दो हिस्सोंमें विभक्त करके अपने सङ्ग आप ही युद्ध करें तो उस युद्धकी उपमा हो सकती है; इसके अतिरिक्त और किसीके युद्धकी उपमा नहीं हो सकती जिस भांति सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंका ज्ञान अकेले द्रोणाचार्यमें विद्यमान है, उसी भांति ज्ञान और योग दोनों ही अर्जुनमें प्रतिष्ठित हैं, जैसे द्रोणाचार्य शूरताके आधार हैं; वैसे ही अर्जुन भी बल और शूरताके आधार हैं। (४३-४५)

इससे इन दोनों महाधनुर्द्धारी पुरुषोंको रणभूमिके बीच कोई भी शत्रु पराजित करनेमें समर्थ नहीं है। परन्तु ये लोग यदि इच्छा करें तो देवतोंके सहित इस सम्पूर्ण जगत्का नाश कर सकते हैं॥ महाराज! उन दोनों पुरुष श्रेष्ठ महाधनुर्धर पराक्रमी वीरों के अलौकिक युद्धको देखकर आकाशवासी देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, ऋषि, तथा पृथ्वी पर स्थित सम्पूर्ण प्राणी द्रोणाचार्य और अर्जुनके विषयमें इसी भांतिके वचन आपसमें कहते हुए उन दोनों महात्माओं की प्रशंसा करने लगे॥ (४६-४७)

अनन्तर महाबुद्धिमान् द्रोणाचार्यने अर्जुन तथा आकाशवासी सम्पूर्ण प्राणियोंको संतप्त करके ब्राह्म अस्त्र चलाया; उससे पर्वत वन और समुद्रके सहित सम्पूर्ण पृथ्वी कांपने लगी, वायु प्रबल वेगसे बहने लगा और समुद्रका जल उथलित होने लगा॥ अधिक क्या कहा जावे उससमय जब द्रोणाचार्यने ब्रह्मअस्त्र चलाया, तब कौरव और पाण्डवों

सर्वेषां चैव भूतानामुद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥ ५० ॥
ततः पार्थोऽप्यसम्भ्रान्तस्तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान् ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततः सर्वमशीशमत् ॥ ५१ ॥
यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वा ।
ततः संकुलयुद्धेन तद्युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥ ५२ ॥
नाऽऽज्ञायत ततः किञ्चित्पुनरेव विशाम्पते ।
प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्मृधे ॥ ५३ ॥
शरजालैः समाकीर्णे मेघजालैरिवाऽम्बरे ।
नाऽपतच्च ततः कश्चिदन्तरिक्षचरस्तदा ॥ ५४ ॥ [८६२८]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

सञ्जय उवाच— तस्मिंस्तथा वर्तमाने गजाश्वनरसंक्षये ।
दुःशासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १ ॥
स तु रुक्मरथासक्तो दुःशासनशरार्दितः ।
अमर्षात्तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत् ॥ २ ॥

की सेनाके शूरवीर योद्धा तथा सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगये ॥ परन्तु अर्जुन युद्ध भूमिसे तनिकभी विचलित नहीं हुए, बल्कि द्रोणाचार्यके चलाये हुए ब्राह्मअस्त्रको ब्रह्मास्त्रसे ही निवारण किया। ब्राह्म अस्त्रके निवारित होने पर सम्पूर्ण दिशा फिर प्रकाशित हुई ॥ (४८–५१)

इसी भांति वे दोनों पराक्रमी वीर जब दिव्य अस्त्रोंको चलाकर एक दूसरेसे अधिक न हो सके तब फिर संकुल युद्ध शूरू हुआ, शीघ्र ही एक दूसरेके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। महाराज ! उस समय जब अस्त्र शस्त्रोंसे द्रोणाचार्य और अर्जुनका संग्राम होने लगा, तब वहां पर कुछ भी मालूम नहीं होता था ॥ उस समय आकाशमण्डल बादलोंके समूह की भांति द्रोणाचार्य और अर्जुनके बाणोंसे परिपूरित होगया; उस समय आकाशचारी प्राणी भी आकाशमण्डलमें गमन करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ (५२–५४) [८६२८]

द्रोणपर्वमें एकसौ अठासी अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ नवासी अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! हाथी घोडे और मनुष्योंके नाश करनेवाले उस महाघोर संग्रामके समय पराक्रमी दुःशासन धृष्टद्युम्नके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ उस समय धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध कर रहे थे, परन्तु तुम्हारे पुत्र दुःशासनके बाणोंसे पीडित होकर उन्हों-

क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सहसारथिः।
नाऽदृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः ॥ ३ ॥
दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः।
नाऽशकत्प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः ॥ ४ ॥
स तु दुःशासनं बाणैर्विमुखीकृत्य पार्षतः।
किरञ्छरसहस्राणि द्रोणमेवाऽभ्ययाद्रणे ॥ ५ ॥
अभ्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा त्वनन्तरम्।
सोदर्याणां त्रयश्चैव त एनं पर्यवारयन् ॥ ६ ॥
तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवाऽनलम् ॥ ७ ॥
सम्प्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे च सुमहारथाः।
अमर्षिताः सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः ॥ ८ ॥
शुद्धात्मानः शुद्धवृत्ता राजन्स्वर्गपुरस्कृताः।
आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः ॥ ९ ॥
शुक्लाभिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिप।

ने घोडे और रथके सहित दुःशासनको अपने बाणोंसे छिपा दिया। क्षण भरके बीच धृष्टद्युम्नके बाणजालसे ध्वजा सारथी और घोडों के सहित दुःशासनका रथ ऐसा परिपूरित होगया, कि उस समय तनिक भी न दीख पडा ॥ अधिक क्या कहा जावे, उस समय दुःशासन धृष्टद्युम्नके बाणोंसे पीडित होकर उनके सम्मुख खडे होनेमें भी समर्थ नहीं हुए॥ (१-४)

पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न दुःशासनको पराजित करके सहस्रों बाण चलाते हुए द्रोणाचार्यकी ओर गमन करने लगे॥ उसे देख हृदीकपुत्र कृतवर्मा और दुर्योधनके तीन भाइयोंने इकट्ठे होकर धृष्टद्युम्नको घेर लिया॥ उस समय जलती हुई अग्निकी भांति धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यकी ओर गमन करते देख, पराक्रमी नकुल और सहदेव धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेके वास्ते उनके अनुगामी हुए॥ (५-७)

महाराज ! इसी भांति दोनों सेनाके सात महारथी योद्धा लोग क्रोधपूर्वक प्राणकी आशा छोडके आपसमें महाघोर संग्राम करने लगे॥ एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले वे महाबलवान् महात्मा सदाचारसे युक्त पराक्रमी योद्धा लोग स्वर्ग प्राप्तिकी अभिलाषा करके न्यायपूर्वक

वैदिक यज्ञ संस्था।

प्रथम भाग। मूल्य १) रु. डा. व्य. ।)

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है।

प्राचीन संस्कृत निबंध।

१-३ पितृ-पशुमीमांसा। लघु-पुरोडाश-मीमांसा।

भाषाके लेख (ले०-श्री० पं० बुद्धदेवजी)

४ दर्श और पौर्णमास, ५ अद्भुत कुमार संभव। (ले० -श्री० पं० चंद्रमणिजी) ६बुद्धके यज्ञ विषयक विचार। (संपादकीय) ७ यज्ञका महत्त्व, ८ यज्ञका क्षेत्र, ९ यज्ञका गूढ तत्त्व, १० औषधियोंका महामख, (ले० श्री० पं० धर्मदेवजी) ११ वैदिक यज्ञ और पशु-हिंसा। (ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी) १२ क्या वेदोंमें यज्ञों में पशुओंका बलि करना लिखा है?

वैदिक यज्ञ संस्था द्वितीय भाग। मूल्य १) रु. डा. व्य ।)

इस द्वितीय भागमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है- (ले०-श्री. पं. देवशर्माजी विद्यालंकार)

भारतवर्षमें यज्ञकी कमी, यज्ञकी महिमा, यज्ञसे जो चाहे सो प्राप्त कर लो, यज्ञपुरुष का वर्णन, हवन प्रक्रिया, यज्ञशेष और उत्क्षेप, राजसूय, विश्वजित्, अश्वमेध, गोमेध, सर्वमेध, वाजपेय, पंचमहायज्ञ, यज्ञ संसारकी नाभि है।

पं. बुद्धदेवजी लिखित-संज्ञपन और अवदान।

संपादकीय-नरमेध का वैदिक तात्पर्य।

इतने विषयोंका विचार इस पुस्तक में हुआ है। प्रत्येक विषयके प्रतिपादनके लिये वेदके अनेक प्रमाण दिये हैं और विषयका प्रतिपादन अति सुगम है। मूल्य १) डा. व्य. ।)

वैदिक यज्ञ संस्था तृतीय भाग गोमेध।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

योगमें गोमांस, प्रकरणानुकूल अर्थ विचार, आपिपंक्षमी, वेदका महासिद्धान्त, यज्ञकी पूर्व और उत्तरवेदी, मधुपर्क, कलिवर्ज्यप्रकरण, बृहदारण्यक का वचन, गौका वैदिक नाम, गोमेधका विचार, चरक की साक्षी, विवाहमें गोमांस, अतिथिके लिये गौ, यज्ञमें मांस, अन्त्य यज्ञ, वेदमें अहिंसा, अवध्य गौ और बैल, यज्ञका तत्त्व, गौको खाना। गौ दान लेने का अधिकारी, रक्षक और पालक गौका महत्त्व, राष्ट्ररक्षक गौ, गौके लिये सोमरस, सबकी माता गौ।

इत्यादि अनेक विषय इसमें आगये हैं। हरएक विषयका प्रतिपादन करनेके लिये अनेक वेदमंत्रोंके प्रमाण दिये हैं। जो कहते हैं कि " वैदिक समयमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी, " उनके लिये यह उत्तम उत्तर है। यह पुस्तक पढनेके पश्चात् उक्त विषयमें कोई शंका नहीं रहेगी।

मूल्य १) रु. डा व्य० ।)

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा० सातवलेकर, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा)

REGISTERED NO. B. 1819

अंक ६३ [द्रोणपर्व १३]

महाभारत ।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

धर्मयुद्धमयुध्यन्त प्रेप्सन्तो गतिमुत्तमाम् ॥ १० ॥
न तत्राऽऽसीदधर्मिष्ठमशस्तं युद्धमेव च ।
नाऽत्र कर्णी न नालीको न लिप्तो न च वस्तिकः ॥११॥
न सूची कपिशो नैव न गवास्थिर्गजास्थिजः ।
इषुरासीन्न संश्लिष्टो न पूतिर्न च जिह्मगः ॥ १२ ॥
ऋजून्येव विशुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन् ।
सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्तिमेव च ॥ १३ ॥
तदासीत्तुमुलं युद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
चतुर्णां तव योधानां तैस्त्रिभिः पाण्डवैः सह ॥ १४ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु तान्दृष्ट्वा तव राजन्रथर्षभान् ।
यमाभ्यां वारितान्वीराञ्शीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥१५॥
निवारितास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव ॥ १६ ॥

आपसमें युद्ध करने लगे॥ वे सब उत्तम वंश में उत्पन्न हुए धर्मात्मा बुद्धिमान् और मनुष्यों के राजा थे, इससे उत्तम गति पानेकी अभिलाषासे सब कोई आपसमें धर्मयुद्ध करने लगे ॥ (८-१०)

उस स्थलमें शठतापूर्ण और शस्त्ररहित युद्ध नहीं हुआ ! अधिक क्या कहा जावे, उस समय वहांपर कर्णी, विषमें बुझाये हुए नालीकास्त्र,वस्तिकास्त्र,अनेक कांटोंसे युक्त सूची अस्त्र, बन्दरकी हड्डीसे बने हुए कपिश नामक अस्त्र, गोश्रृङ्ग तथा हाथीकी हड्डीके बने हुए किसी भांतिके भी दूषित अस्त्र नहीं थे; बल्कि उन सम्पूर्ण वीरोंने धर्मयुद्धमें कीर्ति और परलोक प्राप्त होनेकी अभिलाषासे शुद्ध और सरल अस्त्र शस्त्रोंको धारण किया था ॥ (११-१३)

उस समय पाण्डवोंकी ओरके तीन महारथियोंके सङ्ग तुम्हारी सेनाके चार महारथियोंका धर्मयुद्ध होने लगा ॥ अनन्तर धृष्टद्युम्नने देखा, कि केवल नकुल सहदेव ही कुरुसेनाके चार महारथियोंको निवारण कर रहे हैं; उसे देख महापराक्रमी धृष्टद्युम्न हस्तलाघवके सहित अपने बाणोंको चलाते हुए द्रोणाचार्यकी ओर गमन किया ॥ परन्तु तुम्हारी ओरके कृतवर्मा आदि चार महारथी योद्धाओंने नकुल सहदेवके संमुखसे निवारित होकर अपना अपमान समझा; अनन्तर वे लोग इस भांति वेगपूर्वक नकुल सहदेवकी ओर दौडे, जैसे प्रचण्ड वायु वेगसे दो पर्वतोंके ऊपर

द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथाभ्यां रथपुङ्गवौ।
समासक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ १७ ॥
दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं व्रजन्तं युद्धदुर्मदम्।
यमाभ्यां तांश्च संसक्तांस्तदन्तरमुपाद्रवत् ॥ १८ ॥
दुर्योधनो महाराज किरञ्छोणितभोजनान्।
तं सात्यकिः शीघ्रतरं पुनरेवाऽभ्यवर्तत ॥ १९ ॥
तौ परस्परमासाद्य समीपे कुरुमाधवौ।
हसमानौ नृशार्दूलावभीतौ समसज्जताम् ॥ २० ॥
बाल्यवृत्तानि सर्वाणि प्रीयमाणौ विचिन्त्य तौ।
अन्योन्यं प्रेक्षमाणौ च स्मयमानौ पुनः पुनः ॥ २१ ॥
अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं समभाषत।
प्रियं सखायं सततं गर्हयन्वृत्तमात्मनः ॥ २२ ॥
धिक् क्रोधं धिक्सखे लोभं धिङ् मोहं धिगमर्षितम्।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलमौरसम् ॥ २३ ॥
यत्र मामभिसन्धत्से त्वां चाऽहं शिनिपुङ्गव।

चलते हुए दीख पडते हैं ॥ (१४-१६)

महाराज! नकुल सहदेव दोनों भाई क्रमसे दो दो महारथियोंके सङ्ग और धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ उस ही समय राजा दुर्योधन कृतवर्मा आदि चार महारथियोंको नकुलसहदेवके सङ्ग और धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते देख अपने तीक्ष्ण बाणोंको वर्षाते हुए वहांपर उपस्थित हुए ॥ दुर्योधनको धृष्टद्युम्न और नकुल सहदेवकी ओर गमन करते देख महारथी सात्यकि शीघ्रताके सहित दुर्योधनकी ओर दौडे ॥ (१७-१९)

वृष्णि और कुरुवंशीय सात्यकि और राजा दुर्योधन आपसमें एक दूसरेके समीपमें संग्रामभूमिमें संमुख उपस्थित होके निर्भयचित्तसे युद्ध करने लगे ॥ महाराज वे दोनों पुरुषसिंह बालक अवस्थाके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको स्मरण करके अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और आपसमें एक दूसरेको देखकर बार बार हंसने लगे ॥ २०-२१

अनन्तर राजा दुर्योधन अपने क्षत्रियधर्मकी निन्दा करके अपने प्रिय सखा सात्यकिसे बोले ॥ हे मित्र! क्रोध मोह लोभ और ईर्षाको धिकार है; और हम लोगोंके क्षत्रीय आचार तथा बल पुरुषार्थ को भी धिकार है क्योंकि इस समय हम दोनों ही एक दूसरेके ऊपर बाण चलानेके

त्वं हि प्राणैः प्रियतरो ममाऽहं च सदा तव ॥ २४ ॥
स्मरामि तानि सर्वाणि बाल्यवृत्तानि यानि नौ ।
तानि सर्वाणि जीर्णानि साम्प्रतं नो रणाजिरे ॥ २५ ॥
किमन्यत्क्रोधलोभाभ्यां युद्धमेवाऽद्य सात्वत ।
तं तथावादिनं तत्र सात्यकिः प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥
प्रहसन्विशिखांस्तीक्ष्णानुद्यम्य परमास्त्रवित् ।
नेयं सभा राजपुत्र नाऽऽचार्यस्य निवेशनम् ॥ २७ ॥
यत्र क्रीडितमस्माभिस्तदा राजन्समागतैः ।
दुर्योधन उवाच— क्व सा क्रीडा गताऽस्माकं बाल्ये वै शिनिपुङ्गव ॥ २८ ॥
क्व च युद्धमिदं भूयः कालो हि दुरतिक्रमः ।
किन्नु नो विद्यते कृत्यं धनेन धनलिप्सया ॥ २९ ॥
यत्र युद्धामहे सर्वे धनलोभात्समागताः ।
सञ्जय उवाच— तं तथावादिनं तत्र राजानं माधवोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥

वास्ते उद्यत हुए हैं ॥ मैं अपने बाल्य-वृत्तान्तको स्मरण करके देखता हूं, कि उस समय हम दोनों ही एक दूसरेको प्राणसे भी बढके प्रिय थे; परन्तु इस रणभूमि-में उपस्थित होनेसे हम लोगोंके बाल्य अवस्थाकी मित्रता एकबारगी नष्ट होगई क्योंकि इस समय हम लोग आपसमें युद्ध कर रहे हैं; इसमें क्रोध और लोभसे बढके हानिकारक वस्तु और कौनसी है ? (२२-२६)

राजा दुर्योधनके वचनोंको सुनकर परम अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले सात्यकिके तीक्ष्ण शस्त्रोंको ग्रहण करके हंसते हंसते उन्हें यह उत्तर दिया; हे राजपुत्र ! पहिले हम लोग जिस स्थानमें इकट्ठे होकर खेलते थे यह वह सभास्थान तथा आचार्यालय नहीं है । (२६-२८)

सात्यकिके वचनको सुनकर दुर्योधन बोले, हे शिनिपौत्र सात्यकि ! हम लोगोंके बाल्य अवस्थाके खेल कहां चले गये ? हा ! इस समय सम्पूर्ण शूरवी-रोंको नाश करनेवाला महाघोर युद्ध होरहा है; इससे कालको अतिक्रम करना बहुत असाध्य कार्य है । देखो धनला-भकी इच्छासे हम लोगोंके निमित्त कैसा भयङ्कर कार्य उपस्थित हुआ है । धनके लोभसे ही सब कोई रणभूमिके बीच इकट्ठे होकर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए हैं ॥ (२८-३०)

सञ्जय बोले, महाराज ! राजा दुर्यो-धनने जब ऐसा कहा, तब यदुवंशीय सात्यकि उनसे यह वचन बोले, हे

एवं वृत्तं सदा क्षात्रं युध्यन्तीह गुरूनपि ।
यदि तेऽहं प्रियो राजञ्जहि मां मा चिरं कृथाः ॥ ३१ ॥
त्वत्कृते सुकृताँल्लोकान्गच्छेयं भरतर्षभ ।
या ते शक्तिर्बलं यच्च तत्क्षिप्रं मयि दर्शय ॥ ३२ ॥
नेच्छामि तदहं द्रष्टुं मित्राणां व्यसनं महत् ।
इत्येवं व्यक्तमाभाष्य प्रतिभाष्य च सात्यकिः ॥ ३३ ॥
अभ्ययात्तूर्णमव्यग्रो दयां नाऽकुरुताऽऽत्मनि ।
तमायान्तं महाबाहुं प्रत्यगृह्णात्तवाऽऽत्मजः ॥ ३४ ॥
शरैश्चाऽवाकिरद्राजञ्शैनेयं तनयस्तव ।
ततः प्रववृते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ॥ ३५ ॥
अन्योन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः ।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ॥ ३६ ॥
दुर्योधनः प्रत्यविध्यत्कुपितो दशभिः शरैः ।
तं सात्यकिः प्रत्यविध्यत्तथैवाऽवाकिरच्छरैः ॥ ३७ ॥
पञ्चाशता पुनश्चाऽऽजौ त्रिंशता दशभिश्च ह ।

राजेन्द्र ! क्षत्रियोंका यही आचार है क्षत्रीय पुरुष रणभूमिके बीच गुरुके ऊपर भी अस्त्रशस्त्रोंसे प्रहार किया करते हैं ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! यदि मैं तुम्हारा प्रिय मित्र हूं, तो तुम शीघ्र ही मेरा वध करो, ऐसा होनेसे मैं तुम्हारे हाथसे मरकर स्वर्ग लोकमें गमन करूंगा। हे दुर्योधन ! अधिक क्या कहूं तुम्हारी जहांतक शक्ति और बल है तुम शीघ्र ही मुझे अपना सम्पूर्ण पराक्रम दिखाओ; मैं अब मित्रोंके इस बहुत बडे व्यसनको नहीं देख सकता हूं। (३०-३२)

सात्यकि राजा दुर्योधनसे ऐसा वचन कहके निष्ठुर और निर्भयचित्तसे दुर्योधनकी ओर दौडे । महाबाहु शिनिपौत्र सात्यकिको अपनी ओर वेगपूर्वक आते देख तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन अनगिनत बाणोंको चलाकर उन्हें निवारण करने लगे । महाराज ! कौरव और यदुवंशकी कीर्त्तिको बढानेवाले वे दोनों पुरुषसिंह क्रोधी सिंह तथा मतवारे हाथीकी भांति महाघोर संग्राम करने लगे । (३३-३५)

अनन्तर राजा दुर्योधनने क्रुद्ध होकर कान पर्यन्त धनुष खींचकर दश चोखे बाणोंसे युद्ध दुर्मद सात्यकिको विद्ध किया। इसी भांति सात्यकिने भी पहिले पचास उसके अनन्तर तीस और पीछे दस बाणोंसे कुरुराज दुर्योधनको विद्ध करके

सात्यकिं तु रणे राजन्प्रहसंस्तनयस्तव ॥ ३८ ॥
आकर्णपूर्णैर्निशितैर्विव्याध त्रिशता शरैः ।
ततोऽस्य सशरं चापं क्षुरप्रेण द्विधाऽच्छिनत् ॥ ३९ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय लघुहस्तस्ततो दृढम् ।
सात्यकिर्व्यसृजच्चापि शरश्रेणीं सुतस्य ते ॥ ४० ॥
तामापतन्तीं सहसा शरश्रेणीं जिघांसया ।
चिच्छेद बहुधा राजा तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ४१ ॥
सात्यकिं च त्रिसप्तत्या पीडयामास वेगितः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णापूर्णनिःसृतैः ॥ ४२ ॥
तस्य सन्दधतश्चेषुं संहितेषु च कार्मुकम् ।
आच्छिनत्सात्यकिस्तूर्णं शरैश्चैवाऽभ्यवीविधत्॥ ४३ ॥
स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद्रथान्तरे ।
दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः ॥ ४४ ॥
समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात् ।

फिर अनगिनत बाणोंसे उन्हें छिपा दिया । सात्यकिके पराक्रमको देखकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने तीस चोखे बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके एक क्षुरप्रअस्त्र से बाण के सहित उन के धनुष को दो टुकडे कर के पृथ्वी में गिराया ॥ (३५-३९)

अनन्तर शिनिपौत्र सात्यकिभी हस्त-लाघवके सहित एक दृढ धनुष ग्रहण कर के तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके ऊपर अनगिनत बाण चलाने लगे ॥ सात्यकिके धनुषसे छूटे हुए उन तेज बाणोंको अपनी ओर आते देख राजा दुर्योधनने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे टुकडे टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया; दुर्योधनके ऐसे कठिन कर्मको देखकर सेनाके सम्पूर्ण योद्धा सिंहनाद करने लगे ॥ इसी समय दुर्योधनने कान पर्यन्त धनुष खींचके शिलापर घिसे हुए स्वर्णपंखवाले तिहत्तर बाणोंको चला कर सात्यकिको पीडित किया और फिर धनुष पर बाण रखके सात्यकिकी ओर चलानेका विचार किया; उस समय बाण साधनेके समयमें ही पराक्रमी सात्यकिने शीघ्रता पूर्वक बाणके सहित उनके धनुषको काटके फिर उन्हें अनेक बाणोंसे विद्ध किया ॥ (४०-४३)

कुरुराज दुर्योधन सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और पीडित होकर उसके सम्मुखसे रथ लौटा कर वहांसे पृथक् होगये ॥ तिसके अनन्तर थोडी देरके

विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥ ४५ ॥
तथैव सात्यकिर्बाणान्दुर्योधनरथं प्रति ।
सततं विसृजन्राजंस्तत्संकुलमवर्तत ॥ ४६ ॥
तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च शरीरिषु ।
अग्नेरिव महाकक्षैः शब्दः समभवन्महान् ॥ ४७ ॥
तयोः शरसहस्रैश्च सञ्छन्नं वसुधातलम् ।
अगम्यरूपं च शरैराकाशं समपद्यत ॥ ४८ ॥
तत्राऽभ्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम् ।
क्षिप्रमभ्यपतत्कर्णः परीप्संस्तनयं तव ॥ ४९ ॥
न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः ।
सोऽभ्ययात्त्वरितः कर्णं विसृजन्सायकान्बहून ॥५० ॥
तस्य कर्णः शितान्बाणान्प्रतिहृत्य हसन्निव ।
धनुः शरांश्च चिच्छेद सूतं चाऽभ्याहनच्छरैः ॥ ५१ ॥

बाद राजा दुर्योधन फिर अपने बाणोंको वर्षाते हुए सात्यकिकी ओर गमन करने लगे ॥ दुर्योधनको अपनी ओर आते देख सात्यकि लगातार उनके रथके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे; उससे दुर्योधनका रथ सात्यकिके बाणोंसे परिपूरित होगया ॥ (४४-४६)

उस समय उन दोनों पुरुषसिंहोंके धनुषसे छूटे हुए सम्पूर्ण बाण सेनाके पुरुषोंके ऊपर पडने लगे, उस समय जलती हुई अग्निके शब्दकी भांति बाणोंके गिरनेका शब्द सुनाई देने लगा ॥ अधिक क्या कहा जावे उस समय उन दोनों पराक्रमी वीरोंके सहस्रों बाणोंके इधर उधर गिरनेसे वह रणभूमि बाणोंसे परिपूरित होगई और आकाशमण्डल भी उन दोनों पुरुषोंके बाणजालसे इस भांति परिपूर्ण होगया, कि उस समय आकाशचारी प्राणी आकाशमार्गसे गमन करने में समर्थ नहीं हुए ॥ (४७-४८)

अनन्तर रथियोंमें मुख्य यदुवंशीय सात्यकिको अधिक पराक्रम प्रकाशित करते देखकर कर्ण तुम्हारे पुत्रके जीवनरक्षाकी अभिलाषासे वहां पर शीघ्रताके सहित उपस्थित हुए, परन्तु महाबलवान् भीमसेन सात्यकिकी रक्षा करनेके वास्ते अनेक बाणोंको चलाते हुए शीघ्रताके सहित कर्णकी ओर दौडे ॥ (४९-५०)

कर्णने हंसते हंसते भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंको अपने बाणोंसे निवारण करके बाणके सहित उनका धनुष काट दिया, फिर कर्ण भीमसेनके सारथी

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामादाय पाण्डवः।
ध्वजं धनुश्च सूतं च सम्ममर्दाऽऽहवे रिपोः ॥ ५२ ॥
रथचक्रं च कर्णस्य बभञ्ज स महाबलः।
भग्नचक्रे रथे तिष्ठदकम्पः शैलराडिव ॥ ५३ ॥
एकचक्रं रथं तस्य तमूहुः सुचिरं हयाः।
एकचक्रमिवाऽर्कस्य रथं सप्तहया यथा ॥ ५४ ॥
अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत।
विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ ५५ ॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धः सूतपुत्रमयोधयत्।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने क्रुद्धो धर्मसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥
पञ्चालानां नरव्याघ्रान्मत्स्यांश्च पुरुषर्षभान्।
ये नः प्राणाः शिरो ये च ये नो योधा महारथाः ॥५७॥
त एते धार्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः।
किं तिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः ॥ ५८ ॥

के ऊपर अपने बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ तब भीमसेनने क्रुद्ध होकर गदा ग्रहण करके राधापुत्र कर्णके ध्वजा धनुष सारथीको विनष्ट करके उनके रथके चक्रको एक गदाके प्रहारसे भङ्ग कर दिया। (५१-५२)

कर्ण दूसरे शैलराजकी भांति उस एक चक्र टूटे हुए रथही पर स्थित रहे। महाराज! उस समय कर्णके रथके घोडे उनके एक चक्र रहित रथहीको खींचते हुए युद्धभूमिमें भ्रमण करने लगे; उस समय सात घोडोंसे युक्त सूर्यके एक चक्रवाले रथकी भांति कर्णका रथ दीख पडता था ॥ रथ चक्र भङ्ग होनेसे सूत-पुत्र कर्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर अनेक भांतिके अस्त्रशस्त्रोंको चलाते हुए भीमसेनके सङ्ग युद्ध करने लगे। क्रुद्ध स्वभाववाले भीमसेन भी उसी भांति कर्णके सङ्ग युद्ध करने लगे। (५३-५६)

जब इस भांतिसे महाघोर युद्ध आरंभ हुआ, तब पुरुषश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर मत्स्य और पाञ्चाल देशीय योद्धाओंसे यह वचन बोले, हे शूरवीर पुरुषो! जो सब पुरुष श्रेष्ठ महारथी योद्धा हम लोगोंके प्राण और मस्तक स्वरूप हैं, वे सब कोई कौरवोंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए हैं। अब तुम लोग मोहित होकर किस वास्ते युद्धभूमिमें जड वस्तुकी भांति स्थित हो! जिस स्थान पर मेरी ओरके महारथी योद्धा लोग कौरवोंके

तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ॥ ५९ ॥
जयन्तो वध्यमानाश्च गतिमिष्टां गमिष्यथ ।
जित्वा वा बहुभिर्यज्ञैर्यजध्वं भूरिदक्षिणैः ॥ ६० ॥
हता वा देवसाद्भूत्वा लोकान्प्राप्स्यथ पुष्कलान् ।
ते राज्ञा चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथाः ॥ ६१ ॥
क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य त्वरिता द्रोणमभ्ययुः ।
पाञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥
भीमसेनपुरोगाश्चाऽप्येकतः पर्यवारयन् ।
आसंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयो जिह्मा महारथाः ॥ ६३ ॥
यमौ च भीमसेनश्च प्राक्रोशंस्ते धनञ्जयम् ।
अभिद्रवाऽर्जुन क्षिप्रं कुरून्द्रोणादपानुद ॥ ६४ ॥
तत एनं हनिष्यन्ति पञ्चाला हतरक्षिणम् ।

संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हैं तुम लोग शीघ्रताके सहित उस ही स्थान पर गमन करो। (५६—५९)

तुम लोग क्षत्रीय धर्मके अनुसार निर्भयचित्तसे युद्ध करके युद्धभूमिके बीच मारे जाओगे तौ भी जययुक्त होकर अपनी इच्छाके अनुसार श्रेष्ठ गति पाओगे। इससे यदि हो सके तो तुम लोग युद्धभूमिमें शत्रुओंको पराजित करके बहुतसी दक्षिणासे युक्त यज्ञोंको पूर्ण करते हुए जीवनका समय व्यतीत करो; अथवा शत्रुओंके हाथ से मरके दिव्य शरीर धारण कर पवित्र लोक में गमन करो। (५९-६१)

महाराज ! उन सम्पूर्ण महारथी योद्धाओंने राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा सुनके क्षत्रीय धर्म अवलम्बन करके युद्ध करनेके वास्ते शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यके समीप गमन किया। इसी समय पाञ्चाल योद्धा लोग दो हिस्सोंमें विभक्त होकर भीमसेनको अगाडी करके एक ओरसे द्रोणाचार्यको निवारण और दूसरी ओरसे उनके सङ्ग युद्ध करने लगे। (६१-६३)

अनन्तर पाण्डवोंकी ओरसे नकुल सहदेव और भीमसेन, ये तीनों महारथी कौटिल्य व्यवहार अवलम्बन करके ऊंचे स्वरसे अर्जुनको आवाहन करने लगे, हे अर्जुन ! हे अर्जुन ! शीघ्रही यहांपर आके द्रोणाचार्यके समीपसे कौरवोंको पृथक् करो; क्योंकि जब द्रोणाचार्य अरक्षित होंगे, तो पाञ्चाल योद्धा लोग अनायास ही उनका वध कर सकेंगे। (६३-६५)

कौरवेयांस्ततः पार्थः सहसा समुपाद्रवत् ॥ ६५ ॥
पञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।
ममर्दुस्तरसा वीराः पञ्चमेऽहनि भारत ॥ ६६ ॥ [८६९४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

सञ्जय उवाच— पाञ्चालानां ततो द्रोणोऽप्यकरोत्कदनं महत् ।
यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥ १ ॥
द्रोणास्त्रेण महाराज वध्यमानाः परे युधि ।
नाऽत्रसन्त रणे द्रोणात्सत्त्ववन्तो महारथाः ॥ २ ॥
युध्यमाना महाराज पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
द्रोणमेवाऽभ्ययुर्युद्धे योधयन्तो महारथाः ॥ ३ ॥
तेषां तु च्छाद्यमानानां पाञ्चालानां समन्ततः ।
अभवद्भैरवो नादो वध्यतां शरवृष्टिभिः ॥ ४ ॥
वध्यमानेषु संग्रामे पञ्चालेषु महात्मना ।
उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान्भयमाविशत् ॥ ५ ॥

उन लोगोंके वचनको सुनकर अर्जुन कौरवोंकी ओर दौडे; और द्रोणाचार्य भी धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते उनकी ओर दौडे ॥ उस पांचवें दिनके युद्धमें योद्धा लोग एक दूसरेको शीघ्रताके सहित मर्दन करने लगे ॥ (६५–६६) [८६९४]

द्रोणपर्वमें एकसौ नवासी अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ नब्बे अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! जैसे पहिले समयमें देवराज इन्द्रने क्रुद्ध होकर दानवोंका नाश किया था, वैसे ही पराक्रमी द्रोणाचार्य लगातार पाञ्चाल योद्धाओंका वध करने लगे; परन्तु पराक्रमी महारथी पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर भी भयभीत नहीं हुए। अनन्तर पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग इकठ्ठे होकर तुम्हारी ओरके सम्पूर्ण रथियोंको मोहित करके द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ द्रोणाचार्यकी बाणवर्षासे पाञ्चाल योद्धा लगातार मरने लगे, तब उस समय भयङ्कर कोलाहल होने लगा ॥ (१—४)

इसी भांति जब पाञ्चाल योद्धा महात्मा द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित तथा व्याकुल होके इधर उधर दौडने लगे; उस समय पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भयभीत होगये ! उस समय रथ

दृष्ट्वाऽश्वनरयोधानां विपुलं च क्षयं युधि।
पाण्डवेया महाराज नाऽऽशशंसुर्जयं तदा ॥ ६ ॥
कच्चिद् द्रोणो न नः सर्वान्क्षपयेत्परमास्त्रवित्।
समिद्धः शिशिरापाये दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ ७ ॥
न चैनं संयुगे कश्चित्समर्थः प्रतिवीक्षितुम्।
न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित् ॥ ८ ॥
त्रस्तान्कुन्तीसुतान्दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान्।
मतिमाञ्छ्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
नैष युद्धेन संग्रामे जेतुं शक्यः कथञ्चन।
सधनुर्धन्विनां श्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः ॥ १० ॥
न्यस्तशस्त्रस्तु संग्रामे शक्यो हन्तुं भवेन्नृभिः।
आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः ॥११॥
यथा नः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः।
अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ॥ १२ ॥

हाथी घोडे आदि पाण्डवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग अपनी ओरके योद्धाओंको द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे मरते देख इकबारगी विजयकी आशासे निराश होगये; और मन ही मन चिन्ता करने लगे, कि जैसे ग्रीष्म ऋतुमें जलती हुई अग्नि तृण समूहको भस्म कर देती है वैसे ही परम अस्त्रोंके जाननेवाले पराक्रमी द्रोणाचार्य आज हम सब लोगोंका नाश कर देंगे। इस समय कोई पुरुष उनकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं है और धर्मात्मा अर्जुन कदापि द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध नहीं करेंगे ॥ (५—८)

उस समय पाण्डवोंके हितकी अभिलाषा करनेवाले बुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्र कुन्तीपुत्रोंको द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित और भयभीत देखकर अर्जुनसे यह वचन बोले ॥ हे पाण्डवश्रेष्ठ! यदि धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी द्रोणाचार्य हाथमें धनुष ग्रहण करके युद्धभूमिके बीच स्थित रहें तो इन्द्रादि देवताभी उन्हें पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु अस्त्र रहित होने पर सामान्य मनुष्य भी उन का वध कर सकेगा। इस वास्ते इस समय धर्म युद्ध त्याग कर जिस भांति लालवर्णके घोडोंसे युक्त रथमें स्थित द्रोणाचार्य तुम सब लोगोंका नाश न कर सकें, वैसाही उपाय अवलम्बन करो। मुझे निश्चय होता है, कि अश्वत्थामाका मरना सुनके द्रोणाचार्य

तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः ।
एतन्नारोचयद्राजन्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १३ ॥
अन्ये त्वरोचयन्सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ।
ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम् ॥ १४ ॥
जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत ।
परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ १५ ॥
भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे ।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ॥ १६ ॥
अश्वत्थामेति हि गजः ख्यातो नाम्ना हतोऽभवत् ।
कृत्वा मनसि तं भीमो मिथ्या व्याहृतवांस्तदा ॥१७॥
भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत्परमाप्रियम् ।
मनसा सन्नगात्रोऽभूद्यथा सैकतमम्भसि ॥ १८ ॥
शङ्कमानः स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्वसुतस्य वै ।
हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत ॥ १९ ॥

युद्ध करनेमें समर्थ न होंगे; इससे कोई पुरुष उनके समीप जाकर अश्वत्थामाके मरनेका वृत्तान्त उन्हें सुनावे । ९-१३

जब श्रीकृष्णने ऐसा वचन कहा, तब अर्जुनने किसी प्रकार उनके वचनोंको स्वीकार नहीं किया; परन्तु दूसरे सम्पूर्ण योद्धा लोग और राजा युधिष्ठिरने भी अत्यन्त कष्ट से श्रीकृष्ण के वचन को स्वीकार किया । इस ही समय भीमसेन तुम्हारी सेनाके बीच प्रवेश करके मालवदेशीय राजा इन्द्रवर्मांके अश्वत्थामा नामक हाथीको गदाके प्रहारसे मारकर लज्जासे सिर नीचा करके द्रोणाचार्यके समीप जाकर अश्वत्थामा मारे गये; ऐसा वचन कहके ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करने लगे ॥ भीमसेन ऐसा वचन कहने के समय अश्वत्थामा नामक हाथी मारा गया, इस वचनको अपने मनहीमें कहके प्रकट रूपसे 'अश्वत्थामा मारे गये' यह मिथ्या वचन कहने लगे ॥ (१३-१७)

महाराज ! द्रोणाचार्य भीमसेनके उस कठोर तथा अप्रिय वचनको सुनके जलयुक्त वालुकामय भूमि की भांति अपने मनही मन शोकित होके मूर्च्छित हुए, परन्तु द्रोणाचार्य अपने पुत्रके बल पराक्रमको जानते थे इस ही कारण अपने मनमें तर्क वितर्क करके अश्वत्थामाके मरनेका संवाद सुनके भी धैर्यरहित नहीं हुए । क्षण भरके बीच

स लब्ध्वा चेतनां द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसत्।
अनुचिन्त्याऽऽत्मनः पुत्रमविषह्यमरातिभिः ॥ २० ॥
स पार्षतमभिद्रुत्य जिघांसुर्मृत्युमात्मनः।
अवाकिरत्सहस्रेण तीक्ष्णानां कङ्कपत्रिणाम् ॥ २१ ॥
तं विंशतिसहस्राणि पाञ्चालानां नरर्षभाः।
तथा चरन्तं संग्रामे सर्वतोऽवाकिरञ्छरैः ॥ २२ ॥
शरैस्तैराचितं द्रोणं नाऽपश्याम महारथम्।
भास्करं जलदै रुद्धं वर्षास्विव विशाम्पते ॥ २३ ॥
विधूय तान्बाणगणान्पाञ्चालानां महारथः।
प्रादुश्चक्रे ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परन्तपः ॥ २४ ॥
वधाय तेषां शूराणां पाञ्चालानाममर्षितः।
ततो व्यरोचत द्रोणो विनिघ्नन्सर्वसैनिकान् ॥ २५ ॥
शिरांस्यपातयच्चापि पाञ्चालानां महामृधे।
तथैव परिघाकारान्बाहून्कनकभूषणान् ॥ २६ ॥
ते वध्यमानाः समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः।

द्रोणाचार्य सावधान होकर अपने पुत्रके पराक्रमको शत्रुओंसे असह्य समझकर धनुष बाण ग्रहण करके युद्धभूमिमें स्थित, और अपनी मृत्युस्वरूप द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्नके संमुख जाकर उनके वधकी अभिलाषासे कङ्कपत्रयुक्त सहस्रों बाणों को उन की ओर चलाने लगे ॥ (१८—२१)

जब द्रोणाचार्य इस प्रकार रणभूमिके बीच भ्रमण करने लगे, तब उस समय बीस हजार पाञ्चाल योद्धाओंने अपने बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपा दिया ॥ महारथी द्रोणाचार्य उन सम्पूर्ण योद्धाओंके बाणजालसे इस प्रकार छिप गये, जैसे सूर्य वर्षा कालमें बादलोंके समूहमें छिप जाते हैं, उस समय हम लोग द्रोणाचार्यको न देख सके ॥ (२२-२३)

अनन्तर शत्रुनाशन महारथी द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर उन योद्धाओंके चलाये हुए बाणोंके समूहको निवारण करके उन पाञ्चाल योद्धाओंके नाश करनेकी इच्छासे भयङ्कर ब्राह्म अस्त्र प्रकट किया॥ उस महाघोर संग्रामके समयमें सब सैनिकोंको मारते हुए द्रोणाचार्य शोभा युक्त दीखने लगे ॥ उस समय द्रोणाचार्य पाञ्चाल योद्धाओंके सुवर्णवर्म युक्त परिघ समान भुजा और उनके शिर काट काटके पृथ्वीमें गिराने लगे।

मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ २७ ॥
कुञ्जराणां च पततां हयौघानां च भारत ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २८ ॥
हत्वा विंशतिसाहस्रान्पाञ्चालानां रथव्रजान् ।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ २९ ॥
तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ ३० ॥
पुनः पञ्चशतान्मत्स्यान्षट्सहस्रांश्च सृञ्जयान् ।
हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाऽश्वायुतं पुनः ॥ ३१ ॥
क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम् ।
ऋषयोऽभ्यागतास्तूर्णं हव्यवाहपुरोगमाः ॥ ३२ ॥
विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं निनीषवः ॥ ३३ ॥
सिकताः पृश्नयो गर्गा वालखिल्या मरीचिपाः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव सूक्ष्माश्चाऽन्ये महर्षयः ॥ ३४ ॥

क्षत्रीय योद्धालोग द्रोणाचार्यके अस्त्रोंके प्रहारसे लगातार प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिरने लगे। जैसे प्रचण्ड वायुके प्रबल वेगसे वृक्ष टूट टूटके पृथ्वीमें गिर पडते हैं, इसी भांति मरे हुए हाथी घोडे और मनुष्योंके शरीरसे वह रणभूमि परिपूर्ण होके रुधिर और मांससे कीचडमयी होकर अत्यन्त ही भयङ्कर बोध होने लगी ॥ (२४-२८)

इसी भांति भरद्वाज पुत्र प्रतापी द्रोणाचार्य क्षणभरके बीच पाञ्चाल देशीय बीस हजार रथी योद्धाओंका वध करके धूएंसे रहित जलती हुई अग्निकी भांति युद्धभूमिमें स्थित हुए ॥ तिसके अनन्तर उन्होंने क्रुद्ध होकर भल्लास्त्रसे वसुदानका सिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ और पांच सौ मत्स्यदेशीय योद्धा, छः हजार सृञ्जय, दस हजार हाथी और दश हजार घुडसवारोंको प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिरा दिया। (२९-३१)

महाराज ! उस समय ऋषिलोग द्रोणाचार्यको क्षत्रियोंके नाश करनेमें प्रवृत्त देखकर भगवान् अग्निको आगे करके शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यके निकट उपस्थित हुए। विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, सिकत, पृश्नि, गर्ग, वालखिल्य, मरीचिप, भृगु, और अङ्गिरा गोत्रीय तथा

त एवमब्रुवन्सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम् ।
अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते ॥ ३५ ॥
न्यस्याऽऽयुधं रणे द्रोण समीक्षाऽस्मानवस्थितान् ।
नाऽतः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुमिहाऽर्हसि ॥ ३६ ॥
वेदवेदाङ्गविदुषः सत्यधर्मरतस्य ते ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥ ३७ ॥
त्यजाऽऽयुधममोघेषो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते ।
परिपूर्णश्च कालस्ते वस्तुं लोकेऽद्य मानुषे ॥ ३८ ॥
ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा अनस्त्रज्ञा नरा भुवि ।
यदेतदीदृशं विप्र कृतं कर्म न साधु तत् ॥ ३९ ॥
न्यस्याऽऽयुधं रणे विप्र द्रोण मा त्वं चिरं कृथाः ।
मा पापिष्ठतरं कर्म करिष्यसि पुनर्द्विज ॥ ४० ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा भीमसेनवचश्च तत् ।
धृष्टद्युम्नं च सम्प्रेक्ष्य रणे स विमनाऽभवत् ॥ ४१ ॥
सन्दिह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ४२ ॥

सूक्ष्म शरीर धारण करनेवाले महर्षि लोग द्रोणाचार्यको ब्रह्मलोकमें ले चलनेकी इच्छासे यह वचन बोले । हे द्रोण ! तुम अधर्म युद्ध कर रहे हो, अब तुम्हारा मरणकाल उपस्थित हुआ है, इस समय अस्त्रशस्त्र परित्याग करके हम लोगोंकी ओर देखो; इसके अनन्तर इस क्रूरकर्ममें प्रवृत्त न होना ॥ (३२-३६)

तुम वेद वेदाङ्गके जाननेवाले विशेष करके सत्यधर्ममें रत ब्राह्मण हो; इससे यह युद्धका क्रूर कर्म तुम्हारे करने योग्य नहीं है ॥ हे अमोघास्त्र ! तुम्हारा मनुष्य लोकमें निवास करनेका समय पूर्ण होगया, इससे अस्त्र त्यागके सत्यपथमें स्थित होजाओ ॥ हे विप्र ! तुम जो अस्त्र विद्या न जाननेवाले मनुष्योंको ब्रह्मास्त्रसे भस्म कर रहे हो; वह तुम उत्तम कार्य नहीं करते हो ॥ इस लिये तुम शीघ्र अस्त्रोंको परित्याग करो, अब ऐसे पापयुक्त कार्य को करनेमें प्रवृत्त न होना॥ (३७-४०)

महाराज ! द्रोणाचार्यने ऋषियोंके उपदेश और भीमसेनके पूर्वोक्त वचनोंको सुनके विशेष करके धृष्टद्युम्नको सम्मुख स्थित देख, युद्धसे अपना मन हटा लिया ॥ इस ही समय द्रोणाचार्यने शोकरूपी अग्निसे भस्म तथा कातर होके

स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम् ।
त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथञ्चन ॥ ४३ ॥
तस्मात्तं परिपप्रच्छ नाऽन्यं कञ्चिद् द्विजर्षभः ।
तस्मिंस्तस्य हि सत्याशा बाल्यात्प्रभृति पाण्डवे ॥४४॥
ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधाम्पतिम् ।
द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत् ॥४५॥
यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः ।
सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति ॥ ४६ ॥
स भवांस्त्रातु नो द्रोणात्सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः ।
अनृतं जीवितस्याऽर्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः ॥ ४७ ॥
तयोः संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ॥ ४८ ॥
श्रुत्वैवं तु महाराज वधोपायं महात्मनः ।
गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ ४९ ॥

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको पुकारके उनसे पूछा, कि "हे युधिष्ठिर ! मेरा पुत्र अश्वत्थामा जीवित है, या मारा गया ?" ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको यह निश्चय था, कि "युधिष्ठिर तीनों लोकके ऐश्वर्य मिलनेके वास्ते भी कदापि मिथ्या वचन नहीं कहेंगे ॥ क्योंकि द्रोणाचार्य बालक अवस्थासे ही युधिष्ठिरको सत्यवादी समझते थे; इस ही कारण और किसीके वचनका विश्वास न करके उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे ही अश्वत्थामाके विषयमें प्रश्न किया । (४१-४४)

उस ही समय श्रीकृष्ण योद्धाओंमें अग्रणी द्रोणाचार्यको, 'ये यदि थोडे समय तक और जीवित रहेंगे, तो पृथ्वीको पाण्डवोंसे सूनी कर देंगे,' ऐसा विचारके कातरताके सहित युधिष्ठिरसे यह वचन बोले, महाराज ! मैं तुमसे सत्य वचन कहता हूं, कि यदि द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर अर्ध दिवस और युद्ध करेंगे; तो तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाके योद्धाओंका नाश कर देंगे ॥ इससे द्रोणाचार्यसे अपना परित्राण करनेके वास्ते तुम्हें सत्यकी अपेक्षा मिथ्या वचन बोलना कल्याणकारी है; प्राण रक्षा के वास्ते मिथ्या वचन बोलनेसे पाप नहीं लगता ॥ ४५-४७

महात्मा द्रोणाचार्यके विषयमें श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर इसी भांतिसे वार्तालाप कर रहे थे; उस ही समय उनके वचनोंको सुनकर भीमसेन राजा युधिष्ठिरसे बोले, महाराज ! मैंने महात्मा द्रोणाचार्यके वधका उपाय सुनकर

अश्वत्थामेति विख्यातो गजः शक्रगजोपमः ।
निहतो युधि विक्रम्य ततोऽहं द्रोणमब्रुवम् ॥ ५० ॥
अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्तस्वाऽऽहवादिति ।
नूनं नाऽश्रद्दधद्वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः ॥ ५१ ॥
स त्वं गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः ।
द्रोणाय निहतं शंस राजञ्शारद्वतीसुतम् ॥ ५२ ॥
त्वयोक्तो नैव युध्येत जातु राजन्द्विजर्षभः ।
सत्यवान्हि त्रिलोकेऽस्मिन्भवान्ख्यातो जनाधिप॥५३॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः ।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ५४ ॥
तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजन्हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५५ ॥
तस्य पूर्वं रथः पृथ्व्याश्चतुरंगुलमुच्छ्रितः ।
बभूवैवं च तेनोक्ते तस्य वाहाः स्पृशन्महीम् ॥ ५६ ॥

तेरी सेनाके बीच प्रविष्ट हुए मालव देशीय इन्द्रवर्मा राजाके ऐरावत हाथीके समान विख्यात अश्वत्थामा नामक हाथीका वध करके, द्रोणाचार्यके समीप गमन करके उनसे यह वचन कहा था, कि "हे ब्राह्मण ! अश्वत्थामा मारे गये इससे अब आप युद्धसे निवृत्त होइये" ॥ (४८-५१)

परन्तु ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने मेरे वचनका विश्वास नहीं किया। इससे आप हम लोगोंके विजयकी इच्छा करनेवाले श्रीकृष्णके वचनको मानके द्रोणाचार्यके समीप "अश्वत्थामा मारे गये" ऐसा वचन प्रकाश रूपसे कहिये; जब आप ऐसा कहेंगे, तब सम्भव है, कि द्रोणाचार्य कदापि युद्ध न करेंगे; क्योंकि तीनों लोकके बीच आप सत्यवादी कहके विख्यात हैं ॥ (५१-५३)

राजा युधिष्ठिर भीमसेनके वचनको सुनके विशेष करके श्रीकृष्णकी अनुमति और अवश्यम्भावीके कारणसे मिथ्या बोलनेमें प्रवृत्त हुए॥ महाराज ! उस समय धर्मराज युधिष्ठिर मिथ्या वचन बोलनेके भयसे व्यग्र और विजयकी आशासे आसक्त होकर मनमें हाथीका नाम लेकर प्रकटमें "अश्वत्थामा मारे गये" ऐसा वचन बोले ॥ पहिले राजा युधिष्ठिरके रथके पहिये पृथ्वीसे चार अंगुल ऊपर उठे रहते थे, परन्तु इस समय ऐसा मिथ्या भाषण करनेके

युधिष्ठिरात्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः ।
पुत्रव्यसनसन्तप्तो निराशो जीवितेऽभवत् ॥ ५७ ॥
आगस्कृतमिवाऽऽत्मानं पाण्डवानां महात्मनाम् ।
ऋषिवाक्येन मन्वानः श्रुत्वा च निहतं सुतम् ॥ ५८ ॥
विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च ।
योद्धुं नाऽशक्नुवद्राजन्यथापूर्वमरिन्दमः ॥ ५९ ॥ [८७५३]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि युधिष्ठिरासत्यकथने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

सञ्जय उवाच— तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् ।
पञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्रवत् ॥ १ ॥
य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे ।
लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात् ॥ २ ॥
स धनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिःस्वनम् ।
दृढज्यमजरं दिव्यं शरं चाऽऽशीविषोपमम् ॥ ३ ॥
सन्दधे कार्मुके तस्मिन्नतस्तमनलोपमम् ।

कारण उनके रथके पहिये पृथ्वीको स्पर्श करके भूमिपर चलने लगे ॥ (५४–५६)

इधर महारथी द्रोणाचार्य युधिष्ठिरके मुखसे पुत्रके विषयमें ऐसी विपदवार्त्ता सुनके शोक रूपी अग्निसे जलते हुए जीनेकी आशाको त्याग दिया ॥ विशेष करके उन्होंने ऋषियोंके वचनको सुनकर पाण्डवोंके निकट अपनेको अपराधी समझा; और अपने पुत्रके मरनेका वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त ही व्याकुल और चेत रहित समान होगये थे, उस पर भी धृष्टद्युम्नको सम्मुख देखकर पहिलेकी भांति युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ (५७–५९) [८७५३]

द्रोणपर्वमें एकसौ नब्बे अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ एकानब्बे अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! राजा द्रुपदने देवताओंकी आराधना करके महायज्ञमें जिस पुत्रको पाया था; जो द्रोणाचार्यके वधके वास्ते जलती हुई यज्ञकी अग्निसे उत्पन्न हुए, वही पाञ्चालराज पुत्र धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यको पुत्रशोकसे अत्यन्त व्याकुल और चेतरहितके समान देखकर इन्द्रधनुषके समान भयङ्कर टङ्कार शब्दसे युक्त दिव्य धनुष और शत्रुओंको नाश करनेवाले विषधर सर्पके समान भयङ्कर बाणोंको ग्रहण करके द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ (१–३)

अनन्तर जलती हुई प्रचण्ड अग्निके समान द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करके

द्रोणं जिघांसुः पाञ्चाल्यो महाज्वालमिवाऽनलम् ॥४॥
तस्य रूपं शरस्याऽऽसीद्धनुर्ज्यामण्डलान्तरे।
द्योततो भास्करस्येव घनान्ते परिवेषिणः ॥५॥
पार्षतेन परामृष्टं ज्वलन्तमिव तद्धनुः।
अन्तकालमनुप्राप्तं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः ॥६॥
तमिषुं संहतं तेन भारद्वाजः प्रतापवान्।
दृष्ट्वाऽमन्यत देहस्य कालपर्यायमागतम् ॥७॥
ततः प्रयत्नमातिष्ठदाचार्यस्तस्य वारणे।
न चाऽस्याऽस्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन्महात्मनः ॥८॥
तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकाऽस्यतो गता।
तस्य चाऽह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्रिणः ॥९॥
स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन चाऽर्दितः।
विविधानां च दिव्यानामस्त्राणामप्रसादतः ॥१०॥
उत्स्रष्टुकामः शस्त्राणि ऋषिवाक्यप्रचोदितः।
तेजसा पूर्यमाणश्च युयुधे न यथा पुरा ॥११॥

धृष्टद्युम्नने अग्निके समान प्रकाशमान एक भयङ्कर बाणको धनुषपर चढाया। महाराज! उस समय धृष्टद्युम्नके रोंदे युक्त धनुषके बीचमें स्थित वह भयानक बाण तीक्ष्ण किरणधारी शरद्कालके सूर्यकी भांति शोभित हुआ॥ तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंने धृष्टद्युम्नको उन भयङ्कर धनुष और बाण ग्रहण करते देख समझा, कि अब द्रोणाचार्यका अन्तिम समय उपस्थित हुआ है॥ अधिक क्या कहूं, प्रतापी भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यने भी उस भयङ्कर बाणको धृष्टद्युम्नके धनुषपर स्थित देखकर अपनी मृत्युको समीप पहुंची हुई स्थिर की॥ (४–७)

अनन्तर महात्मा द्रोणाचार्य उस बाणको निवारण करनेके वास्ते विशेष यत्न करने लगे; परन्तु उनके अस्त्र उस समय प्रकट नहीं हुए॥ महाराज! उन्होंने चार दिन और एक रात्रि लगातार अपने बाणोंको चलाया था, पाचवें दिनके तीनभाग बीतनेपर उनके बाण निःशेषित हुए। इसी भांति वह बाणरहित, पुत्रशोकसे दुःखित और चित्तकी व्यग्रताके कारण अनेक भांतिके दिव्य अस्त्रोंको भूल गये; और ऋषियोंकी आज्ञाके अनुसार अस्त्र परित्याग करनेकी इच्छा करके द्रोणाचार्यने पहिलेकी भांति

भूयश्चाऽन्यत्समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः ।
शरांश्च ब्रह्मदण्डाभान्धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १२ ॥
ततस्तं शरवर्षेण महता समवाकिरत् ।
व्यशातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ १३ ॥
शरांश्च शतधा तस्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।
ध्वजं धनुश्च निशितैः सारथिं चाऽप्यपातयत् ॥ १४ ॥
धृष्टद्युम्नः प्रहस्याऽन्यत्पुनरादाय कार्मुकम् ।
शितेन चैनं बाणेन प्रत्यविध्यस्तनान्तरे ॥ १५ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासोऽसम्भ्रान्त इव संयुगे ।
भल्लेन शितधारेण चिच्छेदाऽस्य पुनर्धनुः ॥ १६ ॥
यच्चाऽस्य बाणविकृतं धनूंषि च विशाम्पते ।
सर्वं चिच्छेद दुर्धर्षो गदां खड्गं च वर्जयन् ॥ १७ ॥
धृष्टद्युम्नं च विव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
जीवितान्तकरः क्रुद्धः क्रुद्धरूपः परन्तपः ॥ १८ ॥

अपने तेज तथा पराक्रमके अनुसार युद्ध नहीं किया ॥ (८-११)

उस समय द्रोणाचार्य अङ्गिराके दिये हुए दिव्य धनुष और ब्रह्मदण्डके समान बाणोंको ग्रहण करके धृष्टद्युम्नके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ द्रोणाचार्यने मुहूर्त्त भरके बीच क्रुद्धस्वभाववाले धृष्टद्युम्नको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपाकर उसे क्षत विक्षत कर दिया ॥ तिसके अनन्तर द्रोणाचार्यने अपने चोखे बाणोंके प्रभाव से पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नके चलाये हुए सहस्रों बाणोंको सैकडों खण्ड करके काटके गिराया फिर उनके रथकी ध्वजा धनुष और सारथीको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (१२-१४)

तब धृष्टद्युम्नने दूसरा दृढ धनुष ग्रहण करके तेज धारवाले बाणोंसे द्रोणाचार्यके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर क्षणभरतक व्याकुल रहे । परन्तु क्षण भरके बाद पराक्रमी द्रोणाचार्यने तेज धारवाले भल्लसे फिर धृष्टद्युम्नके धनुषको काट दिया अधिक क्या कहूं उस समय शत्रुनाशन द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नकी गदा और तलवारको छोडके सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रों तथा धनुष बाणको अपने अस्त्रोंके प्रभावसे काटके गिरा दिये, फिर क्रुद्ध होकर धृष्टद्युम्नके वधकी इच्छासे उन्हें नौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ (१५-१८)

धृष्टद्युम्नोऽथ तस्याऽश्वान्स्वरथाश्वैर्महारथः ।
व्यामिश्रयदमेयात्मा ब्राह्ममस्त्रमुदीरयन् ॥ १९ ॥
ते मिश्रा बह्वशोभन्त जवना वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च शोणाश्च भरतर्षभ ॥ २० ॥
यथा सविद्युतो मेघा नदन्तो जलदागमे ।
तथा रेजुर्महाराज मिश्रिता रणमूर्धनि ॥ २१ ॥
ईषाबन्धं चक्रबन्धं रथबन्धं तथैव च ।
प्राणाशयदमेयात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ॥ २२ ॥
स च्छिन्नधन्वा पाञ्चाल्यो निकृत्तध्वजसारथिः ।
उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत ॥ २३ ॥
तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः ।
निजघान शरैर्द्रोणः क्रुद्धः सत्यपराक्रमः ॥ २४ ॥
तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः ।
विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ २५ ॥
असंशयं तथाभूतः पाञ्चाल्यः साध्वमन्यत ।
वधमाचार्यमुख्यस्य प्राप्तकालं महात्मनः ॥ २६ ॥

तिसके अनन्तर महाबलवान् महात्मा धृष्टद्युम्नने ब्रह्मास्त्र चलाकर अपने रथके घोडोंको द्रोणाचार्यके रथके घोडोंके संग मिला दिया ॥ महाराज ! उस समय पारावत और लाल वर्णके रथके घोडे एकही स्थलपर मिलके अत्यन्त ही शोभित हुए॥ शरद् ऋतुके आरम्भमें बिजलीसे युक्त गर्जते हुए बादलोंकी जैसी शोभा होती है, वैसे ही रणभूमिके बीच उन दोनों महात्माओंके घोडोंके एक ही स्थानपर मिलनेसे अत्यन्त ही शोभा हुई ॥ (१९–२१)

इस ही समय द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके रथकी धुरी और चक्रको टुकडे टुकडे कर दिया ॥ तब महावीर पराक्रमी पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने धनुष, ध्वजा, सारथीसे रहित होकर उस भयङ्कर विपद के समय में गदा ग्रहण किया, सत्य पराक्रमी द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर अपने तेज बाणोंसे धृष्टद्युम्नकी गदाको भी काटके गिरा दिया ॥ (२२–२४)

गदाको कटती देख पुरुषसिंह धृष्टद्युम्नने प्रकाशमान तलवार और एकसौ चन्द्र प्रतिमाभूषित ढालको ग्रहण किया॥ महाराज ! वैसी अवस्थामें पडके भी धृष्टद्युम्न भयभीत नहीं हुए, और

ततः स रथनीडस्थं स्वरथस्य रथेषया ।
अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ २७ ॥
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथः ।
इयेष वक्षो भेत्तुं स भारद्वाजस्य संयुगे ॥ २८ ॥
सोऽतिष्ठद्युगमध्ये वै युगसन्नहनेषु च ।
जघनार्धेषु चाऽश्वानां तत्सैन्याः समपूजयन् ॥ २९ ॥
तिष्ठतो युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः ।
नाऽपश्यदन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३० ॥
क्षिप्रं श्येनस्य चरतो यथैवाऽऽमिषगृद्धिनः ।
तद्वदासीदभीसारो द्रोणपार्षतयो रणे ॥ ३१ ॥
तस्य पारावतानश्वान्रथशक्त्या पराभिनत् ।
सर्वानेकैकशो द्रोणो रक्तानश्वान्विवर्जयन् ॥ ३२ ॥
ते हता न्यपतन्भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः ।
शोणास्तु पर्यमुच्यन्त रथबन्धाद्विशाम्पते ॥ ३३ ॥
तान्हयान्निहतान्दृष्ट्वा द्विजाग्र्येण स पार्षतः ।

महात्मा द्रोणाचार्यके वधका यही समय है, ऐसा विचारके उनके वधकी अभिलाषासे उस प्रकाशमान तलवार और ढालको ग्रहण करके रथके दण्डके सहारेसे द्रोणाचार्यके समीप गमन करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ (२५–२७)

हे राजेन्द्र ! महारथी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके वक्षस्थल भेदनेकी इच्छा करके कभी पीछे, कभी घोडोंके बीच और कभी रथ पर चढते हुए द्रोणाचार्यके समीप चारों ओर भ्रमण करने लगे; धृष्टद्युम्नके इस कठिन कर्मको देखकर योद्धा लोग उनकी प्रशंसा करने लगे । अधिक क्या कहूं, उस समय धृष्टद्युम्नको अपने रथ तथा घोडोंके ऊपर चढनेके समय स्वयं द्रोणाचार्य भी उसके छिद्रको देखनेमें समर्थ नहीं हुए; उस समय धृष्टद्युम्नका पराक्रम अद्भुतरूपसे दीख पडा; जैसे बाजपक्षी मांसकी इच्छासे इधर उधर भ्रमण करते हुए दीख पडता है, वैसे ही धृष्टद्युम्न भी द्रोणाचार्यके वधकी अभिलाषासे उनकी ओर झपटते हुए दीख पडे ॥ (२८–३१)

अनन्तर द्रोणाचार्यने रथशक्तिके प्रहारसे धृष्टद्युम्नके पारावतवर्ण समान घोडोंको प्राणरहित करके पृथ्वीमें गिरा दिया, जब धृष्टद्युम्नके रथके घोडे मरकर पृथ्वीमें गिर पडे, तब द्रोणाचार्यके घोडे रथ

नाऽमृष्यत युधां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ३४ ॥
विरथः स गृहीत्वा तु खड्गं खड्गभृतां वरः ।
द्रोणमभ्यपतद्राजन्वैनतेय इवोरगम् ॥ ३५ ॥
तस्य रूपं बभौ राजन्भारद्वाजं जिघांसतः ।
यथा रूपं पुरा विष्णोर्हिरण्यकशिपोर्वधे ॥ ३६ ॥
स तदा विविधान्मार्गान्प्रवरांश्चैकविंशतिम् ।
दर्शयामास कौरव्य पार्षतो विचरन्रणे ॥ ३७ ॥
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं प्रसृतं सृतम् ।
परिवृत्तं निवृत्तं च खड्गं चर्म च धारयन् ॥ ३८ ॥
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पार्षतः ।
भारतं कौशिकं चैव सात्वतं चैव शिक्षया ॥ ३९ ॥
दर्शयन्व्यचरद्युद्धे द्रोणस्याऽन्तचिकीर्षया ।
चरतस्तस्य तान्मार्गान्विचित्रान्खड्गचर्मिणः ॥ ४० ॥
व्यस्मयन्त रणे योधा देवताश्च समागताः ।
ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ॥ ४१ ॥

बन्धनसे मुक्त हुए॥ द्विजसत्तम द्रोणाचार्यके शस्त्रसे अपने रथके घोडोंको मरते देख तलवार युद्ध जाननेवाले योद्धाओंमें मुख्य धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके पराक्रमको सहन नहीं किया; और रथ भ्रष्ट होकर भी केवल तलवारको ही ग्रहण करके इस प्रकार द्रोणाचार्यकी ओर दौडे, जैसे गरुड सर्पकी ओर दौडता है ॥ (३२-३५)

महाराज ! जैसे पहिले समयमें हिरण्यकश्यपके वधके समय विष्णुका भयङ्कर स्वरूप दीख पडा था, द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करनेवाले धृष्टद्युम्नका भी उस समय वैसाही भयङ्कर रूप दिखाई देने लगा ॥ उस समय धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करके ढाल तलवार ग्रहण करके नाना प्रकारकी गति विशेषसे चारों ओर घूमते, दौडते, उछलते, आगे बढते, लौटते, तलवार चलाते, उठाते, घुमाते हुए भारत कौशिक और सात्वत आदि इक्कीस प्रकारकी तलवार युद्धकी गति प्रकाशित करते हुए युद्ध भूमिके बीच भ्रमण करने लगे। (३६-३९)

उस समय युद्धभूमिमें स्थित सम्पूर्ण योद्धा और आकाशमें विमानों पर चढके युद्ध देखनेवाले देवता लोग ढाल तलवार ग्रहण करनेवाले धृष्टद्युम्नको इस प्रकार गति विशेषसे द्रोणाचार्यके सम्मुख

चर्म खड्गं च सम्बाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ।
ये तु वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥ ४२ ॥
निकृष्टयुद्धे द्रोणस्य नाऽन्येषां सन्ति ते शराः ।
ऋते शरद्वतात्पार्थाद् द्रौणेर्वैकर्तनात्तथा ॥ ४३ ॥
प्रद्युम्नयुयुधानाभ्यामभिमन्योश्च भारत ।
अथाऽस्येषुं समाधत्त दृढं परमसम्मतम् ॥ ४४ ॥
अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसंमितम् ।
तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुङ्गवः ॥ ४५ ॥
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयत् ॥ ४६ ॥
चरन्तं रथमार्गेषु सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्याऽपि च भारत ॥ ४७ ॥

घूमते देखकर विस्मित हुए। तिसके अनन्तर द्विजसत्तम द्रोणाचार्यने एक हजार बाणोंको चलाकर धृष्टद्युम्नके हाथमें स्थित उस प्रकाशमान तलवार और एक सौ चन्द्र प्रतिमाभूषित ढालको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया। (३९-४२)

उस समय द्रोणाचार्यने जिन सम्पूर्ण बाणोंको धृष्टद्युम्नकी ओर चलाये वे सब बाण बारह अंगुलके परिमाण वाले थे, उनका नाम वितस्तिक बाण था, जब कोई शत्रु अत्यन्त ही निकट पहुंच जाता है, और उस समय उसके ऊपर बाण चलानेकी कुछ उपाय नहीं रहती, उस ही समय वितस्तिक बाणोंको चलाना पडता है। निकटवर्ती शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेवाले पुरुषोंके बीच ये वितस्तिक नामक बाण केवल द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कुन्तीपुत्र अर्जुन, अश्वत्थामा, सात्यकि और प्रद्युम्नके समीप उपस्थित हैं और अभिमन्यु भी इन बाणोंका प्रयोग करना जानता था, इन पुरुषोंके अतिरिक्त और दूसरे किसी पुरुषके निकट ये बाण उपस्थित नहीं थे। (४२-४५)

द्रोणाचार्यने अपने शिष्य पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्नके वधकी इच्छा करके एक दृढ दिव्यास्त्रको ग्रहण किया परन्तु शिनिपौत्र सात्यकिने महात्मा कर्ण और राजा दुर्योधनके सम्मुखमें ही उस अस्त्रको दश बाणोंसे निवारण करके द्रोणाचार्यके अस्त्रसे धृष्टद्युम्नको बचा लिया॥ उस समय महात्मा कृष्ण और अर्जुन वहां पर उपस्थित हुए। और सत्यपराक्रमी सात्यकिको द्रोणाचार्य कर्ण और कृपाचार्य आदि महारथियोंकी मण्डलीके

अपश्येतां महात्मानौ विष्वक्सेनधनञ्जयौ ।
अपूजयेतां वार्ष्णेयं ब्रुवाणौ साधुसाध्विति ॥ ४८ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वेषां युधि निघ्नन्तमच्युतम् ।
अभिपत्य ततः सेनां विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥ ४९ ॥
धनञ्जयस्ततः कृष्णमब्रवीत्पश्य केशव ।
आचार्यरथमुख्यानां मध्ये क्रीडन्मधूद्वहः ॥ ५० ॥
आनन्दयति मां भूयः सात्यकिः परवीरहा ।
माद्रीपुत्रौ च भीमं च राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ५१ ॥
यच्छिक्षयाऽनुद्धतः सन्रणे चरति सात्यकिः ।
महारथानुपक्रीडन्वृष्णीनां कीर्तिवर्धनः ॥ ५२ ॥
तमेते प्रतिनन्दन्ति सिद्धाः सैन्याश्च विस्मिताः ।
अजय्यं समरे दृष्ट्वा साधुसाध्विति सात्यकिम् ॥
योधाश्चोभयतः सर्वे कर्मभिः समपूजयन् । ॥ ५३॥ [८८०६]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

सञ्जय उवाच— सात्वतस्य तु तत्कर्म दृष्ट्वा दुर्योधनादयः ।

बीच रथ पर चढके भ्रमण करते और उन लोगोंके चलाये हुए दिव्य अस्त्रोंको निवारण करते हुए देखकर धन्य धन्य करके उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४५-४९

अनन्तर अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, हे कृष्ण ! यह वृष्णिवंशी शत्रुनाशन सात्यकि द्रोणाचार्य आदि महारथियोंके सङ्ग युद्ध करते हुए नकुल, सहदेव, भीमसेन, राजा युधिष्ठिर और मुझको अत्यन्त ही आनन्दित कर रहा है, यह वृष्णिवंशकी कीर्त्तिको बढानेवाला सात्यकि सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले शत्रुसेनाके महारथियोंके सङ्ग मानो खेलवाडकी भांति युद्ध करते हुए युद्धभूमिके बीच भ्रमण कर रहा है ॥ यह देखो, सम्पूर्ण सिद्ध और सेनापति लोग सात्यकिको अपराजित समझकर धन्य धन्य कहके उसकी प्रशंसा कर रहे हैं; तथा दोनों सेनाके योद्धा भी सात्यकिके अलौकिक युद्धको देखकर उसकी अत्यन्त ही प्रशंसा कर रहे हैं ॥ (५०—५३) [८८०६]

द्रोणपर्वमें एकसौ एकानब्बे अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ बानब्बे अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! अनन्तर कृपाचार्य, कर्ण और दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्र लोग सात्यकिके ऐसे कठिन कर्मको देखकर अपने तेजबाणोंकी वर्षा-

शैनेयं सर्वतः क्रुद्धा वारयामासुरञ्जसा ॥ १ ॥
कृपकर्णौ च समरे पुत्राश्च तव मारिष ।
शैनेयं त्वरयाऽभ्येत्य विनिघ्नन्निशितैः शरैः ॥ २ ॥
युधिष्ठिरस्ततो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
भीमसेनश्च बलवान्सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ३ ॥
कर्णश्च शरवर्षेण गौतमश्च महारथः ।
दुर्योधनादयस्ते च शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ४ ॥
तां वृष्टिं सहसा राजन्नुत्थितां घोररूपिणीम् ।
वारयामास शैनेयो योधयंस्तान्महारथान् ॥ ५ ॥
तेषामस्त्राणि दिव्यानि संहितानि महात्मनाम् ।
वारयामास विधिवद्दिव्यैरस्त्रैर्महामृधे ॥ ६ ॥
क्रूरमायोधनं जज्ञे तस्मिन्राजसमागमे ।
रुद्रस्येव हि क्रुद्धस्य निघ्नतस्तान्पशून्पुरा ॥ ७ ॥
हस्तानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत ।
छत्राणां चाऽपविद्धानां चामराणां च सञ्चयैः ॥ ८ ॥
राशयः स्म व्यदृश्यन्त तत्र तत्र रणाजिरे ।
भग्नचक्रै रथैश्चापि पातितैश्च महाध्वजैः ॥ ९ ॥

करते हुए, उसे निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ उसे देखकर राजा युधिष्ठिर पराक्रमी भीमसेन माद्रीपुत्र नकुल सहदेव सात्यकिकी रक्षा करनेकी अभिलाषा से उसे घेरकर युद्धभूमि में स्थित हुए ॥ (१–३)

गौतमनन्दन कृपाचार्य कर्ण और दुर्योधनने अपने भयङ्कर बाणोंकी वर्षा कर सात्यकिको छिपा दिया ॥ शिनिपौत्र सात्यकि उस भयङ्कर बाणवर्षाको निवारण करते हुए उन सम्पूर्ण महारथियोंके संग युद्ध करने लगे; और उन महारथियों के चलाये हुए दिव्य अस्त्रोंको अपने दिव्य अस्त्रके प्रभावसे निवारण करने लगे ॥ उस महाघोर संग्रामके समय वह रणभूमि सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करनेवाले रुद्रदेवके क्रीडास्थलके समान बोध होने लगी ॥ (४—७)

इधर कटे पडे हुए बहुतेरे पुरुषोंके सिर, भुजा, धनुष, चंवर, टूटे हुए रथके चक्के, टूटे हुए रथ, रथकी ध्वजा, मरे हुए हाथी घोडे और मनुष्योंके शरीरसे वह रणभूमि परिपूरित होगई । उस समय अस्त्र शस्त्रों की चोट से घायल होके

सादिभिश्च हतैः शूरैः सङ्कीर्णा वसुधाऽभवत् ।
बाणपातनिकृत्तास्तु योधास्ते कुरुसत्तम ॥ १० ॥
चेष्टन्तो विविधाश्चेष्टा व्यदृश्यन्त महाहवे ।
वर्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे ॥ ११ ॥
अब्रवीत्क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अभिद्रवत संयत्ताः कुम्भयोनिं महारथाः ॥ १२ ॥
एषो हि पार्षतो वीरो भारद्वाजेन सङ्गतः ।
घटते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य नाशने ॥ १३ ॥
यादृशानि हि रूपाणि दृश्यन्तेऽस्य महारणे ।
अद्य द्रोणं रणे क्रुद्धो घातयिष्यति पार्षतः ॥ १४ ॥
ते यूयं सहिता भूत्वा युध्यध्वं कुम्भसम्भवम् ।
युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सृञ्जयानां महारथाः ॥ १५ ॥
अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजजिघांसवः ।
तान्समापततः सर्वान्भारद्वाजो महारथः ॥ १६ ॥
अभ्यवर्तत वेगेन मर्तव्यमिति निश्चितः ।

बहुतेरे योद्धा रणभूमिमें पडे हुए विविध प्रकारसे हल चल करते हुए दिखाई देने लगे । (८-११)

उस देवासुर संग्रामके समान भयङ्कर युद्धके समय धर्मराज युधिष्ठिर युद्धभूमि में क्षत्रीय योद्धाओंको आवाहन करके उनसे यह वचन बोले, हे शूरवीर महारथी योद्धा लोगो ! तुम सब कोई यत्नवान् होकर कुम्भसे उत्पन्न हुए महारथी द्रोणाचार्यकी ओर दौडो ॥ (११-१२)

यह देखो, पृषतकुल भूषण धृष्टद्युम्न भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके संग युद्ध करने में प्रवृत्त होकर उन्हें अपने वशमें करने की अभिलाषासे शक्तिके अनुसार युद्ध कर रहे हैं । इस समय धृष्टद्युम्नका रूप जैसा भयङ्कर दीख पडता है, उससे यह मुझे निश्चय बोध होरहा है, कि धृष्टद्युम्न आज रणभूमिके बीच क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यका वध करेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है; इससे तुम सब कोई इकट्ठे होकर द्रोणाचार्यके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होजाओ । (१२-१५)

महाराज ! जब राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाके पुरुषोंको ऐसी आज्ञा दिया तब महारथी पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा लोग अत्यन्त यत्नवान् होकर द्रोणाचार्यकी ओर दौडे । जब वे सम्पूर्ण योद्धा इस प्रकार द्रोणाचार्यकी ओर गमन करने

प्रयाते सत्यसन्धे तु समकम्पत मेदिनी ॥ १७ ॥
ववुर्वाताः सनिर्घातास्त्रासयाना वरूथिनीम् ।
पपात महती चोल्का आदित्यान्निश्चरन्त्युत ॥ १८ ॥
दीपयन्ती उभे सेने शंसन्तीव महद्भयम् ।
जज्वलुश्चैव शस्त्राणि भारद्वाजस्य मारिष ॥ १९ ॥
रथाः स्वनन्ति चाऽत्यर्थं हयाश्चाऽश्रूण्यवासृजन् ।
हतौजा इव चाऽप्यासीद्भारद्वाजो महारथः ॥ २० ॥
प्रास्फुरन्नयनं चास्य वामबाहुस्तथैव च ।
विमनाश्चाऽभवद्युद्धे दृष्ट्वा पार्षतमग्रतः ॥ २१ ॥
ऋषीणां ब्रह्मवादानां स्वर्गस्य गमनं प्रति ।
सुयुद्धेन ततः प्राणानुत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २२ ॥
ततश्चतुर्दिशं सैन्यैर्द्रुपदस्याऽभिसंवृतः ।
निर्दहन्क्षत्रियव्रातान्द्रोणः पर्यचरद्रणे ॥ २३ ॥
हत्वा विंशतिसाहस्रान्क्षत्रियानरिमर्दनः ।

लगे,तब भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य मरनेका निश्चय करके वेगपूर्वक उन योद्धाओंकी ओर बढे । (१५—१७)

सत्यपराक्रमी द्रोणाचार्यके पाञ्चाल और सृञ्जयोंकी सेनाकी ओर गमन करनेके समय सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करते हुए वायु प्रचण्ड वेगसे बहने लगा और पृथ्वी कांपने लगी । इस ही समय दोनों सेनाके पुरुषोंको सन्तापित करते हुए सूर्यमण्डलसे उल्का पात होने लगा; और भरद्वाजपुत्र महात्मा द्रोणाचार्यके सम्पूर्ण अस्त्र उस समय प्रज्वलित होने लगे, उनके रथका भयङ्कर शब्द सुनाई देने लगा, और रथके घोडोंकी आंखोंसे आंसूकी धारा बहती हुई दिखाई देती थी । (१७-२०)

उस समय पराक्रमी द्रोणाचार्य स्वयं भी निस्तेज होगये; उस समय उनकी बायीं आंख और बायीं भुजा फडकने लगी; विशेष करके धृष्टद्युम्नको अपने संमुख स्थित देखकर द्रोणाचार्य युद्धसे विरत हुए; और ब्रह्मवादी ऋषियोंके गमन करने योग्य स्वर्ग लोक प्राप्त होनेकी इच्छासे धर्मयुद्धके अनुसार प्राण त्यागनेमें प्रवृत्त हुए ॥ (२०-२२)

पाञ्चालसेनाके योद्धाओंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ उस समय पराक्रमी द्रोणाचार्य अनगिनत क्षत्रिय योद्धाओंको अपने अस्त्रोंके प्रभावसे भस्म करके रणभूमिमें चारों ओर घूमने लगे ।

दशायुतानि कारिणामवधीद्विशिखैः शितैः ॥ २४ ॥
सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममस्त्रं समास्थितः ॥ २५ ॥
पाञ्चाल्यं विरथं भीमो हतसर्वायुधं बली ।
सुविषण्णं महात्मानं त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ २६ ॥
ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः ।
अब्रवीदभिसम्प्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात् ॥ २७ ॥
न त्वदन्य इहाऽऽचार्यं योद्धुमुत्सहते पुमान् ।
त्वरस्व प्राग्वधायैव त्वयि भारः समाहितः ॥ २८ ॥
स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभारसहं धनुः ।
अभिपत्याऽऽददे क्षिप्रमायुधप्रवरं दृढम् ॥ २९ ॥
संरब्धश्च शरानस्यन्द्रोणं दुर्वारणं रणे ।
विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३० ॥
तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ संरब्धौ रणशोभिनौ ।

उस समय क्षत्रियोंको नाश करनेवाले द्रोणाचार्यने अपने तेज धारवाले अस्त्र शस्त्रोंको चलाकर एक लाख हाथी और बीस हजार योद्धाओंका वध किया। तिसके अनन्तर वह क्षत्रिय पुरुषोंके नाशकी इच्छा करके ब्राह्म अस्त्र प्रकट करके धूएंसे रहित जलती हुई अग्निकी भांति युद्धभूमिमें विराजमान हुए॥ (२३-२५)

इधर महाबली शत्रुनाशन भीमसेन शीघ्रताके सहित रथ और अस्त्रशस्त्रोंसे रहित विपद्ग्रस्त धृष्टद्युम्नके समीप अपना रथ बढाकर उपस्थित हुए और उन्हें शीघ्र ही अपने रथपर चढा लिया। अनन्तर भीमसेन उस समय द्रोणाचार्य-को लगातार अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करते देख धृष्टद्युम्नसे बोले, हे वीर ! इस समय तुम्हें छोडके और कोई पुरुष भी ऐसा नहीं है, जो युद्धभूमिमें द्रोणाचा-र्यके अस्त्र प्रहारको सह सके। इससे तुम शीघ्र ही द्रोणाचार्यके वधके निमित्त उनके समीप गमन करो; क्योंकि इस युद्धका सम्पूर्ण भार तुम्हारे ही ऊपर अर्पित हुआ है ॥ (२६-२८)

भीमसेनके वचनको सुनकर महाबाहु पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने उस ही समय एक दृढ धनुष और अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके अत्यन्त पराक्रमी द्रोणाचार्यके निवारण करनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक अपने बाणोंको वर्षाकर उन्हें छिपा दिया ॥ (२९-३०)

उदीरयेतां ब्राह्माणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ॥ ३१ ॥
स महास्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद्रणे।
निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भारद्वाजस्य पार्षतः ॥ ३२ ॥
स वसातीञ्शिबींश्चैव बाल्हीकान्कौरवानपि।
रक्षिष्यमाणान्संग्रामे द्रोणं व्यधमदच्युतः ॥ ३३ ॥
धृष्टद्युम्नस्तथा राजन्गभस्तिभिरिवांशुमान्।
बभौ प्रच्छादयन्नाशाः शरजालैः समन्ततः ॥ ३४ ॥
तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा विद्ध्वा चैनं शिलीमुखैः।
मर्माण्यभ्यहनद्भूयः स व्यथां परमामगात् ॥ ३५ ॥
ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याऽऽश्लिष्य तं रथम्।
शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥
यदि नाम न युध्येरञ्शिक्षिता ब्रह्मबन्धवः।
स्वकर्मभिरसन्तुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं व्रजेत् ॥ ३७ ॥
अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः।

युद्धविद्याके जाननेवाले वे दोनों वीर क्रुद्ध होकर रणभूमिके बीच अत्यन्त ही शोभित हुए; अनन्तर उन दोनों वीरोंने उस समय दिव्य और ब्राह्म अस्त्रोंको प्रकट किया ॥ अनन्तर धृष्टद्युम्नने अपने अस्त्रोंके प्रभावसे द्रोणाचार्यके चलाये हुए अस्त्रोंको निवारण करके उन्हें अनगिनत बाणोंसे छिपा दिया। तिसके अनन्तर पराक्रमी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यकी रक्षाके वास्ते युद्धभूमिमें स्थित शिबि, वसाति, वाह्लिक और कुरुसेनाके योद्धाओंको भस्म करने लगे ॥ (३१-३३)

इस ही समय पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूरित करके किरणधारी प्रचण्ड सूर्यकी भांति रणभूमिके बीच प्रकाशित होने लगे ॥ तिसके अनन्तर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके धनुषको काटके अपने तेज बाणोंसे उनके मर्मस्थानोंमें प्रहार किया। उस समय धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर अत्यन्त ही कातर हुए। (३४-३५)

इसी समय भीमसेन अत्यन्त क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यके रथको पकडके मृदुस्वरसे उनसे कहने लगे, यदि अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या जानने वाले अधम ब्राह्मण लोग अपने जातीय कर्त्तव्य कर्मोंके अनुष्ठानसे विरत होकर युद्ध न करते तो कदापि क्षत्रियोंके कुलका नाश न होता ॥ हे ब्राह्मण! देखो सब शास्त्रोंमें अहिंसा

तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवांश्च ब्रह्मवित्तमः ॥ ३८ ॥
श्वपाकवन्म्लेच्छगणान्हत्वा चाऽन्यान्पृथग्विधान् ।
अज्ञानान्मूढवद्ब्रह्मन्पुत्रदारधनेप्सया ॥ ३९ ॥
एकस्याऽर्थे बहून्हत्वा पुत्रस्याऽधर्मविद्यया ।
स्वकर्मस्थान्विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम् ॥ ४० ॥
यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि ।
स चाऽद्य पतितः शेते पृष्ठेनाऽऽवेदितस्तव ॥ ४१ ॥
धर्मराजस्य तद्वाक्यं नाऽभिशङ्कितुमर्हसि ।
एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद्धनुः ॥ ४२ ॥
सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत ।
कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च ॥ ४३ ॥
संग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीम्येष पुनः पुनः ।
पाण्डवेभ्यः शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम्॥४४॥
इति तत्र महाराज प्राक्रोशद् द्रौणिमेव च ।

ही को पण्डितोंने श्रेष्ठ धर्म कहके वर्णन किया है, ब्राह्मण ही उस धर्मके आश्रयस्वरूप हैं और आप भी ब्रह्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रगण्य ब्राह्मण हैं ॥ (३६–३८)

तब पुत्र, स्त्री और धनकी अभिलाषामें रत होकर आप अज्ञानताके कारण मूर्ख चाण्डालकी भांति म्लेच्छ आदि जातिके पुरुषोंको विशेष करके एक पुत्रके निमित्त अधर्मियोंकी भांति क्षत्रिय धर्ममें रत बहुतेरे क्षत्रियोंका अधर्मपूर्वक वध करके क्यों नहीं लज्जित होते हैं ? आप जिसके वास्ते शस्त्र धारण तथा जिसके मुखको देखकर जीवन धारण करते हैं; आज वही तुम्हारे पुत्र अश्वत्थामा मरकर पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं ॥ आप धर्मराज युधिष्ठिरके कहे हुए इस वचनमें तनिक भी सन्देह न कीजिये । (३९–४२)

महाराज ! धर्मात्मा द्रोणाचार्य भीमसेनके इन सम्पूर्ण वचनोंको सुनकर शस्त्र परित्याग करनेकी इच्छासे अपना धनुष फेंककर यह वचन बोले, हे महाधनुषधारी कर्ण ! हे कृपाचार्य ! हे दुर्योधन! तुम सब कोई रणभूमिमें यत्नवान् होके युद्ध करो; मैं बार बार कहता हूं पाण्डवोंसे तुम लोगोंका अमंगल न होवे । परन्तु मैंने अब अपने इन शस्त्रोंको परित्याग किया ॥ हे राजेन्द्र ! उस समय द्रोणाचार्य ऐसा वचन कहके अश्वत्थामाका नाम लेकर ऊंचे स्वरसे रोदन करने

उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च ॥ ४५ ॥
अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान् ।
तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
सशरं तद्धनुर्घोरं संन्यस्याऽथ रथे ततः ।
खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात् ॥ ४७ ॥
हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च ।
द्रोणं तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशङ्गतम् ॥ ४८ ॥
हाहाकारं भृशं चक्रुरहो धिगिति चाऽब्रुवन् ।
द्रोणोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य परमं सांख्यमास्थितः ॥४९॥
तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
पुराणं पुरुषं विष्णुं जगाम मनसा परम् ॥ ५० ॥
मुखं किञ्चित्समुन्नाम्य विष्टभ्य उरमग्रतः ।
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो निक्षिप्य हृदि धारणाम् ॥५१॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
स्मरित्वा देवदेवेशमक्षरं परमं प्रभुम् ॥ ५२ ॥

लगे और उस रणभूमिमें शस्त्र परित्याग करके रथमें बैठकर योगयुक्त पुरुषकी भांति परमेश्वरके ध्यानमें रत होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान किया। (४२–४६)

प्रतापी धृष्टद्युम्नने यह अच्छा अवसर पाया; उस समय वह बाण सहित भयङ्कर धनुषको रथमें रखके तलवार ग्रहण करके रथसे कूदकर द्रोणाचार्यकी ओर दौडे। महाराज! द्रोणाचार्यको इस प्रकार धृष्टद्युम्नके वशमें होते देखकर मनुष्य तथा सम्पूर्ण प्राणी 'ओहो! धिक्कार है। धिक्कार है!' ऐसे ही वचन कहते हुए हाहाकार करने लगे। (४६–४९)

इधर महातपस्वी द्रोणाचार्यने भी कर्ण आदि ऊपर कहे हुए वीरोंको सावधान करके शस्त्र परित्याग कर परम शान्त भाव अवलम्बन किया; और योगबलसे तेजोमय रूप धारण करके परम पुरुष सनातन विष्णु भगवान्का मनही मन ध्यान करने लगे॥ तिसके अनन्तर वह ज्योतिर्मयी मूर्तिवाले महा तपस्वी द्रोणाचार्य अगाडी सिर नवाके वक्षस्थल स्तम्भित और आंख मूंदके शुद्ध भावसे हृदयमें धृति अवलम्बनपूर्वक सृष्टि पालक और लयकर्त्ता देवोंके देव अविनाशी ओंकार रूप एकाक्षर परब्रह्मको स्मरण करके पूर्वोक्त ऋषियोंके संग दुर्लभ

दिवमाक्रामदाचार्यः साक्षात्सद्भिर्दुराक्रमाम् ।
द्वौ सूर्याविति नो बुद्धिरासीत्तस्मिंस्तथा गते ॥ ५३ ॥
एकाग्रमिव चाऽऽसीच्च ज्योतिर्भिः पूरितं नभः ।
समपद्यत चाऽऽर्कामे भारद्वाजदिवाकरे ॥ ५४ ॥
निमेषमात्रेण च तज्ज्योतिरन्तरधीयत ।
आसीत्किलकिलाशब्दः प्रहृष्टानां दिवौकसाम् ॥५५॥
ब्रह्मलोकगते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते ।
वयमेव तदाऽद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ॥ ५६ ॥
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम् ।
अहं धनञ्जयः पार्थो भारद्वाजस्य चाऽऽत्मजः ॥ ५७ ॥
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।
अन्ये तु सर्वे नाऽपश्यन्भारद्वाजस्य धीमतः ॥ ५८ ॥
महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ।
ब्रह्मलोकं महद्दिव्यं देवगुह्यं हि तत्परम् ॥ ५९ ॥
गतिं परमिकां प्राप्तमजानन्तो नृयोनयः ।
नाऽपश्यन्गच्छमानं हि तं सार्धमृषिपुङ्गवैः ॥ ६० ॥

स्वर्ग लोकको गया। (४९-५२)

महाराज! जब उन्होंने इस भांति स्वर्ग लोकमें गमन किया, उस समय उनके रथसे लेकर आकाशमार्ग दिव्य प्रकाशसे परिपूरित होगया; और हम लोगोंने भी उस समय समझा, कि आकाशमें दो सूर्य उदय हुए हैं। वरन द्रोणाचार्य के मरने के समय सूर्यकी ज्योतिके समान एक दूसरी ज्योति अधिक प्रकाशयुक्त दीख पडी थी; परन्तु निमेषभरके बीच वह ज्योति अन्तर्द्धान होगई। (५३-५५)

इसी भांति द्रोणाचार्य जब ब्रह्मलोकको गये और धृष्टद्युम्न मोहित हुए, तब उस समय देवता लोग प्रसन्नचित्तसे युक्त तथा आनन्दित हुए। जिस समय योगयुक्त महात्मा द्रोणाचार्य परमगतिको प्राप्त हुए; उस समय मनुष्योंके बीचमें केवल मैं, पृथापुत्र अर्जुन, भारद्वाजपुत्र अश्वत्थामा, वृष्णिनन्दन कृष्ण और धर्मपुत्र युधिष्ठिर हम लोग पांच पुरुषोंने उनका दर्शन किया था। देवताओंको भी कठिनतासे मालूम होने योग्य ब्रह्मलोकमें गमन करनेवाले योगयुक्त बुद्धिमान भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यकी उस महिमाको दूसरे कोई पुरुष भी जाननेमें

आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकमरिन्दमम् ।
चितुनाङ्गं शरव्रातैर्न्यस्तायुधमसृक्क्षरम् ॥ ६१ ॥
धिक्कृतः पार्षतस्तं तु सर्वभूतैः परामृशत् ।
तस्य मूर्धानमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहिनः ॥ ६२ ॥
किञ्चिदब्रुवतः कायाद्विचकर्तासिना शिरः ।
हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते ॥ ६३ ॥
सिंहनादरवं चक्रे भ्रामयन्खड्गमाहवे ।
आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः ॥ ६४ ॥
त्वत्कृते व्यचरत्संख्ये स तु षोडशवर्षवत् ।
उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ६५ ॥
जीवन्तमानयाऽऽचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मज ।
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह ॥ ६६ ॥
उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाव्रजत् ।
क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः ॥ ६७ ॥

समर्थ नहीं हुए ॥ मनुष्य लोग शत्रुनाशन द्रोणाचार्यके परम गति प्राप्त होने के विषय को भी नहीं जान सके । (५५-६१)

अनन्तर धृष्टद्युम्नने जब अस्त्ररहित बाणोंसे क्षतविक्षत और उनके रुधिरपूरित शरीरको आक्रमण किया, उस समय सम्पूर्ण प्राणी उसे धिक्कार प्रदान करने लगे। पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने मौनावलम्बी प्राणरहित शरीरवाले द्रोणाचार्य के केशको ग्रहण करके तलवारसे उनका सिर काट डाला । इसी भांति जब द्रोणाचार्य मारे गये, तब धृष्टद्युम्न हर्षपूर्वक अपने तलवारको घुमाते हुए भयङ्कर सिंहनाद करने लगे । (६१-६४)

महाराज ! उस श्यामवर्ण रूपवाले आचार्यके केश पक गये थे और उनकी अवस्था भी पचासी वर्षकी थी; तौभी वह तुम्हारे हितकी अभिलाषासे सोलह वर्षवाले युवा पुरुषकी भांति युद्धभूमिमें भ्रमण करते थे । उनके वधके समय कुन्तीपुत्र अर्जुनने बार बार धृष्टद्युम्नसे कहा था कि हे द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ! आचार्यका वध मत करो; तुम उनको जीते ही ले आओ, और उस समय सम्पूर्ण सेनापति लोग भी आचार्यका वध मत करो, ऐसे ही वचनोंको कहते हुए धृष्टद्युम्नकी ओर दौडे । (६४-६७)

महाराज ! अर्जुन और सम्पूर्ण राजा लोग इसी भांति धृष्टद्युम्नकी पुकारके

धृष्टद्युम्नोऽवधीद् द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् ।
शोणितेन परिक्लिन्नो रथाद्भूमिमथाऽपतत् ॥ ६८ ॥
लोहिताङ्ग इवाऽऽदित्यो दुर्धर्षः समपद्यत ।
एवं तं निहतं संख्ये ददर्श सैनिको जनः ॥ ६९ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु तद्राजन्भारद्वाजशिरोऽहरत् ।
तावकानां महेष्वासः प्रमुखे तत्समाक्षिपत् ॥ ७० ॥
ते तु दृष्ट्वा शिरो राजन्भारद्वाजस्य तावकाः ।
पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥ ७१ ॥
द्रोणस्तु दिवमास्थाय नक्षत्रपथमाविशत् ।
अहमेव तदाऽद्राक्षं द्रोणस्य निधनं नृप ॥ ७२ ॥
ऋषेः प्रसादात्कृष्णस्य सत्यवत्याः सुतस्य च ।
विधूमामिह सयान्तीमुल्कां प्रज्वलितामिव ॥ ७३ ॥
अपश्याम दिवं स्तब्ध्वा गच्छन्तं तं महाद्युतिम् ।
हते द्रोणे निरुत्साहाः कुरुपाण्डवसृञ्जयाः ॥ ७४ ॥

उन्हें द्रोणाचार्यके वध करनेसे निवारण कर रहे थे, तौभी पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने रथमें बैठे हुए द्रोणाचार्यका वध किया। हे राजेन्द्र ! जब द्रोणाचार्य रुधिरपूरित शरीरसे युक्त होकर रथसे पृथ्वी पर गिरे, उस समय ऐसा मालूम हुआ मानो अरुणकान्तिवाले महातेजस्वी सूर्य पृथ्वीपर पडे हुए हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंने द्रोणाचार्यको रणभूमिके बीच मरते हुए देखा ॥ (६७—६९)

इधर महाधनुर्द्धर धृष्टद्युम्नने भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके सिरको काटके तुम्हारी सेनाके पुरुषोंकी ओर फेंक दिया ॥ कौरव लोग द्रोणाचार्यके कटे हुए सिरको देख कर उत्साहरहित होकर रणभूमिसे चारों ओर भागने लगे ॥ इसही समय द्रोणाचार्य आकाश मार्ग अतिक्रम करके धीरे धीरे नक्षत्रमण्डलमें प्रविष्ट हुए। उनके मृत्युके इस अद्भुत व्यापारको सत्यवतीपुत्र भगवान् वेदव्यासकी कृपासे मैंने भी अवलोकन किया था। जब महातेजस्वी द्रोणाचार्य धूएंसे रहित प्रज्वलित लुककी भांति प्रकाशित होते हुए आकाशमार्गसे गमन करने लगे, तब हम लोग इकटक नेत्रसे आकाश मार्गकी ही ओर देखने लगे। (७०-७४)

द्रोणाचार्यके मरने पर कौरव, पाण्डव और सृञ्जय लोग उत्साह रहित होगये, और क्षण भरके बीच तुम्हारी सेनाके

अभ्यद्रवन्महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यत ।
निहता हतभूयिष्ठाः संग्रामे निशितैः शरैः ॥ ७५ ॥
तावका निहते द्रोणे गतासव इवाऽभवन् ।
पराजयमथाऽवाप्य परत्र च महद्भयम् ॥ ७६ ॥
उभयेनैव ते हीना नाऽविन्दन्धृतिमात्मनः ।
अन्विच्छन्तः शरीरं तु भारद्वाजस्य पार्थिवाः॥ ७७ ॥
नाऽन्वगच्छन्महाराज कबन्धायुतसंकुले ।
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च महद्यशः ॥ ७८ ॥
बाणशङ्खरवांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ।
भीमसेनस्ततो राजन्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७९ ॥
वरूथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम् ।
अब्रवीच तदा भीमः पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ८० ॥
भूयोऽहं त्वां विजयिनं परिष्वज्यामि पार्षत ।
सूतपुत्रे हते पापे धार्तराष्ट्रे च संयुगे ॥ ८१ ॥

सम्पूर्ण योद्धा लोग छिन्न भिन्न होकर चारों ओर भागने लगे ॥ भागनेके समय तुम्हारी सेनाके कितने ही पुरुष शत्रुओंके तेज बाणोंसे मर गये और कितनेही घायल होके पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ अधिक क्या कहा जावे, द्रोणाचार्यके मरनेसे तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग उत्साहरहित होकर चेत रहितकी भांति दिखाई देने लगे । उस समय कुरुसेनाके सम्पूर्ण वीर अपनी पराजय और परिणाममें महाभय उपस्थित हुआ समझके इस प्रकार निस्तेज होगये, कि किसी भांति युद्धभूमिमें खडे न होसके। उस समय सेनापति तथा राजा लोग अनगिनत कबन्धोंसे युक्त रणभूमिके बीच द्रोणाचार्यके मृत शरीरको चारों ओर खोजके भी न पासके।(७४-७८)

इधर पाण्डव लोग उस समय विजय लाभ और भविष्यमें बहुत बडा यश विस्तार हुआ, ऐसा समझके धनुष टङ्कार करते हुए शंख बजा कर महाघोर सिंह-नाद करने लगे । इस ही समय पृषत् पुत्र धृष्टद्युम्न पाण्डवोंकी व्यूहबद्ध सेनाके बीच प्रवेश करके भीमसेनसे मिले और उन दोनोंने आपसमें उस समय एक दूसरेको आलिङ्गन करके आनन्दसे नृत्य किया । अनन्तर भीमसेन शत्रुनाशन धृष्टद्युम्नसे बोले, हे पाञ्चालराजपुत्र ! जब पापी सूतपुत्र और दुर्योधनके मरने पर तुम विजय लाभ करोगे; तब मैं फिर

एतावदुक्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः।
बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पयामास पाण्डवः ॥ ८२ ॥
तस्य शब्देन वित्रस्ताः प्राद्रवंस्तावका युधि।
क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥ ८३ ॥
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन्विशाम्पते।
अरिक्षयं च संग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन् ॥ ८४ ॥ [८८९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणवधे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ समाप्तं द्रोणवधपर्व ॥

अथ नारायणास्त्रमोक्षपर्व।

सञ्जय उवाच— ततो द्रोणे हते राजन्कुरवः शस्त्रपीडिताः।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः ॥ १ ॥
उदीर्णांश्च परान्दृष्ट्वा कम्पमानाः पुनः पुनः।
अश्रुपूर्णेक्षणास्त्रस्ता दीनास्त्वासन्विशाम्पते ॥ २ ॥
विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः।

तुम्हें आलिङ्गन करूंगा। (७८-८१)

ऐसा वचन कहके भीमसेनने अत्यन्त हर्षके सहित ताल ठोंका, उस समय भीमसेनके बाहुशब्दसे पृथ्वी कांपने लगी। तुम्हारी ओरके योद्धा लोग भीमसेनकी भुजाके शब्दसे भयभीत होकर क्षत्रिय धर्मको त्याग कर युद्धभूमिमें चारों ओर भागने लगे। महाराज! इसी भांति पाण्डव लोग विजय लाभ करके तथा उन लोगोंके प्रबलशत्रु द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें मारे गये, इस कारण अत्यन्तही हर्षित होकर अपार सुख अनुभव करने लगे॥ (८२-८४) [८८९०]

द्रोणपर्वमें एकसौ बानव्वे अध्याय और द्रोणवधपर्व समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ तिरानव्वे अध्याय और नारायणास्त्रमोक्षपर्व।

सञ्जय बोले, महाराज! द्रोणाचार्य तथा मुख्य मुख्य शूरवीरोंके मारे जाने पर शत्रुओंके अस्त्रोंसे पीडित कुरुसेनाके पुरुषोंका नाश होने लगा, और वे लोग महाघोर शोकरूपी समुद्रमें डूबने लगे। विशेष करके शत्रुसेनाके पुरुषोंको बार बार हर्षपूर्वक अपनी ओर दौडते देख, तुम्हारी सेनाके पुरुष भयभीत होगये, उस समय उन लोगोंकी आखोंमें आंसू भर आये और वे सम्पूर्ण लोग, द्रोणाचार्यके मरनेके शोकसे अत्यन्त ही कातर और त्रस्त हुए॥ (१-२)

महाराज! जैसे पहिले समय में

आर्तस्वरेण महता पुत्रं ते पर्यवारयन् ॥ ३ ॥
रजस्वला वेपमाना वीक्षमाणा दिशो दश ।
अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षे पुरा हते ॥ ४ ॥
स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव ।
अशक्नुवन्नवस्थातुमपायात्तनयस्तव ॥ ५ ॥
क्षुत्पिपासापरिम्लानास्ते योधास्तव भारत ।
आदित्येनेव सन्तप्ता भृशं विमनसोऽभवन् ॥ ६ ॥
भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम् ।
विपर्यासं यथा मेरोर्वासवस्येव निर्जयम् ॥ ७ ॥
अमर्पणीयं तद् दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम् ।
त्रस्तरूपतरा राजन्कौरवाः प्राद्रवन्भयात् ॥ ८ ॥
गान्धारराजः शकुनिस्त्रस्तस्त्रस्ततरैः सह ।
हतं रुक्मरथं श्रुत्वा प्राद्रवत्सहितो रथैः ॥ ९ ॥
वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम् ।

हिरण्याक्ष नामक दैत्य के मारे जाने पर असुर लोग मलिन, उत्साहरहित और दुःखित होकर आखोंसे आंसू बहाते और दशों दिशाको अवलोकन करते हुए, हिरण्यकश्यपको घेरकर स्थित हुए थे, वैसे ही कुरुसेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग द्रोणाचार्यके मरनेसे तेजरहित और उत्साह शून्य होकर आर्त्तनाद करते हुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको घेरकर स्थित हुए ॥ (३-४)

पुरुषसिंह राजा दुर्योधन त्रस्त हुए क्षुद्र मृगोंके समान उन योद्धाओंके बीचमें घिरकर द्रोणाचार्यके मरनेसे त्रस्त हो कर युद्धभूमिमें स्थित न होसके; और शीघ्रताके सहित भागने लगे ॥ उस समय सेनाके योद्धा लोग पहिलेसे ही भूख प्याससे कातर होरहे थे, उसपर भी सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे उत्तप्त होकर अत्यन्त ही व्याकुल हुए ॥ अधिक क्या कहूं, समुद्र सूखने, सूर्यके पृथ्वीपर गिरने, सुमेरपर्वतके धरतीसे मिल जाने तथा देवराज इन्द्रकी पराजयकी भांति भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्यकी मृत्युरूपी असम्भव व्यापार को देख कर कुरुसेना के मुख्य सेनापति भी भयभीत होकर युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ (५-८)

गान्धारराज शकुनि द्रोणाचार्यके मरनेका वृत्तान्त सुनके अत्यन्त भयभीत होके भयातुर रथियोंकी सेनाके सहित भागे ॥ सूतपुत्र कर्ण युद्धभूमिसे भागने

परिगृह्य महासेनां सूतपुत्रोऽपयाद्भयात् ॥ १० ॥
रथनागाश्वकलिलां पुरस्कृत्य तु वाहिनीम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो वीक्ष्यमाणोऽपयाद्भयात् ॥११॥
हतप्रवीरैर्भूयिष्ठैर्ध्वजैर्बहुपताकिभिः ।
वृतः शारद्वतोऽगच्छत्कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ॥ १२ ॥
भोजानीकेन शिष्टेन कालिङ्गारट्टवाह्लिकैः ।
कृतवर्मा वृतो राजन्प्रायात्सुजवनैर्हयैः ॥ १३ ॥
पदातिगणसंयुक्तस्त्रस्तो राजन्भयार्दितः ।
उलूकः प्राद्रवत्तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १४ ॥
दर्शनीयो युवा चैव शौर्येण कृतलक्षणः ।
दुःशासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद्गजसंवृतः ॥ १५ ॥
रथानामयुतं गृह्य त्रिसाहस्रं च दन्तिनाम् ।
वृषसेनो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १६ ॥
गजाश्वरथसंयुक्तो वृतश्चैव पदातिभिः ।
दुर्योधनो महाराज प्रायात्तत्र महारथः ॥ १७ ॥
संशप्तकगणान्गृह्य हतशेषान्किरीटिना ।

की इच्छा करनेवाली व्यूहबद्ध महासेना के योद्धाओंको युद्धसे निवृत्त करके युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ मद्रराज शल्य हाथी, घोडे और रथोंसे युक्त अपनी सेनाको आगे करके चारों ओर देखते हुए भयभीत होके भागने लगे ॥ शरद्वतपुत्र कृपाचार्य अनेक पताकाओंसे शोभित, जिसके शूरवीर मारे गये हैं ऐसी सेनामें घिरकर हा कष्ट ! हा कष्ट ! ऐसे ही वचनको कहते हुए भागनेमें प्रवृत्त हुए ॥ (९-१२)

कृतवर्मा युद्धविद्यामें शिक्षित भोज, कलिंग, अरट्ट और वाह्लिकदेशीय सेनाके सहित महावेगगामी घोडोंसे युक्त रथपर चढके युद्धभूमिसे भागे ॥ शकुनिपुत्र उलूक द्रोणाचार्यको मरते देख, पैदल सेनाके योद्धाओंके सहित अत्यन्त भयभीत होके युद्धभूमिसे भागे ॥ पराक्रमी राजपुत्र वीर दुःशासन अत्यन्त ही व्याकुल हुए और गजसेनाके सहित वेगपूर्वक भागने लगे ॥ (१३-१५)

कर्णपुत्र वृषसेनने द्रोणाचार्यको मरते देख, दश हजार रथ और तीन हजार हाथियोंकी सेनाके सहित युद्धभूमिसे प्रस्थान किया ॥ अधिक क्या कहूं, महारथी राजा दुर्योधन हाथी, घोडे, रथी

सुशर्मा प्राद्रवद्राजन्दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १८ ॥
गजान्रथान्समारुह्य व्युदस्य च हयाञ्जनाः।
प्राद्रवन्सर्वतः संख्ये दृष्ट्वा रुक्मरथं हतम् ॥ १९ ॥
त्वरयन्तः पितॄनन्ये भ्रातॄनन्येऽथ मातुलान्।
पुत्रानन्ये वयस्यांश्च प्राद्रवन्कुरवस्तदा ॥ २० ॥
चोदयन्तश्च सैन्यानि स्वस्रीयांश्च तथाऽपरे।
सम्बन्धिनस्तथाऽन्ये च प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ २१ ॥
प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः।
नेदमस्तीति मन्वाना हतोत्साहा हतौजसः ॥ २२ ॥
उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो।
अन्योन्यं ते समाक्रोशन्सैनिका भरतर्षभ ॥ २३ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्राऽवतस्थिरे।
धुर्यान्मुन्मुच्य च रथाद्धतसूतात्स्वलंकृतान्।
अधिरुह्य हयान्योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥ २४ ॥

आदि चतुरङ्गिणी सेनाके सहित युद्धभूमिसे भागने लगे ॥ संशप्तक सेनाके नायक सुशर्माने द्रोणाचार्यको मरे हुए देखकर अर्जुनके अस्त्रोंके प्रहारसे मरनेसे बची हुई संशप्तक सेना के सहित युद्धभूमिसे प्रस्थान किया ॥ (१६-१८)

इसी भांति द्रोणाचार्यको मरते देख, कुरुसेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंने युद्धभूमिके बीच दूसरे पुरुषोंके हाथी घोडे और रथ आदि जो वाहन सम्मुख पाये, उस ही पर चढके पिता, पुत्र, भाई, मामा, मित्र, भानजे और कोई अपनी सेनाके पुरुषों तथा कोई कोई अपने सम्बन्धीय पुरुषोंको युद्धभूमिसे लौटाकर शीघ्रतापूर्वक रणभूमिसे भागने लगे ॥ (१९-२१)

भागनेके समय किसीके केशबंध मुक्त हुए तथा दो इकट्ठे होकर भी गमन न कर सके; केवल अब "किसीकी रक्षा नहीं हो सकेगी," ऐसा विचारके तेज और उत्साहसे हीन होगये तथा कवच उतार ऊंचे स्वरसे एक दूसरेको आवाहन करते हुए वेगपूर्वक भागने लगे। महाराज! वे सम्पूर्ण योद्धा लोग दूसरे पुरुषोंके "ठहरो ठहरो!" ऐसे वचनोंको सुन कर क्षण भर भी युद्धभूमिके बीच खडे न होसके। अधिक क्या कहा जावे उस समय सेनाके शूरवीर योद्धा लोग ऐसे व्याकुल हो गये थे, कि सारथि रहित अपने रथोंके सुन्दर अलङ्कारोंसे भूषित घोडोंको ही रथसे खोलके उसीपर

द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि ।
प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात् ॥ २५ ॥
तस्याऽऽसीत्सुमहद्युद्धं शिखण्डिप्रमुखैर्गणैः ।
प्रभद्रकैश्च पञ्चालैश्चेदिभिश्च सकेकयैः ॥ २६ ॥
हत्वा बहुविधाः सेनाः पाण्डूनां युद्धदुर्मदः ।
कथञ्चित्सङ्कटान्मुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः ॥ २७ ॥
द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम् ।
दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २८ ॥
किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत ।
द्रवमाणां च राजेन्द्र नाऽवस्थापयसे रणे ॥ २९ ॥
त्वं चापि न यथापूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप ।
कर्णप्रभृतयश्चेमे नाऽवतिष्ठन्ति पार्थिव ॥ ३० ॥
अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाऽद्रवत्तदा ।
कच्चित्क्षेमं महाबाहो तव सैन्यस्य भारत ॥ ३१ ॥

चढकर पाँवोंसे दौडाते हुए वेगपूर्वक भागने लगे ॥ (२२-२४)

जब तेजरहित तथा भयभीत होकर तुम्हारी सेनाके सम्पूर्ण शूरवीर योद्धा लोग भागने लगे, उस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा शत्रुओंकी ओर इस प्रकार दौडे जैसे महाबलवान् ग्राह समुद्रकी लहरके वेगमें निर्भर चित्तसे सीधा चढता है ॥ उस समय शिखण्डी आदि पाञ्चाल, प्रभद्रक, चेदी और केकय देशीय योद्धाओंके सङ्ग अश्वत्थामाका महाघोर संग्राम हुआ ॥ (२५-२६)

अनन्तर मतवारे हाथीकी भांति महापराक्रमी युद्ध दुर्मद अश्वत्थामा पाण्डवोंकी बहुतसी सेनाका नाश करके फिर अत्यन्त कष्टके सहित उस महाघोर सङ्कटसे मुक्त हुए; तिसके अनन्तर अश्वत्थामा कौरवोंकी सेनाको भागनेमें तत्पर तथा भयभीत होके चारों ओर भागती देख, दुर्योधनके समीप जाकर उनसे बोले, हे भारत ! तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग इस प्रकारसे क्यों भयभीत होगये हैं ? और आप इन सम्पूर्ण योद्धाओंको भागते देखकर क्यों नहीं लौटाके युद्धमें प्रवृत्त करते हैं ? (२७-२९)

मैं तुम्हें भी पहिलेकी भांति सावधान नहीं देखता हूं ! विशेष करके कर्ण आदि सेनापति भी युद्धभूमिमें स्थित नहीं होते हैं; ऐसा क्यों हो रहा है ! कभी तो किसी युद्धमें सेनाके योद्धा इस प्रकार

कस्मिन्निदं हते राजन्रथसिंहे बलं तव ।
एतामवस्थां सम्प्राप्तं तन्ममाऽऽचक्ष्व कौरव ॥ ३२ ॥
तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम् ।
घोरमप्रियमाख्यातुं नाऽशक्नोत्पार्थिवर्षभः ॥ ३३ ॥
भिन्ना नौरिव ते पुत्रो मग्नः शोकमहार्णवे ।
बाष्पेणाऽपिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ॥ ३४ ॥
ततः शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत् ।
शंसाऽत्र भद्रं ते सर्वं यथा सैन्यमिदं द्रुतम् ॥ ३५ ॥
अथ शारद्वतो राजन्नार्तिमार्च्छन्पुनः पुनः ।
शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥ ३६ ॥
कृप उवाच— वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम् ।
प्रावर्तयाम संग्रामं पञ्चालैरेव केवलम् ॥ ३७ ॥
ततः प्रवृत्ते संग्रामे विमिश्राः कुरुसोमकाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शस्त्रैर्देहानपातयन् ॥ ३८ ॥
वर्तमाने तथा युद्धे क्षीयमाणेषु संयुगे ।

नहीं भागे थे। हे महाबाहु महाराज दुर्योधन! तुम्हारी सेनामें कुशल मङ्गल तो है? किस रथिश्रेष्ठके मरनेसे सेनाके योद्धाओंकी ऐसी दशा हुई है; वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे निकट प्रकाशरूपसे वर्णन करो ॥ (३०–३२)

महाराज! राजाओंमें श्रेष्ठ कुरुराज दुर्योधन द्रोणाचार्यके मरनेसे शोकरूपी समुद्रमें स्थित गुरुपुत्र अश्वत्थामाको देखकर तथा उनके वचनोंको सुनकर द्रोणवध रूपी भयङ्कर अप्रिय वचन बोलनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ उस समय दुर्योधन लज्जित होकर कृपाचार्यसे यह वचन बोले, कि सेनाके सम्पूर्ण पुरुष किस कारणसे भाग रहे हैं; आप उस वृत्तान्तको गुरुपुत्र अश्वत्थामाके समीप वर्णन कीजिये ॥ तब शरद्वतपुत्र कृपाचार्य बार बार शोक प्रकाश करके जिस प्रकार द्रोणाचार्य मारे गये, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त अश्वत्थामाके समीप वर्णन करने लगे ॥ (३३–३६)

कृपाचार्य बोले, हे अश्वत्थामन्! हम लोग पृथ्वीके सम्पूर्ण रथियोंमें अग्रगण्य द्रोणाचार्यको आगे कर पाञ्चाल योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए थे ॥ अनन्तर युद्धभूमिमें दोनों ओरकी सेनाके पुरुष आपसमें युद्ध करके एक दूसरेका वध कर रहे थे, उस युद्धके

धार्तराष्ट्रेषु संक्रुद्धः पिता तेऽस्त्रमुदैरयत ॥ ३९ ॥
ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः ।
व्यहनच्छात्रवान्मल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४० ॥
पाण्डवाः केकया मत्स्याः पञ्चालाश्च विशेषतः ।
संख्ये द्रोणरथं प्राप्य व्यनशन्कालचोदिताः ॥ ४१ ॥
सहस्रं नरसिंहानां द्विसाहस्रं च दन्तिनाम् ।
द्रोणो ब्रह्मास्त्रयोगेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ४२ ॥
आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ४३ ॥
क्लिश्यमानेषु सैन्येषु वध्यमानेषु राजसु ।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चाला विमुखाऽभवन् ॥ ४४ ॥
तेषु किञ्चित्प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणो बभूवाऽर्क इवोदितः ॥ ४५ ॥
स मध्यं प्राप्य पाण्डूनां शररश्मिः प्रतापवान् ।

समय कौरवोंकी ओरके अनगिनत योद्धाओंका नाश होने लगा; तब पुरुषश्रेष्ठ पराक्रमी द्रोण ब्रह्मास्त्रको छोडकर भल्लास्त्रसे शत्रुओंकी ओरके सैकडों सहस्रों योद्धाओंका वध करने लगे ॥ (३७-४०)

पाण्डवोंकी ओरके केकय, मत्स्य, विशेष करके पाञ्चाल देशीय सेनाके योद्धालोग काल प्रेरित होकर द्रोणाचार्यके रथके समीप पहुंचते ही प्राण रहित होके पृथ्वीमें गिर पडे ॥ उस समय उन्होंने ब्रह्मास्त्रके प्रभावसे पाण्डवोंकी सेनाके एक हजार मुख्य मुख्य योद्धाओं और दो हजार हाथियों को यमपुरी में भेज दिया ॥ वह श्यामसरूपवाले द्रोणाचार्य केश पकने तथा पचासी वर्ष की अवस्था होने पर भी रणभूमिमें सोलहवर्षवाले युवापुरुषकी भांति चारों ओर घूमने लगे ॥ (४१—४३)

इसी भांति जब पाण्डवोंकी सेना नष्ट होने लगी और शूरवीर राजा लोग द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित हुए। तब पाञ्चाल योद्धा लोग क्रुद्ध होकर भी उनके सम्मुख खडे न होसके ॥ धीरे धीरे पाञ्चाल सेनाके बहुतसे योद्धा मारे गये और मरनेसे बाकी बचे हुए पाञ्चाल लोग उनके सम्मुखसे भाग गये। उस समय शत्रुनाशन द्रोणाचार्य दिव्यास्त्रके प्रभावसे सूर्यकी भांति प्रकाशित होने लगे। अधिक क्या कहा जावे, उस समय तुम्हारे पिता द्रोणाचार्य

मध्यं गत इवाऽऽदित्यो दुष्प्रेक्ष्यस्ते पिताऽभवत् ॥४६॥
ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणेव विराजता ॥
दग्धवीर्या निरुत्साहा बभूवुर्गतचेतसः ॥ ४७ ॥
तान्दृष्ट्वा पीडितान्बाणैर्द्रोणेन मधुसूदनः ।
जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥
नैष जातु नरैः शक्यो जेतुं शस्त्रभृतां वरः ।
अपि वृत्रहणा सङ्ख्ये रथयूथपयूथपः ॥ ४९ ॥
ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः ।
यथा वः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ॥ ५० ॥
अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ।
हतं तं संयुगे कश्चिदाख्यात्वस्मै मृषा नरः ॥ ५१ ॥
एतन्नाऽरोचयद्वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अरोचयंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ ५२ ॥
भीमसेनस्तु सव्रीडमब्रवीत्पितरं तव ।

पाण्डवोंकी सेनाके बीच प्रवेश करके सहस्र किरणधारी सूर्यकी भांति शोभित हुए ॥ (४४—४६)

रणभूमिमें स्थित पाण्डवोंकी सेना द्रोणाचार्यके अस्त्ररूपी अग्निसे भस्म, तेज रहित, उत्साह शून्य और चेतरहितके समान होगयी ॥ पाण्डवोंके हितैषी श्रीकृष्ण सम्पूर्ण योद्धाओंको द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे मरते तथा पीडित होते देख कर उन लोगोंसे बोले, रथ यूथपतियों के भी यूथपति शस्त्रधारी पुरुषोंमें अग्रगण्य द्रोणाचार्यको मनुष्य लोग कदापि पराजित नहीं कर सकेंगे; औरकी तो कुछ बात ही नहीं है, स्वयं वज्रधारी इन्द्र भी द्रोणाचार्यको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ (४७-४९)

हे पाण्डवगण ! लाल घोडेसे युक्त द्रोणाचार्य जब तक तुम लोगोंका नाश नहीं करते हैं, उससे पहिले ही तुम लोग विशेष रूपसे सावधान हो जाओ। मेरे विचारमें तुम लोगोंको इस समय धर्म त्यागके विजय प्राप्त करनेमें यत्नवान् होना उचित है, कि अश्वत्थामाका मरना सुनके द्रोणाचार्य युद्ध करनेमें समर्थ न होंगे, इससे कोई पुरुष "अश्वत्थामा मारे गये" यह मिथ्या वचन उनके समीपमें जाकर सुनावे ॥ कुन्तीपुत्र अर्जुन श्रीकृष्णके इस वचनमें सहमत नहीं हुए; परन्तु और सब कोई तथा राजा युधिष्ठिरने भी श्रीकृष्णके इस वचन

अश्वत्थामा हत इति तं नाऽबुध्यत ते पिता ॥ ५३ ॥
स शङ्कमानस्तन्मिथ्या धर्मराजमपृच्छत ।
हतं वाऽप्यहतं वाऽऽजौ त्वां पिता पुत्रवत्सलः ॥ ५४ ॥
तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अश्वत्थामानमायोधे हतं दृष्ट्वा महागजम् ॥ ५५ ॥
भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः ।
उपसृत्य तदा द्रोणमुच्चैरिदमुवाच ह ॥ ५६ ॥
यस्यार्थे शस्त्रमादत्से यमवेक्ष्य च जीवसि ।
पुत्रस्ते दयितो नित्यं सोऽश्वत्थामा निपातितः ॥ ५७ ॥
शेते विनिहतो भूमौ वने सिंहशिशुर्यथा ॥ ५८ ॥
जानन्नप्यनृतस्याऽथ दोषान्स द्विजसत्तमम् ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजा हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५९ ॥
स त्वां निहतमाक्रन्दे श्रुत्वा सन्तापतापितः ।
नियम्य दिव्यान्यस्त्राणि नाऽयुध्यत यथा पुरा ॥ ६० ॥

को स्वीकार किया ॥ (५०–५२)

तिसके अनन्तर भीमसेन लज्जापूर्वक तुम्हारे पिताके निकट जाके 'अश्वत्थामा मारे गये' ऐसा वचन बोले; परन्तु उन्होंने भीमसेनके वचनका विश्वास नहीं किया; परन्तु उस मिथ्या वचनसे शङ्कित होकर तुम्हारे वात्सल्य प्रेमसे मरना सत्य है, वा मिथ्या है; उसे जाननेके वास्ते उन्होंने युधिष्ठिरसे पूंछा, कि हे युधिष्ठिर ! क्या मेरा पुत्र अश्वत्थामा मारा गया ? (५३—५४)

तब मिथ्या बोलनेसे भयभीत और विजयकी आशासे आसक्तचित्त होके राजा युधिष्ठिर मालवराज इन्द्रवर्माके बडे शरीरवाले अश्वत्थामा नाम हाथीको भीमसेनके हाथसे मरा हुआ देखकर द्रोणाचार्यके समीप गमन करके ऊंचे स्वरसे उनसे यह वचन बोले, 'हे आचार्य! आप जिसके वास्ते अस्त्रशस्त्रोंको धारण किये हैं; तुम्हारे वही अत्यन्त प्रिय पुत्र अश्वत्थामा मरकर सिंह पुत्रकी भांति पृथ्वी पर शयन कर रहे हैं ।' हे तात ! राजा युधिष्ठिर मिथ्या बोलनेके दोषको जानके भी द्विजसत्तम द्रोणाचार्यके निकट यह सम्पूर्ण वचन कहके अन्तमें मन ही मन धीरेसे 'हाथी मारा गया है,' ऐसा वचन बोले ॥ (५५–५९)

अनन्तर द्रोणाचार्य संग्रामभूमिमें तुम्हारा मरना सुनके अत्यन्त शोकित हुए, उस समय उन्होंने दिव्य अस्त्रोंको

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकातुरमचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतः क्रूरकर्मा समाद्रवत् ॥ ६१ ॥
तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः ।
दिव्यान्यस्त्राण्यथोत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत्॥ ६२ ॥
ततोऽस्य केशान्सव्येन गृहीत्वा पाणिना तदा ।
पार्षतः क्रोशमानानां वीराणामच्छिनच्छिरः ॥ ६३ ॥
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन् ।
तथैव चाऽर्जुनो वाहादवरुह्यैनमाद्रवत् ॥ ६४ ॥
उद्यम्य त्वरितो बाहुं ब्रुवाणश्च पुनः पुनः ।
जीवन्तमानयाऽऽचार्यं माऽऽवधीरिति धर्मवित् ॥ ६५ ॥
तथा निवार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च ।
हत एव नृशंसेन पिता तव नरर्षभ ॥ ६६ ॥
सैनिकाश्च ततः सर्वे प्राद्रवन्त भयार्दिताः ।

परित्याग करके पहिलेकी भांति युद्ध नहीं किया ॥ तब उस समय निठुर स्वभावसे युक्त पाञ्चालराज पुत्र धृष्टद्युम्न अत्यन्त व्याकुल तुम्हारे मरनेके शोकसे दुःखित द्रोणाचार्यको चेतरहित प्राय होते देख, उनकी ओर दौडा ॥ (६०-६१)

लोकतत्त्वके जाननेवाले द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नको विधाताकी रची हुई अपनी मृत्यु स्वरूप जान कर सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रोंको त्यागके उस रणभूमिमें अपने रथमें बैठ कर योगयुक्त चित्तसे परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करने लगे। अनन्तर शूरवीर पुरुष चारों ओरसे पुकारके उनका वध-करनेसे उसे निवारण कर रहे थे तौभी धृष्टद्युम्नने बांये हाथसे उनके केश पकडके और दहिने हाथसे तलवार चलाकर सिर काट लिया ॥ उस समय सम्पूर्ण पुरुष "आचार्यका वध मत करो, वध मत करो," ऐसे ही वचनोंको कहते हुए धृष्टद्युम्नको निवारण करने लगे। विशेष करके धर्मात्मा अर्जुन शीघ्रताके सहित अपने रथसे उतरे और दोनों भुजा उठाके धृष्टद्युम्नको पुकारके "आचार्यका वध मत करो, उन्हें जीते ही ले आओ," इसी प्रकार बार बार वचन कहते हुए उस ही ओर दौडे ॥ (६२-६५)

कौरव लोग तथा अर्जुनने इस भांति से निवारण किया था; तौभी उस पापी धृष्टद्युम्नने तुम्हारे पिता द्रोणाचार्यका वध किया ॥ हे पापरहित अश्वत्थामन् ! इसी प्रकार तुम्हारे पिताके मारे जानेसे सेनाके सम्पूर्ण योद्धा तथा हम लोग

वयं चापि निरुत्साहा हते पितरि तेऽनघ ॥ ६७ ॥

सञ्जय उवाच— तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं पदाहत इवोरगः ॥ ६८ ॥
ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष ।
यथेन्धनं महत्प्राप्य प्राज्वलद्धव्यवाहनः ॥ ६९ ॥
तलं तलेन निष्पिष्य दन्तैर्दन्तानुपास्पृशत् ।
निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत्तदा ॥ ७० ॥ [८९६०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्वत्थामक्रोधे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
ब्राह्मणं पितरं वृद्धमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १ ॥
मानवं वारुणाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रं च वीर्यवान् ।
ऐन्द्रं नारायणं चैव यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥
तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यं सोऽश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ ३ ॥
येन रामादवाप्येह धनुर्वेदं महात्मना ।

उत्साहरहित भयभीत और शोकित होकर युद्धभूमिसे भाग रहे हैं॥ ६६-६७

सञ्जय बोले, महाराज! अश्वत्थामा युद्धभूमिमें पिताके मरनेका वृत्तान्त सुनके पांवसे दबे हुए सर्पके समान अत्यन्त क्रुद्ध हुए और जैसे काष्ठके पडनेसे अग्नि अत्यन्तही प्रज्वलित होती है, वैसे ही द्रोणपुत्र अश्वत्थामा क्रोधसे ओठ काटते, और दांत कटकटाते हुए बार बार विषधर सर्पकी भांति लम्बी सांस छोडने लगे; उस समय क्रोधसे अश्वत्थामाके दोनों नेत्र लाल होगये॥ (६८-७०) ८९६०

द्रोणपर्वमें एकसौ एकानब्वे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ बानब्वे अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! अश्वत्थामाने अपने पिता ब्राह्मणश्रेष्ठ बूढे द्रोणाचार्यको अधर्म पूर्वक मरे हुए सुनके क्या कहा? जिसमें मनुष्य वारुण, आग्नेय, ब्राह्म, ऐन्द्र और नारायण आदि अस्त्र सदा प्रतिष्ठित रहते थे, उस धर्मात्मा आचार्यका अधर्मसे धृष्टद्युम्नके हाथसे मरना सुनके उनके पुत्र अश्वत्थामाने क्या कहा? (१-३)

जिस महात्मा द्रोणाचार्यने भृगुनन्दन परशुरामके निकटसे सम्पूर्ण धनुर्वेद सीखकर पुत्रको अपनेसे भी अधिक

प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि पुत्राय गुणकांक्षिणा ॥ ४ ॥
एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मनो गुणवत्तरम् ।
इच्छन्ति पुरुषाः पुत्रं लोके नाऽन्यं कथञ्चन ॥ ५ ॥
आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम् ।
तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायाऽनुगताय वा ॥ ६ ॥
स शिष्यः प्राप्य तत्सर्वं सविशेषं च सञ्जय ।
शूरः शारद्वतीपुत्रः संख्ये द्रोणादनन्तरः ॥ ७ ॥
रामस्य तु समः शस्त्रे पुरन्दरसमो युधि ।
कार्तवीर्यसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ॥ ८ ॥
महीधरसमः स्थैर्ये तेजसाऽग्निसमो युवा ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये क्रोधे चाऽऽशीविषोपमः ॥ ९ ॥
स रथी प्रथमो लोके दृढधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रोऽनिल इवाऽऽक्रन्दे चरन्क्रुद्ध इवाऽन्तकः॥ १० ॥
अस्यता येन संग्रामे धरण्यभिनिपीडिता ।

कृतविद्य करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण धनुर्विद्या तथा अस्त्रशस्त्रोंकी विद्याको सिखाया था; उनके पुत्र अश्वत्थामाने उस समय किस कार्यका अनुष्ठान किया ? इस संसारमें ऐसी रीति है, कि सम्पूर्ण पुरुष सबको त्यागके निज पुत्रको अपनेसे भी अधिक गुणवान् करनेकी इच्छा करते हैं ॥ (४—५)

महात्मा आचार्य पुरुषों के समीप जो कुछ विद्याके अनेक रहस्य विषय रहते हैं, उसे वे अपने पुत्र और प्रिय शिष्यको ही सिखाते हैं॥ पराक्रमी शारद्वतीकुमार अश्वत्थामा उनके पुत्र और शिष्य हैं, इससे वह द्रोणाचार्यके समीपसे सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंकी विद्या सीखकर पिताके समान ही धनुर्वेदमें निपुण हुए हैं॥ (६–७)

युवा अश्वत्थामा अस्त्रशस्त्रोंके चलानेमें परशुरामके समान, युद्धमें इन्द्र, पराक्रममें कार्तवीर्य अर्जुन, बुद्धिमें बृहस्पति, स्थिरतामें हिमालय, तेजमें अग्नि, गम्भीरतामें समुद्र और क्रोधमें विषधर सर्पके समान हैं; अधिक क्या कहूं, वह युद्धमें न थकनेवाले, दृढ धनुर्द्धारी अश्वत्थामा पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें अग्रगण्य हैं। वह युद्धभूमिके बीच क्रोधी यमराज तथा वेगगामी वायुकी भांति भ्रमण करते हैं॥ (८–१०)

जिसके बाणोंकी वर्षासे पृथ्वी विदीर्ण हो सकती है; जो सत्यपराक्रमी वीर

यो न व्यथति संग्रामे वीरः सत्यपराक्रमः ॥ ११ ॥
वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदे च पारगः ।
महोदधिरिवाऽक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा ॥ १२ ॥
तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १३ ॥
धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युः सृष्टस्तेन महात्मना ।
यथा द्रोणस्य पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत् ॥ १४ ॥
तं नृशंसेन पापेन क्रूरेणाऽदीर्घदर्शिना ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥१५॥ [८९७५]

इति श्रीमहाभारते॰ द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९४॥

सञ्जय उवाच— छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा ।
बाष्पेणाऽऽपूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभ ॥ १ ॥
तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुर्दीप्तमदृश्यत ।
अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये ॥ २ ॥
अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः ।

युद्धभूमिमें भयभीत नहीं होता, जिसने यथा रीतिसे वेद पढके ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त किया है, जो धनुर्वेदमें दशरथ पुत्र रामचन्द्रके समान सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंके ज्ञाता और समुद्रकी भांति गम्भीर हुए हैं, वह पराक्रमी अश्वत्थामा धर्मात्मा द्रोणाचार्यको अधर्मपूर्वक धृष्टद्युम्न के हाथसे मरे हुए सुनकर क्या बोले? (११–१३)

हे सञ्जय! विधाताने धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यके निमित्त मृत्युरूपी उत्पन्न किया है, वैसेही अश्वत्थामाको भी धृष्टद्युम्नकी मृत्युस्वरूप बनाया है। इससे उस क्रूर अदूरदर्शी पापी नीच धृष्टद्युम्नके हाथसे द्रोणाचार्यका वध सुनकर अश्वत्थामा क्या बोले? (१४–१५) [८९७५]

द्रोणपर्वमें एकसौ चौरानवे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ पचानवे अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! अश्वत्थामा पाण्डवोंकी कपटता और पापी धृष्टद्युम्नके हाथसे पिताका मरना सुनकर क्रोधसे परिपूरित होगये, और दोनों नेत्र आंसूसे युक्त होकर लालवर्ण होगये। उस समय क्रोधी अश्वत्थामाकी मूर्ति सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश करने वाले प्रलय कालके समय क्रुद्ध हुए महाकाल अन्तककी भांति भयङ्कर दिखाई देने लगी॥ (१–२)

अनन्तर वह बार बार आंखोंसे आंसू

उवाच कोपाग्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ॥ ३ ॥
पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपातितः ।
धर्मध्वजवता पापं कृतं तद्विदितं मम ॥ ४ ॥
अनार्यं सुनृशंसं च धर्मपुत्रस्य मे श्रुतम् ।
युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवं जयपराजयौ ॥ ५ ॥
द्वयमेतद्भवेद्राजन्वधस्तत्र प्रशस्यते ।
न्यायवृत्तो वधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत् ॥ ६ ॥
न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः ।
गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः ॥ ७ ॥
न शोच्यः पुरुषव्याघ्र यस्तदा निधनं गतः ।
यत्तु धर्मप्रवृत्तः सन्केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ८ ॥
पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति ।
मयि जीवति यत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ॥ ९ ॥

पोंछ कर क्रोधसे सांस छोडते हुए दुर्योधनसे बोले । महाराज ! नीच स्वभाववाले पुरुषोंने जिस रीतिसे मेरे पिताको अस्त्र त्याग करा कर उनका वध किया है, और धर्मध्वजी युधिष्ठिरने जैसा पापाचरण किया है, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे विदित हुए; तथा मैंने उस अनार्य कपटी युधिष्ठिरके सम्पूर्ण विवरणको श्रवण किया । युद्धमें प्रवृत्त हुए पुरुषोंकी जीत वा हार अवश्यम्भावी तथा होतव्यताके अनुसार स्वयं हुआ करती है; परन्तु पराजयकी अपेक्षा मृत्यु ही प्रशंसनीय है । (२-६)

युद्धभूमिके बीच युद्ध करनेवाले पुरुषोंकी यदि न्यायके अनुसार मृत्यु होती है, तो वह मृत्यु दुःखकी कारण नहीं होती; क्योंकि पण्डितोंने युद्ध करनेवाले पुरुषोंकी ऐसीही गतिको श्रेष्ठ करके वर्णन किया है, इससे मेरे पिताने भी निश्चय वीरलोकमें गमन किया है । हे पुरुष शार्दूल ! जब पिताने इस प्रकारसे वीरलोक प्राप्त किया है, तब उनके वास्ते शोक करना उचित नहीं है । तब जो वह अस्त्रशस्त्र परित्याग करके ईश्वरके ध्यानमें प्रवृत्त हुए थे, वैसी अवस्थामें जो धृष्टद्युम्नने सम्पूर्ण सेनाके सम्मुखमें उनका केश ग्रहण किया है उस ही को स्मरण करके मेरे मर्मस्थानोंमें पीडा होरही है । (६-९)

हाय ! मेरे जीवित रहते ही जब मेरे पिताके केशको पकडके धृष्टद्युम्नने उनका वध किया है, तब अन्य पुरुष किस

कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ।
कामात्क्रोधादविज्ञानाद्धर्षाद्बाल्येन वा पुनः ॥ १० ॥
विधर्मकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च ।
तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम् ॥ ११ ॥
अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना ।
तस्याऽनुबन्धं द्रष्टाऽसौ धृष्टद्युम्नः सुदारुणम् ॥ १२ ॥
अकार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी च पाण्डवः ।
यो ह्यसौ छद्मनाऽऽचार्यं शस्त्रं संन्यासयत्तदा ॥१३ ॥
तस्याऽद्य धर्मराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ।
शपे सत्येन कौरव्य इष्टापूर्तेन चैव ह ॥ १४ ॥
अहत्वा सर्वपञ्चालाञ्जीवेयं न कथञ्चन ।
सर्वोपायैर्यतिष्यामि पञ्चालानामहं वधे ॥ १५ ॥
धृष्टद्युम्नं च समरे हन्ताऽहं पापकारिणम् ।
कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन च ॥ १६ ॥
पञ्चालानां वधं कृत्वा शान्तिं लब्धास्मि कौरव ।

कार्यके वास्ते पुत्रकी इच्छा करेंगे ? मनुष्य लोग काम, क्रोध, अभिमान, लोभ, अज्ञानता और बालक भावसे युक्त होकर अधर्मके कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं और दूसरोंको पराभूत करते हैं ॥ दुष्टात्मा धृष्टद्युम्नने भी मेरी अवज्ञा करके इस महा अधर्मके कार्यको किया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं । इससे वह थोडे ही समयके बीच इस अधर्मका फल पावेगा ॥ (९–१२)

इसके अतिरिक्त उस मिथ्यावादी धर्मपुत्र युधिष्ठिरने अत्यन्त ही असत्कार्य किया है, उसने जब कपटतासे अपने गुरुसे अस्त्र त्याग कराया है, तब आज पृथ्वी अवश्य ही उसके रुधिरको पान करेगी । महाराज ! मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि यदि मैं सम्पूर्ण पांचाल योद्धाओंका वध न करूं, तो सत्य सुकृत कर्म यज्ञ और धर्मसे भ्रष्ट होऊंगा । अधिक क्या कहूं, उनका वध न करके जीवित रहने की भी मैं इच्छा नहीं करता हूं ॥ पाञ्चाल योद्धाओंके वधके वास्ते मैं शक्तिके अनुसार यत्न करूंगा॥ (१३-१५)

विशेष करके पापी धृष्टद्युम्नका मैं अवश्य ही युद्धमें प्राणनाश करूंगा । हे कुरुराज ! चाहे मृदु हो अथवा कठोरतासे ही होवे अर्थात् चाहे किसी कर्मसे क्यों न होवे; मैं पाञ्चाल योद्धाओंका

यदर्थं पुरुषव्याघ्र पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ॥ १७ ॥
प्रेत्य चेह च सम्प्राप्तांस्त्रायन्ते महतो भयात् ।
पित्रा तु मम साऽवस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा ॥ १८ ॥
मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्ये च जीवति ।
धिङ् ममाऽस्त्राणि दिव्यानि धिग्बाहू धिक्पराक्रमम्॥१९॥
यं स्म द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहमवाप्तवान् ।
स तथाऽहं करिष्यामि यथा भारतसत्तम ॥ २० ॥
परलोकगतस्याऽपि भविष्याम्यनृणः पितुः ।
आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित्स्तुतिरात्मनः ॥ २१ ॥
पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्येह पौरुषम् ।
अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः ॥ २२ ॥
मृद्नतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ।
नहि देवा न गन्धर्वा नाऽसुरा न च राक्षसाः ॥ २३ ॥
अद्य शक्ता रणे जेतुं रथस्थं मां नरर्षभाः ।
मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्नर्जुनाद्वाऽस्त्रवित्कचित्॥२४॥

नाश करके तब शान्त होऊंगा । हे पुरुषसिंह ! मनुष्य इस लोक और परलोक में महाभयसे परित्राण पानेके वास्ते ही पुत्रकी कामना किया करते हैं;परन्तु मैं पर्वतके समान पुत्र तथा शिष्य रूपसे वर्त्तमान था; तौ भी मेरे पिता अनाथकी भांति ऐसी दशाको प्राप्त हुए । मेरे समान पुत्रको पाके भी जब मेरे पिताका केश ग्रहण किया है, तब मेरे दिव्य अस्त्र बाहुबल और पराक्रमको धिक्कार है । (१६-२०)

हे भरतसत्तम ! इस समय मैं ऐसा प्रतिकार करूंगा, जिससे परलोक प्राप्त हुए पिताके ऋणसे मुक्त हो सकूं । आर्य पुरुषोंको अपने पराक्रमकी प्रशंसा करनी उचित नहीं है, परन्तु पिताके वधसे दुःखित होके आज मैं अपने पुरुषार्थका वर्णन कर रहा हूं । आज मैं प्रलय कालके रुद्रकी भांति जब शत्रु-सेनाका नाश करने लगूंगा तब कृष्णके सहित पाण्डव लोग मेरे पराक्रमको देखेंगे । (२०—२३)

हे पुरुषश्रेष्ठ ! आज मैं रथपर चढके जब युद्धभूमिमें स्थित होऊंगा, तो उस समय देवता, गन्धर्व, असुर वा राक्षस आदि कोई प्राणी भी मुझे पराजित करनेमें समर्थ न होंगे । इस पृथ्वीके बीच कोई पुरुष भी मेरे और अर्जुनके

अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांऽशुमान् ।
प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः ॥ २५ ॥
मृशमिष्वसनादद्य मत्प्रयुक्ता महाहवे ।
दर्शयन्तः शरा वीर्यं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान् ॥ २६ ॥
अद्य सर्वा दिशो राजन्धाराभिरिव संकुलाः ।
आवृताः पत्रिभिस्तीक्ष्णैर्द्रष्टारो मामकैरिह ॥ २७ ॥
विकिरञ्छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान् ।
शत्रून्निपातयिष्यामि महावात इव द्रुमान् ॥ २८ ॥
नहि जानाति बीभत्सुस्तदस्त्रं न जनार्दनः ।
न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥
न पार्षतो दुरात्माऽसौ न शिखण्डी न सात्यकिः ।
यदिदं मयि कौरव्य सकल्पं सनिवर्तनम् ॥ ३० ॥
नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् ।
उपहारः पुरा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थितः ॥ ३१ ॥

समान अस्त्रवेत्ता नहीं है ॥ आज मैं शत्रुसेनाके बीच प्रवेश करके प्रचण्ड किरण धारण करनेवाले सूर्यकी भांति अपने दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करूंगा ॥ आज मेरे धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाण लगातार युद्धभूमिमें शत्रुसेनाका नाश करेंगे ॥ (२३-२६)

महाराज! आज सम्पूर्ण प्राणी सम्पूर्ण दिशाओंको मेरे बाणोंसे इस प्रकार छिपी हुई देखेंगे, जैसे जलकी वर्षा होने पर सम्पूर्ण दिशा, पृथ्वी तथा आकाश परिपूरित होजाते हैं ॥ आज मैं लगातार चारों ओर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगूंगा, तो शत्रुसेनाके शूर-वीर योद्धा लोग भयानक शब्दसे चिल्लाते हुए मरके इस प्रकार पृथ्वीमें गिरने लगेंगे, जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे भयङ्कर शब्दके सहित वृक्ष टूट टूटके पृथ्वीमें गिर पडते हैं ॥ (२७-२८)

हे कौरवगण! प्रयोग और प्रतिसं-हारसे युक्त जो सब अस्त्र मुझमें प्रतिष्ठित हैं; उसे अर्जुन, कृष्ण, युधिष्ठिर, भीम-सेन, नकुल, सहदेव, सात्यकि, शिखण्डी और पापी धृष्टद्युम्न आदि कोई भी नहीं जानते ॥ पहिले किसी समयमें भगवान् नारायण ब्राह्मण रूपसे मेरे पिताके निकट उपस्थित हुए थे, पिताने यथारीतिसे उन्हें प्रणाम करके उनकी पूजा की थी; नारायण मेरे पिताकी पूजा ग्रहण करके वर देनेके वास्ते उद्यत हुए,

तं स्वयं प्रतिगृह्याऽथ भगवान्स वरं ददौ ।
वव्रे पिता मे परमस्त्रं नारायणं ततः ॥ ३२ ॥
अथैनमब्रवीद्राजन्भगवान्देवसत्तमः ।
भविता त्वत्समो नाऽन्यः कश्चिद्युधि नरः क्वचित् ॥३३॥
नत्विदं सहसा ब्रह्मन्प्रयोक्तव्यं कथञ्चन ।
नह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्त्तते ॥ ३४ ॥
न चैतच्छक्यते ज्ञातुं केन वध्येदिति प्रभो ।
अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैतत्प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥
अथ संख्ये रथस्यैव शस्त्राणां च विसर्जनम् ।
प्रयाचतां च शत्रूणां गमनं शरणस्य च ॥ ३६ ॥
एते प्रशमने योगा महास्त्रस्य परन्तप ।
सर्वथा पीडितो हिंस्यादवध्यान्पीडयन्रणे ॥ ३७ ॥
तन्नग्राह पिता मह्यमब्रवीचैव स प्रभुः ।
त्वं वधिष्यसि सर्वाणि शस्त्रवर्षाण्यनेकशः ॥ ३८ ॥

तब पिताने उनके निकटसे नारायण नामक परमास्त्र ग्रहण करनेकी प्रार्थना की ॥ (२९—३२)

तब भगवान् नारायण बोले, हे द्रोण ! इस अस्त्रके प्रभावसे दूसरा कोई पुरुष भी तुम्हारे समान योद्धा नहीं होगा ॥ हे ब्रह्मन् ! यह अस्त्र सहसा किसीके ऊपर प्रयुक्त मत करना, क्योंकि यह अस्त्र जिसके ऊपर प्रयुक्त किया जाता है, उस शत्रुका वध करनेके विना निवृत्त नहीं होता है। हे विप्र ! तुम ऐसा कभी मत समझना, कि यह अस्त्र किसी प्राणी विशेषका नाश नहीं कर सकेगा; यह अस्त्र अवध्य प्राणीका भी नाश करेगा; इससे विना सङ्कट समयके उपस्थित हुए अस्त्र को चलाना उचित नहीं है ॥ (३३—३५)

हे परन्तप ! कदाचित यदि यह महाअस्त्र चलाया जावे,तो इसके निवारण करनेकी उपाय केवल रथ आदि वाहन और सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंको परित्याग करके युद्धसे विमुख होना है, अथवा शत्रु यदि प्राण दान मांगे, शरणागत होवे, तभी यह महा अस्त्र निवृत्त हो सकता है; इसके अतिरिक्त और किसी भांतिसे भी यह अस्त्र निवारित नहीं हो सकता ॥ परन्तु जब सब भांतिसे शत्रुओंके अस्त्रोंसे पीडित होगे, तब इस अस्त्रको चलानेसे ही अवध्य शत्रुका भी नाश होगा ॥ इस

अनेनाऽस्त्रेण संग्रामे तेजसा च ज्वलिष्यसि ।
एवमुक्त्वा स भगवान्दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥ ३९ ॥
एतन्नारायणादस्त्रं तत्प्राप्तं पितृबन्धुना ।
तेनाऽहं पाण्डवांश्चैव पाञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ॥ ४० ॥
विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवाऽसुरान् ।
यथा यथाऽहमिच्छेयं तथा भूत्वा शरा मम ॥ ४१ ॥
निपतेयुः सपत्नेषु विक्रमत्स्वपि भारत ।
यथेष्टमश्मवर्षेण प्रवर्षिष्ये रणे स्थितः ॥ ४२ ॥
अयोमुखैश्च विहगैर्द्रावयिष्ये महारथान् ।
परश्वधांश्च निशितान्नुत्स्रक्ष्येऽहमसंशयम् ॥ ४३ ॥
सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः ।
शत्रून्विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥ ४४ ॥
मित्रब्रह्मगुरुद्रोही जाल्मकः सुविगर्हितः ।

अस्त्रके प्रभावसे तुम रणभूमिके बीच दिव्य तेजसे प्रकाशित होकर शत्रुओंके अनेक अस्त्रोंकी वर्षाको निवारण करने में समर्थ होंगे॥ सर्व शक्तिमान् भगवान् नारायणने इसी प्रकार उपदेश देकर मेरे पिताको नारायण अस्त्र प्रदान करके उसी समय आकाशमार्गसे गमन किया। पिताने इसी भांति नारायण अस्त्र पाकर कुछ दिनके अनन्तर मुझे भी उस अस्त्रके चलाने और निवृत्त करनेकी रीतिको यथा उचित से उपदेश किया था। (३६-४०)

महाराज ! शचीपति इन्द्र जिस प्रकार दानवोंका नाश किया करते हैं, वैसे ही आज मैं भी उस नारायण अस्त्रके प्रभावसे पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य और केकय देशीय सेनाके शूरवीरोंको युद्धभूमिमें चारों ओर छिन्नभिन्न कर दूंगा। महाराज ! आज मैं जैसी जैसी इच्छा करूंगा, उस ही प्रकार बनकर शत्रुओंके पराक्रम करनेपर भी उनके ऊपर समूहके समूह बाणजाल गिरते हुए दीख पडेंगे। और उस महाघोर नारायण अस्त्रके प्रभावसे पाण्डवोंको पराजित करके लगातार बहुतेरे पत्थरकी शिला, लोहमय आकाशगामी बाण और तेजधारवाले परशु आदि अस्त्रोंको वर्षाकर महारथी शत्रुओंको युद्धभूमि में तितरवितर करूंगा। (४०-४४)

मित्र, गुरु, और ब्राह्मण द्रोही, सर्व लोकनिन्दित कुटिलस्वभावसे युक्त पाञ्चालराज कुलकलङ्क पापी धृष्टद्युम्न आज

पाञ्चालापसदश्चाऽद्य न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥ ४५ ॥
तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी ।
ततः सर्वे महाशङ्खान्दध्मुः पुरुषसत्तमाः ॥ ४६ ॥
भेरीश्चाऽभ्यहनन्हृष्टा डिण्डिमांश्च सहस्रशः ।
तथा ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपीडिता ॥ ४७ ॥
स शब्दस्तुमुलः खं द्यां पृथिवीं च व्यनादयत् ।
तं शब्दं पाण्डवाः श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ४८ ॥
समेत्य रथिनां श्रेष्ठाः सहिताश्चाऽप्यमन्त्रयन् ।
तथोक्त्वा द्रोणपुत्रस्तु वार्युपस्पृश्य भारत ॥ ४९ ॥
प्रादुश्चकार तद्दिव्यमस्त्रं नारायणं तदा ॥ ५० ॥ [९०२५]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामक्रोधे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९५॥

सञ्जय उवाच— प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे प्रभो ।
प्रावात्सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ १ ॥
चचाल पृथिवी चापि चुक्षुभे च महोदधिः ।

मेरे सम्मुखसे जीते जी मुक्त न होसकेगा। महाराज ! भागती हुई कुरुसेनाके सम्पूर्ण योद्धा द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके ऐसे वचनोंको सुनके फिर लौटकर युद्ध करनेके वास्ते उद्यत हुए । और पुरुष श्रेष्ठ सेनापति भी प्रसन्नचित्तसे हर्षित होकर अपने अपने शंख बजाने लगे । तिसके अनन्तर वहां सहस्रों भेरी, ढोल,मृदङ्ग और नगाडे आदि युद्धके जुझाऊ बाजे बजने लगे, और घोडोंके टाप और रथकी घरघराहटसे पृथ्वीपर ऐसा शब्द प्रकट हुआ, कि उस महाभयङ्कर तुमुल शब्दसे आकाश और पृथ्वीसे प्रतिध्वनि उत्पन्न होने लगी । (४४–४८)

पाण्डवोंकी सेनाके मुख्य मुख्य रथी योद्धा गर्जते हुए बादलके भयङ्कर शब्दकी भांति कुरुसेनाके वीरोंके भयानक शब्दको सुनके सब कोई इकट्ठे होकर आपसमें विचार करने लगे ॥ इधर अश्वत्थामाने भी पवित्र होके जल स्पर्श करके नारायण नामक दिव्यास्त्रको प्रकट किया ॥ (४८–५०) [९०२५]

द्रोणपर्वमें एकसौ पचानब्बे अध्याय समाप्त ।

द्रोणपर्वमें एकसौ छानब्बे अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! नारायण अस्त्र प्रकट होनेके समय आकाश मण्डल बादलोंसे रहित था, तौभी जलबिन्दुयुक्त महाभयङ्कर शब्दके सहित वायु प्रबल वेगसे बहने लगा, पृथ्वी कांपने लगी, समुद्रका जल उथलित होने लगा, नदियें

प्रतिस्रोतःप्रवृत्ताश्च गन्तुं तत्र समुद्रगाः ॥ २ ॥
शिखराणि व्यशीर्यन्त गिरीणां तत्र भारत ।
अपसव्यं मृगाश्चैव पाण्डुसेनां प्रचक्रिरे ॥ ३ ॥
तमसा चाऽवकीर्यन्त सूर्यश्च कलुषोऽभवत् ।
सम्पतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि प्रहृष्टवत् ॥ ४ ॥
देवदानवगन्धर्वास्त्रस्तास्त्वासन्विशाम्पते ।
कथंकथाऽभवत्तीव्रा दृष्ट्वा तद्व्याकुलं महत् ॥ ५ ॥
व्यथिताः सर्वराजानस्त्रस्ताश्चाऽऽसन्विशाम्पते ।
तद् दृष्ट्वा घोररूपं वै द्रौणेरस्त्रं भयावहम् ॥ ६ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—निवर्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे ।
भृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वधममृष्यता ॥ ७ ॥
कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे ।
को मन्त्रः पाण्डवेष्वासीत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय॥ ८ ॥
सञ्जय उवाच— प्रागेव विद्रुतान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्युधिष्ठिरः ।

उलटी गतिसे बहने लगीं। पहाडोंके शिखर टूट टूटके गिरने लगे, मृगोंके समूह पाण्डवोंकी बांयी ओरसे दौडने लगे। (१–३)

धीरे धीरे सूर्यका प्रकाश मन्द होगया और सम्पूर्ण दिशा अन्धकारसे छिप गई। उस ही समय मांसभक्षी प्राणी महाभयङ्कर बोली बोलते हुए दौडे। उस भयङ्कर उत्पातको देखकर देवता, दानव और गन्धर्व आदि प्राणी भयभीत होगये और मनुष्य लोग आपसमें वार्त्तालाप करनेमें भी समर्थ नहीं हुए। विशेष करके पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण राजा लोग द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके उस महाघोर भयङ्कर अस्त्रको देखकर अत्यन्त कातर और भयभीत हुए ॥ (४–६)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! पितृवधके शोकसे दुःखित और क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा जब मेरी भागती हुई सेनाको फिर लौटाकर युद्ध करनेके वास्ते पाण्डवोंकी ओर वेगपूर्वक गमन करने लगे, तब उस समय अश्वत्थामाको युद्ध करनेके वास्ते अपनी ओर आते देख, पाण्डवोंने धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेके विषयमें जिस प्रकार आपसमें विचार किया, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ (७–८)

सञ्जय बोले, महाराज! राजा युधिष्ठिरने पहिले कुरु-सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंको भागते हुए देखा था; अब फिर

पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वाऽर्जुनमथाऽब्रवीत् ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—आचार्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे ॥ १० ॥
नाऽशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो धनञ्जय ।
आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन्कुरवो रणात् ॥ ११ ॥
केचिद्भ्रान्तै रथैस्तूर्णं निहतैः पार्ष्णियन्तृभिः ।
विपताकध्वजच्छत्रैः पार्थिवाः शीर्णकूबरैः ॥ १२ ॥
भग्ननीडैराकुलाश्वैः प्रारुह्याऽन्यान्विचेतसः ।
भीताः पादैर्हयान्केचित्त्वरयन्तः स्वयं रथान् ॥ १३ ॥
भग्नाक्षयुगचक्रैश्च व्याकृष्यन्त समन्ततः ।
रथान्विशीर्णानुत्सृज्य पद्भिः केचिच्च विद्रुताः ॥ १४ ॥
हयपृष्ठगताश्चाऽन्ये कृष्यन्तेऽर्धच्युतासनाः ।
गजस्कन्धेषु संस्यूता नाराचैश्चलितासनाः ॥ १५ ॥
शरार्तैर्विद्रुतैर्नागैर्हृताः केचिद्दिशो दश ।
विशस्त्रकवचाश्चाऽन्ये वाहनेभ्यः क्षितिं गताः ॥ १६ ॥
सञ्छिन्ना नेमिभिश्चैव मृदिताश्च हयद्विपैः ।

उन लोगोंके हर्षनादको सुनके अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन ! पहिले जैसे देवराज वज्रधारी इन्द्रने वृत्रासुरका नाश किया था, वैसेही धृष्टद्युम्नसे द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कौरव लोग विजयसे निराश होकर कातर और भयभीत होके अपने प्राण को बचाके युद्धभूमिसे भागे थे ॥ (९–११)

जिन सम्पूर्ण रथोंकी ध्वजा, छत्र, पताका, धुरी, चक्र आदि अस्त्रोंके प्रहारसे कट गये थे, उन रथोंमें बैठे हुए बहुतेरे रथी सारथी और राजा लोग व्याकुल होकर इधर उधर घूमकर युद्धभूमिसे पृथक् हुए थे । कितने ही रथी टूटे हुए रथको युद्धभूमिमें छोडके रथके घोडोंको खोलके उसीपर चढके वेगपूर्वक दौडाकर युद्धभूमिसे भागे थे; घुडसवार लोग आसनरहित होके नङ्गी पीठसे युक्त घोडोंपर ही चढे हुए रणभूमिसे भाग गये थे । कितनेही गजसवार बाणोंसे पीडित होकर हाथियोंको दौडाके इधर उधर भाग गये थे । (१२–१६)

शस्त्र और कवचसे हीन बहुतेरे योद्धा लोग अपने वाहनोंसे भूमिपर गिरके हाथी, घोडे और रथके पहियेके नीचे दबके मर गये । कितने ही मोहित होकर

क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायन्ते परे भयात् ॥ १७ ॥
नाऽभिजानन्ति चाऽन्योन्यं कश्मलाभिहतौजसः ।
पुत्रान्पितॄन्सखीन्भ्रातॄन्समारोप्य दृढक्षतान् ॥ १८ ॥
जलेन क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि ।
अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते द्रोणे द्रुतं बलम् ॥ १९ ॥
पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे ।
हयानां हेषतां शब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ॥ २० ॥
रथनेमिस्वनैश्चाऽत्र विमिश्रः श्रूयते महान् ।
एते शब्दा भृशं तीव्राः प्रवृत्ताः कुरुसागरे ॥ २१ ॥
मुहुर्मुहुरुदीर्यन्ते कम्पयन्त्यपि मामकान् ।
य एष तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ २२ ॥
सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन्ग्रसेदिति मतिर्मम ।
मन्ये वज्रधरस्यैष निनादो भैरवस्वनः ॥ २३ ॥
द्रोणे हते कौरवार्थं व्यक्तमभ्येति वासवः ।

आपसमें एक दूसरेको जानभी न सके, उस समय हे पिता ! हे पुत्र ! कहके चिल्लाते हुए कुरुसेनाके बहुतेरे योद्धा भयभीत होकर युद्धभूमिसे भागे थे । कोई अत्यन्त क्षत विक्षत शरीरसे युक्त पिता पुत्रको युद्धभूमिसे पृथक् करके कवच उतारके जल सेवन करते थे। १६–१९

हे अर्जुन ! द्रोणाचार्यके मरनेसे कुरुसेनाके योद्धाओंकी ऐसी हीन दशा हुई थी। परन्तु अब फिर किस कारणसे कुरु सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग लौटकर हर्ष पूर्वक युद्ध करनेके वास्ते इस लोगोंकी ओर बढे आते हैं ? यदि तुम इस वृत्तान्तको जानते हो, तो मेरे समीप वर्णन करो । यह देखो, घोडोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंके चिग्घाड और रथोंकी घरघराहटके सङ्ग मिलकर कुरुसेनाके योद्धाओंके सिंहनादका शब्द अत्यन्तही भयङ्कर सुनाई दे रहा है। कुरुसेनारूपी समुद्रसे बार बार यह महाभयङ्कर शब्द प्रकट होके मेरी सेनाके योद्धाओंको कम्पित कर रहा है। (१९—२२)

जिस प्रकार यह महाघोर तुमुल रोएंको खडा करनेवाला भयङ्कर शब्द हो रहा है, उससे मुझे बोध होता है, इन्द्र आदि दिक्पालोंके सहित तीनों लोकका नाश होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है अथवा यह भयङ्कर सिंहनाद वज्रधारी इन्द्रका भी हो सकता है ॥ द्रोणाचार्यके मरनेसे मुझे निश्चय होता है, कि कौरवों

प्रहृष्टरोमकूपाश्च संविग्ना रथपुङ्गवाः ॥ २४ ॥
धनञ्जय गुरुं श्रुत्वा तत्र नादं सुभीषणम् ।
क एष कौरवान्दीर्णानवस्थाप्य महारथः ॥ २५ ॥
निवर्तयति युद्धार्थे मृधे देवेश्वरो यथा ।
अर्जुन उवाच— उद्यम्याऽऽत्मानमुग्राय कर्मणे वीर्यमास्थिताः ॥ २६ ॥
धमन्ति कौरवाः शङ्खान्यस्य वीर्यं समाश्रिताः ।
यत्र ते संशयो राजन्न्यस्तशस्त्रे गुरौ हते ॥ २७ ॥
धार्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति हि ।
ह्रीमन्तं तं महाबाहुं मत्तद्विरदगामिनम् ॥ २८ ॥
व्याघ्रास्यमुग्रकर्माणं कुरूणामभयङ्करम् ।
यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम् ॥ २९ ॥
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति ।
जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैःश्रवसा यथा ॥ ३० ॥

की ओरसे युद्ध करनेके वास्ते स्वयं देवराज इन्द्र आगमन कर रहे हैं। २३-२४

हे अर्जुन! हमारी सेनाके मुख्य मुख्य रथी और महारथी योद्धा लोग भी इस अत्यन्त भयङ्कर शब्दको सुनके व्याकुल होगये हैं, तथा मेरी सेनाके सब लोग भयभीत हुए हैं और उनके शरीरके रोएं खडे होगये हैं। द्वितीय देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी यह कौन महारथी भागती हुई कुरुसेनाके योद्धाओंको लौटाकर हम लोगोंके सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते रणभूमिकी ओर आरहा है।२४-२६

युधिष्ठिरके वचनको सुनके अर्जुन बोले, महाराज! जब अस्त्र परित्याग करनेके अनन्तर गुरु द्रोणाचार्य मारे गये, और उस समय कौरवोंकी सेना छिन्न भिन्न होकर युद्धभूमिसे भाग गई थी; अब फिर कौन महारथी उन योद्धाओंको भागनेसे निवृत्त करके सिंहनाद कर रहा है, इस विषयमें जो बात है, और जिसके पराक्रमके आसरेसे कौरव लोग इस कठिन कार्यके करनेमें उद्यत होकर पराक्रमके सहित सिंहनाद कर रहे हैं; मैं उस मतवारे हाथीके समान गमन करनेवाले कौरवोंके अभयप्रद कठिन कर्म करनेवाले श्रीमान् महाबाहु वीरके विषयको वर्णन करता हूं, सुनिये ॥ (२६-२९)

जिसके उत्पन्न होनेसे द्रोणाचार्यने ब्राह्मणोंको दश सौ गोदान किया था, ये वही अश्वत्थामा गर्जन कर रहे हैं, जिस वीरने उत्पन्न होते ही उच्चैःश्रवा

हेषता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकलास्त्रयः।
तच्छ्रुत्वाऽन्तर्हितं भूतं नाम तस्याऽकरोत्तदा॥ ३१॥
अश्वत्थामेति सोऽद्यैष शूरो नदति पाण्डव।
यो ह्यनाथ इवाऽऽक्रम्य पार्षतेन हतस्तथा ॥ ३२॥
कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः।
गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत् ॥ ३३॥
तन्न जातु क्षमेद् द्रौणिर्जानन्पौरुषमात्मनः।
उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात् ॥ ३४॥
धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान्कृतः।
चिरं स्थास्यति चाऽकीर्तिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३५॥
रामे वालिवधाद्यद्वदेवं द्रोणे निपातिते।
सर्वधर्मोपपन्नोऽयं स मे शिष्यश्च पाण्डवः ॥ ३६॥
नाऽयं वदति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि।
स सत्यकंचुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम् ॥ ३७॥

घोडेकी भांति शब्द किया था, और उस शब्दसे सम्पूर्ण लोक कम्पित हुए थे, उस शब्दको सुनके किसी अलक्षित प्राणीने उनका अश्वत्थामा नाम रक्खा था॥ इस समय वही पराक्रमी अश्वत्थामा सिंहनाद कर रहे हैं। पृषतपुत्र धृष्टद्युम्नने जिसे अनाथकी भांति आक्रमण करके अत्यन्त नीचताके सहित वध किया था; इस समय उनके सहाय स्वरूप उनका पुत्र अश्वत्थामा युद्ध करनेके वास्ते उपस्थित हुआ है। ३०-३२

पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नने जब मेरे गुरुका अस्त्रत्याग करने पर भी केश पकड उनका वध किया है, तब आत्मपुरुषार्थके जाननेवाले अश्वत्थामा कदापि क्षमा नहीं करेंगे। महाराज! चाहे जो हो, जब आपने धर्मात्मा होकर भी राज्यके वास्ते गुरुके समीप मिथ्या व्यवहार किया है; उससे महाघोर अधर्म हुआ है। अधिक क्या कहा जावे कपटतासे द्रोणाचार्यका वध करानेसे सदा सर्वदा इस पृथ्वी पर आपकी अकीर्त्ति इस प्रकार विद्यमान रहेगी, जैसे वालिका वध करनेसे रामचन्द्रकी अकीर्त्ति भूमण्डल पर फैल रही है। (३३-३६)

क्योंकि आचार्यने समझा था, कि युधिष्ठिर धर्मात्मा और मेरे शिष्य हैं; कभी मेरे समीपमें मिथ्या वचन नहीं कहेंगे, ऐसा ही विचारके तुम्हारा विश्वास किया। परन्तु "हाथी मारा गया

आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत ।
ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ॥ ३८ ॥
आसीत्सुविह्वलो राजन्यथा दृष्टस्त्वया विभुः ।
स तु शोकसमाविष्टो विमुखः पुत्रवत्सलः ॥ ३९ ॥
शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शस्त्रेण घातितः ।
न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ॥ ४० ॥
रक्षत्विदानीं सामात्यो यदि शक्तोऽसि पार्षतम् ।
ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण क्रुद्धेन हतबन्धुना ॥ ४१ ॥
सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम् ।
सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः ॥
सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे ॥ ४२ ॥
विक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगृद्धिनि ।
अपाकीर्य स्वयं धर्मं शिष्येण निहतो गुरुः ॥ ४३ ॥
यदा गतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरं च नः ।

है," इस सत्यकंचुकता के अवलम्ब से आपने गुरुके समीप मिथ्या वचन कहा है । महाराज ! आचार्य सम्पूर्ण शत्रुओंके नाश करनेमें समर्थ थे, तौ भी तुम्हारे वचनको सुनते ही अस्त्र परित्याग करके संयतेन्द्रिय होकर योगयुक्त चित्तसे ईश्वरके ध्यानमें रत हुए थे, आपने यह सब प्रत्यक्ष देखा है । हाय ! आपने शिष्य होकर भी सनातन धर्म परित्याग करके पुत्रवत्सल शोकातुर और रणभूमिमें अस्त्रशस्त्र त्याग करनेपर भी गुरुका वध कराया है । (३६–४०)

आपने अधर्मसे अस्त्र रहित गुरुका वध कराया है, इस समय यदि सामर्थ होवे, तो अनुयाइयोंके सहित इकट्ठे होकर धृष्टद्युम्नकी रक्षा करो । अधिक क्या कहूं, पिताके वधसे क्रुद्ध हुए आचार्यपुत्र अश्वत्थामासे धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेमें हम सब कोई इकट्ठे होकरभी समर्थ न होंगे । जो सब प्राणियोंके ऊपर दया प्रकाशित करते हैं, वह अलौकिक पराक्रमी अश्वत्थामा अपने पिताके केश ग्रहण करनेके विषयको सुनकर युद्धभूमिमें सब लोगोंको ही भस्म कर देंगे ॥ मैं आचार्यके जीवन रक्षा की इच्छासे वार वार चिल्ला रहा था, तौ भी धृष्टद्युम्नने धर्म त्यागके शिष्य होकर भी गुरुका वध किया है ॥ (४१–४३)

हम लोगोंकी बहुतसी अवस्था बीत गई, अब थोडीसी और बाकी है; इस

तस्येदानीं विकारोऽयमधर्मोऽयं कृतो महान् ॥ ४४ ॥
पितेव नित्यं सौहार्दात्पितेव हि च धर्मतः ।
सोऽल्पकालस्य राज्यस्य कारणाद्घातितो गुरुः ॥ ४५ ॥
धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च विशाम्पते ।
विसृष्टा पृथिवी सर्वा सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥ ४६ ॥
सम्प्राप्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतः सततं परैः ।
अवृणीत सदा पुत्रान्मामेवाऽभ्यधिकं गुरुः ॥ ४७ ॥
अवेक्षमाणस्त्वां मां च न्यस्तास्त्रश्चाऽऽहवे हतः ।
नत्वेनं युध्यमानं वै हन्यादपि शतक्रतुः ॥ ४८ ॥
तस्याऽऽचार्यस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्योपकारिणः ।
कृतो ह्यनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लुब्धबुद्धिभिः ॥ ४९ ॥
अहो बत महत्पापं कृतं कर्म सुदारुणम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन द्रोणोऽयं साधु घातितः ॥ ५० ॥
पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄन्दाराञ्जीवितं चैव वासविः ।
त्यजेत्सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येवं हि मे गुरुः ॥५१ ॥

समय अन्तिम अवस्थामें धर्म विकार उत्पन्न हुआ है, महाघोर अधर्मकार्य किया गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ महाराज ! जो सदा सुहृदतासे युक्त और धर्मानुसार हम लोगोंके पिता समान थे, उन गुरुका अल्पाई राज्यके वास्ते आपने कैसे वध कराया ॥ देखिये, राजा धृतराष्ट्र और भीष्मने द्रोणाचार्यको निज पुत्रोंके सहित सम्पूर्ण पृथ्वी समर्पण कियी थी । आचार्य ऐसी श्रेष्ठ वृत्ति प्राप्त करके तथा कौरवोंसे सदा सम्मानित होकर भी हम लोगोंके ऊपर अपने पुत्रसे भी अधिक प्रीति करते थे ॥ (४४-४७)

महाराज ! आचार्यने केवल तुम्हारे विश्वासपर ही अस्त्र त्याग किया; यदि आचार्य युद्ध करते रहते, तो देवराज इन्द्र भी उनका वध न कर सकते ॥ जो हो, हम लोग अत्यन्त ही मूर्ख हैं जो राज्यके लोभसे सदा उपकारमें रत वृद्ध आचार्यका अन्याय पूर्वक वध कराके महाघोर पाप कार्य किया है ॥ ओहो ! हम लोगोंने जब राज्य और सुखके लोभसे गुरुका वध कराया है, तब हम लोगोंसे अधिक पापी और कौन होगा ? (४८-५०)

आचार्य द्रोणका यह निश्चय था, कि अर्जुन मेरे वास्ते अपने पिता, पुत्र, भ्राता, स्त्री और प्राण पर्यन्त भी त्याग

स मया राज्यकामेन हन्यमानो ह्युपेक्षितः ।
तस्मादवाक्शिरा राजन्प्राप्तोऽस्मि नरकं प्रभो ॥ ५२ ॥
ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं महामुनिम् ।
घातयित्वाऽद्य राज्यार्थे मृतं श्रेयो न जीवितम्॥५३॥[९०७८]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अर्जुनवाक्ये षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६॥

सञ्जय उवाच— अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः ।
अप्रियं वा प्रियं वाऽपि महाराज धनञ्जयम् ॥ १ ॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत ।
कुत्सयन्निव कौन्तेयमर्जुनं भरतर्षभ ॥ २ ॥
मुनिर्यथाऽऽरण्यगतो भाषते धर्मसंहितम् ।
न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ ३ ॥
क्षतत्राता क्षताज्जीवन्क्षन्ता स्त्रीष्वपि साधुषु ।
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियः ॥ ४ ॥
स भवान्क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्वहः ।

कर सकेगा । ऐसे आचार्य मेरे संमुख ही मारे गये और मैंने राज्यके लोभसे ही उस कर्मकी उपेक्षा की । हे राजन् ! मैंने इस कर्मसे अधोमुख होकर नरकमें जानेकी गति ही प्राप्त की है ॥ मेरे आचार्य ब्राह्मण, बूढे, महामुनि थे, उन्होंने शस्त्र त्याग किया था ऐसे ही आचार्यका मैंने राज्यके लिये घात कराया है, तो ऐसी अवस्थामें जीवित रहनेकी अपेक्षा मृत्यु ही मुझे श्रेयस्कर लगती है ॥ (५१–५३) [९०७८]

द्रोणपर्वमें एकसौ छानब्बे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ सतानब्बे अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! अर्जुनके वचनको सुनके महारथी योद्धा लोग प्रिय वा अप्रिय कुछ भी वचन न बोले, परन्तु महाबाहु भीमसेन क्रुद्ध होकर अर्जुनकी निन्दा करते हुए यह वचन बोले, हे अर्जुन ! वनवासी मुनि और दण्डरहित ब्रह्मचारी परमहंस जिस प्रकार धर्म उपदेश करते रहते हैं, वैसे ही तुम भी आज धर्म उपदेश कर रहे हो । जो स्त्री और साधुओंके विषयमें क्षमा करते हैं, युद्धमें अपनेको तथा दूसरेको परित्राण करनेमें समर्थ होते हैं, वे क्षत्रिय पुरुष शीघ्र ही पृथ्वीके बीच राज्य, धर्म, यश और लक्ष्मी को प्राप्त कर सकते हैं ॥ (१–४)

तुम भी इन सम्पूर्ण क्षत्रीय गुणोंसे युक्त और वीर धुरीण पुरुष हो; परन्तु

अविपाश्रियथा वाचं व्याहरन्नाऽद्य शोभसे ॥ ५ ॥
पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः ।
न चाऽतिवर्त्तसे धर्मं वेलामिव महोदधिः ॥ ६ ॥
न पूजयेत्त्वां को न्वद्य यत्त्रयोदशवार्षिकम् ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाऽभिकाङ्क्षसे ॥ ७ ॥
दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्तते ।
आनृशंस्ये च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत ॥ ८ ॥
यत्तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः ।
द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः ॥ ९ ॥
वनं प्रव्राजिताश्चाऽस्म वल्कलाजिनवाससः ।
अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदशसमाः परैः ॥ १० ॥
एतान्यमर्षस्थानानि मर्षितानि मयाऽनघ ।
क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥ ११ ॥
तमधर्ममपाकृष्टं स्मृत्वाऽद्य सहितस्त्वया ।
सानुबन्धान्हनिष्यामि क्षुद्रान्राज्यहरानहम् ॥ १२ ॥

आज वक्तृता करके सूर्यकी भांति शोभित नहीं होरहे हो ॥ हे अर्जुन ! तुम्हारा पराक्रम शचीपति इन्द्रके समान है, और जैसे समुद्र मर्यादाको उल्लङ्घन नहीं करता, वैसे ही तुम जो तेरह वर्ष वनवासके क्लेशसे उत्पन्न हुए क्रोधको त्यागके इस समय धर्मकी अभिलाषा कर रहे हो; इसमें कौन पुरुष तुम्हारी प्रशंसा नहीं करेगा ? (५-७)

हे तात ! प्रारब्धसे ही तुम्हारा मन इस समय स्वधर्ममें रत हुआ है; प्रारब्धसे ही तुम्हारी बुद्धि अनृशंसतासे विचलित नहीं होती है । महाराज युधिष्ठिर सदा धर्मके कार्योंमें रत रहते हैं, तौभी शत्रुओंने अधर्मसे हम लोगोंके राज्य को हरण किया और द्रौपदीको सभाके बीच लाके अवमानित किया था; हम लोग राज्य के यथार्थ अधिकारी थे, तौभी शत्रुओंने वल्कल वसन पहना कर तेरह वर्ष पर्यन्त हम लोगोंको वनवासी बनाया था। इतने कष्ट तथा दुःखोंको सहके भी हम लोगोंने उन लोगोंके स्थिर किये हुए नियमोंको पालन किया है ॥ (८-१०)

हे अर्जुन ! इस समय उस अधर्मके विरुद्ध हम लोग राज्य हरण करनेवाले क्षुद्र शत्रुओंको बन्धुबान्धवोंके सहित संहार करनेके वास्ते युद्धभूमिमें उपस्थित हुए हैं, और सेना इकट्ठी करके युद्ध

त्वया हि कथितं पूर्वं युद्धायाऽभ्यागता वयम् ।
घटामहे यथाशक्ति त्वं तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥ १३ ॥
धर्ममन्विच्छसि ज्ञातुं मिथ्यावचनमेव ते ।
भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृन्तसि ॥ १४ ॥
सपन्व्रणे क्षारमिव क्षतानां शत्रुकर्शन ।
विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितम् ॥ १५ ॥
अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकः सन्न बुध्यसे ।
यत्त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशंस्यान्न प्रशंससि ॥ १६ ॥
वासुदेवे स्थिते चापि द्रोणपुत्रं प्रशंससि ।
यः कलां षोडशीं पूर्णां धनञ्जय न तेऽर्हति ॥ १७ ॥
स्वयमेवाऽऽत्मनो दोषान्ब्रुवाणः किन्न लज्जसे ।
दारयेयं महीं क्रोधाद्विकिरेयं च पर्वतान् ॥ १८ ॥
आविध्यैतां गदां गुर्वीं भीमां काञ्चनमालिनीम् ।

करनेमें प्रवृत्त होरहे हैं। विशेष करके तुमने पहिले हम लोगोंको धीरज धारण कराके युद्ध करनेके वास्ते प्रतिज्ञा की थी,इसीसे हम सब कोई रणभूमिके बीच उपस्थित हुए हैं; और यथा शक्तिके अनुसार युद्ध भी कर रहे हैं; परन्तु तुम इस समय हम लोगोंकी निन्दा कर रहे हो । इससे अब मैंने समझा, कि तुम क्षत्रीय धर्म जाननेके अभिलाषी नहीं हो, इसही कारण वृथा जल्पना कर रहे हो । इस समयमें एक तो मेरी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा भयभीत होरहे हैं, दूसरे तुम कटे हुए घावपर निमक लगानेकी भांति अपने वचन रूपी वाणसे हम लोगोंके मर्म स्थलोंको छेदन कर रहे हो ॥ हे अर्जुन ! अधिक क्या कहूं, तुम्हारे वचनरूपी शलाकासे विद्ध होकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ चाहता है ॥ (११–१५)

तुम अपने तथा हम सब लोगोंके प्रशंसा करनेके पात्र होकर भी जो प्रशंसा नहीं करते हो, इससे अत्यन्त अधर्मका कार्य होरहा है ॥ हे अर्जुन ! श्रीकृष्णके वर्त्तमान रहते जो अश्वत्थामा तुम्हारे सोलहवोंका एक अंश भी नहीं है,तुम वैसे द्रोणपुत्रको किस प्रकार प्रशंसा कर रहे हो; तुम्हें अपने मुखसे अपना दोष वर्णन करनेसे लज्जा नहीं होती है। (१६–१८)

तुम धर्मात्मा होकर भी इस विषय को नहीं समझ सकते हो ! मैं क्रुद्ध होनेसे सम्पूर्ण पर्वतोंको चूर्ण और पृथ्वी-को विदीर्ण कर सकता हूं;और इस सुवर्ण

गिरिप्रकाशान्क्षितिजान्भञ्जेयमनिलो यथा ॥ १९ ॥
द्रावयेयं शरैश्चापि सेन्द्रान्देवान्समागतान्।
सराक्षसगणान्पार्थ सासुरोरगमानवान् ॥ २० ॥
स त्वमेवंविधं जानन्भ्रातरं मां नरर्षभ।
द्रोणपुत्राद्भयं कर्तुं नाऽर्हस्यमितविक्रम ॥ २१ ॥
अथवा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वैः सहोदरैः।
अहमेनं गदापाणिर्जेष्याम्येको महाहवे ॥ २२ ॥
ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथाऽब्रवीत्।
संक्रुद्धमिव नर्दन्तं हिरण्यकशिपुर्हरिम् ॥ २३ ॥
धृष्टद्युम्न उवाच- बीभत्सो विप्रकर्माणि विदितानि मनीषिणाम्।
याजनाध्यापने दानं तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥ २४ ॥
षष्ठमध्ययनं नाम तेषां कस्मिन्प्रतिष्ठितः।
हतो द्रोणो मया खेवं किं मां पार्थ विगर्हसे ॥ २५ ॥
अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षात्रधर्मं व्यपाश्रितः।

भूषित प्रचण्ड गदाको ग्रहण करके वृक्ष लतासे युक्त पर्वतोंको तोडके पृथ्वीमें मिला सकता हूं ॥ और मैं अपने बाणोंके प्रभावसे इन्द्रके सहित देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व और सर्पोके सहित मनुष्य लोकका नाश कर सकता हूं ॥ १८-२०

हे अर्जुन! तुम स्वयं महा पराक्रमी वीर योद्धा हो, और मैं तुम्हारा ऐसा बलवान् सहोदर भ्राता वर्त्तमान हूं; इसे भली भांतिसे न जान कर द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे भय करना तुम्हें उचित नहीं है॥ यदि इच्छा हो तो तुम सहोदर भाइयोंके सहित [illegible] ही स्थल पर स्थित रहो, मैं अकेले ही गदा ग्रहण करके इस महा युद्धमें अश्वत्थामाका वध करूंगा ॥ (२१-२२)

तिसके अनन्तर जैसे पहिले समयमें नरसिंह रूपधारी विष्णु भगवानको गर्जते देख, हिरण्यकशिपुने उनसे समयानुसार वचन कहा था, वैसे ही धृष्टद्युम्न भी अर्जुनसे यह वचन बोले, हे अर्जुन! "अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह," ये छः कर्म ब्राह्मणोंके अनुष्ठान करनेके वास्ते धर्मशास्त्रमें वर्णन किये गये हैं; परन्तु बताओ तो सही, इन छः कर्मोंमें कौनसा कर्म द्रोणाचार्यमें प्रतिष्ठित था? तब जो मैंने ऐसे धर्म रहित ब्राह्मणका वध किया है, उसके वास्ते तुम क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो? (२३-२५)

अमानुषेण हन्त्यस्त्रानभिज्ञान् क्षुद्रकर्मकृत् ॥ २६ ॥
तथा मायां प्रयुञ्जानमसह्यं ब्राह्मणब्रुवम् ।
माययैव निहन्याद्यो न युक्तं पार्थ तत्र किम् ॥ २७ ॥
तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रौणायनी रुषा ।
कुरुते भैरवं नादं तत्र किं मम हीयते ॥ २८ ॥
न चाऽद्भुतमिदं मन्ये यद् द्रौणिर्युद्धसंज्ञया ।
घातयिष्यति कौरव्यान्परित्रातुमशक्नुवन् ॥ २९ ॥
यच्च मां धार्मिको भूत्वा ब्रवीषि गुरुघातिनम् ।
तदर्थमहमुत्पन्नः पाञ्चाल्यस्य सुतोऽनलात् ॥ ३० ॥
यस्य कार्यमकार्यं वा युध्यतः स्यात्समं रणे ।
तं कथं ब्राह्मणं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनञ्जय ॥ ३१ ॥
यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद्ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्छितः ।
सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तम ॥ ३२ ॥

जिस नीच कर्म करनेवाले ब्राह्मणने भ्रष्ट होकर क्षत्रीय धर्म अवलम्बन किया था, जिसने अलौकिक अस्त्रोंसे मेरी सेनाके योद्धाओंका वध किया है, वैसे असह्य कपट आचार करनेवाले अधम ब्राह्मणका जो पुरुष कपटता अवलम्बन करके वध करे, क्या उसके सङ्ग सम्व्यवहार करना उचित नहीं है ? जो हो, मैंने उस दुःशील ब्राह्मणका वध किया है उस ही कारण अश्वत्थामा क्रुद्ध होकर भयङ्कर शब्द कर रहा है,और द्रोण पुत्र अश्वत्थामा जो इस समय गर्जन कर रहा है, इसे मैं कुछ आश्चर्य विषय नहीं समझता हूं ॥ (२६–२८)

वह केवल गर्जके कौरवोंको युद्ध करनेके वास्ते लौटाकर फिर युद्धभूमिमें उपस्थित करेगा; परन्तु अन्तमें उन योद्धाओंके परित्राण करनेमें असमर्थ होकर सम्पूर्ण शूरवीरोंका नाश करावेगा॥ हे अर्जुन ! तुम जो धर्मात्मा होके मुझे गुरुघाती कहके मेरी निन्दा कर रहे हो; क्या तुम इस विषयको नहीं जानते, कि मैं द्रोणवधके ही वास्ते पाञ्चालराजके पुत्र रूपसे अग्निसे उत्पन्न हुआ हूं ? हे अर्जुन ! युद्धके समयमें जिसे कार्याकार्यका ज्ञान समभावसे था; वैसे पुरुषको तुम ब्राह्मण वा क्षत्रीय किस प्रकारसे निश्चय करोगे ? (२९–३१)

विशेष करके जिन्होंने अस्त्रविद्या न जाननेवाले साधारण योद्धाओंको ब्रह्मास्त्रसे संहार किया; उसे जिस उपायसे होसके वध करना क्या उचित नहीं है ?

विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां विषोपमम् ।
जानन्धर्मार्थतत्त्वज्ञ किं मामर्जुन गर्हसे ॥ ३३ ॥
नृशंसः स मयाऽऽक्रम्य रथ एव निपातितः ।
तन्मामानिन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाऽभिनन्दसे॥ ३४ ॥
कालानलसमं पार्थ ज्वलनार्कविषोपमम् ।
भीमं द्रोणशिरश्छिन्नं न प्रशंससि मे कथम् ॥ ३५ ॥
योऽसौ ममैव नाऽन्यस्य बान्धवान्युधि जघ्निवान् ।
छित्त्वाऽपि तस्य मूर्धानं नैवाऽस्मि विगतज्वरः ॥३६॥
तच मे कृन्तते मर्म यन्न तस्य शिरो मया ।
निषादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥ ३७ ॥
अथाऽवधश्च शत्रूणामधर्मः श्रूयतेऽर्जुन ।
क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा पुनः ॥ ३८ ॥
स शत्रुर्निहतः संख्ये मया धर्मेण पाण्डव ।
यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा ॥ ३९ ॥

हे धर्म अर्थके तत्त्वको जाननेवाले अर्जुन ! धर्म जाननेवाले पुरुषोंने विधर्मीको विषके समान परित्याग करने योग्य कहके वर्णन किया है; तुम इन सम्पूर्ण विषयोंको जानके भी क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो ? उस दुष्ट ब्राह्मणको मैंने रथमें ही आक्रमण करके उसका वध किया है, इससे मैं प्रशंसाके योग्य हूं; तब तुम क्यों नहीं मेरी प्रशंसा करते हो ? (३२–३४)

हे अर्जुन ! मैंने साक्षात् प्रलय कालकी अग्नि सूर्यके समान तेजस्वी होके द्रोणाचार्यका सिर काटा है, इससे तुम किस कारणसे मेरी प्रशंसा नहीं करते हो ? द्रोणाचार्यने केवल मेरे ही बन्धु बान्धवोंका नाश किया है, दूसरेका नहीं; इससे मैं उनका सिर काटके भी अभीतक शोक रहित नहीं हुआ हूं ॥ जयद्रथके सिरकी भांति जो मैंने द्रोणाचार्यके सिरको कुत्ते और सियारोंको समर्पण नहीं किया इससे मेरे मर्म स्थल विदीर्ण होरहे हैं ॥ (३५–३७)

हे अर्जुन ! यह वचन प्रसिद्ध है, कि शत्रुका वध न करनेसे अधर्म होता है; क्योंकि जिस स्थलमें शत्रुका वध न होसके, वहां पर शत्रुके हाथसे मरना ही क्षत्रिय पुरुषोंका धर्म निश्चित हुआ है ॥ हे अर्जुन ! तुमने जिस धर्मको अवलम्बन करके पितृसखा भगदत्तका वध किया है, मैंने भी उस ही धर्मको

पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः।
मया शत्रौ हते कस्मात्पापे धर्मं न मन्यसे ॥ ४० ॥
सम्बन्धावनतं पार्थ न मां त्वं वक्तुमर्हसि।
स्वगात्रकृतसोपानं निषण्णमिव दन्तिनम् ॥ ४१ ॥
क्षमामि ते सर्वमेव वाग्व्यतिक्रममर्जुन।
द्रौपद्या द्रौपदेयानां कृते नाऽन्येन हेतुना ॥ ४२ ॥
कुलक्रमागतं वैरं ममाऽऽचार्येण विश्रुतम्।
तथा जानात्ययं लोको न यूयं पाण्डुनन्दनाः ॥ ४३ ॥
नाऽनृती पाण्डवो ज्येष्ठो नाऽहं वाऽधार्मिकोऽर्जुन।
शिष्यद्रोही हतः पापो युध्यस्व विजयस्तव ॥ ४४ ॥[९१२२]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नवाक्ये सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

धृतराष्ट्र उवाच—साङ्गा वेदा यथान्यायं येनाऽधीता महात्मना।
यस्मिन्साक्षाद्धनुर्वेदो ह्रीनिषेवे प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥

अवलम्बन करके अपने शत्रुका नाश किया है ॥ इसके अतिरिक्त तुम यदि भीष्मपितामहका वध करके धर्मका कार्य समझ सकते हो, तो मैं भी अपने अनिष्टकारी शत्रुका वध करके क्यों नहीं धर्मका कार्य समझूंगा ॥ (३८–४०)

जैसे हाथी आरोहीके सम्मुख अवनत होकर अपने ही शरीरको सोपान स्वरूप कर देता है, वैसे ही मैं भी सम्बन्धके कारण तुम्हारे समीप अवनत होरहा हूं; इस ही कारण तुम मेरे विषयमें ऐसे कठोर वचनोंका प्रयोग कर रहे हो ॥ जो हो, केवल द्रौपदी और उनके पुत्रोंके अनुरोधसे मैंने तुम्हारे इस अपराधको क्षमा किया है॥ हे पाण्डव! द्रोणाचार्य के सङ्ग हम लोगोंके कुल क्रमागत शत्रुताके विषयको ये सम्पूर्ण पुरुष जानते हैं, तुम इस विषय को नहीं जानते हो ॥ हे अर्जुन! तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर मिथ्यावादी नहीं हैं। और मैं भी अधार्मिक नहीं हूं; पापी द्रोणाचार्य शिष्यद्रोही था, इस ही कारण मारा गया, इससे तुम युद्ध करो, तुम्हारी विजय होवेगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ (४१–४४) [९१२२]

द्रोणपर्वमें एकसौ सतानब्बे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ अठानब्बे अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! जिस महात्माने लोकानुरोधके कारण यथा रीतिसे अङ्गोंके सहित सम्पूर्ण वेदको पढा था, और जिसके समीप धनुर्वेद मूर्त्तिमान रूपसे उपस्थित था॥ और

यस्य प्रसादात्कुर्वन्ति कर्माणि पुरुषर्षभाः ।
अमानुषाणि संग्रामे देवैरसुकराणि च ॥ २ ॥
तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे समक्षं पापकर्मणा ।
नीचात्मना नृशंसेन क्षुद्रेण गुरुघातिना ॥ ३ ॥
नाऽमर्षं तत्र कुर्वन्ति धिक्क्षात्रं धिगमर्षिताम् ।
पार्थाः सर्वे च राजानः पृथिव्यां ये धनुर्धराः ॥ ४ ॥
श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।
सञ्जय उवाच— श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचः क्रूरकर्मणः ॥ ५ ॥
तूष्णीं बभूवू राजानः सर्वे एव विशाम्पते ।
अर्जुनस्तु कटाक्षेण जिह्मं विप्रेक्ष्य पार्षतम् ॥ ६ ॥
सबाष्पमतिनिःश्वस्य धिग्धिगित्येव चाऽब्रवीत् ।
युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णस्तथाऽपरे ॥ ७ ॥
आसन्सुव्रीडिता राजन्सात्यकिस्त्वब्रवीदिदम् ।
नेहाऽस्ति पुरुषः कश्चिद्य इमं पापपूरुषम् ॥ ८ ॥
भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम् ।

जिसकी कृपासे पुरुषश्रेष्ठ राजा लोग युद्धभूमिमें देवतोंसे भी न होने योग्य कठिन और अलौकिक कार्योंको कर रहे हैं ॥ वह महर्षि भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य जब नीच प्रकृतिवाले पापी गुरुघाती तुच्छ धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये; उस समय कोई क्षत्रिय योद्धा उस पापी धृष्टद्युम्नके ऊपर क्रुद्ध नहीं हुए, ऐसे क्रोध और क्षत्रीय कुलको धिक्कार है । हे सञ्जय ! चाहे जो हो, उस समय धृष्टद्युम्नके वचनको सुनके महाधनुर्धर अर्जुन तथा अन्य राजाओंने उसे क्या उत्तर दिया; उस वृत्तान्तको इस समय तुम मेरे समीप वर्णन करो । (१–५)

सञ्जय बोले, महाराज ! क्रूर कर्म करनेवाले धृष्टद्युम्नके वचनोंको सुनकर उस समय राजाओंने कुछ भी उत्तर नहीं किया; अर्जुन तिरछी दृष्टिसे उनकी ओर देखकर 'धिक्कार है' ऐसा वचन कहके लम्बी सांस छोडते हुए आंखोंसे आंसू बहाने लगे । युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव और श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त लज्जित हुए । उस समय केवल सात्यकिने इस प्रकार उत्तर किया । (५–८)

आहो ! इस स्थानमें क्या ऐसा कोई भी पुरुष वर्तमान नहीं है; जो इस अन्याय वचन बोलनेवाले अधम तथा पापी पुरुषका शीघ्रही नाश कर सके ?

एते त्वां पाण्डवाः सर्वे कुत्सयन्ति विवित्सया ॥ ९ ॥
कर्मणा तेन पापेन श्वपाकं ब्राह्मणा इव ।
एतत्कृत्वा महत्पापं निन्दितः सर्वसाधुभिः ॥ १० ॥
न लज्जसे कथं वक्तुं समितिं प्राप्य शोभनाम् ।
कथं च शतधा जिह्वा न ते मूर्धा च दीर्यते ॥ ११ ॥
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाऽधर्मेण पात्यसे ।
वाच्यस्त्वमसि पार्थैश्च सर्वैश्चाऽन्धकवृष्णिभिः ॥ १२ ॥
यत्कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे जनसंसदि ।
अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन् ॥ १३ ॥
वध्यस्त्वं न त्वयाऽर्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता ।
कस्त्वेतद्व्यवसेदार्यस्त्वदन्यः पुरुषाधम ॥ १४ ॥
निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनः सतः ।
सप्ताऽवरे तथा पूर्वे बान्धवास्ते निमज्जिताः ॥ १५ ॥
यशसा च परित्यक्तास्त्वां प्राप्य कुलपांसनम् ।
उक्तवांश्चापि यत्पार्थं भीष्मं प्रति नरर्षभ ॥ १६ ॥

रे धृष्टद्युम्न! ब्राह्मण लोग जैसे चाण्डालकी निन्दा करते हैं; वैसे ही तुम्हारे पापाचरणसे पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण पुरुष तुम्हारी निन्दा करते हैं। तू लोकसमाजमें इस प्रकार साधु पुरुषोंसे निन्दित अत्यन्त वृहत् पाप कर्मको करके भी निधडक वचन बोलनेमें लज्जित नहीं होता है? रे क्षुद्र! क्या तू गुरुहत्या करके अधर्मसे पतित नहीं हुआ है? इस समयभी तुम्हारा शिर तथा तुम्हारी जिह्वा! सौ टुकडे क्यों नहीं होजाती? (८-१२)

तुम जिस कर्मको करके जनसमाजके बीच अपनी बडाई कर रहे हो; उससे तुम पाण्डव, वृष्णि और अन्धकवंशीयोंके समीप पतितके समान मालूम हो-रहे हो, तुम जब ऐसे नीच कर्म को करके भी आचार्य की निन्दा कर रहे हो, तो इस समय अब तुम्हारा वध करना ही उचित है, क्षणभर भी तुम्हें जीवित रखनेकी आवश्यकता नहीं है। रे अधम पुरुष! तुझे छोडके और कौन पुरुष गुरुका केश आकर्षण करके वध कर सकता है? तुम द्रुपदके वंशमें ऐसे कुलकलङ्क उत्पन्न हुए, कि तुम्हारे ही कारण से तुम्हारे वंशके सात पीढी नीचेके और सात पीढी तुमसे पहिलेके पुरुष अर्थात् चौदह पीढीके पुरुष यशसे भ्रष्ट होकर नरकमें पतित हुए हैं। (१२-१६)

तथाऽन्तो विहितस्तेन स्वयमेव महात्मना ।
तस्याऽपि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः ॥ १७ ॥
नाऽन्यः पाञ्चालपुत्रेभ्यो विद्यते भुवि पापकृत् ।
स चापि सृष्टः पित्रा ते भीष्मस्याऽन्तकरः किल ॥ १८ ॥
शिखण्डी रक्षितस्तेन स च मृत्युर्महात्मनः ।
पाञ्चालाश्चलिता धर्मात्क्षुद्रा मित्रगुरुद्रुहः ॥ १९ ॥
त्वां प्राप्य सहसोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः ।
पुनश्चेदीदृशीं वाचं मत्समीपे वदिष्यसि ॥ २० ॥
शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।
त्वां च ब्रह्महणं दृष्ट्वा जनः सूर्यमवेक्षते ॥ २१ ॥
ब्रह्महत्या हि ते पापं प्रायश्चित्तार्थमात्मनः ।
पाञ्चालक सुदुर्वृत्त ममैव गुरुमग्रतः ॥ २२ ॥
गुरोर्गुरुं च भूयोऽपि क्षिपन्नैव हि लज्जसे ।
तिष्ठ तिष्ठ सहस्वैकं गदापातमिमं मम ॥ २३ ॥

और तू जो पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनके हाथसे भीष्मके मृत्युका विषय कह रहा था, वैसी मृत्युका महात्मा भीष्मने स्वयं ही विधान किया था; परन्तु भीष्मका भी वध करनेवाला तेरा सहोदर भ्राता पापी शिखण्डी है। इस पृथ्वीके बीच पाञ्चालराजपुत्रोंके अतिरिक्त और दूसरा ऐसा कौन पुरुष है, जो इस प्रकार अधर्मके कार्यों को करेगा ? तेरे पिताने भीष्मवधके ही निमित्त शिखण्डीको उत्पन्न किया था। अर्जुनने युद्धभूमिके बीच शिखण्डीकी रक्षा करी थी, यह ठीक है; परन्तु महात्मा भीष्मकी मृत्युका कारण शिखण्डी ही है। (१६-१९)

मित्र और गुरुद्रोही नीचस्वभाववाले पाञ्चाल लोग तुझे और शिखण्डीको पुत्ररूपसे पाकर ही धर्मभ्रष्ट और जनसमाजमें धिक्कार पानेके योग्य हुए हैं। तू यदि फिर मेरे सम्मुख ऐसे अन्याययुक्त वचनोंको कहेगा, तो मैं अपनी इस वज्रके समान भयङ्कर गदासे तेरा सिर तोड दूंगा। अरे पापी! मनुष्य लोग ब्रह्महत्यारेको देखकर प्रायश्चित्तके वास्ते सूर्यका दर्शन करते हैं। तुझे भी ब्रह्महत्याका पाप लगा है, इससे तेरा मुख देखकर भी ऊपर कही हुई रीतिसे प्रायश्चित्त करना होगा। रे नीच पाञ्चालराजपुत्र! तू मेरे सम्मुख मेरे गुरु तथा गुरुके गुरुकी बार बार निन्दा करके भी लज्जित नहीं होता है ? तू मेरी गदाका

तव चापि सहिष्येऽहं गदापातानेकशः ।
सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम् ॥ २४ ॥
संरब्धं सात्यकिं प्राह संक्रुद्धः प्रहसन्निव ।

धृष्टद्युम्न उवाच– श्रूयते श्रूयते चेति क्षम्यते चेति माधव ॥ २५ ॥
सदाऽनार्योऽशुभः साधुं पुरुषं क्षेप्तुमिच्छति ।
क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति क्षमाम् ॥ २६ ॥
क्षमावन्तं हि पापात्मा जितोऽयमिति मन्यते ।
स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः ॥ २७ ॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि ।
यः स भूरिश्रवाश्छिन्नभुजः प्रायगतस्त्वया ॥ २८ ॥
वार्यमाणेन हि हतस्ततः पापतरं तु किम् ।
गाहमानो मया द्रोणो दिव्येनाऽस्त्रेण संयुगे ॥ २९ ॥
विसृष्टशस्त्रो निहतः किं तत्र क्रूर दुष्कृतम् ।
अयुध्यमानं यस्त्वाजौ तथा प्रायगतं मुनिम् ॥ ३० ॥

प्रहार एक बार सहन तो कर; मैं तेरी गदाके प्रहारको अनेक बार सहन करूंगा । (१९–२४)

महाराज ! सात्यकिने क्रुद्ध होकर जब धृष्टद्युम्नसे ऐसे कठोर वचन कहके उनका तिरस्कार किया; तब धृष्टद्युम्न अत्यन्त क्रुद्ध होकर भी उस समय सात्यकिसे यह वचन बोले, हे सात्यकि ! मैंने तुम्हारे वचनोंको सुना और क्षमा भी किया क्योंकि दुष्ट तथा नीच पुरुष सदा साधुपुरुषोंको अवमानित करनेकी इच्छा किया करते हैं । इस लोकमें क्षमा ही प्रशंसनीय है, क्षमासे कोई अनिष्ट नहीं हो सकता; परन्तु पापी तथा दुष्ट लोग क्षमावान् पुरुषको ये पराजित हुए ऐसा समझने लगते हैं । तू भी उसी भांति पापी और नीच व्यवहार करनेवाला है; तेरा पांवके नखसे लेकर शिखा पर्यन्त सम्पूर्ण शरीर निन्दनीय है, उसपर भी तू दूसरेकी निन्दा करनेकी इच्छा करता है ? कैसे आश्चर्यका विषय है, कि तुझे वारंवार सब योद्धाओंने निषेध किया, तौभी अर्जुनके बाणसे भुजा कटनेपर रणभूमिके बीच योगयुक्त चित्तसे बैठे हुए अस्त्ररहित भूरिश्रवाका तूने वध किया था, इससे बढके और दूसरा पाप कर्म कौनसा होगा ? (२४–२९)

रे क्रूरस्वभाववाले ! प्रविष्ट होकर दिव्यास्त्रोंसे मेरी सेनाको पीडित करनेवाले आचार्य द्रोणने जब शस्त्रत्याग दिया तभी

छिन्नबाहुं परैर्हन्यात्सात्यके स कथं वदेत् ।
निहत्य त्वां यदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान्॥ ३१ ॥
किं तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः ।
त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः ॥ ३२ ॥
यदा तदा हतः शूरः सौमदत्तिः प्रतापवान् ।
यत्र यत्र तु पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते चमूम् ॥ ३३ ॥
किरञ्छरसहस्राणि तत्र तत्र प्रयाम्यहम् ।
स त्वमेवंविधं कृत्वा कर्म चाण्डालवत्स्वयम् ॥ ३४ ॥
वक्तुमर्हसि वक्तव्यः कस्मात्त्वं परुषाण्यथ ।
कर्ता त्वं कर्मणो ह्यस्य नाऽहं वृष्णिकुलाधम ॥ ३५ ॥
पापानां च त्वमावासः कर्मणां मा पुनर्वद ।
जोषमास्व न मां भूयो वक्तुमर्हस्यतः परम् ॥ ३६ ॥
अधरोत्तरमेतद्धि यन्मां त्वं वक्तुमर्हसि ।

मैंने उनका वध किया है; उससे क्या अधर्म हो सकता है ? हे सात्यकि ! जिसने दूसरेके अस्त्रसे भुजा कटनेपर युद्धसे विरत, योगयुक्त चित्तसे मौनावलम्बन करके बैठे हुए अस्त्ररहित पुरुषका वध किया है, वह दूसरेको किस प्रकार अधर्मी कह सकता है ? पराक्रमी भूरिश्रवाने जिस समय तुझे पृथ्वीपर गिराके तेरी छातिमें लातसे प्रहार किया था; उस समय तेरा बल पुरुषार्थ कहां गया था, क्यों नहीं तू उस समय पुरुषार्थ प्रकाशित करके भूरिश्रवाका वध कर सका ? (२९—३२)

प्रतापवान् पराक्रमी सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा जब पहिले अर्जुनके बाणसे भुजा कटनेपर युद्धसे विरत होकर चित्तसे ईश्वरके ध्यानमें रत हुए, उस समय तूने नीचता प्रकाशित करके उनका वध किया है; परन्तु जिस जिस स्थलपर द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको छिन्नभिन्न करके भगानेमें प्रवृत्त हुए थे, मैं उन स्थानोंमें सहस्रों बाणोंको चलाते हुए उनके सम्मुख उपस्थित हुआ हूं, जो हो, स्वयं चाण्डालके समान कार्य करके जनसमाजके बीच निन्दनीय होकर तू मुझे किस कारण कठोर वचन कहनेकी इच्छा करता है ? रे वृष्णिकुलकलङ्क ! तू स्वयं पाप कर्म करनेवाला तथा कुकर्मके मार्गोंमें गमन करनेवाला है, मैं अधर्मी नहीं हूं, इससे अब मेरे विषयमें कटूक्ति न करना । (३२–३६)

नीच पुरुषोंकी भांति मेरे विषयमें जो

अथ वक्ष्यसि मां मौर्ख्याद् भूयः परुषमीदृशम् ॥३७॥
गमयिष्यामि बाणैस्त्वां युधि वैवस्वतक्षयम् ।
न चैवं मूर्ख धर्मेण केवलेनैव शक्यते ॥ ३८ ॥
तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम् ।
वञ्चितः पाण्डवः पूर्वमधर्मेण युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
द्रौपदी च परिक्लिष्टा तथाऽधर्मेण सात्यके ।
प्रव्राजिता वनं सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥ ४० ॥
सर्वस्वमपकृष्टं च तथाऽधर्मेण बालिश ।
अधर्मेणाऽपकृष्टश्च मद्रराजः परैरितः ॥ ४१ ॥
अधर्मेण तथा बालः सौभद्रो विनिपातितः ।
इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ ४२ ॥
भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः ।
एवं परैराचरितं पाण्डवेयैश्च संयुगे ॥ ४३ ॥
रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत ।
दुर्ज्ञेयः स परो धर्मस्तथाऽधर्मश्च दुर्विदः ॥ ४४ ॥

कुछ वचन बोलनेकी इच्छा कर रहा है, उसे फिर कभी न कहना; मौनावलम्बन कर। इसके अनन्तर यदि मूर्खताके कारण ऐसे वचनोंका प्रयोग करेगा, तो मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे तेरा वध करके तुझे यमपुरीमें भेज दूंगा। अरे मूर्ख! केवल धर्मसेही विजय लाभ नहीं होसकता। कौरवोंने जो सम्पूर्ण अधर्म आचरण किये हैं, उसे सुन। (३६–३९)

पहिले ही उन लोगोंकी कपटतासे राजा युधिष्ठिर ठगे गये और द्रौपदीने कैसे क्लेश पाये! तिसके अनन्तर पाण्डव लोग द्रौपदीके सहित छलसे राज्य नष्ट होने पर वनवासी बनाये गये। और उन लोगोंने छलसे तथा अधर्म अवलम्बन करके मद्रराज शल्यको अपनी ओर किया, तथा अधर्म युद्ध करके सुभद्रापुत्र अभिमन्युका वध किया है। (३९–४२)

वैसेही पाण्डवोंने भी अधर्मसे भीष्म पितामहका वध किया, और तू ने भी अधर्म अवलम्बन करके भूरिश्रवाका वध किया; इसी प्रकार वीर कौरव और पाण्डव लोगोंने अपनी विजयके वास्ते अधर्म आचरण किये हैं। हे सात्यकि! परम धर्म और अधर्मके विषयोंको जानना बहुतही कठिन है, इससे इस समय क्रुद्ध होकर तूं अपने पिताके समीप यम लोकमें गमन करनेकी इच्छा क्यों करता

युध्यस्व कौरवैः सार्धं मा गाः पितृनिवेशनम् ।
सञ्जय उवाच— एवमादीनि वाक्यानि क्रूराणि परुषाणि च ॥ ४५ ॥
आवितः सात्यकिः श्रीमानाकम्पित इवाऽभवत् ।
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षः सात्यकिस्त्वाददे गदाम् ॥४६॥
विनिःश्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः ।
ततोऽभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
न त्वां वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां वधक्षमम् ।
तमापतन्तं सहसा महाबलममर्षणम् ॥ ४८ ॥
पाञ्चाल्यायाऽभिसंक्रुद्धमन्तकायाऽन्तकोपमम् ।
चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः ॥ ४९ ॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं बाहुभ्यां समवारयत् ।
द्रवमाणं तथा क्रुद्धं सात्यकिं पाण्डवो बली ॥ ५० ॥
प्रस्पन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात् ।
स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुङ्गवः ॥ ५१ ॥
निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिनां वरः ।
अवरुह्य रथात्तूर्णं ध्रियमाणं बलीयसा ॥ ५२ ॥

है, कौरवोंके सङ्ग युद्ध कर। (४२-४५)

सञ्जय बोले, महाराज ! महारथी सात्यकि धृष्टद्युम्नके ऐसे कटूक्तियुक्त वचनोंको सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए उस समय क्रोधसे उनके दोनों नेत्र लाल होगये और वह धनुष बाणको रथमें रखके सर्पकी भांति सांस लेते हुए अपनी गदाको ग्रहण करके रथसे कूद पडे और अभिमानके सहित धृष्टद्युम्नसे यह वचन बोले, तू वधके योग्य है, इससे तुझे अब कुछ न कहके तेरा वध करूंगा। (४५-४८)

महाबलवान् सात्यकि यमराजके दण्ड समान भयङ्कर गदा ग्रहण करके वेगपूर्वक धृष्टद्युम्नकी ओर दौडे। तब महाबली भीमसेनने कृष्णकी आज्ञासे शीघ्रताके सहित रथसे कूदके अपनी दोनों भुजाओंसे सात्यकिको ग्रहण किया। बलवान् सात्यकि उस समय भीमसेनको लेकर ही गमन करने लगे। अनन्तर भीमसेनने बलपूर्वक अपने दोनों पांवोंके सहारे पृथ्वीपर बलपूर्वक स्थित होके छठें चरणमें बलवान् सात्यकिको आगे बढनेसे रोक रक्खा। (४८-५२)

महाराज ! बलवान् भीमसेनने जब शीघ्रताके सहित रथसे उतरके सात्यकिको

उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशाम्पते।
अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते ॥ ५३ ॥
परमन्धकवृष्णिभ्यः पञ्चालेभ्यश्च मारिष।
तथैवाऽन्धकवृष्णीनां तथैव च विशेषतः ॥ ५४ ॥
कृष्णस्य च तथाऽस्मत्तो मित्रमन्यन्न विद्यते।
पञ्चालानां च वार्ष्णेय समुद्रान्तां विचिन्वताम् ॥५५ ॥
नाऽन्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः।
स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च यथा भवान् ॥ ५६ ॥
भवन्तश्च यथाऽस्माकं भवतां च तथा वयम्।
स एवं सर्वधर्मज्ञ मित्रधर्ममनुस्मरन् ॥ ५७ ॥
नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात्प्रशाम्य शिनिपुङ्गव।
पार्षतस्य क्षम त्वं वै क्षमतां पार्षतश्च ते ॥ ५८ ॥
वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद्भवेत्।
प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ॥ ५९ ॥
पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत्।

इस प्रकार ग्रहण किया, तब सहदेव मधुर वचनोंसे सात्यकिसे बोले, हे पुरुषसिंह सात्यकि! वृष्णि, अन्धक तथा पाञ्चाल योद्धाओंके अतिरिक्त और कोई भी हम लोगोंको इस पृथ्वीके बीच अधिक प्रिय नहीं है। उसी भांति वृष्णि तथा अन्धक वंशियोंको विशेष करके कृष्णको हम लोगोंके अतिरिक्त और कोई भी अधिक प्रिय मित्र नहीं है; और पाञ्चाल योद्धा लोग वृष्णि तथा अन्धकवंशियोंके समान मित्र इस सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच भी खोजके नहीं पावेंगे। इससे जैसे आप लोग हम लोगों-के और हम लोग तुम्हारे मित्र हैं, वैसे ही धृष्टद्युम्न भी हमारे तथा तुम्हारे मित्र ही हैं। (५२–५७)

हे शिनिपौत्र सात्यकि! तुम सम्पूर्ण धर्मके तत्त्वको जानते हो, इससे क्रोध त्यागके धृष्टद्युम्नके ऊपर तुम्हें प्रसन्न होना उचित है। देखिये, क्षमासे श्रेष्ठ और दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है, इस ही निमित्त हम लोग इस विषयमें शान्त हुए हैं; इस समय आप लोग आपसमें एक दूसरेके वचनोंको क्षमा कीजिये। (५७–५९)

महाराज! जब सहदेवने इस प्रकार सात्यकिको शान्त किया, तब पाञ्चा-लराजपुत्र धृष्टद्युम्न हंसते हुए यह वचन

मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं भीम युद्धमदान्वितम् ॥ ६० ॥
आसादयतु मामेष धराधरमिवाऽनिलः ।
यावदस्य शितैर्बाणैः संरम्भं विनयाम्यहम् ॥ ६१ ॥
युद्धश्रद्धां च कौन्तेय जीवितं चास्य संयुगे ।
किं नु शक्यं मया कर्तुं कार्यं यदिदमुद्यतम् ॥ ६२ ॥
सुमहत्पाण्डुपुत्राणामायान्त्येते हि कौरवाः ।
अथवा फाल्गुनः सर्वान्वारयिष्यति संयुगे ॥ ६३ ॥
अहमप्यस्य मूर्धानं पातयिष्यामि सायकैः ।
मन्यते छिन्नबाहुं मां भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६४ ॥
उत्सृजैनमहं चैनमेष वा मां हनिष्यति ।
शृण्वन्पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिः सर्पवच्छ्वसन् ॥६५॥
भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ बाहुशालिनौ ॥ ६६ ॥
त्वरया वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष ।
यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्ततः ॥ ६७ ॥

बोले, हे भीमसेन ! तुम इस युद्धदुर्मद शिनिपौत्र सात्यकिको छोड दो और शीघ्र परित्याग करो; जैसे वायु पर्वतमें जाके लीन होजाता है, वैसे ही वह मेरे समीप पहुंचके प्राणरहित होजावेगा। मैं इसी समय अपने तीक्ष्ण बाणोंके प्रभावसे युद्धकी अभिलाषा पूरी करके इसका प्राण नाश करूंगा। इस समय देखो कौरव लोग वेगपूर्वक मेरी सेनाकी ओर आरहे हैं, इससे अब मैं उन लोगोंका क्या कर सकूंगा; क्योंकि पाण्डुपुत्रोंका यह बहुत बडा कार्य उपस्थित हुआ है। (५९-६२)

अथवा अर्जुन अकेले ही कौरवोंको निवारण करेंगे, मैं पहिले अपने तेज बाणोंसे सात्यकिका सिर काटूंगा; सात्यकिने क्या मुझे भुजा रहित भूरिश्रवा समझा है ? हे भीमसेन ! तुम उसे छोड दो, या तो मैं ही उसका प्राण नाश करूंगा, अथवा वही मेरा वध करेगा। (६३-६५)

भीमसेनकी दोनों भुजाके बीचमें स्थित बलवान् सात्यकि धृष्टद्युम्नके ऐसे अभिमान युक्त वचनोंको सुनकर क्रोधसे कम्पित होने लगे। इसी प्रकार जब वे दोनों महाबलवान् वीर दो पराक्रमी वृषभकी भांति बार बार गर्जने लगे; तब श्रीकृष्णचन्द्र और धर्मराज युधिष्ठिर

निवार्य परमेष्वासौ कोपसंरक्तलोचनौ।
युयुत्सूनपरान्संख्ये प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः॥ ६८॥ [९१९०]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नसात्यकिक्रोधेऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः १९८

सञ्जय उवाच— ततः स कदनं चक्रे रिपूणां द्रोणनन्दनः।
युगान्ते सर्वभूतानां कालसृष्ट इवाऽन्तकः ॥ १॥
ध्वजद्रुमं शस्त्रशृङ्गं हतनागमहाशिलम्।
अश्वकिम्पुरुषाकीर्णं शरासनलतावृतम् ॥ २॥
क्रव्यादपक्षिसंघुष्टं भूतयक्षगणाकुलम्।
निहत्य शात्रवान्भल्लैः सोऽचिनोद्देहपर्वतम् ॥ ३॥
ततो वेगेन महता विनद्य स नरर्षभः।
प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवाऽऽत्मजम् ॥ ४॥
यस्माद्युध्यन्तमाचार्यं धर्मकंचुकमास्थितः।

ने शीघ्रताके सहित वहांपर उपस्थित होकर अत्यन्त यत्नपूर्वक उन दोनोंको शान्त किया॥ अनन्तर मुख्य मुख्य पराक्रमी क्षत्रिय वीर लोग उन दोनों महाधनुर्द्धारियोंको निवारण करके कुरुसेनाके योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते उनके सम्मुख उपस्थित हुए॥ (६५-६८) [९१९०]

द्रोणपर्वमें एकसौ अठानव्वे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें एकसौ निनानव्वे अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! इधर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा उस समय काल प्रेरित मृत्युकी भांति शत्रुसेनाके योद्धाओंका नाश करने लगे॥ उस समय उन्होंने भल्लास्त्रसे शत्रुओंका नाश करके उनके मृत शरीरसे रणभूमिको परिपूरित कर दिया; उस समय शत्रुसेनाके मृतपुरुषोंके शरीर रणभूमिमें इतने अधिक परिमाणसे इकठे होगये थे, कि वहां पर्वतके समान दीख पडते थे, ध्वजा पताका उस पर्वतके वृक्षस्वरूप, शस्त्र उसके शृङ्ग, मरे हुए हाथी घोडोंके शरीर ही उसमें शिलाखण्डके समान बोध होते थे; वह मृत पुरुषोंके शरीररूपी पर्वत मांसभक्षी पशुपक्षियोंके डरावनी बोलीसे युक्त और भूतप्रेत यक्ष तथा राक्षसोंसे सेवित होकर अत्यन्त भयङ्कर मालूम होने लगा॥ (१-३)

अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ अश्वत्थामाने भयङ्कर शब्दसे सिंहनाद करके फिर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे अपनी प्रतिज्ञा सुनाई॥ अश्वत्थामा बोले, महाराज! धर्मध्वजी युधिष्ठिरने जब मिथ्या वचन कहके गुरुसे अस्त्रत्याग कराया है, तब

सुत्र शस्त्रमिति प्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥
तस्मात्सम्पश्यतस्तस्य द्रावयिष्यामि वाहिनीम् ।
विद्राव्य सर्वान्हन्तास्मि जाल्मं पाञ्चाल्यमेव तु ॥६॥
सर्वानेतान्हनिष्यामि यदि योत्स्यन्ति मां रणे ।
सत्यं ते प्रतिजानामि परिवर्तय वाहिनीम् ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु वाहिनीं पर्यवर्तयत् ।
सिंहनादेन महता व्यपोह्य सुमहद्भयम् ॥ ८ ॥
ततः समागमो राजन्कुरुपाण्डवसेनयोः ।
पुनरेवाऽभवत्तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥ ९ ॥
संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः।
उदग्राः पाण्डुपञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च ॥ १० ॥
तेषां परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम् ।
संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद्विशाम्पते ॥ ११ ॥
यथा शिलोच्चये शैलः सागरैः सागरो यथा ।

मैं उसके सम्मुखही में उसकी सम्पूर्ण सेनाको युद्धभूमिसे छिन्न भिन्न करके भगा दूंगा,और सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंको पराजित करके उस क्रूरस्वभाववाले धृष्टद्युम्नका वध करूंगा। महाराज! आप सम्पूर्ण योद्धाओंको युद्ध करनेमें प्रवृत्त करो, मैं तुम्हारे समीप सत्यप्रतिज्ञा करता हूं, कि आज शत्रुसेनाके बीचसे जो पुरुष मेरे सम्मुख उपस्थित होंगे, मैं उन सबका ही वध करूंगा ॥ (४–७)

हे राजेन्द्र! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने गुरुपुत्र अश्वत्थामाके ऐसे वचनको सुनकर हर्षपूर्वक भयङ्कर सिंहनाद करते हुए अपनी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंको लौटाकर शत्रुसेनाके योद्धाओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त किया। तिसके अनन्तर उठती हुई लहरसे युक्त दो समुद्रकी भांति कौरव और पाण्डवोंकी महासेनाका आपसमें अत्यन्तही भयङ्कर युद्ध होने लगा॥ उस समयमें कौरव लोग अश्वत्थामाके पराक्रमसे गर्वित और पाञ्चाल योद्धा लोग द्रोणाचार्यके मरनेसे उत्साहयुक्त हुए थे, इससे उन दोनों सेनाके योद्धा लोग अपनी विजयके लक्षणको विचारके क्रोध और अभिमानके सहित महाघोर संग्राम करने लगे॥ उस समय दोनों सेनाके बीच महाघोर भयानक कोलाहल होने लगा॥ (८—११)

महाराज! जैसे पर्वतसे पर्वत और

प्रतिहन्येत राजेन्द्र तथाऽऽसन्कुरुपाण्डवाः ॥ १२ ॥
ततः शङ्खसहस्राणि भेरीणामयुतानि च।
अवादयन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः ॥ १३ ॥
यथा निर्मथ्यमानस्य सागरस्य तु निःस्वनः।
अभवत्तव सैन्यस्य सुमहानद्भुतोपमः ॥ १४ ॥
प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा।
अभिसन्धाय पाण्डूनां पाञ्चालानां च वाहिनीम्॥१५॥
प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः।
पाण्डवान्क्षपयिष्यन्तो दीप्तास्याः पन्नगा इव ॥ १६ ॥
ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन्महाहवे।
मुहूर्ताद्भास्करस्येव लोके राजन्गभस्तयः ॥ १७ ॥
तथाऽपरे द्योतमाना ज्योतींषीवाऽमलाम्बरे।
प्रादुरासन्महाराज कार्ष्णायसमया गुडाः ॥ १८ ॥
चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्यो बहुला गदाः।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः॥ १९ ॥

लहरयुक्त समुद्रसे समुद्रकी टक्कर होनेसे भयङ्कर शब्द उत्पन्न होता है, वैसेही कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंके संग्रामके समय अस्त्रशस्त्रोंकी खटपटाहट से महाघोर शब्द सुनाई देने लगा॥ अनन्तर दोनों सेनाके बीच सहस्रों तथा लक्षों शङ्ख भेरी ढोल और नगाडे आदि जुझाऊ बाजे बजने लगे॥परन्तु उस समय कुरुसेनाके बीचसे समुद्र मथनके समान महाभयङ्कर शब्द उत्पन्न हुआ॥ १२-१४

उस ही समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने जब पाण्डव और पाञ्चालसेनाको लक्ष्य करके नारायण अस्त्र चलाया; तब उस नारायण अस्त्रसे सहस्रों भांतिके प्रकाशमान विषधर सर्प समान भयङ्कर सहस्रों तथा लक्षों बाण प्रकट होने लगे, और मुहूर्त भरके बीच जगत्के सूर्यके किरणोंकी भांति वे बाण सम्पूर्ण दिशा और आकाशमण्डलमें परिपूरित होगये, और उस समय उन बाणोंसे शत्रुओंकी सेनाके सम्पूर्ण पुरुष छिप गये। उस समय आकाशमण्डलमें ज्योति वाले पदार्थोंकी भांति प्रकाशमान लोहमय चार चक्र और दो चक्के युक्त बहुतसी शतघ्नी, गदा और सूर्यमण्डलके समान प्रकाशित क्षुरधारवाले बहुतसे भयङ्कर चक्र इधर उधर शत्रुसेनाके बीच चलते हुए दिखाई देने लगे॥ (१५-१९)

शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव पुरुषर्षभ ।
दृष्ट्वाऽन्तरिक्षमाविग्नाः पाण्डुपञ्चालसृञ्जयाः ॥ २० ॥
यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः ।
तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप ॥ २१ ॥
वध्यमानास्तदाऽस्त्रेण तेन नारायणेन वै ।
दह्यमानाऽनलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे ॥ २२ ॥
यथा हि शिशिरापाये दहेत्कक्षं हुताशनः ।
तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो ॥ २३ ॥
आपूर्यमाणेनाऽस्त्रेण सैन्ये क्षीयति च प्रभो ।
जगाम परमं त्रासं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥
द्रवमाणं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम् ।
मध्यस्थतां च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥
धृष्टद्युम्न पलायस्व सह पाञ्चालसेनया ।
सात्यके त्वं च गच्छस्व वृष्ण्यन्धकवृतो महान् ॥२६॥

उस समय पाण्डव, और सञ्जय योद्धा लोग सम्पूर्ण दिशा और आकाशमण्डलको नाना भांतिके अस्त्रशस्त्रोंसे परिपूरित देखकर अत्यन्त ही व्याकुल हुए॥ महाराज ! उस समय जहां पाण्डवोंकी ओरके महारथी योद्धा लोग तुम्हारी सेनाके वीरोंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त थे, उस ही ओर नारायण अस्त्रका भयङ्कर प्रभाव दिखाई देने लगा॥ शत्रुसेनाके योद्धा इस प्रकार पीडित होकर भस्म होने लगे, जैसे अग्नि तृण काष्ठोंको भस्म कर देती है। अधिक क्या कहा जावे, जैसे ग्रीष्म ऋतुमें वनके बीच अग्नि प्रकट होकर जङ्गलको भस्म कर देती है वैसे ही नारायण अस्त्रके प्रभावसे अश्वत्थामा शत्रुसेनाके योद्धाओंको भस्म करने लगे॥ (२०-२३)

महाराज ! जब इस प्रकार भयङ्कर नारायण अस्त्रके प्रभावसे शत्रु सेनाके योद्धाओंका नाश होने लगा, तब उस समय धर्म पुत्र राजा युधिष्ठिर अत्यन्त ही भयभीत हुए॥ अनन्तर राजा युधिष्ठिर अपनी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंको अश्वत्थामाके अस्त्रसे पीडित तथा समस्त शूरवीरोंको रणभूमिसे चारों ओर छिन्न भिन्न होते और अर्जुनको मध्यस्थ पुरुषकी भांति युद्धभूमिमें स्थित देखकर यह वचन बोले॥ हे धृष्टद्युम्न ! तुम सम्पूर्ण पाञ्चाल सेनाके सहित युद्धभूमिसे भाग जाओ; हे सात्यकि ! तुम भी वृष्णि और

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः क्षमम् ।
श्रेयो ह्युपदिशत्येष लोकस्य किमुताऽऽत्मनः ॥ २७ ॥
संग्रामस्तु न कर्तव्यः सर्वसैन्यान्ब्रवीमि वः ।
अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ २८ ॥
भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा संग्रामे भीरुदुस्तरे ।
विमज्जिष्यामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे ॥ २९ ॥
कामः सम्पद्यतामस्य बीभत्सोराशु मां प्रति ।
कल्याणवृत्तिराचार्यो मया युधि निपातितः ॥ ३० ॥
येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः ।
समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर्घातितो नाऽभिपालितः ॥ ३१ ॥
येन विब्रुवती प्रश्नं तथा कृष्णा सभां गता ।
उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं नियच्छती ॥ ३२ ॥
जिघांसुर्धार्तराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फाल्गुनः ।
कवचेन तथा गुप्तो रक्षार्थं सैन्धवस्य च ॥ ३३ ॥

अन्धकवंशियोंकी सेनाके सहित घर चले जाओ, और धर्मात्मा कृष्ण स्वयं ही अपनी रक्षाका उपाय कर लेंगे, वह जब तीनोंलोकके कल्याणमें दत्तचित्त रहते तथा सबकी रक्षा करते हैं तब अपनी रक्षा क्यों नहीं कर सकेंगे ॥ (२४–२७)

हे शूरवीर पुरुषो ! मैं तुम सब लोगोंको कहता हूं कि अब युद्ध करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है; मैं अपने सहोदर भाइयोंके सहित अग्निमें प्रवेश करूंगा । हाय ! मैंने कादरोंकी भयको बढानेवाले भीष्म, द्रोण रूपी समुद्रसे पार होकर अब इस समय बन्धुबान्धवोंके सहित अश्वत्थामारूपी गोपद जलमें डूब रहा हूं ॥ (२८—२९)

मैंने अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले द्रोणाचार्यका वध कराया है, उससे अर्जुन मेरे ऊपर अत्यन्त ही विरक्त हुए हैं, इससे अब उन्हींकी इच्छा पूरी होवे। कि जिन्होंने युद्धभूमिमें बालक अभिमन्युकी रक्षा न करके कई एक युद्धदुर्मद योद्धाओंके हाथसे उसका प्राणनाश कराया था, कौरवसभाके बीच दासीकी भांतिसे युक्त होकर जब द्रौपदीने प्रश्न किया था, उस समय उपेक्षा करके जिन्होंने पुत्रके सहित कुछ भी उत्तर नहीं दिया; जिन्होंने जयद्रथवधके दिन युद्धमें प्रवृत्त और थके हुए घोडोंसे युक्त अर्जुनके वधके वास्ते अभिलाषा की थी, और जिन्होंने अमोघकवच पहनाके

येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पाञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः ।
कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः ॥ ३४ ॥
येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद्वयमधर्मतः ।
निवार्यमाणेनाऽस्माभिरनुगन्तुं तदेषिताः ॥ ३५ ॥
योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणः सौहृदं परम् ।
हतस्तदर्थे मरणं गमिष्यामि सबान्धवः ॥ ३६ ॥
एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः ।
निवार्य सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥
शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चाऽवरोहत ।
एष योगोऽत्र विहितः प्रतिषेधे महात्मना ॥ ३८ ॥
द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत ।
एवमेतन्न वो हन्यादस्त्रं भूमौ निरायुधान् ॥ ३९ ॥
यथा यथा हि युध्यन्ते योधा ह्यस्त्रमिदं प्रति ।

दुर्योधनकी रक्षा की थी ॥ जिन्होंने सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षाके वास्ते विशेष यत्न किया था; जिन्होंने मेरे विजयकी अभिलाषा करनेवाले सत्यजित् आदि पाञ्चाल वीरोंको ब्रह्मास्त्रसे पुत्रपौत्र अनुयाइयोंके सहित समूलसे नष्ट कर दिया है ॥ (३०—३४)

कौरवोंने जब हमको राज्यसे पृथक् करके वनवासी बनाया था, उस समयमें जिन्होंने उन लोगोंको निवारण नहीं किया और युद्धके समय जिन्होंने मेरी ओर न होके कौरवोंका पक्ष ग्रहण करके युद्ध किया है; अधिक क्या कहूं, जिन्होंने ऊपर कहे हुए नानाप्रकारसे हम लोगोंके विषयमें सुहृद भाव प्रदर्शित किया था, हम लोगोंके ऐसे परम सुहृद द्रोणाचार्य मारे गये हैं; इससे इसही कारण अब हम लोगोंको बन्धु बान्धवोंके सहित यमलोकमें गमन करना पडेगा ॥ (३५–३६)

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने जब ऐसा वचन कहा, तब यदुकुल भूषण कृष्ण उस ही समय अपने भुजाके सङ्केतसे निवृत्त करके उन लोगोंसे बोले, हे शूरवीर योद्धा लोगो ! तुम लोग शीघ्र ही अस्त्र-शस्त्रोंको परित्याग करके अपने अपने वाहनोंसे उतर के युद्धसे निवृत्त होजाओ । भगवान् नारायणने इस शस्त्रके प्रतिकारका यही उपाय स्थिर किया है। तुम सब कोई शीघ्रही अस्त्र त्याग करके हाथी घोडे आदि वाहनोंसे उतरके पृथ्वी पर स्थित हो जाओ; तब यह अस्त्र तुम लोगोंका वध नहीं करेगा॥ (३७–३९)

तथा तथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः ॥ ४० ॥
निक्षेप्स्यन्ति च शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये ।
तान्नैतदस्त्रं संग्रामे निहनिष्यति मानवान् ॥ ४१ ॥
यस्त्वेतत्प्रतियोत्स्यन्ति मनसाऽपीह केचन ।
निहनिष्यति तान्सर्वान्रसातलगतानपि ॥ ४२ ॥
ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भारत ।
ईषुः सर्वे समुत्स्रष्टुं मनोभिः करणेन च ॥ ४३ ॥
तत उत्स्रष्टुकामांस्तानस्त्राण्यालक्ष्य पाण्डवः ।
भीमसेनोऽब्रवीद्राजन्निदं संहर्षयन्वचः ॥ ४४ ॥
न कथञ्चन शस्त्राणि मोक्तव्यानीह केनचित् ।
अहमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः ॥ ४५ ॥
गदयाऽप्यनया गुर्व्या हेमविग्रहया रणे ।
कालवत्प्रहरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं विशातयन् ॥ ४६ ॥
न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह ।
यथैव सवितुस्तुल्यं ज्योतिरन्यन्न विद्यते ॥ ४७ ॥
पश्यतेमौ हि मे बाहू नागराजकरोपमौ ।

युधिष्ठिरकी सेनाके योद्धालोग जिस स्थलपर युद्ध करेंगे; उन्हीं स्थानमें कुरु सेनाके योद्धा प्रबल होजावेंगे। जो लोग अपने वाहनोंसे उतरके अस्त्र परित्याग करेंगे, उन लोगोंका यह अस्त्र वध नहीं करेगा। अधिक क्या कहा जावे, यदि कोई मनसे भी इस अस्त्रके प्रतिकारकी इच्छा करेगा,तो वह पाताल लोकमें गमन करने परभी न बचेगा॥ (४०–४२)

युधिष्ठिरकी ओरके सम्पूर्ण योद्धाओंने श्रीकृष्णके वचनोंको सुनकर अपने अन्तःकरणसे अस्त्रशस्त्र त्यागने की इच्छा किया॥ उस समय भीमसेन उन योद्धाओंको अस्त्र त्याग करते देख, सम्पूर्ण शूरवीरोंके हर्षको बढाते हुए यह वचन बोले, हे शूरवीर पुरुषो ! तुम लोग कोई भी अस्त्रशस्त्रोंको परित्याग मत करो, मैं अपने अस्त्रके प्रभावसे द्रोणपुत्रके अस्त्रको निवारण करूंगा, अथवा सुवर्णभूषित अपनी भयङ्करी गदासे अश्वत्थामाके अस्त्रोंको नष्ट करके कालके समान होकर प्रहार करूंगा॥ (४३–४६)

जैसे कोई प्रकाशमान वस्तुओंमें सूर्य के समान ज्योति नहीं है वैसे ही कोई पुरुष भी युद्धभूमिमें मेरे समान पराक्रम शाली नहीं है॥ तुम लोग हाथीके

समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य निपातने ॥ ४८ ॥
नागायुतसमप्राणो ह्यहमेको नरेष्विह ।
शक्रो यथाऽप्रतिद्वन्द्वो दिवि देवेषु विश्रुतः ॥ ४९ ॥
अद्य पश्यत मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयोर्युधि ।
ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वा रणे ॥ ५० ॥
यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते ।
अद्यैतत्प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु ॥ ५१ ॥
अर्जुनाऽर्जुन बीभत्सो न न्यस्यं गाण्डिवं त्वया ।
शशाङ्कस्येव ते पङ्को नैर्मल्यं पातयिष्यति ॥ ५२ ॥
अर्जुन उवाच— भीम नारायणास्त्रे मे गोषु च ब्राह्मणेषु च ।
एतेषु गाण्डिवं न्यस्यमेतद्धि व्रतमुत्तमम् ॥ ५३ ॥
एवमुक्तस्ततो भीमो द्रोणपुत्रमरिन्दमम् ।
अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ॥ ५४ ॥
स एनमिषुजालेन लघुत्वाच्छीघ्रविक्रमः ।

शुण्डसमान मेरी इन दोनों भुजाओंको अवलोकन करो,इन भुजाओंसे मैं हिमालय पर्वतको भी तोडके पृथ्वीमें मिला सकता हूं। जैसे देवतोंमें देवराज इन्द्र सबसे अधिक पराक्रमी है, वैसे ही मनुष्योंके बीच केवल मैं ही दश हजार हाथीके समान बलवान् हूं॥ ४७—४९

आज सब कोई अश्वत्थामाके जलते हुए अस्त्रको निवारण करनेके विषयमें मेरी दोनों भुजाका पराक्रम देखेंगे, यद्यपि इस नारायण अस्त्रके विरुद्ध कोई योद्धा भी स्थित नहीं होसकता; तौ भी मैं सम्पूर्ण कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंके सम्मुखमें ही इस अस्त्रके विरुद्ध युद्धभूमिमें स्थित होके युद्ध करूंगा। हे अर्जुन! हे बीभत्सो! इस समय तुम को गाण्डीव धनुषको त्यागना अच्छा नहीं है, क्यों कि इससे शश चिन्ह से युक्त निर्मल चन्द्रके समान तेरी कीर्ति मलिन होगी॥ (५०—५२)

भीमसेनके वचनको सुनकर अर्जुन बोले, हे भीमसेन! नारायणास्त्र, गौवें और ब्राह्मण इनके लिये गाण्डीव धनुष को त्यागना ही मेरा उत्तम व्रत है॥ (५३)

अर्जुनके वचन सुनकर भीमसेन सूर्य किरणके समान प्रकाशमान बादलके समान शब्दवाले अपने रथपर चढके शत्रुनाशन द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी ओर दौडे॥ उस समय महाबलवान् भीमसेनने

निमेषमात्रेणाऽऽसाद्य कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ॥५५॥
ततो द्रौणिः प्रहस्यैनं द्रवन्तमभिभाष्य च।
अवाकिरत्प्रदीप्ताग्रैः शरैस्तैरभिमन्त्रितैः ॥५६॥
पन्नगैरिव दीप्तास्यैर्वमद्भिर्ज्वलनं रणे।
अवकीर्णोऽभवत्पार्थः स्फुलिङ्गैरिव काञ्चनैः ॥५७॥
तस्य रूपमभूद्राजन्भीमसेनस्य संयुगे।
खद्योतैरावृतस्येव पर्वतस्य दिनक्षये ॥५८॥
तदस्त्रं द्रोणपुत्रस्य तस्मिन्प्रतिसमस्यति।
अवर्धत महाराज यथाऽग्निरनिलोद्धतः ॥५९॥
विवर्धमानमालक्ष्य तदस्त्रं भीमविक्रमम्।
पाण्डुसैन्यमृते भीमं सुमहद्भयमाविशत् ॥६०॥
ततः शस्त्राणि ते सर्वे समुत्सृज्य महीतले।
अवारोहन्रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः ॥६१॥
तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु वाहनेभ्यश्च्युतेषु।
तदस्त्रवीर्यं विपुलं भीममूर्धन्यथाऽपतत् ॥६२॥

निमेष भरके बीच हस्तलाघवके सहित अपने बाणजालसे अश्वत्थामाको छिपा दिया॥ (५४–५५)

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भीमसेनको अपनी ओर आते देख, हंसकर अग्निपुञ्जसे पूरित नारायण अस्त्रके प्रभावसे अनगिनत प्रकाशमान बाणोंको वर्षाके उन्हें छिपा दिया; उस समय भीमसेन का सम्पूर्ण शरीर सुवर्ण के समान अग्निपुञ्जसे इस प्रकार परिपूरित होगया, जैसे सन्ध्याके समय खद्योत समूहसे युक्त होकर पर्वत शोभित होता है; जब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उस अस्त्रको भीमसेनकी ओर चलाया, तब वह अस्त्र प्रचण्ड शिखासे युक्त जलती हुई अग्निकी भांति क्रमसे बढने लगा॥ (५६–५९)

महाराज! वह महाभयङ्कर नारायण अस्त्र पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण पुरुषोंको परित्याग करके केवल भीमसेनहीको लक्ष्य करके सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करने लगा। उसे देख, पाण्डवोंकी सेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग अस्त्रशस्त्र परित्याग करके हाथी, घोडे और रथोंसे नीचे उतरे, इसी प्रकार जब सम्पूर्ण योद्धा लोग अस्त्रशस्त्रोंको त्यागके वाहनोंसे नीचे उतरे, तब वह अस्त्र प्रबलवेगके सहित केवल भीमसेनके ही सिरपर गिरने लगा॥ उस समय भीमसेनको नारायण

हाहाकृतानि भूतानि पाण्डवाश्च विशेषतः।
भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तथा ॥ ६३ ॥ [९२५३]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि पाण्डवसैन्यास्त्रत्यागे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः १९९

सञ्जय उवाच— भीमसेनं समाकीर्णं दृष्ट्वाऽस्त्रेण धनञ्जयः।
तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत् ॥ १ ॥
नाऽलक्षयत तत्कश्चिद्वारुणास्त्रेण संवृतम्।
अर्जुनस्य लघुत्वाच्च संवृतत्वाच्च तेजसः ॥ २ ॥
साश्वसूतरथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्रसंवृतः।
अग्नावग्निरिव न्यस्तो ज्वालामाली सुदुर्दृशः ॥ ३ ॥
यथा रात्रिक्षये राजञ्ज्योतींष्यस्तगिरिं प्रति।
समापेतुस्तथा बाणा भीमसेनरथं प्रति ॥ ४ ॥
स हि भीमो रथश्चाऽस्य हयाः सूतश्च मारिष।
संवृता द्रोणपुत्रेण पावकान्तर्गताऽभवन् ॥ ५ ॥
यथा जग्ध्वा जगत्कृत्स्नं समये सचराचरम्।

अस्त्रसे उत्पन्न हुई प्रचण्ड अग्निमें छिपे देखकर सम्पूर्ण प्राणी विशेष करके पाण्डव लोग हाहाकार करने लगे ॥ (६०–६३) [९२५३]

द्रोणपर्वमें एकसौ निनानब्बे अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें दोसौ अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! अर्जुनने भीमसेनको नारायण अस्त्रसे छिपे हुए देखकर उस अस्त्रके तेजको किञ्चित् शान्त करनेके वास्ते उन्हें वारुणास्त्रसे छिपाया; उन्होंने जो उस अग्निपुञ्जके बीचमें वारुणास्त्रको चलाके भीमसेनको छिपाया; उसे अर्जुनके हस्तलाघव तथा विशेष करके नारायण अस्त्रके तेजसे भीमसेनके छिपे रहनेसे कोई भी उनके वारुणास्त्रको न देख सके ॥ (१–२)

इधर घोडे सारथी और रथके सहित भीमसेन द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके नारायण अस्त्रसे उत्पन्न हुए अग्निपुञ्जमें छिपकर अग्निसे युक्त ज्वालामुखी पर्वतकी भांति भयङ्कर दीख पडते थे ॥ रात्रि शेष होने पर जैसे सम्पूर्ण ज्योतिवाले पदार्थ अस्ताचल पर्वत पर गमन करते हैं, वैसेही प्रकाशमान बाणोंके समूहके समूह भीमसेनके रथ पर पडने लगे ॥ उस समय भीमसेन घोडों और सारथीके सहित द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके अस्त्रसे छिपके अग्निपुञ्जमें निवास करने लगे ॥ (३–५)

महाराज जब भीमसेन उस अस्त्रसे छिप गये तब उस समय यही मालूम

गच्छेद्वह्निर्विभोरास्यं तथाऽस्त्रं भीममावृणोत् ॥ ६ ॥
सूर्यमग्निः प्रविष्टः स्याद्यथा चाऽग्निं दिवाकरः ।
तथा प्रविष्टं तत्तेजो न प्राज्ञायत पाण्डवम् ॥ ७ ॥
विकीर्णमस्त्रं तद् दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति ।
उदीर्यमाणं द्रौणिं च निष्प्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ८ ॥
सर्वं सैन्यं च पाण्डूनां न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान्महारथान् ॥ ९ ॥
अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती ।
अवप्लुत्य रथाद्वीरौ भीममाद्रवतां ततः ॥ १० ॥
ततस्तद् द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलसम्भवम् ।
विगाह्य तौ सुबलिनौ मायया विशतां तथा ॥ ११ ॥
न्यस्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नाऽदहत्सोऽस्त्रजोऽनलः ।
वारुणास्त्रप्रयोगाच्च वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः ॥ १२ ॥
ततश्चकृषतुर्भीमं सर्वशस्त्रायुधानि च ।
नारायणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात् ॥ १३ ॥

होने लगा मानो प्रलयकालकी अग्नि सम्पूर्ण जगत्को भस्म करके भगवान् रुद्रके मुखमें प्रविष्ट हुई है, और जैसे सूर्यमण्डलमें अग्नि और अग्निमें सूर्यके प्रविष्ट होने पर शोभा होती है, वैसे ही भीमसेनके शरीरमें प्रवेश करती हुई नारायण अस्त्रसे उत्पन्न हुई अग्नि उसी भांति शोभित होने लगी । (६–७)

उस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको अद्वितीय रूपसे युद्धमें अधिक पराक्रम प्रकाशित करते, पाण्डवोंकी अस्त्रहीन सेनाको चेतरहितके समान, युधिष्ठिर आदि महारथियोंको युद्धभूमिसे भागते और भीमसेनके रथपर लगातार प्रकाशमान वाणोंकी वर्षा होते देख, महातेजस्वी कृष्ण अर्जुन रथसे कूदके वेगपूर्वक भीमसेनकी ओर गमन करने लगे । उस समय महाबलवान् उन दोनों वीरोंने माया बलसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके अस्त्र प्रभावसे उत्पन्न हुई अग्निके बीच प्रवेश किया । महाराज ! वे दोनों ही महात्मा अस्त्र शस्त्रोंसे रहित थे, और उन लोगोंमें असाधारण प्रभाव तथा पराक्रम था और इसके अतिरिक्त वारुणास्त्रका भी प्रयोग हुआ था, इस ही कारणसे उस अस्त्रसे उत्पन्न हुई अग्नि उन दोनों महात्मा पुरुषोंको भस्म न कर सकी ॥ (८-१२)

अनन्तर वे महाबलवान नर नारायण

आकृष्यमाणः कौन्तेयो नदत्येव महारवम् ।
वर्धते चैव तद्घोरं द्रौणेरस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥
तमब्रवीद्वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन ।
वार्यमाणोऽपि कौन्तेय यद्युद्धान्न निवर्तसे ॥ १५ ॥
यदि युद्धेन जेयाः स्युरिमे कौरवनन्दनाः ।
वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः ॥ १६ ॥
रथेभ्यस्त्ववतीर्णाः स्म सर्वे एव हि तावकाः ।
तस्मात्त्वमपि कौन्तेय रथात्तूर्णमपाक्रम ॥ १७ ॥
एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद्भूमिमवर्तयत ।
निश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥ १८ ॥
यदाऽपकृष्टः स रथान्न्यासितश्चाऽऽयुधं भुवि ।
ततो नारायणास्त्रं तत्प्रशान्तं शत्रुतापनम् ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच— तस्मिन्प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुःसहे ।

रूपी कृष्ण अर्जुन नारायण अस्त्रको शान्त करनेके वास्ते भीमसेनके निकटसे सब अस्त्र शस्त्रोंको बलपूर्वक फेंक कर उन्हें भी खींचकर रथसे नीचे उतारने लगे। कृष्ण अर्जुनने जब भीमसेनको बलपूर्वक ग्रहण करके रथसे नीचे उतारना चाहा तब भीमसेन भयङ्कर शब्द के सहित चिल्लाने लगे उससे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके हाथसे छुटा हुआ महाप्रचण्ड नारायण अस्त्र औरभी अधिक प्रबल वेगसे बढने लगा॥ (१३-१४)

तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे पाण्डुपुत्र भीमसेन! तुम निवारण करनेपर शान्त नहीं होते हो, यह तुम्हें इस समय कैसा मोह उत्पन्न हुआ है? इस समय यदि कौरवोंकी पराजय होसकती, तो इन सम्पूर्ण पुरुष श्रेष्ठ राजाओंके सङ्ग मिलकर हम लोग अवश्यही युद्ध करते। यह देखो हम लोग सब कोई रथसे नीचे उतरके पृथ्वी पर स्थित हुए हैं; इससे तुम भी शीघ्रही रथसे उतरो। ऐसा वचन कहके श्रीकृष्णने सर्पके समान लम्बी सांस छोडनेवाले लालनेत्रसे युक्त भीमसेनको रथसे उतारके पृथ्वीपर स्थित किया॥ (१५—१८)

महाराज! जब कृष्ण अर्जुनने बलपूर्वक भीमसेनको अस्त्रशस्त्रोंसे रहित करके उन्हें रथसे उतारके पृथ्वीपर स्थित किया; उसही समय शत्रुओंको भस्म करनेवाला नारायण अस्त्र शान्त होगया॥ संजय बोले, इसी प्रकार उपायसे उस अत्यन्त कठिन और दुर्जय नारायण

बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च ॥ २० ॥
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः ।
वाहनानि च हृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये ॥ २१ ॥
व्यपोढे च ततो घोरे तस्मिंस्तेजसि भारत ।
बभौ भीमो निशापाये धीमान्सूर्य इवोदितः ॥ २२ ॥
हतशेषं बलं तत्तु पाण्डवानामतिष्ठत ।
अस्त्रव्युपरमाद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया ॥ २३ ॥
व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा ।
दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाऽब्रवीत् ॥ २४ ॥
अश्वत्थामन्पुनः शीघ्रमस्त्रमेतत्प्रयोजय ।
अवस्थिता हि पाञ्चालाः पुनरेते जयैषिणः ॥ २५ ॥
अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष ।
सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥
नैतदावर्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते ।

अस्त्रका तेज शान्त हुआ; तब पहिलेकी भांति सुखजनक वायु बहने लगा। सम्पूर्ण दिशा निर्मल होगयीं, पशुपक्षी और शूरवीर योद्धाओंके हाथी घोडे आदि वाहन फिर पहिलेकी भांति स्थित हुए॥ विशेष करके जब उस नारायण अस्त्रकी अग्नि शान्त होगई, उस समय भीमसेन इस प्रकार शोभित हुए जैसे रात्रिके बीतनेपर भोरके समय सूर्य उदय होते हुए आकाशमें शोभित होते हैं ॥ इसी प्रकार नारायण अस्त्र निवर्तित होने पर मरनेसे बचे हुए पाण्डव और पाञ्चाल सेनाके योद्धा लोग फिर निर्लज्ज पुरुषोंकी भांति कौरवोंके सङ्ग युद्ध करने के वास्ते रणभूमिमें स्थित हुए॥ १९-२३

महाराज ! जब नारायण अस्त्रका प्रभाव शान्त होगया और पाण्डवसेनाके सम्पूर्ण योद्धा लोग कौरवोंके सङ्ग युद्ध करनेके वास्ते फिर रणभूमिके बीच स्थित हुए तब राजा दुर्योधन द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे बोले, हे अश्वत्थामन् ! यह देखो, पाञ्चाल योद्धालोग फिर युद्धकरने के निमित्त युद्धभूमिमें स्थित हुए हैं; तुम इस समय शीघ्रताके सहित फिर उस नारायण अस्त्रको चलाओ॥ (२४-२५)

अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके वचनको सुनके अत्यन्त शोकके सहित लम्बी सांस छोडते हुए उनसे यह वचन बोले, हे राजेन्द्र ! ऐसा नहीं हो सकता, अर्थात् नारायण अस्त्र दो बार नहीं

आवृत्तं हि निवर्तेत प्रयोक्तारं न संशयः ॥ २७ ॥
एष चाऽस्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान् ।
अन्यथा विहितः संख्ये वधः शत्रोर्जनाधिप ॥ २८ ॥
पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयान्मृत्युर्न निर्जयः ।
विजिताश्चाऽरयो ह्येते शस्त्रोत्सर्गान्मृतोपमाः ॥ २९ ॥
दुर्योधन उवाच—आचार्यपुत्र यद्येतद् द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते ।
अन्यैर्गुरुघ्ना वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदां वर ॥ ३० ॥
त्वयि शस्त्राणि दिव्यानि त्र्यम्बके चाऽमितौजसि ।
इच्छतो न हि ते मुच्येत्संक्रुद्धो हि पुरन्दरः ॥ ३१ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रोणे चोपधिना हते ।
तथा दुर्योधनेनोक्तो द्रौणिः किमकरोत्पुनः ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा पार्थांश्च संग्रामे युद्धाय समुपस्थितान् ।
नारायणास्त्रनिर्मुक्तांश्चरतः पृतनामुखे ॥ ३३ ॥

चलाया जा सकता; दूसरी बार प्रयोग करनेसे यह नारायण अस्त्र चलानेवाले का ही निसन्देह प्राण नाश करता है ॥ (२६–२७)

महाराज ! क्या कहूं, श्रीकृष्णने स्वयं इस अस्त्रके निवारण होनेका उपाय किया है; नहीं तो अवश्य ही सम्पूर्ण शत्रुओंका युद्धभूमिके बीच प्राण नाश हो जाता ॥ जो हो, युद्धभूमिके बीच या तो पराजय होती है, अथवा मृत्युही उत्तम है। शत्रुओंने जब पराजित होके अस्त्रशस्त्रोंको परित्याग किया है; तब उन लोगोंको मरे हुए ही समझना चाहिये ॥ (२८–२९)

दुर्योधन बोले, हे अस्त्रधारियोंमें अग्रगण्य आचार्यपुत्र अश्वत्थामन् ! यदि इस अस्त्रको दो बार चलानेका उपाय नहीं है, तो अन्यान्य अस्त्रोंसे गुरुघाती शत्रुओंका आप नाश कीजिये। अत्यन्त तेजस्वी देवोंके देव महादेव और तुममें सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र विद्यमान हैं; आप यदि इच्छा करें, तो क्रुद्ध हुए देवराज भी तुम्हारे अस्त्रोंसे मुक्त नहीं होसकते ॥ (३०–३१)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! कपटतासे द्रोणाचार्यके मारे जाने और नारायण अस्त्रके निवृत्त होने पर दुर्योधनके वचनोंको सुनके तथा नारायण अस्त्रसे मुक्त हुए पाण्डवोंको रणभूमिके बीच स्थित देखकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने किस कार्यका अनुष्ठान किया ? (३२–३३)

सञ्जय उवाच— जानन्पितुः स निधनं सिंहलांगूलकेतनः।
सक्रोधो भयमुत्सृज्य सोऽभिदुद्राव पार्षतम् ॥ ३४ ॥
अभिद्रुत्य च विंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभ।
पञ्चभिश्चाऽतिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ३५ ॥
धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्ज्वलन्तमिव पावकम्।
द्रोणपुत्रं त्रिषष्ट्या तु राजन्विव्याध पत्रिणाम् ॥३६॥
सारथिं चाऽस्य विंशत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
हयांश्च चतुरोऽविध्यच्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥
विद्ध्वा विद्ध्वा ननर्द द्रौणिं कम्पयन्निव मेदिनीम्।
आददे सर्वलोकस्य प्राणानिव महारणे ॥ ३८ ॥
पार्षतस्तु बली राजन्कृतास्त्रः कृतनिश्चयः।
द्रौणिमेवाऽभिदुद्राव मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ३९ ॥
ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि।
अवासृजदमेयात्मा पाञ्चाल्यो रथिनां वरः ॥ ४० ॥
तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं छादयामास पत्रिभिः।

सञ्जय बोले, महाराज ! सिंहलांगूल वाली ध्वजासे शोभित रथ पर चढे हुए अश्वत्थामा द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नको पिताकी मृत्युका कारण समझके अत्यन्त क्रुद्ध होकर निर्भय चित्तसे उनकी ओर दौडे, पहिले वीस क्षुद्रकास्त्रसे और फिर पांच बाणोंसे उन्होंने धृष्टद्युम्नको विद्ध किया ॥ (३४–३५)

अनन्तर पराक्रमी धृष्टद्युम्नने भी जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान अश्वत्थामाको तिरसठ बाणोंसे विद्ध किया ॥ और शिलापर घिसे हुए वीस बाणोंसे उनके सारथी और चार बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंको विद्ध किया ॥ इसी भांति धृष्टद्युम्न बार बार अश्वत्थामाको अपने तेज बाणोंसे विद्ध करके पृथ्वीको कंपाते हुए सिंहनाद करने लगे, उस समय ऐसा मालूम होता था, कि मानो धृष्टद्युम्न उस महाघोर संग्राम भूमिमें सम्पूर्ण प्राणियोंको ही नाश कर देंगे ॥ इस प्रकार कृतास्त्र धृष्टद्युम्नने भी अपने प्राणकी आशाको त्यागके द्रोणपुत्र अश्वत्थामा के समीप गमन किया ॥ (३६–३९)

तिसके अनन्तर महापराक्रमी रथियोंमें मुख्य पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न लगातार अश्वत्थामाके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ अनन्तर अश्वत्थामाने

विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४१ ॥
द्वाभ्यां च सुविसृष्टाभ्यां क्षुराभ्यां ध्वजकार्मुके ।
छित्त्वा पाञ्चालराजस्य द्रौणिरन्यैः समार्दयत् ॥ ४२ ॥
व्यश्वसूतरथं चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे ।
तस्य चाऽनुचरान्सर्वान्क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः ॥ ४३ ॥
ततः प्रदुद्रुवे सैन्यं पञ्चालानां विशाम्पते ।
सम्भ्रान्तरूपमार्तं च न परस्परमैक्षत ॥ ४४ ॥
दृष्ट्वा तु विमुखान्योधान्धृष्टद्युम्नं च पीडितम् ।
शैनेयोऽचोदयत्तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ ४५ ॥
अष्टभिर्निशितैर्बाणैरश्वत्थामानमार्दयत् ।
विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्षणः ॥ ४६ ॥
विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ४७ ॥
स साश्वं व्यधमच्चापि रथं हेमपरिष्कृतम् ।

अत्यन्त क्रुद्ध होकर अनगिनत बाणोंसे धृष्टद्युम्नको छिपा दिया; और पिताके वधको स्मरण करके दश चोखे बाणोंसे उनके शरीरमें प्रहार किया। तिसके अनन्तर दो क्षुरप्र बाणोंसे अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नका धनुष और उनके रथकी ध्वजाको काट दिया; फिर अनेक बाणोंको चलाकर उन्हें पीडित करने लगे॥ इसी भांति द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्नको घोडे, सारथी और रथसे रहित करके क्रोधपूर्वक उनके अनुयाई योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित और युद्धभूमिमें छिन्नभिन्न करके चारों ओर भ्रमण करने लगे॥ (४०-४३)

उससे पाञ्चालसेनाके सम्पूर्ण योद्धा आर्त्त और भयभीत होके व्याकुल हो गये, उस समय वे लोग किसीकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हुए॥ उस समय शिनिपौत्र सात्यकि पाञ्चालसेनाके योद्धाओंको युद्धभूमिसे भागते और धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके बाणोंसे पीडित देख, शीघ्रताके सहित अपना रथ चलाकर वहांपर उपस्थित हुए और क्रुद्ध होकर अश्वत्थामाको पहिले आठ बाणोंसे विद्ध करके फिर बीस बाणोंसे विद्ध किया॥ (४४-४६)

अनन्तर सात्यकिने अपने तेज बाणसे अश्वत्थामाके सारथीको विद्ध करके फिर चार बाणोंसे उनके चारों घोडोंको विद्ध किया॥ फिर हस्तलाघवके सहित

हृदि विव्याध समरे त्रिंशता सायकैर्भृशम् ॥ ४८ ॥
एवं स पीडितो राजन्नश्वत्थामा महाबलः ।
शरजालैः परिवृतः कर्तव्यं नाऽन्वपद्यत ॥ ४९ ॥
एवं गते गुरोः पुत्रे तव पुत्रो महारथः ।
कृपकर्णादिभिः सार्धं शरैः सात्वतमावृणोत् ॥ ५० ॥
दुर्योधनस्तु विंशत्या कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
कृतवर्माऽथ दशभिः कर्णः पञ्चाशता शरैः ॥ ५१ ॥
दुःशासनः शतेनैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः॥ ५२ ॥
ततः स सात्यकी राजन्सर्वानेव महारथान् ।
विरथान्विमुखांश्चैव क्षणेनैवाऽकरोन्नृप ॥ ५३ ॥
अश्वत्थामा तु सम्प्राप्य चेतनां भरतर्षभ ।
चिन्तयामास दुःखार्तो निःश्वसंश्च पुनः पुनः॥ ५४ ॥
अथो रथान्तरं द्रौणिः समारुह्य परन्तपः ।
सात्यकिं वारयामास किरञ्शरशतान्बहून् ॥ ५५ ॥

बाण चलाकर उनके धनुष और ध्वजा को काट दिया। तिसके अनन्तर सात्यकिने सुवर्णभूषित अश्वत्थामाके रथके घोडोंको प्राणरहित करके उनके वक्षस्थलमें तीस बाणोंसे प्रहार किया। महाबली अत्यन्त पराक्रमी अश्वत्थामा सात्यकिके बाणजालसे छिपकर अत्यन्तही पीडित होकर मूर्छित होगये॥ ४७-४९

महाराज ! गुरुपुत्र अश्वत्थामाको मूर्च्छित देख तुम्हारे पुत्र महारथी दुर्योधन, कृपाचार्य और कर्ण आदि सैकडों महारथी योद्धाओंने चारों ओरसे सात्यकिको घेर लिया ॥ दुर्योधनने बीस, कृपाचार्यने तीन,कृतवर्माने दश, कर्णने पचास, दुःशासनने एकसौ और वृषसेनने सात बाण सात्यकिकी ओर चलाये; इसी भांति वे सब कोई मिलकर चारों ओरसे अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करते हुए शीघ्रताके सहित सात्यकिको विद्ध करने लगे॥ (५०-५२)

उसे देख, सात्यकिने क्षण भरके बीच उन सम्पूर्ण महारथियोंको रथभ्रष्ट करके युद्धसे विमुख किया ॥ उस समय अश्वत्थामा सावधान होकर दुःख और क्रोधसे बार बार लम्बी सांस छोडते हुए चिन्ता करने लगे॥ अनन्तर अश्वत्थामा शीघ्रही दूसरे रथपर चढके एक एक बार सैकडों बाणोंको चलाते हुए सात्यकि

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य भारद्वाजसुतं रणे ।
विरथं विमुखं चैव पुनश्चक्रे महारथः ॥ ५६ ॥
ततस्ते पाण्डवा राजन्दृष्ट्वा सात्यकिविक्रमम् ।
शङ्खशब्दान्भृशं चक्रुः सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ ५७ ॥
एवं तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान वृषसेनस्य त्रिसाहस्रान्महारथान् ॥ ५८ ॥
अयुतं दन्तिनां सार्धं कृपस्य निजघान सः ।
पञ्चायुतानि चाऽश्वानां शकुनेर्निजघान ह ॥ ५९ ॥
ततो द्रौणिर्महाराज रथमारुह्य वीर्यवान् ।
सात्यकिं प्रति संक्रुद्धः प्रययौ तद्वधेप्सया ॥ ६० ॥
पुनस्तमागतं दृष्ट्वा शैनेयो निशितैः शरैः ।
अदारयत्क्रूरतरैः पुनः पुनररिन्दम ॥ ६१ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिङ्गैरमर्षणः ।
युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६२ ॥
शैनेयाऽभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनि ।

को निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ महारथी शिनिपौत्र सात्यकिने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको युद्धभूमिमें अपनी ओर आते देखकर उन्हें फिर रथरहित करके युद्धसे विमुख किया ॥ (५३–५६)

पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण योद्धा लोग सात्यकिके ऐसे असाधारण पराक्रमको देखकर हर्षित होके शंख बजाने लगे और सिंहनाद करने लगे॥ महाराज! सत्यपराक्रमी सात्यकिने इसी भांति अश्वत्थामाको रथरहित करके महारथी वृषसेनके अनुयायी तीन हजार रथी, कृपाचार्यकी दस हजार हाथियोंकी सेना और शकुनिकी सेनाके पचास हजार घुडसवारोंका वध किया ॥ (५७-५९)

उसे देखकर पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अत्यन्त क्रुद्ध होके सात्यकिके वधकी अभिलाषासे फिर एक रथपर चढके युद्ध करनेके वास्ते उसके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ शत्रुनाशन सात्यकि अश्वत्थामाको फिर अपनी ओर आते देख, तेज बाणोंको चलाकर बार बार उन्हें विद्ध करने लगे । (६०—६१)

महाधनुर्धारी अश्वत्थामा सात्यकिके नानाप्रकारके बाणोंसे विद्ध होकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और हंसके सात्यकिसे यह वचन बोले, हे शिनिपौत्र सात्यकि! गुरुघाती धृष्टद्युम्नके ऊपर तुम्हारा जैसा

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा)

REGISTERED NO. B. 1819

अंक ६४ [द्रोणपर्व १४]

महाभारत।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

न चैनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च ॥ ६३ ॥
शपेऽस्त्रमनाऽहं शैनेय सत्येन तपसा तथा ।
अहत्वा सर्वपाञ्चालान्यदि शान्तिमहं लभे ॥ ६४
यद्बलं पाण्डवेयानां वृष्णीनामपि यद्बलम् ।
क्रियतां सर्वमेवेह निहनिष्यामि सोमकान् ॥ ६५
एवमुक्त्वाऽर्करश्म्याभं सुतीक्ष्णं तं शरोत्तमम् ।
व्यसृजत्सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः ॥ ६६
स तं निर्भिद्य तेनाऽस्तः सायकः सशरावरम् ।
विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन्बिलमिवोरगः ॥ ६७ ॥
स भिन्नकवचः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
विमुच्य सशरं चापं भूरिव्रणपरिस्रवः ॥ ६८ ॥
सीदन्रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत् ।
सूतेनाऽपहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद्रथान्तरम् ॥ ६९ ॥
अथाऽन्येन सुपुङ्खेन शरेणाऽनतपर्वणा ।

प्रेम है, उसे मैं जानता हूं; परन्तु मैं जब उसके वधके वास्ते दृढ सङ्कल्प करूंगा, तो उसकी रक्षा करनी तो दूर रही, तुम मेरे बाणोंसे अपनी भी रक्षा न कर सकोगे । मैं तुम्हारे समीप सत्य और तपस्याके प्रभावसे यह शपथ करता हूं, कि मैं सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धाओंका नाश करके तब शान्त होऊंगा । तुम इस स्थान पर पाण्डव और सोमक वंशियोंकी जितनी सेना है, उसे इकट्ठी करके मेरे सम्मुख स्थित करो; मैं सोमक वंशी तथा पाञ्चाल योद्धाओंको अवश्यही संहार करूंगा ॥ (६२—६५)

ऐसा वचन कहके द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सूर्यकिरणके समान प्रकाशमान एक भयङ्कर बाण ग्रहण करके सात्यकिके शरीरमें इस प्रकार प्रहार किया, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके ऊपर वज्र चलाया था॥ द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके हाथसे छुटा हुआ वह भयङ्कर बाण कवचके सहित सात्यकिके शरीरको भेदकर इस प्रकार पृथ्वीमें प्रविष्ट हुआ जैसे सर्प बिलके बीच प्रवेश करते हैं॥ पराक्रमी सात्यकि कवच रहित रुधिरपूरित तथा क्षत विक्षत शरीरसे युक्त होकर धनुष बाण परित्याग करके मतवारे हाथीकी भांति मूर्च्छित होकर रथमें बैठ गये । उनके सारथीने उस ही समय उन्हें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके समीपसे पृथक् किया ॥ (६६—६९)

अनन्तर शत्रुनाशन अश्वत्थामाने

आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परन्तपः ॥ ७० ॥
स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः ।
ससादाऽथ च पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम् ॥ ७१ ॥
तं नागमिव सिंहेन दृष्ट्वा राजञ्शरार्दितम् ।
जवेनाऽभ्यद्रवञ्छूराः पञ्च पाण्डवतो रथाः ॥ ७२ ॥
किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः ।
युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः ॥ ७३ ॥
एते हाहाकृताः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः ।
वीरं द्रौणायनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ७४ ॥
ते विंशतिपदे यत्ता गुरुपुत्रममर्षणम् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरभ्यघ्नन्सर्वतः समम् ॥ ७५ ॥
आशीविषाभैर्विंशत्या पञ्चभिस्तु शितैः शरैः ।
चिच्छेद युगपद् द्रौणिः पञ्चविंशतिसायकान् ॥ ७६ ॥
सप्तभिस्तु शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिरार्दयत् ।
मालवं त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम् ॥ ७७ ॥

अच्छे पंखवाले एक नतपर्व बाणसे धृष्टद्युम्नको दोनों भौहोंके बीचमें विद्ध किया। पाञ्चालराजपुत्र पहिलेसेही अश्वत्थामाके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध हुए थे, उस समय सात्यकिके पराजित होने पर फिर अश्वत्थामाके तीक्ष्णबाणोंसे पीडित होकर मूर्छित हुए और रथ दण्ड ग्रहण करके रथमें बैठ गये ॥ महाराज ! जैसे सिंहसे हाथी भयभीत होता है वैसे ही अश्वत्थामाके बाणोंसे धृष्टद्युम्नको पीडित तथा मूर्च्छित देखकर अर्जुन, भीमसेन, पुरुवंशीय वृद्धक्षत्र चेदी देशीय युवराज और मालवराज सुदर्शन, ये पांचों महारथी धनुष ग्रहण करके हाहाकार करते हुए वेगपूर्वक अश्वत्थामाकी ओर दौडे ॥ (७०–७४)

उन वीरोंने वीस पग आगे बढके पांच पांच बाणोंको धनुष पर चढा कर एक ही बार द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी ओर चलाया ॥ अश्वत्थामाने पचीस बाणोंको चला कर उन पांचों महारथियोंके चलाये हुए बाणोंको काटके दो दो टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ तिसके अनन्तर अश्वत्थामाने सात तेज बाणोंसे महारथी वृद्धक्षत्रको, तीन बाणोंसे मालवराजको, एक बाणसे अर्जुनको और छः बाणोंसे भीमसेनको पीडित किया ॥ (७५–७७)

ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन्महारथाः ।
युगपच्च पृथक्चैव रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ७८ ॥
युवराजश्च विंशत्या द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः ।
पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ७९ ॥
ततोऽर्जुनं षड्भिरथाऽऽजघान द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम् ।
भीमं दशार्धैर्युवराजं चतुर्भिर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां मालवं पौरवं च॥ ८० ॥
सूतं विद्ध्वा भीमसेनस्य षड्भिर्द्वाभ्यां विद्ध्वा कार्मुकं च ध्वजं च ।
पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद ॥ ८१ ॥
तस्याऽस्यतस्तान्निशितान्पीतधारान्द्रौणेः शरान्पृष्ठतश्चाऽग्रतश्च ।
धरा वियद्द्यौः प्रदिशो दिशश्च च्छन्ना बाणैरभवन्घोररूपैः॥८२ ॥
आसन्नस्य स्वरथं तीव्रतेजाः सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ ।
भुजौ शिरश्चेन्द्रसमानवीर्यस्त्रिभिः शरैर्युगपत्सञ्चकर्त ॥ ८३ ॥
स पौरवं रथशक्त्या निहत्य च्छित्त्वा रथं तिलशश्चाऽस्य बाणैः ।

अनन्तर पाण्डवोंकी ओरके ये पांचों महारथी योद्धा लोग कभी एक ही बार और कभी पृथक् रूपसे शिलापर घिसे हुए अपने तेज बाणोंको धनुष पर चढा-कर अश्वत्थामाकी ओर चलाने लगे ॥ फिर चेदिदेशीय युवराजने बीस, अर्जुनने आठ और अन्य महारथियोंने तीन तीन बाणोंसे अश्वत्थामाके शरीरमें प्रहार किया ॥ (७८-७९)

तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अर्जुनको छः, श्रीकृष्ण और भीमसेनको दश दश बाणोंसे विद्ध करके चेदीदेशीय युवराज को चार और मालवराज तथा पौरव-राजको दो दो बाणोंसे पीडित किया ॥ तिसके अनन्तर पराक्रमी अश्वत्थामाने छः बाणोंसे भीमसेनके सारथी और असंख्य बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया, फिर दो बाणोंसे भीमसेनका धनुष और उनके रथकी ध्वजाको काटके सिंहनाद करने लगे ॥ महाराज ! जब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा इसी भांति लगातार अपने तेज बाणोंकी वर्षा करने लगे, उस समय उनके आगे पीछे सम्पूर्ण दिशा, तथा पृथ्वी, आकाश, नक्षत्रमण्डल आदि सम्पूर्ण स्थानोंमें केवल बाणही बाण दीख पडते थे ॥ (८०-८२)

तिसके अनन्तर महापराक्रमी अत्यन्त तेजस्वी अश्वत्थामाने रथके समीप सुद-र्शनको स्थित देखकर इन्द्रध्वजाकी भांति उनकी दोनों भुजा और सिरको क्षुरा-स्त्रसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ फिर अश्वत्थामाने पौरव वृद्धक्षत्रकी

छित्वा च बाहू वरचन्दनाक्तौ भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त ॥ ८४ ॥
युवानमिन्दीवरदामवर्णं चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य ।
बाणैस्त्वरावान्प्रज्वलिताग्निकल्पैर्विद्ध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम्॥८५ ॥
मालवं पौरवं चैव युवराजं च चेदिपम् ।
दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोणपुत्रेण पाण्डवः ॥ ८६ ॥
भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाहारयत्परम् ।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धाशीविषोपमैः ॥ ८७ ॥
छादयामास समरे द्रोणपुत्रं परन्तपः ।
ततो द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं निहत्य तम् ॥ ८८ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्भीमसेनममर्षणः ।
ततो भीमो महाबाहुर्द्रौणेर्युधि महाबलः ॥ ८९ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणपुत्रो महामनाः ॥ ९० ॥
अन्यत्कार्मुकमादाय भीमं विव्याध पत्रिभिः ।

और एक शक्ति चलाकर अपने तेज बाणोंसे उनके रथको तिल तिलके परिमाणसे काट डाला और भल्लास्त्रसे उनकी चन्दनचर्चित भुजा और सिरको काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ तिसके अनन्तर युवा चेदिराजको आक्रमण करके जलती हुई अग्निके समान प्रकाशमान बाणोंसे विद्ध कर घोडे और सारथीके सहित प्राणनाश करके उन्हें यमपुरीमें भेज दिया ॥ (८३-८५)

पाण्डुपुत्र महाबाहु भीमसेन अपने सम्मुखमें ही मालव, पौरव और चेदीराजको अश्वत्थामाके बाणोंसे मरते देख, अत्यन्त क्रुद्ध हुए । अनन्तर शत्रुनाशन भीमसेनने क्रुद्ध सर्पके समान भयङ्कर तीक्ष्णधारवाले सैकडों बाण द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी ओर चलाकर उन्हें छिपा दिया । (८६—८८)

उसे देखकर महापराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर भीमसेनके चलाये हुए सम्पूर्ण बाणोंको निष्फल करके अपने तीक्ष्ण-बाणोंसे उन्हें विद्ध किया । तब महाबली भीमसेनने क्षुरप्र अस्त्रसे अश्वत्थामाके धनुषको काटके अपने तेज बाणोंसे उन्हें भी विद्ध किया । तब महाबलवान् महात्मा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा कटे हुए धनुषको परित्याग कर दूसरा धनुष ग्रहण करके भीमसेनको असंख्य बाणोंसे विद्ध करने लगे । (८८-९१)

तौ द्रौणिभीमौ समरे पराक्रान्तौ महाबलौ ॥ ९१ ॥
अवर्षतां शरवर्षं वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ।
भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥९२॥
द्रौणिं सञ्छादयामासुर्घनौघा इव भास्करम् ।
तथैव द्रौणिनिर्मुक्तैर्भीमः सन्नतपर्वभिः ॥ ९३ ॥
अवाकीर्यत स क्षिप्रं शरैः शतसहस्रशः ।
स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना रणशालिना ॥ ९४ ॥
न विव्यथे महाराज तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
ततो भीमो महाबाहुः कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ९५ ॥
नाराचान्दश सम्प्रैषीद्यमदण्डनिभाञ्छितान् ।
ते जत्रुदेशमासाद्य द्रोणपुत्रस्य मारिष ॥ ९६ ॥
निर्भिद्य विविशुस्तूर्णं वल्मीकमिव पन्नगाः ।
सोऽतिविद्धो भृशं द्रौणिः पाण्डवेन महात्मना॥ ९७॥
ध्वजयष्टिं समासाद्य न्यमीलयत लोचने ।
स मुहूर्तात्पुनः संज्ञां लब्ध्वा द्रौणिर्नराधिप ॥ ९८ ॥

इसी भांति महाबली पराक्रमी अश्वत्थामा और भीमसेन युद्धभूमिके बीच जलकी वर्षा करनेवाले दो बादलोंकी भांति लगातार अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे । इसही समय भीमनामसे अङ्कित शिलापर घिसे हुए स्वर्णदण्डवाले अनगिनत बाणोंसे अश्वत्थामाको इस प्रकार छिपा दिया, जैसे बादलोंके समूह सूर्यको छिपा देते हैं । उसी भांति अश्वत्थामाके धनुषसे छूटे हुए सैकडों सहस्रों बाणजालमें मुहूर्त भरके बीच भीमसेन भी छिप गये । (९१–९४)

महाराज ! भीमसेन युद्ध विद्या तथा अस्त्र शस्त्रोंके प्रयोगमें निपुण अश्वत्थामाके तीक्ष्ण–बाणजालमें छिप कर भी दुःखित नहीं हुए, वह भीमसेनका साहस अद्भुतरूपसे दीख पडा । अनन्तर भीमसेनने यमदण्डके समान भयङ्कर सुवर्णभूषित तेजधारवाले दश बाण अश्वत्थामाकी ओर चलाये, वे दशों बाण द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके शरीरको भेद कर इस प्रकार पृथ्वीमें घुस गये जैसे सर्प बिलके भीतर प्रवेश करते हैं ।९४-९७

महाराज ! अश्वत्थामा पाण्डुपुत्र भीमसेनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध हुए और मूर्च्छित होकर ध्वजाका दण्ड ग्रहण करके रथमें बैठ गये । परन्तु मुहूर्त भरके बीच सावधान होकर रुधिर पूरित

क्रोधं परममातस्थौ समरे रुधिरोक्षितः ।
दृढं सोऽभिहतस्तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ९९ ॥
वेगं चक्रे महाबाहुर्भीमसेनरथं प्रति ।
तत आकर्णपूर्णानां शराणां तिग्मतेजसाम् ॥ १०० ॥
शतमाशीविषाभानां प्रेषयामास भारत ।
भीमोऽपि समरश्लाघी तस्य वीर्यमचिन्तयत् ॥१०१॥
तूर्णं प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
ततो द्रौणिर्महाराज च्छित्त्वाऽस्य विशिखैर्धनुः ॥१०२॥
आजघानोरसि क्रुद्धः पाण्डवं निशितैः शरैः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो ह्यमर्षणः ॥ १०३ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्द्रौणिं पञ्चभिराहवे ।
जीमूताविव घर्मान्ते तौ शरौघप्रवर्षिणौ ॥ १०४ ॥
अन्योन्यक्रोधताम्राक्षौ छादयामासतुर्युधि ।
तलशब्दैस्ततो घोरैस्त्रासयन्तौ परस्परम् ॥ १०५ ॥
अयुध्येतां सुसंरब्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

शरीरसे युक्त और महात्मा भीमसेनके द्वारा बहुत विद्ध होनेके कारण अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेगपूर्वक भीमसेनके रथकी ओर गमन करने लगे । (९७—१००)

अनन्तर विषधर सर्पके समान भयङ्कर तीक्ष्ण धारवाले एक सौ बाणोंको धनुषपर चढाके अश्वत्थामाने भीमसेन की ओर चलाये । युद्धमें प्रशंसित भीमसेन उनके चलाये हुए बाणोंकी कुछ भी चिन्ता न करके अपने तेजस्वी बाणोंको अश्वत्थामाकी ओर चलाने लगे। उसे देख अश्वत्थामा अत्यन्तही क्रुद्ध हुए और अपने बाणसे भीमसेनके धनुषको काटके फिर तीक्ष्ण बाणोंसे उनके वक्षस्थलमें प्रहार किया । तब भीमसेनने क्रुद्ध होकर कटा धनुष त्यागके एक दृढ धनुष ग्रहण करके पांच तीक्ष्ण बाणोंसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको विद्ध किया । (१००—१०३)

इसी भांति वे दोनों वीर क्रोधसे लाल नेत्र करके जलकी वर्षा करनेवाले दो बादलोंकी भांति अपने बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेको छिपाने लगे और क्रोधपूर्वक एक दूसरेके अस्त्रोंके प्रतिकारकी अभिलाषासे महाघोर तलत्राण और धनुषटङ्कार शब्दसे एक दूसरेको भयभीत करते हुए भयङ्कर युद्ध करने लगे ॥ (१०३—१०६)

ततो विस्फार्य सुमहच्चापं रुक्मविभूषितम् ॥ १०६ ॥
भीमं प्रैक्षत स द्रौणिः शरानस्यन्नमन्तिकात् ।
शरव्यूहमध्यगतो दीप्तार्चिरिव भास्करः ॥ १०७ ॥
आददानस्य विशिखान्सन्दधानस्य चाऽऽशुगान् ।
विकर्षतो मुञ्चतश्च नाऽन्तरं ददृशुर्जनाः ॥ १०८ ॥
अलातचक्रप्रतिमं तस्य मण्डलमायुधम् ।
द्रौणेरासीन्महाराज बाणान्विसृजतस्तदा ॥ १०९ ॥
धनुश्च्युताः शरास्तस्य शतशोऽथ सहस्रशः ।
आकाशे प्रत्यदृश्यन्त शलभानामिवाऽऽयती॥ ११०॥
ते तु द्रौणिविनिर्मुक्ताः शरा हेमविभूषिताः ।
अजस्रमन्वकीर्यन्त घोरा भीमरथं प्रति ॥ १११ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
बलं वीर्यं प्रभावं च व्यवसायं च भारत ॥ ११२ ॥
तां स मेघादिवोद्भूतां बाणवृष्टिं समन्ततः ।
जलवृष्टिं महाघोरां तपान्त इव चिन्तयन् ॥ ११३ ॥
द्रोणपुत्रवधप्रेप्सुर्भीमो भीमपराक्रमः ।

अनन्तर अश्वत्थामा भीमसेनको बाण चलाते देख, शरद्कालके दोपहरके सूर्यके समान प्रकाशित होके सुवर्णभूषित अपने प्रचण्ड धनुषको फेरते हुए क्रोधपूर्वक भीमसेनकी ओर देखने लगे ॥ तिसके अनन्तर अश्वत्थामा जब बाण ग्रहण करने, साधने और भीमसेनकी ओर चलाने लगे, तो उस समय कोई पुरुष उन्हें तनिक भी अवकाश लेते हुए न देख सके ॥ (१०६—१०८)

उस समय बाण वर्षा करनेवाले द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका धनुष कुम्हारके चाकके समान मण्डलाकार गतिसे फिरता हुआ चारों ओर दिखाई देने लगा; उनके धनुषसे छूटे हुए सैकडों सहस्रों बाण आकाशमण्डलमें शलभसमूहकी भांति जलते हुए दिखाई देने लगे ॥ महाराज ! वे सुवर्णभूषित सम्पूर्ण बाण लगातार भीमसेनके रथके ऊपर वेगपूर्वक पडने लगे ॥ (१०९-१११)

परन्तु उस स्थलमें मैंने भीमसेनके भी बल पराक्रम वीरताका प्रभाव और असाधारण कार्यको अवलोकन किया ॥ वह चारों ओरसे अश्वत्थामाके बाणोंको अपने ऊपर गिरते देख, उसे जल वर्षाके समान ही समझने लगे; परन्तु महा-

अमुञ्चच्छरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकः ॥ ११४ ॥
तद्रुक्मपृष्ठं भीमस्य धनुर्घोरं महारणे ।
विकृष्यमाणं विबभौ शक्रचापमिवाऽपरम् ॥ ११५ ॥
तस्माच्छराः प्रादुरासञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।
सञ्छादयन्तः समरे द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ११६ ॥
तयोर्विसृजतोरेवं शरजालानि मारिष ।
वायुरप्यन्तरा राजन्नाऽशक्नोत्प्रतिसर्पितुम् ॥ ११७ ॥
तथा द्रौणिर्महाराज शरान्हेमविभूषितान् ।
तैलधौतान्प्रसन्नाग्रान्प्राहिणोद्वधकांक्षया ॥ ११८ ॥
तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ।
विशेषयन्द्रोणसुतं तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ११९ ॥
पुनश्च शरवर्षाणि घोराण्युग्राणि पाण्डवः ।
व्यसृजद्बलवान्क्रुद्धो द्रोणपुत्रवधेप्सया ॥ १२० ॥
ततोऽस्त्रमायया तूर्णं शरवृष्टिं निवार्य ताम् ।
धनुश्चिच्छेद भीमस्य द्रोणपुत्रो महास्त्रवित् ॥ १२१ ॥

पराक्रमी भीमसेन भी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके वधकी इच्छा करके वर्षाकालके बादलकी भांति लगातार उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ (११२-११४)

महाराज ! उस समय उनका सुवर्णभूषित प्रचण्ड धनुष बार बार आकर्षण करनेसे इन्द्रधनुषकी भांति शोभित होता था । भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए सैकडों सहस्रों बाणोंसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा छिप गये ॥ उस समय वे दोनों पराक्रमी वीर इस प्रकार अपने बाणोंको चलाने लगे, कि वायु भी उस स्थानमें इधर उधर चलनेमें समर्थ नहीं हुआ ॥ (११५—११७)

अनन्तर अश्वत्थामा भीमसेनके वधकी इच्छा करके उत्तम पानी चढेहुए तीक्ष्ण बाणोंको उनकी ओर चलाने लगे ॥ पाण्डुपुत्र बलवान् भीमसेनने अश्वत्थामासे विशेष हस्तलाघव प्रकाशित करते हुए, उनके बाणोंको आकाशमार्गमेंही अपने बाणोंके प्रभावसे तीन तीन टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ और क्रोधपूर्वक अश्वत्थामाको खडा रह ! खडा रह ! कहके उनके वधकी अभिलाषासे अपने महाभयङ्कर बाणोंको उनकी ओर चलाने लगे ॥ (११८—१२०)

तब महाअस्त्रअस्त्रोंकी विद्या जानने वाले द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अस्त्रमाया

शरैश्चैनं सुबहुभिः क्रुद्धः संख्ये पराभिनत् ।
स च्छिन्नधन्वा बलवान्रथशक्तिं सुदारुणाम् ॥१२२॥
वेगेनाऽऽविध्य चिक्षेप द्रोणपुत्ररथं प्रति ।
तामापतन्तीं सहसा महोल्काभां शितैः शरैः ॥१२३॥
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
एतस्मिन्नन्तरे भीमो दृढमादाय कार्मुकम् ॥ १२४ ॥
द्रौणिं विव्याध विशिखैः स्मयमानो वृकोदरः ।
ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिम् ॥ १२५ ॥
ललाटे दारयामास शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
सोऽतिविद्धो बलवता द्रोणपुत्रेण सारथिः ॥ १२६ ॥
व्यामोहमगमद्राजन्रश्मीनुत्सृज्य वाजिनः ।
ततोऽश्वाः प्राद्रवंस्तूर्णं मोहिते रथसारथौ ॥ १२७ ॥
भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।
तं दृष्ट्वा प्रद्रुतैरश्वैरपकृष्टं रणाजिरात् ॥ १२८ ॥
दध्मौ प्रमुदितः शङ्खं बृहन्तमपराजितः ।

के प्रभावसे भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए सम्पूर्ण बाणोंको शीघ्रताके सहित निवारण करके उनके धनुषको काट दिया और क्रोधपूर्वक उन्हें भी अनगिनत बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ बलवान् भीमसेनने धनुषरहित होकर एक महाभयङ्कर शक्ति उठाकर वेगपूर्वक अश्वत्थामाके रथकी ओर चलायी। महालुककी भांति उस शक्तिको अपनी ओर आती देख, द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने हस्तलाघवके सहित उसे दश बाणोंसे काटके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (१२१–१२४)

इतनेही अवसरमें भीमसेन दूसरा धनुष ग्रहण करके हंसते हंसते द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको विद्ध करने लगे। उसे देखकर अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर एक नतपर्व बाणसे भीमसेनके सारथीके मस्तकमें प्रहार किया। भीमसेनका सारथी बलवान् अश्वत्थामाके बाणसे अत्यन्त विद्ध होकर मूर्छित हुआ उसके हाथसे घोडोंकी रास छूट गयी। महाराज! जब भीमसेनका सारथी मूर्च्छित होगया, तब उनके रथके घोडे सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंके सम्मुखमें ही अश्वत्थामाके सम्मुखसे भागके भीमसेनके रथको खींचते हुए वेगपूर्वक रणभूमिमें दूसरी ओर दौडने लगे। (१२४–१२८)

शत्रुओंसे अजेय अश्वत्थामा भीमसने

ततः सर्वे च पञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ १२९ ॥
धृष्टद्युम्नरथं त्यक्त्वा भीताः सम्प्राद्रवन्दिशः ।
तान्प्रभग्नांस्ततो द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ्शरान् ॥१३०॥
अभ्यवर्तत वेगेन कालयन्पाण्डुवाहिनीम् ।
ते वध्यमानाः समरे द्रोणपुत्रेण पार्थिवाः ॥
द्रोणपुत्रभयाद्राजन्दिशः सर्वाश्च भेजिरे ॥ १३१ ॥ [९३८४]

इति श्रीमहाभारते० द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामपराक्रमे द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

सञ्जय उवाच— तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रजयेप्सया ॥ १ ॥
ततस्ते सैनिका राजन्नैव तत्राऽवतस्थिरे ।
संस्थाप्यमाना यत्नेन गोविन्देनाऽर्जुनेन च ॥ २ ॥
एक एव च बीभत्सुः सोमकावयवैः सह ।
मत्स्यैरन्यैश्च सन्धाय कौरवान्संन्यवर्तत ॥ ३ ॥
ततो द्रुतमतिक्रम्य सिंहलाङ्गूलकेतनम् ।

को युद्धभूमिसे पृथक् होते देख, हर्षपूर्वक अपने शङ्खको बजाने लगे। इसी प्रकार जब भीमसेन युद्धसे विमुख हुए, तब सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धा लोग धृष्टद्युम्न के सहित रणभूमि छोडके वेगपूर्वक चारों ओर भागने लगे। उस समय पराक्रमी अश्वत्थामा उस भागती हुई पाञ्चाल सेनाके योद्धाओंके ऊपर सहस्रों बाणोंको वर्षाते हुए उन्हें आक्रमण करके उनके पीछे पीछे दौडे। महाराज! उस समय वे सम्पूर्ण क्षत्रीय योद्धालोग द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे पीडित तथा विकल और भयभीत होके चारों ओर भागने लगे ॥ (१२८-१३१) [९३८४]

द्रोणपर्वमें दोसौ अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें दोसौ एक अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! महापराक्रमी महात्मा कुन्तीपुत्र अर्जुन अपनी ओरके सम्पूर्ण योद्धाओंको भागते देख; द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको जीतनेकी इच्छा करके अपनी सेनाके योद्धाओंको भागनेसे निवृत्त करने लगे ॥ परन्तु पाञ्चाल तथा पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा लोग किसी प्रकारसे भी युद्धभूमिमें खडे न होसके। अनन्तर कृष्ण और अर्जुनने अत्यन्त यत्नके सहित उन शूरवीर योद्धाओंको फिर लौटा कर युद्धभूमिमें स्थित किया। उस समय अर्जुन अकेलेही सोम और मत्स्यसेनाके योद्धाओंको सङ्ग लेकर कौरवोंसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए॥ (१-३)

सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ४ ॥
या शक्तिर्यच्च विज्ञानं यद्वीर्यं यच्च पौरुषम् ।
धार्तराष्ट्रेषु या प्रीतिर्द्वेषोऽस्मासु च यच्च ते ॥ ५ ॥
यच्च भूयोऽस्ति तेजस्ते तत्सर्वं मयि दर्शय ।
स एव द्रोणहन्ता ते दर्पं छेत्स्यति पार्षतः ॥ ६ ॥
कालानलसमप्रख्यं द्विषतामन्तकोपमम् ।
समासादय पाञ्चाल्यं मां चापि सहकेशवम् ।
दर्पं नाशयितास्म्यद्य तवोद्वृत्तस्य संयुगे ॥ ७ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- आचार्यपुत्रो मानार्हो बलवांश्चापि सञ्जय ।
प्रीतिर्धनञ्जये चास्य प्रियश्चापि महात्मनः ॥ ८ ॥
न भूतपूर्वं बीभत्सोर्वाक्यं परुषमीदृशम् ।
अथ कस्मात्स कौन्तेयः सखायं रूक्षमुक्तवान् ॥ ९ ॥
सञ्जय उवाच- युवराजे हते चैव वृद्धक्षत्रे च पौरवे ।

अनन्तर सव्यसाची अर्जुन सिंह-लांगूलवाली ध्वजासे शोभित रथपर चढे हुए महाधनुर्धारी अश्वत्थामाको शीघ्रताके सहित आक्रमण करके उनसे यह वचन बोले, हे अश्वत्थामन्! तुम्हारी धृतराष्ट्रपुत्रोंके ऊपर जैसी प्रीति और हम लोगोंके ऊपर तुम्हारा जैसा द्वेषभाव तथा तुम्हारा जहांतक अस्त्रविज्ञान, शक्ति वा पुरुषार्थ है, अधिक क्या कहूं तुम्हारा जो कुछ प्रभाव है, वह सब तुम आज मुझे दिखाओ ॥ (४-६)

यह द्रोणाचार्यका वध करनेवाला धृष्टद्युम्नही तुम्हारे अभिमानको दूर कर देगा। शत्रुओंके नाश करनेवाले युद्धमें कालाग्निके समान धृष्टद्युम्न और कृष्णके सहित मेरे सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त होजाओ ॥ तुम सबको तुच्छ समझ रहे हो, आज मैं युद्धभूमिमें तुम्हारे अभिमानको दूर कर दूंगा ॥ (६-७)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! द्रोणपुत्र बलवान् अश्वत्थामा सम्पूर्ण क्षत्रीय पुरुषोंमें पूजनीय हैं, विशेष करके अर्जुनके ऊपर उनकी अधिक प्रीति है, और वह भी महात्मा अर्जुन को प्रिय हैं, ऐसी अवस्थामें कुन्तीपुत्र अर्जुनने अपने मित्र तथा सखा अश्वत्थामाको ऐसे कडवे वचन क्यों सुनाये? इसके पहिले तो अर्जुनने कभी भी अश्वत्थामाके विषयमें ऐसे कडवे वचनोंका प्रयोग नहीं किया था ॥ (८-९)

सञ्जय बोले, महाराज! चेदी देशीय युवराज पुरुवंशीय वृद्धक्षत्र और अस्त्र

इष्वस्त्रविधिसम्पन्ने मालवे च सुदर्शने ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्ने सात्यकौ च भीमे चापि पराजिते।
युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्यैर्मर्मण्यपि च घट्टिते ॥ ११ ॥
अन्तर्भेदे च सञ्जाते दुःखं संस्मृत्य च प्रभो।
अभूतपूर्वो बीभत्सोर्दुःखान्मन्युरजायत ॥ १२ ॥
तस्मादनर्हमश्लीलमप्रियं द्रौणिमुक्तवान्।
मान्यमाचार्यतनयं रूक्षं कापुरुषं यथा। ॥ १३ ॥
एवमुक्तः श्वसन्क्रोधान्महेष्वासतमो नृप।
पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मभिदा गिरा ॥ १४ ॥
द्रौणिश्चुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशेषतः।
स तु यत्तो रथे स्थित्वा वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥
देवैरपि सुदुर्धर्षमस्त्रमाग्नेयमाददे।
दृश्यादृश्यानरिगणानुद्दिश्याऽऽचार्यनन्दनः ॥ १६ ॥
सोऽभिमन्त्र्य शरं दीप्तं विधूममिव पावकम्।
सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा ॥ १७ ॥
ततस्तुमुलमाकाशे शरवर्षमजायत।

शस्त्रोंकी विद्यामें निपुण मालवराज सुदर्शनके मारे जाने, धृष्टद्युम्न सात्यकि तथा भीमसेनके पराजित होनेसे और राजा युधिष्ठिरके आक्षेप युक्त वचनोंको सुनकर अर्जुनका चित्त विचलित हुआ था। विशेष करके अपनी सेनाके बीच अन्तर्भेदको स्मरण करके उस समय पराक्रमी अर्जुन दुःख और क्रोधके वशवर्ती हुए॥ इस ही कारण उन्होंने कादर पुरुषकी भांति आचार्यपुत्र अश्वत्थामाके विषय में इस प्रकारके मानहानि करनेवाले अप्रिय और अश्लील वचनोंका प्रयोग किया ॥ (१०-१३)

महाराज! उनके क्रोधपूरित मर्मभेदी वचनोंको सुनकर धनुर्धारियोंमें अग्रणी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अर्जुन और कृष्णके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हुए॥ तिसके अनन्तर शत्रुओंको नाश करनेवाले महावीर पराक्रमी अश्वत्थामाने युद्धभूमिमें स्थित होकर जलस्पर्श करके दृश्य और अदृश्य शत्रुओंके वधके उद्देश्यसे देवताओंसे भी असह्य आग्नेयास्त्रको ग्रहण किया, और धूएंसे रहित अग्निकी भांति प्रकाशमान उस अस्त्रको अभिमन्त्रित करके क्रोधपूर्वक कृष्ण अर्जुन तथा उन के अनुयाई योद्धाओं की ओर

पावकार्चिः परीतं तत्पार्थमेवाऽभिपुप्लुवे ॥ १८ ॥
उल्काश्च गगनात्पेतुर्दिशश्च न चकाशिरे ।
तमश्च सहसा रौद्रं चमूमवततार ताम् ॥ १९ ॥
रक्षांसि च पिशाचाश्च विनेदुरतिसङ्गताः ।
ववुश्चाऽशिशिरा वाताः सूर्यो नैव तताप च ॥ २० ॥
वायसाश्चापि चाऽऽक्रन्दन्दिक्षु सर्वासु भैरवम् ।
रुधिरं चापि वर्षन्तो विनेदुस्तोयदा दिवि ॥ २१ ॥
पक्षिणः पशवो गावो विनेदुश्चापि सुव्रताः ।
परमं प्रयतात्मानो न शान्तिमुपलेभिरे ॥ २२ ॥
भ्रान्तसर्वमहाभूतमावर्तितदिवाकरम् ।
त्रैलोक्यमभिसन्तप्तं ज्वराविष्टमिवाऽभवत् ॥ २३ ॥
अस्त्रतेजोभिसन्तप्ता नागा भूमिशयास्तथा ।
निःश्वसन्तः समुत्पेतुस्तेजो घोरं मुमुक्षवः ॥ २४ ॥
जलजानि च सत्वानि दह्यमानानि भारत ।

चलाया ॥ (१४–१७)

अनन्तर आकाशमण्डलसे अग्नि प्रबल वेगसे प्रकट हुई और उससे असंख्य बाण प्रकट होकर अर्जुनके ऊपर पडने लगे ॥ उस समय रथके सहित कृष्ण अर्जुन अश्वत्थामाके बाणजालसे इकबारगी छिप गये॥ उस ही समय आकाशमण्डलसे उल्कापात होने लगा, और व्यूहबद्ध सेनाके बीच महाघोर अन्धकार प्रकट हुआ; उससे सम्पूर्ण दिशा छिप गयीं ॥ राक्षस, पिशाच इकठ्ठे होकर भयानक शब्द करने लगे, वायु अत्यन्त ही प्रबल वेगसे बहने लगी, सूर्यका प्रकाश मन्द हुआ, कौवें गिद्ध कर्कश बोली बोलने लगे ॥ आकाशसे बादलोंके समूह गर्जते हुए रुधिरकी वर्षा करने लगे ॥ (१८–२१)

उस समय पशु, पक्षी तथा स्थिर चित्तवाले मुनि भी शान्त न रह सके, सहस्र किरण धारण करनेवाले भगवान् सूर्य तेजरहित हुए और उस समय सम्पूर्ण प्राणी व्याकुल होगये; इसी प्रकार तीनों लोकमें हाहाकार मच गया और सम्पूर्ण पुरुष भयभीत होगये ! उस समय युद्ध भूमिके बीच हाथियोंके समूह आग्नेयास्त्रके तेजसे विकल होकर बार बार चिंग्घाडते और लम्बी सांस छोडते हुए प्राण रहित होकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ (२२–२४)

अधिक क्या कहा जावे, उस समय

न शान्तिमुपजग्मुर्हि तप्यमानैर्जलाशयैः ॥ २५ ॥
दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यः खाद्भूमेः सर्वतः शरवृष्टयः ।
उच्चावचा निपेतुर्वै गरुडानिलरंहसः ॥ २६ ॥
तैः शरैर्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगैः समाहताः ।
प्रदग्धा रिपवः पेतुरग्निदग्धा इव द्रुमाः ॥ २७ ॥
दह्यमाना महानागाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
नदन्तो भैरवान्नादाञ्जलदोपमनिःस्वनान् ॥ २८ ॥
अपरे प्रद्रुता नागा भयत्रस्ता विशाम्पते ।
त्रेसुर्दिशो यथापूर्वं वने दावाग्निसंवृताः ॥ २९ ॥
द्रुमाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष ।
अश्ववृन्दान्यदृश्यन्त रथवृन्दानि भारत ॥ ३० ॥
अपतन्त रथौघाश्च तत्र तत्र सहस्रशः ।
तत्सैन्यं भयसंविग्नं ददाह युधि भारत ॥ ३१ ॥
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवाऽनलः ।

आग्नेयास्त्रके प्रभावसे जलमें वास करनेवाले जीवजन्तु भी भस्म होने लगे, जलचारी जीव भी अग्निकी ज्वालासे ऐसे विकल होगये, कि उन्हें किसी प्रकार भी शान्ति प्राप्त न होसकी ॥ उसही समय सम्पूर्ण दिशा तथा आकाशसे गरुड और सर्पके समान वेगगामी असंख्य बाणोंकी वर्षा होने लगी ॥ शत्रुसेनाके शूरवीर योद्धा द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके वज्रसमान तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित तथा प्राण रहित होके इस प्रकार पृथ्वीमें गिरने लगे, जैसे अग्निके वेगसे वनके वृक्ष भस्म होके गिर पडते हैं ॥ (२५—२७)

बडे बडे मतवारे बहुतेरे हाथी अग्नि तेजसे विकल होके पर्वत टूटनेकी भांति भयङ्कर शब्द करते हुए मरके पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ कितनेही हाथी जैसे वनमें दावाग्नि लगनेसे पहिले चारों ओर भयभीत होके भ्रमण करते थे, वैसे ही इस समय आग्नेयास्त्रकी अग्निसे भयभीत होकर युद्धभूमिमें इधर उधर चारों ओर वेगपूर्वक भयभीत होके भागने लगे ॥ जैसे वनके बीच दावाग्नि प्रकट होनेसे वृक्षोंकी डाल शाखा तथा चोटी भस्म होनेसे ठूठे वृक्ष दीख पडते हैं, वैसे ही घोडोंसे युक्त ध्वजा पताकासे हीन होकर रथोंके समूह भी ठूठे वृक्षकी भांति दिखाई देने लगे ॥ (२८-३१)

महाराज ! इसी प्रकार उस आग्ने-

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां दह्यमानां महाहवे ॥ ३२ ॥
प्रहृष्टास्तावका राजन्सिंहनादान्विनेदिरे ।
ततस्तूर्यसहस्राणि नानालिङ्गानि भारत ॥ ३३ ॥
तूर्णमाजघ्निरे हृष्टास्तावका जितकाशिनः ।
कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन्सव्यसाची च पाण्डवः॥३४॥
तमसा संवृते लोके नाऽदृश्यन्त महाहवे ।
नैव नस्तादृशं राजन्दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥३५ ॥
यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा ।
अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत ॥ ३६ ॥
सर्वास्त्रप्रतिघातार्थं विहितं पद्मयोनिना ।
ततो मुहूर्तादिव तत्तमो व्युपशशाम ह ॥ ३७ ॥
प्रववौ चाऽनिलः शीतो दिशश्च विमला बभुः ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं हताम् ॥३८ ॥
अनभिज्ञेयरूपां च प्रदग्धामस्त्रतेजसा ।

यास्त्रकी अग्नि सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म करनेवाली प्रलयाग्निकी भांति भयभीत हुए पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंको भस्म करने लगी। कौरव लोग पाण्डवोंकी सेनाको भस्म होती देख हर्षित और आनन्दित होके सिंहनाद करने लगे; और अपनी विजयका लक्षण देख प्रसन्न चित्तसे सहस्रों ढोल भेरी शंख और नगाडे आदि युद्धके जुझारू बाजे बजाने लगे॥ (३१—३४)

महाराज! जब सम्पूर्ण रणभूमि अन्धकार से परिपूरित होगई, उस समय पूरी एक अक्षौहिणी सेनाके सहित अर्जुन तनिक भी दीख न पडे। जब क्रुद्ध होकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने आग्नेयास्त्र प्रकट किया, उस समय जैसी घटना हुई हमलोगोंने इसके पहिले, ऐसा कभी न देखा और न सुना ही था॥ (३४–३६)

अनन्तर अर्जुनने समस्त अस्त्रोंके निवारण करनेमें समर्थ प्रजापति ब्रह्माके दिये हुए ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया उससे क्षण भरके बीच अन्धकार दूर होगया शीतल वायु बहने लगा और सम्पूर्ण दिशा निर्मल होगई। परन्तु उस स्थलमें मैंने एक अद्भुत और आश्चर्य कार्यको अवलोकन किया कि, वह एक अक्षौहिणी सेना जो अर्जुनके सहित कौरवोंसे युद्ध करनेके वास्ते रणभूमिमें उपस्थित हुई थी; वह अश्वत्थामाके आग्नेयास्त्रके तेजसे इस प्रकार भस्म होगई, कि कोई

ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥
सहितौ प्रत्यदृश्येतां नभसीव तमोनुदौ ।
ततो गाण्डीवधन्वा च केशवश्चाऽक्षतावुभौ ॥ ४० ॥
सपताकध्वजहयः सानुकर्षवरायुधः ।
प्रबभौ स रथो युक्तस्तावकानां भयङ्करः ॥ ४१ ॥
ततः किलकिलाशब्दः शङ्खभेरीस्वनैः सह ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत ॥ ४२ ॥
हताविति तयोरासीत्सेनयोरुभयोर्मतिः ।
तरसाऽभ्यागतौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ४३ ॥
तावक्षतौ प्रमुदितौ दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ।
दृष्ट्वा प्रमुदितान्पार्थांस्त्वदीया व्यथिता भृशम्॥ ४४ ॥
विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिः सुदुःखितः ।
मुहूर्तं चिन्तयामास किं त्वेतदिति मारिष ॥ ४५ ॥
चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः ।

पुरुष उस एक अक्षौहिणी सेनाके योद्धाओंको भस्म होते हुए देख भी न सके। (३६—३९)

तिसके अनन्तर एक रथ पर स्थित महाधनुर्द्धारी वीर कृष्ण-अर्जुन अन्धकार से मुक्त होकर वहां इस प्रकार शोभित हुए, जैसे बादलोंके समूहसे मुक्त होके आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा दीख पडते हैं, और ध्वजा, पताका, घोडे तथा उत्तम अस्त्र शस्त्रोंसे परिपूरित कौरवोंकी सेनाको भयभीत करनेवाला, कपिध्वजासे युक्त अर्जुनका दिव्य रथ भी रणभूमिके बीच प्रकाशित होने लगा। कृष्ण अर्जुनको घाव रहित शरीरसे मुक्त हुए देख, पाण्डवोंकी सेनाके पुरुष प्रसन्न और हर्षित हो के शंख भेरी आदि बाजोंको बजाते हुए सिंहनाद करने लगे॥ (३९-४२)

महाराज! पहिले कौरव और पाण्डव सेनाके शूरवीरोंने कृष्ण अर्जुनको अश्वत्थामाके चलाये हुए आग्नेयास्त्रकी अग्नि में छिपे देखकर यह समझा था, कि "ये दोनों ही आज जीते भी न बचेंगे, " परन्तु इस समय उन दोनोंही महात्मा पुरुषोंको घावरहित शरीरसे मुक्त होते और पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंको हर्ष पूर्वक सिंहनाद करते तथा शंख बजाते देखकर तुम्हारी सेनाके योद्धालोग अत्यन्तही दुःखित हुए। विशेष करके द्रोणपुत्र अश्वत्थामा कृष्ण अर्जुनको

निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च विमनाश्चाऽभवत्ततः ॥ ४६ ॥
ततो द्रौणिर्धनुस्त्यक्त्वा रथात्प्रस्कन्द्य वेगितः ।
धिग्धिक्सर्वमिदं मिथ्येत्युक्त्वा सम्प्राद्रवद्रणात्॥४७॥
ततः स्निग्धाम्बुदाभासं वेदावासमकल्मषम् ।
वेदव्यासं सरस्वत्यावासं व्यासं ददर्श ह ॥ ४८ ॥
तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा स्थितं कुरुकुलोद्वहम् ।
सन्नकण्ठोऽब्रवीद्वाक्यमभिवाद्य सुदीनवत् ॥ ४९ ॥
भो भो माया यदृच्छा वा न विद्मः किमिदं भवेत् ।
अस्त्रं त्विदं कथं मिथ्या मम कश्च व्यतिक्रमः॥ ५० ॥
अधरोत्तरमेतद्वा लोकानां वा पराभवः ।
यदिमौ जीवतः कृष्णौ कालो हि दुरतिक्रमः॥ ५१ ॥
नाऽसुरा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
न सर्पा यक्षपतगा न मनुष्याः कथञ्चन ॥ ५२ ॥
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुमेतदस्त्रं मयेरितम् ।

आग्नेयास्त्रसे मुक्त होते देखकर दुःखित चित्तसे मुहूर्त भर तक "यह क्या हुआ!" इसी भांति चिन्ता करने लगे॥ (४३–४६)

तिसके अनन्तर वह शोक और चिन्तासे युक्त होके लम्बी तथा गर्म सांस छोडते हुए क्रमसे अत्यन्तही दुःखित हुए और धनुष फेंककर वेगपूर्वक रथसे कूदके "इन अस्त्रोंको धिक्कार है, ये सब मिथ्या हैं!" ऐसा वचन कहके रणभूमिसे प्रस्थान किया। महाराज! उस ही समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अपने सम्मुखमें स्थित सजल मेघके समान कांतिमान, चारों वेदोंके विभाजक, उपवेद वेदांग, स्मृति आदिओंके निवासस्थान पापरहित श्रीवेदव्यास ऋषिका दर्शन किया॥ (४७–४८)

उन्होंने कुरुकुलके प्रवर्तक श्रीवेदव्यास ऋषिको अपने अगाडी स्थित देख, रुद्धकण्ठसे अत्यन्त दीनताके सहित प्रणाम करके यह प्रश्न किया, हे भगवन्! यह क्या दैवी माया है? या और कोई घटना है? मैं इसे कुछ भी मालूम न कर सका? इस अस्त्रके निष्फल होनेका क्या कारण है? क्या मेरी बुद्धि विपरीत हुई थी? यह क्या सम्पूर्ण लोकोंके नाश होनेका समय उपस्थित हुआ है? क्यों कि वे दोनों कृष्ण-अर्जुन जीते ही मेरे अस्त्रसे मुक्त हुए हैं। जो हो, कालकी गति कुछ जानी नहीं जाती॥ नहीं तो

अथाऽपरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततोऽन्यत्पुनर्महत् ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं तेजसा समपूरयत ॥ ६० ॥
स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदाऽभवत् ।
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ ६१ ॥
ददर्श भृशदुर्धर्षं सर्वदेवैरभिष्टुतम् ।
अणीयांसमणुभ्यश्च बृहद्भ्यश्च बृहत्तमम् ॥ ६२ ॥
रुद्रमीशानवृषभं हरं शम्भुं कपर्दिनम् ।
चेकितानं परां योनिं तिष्ठतो गच्छतश्च ह ॥ ६३ ॥
दुर्वारणं दुर्दृशं तिग्ममन्युं महात्मानं सर्वहरं प्रचेतसम् ।
दिव्यं चापमिषुधी चाऽऽददानं हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यम् ॥ ६४ ॥
पिनाकिनं वज्रिणं दीप्तशूलं परश्वधिनं गदिनं चाऽऽयतासिम् ।
शुभ्रं जटिलं मुसलिनं चन्द्रमौलिं व्याघ्राजिनं परिघिणं दण्डपाणिम् ॥ ६५ ॥
शुभाङ्गदं नागयज्ञोपवीतं विश्वैर्गणैः शोभितं भूतसङ्घैः ।
एकीभूतं तपसां सन्निधानं वयोतिगैः सुष्टुतमिष्टवाग्भिः ॥ ६६ ॥

उससे द्विगुण समयतक तपस्या करके अपने तेजसे पृथ्वी आकाशको परिपूरित किया ॥ (५६—६०)

जब वह तपस्याके प्रभावसे साक्षात् ब्रह्मरूप हुए; तब उन्होंने जगन्नियन्ता, विश्वके कारण, जगत् के पालक,अत्यन्त कठिनतासे बोध होने योग्य, सम्पूर्ण देवतोंसे वन्दित,बृहत् वस्तुओंसे भी बृहत् और सूक्ष्मसे सूक्ष्म जगत्स्रष्टा विश्वेश्वरका दर्शन किया ॥ वह विश्वेश्वर, रुद्र, ईशान, वृषभ, हर, शम्भु, कपर्दी, चेतनस्वरूप और स्थावर जङ्गम आदि सम्पूर्ण भूतोंके परम कारण है॥ ६१-६३

वह निवारण करनेके अयोग्य, नेत्रसे अगोचर, दुष्टोंके ऊपर क्रोध करनेवाले, महात्मा सर्वहर, साधुओंके विषयमें उदार चित्तवाले, दिव्य शरासन और तूणीरधारी, हिरण्यवर्मा,अत्यन्त पराक्रम तथा बलसे युक्त हैं ॥ वह पिनाक, वज्र, प्रकाशमान शूल,परश्वध,गदा और दीर्घ खड्ग धारण करनेवाले हैं; उनके ललाटपर चन्द्रमा और सिर पर जटा शोभित हैं । उनका वर्ण श्वेत है, वह व्याघ्राम्बर पहरनेवाले महादेव परिघ और दण्डधारी हैं॥ उनके गलेमें सर्पोंका यज्ञोपवीत शोभित है और भुजा मनोहर अङ्गदसे भूषित हैं । वह सम्पूर्ण प्राणी तथा भूतोंके स्वामी हैं । वह सदा एक रूप, तपस्याके निधिस्वरूप हैं, प्राचीन ऋषि लोग उनकी इष्ट वचन तथा वेदवाक्यों

जलं दिशं खं क्षितिं चन्द्रसूर्यौ तथा वाय्वग्नी प्रतिमाणं जगच्च ।
नाऽलं द्रष्टुं यं जना भिन्नवृत्ता ब्रह्मद्विषघ्नममृतस्य योनिम् ॥ ६७ ॥
यं पश्यन्ति ब्राह्मणाः साधुवृत्ताः क्षीणे पापे मनसा वीतशोकाः ।
तं निष्पतन्तं तपसा धर्ममीड्यं तद्भक्त्या वै विश्वरूपं ददर्श ।
दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धिदेहैः संहृष्टात्मा मुमुदे वासुदेवः ॥ ६८ ॥
अक्षमालापरिक्षिप्तं ज्योतिषां परमं निधिम् ।
ततो नारायणो दृष्ट्वा ववन्दे विश्वसम्भवम् ॥ ६९ ॥
वरदं पृथुचार्वङ्ग्या पार्वत्या सहितं प्रभुम् ।
क्रीडमानं महात्मानं भूतसङ्घगणैर्वृतम् ॥ ७० ॥
अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम् ।
अभिवाद्याऽथ रुद्राय सद्योऽन्धकनिपातिने ।
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान् ॥ ७१ ॥
श्रीनारायण उवाच-त्वत्सम्भूता भूतकृतो वरेण्य गोप्तारोऽस्य भुवनस्याऽऽदिदेव ।

से स्तुति करते रहते हैं ॥ (६४—६६)

जो पृथ्वी, जल,आकाश,वायु, अग्नि, चन्द्र, सूर्य तथा सम्पूर्ण जगत्के परम कारण हैं, दुष्ट लोग ब्रह्मद्वेषियोंके नाश करनेवाले उस अज अविनाशी परम पुरुषके दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते॥ परन्तु शोकादि रहित साधु शीलवाले पापरहित ब्राह्मण लोग ज्ञान नेत्रसे उनका दर्शन कर सकते हैं। वासुदेव नारायण ऋषि उनके अत्यन्त भक्त हैं; इससे वह अपने उस तपस्याके प्रभावसे दिव्य तेजसे प्रकाशित साक्षात् धर्मरूप जगत् वन्दनीय विश्वव्यापक महादेवके दर्शन करनेमें समर्थ हुए ॥ (६७–६८)

हे अश्वत्थामन् ! कमलनेत्रवाले नारायण ऋषिने तेज स्वरूप, रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले, जगत्स्रष्टा वृष-भवाहन अत्यन्त मनोहर अङ्गवाली पार्वतीके सङ्ग सदा क्रीडा करनेवाले,भूत प्रेतोंसे घिरे हुए अज अव्यक्त सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंके कारणात्मा महात्मा रुद्र ईशानका दर्शन करके मन, बुद्धि और वचनसे आनन्दित होकर उनकी वन्दना की ॥ अनन्तर नारायण ऋषि अन्धकासुरके नाश करनेवाले विरूपाक्ष रुद्रदेवको नमस्कार करके भक्तिभावसे युक्त होकर इस प्रकार स्तुति करने लगे । (६९–७२)

हे वरदान करनेवाले ! हे देवोंके देव ! जो इस जगत्के रक्षक, सम्पूर्ण प्राणियोंके सृष्टिकर्त्ता, देवताओंके पूर्व प्रजापति हैं, वह तुमसे ही प्रकट होके

आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्पुरा पुराणीं तव देवसृष्टिम्॥ ७२ ॥
सुरासुरान्नागरक्षःपिशाचान्नरान्सुपर्णानथ गन्धर्वयक्षान् ।
पृथग्विधान्भूतसङ्घांश्च विश्वांस्त्वत्सम्भूतान्विद्म सर्वांस्तथैव ।
ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैत्तपाल्यं पैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यं च तुभ्यम् ॥ ७३ ॥
रूपं ज्योतिः शब्द आकाशवायुः स्पर्शः स्वाद्यं सलिलं गन्ध उर्वी ।
कालो ब्रह्मा ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च त्वत्सम्भूतं स्थास्नु चरिष्णु चेदम् ॥७४॥
अद्भ्यः स्तोका यान्ति यथा पृथक्त्वं ताभिश्चैक्यं संक्षये यान्ति भूयः ।
एवं विद्वान्प्रभवं चाऽप्ययं च मत्त्वा भूतानां तव सायुज्यमेति ॥ ७५ ॥
दिव्यावृतौ मानसौ द्वौ सुपर्णौ वाचा शाखाः पिप्पलाः सप्त गोपाः ।
दशाऽप्यन्ये ये पुरं धारयन्ति त्वया सृष्टास्त्वं हि तेभ्यः परो हि ॥७६॥
भूतं भव्यं भविता चाऽप्यधृष्यं त्वत्सम्भूता भुवनानीह विश्वा ।
भक्तं च मां भजमानं भजस्व मा रीरिषो मामहिताहितेन ॥ ७७ ॥

पृथ्वी प्रकृतिके बीच प्रवेश करके तुम्हारी बनाई हुई पुरातनी सृष्टिकी रचना करते हैं । देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प और पक्षी आदि सम्पूर्ण प्राणी तुम्हारेही प्रभावसे उत्पन्न होते हैं,यह मुझे विदित है । इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर और चन्द्रमा आदि दिक्पाल तथा त्वष्टा आदि प्रजापति तुम्हारे ही प्रभावसे अपने अधिकारके कार्योंका निर्वाह करते हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, काल, ब्रह्मा, वेद, ब्राह्मण और सब स्थावर जंगम ये सब तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं॥(७२-७४)

जैसे पानीके बबूले पानीसे ही उत्पन्न होके फिर जलही में लीन होजाते हैं, वैसेही वह विश्व संसार प्रलयकालमें नष्ट होकर फिर तुम्हारे ही शरीरमें लीन होजाता है । तत्त्वज्ञानी पण्डित लोग तुम्हें प्राणियोंकी उत्पत्ति और उनके लयके कारण जानकर ही तुम्हारी कृपासे सायुज्य मुक्ति लाभ करते हैं ॥ हे देवोंके देव ! तुम्हीं मानस वृक्ष पर चढे हुए जीव और ईश्वररूपी दो पक्षी और वेदमें कहेहुए अनेक शाखासे युक्त सप्तलोक रूप फलके भोक्ता और द्रष्टा हो। सम्पूर्ण शरीरको प्रतिपालन करनेवाली जो दश इन्द्रियां हैं; तुम उन्हें उत्पन्न करके स्वयं पृथक् रूपसे निवास करते हो ॥ (७५—७६)

तुम भूत भविष्य और वर्त्तमान रूपी काल हो । यह संसार तुमसेही उत्पन्न हुआ है । मैं तुम्हारा भक्त हूं, तुम मेरे ऊपर कृपा करो । मैं तुम्हारा कैसा भक्त हूं, वह तुम्हें विदित है; इससे मुझे

आत्मानं त्वामात्मनोऽनन्यबोधं विद्वानेवं गच्छति ब्रह्म शुक्रम् ।
अस्तौषं त्वां तव सम्मानमिच्छन्विचिन्वन्वै सदृशं देववर्य ।
सुदुर्लभान्देहि वरान्ममेष्टानभिष्टुतः प्रविकार्षीश्च मायाम् ॥ ७८ ॥

व्यास उवाच— तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृक् ।
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥ ७९ ॥

श्रीभगवानुवाच— मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु ।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ॥ ८० ॥
न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः ।
न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ॥ ८१ ॥
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः ।
न कश्चित्त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति ॥ ८२ ॥
न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वायुना ।
न चार्द्रेण न शुष्केण त्रसेन स्थावरेण च ॥ ८३ ॥
कश्चित्तव रुजां कर्ता मत्प्रसादात्कथञ्चन ।
अपि वै समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः ॥ ८४ ॥

निराश न कीजिये। चित्तमें कामादि शत्रुओंके प्रवेशसे मेरा नाश न होना चाहिये॥ हे सर्वेश्वर! तत्त्वज्ञानी पुरुष तुम्हें अपनी आत्मासे अभिन्न जान कर ही उस पवित्र ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। मैं तुम्हें आत्मस्वरूप जानकर भी तुम्हारे संमानकी इच्छासे तुम्हारी स्तुति कर रहा हूं, तुम मेरी स्तुतिसे प्रसन्न हो मेरे अभिलषित दुर्लभ वर प्रदान करो। आप मेरे प्रतिकूल न होइये ॥ (७७–७८)

श्रीव्यास मुनि बोले, पिनाकधारी नीलकण्ठ महादेवने उस ऋषिकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उस माननीय महर्षिको अभिलषित वर प्रदान किया, रुद्र भगवान् बोले, हे नारायण ऋषि ! तुम मेरे प्रसादसे देव, गन्धर्व, सर्प और मनुष्य लोकके बीच अत्यन्त पराक्रमशाली होंगे ॥ (७९–८०)

देवता, असुर, सर्प, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस पक्षी तथा सम्पूर्ण अयोनिसे उत्पन्न हुए प्राणी भी तुम्हारे युद्धको सहन करनेमें समर्थ न होंगे। अधिक क्या कहूं, देवताओंके बीच भी कोई तुम्हें पराजित नहीं कर सकेगा॥ किसी प्रकारके अस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, जल आदि द्रव पदार्थ तथा सूखे पत्थर आदि स्थावर वस्तुओंसे कोई पुरुष भी मेरे प्रसादसे तुम्हें पीडित करनेमें समर्थ

एवमेते वरा लब्धाः पुरस्ताद्विद्धि शौरिणा।
स एष देवश्चरति मायया मोहयञ्जगत् ॥ ८५ ॥
तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम्।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥ ८६ ॥
तावेतौ पूर्वदेवानां परमोपचितावृषी।
लोकयात्राविधानार्थं सञ्जायेते युगे युगे ॥ ८७ ॥
तथैव कर्मणा कृत्स्नं महतस्तपसोऽपि च।
तेजो मन्युं च विप्रेंस्त्वं जातो रौद्रो महामते ॥ ८८ ॥
स भवान्देववत्प्राज्ञो ज्ञात्वा भवमयं जगत्।
अवाकर्षस्त्वमात्मानं नियमैस्तत्प्रियेप्सया ॥ ८९ ॥
शुभ्रमत्र हविः कृत्वा महापुरुषविग्रहम्।
ईजिवांस्त्वं जपैर्होमैरुपहारैश्च मानद ॥ ९० ॥
स तथा पूज्यमानस्ते पूर्वदेहेऽप्यतूतुषत्।

न होगा। ऐसा क्या, युद्धभूमिमें तुम मुझसे भी अधिक पराक्रम प्रकाशित करोगे ॥ (८१-८४)

हे अश्वत्थामन्! पहिले नारायण ऋषिने इसी प्रकार महादेवके निकटसे वर प्राप्त किया था, इस समय वही नारायणऋषि कृष्णरूपसे अवतार लेके अपनी मायासे जगत्को मोहित करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे हैं; और नारायण ऋषिके ही तपस्यासे प्रकट हुए उन्हींके समान प्रभावसे युक्त जो नर ऋषि नामक महात्मा हैं, वही अर्जुनरूपसे उत्पन्न हुए हैं॥ वे दोनों ही देवताओंके पुरातन परम ऋषि कहके सर्वत्र प्रशंसित हुए हैं। लोकयात्रा विधानके निमित्त वे दोनों महात्मा प्रतियुगमें अवतार लेते हैं॥ वैसे ही तुम भी सम्पूर्ण कर्मरूप अपने वृहत् तपस्याके प्रभावसे तेज और क्रोध धारण करके रुद्र अंशसे उत्पन्न हुए हो ॥ (८५-८८)

पहिले तुम महाबुद्धिमान् एक मुनि थे, इस जगत्को शिवमय जानकर महादेवके प्रीतिकी इच्छासे तपस्यामें रत होकर तुमने अपने शरीरको सुखा दिया था॥ हे मानद! तुमने जप, होम और उपवास आदि व्रतसे अपने शरीरको पापरहित करके देवोंके देव महादेवकी पूजा की थी। इसी प्रकार देवोंके देव महादेव तुम्हारे पहिलेसे उत्पन्न हुए अनेक शरीरोंसे पूजित होकर तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुए थे। हे विद्वन्! इस ही कारण भगवान् रुद्रने तुम्हारी अभि-

पुष्कलांश्च वरान्प्रादात्तव विद्वन्हृदि स्थितान्॥ ९१ ॥
जन्म कर्म तपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयाऽर्चायां युगे युगे॥९२॥
सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयति प्रभुम्।
आत्मयोगाश्च तस्मिन्वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः॥ ९३॥
एवं देवा यजन्तो हि सिद्धाश्च परमर्षयः।
प्रार्थयन्ते परं लोके स्थाणुमेकं स सर्वकृत् ॥ ९४ ॥
स एष रुद्रभक्तश्च केशवो रुद्रसम्भवः।
कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैव सनातनः ॥ ९५ ॥
सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभोः।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः ॥ ९६ ॥
सञ्जय उवाच— तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणपुत्रो महारथः।
नमश्चकार रुद्राय बहु मेने च केशवम् ॥ ९७ ॥
हृष्टरोमा च वश्यात्मा सोऽभिवाद्य महर्षये।

लाषाके अनुसार तुम्हें उत्तम वर प्रदान किया था ॥ (८९-९१)

इससे नर नारायण ऋषि और तुम्हारा अर्थात् तुम तीनों ही महात्माओंके जन्म कर्म श्रेष्ठ हैं और तुम तीनोंहीमें तपस्याका प्रभाव है, जैसे उन दोनों महात्माओंने प्रतियुगोंमें महादेवके लिङ्गकी पूजा करी है। वैसे ही। तुमने भी प्रतिमा बनाकर महादेवकी पूजा की है॥ विशेष करके रुद्र भक्त कृष्णने रुद्रनिष्ठामें रत होकर निग्रहानुग्रहमें समर्थ महादेवको सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति और लयके कारण जानकर रुद्रलिङ्गकी पूजा की है; इसही कारण कृष्णमें सनातन आत्मयोग और शास्त्रयोग प्रतिष्ठित है। इसी भांति देवता, सिद्ध और परम ऋषि लोग भी महादेवकी पूजा करके परम पद पानेकी इच्छा किया करते हैं॥ परन्तु सबके स्वामी कृष्ण भी यज्ञादिकोंसे पूजित होने योग्य हैं; क्योंकि वह सर्व शक्तिमान् महादेवको सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंकी आत्मा जानकर शिवलिङ्गकी पूजा किया करते हैं, और वृषभध्वज महादेवकी भी कृष्णके ऊपर आन्तरिक प्रीति है॥ (९२-९६)

सञ्जय बोले, महाराज! महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने वेदव्यासके वचनको सुनकर भगवान् रुद्रको नमस्कार किया और श्रीकृष्णकोभी अत्यन्त ही पूजनीय समझा॥ अनन्तर पराक्रमी

वरूथिनीमभिप्रेक्ष्य ह्यवहारमकारयत ॥ ९८ ॥
ततः प्रत्यवहारोऽभूत्पाण्डवानां विशाम्पते।
कौरवाणां च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते ॥ ९९ ॥
युद्धं कृत्वा दिनान्पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम्।
ब्रह्मलोकं गतो राजन्ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ १०० ॥ [९४८४]

इति श्रीमहाभारते०द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि व्यासवाक्ये सप्तरुद्रीये एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः२०१

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्नतः परम् ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच— तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै।
कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम्।
यदृच्छयाऽऽगतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥ ३ ॥
अर्जुन उवाच— संग्रामे न्यहनं शत्रूञ्शरौघैर्विमलैरहम्।
अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥ ४ ॥

अश्वत्थामाने अपने चित्तको वशमें किया और लोमाञ्चित शरीरसे युक्त होकर अपनी सेनाके बीच जाकर सम्पूर्ण योद्धाओंको युद्ध करनेसे निवृत्त किया॥ कौरवोंकी सेनाको युद्धसे निवृत्त होती देख पाण्डवोंने भी अपनी सेनाके योद्धाओंको युद्धसे निवृत्त किया। हे प्रजानाथ! युद्धभूमिके बीच द्रोणाचार्यके मारे जानेपर इसी भांति दीनभावसे युक्त कौरव और उत्साहयुक्त पाण्डवोंने उस दिन अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त किया॥ वेदविद्या जाननेवाले ब्राह्मण द्रोणाचार्य पांच दिन युद्ध करके शत्रुओंकी सेनाके असंख्य योद्धाओंका संहार कर के अन्त में ब्रह्मलोक को गये॥ (९७–१००) [९४८४]

द्रोणपर्वमें दोसौ एक अध्याय समाप्त।

द्रोणपर्वमें दोसौ दो अध्याय।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! धृष्टद्युम्नसे अतिरथी द्रोणके मारेजानेपर पाण्डव और मेरी ओरके योद्धाओंने क्या किया? (१)

सञ्जय बोले, महाराज! जब अतिरथी द्रोणाचार्य पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये और कौरवोंकी सेना युद्धभूमिसे पराजित हुई, उस समय कुन्तीपुत्र अर्जुनने विस्मय उत्पन्न करनेवाली अपनी अद्भुत विजय देख, तथा इच्छानुसार व्यासदेवको अपने समीपमें आये हुए देखकर उनसे पूछा, हे महर्षि! युद्धभूमिके बीच जब मैं अपने तेज बाणोंसे शत्रु-

ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते।
तस्यां दिशि विदीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने ॥ ५ ॥
तेन भग्नानरीन्सर्वान्मद्भग्नान्मन्यते जनः।
तेन भग्नानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुव्रजाम्यहम् ॥ ६ ॥
भगवंस्तन्ममाऽऽचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः।
शूलपाणिर्मया दृष्टस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥ ७ ॥
न पद्भ्यां स्पृशते भूमिं न च शूलं विमुञ्चति।
शूलाच्छूलसहस्राणि निष्पेतुस्तस्य तेजसा ॥ ८ ॥

व्यास उवाच- प्रजापतीनां प्रथमं तैजसं पुरुषं प्रभुम्।
भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ९ ॥
ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शङ्करम्।
तं गच्छ शरणं देवं वरदं भुवनेश्वरम् ॥ १० ॥
महादेवं महात्मानमीशानं जटिलं विभुम्।

ओंको नाश करनेमें प्रवृत्त हुआ था; उस समय मैंने देखा कि मेरे अगाडी अग्निके समान तेजस्वी एक पुरुष प्रकाशमान त्रिशूल ग्रहण करके जिधर दौडने लगा, उस ही ओर शत्रुओंकी सेना छिन्न भिन्न होकर भागने लगी॥ (२—५)

उस समय उस महातेजस्वी पुरुषके सम्मुखसे भागती हुई सेनाको सब कोई मेरे ही प्रभावसे भागती हुई समझने लगे। परन्तु मैंने केवल भागती हुई सेनाके योद्धाओंके पीछे पीछे गमन करके उसके ऊपर बाण चलाया था॥ उस महा तेजस्वी पुरुषने न अपने पावोंसे पृथ्वीको स्पर्श किया और न अपना प्रकाशमान त्रिशूल ही चलाया था; उनके तेज प्रभावसे उस हाथमें स्थित शूलसे ही सहस्रों शूल निकलने लगे। हे भगवन्! सूर्यसमान तेजस्वी अलौकिक प्रभाव युक्त त्रिशूलधारी वह तेजस्वी पुरुषोत्तम कौन हैं? आप मेरे समीप वर्णन कीजिये॥ (६—८)

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे अर्जुन! जो प्रजापतिसे भी पहिले निग्रहानुग्रह करनेमें समर्थ, सम्पूर्ण प्राणी तथा सम्पूर्ण लोकोंके आदि कारण, सब लोकोंके सृष्टिकर्त्ता, सर्वव्यापी, तेजस्वरूप, शङ्कर, ईशान, वरदाता और तैजस पुरुष हैं, तुमने उन्हींका दर्शन किया है, इससे उस वृषभवाहन सम्पूर्ण जगत्के स्वामी देवोंके देव महादेव के शरणागत हो॥ (९—१०)

वह महादेव, महात्मा, ईशान, जटि-

त्र्यक्षं महाभुजं रुद्रं शिखिनं चीरवाससम् ॥ ११ ॥
महादेवं हरं स्थाणुं वरदं भुवनेश्वरम्।
जगत्प्रधानमजितं जगत्प्रीतिमधीश्वरम् ॥ १२ ॥
जगद्योनिं जगद्बीजं जयिनं जगतो गतिम्।
विश्वात्मानं विश्वसृजं विश्वमूर्तिं यशस्विनम्॥ १३ ॥
विश्वेश्वरं विश्वनरं कर्मणामीश्वरं प्रभुम्।
शम्भुं स्वयम्भुं भूतेशं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ १४ ॥
योगं योगेश्वरं सर्वं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्।
सर्वश्रेष्ठं जगच्छ्रेष्ठं वरिष्ठं परमेष्ठिनम् ॥ १५ ॥
लोकत्रयविधातारमेकं लोकत्रयाश्रयम्।
शुद्धात्मानं भवं भीमं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ १६ ॥
शाश्वतं भूधरं देवं सर्ववागीश्वरेश्वरम्।
सुदुर्जयं जगन्नाथं जन्ममृत्युजरातिगम् ॥ १७ ॥
ज्ञानात्मानं ज्ञानगम्यं ज्ञानश्रेष्ठं सुदुर्विदम्।
दातारं चैव भक्तानां प्रसादविहितान्वरान् ॥ १८ ॥
तस्य पारिषदा दिव्या रूपैर्नानाविधैर्विभोः।

ल, विष्णु, त्रिनेत्र, महाभुज, रुद्र, शिखी, चीरवासा, महादेव, हर, स्थाणु, वरद, भुवनेश्वर, जगत्प्रधान, अजेय, जगत्को आनन्द देनेवाले और सम्पूर्ण प्राणियोंके ईश्वर हैं ॥ (११—१२)

वही इस सम्पूर्ण जगत्के उत्पन्न करनेवाले, मूलस्वरूप, सर्वजयी, जगत्की गतिस्वरूप, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा विश्वमूर्ति, यशस्वी, विश्वेश्वर, विश्वनर, सम्पूर्ण कर्मोंके नियोगकर्त्ता, प्रभु, शम्भु स्वयम्भू, समस्त भूतोंके स्वामी, भूत भविष्यत् और वर्तमान कालके अधिष्ठान, योगमूर्ति, योगेश्वर, सर्वमय और सर्वलोकोंके ईश्वरके भी नियन्ता है। वह सर्वश्रेष्ठ, जगत् श्रेष्ठ, वरिष्ठ, परमेष्ठी, तीनों लोकके विधाता और तीनों लोकके अद्वितीय आश्रय स्वरूप हैं ॥ १२–१६

वही शुद्धात्मा, भव, भीम, शिरमें चंद्र धारण करनेवाले, शाश्वत, भूमिको धारण करनेवाले, देव सब वाणीके अधिपतियोंका भी ईश्वर है। वह सुदुर्जय जगन्नाथ जन्म, मृत्यु और जरा अवस्थासे रहित है॥ वह ज्ञानात्मा, ज्ञानगम्य, ज्ञानप्रधान, और कठिनाईसे जानने योग्य है, वही प्रसन्न होके भक्तोंको अभिलषित वर प्रदान करते हैं॥ (१६—१८)

वामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः ॥ १९ ॥
महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तथाऽपरे ।
आननैर्विकृतैः पादैः पार्थ वेषैश्च वैकृतैः ॥ २० ॥
ईदृशैः स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः ।
स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद्याति तेऽग्रतः ॥ २१ ॥
तस्मिन्घोरे सदा पार्थ संग्रामे लोमहर्षणे ।
द्रौणिकर्णकृपैर्गुप्तां महेष्वासैः प्रहारिभिः ॥ २२ ॥
कस्तां सेनां तदा पार्थ मनसाऽपि प्रधर्षयेत् ।
ऋते देवान्महेष्वासाद्बहुरूपान्महेश्वरात् ॥ २३ ॥
स्थातुमुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतः स्थिते ।
नहि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २४ ॥
गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शात्रवः ।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥ २५ ॥
तस्मै नमस्तु कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि ।

वामन, जटिल, मुण्ड, ह्रस्वग्रीव, महोदर, महाकाय, महोत्साह और महाकर्ण आदि विकृतानन, विकृत चरण, विकृत वेष, अनेक रूपधारी दिव्य मूर्तिवाले उनके बहुतसे पारिषद हैं ॥ वह महादेव अपने उन पारिषदोंसे सदा पूजित हुआ करते हैं। हे तात अर्जुन! वह तेजस्वी महादेवही प्रसन्नताके सहित रणभूमिमें तुम्हारे आगे आगे गमन करते हैं॥ (१९—२१)

धनुर्द्धर वीरोंमें अग्रगण्य अनेक रूपधारी देवोंके देव महादेवके अतिरिक्त इस महाघोर रोएंको खडा करनेवाले भयङ्कर रणभूमिके बीच भीष्म,द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य आदि युद्धमें प्रशंसित महाधनुर्द्धर वीरोंसे रक्षित कौरवोंको क्या कोई मनसे भी पराजित करनेका उत्साह कर सकता है? परन्तु महादेवको सम्मुख स्थित देख कोई भी उनके विरुद्ध साहसी नहीं हो सकता; क्योंकि तीनों लोकके बीच कोई भी भगवान् रुद्रके समान पराक्रमी नहीं है॥ (२२—२४)

अधिक क्या कहूं, संग्रामभूमिमें यदि भगवान् शम्भु क्रुद्ध होकर स्थित होवें, तो शत्रुलोग उन्हें देखकर ही कांपते हुए चेतरहितके समान पृथ्वीमें गिर पडते और कितने ही चेतरहित के समान होजाते हैं। देवता, मर्त्य और स्वर्ग लोकवासी मनुष्य लोग सब कोई उसही महादेवको नमस्कार करके

ये चान्ये मानवा लोके ये च स्वर्गजितो नराः ॥२६॥
ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम् ।
अनन्यभावेन सदा सर्वेशं समुपासते ॥ २७ ॥
इह लोके सुखं प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम् ।
नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा ॥ २८ ॥
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे ।
कपर्दिने करालाय हर्यक्षवरदाय च ॥ २९ ॥
याम्यायाऽव्यक्तकेशाय सद्वृत्ते शङ्कराय च ।
काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ॥ ३० ॥
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च ।
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥ ३१ ॥
बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे ।
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥ ३२ ॥
गिरिशाय प्रशान्ताय पतये चीरवाससे ।
हिरण्यबाहवे राजन्नुग्राय पतये दिशाम् ॥ ३३ ॥
पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः ।
वृक्षाणां पतये चैव गवां च पतये नमः ॥ ३४ ॥
वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च ।

स्वर्ग लोकमें वास करते हैं ॥ अधिक क्या कहूं, जो लोग अत्यन्त ही भक्तिपूर्वक वरदाता रुद्रदेव, उमापति शिवको प्रणाम करते हैं, वे इस लोकमें परम सुख पाके अन्त समय परम गति प्राप्त करते हैं। (२५—२८)

हे अर्जुन ! तुम उस शान्त, रुद्र, शितिकण्ठ, कनिष्ठ, महातेजस्वी, कपर्दी, कराल, हरिनेत्र, वरदाता, याम्य, अव्यक्त केश, सदाचार, शङ्कर, काम्यदेव, पिङ्गल नेत्र, स्थाणु, पुरुष, पिङ्गल केश, मुण्ड, कृश, उद्धारकर्त्ता, भास्कर, सुतीर्थ, वेगवान्, बहुरूप, सर्व, प्रिय, प्रियवासा, देवोंके देव महादेवको नमस्कार कर। उस उष्णीष धारी, सुवक्त्र, सहस्राक्ष, पूजनीय, गिरिश, प्रशान्त, पतिस्वरूप, चीरवासा, हिरण्यबाहु, उग्र, दिक्पति, पर्जन्यपति; भूतस्वामी को नमस्कार है। (२८-३४)

वृक्षपति, गोपति, जिसके विश्राम करनेका स्थान नाना भांतिके वृक्षोंसे शोभित है, उस सेनानायक, मध्यम,

स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ॥ ३५ ॥
बहुरूपाय विश्वस्य पतये मुञ्जवाससे ।
सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च ॥ ३६ ॥
सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च ।
शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ॥ ३७ ॥
उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम् ।
प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम् ॥ ३८ ॥
कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम् ।
वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम् ॥ ३९ ॥
वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम् ।
वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम् ॥ ४० ॥
महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम् ।
लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ॥ ४१ ॥
त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम् ।
पिनाकिनं खड्गधरं लोकानां पतिमीश्वरम् ॥ ४२ ॥
प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम् ।
नमस्तस्मै सुरेशाय यस्य वैश्रवणः सखा ॥ ४३ ॥
सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने ।

स्रुवहस्त, देव, धन्वी, भार्गव, बहुरूप, विश्वपति, मुंजवासा, सहस्र सिर, सहस्रनेत्र, सहस्रबाहु, सहस्र चरण महादेवको नमस्कार है। हे अर्जुन! तुम उस ही दक्ष-यज्ञके नाश करनेवाले विरूपाक्ष, वरदाता, त्रिलोकेश्वर उमापतिके शरणागत हो। (३४–३८)

मैं भी उस प्रजापति, अव्यग्र, अव्यय, भूतपति, कपर्दी, वृषावर्त्त, वृषनाभ, वृषध्वज, वृषदर्प, वृषपति, वृषशृङ्ग, वृषश्रेष्ठ, वृषाङ्क, वृषभोदार, वृषभ, वृषभेक्षण, वृषायुध, वृषशर, वृषभूत, वृषेश्वर, महोदर, महाकाय, बाघाम्बर धारण करनेवाले, लोकेश्वर, वरदाता, मुण्ड, ब्रह्मण्यदेव, ब्राह्मण प्रिय, त्रिशूलपाणि, वरप्रद, तलवार ढाल ग्रहण करने वाले, निग्रहानुग्रहमें समर्थ, पिनाकी, खड्गधारी लोकोंके पति, चीरवासा, शरण्यदेवके शरणापन्न हुआ हूं। (३८–४२)

उस वैश्रवणसखा सुरेश्वरको नमस्कार है। सुवासा, सुधन्वी, सुव्रतको सर्वदा नमस्कार है। उस धनुर्द्धर, प्रियधन्वा,

धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने ॥ ४४ ॥
धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः ।
उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च ॥ ४५ ॥
नमोऽस्तु बहुरूपाय नमोऽस्तु बहुधन्विने ।
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै तपस्विने ॥ ४६ ॥
नमोऽस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः ।
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ॥ ४७ ॥
मातॄणां पतये चैव गणानां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ४८ ॥
अपां च पतये नित्यं देवानां पतये नमः ।
पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च ॥ ४९ ॥
नीलकण्ठाय पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः ।
कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्य धीमतः ॥ ५० ॥
तानि ते कीर्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ।
न सुरा नाऽसुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः ॥ ५१॥
सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः ।
दक्षस्य यजमानस्य विधिवत्सम्भृतं पुरा ॥ ५२ ॥

धन्वन्तर, धनुराचार्य और धनुमूर्ति देवको नमस्कार है। उस उग्रायुध देवतों में श्रेष्ठ महादेवको नमस्कार है॥ बहुमूर्ति बहुधन्वा को नमस्कार है। स्थाणु और नित्यतपस्वी देवको नमस्कार है ॥ उस त्रिपुर और भगहन्ताको नमस्कार है । उस वनस्पति प्रभु और मनुष्यपतिको नमस्कार है ॥ (४३-४७)

उस मातृपति और गणोंके पति देवको नमस्कार है । उस गोपति और यज्ञ पतिको सर्वदा नमस्कार है ॥ पूषाके दांतको तोड़नेवाले त्रिनेत्र, वरदाता, नीलकण्ठ, पिंगलवर्ण, सुवर्ण केश शिव को नमस्कार है। जलपति और सुरपतिको सर्वदा नमस्कार है । हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! उस बुद्धिमान् महादेवके जिन सम्पूर्ण दिव्य कर्मोंको मैंने सुना है, उसे मैं अपनी बुद्धिके अनुसार तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं; तुम सुनो। (४८ - ५१)

उनके कोपित होनेसे देव, गन्धर्व, राक्षस आदि प्राणी यदि पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश करें, तौ भी सुखी नहीं [illegible] सकते। पहिले जब दक्षप्रजापति यज्ञकी

विव्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वभवत्तदा ।
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥ ५३ ॥
ते न शर्म कुतः शान्ति लेभिरे स्म सुरास्तदा ।
विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ ५४ ॥
तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः ।
बभूवुर्वशगाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः ॥ ५५ ॥
आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चकम्पे च वसुन्धरा ।
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः ॥५६॥
अन्धेन तमसा लोका न प्राकाशन्त संवृताः ।
जघ्निवान्सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः ॥ ५७ ॥
चुक्षुभुर्भयभीताश्च शान्ति चक्रुस्तथैव च ।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः ॥ ५८ ॥
पूषाणमभ्यद्रवत शङ्करः प्रहसन्निव ।

सम्पूर्ण सामग्रियोंको इकट्ठी करके वेद-विधिसे यज्ञ करने लगे, तब उसमें महादेव अपना भाग न देखकर उनके यज्ञको विध्वंस करनेमें प्रवृत्त हुए। उस समय जब भगवान् रुद्र अपने प्रचण्ड धनुषको ग्रहण करके भयङ्कर बाणोंको चलाने और महाभयानक शब्दके सहित सिंहनाद करने लगे, तब उस समय देवता लोग सम्पूर्ण स्थानोंमें भ्रमण करके भी किसी स्थानमें सुखपूर्वक निवास करनेमें समर्थ नहीं हुए। (५१-५४)

इसी भांति जब महादेव क्रुद्ध होकर सहसा यज्ञको नाश करनेमें प्रवृत्त हुए; तब उनके धनुषके टङ्कार और तलत्राण शब्दसे सम्पूर्ण लोक व्याकुल होगये। हे अर्जुन! अधिक क्या कहा जावे, उस समय देवता, असुर आदि सम्पूर्ण प्राणी उनके वशवर्ती होके इधर उधर चेतरहितके समान गिरने लगे। समुद्रका जल उथलने लगा और पृथ्वी कांपने लगी। इसके अतिरिक्त पर्वतोंके शिखर टूट टूट के गिरने लगे, चारों दिशाके दिग्गज मोहित हुए और सम्पूर्ण दिशा अन्धकारसे इस प्रकार छिप गयीं, कि उस समय कुछ भी नहीं दीख पडता था। (५४—५७)

तिसके अनन्तर उन्होंने सूर्य आदि देवताओंके प्रभाव तथा तेजको हीन कर दिया। उसे देख ऋषि लोग पहिले भयभीत होकर कोलाहल मचाने लगे, फिर अपने और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी होकर प्रशान्त हुए ॥ उस ही समय पूषाने

पुरोडाशं भक्षयतो दशनान्वै व्यशातयत् ॥ ५९ ॥
ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना नताः स्म ते ।
पुनश्च सन्दधे दीप्तान्देवानां निशिताञ्शरान् ॥ ६० ॥
सधूमान्सस्फुलिङ्गांश्च विद्युत्तोयदसन्निभान् ।
तं दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ६१ ॥
रुद्रस्य यज्ञभागं च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् ।
भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥ ६२ ॥
तेन चैवाऽतिकोपेन स यज्ञः सन्धितस्तदा ।
भग्नाश्चापि सुरा आसन्भीताश्चाऽद्यापि तं प्रति॥६३॥
असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।
आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत् ॥ ६४ ॥
सौवर्णं कमलाक्षस्य तारकाक्षस्य राजतम् ।
तृतीयं तु पुरं तेषां विद्युन्मालिन आयसम् ॥ ६५ ॥
न शक्तस्तानि मघवान्भेत्तुं सर्वायुधैरपि ।
अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ॥ ६६ ॥

यज्ञकी हविको भक्षण किया, इस ही कारण महादेव क्रुद्ध होकर उनका दांत तोड दिया ॥ उसे देखकर सम्पूर्ण देवता लोग भयभीत होकर कांपते हुए महादेवके सम्मुखसे भागने लगे । (५७-६०)

तब महादेव फिर अपने प्रचण्ड धनुषको ग्रहण करके जलते हुए अग्निके लुक तथा बिजलीके समान प्रकाशमान भयङ्कर तथा तीक्ष्ण बाणोंको देवताओंकी ओर चलाने लगे । तब सम्पूर्ण देवता लोग भगवान् रुद्रसे भयभीत होकर विशेष रूपसे उनके वास्ते यज्ञका भाग स्थापित करके उन्हींके शरणापन्न हुए । तब महादेवका क्रोध शान्त हुआ और उस समय दक्ष प्रजापतिकी नष्टप्राय यज्ञको पूर्ण करके देवताओंको यथायोग्य स्थानोंमें फिर स्थित किया । पर देवता लोग अब भी महादेवके क्रोधसे भयभीत हैं ॥ (६०-६३)

पहिले आकाशमें महाबलवान् असुरोंकी लोहे, सोने और चांदीसे बनी हुई तीन नगरी थीं; उनमेंसे सुवर्णकी पुरी कमलाक्षकी, चांदीकी पुरी तारकाक्षकी और तीसरी लोहमयी नगरी विद्युन्मालीकी बनाई हुई थी ॥ देवराज इन्द्र अपने सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंको चला कर भी असुरोंकी तीनों पुरी को नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हुए । (६४-६६)

ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः।
ब्रह्मदत्तवरा ह्येते घोरास्त्रिपुरवासिनः ॥ ६७ ॥
पीडयन्त्यधिकं लोकं यस्मात्ते वरदर्पिताः।
त्वदृते देवदेवेश नाऽन्यः शक्तः कथञ्चन ॥ ६८ ॥
हन्तुं दैत्यान्महादेव जहि तांस्त्वं सुरद्विषः।
रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु ॥ ६९ ॥
निपातयिष्यसे चैतानसुरान्भुवनेश्वर।
स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया ॥ ७० ॥
गन्धमादनविन्ध्यौ च कृत्वा वंशध्वजौ हरः।
पृथ्वीं ससागरवनां रथं कृत्वा तु शङ्करः ॥ ७१ ॥
अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः।
चक्रे कृत्वा तु चन्द्रार्कौ देवदेवः पिनाकधृक् ॥ ७२ ॥
अणीकृत्वैलपत्रं च पुष्पदन्तं च त्र्यम्बकः।
यूपं कृत्वा तु मलयमवनाहं च तक्षकम् ॥ ७३ ॥

अनन्तर असुरोंसे पीडित इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता लोग इकट्ठे होकर भगवान् रुद्रके शरणमें आके यह वचन बोले, हे देवोंके देव महादेव! त्रिपुरवासी भयङ्कर असुरोंने ब्रह्माके निकटसे वर प्राप्त किया है, उस ही वरके प्रभावसे सम्पूर्ण प्राणियोंको अत्यन्त पीडित कर रहे हैं। हे देवोंके प्रभु महादेव! तुम्हारे अतिरिक्त और ऐसा कोई भी पुरुष विद्यमान नहीं है, जो उन असुरोंका वध कर सके, इससे आप उन देवद्रोही असुरोंका नाश कीजिये॥ हे रुद्र! हे सम्पूर्ण प्राणियोंके ईश्वर! आप यदि इन भयङ्कर असुरोंका नाश करेंगे, तो वे असुर सब कर्मोंमें रौद्र पशु होंगे। (६६—७०)

महाप्रतापी पिनाकधारी महादेवने देवताओंके ऐसे वचनको सुनकर "ऐसा ही होगा" कहकर उन लोगोंके वचनको स्वीकार किया। अनन्तर उन लोगोंके हितकी अभिलाषासे उस त्रिनेत्र महादेवने समुद्र और अरण्योंके सहित पृथ्वीको रथ स्वरूप करके गन्धमादन और विन्ध्याचल पर्वतको उस रथकी क्रमसे वंश और ध्वजा बनाई। सर्पोंके राजा अनन्त नाग उस रथके अक्षकाष्ठ हुए। चन्द्र सूर्य उस रथके चक्र हुए, ऐलपत्र और पुष्पदन्त उस रथके अणी स्वरूप हुए, मलयाचल पर्वत उस रथका यूपकाष्ठ हुआ; तक्षक सर्प उस काठके

योक्त्राङ्गानि च सत्वानि कृत्वा शर्वः प्रतापवान् ।
वेदान्कृत्वाऽथ चतुरश्चतुरश्वान्महेश्वरः ॥ ७४ ॥
उपवेदान्खलीनांश्च कृत्वा लोकत्रयेश्वरः ।
गायत्रीं प्रग्रहं कृत्वा सावित्रीं च महेश्वरः ॥ ७५ ॥
कृत्वोङ्कारं प्रतोदं च ब्रह्माणं चैव सारथिम् ।
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा तु वासुकिम् ॥७६॥
विष्णुं शरोत्तमं कृत्वा शल्यमग्निं तथैव च ।
वायुं कृत्वाऽथ वाजाभ्यां पुङ्खे वैवस्वतं यमम् ॥ ७७ ॥
विद्युत्कृत्वाऽथ निश्राणं मेरुं कृत्वा च वै ध्वजम् ।
आरुह्य स रथं दिव्यं सर्वदेवमयं शिवः ॥ ७८ ॥
त्रिपुरस्य वधार्थाय स्थाणुः प्रहरतां वरः ।
असुराणामन्तकरः श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ७९ ॥
स्तूयमानः सुरैः पार्थ ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
स्थानं माहेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः ॥ ८० ॥
अतिष्ठत्स्थाणुभूतः स सहस्रं परिवत्सरान् ।

जोडने के वास्ते बन्धन स्वरूप हुए ॥ (७०—७३)

सम्पूर्ण भूत उसके योक्त्राङ्ग, चारों वेद उस रथके चारों घोडे और उपवेद उस घोडोंकी लगाम हुए। गायत्री और सावित्री उन घोडोंके साज तथा बागडोर, ओंकार कोडा और ब्रह्मा सारथी हुए॥ अनन्तर वह सर्व देवोंमें श्रेष्ठ तीनों लोकोंके स्वामी सम्पूर्ण देवोंके देव महादेवने मन्दरगिरिको गाण्डीव, वासुकी नागको उस धनुषका रोंदा, विष्णुको श्रेष्ठ बाण, अग्निको शल्य, वायुको ऊपर कहे हुए बाणके दोनों पंख, वैवस्वत यमको उस बाणकी पूंछ, विजली को निर्याण और सुमेरु पर्वतको रथके अगाडी स्थित होने वाली ध्वजा बनाया। (७४-७८)

अनन्तर भगवान् रुद्रने ऊपर कहे हुए उस ही दिव्य रथ पर चढके त्रिपुर नाश करनेके वास्ते यात्रा किया। हे अर्जुन ! उस समय असुरोंके नाश करनेवाले अत्यन्त पराक्रमी श्रीमान् महादेवने तपस्यामें रत ऋषि और देवताओंके स्तुतिको सुनते हुए माहेश्वर नामक एक दिव्यस्थान निर्माण करके असुरोंकी तीनों पुरियोंका उस एकही स्थानमें रहकर नाश करनेकी इच्छासे एक हजार वर्ष तक वहां ही स्थाणुके समान निवास

यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि च ॥ ८१ ॥
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि बिभेद सः ।
पुराणि न च तं शेकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ८२ ॥
शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम् ।
पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याता प्रवीक्षितुम् ॥ ८३ ॥
बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्सुरान् ॥ ८४ ॥
असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः ।
बाहुं सवज्रं तं तस्य क्रुद्धस्याऽस्तम्भयत्प्रभुः ॥ ८५ ॥
प्रहस्य भगवांस्तूर्णं सर्वलोकेश्वरो विभुः ।
ततः स स्तम्भितभुजः शक्रो देवगणैर्वृतः ॥ ८६ ॥
जगाम ससुरस्तूर्णं ब्रह्माणं प्रभुमव्ययम् ।
ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ ८७ ॥
किमप्यङ्कगतं ब्रह्म पार्वत्या भूतमद्भुतम् ।

किया। (७८-८१)

जिस समय वह त्रिपुर आकाशमें एक ही स्थान पर मिलित हुआ; उस समय उन्होंने त्रिपर्व और त्रिशल्य युक्त बाणसे उसका नाश किया। दानव लोग विष्णु और सोम संयुक्त प्रलय कालकी अग्निके समान उस बाण वा आकाश-स्थित त्रिपुरको देखनेमें भी समर्थ न हुए। त्रिपुर भस्म होनेके समय देवी भगवती पांच शिखासे शोभित एक बालकको गोदी (क्रोड) में लेकर वहां पर कौतुक देखने गयी थीं। ८१-८४

अनन्तर उमाने देवताओंसे पूछा, कि यह बालक कौन है? उस समय देवराज इन्द्र पाप तथा क्रोधके वशमें होके उस बालकके ऊपर वज्र चलानेमें उद्यत हुए। तब निग्रहानुग्रहमें समर्थ सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् त्रिलोचन महादेवने हंसके क्रोधी इन्द्रकी वज्रके सहित भुजाको उस ही समय स्तम्भित कर दिया। (८४-८६)

जब इन्द्रकी भुजा स्तम्भित हो गई, तब वह शीघ्रताके सहित सम्पूर्ण देवताओंको सङ्ग लेकर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माके निकट गमन करके उनके शरणागत हुए, सबने पृथ्वी पर सिर रखके उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोडके उनसे यह वचन बोले, हे ब्राह्मण! पार्वतीके क्रोडमें बालक रूपधारी एक अद्भुत मूर्तिवाले पुरुषको देखकर हम लोग

बालरूपधरं दृष्ट्वा नाऽस्माभिरभिलक्षितः ॥ ८८ ॥
तस्मात्त्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयम् ।
अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरन्दराः ॥ ८९ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
ध्यात्वा स शम्भुं भगवान्बालं चाऽमिततेजसम्॥९०॥
उवाच भगवान्ब्रह्मा शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान्हरः ॥ ९१ ॥
तस्मात्परतरं नाऽन्यत्किञ्चिदस्ति महेश्वरात् ।
यो दृष्टो ह्युमया सार्धं युष्माभिरमितद्युतिः ॥ ९२ ॥
स पार्वत्या कृते शर्वः कृतवान्बालरूपताम् ।
ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि ॥ ९३ ॥
स एष भगवान्देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
न सम्बुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥ ९४ ॥
सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम् ।
अथाऽभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा स च महेश्वरम्॥ ९५ ॥

यह न जान सके कि वह कौन हैं । उन्होंने बालक होके भी इन्द्र आदि देवताओं अर्थात् हम लोगोंको खेलवाडकी भांति पराजित किया है; इससे हम लोग आपसे पूंछते हैं, कि वह बालक कौन है ? (८६-८९)

अनन्तर ब्रह्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रगण्य भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा उन अत्यन्त तेजस्वी देवताओंके वचनको सुनके थोडी देर तक चिन्ता करके उन लोगोंसे बोले, हे देवता लोगो ! तुम सब लोगोंने पार्वतीके सहित जिस अमित तेजस्वी पुरुषका दर्शन किया है, वेही इस सचराचर जगत्का स्वामी भगवान् हर हैं॥ उस महेश्वरसे श्रेष्ठ लोकमें कोई भी वस्तु नहीं है। उस ही सर्वेश्वर महादेवने पार्वतीके निमित्त बालक रूप धारण किया था । (९०—९३)

वह सबके प्रभु, षडैश्वर्य शाली, आनन्द और सम्पूर्ण जगतके नियन्ता हैं, इससे चलो हम सब कोई उनके समीप गमन करके उनके शरणागत होवें। प्रजापति आदि सम्पूर्ण देवताओंके बीच कोई भी उस बाल-सूर्यके समान तेजस्वी जगत्प्रभुके प्रभावको नहीं जान सकते। अनन्तर पितामह ब्रह्मा वहां पर उपस्थित होके महादेवका दर्शन करके " येही श्रेष्ठ हैं " ऐसा जानके उनकी

अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः।

ब्रह्मोवाच— त्वं यज्ञो भुवनस्यास्य त्वं गतिस्त्वं परायणम् ॥९६॥
त्वं भवस्त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम्।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥९७॥
भगवन्भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते।
प्रसादं कुरु शक्रस्य त्वया क्रोधार्दितस्य वै ॥९८॥

व्यास उवाच— पद्मयोनिवचः श्रुत्वा ततः प्रीतो महेश्वरः।
प्रसादाभिमुखो भूत्वा अट्टहासमथाऽकरोत् ॥९९॥
ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः।
अभवच्च पुनर्बाहुर्यथाप्रकृति वज्रिणः ॥१००॥
तेषां प्रसन्नो भगवान्सपत्नीको वृषध्वजः।
देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥१०१॥
स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वश्च सर्ववित्।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च सोऽश्विनौ च स विद्युतः ॥१०२॥
स भवः स च पर्जन्यो महादेवः सनातनः।
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः॥ १०३॥

वन्दना करने लगे। (९३—९६)

ब्रह्मा बोले, हे देवोंके देव! तुम ही इस लोकके बीच यज्ञस्वरूप, गति और सबके आश्रय हो। तुम ही महादेव, भव, परमधाम, परम पद हो, यह स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत् तुमसे ही व्याप्त होरहा है। तुम भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके ईश्वर, लोकनाथ और जगत्पति हो। हे देवोंके देव! इन्द्र तुम्हारी क्रोधरूपी अग्निसे दग्ध-प्राय होरहे हैं; इससे इन्द्रके ऊपर आप प्रसन्न होइये ॥ (९६—९८)

वेदव्यास मुनि बोले, महादेव पद्म-योनि ब्रह्माके इस प्रकार स्तुतियुक्त वचनोंको सुनके प्रसन्न हुए; और प्रसन्नताके सहित अट्टहास किया ॥ उसे देखकर सम्पूर्ण देवता लोग पार्वतीके सहित रुद्रदेवको प्रसन्न करनेमें प्रवृत्त हुए; तब इन्द्रकी भुजा पहिलेकी भांति फिर प्रकृतिस्थ हुई ॥ (९९—१००)

हे अर्जुन! इसी प्रकार सम्पूर्ण देवोंमें श्रेष्ठ, दक्ष यज्ञको नाश करनेवाले, पार्वतीके सहित भगवान् वृषभध्वज देवता ओंसे प्रसन्न हुए थे॥ वह रुद्र, शिव, अग्नि, सर्वज्ञ, शर्व, इन्द्र, वायु, दोनों अश्विनीकुमार और विद्युतरूप हैं; वही भव

स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि तु।
मासार्धमासा ऋतवः सन्ध्ये संवत्सरश्च सः॥ १०४॥
धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः ॥ १०५॥
सर्वदेवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा ॥ १०६॥
द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरा चाऽन्या शिवा चाऽन्या ते तनू बहुधा पुनः॥१०७॥
घोरा तु यातुधानस्य सोऽग्निर्विष्णुः स भास्करः।
सौम्या तु पुनरेवाऽस्य आपो ज्योतींषि चन्द्रमा॥ १०८॥
वेदाः साङ्गोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः।
यदत्र परमं गुह्यं सर्वदेवो महेश्वरः ॥ १०९॥
ईदृशश्च महादेवो भूयांश्च भगवानजः।
नहि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः ॥११०॥
अपि वर्षसहस्रेण सततं पाण्डुनन्दन।

पर्जन्य, महादेव, सनातन, ईशान, चन्द्र, सूर्य, और वरुण हैं; वही कालरूपी अन्तक, मृत्यु, यम, रात्रि, और दिन हैं। वही पक्ष, मास, ऋतु, दोनों सन्ध्या और संवत्सर हैं॥ (१०१—१०४)

वही धाता, विधाता, विश्वात्मा और विश्वको उत्पन्न करनेवाले हैं। वह शरीर रहित होकर भी सम्पूर्ण देवतोंके रूपसे स्थित रहते हैं॥ इस ही कारण देवता लोग उन्हें शत, सहस्र, लक्ष और अनेक रूपधारी कहके उनकी स्तुति किया करते हैं। वेद जाननेवाले ब्राह्मण लोग उस देवोंके देव महादेवकी "घोरा" और "शिवा" नाम्नी दोनों मूर्त्तियोंको जानते हैं; परन्तु वही दोनों मूर्त्ति अनेक रूपसे विस्तृत होती हैं॥ (१०५-१०७)

यातुधानोंकी उपास्य विष्णु, अग्नि और सूर्य उनकी घोर मूर्त्ति और चन्द्रमा जल तथा ज्योतिवाले अन्य पदार्थ उनकी सौम्य मूर्त्ति हैं॥ पुराण, वेदाङ्ग और अध्यात्म निश्चयात्मक उपनिषद् जो कुछ गोपनीय वस्तु हैं, वह सम्पूर्ण स्वप्रकाश महेश्वररूप हैं॥ हे अर्जुन! जन्म मृत्यु रहित भगवान् महादेव इसी प्रकार तथा इससे भी परे हैं। हे पाण्डुपुत्र अर्जुन! मैं सहस्र वर्ष पर्यन्त वर्णन करके भी भगवान् शङ्करके गुणोंको वर्णन न कर सकूंगा। (१०८-१११)

सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान्वै सर्वपापसमन्वितान् ॥ १११ ॥
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान्।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान्॥ ११२ ॥
स ददाति मनुष्येभ्यः स चैवाऽऽक्षिपते पुनः।
सेन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते ॥ ११३ ॥
स चैव व्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे।
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरश्च स उच्यते ॥ ११४ ॥
महेश्वरश्च महतां भूतानामीश्वरश्च सः।
बहुभिर्बहुधा रूपैर्विश्वं व्याप्नोति वै जगत् ॥ ११५ ॥
तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे तदधिष्ठितम्।
वडवामुखेति विख्यातं पिबत्तोयमयं हविः ॥ ११६ ॥
एष चैव श्मशानेषु देवो वसति नित्यशः।
यजन्त्येनं जनास्तत्र वीरस्थान इतीश्वरम् ॥ ११७ ॥
अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च।

मनुष्य लोग यदि सम्पूर्ण ग्रहोंसे पीडित और अनेक पापोंसे युक्त होकर भी उनके शरणागत होते हैं, तो भी महात्मा शिव अपने शरणागत भक्तोंके ऊपर प्रसन्न होके उन्हें सम्पूर्ण विपदाओंसे मुक्त कर देते हैं। वह प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको आयु, आरोग्यता, ऐश्वर्य, धन और उत्तम उत्तम अभिलषित भोग वस्तु प्रदान करते हैं; और कोपित होकर विपत्तके भंवरमें डाल देते हैं। इन्द्रादिक देवताओंका जो कुछ ऐश्वर्य दीख पडता है, वह सब भगवान् शम्भुकाही ऐश्वर्य कहा जाता है; क्योंकि वही मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मोंके परिचालक हैं। वह अपने ऐश्वर्यके प्रभावसे मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं, वही महाभूतोंके नियन्ता हैं; सम्पूर्ण प्राणी उन्हेंही ईश्वर तथा महेश्वर कहके उनके चरित्रोंको गाया करते हैं। वह नाना भांतिके असंख्य रूप धारण करके इस जगत्में स्थित हैं॥ (१११—११५)

उसही महादेवका जो मुख समुद्रमें स्थित होकर जलरूपी हविको पान कर रहा है, वही वडवानल नामसे विख्यात हुआ है॥ वह महातेजस्वी रुद्र सदा श्मशानमें निवास करते हैं; मनुष्य लोग वहांपर उन्हें वीर स्थानमें स्थित ईश्वर कहके उनकी पूजा किया करते हैं॥ उनके अनगिनत प्रकाशमान और भयङ्कर

लोके यान्यस्य पूज्यन्ते मनुष्याः प्रवदन्ति च ॥११८॥
नामधेयानि लोकेषु बहून्यस्य यथार्थवत् ।
निरुच्यन्ते महत्वाच्च विभुत्वात्कर्मणस्तथा ॥ ११९ ॥
वेदे चाऽस्य समाम्नातं शतरुद्रियमुत्तमम् ।
नाम्ना चाऽनन्तरुद्रेति ह्युपस्थानं महात्मनः॥ १२० ॥
स कामानां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः ।
स विभुः स प्रभुर्देवो विश्वं व्याप्नोति वै महत्॥१२१॥
ज्येष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा ।
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादस्याऽनलोऽभवत्॥ १२२ ॥
सर्वथा यत्पशून्पाति तैश्च यद्रमते पुनः ।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात्पशुपतिः स्मृतः ॥ १२३ ॥
दिव्यं च ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यथास्थितम् ।
महयत्येष लोकांश्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ १२४ ॥
ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमस्याऽर्चयन्ति स्म तचाऽप्यूर्ध्वं समास्थितम् ॥१२५॥

रूप हैं; मनुष्य लोग सदाही उनकी पूजा करके भगवान् रुद्रके गुणोंको गाया करते हैं॥ (११६—११८)

कर्ममहत्त्व और ईश्वरत्वसे सम्पूर्ण प्राणी उन्हें अनगिनत सार्थक नामोंसे उनका गुणगान करते हैं॥ वेदमें उस महात्मा रुद्रदेवका शतरुद्रि अनन्तरुद्रि नामसे उत्तम उपस्थान वर्णित है॥ वह मनुष्य और देवताओंको इच्छानुसार फल देनेवाले हैं। वह विश्वव्यापक, महत्, निग्रहानुग्रहमें समर्थ, स्वयंप्रभु और विभु हैं॥ वही देवताओंके आदि पुरुष हैं; उन्हींके मुखसे अग्नि आदि वस्तु उत्पन्न हुई हैं। इसही कारण ब्राह्मण और मुनि लोग उन्हें सबसे श्रेष्ठ ज्येष्ठ तथा आदि कारण कहके उनके गुणोंका वर्णन करते हैं॥ ११९-१२२

वह सब भांतिसे पशु अर्थात् जीवोंका पालन, उनके सङ्ग क्रीडा और उनके ऊपर ऐश्वर्य विस्तार करते हैं, इस ही कारण सब कोई पशुपति नामसे उनका गुणानुवाद करते हैं॥ उनकी एक मूर्ति सदा ब्रह्मचर्य व्रतमें तत्पर तथा लोकमें स्थित होकर सबको आनन्दित कर रही है, इस ही कारण वह महेश्वर नामसे विख्यात हुए हैं॥ देवता, गन्धर्व, और ऋषि लोग सदा उस लिंग मूर्तिकी पूजा अर्चना करते हैं; वह मूर्ति ऊर्ध्वमुखसे

पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः ।
सुखी प्रीतश्च भवति प्रहृष्टश्चैव शङ्करः ॥ १२६ ॥
यदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवत्स्थितम् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ॥ २७ ॥
एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
क्रोधाद्यश्चाऽऽविशल्लोकांस्तस्मात्सर्व इति स्मृतः ॥२८॥
धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते ।
विश्वे देवाश्च यत्तस्मिन्विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥ १२९ ॥
तिस्रो देवीर्यदा चैव भजते भुवनेश्वरः ।
द्यामपः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकश्च ततः स्मृतः ॥ १३० ॥
स मेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान्सर्वकर्मसु ।
शिवमिच्छन्मनुष्याणां तस्मादेष शिवः स्मृतः ॥१३१॥
सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
यच्च विश्वं महत्पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥ १३२ ॥
महत्पूर्वं स्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिस्थितश्च यत् ।

जगत्में स्थित है। उनकी लिंगमूर्तिकी पूजा करनेवाला पुरुष सुख और प्रीतिको प्राप्त करता है, तथा शंकर भी उसके ऊपर संतुष्ट होते हैं ॥ (१२३—१२६)

भूत, वर्तमान, भविष्य और स्थावर जङ्गमात्मक उनके अनेक रूप हैं; इस ही कारण वह बहुरूप नामसे विख्यात हुए हैं ॥ वह एक चक्षु, वा सर्वचक्षु होकर प्रकाशमान रूपसे विराजमान हैं। क्रोधसे उन्होंने इस लोकके बीच प्रवेश किया है इसहीसे उनका नाम सर्व हुआ है। धूम्रवर्णवाली उनकी एक मूर्ति है, इस ही कारण वह धूर्जटि नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। सम्पूर्ण देवता लोग उन्हींमें प्रतिष्ठित हैं, इसीसे उनका विश्वरूप नाम हुआ है ॥ (१२७–१२९)

पृथ्वी, जल आकाश इन तीन देवमूर्तियोंका वह सदा आश्रय करता है, इसीसे उनका त्र्यम्बक नाम प्रसिद्ध हुआ है॥ वह मनुष्योंको मङ्गल कामनासे सम्पूर्ण कार्योंके अर्थको परिवर्धित करते हैं, इससे उनका शिव नाम प्रसिद्ध है ॥ वह सहस्राक्ष, अयुताक्ष और सर्वतश्चक्षु नामसे प्रसिद्ध हैं। वह इस बड़े जगत्को पालन करते हैं, इसहीसे उनका नाम महादेव हुआ है ॥ (१३०–१३२)

वह महत्‌रूपमें स्थित होकर अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहे हैं, वही प्राणकी

स्थितलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः॥ १३३ ॥
सूर्याचन्द्रमसोर्लोके प्रकाशन्ते रुचश्च याः ।
ताः केशसंज्ञितास्त्र्यक्षे व्योमकेशस्ततः स्मृतः॥१३४ ॥
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जगदशेषतः ।
भव एव ततो यस्माद्भूतभव्यभवोद्भवः ॥ १३५ ॥
कपिः श्रेष्ठ इति प्रोक्तो धर्मश्च वृष उच्यते ।
स देवदेवो भगवान्कीर्त्यतेऽतो वृषाकपिः ॥ १३६ ॥
ब्रह्माणमिन्द्रं वरुणं यमं धनदमेव च ।
निगृह्य हरते यस्मात्तस्माद्धर इति स्मृतः ॥ १३७ ॥
निमीलिताभ्यां नेत्राभ्यां बलाद्देवो महेश्वरः ।
ललाटे नेत्रमसृजत्तेन त्र्यक्षः स उच्यते ॥ १३८ ॥
विषमस्थः शरीरेषु समश्च प्राणिनामिह ।
स वायुर्विषमस्थेषु प्राणोऽपानः शरीरिषु ॥ १३९ ॥
पूजयेद्विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः ।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥ १४० ॥

उत्पत्ति, स्थितिके कारण और सदा स्थिर रूप हैं; इसही कारणसे वह स्थाणु नामसे विख्यात है ॥ सूर्य और चन्द्रमाके प्रकाशित होकर अन्धकारको दूर करने वाले किरण उस त्र्यम्बकके केश हैं, उस हीसे उनका नाम व्योमकेश हुआ है ॥ भूत, भविष्य और वर्त्तमानकाल उसही महादेवसे उत्पन्न होते हैं इसहीसे वह भूत, भविष्य और वर्त्तमान कालके आधारभूत भव नामसे विख्यात हुए हैं ॥(१३३-१३५)

श्रेष्ठको कपि कहते हैं और वृष धर्म-का नाम है वह श्रेष्ठ धर्म होनेसे उनको वृषाकपि नाम हुआ है॥ वह ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर आदिको निगृहीत करके हरण अर्थात् उनका संहार करते हैं, इस ही कारण उनका नाम हर प्रसिद्ध हुआ है ॥ (१३६-१३७)

उस महेश्वरने अपने दोनों उन्मीलित नेत्रोंसे पृथक् निज मस्तकके बीच बलपूर्वक एक तीसरे नेत्रको उत्पन्न किया है; इस ही कारण उनका नाम त्र्यक्ष विख्यात हुआ है ॥ वह प्राणियोंके शरीरमें सम और विषमस्थ वायु तथा शरीरके प्राण और अपान वायु नामसे प्रसिद्ध हुए हैं ॥ जो पुरुष महादेवके लिङ्गमूर्त्तिकी पूजा करते हैं, वह सदा सर्वदा बडी सम्पत्तिको लाभ करते हैं ॥

ऊरुभ्यामर्धमाग्नेयं सोमोऽर्धं च शिवा तनुः ।
आत्मनोऽर्धं तथा चाऽग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते॥१४१॥
तैजसी महती दीप्ता देवेभ्योऽस्य शिवा तनुः ।
भास्वती मानुषेष्वस्य तनुर्घोराऽग्निरुच्यते ॥ १४२ ॥
ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवा याऽस्य तनुस्तया ।
याऽस्य घोरतरा मूर्तिः सर्वानत्ति तयेश्वरः ॥ १४३ ॥
यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत्प्रतापवान् ।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ १४३ ॥
एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाऽग्रतः ।
संग्रामे शात्रवान्निघ्नंस्त्वया दृष्टः पिनाकधृक्॥ १४५ ॥
सिन्धुराजवधार्थाय प्रतिज्ञाते त्वयाऽनघ ।
कृष्णेन दर्शितः स्वप्ने यस्तु शैलेन्द्रमूर्धनि ॥ १४६ ॥
एष वै भगवान्देवः संग्रामे याति तेऽग्रतः ।
येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः॥१४७॥

उनके दोनों पार्श्वके अर्द्धभाग आग्नेय और अर्धभाग सौम्य हैं; शेष शिवामूर्त्ति है। ऐसा भी वर्णन किया गया है, कि उनके सम्पूर्ण शरीरका अर्द्धभाग आग्नेय और अर्द्धभाग सौम्यमूर्त्ति है, परन्तु उनकी जो महातेजसे युक्त मूर्त्ति देवलोकमें विराजमान है, वही शिवा मूर्त्ति है; और सूर्यके समान तेजसे युक्त जो मूर्त्ति मनुष्य लोकमें प्रतिष्ठित है, वही अग्निमय मूर्त्ति घोरा नामसे प्रसिद्ध है ॥ (१३८–१४२)

वह परमेश्वर अपनी शिवा मूर्त्तिसे सदा ब्रह्मचर्य व्रत और दूसरी घोरा मूर्त्तिसे सम्पूर्ण लोकका संहार करते हैं॥ क्योंकि वह महादेव अग्नि, तीक्ष्ण और उग्र मूर्त्ति हैं और इन्हीं मूर्त्तियोंसे वह मांस रुधिर तथा मज्जा भक्षण करते हैं; इस ही कारणसे उनका नाम रुद्र कहके जगत्में विख्यात है ॥ (१४३–१४४)

हे पापरहित अर्जुन ! युद्धभूमिके बीच तुमने जिस देवको अपने अगाडीमें शत्रुओंकी सेनाको संहार करते देखा था और सिन्धुराज जयद्रथ वधकी प्रतिज्ञाके दिन कृष्णने स्वप्नयोगमें कैलास पर्वतके शिखर पर जाके जिनका दर्शन कराया था; वे वही पिनाकधारी महादेव हैं, जो तुम्हारे रथके आगे आगे गमन करते रहते हैं, और जिन्होंने तुम्हें पाशुपत आदि अस्त्र प्रदान किये थे; जिससे कि तुमने दुर्जय दानवकुलका

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।
देवदेवस्य ते पार्थ व्याख्यातं शतरुद्रियम् ॥ १४८ ॥
सर्वार्थसाधनं पुण्यं सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम् ॥ १४९ ॥
चतुर्विधमिदं स्तोत्रं यः शृणोति नरः सदा ।
विजित्य शत्रून्सर्वान्स रुद्रलोके महीयते ॥ १५० ॥
चरितं महात्मनो नित्यं सांग्रामिकमिदं स्मृतम् ।
पठन्वै शतरुद्रीयं शृण्वंश्च सततोत्थितः ॥ १५१ ॥
भक्तो विश्वेश्वरं देवं मानुषेषु च यः सदा ।
वरान्कामान्स लभते प्रसन्ने त्र्यम्बके नरः ॥ १५२ ॥
गच्छ युद्धयस्व कौन्तेय न तवाऽस्ति पराजयः ।
यस्य मन्त्री च गोप्ता च पार्श्वस्थो हि जनार्दनः॥१५३॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्त्वाऽर्जुनं संख्ये पराशरसुतस्तदा ।
जगाम भरतश्रेष्ठ यथागतमरिन्दम ॥ १५४ ॥
युद्धं कृत्वा महद्घोरं पञ्चाऽहानि महाबलः ।

संहार किया है वे वही भगवान् शिव हैं ॥ (१४५—१४७)

हे अर्जुन ! मैंने इस लोकमें यशको बढानेवाली तथा आयुको बढानेवाली, धन्य और पवित्र वेदसम्मत इस शतरुद्रिकी व्याख्या की है॥ यह अत्यन्त ही पुण्यदायक, सम्पूर्ण अर्थोंको सिद्ध करनेवाली, समस्त पापोंकी नाशक और अज्ञान, दुःख तथा भयको नाश करनेवाली है॥ जो मनुष्य इन चार प्रकारके स्तोत्रोंको सुनते हैं, वह शत्रुओंको जीत कर अन्त समयमें रुद्रलोकमें गमन करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥१४८-१५०

जो पुरुष महात्मा महादेवके इस दिव्य और मङ्गलजनक सांग्रामिक कथा तथा शतरुद्रीको पढते हैं, उनकी सदा उन्नति होती है; मनुष्यलोकमें जो भक्त महादेवको प्रसन्न कर सकता है, वह शीघ्र ही अपनी अभिलषित वस्तु पाता है ॥ हे कुन्तीनन्दन ! जनार्दन कृष्ण जब तुम्हारे रक्षक, सहायक और मन्त्री हुए हैं, तब कभी भी तुम्हारी पराजय न होगी; इससे जाओ, और युद्ध करो ॥ (१५१—१५३)

सञ्जय बोले, व्यासदेवने युद्धभूमिमें अर्जुनसे ऐसा कहके अपने स्थान पर गमन किया ॥ महाराज ! महाबलवान् ब्राह्मण द्रोणाचार्य इसी भांति पांच दिन

ब्राह्मणो निहतो राजन्ब्रह्मलोकमवाप्तवान् ॥ १५५ ॥
स्वधीते यत्फलं वेदे तदस्मिन्नपि पर्वणि ।
क्षत्रियाणाममीरूणां युक्तमत्र महद्यशः ॥ १५६ ॥
य इदं पठते पर्व शृणुयाद्वाऽपि नित्यशः ।
स मुच्यते महापापैः कृतैर्घोरैश्च कर्मभिः ॥ १५७ ॥
यज्ञावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह नित्यं घोरे युद्धे क्षत्रियाणां यशश्च ।
शेषौ वर्णौ काममिष्टं लभेते पुत्रान्पौत्रान्नित्यमिष्टांस्तथैव॥१५८॥[९६४२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०२ ॥ समाप्तं नारायणास्त्रमोक्षपर्व ।

द्रोणपर्व च समाप्तम् ।

अस्यानन्तरं कर्णपर्व भविष्यति तस्यायमाद्यः श्लोकः-
वैशम्पायन उवाच-ततो द्रोणे हते राजन्दुर्योधनमुखा नृपाः ।
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपाद्रवन् ॥ १ ॥

पर्यन्त महाभयङ्कर युद्ध करके रणभूमिके बीच मरके ब्रह्मलोकको गये॥१५४-१५५

इस पर्वमें युद्ध करनेवाले क्षत्रियोंके महत् यश और मुक्तिके विषय वर्णित हैं; इस पर्वको पढनेसे वेद अध्ययन करनेका फल मिलता है। भीतिरहित क्षत्रियोंको इसके पठनसे बडा यश मिलता है। जो सदा नित्य नेमसे इस पर्वको पढते वा सुनते हैं; वह भयानक कर्म और महापापसे छूट जाते हैं ॥ इसके पढनेसे ब्राह्मणोंको सदा यज्ञ करनेका फल, क्षत्रियोंको भयङ्कर युद्धमें विजय लाभ होता है और वैश्य आदि शेष वर्ण अपनी इच्छानुसार पुत्र, पौत्र प्रभृति अभिलषित वस्तुओंको पाते हैं ॥ (१५६—१५८) [९६४२]

द्रोणपर्वमें दोसौ दोय अध्याय और नारायणास्त्रमोक्षपर्व समाप्त ।

इति द्रोणपर्व समाप्तम् ।

भीष्मपर्वके अन्ततक श्लोक संख्या-	३८०८५
द्रोणपर्वकी श्लोक संख्या-	९६४२
सर्वयोग—	४७७२७

द्रोणपर्वकी विषयसूची।

द्रोणपर्वकी विषयसूची समाप्त ।

आदितः श्लोकसंख्या—

१ आदिपर्व—८७०९

२ सभापर्व—२७६२

३ वनपर्व— ११८९२

४ विराटपर्व—२२६२

५ उद्योगपर्व— ६५९०

६ भीष्मपर्व—५८७०

७ द्रोणपर्व —९६४२

सर्वयोगः—४७७२७